# आधुनिक गद्य साहित्य (अ)

**गोदान**

**आवारा मसीहा**

**निबन्ध निकष**

## एम.ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)

**प्रश्न पत्र-2**

**Paper-2**

## दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

# महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

# रोहतक—124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

# विषय-सूची


**गोदान**

| | |
|---|---|
| **खण्ड (क) व्याख्या** | 5 |
| **खण्ड (ख) आलोचना** | 49 |
| **खण्ड (ग) लघूत्तरी प्रश्न** | 128 |
| **खण्ड (घ) अतिलघूत्तरी प्रश्न** | 146 |

**आवारा मसीहा**

| | | |
|---|---|---|
| | **खण्ड (क) व्याख्या** | **156-182** |
| | **खण्ड (ख) आलोचना** | **183-229** |
| 1. | आवारा मसीहा : सार | 183 |
| 2. | आवारा मसीहा : नामकरण | 187 |
| 3. | आवारा मसीहा : जीवनी कला के परिप्रेक्ष्य में | 190 |
| 4. | आवारा मसीहा : संवेदनशील हृदय का अंकन | 195 |
| 5. | आवारा मसीहा : उद्देश्य | 199 |
| 6. | आवारा मसीहा : संवाद योजना | 203 |
| 7. | आवारा मसीहा : चरित्र-चित्रण | 209 |
| 8. | चरित्र-चित्रण : शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय | 214 |
| 9. | चरित्र-चित्रण : राजू | 219 |
| 10. | चरित्र-चित्रण : मोक्षदा | 222 |
| 11. | आवारा मसीहा : भाषा शैली | 224 |

**निबन्ध निकष (निबन्ध संकलन)**

| | | |
|---|---|---|
| | **खण्ड (क) व्याख्या खण्ड** | **231-268** |
| | **खण्ड (ख) आलोचना** | **269-310** |
| हिन्दी निबन्धः स्वरूप एवं विकास | | 269 |
| साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः सारांश | | 273 |
| साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः विशेषताएँ | | 275 |
| साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः भाषा-शैली | | 277 |
| कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः सारांश | | 278 |
| कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः विशेषताएँ | | 280 |
| कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः भाषा-शैली | | 282 |
| मजदूरी और प्रेमः सारांश | | 283 |
| मजदूरी और प्रेमः विशेषताएँ | | 285 |
| मजदूरी और प्रेम? भाषा-शैली | | 287 |
| कविता क्या है? सारांश | | 289 |
| कविता क्या है? विशेषताएँ | | 292 |
| कविता क्या है? भाषा-शैली | | 294 |
| नाखून क्यों बढ़ते हैं? सारांश | | 296 |
| नाखून क्यों बढ़ते हैं? विशेषताएँ | | 298 |
| नाखून क्यों बढ़ते हैं? भाषा-शैली | | 300 |
| पगडण्डियों का जमाना? सारांश | | 301 |
| पगडण्डियों का जमाना? विशेषताएँ | | 303 |
| पगडण्डियों का जमाना? भाषा-शैली | | 305 |
| अस्ति की पुकार हिमालय? सारांश | | 306 |
| अस्ति की पुकार हिमालय? विशेषताएँ | | 308 |
| अस्ति की पुकार हिमालय? भाषा-शैली | | 310 |
| | **खण्ड-ग अतिलघूत्तरीय प्रश्नोत्तर** | **311-320** |
| साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है | | 311 |
| कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता | | 313 |
| मजदूरी और प्रेम | | 314 |
| कविता क्या है? | | 316 |
| नाखून क्यों बढ़ते है? | | 318 |
| पगडण्डियों का जमाना | | 319 |
| अस्ति की पुकार हिमालय | | 320 |
| | **खण्ड-घ लघूत्तरीय प्रश्नोत्तर** | **321-328** |

# आधुनिक गद्य साहित्य

**पूर्णांकः 100**

**समयः 3 घंटे**

***निर्देशः***

1. खंड (क) में निर्धारित साहित्यकरों से सम्बद्ध दस लधु प्रश्न दिये जायंगे। परीक्षार्थियों को प्रत्येक प्रश्न का (लगभग 30 से 50 शब्दों में उत्तर देना होगा। प्रत्येक प्रश्न दो अंकों का होगा और पूरा प्रश्न बीस अंकों का होगा।
2. खंड (क) में निर्धारित सभी सात शीर्षकों में से किन्ही 6 में से एक-एक गद्यांश व्याख्या के लिए पूछा जाएगा, परीक्षार्थियों को इनमें से किन्हीं तीन की व्याख्या लिखनी होगी। प्रत्येक व्याख्या के लिए 10 अंक निर्धारित हैं। पूरा प्रश्न 30 अंकों का होगा।
3. द्रुत-पाठ के लिए निर्धारित प्रत्येक विधा से तीन-तीन रचनाओं के एक-एक प्रश्न पूछें जाएंगे। कुल 15 प्रश्न जिनमें से परीक्षार्थियों को प्रत्येक विधा से एक-एक प्रश्न करना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न चार अंक का होगा। लघूत्तरी प्रश्न परिचयात्मक प्रकृति के ही होंगे।
4. खंड (क) में निर्धारित सभी सात शीर्षकों से संबद्व पांच आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे, परीक्षार्थियों को उनमें से किन्ही दो के उत्तर देने होंगे आलोचनात्मक प्रश्न 15 अंक का होगा।

**खण्ड 'क'**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | **गोदान** | यथार्थ और आदर्श, कृषक जीवन की पीड़ा का महाकाव्यात्मक उपन्यास, चरित्र-चित्रण, आधुनिकता, निपुणिका और नारी मुक्ति, भाषा-शिल्प। |
| 2. | **आवारा मसीहा** | जीवनी के निकष पर, चरित्र-चित्रण, उद्‌देश्य। |
| 3. | **निबन्ध निकष** | पाठ्य निबन्धकरों के निबन्धों का वैशिष्ट्य और निबन्ध-शैली। |

# गोदान

**खण्ड-क** **व्याख्या**

**खण्ड-ख** **आलोचना**

**खण्ड-ग** **लघुत्तरी प्रश्न**

# खण्ड क

## व्याख्या भाग

**1. कभी तो जीवन का सुख न मिला इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस ग हस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिले उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति में उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था और दो चार धुड़कियाँ खाने पर भी उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।**

**संदर्भः** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनकी अमरक ति 'गोदान' उपन्यास से उद्‌ध्‌ त है। उपन्यासकार उपन्यास के नायक होरी की विपन्न दशा का विश्लेषण करता हुआ कहता है - होरी और धनिया आरम्भ से ही निरन्तर गरीबी के विरूद्ध संघर्ष करते आए थे परन्तु फिर भी उन्हें और उनके बच्चों को भरपेट रोटियाँ भी नसीब नहीं हो पाती थी इस निरन्तर संघर्ष ने धनिया को असमय में ही व द्धा बना दिया था। वह सदैव इस बात का विरोध किया करती थी कि अब जमींदार साथ हमारे कोई रियायत नहीं करता तो होरी क्यों बार-बार उसकी खुशामद करने के लिए जाया करता है। इसलिए कभी होरी जमींदार के यहां जाने की तैयारी करने लगता था तो पति-पत्नी में कलह हो जाया करती थी।

**व्याख्याः** धनिया को कभी सुख नहीं मिला था। परिवार में निरन्तर छाई रहने वाली गरीबी के कारण धनिया अपने आत्म सम्मान के प्रति भी उदासीन हो उठी थी वह जानती थी उसके विरोध करने पर होरी उसे फटकार देगा, परन्तु फिर भी विरोध करना उसका स्वभाव सा बन गया था। गरीबी गरीब के आत्म सम्मान की भावना को कुचल दिया करती है। पेट की चिन्ता करते-करते धनिया भी इसी स्थिति में आ गई थी। वह सोचती थी कि निरन्तर परिश्रम करते रहने पर भी भर पेट भोजन मयस्सर न हो सके तो उसके लिए किसी की खुशामद क्यों की जाए? इसलिए वह सदैव होरी द्वारा जमींदार की खुशामद करने को लेकर उसका विरोध करती थी और होरी उसे डांट देता था। तब धनिया की समझ में वास्तविकता आ जाती थी कि यदि होरी ऐसा न करे तो उनका कहीं भी ठिकाना न रहे। इसी खुशामद के बल पर अन्य अत्याचारों से उसके प्राण बचे रहते है। वह इस सत्य को समझ जाती है।

**विशेषः**

1. प्रेमचन्द ने इन पंक्तियों में क षक जीवन की आर्थिक विपन्न दशा का सुन्दर और सजीव चित्रण किया है।
2. सरल और प्रवाहमयी भाषा है।
3. व्यंजना और अभिधा शब्द शक्ति विद्यमान है।
4. पात्रानुकूल संवाद है।

**2. होरी लाठी कंधे पर रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कम्पन्न-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिपाए लेता था।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनकी अमरक ति 'गोदान' उपन्यास से उद्‌ध्‌ त है। होरी राय साहब अमरपाल सिंह से जब मिलने के लिए जा रहा था तो उसकी पत्नी होरी के सामने लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तम्बाकू का बटुआ लाकर रख देती है। तब होरी कहता है कि कौन-सा मैं ससुराल जा रहा हूँ, जो पाँचों पोसाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है जिसे जाकर दिखाऊँ। इस पर धनिया उसे जलाते

हुए कहती है कि ऐसे ही बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहज तुम्हें देखकर रीझ जाएंगी। इस पर होरी कहता है कि तू समझती है कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होतें हैं। तब धनिया कहती है कि दूध, घी, अंजन लगाने तक तो मिलता नहीं, पांठे होंगे। तब होरी कहता है कि साठे तक पहुँचने की नोबत न आने पाएगी। इसके पहले ही चल देंगे। इस संदर्भ में उपन्यासकार वर्णन करते हुए कहता है कि -

**व्याख्याः** होरी को रायसाहब से मिलने की जल्दी है। अतः वह राय साहब से मिलने की तैयारी कर शीघ्र हो घर से निकल पड़ा। होरी ने धनिया से मजाक-मजाक में कह दिया कि साठ वर्ष की उम्र तक पहुँचने की नौबत ही न आएगी। उससे पहले ही चल देंगे। होरी का यह मजाक-मजाक न होकर यथार्थ था क्योंकि जिस व्यक्ति को अथक परिश्रम करने पर भी दो वक्त भरपेट भोजन न मिले, जो चालीस की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते बूढ़ा हो जाए उसकी दीर्घायु की आशा नहीं की जा सकती। अतः धनिया इस मजाक से अन्दर तक डर गई। वह दरवाजे पर खड़ी होकर अपने पति को जो रायसाहब से मिलने के लिए जा रहा है, देर तक देखती रही। होरी के इन निराशा भरे शब्दों ने धनिया के ह्रदय में आतंक सा मचा दिया। धनिया सोचती है कि कितनी ही कतर-ब्यौंत क्यों न की जाए, महाजन का ऋण और जमींदार का लगान बेबाक ही नहीं होता। भारतीय नारी का सुहाग ही उसका सब कुछ होता है। जब उसका पति जीवित है तब तक वह निश्चिन्त है। पति की म त्यु के बाद अर्थात विधवा होने के बाद नारी की भारतीय समाज में बहुत दुर्गति होती है। अतः धनिया जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप, व्रत आदि जो पुण्य कर्म किए हैं। उनसे अपने पति को अभय दान दे रही है। धनिया के ह्रदय से होरी की मंगलकामना हेतु अर्थात होरी की दीर्घायु के लिए आशीर्वादों का व्यूह सा निकलकर होरी को उस आशीर्वाद के व्यूह में जैसे छिपा लेना चाहता था अर्थात होरी के जीवन में आने वाली समस्त बाधाओं, कष्टों से मानों धनिया की मंगल कामना उसकी रक्षा कर रही है।

**विशेषः**

1. धनिया के मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।
2. भारतीय समाज में विधवा की विवशता की ओर संकेत है।
3. धनिया पति परायण नारी है। इस ओर संकेत है।
4. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।
5. वर्णनात्मक शैली हैं।
6. माधुर्य गुण है।

3. **विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह त ण था जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानों झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है।**

**संदर्भः** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत गद्यांश उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनकी अमर-क ति 'गोदान' के प्रथम अध्याय से उद्‌घ्य त हैं। होरी ने अपनी पत्नी से मजाक करते हुए कह दिया था कि साठ वर्ष की उम्र तक पहुँचने की नौबत ही न आएगी, उससे पहले ही इस दुनिया से कूच कर जाएंगे। धनिया इस कटु यथार्थ से विचलित हो उठी और होरी को एक टक जाते देखती रही। होरी के इस मजाक का धनिया पर क्या प्रभाव पड़ा, इसको लेकर लेखक धनिया की मनोदशा को चित्रित करता हुआ लिखता है।

**व्याख्याः** होरी और धनिया आर्थिक अभाव में दिन व्यतीत कर रहे थे परन्तु धनिया इस आशा में संघर्ष कर रही थी कि आज नहीं तो कल हमारा होगा। कभी न कभी तो अच्छे दिन आएंगे ही और जब तक उसका पति उसके साथ है तब तक वह निश्चित है। अतः जिस अभावग्रस्त जीवन के आर्थिक संकटों से जूझकर वे आगे बढ़ रहे है, वह जैसे एक सागर की तरह उन्हें लील जाने को तत्पर था और केवल अपने सुहाग के प्रतीक पति के रूप में होरी को पाकर ही वह इस जीवन संघर्ष रूपी महासागर को पार कर रही थी। होरी ने जो कुछ कहा था, उसमें कटु यथार्थ निहित था किन्तु वाणी द्वारा स्पष्ट इस कटु यथार्थ को

सुनकर और उसकी अनुभूति करके धनिया को लगा जैसे क्रूर नियति उससे इस सहारे को भी छीन लेना चाहती है। होरी की आयु अभी मात्र चालीस वर्ष की थी, किंतु विपत्तियों और संघर्षो ने उसके शरीर को जर्जर कर दिया था। धनिया जानती थी कि ये परिस्थितियाँ बरकरार रही तो वास्तव में होरी साठ वर्ष की आयु तक नहीं पहुँच पाएगा और इसी कटु सत्य का स्मरण मात्र उसके लिए घातक था। वह इस झटके से वेदना विहल हो उठी और इसीलिए अनायास ही उसके हृदय से अपने पति के लिए मंगल कामनाएँ फूट पड़ी। सत्य, सत्य होते हुए भी कितना भयानक होता है, आज इसकी उसे प्रत्यक्ष अनुभूति हो रही थी। किसी काने व्यक्ति को यदि कोई काना कह दे तो उसका हृदय नियति की इस क्रूर विडम्बना से जिस दुःख का अनुभव करता है, वह दुःख किसी आँखों वाले व्यक्ति को काना कहने पर कैसे हो सकता है क्योंकि काना जानता है कि वह प्रकत्या काना है, जबकि दूसरा व्यक्ति इसे केवल व्यंग्य समझता है जो असत्य पर आद्य त होता है। होरी के कथन में कटु यथार्थ छिपा था जिसकी उपेक्षा धनिया नहीं कर सकती थी, इसी कारण उसका हृदय वेदना से भर उठा।

**विशेष :**

1. मनोविश्लेषणात्मक शैली है।
2. भारतीय विधवा की दयनीय दशा की ओर संकेत है।
3. ''काना कहने से काने को दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले को हो सकता है।'' कथन में प्रेमचन्द जी कितने संक्षेप में एक बहुत बड़ी बात कह गए है। इस प्रकार की सूक्तियों के प्रयोग से प्रेमचन्द जी संक्षेप में ही अत्यधिक बात कह जाते हैं।

4. **जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकलकर आकाश पर छायी हुई लालिमा को अपने रजत-प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गर्मी आने लगी थी। दोनों और खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम-राम करते हुए और सम्मान भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे, पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था। उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने का ही तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं। नहीं तो उसे कौन पूछता? पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महंता भी इसके सामने सिर झुकाते हैं।**

**संदर्भ :-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत अनुच्छेद मुंशी प्रेमचन्द क त 'गोदान' उपन्यास से उद्द्य त है। होरी राय साहब अमरपाल सिंह को मिलने जा रहा है। प्रातःकाल का समय है। लेखक समय का वर्णन करते हुए कहता है। कि-

**व्याख्या:-**ग्रीष्म ऋतु का जेठ का महीना है। होरी जिस पगडंडी से सेमरी गाँव की ओर चला जा रहा है वहाँ अमराइयों के झुरमुट से सूर्य की किरणें पूर्व दिशा में फैली हुई लालिमा को चीरकर सुन्दर, सलोनी धरती पर चाँदी जैसी सफेद किरणें धीरे-धीरे बढ़ती हुई चली जा रही है। गर्मी की ऋतु में जेठ के महीने में प्रातःकाल का समय मनोरम एवं सुहाना होता है परन्तु ज्यों-ज्यों सूर्य ऊपर चढ़ता जाता है और धूप तेज होने लगती है, पगडंडी के दोनों ओर पड़ने वाले खेतों मे किसान काम कर रहे हैं और जब व होरी को देखते हैं तो उसे सम्मान देते हुए गाँवों की परम्परानुसार राम-राम करके उसे तम्बाकू पीने का निमन्त्रण देते हैं पर होरी के पास इस समय इतनी फुर्सत नही है कि वह उनके साथ बैठकर चिलम पी सके क्योंकि होरी को पता है कि यदि उसने देर कर दी तो राय-साहब पूजा पर बैठ जाएंगे और फिर तीन घंटे तक उठने का नाम न लेंगे। होरी मात्र पाँच बीघे का छोटा-सा किसान है पर बेलारी गाँव के वे किसान जिनके पास होरी से अधिक भूमि है और कई-कई गोइयों (हलों) के मालिक हैं वे भी होरी का आदर करते हैं तो इस सम्मान को प्राप्त कर होरी के सूखे मुख पर थोड़ी देर के लिए गर्व की झलक उत्पन्न हो जाती है अर्थात् वह अन्दर-ही-अन्दर स्वयं को सम्मानित महसूस करता है। होरी सोचता है कि मैं राय साहब अमरपाल सिंह से मिलता-जुलता रहता हूँ। यह इस मिलते-जुलते रहने का ही परिणाम है कि बड़े किसान भी मेरा आदर करते हैं। नहीं तो मुझे कोन पूछता? मेरे लिए यह कम गौरव की बात नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले किसान भी आदरपूर्वक मेरे सामने सिर झुकाते हैं, मेरा अभिवादन करते हैं।

**विशेषः-**

1. होरी का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।
2. वर्णनात्मक शैली है।
3. प्रेमचन्द ने भारतीय किसान को बहुत नजदीक से देखा था। प्रस्तुत गद्यांश इस बात का प्रमाण है। सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।
4. भ तहरि का कथन है कि बड़ो का साथ किसकी उन्नति नही करता। यहाँ होरी पर भी यही बात लागू होती है।
5. **सूखे-बूढ़े की विपदाएं उसके मन को भीरू बनाए रहती थी। ईश्वर का रौद्ररूप सदैव उसके सामने रहता था। पर यह छल उसकी नीति में छल नहीं था। यह केवल स्वार्थ सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात नही थी। इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था। घर में दो-चार रूपए पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नही है। सन को कुछ गीला कर देना और रूई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था। और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बूड्ढ़ो की बुढ़बस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बूड्ढ़ो से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाए, तो कोई दोष पाप नहीं।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत अनुच्छेद मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य में मील का पत्थर उपन्यास 'गोदान' से उद्द्य त है। होरी भोला से पछाही नस्ल की एक गाय लेना चहता है और वह विधुर भोला से कहता है कि वह उसका दुसरा विवाह करवा देगा। इस सम्बन्ध में उपन्यासकार होरी की आंतरिक मनोदशां का वर्णन करते हुए कहता है कि -

**व्याख्याः-** भारतीय क षि को जुआ माना गया है। उस समय आज की तरह नल कूचों अथवा नहरों की सिंचाई की सुविधा नहीं थी, अतः खेती पूरी तरह वर्षा पर निर्भर थी। भारतीय किसान पूरी तरह वर्षा और भाग्य पर निर्भर है। वह ईश्वर में विश्वास करता है। और सोचता है कि यदि उसके हाथों किसी के साथ अन्याय हो गया तो उस अन्याय के पाप का दण्ड उसे ईश्वर की ओर से अवश्य मिलेगा। अतः अनुचित कार्यो से वह सदैव भयभीत रहता है। खेती में कभी अनाव ष्टि के कारण सूखा पड़ जाता है और कभी अत्याधिक वर्षा के कारण फसल डूब जाती है। इस तरह की विपत्तियाँ उसे डरपोक बनाए रखती हैं क्योंकि वह सोचता है कि यह सूखा अथवा बाढ़ जो आई है, यह उसने जो किसी के साथ अन्याय किया है, उस अन्याय का परिणाम है। प्रक ति ने उसे दण्ड दिया है इसलिए वह किसी के साथ छल धोखा करते हुए डरता है कि ईश्वर उसे इस पापकर्म का दन्ड अवश्य देगा। यहाँ होरी गोला के साथ छल कर रहा है कि उसके ससुराल में एक मेहरिया है, उसका पति उसे छोड़ कर कलकता गया हुआ है, उसको गए हुए सात साल से भी अधिक समय हो गया है और वह अभी तक वहाँ से लौटा नहीं है न कभी उसकी चिट्ठी-पत्री ही आती है। पता नहीं वह मरा या जीवित है, अतः वह उस मेहरिया का भोला के साथ विवाह करवा देगा। भोला विधुर है अतः अंधे को क्या चाहिए, दो आँखे। भोला होरी के इस मधुर आश्वासन से प्रसन्न होकर होरी को उधार में ही गाय दे देने को उतावला है परन्तु होरी को इस बात का पक्का निश्चय नहीं है कि वह भोला का विवाह उस मेहरिया से करवा ही देगा। अतः होरी मन ही मन सोचता है कि वह भोला के साथ छल कर रहा है। ऐसा छल उसे नहीं करना चाहिए, परन्तु दूसरे ही क्षण होरी फिर सोचता है कि यद्यपि यह छल है परन्तु छल होते हुए भी पाप नही है क्योंकि वह गाय उधार नहीं ले रहा है अपितु देर-सवेर गाय के रूपये भोला को अवश्य लौटाएगा। उधार के रूपये रखेगा नहीं। यदि भोला की शादी हो गई फिर तो ठीक है। वह गाय के रूपयों का तकाजा कुछ समय तक लिहाज में करेगा ही नहीं। अतः वह सुविधापूर्वक आसान ही से भोला को रूपये लौटा देगा और यदि किसी कारणवश भोला की शादी न करवा पाया तो भोला उसे गाली देगा वह उस अपमान को मजबूरी में सहन कर लेगा क्योंकि अपमान तो वह रोजाना शोषकों द्वारा सहन करता ही आया है। अतः भोला द्वारा गाय की इच्छा को पूरा करने में वह कोई बुराई नहीं समझता था क्योंकि इस तरह का छल तो अपने स्वार्थ के लिए रात-दिन करता ही रहता है। जैसे महाजन जब उससे अपने मूलधन के ब्याज के लिए तकाजा करता था तो उस सयम घर में दो चार रूपए पड़े होने पर भी महाजन के सामने कसम खा कर कहता था कि घर में एक पाई भी नहीं है। इसी तरह मण्ड़ी में जब वह सन को बेचने के लिए ले जाया करता था तो सन को गीला करने पर वजन बढ़ जाता था। यह भी छल ही था। इसी तरह रूई में कुछ बिनौले भर देना जिसके कारण रूई का वजन बढ़ जाता था। छल होते हुए भी ठीक वैसे ही जायज था, जैसे ठेकेदारों से इंजीनियर कमीशन लेने को रिश्वत नहीं मानते कमीशन को वे जायज मानते

है। इस तरह झूठ बोलने से जहाँ होरी का स्वार्थ पूरा हो रहा था वहाँ मनोरंजन भी हो रहा था। वह भोला जिसके घर दो जवान बेटे है दोनों की बहुएं आ चुकी और घर में बाल-विधवा बेटी बैठी हुई है। इस बुढ़ापे में भी शादी के ख्वाब देखता है। अतः ऐसे स्वार्थी खुदगर्ज लोगों से कुछ धन ऐंठ भी लिया जाए तो कोई अनुचित कार्य नहीं है। बल्कि इसमें थोड़ा मनोरंजन भी है।

**विशेषः-**

1. होरी का मनोवैज्ञानिक वर्णन है।
2. लेखक ने होरी के माध्यम से किसान के स्वभाव का यथार्थ चित्रण किया है।
3. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।
4. अभिधा एवं व्यंजना शब्द-शक्ति प्रयोग है।
5. अभावग्रस्त जीवन में सब जायज है यह दिखाने का प्रयास किया है।
6. **किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक -एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है। जब तक पक्का विश्वास न हो जाए, वह किसी के फुसलाने में नही आता, लेकिन उस सम्पूर्ण जीवन प्रक ति से स्थाई सहयोग है। व क्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है। खेती में अनाज होता है। वह संसार के काम आता है। गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नही जाती दुसरे ही पीते हैं। मेघों से वर्षा होती है, उससे प थ्वी त प्त होती है। ऐसी संगति में कुल्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते घर में हाथ सेकना उसने सीखा न था।**

**संदर्भः** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनके प्रसिद्व उपन्यास 'गोदान' से उद्ध त है। होरी गाय प्राप्त करने के लिए स्वार्थवश भोला को विवाह के नाम पर उल्लू बनाना चाहता है। किंतु जैसे ही होरी को इस बात का पता चलता है कि भोला गाय को इसलिए बेच रहा है कि उसके पास भूसा नही है। इस बात को जानकर होरी के मन में निःस्वार्थ भाव जाग त हो उठता है। होरी की इसी मनोव ति का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द कहते हैः-

**व्याख्याः** किसान निर्धन होने के कारण अपना स्वार्थ देखने के लिए विवष है। किसी काम के लिए यदि उसे रिश्वत देनी पड़ी तो उसकी गाँठ से बड़ी कठिनाई से पैसे निकल पाते है। व प्रत्येक वस्तु का मोल-तोल भी बड़ी सावधानीपूर्वक करता है। ब्याज की एक-एक पाई कम कराने के लिए वह अपने महाजन की घण्टों खुशामद करते देखा जाता है। किसी के बहलाने-फुसलाने में वह तब तक नहीं आता, जब तक उसे उस पर पूर्ण विश्वास न हो जाए। किसान में पाई जाने वाली ये विशेषताएँ उनका स्वभाव है। और स्वाभाविक रूप में ही वह ऐसा करता है अन्यथा निःस्वार्थ प्रक ति के बीच में रहने के कारण उसका जीवन प्रक ति की भांति ही सर्वथा परोपकारी और सर्वजन हिताय होता है। व क्ष में जो फल लगते हैं, उन्हें व क्ष स्वयं नहीं खातें उन्हें जनता ही खाती है। किसान कठोर परिश्रम से खेतों में अनाज उत्पन्न करता है और वह सारे संसार का भोज्य बनता है। इस प्रकार गाय भी अपने थनों का दूध स्वयं नही पीती, अन्य लोग ही पीते है। बादलों से वर्षा होती है। जिससे समूची प थ्वी की प्यास बुझती है। चूंकि किसान प्रक ति के ऐसे परोपकारी उपकरणों के बीच में रहता है। इसलिए उसकी परोपकार-भावना में भी संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि परोपकार और निःस्वार्थ भाव उसने प्रक ति से ग्रहण किया है । अपने स्वार्थ से नियमित व अनुचित लाभ नहीं उठाता। होरी प्रक ति के बीच पला एक किसान है, फिर भला भोला की कठिनाइयों का लाभ वह अपने स्वार्थ हेतु कैसे उठाता? इसीलिए आर्थिक संकट में पड़े भोला की गाय उधार लेना उसके ह्रदय ने स्वीकार नहीं किया, हाँ उसे दो चार मन भूसा मुफ्त में देने को वह अवश्य तैयार हो जाता है।

**विशेषः-**

1. यहाँ पर लेखक ने किसान की प्रक ति का बड़ा यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । भारतीय किसान परिस्थितिवश यदि स्वार्थी होता है तो यह उसका दोष नही हैं, हमारी शोषणपरक-अर्थव्यवस्था इसकी दोषी है अन्यथा किसान प्रक ति के बीच में रहता है और प्रक ति की भांति ही परोपकारी होता है।

2. चिरौरी करना एवं किसी के जलते घर में हाथ सेकना जैसे मुहावरों के प्रयोग से भाषा में प्रवाह और सौंदर्य आ गया है। इस प्रकार मुहावरेदार भाषा प्रेमचन्द जी की एक निजी विशेषता है।

3. वर्णनात्मक शैली है।

4. होरी स्वार्थी है पर दुर्भावनाग्रस्त नहीं।

**7. सम्पति और सह्रदयता में बैर है। हम भी दान देते है।, धर्म करते हैं लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है विशुद्ध अहंकार हम् में से किसी पर डिग्री हो जाए, कुर्की आ जाए, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाए, किसी का जवान बेटा मर जाये, किसी की विधवा बहू निकल जाये, किसी के घर में आग लग जाए, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाये, या अपने आसामियों के हाथों पिट जाये तो उसके और सभी भाई उस पर हँसेंगे, बगले बजाएंगे, मानो सारे संसार की सम्पदा मिल गई है। और मिलेंगे तो प्रेम से जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं।**

**संदर्भः** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत संवाद मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' से उद्घ्र त है। होरी राय साहब के यहाँ मिलने के लिए गया हुआ है। राय साहब को धनुष-यज्ञ के लिए लगभग बीस हजार रूपयों की आवश्यकता है। वे इस काम के लिए अपनी आसामी होरी की सहायता लेना चाहते है। अतः उससे अपनी अहंवादिता का परिचय देते हुए कहते है।

**व्याख्याः** राय साहब होरी को एक घने व क्ष की छाया के नीचे जमीन पर बिठा देते हैं और स्वयं कुर्सी पर बैठ जाते है क्योंकि आसामी उनकी बात को आसानी से स्वीकार कर लेता है। वह आसामी की बात पर विश्वास भी कर लेता है। अतः वे होरी को बीस हजार रूपए एकत्र करवाने में इसलिए मदद करने को कह रहे है। जिससे कि होरी दूसरे आसामियों अर्थात् किसानों से जाकर कहे कि राय साहब अपने आसामियों के साथ हमदर्दी रखते है। परन्तु मजबूरी में उन्हें परम्पराओं के पालन के लिए रूपयों की आवश्यकता पड़ती है और वे रूपए किसानों से ही लिए जा सकते है। दूसरा अन्य कोई रास्ता रूपए उगहाने का नहीं है जिससे कि पाँच-सात दिनों में बीस हजार रूपयों का प्रबन्ध किया जा सके। अतः वे होरी से कह रहे है कि सम्पति और सह्रदयता अर्थात् सहानुभूति और दया में परस्पर बैर है। कहने का अर्थ यह है कि दूसरों पर दया करके या दूसरों के प्रति सहानुभूति रखकर धन एकत्र नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह है कि धन संग्रह करने के लिए किसानों के साथ सख्त व्यवहार करना ही पड़ता है मजबूरी में हमें किसानों के साथ परम्पराओं को निभाने के लिए निर्दयी होना पड़ता है। दूसरों को दिखाने के लिए दान देते है, धर्म करते हैं, लेकिन दान और धर्म हम अपने बराबर वाले जमींदारों को नीचा दिखाने के लिए करते है। हमारा दान करना, धर्म करना केवल यह दिखाने के लिए है कि हम कितने बड़े धनी व दानी है। उसमें अहंकार भरा रहता है। यदि हम जमींदारों में से कोई बैंक को कर्ज न लौटा सके और डिग्री हो जाए या कोर्ट से किसी जमींदार के घर का सामान नीलामी पर चढ़ा दिया जाए या सरकार को ठीक समय पर मालगुजारी न भरने के कारण जेल हो जाए अथवा किसी का जवान बेटा मर जाए या किसी की विधवा बहू घर से निकल जाए, किसी के घर में आग लग जाए या कोई वेश्या किसी जमींदार को मूर्ख बना ले और उसकी सम्पति लूट ले अथवा कोई जमींदार अपने आसामियों पर अत्याचार करने के कारण किसी आसामी के हाथ से पिट जाए तो हम सभी जमींदार उस जमींदार पर हँसेंगे; मानो सारे संसार की सम्पति हमें मिल गयी हो। कहने का अभिप्राय यह है कि कहने और दिखने में हम बड़े आदमी अपने बराबर वाले के विनाश पर हँसते है खुशियां मनाते हैं कि अच्छा हुआ। हमारी कथनी और करनी में अंतर है। जबकि छोटे आदमियों में एक के दुःख पर दूसरे को सच्ची सहानुभूति या हमदर्दी होती है। जब हम बड़े आदमी दूसरे बड़े आदमी के दुःख में सहानुभूति दिखाने के लिए मिलते है। मिलते समय ऐसा ढ़ोंग या प्रपंच रचते हैं और ऊपर से इतना प्रेम दिखाते हैं कि हमें उस जमींदार के दुःख में सच्ची सहानुभूति है। जैसे वह दुःख उसका न होकर हमारा अपना है। हम जैसे जिसके ऊपर विपत्ति पड़ी है, उसके पसीने की जगह खून बहाने को तैयार है। अर्थात् हमारी तथाकथित बड़े लोगो की अपने बराबर वालों के साथ सहानुभूति मात्र ढकोसला है।

**विशेषः-**

1. जमींदारो की झूठी शान बनाए रखने की नीति को उजागर किया गया है।
2. राय साहब बहुत ही व्यवहार कुशल है। अतः होरी से सहानुभूति प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की बातें कह रहे है।
3. मुहावरेदार शैली है।
4. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।

**8. तुम हमें बड़ा आदमी समझते हो? हमारे नाम बड़े हैं, पर दर्शन थोड़े। गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या या बैर को मैं क्षम्य समझता हूं। हमारे मुँह की रोटी कोई छीन ले तो उसके गले में उँगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें, तो देवता हैं । बडे आदमियों की ईर्ष्या और बैर केवल आन्नद के लिए हैं। हम इतने बड़े आदमी हो गए हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत प्रस्तावित गद्यांश व्याख्या हेतु मुंशी प्रेमचन्द की अमर क ति उपन्यास 'गोदान' से उद्‌घ त है। राय साहब अमरपाल सिंह होरी से अपनी कोठी के ही पास एक घने छायादार पेड़ के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे है। वे होरी को समझाते हुए बताते हैं कि तुम हमें जितना बड़ा आदमी समझते हो उतने हम है नहीं। इस यथार्थ का वर्णन स्वयं राय साहब करते हुए कहते हैं।

**व्याख्याः-** तुम अर्थात् आसामी हम जमींदारों को हमारे ठाट-बाट, रहन-सहन और रहने के उच्च स्तर को देखकर शायद यह समझते हो कि हम बड़े आदती है परन्तु वास्तव में हम बड़े आदमी नहीं हैं हमारे नाम बड़े और दर्शन छोटे है। दर्शन छोटे होने के अनुसार हमारा बडप्पन केवल दिखावा है। वास्तविकता यह है कि हममें बडप्पन नहीं है। गरीब आदममियों में एक -दूसरे के प्रति जो ईर्ष्या है या जो शत्रुता है वह जब उनके हित को नुकसान पहुँचाती है तो एक-दूसरे के प्रति शत्रुता का भाव उत्पन्न होता है। गरीबी या छोटे आदमियों की शत्रुता इसलिए क्षमा करने योग्य है कि उनकी शत्रुता या बैर-भावना में पेट की भूख छिपी हुई है। क्योंकि वहाँ जब एक आदमी दूसरे आदमी के हक को छीनना है, उसकी रोजी और रोटी पर आंच आती है। तब वो एक दूसरे से द्वेष या जलन की भावना रखते हैं क्योंकि यदि कोई हमारे परिश्रम से कमायी हुई रोटी हमारे मुख से छीनता है तो छीनने वाले के गले में उँगली डालकर रोटी निकाल लेना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है क्योंकि हमारे परिश्रम के फल को उसने चुराया है। यदि ऐसे आदमी पर दया करके हम उसे छोड़ देते हैं। तो ये हमारा देवत्व है। इस प्रकार की ईर्ष्या या शत्रुता तो समझ में आने वाली बात है क्योंकि उसके पीछे कारण है। परन्तु हम बड़े आदमियों की ईर्ष्या की शत्रुता केवल आनन्द के लिए होती है। मनोरंजन के लिए होती है। दूसरे के दुःख को देखकर अकारण ही हमें सुख मिलता है। एक जमींदार दूसरे जमींदार को विपत्ति में पड़ा हुआ देख या उसके लिए संकट पैदा करके खुश होता है। हम तथाकथित बड़े आदमी इतने बड़े नही हो गए है कि हमें अकारण जिससे कि हमें लाभ नहीं हो रहा, दूसरों को नीचा दिखाने में, दूसरों के रास्ते में बाधक बनने में ऐसा प्रतीत होती है कि जैसे हम निःस्वार्थ भाव से कोई पुनित कार्य कर रहे हो और उनसे हमें आत्मिक त प्ति होती हो।

**विशेषः-**

1. जमींदारों की कुटिल नीति का वर्णन है।
2. वर्णनात्मक शैली है।
3. मुहावरों के कारण शैली में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न हो रही है।
4. बड़े व्यक्तियों के बडप्पन पर तीख व्यंग्य किया गया है।

**9. दुनिया समझती है, हम बड़े सुखी है। हमारे पास इलाके ,महल, सवारियाँ, नौकर-चाकर,कर्ज वेश्याएँ क्या नहीं है, लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन**

**के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दु:ख पर सब हँसे और रोने वाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों के नीचे दबी हो, जो भोग-विलास के नशे में अपने को बिल्कुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और जो अपने अधीनों का खून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता। वह तो संसार का सबसे अभागा प्राणी है। साहब शिकार खेलने आयें या दौरे पर, मेरा कर्तव्य है कि उनकी दुम के पीछे लगा रहूँ। उनकी भौंहों पर शिकन पड़ी और हमारे प्राण सूखे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए हम क्या नहीं करते मगर वह पचड़ा सुनाने लगू तो शायद तुम्हें विश्वास न आए। डालियों और रिश्वतों तक तो खैर गनीमत है, हम सिजदे करने को भी तैयार रहते है। मुफ्तखोरी ने हमें अपंग बना दिया है, हमें अपने पुरूषार्थ पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं, केवल अफसरो के सामने दुम हिला-हिला कर किसी तरह उनके क पापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतंक जमाना ही मारा उद्यम है।**

**संदर्भः** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत संवाद उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' के द्वितीय अध्याय में उद्ध्य त है। अवध प्रान्त के बहुब बडे जमींदार राय साहब अमर पाल सिंह होरी से अपने वर्ग के बड़े जमींदारों की जीवन की यथार्थता और उनकी विवशता का वर्णन करते हुए कह रहे हैं-

**व्याख्याः** संसार के लोग समझते हैं कि हमारे पास सुख-सुविधा के सभी साधन है। अतः हम बहुत अधिक सुखी है। दुनिया के लोगों को बाहर से दिखाई देने वाले ये उपकरण जैसे हमारे पास बड़े-बड़े इलाके हैं अर्थात् हमारी जागीरदारी का क्षेत्र बहुत दूर-दूर तक फैला है। हमारे पास बडे-बड़े महल है। उन शानदार महलों में हमारे हुकम का पालन करने वाले सैंकड़ों नौकर-चाकर, घूमने के लिए बाग्गियाँ, कई-कई कारे व हाथी ! इसके अतिरिक्त सरकार के कर्जे अर्थात लगान न चुकाने का ऋण जो हमनें किसानो से तो वसूल कर लिया है। लेकिन सरकारी खजाने में जमा नहीं करवाया, फिर अय्याशी के लिए वेश्याएं, क्या नहीं है हमारे पास? अर्थात बड़े आदमी कहलाने के लिए सारे ताम-झाम हमारे यहां विद्यमान हैं। परन्तु दूसरी ओर बडा होने के लिए जो व्यक्ति में आत्मबल चाहिए वो इंसानियत हममें नहीं है। स्वाभिमान हममें नहीं है। चाहे और सब कुछ हो, परन्तु इंसानियत हममें नही है। हम अपने कारनामों के कारण इतने डरे हुए है कि हमने जिन लोगो के साथ अन्याय और अत्याचार किए है कही वे हमसे बदला न लें ले। हमें नींद नही आती हमारे दुखों को देखकर हंसने वाले तो बहुत है परन्तु हमारे दु:खों में हमारे साथ रोने वाला नहीं है। वास्तव में हम जमींदार अंग्रेज हुक्कामों के गुलाम है। उनके इशारों पर हमें नाचना होता है। और अपने दुख को ही भुलाने के लिए हम भोग-विलास और अय्याशी में डूबे हुए है। अपने स्वार्थ में हम इतने डूबे हुए है। कि हमें अपनी प्रजा के दुख का ही ध्यान नहीं रहता। हम बड़े दिखाई देने वाले अंग्रेज अवसरों के तलवे चाटते है। और अपने अधीन अपने आसामियों का शोषण करते है। उनका खून चूसते है। ऐसें व्यक्तियों को मैं तो कम से कम खुश नही कहता। हम संसार के सबसे अधिक अभागे प्राणी है। जब अंग्रेज अधिकारी हमारे ही इलाके में शिकार खेलने आते है या दौरे पर तो उस समय हम पालतु कुत्ते की तरह उनके पीछे पुँछ हिलाते रहते है। कहीं अंग्रेज हुक्काम की खातिदारी में कोई कसर न रह जाए साहब नाराज न हो जाएं यदि साहब के चेहरे पर एक भी सलवट पड़ जाए तो हमारे प्राण सुख जाते है। हुक्कामों को खुश रखने के लिए हम क्या नहीं करते । बड़े साहबों के जन्मदिन का साल का बड़ा दिन या अन्य अवसरों पर हम केवल डालियों और रिश्वत ही नहीं देते अर्थात उनके लिए महंगी शराब, फल ,मेवें, नोटों की गड्डियां ही नहीं पहुचातें उनके सिजदे के लिए भी तैयार रहते हैं। हम जमींदारों की मुफ्तखोरी ने क्यों कि हमने कभी अपने हाथ से काम नही किया, हम परजीवि बन गए है। हमें अपने परिश्रम पर विश्वास नही रहा कि कभी हम अपनी मेहनत से रोटी कमा कर खा सकेंगे। अतः जीवित रहने के लिए अफसरों की जी-हजूरी करना, उनकी चापलूसी करना, उनके क पा-पात्र बने रहना या उनकी सहायता से प्रजा पर रौब डालना, अपने अधीनों को आतंकित रखना ही हम अपना पुरूषार्थ समझने लगे है। और इसे ही हम जीवित रहने के लिए सबल मानकर अपने गले से लगाए हुए है।

**विशेषः**

1. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा
2. तत्कालीन जमींदार वर्ग की वास्तविकता का वर्णन।

3. राय साहब का वर्णन जमींदार वर्ग क प्रतिनिधि के रूप में हुआ है।

4. तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों की ओर संकेत ।

5. व्याख्यात्मक शैली।

**10. होरी ने लोटाभर पानी चढ़ाते हुए कहा यही तहसील-वसूल की बात थी और क्या। हम लोग समझते हैं, बडे आदमी बहुत सुखी होंगे, लेकिन सच पूछो तो व हमसे भी ज्यादा दुःखी हैं। हमें अपने पेट की ही चिन्ता है, उन्हें हजारों चिन्ताएँ घेरे रहती है।**

**संदर्भः-** व्याख्या, हेतु प्रस्तावित संवाद उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द लिखित हिन्दी साहित्य में मील का पत्थर उपन्यास 'गोदान' से उद्‌द्य त है। होरी राय साहब अमरपाल सिंह से मिलकर लौटता है। घर पर जब वह पहुँचता है और खाना खाने बैठता है तब धनिया होरी से पूछती है कि मालिक से क्या बातचीज हुई तब होरी कहता हैं कि-

**व्याख्याः-** होरी थाली पर बैठा हुआ है। पहले तो लोटा भर पानी इसलिए पीता है कि गर्मी का मौसम है जिससे अपनी प्यास को शान्त कर सके और दूसरा कारण यह है जब लोटा भर पानी से अपना पेट भर लेगा तो खाना कुछ कम खाया जाएगाा क्योंकि भोजन इतना नहीं है कि भरपेट खाना मिल सके । अतः पेट में पहले ही लोटा भर पानी उडेल कर भर लेता है। धनिया से होरी कह रहा है कि कोई खास बात नहीं थी। जमींदार लोग आसामियों को भूमि का लगान देने के लिए, नजराना देने के लिए, शगुन देने के लिए बुलाते ही रहते है क्योंकि नजराना अथवा शगुन इस प्रकार के कर है जिन्हें जबरदस्ती नहीं लिया जा सकता। धनुष-यज्ञ के लिए रूपयों की आवश्यकता है, इस संबध में मुझे बुलवाया गया था। हम किसान यह समझते हैं कि इन जमींदारों के पास बडे-बडे इलाके है, आलीशान महल है घूमने के लिए सवारियाँ है। और और अपनी सेवा करवाने के लिए नौकर-चाकर हैं। अतः इनका जीवन बहुत सुखी होगा। लेकिन सच पूछो तो वे हमसे ज्यादा दुःखी हैं क्योकि इन जमींदारों को अपने आसामियों से शगुन के लिए, नजराना वसूल करने के लिए सख्ती का व्यवहार करना पडता है। ऐसा व्यवहार करते समय राय साहब को वास्तव में दुःख होता है। मालिक लोक मन से नहीं चाहते कि हम किसानों के साथ सख्ती का व्यवहार करना पडता है। ऐसा व्यवहार करते समय राय साहब को वास्तव में दुःख होता है। मालिक लोग मन से नहीं चाहते कि हम किसानों के साथ सख्ती का व्यवहार किया जाए। अतः पैसा उगहवाने में उन्हें क्रूर व्यवहार विवशतावश करना ही पडता है क्योंकि पूर्वजों से चली आई परम्परा को भी निभाना होता है। यदि वे इन परम्पराओं का निर्वाह ने करें तो उन्हें कंजूस कहा जाएगा। और यदि परम्पराओं का निर्वाह करते है तो पैसे वसूलने के लिए उन्हें सख्त व्यवहार करना ही होगा। धनिया को समझाते हुए होरी कह रहा है कि सच्चाई तो यह है कि बड़े आदमी हमसे भी ज्यादा दुःखी है। हमें केवल अपने ही पेट की चिंता है परन्तु उन्हें हजारों की चिंताएं है, जैसे अंग्रेज, हाकिम व हुक्कामों को खुश करना जिनके लिए डालिया तथा रिश्वत आदि भेजना, अपने हाकिमों को खुश रखना । उनके खानदान में चली आई परम्पराओं का निर्वाह करना और उनके रूपए-पैसे आदि एकत्र करवाना आदि-आदि। इन चिंताओं से उन्हें रात-दिन उबरने का अवसर नहीं मिलता।

**विशेषः-**

1. पात्रानुकूल एवं सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।

2. होरी की सरलता का विवेचन किया गया है क्योंकि वह राय साहब की चालाकी को समझ नहीं पाता है।

3. होरी की निर्धनता की ओर संकेत है।

4. भरपेट भोजन मयस्सर नहीं होता है तो पानी पी-कर जीवन व्यतीत करने की ओर संकेत करके लेखक ने होरी की दयनीय अवस्था का चित्रण किया है।

**11. लक्षण कह रहे है कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ। ईश्वर वह दिन जल्द लाये। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है। और जब तक सम्पति की यह बेड़ी हमारे पैरों से निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मँडराता रहेगा हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे जिस पर पहुँचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।**

**संदर्भः** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत संवाद मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' से उद्‌घ्र त है। रोय साहब अमर पाल सिंह होरी से कह रह हैं कि जमींदारी व्यवस्था ने उन्हें पंगु बना दिया है। जमींदार स्वयं परिश्रम करके अपना जीवन-निर्वाह करने में असमर्थ हैं। अतः वे होरी से अपने विचार इस प्रकार प्रकट कर रहे हैः-

**व्याख्याः** सन् 1930 और 1936 के आसपास स्वतंत्रता की लहर गाँवों तक पहुँचने लगी थी। आजादी के आंदोलन की भनक जमींदारों के कानों में पड़ने लगी थी और जमींदारों को यह आभास हो चुका था कि एक न एक दिन आजादी मिल कर ही रहेगी और आजाद भारत में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन अवश्य होकर रहेगा। अतः राय साहब अमरपाल सिंह होरी से कहते हैं कि लक्षण यह बता रहे हैं कि बहुत जल्दी जमींदारी प्रथा मिटने वाली है। अर्थात् जमींदार वर्ग जो शोषण कर रहे हैं, वे बहुज जल्दी मिट जाने वाले है। जिस दिन यह प्रथा समाप्त हो उस दिन का स्वागत करने के लिए तैयार बैठा हूँ। ईश्वर करे वह शुभ दिन जल्दी आये जिस दिन यह प्रथा नष्ट हो जाएगी। वास्तव में वह दिन हमारे उद्धार का दिन होगा क्योंकि तब हम अपने हाथ से काम करना सीख जाएँगे। तब हमें इस वास्तविकता का पता चलेगा कि खून-पसीना बहाकर परिश्रम के साथ जो कमाई की जाती है उसे यदि कोई दूसरा हड़प ले तो परिश्रम करने वाले को कितनी पीड़ा होती है। हम जमींदार परिस्थितियों के दास बने हुए है। परिस्थियाँ यह हैं कि हम जमींदारी प्रथा के आरम्भ से आज तक पर जीती हैं। दूसरों का खून चूसते आए है। हाथ से काम करना हमने सीखा ही नहीं और हमारी परिस्थितियाँ इस प्रकार की हैं कि हम सरकारी हाकिम और हुक्कामों के सामने गिड़गिड़ाते है। उनकी चापलूसी करते हैं, उन्हें बड़ी-बड़ी डालियाँ देकर खुश रखने की चेष्टा करते हैं और उनकी सहायता से अपनी प्रजा का शोषण करते हैं अतः ऐसी परिस्थितियाँ ही हमारा सर्वनाश कर रही है। जब तक हमारे पास इलाके हैं, महल हैं, सवारियाँ है नौकर-चाकर है। मनोरंजन के लिए वेश्याएं है, तब तक हम हाथ से काम नहीं सीख सकते ये सुख सुविधाएं हमें सुविधा भोगी बनाए हुए हैं। जब तक यह संपति की बेड़ी हमारे पैसें से न निकलेगी, तब तक यह श्राप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा अर्थात् हम शोषण के इस चक्रव्यूह से बाहर न निकल पाएंगे। हमें मानवीयता नही आ पाएगी। मनुष्य का मनुष्य होना उसके जीवन का लक्ष्य है, उद्देश्य है, लेकिन उस उद्देश्य पर पहुँचना ही उसका अंतिम लक्ष्य है।

**विशेषः**

1. जमींदार वर्ग का यर्थाथ चित्रण किया गया है।
2. 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' यह उक्ति यहाँ चरितार्थ होती दिखाई पड़ती है। क्योंकि 1936 में प्रेमचन्द ने कल्पना की होगी कि एक न एक दिन जमींदारी प्रथा का अंत अवश्य होकर रहेगा। 1947 में देश आज़ाद हुआ। अतः प्रेमचन्द की कल्पना कुछ समय उपरान्त अवश्य साकार हुई ।
3. मुहावरों के प्रयोग से भाषा, भावाभिव्यक्ति में और अधिक सक्षम हो गई है।
4. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग है।
5. राय साहब व्यवहार कुशल आदमी है। अतः वे होरी को इसलिए प्रभावित करना चाहते हैं ताकि धनुष-यज्ञ के लिए बीस हजार रूपए बटोरे जा सके।
6. प्रेमचन्द ने 'गोदान' में अन्यत्र की कहा है कि संपति व सह्रदयता में बैर है। इसलिए जमींदार आसामियों के प्रति निष्ठुर थे।

**12. कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहाँ? आदमी वह है, जिनके पास धन है, अख्तियार है, इलम है, हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक-दुसरे को देख नहीं सकता। एका का नाम नहीं एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत संवाद मुंशी प्रेमचंद लिखित उनकी अमर क ति 'गोदान' उपन्यास के तीसरे सर्ग से उद्‌घ्र त है। होरी और भोला तथा गोबर भूसे के खांचे सिर पर रखे हुए अहिराने में पहुँचाने के लिए जा रहे हैं रास्ते में आपस में राय साहब, दातादीन आदि के सबंध में बातचीत हो रही है जो शादी या क्रिया कर्म में रूपया पानी की तरह बहाते हैं। दूसरी

ओर किसान का अनाज, खलिहान से ही उठ जाता हैं। जी-तोड़ परिश्रम करने पर भी उनके पास साल भर के लिए खाने के लिए अनाज भी नहीं बचता। होरी के यह कहने पर कि हम भी आदमी है तब भोला होरी से कहता है कि-

**व्याख्याः-** कौन कहता है कि हम और तुम अर्थात् छोटे आदमी, आदमी हैं। इस दुनिया में आदमी कहलाने के लिए आदमी वाले कुछ गुण होने चाहिए और उन गुणों में प्रमुख हैं पैसा अर्थात् आज जिसके पास धन है या पैसा है, उसे आदमी कहा जाता हैं पैसे के बाद आदमी कहलाने के लिए उसके पास अधिकार होने चाहिए। हमारे और तुम्हारे पास न धन है, न अधिकार और ज्ञान अर्थात् आदमी कहलाने के लिए वह पढ़ा-लिखा भी होना चाहिए। हे भाई होरी हमारे पास इन तीनों चीजों में से कुछ भी नहीं है। हम और तुम तो निरे बैल है। अर्थात् मूर्ख भी हैं और मूर्ख होने के साथ-साथ पशु भी। जैसे बैल रात-दिन जुतता रहता है उसी तरह हम और तुम रात-दिन काम करने के लिए ही पैदा हुए हैं। जैसे बैल कमाता तो खुद है और उसके परिश्रम का फल भोगता है उसका मालिक। ठीक उसी प्रकार मेहनत तो हम गरीब आदमी करते हैं और उस परिश्रम का फल भोगता है जमींदार या साहुकार। इसके साथ-साथ एक गरीब आदमी दूसरे गरीब आदमी से चिढ़ता है। हम एक-दूसरे को देख नहीं सकते अर्थात् आपस में ईर्ष्या रखते है। एकता हम लोंगों में है ही नहीं। एक किसान दुसरे किसान के खेत पर न चढ़े तो मुनाफा कैसे हो अर्थात् एक किसान दूसरे किसान की बुराई करके जमींदार से उसके खेत को अपने नाम लिखवा लेता है और इस तरह एक दूसरे का गला काटते हैं। ऐसा लगता है कि प्रेम तो जैसे संसार से समाप्त ही हो गया।

**विशेषः-**

1. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।
2. व्याख्यात्मक शैली है।
3. गरीबी का यर्थाथ वर्णन है।
4. तत्कालीन समाज में शोषक वर्ग के शोषण की ओर संकेत है।

13. **वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों में रंजित कर देती है। फिर मध्याह का प्रखर ताप आता है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाजा है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है, शीतल और शान्त, जब हम थके हुए पथिकों की भांति दिन भर की यात्रा का व तान्त कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से मानों हम किसी उँचे शिखर पर जा बैठे हैं। जहाँ नीचे का जनरव हम तक नहीं पहुँचता।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरन उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यास क ति 'गोदान' से उद्घ्य त है। प्रस्तुत गद्यखण्ड में प्रेमचंद ने अलंकारमयी भाषा में वैवाहिक जीवन की तुलना दिवस के साथ की है। जिस प्रकार उषा खिलती है, सूर्य उदय होता है, फिर मध्याहन का प्रखर तप आता है और उसके उपरान्त दिनभर की कलान्ति को दूर करने वाली संध्या आती है, उसी प्रकार वैवाहिक जीवन में भी इसी प्रकार के उत्थान पतन आते है।

**व्याख्याः-** जब विवाह होता है तो व्यक्ति के मन में उषा के समान मधुर विभिन्न प्रकार की रंगीन और मादक लालसाएं उठती रहती है। उस जीवन में एक विचित्र मादकता के कारण जीवन सुखमय प्रतीत होने लगता है। व्यक्ति सोचता है कि जिस प्रकार बाल सूर्य की रंगीन किरणें संसार में सुखद एवं सुन्दर वातावरण उपस्थित कर देती है। उसी प्रकार उसका यह विवाहित जीवन सदैव ऐसा ही सुखद एवं सुन्दर बना रहेगा। उस समय वह जीवन की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। दो प्यासे यौवन से परिपूर्ण हृदय जब आपस में मिलते है। तब सारी चिन्ताओं को भूल आन्नद भोग में लीन हो जाते है। परन्तु बाल-सूर्य जब ऊपर उठता हुआ आकाश के मध्य में आ जाता है तब उसकी वे सुखद रंगीन किरणें अग्निबाणों के समान दाहक हो उठती हैं। इसी प्रकार विवाह के उपरान्त जब ग हस्थी की जिम्मेदारियाँ सामने आती है। तो व्यक्ति अपनी लालसा की त प्ति का मोह छोड़कर उन्हें निभाने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। उसे आनन्द भोग के उस मनोहर एवं मादक वातावरण से बाहर निकलकर जीवन के संघर्षपूर्ण क्षेत्र में जुट जाना पड़ता है। और यह क्षेत्र संकटों से परिपूर्ण रहता है। उसे अथक परिश्रम करते हुए आगे बढ़ना पडता है। लालस की मादकता नष्ट हो जाती है। और जीवन का संघर्षमय यथार्थ उसके सम्मुख आ खड़ा होता है। परिश्रम

करते-करते जब उसकी अवस्था ढलने लगती है। और वह क्लांत हो उठता है। तो उसकी संतति उससे उस संघर्ष के भाव को सम्हाल होती है। और वह थके पथिक के समान विश्राम करना चाहता है। जीवन का यह भाग संध्या के समान शीतल एवं शांत होता है। संघर्ष की ज्वाला का अंत हो जाता है। और ऐसी स्थिति में आकर व्यक्ति निर्लिप्त भाव से अपने विगत जीवन की बातें करने में आनन्द का अनुभव करता है। उस समय उसे संसार से कोई क्रियात्यक मोह नहीं रह जाता। संसार के संघर्षों की ज्वाला एवं हलचल से दूर रहते हुए वह अपने विगत जीवन को इस भाव से देखता है जैसे कोई व्यक्ति किसी बहुत ऊँचे शिखर पर जा बैठा हो वहाँ से नीचे के व्यस्त संसार को तटस्थ भाव से देख रहा हो, जिससे अब उसका कोई भी संबंध नहीं रहा है।

**विशेषः-**

1. लेखक ने वैवाहिक जीवन की तुलना दिन के विकास की तारतम्यता के साथ करके अत्यंत संक्षेप में ही उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए विशद व्याख्या कर दी है।
2. वैवाहिक जीवन के उतार-चढ़ाव और संघर्षमय जीवन के बाद की विश्रान्ति का कलात्मक वर्णन यहां पर हुआ है।
3. प्रशंग वंश होरी और धनिया के संघर्ष मय जीवन को भी रूपरेखा लेखक ने प्रस्तुत कर दी है।

**14. उनकी द ष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जब तक फल न लग जायें उस पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन न पाकर उसका कौमार्य उसके गले से चिपटा हुआ था। झुनिया का वंचित मन, जिसे भाभिया के व्यंग्य और हास-विलास ने और भी लोलुप बना दिया था, उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित गद्यांश उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द लिखित उनकी अमर क ति 'गोदान' उपन्यास से समुध्द त है। भोला की बाल-विधवा युवती पुत्री झुनिया गाय के साथ गोबर को आधे मार्ग तक छोडने आई। रास्तें में झुनिया गोबर के प्रति अपना अनुराग प्रकट करती है और कहती है कि अब तुम क्यों आने लगे? झुनिया के इस कथन में गोबर के प्रति अनुराग व्यक्त हो रहा था। इसी प्रसंग में उपन्यासकार गोबर और झुनिया दोनों के ही ह्रदयों का विश्लेषण करते हुए कहता है-

**व्याख्याः-** गोबर अभी अल्हड़ किशोर था, अतः उसकी भाभिया उससे केवल मजाक ही किया करती थीं। उनके उस मजाक में कोई कलुषित भावना नहीं रहती थी। वे जानती थीं कि वह अभी किशोर है, उसमें अभी यौवन का स्फुरण नहीं हुआ है। इस अवस्था में उसके प्रति आकर्षित होना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार फलवाले व क्ष के फुलों पर ढेले मारना व्यर्थ हैं क्योंकि ऐसा करने से उससे फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। फूल जब फल बन जाए तब उस पर ढेले फेंकना सार्थक होता है गोबर की अवस्था अभी फूल की ही थी। उसमें यौवन रूपी फल नहीं लगा था। इसलिए भाभियों के इस मजाक में गोबर को किसी प्रकार का आमन्त्रण अथवा उत्साह नहीं होता था। वह अपने को किशोर समझता था। झुनिया युवती परन्तु बाल-विधवा नारी थी। जब उसकी भाभिया उससे मजाक करती थी तथा वह उन्हें अपने पतियों के साथ हास-विलास करते हुए देखती तो उसका यौवन से परिपूर्ण ह्रदय विचलित हो उठता था। वह किसी के प्रति समर्पित हो जाने के लिए व्याकुल हो उठती थी। ऐसी मानसिक स्थिति में जब गोबर से उसकी भेंट हुई तो उसका भूखा मन गोवर की कुमारावस्था पर ही ललचा उठा और उधर झुनिया के इस साभिप्राय आकर्षण में गोबर के मन में भी एकाएक यौवन की भावनाएँ उसी तरह जाग त हो उठी जिस तरह कोई शिकारी जानवर पत्ते खड़कते ही चौकन्ना होकर खड़ा हो जाता है।

**विशेषः-**

1. प्रेमचन्द जी मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता है। अल्हड़ यौवन से आन्दोलित युवा ह्रदयों और उनकी परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में वे इसीलिए यहाँ पर इतने सफल हुए है। गोबर और झुनिया, दोनों की ही परिस्थितियों और ह्रदयस्थ उद्वेलन का इससे सुन्दर वर्णन अन्यात्र दुर्लभ है।
2. सरल, प्रवाहमयी, मिश्रित भाषा।
3. अभिव्यक्ति सरल एवं स्पष्ट है।

**15. मैं चाहता हूं हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो। आप क षकों के शुभेच्छु हैं, उन्हें तरह-तरह की रियायत देना चाहते हैं। जमींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते है, बल्कि उन्हें आप समाज का शाप कहते हैं फिर भी आप जमींदार है वैसे ही जमींदार जैसे हजारों और जमींदार हैं। अगर आपकी धारणा है कि क षकों के साथ रियायत होनी चाहिए, तो पहले आप खुद शुरू करें । काश्तकारों को बगैर नजराने लिए पट्टे लिख दें, बेगार बन्द कर दें, इजाफा लगान को तिलांजलि दे दें, चरावर जमीन छोड़ दे। मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है, जो बात तो करते हैं कम्युनिस्टों की-सी, मगर जीवन है रइसों का-सा, उतना ही विलासयम, उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'गोदान' उपन्यास से उदद्य त है। उनकी मित्र-मण्डली जिसमें प्रो. मेहता आदि पहुँच हुए हैं। राय साहब उन के सम्मुख अपनी प्रशंसा करते है। इस पर प्रो. मेहता राय साहब के सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए कहते है कि-

**व्याख्याः-** मैं यह चाहता हूँ कि जिन सिद्धांन्तों को हम मानते हैं जिनकी प्रशंसा करते हैं, हमारा अपना जीवन उन सिद्धान्तों के अनुसार हो अर्थात् हमारी करनी और कथनी में अन्तर न हो। हम जो कहें उसे अपने व्यवहार में उतारें तभी उसकी सार्थकता है अन्यथा सिद्धान्त बघारने का कोई प्रयोजन नहीं है। प्रो. मेहता आप अपने सिद्धान्त के अनुसार किसानों के शुभेच्छु बन रहे है। यदि वास्तव में आप उनके हितचिंतक है और उन्हे सुविधाए देना चाहते है और आप यह भी कह रहे हैं कि जमींदारों से उनके अधिकार छीन लिए जाएँ। जब आप जमींदारों को समाज के लिए शाप मानते है। तो फिर आप अपने किसानों या असामियों के साथ ठीक वैसे ही व्यवहार करते है अर्थात् उनका शोषण करते हैं जैसे हजारों जमींदार अपने आसामियों का शोषण करते हैं। आपमें और उनमें अन्तर क्या है? अगर आप वास्तव में चाहते है जैसा कि आप अभी-अभी सिद्धान्तों की बात कर रहे थे तब आपको अपने सिद्धान्तों के अनुसार आसमियों और किसानों के साथ सुविधाओं तथा सद्व्यवहार की शुरूआत सबसे पहले आप करें। आप किसानें से बिना नजराना लिए जमीन के पट्टे लिखें, उनसे बेगार लेना बंद कर दें। समय-समय पर धनुष यज्ञ आदि जैसे आयोजन किए जाते है और इन आयोजनों के पीछे जो अतिरिक्त कर किसानों पर लगा दिए जाते है। ऐसे करों को को लगाना छोड़ दें, तब वास्तव में आप को अच्छा जमींदार समझा जाएगा जैसे कि आप स्वयं को एक आदर्श जमींदार अभी-अभी सिद्ध कर रहे थे। प्रो. मेहता आगे कहते हैं कि मैं उन लोगों में जरा भी विश्वास नहीं करता हूँ और न उन लोगों के प्रति सहानुभूति करता हूँ, जो बातें तो करते है साम्यवादियों की सी और जीवन है रईसो का सा अर्थात् ठाठ-बाठ और विलासिता से भरा हुआ। यदि आप आदर्शो की ऊँची-ऊँची बातें करते है और व्यवहार में ठीक वैसे ही क्रूर तथा स्वार्थी है जैसे कि अन्य जमींदार, तब आप में कोई अन्तर है ही नहीं आप अपने सिंद्धान्तों की व्यवहार में उतारते हैं तो आपका जीवन भी उतना ही स्वार्थों से भरा हुआ है जितना कि अन्य जमींदारों का।

**विशेषः-**

1. व्याख्यात्मक शैली है।
2. जमींदार वर्ग का यथार्थ वर्णन।
3. प्रो. मेहता के स्पष्टवादी चरित्र की ओर संकेत है।
4. तत्कालीन समाज व्यवस्था में निम्न वर्ग का शोषण होता था। प्रस्तुत अनुच्छेद से इस बात का पता चलता है।

**16. मानता हूँ, आपका अपने आसामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है, मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं । इसका एक कारण क्या यह नहीं हो सकता कि मद्धिम आँच में भोजन स्वादिष्ट पकता है। गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं, तो बकना छोड़ दें। मैं नकली ज़िन्दगी का विरोधी हूँ। अगर माँस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ बुरा समझते हो, तो मत खाओ, यह तो मेरी समझ में आता है, लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो इसे कायरता ही कहता हूँ और धूर्त्तता भी जो वास्तव में एक है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत कथोपथन उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उन की अमर क ति 'गोदान' से उद्द्य त है। धनुष-यज्ञ पर राय साहब की मित्र-मण्डली एवं स्वयं राय साहब अमरपाल सिंह एक-दूसरे की प्रशंसा कर रहे है। इस पर प्रो. मेहता चौथे सिद्धान्तवादियों की पोल खोलते हुए कहते है

**व्याख्याः-** यह बात सच हो सकती है कि आप अपने किसानों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि उस अच्छे व्यवहार में आपका हाथ स्वार्थ से भरा हुआ है या नहीं। यदि आपका अच्छा व्यवहार स्वार्थ से भरा हुआ है, तब आपका मधुर व्यवहार भी किसानो का ठीक वैसे ही अहित करता है जैसा कि अन्य जमींदारों द्वारा किया जाने वाला व्यवहार, जैसे धीमी आँच पर पकाया गया भोजन अधिक स्वादिष्ट बनता है। उस भोजन की अपेक्षा जिसे तेज आँच में पकाया गया हो। जो काम तीव्र आग की लौ करती है, वही काम धीमी गति से जलने वाली आग की लपट करती है। दोनों में अंतर कोई नहीं है। अंतर केवल प्रक्रिया का है कि एक भोजन को तेज गति से पकाती है और दूसरी धीमी गति से, मात्र अंतर यही है। आप किसानों का शोषण मीठा बनकर करते है। उनके साथ मधुर व्यवहार करते है। और उनके परिश्रम के फल को हड़प जाते है। ठीक वैसे ही जैसे अन्य जमींदार हड़प जाते है। गुड़ से मारने जहर से मारने वाले की अपेक्षा अधिक सफल होता है क्योंकि गुड खाने वाले को स्वादिष्ट और मीठा प्रतीत होता है और जहर खाने वाले को कड़वा। जब गुड देकर मारना है या जहर देकर मारता है तब उद्देश्य तो दोनों का एक ही है।

गुड़ खाने वाला गुड के भुलावे में जहर को पहचानता नहीं बल्कि गुड देकर मारने वाला जहर देकर मारने वाले की अपेक्षा कहीं अधिक सफल है। प्रो. मेहता आगे कहते है कि यदि हम सब साम्यवादी बनते हैं तो वास्तम में सच्चे साम्यवादियों जैसा व्यवहार करें और साम्यवादी को अपनी करनी और कथनी में ना उतार पाएं तो यदि साम्यवादी होने का ढोंग क्यों करें? या तो हम जो कहते है उसे करें या गाल बजाना छोड दें। मैं ऐसी जिंदगी का विरोधी हूँ, जिसमें आदमी कहता कुछ और करता कुछ। अगर कोई व्यक्ति माँस खाना अच्छा समझता है तो वह खुलकर माँस खाए। सरेआम माँस खाए इसमें कोई बुराई नहीं हैं परन्तु वही आदमी में कहता है कि माँस खाना बुरा है और फिर छिपकर मांस खाता है तो यह बात मेरी समझ में नहीं आती । ऐसा व्यक्ति जो छिपकर खाए और दूसरों के मांस खाने की बुराई करे तो मैं उसे केवल कायर ही नहीं कहूंगा बल्कि मैं उसे पाखंडी भी कहूंगा। अतः ऐसा व्यक्ति वास्तव में ढोंगी है उसका व्यवहार छल और कपट से युक्त है।

**विशेषः-**

1. प्रो. मेहता ने सिद्धांत वादियों की पोल खोली है।
2. प्रो. मेहता स्पष्टवादी होने के साथ-साथ निर्भीक एवं निडर व्यक्ति के स्वामी है। इस कथन से यह स्पष्ट होता है।
3. तत्कालीन जमींदारी व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है।
4. व्याख्यात्मक शैली है।
5. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।

17. **मेरे स्वर्गवासी पिता आसामियों पर इतनी दया करते थे कि पाले या सूखे में कभी आधा और कभी पूरा लगान माफ कर देते थे। अपने बखार से अनाज निकालकर आसामियों को खिला देते थे। घर के गहने बेचकर कन्याओं के विवाह में मदद देते थे, मगर उसी वक्त तक जब तक प्रजा उनको सरकार और धर्मावतार कहती रहे, उन्हें अपना देवता समझकर उनकी पूजा करती रहे। प्रजा का पालन इनका सनातन धर्म था, लेकिन अधिकार के नाम पर वह कौड़ी का एक दाँत भी फोड़कर देना न चाहते थे। मैं उसी वातावरण में पला हूँ। और मुझे गर्व है कि मैं व्यवहार में चाहे जो कुछ करूँ, विचारों में उनसे आगे बढ़ गया हूँ और यह मानने लग गया हूँ कि जब तक किसानों को ये रियायतें अधिकार के रूप में न मिलेंगी, केवल सद्भावना के आधार पर उनकी दशा सुधर नहीं सकती। स्वेच्छा से अगर अपना स्वार्थ नहीं छोड़ तो उपवाद है। मैं खुद सद्भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूँ कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया जाये। इसे कायरता कहेंगे, मैं इसे विवशता कहता हूँ।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी अमर क ति 'गोदान' से उद्द्य त है। धनुष-यज्ञ के अवसर पर राम साहब अमरपाल सिंह अपनी मित्र मंडली में प्रो. मेहता के तर्कों के काटते हुए यह कह रहे हैं कि हमारा परिवार हमेशा से आसामियों के प्रति उदार सहानुभूतिपूर्ण एवं सद्व्यवहार करता रहा है। वे कहते है कि-

**व्याख्याः** मेरे स्वर्गवासी पिता अपने आसामियों पर दया करते थे। यदि पाला पड़ने से उनकी फसल नष्ट हो जाए या अनाव ष्टि के कारण फसल सूख जाए तब वे अपनी इच्छा से अपने आसामियों का कभी आधा और कभी पूरा का पूरा लगान माफ कर देते थे। इतना ही नहीं, वे किसानों की ऐसी दशा में अपने अन्न भंडार से अनाज निकालकर आसामी भूखे न मर जाएं उनमें बंटवा देते थे। यदि कोई किसान बहुत गरीब है और अपनी कन्या का विवाह करने में असमर्थ हो तब वे घर के गहने बेचकर कन्याओं के विवाह में मदद कर दिया करते थे। परन्तु यह मदद वे उसी दशा में और तभी करते थे जब तक कि उनके आसामी उनको मालिक और धर्म का अवतार समझते थे, उन्हें देवता कहकर उनकी पूजा करते थे अर्थात् उनकी प्रजा उन्हें अन्नदाता समझती रही उसी अवस्था तक वह प्रजा का पालन अपना दायित्व समझते थे। परन्तु यदि उनके आसामी यह अधिकार मांगने लगे कि पाले अथवा सूखे के कारण फसल मारी गयी है। अतः जमींदार का यह कर्त्तव्य है और जनता का अधिकार है कि जमींदार लगान माफ कर दे तो ऐसी हालत में वे एक कौड़ी भी नहीं देते थे। ठीक उसी प्रकार यदि उनके आसामी ये कहें कि हमने बैल की तरह रात-दिन खेतों में कमाया है और उपज का बहुत बड़ा भाग जमींदार को दिया है अतः जमींदार का यह कर्त्तव्य है कि गरीब की लड़की के विवाह में मदद करे तो वे अधिकार के नाम पर कानी कौड़ी भी देने को तैयार न थे क्योंकि जब जनता अधिकार मांगने लगे और उनको अधिकार के नाम पर रियायत दी जाने लगे तो फिर वह परम्परा बन जाती है। ऐसी हालत में जमींदार शासन चला ही नहीं सकता। मैं भी ऐसे ही वातावरण में पला हूँ और विश्वास भी करता हूँ परन्तु मुझे इस बात का गर्व है कि मैं व्यवहार में भले ही अपने स्वर्गवासी पिता का अनुयायी हूँ पर विचार में उनसे भी आगे बढ़ गया हूँ अर्थात् मैं इस बात में विश्वास करने लग गया हूँ कि जब तक किसानों को सुविधाएं न दी जाएंगी तब तक केवल सद्भावना से उनका भला होने वाला नहीं है। उनकी दशा नहीं सुधार सकती। संसार में कोई भी व्यक्ति अपने स्वार्थ को नहीं छोड़ना चाहता। यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से स्वार्थ छोड़ता है तो ऐसा व्यक्ति अपवाद है। अतः मैं भी किसानों के प्रति स्वार्थ को नहीं छोड़ सकता। यदि हम जमींदारों को सरकार की नीति और कानून बताकर अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर करते है तब तो किसानों की हालत सुधर सकती है अन्यथा नहीं। आप मेरी इन बातों को का भरता कहेंगे क्योंकि मैं अपने विचारों को व्यवहार में नहीं अपना सकता। परन्तु यह मेरी विवशता है अर्थात् चाहते हुए भी मैं अपने स्वार्थ का संरक्षक बना रहूँगा। अधिकारों के नाम पर किसानों के कुछ भी न देना चाहूँगा।

**विशेषः**

1. राय साहब की करनी और कथर्नी में अन्तर है इसका पर्दाफाश किया गया है।
2. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।
3. 1930 से 1936 तक के आसपास के देश-काल के वातावरण का चित्रण है।
4. वर्णनात्मक शैली है।

18. **हममें आत्माभिमान का नाम भी नहीं रहा। हम अपने आसामियों को लूटने के लिए मजबूर हैं। अगर अफसरों को कीमती-कीमती डालियाँ न दे, तो बागी समझे जाएँ, शान से न रहें, तो कंजूस कहलायें। प्रगति की जरा-सी आहट पाते ही हम काँप उठते हैं, और अफसरों के पास फरियाद लेकर दौडते हैं कि हमारी दशा उन बच्चों की सी है, जिन्हें चम्मच से दुध पिलाकर पाला जाता है, बाहर से मोटे, अन्दर से दुर्बल , सत्वहीन और मुहताज।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द जी द्वारा रचित उपन्यास 'गोदान' से उद्द्य त है। जब धनुष यज्ञ पर राय साहब के यहाँ उनके मित्र एकत्रित होते है उस समय राय साहब स्वयं को आदर्शवादी जमींदार बताते हैं तब प्रो. मेहता राय साहब से कहते हैं कि आप की कथनी और करनी में अन्तर है। आप भी अन्य जमींदारों की तरह किसानों का शोषण करते है। तब राय साहब अपनी विवशता का वर्णन करते हुए कहते है

**व्याख्याः-** क्योंकि मै इस इलाके का प्रतिष्ठित जमींदार हूँ। जमींदार होने के नाते मुझे भी अन्य जमींदारों की तरह ठाठ-बाठ से रहने के लिए किसानों से बलपूर्वक पैसा ऐंठना ही पड़ता है। और इसमें अपनी आत्मा की हत्या करनी पडती है। अतः किसानों के साथ अनुचित व्यवहार करते करते और उनका शोषन करते करते हममें आत्माभिमान नहीं रह गया। हम अपने आसामियों को लूटने के लिए मजबूर हैं। कारण यह है कि हम किसानो से धन ऐंठ कर ही अफसरों को बड़ी -बडी कीमती डालिया देते है। यदि हम डालिया न दें तो विद्रोही समझें जाएं। इसी प्रकार शानो-शौकत और ठाठ-बाठ से न रहें, रूपयों को आमोद-प्रमोद में न लुटाएं तो कंजूस कहलाएं। हमारी आत्मा इतनी मर चुकी है तथा हम इतने कायर हो चुके है कि यदि हमें थोडी-सी भी इस बात की आशंका होती है कि जमींदारी प्रथा समाप्त होने वाली है, किसान खेत का मालिक होगा तो हम काँप उठते हैं और अफसरों के पास शिकायत लेकर अपनी रक्षा के लिए दौड़ते हैं। हमें अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा और न परिश्रमपूर्वक जीने का साहस ही रहा है अर्थात् स्वयं परिश्रम करके हम अपनी आजीविका कमा पाएँगे यह हिम्मत भी हममें न रही। हमारी हालत उन छोटे-छोटे तथा पराश्रित बच्चों की सी है जिन्हें चम्मच से दूध पिलाकर पाला जाता है क्योंकि वे बच्चे बाहर से मोटे, परन्तु अन्दर से कमजोर तथा आत्मनिर्भर नहीं होते। मोहताज होते हैं। यदि माता-पिता चाहें तो उन्हें दूध पिलाएं और न चाहें तो न पिलाएं। जो अपने हाथ से कार्य करने में असमर्थ हैं ठीक उसी प्रकार से जमींदारी प्रथा और उसके ऐशो-आराम ने हमें पराश्रित बना दिया है।

**विशेषः-**

1. तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण है।
2. जमींदारी व्यवस्था के ढोंग का संजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है।
3. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।
4. अभिव्यक्ति स्पष्ट है जिससे जमींदारों के अहम् को स्पष्ट किया गया है।

**19. धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते है। लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता। मैने बडे-बडे धन-कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है, और आप ने भी देखा होगा। रूप की चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या वह सामाजिक विषमता नहीं है?**

**संदर्भः-** प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद की कालजयी रचना (उपन्यास)'गोदान' से अवतरित है। रायसाहब के यहाँ जब धनुष-यज्ञ का आयोजन किया जाता है तब वहा पर प्रो. मेहता स्पष्टवादिता का परिचय देते हुए कह रहे है इस अवसर पर मिर्जा खुर्शीद, मिस मालती आंकार नाथ, राय साहब, तंखा आदि सभी बैठे हैं

**व्याख्याः-** प्रो. मेहता कहते है कि आप किसी अन्याय द्वारा अर्थात् अमीरों के धन को छीनकर तथा उसे मनुष्यों में समान रूप से विभाजित कर सब में बराबर बांट सकते है। धन प्रकृति, प्रदत्त वस्तु नहीं है इसलिए उनका समान विभाजन संभव हो सकता है। परन्तु ऐसा करना अन्याय होगा। क्योंकि बिना बल प्रयोग के ऐसा संभव नहीं यह ठीक है। लेकिन बुद्धि,चरित्र, रूप, प्रतिभा तथा बल आदि गुण प्रक ति प्रदत होते है। इसलिए इन गुणों का मानव-मात्र में समान वितरण या विभाजन करना मानव की शक्ति के परे है। दूसरी बात यह है कि समाज में छोटे-बड़े धनी व्यक्ति भिक्षुओं के सामने घुटने टेक देते है। उदाहरण के लिए, गौतम बुद्ध से प्रभावित होकर अनेक धनपतियों ने अपना सब कुछ उनके संघ को समर्पित कर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। रूपवती नरियायें का प्रेम प्राप्त करने के लिए बड़े-बडे सम्राट उनके द्वार पर जाकर नाक रगडते देखे गए है। इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएं मिलती है जहाँ किसी अत्यन्त रूपवती परन्तु साधारन सामाजिक स्थिति की नारी ने साम्राज्यों का संचालन किया है। जैसे नूरजहाँ ने किया था। क्या गुणों की इस असमानता को सामाजिक विषमता नहीं माना जाएगा।

**विशेषः-**

1. मनुष्यों के बीच असमानता रहेगी, इन पंक्तियों में प्रेमचन्द ने इसी मत की पुष्टि की है।
2. अनेक विद्वानों का आक्षेप है कि 'गोदान' उपन्यास साम्यवाद का समर्थक है, परन्तु प्रो. मेहता का यह कथन इसके ठीक विपरीत है।

**20. बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपति नहीं । समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु-महात्माओं के सामने इसलिए सिर झुकाते है कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते है, सम्मान भी, नेत त्व भी, लेकिन सम्पति किसी तरह नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है, लेकिन उसकी सम्पत्ति विष बोने के लिए उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बगैर किसी समाज का संचालन नहीं होसकता। हम केवल उस बिच्छु का डंक तोड़ देना चाहते है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांश उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी अमरकृति गोदान से अवतरित है। धनुष-यज्ञ के अवसर पर राय साहब एवं उनकी मित्र मंडली साम्यवाद पर विचार कर रही है। प्रो० मेहता इस बात के समर्थक नहीं है कि समाज में समानता लाई जा सकती है। तब राय साहब उसके उत्तर में कहते हैं-

**व्याख्याः-** राय साहब कहते है कि हम केवल बुद्धि के उसी रूप का अधिकार मानने को प्रस्तुत है। जिसमें स्वार्थ की भावना न हो। स्वार्थ से भरी हुई  बुद्धि समाज के लिए कल्याणकारी नहीं हाती। समाजवाद के लिए घातक होती है। समाज महात्माओं का सम्मान केवल उनके त्याग के बल के कारण करता है। जिस प्रकार हम त्याग के बल का सम्मान करते है। उसी प्रकार बुद्धि केवल सम्मान कर करते है। उसी प्रकार बुद्धि के बल का सम्मान कर उसे अधिकार और नेत त्व प्रदान कर सकते हैं। परन्तु बुद्धि को सम्पत्ति पर अधिकार नहीं करने दे सकते। क्योंकि बुद्धि से प्राप्त अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है परन्तु सम्पति व्यक्ति के उपरान्त उत्तराधिकारियों के हाथ में चली जाती है और ऐसा होने पर उसके लिए झगड़े होने लगते है। इसलिए सम्पति बुद्धि से बहुत अधिक घातक और विषैली हैं। बुद्धि के बिना किसी भी समाज का सुचारू संचालन असंभव है परन्तु धन के बिना संभव हो सकता है। इसलिए राय साहब कहते हैं कि हमें पहले इस बिच्छु के डंक के समान विषैली सम्पति को नष्ट कर देना चाहिए तभी समज में सुख शांति स्थापित हो सकेगी।

**विशेषः-**

1. समाज के निर्माण के लिए बुद्धि को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।
2. प्रेमचन्द की ही तरह महात्मा गांधी भी यह स्वीकार करते थे कि यदि धन मुट्ठी  भर लोगों के हाथ में चला जाता है तो वह अनर्थ का कारण  बनता है।
3. राय साहब का चरित्र एक विवेकी एवं प्रबुद्ध व्यक्ति के रूप में उभकर सामने आया है।

**21. सामने की पर्वत-माला दर्शन-तत्व की भांति अगम्य और अत्यन्त फैली हुई, मानो ज्ञान का विस्तार कर रही हो, मानो आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकाश को, उस अगम्यता को, उसके प्रत्यक्ष विराट् रूप में देख रही हो। दूर के एक बहुत ऊँचे शिखर पर एक छोटा-सा मन्दिर था, जो उस अगम्यता में बुद्धि की भांति ऊँचा, पर खोया हुआ-सा खडा था, मानो वहाँ तक पर मारकर पक्षी विश्राम लेना चाहता है और कहीं स्थान नहीं पाता।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत अनुच्छेद मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित उनकी अमर क ति 'गोदान' उपन्यास से उद्‌घृ त है। राय साहब की पूरी मित्र-मण्डली धनुष-यज्ञ के बाद शिकार खेलने जाती है और तीन दलों में बंट जाती है। मेहता के दल में मालती सम्मिलित होती है। मेहता की भेंट एक बनवासी लड़की से होती है। वह लड़की मेहता को एक पीपल के पेड़ की छाया में बैठाकर लेडी डॉ० मिस मालती को बुलाने चली जाती है। प्रो. मेहता पर्वतश्रेणियों की प्राक तिक सुषमा का अवलोकर कर रहे है। इस संबंध में उपन्यासकार प्रो. मेहता के विचारों को प्रस्तुत करते हैं-

**व्याख्याः-** जिस प्रकार दर्शन का तत्व अगम्य और अत्यंत विस्त त होता है, सामने की पर्वमाली उसी के समान अगम्य और अत्यंत विस्त त। उस का रूप ऐसा था मानो वह अगम्यता एवं विस्तार द्वारा ज्ञान की अगम्यता एवं विस्तार का बोध करा रही हो, मानों आत्मा इस ज्ञान के उस प्रकाश को (तमसो सा ज्योतिर्गमय), उस पर्वतमाला के विराट रूप द्वारा साकार रूप में देख रही हो। दूर एक शिखर पर एक छोटा सा मंदिर बना हुआ था। वह ऐसा प्रतीत हो रहा मानो बुद्धि के समान ऊँचा एवं एकाकी हो। जिस प्रकाश बुद्धि ज्ञान की उस अगम्यता का रहस्य भेदन करने के लिए बड़ी ऊँची उड़ाने भरती है परन्तु फिर भी ज्ञान उसके

पूर्णत्व को प्राप्त न कर सकने के कारण उदास एवं कुछ खोई-खोई सी खड़ी रह जाती है। मनुष्य का मन पक्षी के समान उस बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान के अंश द्वारा संतोष प्राप्त करना चाहता है परन्तु उसे संतोष नही होता अर्थात् बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञानांश मनुष्य के मन को संतोष प्रदान करने में असमर्थ रहता है। निष्कर्ष यह निकला कि हम बुद्धि द्वारा जिस सत्य का उद्घाटन करते है, सत्य का वह रूप हमारे मन को संतोष प्रदान करने में असमर्थ रहता है। क्योंकि वह व्यावहारिक जगत से दूर की वस्तु हाती हैं इसलिए हमारा व्यावहारिक मन उसे ग्रहण नहीं कर पाता।

**विशेषः-**

1. मेहता एक दार्शनिक व्यक्ति है। अतः पर्वत माला को दखेकर उनके मन में दार्शनिक भावों का उठना स्वाभाविक है।
2. विचारों के अनुकूल भाषा भी यहाँ गम्भीर और मंथर हो गई है। प्रतीको प्रयोग से दुरूहता भी  आ गई है।
3. सरल एवं प्रभावशाली भाषा प्रयोग है।

**22. धनिया का यह मात -स्नेह उस अन्धेर में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिन्ता-जर्जर आक ति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के ह्रदय में जैसे अतीत-यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस बीच-यौवना में भी कोमल, ह्रदय बालिका नजर आयी, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था, जो सारे कलंक, सारी बाधाओं ओर सारी मूलबद्ध परम्पराओं को अपने अन्दर समेट लेता था।**

**संदर्भः-**व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित उनकी अमर कति 'गोदान' उपन्यास से उद्द्य त है। गोबर भोला अहीर की बाल-विधवा बेटी झुनिया को जो अब गर्भवती है, अपने घर छोड़कर भाग जाता है। जब धनिया को इस बात का पता लगता है तब वह पहले तो झुनिया को घर में रखने के लिए तैयार नहीं है, वह खेत पर अपने पति होरी को इस कांड की सूचना देने पहुँचती है। होरी और धनिया खेत से जब अपने घर की ओर लौट रहे है। तब धनिया के मन में मात -सुलभ करूणा जाग उठती है। प्रेमचन्द इस सम्बन्ध में लिखते हैः-

**व्याख्याः-** होरी एवं धनिया खेत से अपनी झोपड़ी की और लौट रहे है। रात का समय है चारों और अंधकार हैं होरी, झुनिया को कोस रहा है और उसे अपने घर से बाहर निकलने को कह रहा हैं धनिया जो अब तक झुनिया के विपरीत थी, उसके मन में अचानक मात -स्नेह उमड़ आया। वह सोचती है कि ऐसी हालत में वह अब जाएगी कहा। अतः झोपड़ी के द्वार पर पहुचने से पूर्व ही धनिया, होरी के गल में हाथ डालकर कहती है, देखो तुम्हें मेरी सौगन्ध है, उस पर हाथ न उठाना। वह बेचारी तो दूर्भाग्य की मारी है। धनिया द्वारा होरी को इस प्रकार मनाए जाने पर होरी की आंखे  धनिया के स्नेह को देखकर आद्र हो गई होरी को लगा धनिया के मन का यह मात -स्नेह जैसे उस अंधकार में दीप के समान प्रज्ज्वलित हो उठा हो। यद्यपि धनिया मात्र छत्तीस वर्ष की थी परन्तु इस छोटी-सी उम्र में बुढ़ापे की लकीरें उसके चेहरे पर दिखाई देने लगी थी। धनिया के इस सचिंता जर्जर शरीर में उमड़ पड़ने वाली मात -स्नेह की यह आभा उसे सुन्दरता प्रदान कर रही थी। धनिया ने होरी को मनाने के लिए जब उसके गले में अपनी बाहें डाल दी तब थोडी देर के लिए पति-पत्नी दोनों के ह्रदय में कुछ क्षणों के लिए अतीत जाग गया। होरी को धनिया में यद्यपि अब वह बीत-यौवना है अर्थात् जिसका यौवन उसे छोड़कर चला गया है।, इस समय वह कोमल ह्रदया बालि का नजर आई जिसने पच्चीस साल पहले जब धनिया पहली बार नववधू बनकर होरी के घर आई थी उस समय के आलिंगन में जो उस समय जो असी में प्रेम था वही प्रेम आज हारी को महसूस हो रहा था। यह वह प्रेम था जो झुनिया के सारे कलंक, कलंक यहाँ इसलिए कहा गया है क्योंकि  झुनिया बाल-विधवा थी और किसी विधवा युवती का गर्भवती हो जाना समाज में कलंक माना जाता था, इसके साथ-साथ झुनिया भोला अदीर की बेटी थी और गोबर दूसरी जाति का। अतः उस समय जाति से बाहर इस प्रकार करने वालों के लिए बहुत बड़ी बाधा थी और समाज की रूझिया, परम्पराएं जो बाधा थी; उन सब से झुनिया को बचा लेने के लिए धनिया का यह वात्सल्य मानो झुनिया के लिए रक्षा कवच का कार्य कर रहा हो। अर्थात् धनिया झुनिया को उन सामाजिक बाधाओं रूढियों तथा कलंक से बचाकर अपनी गोद में समेटे हुए अभय प्रदान कर रही हो। ठीक वैसे ही जैसे कोई माँ अपने शिशु को अपनी गोद में लेकर उसे अभय प्रदान कर रही हो।

**विशेषः-**

1. धनिया के ममतामयी ह्दय की मूर्ति साकार हुई है।
2. सामाजिक व्यवस्था में जाति-पाति के भेद को उजागर किया गया है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

**24. वह आफत की मारी व्यंग्य-बाणों से आहत और जीवन के आघातों से व्यक्ति किसी व क्ष की छाँट खोजती फिरती थी, और उसे एक भवन मिल गया था, जिसके आश्रय में वह अपने को सुरक्षित और सुखी समझ रही थी, पर आज वह भवन अपना सारा सुख-विलास लिए अलादीन के राजमहल की भाँति गायब हो गया था और भविष्य एक विकराल दानव के समान उसे निगल जाने को खड़ा था।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत अनुच्छेद मुंशी प्रेमचंद लिखित 'गोदान' उपन्यास से उद्ध त है। प्रेमचंद झुनिया की उस अन्तर्द्वन्द की पूर्ण मनःस्थिति का वर्णन करते हैं जिसमें वह अपने अंधकारपूर्ण भविष्य की ओर बढ़ रही है। इस संबंध में उपन्यासकार झुनिया की मनःस्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं-

**व्याख्याः-** झुनिया विधवा थी उसकी भाभियाँ सदैव उस पर व्यंग्य कसा करती थी। जीवन का कोई भी सुख उसे प्राप्त नहीं हो पाता था। इसलिए आफतों से दुःखी एवं उद्विग्न होकर वह किसी किंचित सी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए सदैव लालायित बनी रहती थी। व क्ष की छाया के समान क्षणिक शांति और विश्राम देने वाले सहानुभूति के स्थान पर अब उसे गोबर के प्रेम के रूप में सुख से जीवन यापन करने योग्य एक भवन मिल गया था, जैसे भवन उसमें रहने वाले व्यक्ति को तेज धूप, वर्षा और ठिठुरती सर्दी से बचाकर उसे आश्रय प्रदान कर उसे सुख देता है, ऐसी ही सुखद स्थिति गोबर के आश्रय में झुनिया समझ रही थी। पर वह गोबर रात्रि के अंधकार में झुनिया को अपने घर तो ले आया परन्तु उसे अपनी झोंपड़ी में छोड़ कर स्वंय भाग गया और जब गोबर की मां धनिया को अवैध प्रेम का पता लगा तो वह झुनिया को ही भला-बुरा कहने लगी। अपने बेटे गोबर को निर्दोष बताने लगी और फिर होरी को खेत पर बुलाने चली गयी। गोबर के घर में बैठी हुई झुनिया ये कल्पना कर रही है कि जिस गोबर के प्रेम रूपी भवन को वह सुरक्षित समझ रही थी वह उसके सामने से अलादीन के महल की तरह गायब हो गया। उस सहारे के समाप्त होते ही उसे अपना सम्पूर्ण भविष्य एक विकराल दैत्य के समान उसे निगल जाने को सामने आ खड़ा हुआ। स्वजनों के विछोह, समाज की लांछना, गोबर का विश्वासघात आदि के कारण वह अपने भविष्य को पूर्णतः अन्धकारमय देख रही थी।

**विशेषः-**

1. प्रस्तुत पंक्तियों में झुनिया की मानसिक स्थिति का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है।
2. झुनिया विधवा होने के साथ-साथ अब त्यागी हुई है साथ ही गर्भवती भी। अपनी इस स्थिति पर द्वन्द्व ग्रस्त है।
3. मनोविश्लेषनात्मक शैली है।
4. भाषा सरल, सरस एवं प्रवाहमयी है।

**25. उसने झुनिया से प्रीति और विवाह की जो बातें की थीं, वह सब याद आने लगी। वह अभिसार की मीठी स्म तियाँ याद आयीं जब वह अपने उन्मत उसासों में, नशीली चितवनों में मानों अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे-से घोंसले में एकान्त-जीवन काट रही थी। वहाँ नर का मत आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें, मगर बहेलिये का जाल और छल भी तो वहाँ न था। गोबर ने उसके एकान्त घोंसले में जाकर उस कुछ आनंद पहुँचाया या नहीं, कौन जाने, पर उसे विपत्ति में तो डाल ही दिया। वह संभल गया। भागता हुआ सिपाही मानों अपने एक साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत गद्यांय मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनकी अमर कृति 'गोदान' उपन्यास से उद्द्य त है।

गोबर झुनिया को अपने घर लाकर घर में बिठाकर उसे छोड़कर भग जाता है। पहले वह छिपकर यह देखत है कि उसकी माँ धनिया झुनिया को बुरा-भला कह रही है। इसके बाद वह देअे पाँव अन्धकार का लाभ उठाकर यह देखना चाहता है कि उसके पिता झुनिया के साथ पता नहीं किसा प्रकार का और कैसा व्यवहार करेंगे। गोबर झुनिया का इस विपत्ति में डालने का कारण स्वयं को मानता है। उपन्यासकार ने गोबर की अन्तर्द्वन्द्व एवं पश्चावापपूर्ण मानसिक स्थिति का वर्णन किया है।

**व्याख्याः-** गोबर जब झुनिया को उपने गाँव तक पँहुचाकर रास्तें से ही भाग खड़ा हुआ तो कुछ दूर जाकर सोचने लगा कि उसने झुनिया से प्रीति और विवाह की बातें की थी। उसे जीवन के वे क्षण याद आए जब वह प्रेम में उन्मुक्त होकर झुनिया से चुपचाप मिलने जाया करता था और मिलने के समय जब वह उन्मत उसासें लेता हुआ, प्रेम के नशे से भरी हुई अपनी द ष्टि द्वारा मानों अपने प्राणों को झुनिया के चरणों पर लुटा देता था। गोबर के उसके जीवन में आने से पहले विधवा झुनिया किसी एकाकी पक्षी के समान अपने पिता के घर रूपी घोसले में चुपचाप अपने दिन काट रही थी। वह किसी के भी प्रलोभन में नहीं आती थी। उसके जीवन में पति के विलास के लिए उन्मत आग्रह नहीं था और न मिलन से उत्पन्न उत्साह ही था। बच्चे न होने से उनकी सुन्दर बातें भी नही थी। इन सारें अभावों के रहते हुए कोई बहेलिए के समान छली पुरूष आकर्षणों का जाल बिछाए उसके पीछे नहीं पड़ता था। उसके ऐसे अभावग्रस्त परन्तु सुरक्षित जीवन में गोबर ने प्रवेश किया था। यह तो नहीं कहा जा सकता कि गोबर ने उसके उस एकान्त जीवन में प्रवेश कर उसे किसी भी प्रकार का कोई आनन्द पहुँचाया था या नहीं, परन्तु यह सत्य था कि उसने जीवन को संकट में डाल दिया था। उसके गर्भ को लेकर अब वह कहाँ सुरक्षा पाए? यह सोचकर गोबर संभल गया और झुनिया की सहायता एवं रक्षा के लिए उसी भांति पीछे लौट पड़ा जैसे रणक्षेत्र से भागता हुआ कोई सैनिक अपने साथी की ललकार सुन शत्रु से जूझने पुनः लौट पडे। ठीक यही दशा क्षणभर के लिए गोबर की हो गई अर्थात् गोबर यह सोचने लगा कि मैं भागूंगा नहीं, यहीं झुनिया के साथ उसका धैर्य बधाऊँगा।

**विशेषः-**

1. गोबर के चरित्र का अंकन लेखक ने बडी कुशलता के साथ किया है। उसके हृदय के अन्तर्द्वन्द्व की झाँकी यहाँ बडी सजीव बन पड़ी है।
2. भाषा सरल, सरस एवं प्रवाहमयी है।

25. **मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजुबानी से अपनी कुर्बानी से अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरूष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नही मिटाता? औरत ही से क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटायेगा, तो शून्य हो जाएगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेज प्रधान जीव है और अहंकार में यह समझकर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री प थ्वी की भाँति धैर्यवान है, शक्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरूष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरूष के गुण आ जाते हैं, तो वह कुलटा हो जाती है। पुरूष आकर्षित होता है स्त्री की ओर, जो सर्वास में स्त्री है।**

**संदर्भः-** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तु गद्यांस मुंशी प्रेमचन्द लिखित उनकी अमर क त 'गोदान' उपन्यास से उद्द्य त है। मिर्जा खुर्शीद कबड्डी के खेल का आयोजन करते हैं। खेल के पश्चात् मिर्जा प्रोत्र मेहता से पूछते है कि आप मालती के साथ विवाह कब कर रहे हैं? तब मेहता कहते हैं कि मिस मालती हसीन हैं, खुशमिजाज हैं, समझदार है।, रोशनख्याल हैं और भी उनमें कितनी खूबियाँ लेकिन मैं अपनी जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूँ वह उनमें नही है।

**व्याख्याः-**प्रो० मेहता के अनुसर वे अपनी जीवन-संगिनी में जो गुण देखना चाहते हैं वे मालती में नहीं हैं। वे कहते है कि मेरे विचारनुसार नारी सच्चाई और त्याग की मर्ति होती है। नारी निरीह होती है। इसलिए पति के द्वारा किए गए अनुचित कार्यो को देखकर भी कभी भी शिकायत नहीं करती। पति के लिए सर्वत्र त्याग करने को प्रस्तुत रहती है और अपने अहं आदि को पर्णतः नष्ट कर पूरी तरह पति के अस्तित्व में अपने अस्तित्व को विलीन कर देती है। पति और पत्नी के सयांग में शरीर पुरूष का रह जाता है। परन्तु आत्मा पूर्णतः पत्नी के अधिकार में आ जाती है। नारी अपना सर्वस्व बलिदान कर पुरूष की आत्मा पर विजय प्राप्त कर लेती है। अब प्रश्न यह उठता है कि नारी ही अपने को क्यों मिटाती है, पुरूष अपने को क्यों नही मिटाता,

वह त्याग क्यों नहीं करता? नारी से ही त्याग की आशा क्यों करता है। मेहता इसका उत्तर देते हैं कि पुरूष में त्याग एवं बलिदान करने की वह शक्ति नहीं होती जो नारी में होती है। यदि पुरूष अपने अहं का विसर्जन कर देगा तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। ऐसा होन पर वह संसार से विरक्त होकर तपस्या करने के लिए किसी खोह में जा बैठेगा और वहाँ ईश्वर से मिलने का स्वप्न देखत रहेगा, अर्थात् कर्मक्षेत्र से भाग कर वह मोक्ष की लालसा करने लगेगा। वह ऐसा इसलिए करता है। क्योंकि उसमें तेज का अंश प्रधान होता है और तेज से व्यक्ति अहंकारी हो जाता है। इसलिए पुरूष अपने अहंकार में यह समझकर कि वह पूर्ण ज्ञानी है, ईश्वर से मिलने के स्वप्न देखने लगता है। इसके विपरीत नारी में तेज का अंश प्रधान नहीं होता, इसलिए उसमें अहंकार भी नहीं होता और अहंकार न होने से वह स्वप्न भी नहीं देखती। उसका जीवन यथार्थ से सटा हुआ चलता है। स्त्री प थ्वी के समान सम्पूर्ण आपदाओं एवं कष्टों का सामना धैर्य के साथ करती है। उसमें शांति की प्रधानता रहती है। वह सब कुछ सह लेती है। यदि पुरूष में नारी के ये गुण आ जाते है तो संसार उसे महात्मा कहने लगता है। सहिष्णुता, शांति, क्षमा, दया, आदि नारी के गुण है। महात्माओं में इन्हीं गुणों की प्रधानता पाई जाती है। परन्तु यदि नारी में पुरूष का वह तेज एवं अहंकार आ जाता हैं तो वह भ्रष्ट होकर कुलटा हो जीती है। पुरूष ऐसी ही नारी के प्रति आकर्षित होता है जिसमें नारी के उपयुक्त सम्पूर्ण गुण विद्यमान रहते है पुरूष के गुणों से युक्त नारी पुरूष को आकर्षित नहीं कर पाती। समपर्ण नारी की विशेषता है, पुरूष की नहीं। मेहता जैसे पुरूष ऐसी स्त्री से विवाह कर सकते है जो बिना किसी शर्त के उनके सम्मुख पूर्ण समपर्ण कर दें।

**विशेषः-**

1. प्रेमचन्द ने यहाँ मेहता द्वारा भारतीय नारी की त्यागशीलता एवं क्षमाशीलता का गुणगान किया है। नारी के इन गुणों को ही वे नारी का गौरव मानते है।

2. साम्य-प्रेमचन्द की तह कवि प्रसाद ने भी उपने नारी सम्बन्धी द ष्टिकोण को इसी प्रार प्रस्तुत किया है।

**''नारी, तुम केवल श्रद्धा हो**
**विश्वास, रजत नग घन तल में**
**पीयूष स्त्रोत सी बहा करो**
**जीवन के सुन्दर आगमन में।'**

3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

**26. मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है। और जिये भी तो वह कोई सूखी जीवन न होगा। वह हँसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना, इसलिए नहीं है कि वह चहकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढा लिया है कि जो कुछ करे अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हल्का हो जात है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांय मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनकी अमरकृति 'गोदान' उपन्यास से उद्य त है। इसमें उपन्यास लेडी डॉ. मिस मालती के दोहरे व्यक्तित्व का परिचय देते हुए कहते हैं कि -

**व्याख्याः-** मालती बाहर से तितली है अर्थात् जैसे तितली रंग-बिरंगी और आकर्षक होती है। दूसरे को अपने सौन्दर्य से प्रभावित करती है। ठीक उसी प्रकर से मालती की सुन्दर आकर्षक वस्त्र जिन्हें वह पहन कर राय साहब की मित्र मंडली में सभी पुरूषों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित किए रहती है। मालती इंग्लैंड से पढ़ कर आयी है अतः पश्चिमी सभ्यता में पली हुई आधुनिका है। उपन्यास के आरंभ में उसका जो रूप दिखायी देता है वह एक चंचल तितली का रूप हैं किन्तु वास्तव में उसका आंतरिक रूप कुछ और ही है। लेखक मालती के दोहरे व्यक्त्वि के आतंरिक रूप का उद्घाटन करते हुए कहता है कि वह भतर से मधुमक्खी है । जैसे मधुमक्खी दिन भर कठोर परिश्रम करती है, एक फूल से दूसरे फूल पर बैठती है, पुष्पों का रस और पराग कण लेकर शहद का संग्रह करती है और वह शहद स्वयं मधुमक्खी के लिए अपने लिए न होकर दूसरों के लिए होता है, ठीक उसी प्रकार मालती भी कठोर परिश्रम स्वयं के लिए न कर अपने परिवार के लिए करती है, उसकी दो छोटी

बहनें सरोज और वरदा होस्टल में रह कर पढ़ रही हैं। दोनों बहनों की पढ़ाई एवं होस्टल का खर्च मालती ही वहन करती है, इसी प्रकार उसके पिता बीमार है। अपने पिता की दवाइ के खर्च को वहन करती है। इसके साथ-साथ मालती के पिता शराबी है। अतः पिता की शराब का एवं कबाब का खर्चा भी वह वहन करती है। अतः दिन भर प्रैक्टि्स करके परिवार का संचालन मालती ही करती है। लेखकर कहता है कि केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है? बाहर से चहकने वाली प्रसन्नचित दिखाई देने वाली मालती जहाँ बाहर से आधुनिक फैशन परस्त पश्चिमी नारी का प्रतिरूप है तो अन्दर से मधुमक्खी की तरह परिश्रमी और परिवार के प्रति दायित्व का निर्वाह करने वाली है। मालती हँसती या चहकती इसलिए है कि वह अपने कर्तव्य का भार और नीरसता को दूर कर थोड़ी देर के लिए अपने जीवन को सरस बना सके और उसका पुरूषों के बीच चहकना, हँसना और पुरूषों को अपनी और आकर्षित किए रखना इसलिए है कि इसके बदले में व हल्का-फुल्का मनोरंजन कर जीवन की गंभरताओं को कुछ समय तक भूलकर मनोरंजन कर जीवन को सरस बना लेती है और इसके बदले में उसके अपने मित्रों का प्यार अथवा उपनत्व थोड़ी देर के लिए मिलता है। वह यह सब अपने लिए नहीं अपने परिवर के लिए करती है। क्योंकि उसे इसके बदले मं पैसे भी मिलते हैं। अतः मालती यह सब अपने लिए नहीं अपने परिवर के लिए करती है।

**विशेषः-**

1. मालती को आधुनिक नारी के रूप में चित्रण करके उपन्यासकार ने उसके छिपे हुए गुणों को उभारा है।
2. भाषा सरल, सरस एवं प्रवाहमयी है।

27. **मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद के पुरूषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ, उसी तरह जैसे प्रेम और त्याग और श्रद्धा को हिंसा और संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ। अगर हमारी देवियाँ स ष्टि और पालन के देव-मन्दिर से हिंसा और कलह के दानव-क्षेत्र में आना चाहती हैं, तो उससे समाज का कल्याण न होगा। मैं इस विषय में द ढ़ हूँ? पुरूष ने अपने अभिमान में अपनी दावन कीर्ति को अधिक महत्व दिया। वह अपने भाई का स्वत्व छीनकर और उसका रक्त बहाकर समझने लगा, उसने बहुत बड़ी विजय पाई। जिन शिशुओं को देवियों ने अपने रक्त से सिरजा और पाला उन्हें बम और मशीनगन और सहस्त्रों टैंकों का शिकार बनाकर वह अपने को विजेता समझता है। और जब हमारी ही माएँ उसके माथे पर केसर का तिलक लगााकर और उसे अपनी आसीसों का कवच पहनाकर हिंसा-क्षेत्र में भेजती है। तो आश्चर्य है कि पुरुष ने विनाश को ही संसार के कल्याण की वस्तु समझा और उसकी हिंसा-प्रव ति दिन-दिन बढ़ती गई और आज हम देख रहे है कि यह दानवता प्रचण्ड होकर समस्त संसार को रौंदती, प्राणियों को कुचलती, हरी-भरी खेतियों को जलाती और गुलजार बस्तियों को वीरान करती चली जाती है। देवियों, मैं आपसे पुछता हूँ, क्या आप इस दानवलीला में सहयोग देकर, इस संग्राम -क्षेत्र में उतरकर संसार का कल्याण करेंगी? मै आपसे विनती करता हूँ नाश करने वालों को अपना काम करने दीजिए आप अपने धर्म का पालन किये जाइए।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांस मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनकी अमर कृत 'गोदान' उपन्यास से उद्‌द्य त है। प्रो. मेहता 'विमेन्स क्लब' में भाषण दे रहे है, यह संस्था मिस मालती के प्रयासों से स्थापित हुई है। प्रो. मेहता नारी के अधिकार और नारी स्वातन्त्रय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते है किः-

**व्याख्याः-** पुरूष और स्त्री दोनों के कर्तव्य क्षेत्र अलग-अलग है। पुरूष और नारी दोनों को प्रकृति ने अलग-अलग शक्तियों दी हैं अतः नारी का पुरूष से अपने अधिकारों को मांगना अथवा पुरूष की गुलामी से मुक्त हो स्वच्छंद जीवन जीना, इन दोनों बातों के लिए संघर्ष करना नारी को शोभा नहीं देता क्योंकि नारी पुरूष से सदा ही श्रेष्ठ है। नारी का पद पुरूष से ठीक वैसे ही श्रेष्ठ है, जेसे प्रेम, त्याग और श्रद्धा हिंसा, संग्राम और कलह से श्रेष्ठ है, नारियाँ स ष्टि में मानव को जन्म दे शिशु के रूप में अपने घर मंदिर में उसका पालन पोषन करती है। नारियों के घर का क्षेत्र देव मंदिर की तरह पवित्र और पावन है। क्या नारियाँ, जहाँ मनुष्य का निर्माण होता है, उस स जन और स्नेह के क्षेत्र से बाहर निकलकर मनुष्य का क्षेत्र जिसमें संघर्ष है, कलह है और हिंसा है क्या स्वतंत्रता और अधिकार मांग कर ऐसे क्षेत्र में आना चाहती है यदि देवियाँ शताब्दियों से चले आए आने स जन के क्षेत्र को त्याग कर पुरुष के संघर्ष, कलह और हिंसा के क्षेत्र में आना चाहती है? तो इससे समाज का कल्याण नहीं होगा। मेहता कहते हैं कि इस संबंध में मेरे अपने विचार द ढ़ हैं। पुरुष ने अपने अहम् में दूसरे को हिंसा द्वारा युद्ध में

जीतकर राक्षसी व ति को अधिक महत्व दिया है। एक पुरूष दूसरे पूरूष का अधिकार छीनकर, उसका रक्त बहाकर अभिमानपूर्वक यह अनुमान करता है कि उसने कोई बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर ली है। नारी ने जिस शिशू को अपने गर्भ में अपने रक्त मांस से सिरजा है और फिर उन्हें दूध पिलाकर पाल-पोस कर बडा किया है, मनुष्य ने युद्ध में नारी द्वारा स जित उसी मनुष्य को बम-मशीनगन और हजारों टैंकों से शिकार बनाया है और नारी द्वारा स जित इस सुन्दर स ष्टि का विनाश कर वह स्वंय को बहुत बडा विजेता समझता हैं। हमारी मां और बहनें जब समाज पर किसी आततायी ने आक्रमण किया है तो अपने रक्त द्वारा पालित-पोषित उसी मनुष्य को मानवता के कल्याए हेतु युद्ध में उसी के माथे पर केसर के तिलक लगा उसे अपने आशीर्वादों के कवच पहना कर कि वह युद्ध में विजय श्री को प्राप्त करके लौटे, हिंसा के क्षेत्र में भेजा है अर्थात् नारी ने वहाँ भी त्याग किया है। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि पुरूष विनाश को ही संसार का कल्याण समझता है। मनुष्य यहीं तक सीमित नहीं रहा। उसकी हिंसा की व ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती चलती गई और आज मनुष्य अपने अभिमान में दूसरों को नीचा दिखानें के लिए दानव बनकर सारे संसर को युद्ध की आग में धकेल देता है। वही मनुष्य रौद्र रूप धारण कर मानव बस्तियाँ जो गुलजार हैं, अपने प्रभुत्व के लिए उन्हें कुचलता हुआ हरी-भरी लहराती हुई; खेतियों को उजाडता। हुआ हिंसा के क्षेत्र में आगे बढ़ता जा रहा है। प्रो. मेहता कहते है कि देवियों मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आप अपने पवित्र स जन के क्षेत्र को छोड़कर जिसमें प्रेम, त्याग और करूण है आय पुरूष के इस हिंसक क्षेत्र में उतरना चाहती है। आप क्या इस क्षेत्र में उतरकर संसार का कल्याण कर सकेंगी? मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि पुरूष को विनाश करने दीजिए । आप अपने स जन के पावन मंदिर में रहकर श्रद्धा, प्रेम और त्याग का जो आपका क्षेत्र है, उसी में रहते हुए अपने कर्तव्य का पालन करती रहिएं।

**विशेषः-**

1. प्रो. मेहता ही प्रेमचन्द के विचारें का सवांहक है। यदि यूं कहा जाए कि प्रो. मेहता के प्रतीक रूप में प्रेमचन्द ही बोल रहा है तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।
2. महात्मा गांधी भी प्रेमचन्द की तरह पुरूष और नारी के कर्त्तव्य क्षेत्रों को अलग-अलग मानते है।
3. व्याख्यात्मक शैली है।
4. भाषा सरस, सरल एवं प्रवाहमयी है।

**28. देवियों, मैं उन लोगों में नहीं हूँ, जो कहते हैं, स्त्री और पुरूष में समान शक्तियाँ हैं, समान प्रव तियाँ है और उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना नही कर सकता। यह वह असत्य है, जो युग-युगान्तरों से संचित अनुभव को उसी तरह से ढंक लेता है जैसे बादल का एक टुकड़ा सूर्य को ढंकलेता है। मैं आपको सचेत किये देता हूँ कि आप इस जाल में न फँसे। स्त्री-पुरूष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अन्धेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरूष धर्म और अध्यात्मक और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूँ उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांस उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी अमर क ति 'गोदान' में से अवरित हैं विमेन्स क्लब' जो कि मिस मालती द्वारा स्थापित है में नारी स्वातंत्र्य और नारी के अधिकारों और नारी के अधिकारों के विषय में व्याख्या देते हुए कहते है

व्याख्याः- संसार में अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो यह कहते है कि स्त्री और पुरूष की शक्तियाँ समान है। परन्तु मेरा मानना है कि नहीं ऐसा है। स्त्री और पुरूष में शक्तियाँ समान नहीं है, अपितु दोनों की शक्तियाँ अलग-अलग है। न ही उनमें एक जैसी विशेषताएं हैं और न ही दोनों का स्वभाव एक जैसा है। प्रो. मेहता के अनुसार इस प्रकार की दोनों में शक्तियाँ समान है। तो इससे बड़ा असत्य संभव ही नहीं। यह एक ऐसा असत्य है जो संसार में युग-युगान्तरों से सच्चाई को उसी तरह छिपा लेना चाहता है जैसे बादल का एक छोटा-सा भाग उड़कर सूर्य को ढ़क लेना चाहता हो। परन्तु ऐसा करने में उस बादल के भाग को बहुत अधिक कष्ट होता है। क्योंकि उस समय सूर्य की गर्मी उसके लिए असहनीय हो जाती है। ठीक उसकी प्रकार

यह सत्य की नारी और पुरूष दोनों की विशेषताएँ और शक्तियाँ समान है। यह झूठ इस वास्तविकता को नहीं दबा सकता कि दोनों में समानता है। प्रो. मेहता आगे कहते है कि अब मैं सभी देवियों को सावधान कर रहा हूँ कि आप पुरूषों के इस जाल में न फंसे । पुरूष नारी को शक्ति और गुणों में नर के बराबर कहकर अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहता है। वास्तविकता यह है कि नारी नर से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधकार से प्रकाश ज्ञान का और पवित्रता का सूचक है। प्रकाश ज्योति का प्रतीक है उसी प्रकार से नारी में क्षमा, त्याग और अहिंसा उसके स्वाभाविक गुण हैं। दूसरी ओर अन्धकार पुरूष में अज्ञान कालिमा और वासना का प्रतीक है। प्रकाश हमें सत्य और अहिंसा का संदेश देता है। उसी प्रकार नारी क्षमा त्याग और अहिंसा जो उसके स्वाभाविक गुण है, वह प्राणी ममात्र को जीवन देने वाली है। मनुष्य के लिए श्रमा, त्याग और अहिंसा आदर्श हैं जबकि नारी के प्रक ति प्रद्त्त स्वाभाविक गुण है। नारी को ये गुण जन्मजात पकृति ने धरोहर के रूप में दिए है। और पुरूष क्षमा, त्याग और अहिंसा इस आदर्श को प्राप्त करना चाहता है। जबकि नारी इस आदर्श को पहले ही प्राप्त कर चुकी हैं। पुरूष इन गुणो को प्राप्त करने के लिए धर्म का सहारा लेता है या ऋषियों के आश्रमों में जाकर ऋषियों की सहायता से इन गुणों को अपनाने की कोशिश करता हैं मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग और अहिंसा जीवन के सबसे बड़े आदर्श है। पुरूष धर्म, आध्यात्मिकता का सहारा लेकर और ऋषियों का आश्रय लेकर अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शताब्दियों से कोशिश कर रहा है और वह अभी तक सफल नहीं हो सका। प्रो. मेहता कहते है कि पुरूष के द्वारा अब तक अघ्यात्मक और योग द्वारा प्राप्त किया हुआ आदर्श एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ। कहने का अर्थ है कि नारी का अपने पति और परिवार के लिए जो त्याग है, उसका एकमात्र त्याग का अकेला गुण ही पुरूष के अध्यातत्म और योग इन सबसे कहीं अधिक महान है। अतः नारी और पुरूष एक समान नहीं है। नारी अपने स्वाभाविक गुणों के कारण पुरूष से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

**विशेषः-**

1. नारी पुरूष से श्रेष्ठ हैं प्रेमचन्द जी ने भारतीय दर्शन के अनुसार यह दिखाने का प्रयास किया है।
2. नारी में क्षमा, त्याग और अहिंसा के गुणों की प्रतिष्ठा होते हुए भी मानव उसकी कदर नहीं करता । डॉ. बसन्त बंसल ने ठीक ही कहा है।

   **'' हे नारी !**<br>
   **मैं कैसे करूं बंदना तुम्हारी**<br>
   **तुम तो हो इस संसार की जननी पर इस मानव ने तेरी कदर न जानी।''**

3. भाषा सरल, सरस एवं प्रवाहमयी है।
4. अंधकार व प्रकाश शब्द प्रतीकात्मक है।
5. व्याख्यात्मक शैली है।
6. प्रो. मेहता की स्पष्टवादिता द ष्टिगोचर हुई है।

**29. पुरूष कहता है, जितने दार्शनिक और वैज्ञानिक अविष्कारक हुए हैं, वे सब पुरूष थे। जितने बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं वे सब पुरूष थे। सभी योद्धा, सभी राजनीति के आचार्य, बड़े-बड़े नाविक हुए हैं, वह सब पुरूष थे। लेकिन इन बड़ो-बड़ो के समूहों ने मिलकार किया क्या? महात्माओं और धर्म-प्रवर्त्तकों ने संसार में रक्त की नदियाँ बहाने और वैमनस्य की आग भड़काने के सिवा और क्या किया, योद्धाओं ने भाईयों की गरदनें काटने के सिवा और क्या यादगार छोड़ी। राजनीतिज्ञों की निशानी अब केवल लुप्त साम्राज्यों के खंडहर रह गये है। और आविष्कारकों ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना देने के सिवा और क्या समस्या हल कर दी? पुरूषों की रची हुई इस संस्क ति में शान्ति कहाँ है? सहयोग कहाँ?**

**संदर्भः-** व्याख्यान गद्यांश मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य में मील का पत्थर 'गोदान' से उद्घ त है। प्रो० मेहता विमेन्स क्लब में नारी स्वतन्त्रता, नारी के अधिकार के सन्दर्भ में भाषण देते हुए कहते है कि नारी पुरूष से स्वभाव से ही श्रेष्ठ है। इसके बावजूद भी पुरूष स्वयं नारी से श्रेष्ठ सिद्ध करता है। उन श्रेष्ठ पुरूषों द्वारा किए गए कार्यो से समाज को क्या मिला? इस

सम्बन्ध में कहते है कि :-

**व्याख्याः-** पुरूष को इस बात का गर्व है कि संसार के सारे दार्शनिक एवं वैज्ञानिक आविष्कार करने वालो पुरूष ही हुए है। बड़े-बड़े महात्मा, योद्धा, राजनीतिक, नाविक आदि केवल पुरूष ही हुए है। यह सत्य है। परन्तु प्रश्न यह है कि इन बड़े आदमियों ने क्या किया? उनके प्रयत्नों का परिणाम क्या निकला संसार में महात्माओं एवं धर्म-प्रवर्तकों ने मानव-मानव के बीच भेद की खाई उत्पन्न कर वैमंनस्य के बीज बोये और इस वैमनस्य का परिणाम यह हुआ कि संसार में रक्त की नदियां बही। प्रत्येक धर्म प्रर्वक ने अपने ही विचारें एवं उपदेशों को पूर्ण एवं अंतिम सत्य घोषित कर अन्य विचारकों तथा धर्म प्रवर्त्तकों के प्रति विद्वेष की भावना उत्पन्न की। ईसाइयों, मुसलमानों, बोद्धों तथा अन्य प्राचीन धर्मवलम्बियों ने अपने ही मत को सर्वोपरि रखने के लिए क्या-क्या कुकर्म नहीं किए, कौन -कौन से अत्याचार का सहारा नहीं लिया, इस का इसका प्रमाण है धर्म युद्धों ने मध्यकालीन युग को पागल बना डाला था।

संसार-प्रसिद्ध योद्धाओं ने अपनी वीरता किस प्रकार दिखाई? उपने भाईयों पर ही न। उन्होंने अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए लाखों करोड़ों भाइयों को (मानव-मात्र आपस में भाई है)। युद्ध में करवा दिया। राजनीतिज्ञों ने जिन विशाल साम्रज्यों की स्थापना की थी आज वे कहाँ है। उनके खण्डहर ही आज उनके विगत अस्तित्व की कहानी कहने के लिए शेष रह गए है। प्राचीन रोम, मिश्र, रीरियों, क्रीट, मोहन-जोदडों आदि की सभ्यताएं आज इतिहास का विषय बनकर रह गई है। यदि उनमें सच्चाई एवं कल्याण की भावना होती तो वे नष्ट ही क्यों होती? अब उन आधुनिक वैज्ञानिक को देखिए जिन्होंने मशीन युग का प्रवर्तन कर मानव-जीवन को अधिक सुरक्षित एवं सुखी बनाने का दम्भ किया है। परन्तु उनके सम्पूर्ण अविष्कारों का परिणाम यही हुआ कि आज मनुष्य पूर्ण रूप से मशीन का गुलाम बन गया है। मशीन के बिना उसका काम नही चल सकता। मशीन मानव पर हावी हो गई है। उपर्युक्त सभी बड़े गुलाम थे या हैं परन्तु उनके द्वारा निर्मित मानव-समाज में शांति का कहीं नाम भी नहीं मिलता मनुष्यों में सहयोग की भावना लुप्त हो गई हैं मानव-मानव के रक्त का प्यास बन गया है। फिर पुरूष प्रधान इस समाज का मानव जीवन के लिए क्या उपदेश रहा है।

**विशेषः-**

1. मुंशी प्रेमचन्द ने वैज्ञानिक आविष्कारों की अनुपयोगिता तथा राजनीतिज्ञों की लिप्सा की ओर संकेत किया है।
2. नारी -पुरूष के समानाघिकार के सम्बन्ध में यहाँ प्रेमचन्द ने मेहता के शब्दों में स्पष्ट सम्मति व्यक्त की है।
3. भाषा सरल, सरस एवं प्रवाहमयी है।

30. **मैं आपसे पूछता हूँ क्या बाज को चिडियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देता है। मानसरोवरी आनन्दमयी शन्ति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे? और अगर वह शिकारी बन जाए, तो आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज चांच नहीं हैं, उतने तेज चंगुल नहीं है, उतनी तेज आंखे नहीं है, उतने तेज पंख नहीं है और उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। उन अस्त्रों का संचय करने में उसे सदियाँ लग जाएंगी, फिर भी वे बाज बन सकेगे या नहीं इसमें सन्देह है, मगर बाज बने या न बने, वह हंस न होगे, वह हंस जो मोती चुगता है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी अमर क ति 'गोदान' से अवतरित है। प्रो. मेहता 'विमेन्स क्लब में नारी स्वतन्त्रता उनके अधिकारों एवं पुरूष और नारी की समानता पर उपने विचार प्रस्तुत कर रहे है। उनका मानना है कि नारी पुरूष के गुनों को अपना लेती है तो यह उनके लिए घातक सिद्ध होता है।

**व्याख्याः-** प्रो. मेहता पश्चिम के नारी स्वातन्त्रय आन्दोलन पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रहर करते हुए कहते हैं कि नारी के लिए पुरूष के गुणों को अपनाने की लालसा करना उसके लिए घातक होगा। इस बात को वे 'बज' और हंस की तुलना द्वारा स्पष्ट करते है। बाज चिड़ियों के शिकार पर जीवित रहने वाला मांसाहारी पक्षी है। उसका जीवन सदैव हिंसा एवं अशांति से भरा रहता है। इसके विपरीत हंस मोती चुगने वाला तथा मानसरोवर के आनन्दय शांत वातावरण में रहने वाला पक्षी हैं क्या हंस के लिए यह उचित होगा कि वह उस सात्विक एवं आनन्दमय शांत जीवन को त्याग बाज के समान चिड़ियों का शिकार करने लगे अर्थात्

क्या यह उचित होगा कि नारी, जो हंस के समान सात्विक कृति वाली होती है, बाज के समान न शांस, हिंसाकारी एवं दुःखद संघर्ष में सदैव लिप्त रहने वाली पुरूष के गुणों को अपना ले। यदि हंस बाज के समान शिकारी बन जाए तो क्या व हमारी बधाई का पात्र रहेगा? परन्तु वास्तविकता यह है कि हंस प्रयत्न करके भी बाज का रूप धारण नहीं कर सकता । क्योंकि उसके पास बाज के समान न तो तेज चोंच है, न उतने तीखे नाखून हैं और न उतनी तेज आंखे और न उतने शक्तिशाली डेने है और न ही उसमें रक्त पान करने की उतनी तीव्र पिपास हैं अर्थात् हंस में बाज की एक भी विशेषता नही है, इसलिए वह बाज नहीं बन सकता। अगर फिर भी वह बाज बनने का प्रयत्न करेगा तो उसे सफलता प्राप्त करने में युग बीत जाएंगे, फिर भी इस बाते में संदेह है कि वह पूर्ण रूप से बाज बन भी पाएगा या नहीं इस प्रयत्न का यह परिणाम अवश्य होगा कि वे अपने हंस के गुणों को भूल जाएगा भले ही बाज बन पाए या न बन पाए। चूकि हंस मोती चुगता है, इसलिए वह मांस नही खा सकेगा। नारी हंस के समान है। उसमें हंस की सी सात्विकता एवं शांति होती है। वह इन्हीं गुणों से सच्चा आनन्द पाती है। पुरूष बाज के समान हिंसक एवं रक्त प्यास होने के कारण तामसव ति का होता है। यदि नारी पुरूष के उन गुणों को उपनाने का प्रयत्न करेगी तो परिणाम यह होगा कि वह पुरूष के उन गुणों को पुर्णरूपेन प्राप्त करने में तो असमर्थ रहेगी ही परन्तु उसकी सबसे बड़ी हानि यह होगी कि वह अपने नारीत्व के गुणों को खो बैठेगी। अतः जिस प्रकास हंस बाज नहीं बन सकता, उसी प्रकार नारी पुरूष नहीं बन सकती। क्योंकि नारी सदैव त्याग करके मानवता के विकास में योगदान देती है जबकि पुरूष स्वार्थव ति का स्वामी होता है।

**विशेषः-**

1. प्रेमचन्द के विचारों के संवाहक 'गोदान' उपन्यास में प्रो० मेहता है। वे नारी और पुरूष का कार्य क्षेत्र अलग-अलग मानते है।
2. प्रक ति ने नारी और पुरूष को अलग-अलग गुणों से आपुरित किया है। इस गद्याशों में यह तथ्य स्पष्ट होता है।
3. नारी को पुरूष की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया है।
4. 'गोदान' में ही स्वयं प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि जब पुरूष नारी के गुण ग्रहन कर लेता है तो व महात्मा बन जाता है। और नारी पुरूष के गुण ग्रहण कर लेती है तो वह कुल्टा बन जाती है।
5. भाषा सरल, स्पष्ट एवं प्रवाहमयी है।
6. भाषा में गागार में सागर भरने की श्रमता है।

31. **मैं नही कहता, देवियों को विद्या की जरूरत नहीं है। है और पुरूषों से अधिक। मैं नहीं कहता, देवियों को शक्ति की जरूरत नहीं है। है और पुरूषों से अधिक, लेकिन वह विद्या और शक्ति नहीं, जिससे पुरूष नें संसार को हिंसा क्षेत्र बना डाला है। अगर वही विद्या और वही शक्ति आप भी ले लेंगी, तो संसार मरूस्थल हो जाएगा। आपकी विद्या और आपका अधिकार हिंसा और विध्वंस में नहीं स ष्टि और पालन में है। क्या आप समझती है।, वोटों से मानव-जाति का उद्धार होगा, या दफ्तरों में और अदालतों में जबान और कलम चलने से? इस नकली, अप्राक तिक, विनाशकारी अधिकारों के लिए आप वह अधिकार छोड़ देना चाहती हैं, जो आपको प्रक ति ने दिये है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांस उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी अमर कृति 'गोदान' से अद्धित है। कालजयी द्वारा आयोजित वीमेन्स लीग में भाषण दे रहे पुरूषों की बराबरी के अधिकार को लेकर नारी संघर्ष करना चाहती है किन्तु मेहता का विचार है कि अपनी शांति कामिता, अहिंसावादिता, प्रतीम त्याग और सहिष्णुता के कारण ही जो नारी पुरूष को बराबरी के नाम पर अपने को पतन के गर्व में धकेलना चाहती है? मेहता की द ष्टि में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा प्रक ति प्रदत मात -स्नेह सम्बन्धी ज्ञान अधिक महत्वपूर्ण है। यहां पर वे नारी शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते है।

**व्याख्याः-** मेहता का कहना है कि वे नारी-शिक्षा के विरोधी नही है। वरन् वे तो यह मानते है कि नारी को पुरूष की उपेक्षा शिक्षा की अधिक आवश्यकता है। केवल शिक्षा ही नहीं, उन्हें पुरूषों से अधिक शक्ति, बल और साहस की भी आवश्यकता है

किन्तु वे शिक्षा और शक्ति के उस रूप के पक्ष में नहीं है जिनकी भाषा पुरूष समझता है, बोलता है और अपनाता है। अपनी इसी कुत्सित शिक्षा के बल पर उसने समस्त संसार को युद्ध क्षेत्र बना डाला है। जहाँ सब एक दूसरे के खून के प्यासे है। नारियों को सम्बोधित करते हुए मेहता आगे कहते है कि यदि इसी शिक्षा को अपने जीवन का अंग बना लिया तो यह संसार नरक बन जाएगा। जहाँ सामजेस्य और प्रेम के बदले तनाव ग्रस्तता फैले गई और परिणामस्वरूप रक्त की नदियां बहेंगी। आपकी विद्या और अधिकारों का उद्देश्य संसार को हिंसा, कलहस, मारकाट और सर्वनाश की ओर ले जाना नहीं वरन् संसार की स ष्टि करने और उसके भरन-पोषण में है अर्थात् संसार को अच्छी से अच्छी योग्यसंतान दें और उसका लालन-पालन इस प्रकार करें कि वह भविष्य में देश का कर्णधार कहलाए। आपके विचार में वोट का अधिकार मात्र पा जाने से आप संसार का उद्धार कर देंगी या घर से बाहर निकलकर किसी भी विषय पर बाद-विवाद करके मानवता का उपकार कर सकेंगी, आपका यह सोचना निरर्थक है। आप इन बेबुनियादी, अस्तित्व हीन, नीरस और विध्वंसकारी अधिकारों के पीछे अपने त्याग, प्रेम मात -स्नेह, एवं संतानों प्राति तथा उनका पालन-पोषन आदि गुणों को छोड़ने के लिए तैयार है। जोकि यही गुन-मानवता की रक्षा करने में समर्थ हो सकता है क्योंकि नारी के ये गुण स्वाभाविक, महान् और शाश्वत है।

**विशेषः-**

1. प्रेमचन्द जी ने आधुनिक शिक्षा को विध्वंसकारी, अकल्याणकारक, और हानिप्रद बताते हुए उसे नारी के लिए सर्वथा अनुपयोगी बताया है। वे नारी के लिए प्राक तिक गुणों से युक्त उस शिक्षा को चाहते है। जो उसमें निहित मान-कल्याणकारी गुणों से अभिव द्धि कर सके। वर्तमानिक शिक्षा नकली, अप्राक तिक और विनाशकारी होने से नारी को उसके मुल कर्त्तव्यों से विमुख ही करेंगी, उसकी वास्तविक उन्नति नहीं हो सकेगी।

2. गाँधी जी चाहते थे कि लड़कियों को लड़को से अलग प्रकार की शिक्षा दी जाए जिससे वे घर-ग हस्थी को सुचारू रूप से चला सके। यहाँ मेहता के माध्यम से इसी प्रकार के विचार प्रकट किए गए है।

3. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा है।

4. व्याख्यात्मक शैली है।

5. प्रो. मेहता यहाँ प्रेमचन्द का ही दूसरा रूप है।

32. **वोट नये युग का माया जाल है, कलंक है, धोखा है उसके चक्कर में पड़कर आप न इधर की होगी, न उधर की। कौन कहता है कि आपका क्षेत्र संकुचित है और उसमें आपको अभिव्यक्ति का अवकाश नहीं मिलता। हम सभी पहले मनुष्य है।, पीछे और कुछ हमारा जीवन हमारा घर है। वहीं हमारी स ष्टि होती है।, वही हमारा पालन होता है, वही जमीन के सारे व्यापार होते है। अगर वह क्षेत्र परिमित है तो अपरिमित क्षेत्र कौन-सा क्षेत्र है? क्या व संघर्ष जहाँ संगठित उदाहरण है? जिस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनाता है। उसे छोड़कर आप उन कारखानें में जाना चाहती है। जहाँ मनुष्य पीसा जाता है, जहाँ उसका रक्त निकाला जाता है?**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की अमरकृतिऽगोदान’ से उद्ध्य त है। वीमेन्स लीग में भाषण देते हुए डॉ. मेहता नारी के आदर्श रूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि शांति, त्याग और सहिष्णुता जैसे महान गुणों के कारण नारी पुरूष से श्रेय है और युगों से पुरूष यद्यपि इन गुणों को पाने का प्रयास करता रहा है कि किन्तु नही पा सका। इन गुणों को पाने का प्रयास करता रहा है किन्तु नहीं पा सका। उसे अपने जिन धर्म-प्रर्वतकों, दार्शनिकों, योद्धाओं, नाविकों और वैज्ञानिक आविष्कारों पर गर्व है, उन सब ने मानव जाति को पतन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है और केवल नारी ने ही अपने त्याग से उसे पतन से बार-बार बचाया हैं वे पुरूषों के समान नारी की शिक्षा का भी समर्थन करते है किन्तु वर्तमान नकली अप्राक तिक और विनाशकारी शिक्षा को वे नारियों के लिए वे सर्वथा अनुचित ठहराते हैं क्योकि वह उसकी उन्नति की उपेक्षा उवनति का ही एक कारण बना जाएगी। इसी प्रसंग में नारी समुदाय द्वारा वोट का अधिकार पाने की लालसा का समाधान करते हुए डॉ. मेहता मताधिकर को भी एक छल बताते हुए कहते है।

**व्याख्याः-** आप जिस मताधिकर की बात करते है। वह वास्तव में एक छल एवं मायाजाल है और इसके पीछे आपको राजनीति

में उलझाने का एक निहित उद्देश्य छिपा है। मताधिकर की मांग न केवल निरर्थक है बल्कि नारी जाति के लिए एक कलंक है। धोखा है, इसकी परिणाम अन्तोगत्वा बुरा ही होगा और इसके परिणाम स्वरूप समाज अनेक बुराइयों का शिकार बना जाता है। इसी प्रकार की अनुचित माँग से यदि अपने वोट के अधिकर को पा लिया तो निश्चय ही उप-यश मिलने के अतिरिक्त और आपके हाथ कुछ न लगेगा। आपकी यह धारण है कि घर का क्षेत्र सीमित है, जहाँ आप अपनी बुद्धि प्रतिमा एवं व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाती किन्तु आपको यह तथ्य नहीं भुलना चाहिए कि हम सर्वप्रथम मनुष्य हैं उसके बाद ही और कुछ हमारा घर ही हमारा जीवन है जहाँ हम पैदा होते हैं बड़े हेते है, जहाँ हमारे संस्कार और चरित्र का निर्माण होता है। घर के बिना हमारा अस्तित्व संदिग्ध बन जाएगा। हम घर के बिना रह ही नही सकते है। घर में ही हमें माँ, बहन और पत्नी की स्नेहपूर्ण शीतल छाया मिलती है, जिसके आश्रय में हम अपनी प्रतिभा और अपने व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ होते है। अगर आप अपने उस घर को सीमित मानती है। जहाँ मनुष्य की स ष्टि होती है, तो क्या आपकी द ष्टि में उस संघर्षमय जीवन जहाँ कि सब अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्धि में लगे रहते है। का क्षेत्र अपरिमित है। तो क्या आप उस घर रूपी कारखाने को छोड़कर जाना पसन्द करेंगी जहाँ व्यक्तित्व का निर्माण और पालन-पोषण होता है, जबकि बाह्य सामाजिक एवं प्रतिभा का विकास होता है। जबकि बाह्य सामाजिक जीवन संघर्षमय है जहाँ मानसिक और शारीरिक शक्ति दिन-प्रतिदिन नष्ट हो रही है, दी-छीन कर।

**विशेषः-**

1. प्रेमचन्द नारी के मात रूप को ही सर्वोपरी और महानीय मानते है। वह ब्रह्माण्ड की रचयिता है इसलिए वे उसे सामाजिक राजनीतिक जीवन से दूर रहने की सलाहे देते है। सामाजिक राजनीतिक जीवन उस कारखाने की भांति है जहाँ मनुष्य का मानसिक और शारीरिक रक्त शोषन होता है , जबकि घर की नारी स ष्टि करे , उसका पालन-पोषन करके हमारे व्यक्तित्व को प्राणवान, सतेज, प्रतिमा सम्पन्न और कर्मशील बनाती है।
2. प्रेमचन्द जी बोट् के अधिकार को मात्र छल मानते हैं इससे नारियों को अधयश ही मिलेगा।
3. उनकी द ष्टि में घर तो अधिल ब्रहमाण्ड है, बाहर की दुनिया उसके सामने तुच्छ है।
4. भाषा सरल, स्पष्ट एवं तत्सम शब्दावली से युक्त है।
5. व्याख्यात्क शैली है।

33. **संसार में सबसे बडे अधिकार सेवा और त्याग से मिलते है। और वह आपको मिले हुए है। उन अधिकारों केसामने वोट कोई चीजनहीं। मुझे खेद है। हमारी बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही है। जहाँ नारी ने अपना पद खो दिया और स्वाभिमानी से कगरकर विलास की वस्तु बन गई हैं पश्चिम की स्त्री स्वतन्त्र होना चाहती है, इसलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नही रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकर से सदैव ग हस्थी संचालन किया है। पशिचम मे जो चीजें अच्छी है। वह उनसे लीजिए। संस्क ति में सदैव आदान-प्रदान होता आया है लेकिन अन्धी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज ग ह-स्वामिनी नहीं रहना चाहती । भोग की विर्दध लालास ने उसे उच्छंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद-प्रमोद पर होम कर रही है जब मैं वहाँ की सुशिक्षित बालिकाओं को अपने रूप का, या भरी हुई गोल बाहों का अपनी नग्नता का प्रदर्शन करते देखता हूँ, तो उन पर दया आती है। उनकी लालसाओं ने उन्हें इतना पराभूत कर दिया है कि वे अपनी लज्जा की भी रक्षा नहीं कर सकतीं, नारी की इससे अधिक और क्या अधेगति हो सकती है?**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांस उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यास 'गोदान' से अवतरित है। प्रो. मेहता वीमेन्स लीग में भाषन देते हुए कहते है। पाश्चात्य अनुकरण करना नारी के लिए हेय है। वे भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता की तुलना करते हुए कह रहे है कि

**व्याख्याः-** भारत की आधुनिक युवती अधिकार चाहती है संसार में सबसे बड़ा अधिकार सेवा और त्याग से मिलते है। और भारतीय समाज में यह अधिकार ग हिणी को मिले हुए है। जहाँ परिवार में घर का संचालन, देख-रेख नारी ही करती है, जहाँ

उन्हें सर्वोच्च स्थान दिया गया है ऐसे अधिकार के सामने वोट का अधिकार बहुत ही तुच्छ है। मेहता कहते है कि मुझे इस बात का दु:ख है कि हमारी बहनें पश्चिम की नारी को आदर्श मानकर उसका अनुकरण की रही है। पश्चिमी सभ्यता की नारी ने मात त्व का वह गौरवशाली पद खो दिया हैं वह ग हस्वामिनी के महत्व पद से गिरकर केवल विलास की, उपभोग की वस्तु बन रहा गयी है। पश्चिम की नारी स्वछंद होना चाहती है। वह अपने ऊपर किसी के भी बन्धन को स्वीकार नहीं करना चाहती। ऐसी स्वतंत्रता वह इसलिए चाहती है कि अधिक से अधिक विलास कर सके। भारतवर्ष में हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। भारतीय नारी का आदर्श रहा है त्याग, सर्मपण, सेवा और कर्तव्य पालन। उसने सेवा के अधिकार से अपने ग हस्थ का संचालन किया है और वह आज भी आदर्श मानी जाती हैं इसीलिए भारतवर्ष में वह महत्वपूर्ण है। प्रो० मेहता आगे कहते हैं कि मैं यह नहीं कहता कि हम पश्चिम देशों से वहाँ की सभयता और संस्कृति से अच्छी चीजों को न लें पश्चिम से हम अच्छी चीजों को लें संस्क ति व सभ्यता में सदैव अदान-प्रदान होता आया है। अतः पश्चिम से अच्छी चीजों को लेकर पश्चिम की नारी आज ग हस्वामिनी बनकर रहना नहीं चाहती। पश्चिम की नारी का उद्देश्य भोग और विलास रहा गया है। भोग की अपरिमित लालसा ने उसे मनमानी करने के लिए उच्छ ंखल बना दिया है। नारी का सबसे बड़ा गुण है उसकी अपनी लज्जा और अपनी गरिमा की रक्षा। पश्चिम की नारी लज्जाहीन हो गयी है। अपनी गरिमा खो बैठी है। वह उच्छ ंखल, चंचल होकर केवल भोग-विलास में रत रहकर नारी सुलभ अच्छे गुणों को हमम कर चुकी है। मेहता कहते है कि जब में परिचय की पढ़ी-लिखि युवतियों को इस रूप में देखता हूँ। जब वे अपने शारीरिक सौदंर्य नारी-देह का, भरी हुई गोल बाहों का और कम से कम वस्त्रों में उनके अर्धनग्न शरीर के सौदंर्य का उन्हें प्रदर्शन करते हुए देखता हूँ तो मुझे उन पर दया आती है। उन की वासनी की इच्छा ने उन्हें इतना विवश कर दिया है कि वे नारी-सुलभ लज्जा की रक्षा भी नहीं कर पाती। नारी की इससे और अधिक दयनीय, शोचनीय, पतन की स्थिति और कौन सी होगी?

**विशेषः-**

1. मेहता के माध्यम से प्रेमचन्द ने अपने विचारों को अभिव्यक्ति किया है।
2. प्रेमचन्द भारतीय नारी के लिए पश्चिमी सभ्यता संस्कृति को अपनाना अच्छा नहीं मानते ।
3. लज्जा नारी का आभुषण है। स्वयं का माननीकार प्रसार ने भी ऐसा ही कहा है। यही गुण उसे पथ-भ्रष्ट होने से बचाता है। 'चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली मैं वह हल्की सी मसलन हूँ जो बनती कानों की बाली'
4. भाषा सरल,सरस एवं प्रवाहमयी है।
5. व्याख्या शैली है।

**34. जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विक त रूप, उसी तरह जैसे सन्यास केवल भिख मांगने का ही संस्क त रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में कम है, तो मुक्त विलास में बिल्कुल नहीं हैं सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति केवल सेवा-व्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उद्गम है। सेवा ही सीमेझट है, जो दम्पति के जीवन पर्यन्त स्नेह और सहचर्या में जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े-बडे आघातों का भी कोई असर नही होता। जहां सेवा का अभाव है।, वही विवाद विच्छेद है परित्याग है अविश्वास है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांस उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित अमर क ति 'गोदान' से उद्घ त है । वीमेन्स लीग में भाषन देते हुए डॉ. मेहता नारी को पुरुष से महान सिद्ध करते हुए उसके मात्-रूप की महत्ता का विवेचन कर रहे थे कि बीच में मालती की छोटी बहन सरोज ने प्रतिवाद करते हुए कहा कि नारी अब पारम्परिक वैवाहिक सूत्र का परित्याग कर प्रेम-विवाह की मान्यता चाहती है। वह कहती है कि विवाह एक व्यवसाय न होकर पति-पत्नी के जीवन भर के समन्वय का एक सुखद साधन है। इसलिए नारी केवल प्रेम के आधार पार ही विवाह करेंगी। प्रो० मेहता प्रेम विवाह एवं प्रेम सम्बन्धों का विवेचन करते हुए उसे उद्दीपन लालसा का विकृत रूप सिद्ध करते है। उनका इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट विचार है कि :-

**व्याख्या:-** तुम जिसे प्रेम का नाम देना चहती हो, वह यथार्थ में प्रेम न होकर एक छल मात्र है यह तथा कथित प्रेम ह्रदय में छिपी उडीप्त लालसा का ही एक भद्दा रूप है । उद्दिप्त लालसा के इस विक त रूप को प्रेम जैसा सम्य नाम ठीक उसी

प्रकार दे दिया गया है जैसे भिख मांगने जैसा निकृष्ठ कार्य हेतु संन्यास जैसा सुसंस्क त रूप दे दिया गया है। यों तो भिख मांगना बुरा माना जाता है किन्तु गेरूए वस्त्र और त्रिपुण्डचिमटा धारण कर संन्यासी का रूप धारणकर भिक्षा मांगने वाले व्यक्ति को आदर की द ष्टि से देखा जाता है स्पष्टतः जैसे भीख का ही संस्कृत रूप संन्यास है। ठीक उसी प्रकार मन में छिपी उद्दाम वासना का ही संस्क त रूप प्रेम है, वासना शब्द घ नित है किन्तु उसे प्रेम का नाम दे दिए जाने से वह सम्मानीय बन जाने का भ्रम पैदा करता है वैवाहिक जीवन में, अपने सच्चे स्वरूप में कम मात्र में रहता है और कुक्त विलास में तो उसके अस्तित्व का पता नही चलता, अर्थात् प्रेम का विलास से कोई सम्बन्ध नही है। मनुष्य को सच्चा आनन्द केवल दूसरों की सेवा करने में ही प्राप्त होता है। सेवा द्वारा ही व्यक्ति अधिकर प्राप्त करता है, सेवा की भावना से ही शक्ति उत्पन्न होती है। यदि दामपत्य जीवन में पति-पत्नी परस्पर सेवा की भावना को लेकर चलें तो उनमें जीवन पर्यन्त स्नेह बना रह सकता है। बडे-बडे संकट पड़ने पर भी वे इस जीवन को विछिन्न करने की कल्पना भी मन में नहीं ला सकेंगे क्योंकि सेवा द्वारा उन दोनों का आत्मिक सम्बन्ध निरन्तर प्रगाढ़ होता चला जाता हैं परन्तु जिस दाम्पत्य -जीवन में सेवा भाव का अभाव हो जाता है।, वहाँ न तो परस्पर विश्वास स्थायी रहता है। और न आपस में सहानुभूति रहती है। इसीलिए वहां तलाक की स्थिति आने में देर नही लगती। निष्कर्ष यही निकला कि सेवा भाव द्वारा ही दाम्पत्य जीवन सुखी रह सकता है। अधिकार या समानता का प्रश्न उठाने से उसमे व्याघात उत्पन्न हो जाता है। अतः पश्चिम के अंधानुकरण पर प्रेम-विवाह त्याज्य है। वह पति-पत्नी में अविश्वास को पैदा करता है। जबकि पारम्परिक विवाह में विश्वास, सुख ओर जीवन भर साथ रहने का आनन्द है।

**विशेषः-**

1. मेहता विवाद के पहले प्रेम को उन्मुक्त विलास की संज्ञा देते है। उनके विचार में दाम्पत्य सूत्र में बंधने के बाद ही प्रेम का अभयुक्ष्य होता है और यहीं स्थयी होता है।
2. वे वैवाहिक जीवन की सफलता का मुख्य आधार सेवा भावना को ही मानते है। इस सेवाव्रत से ही सम्पति एक-दुसरे के प्रति के प्रति अधिकार और बल प्राप्त करते हैं तथा जीवन संघर्षो को हंसते-हंसते झेल सकने में समर्थ होते है।
3. भाषा सरलए एवं प्रवाहमयी है।

**35. जिसे संसार दुःख कहता है, वहा कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि ये विभूतियां संसार को चाहे कितना ही मोहिता कर लें, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं उसके माद और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएं और मिटी हुई स्म तियाँ और टूटे हुए ह्रदय के आंसू है। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है।, कवि उनमें लय हो जाता है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांस उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यास 'गोदान' से उद्ध्य त है। खन्नी की पत्नी गोबिन्दी पारिवारिक कलह के कारण घर छोड़कर चली जाती है। वह चिन्तामग्न मुद्रा में चिड़ियाघर के एक मैदान में बैठी है। तभी डॉ० मेहता से उसकी भेंट होती है । गोबिन्दी मेहता की द ष्टि में एक आदर्श नारी है। उसका पतिव्रत और सहिष्णुता ही उनकी द ष्टि में उसे एक आदर्श नारी बनाते है। मेहता से अपनी प्रशंसा सुनकर गोबिन्दी विनोद करते हए कहती है कि आपको दार्शनिक होने की अपेक्षा कवि होना चाहिए था। मेहता दर्शना को कविता तक पहुंचने का एक पड़ाव मानते है। और कवि की स्थिति एवं जीवन के प्रति उसके द ष्टिकोण की व्याख्या करते हुए कहते है।

**व्याख्याः-** संसार जिन परिस्थितियों और कठिनाइयों को दुःख का कारण समझाता हैं, वही वास्तम में कवि के लिए अपरिमित सुख का कारण बनती है। इसका मुख्य कारण यह है कि कवि को वेदना में ही सुख की सहज अनुभूति होती ह। इससी वेदना से प्रेरणा लेकर व कविता का स जना करता है। सांसारिक लोगों की भांति वह धन, ऐश्वर्य, रूप, बल, विद्या एवं बुद्धि की विभुतियों से विमुग्ध नहीं होता, इनके प्रति उसके मन में तनिक भी आकर्षण नहीं होता क्योंकि संसार के भौतिक सुख उसे सुख नहीं पहुंचा सकते इसलिए इनके प्रति उसके मन में विरक्ति का भाव रहता है। चूंकि उसका ह्रदय करूणा और वेदना से आपूरित रहता है उसकी प्रसन्नता और आकर्षण तो वेदनपान और करूणा के प्रति ही होतो है। अत प्त कामनांए और भूली-बिसरी स्म तियां उसमें आशा की ज्योति जगाती है, टूटे हुए ह्रदय के आंसू उसकी प्रसन्नता का आलम्बन बनते हैं। उसकी कविता का

आधार यही संवदेनात्मक और कारूणिक विभूतियां होती है। जिस दिन उसने अपने इस आलम्बन की उपेक्षा करनी प्रारम्भ की उस दिन वह कवि न रहकर उन्हीं सासांरिक मनुष्यों की कोटि में आ जायेगा। दर्शनशस्त्र तो केवल जीवन के सुख-दुःखों और रहस्यों का विश्लेषण करता है। परन्तु कवि इन अबुझ रहस्यों के साथ तादात्मय स्थापित कर लेता है, उन्हीं में स्वयं को लीन कर देता है। वे उसके जीवन के अविभाज्य अंग बन जाते है। यही गुण उसे साधारण मनुष्य से विशिष्ट बनाते है।

**विशेषः-**

1. मेहता का यह द ढ़ मत है कि साधारण मनुष्यों से कवि भिन्न मति होता है। उसके लिए सांसारिक सुख ऐश्वर्य वैभव विलास और विद्या-बुद्धि निरर्थक है, इनकी अपेक्षा अभाव और दुख उसकी वेदना को गहरी अर्थवत्ता और प्राणवत्ता प्रदान करते है। और यही उसकी कविता के प्रेरण स्रोत बनते है।

2. कवि के लिए तीन ही वस्तुएँ आकर्षण और मोद-प्रदायक होती है-बुझी हुई आशएं, मिटी हुई स्म तियाँ और टुटे हुए हृदय के आंसू। इन तीनों से ही साधारण मनुष्य दुखी होता है किन्तु कवि के लिए इनमें इतना आकर्षण होता है कि वह इनमें लीन हो जाता है। उसका यह तादात्म्य भाव ही उसे कविता -स जन को प्रेरित करता है।

3. वेदना कवि के लिए कितनी अपरिहायं है, स्वयं एक कवि के शब्दों में देखिए- वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा मान। निकलकर नयनों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान।' - कविवर पंत

**36. अगर यह व्यवहार रिश्वत नहीं है तो रिश्वत क्या है? जरा मुझे समझा दीजिए। क्या आप समझते है।, आपको छोड़ कर और सभी गधे हैं जो निःस्वार्थ भाव से आपका घाटा पूरा करते है। निकालिए अपनी बही और बतलाइए अतः तक आपको मेरी रियासत से कितना मिल चुका हैं मुझे विश्वास है। हजारों की रकम निकलेगी, अगर आपको स्वदेशी-स्वदेशी चिल्लाकर विदेशी दवाओं और वस्तुओं का विज्ञापन छापने में शर्म नहीं आती तो में अपने आसाकतमियों डझंड, तावान और जुर्माना लेते शरमाऊ?**

**यह न समझिए कि आप ही किसानों के हित का बीड़ा उठाए हुए है। मुझे किसानों के साथ जलना-मरना है, मुझसे बढ़कर दूसरा उनका हितेच्छु नही हो सकता, लेकिन मेरी गुजर कैसे हो। अफसरों को दावतें कहां से दूँ, सरकारी चन्दे कहां से दूँ खानदान के सैकडों आदमियों की जरूरतें कैसे पूरी करू । मेरे घर का क्या खर्च है, यह शायद आप जानते हैं। तो क्या मेरे घर में रूपये फलते हैं? आयेगा तो आसामियों ही के घर से।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'गोदान' उपन्यास से उद्ध्य त है। गोबर भोला अहीर की बाल-विधवा बेटी झुनिया को अपने घर छोड़कर शहर भाग जाता है। नोखेराम, पटेश्वरी , झिंगुरी सिंह दाताहीन आदि होरी पर सौ रूपए नकद और तीस मन अनाज डांड लगाते हैं। और सारी रकम यूं ही हजम कर जाते है। राय साहब अमर पाल सिंह को जब इस बात का पता लगता है तो वे नोखराम को बुलाकार जवाब-तलब करते ह। और राय साहब उस जुर्माने को पंचों से स्वयं हडप लेने की कोशिश में है। झिंगुरी सिंह और नोखेराम दोनों राय साहब की इस करतूत को संपादक ओंकारनाथ को इस आशय से भिजवाते हैं कि यदि संपादक ओंकारनाथ अपने पत्र में राय साहब के कारनामों को छपवा दें तो डनकी असलियत जनता के सामने आ जाएगी। संपादक ओंकारनाथ इस पत्र को छपवाने से पहले राय साहब को बताना चाहता है। राय साहब नही चाहते कि यह खबर छपे और संपादक ओंकारनाथ कहता है कि मेरा यह कर्त्तव्य है कि मै। इस खबर को 'बिजली' पत्र में प्रकाशित करूं। इस पर राय साहब ओंकारनाथ को फटकारते हुए कहते हैं।

**व्याख्याः-** मैंने तुम्हारे पत्र को चलाने के लिए क्या नहीं किया? तुम्हारे पत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए मैं तम्हें पांच गुना चंदा देता हूँ वह इसलिए कि तुम्हारा पत्र मेरा गुलाम बना रहे। वह इसलिए देता हूँ कि आपका मुह बंद रहें इसके साथ-साथ हर तिमाही पर जब-जब तुम घाटे की अपील निकालते हो तब मै कुछ न कुछ मदद अवश्य करता हूँ दिवाली-दशहरे और होली पर आपके यहां बैना भेजता हूँ। साल में पच्चीस बार आपकी दावत करता हूँ। यह आपके लिए दी जाने वाली रिश्वत नहीं तो और क्या है। अगर आप यह कहते है कि मै। कर्त्तव्य के नाम पर उस खबर को समाचार पत्र में छपवाने के लिए बाघ्य हूँ तो कर्त्तव्य और रिश्वत दानों साथ-साथ नहीं चल सकते। क्या आप जो मुझसे लेते है। वह रिश्वत नही है। वे कहते है कि अगर यह व्यवहार रिश्वत नही है तो रिश्वत क्या है। जरा मुझे समझाइयें तो सही। क्या आप यह जानते है कि जो-जो व्यक्ति

आपके पत्र के घाटे को पूरा करने के लिए आपकी मदद करते है। उनमें सबसे ऊपर मेरा नाम है। आप अपनी बही निकाल कर देखें कि मेरी ओर से आपको हजारों की रकम मिल चुकी है। राय साहब आगे फिर ओंकारनाथ से कहते है कि आप नारे तो लगाते है, स्वदेशी के आया सिद्धान्त और आदर्श की बात करके स्वदेशी वस्तुओं को उपयोग में लाने के लिए लेख लिखते है और साथ ही दूसरी ओर अपने अखबार में विदेशी वस्तुओं दवाओं का विज्ञापन छापते हैं क्या ऐसा करते हुए आपका शर्म नही आती। क्या आपकी करनी ओर कथनी में अंतर नही है। यदि आप ऐसा करके भी सिद्धान्तवादी बनते हैं तो फिर मैं अपने आसमियों से डांड, तावान और जर्माना लेते हुए क्यों शरमाऊ? आप ये न समझिए कि किसानों के बारें में अपने अखबार में दो-चार लेख लिखकर आप उनके सबसे बडे हितैषी हैं मै। जमींदार हूँ और जमींदार उनके सबसे बडें हितैषी हैं जमींदार होने के नाते मुझे अपने किसानों के साथ जलना और मरना है। मुझसे बढ़कर किसानों का दुसरा हितैषी और कोई  नहीं हो सकता। लेकिन मेरी गुजर कैसे हो? यदि मैं ऐसा नही करू तो अफसरों  को दावतें कहाँ से दू ? सरकारी चंदे कहा से दू? मेरे खानदान में सैकडें आदमी है, उनकी जरूरतें कैसे पूरी करू? रियासत के संचालन के लिए मेरे घर के खर्च क्या है। शायद आप जानते हैं तो क्या मेरे घर में रूपए फलते हैं ? ये सब रूपए आएंगे तो आसमियों के घर से ही।

**विशेषः-**

1. तत्कालीन समाज की व्यवस्था की ओर संकेत जिसमें किसानों का शोषण किया जाता था।
2. राय साहब अमरपाल सिंह की शोषक व ति का परिचय यमिलता है।
3. अखबारों के सम्पादकों की पोल खोली गई है।
4. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

**37. आपके पास जमीन नहीं, जायदाद नहीं, मर्यादा का ढमेला नहीं, आप निर्भीक हो सकते हैं,  लेकिन आप भी दुम दबाये बैठे रहते हैं। आपको कुछ खबर है, अदालतों में कितनी रिश्वतें चल रही है। कितनें गरीबों का खून हो रहा है, कितनी देवियां भ्रष्ट हो रही हैं। है बबुता लिखने का? सामग्री मैं देता हूँ, प्रमाण सहित।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचन्द द्वारा  लिखित 'गोदान' उपन्यास से अवतरित है। इसमें  बताया गया है कि बिजली के पत्र के सम्पादक ओंकारनाथ राय साहब अमरपालसिंह ने बेलारी गांव के पंचों द्वारा प्राप्त(होरी से)  डांड को हड़प लिया है। इसे वे पत्र में प्रकाशित करना चाहते है। राय साहब ओंकार नाथ से कह रहे है। -

**व्याख्याः-** आपके पास जमीन नहीं है, जायदात नहीं है और जैसे हम जमींदारों को मार्यादा पालन के लिए परम्पराओं का निर्वाह करना पडता है। वह झमेला भी नहीं है। जिस आदमी के पास कुछ नहीं हो वह सिद्धान्तवादी हो सकता है क्योंकि फक्कड आदमी के पास खाने के लिए कुछ है ही नहीं । अतः आपका निर्भीक होना कोई बडी बात नहीं हैं। यदि आप निडर होकर कोई बात कहते हैं तो आपसे नाराज होकर कोई छीन क्या लेगा? फक्कड आदमी का कोई क्या बिगाड़ सकता है? अतः आपका सिद्धान्तवादी होना कोई महत्व नहीं रखता। लेकिन मुझे आश्चर्य यह है कि आप बातें तो करते है। सिद्धान्तवादी होने की अपने अखबार में सच्चाईयों के प्रकट करने की लेकिन वास्ततिकता यह है कि आप निर्भक नहीं है। सच्ची बातों को आप जानते हुए भी नहीं लिखतें है और दुम दबायें बैठे रहते है। उदाहरण के लिए, आपको इस बात का पता है कि न्यायालयों में कितनी रिश्वतें चल रही है ? कितने गरीबों का खून हो रहा है।, कितनी देवियों के साथ बलात्कार होता है ? कितनी ही लडकियों का अपहरण कर बेच दिया जाता है? ये बाते जानते हुए भी आप अपने अखबार में इस बूराई के खिलाफ लिखते नहीं हैं। आपमें हिम्मत है। लिखने की? इन सब के खिलाफ जो बातें मैने आपको बतायी है मैं आपको प्रमाण सहित सामग्री देता हू, आप लिखेंगे? यदि वास्तव में अपने आपको सिद्धान्तवादी, कर्त्तव्यपरायण पत्रकार मानते है। और सच्चाई को उजागर करना चाहते है। तो फिर आप इन सब बातों को जिन्हें आप जानते हें, इनके खिलाफ लिखते क्यों नहीं और यदि आप यह कहते हैं कि इन सब बुराईयों के सम्बन्ध में आपके पास कोई प्रमाण नहीं हे तो प्रमाण सहित सामग्री मैं तुम्हें देता हूं, हिम्मत है आपमें लिखने की? आप लिख नहीं पायेंगे क्योकि आपके सिद्धान्त खोखले है, आप मुझे ब्लैकमेल करना चाहते है। इसलिए ऐसी बातें कर रही है।

**विशेषः-**

1. तत्कालीन समाज की यथार्थ स्थिति का वर्णन है।
2. सम्पादको की करनी और कथनी के अंतर की ओर संकेत किया गया है।
3. वर्णनात्मक शैली है।
4. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

38. **मैं प्रक ति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राक तिक रूप में देखना चाहता हूँ। जो प्रसन्न होकर हंसता है, दुःखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते है। जोरोने को कमजोरी और हंसने को हलकापन समझते हैं इनमें मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीडा है, सरल, स्वच्छन्द जहां कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं । मैं भूत की चिन्ता नही करता, भविष्य की परवाह नहीं करता। मेरे लिए वर्तमन ही सब कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है।, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और क्षीण हो जीती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रूढ़ियों और सामर्थ्य ही नहीं रहा जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव-धर्म को पूरा करने में लगनी चाहिए थी, सहयोग में , भाइचारे में , वह पुरानी अदावतों बदला लेने और बाप-दादों का ऋण चुकाने की भेंट हो जाती है। और जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हंसी आती है।**

**वह मोक्ष और उपसना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वही ईश्वर है और मुस्कुराहट न आये, आंखों में आँसू न आये। मै। कहता हूं अगर तुम हँस नहीं सकते और रो नही सकते, तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं है, कोल्हू है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'गोदान' उपन्यास से उद्ध्य त है। इसमें गोबिन्दी मेहता को बातों-बोतों मे बताती कि ग ह-कलह और उसकी मानसिक अशान्ति का प्रमुख कारण मालती है। मालती के प्रति आकर्षण के कारण ही खन्ना गोबिन्दी की निरन्तर उपेक्षा करतेहै। गोबिन्दी इसीलिए मेहता से अनुरोध करती है कि किसी प्रकार वह मालती से उसका पीछा छुड़ा दे। पुनः वह दुःख प्रकट करते हुए कहती है कि अनायास हीउसने उनके ऊपर यह भारी बोझ डालदिया है, यह सुनते ही मेहता अपनीसद्‌भावना व्यक्त करते हुए जीवन के प्रति अपने द ष्टिकोण की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

**व्याख्याः-** मैं प्रक ति का उसके नैसर्गिक रूप में देखने और अनुभव करने में विश्वास रात हूँ इस अर्थ में आप मुझे प्रक ति का पुजारी कह सकती है। देखना चाहत हूं जैसा वास्तव में वह मनुष्य का वास्तविक रूप यही है कि प्रसन्नता के क्षणों में वह जी खोलकर हंसता है और जब किसी घटना से उसका हृदय दुखी होता है तो वह फूट-फूटकर रोता है, साथ ही जब उसे क्रोध आता है तो घनीभूत आदेश के कारण वह हत्या करने में भी नहीं हिचकिचाता-जीवन का यही नैसर्गिक रूप है। जो व्यक्ति दुख में रोते नही और सुख में दिल खेलकर हंस नही सकते, उनका यह दमन-कार्य तिथ्या है। जो व्यक्ति रोने को दुर्बलता और हंसने को सतद्‌दीपन समझते हैं, उनके साथ मेरा निर्वाह नही हो सकता। क्योंकि यह सब कार्य अप्राक तिक है। मेरे लिए हंसने-खेलने का नाम ही जीवन है, जो अत्यन्त सरल हो और जिसमें प्रसन्नता स्वछन्द रूप से प्रवाहित होती रहें। ऐस सरल और नैसर्गिक जीवन में अशुभ विचार घ णित भावनाएं, ईर्ष्या व जलन की भावनाएं उभर ही नहीं सकती। मैं वर्तमान को ही सब कुछ समझता हूँ। जो बीत चुका है उसके बारे में सोचना क्या ओर जो आने वाला कल है उसकी चिन्ता कैसी ! मै जानता हूँ कि भविष्य सदैव अनिश्चित होता है इसलिए उसके बार में सोचना और चिन्ता करना व्यर्थ है क्योंकि चिन्ता ही मनुष्य को कायर बनाती है। और जो बीत गया उस भुतकाल की चिन्ताओं का भार हमें संघषों से विचलित कर देता है।, निराश बना देता है और इस प्रकार हमारी प्रेरणाओं की और हमारे उत्साह की कमर ही तोड़ देता है। इसलिए मनुष्य को केवल वर्तमान पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए। उसके जीवन की शक्ति इतनी कम है कि यदि उसको भूतकाल से लेकर भविष्यकाल तक फैला दिया जाएगा, तो वह और भी अधिक क्षीण हो जाएगी। वर्तमान में भूतकाल की रूढियों और अन्धविश्वासों के जाल मे उलझने से मनुष्य की शक्ति क्षीण होती है और वह निरूत्साह हो जाता है मनुष्य की जो शक्ति मानव-धर्म की उन्नति,

पारस्परिक सहयोग भाई-चारा आदि के विकास में लगनी चाहिए, वह बाप-दादों के ऋण चुकाने एवं पुरानी शत्रुता का प्रतिकार करने में क्षय हो जाती हैं ईश्वर और मोक्ष के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए मेहता कहते है कि हमारे समाज योग्य हैं हमारी उपासना और मोक्ष में आज अहंकार की पराकाष्ठा हो गयी है और उसके कारण मानवता समाप्त होती चली जा रही है। वास्तव में जीवन में निहित सच्चा प्रेम, उदार चेतना, निस्प ह क्रीड़ा और प्रसन्ना ही प्रकारान्तर ईश्वर है। जीवन को सुखमय बनाना ही ईश्वर की सच्ची उपासना हैं ज्ञानी निग्रह और कठोर बने रहने की बात कहता है किन्तु मेरी द ष्टि में मनुष्य का हंसना और रोना एक प्राक तिक क्रिया है यह ऐसा स्वाभाविक गुण है जिसे उसके जीवन से अलग नही किया जा सकता। जो प्रसन्नता के क्षणों में हंस नहीं सकता, वह मनुष्य न होकर शुष्क पत्थर है। ऐसा स्वाभाविक गुण है जिसे उसके जीवन से अलग नही ं किया जा सकता। जो प्रसन्ना के क्षणें में हंस नही ं सकता, वह मनुष्य ने होकर शुष्क पत्थर है। ऐसा ज्ञान जो मनुष्यता का ही दमन करे, ज्ञान न होकर एक ऐसा कोल्ह है जो मनुष्यता को पीस डालना चाहता है।

**विशेषः-**

1. मेहता जीवन को उसकी वास्तविक रूप में देखने और जीने के पक्षघर हैं उन्हें क त्रिमता से घ णा हैं वे मनुष्य उसके सहज एवं स्वाभाविक रूप में ही देखना चाहते है। उसे किसी क त्रिमता से आछन्न रूप में नहीं ।
2. मेहता ने अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और परम्पराओं का विराध करते हुए ईश्वर, मोक्ष, ज्ञान एवं मान-जीवन की उपयोगितावादी द ष्टिकोण से बड़ी सटीक एवं यथार्थ व्याख्या यहां पर की है। मेहता के रूप में प्रेमचन्द यहाँ साकार हो उठे।
3. दुःख और सुख का दमन करने, रोन को कमजोरी और हंसने कोहल्कापना समझने वालेआधुनिक समाजियों पर यहां करारा व्यंग्य किया गया है। आज का हमारा समाज प्रदर्शन-प्रिय हो गया है। अन्दर से आप कितनी भी दुखी हों, आपके होठों पर हंसी रहनी चाहिए, घर में खाने को न हो किन्तु बाहर आप अमीरी ठाठ से रहें, यही आज का सामाजिक लोकाचार, शिष्टाचार और जवन-दर्शन बन गया है।, जिसमें वास्तविकता का कोई महत्व नही है।
4. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

**39. उस घर की आपने स ष्टि की है, उसके प्राणियों की स ष्टि की है और प्राण जैसे देह का संचालन करता है।, प्राण निकल जाये, तो देह की क्या गति होगी? मात त्व महान गौरव का पद है देवी जी! और गौरव के पद में कहां अपमान और धिक्कार, और तिरस्कार नहीं मिला? माता का काम जीवन-दान देना है। जिसके हाथों में इतनी अतुल शक्ति है, उसे इसकी क्या परवाह कि कौन उससे रूठता है, कौन गिड़ता है। प्राण के बिना जैसे देह नही रह सकता, उसी तरह प्राण का भी देह ही सबसे उपयुक्त स्थान है।**

संदर्भः- प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'गोदान' उपन्यास से उद्द्य त है। इसमें बताय गया है कि पति से तिरस्क त होकर गोबिन्दी घर छोड़ने का निष्चय करके ही चिड़िया घर के मैदान में बैठकर भविष्य की चिन्ता कर रही थी। डॉ. ए मेहता उसे सान्त्वना देने लगते है । जब अन्ततः उन्होंने गोबिन्दी से घर चलने को कहा की श्री है। आपके बिना वह घर सूना हो जाएगा। नारी के मात्त्व और त्याग के विषय में समझातें हुए कहते है।

व्याख्याः-मेहता का कहना है कि आप अपने घर कोकदापि नहीं त्याग सकती है क्योंकि आपके हाथो ही उसकी स ष्टि हुई है। आपके आने के पश्चात् ही उसका निर्माण हुआ है। इतना ही नहीं, वहाँ के प्राणियों की स ष्टि भी आपके ही द्वारा हुई है, वहाँ का एक-एक प्राणी आपका ही आंश हैं जिस प्रकार सारे शरीर की क्रियाएं प्राणों द्वारा संचालित होती है और अगर वही प्राण निकल जायं तो शरीर निर्जीव हो जाएगा, उसी प्रकार आपके ग ह-त्याग करने से वह घर भी प्राणहीन हो जाएगा। मेहता पुनः कहते है कि संसार में सर्वाधिक गौरवमय और महान पद मात त्व है, जिसे सामने सब सम्मानित पद सम्मानित पद फीके पड़ जाते है। प्रत्येक गौरवमय पद व मान पाने के लिए पहले अपमान, धिक्कार और तिरस्कार सहना पड़ता है। ऊँचा पद पाने के लिए पहले कठिनाईयां तो सहनी ही पड़ती है। फिर मां का कार्य तो प्राणियों में, अपनी स ष्टि में, प्राण फुंकना है, उन्हे जीवन प्रदान करना है। जो इतनी अपरिमित और अतुल शक्ति तथा सम्पति की स्वामिनी है, उसे इसकी परवह नहीं करनी चाहिए कि कौन उससे रूष्ट रहता है या कौन उसकी प्रशंसा करता है। जिस प्रकार प्राणों के अभाव में शरीर का कोई अस्तित्व नहीं,

वह महत्वहीन और निर्जीव है, उसी प्रकार प्राणों का भी शरीर ही उपयुक्त स्थान है। क्योकि उसका महत्व उसी में है। इसी प्रकार आपके लिए भी घर ही सबसे उपयुक्त स्थान है, आपके बिना वह घर निर्जीव शरीर की भांति है।

**विशेषः-**

1. मेहता यहां पर एक आदर्श नारी के कर्त्तव्य का तर्क संगत महत्व प्रतिपादित कर रहे है। स्वयं प्रेमचंद जी भी नारी का सर्वाधिक उचित स्थान घर को ही मानते है। बाहर की दुनिया उनकी द ष्टि में नारी के लिए अनुपयुक्त है।

2. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

**40. उन्होंने संसार को बाहर से देखा था और उसे मक्करी और फरेब से ही भरा समझते थे। जिधर देखते थे, उधर ही बुराइयां नजर आती थीं, मगर समाज में जब गहराई में जाकर देखा, तो उन्हें मालूम हुआ कि इन बुराइयों के नीचे त्याग भी है, प्रेम भी है, साहस भी है, धैर्य भी है । मगर यह भी देखा कि वह विभूतियां है जरूर, पर दुर्लभ है और इस शंका और सन्देह में जब मालती का अन्धकर से निलता हुआ देवी-रूप उन्हें नजर आया, तब वह उसकी ओर उतावलेपन के साथ, सारा धैर्य खोकर टूटे और चाहा कि उसे ऐसे जतन से छिपाकर रखें कि किसी दूसरे की आंख भी उस पर न पड़। यह ध्यान न रहा कि यह मोह ही विनाश की जड़ है।**

**संदभः** व्याख्या हेतु प्रस्तावित प्रस्तुत अनुच्छेद मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखत उपन्यास 'गोदान' से उद्ध त है प्रो. मेहता को मालती अपने यहां ले गयी है और उनकी सारी व्यावरथा मालती ही देखती है। मेहता मालती के घर जाकर कैसा अनुभव करते हैं, उस सम्बन्ध में उपन्यासकार लिखते है कि-

**व्याख्याः-** मेहता ने अब तक संसार को बाहर से देखा था। वे दार्शनिक थे और अविवाहित थे। संसार के यथार्थ तथा धोखेबाजियों से भरा हुआ समझते थे। उन्होंने अब तक शोषक देखे थे। अतः मेहता को बुराइयां ही बुराइयां नजर आती थी। किन्तु अब वे मालती के घर में रहकर गहराई में जाकर महसूस करने लगे कि इन बुराइयों के नीचे त्याग भी है, प्रेम भी है, साहस भी है और धैर्य भी है। उन्हें पता लगा कि त्याग और प्रेम, साहस सहनशीलता संसार की इन बुराइयों के नीचे छिपे हैं। पर ये गुण कुछेक व्यक्तियों में ही मिलते हैं। उन्हें वही मालती जो कभी तितली नजर आती थी, अब मधुमक्खी प्रतीत होने लगी। जिस मालती को वे अपनी जीवन-संगिनी बनाने के अनुरूप नहीं समझते थे उसी मालती के अन्दर से उन्हें मालती का देवी रूप नजर आया। मेहता अब चाहने लगे थे कि मालती केवल उनकी हो। वे उसे ऐसे जतन से छिपाकर रख लें कि किसी दूसरे की नजर मालती पर न पड़े। प्रेमचन्द कहते हैं कि मेहता को यह भी ध्यान नहीं रहा कि व्यक्ति के अन्दर मोह की भावना ही समस्त दुःखों की जड़ है अर्थात् अब मेहता को मालती के प्रति मोह हो गया था।

**विशेषः-**

1. प्रेमचन्द का संसार के प्रति द ष्टिकोण का पता चलता है।

2. मालती के तितली रूप की अपेक्षा मधुमक्खी रूप की प्रशंसा करते हुए उसके इसी रूप की यहां चर्चा की है।

3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

4. मेहता का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

**41. मेहता का जीवन अब तक स्वाध्याय और चिन्तन में गुजरा था और सब कुछ कर चुकने के बाद और आत्मवाद तथा अनात्मवाद की खूब छान-बीन कर लेने पर वह इसी तत्व पर पहुंच जाते थे कि प्रव त्ति और निव त्ति दोनों के बीच में जो सेवा-मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहें, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊंचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था। यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को प्रकट न करते थे, इसलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असम्भव समझते थे। पर यह धारणा उनके मन में द ढ़ हो गयी थी कि प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुःख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है। उनका ख्याल था कि मनुरो ने अपने अहंकार में अपने को इतना महान बना लिया है कि उसके हर काम की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है। इसी तरह टिड्डियां भी ईश्वर ही को उत्तरदायी**

**ठहराती होगी, जो अपने मार्ग में समुद्र आ जाने पर अरबों की संख्या में नष्ट हो जाती हैं। मगर ईश्वर के यह विधान इतने अज्ञेय हैं कि मनुष्य की समझ में नहीं आते, तो उन्हें मानने से ही मनुष्य को क्या सन्तोष मिल सकता है। ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनकी समझ में आता था और वह था मानव जाति की एकता। एकात्मवाद या सर्वात्मवाद या अहिंसा तत्व को यह आध्यात्मिक द ष्टि से नहीं, भौतिक द ष्टि से ही देखते थे, यद्यपि इन तत्वों का इतिहास के किसी काल में भी आधिपत्य नहीं रहा,फिर भी मनुष्य-जाति के सांस्क तिक विकास में उनका स्थान बड़े महत्व का है।**

**संदर्भः** प्रस्तुत गद्यांश उपन्सासकार सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी अमरक ति 'गोदान' से अवतरित है। मेहता के व्यक्तित्व के विषय में उपन्यास के विषय में उपन्यासकार कहते है-

**व्याख्याः-** मेहता ने अब तक के अपने जीवन का अधिकांश भाग अध्ययन और चिंतन में गुजारा था। अध्ययन और मनन के पश्चात् आत्मा है कि नहीं ईश्वर है या नहीं है, इन सब की खोज व छानबीन करने के उपरान्त वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि वैराग्य और संसार में रहकर संसार के प्रति आसक्ति इन दो मार्गों के बीच में से जो सेवा मार्ग है वही सर्वश्रेष्ठ है। चाहे उसे कर्मयोग का नाम दिया जाए या सेवामार्ग का। यही जीवन को सार्थक बना सकता है। संसार के प्राणियों के कल्याण की कामना ही जीवन को ऊंचा और पवित्र बना सकती है। इसके अतिरिक्त और किसी ईश्वर में उनका विश्वास न था। यद्यपि मेहता स्पष्ट रूप में यह नहीं कहते थे कि वे ईश्वर को नहीं मानते अपनी इस नास्तिकता को वे इसलिए प्रकट नहीं करते थे कि इस विषय में वे निश्चित रूप से कह पाने में असमर्थ थे कि ईश्वर है या नहीं, परन्तु यह बात वे अच्छी तरह समझ चुके थे कि संसार में प्रणियों का जन्म, उनकी म त्यु, उन्हें मिलने वाला सुख और दुःख पाप और पुण्य में कोई ईश्वरीय नियम नहीं है। मेहता का विचार था कि इसके हर कार्य की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है।

इस सम्बन्ध में टिड्डियों का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जब टिडिड्यों का दल एक स्थान से उड़कर दूसरे स्थान की ओर चलता है तो रास्ते में समुद्र के आ जाने पर अरबों की संख्या में समुद्र में गिरकर मर जाती है। क्या टिड्डियों को भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ने की प्रेरणा ईश्वर से ही मिली है? परन्तु इस प्रकार के कार्य ऐसे हैं जिनके रहस्यों को मनुष्य सुलझाने में असमर्थ हैं। ईश्वर की कल्पना का केवल एक ही प्रयोजन मेहता की समय में आता था और वह प्रयोजन मानकर इस उद्देश्य को सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं कि हम एक ही पिता की संतान होने के नाते सब एक परिवार के सदस्य हैं। इसी प्रकार से मानव जाति स्वयं को एक पिता परमेश्वर की संतान मान कर एकता के सूत्र में बंध जाती है। मेहता एक ही आत्मा तथा सभी आत्मा परमात्मा का अंश है या अहिंसा आदि तत्व को आध्यात्मिक द ष्टि से न देखकर भौतिक द ष्टि से देखते थे। यद्यपि इन तत्वों का इतिहास के किसी भी काल में प्रभुत्व नहीं रहा फिर भी मनुष्य जाति के सांस्क तिक विकास में उनका स्थान बहुत ही महत्व का है।

**विशेषः-**

1. प्रव त्ति-निव त्ति इन दोनों मार्गों की अपेक्षा सेवामार्ग को प्रधानता दी गई हैं।
2. प्रेमचन्द की तरह ही गांधी जी का भी विचार था कि मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है।

42. **अज्ञान की भांति ज्ञान भी सरल, निष्कपट और सुनहले देखने वाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना द ढ़, इतना सजीव होता है कि वह इसके विरूद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। वह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजे और दांतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श संसार बनाकर उसकों आदर्श मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न रहता है। यथार्थता कितनी अगम्य, कितनी दुर्बोध कितनी अप्राक तिक है, उसकी ओर विचार करना उसके लिए मुश्किल हो जाता है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी अमरक ति 'गोदान' से उद्ध त है।मेहता मालती के साथ होरी के गांव में गए हुए हैं और वहां बाहर चारपाई पर बैठे युवकों की कुश्ती देख रहे हैं। वे सोचते हैं कि ऐसे निश्छल ग्रामीण बालकों के साथ नगर के लोग अमानुषिक व्यवहार क्यों करते हैं चूंकि मेहता दार्शनिक है, इसलिए स्वभावतः उनकी चिन्तन-बुद्धि इस प्रव त्ति के मूल में छिपे अज्ञान की ओर चली जाती है और वे सोचने लगते हैं-

**व्याख्याः-** अज्ञान की भांति ज्ञान से लिपटा मनुष्य भी यथार्थ से अनभिज्ञ रहता है और अयथार्थ स्वप्नों के संसार में ही डूबा रहता है। अज्ञानी व्यक्ति जो स्वप्न देखता है उनका आधार यथार्थ हो होता है इसलिए उनमें सरलता और निष्कपटता रहती है। इसके विपरीत ज्ञानी व्यक्ति के स्वप्न सरलता और निष्कपटता से युक्त होते हुए भी यथार्थ से दूर होते हैं। वह आदर्शवाद के आग्रह में यथार्थ की विभीषिका से नेत्र मूंद लेता है। इसी कारण जहां वह देखता है कि उसके आदर्शों के विरूद्ध कार्य हो रहा है, वहीं वह उस कार्य का अमानवीय घोषित कर देता है। उसे आदर्श लोक में विचरण करते हुए यथार्थ की विभीषिकाएं दिखायी ही नहीं देती हैं। वह इसकी कल्पना भी नहीं कर पाता की भेड़ियां अपनी हिंसक प्रव त्ति के कारण भेड़ों की निरीहता को कभी भी सहानुभूति की द ष्टि से नहीं देख सकता। वह अपनी प्रक त हिंसाव त्ति के कारण पंजों और दातों से चीरकर ही उनकी निरीहता का उत्तर देता है। यथार्थ का यह रूप आदर्शवादी मानवता के सर्वथा विपरीत पड़ता है। आदर्शवाद के मोह में डूबा हुआ व्यक्ति यथार्थ कठिन, कठोर, अगम्य प्राक तिक रूप को समझ ही नहीं पाता है। यही कारण है कि नगर के रहने वाले शोषक व्यक्ति जो किसी प्रकार भेड़ियों से कम नहीं है, वे ग्रामीण व्यक्तियों की भेड़ों जैसी निरीहता को सहानुभूति से कैसे देख सकते हैं क्योंकि उनकी प्रव ति ही उनका शोषण करने की है।

**विशेषः-**

1. नागर एवं ग्रामीण व्यक्तियों की क्रमशः भेड़िये और भेड़ों के रूप में तुलना कर के प्रेमचन्द जी ने दोनों समाजों की भिन्न प्रक ति का बड़ा सुन्दर चित्रण यहां पर किया है।
2. इस कथन से मेहता के विचारक रूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है तथा उनके चारित्रिक गुण दयालुता का रूप भी स्पष्ट हो जाता है।
3. मेहता की ग्रामीणों के प्रति दया और शोषकों के प्रति आक्रोश के भाव व्यक्त हुए है।
4. व्याख्यात्मक शैली है।
5. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

**43. प्रेम जैसी निर्मम वस्तु क्या भय से बांधकर रखी जा सकती है? वह तो पूरा विश्वास चाहती है, पुरी स्वाधीनता चाहती है, पुरी जिम्मेदारी चाहती है। उसके पुल्लवित होने की शक्ति उसके अन्दर है। उसे प्रकाश और क्षेत्र मिलना चाहिए। वह कोई दीवार नहीं है।, जिस पर ऊपर से ईटें रखी जाती है उसमें तो प्राण है, फैलने की असीम शक्ति है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यांश उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित उनकी अमरक ति गोदान से अवतरित है। प्रो. मेहता को मालती अपने यहां ले गई है। और उसकी सारी व्यवस्था मालती ही देखती हो। मेहता मालती के यहां जाकर कैसा अनुभव करते है?

**व्याख्याः-** मेहता मालती के प्यार और उसके सेवाभाव को देखकर पूरी तरह उसके प्रति आकर्षित हो गए। मालती के इस देवी रूप को देख मेहता अब मालती को चाहने लगे औरअब मालती के प्रति उनके मन में इतनी अधिक आमक्ति हो गई है कि मालती केवल उनकी ही होकर रहे। उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द मेहता के सम्बन्ध में अपने विचार अभिव्यक्त करते है हुए कहते हैं कि प्रेम ऐसी वस्तु हैं जिसे बलपूर्वक बांधकर नहीं रखा जा सकता अर्थात् जिसे हम चाहें वह संभव नहीं है कि मात्र हमारा ही उस पर अधिकार रहे। वह केवल हम तक सीमित हो। दूसरा कोई उससे प्रेम न करे जिसे हम चाहते हों। प्रेम में न ते निर्ममता होनी चाहिए और न संकीर्णता अर्थात् स्वतन्त्रता। साथ ही जिसे हम प्रेम करें उसके प्रति हमारे मने में उत्तरदायित्व का भाव भी होना चाहिए। प्रेम अपने अंदर से उत्पन्न होता है। प्रेम के लिए समर्पण और अगाध विश्वास की आवश्यकता होती हैं। इसके साथ-साथ प्रेम को विकसित होने देने के लिए समर्पण उचित परिस्थितियाँ भी अपेक्षित होती हैं प्रेम कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे बलपूर्वक किसी के प्रति पैदा किया जा सके। प्रेम दीवार भी नही है जा किसी की उन्नति में बाधक हो। प्रेम तो मनुष्य के लिए प्राणों के समान है। वह मनुष्य को प्रेरणा देता है आगे बढ़ने के लिए, विकास के लिए और उन्नति की ओर जाने के लिए। प्रेम किया नहीं जाता है प्रेम हो जाता है।

**विशेषः-**

1. प्रेम और वासना में अंतर है। प्रेम का क्षेत्र असीमित होता है जबकि वासना का क्षेत्र सीमित होता है उपन्यास कार का यही कहना है।

2. प्रेम की उदारता एवं महानता का वर्णन है।

3. भाषा सरल स्पष्ट एवं तत्सम प्रधान है।

**44. अब वह प्रेम की वस्तु नहीं , श्रद्धा की वस्तु थी। अब वह दुर्लभ हो गयी थी और दुर्लभता मनस्वी आत्माओं के लिए उद्योग का मंत्र है। मेहता प्रेम में जिस सुख की कल्पना कर रहे थे, उसे श्रद्धा ने और भी गहरा और भी स्फूर्तिमय बना दिया। प्रेम में कुछ मान भी होता है, कुछ महत्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है। और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार कराना चाहत है, जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहत भी है। श्रद्धा का चरम आनन्द अपना समर्पण है, जिसमें अहम्मन्यता का धवंस हो जाता है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की अमरक तिऽ'गोदान' से उद्ध्य त है। मालती का प्रारम्भिक रूप एक तितली का था किन्तु मेहता से प्रभावित होकर वह एक आदर्श सेवाव्रती नारी बना जाती हैं जो मेहता उसके तितली रूप को देखकर उससे भागते थे, उसका प्रणय -निवेदन ठुकरा चुके थे, वहीं अब उसके इस रूप में देखकर उसके प्रति अनायास ही आकर्षित हो जाते है। मालती के इसी सेवा-भाव और तपस्या के प्रति उपनी श्रद्धा को व्यक्त करते हुए मेहता सोचते है-

**व्याख्याः-** मालती का जिस प्रकार ह्रदय-परिवर्तन हुआ था, जिस प्रकार उसने जन सेवा को ही अपने जीवन का आधार बना दिय था, उससे अब वह प्रेम की वस्तु न रहकर श्रद्धा की वस्त ुबन चुकी थी। श्रद्धा में उद्देश्य को प्राप्त करने की कोई लालसा नही होती वह तो केवल आत्मसमर्पण चाहती है। यही कारण है कि प्रेम और श्रद्धा मे अन्तर हैं। प्रेम जहां अपनी भावनाओं का आदर और प्रतिदान के रूप में प्रेमी पर अपना एकाधिकर चाहता है, वहां श्रद्धेय सबकी श्रद्धा का अधिकारी बन जाता है। श्रद्धा की न तो कोई कामना होती है, न अधिकार भाव। प्रेम व्यक्ति विशेष तक ही आश्रित और सीमित रहता है, किन्तु जब वही प्रेम श्रद्धा का रूप ग्रहण कर लेता हे, तो उसमें सामाजिकता आ जाती है। मालती भी अपने को मेहता की अपेक्षा समाज के दुख दर्दों को समर्पित हो चुकी थी। इसीलिए मेहता के लिए वह प्रेम की नहीं बल्कि श्रद्धा की वस्तु बन गयी थी। और उनके लिए दुर्लभ हो गयी थी। मेहता मालती के प्रेम की प्राप्ति में जिस सुख की कल्पना करते थे, उनमें श्रद्धाभाव आ जाने से अब उनमें स्फूर्ति का संचार हो गया था। श्रद्धा का चरम आनन्द समर्पण में ही होता है। श्रद्धा में अहं नहीं रहता, केवल समर्पण की कामना रहती है। मेहता के ह्रदय में मालती के प्रति अब प्रेम के स्थान पर श्रद्धा उदित हो चुकी थी और वे उसे श्रद्धा की देवी मान बैठे थे।

**विशेषः**

1. मालती के परिवर्तित जीवन की महनीयता स्वयं मेहता के कथन से स्पष्ट हो जाती है । यही मेहता पहले उसके प्यार को ठुकरा चुके थे किंतु कालांतर में मालती के के चरित्र में जो निखार आया, जो सेवा कामना आई, उससे मेहता जैसे दार्शनिक प्रभावित हुए बिना न रह सके। मेहता का अत्यन्त सशक्त मनोविश्लेषण करते हुए प्रेमचन्द जी ने श्रद्धा और प्रेम की बड़ी सटीक व्याख्या प्रस्तुत की है।

2. प्रेमचन्द की तरह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चिंतामणि में श्रद्धा एवं प्रेम के संबंध में इसी प्रकार के विचार प्रकट किए है। "श्रद्धा भाजन पर श्रद्धावान किसी प्रकार का अधिकार नहीं चाहता है, पर प्रेमी के ह्रदय पर अपना अधिकार चाहता है।"

3. विचारात्मक शैली है।

4. सरल एवं स्पष्ट तत्सम शब्दावली से युक्त भाषा है।

**45. निरास होने की कोई बात नहीं , इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धरम् कुछ और होता है, दुःख में कुछ औेर सुख में आदमी दान देता है, मगर दुख में भीख तक मांगता है। उस समय आदमी का यही धरम् हो जाता है। सरीर अच्छा रहता है तो हम बिना असनान-पूजा किए मुंह में पानी भी नहीं डालते, लेकिन**

**बीमार हो जाते हैं, तो बिना नहायें-धोये, कपड़े पहने खाट पर बैठे पथ्य लेते है। उस समय का यही धरम है। यहां हममें-तुममें कितना भेद है, लेकिन जगन्नाथपुरी में कोई भी नही रहता। ऊँचे-नीचे सीदी एक पंलग में बैठकर खाते है। आपात्काल में श्री रामचन्द्र ने सबेरी के जूठे फल खाये थे, बालि का छिपकर वध किया था। जब संकट में बडे-बड़ो की मर्यादा टूट जाती है, तो हमारी-तुम्हारी कोन बात है? राम सेवक महतो को तो जानते हो न?**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की अमक तिऽ'गोदान' से उद्द्य त है। होरी पर तीन साल से लगान बाकी पडा हुआ था। पं. नोखेराम ने बेदखली का दावा कर दिया था। कहीं से ऊपर मिलने की आशा न थी। होरी चिंता में डूबा हुआ था पं. दातादीन ने आकर कहाः-

**व्याख्याः-** निराश होने की कोई बात नहीं है। बस इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धर्म कुछ और होता हैं दुख में कुछ और। कहने का अर्थ यह है कि जब आदमी विपित्ति में हो तो उस समय कई बार परिस्थितियों को देखते हुए आदमी को मान-मर्यादा का त्याग करना होता है। वही व्यक्ति जब संपन्न होने पर दूसरों को दान देता है। मगर दुःखों में जब व्यक्ति के पास एक पैसा तक न हो उस समय वही दान देने वाले व्यक्ति मजबूरी में भिक्षा तक मांगता हैं उस समय आदमी का यही धर्म होता है कि वह किसी प्रकार इन बूरे दिनों को काटे और जीता रहे। चाहे उसके लिए उसको कुछ भी क्यों न करना पड़े। पं० दातादीन कुलीन धर्म के कट्टर पालन करले वाले ब्राह्मणों का उदाहरण देते हुए कहता है कि जब शरीर स्वस्थ रहता है तो बिना स्नाना और पूजा किए हुए हम मुंह मे पानी भी नहीं डालते। खाना खाले की तो कौन कहे। लेकिन जब बीमार हो जाते हैं तो बिना नहाए-धोए, कपड़े-पहने खाट पर बैठे दवा लेने के लिए हम भोजन कर लेते है। बीमार आदमी का यही धर्म है कि वह स्वस्थ होने के लिए कर्त्तव्यों का पालन न करे। यहां हममें और तुममें कितना भेद है? अर्थात् हम ब्राह्मण हैं और तुम निम्न वर्ण के हो। तुम्हारे हाथ का छुआ हुआ खाना भी नहीं खाते। लेकिन जगन्नाथपुरी में ब्राह्मण और शुद्र का और छोटे-बडे के कोई भेद नहीं रह जाता। ऊंच नीच सभी एक पंक्ति में बैठकर खाते हैं क्योंकि परिस्थितियों, स्थान और समय के अनुसार धर्म बदल जाता है। भगवान राम उच्च श्त्रिय वंश से सम्बधित थे। आपातकाल में उन्ही रामचन्द्र जी ने शबरी जो कि निम्न वर्ण से थी, उसके हाथ से उसके झूठे फल खाए थे। इसी प्रकार भगवान राम ने उस समय के युद्ध के आदर्शो को छोड़कर बालि का छिपकर वध किया था। उन्हें सुग्रीव की मदद की आवश्यकता थी। जब संकट के दिन होते है तो बड़े-बडों को भी अपनी मर्यादा का त्याग करना पड़ता है। हम और तुम तो बहुत छोटे आदमी है, राम सेवक महतो को तो जानते हैं न? पं० दातादीन अपनी बात को घुमा-फिराकर कहना यह चाहते है कि वे होरी की छोटी लड़की रूपा का विवाह राम सेवक से कराना चाहते है जो होरी से उम्र में दो-चार वर्ष ही छोटा है।

**विशेषः-**

1. पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग है।
2. पं० दातादीन की चालाकी दिखाई गई है।
3. प्रसिद्ध वैज्ञानिक डार्विन ने भी यही बात कही है कि जो समय के अनुसार अपने आपको नहीं ढाल सका, वह नष्ट हो गया ।
4. वर्णनात्मक शैली है।

**46. इतना अपमान! उसने अपने इतने ही जीवन में बहुत अपमान सहा था, बहुत दुर्दशा देखी थी, लेकिन आज यह फांस जिस तरह उनके अन्तः करण में चुभ गयी, वैसी कभी कोई बात न चुभी थी। गुड़ घर के अन्दर मटकों में बन्द रखा हो, तो कितना ही मूसलाधार पानी बरसे, होई हाानि नहीं होती, पर जिस वक्त वह धूप में सूखने के लिए बाहर फैलाया गया हो, उस वक्त तो पानी का एक छींटा ही उसका सर्वनाश कर देगा।**

**संदर्भः-** व्याख्यान गद्यांश प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यास 'गोदान' से अवतरित है। सिलिया और मथुरा की बातों की आवाज सुनकर सोना वहां पर आ गयी थी। असने सिलिया को नीची द ष्टि से देखा और उससे स्नेहपूर्वक नही मिली। सिलिया को अपना अपमान अनुभव हुआ। लेखक सिलिया की मानसिक व ति का चित्रण करते हुआ कहता हैः-

**व्याख्याः-** सिलिया दुःखी होकर भूमि की ओर देख रही थी कि यदि यह भूमि ही फट जाती है। तो वह इसी में समा जाती यह इतना बड़ा अपमान तो उसे कम-से कम सहन न करना पड़ता। आज तक उसने अनेक अपमान सहे थें वह चमार जाति की होकर ब्राह्मण की रखौल थी और होरी के यहां आश्रय लेकर जीवन काट रही थी। यह उसके जीवन मे अपमान ही था परन्तु सोना जैसी सहेली से इतनी प्रताड़ना मिलेगी। यह उसने कभी न सोचा था। वह तो अपना प्रिय समाचार सुख-दुःख की कहानी अपनी सहचरी को सुनाने आई थी परन्तु सोना की अपमान जनक बातों को सुनकर उसे अनुभव हुआ कि इस प्रकार अपमान उस का कभी भी नही हुआ था। मानों एक तीव्र कांटा यहां उसके हृदय को घायल कर गया हो। वह अत्यन्त दुःखी थी, इतनी मार्मिक वेदना उसे कभी नहीं हुई थी। जैसे गुड़ को वर्षा से बचाने के लिए मटके में रखकर कमरे के अंदर रख दिया जाता है वह सुरक्षित हो जाता है, यदि किसी दिन धूप में उसे सुखाया जाता हें तब वह सूख जाती है परन्तु यदि सुखाते समय पानी का छींटा भी उस पर पड़ जाता है। तो वह पिघलकर बहने लगता है। उसका रूप ही नष्ट हो जाता हैं उसी प्रकार आज वह सोना को अपना स्नेह भरा सामाचार देकर उसकी सहानुभूति व खुशी को प्राप्त करना चाहती थी इसके विपरीत उसे अपमानित होना पड़ा यहा उसका दुर्भाग्य था जिसका उसे बड़ा कष्ट हुआ।

**विशेषः-**

1. इन पंक्तियो में सिलिया की मनोदशा का चित्रण किया गया है।
2. भाषा सरल एवं बोलचाल की शब्दावली से युक्त है।

**47. भविष्य अन्धकार की भांति उनके सामने है। उसमें उन्हें कोई रास्तो नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएं शिथिल हो गई है। द्वार पर मनों कूडा जमा है, दुर्गन्ध उड़ रही है, मगर उनकी नाक में न गन्ध है।, न आंखों में ज्योति। सरेआम द्वार पर गीदड़ रोने लगते है, मगर किसी को गम नहीं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है। वह खा लेते है। उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है। उनके बगैर चूनी-चोकर के बगैर नाद मुंह नहीं डालते, मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिए। स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। उनसे धेले-धेले के लिए बेईमानी करवा लो, मुट्ठी भर अनाज के लिए लाठियां चलवा लो। पतन की वह इन्तहा है।, जब आदमी शर्म और इज्जन को भी भूल जाता है।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की अमक तिऽ'गोदान' से उद्‌घ्‌ त है। गोबर शहर से अपनी बहन रूपा की शादी में आया हुआ है। जब वह गांव की हालत देखता है तो वह अत्यन्त दुखी होता है। प्रेमचन्द गोबर के विचारों को प्रकट करते हुए लिखते है-

**व्याख्याः-** गांव के लागों का भविष्य अन्धकार की तरह अस्पष्ट है जिसमें सुधार और आशा की कोई उम्मीद ही नहीं। इस अंधकार में से उन्हें कोई रास्ता भी दिखायी नहीं दे रहा। सामान्य आदमी की सुख-दुख आदि की जो चेतनाएं होती हैं वे सारी चेतनाएं दुखों को सहते सहते स्थिर हो गयी है। अर्थात् विवशता, गरीबी विपत्तियों ने इन्हें इतना पराभूत कर दिया है कि मानवीय अनुभूतियां शिथिल हो गई है। इनके दरबाजों पर मनों कूड़ा पड़ा हुआ है। उसमें से दुर्गन्ध आ रही ह। मगर इनकी नाक न तो इस दुर्गन्ध का महसूस करती है, न आंखें उस गंदगी को देखती है। क्योंकि हालत यह है कि सरेआम दरवाजे पर गीदड़ रोने लगे है जो अशुभ के सूचक हैं मगर किसी को गम नहीं सामने जो कुछ रूखा-सूखा आ जाता है। उसे खाकर जी रहे है। ठीक वैसे ही जैसे इंजन की भट्टी में कोयला डाला जात है और चाहे यह कोयला अच्छी किस्म का हो चाहे बुरी किस्म का इंजन की भट्टी उस सबको जला देती है ठीक वैसे ही पेट की आग में जो कुछ ये डाल देते हैं। वे भस्म हो जाता है। आदमियों की तरह इनके बैल भी परिस्थितियों से समझोता किए बैठे है। वे बैल जो कभी सानी और चौकर के बगैर नाद में मुंह नही डालते थे आज वे भूख के मारे, नाद में जो कुछ डाल दिया जाता है, उसे खा लेते हैं, स्वाद से उन्हें कोई मतलब नही भूख के कारण जीभर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। गरीबी इतनी बढ़ गई है कि इस भुखमरी में किसान में किसान एक-एक छेले के लिए बेइमानी करने पर उतारू हो जाता है । मुट्ठी भर अनाज के लिए लाठियां चलाने के लिए तैयार लिए उतारू हो जात है। यह पतन की परकाष्ठा है जब आदमी छोट-छोटे स्वार्थो के लिए शर्म और इज्जत को भी भूल गया है। मरने मारने के लिए उतारू हो जाते है। यह पतन की पराकाष्ठा है जब आदमी छोटे-छोटे स्वार्थो। के लिए शर्म और इज्ज्त को भी भूल गया है।

**विशेषः-**

1. प्रेमचन्द ने यहां उस समय के यथार्थ का चित्रण किया है। किसान के पतन की पराकाष्ठा हो चकी थी।

2. सरल एवं प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग है।

**48. नारी केवल माता है, और इसके उपरान्त वह जो कुछ है वह सब मात् त्व का उपक्रम मात्र । मात त्व संसार की सबसे बडी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय हैं एक शब्दमें उसे लय कहूंगा- जीवन का व्यक्तित्व का और नारीतव का भी।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की अमरक तिऽ'गोदान' से उद्‌घ त है। मिल मालिक खन्ना की पत्नी गोबिन्दी जब अपने पति से खिन्न होकर चिड़ियाघर में आ जाती है तो वहां उसे प्रो. मेहता नारी की महता और उसके बड़प्पन को बार-बार याद दिलाते है तथा नारी के मात त्व रूप की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहते है।ः-

**व्याख्याः-** नारी की सबसे बड़ी विशेषता है उसका माता का रूप जिसमें संसार के स जन अन्तर्निहित हैं उसे चाहे बेटी कहो या बहन अथवा अन्य किसी भी रिश्ते से जानो, वस्तुतः पर मात -शक्ति के रूप में समादरनीय है। उसका अन्य रूप, अन्य कार्य इतना अधिक प्रशंसनीय हो या न हो परन्तु माता का रूप सदैव महानीय है। उसका माता का दर्जा ही उसकी सबसे बड़ी साधना, तपस्या व समर्पण है। इस रूप को प्राप्त करके वह धन्य है। क्योंकि इसी में उसकी महती विजय हैं इसी कारण नारी के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है। वह माता बनकर ही मान-समाज के हित मे लग जाती है। अपनी संतति का पालन-पोषन करना व उसमें अच्छें संस्कार डालना उसकी बहुत बड़ी तपस्या या साधना है। वह माता बनकर अपने समस्त जीवन को संतति के लिए लगा देती है। इसी में उसके जीवन की सार्थकता, व्यक्त्तिव का समर्पण नारीत्व की पूर्णता समाहित है। आशय यह है कि नारी का माता रूप सर्वश्रेष्ठ हैं जो नारी के जीवन की सबसे बड़ी साधना, त्याग और विजय है।

**विशेषः-**

1. इन पंक्तियों में नारी के मात त्व रूप को ही सर्वोत्तम और महनीय बताया गया है।

2. भाषा में गांभीर्य और प्रभावोत्पादकता विद्यमान है।

**49. उनकी निर्जीव, निराश आहत आत्मा सान्त्वान के लिए विकल हो रही थी, सच्ची स्नेह में डूबी हुई सान्त्वना के लिए-उस रोगी की भांति, जो जीवन-सूत्र हुई क्षीण हो जाने पर भी वैद्य के मुख की ओर आशा भरी आंखों से ताक रहा । वही गोबिन्दी जिस पर उन्होंने हमेशा जुल्म किया? जिसका हमेशा अपमान किया? जिससे हमेशा बेवफाई की? जिसे सदैव जीवन का भार समझा? जिसकी म त्यु की सदैव कामना करते रहे, वही उस समय जैसे अचंल में आशीर्वाद और मगल और अभय लिए उन पर बार रही थी, जैसे उन चरणों में ही उनके जीवन का स्वर्ग हो, जैसे वह उनके अभागे मस्तक पर हाथ रखकर ही उनकी प्राणहीन धमनियों में फिर रक्त का संचार कर देगी। मन की इस दुर्बल दशा में, घोर विपत्ति में, मानों वह उन्हें कण्ठ से लगा लेने के लिए खड़ी थी। नौका पर बैठे हुए जल-बिहार करते समय हम जिन चट्‌टानों को घातक समझतें है और चाहते है। कि कोई उन्हें खोदकर फेंक देता, उन्हीं से नौका टूट जाने पर हम चिमट जाते ह।**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की अमरक तिऽ'गोदान' से उद्‌घ त है। खन्ना अपनी पत्नी को साधवी मानते हुए भी उसके प्रेम से सन्तुष्ट नहीं थें उनका वासना से भरा मन चंचल मालती के प्रति आकृष्ट था। गोबिन्दी इस तथ्य से परिचित थी किन्तु फिर भी उसकी पति परायणता में कोई न्युनता नहीं आयी थीं। मालती ने एक दिन खन्ना से स्पष्ट कह दिया कि वह उन्हें केवल अपना मित्र मानती है और यदि वे यह समझते हों कि वह उनसे प्रेम करती है तो यह उनका भ्रम है। खन्ना बात सुनकर विक्षुब्ध हो उठे। उन्हीं दिनों मजदूरों ने उनकी चीनी मिल में आग लगा दी। खन्ना का सब कुछ लुट गया। वह जब घर लौटे तो गोबिन्दी के स्नेहसिक्त सान्त्वना भरे शब्द सुन कर उनका मन हुआ कि गोबिन्दी के चरणों पर गिर पड़े। इसी प्रसंग में प्रेमचन्द जी खन्ना की मानसिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखते ह।-

**व्याख्याः-** लाखों की सम्पति क्षण भर में स्वाहा हो जाने क कारण उनकी आत्मा जैसे सुन्न पड़ गई तो और इस भयानक आघात

से निराश तथा आहत हो गयी थी। वह स्नेह से परिपूर्ण सान्त्वना और धैये के लिए व्याकुल हो रही थी। एक ऐसी सान्त्वना जिसमें उनके प्रति सच्चा स्नहे, ममत्व और अपनापन हो। वे स्नेह में डूबी सान्त्वना के लिए उसी प्रकार विकल हो रहे थे जैसे कोई मरण सन्न रोगी आशा भरी द ष्टि से वैद्य की ओर देखता है कि जैसे भी हो मेरे प्राण बचा दो। जिस गोबिन्दी पर न जाने उन्होंने कितने मर्मभेदी आघात किए थे, न जाने कितनी बार उसका अपमान किया था, कितने अन्याय उस पर किए थे, उसके सच्चे प्यार से छल किया था, जिसे सदैव अपने लिए एक बोझ समझा था और ईश्वर से न जाने कितनी बार उसके मर जाने के लिए प्रार्थनाएं की थी, वही गोबिन्दी आज इस विषम परिस्थिति में, जब उन्हें सच्ची और प्यारभरी सहानुभूति की आवश्यकता थी, ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे वह अपने ममतामय अंचल में अनेक आशीर्वाद और कल्याण-कामनाएं लिए उन पर न्यौछावर कर रही हो। जैसे वह अपने सम्पूर्ण पतिव्रतधर्म से आपदाओं से उनकी रक्षा से उनकी रक्षा करने को सम्बद्ध खड़ी हो। खन्ना को ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे गोबिन्दी के उन पवित्रों पांवों के नीचे ही वह आनन्ददायक स्वर्ग छिपा हो उन्हें समस्त विपत्तियों से मुक्ति दिलाने में समर्थ है। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे शरीर में फिर प्राण फुंक रही हो। आज उनका मन जिस प्रकार अशांत और दुर्बल हो गया था। घोर विपत्ति ने जिस प्रकार उन्हें विक्षिप्त बना दिया था, उस परिस्थियों में भी गोबिन्दी जैसे उन्हें अपने हृदय से लगा लेने को तत्पर हो। गोबिन्दी का यह स्नेहपूर्ण आश्रय उनमें जीवन का संचार कर रहा था, उनमें एक नयी प्राणवता भर रहा था और उनकी ऐसी स्थिति थी जैसे कोई व्यक्ति नींव पर बैठकर पानी के बीच की चट्टानों का भय के मारे हटाने की प्रार्थना करता है। किन्तु ज्यों ही नाव उल्ट जाती है। वह चट्टान ही उसके प्राणों का आधार बन जाती है। वह उससे चिपट जाता है। ठीक ऐसी ही स्थिति खन्ना की भी हो रही थी जिस गोबिन्दी को वे अपने मार्ग में सबसे बड़ी बाधा समझते थे, वही आज उनके जीवन का एकमात्र आधार बन गई थी।

**विशेषः-**

1. खन्ना के मनस्ताप का अत्यन्त सुन्दर एवं सशक्त मनोविश्लेषण प्रेमचन्द जी ने यहां पर किया है।
2. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

**50. होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानो उसके चरणों पर लोट रही थी। कौन कहता है।, जीवन संग्राम में वह हारा है? यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण है? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टुटे-फुटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ है। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेजे आ गया है। हिरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारा सफलता मूर्तिमान हो गयी है। उसके बखार में सौ, दो सौ मन अनाज भरा होता, उसकी हँाडी में हजार-पांच सौ गड़े होते पर उससे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था?**

**संदर्भः-** प्रस्तुत गद्यावतरण उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की अमरक तिऽ'गोदान' से उद्‌ध्‌ त है। उपन्यास के अंत में कथा नायक होरी का प्रणान्त समीप है तभी उसका छोटा भाई हीरा भी वापिस आ जाता है। होरी को क्रोध नहीं आता वह उसे समझाता है। कि वह क्यों भाग गया इतने दिन कहाँ दुःखी रहा! हीरा अपने भाई होरी से क्षमा याचना करता है तब होरी की दशा को देखकर उपनन्यासकार कहता है।:-

**व्याख्याः-** आज होरी अपने जीवन की अंतिम सांसे ले रहा था परन्तु वह प्रसन्न था उसे न किसी प्रकार की निराशा थी, न कोई संकट ही दिखाई देता भी उसने जीवन में अनेक कष्टों को सहन किया है। सभी के लिए सुख बांट कर अपने ऊपर विपत्ति झेली है। अतः अब म त्यु के समय मानों संकट और निराशाएं उसके लिए महत्वपूर्ण नहीं रह गयी थी। वह इस जीवनरूपी युद्ध में पराजित नहीं हुआ। जीवन में सभी आपत्तियों और परेशानियों का सामना करता रहा। आज उसके मुख पर प्रसन्नता थी, उसे गर्व था, उसमें खुशी का रोमांच था। ये सभी हार के लक्षण नहीं होते बल्कि विजित व्यक्ति ही उत्साह गर्व तथा खुशी के आंसू प्रवाहित करता है। यदि होरी को आज जीवन से पराजित भी मान लिया जाए तो लेखक की द ष्टि में यह पराजय ही उसकी विजय है अर्थात् जो जीवन भर संघर्षों से जूझता रहा हो और कभी भी जिसने जीवन से मुंह न मोड़ा हो, आज म त्यु के समय उसे हारा हुआ नहीं माना जा सकता। उसने जो अपने जीवन रूपी संग्राम में टुटे-फुटे अस्त्र ग्रहण किए है। अर्थात् छोटे-छोटे आधारों का सहारा लिया है और सदा जीवन में आगे बढ़ता रहा, सभी समस्याओं का निदान खोता रहा। वस्तुतः वे ही छोटे-सहारे उसके जीवन को आज विजयी बना रहे है मानो विजित व्यक्ति की पताका के सम्मान में फहरा रहे हों।

**विशेषः-**

1. इन पंक्तियों में होरी की अंतिम दशा पर लेखक ने उसे पराजित न मानकर विजयशील योद्धा माना है।
2. वस्तुतः जो जीवन को उनके संघर्षों का सामना करते हुए अपने कर्तव्य पथ पर बढ़ता है वही वास्तव में सच्चा मानव हैं।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

# खण्ड ख

# आलोचना

## प्रश्नोत्तर भाग

**प्र० 1. उपन्यासकार प्रेमचन्द के व्यक्तित्व एवं कृषित्व पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।**

उ०. हिन्दी कथा-साहित्य के मेरूदण्ड प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में अपना वही महत्त्व रखते है। जो सौर-मंडल में सूर्य को प्राप्त हैं इस साहित्यिक द्धीचि ने कथा साहित्य के निर्माण एवं उनके उत्थान हेतु अपना-सर्वस्व होम कर दिया। उसके उपन्यासों मे वह आत्मा छिपी हुई है जो समग्र भारतीयता का प्रतीक है। भारतीयकरण यदि किसी व्यक्ति तर्क विशुद्धतः देखता है तो प्रेमचन्द के कर्मठ पात्रों होरी, प्रेमशंकर, देवीदीन आदि में देखा जा सकता है। प्रेमचन्द ने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में भारतीय जीवन के सच्चे स्वरूप को प्रस्तुत किया है।

भारतीय समाज के ग्रामीण समाज के ग्रामीण और नागर वर्गों को आधार बनाकर उन्होंने उसकी विविध क्षेत्रीय समस्याओं का अंकन और उन समस्याओं का समाधान अपने कृतियों में किया है। जिन आदर्शों को उन्होंने स्वीकृति दी है। जिन आदर्शों को उन्हें व्यवछत करते में वे सक्षम थे इसके साथ ही उनका एक विशष्टि दाय भी है। कि उन्होंने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में आधुनिक में मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश किया है। यूरोप में फ्रायड, एलडलर, युंग तथा वाटसन आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण खोज कार्य किया, उसका हिन्दी-उपन्यास साहित्य पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक तत्व उपलब्ध होते हैं उनके उपन्यासों में मानव के मन के सूक्ष्मतम अन्तर्विशलेषण के साथ विविध मन स्थितियों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाएं भी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों की प ष्ठभूमि में चित्रित की गयी है। इस प्रकार के चरित्रांकन प्रेमचन्द के मनोवैज्ञानिक द ष्टिकोण की सूक्ष्मता के परिचाय है। विविध वर्गों एवं व्यक्तियों का जैसा अन्तर्मन्थन उनके उपन्यासों में उपलब्ध होता है उससे यही निष्कर्ष निकलता है। हां इतना अवश्य है कि उन्होंने मनोविज्ञान के नाम पर पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन नहीं किया। स्व० प्रेमचन्द जी हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट -उपन्यासकार माने जाते है। उनका जन्म वाराणसी के निकट ही स्थित लमही नामक ग्राम हुआ था। उनका पारिवारिक नाम धनपतराय था और प्रारम्भ में दे नवाबराय के उपनाम से लिखते थें उनके पिता का नाम अजायबराय था और पत्नी का नाम शिवरानी है। प्रेमचन्द की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। उनका बचपन अनेक कष्टों में बीता। उर्दू में शिक्षा पाने के कारण स्वभावतः उनकी प्रव ति उर्दू उपन्यासों के पठन के प्रति। बढ़ी मौलाना शरर, पं० रतननाथ सरशार, मिर्जा रूसवा एवं मौलवी मुहम्मद अलीका उन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और कालान्तर में मोलान सज्जाद हुसैन लिखित 'धोखा' या तिलिस्मी कानून ने तो उन्हें इतना अधिक प्रभावित किया कि थे उनके 'तिलिस्मी बेशरूबा' पढ़ने को व्यय को उठे। इस व हद्काय उपन्यास के कई भाग उन्होंने पड़े और तब तक वह उस स्थिति में पहुंच गये थे कि जहां पहुंचकर पाठक स्वयं लेखन की ओर प्रव त हो जाता है। इस प्रकार उक्त लेखकों के प्रभाव स्वरूप प्रेमचन्द भी उपन्यास लेखन में रत हो गये। मंशी प्रेमचन्द समाज के सच्चे चित्रकार और दिग्दर्शक थे इसलिए जब उन्होंने देखा कि जमींदार के चक्र में ही नहीं अग्रेंजों की कुटिल नीतियों के चक्र में भी भारतीय जनता पिस रही है, तो उन्होंने उर्दू में 'साजे वतन' शीर्षक पुस्तक लिखी और अंग्रेज सरकार की काली करतूतों का पर्दाफास किया। परिणाम यह हुआ कि वह पुस्तक तो जब्त हो गयी प्रेमचन्द जी को सरकारी नौकरी से भी त्याग-पत्र देना पड़ा। किन्तु एक सच्चे कलाकार की भांति प्रेमचन्द ने इन विपतियों को सहर्ष अंगीकार किया और अपने लेखन कार्य में व्यस्त रहे। प्रारम्भ में उर्दू में लिखने के उपरान्त नवाब राय का चोला बदलकर मुंशी जी

प्रेमचन्द नाम से हिन्दी में लिखने लगे। ऐतिहासिक द ष्टिकोण से प्रेमचन्द का सर्वप्रथम उपन्यास 'रूठीरानी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में ऐतिहासक घटनाओं को आधार बनाकर प्रेमचन्द ने भारत के पारस्परिक आदर्श, शौर्य, राष्ट्र प्रेम और देशभक्ति आदि गुणों का गान करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इन विशेषताओं के होते हुए भी पारस्परिक ईर्ष्या और विद्वेष के कारण हमारे पूर्वज दसता और विनास से स्वयं को नहीं बचा सके। सामन्त युगीन कथावस्तु के आधार पर इसमें प्रेमचन्द ने अनेक सामाजिक ऐतिहासिक कुप्रव तियों का उल्लेख करते हुए उनके विडम्बनात्मक परिणामों की ओर भी संकेत किया है। 'रूठी रानी' के पश्चात् प्रेमचन्द ने अनेक उपन्यासों की रचना की।

इनमें कृष्णा, प्रेमा, और श्यामा का उल्लेख किया जाता है। किन्तु इस प्रारम्भिक युग में लिखें प्रेमचन्द के उपन्यासों में जिस उपन्यास के कारण मुन्शी प्रेमचन्द की और हिन्दी आलोचकों का ध्यान आकृष्ट हुआ, वह महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति 'सेवासदन' है। सन् 1918 ई० में प्रकाशित 'सेवा सदन' से ही वास्तव में हिन्दी उपन्यास साहित्य में चिर अपेक्षित नूतन चिन्तन द ष्टि और एक सर्वथा वरेण्य वरेण्य शिल्प का नवयुग संस्थापित हुआ। सर्वप्रथम इस कृति में ही हमारी व्यापक सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन हुआ उनका गहरा विश्लेषण नेंत्रोंद्घाटक के रूप में हमारे सम्मुख आया। इस उपन्यास में वेश्या समस्या और उसके मूलभूत आर्थिक एवं सामाजिक कारणों पर लेखक ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया। अनमेल विवाह के घातक परिणामों का अत्यन्त सजीव चित्रण इस उपन्यास की अपनी एक प्रमुख विशिष्टता है। पूंजीवादी समाज का खोखलापन भी पूर्णतय उद्घाटित किया गया है। इस कृषि में कथा-शिल्प, शैली एवं चरित्र-चित्रण पर्याप्त स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण है। इस कृति में सर्वाधिक अखरने वाला दोष है। वेश्या समस्या का आदर्शवादी समाधान। यह समाधान आज भी किताना असंगत है। यह सब जानते है यह समाधान काल्पनिक एवं आदर्शवादी है। यथार्थपरक एवं व्यावहारिक नहीं। किन्तु फिर भी यह उपन्यास हिन्दी उपन्यास जगत के लिए एक मील का पत्थर था। लेखक की प्रगतिशीलता इस उपन्यास उससे माध्यम से स्पष्ट हुई और 'गोंदान' में जाकर पूर्णता प्राप्त कर सकी। प्रत्यक्ष रूप से यह उपन्यास समाज में प्रचलित कुरीतियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य करता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार में किसी एव व्यक्ति के नैतिक पतन के कारण परिवार की जिस असहनीय अपमान और तिरस्कार की स्थिति से गुजरना पड़ता है। उस सच्चाई को यह उपन्यास यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है।

'सेवासदन' के उपरान्त सन् 1920 में प्रेमचन्द का वरदान उपन्यास प्रकाशित हुआ किन्तु यह उपन्यास न तो सेवासदन की 'भाव-भंगिमा' को स्पर्श कर सका, इसमें वह उष्णता थी और नहीं वैचारिक स्पष्टता इस उपन्यास में थी। ऐसा लगता ही नहीं कि सेवा सदन लिखने के बाद प्रेमचंद ने इस उपन्यास का स जन किया है। जो वैचारिक प्रौढ़ता सेवासदन में है उसका अल्पांश कभी वरदान में नहीं है। उपन्यास की अधिकांश कथा में क्रमशः कृत्रिमता बढ़ती ही चली गई है। और कल्पना की अतिशयता ने मूल कथानक को ही अस्त-व्यस्त कर दिया है। निस्संदेह वरदान प्रेमचन्द की एक दुर्बल कृति है। वरदान उपन्यास के प्रकाशन के ठीक एक बाद सन् 1921 में प्रेमचन्द का 'प्रेमाश्रय' प्रकाश में आया। प्रेमाश्रम में प्रायः उन सभी दोषों का अभाव है जिनके कारण वरदान एक अशक्त उपन्यास बनकर रह गया था। इस उपन्यास के माध्यम से जमींदार और कृषकों का संघर्ष पहली बार भारतीय समाज के सामने इतना खुलकर और अभर कर स्पष्ट रूप में आया तथा प्रेमचन्द की कला भी सम्भवतः पहली बार प्राढ़तर रूप में प्रकट हुई। श्री इलाचंद्र की कला भी सम्भंवतः पहली बार प्रौढतर रूप में प्रकट हुई। श्री इलाचन्द्र जौशी एवं श्री अवध उपाध्याय जैस प्रेमचन्द के प्रारम्भिव आलोचकों ने इस उपन्यास की यघपि तीखी आलोचना की हैं किन्तु आलोचकों की आलोचना से तो कोई कृति अपनी महानता खो नहीं देती। जो सामाजिक सच था, प्रेमचन्द ने उसकी अर्थव्यक्ति दी है और सच की आलोचना करने पर भी सच सच ही रहता है। इस उपन्यास का कथा-क्षेत्र प्रेमचन्द के अब तक प्रकाशित उपन्यासों में सर्वाधिक विस्त त था। भिन्न-भिन्न जीवन पक्षों का अत्यधिक सूक्ष्म चित्रण प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया। इस रचना में उपन्यासकार ने शोषक एवं शोषित के जिस संघर्ष को चित्रित किया हैं वह अत्यन्त सजीव एवं रोमांचक है। लेखक ने इसमें कहीं-कहीं पर बड़े संयत द ष्टिकोण से ग्राम्य जीवन की विडंम्बनाओं का चित्रण किया है। भारतीय ग्रामीण समाज की चिन्ताजनक स्थिति की प ष्ठिभूमि में उपन्यास में लेखक ने विशेष रूप से ग्राम्य जीवन की समस्याओं पर ही विचार किया है। किसानों की दयनीय स्थिति

का चित्रण और जमींदारों का वर्णन करते हुए लेखक ने ग्राम-सुधार के लिए उपायों पर विचार किया है। और यह कहना असंगत न होगा कि इसके लिए लेखक को गांधीवाद ही आदर्शवादी आश्रय लेना पड़ा है। सभी शोषकों का अन्ततः हृदय परिवर्तन कराया जाता है। किन्तु यहां पर यह ध्यातव्य है कि इस उपन्यास में प्रेमचन्द जी की आदर्शवादिता एक अपेक्षाकृत व्यावहारिक वह विश्वसनीय मोड़ लेती है। लेखक की सहानुभूति कृषकों के साथ होती हुए भी व्यापक है, अतः वे अपराधी एवं अन्यायी को अधिकाधिक निन्दित, उपहासित वा दण्डित करके उसका सुधार एवं परिष्कार करते है। प्रेमाश्रय में उद्देश्य ही उसका सर्वस्व है और यदि कथावस्तु संगठन पर लेखक ने तनिक भी और ध्यान रखा होता तो निस्संदेह यह कृति 'गोदान' से कम महत्वपूर्ण नहीं होती। यद्यपि आज भी कल्पित आलोचक 'प्रेमाश्रम' को गोदान से श्रेष्ठ मानते है।

इस उपन्यास के उपरानत सन् 1924 ई०. में रंगभुमि का प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास के सूरदास को तो आलोकगण एक अविस्मरणीय पात्र मानते है। अविस्मरणीय इसलिए कि इस पात्र के रूप में समग्र गांधीवाद ही नहीं अपितु स्वयं गांधी साकार हो उठे है। इस उपन्यास में देशी स्वयं गांधी साकार हो उठे है। इस उपन्यास में देशी नरेशां के आत्याचार और पुंजीवादी व्यवस्था के दोषों का हृदयभूमि वर्णन किया गया है। सूरदास गांधी वादी होने के कारण औद्योगिकरण और पूंजीवादी व्यवस्था का तीव्र विरोध करता है तथा उनकी सर्वजन-विरोधी प्रकृति का विस्फोटक उद्‌घाटन भी करता है। वास्तव में प्रेमचन्द ने रंग-भूमि के पात्रों में सूरदास के माध्यम से जिस महान् चरित्र को प्रस्तुत किया है।, वह हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में सम्भवतः अपने मानवेतर गुणों के कारण उच्चतम पद का अधिकारी है। अहिंसा, सत्य, त्याग और धर्म का जो समन्वय सुरदास के चरित्र मे हुआ है।, वह विलक्षण है। इस महत्वपूर्ण रचना के द्वारा जहां ग्राम एवं नागर संस्कृतियों का संघर्ष को भी इससे पर्याप्त बल मिला है। समग्रतः यही कहा जा सकता है कि इस रचना से प्रेमचन्द जी की व्यापक अनुभूति का क्षेत्र और आगे बढ़ जाता है। वे जीवन के सामाजिक एवं यथार्थवादी मुल्यों के अधिक निकट आ जाते है।

सन् 1926 में प्रकाशित 'काया कल्प' प्रेमचन्द के पुर्वलिखित उपन्यासों से भिन्न आध्यात्मिक प ष्ठिभूमि पर लिखा गया उपन्यास है जिस की कथावस्तु असमान्य प्रकार की है। पुर्वजन्म और भावी जन्म के कल्पनात्मक चित्र इस कृति में कर्म और संस्कारों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। अति नारकीयता के कारण प्रायः अधिकांश प्रसंग अविश्वसनीय लगते है। और इसीलिए इसे एक शिथिल और उलझी हुई रचना कहा जा सकता है। उसमे वासना और प्रेम का संघर्ष आध्यात्मिक फलक पर चित्रित किया गया है। और अंत में प्रेम द्वारा ही मानसिक शांति का लोक-प्रचलित आदर्श मार्ग बताया गया है। कतिमय स्थलों पर साम्प्रदायिक दंगों आदि का चित्रन चमत्कारिकता होने के कारण यह उपन्यास अन्य उपन्यासों की भाव-भंगिमा को स्पर्श नहीं कर सका है। 1928 में प्रकाशत 'निर्मला' प्रेमचन्द का एक लघुकाय उपन्यास है जिसमें विधवा जीवन एवं देहत जैसी कुप्रथा पर विचार किया गया हैं यह एक समस्यापरक उपन्यास है और इसमें नायिका निर्मला की व्यथा-कथा को बड़े मार्मिक रूप में प्रस्तुत करके पठनीय सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है। अनमेल विवाह की मूल समस्या को प्रस्तुत करते हुए असहय विषमव वयस्कतापूर्ण विवाह के दुष्परिणामों का अत्यनत सजीव चित्रण इस कलापूर्ण कृति में है। पति-ग ह में पहुंची निर्मला की मानसिक दशा का जो चित्रण प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में उपस्थित किया है। वह सुक्ष्म मनोविश्लेषणात्मकता से युक्त है। उपन्यास का दुखान्त पाठक को झकझोर कर रख देता है। कलेवर में लधु होते हुए भी अपने शिल्प-गठन, चिरत्रांकन एवं भाव तारल्य तथा मन संघर्ष के कारण एक वरेण्य औपन्यासिक कृति है और इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचन्द की सामाजिक अर्न्तद ष्टि का एक नूतन अध्याय खुलता हैं यथार्थ के प्रति उनके बढ़ते आग्रह को देख कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है। कि मध्यवर्गीय जीवन की मूल पकड़ उनके पास है और शीघ्र ही उनकी यह पकड़ कोई महानतम् कृति प्रदान करेर्गी।

और सच्चाई तब सामने आ गई जब 'गबन' (सन् 1930) और 'गोदान' (सन् 1936) प्रकाश में आये। 'गबन' में मध्यवर्गीय जीवन की यर्थाथ समस्या को चित्रित किया गया है। मध्यवर्गीय नौकरी पेशा व्यक्ति से बहुमुखी अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण इस कृति में उपलब्ध होता ह। ये सभी द्वन्द्व प्रमुखतः आर्थिक अभावों से उत्पन्न हुए है। अर्थाभाव के अतिरिक्त इनका एक कारण व्यक्ति की अहं चेतना ही है जिसे रमानाथ के माध्यम से स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली हैं

इस उपन्यास में यघपि सामाजिक समस्याएं ही उठायी गयी है। और उनका निदान प्रस्तुत किया गया है किन्तु अन्य उपन्यास से प थक इस उपन्यास से मनोवैज्ञानिकता का संस्पर्श अधिक गहराई के साथ उभार पा सका है तथा रोचकता और नाविन्य भी अपेक्षाकृत अधिक है। मनुष्य की स्वभावज दुर्बलताओं और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उसकी प्रतिक्रियाओं का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार से एक व्यक्ति एक बार एक साधारण-सी भूल करने के पश्चात् पुनः परिस्थितयों के वात्याचक्र में उलझ कर भूल पर भूल करने को विवश हो जाता है। मध्यवर्गीय समाज में जो मनोव ति मुख्य रूप से कार्य करती है और कृत्रिम आवरण उस पर बाह्म रूप में पड़ा रहता है, उसका भी प्रेमचन्द ने यथार्थ चित्रण किया है। लेखक ने यह दिखिया है कि समाज का गठन और व्यवस्था कुछ इस प्रकार की हो गयी है कि धन के लिए मनुष्य नीति-अनीति और उचित-अनुचित की कोई चिन्ता नहीं करता। यदि कोई अपने परिवार का पोषण करता रहता है तो वह समाज की द ष्टि में व्यवहार कुशल नहीं समझा जाता, सामाजिक परिस्थितियां और मनोव तियां मनुष्य के नैतिक पतन का एक महत्वपूर्ण कारण होती है और रमानाथ के चरित्र में इसे समपूर्णताः देखा जा सकता है। अनमेल विवाह जैसी कुप्रथी की शिकार रत्ना मे उसकी नारीगत विश्वासी की झलक भी देखी जा सकती हैं अपनी इसी विश्वसनीयता के कारण 'गबन' में मध्यवर्गीय आडम्बर और खोखलेपन का जैसा चित्रण उपलब्ध होता है, वह बहुत महत्वपूर्ण है। दयानाथ जालपा और रमेश आदि मध्यवर्ग के विभिन्न पात्र विविध परिस्थितियों की उपज है। रतन आदि की दुर्दशा जिस मार्मिक स्थिति की अभिव्यंजक है, वह हमारे समाज के लिए असामान्य नहीं है। जोदरा जैसे चरित्र भी असामान्य नहीं कहे जा सकते है। एक वैश्या होते हुए भी जिस त्याग और आदर्श को उसने स्थापित किया हैं वह अप्रति है। अंततः कहा जा सकता है कि 'गबन' में भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण है।

सन् 1932 में प्रकाशित 'कर्मभूमि' में नगर एवं गांव की समस्याओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ अछूत समस्या को प्राथमिकता दी है। इस रचना में कथागत एवं चरित्रांकन में कई स्थलों पर शैथिल्य आ गया है किन्तु अपनी भावगरिमा के कारण ये त्रुटियां प्रायः दब सी जाती है। उपन्यास का नाम अमरकान्त गांधीवादी दर्शन से पूर्णतः प्रभावित है। और विद्यार्थी जीवन मे ही राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित हो जाता है। प्रेम-त्रिकोण ने औपन्यासिक कथा में एक उन्मादक आकर्षन भर दिया है। सेवारम के लिए भुमि प्राप्त करने के प्रश्न पर जो सत्याग्रह उपन्यास में चित्रित किया गया है और जिसके कारण अमरकान्त, सकीना, शांतिकुमार, सलीम, समरकान्त, सुखदा आदि प्रायः सभी पात्र जेल चले जाते है। तथा अन्तः नैना की गोली मारकर हत्या कर दी जाती है। इसके साथ ही भूमि सत्याग्रहियों को मिल जाती हैं यही उपन्यास का अन्त हो जाता है। और जनता की विजय दिखाई जाती है।

प्रेमचन्द की अंतिम और महान्तम औपन्यायसिक कृति 'गोदान' का प्रकाशन सन् 1936 में हुआ था। इस कृति को विश्व के श्रेष्ठ 9(नौ) उपन्यासों में समाव त किया गया है तथा सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति माना गया है। इस उपन्यास में लेखक ने कृषक और श्रमिक वर्गो के जीवन के माध्यम से जो चित्रण प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु ग्रामीण-चित्रण की द ष्टि से अनन्य है। इस उपन्यास का नायक एक कृषक होरी है। होरी और उसकी पत्नी धनिया के जीवन-संघर्ष को इतने सशक्त और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कि पाठक की आंखें छलछला आती है। 'गोदान' के प्रत्येक पात्र का मनौवैज्ञानिक चित्रण अत्यन्त पैना और उद्वेलक है। होरी और धनिया के मन को तो मानो लेखक ने छान ही डाल है होरी और गोबर के अन्तर्द्वन्द्वों को भी अत्यन्त सशक्त रूप में अभिव्यक्ति मिली है। इस कृति में लेखक का चित्रण, अनुभूति और कला अपनी पराकाष्ठा पर है। यह उपन्यास किसी आदर्शवाद, समजा-सुधार, आश्रय-स्थापना, ह्रदय परिवर्तनया किसी राजनैतिक प्रभाव की छाया में नहीं रचा गया अतः इसमें सभी औपन्यासिक तत्वों का अत्यन्त प्रभावकारी स्वाभाविक एवं अन्वितिमय ऐक्य द ष्टिगोचर होता है। गोदान अपनी व्यापक मानवीय द ष्टि, जीवन यथार्थवादी चेतना एवं आन्तरिकता के कारण निश्चय रूप से एक युगान्तकारी रचना है। वास्तम में हम इसे कृषक वर्ग ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय समाज की व्यवस्था-कथा का महाकाव्य कह सकते है। उपयुर्क्त औपचारिक कृतियों के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने मंगलसूत्र नामक उपन्यास का लेखन प्रारम्भ किया किन्तु क्रुर निर्यात ने इस कृति को पूर्ण होने से पूर्व ही प्रेमचन्द को हमसे छीन लिया। किंतु प्रेमचंद जी ने जो कुछ भी लिखा है। वही इतना महान है कि हिन्दी साहित्य कभी भी उससे उऋण नहीं हो सकता। उनके सभी उपन्यास आज भी हमारे लिए प्रेरणास्रोत है। प्रेमचन्द आज भी हमारे ह्रदय में विद्यमान

है। और सदैव रहेंगे।

**प्र०.2 'गोदान' उपन्यास का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।**

उ०. 'गोदान' प्रेमचन्द जी का एक ऐसा उपन्यास है जिसके माध्यम से उन्होंने देश की ग्राम्य आत्मा को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। इसी करण डॉ. गंगा प्रसाद विमल ने इसे भारतीय ग्राम्य परिवेश की समस्याओं का महाकाव्य और गीता की संज्ञा दी है। होरी के रूप में ग्राम्य जीवन की करूण गाथा इसमें कही गई है। ग्राम्य जीवन की इस गाथा के साथ-साथ उपन्यास में नागर-जीवन की एक कथा मुख्य कथा के समान्तर चलती है, जिसके मुख्य पात्र मेहता और मालती। इस प्रकार गोदान दोहरे कथानक वाला उपन्यास है। दानों कथा परस्पर बहुत कम सम्बद्ध है, अतः यहां अलग-अलग इन दोनों कथाओं का सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है।

**ग्रामीण जीवन सम्बोधित होरी की कथाः** होरी लखनऊ के निकटवर्ती बलारी गांव का किसान है। उसके पास केवल पांच दीघा जमीन थी किन्तु राय साहब अमरपाल सिंह की कृपाद ष्टि से गांव में उसका काफी सम्मान था पत्नी धनिया कुछ तीखे स्वभाव की स्त्री है किन्तु साथ ही वह बड़ी सहनशील और भावनामयी स्त्री है पुत्र गोबर उग्र स्वभाव का विद्रोही युवक है। होरी की दो पुत्रियां भी हैं सोना और रूपा, जिनकी आयु क्रमशः' बारह और आठ साल है। एक दिन वह रायसाहब से मिलने जा रहा था,? तो उसकी भेंट भोला अहीर से हुई जो गाय चराने आया था गायों को देखकर होरी के मन में गाय खरीदने की चिर-संचित अभिलाषा जाग उठी। बातों ही बातों में उसने जान लिया कि भोला की पत्नी के मने के बाद वह दूसरी शादी करना चाहते है होरी ने उसकी सगाई ठीक करने का आश्वासन दिया और साथ ही गाय खरीदने की इच्छा भी प्रकट की। भोला उसे गाय देने को तैयार हो गया किन्तु जब उसे मालूम हुआ कि भोला भूसा क्रय न कर पाने के कारण गाय बेच रहा है तो उसका विचार बदल गया। उसने भोला से भूसा ले जाने को कहा और रायसाहब से मिलने चला गया।

होरी जब रायासाहब के घर से वापस लौटा तो कछ ही क्षणों में भाल भी भूसा लेने आ पहुंचा उसे तीन खांचे भूसा देकर होरी ने बिदा किया और गोबर के साथ पहुंचाने भी गया। लौटते समय आधे रास्ते तक झुनिया उसे छोड़ने आयी। उनका परस्परिक प्रेम गहरा होता जा रहा था। इधर गाय की प्रतीक्षा में होरी, धनिया सोना और रूपा सभी प्रसन्न थें। होरी ने अपने भाइयों के सांझो के बांस बेचकर कुछ रूपए बचाने का असफल प्रयास किया। होरी के घर गाय आ गई है, होरी का परिवार फूलत नहीं समा रहा है, विशेषकर होरी, क्योंकि उसकी तो आज चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण हुई है। गाय बहुत सुन्दर और अच्छी थी, यह समाचार सारे गांव में आग की भांतित फैल गयी। किन्तू गाय क्या आई, होरी के दुर्दिन अपने साथ लाई। भाइयों से मनमुटाव तो था ही, हीरा से विशेष कर। एक दिन मौका मिलते ही उसने गाय को विष दे दिया और रात में ही गाय मर गई। होरी ने उसे देख लिया था। जब होरी ने धनिया को अपने संदेह की बात कह तो धनिया सीधे हीरा के घर पहुँची और हीरा पर हत्या का आरोप लगाया। पुलिस ने हीरा के घर की तलाशी लेनी चाही, लेकिन होरी ने उपने भाई की रक्षा के लिए अपने पुत्र गोबर की झूठी कसम खाई कि उसे यह पता नहीं है कि गाय को किसने जहर दिया। हीरा घर से भाग गया था। उसकी पत्नी असहाय हो गयी थी। अब होरी को पुनिया की भी चिन्ता होने लगी। सावन में होरी ने अपने धान की रोपाई नहीं की लेकिन पुनिया के धानों की रोपाई समय पर कर दी। परिणामस्वरूप होरी की फसल बहुत कम हुई और पुनिया के घर अनाज रखने की जगह न थी। धनिया के स्वभाव में भी अब पुनिया के प्रति सदाशयता जाग उठी थी और पुराने बैर को वह भूल चुकी थी। झुनिया और गोबर के प्रेम का परिणाम यह हुआ कि झुनिया गर्भवती हो गयी और गोवर उसे अपने घर में आने को कह कर खुद भाग गया। होरी उस समय खेत पर था, धनिया घर में अकेली थी। झुनिया जब घर पहुंची, तो धनिया ने उसे खूब भला-बुरा कहा। झुनिया रोने लगी, रोते-रोते उसने सारी बातें बता दीं धनिया इस स्थिति में उसे घर से निकालने का साहस न कर सकी। वह होरी को इसकी सूचना देने खेत पर गयी। पहले तो होरी भी घटना सुनकर क्रुद्ध हुआ, किन्तु बाद में धनिया के समझाने पर उसे घर में रख कर उद्यत हो गया। धनिया का हृदय अब दयार्द्र हो गया था। झुनिया ने होरी से शरण मांगी और उसके पांवों पर गिर पड़ी। होरी ने उसे आश्वासन दिया और अपने घर पर रख लिया। गोबर छिपे-छिपे यह सब क्रिया-कलाप देख चुका था और सन्तुष्ट होकर कमाई करने के उद्देश्य से नगर की ओर चला गया।

झुनिया चुंकि जाति-बाहर की थी इसलिए उसे शरण देने और बहु बनाने के प्रश्न पर गांवों वालों ने होरी बहिष्कार कर दिया, उसका हुक्का-पानी बंद कर दिया। एक दिन झुनिया को लेकर दातादीन और धनिया में बाद-विवाद हो गया और फिर दातादीन ने गांव के कुछ प्रमुखों को इस पक्ष में कर लिया कि होरी पर सौ रूपए की डंड और तीस मन अनाज का डंड लगाया जाये। यही हुआ, असत्य होरी घर का सारा अनाज झिंगुरी सिंह की चौपाल में भरता रहा और अपना घर रहन रखकर रूपयों की व्यवस्था की। धनिया इस पर बहुत झुंझलाई, मगर व्यर्थ! अब होरी के घर खाने तक को अनाज न था। इससे वह चिंतित रहने लगा और गोबर की भी कोई सूचना नहीं मिली थी भोला भी इससे क्रुद्ध हो गया था क्योंकि झुनिया को घर रखकर उसने भोला का अपमान कर दिया था। अतः वह गाय का मूल्य लेने घर आ धमका। होरी रूपए कहां से देता फलतः भोला उसके दोनों बैल खोल कर ले गया, होरी के जैसे दोनों हाथ ही कट गए। बैलों के बिना होरी के खेतों की जुताई न हो सकी और दूसरों के खेतों में काम करने लगा। धनिया, सोना और रूपा भी दूसरों के खेतों में काम करने लगीं एक दिन दातादीन ने सांझे की खेती का प्रस्ताव रखा। होरी ने इसे मान लिया और वह अपने ही खेतों में मजदूर की हैसियत से काम करने लगा। होरी सोचता था कि ईख बेचकर वह बैल ले लेगा किंतु साहुकार महाजन ईख के सारे रूपए ले गए। इधर गोबर को लखनऊ नगर में रहते साल भर हो गया हैं अब वह गांव का सीदा-सादा नवयुवक नहीं है बल्कि नगर सभ्यता से अच्छी तरह परिचित हो गया है। पहले उसने मिर्ज खुर्शेद के पास 15 रूपयें मासिक पर माली के नौकरी की और बाद में कुछ रूपये जमाकर खोमचा लगाना प्रारम्भ कर दिय। अब उसने एक दुकान खोल ली है, जिसमे उसको ढाई तीन रूपये रोज की आमदनी होने लगी। इन ग्यारह महीनों की दो सौ की कमाई लेकर वह झुनिया को लाने चल पड़ा। एक दिन होरी खेत में ईख काट रहा था कि दातादीन ने उसकी पत्नी धनिया को फटकार। इसका प्रभाव यह हुआ कि काम करते-करते अचानक होरी अचेत हो गया। धनिया अपने पति की यह दशा देखकर व्याकुल हो उठी और उसकी सेवा-सुश्रूषा में लग गयी। इसकी समय गोबर भी आ पहुंचा। सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। उसने अपने साथ लाया हुआ सब सामान एक -दुसरे को बांटा और फिर गांव में घुमकर सब पर अपना प्रभाव जमाया। वह भोला के गांव भी गया और उसे बातों में फुसलाकर अपने बैल ले आया। गोबर से गांव के मुखिया चिढ़े हुए थे दातादीन से उसने साफ कह दिया कि होरी अब किसी का काम नही करेगाा दातादीन ने अपने रूपए तो गोबर ने सरकारी व्याज के हिसाब से रूपए देने चाहे किंतु होरी को लगा यह अधर्म है। दोनों बाप-बेटे में मन-मुटाव हुआ और झुनिया तथा छोटे बेटे को लेकर लखनऊ लौट गया। गोबर के चले जाने के बाद होरी का घर सूना हो गया। उधर गांव में दातादीन के पुत्र मातादीन ने सिलिया चमारिन को रखैल के रूप में रखा था। एक दिन मातादिन सिलिया, दातादीन और होरी आदि खेत में अनाज ओसा रहे थे, तभी सिलिया के मां-बाप और दोनों भाई अपनी विरादरी के साथ वहां पहुंचे। उन्होंने मातादीन का जनेऊ तोड़ डाला और उसके मुह में हड्डी डाल दी। सिलिया को वे लोग ले जाना चाहते थे बहुत मार खाने पर भी वह उनके साथ नही गई इससे मातादीन के धर्म भ्रष्ट होने की बात सारे गांव में फैल गई। दातादिन ने मातादिन को समझाया कि वह सिलिया का साथ छोड़ दे वाकि वह सब ठीक कर लेगा। मातादीन ने सिलिया को बुरा भला कहा तो विविश होकर सिलिया होरी की शरण में आयी और उसी के यहां रहने लगी। अब होरी को अपनी लड़की सोना के ब्याह की चिन्ता होने लगी, क्योंकि गांव के मन चले लड़के उसका पीछा करने लगे थे होरी ने सोनारी गाँव के धनी किसान गौरी महतो के लड़के मथुरा से सौना का विवाह करना निश्चित किया। सोना और सिलिया के प्रयास से दहेज की भी समस्या नहीं रहीं। इस प्रकार बिना किसी कठिनाई के सोना का विवाह सम्पन्न हो गया। भोला ने अपना दूसरा विवाह कर लिया था किन्तु इससे उसके घर में झगड़ा इतना बड़ा कि बेटों ने उसे पीटकर घर से निकाल दिया। भोला और उसकी पत्नी नोहरी ने नोखेराम के यहां शरण ली। नोखेराम ने नोहरी पर अपना अघिकार कर लिया। भोला इतना दुर्बल हृदय था कि न वहां रह सकता था, न कहीं जा सकता था। फलतः वह नौकर की भांति वहां रहने लगा। इधर पटेश्वरी की चाल में आकर मगरू साह ने होरी पर डिग्री कर दी और उसकी ईख नीलाम हो गयी। गोबर जब लखनऊ पहुंचा तो उसने देखा कि जहां पर वह खोमचा लगात था, वहां पर किसी दूसरे ने अधिकार कर लिया है। विवश होकर उसने खन्ना की चीनी मिल में नौकरी कर ली। झुनिया से भी वह विरक्त सा रहने लगा। दोनों का मन मुटाव इतना बड़ा कि गोबर ने एक दिन उसे पीट भी दिया। गोबर शराब भी पीने लगा था। बच्चों की उचित देखभाल न होने के कारण एक दिन वह मर गया। उधर खन्ना की मिल में

मजदुरों ने वेतन के प्रश्न पर हड़ताल कर दी, दंगे में गोबर पुरी तरह मार खा बैठा। उसे अस्पताल पहुंचाया गया। उसकी इस शोचनीय दशा को देखकर झुनिया द्रवित हो उठी। गोबर अचेत पड़ा था। उस समय झुनिया ने जी-जान लगाकर उसकी सेवा की। इधर उसे बच्चा भी हो गया। चुहिया नाम की एक पड़ोसन ने उस बच्चे की बड़ी देख-रेख की। तथा एक दिन जब गोबर काम की तलाश में था, उसे मालती मिल गई उसने गोबर को अपने घर में माली के रूप रख लिया। झुनिया भी वहीं रहने लगी। उन्हीं दिनों गोबर के बच्चे को चेचक निकल आई मालती के प्रयासों से बच्चा जल्दी ठीक हो गया। सिलिया ने एक बच्चे को नाम दिया तो मातदीन उसके निष्कपट प्रेम से प्रभावित होकर एक दिन होरी को उसके लिए दो रूपये दे आये। सिलिया रूपये और मातादीन का प्यार पाकर इतनी प्रसन्न हुई कि उसकी रात सोना से मिलने नदी पार कर उसके गांव पहुंच गयी। मथुरा उसे देखकर उसका हाथ पकड़ने लगा तभी सिलिया ने अपने हाथ छुड़ा लिया। उसी समय अन्दर से सोना की आवाज आयी। मथुरा के साथ जब सिलिया अन्दर पहुंची तो इतनी रात गये उसका आना सोना को अखर गया। सिलिया वहां आकर पछता रही थी। सोना ने उसका बहुत तिरस्कार किया और फिर कभी वहां न आने को कहा। सिलिया अपना-सा मुंह लेकर, दुखी ह्रद्य लौट आयी। सिलिया ने होरी के घर में अपना एक अलग फूस का झोंपडा बना लिया था। उसका बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। मातादीन कभी-कभी एकान्त पाकर उससे प्यार कर जाता। अब उसकी आत्मा सिलिका के प्रति उसके कर्त्तव्य का मान कर रही थी। अकस्मात् सिलिया का बच्चा निमोनिया के कारण चल बसा। मातादीन ने जब यह सुना तो वह आपे में न रहा सका। उसने बिना किसी की परवाह किए बालक केशव को अपने हाथें में उठा लिया और अकेले नदी-तट की ओर चला। बालक को नदी की धारा मे बहाकर घर लोटा,? तो वह ब्राह्मणत्व के अभिमान से शून्या हो चुका था। उसने सिलिया को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया। होरी अपने जीवन के दिन किसी तरह पूरे कर रहा था जीवन में अनेक संकट सहे, बदनामी सही भूखे रहे। केवल जीवन इसलिए कि उसकी परम्परागत कुछ बीधे जमीन बच जाए। तीन साल से वह लगान से दे रहा था। नोखेराम नेडस पर बेदखली का दावा कर दिया था। कही से रूपये उधार मिलने की आशा नहीं थी। इसी समय दातादीन ने आकर उसे एक उपाय सुझाय। होरी की छोटी लड़की रूपा का विवाह नही हुआ थां। उसने उसका विवाह बूढ़े राम सेवक महतो से करने की सलाह दीं होरी ने उसकी सलाह सुनकर ग्लानि और अपमान से अपना मस्तक झुका दिया। उसका आदर्शवाद एक ही झांके में तिनके के समान उड़ गया। वह रूपा का विवाह राम सेवक से करने को तैयार हो गया। धनिया ने भी दुखी मन से दातादीन के प्रस्ताव को मान लिया। विवाह का दिन नियत कर दिया। दातादीन ने विवाह हेतु दो सौ रूपये दे दिये। होरी ने अपनी जमीन को बेदखली से बचा लिया। विवशता मनुष्य से क्या नहीं करवा लेती है! गोबर भी रूपा के विवाह में आया। गोबर ने माता-पिता की शोचनीय दशा देखी, तो उसे बहुत देख हुआ। उसने होरी को आश्वासन दिया कि अब होरी को काम करने की आवश्यता नहीं है, वह हर महिने कुछ रूपये भेज देगा। वह लखनऊ चला गया किन्तु झुनिया को धनिया ने जाने नहीं दिया। होरी और धनिया गोबर के व्यवहार से सन्तुष्ट व प्रसन्न थे अब उन्हें अपने उज्जवली भविष्य का कुछ -कुछ आभास होने लगाा था। रूपा अपनी ससुराल में सुखी थी। उसे वहां किसी चीज की कमी न थी। वह बूढ़े पति को पाकर भी प्रसन्न थी और अपने ही मन में प्रसन्न रहती थी। रामसेवक भी उसको पाकर प्रसन्न हैं वह हर समय उसकी प्रत्येक इच्छा को पुरी करने को उद्यत रहता है। रूपा से जरा-सा संकेत पाते ही उसने उसके यहां गाय भेज दी। गोबर के लड़के को देख होरी भी प्रसन्न रहती थी। अब होरी को केवल एक चिन्ता रहती कि किसी प्रकार रामसेवक के रूपये लौटा दे। इसलिए वह कठिन परिश्रम करता हैं गांव में कंकड़ की खुदाई दिनभर की लू-धूप में करके रात को घर लौटता है और देर तक सूत काता करता है। इसी बीच एक दिन अकस्मात् हीरा घर लौट आता है और होरी से अपने दुष्कृत्य के लिए क्षमा-याचना करता है। सह्दय होरी उसे गले से लगा लेता है और आत्म विभोर हो उठता है। राम सेवक से रूपए उधार लेते समय जिस पराजय का बोध उसे हुआ था, हीरा के आ जाने से विजय में परिणत हो जाता है। प्रसन्नत के इस उल्लास में वह जी-तोड़ काम करने लगता है। एक दिन दोपहर को काम करते समय लू लगने से वह अचेत हो जाता है उसके घर खबर पहुँचाई गई धनिया दौडी आई। हीरा और शोभा भी आ पहुँचे। धनिया ने यह दशा देखी तो उसे अपना सुहाग लुटता दिखाई दिया। उसे होरी के चेहरे पर म त्यु की झलक दिखाई दी। सब लोगों ने जब कहा गोदान का समय आ गया है तो वह विक्षिप्त

सी घर में गई और बीस आने पैसे पंडित दातादीन के हाथ में रखती हुई बोली कि घर में न गाय है, न बदिया सूत कताई के यही बीस आने पैसे है। यही उनका गोदान हैं यह कहते ही वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी और उधर होरी का प्राणान्त हो रहा था।

**मेहता एवं मालती एवं मालती से सम्बधित नागर -कथाः**- राय साहब अमर पाल सिंह अवध क्षेत्र के जमींदार है और लखनऊ में रहते है। होरी आदि ग्रामीण पात्र उन्हीं की सिर रियासत में रहते है। वैसे राय साहब बेलारी गांव में भी रहते है। सैद्धान्तिक रूप से राय साहब राष्ट्रवादी विचारों के है। और सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले में कौंसिल की सदस्यता छोड़कर जेल-यात्रा भी कर आए है। वे मन से अत्यन्त उदार सहिष्णु और कोमल है। किन्तु चुंकि जमींदारी ही उनकी जीविका है इसलिए व्यवाहारिक द ष्टि से कठोर एवं शोषक भी है। धार्मिक प्रव ति होने के कारण प्रतिवर्ष दशहरे पर धनुष-यज्ञ लीला भी करवाते है। उस वर्ष भी होरी को उसमें जनक के माली की भूमिका दी गई है आयोजन में रायसाहब के मित्र लखनऊ के डॉ. मेहता दर्शनशास्त्र के प्रवक्ता, डॉ. मालती, मि. खन्ना (मिल मालिक पूंजीपति), ओंकारनाथ बिजली के सम्पादक, खुर्शेद (व्यापारी) और मि. तंखा (चालबाज राजनीतिज्ञ) आदि भी पधारे है। प्रसंगवश उन सब बौद्धिकों में जमींदारी प्रथा को लेकर बहस छिड़ जाती है और भी अनेक बातें होती रहती है। वहीं पर पता चलता है कि खन्ना आपनी पत्नी गोबिन्दी से संतुष्ट नहीं है और मालती के प्रति आकृष्ट है। जबकि मालती डा. मेहता के प्रति आकर्षित है। इसी बीच, जब धुनष-यज्ञ की लीला चल रही थी और राय साहब अपनी मित्र-मण्डली के साथ अंदर कमरे में हास-परिहास कर रहे थे तभी मेहता अफगान का वेश धारण कर यह कहते हुए सबके चौंका देते है। कि राय साहब के आदमियों ने सुन के आदमियों को लूट लिया है और वह अफगान अब या तो एक हजार रूपए और मालती को ले जाएगा या रायासाहब को अपनी बंदूक की गोली से भार डालेगा। अफगान का क्रोध देखकर क वह भी सहम गए। उसी समय होरी किसी काम से आया और अफगान को देख उसे दबोच लिया। दाढ़ी नोचते ही भेद खुल गया और अफगान के रूप में मेहता को देख कर सभी व्यक्ति अपनी कायता पर लज्जित हुए। इसके बाद सब लोगों ने तीन दलों में आकर शिकार के लिए प्रस्थान किया। मेहता-मालती एक साथ, राय साहब और खन्ना का एक दल बना और तीसरे में थे मिर्जा खुर्शदी और तंखा। जंगल में जाकर तीनों दल अलग-अलग हो गये मालती मेहता से प्रेम करती थी अतः एकान्त चाहती थी, किन्तु वे आगे बढ़ते जाते है। कुछ देर में वे एक नाले के पास पहुंच गये। मेहता नाले को पार करने के लिए पानी में घुस गया। नाला गहरा था और प्रभाव तेज था। जब पानी मेहता की छाती तक आ गया तो डर के मारे मालती उन्हें वापस बुलाने लगी किन्तु जब वे नहीं लौटे तो स्वयं भी नाले में घुस गयी! मालती उन पर पुरी तरह समर्पित हो जाना चाहती थी किन्तु मेहता अभी उसे इस योग्य नहीं समझते थे। तभी अचानक मेहता ने एक चिड़िया को देखा और बन्दुक दाग दी। घायल चिड़िया नाले में गिर पड़ी और बहने लगी। मेहता पानी में घुस गये किन्तु बहुत दूर निकल जाने पर भी उसे पकड़ नहीं पाये तभी एक ग्राम्य बाला ने चिड़िया को पकड़ लिया और मेहता एवं मालती को अपने झोंपड़े मे ले गयी। वहां ग्राम्य बाला के व्यवहार से मेहता अति प्रसन्न हुए और मालती के दुर्व्यवहार पर उन्हें क्षोभ हुआ। दोनों वापस लौट आयें। दूसरी और खन्ना, तंखा, रायसाहब और ओंकारनाथ भी खाली हाथ वापस लौट आये थे। एक दिन खुर्शेद ने नगर में बूढ़े लोगों की कबड्डी करवायी। मेहता और मिर्जा ने भी खेल में भाग लिया। खेल में मेहता की विजय होती है। खुर्शद ने गोबर को अपने साथ नौकर रख लिया। अभी तक मेहता की द ष्टि में मालती में वे गुण नहीं थे जो एक पत्नी में अपेक्षित होते है। मालती इस तथ्य को जानती है इसलिए स्वयं को मेहता के अनुरूप आदर्शा में ढालने का प्रयत्न करती है उसने एक बार महिलाओं के एक क्लब की ओर से मेहता का भाषण करवाया जिसमें मेहता ने नारी की सदाशयता, महानता एवं उसके देवी रूप का बखान किया जब भाषण समाप्त हुआ तो मेहता और मालती साथ ही घर को चले गये। मार्ग में मेहता ने बताया कि आजकल खन्ना और गोबिन्दी में तीव्र मतभेद चल रहे मन मुटाव का कारण मालती है क्योंकि वह इन दोनों के प्रेम के बीच की दीवार बनी हुई है। मालती खन्ना का तिरस्कार करती है। उधर राय साहब को जब यह मालूम हुआ कि पंचों ने होरी से डंड लिया है तो उन्होंने कारकुन नेखिराम को बुलाकर खूब डांटा ओर डांड के रूपए सबसे भरवा लिए। नोखेराम ने बिजली के सम्पादक ओंकारनाथ को रिपोर्ट छपने भेज दी जिसमें यह दर्शाया गया था कि राय साहब किस ढंग से जनता का शोषण करते है। राय साहब को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने ओंकार

नाथ को खूब छटकारा। खन्ना और गोबिन्दी में प्रायः अनबन रहती थी। जब उनका लड़का बीमार पड़ा और खन्ना ने डाक्टर मालती को बुलाना चाहा तो झगड़ा हो गया और खन्ना ने गोबिन्दी को पीट दिया। गुस्सें में भरी गोबिन्दी कभी न लौटकर आने के उद्देश्य से घर से निकल पड़ी किंतु चिड़ियाघर के पार्क में मेहता ने जब उसे बहुत समझाया तो वह पुनः घर लौट आई उधर राय साहब कोसिल का चुनाव राजा सूर्य प्रताप सिंह के विरूद्ध लड़ रहे थे, पुत्री का विवाह भी करना था और ससुराल की जायदाद के विषय में भी मुकदमा चल रहा था।

खन्ना की मिल में मजदूरों ने हड़ताल कर दी और फिर एक दिन खन्ना की चीनी मिल में किसी ने आग लगाा दी। मिल को जलता देख खन्ना विक्षिप्त-सा हो उठा और लाखों रूपये की सम्पत्ति स्वाहो होते देखता रहा। किसी प्रकार मेहता और मालती उसे घर लाये। गोबिन्दी के व्यवहार से खन्ना का कायाकल्प हो गया और उनका मनमुटाव सदैव के लिए समाप्त हो गया। मालती खन्ना गोबिन्दी के मार्ग से हट चुकी थी। मालती का भी धीरे-धीरे कायाकल्प हो रहा था अब वह एक आदर्श भारतीय नारी बन चुकी थी और मेहता एवं मालती पुनः एक दूसरे की ओर खिंचने लगे थे। रायसाहब की लड़की की शादी हो गयी। उनके दो अन्य उद्देश्य भी पूरे हो गये। उनके विरोधी राजा साहब उनसे पराजित हो गयें और मुकद्दमें में भी ससुराल की जायदाद उन्हें मिल गयी। अब राजा साहब अपनी लड़की का विवाह उनके लड़के रूद्रपाल से करना चाहते थे किन्तु रूद्रपाल ने पहले ही उनकी अनुमति के बिना मालती की छोटी बहन सरोज से विवाह कर लिया। फलतः रायसाहब से रूद्रपाल का झगड़ा हो गया। वह सरोज को लेकर इंग्लैड चला गया। साथी, उसमे तंखा के भड़काने पर फिजूलखर्ची के लिए रायासाहब पर दावा कर दिया और जो जायदाद उन्हें मिल थी, वह भी चली गयी। रायसाहब को अब अपनी पुत्री मीनाक्षी की ओर से भी कोई अच्छा समाचार नहीं मिल रहा था पति -पत्नी दोनों में कलह इतना बढ़ गया था कि वह अलग रहने लगी और अपने खर्चे के लिए दिग्विजयसिंह पर दावा ठोक दिया। रायासाहब भी निराश होकर उपासना और भक्ति की और उन्मुख हो गये। किंतु फिर भी उन्हें शान्ति न मिल सकी। वे वास्तव मे जीवन में सफल होकर भी अन्ततः पराजित हो गये थें।

मालती ने अब मेहता से मिलना बहुत कम कर दिया था किन्तु फिर भी एक दिन मेहता उससे मिल ही गया। मेहता की दयनीय दशा देखकर वह द्रवित ही उठी। यद्यपि मेहता एक हजार का वेतन पाते थे फिर भी वे अपने कपड़े सिलवा न पाते थे क्योंकि निर्धन छात्रों मे ही उनका वेतन बँट जाता था बात यहां तब बढ़ गयी थी कि वे अपने मकान को कई महानों का किराया भी न दे सके। एक दिन मालती जब उसके घर पर बैठी थी तो कुर्की आई देखकर मालती ने सारा किराया भुगतान कर दिया और मेहता को अपने बंगले पर ले गई उनके लिए उसने दो कमरे खिली करवा दिये। जब मेहता को मालती से मिलन का पर्याप्त अवसर मिलता है। उनके मित्र समझते है कि यह उनके विवाह की तैयारी है।

गोबर अब मालती के पास माली का काम करता है। वह अपनी पत्नी झुनिया ओर पुत्र मंगल के साथ बाग में एक छोटी-सी झोपड़ी बनाकर रहता है। मालती मंगल को बहुत प्यार करती है एक दिन मालती ने देखा कि मंगल को ज्वर है। मालती को भय हुआ की कहीं चेचक न हो मालती रात दिन उस की सेवा करने लगी और रात को भी उसे पास सुलाती। बच्चे को चेचक निकल आई थी। वह खुजली और पीड़ा से बेचैन होकर करूण स्वर मे कराहता और मालती की ओर दयनीय नेत्रों से ताका करता था। अब मेहता को भी मंगल की बड़ी चिंता होने लगी थी। वह भी दिन में दो-चार बार उसको देख लिया करते थे। मालती उसे कोमल हाथों से उठाती, कंधे पर उठाकर कमरे में टहलाती और बड़े स्नेह से बहलाकर उसे दूध पिलाती। मालती का यह वात्सल्य स्नहेह देखकर मेहता की द ष्टि उसे केवल रमणी नहीं, परन्तु सच्चे अर्थों में माता और देवी समझने लगी थी। इससे पूर्व जब खन्न की पत्नी गोविन्दी बीमार पड़ी थी, तब भी वे उसकी सेवा से अत्याधिक प्रभावित हुए थे किन्तु उसका यह रूप तो उसके लिए आश्चर्यजनक ही था। एक रात अचानक मंगल की रोने की आवाज सुनकर मेहता कमरे में आए तो देखा कि मालती बच्चे को गोद में लिए बैठी थी और बच्चा अनायास ही रो रहा था। मालती ने उसे गोद में लेकर टहला कर मनाने और चुप कराने का प्रयत्न किया किन्तु बच्चा रोता रहा। मालती का यह वात्सल्य और मात भाव देखकर मेहता मंत्रमुग्ध से उसे देखते खड़े रहे और उसकी आँखें सजल हो उठीं। मेहता ने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया

और टहलाने लगा। उनकी गोद में आते ही बच्चा चुप हो गया और थोड़ी ही देर में सो भी गया। बच्चे को सुलाकर मेहता मालती को सत ष्ण द ष्टि से देखते रहे। मालती ने कहा, ''मैंने बहुत दिन हुए अपने को तुम्हारे चरणों में समर्पित कर दिया। तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है। यह वरदान मेरे जीवन को सार्थक कर देने के लिए काफी है। मेहता मालती को पत्नी रूप में ग्रहण करना चाहते थे किन्तु मालती मित्र बनकर रहना चाहती है। दोनों इतने भावावेश में आ गए कि एक-दूसरे के आलिंगनपाश में आबद्ध हो गए।

**प्र०. 3 यथार्थ और आदर्श का समन्वय प्रेमचन्द की उपन्यास कला की विशेषता है, यह कथन गोदान में चरितार्थ होता है। उपन्यास मानव जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या होता है। अतः जब तक उसमें मानव-जीवन की सच्चाइयां अभिव्यक्ति नही पांएगे वह उसके जीवन का दस्तावेज नही बन सकता। गुण-अवगुण, अच्छाइयां बुराइयां सभी में हाती है और मुनष्य की इन तमाम विशेषताओं का उपन्यास में यथा तथ्या चित्रण ही यथार्थाकंन हैं आदर्शवादी चरित्र अतिमानवीय अथवा पर-शक्ति सम्पन्न होते हैं स्वाभाविकता, सामान्यत्व, सम्भवता और सुलभता इन चरित्रों में नही हाती। आदर्शवाद और यर्थावाद का समन्वय करने वाली एक विचारधारा के रूप में आदर्शन्मुख यथार्थवाद के नाम से एक नयी विचारधारा का हिन्दी में प्रादुर्भाव प्रेमचन्द द्वारा किया गया। यथार्थ का प्रतिपाद पुर्णतया करके भी उसकी अन्तिम परिमति आदर्श में ही इस बाद में दिखायी देती है। हमारे जीवन का मूल और विकास यथार्थ में है, पर उसका लय आदर्श में होना चाहिएं जीवन के प्रति भारतीय मान्यताएं आदर्शवादी ही रही है।**

**प्रेमचन्द जी का मतः-**मुन्शी प्रेमचन्द जी ने स्वयं भी इस विवादास्पद विषय पर अपना मत वयक्त किया हैं उनके अनुसार यथार्थिवाद हमारी दर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यर्थावाद हमें निराशवादी बना देता है। मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है हमाको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।...........आदर्शवाद हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय पवित्र होते है, जो स्वार्थ की वासना से रहित हो है। जो साधु प्रकृति के होते हैं यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार-कुशल नहीं होते , उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है। प्रेमचन्द जी पुनः लिखते है यथार्थवाद यदि हमारी आंखे खोल देता है। तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुंचा देता हैं लेकिन जहां आदर्शवाद में यह गुण है। वहां इसके बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को चित्रित न कर बैठें, जो सिद्धांतों के मर्तिमान रूप हों जिनमें जीवन न हों, किसी देवता की कामना करना मुश्किल नही है लेकिन उस देवा में प्राण प्रतिष्ठा करना मुश्किल है। और इसीलिए हम वही उपन्यास उच्च कोटि के समझते है जहां आदर्श बाद और यथार्थवाद का समन्यव हो गया हो। उसे आप कह सकते हैं उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की स ष्टि करना है जो अपने सदुव्यवहार से है पाठक को मोहित कर ले। जिस उपन्यास के चरित्रों में यह गुण नही है वह दो कौड़ी के है।...... साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं हैं ..... वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, हमारे मनुष्यत्व को जगाता हैं। हममें सव भावनाओं का संचार करता है। हमारी द ष्टि को फैलता है।

इस प्रकार प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में जो कथा वर्णित की गयी है उनमें उनके तथाकथत आदर्शवाद का एक बड़ा भाग तो यथार्थवाद के अन्तर्गत चला जाता हैं हां, जहां प्रेमचन्द यह कहते है कि उपन्यासकार को एक ऐसे की कल्पनालोक का निर्माण करना चाहिए, जहां पहुँचकर पाठक अपने आस-पास दुनिया को भूल सके, यह अवश्य आदर्शवादी द ष्टिकोण है।

गोदान प्रेमचन्द जी का एक ऐसा उपन्यास है जिसको लिखते समय तक लगता है प्रेमचन्द जी के आदर्श और यथार्थ के विषय में विचारों में बड़ा व्यापक परिवर्तन आ गया थां उन्होंने आदर्श के खोखलेपन की भी संभवतः अनुभूति कर ली थी। यही कारण है कि गोदान में उनका यथार्थवादी स्वर अधिक मुखर हो उठा है और आदर्श का स्वर कुछ मद्धिम-सा पड़ गया है। श्री हंसराज रहबर का विचार है "कि प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के नाम पर इन दोनों विचारधाराओं में जो समझौता किया था, वह सर्वथा असंगत और अप्राकृतिक था। इसलिए जीवन के अंतिम पर्व में जब उन्हें निजी अनुभव का बोध हुआ तो उन्होंने स्वयं उस समझौते को तोड़ दिया। 'गोदान' उपन्यास और 'कफन' संग्रह की कहानियां में वे आदर्श को छोड़कर एकदम क्रांतिकारी बन गए। इसके विपरीत डॉ. गोपाल

राय, श्री नलिन विलोचन शर्मा के इस कथन कि 'गोदान केवल सत्य का वाहक है' का प्रतिवाद करते हुए लिखते हैं कि "गोदान के सूक्ष्म अवलोकन से स्पष्ट है कि इसमें घटनाएं नहीं है। होरी का रायसाहब के यहाँजाना, मार्ग में भोला से उसी भेंट होना, भोला को होरी का भूसा देना, होरी का महाजनों द्वारा शोषण और अंत में उसकी म त्यु इनमें से एक भी कार्य ऐसा नहीं, जिसे सही अर्थो में घटना कहा जा सके। झुनिया और गोबर का प्रेम, गोबर का भाग कर लखनऊ जाना, चमारों द्वारा मातादीन के मुंह में हड्डी ठूंसना, आदि घटनाएं भी कौतुहलोत्पादक नही कही जा सकती, यद्यपि इनमें मनोंरंजन का रस कुछ गाढ़ा अवश्य है। इन 'घटनाओं' के प्रस्तुतीकरण का ढंग कुछ ऐसा है, जिससे कौतूहल का तत्व इनसे बिलकुल निचोड़ लिया गया प्रतीत होता है। गोदान में यदि सही अर्थों में कुछ घटनाएं दिखाई पड़ती है, तो वे नगरकथा- मेहता मालती राय साहब -खन्ना की कहानी -से सम्बद्ध है। उदाहरणर्थ रायसाहब के यहां सगून के अवसर पर पं० आंकारनाथ को खराब पिलाया जाना, मेहता का अगान बनकर तमाशा खड़ा करना, मिर्जा खुर्शेद द्वारा कबड्डी का आयोजन, खन्ना की मिल में आग लगना, नदी के किनारें चांदनी राम में मेहता और मालती की प्रेमवार्ता आदि। ध्यातव्य है कि ये घटनाएं पाठकों में कौतूहल उत्पन्न करने के लिए नहीं, एक विशेष आदर्श के प्रतिपादनार्थ कल्पित की गयी है। ये घटनाएं यथार्थ है। पर यह कथन अतिशोक्तिपूर्ण है कि गोदानमात्र सत्य का वाहक है। गोदान की एक कथा मालती मेहता की उपन्यासकार के विशेष आदर्श से परिचालित हैं, जिसके कारण यह समची कहानी यथार्थ और अविश्वसनीय हो गई है प्रेमचन्द का नारी-विषयक आदर्श जो गोदान में अनेकत्र वर्णित है तर्क रहित युगधारणा के प्रतिकूल अतएव अयथार्थ है। इससे पूर्व कि हम अपने मत की स्थापना करें, यहां यह भी विचारणयी है कि 'गोदान' को यथार्थवादी रचना समझने का भ्रम क्यों होता है और साथ ही उन पर विचार करना भी आवश्यक हैं इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द को यथार्थवादी मानने वाले विद्वानों का सबसे पहला और प्रमुख दावा यह है कि 'गोदान' के होरी के रूप में प्रेमचन्द ने अपनी सभी पुरानी मान्यताओं और आदर्शो को भस्मीभुत होता दिखलाया है तथा अपने सबसे प्रिय पात्र मे आदर्शवाद की हार चित्रित की हैं। इसी प्रकार यह भी बताया जाता है कि गोदान में प्रेमचन्द ने कोई हल देने की कोशिश नहीं है और उनकी दुष्टि यहां वस्तुन्मुखी ही है। डॉ. राम विलास शर्मा कहते हैं, "प्रेमचन्द का आदर्शवाद उनकी कृतियों केएक ही पहलू को बिगाड़ता है वह है समस्या से एक सुन्दर परिणाम निकालने वालो। जहां उनका आदर्शवाद दब गया और उन्होनें बरबस परिणाम ढूंढने का प्रयत्न नहीं किया या समस्या को ही सामने रखकर सन्तोष कर लिया है, वहां वे अद्वितीय हैं। 'गोदान' मे वास्तव में ऐसा ही किया गया हैं।" आगे डॉ. शर्मा कहते है कि "उनके अन्तर में बसा हुआ यथार्थवाद, समस्या की जटिलता चित्रित करने में बहुत कम मेल -मुलाहिजा करता है।" यहीं इन विद्वानों का तीसरा तर्क है कि प्रेमचन्द की आतंरिक मनोव ति यथार्थवाद की ओर थी। उन्होंने किसानों पर जमींदारों के अत्याचारों को कम करके नही दिखलाया। आर्थिक शोषण का यथार्थ चित्रण उनकी पूर्ण भयानकता के साथ उन्होंने किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों की समस्यामूलकता, उन्हें यर्थावादी कलाकार बना देती है विशेषकर तब जब वे समस्या की जटिलता ही चित्रित करते है। समाधान की ओर नहीं दौड़तें। 'गोदान' में समस्या का कोई हल नहीं हैं और किसान तथा महाजन-समस्या अपनी पूर्ण भयानकता के साथ चित्रित हुई हैं। अतः समीक्षकों के अनुसार वे शुद्ध यथार्थवादी कलाकार हैं।

**द ष्टि कोणगत संकागिताः-** उपर्युक्त द ष्टिकोण पूर्णतः एकांगी है और समीक्षा की यह द ष्टि उतावलीपूर्ण है। जैसा कि डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने कहा है।, इसमें प्रेमचन्द की विचारधारा मात्र परक द ढ़ पूर्वाग्रह के साथ द ष्टि रखी गई है। उनकी कला के विकास को विस्म त कर दिया गया है। प्रेमचन्द के पिछले उपन्यासों की सबसे बड़ी कलात्मक और इसी कारण जीवन दर्शन-सम्बन्धी त्रुटि यह थी कि वह समस्याओं के कृत्रिम समाधान की ओर दौड़ पडते थे। आदर्श के प्रति यह उनका अनुचित मोह था। गोदान में उन्होंने अपनी इस कलात्मक त्रुटि को दूर किया तथा साहस के साथ अपने इस साहित्यक विकास व्यवहार में परिणत किया कि ट्रैजेडी हमे अधिक प्रभावित करती है। यहां आदर्श की सिद्धि के लिए परिणाम को तोड़ा-मरोड़ा नहीं गया है।

**होरीः-** वर्ग-संघर्ष का विरोधी अस्तु आदर्शवादी है। - कुछ विद्वानों का यह अनुमान कि गोदान तक आकर प्रेमचन्द आदर्शवाद को छोड़कर शुद्ध यथार्थ अपनाने लगे थे और वर्ग-संघर्ष में विश्वास करने वाले मार्क्सवाद की और

अग्रसर ही रहे थे, वे गांधीवाद की कुंठाओं और पूर्वाग्रहों की जल्दी-जल्दी छोड़ते जा रहे थे, भी असंगत है। सबसे पहली बात तो यह है कि गोदान में होरी की हार चित्रित ही नही की गई है। अतः यहां भी वही आदर्शवादी किसान होरी के रूप में है, जो जीवन भर कठिनाइयों से लडता रहा और अन्त में आन्नदपूर्वक स्वग्र सिधार गया। प्रेमचन्द ने उपन्यास के अंत में कहा भी है-''जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं, मानो उसके चरणों पर लौट रहीं थीं। कौन कहता है जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास यह गर्व यह पुलक क्या हार के लक्षण है। इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएं है। दूसरी बात यह है कि समस्या की जटिलता चित्रित करते हुए भी प्रेमचन्द की द ष्टि सदैव आदर्शवादी रही है। कुछ ऐसी बातें भी है। जो प्रेमचन्द की यथार्थवादी प ष्ठिभूमि पर ले आतीं है कथोपकथन, भाषा की सामान्यता या पात्रानुरूपता और पात्रों की विनोदात्मक बातचीत और शैली संबंधी विशेषताएं यथार्थ को छूती हुई परिलक्षित होती हैं। प्रेमचन्द के पात्रों की गतिविधि यथार्थ का आभास लिए हुए जान पड़ती है। परन्तु केवल भाषा या शैली सम्बन्धी विशेषताओं को लेकर किसी लेखक को यथार्थवादी नहीं कहा जा सकता। पात्रों के अंतर्मन में निहित आदर्शः यथार्थ कहाँ है?

ऊपर से देखने पर यही प्रतीत होता है कि 'गोदान' में चरित्र-चित्रण यथार्थवादी है। वस्तुमुखी परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यह ठीक है कि 'गोदान' में मनोवैज्ञानिक भिति पर सूक्ष्म मनोभावों का आघात-प्रतिघात दिखलाया गया है। और चरित्रांकन प्रणाली भी यथार्थवादी है किंतु पात्रों की स्नायुओं में आदर्शवादी धारा प्रवाहित हो रही है। प्रधान पात्र होरी, मेहता एवं मालती आदर्शवादी हैं और प्रायः प्रेमचन्द जी के मानस पात्र है। होरी का जीवन तीव्र घात-प्रतिघातों के बीच चलता है, पर वह अन्धविश्वासों से ग्रस्त, धार्मिक श्रद्धालु, दूसरे शब्दों में, प्राचीनता का प्रेमी आदर्श किसान है। अन्त तक वह एक ही गति से लड़ता है। जीवन संग्राम से भाग नहीं जाता। चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में आदर्श और यथार्थ की सीमा-रेखा यह है कि आदर्शवादी चरित्र-चित्रण स्थिर और अप्रगतिशील होता है, जबकि यथार्थवादी परिस्थितियों के कारण अस्थिर और विकासशील। 'गोदान' का होरी अन्त तक वही होरी है जो गोदान के पहले प ष्ठ पर हमारे सामने आता है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के शब्दो में-'गोदान' में प्रेमचन्द जी भारतीय किसान के आदर्श स्वरूप को भूले नहीं है। उपन्यास का नायक होरी सारी बाधाओं और संकटों के रहते हुए अपने मूल आदर्श को विस्मरण नहीं कर सका। वह अन्ततः आदर्शवादी है।

**मेहता-मालती : आदर्शवाद का समुच्चय** - गोदान में मेहता और मालती सम्पूर्णतः आदर्शवादी हैं। यथार्थ जगत् में स्वच्छन्द प्रेम का कभी भी ऐसा अन्त नहीं होता जैसा कि प्रेमचन्द जी ने दिखलाया है। मालती के चरित्र का विकास क्रमशः आदर्शवादी नारी की ओर ही हुआ है और अन्त में उसे त्याग तथा पवित्रता की देवी के रूप में पाते हैं। आदर्शवाद मानवीय जीवन की जिन उच्च सम्भावनाओं पर आश्रित रहता है, वे मेहता में पूर्णता को प्राप्त हुई हैं। इन चरित्रों के आधार पर प्रेमचन्द को आदर्शवादी ही कहा जायेगा।

डॉ. इन्द्रनाथ मदान का कहना है कि अपनी असन्दिग्ध प्रतिभा हुए भी प्रेमचन्द अनैतिक पात्रों की स ष्टि क्यों नहीं कर सके, इसका मूल कारण यह है कि कला के सम्बन्ध में उनकी अपनी धारणा है। उनके भीतर का उमड़ता हुआ आदर्शवाद इतना प्रखर है कि वह उनसे ऐसे नायक की स ष्टि करवा लेता है जो शुद्ध रूप में मानवीय आदर्शों से प्रेरित हो और यही कारण है कि उस नायक के आस-पास जिन दूसरे पात्रों का जमघट है, सब आदर्शवाद की प्रतिभा के लिए ही निर्मित हुए हैं। मानव-प्रकृति की कमजोरियों पर ध्यान दिये बिना मानव हृदय की अच्छाई-बुराई पर द ष्टिपात किये बिना वे अपने पात्रों से आदर्श व्यवहार करते हैं।

'गोदान' के कथानक का विकासक्रम भी आदर्शवादी है। प्रारम्भ में कुछ यथार्थवादी रहते हैं परन्तु अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उनका आदर्श सामने आ जाता है। 'गोदान' में उपन्यासकार का निजी द ष्टिकोण अधिकांशतः मेहता द्वारा व्यक्त हुआ है ओर यदि एक वाक्य में उनके द ष्टिकोण को कहना चाहें तो कहा जा सकता है कि विचारों में मेहता पूर्णरूपेण आदर्शवादी है। चाहे नारी-स्वतन्त्रता विषयक विषय हों, चाहे प्रेम-प्रसंग, मेहता सर्वत्र अपना आदर्शवाद सामने रखकर चलते हैं।

**युग की सच्ची किन्तु आदर्शवादी त्रास्दीः-** आदर्श सत् का पक्षपाती होता है। कलाकार के वैयक्तिक पहलू में के लिए हुए चलता है कि और अनेकता में एकता देखने का प्रयत्न करता हैं 'गोदन' इसका समर्थन करता है। कुछ लोगों को भी आपति हो सकती कि ऐसा नहीं है। 'गोदान' में सत् की पराजय दिखलाई गई है परन्तु यह द ष्टिकोण का भेद है। 'गोदान' का होरी हारने पर भी हारा नही है यह उसीक वीरगाथा है उसके भगीरथ प्रयत्नों की गाथा।

प्रेमचन्द जी स्वयं कभी इसके न समर्थक थे और न उन्होंने ऐसा किया है। पर, होरी को मोटा दिखाना या अन्त में सम द्ध दिखाना अस्वाभाविकता होती, वह स्वयं कहता है-''तो क्या यह मेरे मोटे होने के दिन हैं। मोटे वह होते है जिन्हें न रिन की सोच होती है, न इज्जत की। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन का क्या सुख! सुख तो जब है कि सभी मोटे हों।'' फिर होरी की प्रत्यक्ष विजय न दिखलाने से ही 'गोदान' यथार्थवादी रचना नहीं हो जाती। क्या त्रासदी आदर्शवादी नहीं हो सकती? 'गोदान' अपने युग की एक सच्ची त्रासदी है, जिसकी आधारभूमि आदर्श है। यह सत्य है कि होरी का बाह्मण रूप, उसकी परिस्थितियां, उसका परिवेश, उसकी चिन्ताएं और जीवन की तमाम विडम्बनाएं नितान्त यथार्थवादी हैं, किन्तु इन सबको जो व्यक्ति- अर्थात् होरी-झेल रहा है, उसके अन्तःकरण में आदर्शवाद स्थापित है। उसका प्रत्येक कार्य आदर्श है। उसमें, स्वार्थ है। किन्तु दूसरे की परिस्थिति का लाभ उठाने की लालसा नहीं। होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेकना उसने सीखा ही नहीं। इसीलिए तो आवश्यकता होने पर भी वह भोला की परिस्थिति देखकर यही कहता है कि- ''किसी भाई का निलाम पर चढा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने हैं। और वह गाय लेने की अपेक्षा उसे भूसा मुफ्त में दे देता है। यह उसके हृदय का आदर्शवाद नहीं तो और क्या है?

डॉ. गोपाल राय के शब्दों में कहें तो-''फिर भी 'गोदान' एक यथार्थवादी उपन्यास है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मालती-मेहता की कहानी को छोड़कर शेष 'गोदान' में यथार्थ की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई हैं। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थवादी और व्यापक चित्रण शायद ही किसी भारतीय उपन्यास में मिले, हिन्दी की तो बात ही अलग है। 'गोदान' भारतीय कृषक जीवन की आंसू भरी कहानी, विषादगीत है। ग्राम जीवन का शायद ही कोई पहलू हो जिस पर उपन्यासकार ने अपनी सहानुभूतिपूर्ण द ष्टि न डाली हो। जिस काल में यह उपन्यास लिखा गया था, उस समय भारतीय कृषक वर्ग जमींदारों महाजनों औार पुरोहितों के निर्मम शोषण का शिकार था। प्रेमचन्द ने बेलारी के अधिकांश गरीब किसानों को इस शोषण चक्र में पिसते दिखाया है। फसल हो या न हो जमींदार लगान वसूलेगा ही साथ ही समय-समय पर किसी धार्मिक उत्सव के लिए शगुन, किसी बड़े पदाधिकारी की दावत के लिए चंदा आदि भी किसानों को देना है .... महाजन रक्त पीकर उसे जीवित मात्र रहने देते हैं। पुरोहित भी धर्म, ईश्वर और परलोक का भय दिखाकर किसानों का शोषण करता है। मिथ्या मर्यादा निर्वाह के लिए भी किसानों को कर्ज लेना पड़ा हैं 'गोदान' में कृषकों की इस दयनीय स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है।

'गोदान' की एक विशेषता यह भी है कि इसमें किसानों के साथ-साथ जमींदारों तथा मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय परिवारों के जीवन का भी यथार्थ चित्रण मिलता है। जमींदार राय साहब के पारिवारिक जीवन को, जीवन समस्याओं और विवशताओं का तथा खन्ना जैसे पूंजीपतियों द्वारा उनके शोषण का जैसा चित्रण प्रेमचन्द कर पाए है। वैसा शायद ही किसी अन्य हिन्दी उपन्यासकार द्वारा सम्भव हो सका है। इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द ने अपने सभी पात्रों को चाहे वे किसान हो या जमींदार समान रूप से सहानुभूति दी है। पं० ओंकारनाथ और मालती जैसे मध्यवर्गीय तथा गोबर जैसे निम्नवर्गीय मजदूरों के जीवन का भी प्रेमचन्द ने यथार्थवादी चित्रण किया है। मिल मालिकों और मजदूरों के संघर्ष का ऐसा विश्वसनीय वर्णन 'गोदान' में ही पहली बार मिलता है। खन्ना के पारिवारिक जीवन की एक झलक दिखाकर प्रेमचन्द पूंजीपतियों के अशान्त पारिवारिक जीवन का चित्र भी प्रस्तुत कर देते हैं। इस तरह उपन्यासकार ने कृषक जीवन के साथ-साथ व हत्तर भारतीय जीवन को भी यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रेमचन्द यथार्थ पर पैनी द ष्टि रखते है। तथ्यों के चित्रण में वे बराबर यथार्थवादी रहे है औार प्रश्न के दोनों पक्षों पर सदैव निर्लिप्त होकर उन्होंने विचार किया है। समस्याओं से संबंधित पात्रों का चरित्र-चित्रण वे इस रूप में

करते है तथा असत् पात्रों के उन्मत-सशक्त बनने को कहानी लिखते समय जरा भी असहिष्णु नहीं होते। उनकी यह उदारतापूर्ण निर्लिप्तता प्रत्येक समस्या के प्रारम्भिक विकास पर बनी रहती है। और इतने समय तक निष्पक्ष रहकर पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है उसके पश्चात् कथा का उतार शुरू होता है, और यही से उनकी आदर्शवादिता जन्मती है। यद्यपि इस परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई परिचयात्मक टिप्पणी या व्याख्या वे नहीं देते। कुल मिलाकर आलोचक अभी तक एक मतैक्य पर नहीं पहुंच सके हैं कि वस्तुतः गोदान आदर्शवादी रचना है या यथार्थवादी। और जैसा कि प्रेमचन्द जी की विचारधारा है, उनके उपन्यास आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी है। किन्तु अभी भी यह विचारधारा भ्रमौत्पादक हैं। यथार्थ का आदर्श की ओर या आदर्श का यथार्थ की ओर उन्मुख होना, वास्तव में एक रचनात्मक संकट है-केवल लेखक का स्वयं का बचाव कहता है। आदर्शोंमुखी यथार्थवाद जैसा कोई मत स्वीकार करना एक गलतफ़हमी पैदा करना है। 'गोदान' में अपनी-अपनी जगह पर यथार्थ भी है और आदर्श भी है। किंतु उपन्यास का मूल स्वर चूंकि आदर्शवादी है। इसलिए हम इस औपन्यासिक रचना को आदर्शवादी ही स्वीकार करते है।

**प्र०4. "गोदान ग्राम-जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य है।" क्या आप इस कथन से सहमत है?**

**अथवा**

**"गोदान ग्राम जीवन और कृषि-संस्कृति को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने वाला अद्वितीय उपन्यास है।" इस कथन पर तर्क सम्मत ढंग से विचार कीजिए।**

उ०. गोदान प्रेमचन्द जी की उन अमर कृतियों में से एक है, जिसमें ग्रामीण भारत की आत्मा का करूण चित्र साकार हो उठा है। इसी कारण कई मनीषी आलोचक इसे ग्रामीण भारतीय परिवेशगत समस्याओं का महाकाव्य मानते हैं तो कई विद्वान इसे ग्रामीण-जीवन और कृषि-संस्कृति का शोक-गीत स्वीकारते है। कुछ विद्वान तो ऐसे भी है कि जो इस उपन्यास को ग्रामीण भारत की आधुनिक 'गीता' कतक स्वीकार करते हैं जो कुछ भी हो, गोदा वास्तव में मंशी प्रेमचंद का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें आचार-विचार, संस्कार और प्राकृतिक परिवेश, जो गहन करूणा से युक्त है, प्रिरिबिम्बित हो उठा है।

डॉ. गोपालराय का कहना है "कि 'गोदान' ग्राम-जीवन और ग्राम संस्कृति को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने वाला अद्वितीय उपन्यास है। न केवल हिन्दी के वरन किसी भी भारतीय भाषा के किसी भी उपन्यास में ग्रामीण समाज का ऐसा व्यापक यथार्थ और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण नहीं हुआ है। ग्रामीण जीवन ओर संस्कृति के अंकन की द ष्टि से इस उपन्यास का वही महत्व है जो आधुनिक युग में युगजीवन की अभिव्यक्ति की द ष्टि से महाकाव्यों का हुआ करता था।" इस प्रकार डॉ. राय गोदान को आधुनिक युग का महाकाव्य ही नहीं स्वीकारते वरन् सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य भी स्वीकारते हैं। उनके इस कथन का यही आशय है कि प्रेमचन्द जी ने ग्राम-जीवन से सम्बन्ध सभी पक्षों का न केवल अत्यन्त विशदता से चित्रण किया है, वरन् उनकी गहराइयों में जाकर उनके सच्चें चित्र प्रस्तुत कर दिए है।

**ग्राम-जीवन का चित्रणः-** प्रेमचन्द जी ने ग्राम -जीवन के चित्रण के अन्तर्गत निम्नांकित पक्षों को चित्रित किया है-

1. गांवों की भौगोलिक स्थिति, उसकी बनावट और प्राकृतिक परिवेश,
2. पात्रों का नामकरन, वेशभूषा और शारीरिक गठन,
3. ग्रामीण पात्रों की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति।
4. पात्रों के कार्य एवं वार्त्तालाप के विषय,
5. पात्रों की भाषा।

इन समस्त पक्षां पर सम्यक, विचार की आवश्यकता से ही आगे इन पर विचार किया जा रहा है-

**गांवों की भोगोंलिक स्थिति, उनकी बनावट और प्राकृतिक परिवेशः-** प्रेमचन्द जी ने जिस ग्राम-जीवन का चित्र 'गोदान' मे प्रस्तुत किया है, उसका सम्बन्ध आज ग्राम-परिवेश से न होकर तत्कालीन ग्राम-जीवन से है। ग्रामीण जीवन को वास्तविक आधार प्रदान करने के लिए प्रेमचंद जी ने चित्र के अनुरूप ही कुछ ऐसे खांचे अथवा चित्रफलक निर्मित किये है जो चित्र को यथार्थ बनाने में सहयोगी सिद्ध हुए हैं। ग्रामीण किसानों के घर-द्वार, खेत-खलिहान और प्राकृतिक द श्यों का ऐसा वास्तविक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। कुछ उदाहरण देखिएः-

कौदई के गांव का चित्र 'गांव क्या था, पुरवा था, दस-बहार घरों का, जिसमें आधे खपरैल के थे, आधे फूस के।'

**भोला की बैठक का चित्र** - 'द्वारा पर बड़ी-सी चरती थी, जिस पर दस बारह गाय भैंसें खड़ी सानी खा रही थीं। ओसारे में बडा-सा तख्त पड़ा था जो शायद दस आदमियों से भी न उठता। किसी खूंटी पर ढोलक लटक रही थी, किसी पर मजीरा। एक ताख पर कोई पुस्तक बस्ते में बंधी रखी हुई थी, जो शायद रामायण हो।'

इसी प्रकार बेलारी क खलिहान का भी ये चित्र देखिए- 'सारे गांव का यही एक खिलिहान था। कहीं मंड़ाई हो रही थी, कोई अनाज ओसा रहा था, कोई गल्ला तोल रहा था। नाई, बारी, बढ़ई लोहार, पुरोहित, भाट, भिखारी सभी अपने-अपने जेवरे लेने के लिए जमा हो गए थे। एक पेड़ के नीचे झिंगुरीसिंह खाट पर बैठे अपनी सवाई उगाह रहे थे। कई बनिये खड़े गल्ले का भाव-ताव कर रहे थे। सारे खलिहान में मण्डी की सी रौनक थी। एक खटकिन बेर और मकोय बेच रही थी और एक खौंचेवाला तेल के सेव और जलेबियां लिये फिर रहा था।

इसी प्रकार ग्राम्य-प्रकृति के चित्र प्रस्तुत करने में भी प्रेमचन्द जी ने यथार्थवादी धरातल अपनाया है। ऐसे में वे केवल प्राकृतिक उपादानों का वर्णन करते हैं, जो ग्राम्य-परिवेश में प्राप्य हैं। सजावट एवं अलंकरण को उन्होंने कहीं पर भी महत्व नहीं दिया है। इस प्रकार की ग्राम्य-प्रकृति का एक चित्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

**पात्रों का नामकरण वेशभूषा और शारीरिक गठन**- आलोच्य उपन्यास में पात्रों के नामकरण भी उनके सामाजिक परिवेश और स्तर के अनुरूप है। कुछ ग्रामीण पात्र है-होरी, गोबर शोभा, हीरा, झुनिया, पुनिया, धनिया, झींगुर, नौहरी, सिलियां, कलिया रूपा, सोना एवं दमड़ी बेसार आदि। इन नामों में भी स्तरगत वैविध्य दिखाई देता है। जिन पात्रों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति निम्नतर हैं, उनके नाम पदवीरहित और जिनकी आर्थिक सामाजिक स्थिति उच्च है, उनके नाम के साथ पदवियां लगी हैं। झिंगुरीसिंह, पंडित दातादीन और दुलारी सहुआइन के नामों के आगे पदवियां लगी होने के कारण उनका स्तर उच्च है। होरी यद्यपि उपन्यास का नायक है किन्तु पदवीरहित है। कहीं-कहीं पात्र आदर-भाव व्यक्त करते समय उसे होरी महतो कह देता है। इसके विपरीत नागरिक पात्रों के नाम एक तो तत्सम है और दूसरे पदवीयुक्त भी हैं जिसे मिस मालती, डॉक्टर मेहता, वेदप्रकाश खन्ना, ठाकुर अमर पाल सिहं एवं कुंवर दिग्विजय सिंह आदि।

पात्रों का स्तरगत नामकरण करने के साथ ही प्रेमचन्द ने ग्रामीणों की वेशभूषा का भी वास्तविक एवं यथार्थपरक वर्णन 'गोदान' में किया है, जिससे उनकी सभ्यता, संस्कृति एवं आर्थिक स्थिति का यर्थाथांकन संभव हो सका है। होरी की बाहर जाने की पोशाक-लाठी, मिरजई जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ। यह ग्राम्य-सभ्यता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिधान है और ससुराल जान जैसे महत्वपूर्ण अवसरों पर पहनी जाती है। वैसे सामान्य अवस्था में होरी साधारण कपड़े पहनता है।

उपन्यास के प्रथम प ष्ठ पर ही धनिया की जो शारीरिक स्थिति वर्णित की गई है, वह ग्राम्य कृषकों एवं उनके परिवार वालों के शारीरिक गठन एवं उनकी आर्थिक विपन्नता की परिचायक है।

प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण पात्रों के नामकरण, शारीरिक गठन एवं वस्त्रादि का तथ्यपरक चित्रण करने के साथ ही उनकी आर्थिक दयनीयता का चित्रण भी कर दिया है जो यथार्थ होने के साथ ही मार्मिक भी है। इस प्रकार के चित्रणों में ग्राम-संस्कृति भी यथातथ्य रूप में मुखर हो उठी है।

**ग्रामीणपात्रों की आर्थिक और राजनीतिक स्थितिः-** मुंशी प्रेमचन्द ने जिन ग्रामीण पात्रों का उपन्यास में प्रस्तुत किया है उनकी दयनीय आर्थिक दशा का बड़ा ही करूणोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। उपन्यास के नायक

की आर्थिक दशा तो इतनी दयनीय है कि जब गोबर-झुनिया के विवाह प्रसंग को लेकर गांव के पंच उस पर तीस मन अन्न एवं सौ रूपये की डाड़ लगाते है तो रूपयों की व्यवस्था न कर पाने के कारण उसे अपना मकान ही झिंगुरीसिंह के हाथों गिरवी रखना पड़ता है। इतना ही नहीं, लगान, चुकता न कर पाने के कारण उसे जब दातादीन द्वारा यह आश्वासन मिलता है कि यदि वह बूढ़े रामसेवक के साथ बालिका रूपा का विवाह कर दे तो दो सौ रूपयों की व्यवस्था हो जाएगी। विश्वशतः होरी को ऐसा ही करना पड़ता है। उसकी इस गहन वेदना और मानसिक दशा का चित्रण प्रेमचन्द जी इन शब्दों में करते हैं- ''होरी ने रूपये लिये तो उसका हाथ कांप रहा था, उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुंह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के गड्ढे में गिर पड़ा हो और गिरता चला जाता हो। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानों उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया है और जो आता है, उसके मुंह पर थूक देता है।''

इसी प्रकार प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण समाज और उसमें व्यक्ति की स्थिति का भी यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। होरी अपने लड़के गोबर की गर्भवती प्रेमिका झुनिया को अपने यहां शरण देता है। उसका इतना ही भर अपराध है। इस पर गांव के तथाकथित पंच, जो सभी प्रायः गांव के प्रतिष्ठित व्यक्ति है, होरी को बिरादरी से निकाल देने की धमकी देकर उस पर तीस मन अनाज और सौ रूपये की डांड लगा देते हैं। फलतः होरी लाल भर मन कर कमाई हुई फसल डांड चुकाने में दे डालता है और उसके बच्चे रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए बिलबिलाने लगते है। इतना ही नहीं, पंच लोग सौ रूपये न दे पाने के कारण होरी का घर गिरवी रखवा लेते है। ग्रामीण समाज में व्यक्ति की कहीं पर भी कोई इयत्ता नहीं है, सामाजिक भय उस उस पर भूत की तरह छाया रहता है, होरी के प्रसंग में इसका यथार्थ चित्रण हुआ है। यहां तक कि उसकी पत्नी धनिया का विद्रोह भी अन्ततः घुटने टेक देता है।

उस समय की राजनैतिक परिस्थिति का वर्णन प्रेमचन्द जी स्वयं न कर रामसेवक के शब्दों में करते हैं। वह कहता है- "थाना, पुलिस, कचहरी, अदालत सब है, हमारी रक्षा के लिए, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है, जो गरीब है, बेबस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते है। यहां तो जो किसान है, वो सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दें, तो गांव में रहना मुश्किल, जमींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे तो निर्वाह न हो। थानेदार और कानिसटिबिल तो, जैसे उसके दामाद हैं। जब उनका दौरा गांव में हो जाए, किसानों का धर्म है कि वह उनका आदर सत्कार करें, नजर-नयाज दें, नहीं तो एक रिपोर्ट में गांव का गांव बंध जाए।''

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि गोदान' उपन्यास में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का लेखक ने अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है।

**पात्रों के कार्य एवं वार्तालापः-** आलोच्य उपन्यास में स्थान-स्थान पर हमें प्रत्येक पात्र कार्यरत दिखाई देता है। कोई खेत की सिंचाई का काम कर रहा है, तो बीज बो रहा है। होरी कहीं गन्ना काटते तो कहीं कंकड खोदते दिखाई देता है और धनियां के साथ रात में सूत कातता है। खलिहान में अन्न उछींटने, मांड़ने एवं ओसने का द श्य तो व हद् रूप में वर्णित हुआ है। गांव वालों के वार्तालाप के विषय में भी सामान्यतः ग ह-कलह एवं कर्ज इत्यादि ही होत है जिनकी उपन्यास में भरमार है।

**पात्रों की भाषाः-** उपन्यास में ग्रामीण पात्रों के स्तरानुकूल ही भाषा प्रयुक्त हुई है। उनके पात्र अधिकांशतः सरल छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते है और वय, लिंग भाव दशा के अनुसार उनकी भाषा के व्यवहार में भी अन्तर है।

दुलारी सहुआइन के इस कथन में यह तथ्य विचारणीय है- 'बाकी बड़ी गाल-दराज औरत है भाई। मर्द के मुंह लगती है। होरी जैसा मरद है कि इसका निर्वाह होता है।'

**कृषि-संस्कृति का वर्णनः-** प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास में कृषकों की मान्यताएं, विश्वास, संस्कार, मूल्य-धारणाएं, नैतिक द ष्टि और सोचन-समझने के विशिष्ट ढंग का अत्यन्त एवं मार्मिक चित्रांकन किया है। इसमें कृषि आधारशिला है। किसान को भूमि से अत्यधिक ममत्व होता है और हिन्दू होने के कारण गाय उसके लिए श्रद्धा

एवं पूजा की वस्तु है। कृषक की सबसे बड़ी अभिलाषा यही होती है कि उसके पास अपनी भूमि हो तथा द्वार पर एक गाय जुगाली करती रहे। पर जमींदार, साहूकार और सरकार के शोषण एवं अत्याचार के कारण उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो पाती। प्रेमचन्द जी ने होरी के माध्यम से ग्राम-संस्कृति की इस करूण कहानी का अत्यन्त प्रभावक चित्र 'गोदान' में दिया है। भारतीय कृषक अपने खेत को सन्तानवत् समझता है। वह उसकी आजीविका का साधन ही नहीं, मान-प्रतिष्ठा का आधार भी होता है। होरी कहता है-''हमीं को खेती` क्या मिलता है? जो दस रूपये महीने का भी नौकर है, वह भी हसमे अच्छा खाता पहनता है। लेकिन खेतों को तो छोड़ा नहीं जाता-मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इस संस्कृति में कृषक के लिए मजदूरी करना मर्यादा का विरूद्ध समझा जाता है। होरी द्वारा विवश होकर मजदूरी करने की  बात पर धनिया व्यंग्य से कहती है- ''कौन मुंह लेकर मजूरी करोगे, महतो नहीं कहलाते।''

कृषक के जीवन में गाय का भी वही महत्व है जो खेत का, गाय के प्रति श्रद्धा-भाव कृषक की विशेषता है, गाय किसान के द्वार की शोभा, गौरव और सम द्धि की परिचायक है। प्रत्येक किसान मन में गाय की लालसा होती है। गाय की सेवा करना किसान की सबसे बड़ी साध होती है। होरी सोचता- गऊ से तो द्वार की शोभा है। सवेरे-सवेरे गऊ के दर्शन हो जायें, जो क्या कहना, स्वयं प्रेमचन्द जी भी लिखते है- 'हर एक ग हस्थ की भांति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी।' होरी भोला की गायों  को देखकर कहता भी है-'यह जी चाहता है कि इसके दर्शन करता रहूं। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो। हमें तो गाय का गोबर भी मसस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक भी गाय न हो तो कितनी लज्जा की बात है' होरी की गौ लालसा इतनी प्रबल है कि वह छल कपट का सहारा लेकर भी, कर्ज रूप में भोला से गाय ले लेता है। किन्तु उसी का भाई शत्रुतावश गाय को जहर देकर मार डालता है। फिर भी तो लाख चेष्टाओं के बावजूद होरी गाय नहीं ला पाता और इसी साध को लिए मर जाता हे।

गांवों के लोग अत्यधिक परम्परावादी होते है। और इसी कारण शोषण आर्थिक दुर्व्यवस्था एवं पिछड़ेपन के शिकार होते हैं। वह ऋण ले सकता है, मूल का दुगुना सूद दे सकता है, भूखों रह सकता है, किन्तु खेती के साथ मजदूरी नहीं कर सकता क्योंकि यह उसकी मर्यादा के विरूद्ध है। होरी जब अनेक उपाय करने पर भी खेत नहीं बचा पाता तो लड़की रूपा को बेच देता है और इस कारण उसे घोर व्यथा का शिकार होना पड़ता है। यह मर्यादा का प्रश्न ही उसकी दयनीय दशा का कारण बनता है। मर्यादा का यह प्रश्न एक और स्थान पर देखने को मिलता है। जब दरोगा होरी के भाई हीरा के घर की तलाशी लेने का झूठा भय दिखलताा है तो होरी की जो स्थिति हो जाती है, उसका वर्णन प्रेमचन्द जी इस प्रकार करते हैं- 'होरी के मुख का रंग ऐसे उड़ गया, जैसे देह का रक्त सूख गया हो। तलाशी उसके घर हुई हो उसके भाई के घर हुई हो, एक ही बात है। हीरा अलग सही, पर दुनिया तो जानती है, वह उसका भाई है।'

गांवों में लड़कियों के विवाह पर खूब खर्च किया जाता है। होरी की लड़की सोना का विवाह है। सोना के प्रयत्न से उसके ससुराल वाले बिना दान-दहेज शादी करने को तैयार है। लेकिन धनिया को इसमें अपना अपमान मालूम होता है। वह 'कुश-कन्या' देने के पक्ष में नहीं, वह मर्यादा की आड़ लेकर कहती है- 'हमें तो भी अपनी मरजाद का निर्वाह करना है। संसार क्या कहेगा। रूपया तो, हाथ का मैल है। उसके लिए कुल-मरजाद नहीं छोड़ा जाता। 'परिणामतः ऋण से लदे होने पर भी उसे नौहरी से दो सौ रूपये ऋण लेने पड़ते हैं।

किसानों के मन में यह धारणा द ढ़ता से घर चुकी है कि-'छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं।' यही धारणा उनके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। बिरादरी की ग्रामीण संस्कृति में अत्यन्त महत्व है। किसान प्रत्येक दण्ड सहने को तत्पर रहता है किन्तु किसी भी मूल्य पर बिरादरी से अलग नहीं होना चाहता। यद्यपि होरी का परिवार इसकी चिन्ता नहीं करता, किन्तु गोबर की गर्भवती प्रेमिका झुनिया को शरण देने पर बिरादरी उसका बहिष्कार करने का भय दिख्वााती है। उस पर दण्ड स्वरूप तीस मन अन्न और सौ की डांड लगाती है, जिसे होरी सिर झुकाकर स्वीकार कर लेता है। प्रेमचन्द के शब्दों में- 'बिरादरी से प थक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकता था। शादी-ब्याह, मुण्डन-छेदन, जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में है। बिरादरी उसके जीवन

में व क्ष की भांति जड़ जमाए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थीं। बिरादरी से निकलकर उसका जीवन विश्रंखल हो जायगा, तार-तार हो जाएगा।' कृषि-संस्कृति में ब्राह्मण और धर्म का भी बड़ा महत्व है जो कि किसानों के शोषण का कारण बनते है। भोला धर्म के नाम पर होरी के दोनों बैल खोल ले जाता है। पंडित दातादीन ब्राह्मत्व के नाम पर उससे बेगार कराता है। और होरी की द ष्टि में- "अगर ठाकुर या बनिये रुपये के होते, तो उसे ज्यादा चिंता न होती, लेकिन ब्राह्मण के रुपए उसकी एक पाई भी दब गई, तो हड्डी तोड़कर निकलेगी।''

कृषि-संस्कृति में यह भी धारणा है कि गोवध करने वालों को हत्या लगती है। इसी डर से हीरा घर से भाग जाता है। दूसरी ओर, गांव में जो व्यक्ति एक बार जाति भ्रष्ट हो जाता है उसका पुनः जाति में स्थापित हो पाना कठिन है। चमारों द्वारा पं० मातादीन का जनेऊ तोड़ने एवं मुंह में हड्डी डालने के प्रसंग में यह तथ्य उभर कर सामने आता है। इसके अतिरिक्त गांवों में अनेक अंधविश्वास प्रचलित हैं, जैसे- अच्छी वस्तु को लोगों की नजर लग जाना, सत्य असत्य के परीक्षण हेतु गंगाजली उठाना, गौ हत्यारे का प्रायश्चित करना आदि।

गांव में संयुक्त परिवार-प्रथा का बड़ा महत्व है। अलगोझा परिवार का दुर्भाग्य माना जाता है। इससे परिवार की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। होरी को अपने भाइयों द्वारा अलगोझा कराने का बड़ा संताप है। भ्रात त्वभाव को गांवो से कितना महत्व मिलता है इसका उदाहरण होरी है। वह भाइयों के पीछे पत्नी तक की उपेक्षा कर देता है। ग्रामीण कृषक हिन्दू संस्कति के परम्परागत नैतिक मूल्यों का पालन निष्ठापूर्व कर करते है। प्रेमचन्द जी ने लिखा भी है--'भला आदमी वही है, जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे।' साथ ही ग्रामीण नारियों में पतिव्रत्य धर्म का भी बड़ा महत्व है। धनिया इसका सुन्दर उदाहरण है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि 'गोदान' उपन्यास में प्रमचन्द जी ने गाम्य -परिवेश, उसके जीवन एवं सम्बद्ध संस्कृति का अत्यन्त विस्तार से और यथार्थ रूप में चित्रांकन किया है। लेखक का यह वर्णन हमारी ग्रामीण संस्कृति का एक दस्तावेज है। इसलिए यदि आलोच्य उपन्यास को कृषक -जीवन का दर्पण एवं ग्रामीण जीवन तथा संस्कृति का 'महाकाव्य' अथवा 'गीता' कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

**प्र० 5. 'गोदान' में एक सच्ची त्रासदी की तस्वीर अवतरित हुई है।' क्या आप इस कथन से सहमत है?**

**अथवा**

**'गोदान' उपन्यास को क्या एक अलोमहर्षक त्रासदी के रूप में मान्य ठहराया जा सकता है? युक्तिसंगत उत्तर दीजिए?**

उ०. 'गोदान' प्रेमचन्द जी का एक ऐसा क्रांतिकारी उपन्यास है जिसमें तत्कालीन युग अपनी समस्त विकृतियों, विडम्बनाओं एवं सच्चाइयों के साथ चित्रित हो गया है। उसमें अपने समय का यथार्थ ही चित्रित नहीं हुआ है। वरन् तत्कालीन भारतीय कृषक वर्ग का इतिहास भी संरक्षित हुआ है। प्रेमचन्द जी अपने युग और युग और उसकी परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित थे। इसी कारण छोटे-छोटे प्रसंग भी उनकी द ष्टि से ओझल नहीं रहे हैं। अपने समाज की यह पहचान और इसे औपन्यासिक परिस्थितियों से अनुस्यूत कर देने की क्षमता बिरले लोगों में ही होती है। ''वे यह जानते थें कि एक निष्क्रिय समाज पतन के लिए किस बिंदु पर खड़ा है तथा वही समाज सामाजिक जाग ति पाकर जब जागता है तो वह किस तरह अपने अतीत और वर्तमान के संकटों के बीच भविष्य के प्रति आशावादी होता है। सामाजिक चेतना के महीन बिन्दुओं को, उन सामाजिकों के बीच प्रेमचन्द ने पहचाना था, जिन्होंने उस चेतना को स्वाभाविक रूप में प्राप्त किया।" डॉ. गंगा प्रसाद विमल इसी प्रसंग में लिखते है- "उपन्यास कथा होरी जैसे साधारण किसान को केन्द्र बनाकर चलती है, किन्तु केन्द्रीय कथा में होरी मात्र नायक के रूप में ही प्रस्थावित नीं है अपितु वह स्वयं एक कथा सत्य के रूप में स्थापित होता है। होरी की कथा में नगर गांव के दोनों ध्रवान्त भारतीय अर्थतंत्र का खुला हिसाब प्रतीत होते है। परन्तु इन आधारों पर गोदान केवल एक विचार कथा या समस्याओं की कथा नहीं है बल्कि वह मानवीय संघर्ष की कथा है। ऐसी कथा जिसमें स्वाधीनता युग की स्वर क्रांति की लहरी का ज्वार भी है तो सारी लड़ाई का पराजय-बोध थी। बस्तुतः पराजय बोध के केन्द

से यदि हम इस कथाकृति का अवलोकन करें तो हम पांएगे कि गोदान में एक सच्ची त्रासदी की तस्वीर अवरित हुई है।

उपन्यास का नायक होरी एक इतना दीन-हीन किसान है कि उसके माध्यम से भारतीय कृषक वर्ग की करूणा और मार्मिक जीवन-यात्रा की सजीव झांकी प्रस्तुत हो गई है। भारतीय किसान ऋण में ही पैदा होता है, ऋण में ही जीवित रहता है और अपने उत्तराधिकारी पर ऋण का भार छोड़कर मर जाता है। मरते समय उसके पास एक गाय तक नहीं रहती। 'गोदान' उपन्यास ऐसे ही भारतीय किसान के जीवन की करूण एवं अलोमहर्षक त्रासदी है। गाय की आकांक्षा होरी के जीवन का सबसे मधुर स्वप्न उसके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा है। अपनी यह आकांक्षा पूरी करने के लिए वह कुछ भी उठा नहीं रखता, पर पूंजीवादी शोषणचक्र उसकी अभिलाषा को पीस डालता है। अन्त में इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए वह ऐसा जी-तोड़ परिश्रम करता है जो उसकी म त्यु का कारण बनता है और वह गाय की अभिलाषा मन में ही लिए म त्यु का वरण कर लेता है। यद्यपि उसकी यह आकांक्षा त्रासदी -नायक के अनुरूप महान न होकर तुच्छ ही है, किन्तु होरी जैसे विपन्न किसान की तो वह अभिलाषा भी जी -तोड़ प्रयत्नों के बावजूद पूरी नहीं होती। इसीलिए हम इसे त्रासदी की संज्ञा दे देते हैं कि अपनी इस छोटी-सी इच्छा की पूर्ति के लिए किया गया उसका प्रयत्न तो महान है। इसी विफलता ने त्रासदी को और भी मर्मस्पर्शी एवं करूणोत्पादक बना दिया है। होरी चूंकि एक रूढ़िवादी और धर्मपरायन किसान है और स्वभावतः उसकी इच्छा केवल एक गाय प्राप्त करने की है, किंतु उसकी यह छोटी-सी इच्छा वस्तुतः महत्वाकांक्षा बन गई है। वह इतना गरीब है कि गाय उसी के लिए दुर्लभ वस्तु है। किंतु उसे प्राप्त करने की उसके मन में उत्कृष्ट लालसा है। उसके चेतन और अवचेतन मन में गो-लालसा इस प्रकार छाई हुई है कि वह उससे स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता। कथा के प्रारम्भ में इस तथ्य के पूर्ण संकेत मिल जाते हैं कि उस के मन में गो-लालसा कितनी उत्कृष्ट है। राय साहब के यहां जाते हुए वह यही सोचता दिखाई देता है। 'भगवान कहीं जोर से बरखा करे दें और डांडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा......। नहीं वह पछाई गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा....। गोबर दूध के लिए तरस-तरस कर रह जाता है।..........साल भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाये। बछड़े अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोई न होगी। फिर गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्शन हो जायें, तो क्या कहना। न जाने कब वह साध पूरी होगी। कब वह शुभ दिन आयेगा।' गाय की अभिलाषा उसके रोम-रोम में, उसकी अन्तर चेतना में व्याप्त है। यही उसके जीवन की सबसे बड़ी साध है। प्रेमचन्द जी का कहना है - 'प्रत्येक ग हस्थ की भांति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली जाती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएं उसके नन्हें हृदय में कैसे समातीं। होरी के मन की यह अभिलाषा उत्कृष्ट तो है किन्तु इसके मूल में अधि ाक पहलू उतना कार्यशील नहीं, जितना भावात्मक पहलू। यह गो-लालसा उसके मन में छिपी सम्मान कामना और गो-श्रद्धा की ही अभिव्यक्ति है। अपने इस भावात्मक पहलू को वह भोला के सम्मुख स्वयं इस प्रकार स्पष्ट करता है 'यही जी चाहता है कि इसके दर्शन करता रहूं। धन्य हैं तुम्हार जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो। हमको तो गाय की गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो तो लज्जा की बात है। साल के साल बीत जाते हैं, गोरस के दर्शन नहीं होते हैं।' यही नहीं एक अन्य स्थान पर भी गाय की उत्कृष्ट अभिलाषा के ही प्रसंग में उसकी सम्मान प्राप्ति की भावना इस प्रकार सामने आती है 'गऊ उसके लिए केवल भक्ति और श्रद्धा की वस्तु नहीं सजीव सम्पत्ति भी थी। वह उससे अपने द्वार की शोभा और घर का गौरव बढ़ाना चाहता था। वह चाहता था, लोग गाय को द्वार पर बंधे देखकर पूछें-यह किसका घर है? लोग कहें होरी-महतो का। तभी लड़की वाले उसकी विभूति से प्रभावित होंगे। आंगन में बंधी तो कौन देखेगा? इस प्रकार सम्मान कामना भी इस गो-लालसा के पीछे कार्यरत है।

अपनी इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए यद्यपि वह भोला से स्पष्टतः गाय उधार देने की बात तो नहीं कह पाता किन्तु अपने छल-छद्मों से उसे इतना प्रभावित कर देता है कि भोला बिना मांगे ही गाय उधार देने को तैयार हो जाता है। वह उसे भूसा देकर अपनी चाल में सफल हो जाता है और गाय उसके द्वार पर बंध जाती है। परन्तु उसकी

स्थिति वैसी ही है, जैसे किसी भिखारी के घर बहुमूल्य हीरा आ जाए। होरी की प्रसन्नता सीमातीत है। गाय की ओर श्रद्धा-विह्वल नेत्रों से देखते हुए उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे साक्षात् लक्ष्मी उसके द्वार की शोभा बढ़ा रही है। वह सोचता है 'आज भगवान् ने यह दिन दिखाया कि उसका घर गऊ के चरणों से पवित्र हो गया। यह सौभाग्य! न जाने किसके पुण्य प्रताप से।' धनिया इस डर से गाय को बाहर नहीं बांधना चाहती कि किसी की नजर न लग जाए, किन्तु होरी को इतना धैर्य कहाँ ! सम्मान प्रदर्शन एवं आत्मश्लाघा उसे गाय बाहर ही बांधने को विवश कर रही है। भविष्य के अनिष्ट की आशंका से वह निश्चित है। और धनिया की ही आशंका सच निकलती है। होरी गाय को जबर्दस्ती बाहर ही बांध देता है। रात में अवसर मिलते ही पारिवारिक द्वेषवश हीरा गाय को विष देकर मार डालता है। होरी की अभिलाषाओं का स्वप्न, जो एक क्षण के लिए पूरा हुआ था, नियति के क्रूर आघात से चकनाचूर हो जाता है। इस हृदय द्रावक द श्य को प्रेमचन्द जी इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं - 'चारों ओर नीरव अन्धकार छाया हुआ था। दोनों बैलों के गले की घंटिया कभी-कभी बज उठती थीं। दस कदम पर म तक गाय पड़ी हुई थी और होरी घोर पश्चाताप में करवटें बदल रहा था। अन्धकार में प्रकाश की रेखा कहीं नजर न आती थी। इसके बाद वह जीवन भर गाय खरीदने के लिए प्रयास करता है, तरसता है किन्तु जमींदार, साहूकार , पुलिस पंचायत और धर्म के ठेकेदारों के निर्मम शोषण चक्र में इस प्रकार पिसता रहता है कि उसके द्वार पर कभी गाय नहीं बंध पाती है। होरी की यह करूण असफलता उसकी क्षणिक सफलता के संयोग से और भी मार्मिक हो उठी है। यद्यपि गाय की म त्यु स्वयं में ही होरी के जीवन की सबसे दुखद घटना है, तथापि इसकी तीक्ष्णता दो कारणों से और भी बढ़ जाती है। प्रथम, कि होरी की गाय को उसके भाई ने ही विष देकर मारा, जिसके प्रति उसके हृदय में अत्यन्त कोमल स्नेहभाव निहित है। दूसरे, कि गाय की म त्यु के ठीक-एक दिन पूर्व झिंगुरीसिंह ने उसे खरीदने का प्रस्ताव किया और तब होरी ने विवशतायुक्त परिस्थितियों में इस प्रस्ताव को कतई अस्वीकार कर दिया था।

इसके बाद तो विपत्तियों के पहाड़ टूटते चले जाते हैं और होरी उनके नीचे पिसकर रह जाता है। गाय लेने के प्रसंग में गोबर और भोला की विधवा कन्या झुनिया का प्रेम हो जाता है और वह गर्भवती हो जाती है। होरी सहज करूणा और पुत्र-स्नेहवश झुनिया को शरण देता है, जिसके फलस्वरूप पंचायत उस पर तीस मन अनाज और सौ रूपए नकद की डांड लगा देती है। इसी बीच भोला गाय के रूपए न मिलने पर उसके बैल खोल ले जाता है और होरी धर्म के नाम पर यह अत्याचार चुपचाप सह लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसके खेतों की जुताई रूक जाती है और विवश होकर उसे अपने ही खेतों में पंडित दातादीन के मजदूर के रूप में मजदूरी करनी पड़ती है। खेतों की बेदखली को बचाने के लिए उसे ऐसा ही करना पड़ता है।

इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है। होरी की गाय की अभिलाषा तो पूरी नहीं होती, मगर इसके चलते उसकी तबाही और बढ़ जाती है। गाय के चलते होरी के बैल चले जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वह खेती नहीं कर पाता और अन्ततः मजदूर बन जाता है।

इतना ही नहीं, खेतों में खड़ी ईख के बिकते ही, उससे प्राप्त रूपयों को झिंगुरीसिंह और नोखेराम बलपूर्वक ले लेते हैं, क्योंकि होरी के यहां उनके रूपये बाकी हैं। परिवार के सम्मुख भोजन का संकट उठ खड़ा होता है तभी गोबर के आने से स्थिति में कुछ सुधार अवश्य दिखाई देता है किन्तु वह भी शीघ्र ही मां-बाप से झगड़ा करके बच्चों सहित लखनऊ वापस लौट जाता है। दूसरे वर्ष पटेश्वरी के छल-प्रपंचों के कारण होरी की ईख नीलाम ी हो जाती है और बड़ी लड़की सोना के विवाह के लिए उसे नोहरी से दो सौ रूपये ऋण लेने पड़ते हैं। उसकी स्थिति दिन-प्रतिदिन संकटमय होती चली जाती है। प्रेमचन्द जी लिखते हैं-'जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई, पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी, मगर अब वह उस अन्तिम दशा को पहुंच गया था, जब उसमें आत्मविश्वास भी न रहा था। अगर वह अपने धर्म पर अटल रह सकता है, तो भी कुछ आंसू पुंछते, मगर वह बात न थी। उसने नीयत भी बिगाड़ी, अधर्म भी कमाया, कोई ऐसी बुराई न थी, जिसमें वह पड़ा न हो, पर जीवन की कोई अभिलाषा न पूरी हुई और भले दिन म गत ष्णा की भांति दूर ही होते चले गये। यहां तक कि अब उसे धोखा भी न रह गया था, झूठी आशा की हरियाली ओर चमक झूठी

आशा की हरियाली और चमक भी अब नजर नहीं आती थी। हारे हुए महीप की भांति उसने अपने को इस तीन बीघे के किले में बन्द कर लिया था और उसे प्राणों की तरह बचा रहा था। फाके सहे, बदनाम हुआ, मजूरी की, पर किले को हाथ से न जाने दिया, मगर अब वह किला भी हाथ से निकला जाता है। तीन साल से लगान बाकी पड़ा हुआ था और अब पंड़ित नोखेराम ने उस पर बेदखली का दावा कर दिया था। कहीं से रूपये मिलने की आशा न थी। जमीन उसके हाथ से निकल जायेगी और उसके जीवन के बाकी दिन मजदूरी करने में कटेंगे। भगवान् की इच्छा।' और इन्हीं खेतों के लिए दो सौ रूपए लेकर अपनी छोटी लड़की रूपा का विवाह अधेड़ रामसेवक से करना पड़ता है। इस प्रकार वह बेदखली से तो बच जाता है किन्तु मर्यादा और धर्म से च्युत (पतीत) होने के कारण उसे अत्यधिक मानसिक कष्ट होता है, उसकी इस मानसिक व्यथा का यह करूणोत्पादक चित्र कितना मार्मिक है, देखिए-

'होरी ने रूपए लिए, तो उसका हाथ कांप रहा था, उसका सिर न उठ सका, मुंह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है मानों उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुंह पर थूक देता है।'

होरी की कहानी का यहीं अंत नहीं होता। नियति मानों उसके साथ अत्यन्त क्रूर खिलवाड़ करने को सन्नद्ध है। यदि होरी की कहानी यहीं समाप्त हो जाती तो उसका अंत शायद उतना दारूण नहीं होता। पर, दुर्भाग्य उसे नचा-नचाकर मारना चाहता है। इस घोर निराशा और पराजय के बाद होरी के जीवन में अप्रत्याशित रूप से सफलता और सुख की किरण प्रवेश करती है। उसका बेटा गोबर उसके अनुकूल ही नहीं हो जाता, वरन् उसका भरण पोषण तथा सारा कर्ज चुकाने को भी तैयार हो जाता है। उसकी बेटी रूपा ससुराल में प्रसन्न है उसकी चिरसंचित गोलालसा भी पूरी होती दिख पड़ती है। उसे आठ आने रोज की मजूरी मिल गई। पति-पत्नी मिलकर सुतली काततें हैं। होरी दो महीने से गाय खरीदने की आशा रखता है। इसी समय हीरा भी लौट आता है। उस समय होरी की प्रसन्नता कितनी सीमातीत थी, प्रेमचन्द जी लिखते हैं- ''होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानों उसके चरणों पर लौट रही थीं। कौन कहता है, जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टुटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएं हैं। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान हो गई है। उसके बखार में सो दौ सो मन अनाज भरा होता, उसकी हांड़ी में हजार-पांच सौ गढ़े होते, पर उसे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था।''

अभी यह प्रसन्नता स्थाई नहीं थी। होरी को दूसरे दिन काम पर जाते ही लू लग जाती है और उसकी म त्यु हो जाती है। उसकी गाय की अभिलाषा पूरी नहीं हो पाती। अचेतन और चेतन दोनों अवस्थाओं में वह अपनी गो-लालसा व्यक्त करता है। अचेतावस्था में भी वह यही रट लगाता है-''मेरा कहा-सुना, माफ करना धनिया। अब जाता हूं। गाय की लालसा मन में ही रह गई।''

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि होरी अधोगति, उसके नियतिचक्र में फंसे जीवन की त्रासदी अलोमहर्षक और साधारण होते हुए भी अत्यन्त मार्मिक और करूणोत्पादक बन गई है।

यही नहीं, प्रेमचंद जी का 'गोदान' एक ऐतिहासिक त्रासदी भी है। इसके नायक होरी की कथा, केवल उसकी ही कथा नहीं, उस युग के प्रत्येक कृषक के जीवन की कथा है। इसकी सभी घटनाएं अपना ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। उदाहरणार्थ इसमें विवाह की समस्या पर विशेष प्रकाश डाला गया है। झुनिया, सिलिया, नोहरी, सोना, रूपा, मालती और सरोज के विवाह-प्रसंग इस सम्बन्ध में प्रकाश डालते हैं। ये सभी केवल 'गोदान' के प्रसंग ही नहीं है, बल्कि प्रेमचंद-युगीन भारतीय जीवन की वैवाहिक घटनाएं हैं, जो इस सम्बन्ध में भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण अंग पर प्रकाश डालती हैं। प्रेमचंद जी अपने समय के सामाजिक जीवन में यह प्रत्यक्ष देख रहे थे कि पुरातन विवाह-प्रथा में घुन लगता जा रहा है। वैवाहिक सम्बन्धों का समस्त आधार सहज ही में हिल उठा था।

पुरातन मान्यताएं खण्डित हो रही थीं, किन्तु बिरादरीवाद का भयंकर दुष्चक्र उसे रोकने के लिए कटिबद्ध था। उधर पाश्चात्य प्रभावों से जातियों का बन्धन तोड़कर उच्च परिवारों में भी नवयुवक एवं नव-युवतियां अन्तर्जातीय विवाह करने लगे थें। निम्न वर्ग के लोगों में बिरादरी का भय ठुकरा कर बहुत से लोग विवाह कर रहे थे। झुनिया और गोबर, मातादीन ओर सिलिया तथा नोहरी और भोला इन्ही के प्रतीक हैं। सरोज और रूद्रपाल का विवाह उच्च परिवारों में होने वाले अन्तर्जातीय विवाह का उदाहरण है। दहेज-प्रथा भी वैवाहिक जीवन का एक भयंकर अभिशाप थी। सोना और रूपा के द्वारा लेखक ने इस घटना का चित्रण किया है।

सामाजिक जीवन में स्थान पाने वाले विभिन्न प्रकार के संकटों आपत्तियों, अत्याचारों और पीड़ाओं के सजीव एवं यथार्थ चित्रण से 'गोदान' का प्रत्येक प ष्ठ भरा पड़ा है। इसी प्रकार इन सबको अपने में समेट और संजोकर चलने वाली 'गोदान' की कथा, जहां होरी के जीवन की ऐतिहासिक त्रासदी है, वहीं वह एक अलोमहर्षक, मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली त्रासदी भी बन पड़ी है। डां, गंगा प्रसाद विमल का यह कथन सत्य ही है कि - ''गोदान में एक सच्ची त्रासदी की तस्वीर अवतरित हुई है।

**प्र० 6. सिद्ध कीजिए कि हिन्दी उपन्यास साहित्य में 'गोदान' मील का पत्थर है।**

उत्तर- उपन्यास-साहित्य हिन्दी का एक महत्वपूर्ण विधा है। हिन्दी उपन्यासों पर मूलतः पश्चिमी उपन्यास-कला का प्रभाव रहा है। यद्यपि भारत के प्राचीन साहित्य में भी उपन्यासों का स जन हुआ परन्तु आधुनिक उपन्यास, भारतीय प्राचीन उपन्यासों से प्रभावित नहीं रहे। हिन्दी में जैसे-जैसे गद्य-लेखन का सूत्रपात हुआ और गद्य के विविध रूपों का श्री गणेश हुआ वैसे-वैसे उपन्यास-साहित्य का भी प्रचलन होता गया। उपन्यास में मानव जीवन का दस्तावेज होता है। उसका कथानक, पात्र, वातावरण आदि लोक जीवन से सम्बन्धित होते हैं। अतः उपन्यास मानव जीवन को अधिक प्रभावित करता है। इस विषय में डॉ० राल्फ फाक्स का कथन है-The Novel is not merely prose, it is prose of mans life. The first art at attempt to take the whole man and give expression.

निः सन्देह मानव जीवन की विविध स्थितियों, भावों, घटनाओं व परिवेश का व्यापक और जीता-जागता चित्रण उपन्यास में पाया जाता है। जिस कारण यह विद्या पर्याप्त लोकप्रिय रही है।

1. प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी-उपन्यास- हिन्दी के उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है परन्तु हिन्दी उपन्यास-लेखन प्रेमचन्द से ही प्रारम्भ नहीं हुआ था। इससे पूर्व भी भारतेंदु युग और द्विवेदी युग में उपन्यास लिखे जा चुके थे।

भारतेन्दु युग में उपन्यास लेखकों को बंगला और अंग्रेजी के उपन्यासों से प्रेरणा प्राप्त हुई थी। हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'भाग्यवती' (श्रद्धा राम फिल्लोरी) माना जाता है। भारतेन्दु युग के साहित्यिक उपन्यासों में भाग्यवती' के अतिरिक्त, श्री निवास दास का 'परीक्षा गुरू' बाल कृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' राधाकृष्णदास की 'निस्सहाय हिन्दू' लज्जाराम का 'धूर्त रसिक लाल' तथा किशोरीलाल गोस्वामी का 'त्रिवेणी' आदि का नाम लिया जा सकता है। इन उपन्यासों में समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध करके आदर्शवादी भावना को प्रस्तुत किया गया था। तिलस्सी, ऐय्यारी उपन्यासों में देवकी नन्दन खत्री के 'चन्द्रकांता,' चन्द्रकांता संतति' इतने लोकप्रिय हो गए थे कि कुछ उपन्यास प्रेमियों ने हिन्दी भाषा को सीखना प्रारम्भ कर दिया था। वस्तुतः इस प्रकार के उपन्यासों में सस्ती रोमांचप्रियता मिलती है। जासूसी उपन्यासों में भोपालराम गहमरी के 'अद्भुत लाश' व 'गुप्तचर' आदि का नाम उल्लेखनीय है। गहमरी के अधिकांश उपन्यास द्विवेदी युग में प्रकाशित हुए। जासूसी उपन्यासों की घटनाएं रहस्यमयी होती है। रोमानी उपन्यासों में ठाकुर जगमोहन सिंह का नाम लिया जा सकता है। रोमानी उपन्यास पर्याप्त मिलते हैं। विशेष रूप से गदाधर सिंह व प्रताप नारायण मिश्र ने बंकिम के बंगला उपन्यासों का अनुवाद किया। रामकृष्ण वर्मा, कार्तिक प्रसाद खत्री ने तो बंगला उपन्यासकारों के नामों का उल्लेख न करके बंगला के अनूदित उपन्यास प्रस्तुत किए। इतना ही नहीं, अंग्रेजी, मराठी व उर्दू उपन्यासों का अनुवाद भी हिन्दी में हुआ। फिर भी इन सभी का इसी रूप में मूल्यांकन किया जा सकता है कि उनके द्वारा जन-सामान्य में हिन्दी के प्रति सम्मान पैदा हो गया था। सत्य यह है कि भारतेंदु युग में उच्चकोटि के मौलिक उपन्यास नहीं

लिखे गए। कथ्य और शैली दोनों ही रूपों में यह कहा जा सकता है कि ये हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास थे।

भारतेन्दु युग के पश्चात् उपन्यास के क्षेत्र में द्विवेदी युग का आगमन हुआ। इस युग में पर्याप्त सुधार हुआ और उपन्यास साहित्य तेजी से प्रभावित हुआ। सामाजिक उपन्यासों में लज्जाराम शर्मा के 'आदर्श दम्पत्ति', 'लीलावती', 'पुनर्जन्म' व 'नवसमाज' आदि का नाम उल्लेखनीय है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'देवबाला', 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' व 'अधखिला फूल' धार्मिक अंधविश्वासों के विरूद्ध आवाज उठाने के लिये लिखे थे। राधिकारमण प्रसाद सिंह का 'नव जीवन' मूलतः भावना प्रधान उपन्यास है। वस्तुतः इन उपन्यासों में नैतिकता, आदर्श, सुधारवादी व त्ति अधिक दिखाई पड़ती है। इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासों में किशोरी लाल गोस्वामी का 'सुल्ताना रजिया बेगम' व 'मल्लिका देवी' गंगाप्रसाद गुप्त के 'नूरजहां, 'कुंवरसिंह सेनापति', 'वीर जयमल', 'हमीर' आदि उल्लेखनीय हैं। ये उपन्यास मुस्लिम काल के इतिहास को प्रस्तुत करते हुए भी ऐतिहासिकता की सुरक्षा नहीं कर पाते, बल्कि कौतूहल और रोमांस आदि को पुष्ट करते हैं। उपन्यास-काल की द ष्टि से भी ये सम द्ध नहीं है। घटना प्रधान उपन्यासों के विट्ठलनागर का 'किस्मत का खेल' 'निहालचन्द वर्मा का' प्रेम का फल' 'प्रेमविलास वर्मा का 'प्रेम माधुरी,' दुर्गा प्रसाद खत्री का 'अद्भुत भूत' आदि लिखे गए। अन्य भाषाओं से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद भारतेन्दु युग के समान द्विवेदी युग में भी होता रहा। विशेष रूप से बंगला और अंग्रेजी के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ।

इस प्रकार भारतेंदु युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी- एय्यारी, जासूसी, रोमानी तथा अनूदित उपन्यास लिखे गए थे। द्विवेदी युग में इन सभी दिशाओं में उपन्यासों का पर्याप्त विकास हुआ और उपन्यासों का क्षेत्र सम द्ध होने लगा। परन्तु उपन्यास-कला की द ष्टि से हिन्दी में उपन्यासों का अभी तक कोई सुधार नहीं हुआ था। डॉ. झारी का कथन है- 'यद्यपि पारिवारिक और सामाजिक विषयों पर रचनाएं लिखी जाने लगी थी, किन्तु न तो अभी हमारे उपन्यासों में उपन्यास-कला का विकास हुआ था, न सामाजिक समस्याओं को गहराई से पकड़ने की क्षमता ही लेखकों में दिखाई देती थी और न व्यापक नानाविध समस्याओं पर उनकी द ष्टि जाती थी। वास्तव पूर्व के उपन्यास मुख्यतः दो द ष्टिओं से लिखे जाते थे-(1). कोरे मनोरंजन के लिए (2) सुधार और उपदेश तथा नैतिकता लाने के लिए मनोरंजन के लिए तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी, रोमानी आदि उपन्यास लिखे गये थे। जिनमें अवास्तविक, अमानवीय, कौतुहलपूर्ण घटनाओं का प्रधान्य था जिससे हिन्दी भाषा अवश्य सम द्ध होने लगी थी। इन लेखकों ने तत्कालीन समाज की कटु परिस्थितियों और दूषित तथा खोखली समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया था। आदर्शवाद, नैतिकता, शिष्टाचार आदि का नीरस उपदेश अवश्य दिया था। अतः प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यासों की सबसे बड़ी देन यही थी कि इस युग में एक ओर उपन्यासों के पाठकों में व द्धि हुई तो दूसरी और उपन्यास-स जन को ऐसी भूमिका प्रस्तुत की गई जिससे भव्य भविष्य का निर्माण हुआ।

3. **उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द का आगमन-** उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द का आगमन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना मानी जा सकती है। उनके आने से एक क्रांतिकारी परिवर्तन उपन्यास-साहित्य के इतिहास में हुआ था। प्रेमचन्द ने अपने समय से पूर्व लिखित अनेक उपन्यासों को पढ़ा-लिखा था और उनकी कमियों को भी समझ लिया था। उन्होंने उपन्यास का लक्ष्य मनोरंजन न मानकर मानव-जीवन का चित्रण करना ही स्वीकार किया था। जिसके कारण उनके उपन्यासों में यथार्थ चित्रण मिलता है परन्तु वे कोरी यथार्थता के पक्ष में नहीं थें बल्कि उसके साथ आदर्शवाद भी उन्होंने जोड़ दिया था। वे भारतीय समाज का सुधार चाहते थे जिस कारण उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी भावना उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत की थी। उनकी उपन्यास के क्षेत्र में मौलिकता, मनोवैज्ञानिकता तथा समाज सुधार की भावना के साथ-साथ यथार्थता आदि ने इस क्षेत्र में प्राण- फूंक दिए थे। उनके उपन्यासों में मानव-जीवन का सच्चा चित्रण है। और समाज की उन समस्याओं को उन्होंने रेखांकित किया था जो समाज के लिये घातक और विषैली थीं। उनके उपन्यासों में कथानक वास्तविक और जीवन्त है तथा पात्र सामाजिक होने के कारण वर्गगत है उनका व्यक्तित्व मानों सार्वजनिक है। सरल, सुबोध, गम्यशैली में उनके उपन्यास मानवतावादी संदेश देते हैं।

4. **प्रेमचन्द के उपन्यास व गोदान-** प्रेमचन्द ने लगभग बीस वर्षो तक उपन्यास के क्षेत्र में इतना प्रभावशाली कार्य किया था कि उपन्यास साहित्य पर उनका एक छात्र साम्राज्य रहा। रामाश्रय का कथन है- ' दो दशकों का यह समय सामाजिक उद्‌बोधन का, राष्ट्रीय जागरण का, लौकिक एवं आध्यात्मिक आदर्शो के परीक्षण का, नवीन मानवतावादी विचारधारा के प्रचार को, वर्ग चेतना के उदय तथा मानव मन के विश्लेषण का युग रहा।'

इसका मूल कारण था कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में जीवन के सभी क्षेत्रों को चुना था। उन्होंने सेवा 'सदन', 'वरदान', 'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि,' 'कार्याकल्प', 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा, 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान' उपन्यास लिखे। ये सभी सामाजिक उपन्यास हैं और मानव जीवन से सर्वथा जुड़े हुए है तथा उसकी यथार्थ दशा, स्थिति, परिस्थिति, परिवेश, समस्याएं आदि का सुन्दर चित्रण करते हैं।

'गोदान' प्रेमचन्द की प्रौढ़ रचना है, जिसमें ग्रामीण और नागरिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण है। उपन्यास-कला की द ष्टि से भी 'गोदान' में कथानक, पात्र-योजना वातावरण, संवाद, भाषा-शैली आदि तत्वों का सुनियोजित समावेश किया गया है। कथानक सर्वथा मौलिक और सुसंगठित है। प्रेमचन्द ने जहां 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन', 'प्रेमाश्रम' प्रतिज्ञा आदि उपन्यासों में मूलतः आदर्शवादी भावना अपनाई है। वहां 'रंगभूमि' 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प आदि में गांधी की अंहिसा, सत्याग्रह, प्रेम, सहनशीलता आदि सुधारवादी भावना को स्वीकार किया गया है परन्तु गोदान सर्वदा भिन्न है, जैसा की डॉ० झारी ने सिद्ध किया है -'गोदान में न सुधारवादी द ष्टि है न प्रचारवादी। यहां न आश्रम की स्थापना हुई है और न किसी गांधीवादी नेता की अवधारणा। यहां प्रेमचन्द की छवि सत्य से ओत-प्रोत है।' यह यथार्थवादी रचना है जहां नायक होरी के शोषण का जीता-जागता चित्रण है। जो दुखान्त है। इसी कारण 'गोदान' प्रेमचन्द की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है।

5. **गोदान : मील का एक पत्थर -** 'गोदान प्रेमचन्द की एक सशक्त रचना है जिसमें प्रेमचन्द ने न तो पूर्व उपन्यासों की कथा का विश्लेषण किया है और न सुधारवादी, गांधीवादी या आदर्शवादी भावना का दामन पकड़ा है। होरी नामक किसान को कथा का नायक बनाकर उसकी यथार्थ जीवन की जीवनी को जीवित किया गया है। वह शोषण का शिकार होता जाता है। एक और उसे जमींदार राय साहब का लगान, बेगार, बाकी, नजराना, शगुन आदि देना पड़ता है तो दूसरी और पटवारी पटेश्वरी व राय साहब के कारकून नोखेराम और साहूकारों का भी पेट भरना पड़ता है। वह चारों ओर से ऋणग्रस्त है। वह स्वंय चिन्तित है 'फसल' में से कुछ खलिहान में तोल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ का कर्ज था जिस पर कोई सौ रूपये सूद के बढ़ते जाते थे। मंगरूशाह से आज पांच साल हुए बैल के लिए सात रूपये लिए थे उनकी साठ दे चुका था पर साठ ज्यों के त्यों बने हुए थे। दातादीन पण्डित से तीस रूपये लेकर आलू बोए थे, आलू तो चोर खोद ले गये, उन तीस के इन तीन वर्षो में सौ हो गये। दुलारी विधवा साहुआइन थी जो गाँव मे नोन, तेल तम्बाकू की दुकान रखे हुए थी। बँटवारे के समय उससे चालीस रूपये लेकर भाईयों को देना पड़ा था उसके भी लगभग सौ रूपये हो गये थे क्योंकि आने रूपये का ब्याज था। लगान के भी अभी पच्चीस रूपये बाकी पड़े थे।'' इस प्रकार 'गोदान' होरी के ऋण की विस्त त कहानी है जिससे दबकर वह जमीन बैल आदि से हाथ धो बैठा था और मजदूरी करने के लिए मजबूर हो गया था। अंत में वह मजदूरी करते-करते भी संसार से विदा हो जाता है-यह त्रासदी कृषक-जीवन की यथार्थ कहानी है। प्रेमचन्द ने अन्य उपन्यासों की भांति कथानायक होरी के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं किया है। होरी की ही यह दशा नहीं है, उसके सभी भाई व किसान-साथी ऋण से लदे हैं। उनका चारों ओर से शोषण होता है। अतः 'गोदान' में भारत में प्राचीन काल से व्याप्त ऋण समस्या का वास्तविक चित्रण किया है। आर्थिक शोषण से दबे ग्रामीण अशिक्षा के कारण प्राचीन रूढ़िवादिता, मर्यादा, बिरादरी व पंचों की महत्ता आदि में इतने दब जाते है कि जिसके कारण उनका जीवन और भी दूभर हो जाता है। 'गोदान' में किसानों के उद्धार के लिए कोई भी योजना सदन या समिति का गठन नहीं किया जात। न राव साहब जैसा जमींदार उनका ऋण माफ करके उनके उद्धार की बाते सोचता। इस दिशा में प्रेमचन्द ने किसी का हृदय परिवर्तन न करके, ग्रामीण जीवन की वास्तविकता पर प्रकाश डाला है कि श्रमिक-वर्ग व कृषक वर्ग भारत में कितनी दीन-हीन दशा को भोगने के लिए बाध्य है। शहरी कथा के माध्यम से राय साहब की जमींदारी व्यवस्था को प्रस्तुत करके उसके द्वारा शोषण-चक्र का जीता जागता चित्रण किया है।

राय साहब कभी-कभी अपने वर्ग की कटुता, अन्याय-शोषण, विलासता का जीवन, धन की अपव्ययता आदि का उल्लेख अवश्य करते हैं और दुख को व्यक्त करते हैं परन्तु वे रंगे सियार है। वह उनका दिखावा मात्र है। वे अपने वर्ग की बुराईयों को जानकर भी उनसे छुटकारा न तो स्वयं प्राप्त करते है और न शोषित -वर्ग को राहत की सांस लेने देते हैं। इसके लिए उनके पास यही तर्क है कि उन्हें भी अपने आफिसरों को प्रसन्न करना पड़ता है। ''अगर अफसरों को कीमती-कीमती डालियां न दें, तो बागी समझे जाएं, शान से न रहें तो कंजूस कहलाएँ। प्रगति की जरा-सी आहट पाते ही हम काँप उठते है।'' यद्यपि समय-समय पर प्रो० मेहता राय साहब को बहुत भला-बुरा कहते हैं। कभी-कभी तो मित्र मण्डली के बीच में उनकी बेइज्जती भी करते है परन्तु प्रेमचंद ने अन्य उपन्यासों के समान राय साहब का हृदय परिवर्तन करके सुधारवादी भावना को प्रस्तुत नहीं किया है। मिल मालिक मि० खन्ना के मिल में आग लग जाती है उनकी धन की लोलुपता समाप्त हो जाती है परन्तु उनके माध्यम से भी मिल के कर्मचारियों की सुधारवादी योजना प्रेमचंद ने नहीं बनाई। इतना अवश्य है कि मि० खन्ना अपनी पत्नी गोविन्दी के प्रति अवश्य बदल जाते हैं। परन्तु मिल के मजदूरों के प्रति सुधारवादी भावना व्यक्त नहीं की गयी है। प्रो० मेहता के माध्यम से प्रेमचंद ने सुधार व उपकार अवश्य कराया परन्तु न तो प्रो० मेहता अपना विवाह मालती से कर पाए और न मालती विवाहिता हो सकी। गोबर भी आज की विकसित व विद्रोही नव-चेतना का प्रतीक होकर अन्त में आर्थिक -विषमता के कारण एक सामान्य व्यक्ति बनकर रह जाता है जो आज के समाज की यथार्थता है। उसमें भी कोई ऐसा चमत्कारी परिवर्तन नहीं आता जो वह अपने पिता होरी और ग्राम के दीन-हीन निर्धनों का उद्धार कर सके। प्रेमचंद ने इस सम्पूर्ण उपन्यास में इस प्रकार यथार्थता से युक्त ग्रामीण व शहरी जीवन का चित्रण किया है कि उसमें न तो महात्मा गांधी की सुधारवादी व आदर्शवादी भावना है और न कोई क्रांतिकारी परिवर्तन के द्वारा सुख व शांति की स्थापना है। समाज में व्यक्ति को जिस प्रकार के सुख दुःख भोगने पड़ते हैं उनका सजीव चित्रण गोदान में करके इस त्रासदी को उन्होंने सर्वथा नवीन रूप प्रदान किया है जो पाठकों के हृदय पर धार्मिक प्रभाव छोड़ता है। पाठक सोचने को बाध्य हो जाता है कि समाज की इस गली-सड़ी व्यवस्था में भारत की स्थिति कितनी दुर्भाग्यपूर्ण है।

भाषात्मक रूप में ही नहीं, बल्कि कलात्मक द ष्टिकोण से भी 'गोदान' अपनी पूर्ण रचनाओं से श्रेष्ठ है। इसमें प्रेमचंद ने सरल सुबोधगम्य, पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग किया है जहाँ ग्रामीण पात्र अपनी बात कहते हैं तो बोलचाल की ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया गया है। दूसरी ओर, शहरी पात्रों में तत्सम, तद्भव अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग है। भाषा में लोकोक्ति, मुहावरे आ जाने से भावों की सम्प्रेषनीयता बढ़ जाती है। कभी-कभी गंभीर विचारों के लिए वे साहित्यिक भाषा का प्रयोग भी करते हैं जैसे- ''विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह हक था जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानों झटका देकर उनके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण उनमें इतनी वेदना शक्ति आ गई थी। काने को काना कहने से जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है।''

प्रेमचंद भाषा के धनी कथनी और मंजे हुए कलाकार थे। अनुभूति की अभिव्यक्ति के ज्ञाता, सुललित व सुगठित पद योजना, संवादात्मक, स्वाभाविक वाक्यों का प्रयोग आदि उनकी कलागत विशेषताएं है। उनकी भाषा जीवन, हृदय को छूने वाली तथा प्रसंगानुरूप है। भावों के अनुरूप उनकी शैली विचारात्मक, सरल, व्यंग आदि रूपों को धारण करती है। इस विषय में डॉ. झारी का कथन है-''भाव सौंदर्य व कला सौंदर्य का जैसा सुन्दर सामंजस्य 'गोदान' में है, वैसा अन्य रचनाओं में नहीं।''

इस प्रकार 'गोदान' की अभिव्यक्ति तथा शिल्प दोनों ही द ष्टियों से मौलिक, प्रभावक व यथार्थवादी है। प्रेमचंद से पूर्व इस प्रकार की सच्चाई और स्वाभाविकता किसी पूर्ववर्ती उपन्यास में नहीं मिलती। इसमें सुधारवादी भावना का समावेश न होकर मानवतावादी स्वर है। इसी कारण कहा जा सकता है कि 'गोदान' हिन्दी उपन्यास साहित्य में मील का पत्थर है।

# गांधीवाद

**प्र०7. ''गोदान'' तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचंद का गाँधीवाद के प्रति मोह भंग हो गया था।'' क्या आप इस कथन से सहमत हैं। तर्क एवं प्रमाण सहित उत्तर दीजिए।**

उ०- प्रेमचंद एक सफल कहानीकार एवं उपन्यास सम्राट थे। उनका 'सोजवतन' कहानी संग्रह (1907) में प्रकाशित हुआ। 'आँखे' 1936 तक निरन्तर लिखते रहे। तब तक उनकी विचारधारा में निरन्तर परिवर्तन और निखार आता रहा। साहित्यकार पर अपने समय कि परिस्थितियों, विचारधाराओं व आंदोलनों का यथेष्ट प्रभाव पड़ता है और उसके लेखन को प्रभावित भी करता है। साहित्यकार संवेदनशील एवं भावुक होने के कारण अपने लेखन में जैसे-जैसे उसकी विचारधारा में परिवर्तन आता है वैसे ही उसका साहित्य भी परिवर्तित होता हुआ चला जाता है। प्रेमचंद ने लगभग तीस वर्षो तक लेखन कार्य किया। अतः उनके कृतित्व में परिवर्तन आना स्वाभाविक ही था। प्रेमचंद जिस समय लिख रहे थे उस समय भारत को स्वतंत्रता कराने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था। उन दिनों राजनीति में महात्मा गाँधी की तूँती बोलती थी। महात्मा गाँधी के सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन, सुधारवादी नीति, अहिंसा, सेवा और त्याग की भावना सर्वत्र व्याप्त थी। उसी समय सामाजिक क्षेत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती का सुधारवादी आंदोलन भी चल रहा था। गाँधी जी के आदर्शो से प्रेमचंद ने प्रभावित होकर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था। यहाँ हमें यह देखना है कि 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचंद गांधीवाद से कहाँ तक प्रभावित थे।

1. **प्रेमचंद के उपन्यासों में गाँधीवाद के प्रति मोहः** 'गोदान' से पूर्व के उपन्यासों में प्रेमचंद के गाँधीवाद के प्रति मोह को देखकर डा० सुरेश सिन्हा का कहना है-राजनीति के क्षेत्र में जो कार्य गाँधी जी ने किया उपन्यास के क्षेत्र मे वही कार्य प्रेमचंद जी ने किया है। प्रेमचंद के उपन्यासों में हिंसा पर अहिंसा की विजय मिलती है। उनमें शोषण के विरूद्ध आवाज और समानता का स्वर उद्घोषित होता है। डा० सुरेश सिन्हा के उक्त कथन को यदि हम 'गोदान' पूर्व के उपन्यासों में देखें तो उनके 'वरदान' उपन्यास में राधाचरण नाम का पात्र राष्ट्र के लिए सरकारी नौकरी को छोड़ देता है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में नारी और पुरूष के समान अधिकारों की बात कही गयी है। 'सेवा-सदन' में वेश्या-सुधार की समस्या को उठाया गया है। सांप्रदायिकता का विरोध किया गया है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में किसान और जमींदारों की समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास का पात्र मायाशंकर शोषण का परित्याग कर आदर्शवादी बन जाता है। वह कहता है- 'मुझे किसानों की गर्दन पर जुआ रखने का अधिकार नहीं हैं। इसी प्रकार 'निर्मला' उपन्यास में दहेज प्रथा की बुराईयों को प्रस्तुत किया गया है। 'गबन' उपन्यास का पात्र देवीदीन गाँधी जी के स्वदेशी आंदोलन से प्रभावित है। वह कहता है - 'जिस देश में हम रहते हैं, जिसका अन्न खाते हैं, उसके लिए इतना भी न करें तो जीने को धिक्कार है।''

'रंगभूमि' का सूरदास मानो साक्षात, गाँधी जी का ही प्रतिनिधि है। सूरदास का सत्याग्रह, कारखानों व मशीनों का विरोध, सत्य, अहिंसा, त्याग आदि उसके चरित्र की विशेषताएं उसे गांधी जी का सच्चा अनुयायी सिद्ध करती हैं। इसी प्रकार 'कायाकल्प' उपन्यास में चक्रधर साम्प्रदायिकता को समाज के लिए विष मानता है। 'कर्मभूमि' का नायक अमरकान्त अधूतोद्धार की भावना से प्रेरित है। इस प्रकार 'गोदान' से पूर्व के उपन्यासों में प्रेमचंद किसी न किसी रूप में गाँधीवादी विचारधारा के अनुयायी हैं। पात्रों में त्याग, सेवा, बलिदान आदि भावनाएं मिलती है। कुछ पात्र आरम्भ में कुप्रकृति के शिकार हैं वे भी बाद में कुप्रव त्ति के बन गए है। अतः 'गोदान' से पूर्व के उपन्यासों में गांधीवाद विचारधारा विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ती हैः गाँधीवाद के प्रति मोह भंग हो गया था। वे प्रगतिवादी आंदोलन से प्रभावित भी हुए थे। प्रेमचंद ने लखनऊ में प्रगतिवादी आंदोलन के सम्मेलन में सभापति के पद से सज्जाद जहीर आदि के साथ भाषण भी दिया था। महाजनी सभ्यता के फैलते हुए विष को वे अब समझ चुके थे। प्रेमचंद अपनी म त्यु से पूर्व जब बीमार थे, तब जैनेन्द्र से इस संबंध में उनकी बात भी हुई थी। उन्होंने जैनेन्द्र से कहा था-अब आदर्शवाद से काम चलने वाला नहीं है। 'गोदान' प्रेमचंद की प्रौढ़ रचना है। इसे उनका अंतिम उपन्यास माना जाता है क्योंकि 'गोदान' के बाद का उपन्यास 'मंगल-सूत्र' वे अधूरा ही छोड़ गए थे। 'गोदान' में

प्रेमचंद ने होरी का यथार्थ वर्णन कर उसकी इतनी दुर्दशा दिखायी है कि वह शोषण का शिकार हो चल बसता है। अब भी 'गोदान' में प्रेमचंद गाँधीवाद से प्रभावित हैं या नहीं, इस संबंध में विचार करना चाहेंगे।

'गोदान' में प्रेमचंद गाँधीवाद से प्रभावित दिखाई नहीं पड़ते। सन् 1936 में लखनऊ में 'भारतीय प्रगतिशील संघ' की स्थापना श्री मुल्कराजा आनन्द, सज्जाद जहीर आदि ने की। इसक प्रथम अधिवेशन का सभापति मुंशी प्रेमचंद जी ने किया। 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचंद जी की विचारधारा में परिवर्तन आता चला गया। वे समझ चुके थे कि गाँधीवाद से आर्थिक व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन नहीं हो पाएगा। इसलिए 'गोदान' उपन्यास तक आते-आते राजनैतिक और आर्थिक विचारों की द ष्टि से गांधीवाद बहुत दूर निकल चुके थे। 'गोदान' में व्यावहारिक द ष्टि से गांधीवाद विचारधारा के कारण पराजय झेलनी पड़ती है। जैसे हड़ताल गांधीवाद का एक प्रमुख अंग है जो विरोध को जन्म देता है किन्तु उपन्यास में खन्ना की चीनी मिल के मजदूरों का शोषण रूक नहीं पाया।

उपन्यास की केंद्रीय कथा होरी और उसके गाँव तथा उसके परिवार से सम्बद्ध कथा है। उसमें गाँधीवाद का कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। हाँ मालती व मेहता की कथा प्रेमचंद जी ने सम्भवतः केवल इसलिए बीच में प्रस्तुत की है ताकि गाँधीवाद दर्शन के अनुरूप उन नैतिक मूल्यों की स्थापना की जा सके जो स्वयं प्रेमचंद जी के लिए आदर्श हैं। किन्तु मूल कथा से इसका कोई तादाम्य नहीं है यहां यह देखने के लिए मिलता है कि गाँधीवाद दर्शन की अपेक्षा प्रगति को ही प्रमुखता दी गई है और उसी में लेखक की आस्था ध्वनित हुई है।

'गोदान' में प्रेमचंद ने बेलारी गाँव के सभी किसानों की ऋणग्रस्तता को दिखाया है। प्रेमचंद ने किसानों की इन समस्याओं का कोई समाधान नहीं किया हैं। राम सेवक कहता है -

''थाना पुलिस कचहरी सब हैं हमारी रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेबस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते है। किसान शोषण से दुखी है वह असंतुष्ट भी है। उसके मन में आक्रोश भी है परन्तु 'गोदान' में न तो वह संगठित होता है और न ही इस अन्यायपूर्ण स्थिति से छुटकारा पाने का प्रयत्न करता है। किसानों के इस शोषण के विरूद्ध किसी का ध्यान नहीं जाता। न किसी का हृदय परिवर्तन होता है जो किसानों की समस्याओं को समझ सके। 'गोदान' में पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध उसको बदलने का आग्रह नहीं है। पूंजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध 'गोदान' में न कोई सामाजिक आंदोलन है और न राजनीतिक जाग ति। शोषण के चक्कर में सभी पिसते रहते हैं। किसानों की ओर से कोई मांग भी नहीं हैं। प्रो० मेहता इसीलिए गोदान में कहता है- '' इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काश ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते तो यों न ठकुराए जाते। देश में कुछ भी नहीं हो, क्रांति ही क्यों न आ जाए इनसे कोई मतलब नहीं।''

प्रो० मेहता भी किसानों की इस कष्टप्रद स्थिति को जानते हुए कोई ऐसा कदम नहीं उठाते। वे समयबेसमय राय साहब अमरपालसिंह को किसानों के शोषण के विरूद्ध कहते रहते हैं कि वे शोषण करना छोड़ दें परन्तु स्वयं कोई कार्य इस दिशा नहीं करते।

भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है। अतः धर्म के विरूद्ध आचरण करना पाप है। ब्राह्मणों को औरों से ऊँचा होने या श्रेष्ठ होने का गर्व है। होरी तथा सभी किसान ब्राह्मणों को श्रद्धा की द ष्टि से देखते हैं। होरी धर्म की इस मान्यता को स्वीकार करता है कि व्यक्ति को उसके कर्म के अनुसार फल मिलता है। वह समझता है कि उसकी निर्धनता उसके पूर्व जन्म का फल है। इसलिए वह पं० दातादीन की एक-एक पाई देना चाहता है।

'गोदान' में प्रेमचंद गाँधीवाद के समर्थक नहीं रह गए हैं। हाँ अछूतोद्धारा की समस्या का समाधान 'गोदान' में अवश्य प्रस्तुत किया गया है। सिलिया चमारिन को मातादीन ने अवश्य अपना लिया है। मातादीन सिलिया से कहता है कि सिलिया जब तक दम है तुझे ब्याहता की तरह रखूँगा। परन्तु दो वर्ष बाद ही मातादीन इन सारी बातों को भूल जाता है। सिलिया जब गर्भवती हो जाती है तब उसे वह अपनाने से इनकार कर देता है। उस समय चमारों ने मातादीन को पकड़कर उसके मुँह में एक बड़ी सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया। जिससे वह अपवित्र हो गया। मातादीन को शुद्ध होने के लिए भोज करवाना पड़ा। परन्तु बार में प्रेमचंद ने मातादीन का हृदय परिवर्तन करवा दिया। यहाँ पर गोदान में अछूतोंद्धारा की भावना कार्य कर रही है।

'गोदान' में मालती के चरित्र में भी परिवर्तन कराया गया है। आरम्भ में वह पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित फैशनपरस्त नारी थी परन्तु अंत में वह सेवा और त्याग की प्रतिमा बन गई। वह रात-दिन गरीबों की सेवा करती रही। प्रेमचंद ने मालती का हृदय परिवर्तन करके उसे पाश्चात्य संस्कृति से बचाकर भारतीय संस्कृति की ओर उन्मुख दिखाया है।

उपर्युक्त उन दो उदाहरणों को छोड़कर प्रेमचंद 'गोदान' में यथार्थवादी लेखक के रूप में दिखाई देते हैं। उन्होंने किसानों की समस्याओं का कोई निदान 'गोदान' में प्रस्तुत नहीं किया। गोदान तक आतेआते प्रेमचंद को काल्पनिक समाधान, सुधारवादी सुझाव खोखले प्रतीक होने लगे थे। अतः गांधीवादी सुधारवादी भावना को छोड़कर वे यथार्थवादी बन गए थे। होरी के यथार्थ को, उसके कटु सत्य को प्रेमचंद ने ज्यों का त्यों चित्रित किया है। होली के त्यौहार पर गोबर का मँडोवा शोषण का चित्र प्रस्तुत करता है जो महाजनी सभ्यता का कच्चा चिट्ठा है। संपूर्ण उपन्यास में महाजनी शोषण, अन्याय, अत्याचार, निर्ममता आदि का खुलकर चित्रण हुआ है। इसलिए झिंगुरी सिंह कहता है - ''कानून औार न्याय किसका है, जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी आदमी के साथ लड़ाई न करें, कोई जमींदार किसी काश्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है? रोज ही देखते हैं जमींदार मुशक बंधवाकर पिटवाता है और महाजन लात और जुते से बात करता है। मि० खन्ना के मिल में मजदूरों की भी यही हालत है। मजदूर सिर झुकाए बैंलों की तरह काम में लगे रहते हैं। घुड़कियाँ, गालियाँ यहां तक कि डण्डों की मार भी उनमें ग्लानि पैदा नहीं करती। मजदूर और किसानों की दशा में कोई परिवर्तन, कोई सुधार दिखाई पड़ता। मूल समस्याएं ज्यों की त्यों क्यों खड़ी है।

गाँधीवाद एक आदर्शवादी विचारधारा है। गांधीवाद के अनुसार मनुष्य को बिगाड़ने वाली परिस्थितियाँ है। मनुष्य स्वभाव से भोला है। इसी कारण गाँधी जी कहते थे पाप से घ णा करो, पापी से नहीं। गाँधी जी के अनुसार सत्य व अहिंसा के द्वारा मनुष्य का सुधार किया जा सकता है। प्रेमचंद 'गोदान' में मूलतः यथार्थवादी रहे हैं। गोदान तक आते-आते गांधीवादी सत्य, अहिंसा के प्रयोग का परिणाम प्रेमचंद की द ष्टि में असंतोषजनक रहा है।

'गोदान' समाज का असंतोष उभार कर सामने लाता है। प्रेमचंद गाँधी जी की समझौतावादी नीति से असंतुष्ट थे। 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचंद गांधीवादी प्रभाव से सर्वथा मुक्त हो गए। उनकी प्रगतिशील विचारधारा अधिक गहरी हो गयी थी। हृदय परिवर्तन की नीति, अहिंसा और कांग्रेसी उच्च वर्ग के नेत त्व पर से उनका विश्वास उठ गया था। प्रेमचंद को समाज शोषक व शोषित दो वर्गो में बँटा हुआ दिखाई देने लगा। 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण) उपन्यास में उन्होंने शोषकों व अत्याचारियों के विनाश के लिए अस्त्र उठाने तक की घोषणा की है। अतः यह कहना सर्वथा सत्य है कि 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते गाँधीवाद से मोहभंग हो गया था।

**प्र०8. 'गोदान' उपन्यास के नामकरण की सार्थकता पर विचार कीजिए। अथवा**

**गोदान नामकरण के औचित्य पर प्रकाश डालिये।**

उ० संसार में बिना नाम के किसी वस्तु की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कोई भी वस्तु जीव, जन्तु, पक्षी, पेड़-पौधे चाहे कुछ भी क्यों न हों, उनका कुछ न कुछ नाम अवश्य होता है। इसलिए संसार में जब किसी वस्तु की अभिव्यक्ति का आविष्कार होता है तो उसकी पहचान बनाने के लिए उसका नामकरण किया जाता है। साहित्यकार भी अपनी साहित्यिक कृति का जब स जन करता है तो उसका नाम देना उसके लिए अनिवार्य होता है क्योंकि किसी भी कृति का नाम उसके मूल्यांकन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि साहित्यकार सजग-सचेत एवं बुद्धिमान प्राणी होता है। उसके द्वारा प्रदत रचना का नाम संक्षिप्त, रोचक, जिज्ञासावर्धक एवं मनोरम होना चाहिए। प्रेमचंद एक उच्चकोटि के उपन्यासकार थे 'गोदान' से पूर्व भी उन्होंने अनेक उपन्यास लिख। अतः उन्होंने 'गोदान' उपन्यास का नामकरण भी बड़ी सूझ-बूझ के साथ किया होगा-

इसमें संदेह नहीं हैं-

**नामकरण के आधार** - साहित्यिक कृति का नामकरण साहित्यकार अनेक आधारों पर करता है जैसे-

क) **नायक या नायिका के आधार पर**- यदि किसी रचना या उपन्यास में नायक या नायिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तो उसके नाम पर ही रचना का नाम रखा जाता है। जैसे-चित्रलेखा, सुनीता, दिव्या, शेखरः एक जीवनी इत्यादि।

ख) **स्थान के आधार पर**-कृति में यदि स्थान विशेष का महत्व होता है तो उसके आधार पर भी रचना का नामकरण किया जाता है जैसे-प्रेमाश्रम, सेवासदन, गढ़ कुण्डार इत्यादि।

ग) **प्रमुख घटना के आधार पर**- कभी -कभी किसी रचना में कोई घटना इतनी प्रभावशाली व महत्वपूर्ण होती है कि उसी के आधार पर नामकरण किया जाता है जैसे गबन, प्रतिज्ञा आदि।

घ) **उद्देश्य के आधार पर** - कुछ रचनाओं का नामकरण उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। जैसे जहाज का पंछी, बूंद और समुद्र' इत्यादि।

ड.) **प्रतीक के आधार पर** -कुछ साहित्यकार अपनी कृतियों को प्रतीकात्मक नाम देते हैं। जैसे -सूरज का सातवां घोडा।

च) **कलात्मक आधार**- साहित्यकार अपनी रचना को कभी-कभी कलात्मक संज्ञा प्रदान करता है अर्थात् लाक्षणिक या व्यंग्यात्मक रूप में उसका नाम रखता है जैसे -सन्यासी, गुनाहों का देवता इत्यादि।

**इसके अतिरिक्त, वातावरण के आधार पर, अंचल** -विशेष के आधार पर, कथानक के आधार पर आदि अनेक आधारों पर उपन्यास आदि साहित्यिक कृतियों का नामकरण किया जाता है। **गोदान के नामकरण का औचित्य**- प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास का नामकरण किस आधार पर किया है, इसके नाम की सार्थकता किस प्रकार है, आदि प्रश्नों पर यदि विचार किया जाये तो 'गोदान' नामकरण निम्नलिखित रूपों में उपयुक्त व सार्थक हैः-

1. **गोदान एक प्रमुख घटनाः-**

अध्येय उपन्यास 'गोदान' की सम्पूर्ण कहानी एवं घटना अत्यन्त मार्मिक व महत्वपूर्ण है जिसका संबंध उपन्यास के नायक होरी से है। उसके जीवन की कितनी बड़ी त्रासदी है कि वह आजीवन परिश्रम करने के पश्चात भी एक गाय को प्राप्त करने की लालसा पूरी न कर सका। भारतीय किसान होने के कारण वह गाय माता को अपने घर पर देखना चाहता था। ''गाय'' से ही तो द्वार की शोभा है। सवेरे -सवेरे गऊ के दर्शन हो जायें तो क्या कहना?'' जिस प्रकार प्रत्येक किसान की गाय पालने की लालसा होती है उसी प्रकार होरी की भी अभिलाषा थी। ''हर एक ग हस्थ की भांति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षा उसके नन्हें से हृदय में कैसे समाती है।''

वह तो एक किसान था। गाय के द्वारा वह दूध प्राप्त करके एक ओर, अपने बच्चों का पालन करता चाहता था तो दूसरी ओर गाय के बछड़ों से बैल प्राप्त करना चाहता था। गाय के दूध के बिना उसके तीन-तीन बेटे आंख खोलते ही म त्यु के मुंह में चले गये। परन्तु होरी बेचारा यही प्रतीक्षा करता रहा कि यदि वर्षा हो जाए तो ईख अच्छी होगी, जिसे बेचकर वह गऊ अवश्य खरीदेगा। परन्तु उसके जीवन में यह शुभ दिन कभी नहीं आया। उसकी यह साध कैसे पूरी होती? जमींदार, रायसाहब, उसके कारिन्दे, पटवारी दरोगा, गांव के महाजन व पंच और न जाने कितने उसके शोषक थे वे उसे उभरने न देते थे। पांच बीघा जमीन गयी , बैल गये, अन्न खेतों से ही उठ गया, बेटी के विवाह में रूपये लिए, फिर भी उसे गऊ नहीं मिली। एक बार मिली भी तो अपने ही ईर्ष्यालु भाई हीरा ने उसे जहर दे दिया। जीवन की संध्या में भी वह दिन रात परिश्रम करता है जिससे वह अपने नन्हें पोते के लिए गाय ले सके। जीवनान्त के समय वह अवचेतन अवस्था में धनिया को न पहचान कर कहता है ''तुम आ गये। गोबर, मैनें मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है देखो।'' गाय के विषय में कितनी तीव्र लालसा थी उसके मरते समय में भी वह बनी रही, परन्तु जब उसे चेतना आती है तो वह धनिया को पहचान लेता है और धीमे स्वर

में कहता है मेरा कहा सुना माफ करना धनिया। अब जाता हूं। गाय की लालसा मन में ही रह गयी। कितनी दर्दभरी घटना है कि धनिया अपने पति का यह स्वर सुनकर पछाड़ खाकर गिर पडी। उसने आज जो सुतली बेची थी उसके 20 आने अपने पति के ठण्डे हाथ पर रख कर दातादीन को देकर बोली- महाराज, घर में न गाय है, न बछिया न पैसा। यही पैसे हैं यही इनका गोदान है। वास्तव में इस मार्मिक घटना का मूल आधार लेकर ही इस का नामकरण गोदान किया गया है।

2. **उद्देश्य का आभासः-** गोदान उपन्यास के नामकरण में इस उपन्यास के उद्देश्य का भी आभास होता है। वस्तुतः यह उपन्यास होरी जैसे किसान के शोषण की कहानी है। वह जीवन में एक ही लालसा रखता था कि उसके पास एक गाय हो। वह राय साहब की खुशामद करता है उसके पांवों के नीचे उसकी गर्दन दबी हुई है अतः उसे सहलाने में ही कुशल है। वह अत्यन्त दयालु है। भाई हीरा की पत्नी को शरण देता है। झुनिया को अपनाता है। ब्राह्मण दातादीन की एक-एक पाई अदा करने में ही अपना परलोक सार्थक मानता है। गांव के पंचों के कहने पर वह 100 रूपए दण्ड तथा अपनी सारी फसल तक दे डालता है और घर भी गिरवी रख देता है। उसका चारों ओर से शोषण होता है, परन्त उसकी एक लालसा थी जिसे वह लहराती हुई ईख को देखकर व्यक्त करता है। भगवान कहीं गौं से बरखा कर दे और डांडी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा।.... उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पांच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस -तरस कर रहा जाता है। ... साल भर भी दूध पी ले तो देखने लायक हो जाये। बछवे से अच्छे बैल निकलेंगे'' सम्पूर्ण कथा में कहीं न कहीं उसकी लालसा वक्त होती है परन्तु उसका इतना शोषण होता है कि इसी लालसा को लिए हुए चल बसता है और उसे पूरी नही कर पाता। जो कुछ उसके घर 20 आने की शेष पूंजी थी उसका गोदान कर दिया जाता है अतः होरी के शोषण की कहानी का आभास भी गोदान नामकरण में समाहित है

3. **सामाजिक मान्यता पर व्यंग :-** 'गोदान' शीर्षक के द्वारा समाज पर करारा व्यंग किया गया है। जिस बेचारे होरी को जीवन भर गऊ प्राप्त नहीं हो सकी। उसके मरने पर गऊ-दान(गोदान) कराया जाता है। कितनी बड़ी विडम्बना है। भारतीय सामाजिक मान्यता के अनुसार कोई भी व्यक्ति तब तक स्वर्ग में नहीं पहुंच सकता, जब तक वह गऊ का दान नहीं करता। क्योंकि स्वर्ग के मार्ग में वैतरणी नदी पड़ती है। उसे पार करने के लिए म तात्मा को गऊ की पूंछ पकड़कर पार करना पड़ता है। यदि वह गोदान नहीं करता तो वह वैतरणी नदी पार नहीं कर सकता। अतः स्वर्ग में नहीं जा सकता। यह समाज की कितनी बड़ी विडम्बना है कि इस प्रकार की कुरीति या खोखले धार्मिक रिवाजों में पकड़कर मानव अपना सब कुछ खो देता है। मरणासन्न दशा में होरी के लिए डॉक्टर की आवश्यकता थी उसे बुलाने का प्रयत्न नहीं किया जाता, दवा-दारू नहीं की जाती बल्कि अवशेष राशि भी उस दातादीन ब्राह्मण को दे दी जाती है जो आजीवन छल कपट करता रहा। प्रेमचन्द ने 'गोदान' शीर्षक में इस सामाजिक मान्यता पर भी तीखा व्यंग्य किया है।

4. **कलात्मक नामकरणः-** प्रेमचंद जैसे साहित्यकार अपनी रचना का नाम अभिधात्मक शैली में नहीं करते। अपितु लक्षणात्मक एवं व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। 'गोदान' नामकरण एक व्यंग है। 'गोदान' होरी की म त्यु के समय होता हैं सभी होरी के प्रति सहानुभूति रखते हैं। उसके लिए गोदान करने को कहते हैं। परन्तु गौ खरीदने के लिए होरी और धनिया धन एकत्रित कर रहे थे। अभी तक 20 आने ही एकत्रित होते हैं जिनसे गाय नहीं खरीदी जा सकती। यदि उस समय 20 आने में गाय खरीदी जा सकती थी तो होरी अवश्य खरीद लेता। उन बीस आनों का दान किया जाता है। बीस आने ही मानो गाय बन जाते हैं अथवा बीस आने का दान ही गोदान हो जाता है। पुरोहित दातादीन बीस आने को ही गोदान मान लेता है। उसे इससे कोई आपत्ति नहीं कि 20 आने में गाय आ सकती है या नहीं। बस केवल ब्राह्मण की कृपा से होरी को वैतरनी पार हो जाए। प्रेमचन्द का ब्राह्मणों पर किया गया यह व्यंग्य 'गोदान' नामक शीर्षक में व्याप्त है। यह 'गोदान' नामकरण कलात्मक रूप में भी संभव है।

5. **प्रेमचंद का गोदान -** यदि यह मान भी लिया जाए कि प्रत्येक हिन्दू अपने मरने से पहले या उसके मरने के बाद उसके परिवार वाले गोदान करें तो उसकी आत्मा को शांति मिलती है। हिन्दु धर्म के अनुसार इसे अनिवार्य माना

जाता है। इसी आधार पर प्रस्तुत कृति 'गोदान' मुशी प्रेमचन्द की अंतिम रचना जो कि सुविज्ञ पाठकों रूपी पुराहितो को प्रदान की गई। यह 'गोदान' रूपी गोदान है। दैवयोग से इस रचना का नाम गोदान रखा गया है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनोपरान्त कहा जा सकता है कि 'गोदान' उपन्यास का नामकरण यद्यपि प्रमुख घटना 'होरी का गौ का दान' के आधार पर किया गया है परन्तु इसके नामकरण में जहां सामाजिक व्यंग है उद्देश्य का आभास है तो वहीं इस कृति को कलात्मक संज्ञा प्रदान की गई है। अतः कहा जा सकता है कि अघ्येय उपन्यास कृति का नाम 'गोदान' सर्वथा सार्थक, रोचक एवं उद्देश्यपरक है।

**प्र० 9 उपन्यास-कला की द ष्टि से 'गोदान' की समीक्षा कीजिए।**

**अथवा**

**उपन्यास के तत्वों के आधार पर 'गोदान' का मूल्यांकन कीजिए।**

**अथवा**

**"'गोदान' कृषक-जीवन के चित्रण की द ष्टि से ही नहीं, उपन्यास की द ष्टि से भी श्रेष्ठ रचना है।" इस अभिमत का युक्तियुक्त विवेचन कीजिए।**

उ०. प्रेमचन्द जी का मानना है कि उपन्यास मानव-जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है इसी द ष्टि को घ्यान में रखकर उन्होंने अनेक उपन्यासों की रचना की है। उनके उपन्यासों में यथार्थ धरातल पर उपन्यास की कथा व पात्रों का स जन हुआ है। विशेष रूप से 'गोदान' नामक उपन्यास में यर्थाथवादी भावना को रखकर जो चित्रण किया गया है उस आधार पर ज्ञात होता है कि जैसे वे सब कुछ आंखों देखा वर्णन कर रहे हों। उन्होंने जैसा देखा, भोगा और अनुभव किया उसके सरल व सुबोध रूप को कथा में अभिव्यक्त कर पाठकों के हृदय तक पहुंचने का सफल प्रयास किया है। वे युग द ष्टा से अतः अपने युग में व्याप्त अर्थहीन एवं सारहीन कुरीतियो एवं मान्यताओं को समाप्त करने के पक्षधर थे। इसी कारण उनके उपन्यासों में युग की पुकार है। उनके उपन्यासों में कथा को इतनी दक्षता से प्रस्तुत किया गया है जो आज तक संदेशदायक हैं। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर कलम का सिपाही बनकर उपन्यासों को अपनी अनुभूति का जामा पहनाया था। उपन्यास कला की द ष्टि से उनके उपन्यासों मे निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

1. कथानक 2. पात्र-योजना 3. संवाद (कथोपथन), ४ देशकाल वातावरण 5. भाषा शैली 6. उद्देश्य।

**कथानक :-** कथानक में मूलतः तीन गुण अपेक्षित होते हैं - रोचकता, संभाव्यता और मौलिकता। रोचकता का अर्थ मनोरंजन नहीं है, बल्कि कथानक में कौतूहलता पैदा करना है। संभाव्यता का अर्थ है कि उपन्यास में असंभव, अलौकिक या अमानवीयता का चित्रण न हो। मौलिकता का अर्थ है कि जिन बातों से हम परिचित है वे पुनः न कही जायें बल्कि कथावस्तु अभिनव ढंग से निरूपित हो। प्रेमचन्द उच्चकोटि के उपन्यासकार थे वे कथावस्तु के इन सभी गुणों से परिचित थे उन्होंने गोदान में कथानक को इतना कौतूहलपूर्ण, स्वाभाविक व मौलिक बनाया है कि वह उपन्यास कला का सुन्दर नमूना है। संक्षेप में 'गोदान' का कथानक इस प्रकार है 'गोदान में दो कथानक एक साथ चलते हैं। मुख्य कथा ग्राम्य -कथा है तथा गौण कथा-नागरिक कथा। ग्राम्य-कथा का नायक होरी है जो बेलारी गाव का एक पांच बीघे जमीन का किसान है। उसकी पत्नी धनिया, बेटा, गोबर व दो पुत्रियां-सोना व रूपा, बस यही उसका परिवार है जो दिन-रात खेतों में परिश्रम करके अपना गुजारा करता है। एक दिन होरी भोला के यहां से गाय का सौदा करता है। भोला जब भूसा लेने आता है तो गोबर भूसा लेकर भोला के यहां चला जाता है जहां भोला की जवान विधवा पुत्री झुनिया गोबर को देखकर उस पर आसक्त हो जाती है। दोनों का प्रेम हो जाता है। गर्भवती झुनिया को छोड़कर गोबर शहर चला जाता है। झुनिया को होरी और धनिया शरण देते हैं। परिणामस्वरूप गांव के पंच होरी का हुक्का-पानी बंद कर देते हैं। बाद में इतना दण्ड देते हैं कि उसके खलिहान की सारी फसल चली जाती है और उसे मकान गिरवी रखना पड़ता है। इधर गाय के घर में आने से घर में यद्यपि खुशी होती है परन्तु होरी का भाई हीरा गाय को जहर देकर मार देता है और घर से भाग जाता है। हीरा के घर

की तलाशी के लिये दरोगा आता है परन्तु होरी दरोगा को रूपये देकर शान्त करता है। इस प्रकार होरी की दशा दिनों दिन आर्थिक रूप में बिगड़ती जाती है। इधर बेटी सोना के विवाह में भी उसे ऋण लेना पड़ता है। होरी इतना ऋणग्रस्त हो जाता है कि उसके पास न बैल रहते हैं और न खेत। दूसरी पुत्री रूपा के विवाह में वह दो सौ रूपये लेता है। इसी बीच गोबर पहले तो आराम से रहता है परन्त बाद में मिल में नौकरी करने लगता है। मिल में हडताल होने से गोबर को चोट लगती है। झुनिया का पहला पुत्र चल बसताहै परन्तु इसी अन्तराल में दूसरा पुत्र हो जाता है। झुनिया होरी के यहां चली जाती है। होरी व धनियां दिन-रात काम करत हैं। उनकी अभिलाषा है किसी प्रकार से इतना धन जुटा लें जिससे एक गाय खरीदी जा सके। इसी परिश्रम के करते-करते होरी चल बसता है उसके घर बीस आने थे जिसका होरी की म त्यु पर गोदान किया जाता है। इस प्रकार ग्रामीण कथा होरी के जीवन की त्रासदी है। शहरी-कथा में जर्मीदार रायसाहब, प्रो०. मेहता, मिल मालिक खन्ना उसकी पत्नी गोविन्दी तथा डाक्टर मालती आदि की एक मंझली है। सभी परस्पर मिलते रहते हैं, शिकार खेलने जाते हैं, शराब पीते हैं और खुशी की जिन्दगी व्यतीत करते हैं परन्तु मालती अविवाहित है और पाश्चात्य सभ्यता में रहने के कारण सभी के साथ इतना खुलकर व्यवहार करती है कि उसकी सुन्दरता पर प्रायः सभी मुग्ध हैं। मि० खन्ना तो उस पर इतना आसक्त हैं कि उसका अपनी पत्नी से भी झगड़ा हो जाता है। इधर मिस मालती प्रो. मेहता से विवाह करना चाहती है। दोनों का विवाह तो नही होता परन्तु दोनों मित्र बनकर जीवन जीते हैं। और मालती जनसेवा एवं परोपकार में जीवन व्यतीत करने लगती है। ये दोनों कथाएं प्रेमचन्द ने अलग-अलग रूप में प्रस्तुत न करके इतने मिश्रित रूप में प्रस्तुत की हैं कि पाठक को कौतूहलता रहती है कि आगे क्य हुआ? सम्पूर्ण कथानक रोचक, जिज्ञासावर्धक हैं। गोदान का कथानक अपने भावों के सम्प्रेषण में खरा उतरता है।

2. **पात्र-योजना :-** कहानी में पात्र संख्या सीमित होती है, परन्तु उपन्यास पात्रों की संख्या असीमित भी हो सकती है। उपन्यास के पात्र स्वाभाविक, यथार्थ और जीवन्त होने चाहिएं, वे लेखक के हाथों की कठपुतली नहीं होने चाहिएं। प्रेमचंद के उपन्यास में पात्र योजना इसी प्रकार की है। यहां पात्र अत्यन्त स्वाभाविक और सहानुभूति योग्य हैं। उपन्यास का नायकाहोरी एक गांव के कृषक जीवन का जीवन्त चरित्र है जो आज भी प्राप्त है। होरी मानवता की मूर्ति है। वह अनपढ़, परिश्रमी, भाग्यवादी, ईमानदार परन्तु प्राचीन कृषक-संस्कृति का रक्षक है। वह कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। गांव में साहूकार, दातादीन, ब्राह्मण पटेश्वरी, पटवारी, जर्मीदार का कारिन्दा और नोखेराम हैं। जो किसानों का शोषण करते हैं। होरी भी इन्हीं का शिकार है। शहरी पात्रों में जर्मीदार, अमरपाल सिंह, जर्मीदार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। होरी जैसे किसानों से लगान, नजराना , बेगार आदि वसूल करके खूब मौज की जिंदगी बिताते हैं। मिल-मालिक खन्ना अवसरवादी तथा धन लोलुपी और विषयों में आसक्त दुर्गुण सम्पन्न पात्र हैं। डॉ. मेहता बुद्धिवर्ग का प्रतिनिधि है। मालती पाश्चात्य सभ्यता में व्याप्त नवयुग की प्रतिमा है। गोविन्दी सती-साध्वी पतिव्रता नारी है। गोबर जाग त पीढ़ी के युवक का प्रतीक है। ये सभी पात्र व्यक्तिपरक न होकर वर्गगत है। प्रो. मेहता के नारी-जीवन सम्बन्धी विचार अत्यन्त मार्मिक और भारतीय आदर्श परम्परा के अनुरूप है। कहा जाता है कि होरी यदि प्रेमचन्द का अनुभूति पक्ष है तो प्रो. मेहता विचारपक्ष सम्पूर्ण रूप में यदि देखा जाए तो 'गोदान' उपन्यास की पात्र -योजना अत्यन्त सार्थक और सफल है।

3. **संवाद (कथोपथन)** कथोपथन उपन्यास में रोचकता, स्वाभाविकता तथा यथार्थकता प्रस्तुत करता है। संवाद या कथोपथकन की सबसे बडी विशेषता यह होती है कि वह सजीव व सार्थक हो तथा कथानक से इतना अभिन्न हो कि जोडा हुआ-सा प्रतीत न हो। 'गोदान' उपन्यास के कथोपकथन अत्यन्त स्वाभाविक था जीवन्त हैं जो कथा में प्राण डाल देते हैं। उदाहरण के लिए होली के अवसर पर ठाकुर की नकल उतारते हुए युवकः-

जब कागज पर लिखा जाता है और असामी के हाथ में पांच रूपये रख दिये जाते हैं तो वह चकराकर पूछता है।

'यह तो पांच रूपये हैं मालिक।'

'पांच नहीं दस हैं। घर जाकर गिनना।'

'नहीं सरकार, पांच है।'

'एक रूपया नजराने का हुआ कि नहीं? '

'हां सरकार।'

'एक तहरीर का?'

'एक कागद का ?'

'हां सरकार।'

'एक दस्तूरी का?'

'हां सरकार'

'एक सूद का?'

'हां सरकार।'

हां पांच नगद, दस हुए कि नहीं? पांच सरकार अब यह पांचो भी मेरी ओर से रख लीजिए।'

'कैसा पागल है।'

'नहीं सरकार, एक रूपया छोटी ठकुराईन का नजराना, एक रूपया बडी ठकुराईन का। एक रूपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को बाकी बचा एक , वह आपकी क्रिया-करम के लिये। '

इस प्रकार छोटे-छोटे सरल वाक्यों के द्वारा एक ओर, रोचक संवाद योजना की गयी है। तो दूसरी ओर व्यंग्यात्मक रूप से शोषक वर्ग का अन्याय प्रस्तुत किया गया है।

कहीं-कही संवाद  बडे चुस्त व संक्षिप्त में गंभीर भावों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम हैं। होरी से दल कपट किया जाता है।

'परमेश्वरी ने कहा- मगर लगान तो बेबाक कर चुका? झिंगुरी सिंह ने समर्थ कहीं न किया- हां लगान के लिए ही तो हमने तीस रूपये लिए हैं, नोखेराम ने घमण्ड के साथ कहा- लेकिन अभी रसीद तो नहीं दी। सबूत क्या है कि लगान बेवाक कर दिया।

इनमें शब्दावली भी पात्रों के अनुरूप है। प्रेमचन्द ने जहां ग्रामीण पात्रों से ग्राम्य भाषा का प्रयोग कराया है वहां शहर को पात्रों से शहरी भाषा का। भाषा सदा पात्रों के अनुरूप है। उदाहरण के लिए धनुष-यज्ञ के अवसर पर जब राय साहब की मित्र मंडली एकत्रित है, तब एक खान वहां पर आता है उस समय का कथोपकथन पात्रों के अनुरूप है।

'खान ने आगे बढ़कर कहा- तो अम तुमको लूट ले जाएगा।'

'तुम इतने आदमियों के बीच से ले जा सकता। '

'अम तुमको एक हतजार आदमियों के बीच से ले जा सकता है। '

'तुमको जान से हाथ धोंना पड़ेगा।'

'अम अपने माशूक के लिए अपने जिस्म का एक-एक बोटी नू चिवा सकता है।'

यहां भाषा खान व मालती दोनों के अनुरूप हैं। अतः 'गोदान' की संवाद योजना अत्यन्त सशक्त है।

4. **देशकाल वातावरणः-** देश,काल एवं परिस्थिति के अनुरूप ही उपन्यासों में वातावरण अपेक्षित है। जिससे अपने युग का पूर्ण, सजीव चित्र पाठक के मानस पटल पर अंकित हो सके। प्रेमचन्द इस प्रकार के वातावरण को अपने उपन्यासों में अंकित करने में सिद्धहस्त थे इससे पूर्व भी वे अनेक उपन्यास व कहानियां लिख चुके थे। 'गोदान उनकी प्रौढ़ कृति होने के कारण उनकी वातावरण द ष्टि अत्यन्त विशुद्ध है। उदाहरण देखिएः- ''फागुन अपनी झोली में नवजीवन की विभूति लेकर आ पहुंचा था। आम के पेड़ दोनो हाथों से बौर की सुगन्ध बांट रहे थे और कोयला आम की डालियो में छिपी हुई संगीत का गुप्त दान कर रही थी। गांव में ऊख की गोड़ाई लग गई थी। अभी धूप नहीं निकली पर होरी खेत में पहुंच गया। धनिया, सोना, रूपा, तीनो तलैया से ऊख के भीगे हुए गट्ठे निकाल-निकाल कर खेत में ला रही थी और होरी गंडासे से ऊख काट रहा था।

यह ग्राम पंचायत का जीता जागता चित्र है। इसी प्रकार 'गोदान' उपन्यास में ऐसे अनेक चित्र प्रस्तुत किए गए है जो देशकाल वातावरण को प्रस्तुत करते हैं।

5. **भाषा शैली -** प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'गोदान' में सरल एवं रोचक भाषा शैली का प्रयोग किया है। 'गोदान' की भाषा इतनी रोचक है कि पाठक शीघ्रातिशीघ्र उपन्यास को पढ़कर इसका आनंद लेना चाहता है। भाषा के अनेक रूप उपन्यास में अंकित हैं। क्योंकि भाषा ही किसी भी कृति की सफलता -असफलता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रेमचंद की भाषा रोचक होते हुए भी उसमें कहीं पर व्यंग्य है तो कहीं चित्रात्मकता है। जैसे मिर्जा खुर्शीद और मिस्टर तंखा जब शिकार खेलने जाते हैं तो लेखक उनका चित्र खींचते हए कहता है-''हिरणों का एक झुण्ड चरता हुआ नजर आया, मिर्जा के मुख पर शिकार का जोश चमक उठा। बंदूक संभाली और निशान मारा। एक काला सा हिरन गिर पड़ा 'वह मारा'। इस उन्मत छवि के साथ मिर्जा भी बेतहाशा दौड़े -बिल्कुल बच्चों की तरह उछलते, कूदते, तालियाँ बजाते।''

प्रो० मेहता चुस्त भाषा का प्रयोग करते हैं -''स्त्री-पुरूष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरूष धर्म ओर अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर संभव नहीं हो सका। मैं कहता हूँ उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।'' इस प्रकार प्रेमचंद ने भाषा में गांभीर्य एवं प्रभावपूर्ण रूप की अभिव्यक्ति की है।

गाँवों के सामान्य बोलचाल के शब्दों, तत्सम, तद्भव एवं अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। भाषा की यही विशेषता उपन्यास में प्राण डाल देती है।

6. **उद्देश्यः-** प्रत्येक रचना का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता हैं, बिना उद्देश्य के तो किसी रचना की कल्पना भी नहीं कि जा सकती। प्रेमचंद सच्चे साहित्यकार थे उपन्यास सम्राट थे।

उपन्यास के माध्यम से निजी अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले कलाकार थे। 'गोदान' सोद्देश्य उपन्यास हैं, जिसमें अनेक संदेश निहित हैं। उपन्यास का नायक होरी प्रेमचन्द का अनुभूति पक्ष है तथा मेहता विचारों का वाहक है। प्रेमचंद विचारों की द ष्टि से आदर्शवादी थे। जिस कारण उनके पात्र सद्व त्तियों से परिपूर्ण परिलक्षित होते हैं जिससे उनको पीड़ा या कष्टों को सहन करना पड़ता है। होरी किसान था परन्तु उसने किसी के जलते हुए घर में हाथ सेकना नहीं जाना था। वह परम्परावादी रूढ़ियों, मान्यताओं, संस्कारों व आदर्शो से युक्त होकर अपना शोषण स्वीकार करता है। उसकी मुत्यु इन्हीं आदर्शो के कारण होती है। प्रेमचंद कर कथन है-'बिरादरी उसके जीवन में व क्ष की भांति जड़ जमाए हुए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थी बिरादरी से निकालकर उसका जीवन विश्रं खला हो जाएगा, तार-तार हो जाएगा।' यद्यपि उसकी पत्नी उसे बार-बार समझाती है कि ये पंच देवता नहीं, राक्षस हैं। परन्तु वह मर्यादा का रक्षक होरी उसकी एक नहीं सुनता। वह अभावग्रस्त होकर भी सहानुभूति से युक्त है परन्तु उसके प्रति किसी को भी सहानुभूति नहीं। अपनी खेती, बैल आदि सब कुछ लुटाकर वह नौकरी करने को बाध्य है। धार्मिक भावना के कारण वह इतना भयभीत रहता है कि प्रत्येक अन्याय

को सहन करता है परन्तु उसके विरूद्ध आवाज नहीं उठाता। प्रेमचंद स्वयं आवाज उठाते हुए मानो कहते हैं-

'कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है। कानून तो यह है कि कोई महाजन किसी आसामी के साथ लड़ाई न करें, कोई जमींदार किसी काश्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है ? जमींदार मुस्क बंधवाकर पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। कचहरी अदालत उन्हीं के साथ हैं जिसके पास पैसा है।' इस प्रकार प्रेमचंद ने ग्राम्य जीवन में कृषकों की शोचनीय दशा का विशेष रूप से चित्रण कर यह संदेश दिया है कि इस प्रकार का शोषण देश ओर समाज के लिए घातक है।

दूसरी ओर प्रेमचंद ने नागरिक कथा में प्रो० मेहता और मिस मालती जैसे पात्रों के द्वारा यह सिद्ध किया है कि नारी-जीवन एक आदर्श, त्याग और सेवा से युक्त महान था महत्वपूर्ण है यदि वह नैसर्गिक गुणों का परित्याग कर पुरूष बनना चाहती है। या पुरूषों केगुणों को प्राप्त करना चाहती है तो वह कुलआ बनजाती है। प्रेमचन्द नारियों को या पुरूषों के बराबर का स्थान प्रदान करने के पक्षपती नहीं थे। जहां नारी में मत, त्याग, सेवा, दया आदि भाव है। इसी कारण गोविन्दी को मेहता एक आदर्श नारी मानता है और मिस मालती के इसलिए नहीं अपनाता क्योंकि उसमें नारी के गुण विद्यमान नहीं है। मेहता की छवि में गोविन्दी विलास को तुच्छ समझती है, जो उपेक्षा और अनादर सहकर भी अपने कत्तव्यों से विचलित नहीं होती। जो मात त्व की बेदी पर अपने को बलिदान करती है। जिसके लिए त्याग ही सबसे बड़ा है। अधिकार है जो इस योग्य है कि उसकी प्रतिमा बनाकर पूजा जाए। मेहता के आदर्शो और उनके महान् विचारों को जानकर ही मालती का जीवन बलिदान जाता है। अब वह तितली नहीं बल्कि सेवा परायण बन जाती है। उसमें अब वासनात्मक प्रेम नहीं बल्कि सेवा और त्याग सम्बन्धी प्रेम है।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने होरी, धनिया, प्रो. मेहता व मालती इन चार पात्रों को मुख्य रूप से केन्द्र में रखकर उपन्यास में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से महान् और हितकारी संदेशों का संकेत किया है। जिस कारण उनका यह 'गोदान' प्रेमचन्द-साहित्य में ही नहीं बल्कि हिन्दी साहित्य में उत्कृष्ट रचना माना जाने लगा। वस्तुतः उपन्यास कला की द ष्टि से 'गोदान' एक अनुपम एवं श्रेष्ठ रचना है। यथार्थ कथानक जीवन्त और युगानुरूप पात्र योजना, तत्कालीन वातावरण आदि सभी तत्व उपन्यास की गरिमा को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। अतः कहा जा सकता है 'गोदान' हिन्दी साहिल्य का अनुपम उपन्यास है।

**प्र.10. महाकाव्यात्मक उपन्यास की अवधारणा की कसौटी पर 'गोदान' की महाकाव्यात्मकता की परीक्षा कीजिए।**

**अथवा**

**'गोदान' एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है जिसमें भारतीय जीवन का सामाजिक यथार्थ व्यापकता के साथ उपस्थित हुआ है। इस कथन की विशद व्याख्या कीजिए।**

उ०. उपन्यास और महाकाव्य दोनों ही व हदाकार रचनाएं है। दोनों में जीवन के विविध पक्षों का चित्रण होता है। प्रेमचंद उपन्यास को यदि मानव जीवन का चित्र मानते है तो महाकाव्य भी किसी विशिष्ट मानव या अतिमानव का जीवन चित्रित करता है। उपन्यास का उदय भी प्रबंधकाव्य (महाकाव्य) से हुआ है न कि मुक्तक काव्य से। इसी कारण पाश्चात्य आलोचक उपन्यास को महाकाव्य का उत्तराधिकारी मानते हैं। (Novel the successor of the epic) श्रीवास्तव ने तो उपन्यास को 'गद्यमय महाकाव्य' तथा महाकाव्य का 'पद्यमय उपन्यास कहकर मानो दोनों का समीकरण ही कर दिया है। वस्तुतः पाश्चात्य विद्वान हडसन ने उपन्यास की कसौटी, जीवन को समग्र और स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करना स्वीकार किया है और कहा है-A novel is really great only when it lays its foundations board and deep in the things whih most constonty and seriously appeal to us in the struggle and fortness of our common humanity. ओर, महाकाव्य का लक्षण करते हुए डॉ. गुलाब राय ने कहा है- महाकाव्य विषय प्रधान काव्य है जिसमें कि अपेक्षाकृत बडे आकार में, जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यो द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है। इस आधार पर महाकाव्य व उपन्यास दोनों का लक्ष्य प्रायः एक जैसा है।

**महाकाव्य के तत्व**- भारतीय प्राचीन संस्कृत के काव्यशशास्त्रियों ने महाकाव्य के तत्व, संस्कृत के महाकाव्यों को घ्यान में रखकर किए थे। आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के निम्नलिखित तत्व माने हैं। - महाकाव्य सर्ग बद्ध रचना होती है जिसमें धीरोदात्त नायक होता है। श्रंगार, शान्त और वीर रसों में से एक रस प्रमुख रूप से हाता है। कथानक में से संधियां रहती है। लोक प्रसिद्ध कथा हाती है। चतुवर्ग में से एक उसका उद्देश्य होता है। प्रत्येक सर्ग में एक छंद होता है परन्तु अंत में छंद बदल जाता है। इसमें विविध घटनाएं तथा प्राकृतिक चित्रण होता है।

महाकाव्य के गौण तत्वों पर यदि ध्यान न दिया जाये और पाश्चात्य महाकाव्यों की परिभाषाओं को ध्यान में रखा जाये तो महाकाव्य के प्रमुख तत्व इस प्रकार संभव है-

1. सुसंगठित एवं जीवित कथानक।
2. उदात्त चरित्र
3. युग-जीवन के विविध चित्र।
4. महान् उद्देश्य।
5. गरिमामयी शैली।
6. महत्वपूर्ण नायक।

**उपन्यास के तत्व**- भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के अनुसार उपन्या के छह तत्व हैं। जैसे हडसन के अनुसार

1. कथानक 2. पात्र और चरित्र चित्रण 3. कथोपकथन 4. देशकाल और वातावरण 5. भाषाशैली 6. उद्देश्य।

यदि ध्यान से दखा जाए तो पाश्चात्य महाकाव्यों व उपन्यासों की समान विशेषताएं हैं। इसमें संदेह नहीं कि उपन्यास को महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। फिर भी डा. सत्यपाल चुघ का कथन सत्य है कि ''यदि कोई साहित्य-रूप, महाकाव्य की सामर्थ्य व शक्ति को सिद्ध कर सकता है या कर सका है तो उपन्यास ही है क्योंकि उसी में काव्यमय साधना के प्रचुर उपयोग की शक्ति है। समाज के व्यापक चित्र फलक पर विराट भूमिका में युग का चित्रण किया गया है और किया जा सकता है। उसका सामूहिक प्रभाव भी महाकाव्य -सा है। ''

इसी आधार पर गोदान उपन्यास की महाकाव्यत्मकता इस प्रकार सिद्ध की जा सकती है।

. **सुसंगठित कथानक**:- महाकाव्य के समान 'गोदान' उपन्यास का कथानक सुसंगठित है। इस उपन्यास में दो कथाएं एक साथ चलती हैं।

. ग्रामीण कथा और (2)नागरिक कथा। ग्रामीण कथा का सम्बन्ध होरी और धनिया के जीवन की कहानी से है तथा नागरिक कथा में राय साहब, खन्ना, गोविन्दी, प्रो. मेहता व डा. मालती आदि आते है। ये दोनों कथाएं तत्कालीन ग्राम्य व शहरी वातावरण को प्रस्तुत करती हैं। राय साहब और होरी, गोबर और मिर्जा आदि के माध्यम से नागरिक कथानक जुड़े हुए हैं। सम्पूर्ण कथानक में रोचकता है। कहीं भी नीरसता नहीं है। शहरी और ग्रामीण घटनाएं एक के बाद एक इस प्रकार गूंथ दी गई है। कि उनमें स्वाभाविकता तथा सरसता विद्यमान रहती है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे उपन्यासकार स्वयं अपनी आंखों देखी घटनाएं प्रस्तुत कर रहा हो। उपन्यास का प्रारम्भ ही अत्यन्त रोचक है, जिसमें होरी और धनिया परस्पर एक ओर अपनपने की बातें करते हैं दूसरी ओर जमींदारी प्रथा पर व्यंग है। होरी कहता है तू जो बात नहीं समझती, उसमें टांग क्यों अड़ाती है भाई! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देखें। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं तो कभी का ही पता न लगता कि किधर गए।............ जब दूसरे के पांवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पांवों को सहलाने में ही कुशल है।

इस प्रकार कथानक में स्वाभाविकता भी है और व्यंग भी। प्रेमचंद ने होरी के समस्त जीवन का चित्र एक जीवन्त किसान का आंखों देखा वर्णन-सा किया है। जीवन में घोर परिश्रम करने के बाद भी होरी की म त्यु होना मानो

प्रेमचंद इस त्रासदी को प्रस्तुत करके उसकी करूणा का पाठ जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे कि भारत में सामाजिक -व्यवस्था कितनी दूषित है। होरी की कथा सम्पूर्ण उपन्यास में अत्यन्त मार्मिक व यथार्थ धरातल पर स जित है। नगर की घटनाएं गौण है। नगर में रहने वाले राव साहब रंगे सियार है। एक ओर होरी जैसे सरल-स्वाभाविक किसान को लूटते हैं तो दूसरी ओर अपनी मजबूरी दिखाकर उसकी संवेदना प्राप्त करना चाहते हैं। राय साहब कहते हैं- होरी को जमीन पर बैठने का इशारा करके बोले- समझ गया, मैंने क्या कहा?.......... हमें इन पांच-सात दिनों में बीस हजार का प्रबन्ध करना है। कैसे होगा, समझ में नहीं आता।........ न जाने क्यो तुम्हारे ऊपर विश्वास होता है....... हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो, क्यों। इस प्रकार कथन से वस्तुतः प्रेमचंद धनिकों व जमींदारों की पोल खोलना चाहते थे। 'गोदान' के कथानक में यथार्थवादी भावना का स्वाभाविक चित्रण है। दोनों कथानक परस्पर मिले हुए हैं। कभी ग्रामीण कथा आती है तो कभी-नागरिक। सम्पूर्ण कथानक में सदा संघर्ष व्याप्त है। पात्र भी शोषण, रूढियों, विषमताओं एवं अधंविश्वासों से घिरे रहते हैं। उनका जीवन तत्कालीन सामाजिक परिवेश से घिरा है। विभिन्न घटनाएं एक सूत्र में पीरो दी गयी है। जिससे गोदान का कथानक पूर्णतः सुसंगठित, स्वाभाविक व रोचक बन पड़ा है।

**पात्र योजनाः-**

महाकाव्य का नायक जहां धीरोदात्त होता हें वहां उपन्यास में सामान्य व्यक्ति होता है। गोदान का नायक होरी है जो छोटा-सा किसान है तथा अन्य पात्र उसके आस-पास रहने वाले और परिवार के सदस्य हैं। होरी शोषित, ऋणग्रस्त तथा परम्परागत सीधे-साधे किसान का प्रतिनिधि है। उसका पुत्र ऊगती हुई नवीन पीढ़ी का आक्रोश भरा परन्तु असफल युवक है। वह भी परिस्थितियों का दास है। वह जागरूक है और अपने पिता होरी को समझाता है कि जब तुम्हें लगान,बेगार नजराना सब कुछ देना पड़ता है तो तब क्यों मालिकों की खुशामद करते हो। वह अल्हड़ युवक है परन्तु शहरी वातावरण ने उसे प्रगतिशील बना दिया है। धनिया जो होरी की पत्नी, पतिव्रता नारी है। जो अपने परिवार के पोषण के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है परन्तु निर्धनता और अथक परिश्रम ने उसे आक्रोश से भर दिया है। उसे कभी भी सुख नहीं मिला। वह अपने पति के प्रति पूर्णतया समर्पित है। उसमें अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने का साहस है। ग्रामीण पात्रों में सिलिया, झुनिया, सोना, रूपा आदि हैं। पुरूष पात्रों में झिंगुरी सिंह, दातादीन, मातादीन, नोखेदास ,पटेश्वरी, हीरा आदि हैं।

नागरिक पात्रों में जमींदार राय साहब का चरित्र एक शोषक व्यक्ति का रूप है जो दोनों हाथों से असामियों का लूटता है, और अवसर पड़ने पर मगरमच्छ के आंसू बहाता है। डॉ. मेहता एक आदर्श प्रोफेसर है। जीवन में भी दार्शनिकता और अध्यापन में दार्शनिकता। वह आजीवन अविवाहित रहकर नारी के सुधार को महत्व देते हैं। मिस मालती प्रारंभ में तितली और बाद में सेवा तथा त्याग की प्रतिमा बनकर उपन्यास में आती है तो गोविन्दी एक आदर्श ग हिणी के रूप में चित्रित है।

मिल मालिक चंद्र प्रकाश खन्ना, सम्पादक ओंकारनाथ, श्याम बिहारी तंरवा, सभी पात्र हैं। इनमें कु और सु दोनों प्रकार प्रव तियां हैं। सभी पात्र यथार्थ तथा सजीव हैं। वे वर्गगत अधिक, व्यक्ति सापेक्ष कम दिखाई पडते हैं जिसमें गोदान की पात्र योजना सफल व न्यायसंगत है। होरी प्रेमचन्द के जीवन का अनुभूति पक्ष है तो मेहता विचार पक्ष।

3. **युग-जीवन के विविध चित्रः-**

प्रेमचंद ने अपने उपन्यास गोदान में तत्कालीन युग का जीता-जागता चित्रण कर उसे युगीन दर्पण सा बना दिया। ग्रामीण जीवन को बड़ी कुशलता के साथ चित्रित करके तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की झलक उपन्यास में दी है। 'गोदान' कृषक-संस्कृति का दस्तावेज है। ग्राम्य जीवन में किस प्रकार किसान, व अन्य वर्ग रहता है, वहां छुआ -छूत, ब्राह्मणों का पाखंड, दरोगा का आतंक व जमींदारों का शोषण होता है वे सभी विस्त त रूप से चित्रित है। भारत में स्वतंत्रता का आन्दोलन चलने से शहरी जीवन में कुछ परिवर्तन है। गोबर राजनीतिक सभाओं में भाषण सुनकर पर्याप्त समझदार बन गया है। शहरों में नारी स्वच्छन्ता का जीता जागता चित्र मिस मालती के तितली रूप में दिखाई पड़ता है। मि. खन्ना का मिल में हड़ताल होना और फिर आग लग जाना तत्कालीन हड़तालों का प्रभाव

है। फिर शहर के उच्च वर्ग व पूंजीपति विलासतापूर्ण जीवन बिताते है। कुंवर दिग्विजय सिंह, मि. खन्ना, राजा सूर्य प्रताप सिंह रसिक और और विलासी प्रकृति के है। शहरी जीवन मे स्वार्थ अधिक हें गोबर जब झुनिया को गर्भवती छोड़कर शहर भाग जाता है। और नौकरी की तलाश करता है तो व शहर में देखता है। उस दिन बाजार में चार पांच सौ मजदूरों से कम न थे। बढ़ई, लोहार बेलदार, खाट बुनने वाले, टौकरी ढोनेवाले सभी जमा थे। गोबर यह देखकर निराश हो गया। इतने सारे मजदूरों को कहां काम मिल जाता है। आदि चित्रण तत्कालीन व्यवस्था का एक चित्र है। गोदान उपन्यास को अपने युग की कथा कहा जा सकता। प्रेमचंद ने इसमें यर्थाथवादी विवेचना अधिक रूप में प्रस्तुत की है।

**शैली:-** प्रेमचन्द जी ने अपनी सभी रचनाओं में गरिमामयी भाषा सरल एवं सरस भाषा, शैली को अपनाया। उन्होंने अपने गोदान में प्रायः बोलचाल की भाषा को अपनाया है और कहीं-कहीं साहित्यक भाषा का पुट भी दिया है। सम्पूर्ण उपन्यास प्रेमचन्द के भावों को पाठकों तक पहुंचने में सक्षम हैं उपन्यास की भाषा के विषय में प्रेमचंद ने स्वयं लिखा है।

''यह जरूर है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अंतर अवश्य रहता है। लेकिन लिखित भाषा सदैव बोलचाल की भाषा से मिलते-जुलते रहने की कोशिश किया करती है। लिखित भाषा की खूबी यही है। कि वह बोलचाल की भाषा से मिले। इस आदर्श यदि दूर हो जाती है तो व उतनी अस्वाभाविक होती चली जाती है।

प्रेमचन्द ने गोदान में भाषा के इसी आदर्श को अपनाया है उदाहरण के लिए उपन्यास के प्रारम्भ में ही होरी अपनी पत्नी धनिया से कहता है तुझे रस-पानी की पडी है अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान, पूजा करने लगेंगे तो घण्टों बैठे बीत जाएंगे.....।'' यह भाषा कितनी स्वाभाविक एवं पावनुकुल हैं प्रो. मेहता सधी हुई भाषा का प्रयोग करते हुए कहते है।-?'' स्त्री प थ्वी की भांति धैर्यवान हैं। शांति सम्पन्न है, सहिष्णु हैं नारी में पुरूष के गुण आ जाते है। तो वह कुलटा हो जाती हैं पुरूष आकर्षित होता है स्त्री की ओर, जो सर्वाश में स्त्री हो।'' इस प्रकार का कथन एक शिक्षित प्रो. का ही संभव है जहां दर्शन है। भाषा में गंभीर्य है।

प्रेमचन्द प्रारम्भ से ही सरल स्वाभाविक तािा बोल चाल की भाषा के प्रयोग में विश्वास रखतें थें जिसके माध्यम से वो सहजता से अपने विचारें को पाठकों तक पहुंचाने मे सफल हो सके।

**महान उद्देश्यः-**

प्रेमचंद गोदान के माध्यम से उसी प्रकार का संदेश दिया है जैसे महाकाव्य देता हैं तत्कालीन ग्राम के परिव्याप्त ऋण समस्या, शोषण की समस्या, अन्तर जातीय विवाह समस्या नारी, का शोषण, ब्राहहमणों का ढोंग, पंचों के नाम पर अन्याय, दरोगा आदि सरकारी व्यक्तियों का आंतक आदि उपन्यास में दिखाया गया है। तथा शहरी वातावरण में स्वच्छन्द प्रेम की समस्या, स्त्री शिक्षा, नारी-समस्या मजदूरों की समस्या आदि का यर्थाथ चित्रण किया है, गोदान की मूल समस्या कृषक-जीवन की समस्या है जिसका मूल भोक्ता होरी है जो अपनी आदर्शवादीता और मर्यादा के कारण आजीवन कष्ट भोगता है। प्रेमचंद ने ग्राम्य जीवन की शोषण व्यवस्था को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है।

थाना पुलिस कचहरी अदालत सब है हमारी रक्षा के लिए लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है।, बेबस है, उसकी कर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते है। यहां तो जो किसान है वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दें तो गांव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे तो निर्वाह हों। थानेदार और कांस्टेबिल तो जैसे उनके दामाद है। जब उनका दौरा गांव में हो जाय, किसानो का धर्म है कि वह उनका आदर-सत्कार करें, नजर-नयाज दें, नही ं तो एक रिपोर्ट में गोव का गांव बन्धा जाय।''

जो कटू सत्य है उसे प्रेमचंद सभी के समक्ष रखना चहाते थे वे तो समाज में मानवतावादी परम्परा की स्थापना करना चाहते थे। गोदान में एक नही अनेक संदेश हैं वे गांव में सुधार चाहते थे समस्त शोषण को दूर करने के पक्षधर थे। इसी कारणउन्होंने गोदान में न तो किसी आश्रम या संस्था की स्थापना की है। और न किसी सिद्धान्त या वाद को रखा है। उनका उद्देश्य मानव-कल्याण की भावना रहा है। एक ओर वे मालती व गोविन्दी के माध्यम से नारी में त्याग दया मामता समर्पण आदि की भावना भरकर पाश्चातय प्रभाव से उनहें बचाना चाहते थे तो दूसरी और ग्राम्य जीवन को दुखद व कष्ट साध्य जीवन प्रस्तुत करके मानवतावादी भावना जाग त करना चाहते थे। उन्हीं ने सुधारवादी या आदर्शवादी संदेश इस उपन्याएस में नही दिया बल्कि समाज परिर्वतन की ओर संकेत किया है।

इस प्रकार उपन्यास के प्रमुख तत्वों व महाकाव्यों की पुमुख विशेषताओं का समन्वय करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास गद्यमय विशाल आकार वाली रचना है तो महाकाव्य व हदाकार कृति है। नायक आदि की द ष्टि में दोनों में भले ही कुछ भेद दिखाई पड़े अन्यथा कथानक पात्र योजना, युगीन जीवन तारीमामयी भाषा व महान उद्देश्य आदि की द ष्टि से दोनों एक ही स्तर पर मान्य है। गोदान भी प्रेमचन्द की अमर वे प्रोढ़ कृति है जिसमें भारतीय जीवन का सामाजिक यथार्थ चित्रण है। अतः इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास या महान उपन्यास कहा जा सकता है।

**प्र० 11. 'गोदान' के कथानक की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।**

**उ०** 'गोदान' प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास है अतः उनके इस उपन्यास में उनकी कला के संपूर्ण निखार को बखूबी देखा जा सकता है। इस उपन्यास का कथानक ही अपने में इतना विशिष्ट है कि इसी आधार पर उसे प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासो से श्रेष्ठ कहा जा सकता है। इस उपन्यास की कथानक संबंधी विशेषताओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:-

1. **कथानक से सुसम्बद्धता :-** इस उपन्यास में ग्रामीण एंव नागरिक दो बडी कथाओं को पर्याप्त विकास देते हुए भी उपन्यासकार ने उन्हें इस कुशलता से एक दूसरे में पिरोया है कि उनमें कहीं भी असन्तुलन अथवा असम्बद्धता नहीं आ पाई है। इसका विस्त त विवेचन ज्ञात प्रश्न में किया जा चुका है।

2. **भारतीय जीवन का सच्चा चित्रण :-** प्रेमचन्द ने गांव और शहर के क्षेत्र में अपनी कथावस्तु का चयन किया है। इस दो क्षेत्रों के कथा का चयन कर प्रेमचन्द ने भारतीय जीवन की विषमताओं का उनके यथार्थ रूप में चित्रण किया है। होरी की कथा उस भारतीय किसान की सच्ची गाथा है जो जीवन पर्यनत जमींदार, पटवारी, साहुकार, पंच, एंव पुलिस के अत्याचारों से पीड़ित छटपटाता हुआ तथा जीवन पर्यनत कर्मठता को अपना एकमात्र अवलम्ब बनाये आगे बढता रहता है और अन्त में उसे 'गोदान' के लिए एक गाय भी मयस्सर नहीं होती और प्रेमचन्द ने यह सब इतनी स्वाभाविकता के साथ किया है कि हम पढ़कर यह सोचने लगते है कि यह सब तो हमारी देखी और सुनी हुई बातें हैं। इन्हें हम पहले से ही जानते थे।

3. **पात्रों की स्वाभाविक विकास :-** 'गोदान' के प्रत्येक पात्र की अपनी-अपनी कहानी है, अपनी-अपनी प थक समस्याएं है और उनको सुलझाने के अपने-अपने ढंग है, यहाँ तक कि गांव के विभिन्न साहूकार भी अपनी-अपनी अलग कहानी और प थक व्यक्तित्व लिये सामने आते है। किसी भी पात्र को प्रेमचन्द ने अपनी कठपुतली नहीं बनाया है और इन सबको एक साथ समेटे हुए 'गोदान' का विशाल कथानक मन्धर गति से आगे की और बढ़ता चला जाता है और अन्त में अपने लक्ष्य भारतीय किसान की करूण कथा का अन्त दिखाकर समाप्त हो जाता है।

4. **कथानक में रोचक संवादों की योजना :-** प्रायः यह देखा जाता है कि लेखक अपने अन्यासो से लंबे-लंबे भाषणों अथवा चिन्तनो के रूप में अनेक प ष्ठ घेरते चले जाते है और अपनी उस रौ में उस बात का ध्यान नहीं रखते कि यह विस्तार पाठक को उठा भी सकता है। सफल कलाकार की कुशलता उसी में हैं कि वह लम्बे भाषण भी दे जाय और पाठक को उबने भी न दे। 'गोदान' में डॉ० मेहता महिलाओं की सभा में ऐसा ही एक लम्बा भाषण

देते है परन्तु उपन्यासकार उस स्थान पर सतर्क प्रतीत होता है। डा० मेहता का भाषण यघपि चलता तो एक ही गति से है और निरन्तर बिना रूके, परन्तु प्रेमचन्द ने यह किया कि उधर डा० मेहता भाषण दे रहे हैं और इधर खन्ना, सम्पादक, ओंकारनाथ, रायसाहब, मिर्जा साहब आदि उस भाषण पर आपस में मनोरंजन टिप्पणियाँ करते चलते है साथ ही, अन्य श्रोताओं पर प्रेमचन्द उस भाषण की प्रतिक्रिया दिखाते चलते हैं। उस कला के कारण भाषण यथेष्ठ लम्बा होते हुए भी नीरस अथवा उबा देने वाला नहीं बन पाता जब प्रेमचन्द एक भाषण का वर्णन करने में इनती सतर्कता से काम लेते है तो उनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे दो असम्बद्ध कथानकों का आपस में बलात गठबन्धन करने का प्रयत्न करेंगे। उपन्यासकार की ऐसी सतर्कता के दर्शन ' गोदान ' में अनेक स्थलों पर मिलता है।

5. **ग्राम तथा नागरिक कथाओ की एक सूत्रता :-** 'गोदान' की कथा का प्रारम्भ होरी के ग्रामीण जीवन से प्रारम्भ होता है और रायसाहब के धनुषयज्ञ में आकर वह नागरिक पात्रों से मिल जाता है। होरी का सम्बन्ध अपने जर्मीदार रायसाहब से है और रायसाहब का सम्बन्ध एक धनी व्यक्ति होने के नाते नगर के ओंकारनाथ, खन्ना, तंख, मेहता, निरजा , मालती आदि के साथ हैं इस प्रकार रायसाहब ग्रामीण और नागरिक जीवन को जोड़ने वाली कड़ी बन जाते है। आगे चलकर गोबर नगर जाकर मिरजा , मेहता , मालती आदि के सम्पर्क में आकर दोनो क्षत्रों को और भी घनिष्ठता के साथ जोड़ देता है। खन्ना की शक्कर मिल भी उस कार्य में पर्याप्त हाथ बटाँती है। बाद में मेहता और मालती का शिकार भ्रमण तथा इन दानो का होरी के गांव जाना भी दोनो क्षेत्रों को मिलाने में सहायक होता है। सम्पादक ओंकारनाथ अपने पत्र 'बिजली' में होरी के गाँव वालो के द्वारा भेजे गऐ पत्र छापने की बात कहकर इस कथन से जुड़ जाते हैं।

6. **प्रासंगिक कथाओ का मुख्य कथा के साथ सुगुम्फन :-** ग्रामीण जीवन में ही भिन्न-भिन्न कथायें हैं। गोबर और झुनिया की, मातादीन और सिलिया की, भोला , नोहरी और नोखेराम की विभिन्न कथायें नायक होरी और नायिका धनिया से आकर सम्बद्ध हो जाती है। इस प्रकार इन भिन्न प्रतीक होने वाली कथाओं के समाज के वास्तविक चित्रण के साथ-साथ होरी और धनिया की मानवता को उभारने में पर्याप्त सहयोग दिया है संपूर्ण कथा किसानों की मूल समस्याओं को ही लेकर चलती है परन्तु नागरिक और ग्रामीण क्षेत्रों की विभिन्न कथाएं जीवन के लिए आवश्यक सद्‌गुणों - सेवा, त्याग, मानवता आदि का प्रदर्शन करने के लिए इस मूल समस्या को और भी अधिक महत्वपूर्ण, गहन और आकर्षक बना देती है। इससे सिद्ध होता है कि संपूर्ण उपन्यास में न तो कोई उपकथा गौण है और न वह मूल विषय से हटकर चलती है। यह विशेषता 'गोदान' के कथानक की एकता एंव घनत्व का प्रतीक है।

7. **कौतूहल का समावेश :-** इस कथानक की अन्य विशेषता यह है कि इसमें प्रारम्भ से अन्त तक पाठक का कौतुहल जाग्रत होता रहता है और उपन्यासकार एक कौतूहल का शमन कर दूसरे कौतूहल की अवतारण करता रहता है। परन्तु 'गोदान' के पाठकों को यह कौतूहल अथवा उत्सुकता 'चन्द्रकान्ता सन्तति' जैसे उपन्यासों के कौतूहल से भिन्न प्रकार की है। इसमें पर्याप्त स्वभाविकता और नाटकीयता है। उपन्यास का शीर्षक 'गोदान' है। अतः उपन्यासकार पहले परिच्छेद में होरी की गाय-विषयक लालसा को होरी और भोला की भेंट द्वारा व्यक्त कर देता है। तीसरे पीरच्छेद में होरी के यहाँ गाय आ जाती है परन्तु उधर गोबर और झुनिया का प्रणय-व्यापार प्रारम्भ हो जाता है। इधर गाय आ जाने पर हीरा का यह कथन कि '' भगवान चाहेंगे तो बहुत दिन गाय घर में न रहेगी '' पुनः पाठक को शंकित कर देता है। झुनिया के आ जाने पर होरी के घर में नाटकीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है। परन्तु प्रेमचन्द बडे कौशल एंव स्वाभाविकता के साथ उसे विवाह ले जाते है। झुनिया तो आ गई परन्तु होरी गोबर के विषय में चिन्तित है उसकी गोबर विषयक चिन्ता उसकी अन्य सभी चिंताओं पर छा जाती है और पाठक का ध्यान स्वाभावत : गोबर के प्रति आकर्षित हो जाता है। फिर प्रेमचन्द गोबर को शहर पहुँचाकर उस उत्सुकता का शमन तुरन्त कर देते है। दूसरा नाटकीय प्रसंग धनुषयज्ञ के समय मेहता द्वारा पठान का रूप धरने में उपस्थित होता है। इसमें नाटकीयता का सम्पूर्ण वेग आ गया है। 'गोदान' में ऐसे स्वाभाविक नाटकीय प्रसंगों की भरमार है जो पाठक की रूचि को अपने में रमाते, उसे बहलाते अन्तिम लक्ष्य की और अग्रसर करते रहते है और उपन्यासकार

पाठक की उत्सुकता को बराबर जाग त रखने के लिए उसके सामने एक-एक कर नयी समस्याएं उत्पन्न करता चलता है। समस्या पहले इतनी जटिल प्रतीत होती है कि उसका कोई हल ही दिखाई नहीं पड़ता। पाठक की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुंच जाती है। उसी समय लेखक एक सहज या नाटकीय हल उपस्थित पर पाठक को सन्तुष्ट कर देता है और कथा फिर पूर्व गति से अग्रसर होने लगती है। लेखक होरी की लड़की सोना के विवाह के लिए नोहरी द्वारा रूपया दिलवाकर ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न कर देता है।

8. **चमत्कारपूर्ण स्थलों की योजना :-** कथावस्तु में चमत्कारपूर्ण स्थलों की भी योजना है। मालती पहले मेहता की और आकर्षित होती है परन्तु मेहता प्रेम को खुखँार शेर बताकर उसके साहस को भंग कर देते हैं। मालती उदास होकर मेहता से अलग हट जाती है। अब मेहता मालती के लिए व्याकुल है। मालती उनका सारा हिसाब देखती है, उन्हें अपने ही बंगले में रखती है परन्तु मिलने का अवसर कम देती है। दोनों एक-दूसरे को चाहते है परन्तु खुल नहीं पाते। झुनिया के बच्चे की सेवा में रत मालती के पास मेहता रात्रि के नीख एंकात में पहुंचते है और याचना भरी द ष्टि से उसकी और देखती है। मालती लता की भांति मेहता से लिपट जाना चाहती है। उत्सुकता की चरम सीमा है कि अब क्या होगा। तभी अचानक रस भंग हो जाता है। '' झुनिया जाग उठती है और मेहता को कमरे से बाहर चले जाना पड़ता है ''। ऐसे चमत्कारपूर्ण स्थलों को भी ' गोदान ' में कमी नहीं है।

9. **स्वाभाविकता की पूर्ण रक्षा :-** ' गोदान ' के कथानक की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह सर्वत्र पूर्ण स्वाभाविक है और इस स्वाभाविकता के निर्वाह में प्रेमचन्द की अद्‌भुत कल्पना और कलात्मक स जन शक्ति के दर्शन होते है। ' गोदान ' में वर्णित विभिन्न घटनाओं को देखकर हमे ऐसा नहीं लगता कि हम काल्पनिक चित्र देख रहे हैं। वे हमे सर्वत्र पूर्ण स्वभाविक दिखाई दे पड़ते है। प्रेमचन्द मे जन-जीवन के ऐसे सुन्दर और सजीव चित्र खींचें हैं कि उन्हे देखकर आश्चर्य से दंग रह जाना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो लेखक उसी समाज के बीच में रहता हुआ पात्रों की प्रत्येक गतिविधि पर सतर्क द ष्टि जमाये रहता है और एक-एक कर उन्हें अंकित करता चला गया है। परन्तु अधिकांश पाठकों को यह मालूम नहीं है कि 'गोदान' अधिकांश भाग प्रेमचन्द ने बम्बई के कोलाहल पूर्ण एंव सिनेमा के विषैले अकलात्मक वातावरण में बैठकर लिखा था और इस समय उनकी आत्मा अपने गांव की स्वाभाविक वातावरण में छटपटाती रहती है। इससे प्रमाणित होता है कि ' गोदान ' के अधिकांश चित्र लेखक की कल्पना की उपज है और ऐसा होते हुए भी पूर्ण स्वाभाविक है। परन्तु प्रेमचन्द की यह कल्पना उनके जीवन के कटु-मधुर यथार्थ पर ही आधारित रही है, इसलिए उसमें इतनी स्वाभाविकता है। गोबर और झुनिया, मातादीन और सिलिया, नोहरी, भोला और नोखेराम, मालती और मेहता, मालती और खन्ना आदि के चित्र अपने-अपने वर्ग के अनुरूप संजीव और साकार है। ग्रामीण समाज में ऐसी घटनाएं प्रायः घटती रहती है केवल मालती और मेहता के प्रसंग मे ऐसा प्रतीत होता है कि वह कुछ अस्वाभाविक है। परन्तु उसकी अस्वाभाविकता तभी लगती है जब हम उसे गोबर, झुनिया आदि के साथ मिलाकर देखते है। मालती और मेहता नितान्त भिन्न वर्ग के प्राणी है जिसमे भावुकता और व्यावहारिकता कम तथा बौद्धिकता और आदर्श अधिक रहता है। ऐसे पात्र आधुनिक उच्च समाज में मिल तो जाते है परन्तु बहुत कम। इसका कारण कदाचित यह है कि प्रेमचन्द आदर्शवाद के खिलवाड का मोह पूर्ण रूप से त्यागने में असमर्थ रहे है।

10. **अर्न्तद्वन्दों की योजना:-** इसके अतिरिक्त ' गोदान ' के पात्रों के विकास में उनके अन्तर्द्वन्द्वों भी पर्याप्त योग दिया है , रायसाहब , गोबर , मालती , मेहता , आदि के अर्न्तद्वन्द्वों से कथा को पर्याप्त गति मिली है। मालती के स्पष्ट दो रूप है '' बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी ''। मातादीन भी इसी अन्तर्द्वन्द्व का शिकार बन अन्त मे ठीक रास्ते पर आ जाता है। रायसाहब अपनी वास्तविकता निर्बलताओ को जानते हुए भी अपने निष्चित पथ से नही हट पाते। मेहता के प्रेम का बर्बर कोटि का आदर्शवाद अन्त में धराशायी हो जाता है, खन्ना भी पश्चाताप करता है

कुछ लोग मिर्जा खुर्शेद को अनावश्यक पात्र मानते है। परन्तु उपन्यास में उसकी अपनी एक उपयोगिता है और वह है मनोरंजन की। वे बुडढ़ो की कबड्‌डी करवाते है तथा कभी वीरांगनाओं का उद्धार करने की योजना बनाते है

शिकार के समय काली जंगली लड़की की उपस्थिति, उसका अक्खडपन और मालती का सौतिया-डाह चमत्कार उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ हैं। ऐसे प्रसंग उपन्यास की गम्भीरता को थोड़ा दूर कर देने के लिए आवश्यक होते है। इस प्रकार 'गोदान' का सम्पूर्ण कथानक विभिन्न प्रकार के पात्रें को समेटता हुआ असफलता के साथ समाप्त हो जाता है।

**प्र० 12 ''गोदान एक सोद्देश्य उपन्यास है'' इस कथन की विवेचना करते हुए बताइये कि प्रेमचन्द इस उपन्यास के द्वारा क्या कहना चाहते है अथवा**

**''गोदान'' की ऐसी विवेचना कीजिए कि इस उपन्यास की सभी प्रमुख विशेषताओं का उदघाटन हो जाए।**

उ० प्रेमचन्द साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन-मात्र ही नहीं, समझते थे, अपितु उससे अधिक समाज के कल्याण का एक प्रमुख साधन भी मानते थे अपने उपन्यासो में इन्होंने समाज का जहॉं यथार्थ चित्रण किया है, वहाँ उस चित्रण के पीछे उनका उद्देश्य सदैव रह रहा है कि पाठक उस यथार्थता से परिचित हो सके एंव सुधार की ओर प्रव त हो सके। इस प्रकार उनके समस्त उपन्यास सोद्देश्य है।

' गोदान ' में भी उनकी इसी सोद्देश्यता को देखा जा सकता है। यघपि प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास 'मगल सूत्र' था लेकिन चूंकि वह अधूरा ही रह गया, अत एंव 'गोदान' ही उनका अन्तिम पूर्ण उपन्यास माना जाता है। कहा जाता है कि '' इसमें लेखक की सम्पूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति हुई और उसने अपने प्रौढतम अनुभवो को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया है ''। और यह सत्य भी है क्योंकि इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने अपने संपूर्ण पूर्वाग्रहो का मोह त्यागने व तटस्थ कलाकार के रूप में युग का चित्रण किया है। इसमें न वे किसी के अनुयायी है और न किसी सिद्धान्त विशेष के प्रचारक। इससे पूर्व प्रेमचन्द समाज की दशा को सुधारने के विभिन्न परीक्षणों के परिणाम थे। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्होने अनुभव किया कि कोई भी सुधारवादी प्रयत्न आर्थिक विषमता से उत्पन्न जीवन की कटुता दूर नहीं कर सकेगा। इसलिए आदर्शवाद का मोह त्याग समाज का कच्चा चिट्ठा समाज के सम्मुख रखना पड़ेगा। इसी भावना से प्रेरित उन्होने संपूर्ण भारत का, नागरिक एंव ग्रामीण भारत का कच्चा चिट्ठा उपस्थित कर पाठकों को यह सोचने पर विवश कर दिया कि यह समाज गया। कोई सुधार और प्रचार इस व्यवस्था को टूटते नहीं बचा सकता। अब तो जीवन के नवनिर्माण की बात सोचनी पडेगी। गोदान हमे इसी बात को सोचने के लिए विवश करता है।

1. **समस्या प्रदर्शित करना :-** प्रेमचन्द साहित्य में प्रारम्भ से अन्त तक सर्वत्र आर्थिक असमानता को ही सब प्रकार की समाजिक विषमताओं का मूल कारण बताया है उनके पहले उपन्यासो मे ऐसे समाज का चित्रण है, जिसमें धर्म और कर्म के नाम पर जमीदार, साहुकार, मिल मालिक, पंडित, ढोंगी, नेता, कमीने पत्रकार,, सरकारी अहलकार आदि सभी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के पोषण के लिए गरीब जनता का खुलकर शोषण करते है ओर जनता उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाती। अन्त में कोई आदर्शवादी काल्पनिक समाधान प्रस्तुत कर जनता के आँसू पोछ दिए जाते हैं। 'गोदान' में भी शोषण का यही क्रम चालू रहता है। लेकिन गोदान की शोषण क्रिया में पहले से पर्याप्त अन्तर आ गया है। यह पहले से नितान्त भिन्न है। गोदान के शोषक मीठी वाणी बोलने वाले है जैसे रायसाहब अमरपाल सिंह निरीह किसान इसके पंज्जों में फंसा हुआ छअपटाता रहता है। उसकी दशा दिन पर दिन गिरती चली जाती है। समाज की जोकें उस गरीब किसान को अपनी भूमि का मालिक भी नहीं रहने देती। उसकी जमीन छीन ली जाती है। वह खेतिहर मजदूर बन जाता है फिर भी उसके दुखों का अन्त नहीं आता। अन्त में वह आँसुओं दुखों के पहाड़ तले पिस-पिस कर दम तोड़ देता है। होरी मर जाता है, धनिया बेहोश हो जाती है। होरी और धनिया के जीवन भर के संघर्ष, अटूट परिश्रम और ईमानदारी का यह दुःखद परिणाम निकलता है और अन्त दिखाकर प्रेमचन्द मूक स्वर में पाठक से पूछते से प्रतीत होता है कि समाज की यह दशा अब और कितने दिनों तक चलती रहेगी। उसी विषम व्यवस्था का अन्त कर उस समाज की स्थापना करनी होगी जिसमें किसान मजदूर सुखी रहेंगे। उनके शोषकों का अस्तित्व मिट जाएगा। यही प्रेमचन्द का समाजवाद है। इस व्यवस्था को लाने के लिए उन्होने अप्रत्यक्ष रूप से दिखाया है कि क्रान्ति द्वारा वही व्यवस्था लाई जा सकती है।

2. **महाकाव्य :-** ' गोदान ' भारतीय किसान के जीवन का कच्चा चिटठा और सच्चा महाकाव्य है। यह बताया है कि आखिर किसान इतना दुखी क्यों है। वह जी तोड़ मेहनत कर समाज का पेट पालता है और फिर खुद भूखा रहता है। आखिर उसका पैदा किया हुआ अन्न कहाँ चला जाता है ! उसके यहाँ प्रत्यक्ष रूप से डाका नहीं पडता, चोरी नहीं होती फिर भी वह निर्धन का निर्धन क्यों बना रहता है ! इसी रहस्य का उदघाटन करने के लिए प्रेमचन्द ने किसान के सबसे बड़े अभिशाप उसके जीवन शत्रु ' ऋण ' और उनके नाम पर होने वाले उसके विभिन्न प्रकार के शोषण का चित्रण किया गया है। डा० रामविलास शर्मा इसी कारण ' गोदान ' की मूल समस्या ऋण की समस्या मानते है। जो आये दिन किसान के जीवन को सबसे अधिक व्याकुल बनाए रहती है। होरी की जीवन कथा में यही दुख और व्याकुलता सप्राण और मूर्तिमान हो उठी है। उसके जीवन की सारी विषमताएं इसी के चारो और मंडराती रहती है। इससे उत्पन्न दुखो का विशाल अंबार जिसमें किसान को मरने पर भी मुक्ति नहीं मिलती। पाठक के ह्रदय द्रवित हो आठ-आठ आसूँ रो उठता है। किसान जीवन जितनी सच्चाई, गहराई, मार्मिकता एंव सह्रदय स्पर्शिता के साथ ' गोदान ' में चित्रित हुआ है उतना सम्भवत : हिन्दी साहित्य में और कहीं भी नहीं हो पाया है।

3. **यथार्थ का चित्रण :-** गोदान में प्रेमचन्द अपनी पुरानी मान्यताओं का मोह पूर्ण रूप से त्याग यथार्थ की ठोस भूमि पर आ खड़े हुए है। उन्होने अपने पिछले परीक्षणो से यह देखा था कि सुधारवादी द ष्टिकोण समस्या का असली एंव यथार्थ हल नहीं दे पाता। मवाद से भरे हुए फोड़ो को उपरी दवाइयो से ठीक नहीं किया जा सकता है। उसके लिए जर्राह के तेज नश्तर की जरूरत होती है। तभी इस फोड़ो की प्राणान्तक पीड़ा का उपचार हो सकेगा। प्रेमचन्द ने गोदान में समाज रूपी रोगों के यही नश्तर लगाने का प्रयत्न किया है। जमींदार अमरपाल, मिल मालिक खन्ना, स्वार्थी पत्रकार ओंकारनाथ, चुनाव विशेष तंखा, पंडित दातादीन, पटवारी पंच, दरोगा आदि ही समाज का वह मवाद है जो गरीबो की कमाई पर पलता है और अन्नदाता किसान के रक्त को दूषित कर उसे पीड़ा से व्याकुल बनाए रहता है। इसलिए क्रांति का नश्तर लगाकर वर्तमान समाज व्यवस्था में व्याप्त इस मवाद को बाहर निकालना पडेगा, नवनिर्माण तभी संभव हो सकेगा।

4. **समाज को जाने :-** किसानों मजदूरो के होने वाले शोषण का पूरा-पूरा चित्र दिखाने के लिए ही प्रेमचन्द ने 'गोदान' में ग्रामीण एंव नागरिक जीवन की कहानी को एक साथ एक सूत्र में गूँथा है। इस कौशल द्वारा उन्होने यह दिखाया है कि किसानो और मजदूरो का शोषण गांव और नगर के सभ्य बदमाश मिलकर करते है कोई मीठी बोली बोलकर शिकार करता है तो कोई और वे दिखाकर परन्तु प्रेमचन्द ने विशेष बल ग्रामीण जीवन पर ही दिया है। नागरिक सभ्यता के ढोगी और मक्कारो से उन्हे स्वाभाविक चिढ़ है। इसी कारण वे किसान को मिल मजदूर बनाना पसन्द नहीं करते, क्योंकि इसमे तो वह और भी ज्यादा बुरा बन जाता है गोबर शहर जाकर अनेक बुराइयां सीख कर आता है। गांधी जी ने समान प्रेमचन्द भारत का सच्चा स्वरूप यहाँ के गांवों में ही देखते है। गोदान में प्रधान समस्या किसान की है परन्तु इनमें कर्मभूमि के किसान आन्दोलन जैसा कोई भी आन्दोलन नहीं होता। इसमें जो आन्दोलन है उसका रूप भिन्न और सांकेतिक है। इसके किसान की ऋण समस्या ' कर्मभूमि ' आदि की समस्त किसान समस्याओं से अधिक भयानक है। गोदान में अंग्रेज प्रत्यक्ष रूप से कही नहीं आता मगर उसके एजेन्ट जमींदार, मिल मालिक आदि अपने छुटभैयों और सरकारी अहलकारों की सहायता से दिन-रात किसानो का शोषण करने में व्यस्त रहते है। साथ ही, उन्होने बगुला भक्त देशभक्तों की भी कलई खोलकर रख दी है , जो देशभक्ति की चादर ओढ़कर जनता को अपने आदमी बनाकर, उसका शोषण कर रहे है जैसे -जमींदार अमरपाल सिंह और पूंजीपति खन्ना। प्राचीन विचारधारा का अनुयायी होरी सीधा-सच्चा भाग्यवादी किसान है। वह इन धूर्तो के छल-छन्दों को नहीं समझ पाता। मगर गोबर जो पीढी का प्रतीक है इनकी असलियत को खूब समझता है। खन्ना जैसे पूंजीपति ' खद्दर पहनते थे और फ्रांस की शराब पीते थे। रायसाहब देशभक्त होने पर भी सरकारी हुक्कामों से मेल जोल बनाए रखते थे।

5. **नई पीढी :-** जिस प्रकार 'प्रेमाश्रम' के बलराज और मनोहर दो पीढियों के प्रतीक है उसी प्रकार ' गोदान ' के होरी और गोबर भी दो नई पीढियों के भिन्न विचार का प्रतिनिधित्व करते है। होरी भाग्यवादी किसान है। गोबर उस नई पीढ़ी की उस नई विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है, जो युवक किसान मजदूरो में फैलती जा रही थी।

डा० रामविलास शर्मा के शब्दो में, '' गोबर चाहे गांव में खेती करे चाहे शहर में मजदूरी वह दूसरो का अन्याय बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है ''। होरी के मरने के बाद गोबर मानो पिता के हत्यारों के लिए चुनौती के रूप में जीवित रहता है। गोबर जिसने राजनीतिक जलसों के पीछे खड़े होकर भाषण सुने है और उनमें अंग-अंग बींधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि, साहस से इन आफतो पर विजय पाना होगा। प्रेमचन्द का जीवन संदेश भी यही है।

6. **नया बुद्धिजीवी वर्ग :-** रायसाहब और खन्ना दोनो मित्र है, दोनो शोषक है, दोनों मक्कार है। इसलिए आपस में मिलकर काम करना चाहते है और मजा यह है कि दोनो ही देशभक्ति की चादर ओढ़े रहते है। मेहता एक साथ ही दोनों की खबर लेते हुए यह सिद्ध कर देते है कि हमारा बुद्धिजीवी वर्ग उच्चवर्गीय इन मक्कारियों के प्रति काफी सतर्क है। उसे बहकाया नहीं जा सकता। मेहता जनता का संगठन कर नई एकता के सूत्रधार बनने की तैयारी कर रहे है। प्रेमचन्द ऐसे समय मालती के मुहं से बुद्धिजीवी वर्ग को अपना संदेश देते हुए कहलवाते है '' संसार में अन्याय की, आंतक की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्धविश्वास का, कपट-धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त पुकार सुनी है तुम भी न सुनोगे तो सुनने वालों कहां से आएंगे ? और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान बन्द नहीं कर सकते ''।

7. **बुद्धिजीवी वर्ग से अपील :-**प्रेमचन्द का उपर्युक्त संदेश समस्त बुद्धिजीवी वर्ग के लिए है। इसी वर्ग में वह शक्ति होती है जो जनता के दुःख-दर्द को समझने और उसे सरकार सजीव रूप से चित्रित करने में फ्रायॅडवाद की गलियो का चक्कर लगाता हुआ कुण्ठित काम के रहस्यो का अनावरण करता फिर रहा है। संसार की प्रसिद्ध जनक्रान्तियों में बुद्धिजीवी वर्ग ने सामान्य जनता का नेत त्व कर उन्हे सफल बनाया है। उसने जनता में उद्‌बोधन का स्वर फूँका है, उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया है। मालती हमारे उसी बुद्धिजीवी वर्ग ज्ञान, अनुभव और कला को चुनौती देते हुई कहती है '' अपनी विघा और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोश के साथ रास्ते पर ले आओ ''। होरी और गोबर के भाई-बंधु जो पद दलित जनता के प्रतीक है, ऐसे लोगो की तरफ आशा से आँखें लगाए बैठे हैं कि उनका पथ प्रदर्शन करेंगे।

'' गोदान '' में प्रेमचन्द ने एक प्रकार से संपूर्ण भारतीय जीवन, ग्रामीण और नागरिक जीवन को संजोकर एक साथ रख दिया है। इसी कारण प्रोफेसर विश्वम्भर ' मानव ' उसे आधुनिक भारतीय जीवन का दर्पण मानते है। इसकी कहानी एक ऐसे किसान की कहानी है जो चारो और से उच्च और मध्य वर्ग का जकड़ा हुआ है। जमींदार, मिल मालिक, पुलिस, सूदखोर, महाजन, पंडित आदि सभी उसे जोंको की वरह चूस रहे है। होरी में सामान्य किसानो की अच्छाईयाँ और बुराइया सभी मौजूद है। '' किस प्रकार अपनी परिस्थितियां और संस्कारो से पिसता हुआ वह द्ररिद प्राणी करूण म त्यु प्राप्त करता है। किस प्रकार सभी का पेट भरता हुआ वह स्वंय अपने जीवन की किसी सामान्य इच्छा को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है, यही कुछ दिखना ' गोदान ' का लक्ष्य है।

**प्र० 13. '' प्रेमचन्द ने अपने गोदान उपन्यास में तत्कालीन भारतीय जीवन की समस्याओं का दिग्दर्शन कराया है ''। इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।**

**उ०** प्रेमचन्द एक जागरूक कलाकार थे। वे अपने समय की समस्याओं से भली प्रकार से अवगत थे। जो समस्याएं समस्त भारतीय समाज तथा विश्व समाज को पीडित कर रही थी, उनकी जलन प्रेमचन्द भी भाव तथा विचार के स्तर पर अनुभव करते थे। प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों में भी समसामयिक जीवन और उसकी समस्याओं का भी चित्रण मिलता है। जिस समय प्रेमचन्द अपनी साहित्यिक साधना कर रहे थे उस समय भारत विदेशी शासक के क्रूर पंजो में छटपटा रहा था। ब्रिटिश शासन भारतीय स्वाधीनता संग्राम का दमन करने मे व्यस्त था तथा छोटे-मोटे राजनीतिक अधिकार देकर विरोध को दबाने का प्रयत्न कर रहा था। विदेशी भाषा और संस्क ति का अन्धानुकरण तथा विक त प्रभाव भारतीय समाज में अनेक विक तियां उत्पन्न कर रहा था। इस संक्रमण से सांस्क तिक संकट उत्पन्न हो रहा था। दूसरी तरफ समाज में अन्य आर्थिक समस्याएं तथा असमानता उत्पन्न हो रही थी। आर्थिक वातावरण भी शोचनीय था। समाज मे वर्ग, वर्ण जाति बिरादरी के बंधनों ने अनेक जटिलताएं उत्पन्न कर दी थी।

नारी का स्थान आर्थिक संकोच के युग में उतना उँचा नहीं था। अशिक्षा के अंधकार में संपूर्ण देश गोते लगा रहा था। समाजिक द ष्टि से विवाह, दहेज, म त्यु-संस्कार, विधवा जीवन, वेश्याव ति आदि चारों ओर अपना यथार्थ और नंगा रूप दिखा रहे थे। जब प्रेमचन्द ने गोदान की रचना की तब यही वातावरण अनेक समस्याओं को जन्म दे रहा था। प्रेमचन्द ने एक चेतनाशील, जागरूक तथा सूक्ष्म द ष्टि वाले कलाकार की भांति परिस्थिती जन्य तत्कालीन अनेक समस्याओं का इस उपन्यास में चित्रण किया है।

प्रेमचन्द के उपन्यास इस बात के प्रमाण है कि अपने युग की समस्याओं के प्रति तनिक भी उदासीन नहीं थे। समस्याओं के प्रति उनका निजी द ष्टिकोण तथा समाधान के लिए सुझाव थे। उनके उपन्यासो में युग की अनेक ज्लवंत समस्याओं का दिग्दर्शन कराया गया है और युग सम्मत समाधान प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचन्द कला और साहित्य को जीवन की थाती मानते है। अतः उनका साहित्य जीवन के ज्वार के अनुप्रमाणित है। उनके उपन्यासों के मूल में व्यापक उद्देश्य निहित है।

गोदान उपन्यास में ग्रामीण और शहरी जीवन का व्यापक चित्रण है। इसमें इन दोनों प्रकार के समाजों के जीवन में उपस्थित विभिन्न प्रकार की समस्याओं का चित्रण किया गया है। एक और गोदान में भारतीय ग्रामों और किसानों की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है वहीं इसमें शहरी जीवन के अन्तर्विरोधों तथा अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालकर उजागर किया गया है। इसलिए तो इस उपन्यास को ' ग्रामीण जीवन का महाकाव्य' कहा जाता है। इस उपन्यास में कथा के माध्यम से सांकेतिक ग्रामीण और नगरीय जीवन की समस्याओं का हम इस प्रकार आंकलन कर सकते है।

1. **किसान में शोषण की समस्या :-** गोदान उपन्यास किसान का निर्दयतापूर्वक किए जा रहे शोषण की सच्ची कहानी है। प्रेमचन्द के समय में यह समस्या ओर भी उग्र थी। भारतीय किसान के लिए गाँवो में शिक्षा और जाग ति की कोई योजना सरकार या समाज में नहीं चलाई थी, जिसके कारण किसान सदियो से शोषण का शिकार होता रहा। वह अपने वर्ग शत्रुओं को भी नहीं पहचानता। अपने शोशकों की मामूली ऊपरी सहानुभूति पाकर वह स्वयं अपना कलेजा उन्हें देता रहा है।

   आजादी से पूर्व किसान के शोषण की कहानी अधिक करूणापूर्ण रही है। यों आज भी अधिक अन्तर नहीं आया है। सामन्तशाही, महाजनी, जमींदारी, संस्कृति, धर्म और ईश्वर जाति-वर्ग पर आधारित समाज व्यवस्था ने उसे चूस कर कंकाल बना दिया है। आजादी के बाद जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया परन्तु कागजों पर कानून बना देने से ही तो किसानों का शोषण बन्द नहीं हुआ। प्रेमचन्द का होरी आज भी बिहार में, उडीसा में, मध्यप्रदेश में, राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में नये ढंग की जमीदारी के शोषण का शिकार है। अब सरकारी अफसर, पटवारी, थानेदार, राजनीतिक कार्यकर्त्ता, बैंक-मैनेजर आदि न जाने कितने नये-नये शोषणकर्त्ता इस बेचारे होरी का शोषण कर रहे है। प्रेमचन्द ने होरी के माध्यम से किसानो के शोषण का कच्चा चिट्ठा खोल दिया है। प्रत्यक्ष में कोई शोषण नहीं करता किन्तु होरी नित्य लुटता जाता है। शोषण में चहुँमुखी आक्रमण की समस्या को प्रेमचन्द ने गोदान के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

2. **जमींदारी की समस्या :-** प्रेमचन्द के समय जमींदारी प्रथा का शिकंजा गाँवों पर कसा हुआ था। किसान के संकटों को बढ़ाने में जमींदार नये-नये हथकण्डे अपनाते रहते थे। जमींदार किसानों का सबसे बड़ा शोषणकर्त्ता है। सामान्त शाही ने गाँवों में जमींदारी को पैदा किया। जमींदारों के इस छोटे से वर्ग ने भारत के सबसे बडे समुदाय, किसान का खून चूसकर अपने शरीर को लालिमा से युक्त कर लिया। गोदान उपन्यास में जमींदारी प्रथा और उससे उत्पन्न समस्या की ओर व्यापक विचार प्रकट किये गये है। होरी जिस गाँव में रहता है उसकी जमींदारी राहसाहब अमरपाल सिंह के अधिकार में है। वे उपरी तौर पर राष्ट्रवादिता का ढोंग करते हैं। आजादी के आंदोलनों में जेल जाते हैं किन्तु किसानों का शोषण करने में कोई कमी नहीं करते वे बगुला भक्त बनकर शोषण करते हैं और बड़ी चालाकी से बदनामी अपने मुख्तारों के सिर मंढ देते हैं। उनके कारकून गाँवों में किसान के सिर पर हर समय शोषण की तलवार लिए खड़े रहते हैं। नोखेराम अपने अत्याचारों और कुटिल हथकण्डों से किसानों पर दोहरी मार करते

हैं। वे जमींदार के लिए भेंट, बेगार लगान, नजर-नजराना दण्ड आदि का प्रबंध करते हैं। जोर जबरदस्ती कर किसानो से उनका धन लूटते है और स्वयं अपने लिए भी किसानों का धन लूटते रहते है। नोखेराम को रायसाहब से जितना धन मिलता है उससे कहीं अधिक उसका जीवन व्यय है। रायसाहब भी किसानों को मूर्ख बनाकर उनमें फूट डालकर अपने शोषण में सहायक बनाते हैं। जैसे होरी को अपनी चिकनी चुपड़ी बातों से वे अपने पक्ष में करते है और उसे किसानों को अधिक नजराना देने के लिए राजी करने का काम सौंपते हैं। लगान के अतिरिक्त भी जमींदार किसानों से धन संग्रह करता है। बेगार, डांड, बेदखली आदि अत्याचारों से जमींदार किसानों का जीवन असंभव बनाता है। पराधीन भारत के सामने जमींदारी की विकराल समस्या थी क्योंकि वे जमींदार ही धीरे-धीरे राज्य व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। वे अपने वर्ग के हितों की पूर्ति करते हुए किसान के दुखों व समस्याओं का समाधान क्यों करने लगे। जमींदार पहली जोंक है जो किसानों के शरीर पर चिमट कर उसका खून चूसती है।

3. **महाजनी शोषण की समस्याः-** गोदान में ऋण के भार से दबे हुए किसान की दरिद्रत का अत्यन्त कारूणिक के स्तर पर चित्रण किया गया है। प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों में जमींदारों के अत्याचारों तथा किसानों की अन्य समस्याओं का विशद विवेचन है, 'गोदान' में किसानों के ऋण ऋणग्रस्त होने, ऋण पर ऋण चढ़ने, चुकाने के लिए उसकी आमदनी के साधनों का समर्पण, ऋणदाताओं के नये, ओछे और क्रूर हथकण्डों से किसान जीवन को इस उपन्यास में उतार दिया है। वे इस समस्या को बहुत गहराई तक जानते थे और ऋणग्रस्तता की जमीन जायदाद बिक कर उसे मजदूरी करने पर विवश करेन की समस्या को प्रेमचंद में लगभग ग्रामीण जीवन की कथा के साथ जोड़े रखा है। ऐसा लगता है प्रेमचन्द ने अपने ही ऋण ग्रस्त थी पीड़ा की तीखी अनुभूति उन्हें थी। किसानों की निर्धनता और केवल कृषि पर निर्भरता ने ही उन्हें ऋणग्रस्त किया है सदियों से चले आ रहे जमींदारों के शोषण ने उन्हें इतना दरिद्र बना दिया है कि ऋण उनके जीवन का आवश्यक अंग बन गया है। ऋण की समस्या को प्रेमचंद ने बहुत व्यापक रूप में उभारा है। यह समस्या केवल किसान की ही नहीं है अपितु रायसाहब जैसे जमींदार भी ऋण लेने के चक्कर में दिखाई देते है। इनका तांगा वाला तथा मिल का मजदूर भी ऋण लेकर काम चलाता है। मेहता जैसे बड़े वेतन भोगी भी अपनी फिजुल खर्ची के कारण मकान का किराया तक नही चुका पाते और मालती के रूपयों से वह निपटारा हो पाता है। मिर्जा खुर्शेद गोबर से पांच -पांच या दो-दो रूपये उधार लेता रहता है फिर गांव का किसान तो ऋण में ही पैदा होता है ऋण में ही जीता है, ऋण चुकाने के प्रयास करते-2 ही मर जाता है।

गाँव के किसानों , मजदूरों और निम्न वर्ग के गांव और शहर के लोगों को कर्ज देने वाले छोटे-मोटे महाजन या साहूकार हैं। जिन्हें बड़े साहूकारों जमींदारों, बैंकरों पूंजीपतियों और सरकार का समर्थन प्राप्त है। गांव में इस समस्या का भीषण रूप दिखाई देता है। किसानों के जीवन के ऋण उनका आवश्यक अंग बन गया है। गांव का महाजन तथा साहूकार किसानों के ऋण देकर उनका शोषण करने वाला सबसे बडी जोंक है। 'गोदान' का नायक होरी भारत के ऋणग्रस्त करोड़ों किसानों का प्रतिनिधि है। ऋण के भार से दब कर ही वह चालीस की उम्र तक पहुंचते-2 व द्ध हो गया। उसका यौवन सिकुड़ गया। उसकी पत्नी धनिया भी समझने लगी है कि चाहे कितनी ही करत-ब्योत करो, ऋण से मुक्ति पाना असंभव है। होरी के मन में चिरकाल से एक गाय लेने की इच्छा संचित थी। उसे भी वह ऋण लेकर ही पूरी कर पाता है। वह मकान चुकाने के लिए ऋण लेता है। खेती में उत्पन्न अनाज पर ऋणदाता अधिकार कर लेता है। तब वह दातादीन से खाने के लिए अनाज भी अधार लेता है। थानेदार को रिश्वत देने के लिए तीस रूपये भी होरी कर्ज ही लेता है।। पंचों द्वारा लगााए दंड को भी ऋण से ही चुका पाता है। गांव में ऋण देने वाले नित्य पैदा होते रहते हैं। जिस किसी किसान के पास भी दो पैसे हुए नहीं कि वह ऋण देकर ब्याज थमाने लगता है। भोला की पत्नी नोहरी भी कर्ज देती है।।दातादीन गांव के पंडित है, किन्तु महाजनी ढंग से किसानों का शोषण करने में सबसे आगे हैं। वे होरी को तीस रूपये देकर दो सौ रूपये वसूलते है और ब्राह्मणी क्रोध तथा धर्म के नाम पर हथियार बनाकर किसान को एक शब्द नहीं बोलने देते। नोखराम, रायसाहब के प्रतिनिधि हैं उसे वेतन मिलता है किन्तु किसानों को उधार देकर उनका दोहरा शोषण करता है। झिंगुर सिंह

ठाकुर है और ऋण देते समय भी ब्याज काट लेता है तथा अपना पैसा किसानों की छाती पर बैठकर वसूल करता है। वह मिल मालिक से मिलकर होरी के गन्ने की कीमत अपने हाथ में लेता है। और स्वयं का रूपया मनचाहे सूद के साथ काटकर 25 रूपये होरी की तरफ फेंक देता है। उस समय होरी की बचारगी। पर करूणा उमड़ आती है। तब वह उन रूपयों को उठाकर घर चलता है और मार्ग में नोखेरामछीन लेता है। किसान मेहनत करता है खाली हाथ घर आता है धनिया पहले तो होरी पर बिगड़ती है किंतु जब उसे साहूकार के ऋण से दबे होने का बोध होता है तो हंस कर होरी को सान्तवना देती है। यह हंसी भी उसकी मजबूरियों को ऋण की पीड़ा को प्रकट करती होरी का भाई सोभा पटेश्वरी के रूपये चुकाने की सोचता है और हिम्मत भी करता है किन्तु पटेश्वरी की धमकी के आगे झुक जाता है। जल में रहकर मगर से बैर नही चल सकता। भोला अपने 80 रूपये के बदले में होरी के बैल खोलकर ले जाता है। दातादीन अपने कर्ज का हिसाब होरी की खेतों में सांसा करके चुकते हैं। और उसे अधिक ऋण भर से लाद देते हैं। वह ऋण के बोझ से दबा हुआ अपनी पुत्री रूपा का विवाह एक व द्ध के साथ करने को विवश होता है बल्कि यों कहे कि बेटी को बेचता है। अपने ऋण को चुकाने के लिए वह लू -धूप में सड़क पर काम करता है। और ऋण से दबा ही एक दिन मर जाता है। होरी जब मरा तब उसके खेत, बैल, घर, द्वार सब साहूकार के हाथ में जा चुके थे वह अपनी संतानों को ऋणग्रस्त छोड़कर मर जाता है, दातादीन, पटेश्वरी, झिंगुरी , नोखेराम सब तमाशा देखते है होरी का म तक शरीर धरती पर पड़ा है और धनिया किंकर्त्तव्यविमूढ है। दातादीन यह भी हाथ पसारे गोदान के लिए खड़ा है। ऋणग्रस्त किसान का प्रेमचन्द ने अत्यन्त करूण चित्र खींचा है। इस प्रकार 'गोदान' में ऋण की समस्या का व्यापक चित्रण किया गया है। अंग्रेजी साम्राज्यवाद और पूंजीवाद ने मिलकर भारतीय ग्राम्य संगठन को तहस -नहस कर दिया था ग्रामों की अर्थव्यवस्था तोड़ दी थी। किसान को शोषण, जर्जर कर दिया गया था ऋण लेना, ऋण लकर पूर्व ऋण को चुकाना लगान वेदखली धार्मिक विश्वास जाति बिरादरी की मार आदि ने किसान को नित्य ऋण भार से लादा है। डाक्टर मक्खन लाल शर्मा का कथन है ''आपातकाल में भी लगान में छूट न मिलने से किसान असहाय हो गया परिस्थितियों का लाभ उठाकर साहुकारों ने ऊंची ब्याज पर कर्ज देकर किसानों को लूटा। घटती हुई पैदावार और बढ़ले हुए ऋण से किसान को उस दयनीय स्थिति में लाकर पटका। जबकि उनके सामने खेत गिरवी रखने, बेचने और बेदखल होने के अलावा कोई भी चारा न रहा। इस प्रकार 'गोदान' मे ऋण की समस्या सर्वपमुख है। अन्य समस्स्याएं इसी से उत्पन्न हुई हैं।श्श

श्4. **सामाजिक समस्याएंः-** किसान को जर्जर करने वाले जमींदार और साहूकार की समस्या को प्रेमचंद ने खोलकर बताया ही है। किन्तु किसान का शोषण करके उस पर वज्राघात करने में समाज के ठेकेदार , सामाजिक रीति नीति, परम्पराएं, अशिक्षा, जाति बिरादरी के झगडे आदि भी पीछे नहीं रहते हैं। समाज के ठेकेदार उसका तिल-2 प्राण लेते रहते हैं। समाज के मुखिया शोषक वर्ग से ही सम्बन्धित है। वे स्वयं अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं। किन्तु किसान जब वैसे ही काम करते हैं तो पंच बनकर उसके कार्यो पर अंगुली उठाते हैं। उसे प्रताड़ित और पीड़ित करते हैं। दातादीन का पुत्र मातादीन सिलिया चमारिन से सम्बन्ध जोड़े बैठा है किन्तु उसे कोई कुछ नही कहता, किन्तु गोबर जब विधवा झुनिया को पत्नी के रूप में स्वीकार करता है वही दातादीन आदि पंच बनकर होरी पर एक सौ रूपये और तीन मन अनाज दण्ड करते हैं। और दंड से प्राप्त धन को पटेश्वरी, झिंगुरी, नोखेराम के साथ मिलकर बांट लेते हैं। परिणामस्वरूप होरी का खेत तथा घर द्वार बिक जाता है किसानों की समाजीकता सामाजिकता रूढ़ियों का पालन, अशिक्षा, पिछड़ापन आदि अन्य समस्याएं भी सामाजिक समस्याएं ही हैं। जाति विरादरी के बन्धन भी किसान को जर्जर किये हैं। हुक्का-पानी खुलवाने के लिए होरी दण्ड भरता है और सन्तोष करता है कि बिरादरी से बड़ा कोई नहीं है। ब्राह्मण मातादीन और सिलिया के सम्बन्धों के कारण जब मातादीन के मुंह मे हड्डी ठूंस कर सिलिया के घर वालो ने मातादीन को सबक सिखाया तो पंचायत पंडित के परिवार को कोई दण्ड नहीं करती। वे अपनी मरजी से काशी में जाकर मामूली खर्च पर शुद्धि करा लेते हैं और समस्त समाज तथा बिरादरी और पंचायत उन्हें स्वीकार कर लेते हैं।

5. **धर्म से सम्बन्धित समस्याः-** 'गोदान' में धर्म को भी एक समस्या के रूप में चित्रित किया गया है। वस्तुतः देखा जाये तो होरी की समस्याओं को गहरा करने में धर्म का ही हाथ है। होरी के लिए धर्म जीवन मरण का प्रश्न है,

जबकि गोबर की आस्था धर्म से हटी नजर आती है। होरी धर्म और मर्यादा के कारण ही ऋणग्रस्त होता चला जाता है और सतत अत्याचारों का शिकार होता रहता है। वह स्वयं भी अपने शोषण और पीड़ा का उत्तरदायी है क्योंकि उसने धर्म के नाम पर अपने शोषण और अत्याचारों के विरूद्ध आवाज तक नही उठाई, बल्कि उसने विद्रोह की आवाज को दबाना ही अपना कर्त्तव्य समझा। जब गोबर मातादीन के नाजायज बढाये गए रूपयों का चुकारा सत्तर रूपये में नियमानुसार करना चाहता है तो दातादीन धर्म और ब्राह्मण की दुहाई देते हैं और होरी धर्म से भयभीत होकर गोबर को ही विरोध-विद्रोह के मार्ग से हटा देता है। और कहता है - मैं जिऊँगा तब तक आपका कर्ज पूरा चुकाउंगा। इसी प्रकार पंचायत द्वारा किये गए दण्डक वो भी वह धर्म समझ ही भोगता है और बरबाद हो जाता है। होरी की गाय रखने की इच्छा भी बहुत कुछ धर्म से ही प्रेरित थी। वह सेवेरे उठते ही गाय के दर्शन करना चाहता था और इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसने उधार गाय खरीदी, जो उसके समस्त परिवार को तहस-नहस करके मर गई। होरी की इच्छा की पूर्ति के लिए म त्यु पर्यन्त कठोर श्रम करता रहा। धर्म के नाम पर पण्डे पुजारी उसका शोषण करते रहे। मरते समय भी मातादीन गोदान कराने जा पहंचे जो धर्म की दुष्टि से परलोक में स्थान देने की गारन्टी माना जाता है। मार्क्सवाद के अनुसार धर्म शोषण का सबसे बड़ा अस्त्र होता है। वही भाग्यवाद, परलोकवाद, पूर्वजन्म के कर्मफलकवाद के अच्छे कर्मो को उनके सुख का कारण मानता है।

6. **श्रमिक -पूंजीपति-संघर्ष की समस्याः-** 'गोदान' में ग्रामीण किसानों का तो सर्वागीण चित्रण है ही इसमें मजदूरों की समस्याओं और पूंजीपतियों की शोषक मनोव ति के कारण उत्पन्न समस्याओं को भी विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है। मजदूर और पूंजीपतियों का संघर्ष भी उभारा गया है। गोबर मजदूर वर्ग का प्रतिनिधि है। और खन्ना मिल मालिक या पूंजीपतियों का प्रतिनिधि है। मजदूरों में बढ़ता असंतोष, उनकी संगठित शक्ति और संघर्ष क्षमता को प्रेमचन्द ने 'गोदान' में वाणी दी है। मजदूर वर्ग में उत्पन्न असंतोष के कारणों की ओर मेहता संकेत करते है- ''पूंजीपति झुकने को तैयार नहीं होता, फलस्वरूप हड़ताल होती है।'' अपनी शक्ति और पैसे केबल पर खन्ना को असफल बना देता है मिल पुनः चालू हो जाती है। मिल मालिक अपने मुनाफे को बढ़ाते रहना चाहते है।, वे मजदूरों की स्थिति को जानना ही नहीं चाहते। सरकार ने अपना टैक्स बढ़ा दिया तो मिल मालिकों ने मजदूरी कम करने का निश्चय कर लिया। फलस्वरूप मजदूर आंदोलन संघर्ष, मजदूरों व बेरोजगारों में हिंसक झगड़ा तथा मिल को आग लगाना आदि अनेक घटनाएं वर्ग संघर्ष की प ष्ठिभूमि को प्रकट करती हैं। प्रेमचंद ने वर्गो के अस्तित्व और उनके संघर्ष का समाधान वर्ग-विहीन समाज की स्थापना में किया है। यह मजदूर समस्या पूंजीपतियों के द्वारा ही उत्पन्न की गई समस्या है।

7. **नारी स्वातंत्र्य तथा अधिकारों की समस्याः-** 'गोदान' मे ग्रामीण और नागरिक दोनों ही समाजों में नारी के प्रतिहीन और पराधीनता के द ष्किोण को उजागर किया है। नारी की समस्याओं को संवेदनात्मक बनाने का प्रयास प्रेमचन्द ने किया है। गांवों में अशिक्षा के कारण नारी के प्रति दुर्व्यवहार है। होरी धनिया को पीटता-मारता है। मातादीन भी सिलिया को कोई अधिकार नहीं देना चाहता है। वह रात-दिन काम करती है और अपने दो पैसे का ऋण चुकाने के लिए जब वह खलिहान से अनाज दे देती है तो स्वयं मातादीन उसका हाथ पकड़ लेता है होरी पंचायत का दंड भरते समय धनिया के विरोध की परवाह नहीं करता। नारी समस्याओं में अनमेल विवाह जैसे भोला, नोहरी, रूपा रामसेवक, अन्तर्जातीय विवाह जैसे गोबर-झुनिया, सिलिया-मातादीन की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। पिता और पति के घर में नारी की इज्जत और उसके अधिकार नगण्य है। दूसरी ओर नागरिकता जीवन से संबंध भी नारी समस्याएं हैं नगरों में गोविन्दी जैसी सुशिक्षित महिलाए भी हैं जो पूरी समर्पण भाव से अपने विवाह संधब के कारण पति और परिवार के दायित्व को निभाती हैं और पतियो से उपेक्षा, अनादर, तथ दुर्व्यवहार प्राप्त करती हैं। प्रेम विवाह की समस्या भी नागरिक जीवन से ही सम्बद्ध है। मेहता -मालती , रूद्रपाल-सरोज प्रेम विवाह करते हैं और सन्तुष्ट है जबकि मीनाक्षी दिगविजय धार्मिक ढंग से निर्धारित विवाह करके भी दुखी रहती हो मालती जैसी शिक्षित और तितली की तरह फैशन परस्त स्त्रियों भी धीरे-धीरे समाज की सेवा में पदार्पण करती हैं। यह नारी आन्दोलन की शुभ दिशा है।

8. **अन्य समस्याएँः-** प्रेमचंद ने गोदान में छोटी-2 अन्य समस्याओं की ओर भी संकेत किया है। सस्ती और स्वार्थ पर आधारित पत्रकारिता भी एक समस्या है। जो ब्लैक मेल करके ही अपना आधार खोजती रहती है। वहीं पत्रकारों की गरीबी और भूखमरी भी एक समस्या है। औकांरनाथ सम्पादक है जिसके परिवार की जर्जर आर्थिक दशा उसे बिकने पर मजबूर करती है। बेरोजगारी थी। समस्या भी उसमें उभारी गई है। गोबर रोजगार की तलाश में शहर गया है। वहां मिर्जा है आने रोज मे कबड्डी खेलने वाले बुड्ढों को का थाम देते हैं तो 4-5 सौ बेरोजगारों की भीड़ लग जाती है। मिल के मजदूर हड़ताल करते हैं तो उनके स्थान पर काम पाने के लिए बेरोजगार उमड़ पड़ते हैं। और पुराने मजदूरों से संघर्ष करते हैं। इसके अलावा शिक्षा समस्या, सफाई व्यवस्था की समस्या बढ़ते हुए पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव की समस्या आदि अनेक समस्याओं को कथा का सहज अंग बनाकर प्रेमचन्द नें गोदान में प्रस्तुत किया है। स्वराज्य की समस्या के प्रति धनिया का यह यथार्थवादी आकलन देखिए-'' ये हमारे गांव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद, ब्याज , नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हा गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से न्याय से।

**निष्कर्षः** उपन्यासकार प्रेमचन्द ने 'गोदान' में समस्याओं का चित्रण करने में अत्यन्त जागरूकता का परिचय दिया है। उनकी किसानों और श्रमिकों के प्रति गहरी सहानुभूति थी। अतः इस वर्ग की समस्याओं को अधिक स्थान दिया है। 'गोदान' में भारतीय ग्रामों की समस्याओं का चित्रण करके उसे ऐतिहासिक बना दिया है। और उसे उन समस्याओं का समाधान खोज की दिशा में प्रयत्नशील बनाया गया है। प्रेमचंद जानते थे कि हमारी सामाजिक, नैतिक, धार्मिक समस्याओं के मूल में आर्थिक समस्याएं ही हैं। अतः उन्होंनें सारे उपन्यास का ताना-बाना आर्थिक समस्याओं के चारों ओर ही बुना है।

**प्र०14. 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचन्द ने ग्रामीण और नागरिक जीवन का समग्र चित्रण किया है। इस कथन का विवेचन कीजिए।**

**अथवा**

**गोदान में तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करने में प्रेमचन्द कहां तक सफल हुए हैं? स्पष्ट कीजिए।**

**गोदान के देशकाल व वातावरण चित्रण पर टिप्पणी लिखियें।**

**अथवा**

उ०. गोदान उपन्यास प्रेमचन्द का एक विशाल उपन्यास है जिसमें उत्तर भारत के सम्पूर्ण सामाजिक, धार्मिक आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन के यथार्थ चित्र अंकित किए गए हैं। प्रेमचंद एक जागरूक तथा सूक्ष्म द ष्टि वाले साहित्यकार थें जिनकी द ष्टि समस्त वातावरण की प ष्ठभूमि में ही कथानक तभी विचारों का विकास करने वाली थी। गोदान में ग्रामीण तथा शहरी जीवन की ऐसी यथाकथ्य झाँकियां हैं कि उनके विवरणों को देख सुनकर तत्कालीन इतिहास ही सामने साकार हो जाता है। उनका कथा-तत्व भी ग्राम तथा शहर से संबन्धित है। ग्रामीण समाज अपने आसपास के कैसे वातावरण में सांस लेता था और शहरी समाज किन आकांक्षाओं, उपेक्षाओं तथा अन्तर्द्वन्द्वो का शिकार था, यह सब विवरण प्रेमचन्द ने अपने समसामयिक समाज के विभिन्न पहलुओं का यथार्थ अध्ययन करके ही प्रस्तुत किया है। गोदान उपन्यास की रचना बीसबीं शताब्दी के चौथे दशक के मध्य में हुई थी। अतः इसमें ब्रिटिश कालीन भारत का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक इतिहास देखा जा सकता है।

**राजनीतिक प ष्ठभूमिः-** गोदान उपन्यास में तत्कालीन भारत की राजनीति का विवरण दिया गया है। उस समय भारत में स्वतंत्रता का आंदोलन महात्मा गांधी के नेत त्व में जोरों पर था। अंग्रेजों से धारा सभाओं के गठन में भारतीयों के अधिकार मांगे जा रहे थे। छोटे-मोटे अधिकार अंग्रेज प्रदान करके अहसान जता रहे थे। कांग्रेस एक मात्र सशक्त राजनीतिक पार्टी थी जो देश की आशाओं, आकांक्षाओं का केन्द्र कि किन्तु कांग्रेस पर राजाओं और जमींदारों तथा पूंजीपतियों ने अपना अधिकार कर रखा था। रायसाहब अमरपाल सिंह जैसे चालाक और होशियार जमींदार अपनी दुरंगी चाल से किसानों पर अत्याचार करके भी कांग्रेस आन्दोलन में शामिल हो रहे थे और जेल जाकर देशभक्ति का प्रमाण पत्र जुटा रहे थे फिर प्रान्तीय। असम्बेली में कांग्रेस की ओर से चुनाव लड़कर पहुच

रहे थे जहां वे आम आदमी के कल्याण के लिए नहीं सोचते थे अपितु अपने व्यक्तिगत अहंकार की पूर्ति करते थे। राजा सूर्यप्रताप सिंह और अमरपाल सिंह की राजनीतिक प्रतिस्पर्धा गोदान में वर्णित है। जिसमें देखा जा सकता है। शहरों में मालती, मेहता, खन्ना, तंखा, मिर्जा खुशेद आदि देश की राजनीतिक और आजादी के संग्राम से परिचित है।

उस समय तक गांवों में आजादी के संग्राम की हवा तेजी से नहीं बही थी। राजनीतिक जाग ति इतनी ही थी कि गोबर जैसे युवक जमींदार और महाजान जाग ति इतनी ही थी कि गोबर जैसे युवक जमींदार और महाजनों के शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने लगे थे। जमींदारों को डराने के लिए गांव वाले भी अखबार वालों का सहारा लेने की सोचने लगे थे जैसे नोखेराम और पटेश्वरी 'बिजली' के सम्पादक को रायसाहब के अत्याचारों को लिख भेजते थे ताकि उनका स्वार्थ बना रह सके। अन्य किसी भी पात्र में राजनीतिक जाग ति गावं में नहीं है। केवल धनिया जब पंचो को कोसती है तब अवश्य वह 'सुराज' की ओर संकेत करती है। वह कहती है- ''ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसते हैं। सूद-ब्याज, डेढी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धन से, न्याय से।''

**सामाजिक प ष्ठभूमि:-** गोदान उपन्यास में प्रेमचन्द ने ग्रामीण और शहरी समाज का यथाकथ्य चित्रण किया है। शहरी समाज की अपेक्षा उस उपन्यास में ग्रामीण समाज का व्यापक और बहुत गहराई से अंकन किया गया है। ग्रामीण समाज में परिवारों की स्थिति, जाति बिरादरी के बंधन, विधवा-विवाह, अनमेल विवाह, स्त्रियों की स्थिति, वर्णव्यवस्था, धर्म के विकृत रूप आदि को अंकित करने में प्रेमचन्द ने कुशलता और सूक्ष्म द ष्टि का परिचय दिया है।

उस समय भारत का ग्रामीण समाज अशिक्षा का शिकार था। गोबर जैसे युवकों को स्कूल जाने का अवसर नही मिलता था। हां, पूंजीपति वर्ग के पटेश्वरी का पुत्र अवश्य शहर में पढ़ने जाता है। तत्कालीन भारत में परिवारों में कुछ वर्षो तक संयुक्त परिवारों में रहने की रीति थी। फिर भाइयों का बंटवारा और रंजिश ईर्ष्या का बोलबाला। होरी का सगा भाई हीरा होरी के घर आई एक गाय को नही देख सकता और गाय को विष देकर मार देता है। इस ईर्ष्या के बावजूद पारिवारिक मर्यादा की रक्षा का प्रयास उस समय किया जाता था। हीरा के घर से चले जाने पर उसकी पत्नी पुन्नी को होरी पूरा साथ देता है। उसकी खेती को भी संभालता है। इसी प्रकार जब दमडी बौसोर पुन्नी के साथ झगड़ा कर रहा था तो होरी उसकी रक्षा के लिए उपस्थित होता है। और दमडी बौसोर को पीटता फटकारता है लेकिन सामाजिक संघर्ष में परिवार की कोई भूमिका नही थी। होरी का परिवार पंचों, समाज ,धर्म, राज से पीड़ित है संघर्ष करता है किन्तु उसका भाई सोभा या अन्य रिश्तेदार उसे तनिक भी सहयोग नही देते। उस समय गांवो में विधवा-विवाह को अनुचित समझा जाता था। गोबर ने झुनिया को पत्नी के रूप में स्वीकार किया था किन्तु समाज ने होरी से दण्ड लेकर ही उसे बिरादरी में रखा। उस समय जाति, बिरादरी के बन्धन बहुत सख्त थे। वर्ग-व्यवस्था भी टूट नही रही थी। हाँ, प्रेम विवाह के कारण उसकी जड़े हिल रही थी। दातादीन ब्राह्मण सिलिया चमारिन से प्रेम करता है किन्तु उसे अपनाने से कतराता है। अन्त में प्रेमचन्द ने दातादीन और सिलिया को एक करके वर्ण व्यवस्था के विरूद्ध आदर्श समाज की स्थापना का मार्ग दिखाया है। विवाह में दहेज तथा अन्य खर्चीली व्यवस्थाएं प्रचलित थी। सोना का विवाह उसके ससुराल वाले बिना दहेज करना चाहते थे किन्तु धनिया दहेज देने में अपनी प्रतिष्ठा समझती थी। धनाभाव में कई लोग अपनी कन्याओं का विवाह व द्धों के साथ भी करते थे जैसे रूपा का विवाह होरी को व द्ध के साथ ही करना पड़ा। स्त्रियों की दिशा केवल घर के काम करने तक ही सीमित थी। पुरूष उन पर मनमाना अत्याचार करता था, उन्हें मारता-पीटता है। जैसा कि होरी अनेक अवसरों पर धनियां को मारता पीटता है। गांव का संपूर्ण समाज शोषक ओर शोषित दो वर्गो में बंटा है। दातादीन, झिगुंरी सिंह, पटेश्वरी, नोखेराम शोषक वर्ग के प्रतिनिधि हैं और होरी, गोबर, सोभा, हीरा, भोला शोषित हैं तथा अन्य सभी किसान, मजदूर, अछूत आदि शोषित ही हैं।

**नगर की सामाजिक प ष्ठभूमि:-** ग्रामीण समाज का जितना सर्वागींण चित्रण प्रेमचन्द ने किया है उतना वे शहरी समाज का नहीं कर सके। गोदान में ग्रामीण और नागरिक दोनो ही जीवन और उनकी कहानी है। नगरो में भी

समाज उच्च और निम्न दो वर्गो में विभक्त है। यहां इन दोनों  वर्गो के बीच में खाई ज्यादा चौड़ी है। एक ओर मिल मालिक खन्ना है और रायसाहब का उच्चतर जीवन है, दूसरी और मिल के मजदूर या रायसाहब के यहां आना रोज में बेगार करने वाले है। दोनों में रात-दिन का अन्तर है। नगर में तथाकथित बड़े लोग स्वार्थो से ग्रस्त होकर ही परस्पर मिलते है। वे एक दुसरे की टांग खीचने मे लगे रहते है जैसे रायसाहब के मित्र उनसे घ णा करते है। रायसाहब, खन्ना की हाँ में हाँ केवल ऋण पाने के लिए करते है। तंखा  महा बेईमान और स्वार्थी है। वह किसी का मित्र नही, पैसे का यार है। सम्पादक तक शुद्ध रहते है।

उसका धर्म सुरक्षित है और जब एक दिन सिलिया के घर वालो ने मातादीन को पकड़कर उसके मुँह में हड्डी का टुकड़ा ढूँस दिया तो मातादीन काशी के पंडित से हवन यज्ञ कराकर रूपये खर्च करके मातादीन को पुनः शुद्ध कर देते है। फिर भी समाज तो मातादीन को अछूत ही मानता रहता है। इसी प्रकार गाय को विष देना अधर्म है किन्तु गाय मारकर गंगा जी में डुबकी लगाने से पाप का प्रायश्चित करने की धार्मिक रूढ़ि तब भी प्रचलित थी। होरी की धर्म भीरूता ही उसे पंचायत का दण्ड भरने को मजबूर करती है, थानेदार को रिश्वत देने को विवश करती है। धार्मिक अंधविश्वास को प्रेमचन्द ने कथानक के साथ गूँथकर ही प्रकट किया है।

तात्कालीन समाज में धार्मिक आडम्बर, पूजा, कर्मकाण्डो का विशेष महत्व था। भाग्यवाद, कर्मफल, परलोक, ब्राह्मण पूजा आदि धर्म के महत्वपूर्ण अंग थे। जो लोग सबल थे उन्हें धर्म के नियम तोड़ने पर भी कोई कुछ नही कहता था। मातादीन पंडित का लड़का था। अतः सिलिया चमरिन से उसके संबंधों पर कोई उंगली नही उठा सकता था। किन्तु गोबर एक विधवा को पत्नी बना लेता है तो गांव के मुखिया उसके पिता से दण्ड वसूल करते है। होरी की विद्रोह भावना को धार्मिक भाग्यवाद ही दबाता रहता है। गाय को भी धर्म का प्रतीक माना जाता है। उसका आर्थिक महत्व अपने स्थान पर है किन्तु किसान अपने घर-द्वार पर गाय बांधने, प्रातः काल उठते ही दर्शन करने को धर्म का लक्षण मानता है। मरने पर भी गोदान के द्वारा उस लोक में इच्छा पूर्ति का सपना देखता है। गाय के कारण होरी का संपूर्ण जीवन जर्जर हो गया किन्तु म त्युपर्यन्त गाय रखने की लालसा लिये रहता है और स्वार्थी शोषक, महाजन, पंडित होरी की म त्यु के समय 'गोदान' का प्रस्ताव करके शोषण का पासा फैंकता है जो म त्यु के समय सबसे बड़ा धार्मिक कृत्य माना जाता है। प्रेमचन्द ने इस समय धनिया के माध्यम से यथार्थवादी, रूढ़ि विरोधी, धर्म के पाखण्ड को समझने वाली नारी के स्वरूप को प्रस्तुत करके अब और अधिक शोषण से किसान को मुक्त रखने का प्रयत्न करते हैं। केवल बीस आने में ही गोदान करके धनिया धार्मिक संतोष भी ग्रहण करती है और धर्म के ठेकेदारों के मंसूबों पर पानी भी फेरती है।

**नगरों की धार्मिक स्थिति :-**

प्रेमचन्द ने नगरों का धार्मिक वातावरण भी प्रस्तुत किया है किन्तु जितना विशद ग्रामो में धर्म का परिवेश चित्रित है उतना नगरो का नहीं। नगरों का निम्न वर्ग ही धर्म की ओर आकर्षित है। नगर के दुराचारी और दुश्चरित्र है, वे धर्म से डरते भी नहीं हैं। विवाह आदि में भी धर्म-जाति के बंधनों को नही मानते।

निष्कर्ष :-

प्रेमचन्द ने गोदान में ग्रामीण और नगरीय परिस्थितियों का तुलनात्क अध्ययन करके विवेचन किया है। जहाँ गांवों में दरिद्रता का अभिशाप, अंध विश्वास, जाति-बंधन, धर्म भीरूता, अभाव, रूढ़ियां आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है वही नगरो में विलास मुक्त भोग आदि का विलास जीवन चित्रित किया गया है। इस परिवेश चित्रण में प्रेमचन्द ने ग्राम्य जीवन के यथार्थ को वाणी दी है और नागरिक जीवन के खोखलेपन को भी उसकी समस्त विकृतियों के साथ प्रस्तुत किया है। देशकाल चित्रण की द ष्टि से गोदान अपने समय का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक इतिहास प्रमाणित होता है। ग्रामीण जीवन का तो इतना विशद और यथातथ्य चित्रण इस उपन्यास में है कि इसे 'ग्रामीण जीवन का महाकाव्य' की संज्ञा भी दी जाती है।

**प्र०15. "गोदान में दो कथाएँ है-एक, ग्राम्य कथा और दूसरी नागरिक कथा लेकिन इन दोनों कथाओं में परस्पर सम्बद्धता का अभाव पाया जाता है।" इस कथन के पक्ष अथवा विपक्ष में अपना उत्तर सप्रमाण दीजिए।**

उ० कथावस्तु उपन्यास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व समझा जाता है। कथावस्तु विहीन उपन्यास की कल्पना असम्भव है। उपन्यास की कल्पना बहुत कुछ कथावस्तु पर ही निर्भर करती है। उपन्यास में एक प्रमुख कथा एवं अन्य गौण अथवा प्रांसगिक कथाएं होती है। उपन्यासकार की कुशलता इसमें देखी जाती है कि उसने छोटी-2 कथाओं को परस्पर कितने सुन्दर रूप से सम्बद्ध किया है। छोटी-छोटी कथाएँ यदि परस्पर सम्बद्ध न होकर स्वतंत्र दिखाई दे तो उपन्यास का प्रभाव नष्ट हो जाता है और उस उपन्यास की सफलता पर भी गहरा आघात पहुँचता है। अतएव किसी भी श्रेष्ठ उपन्यास की कथावस्तु रोचक एंव सोद्देश्य होने के साथ-साथ सुगठित भी होनी चाहिए। यदि कथावस्तु ही सुगठित, परस्पर सम्बद्ध और संतुलित नहीं है तो उस उपन्यास को उच्चकोटि का उपन्यास नही माना जा सकता। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे हिन्दी के जाने माने हुए आलोचको ने 'गोदान' की कथावस्तु को शिथिल और असम्बद्ध माना है अतः पहले हम उन्हीं आक्षेपों पर विवेचन करेंगे।

वाजपेयी जी 'गोदान' में दो कथाए साथ-साथ चलती पाते है-एक अधिकारिक और दूसरी प्रांसगिक। पात्रों से सम्बन्ध रखने वाली कथा को वे आधिकारिक अथवा मुख्य कथा तथा नागरिक पात्रों से सम्बन्ध रखने वाली कथा को प्रासंगिक अथवा गौण कथा मानते है और समष्टि रूप से उक्त मत की दोनों कथाओं को परस्पर पूर्णरूपेण सम्बद्ध नही मानते। वाजपेयी जी के उक्त मत के विरूद्ध मत हिन्दी के वयोव द्ध आलोचक बाबू गुलाबराय का है। आप 'गोदान' के कथानक को सुगठित और सुसम्बद्ध मानते है। आपका कथन है कि ''उपन्यास की कथावस्तु गढ़ी हुई नही मालूम पड़ती। उसमें जीवन का सा बहाव है। जीवन के से ही छायालोकमय सुख-दुख भरे चित्र है। कही खन्ना और लेखा जैसे नैतिक गर्त है तो कही होरी जैसे उच्च शिखर है। कथावस्तु में पूरी गति है। वर्णन सुन्दर होते हुए भी इतने बड़े नही है कि कथावस्तु की गति कुण्ठित हो जाये। वस्तु का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है, सभी प्रकार का जीवन आ गया है। चोटी के आदमियों का भी वर्णन है, निर्धन लोगों का भी। मिलों की हड़ताल, शक्कर, व्यवसाय की समस्याएं, चुनाव के दांव-पेंच, गांव के पंचों, जमींदारों और पटवारियों का दम्य और साहूकारों की जायदाद हड़पने वाली नीति, शिकार, पिकनिक, समाज सेवा, बालको का मनोराज्य, जवान और बूढ़ो की रसिकता सभी का सुन्दर चित्र है।" इस प्रकार गोदान का कथानक जीवन के उपर्युक्त विभिन्न चित्रों को समेटता हुआ अविराम रूप से अन्त तक चला जाता है और उसमें आरम्भ से अन्त तक पूर्ण संगति और सम्बद्धता दिखाई देती है। इस कथानक को शिथिल अथवा असम्बद्ध कैसे कहा जा सकता है?

वाजपेयी जी 'गोदान' को शुद्ध रूप से ग्रामीण जीवन का उपन्यास मानते है। उनका पहला तर्क है कि यदि उसमें नागरिक पात्र आते है तो उनका ग्रामीण पात्रों की गतिविधि से किसी न किसी प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।" और यह घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई नही पड़ा है। उनका दूसरा तर्क है कि ग्रामीण वातावरण में नागरिक लोगों का समावेश केवल दो ही उद्देश्यों को लेकर किया जा सकता है। प्रथम यह कि दोनों जीवन की विषमता को प्रकट स्पष्ट कर प्रभाव को तीव्र बनाना तथा द्वितीय यह है कि नागरिक पात्र, ग्रामीण पात्रों का सुधार करे। वाजपेयी जी के उपर्युक्त दोनों ही तर्क भ्रांतिपूर्ण है। 'गोदान' न तो केवल ग्रामीण जीवन का उपन्यास है और प्रेमचन्द नागरिक पात्रों द्वारा ग्रामीण पात्रों का सुधार ही करवाने के पक्ष में है। अब हम 'गोदान' की कथावस्तु के संगठन और सुसम्बद्ध होने के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करेगें।

**(1) 'गोदान' समष्टि रूप से शोषण का एक चक्र प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा ग्रामीण एवं नागरिक शोषक वर्ग मिलकर सम्मिलित रूप से ग्रामीणों का शोषण करना है :-**

किसान का शोषण स्थानीय साहूकार तो बराबर ही करते रहते है और उनके शोषण का तरीका प्रायः प्रत्यक्ष रहता है। परन्तु नागरीय ग्रामीण की तुलना में अधिक चालाक होता है, इसलिए उसके शोषण करने का तरीका अप्रत्यक्ष रहता है। 'गोदान' में गांव का साहूकार 'झिंगुरीसिंह' शहर के किसी बड़े साहूकार का दलाल है और शोषण में उसी का हाथ सबसे बड़ा रहा है। अन्य साहूकार छोटे और टिटपुंजिए है। दूसरी तरफ जमींदार रायसाहब ग्रामीणों का

शोषण कर जो धन एकत्रित करते है वह उनके नागरिक जीवन के व्यवसाय विलासी वातावरण की पूर्ति में व्यय होता है। आखिर यह धन आता तो किसानों की ही जेब से है। इस धन से जमींदार मुकद्दमें लड़ता है, चुनाव लड़ता है, अपने बेटे-बेटियों का शान के साथ विवाह करता है। और सम्पादको को रिश्वते देता है। साथ ही हकीमों को डालियाँ भिजवाता है और अपनी उच्चस्थिति को बनाए रखने के लिए नौकरों और मोटरो की एक पलटन रखता है। इस प्रकार किसाने से छिना हुआ पैसा नागरिक विलास और आमोद-प्रमोद में व्यय किया जाता है। अतः 'गोदान' के उपर्युक्त दोनों कथित असम्ब्द्ध कथानकों का सूत्र परस्पर प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध हो जाता है।

दूसरी तरफ नगर के वे पूंजीपति है जो शक्कर मिल आदि खोलकर किसानों की खड़ी फसल सस्ते दामों में खरीद लेते है तथा भुगतान करते समय गांव के साहूकार से मिलकर किसानों के हाथ एक पैसा भी नहीं लगने देते। क्योंकि साहूकार चाहे गांव को चाहे नगर का, सदैव एक-दूसरे की सहायता करता है। शोषण का यह चक्र यही तक सीमित नहीं रहता। गांव के जो गोबर जैस भोले-भाले नवयुवक नगर में जाकर मजदूर बन तरह-तरह की बुराइयाँ सीख जाते हैं वे नगर में आकर भी शोषण के इस चक्र से त्राण नही पा सकते। खन्ना के मिल की हड़ताल इसका प्रमाण है। गोबर जहाँ अनेक दुर्व्यसनों में फंस तबाह हो जाता है।

यदि वाजपेयी जी के उपर्युक्त दोनों कारणों को स्वीकार कर लिया जाए तो उन दोनों के चित्रों की आंशिक झलक भी गोदान में मिल जाती है। ग्राम और नगर दोनों ही स्थानों में पैसे वालो का रास्ता है। नागरिक उच्च वर्ग गरीबों को घ णा की द ष्टि से देखता है। यहाँ तक की मालती भी गरीब रोगियों की तरफ कोई ध्यान नही देती। नागरिक पात्रों में दो-एक को छोड़कर प्रायः सभी शोषण की फिराक में व्यस्त रहते है। वे परस्पर भी एक-दूसरे को फंसाने की चिंता में चौकन्ने रहते है। खन्ना और तंखा रायसाहब को फांसते है। उनमें परस्पर सौहार्द का अभाव है। सम्पादक भी रायसाहब पर हाथ साफ कर लेते हैं। रायसाहब और राजा साहब परस्पर चुनाव लड़कर गरीब जनता से छीना हुआ धन पानी की तरह बहा देते हैं। इस स्थिति की तुलना में ग्रामीण पात्र अधिक उन्नत और श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं। दूसरी तरफ मेहता और मालती ग्रामीणों की सेवा तथा सुधार का भी काम प्रारम्भ कर देते हैं। परन्तु ये सब गौण ही है। प्रेमचन्द का उद्देश्य इस विषमता अथवा सुधार का प्रमुख रूप से चित्रण करना ही नहीं था। वे तो ग्रामीण समाज के शोषण के चित्रण को पूरी तरह उभारकर सामने लाना चाहते है और इस शोषण में जितना हाथ ग्रामीण साहूकारों और जमींदारों का रहता है उतना ही नागरिक उच्चवर्गीय लोगों का भी। फिर इन दोनों कथानकों को परस्पर असम्बद्ध कैसे माना जाये?

(2) वाजपेयी जी का नागरिक कथा को जोड़ने के विरूद्ध में एक तर्क और है। वह यह कि उपन्यास का शीर्षक 'गोदान' है जिसमें यह सूचना नहीं मिलती कि संपूर्ण भारतीय जीवन को चित्रित करने का लक्ष्य रखता है। उन्होंने 'गोदान' शब्द का सम्बन्ध केवल कृषकों से ही बताया है। परन्तु उन्होंने इस बात पर ध्यान नही दिया कि जीवन पर्यन्त अथक परिश्रम करते हुए भी एक किसान अन्तिम समय 'गौ' का भी दान करने में समर्थ नहीं हो सकता। आखिर इसका क्या कारण है? शोषण का वह अबाध चक्र ही इसका प्रमुख कारण है जो किसान को कभी नही पनपने देता। वाजपेयी जी जैसे आलोचक उपन्यास की इस मूल एवं प्रमुख समस्या को भूलने के कारण ही नागरिक और ग्रामीण कथानको में सम्बद्धता नहीं देख पाते।

प्रेमचन्द ने जिस प्रकार ग्रामीण समाज का विस्त त चित्र अंकित किया है, उसी प्रकार नागरिक समाज का भी। दोनों के ही प्रति प्रेमचन्द के मन में सहानुभूति की भावना विद्यमान है। परन्तु प्रेमचन्द का पक्षपात् यदि इसे पक्षपात् माना जाये तो ग्रामीणों के प्रति अधिक है। प्रेमचन्द गोबर को केवल यह दिखाने नगर में भेजते है कि गांव का निर्धन किसान धन की लालसा में शहर जाता है तो उसमें कैसी-कैसी बुराइयाँ आ जाती है तथा साथ ही प्रेमचन्द यह नहीं चाहते थे कि हमारे किसाने नगर में जाकर वहाँ के विषैले वातावरण में अपना सहज भोलापन और पवित्रता खोकर बुराइयाँ सीख आएँ। वे औद्योगिकरण के इसलिए खिलाफ थे कि नगर में खुलने वाली मिलों के लिए कच्चा माल उपलब्ध करने के लिए ग्रामीण जनता को दुहरा शोषण किया जाता है। ग्रामीण जीवन नागरिक जीवन की तुलना में अधिक सुन्दर, पवित्र और सादा है। नगर में विलास है और पाप है। ये सारी बातें दिखाने के लिए 'गोदान'

में नागरिक कथा का समावेश कला एवं उद्देश्य की द ष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था और वही प्रेमचन्द ने किया और इतने कौशल के साथ किया कि कही भी उसमें शिथिलता नहीं आ पायी।

(3) वाजपेयी जी जिस नागरिक कथा को प्रांसगिक अथवा गौण मानते हैं उस कथा ने पौने छह सौ प ष्ठों के व हद उपन्यास के लगभग तीन सौ प ष्ठ घेर रखे हैं। फिर हम उसे गौण कैसे मान सकते है। कुछ आदर्शवादी आलोचकों का यह स्वभाव होता है कि वे प्रस्तुत कृति का इस द ष्टिकोण से मूल्यांकन नहीं करते कि उसमें जो कुछ है, वह कैसा है। इसके विपरीत वे उन न्यूनताओं अथवा बातों के विषय में लेखक को सुझाव देने बैठ जाते हैं जो उस कृति में नही होती अर्थात् यह भी होना चाहिए था, वह भी होना चाहिए था। ऐसा प्रायः इसी कारण होता है कि ऐसे आलोचक आलोच्य कृति की मूल समस्या को पकड़ या समझ नही पाते। 'गोदान' का व हद कथानक भारतीय किसान की ऋण की उस समस्या को लेकर चलता है जिसने उसके जीवन को भार बना रखा है। वह जीवन पर्यन्त अथक परिश्रम करते रहने पर भी उस ऋण से त्राण नही पाता। इसलिए होता है कि साहूकार, जो नागरिक और ग्रामीण दोनों ही होते है तथा जमींदार, पटवारी, कारिन्दे, पुलिस आदि उसे सदैव लूटते रहते है लूट का यह तांडव न त्य नागरिक और ग्रामीण शोषक स्वाभाविक और साभिप्राय है।

(4) उक्त उद्देश्य पूर्णता के लिए प्रेमचन्द में समाज के जिन वर्गो का चित्रण किया है, उनकी सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक मान्यताओं एवं स्थितियों का वर्णन भी इसलिए आवश्यक हो गया था। इसके अभाव में उनके वास्तविक रूप का उद्घाटन करना असंभव था।

गोदान की कथावस्तु सम्बन्धी आक्षेपों के उक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि इस उपन्यास की कथावस्तु कहीं भी शिथिल एवं असंतुलित नहीं हो पायी है। प्रेमचन्द ग्रामीणों और नागरिक क्षेत्रों की कथाओं को स्वतंत्र से विकास प्रदान करते हुए भी इस कौशल के साथ परस्पर सुगठित कर दिया है कि कहीं भी उससे असम्बद्धता एवं असंतुलन का भाव नही होने पाता। कथावस्तु को सुगठित, संतुलित और परस्पर सम्बद्ध रूप में विशिष्ट और मनोमुग्धकारी है।

**प्र०16. "होरी का चरित्र भारतीय किसान का वास्तविक चरित्र है।" उपर्युक्त कथन को ध्यान में रखते हुए होरी का चरित्र चित्रण कीजिए। अथवा**

**क्या होरी के रूप में स्वयं प्रेमचन्द ने अपना चित्रण किया है? सतर्क विवेचन कीजिए। अथवा**

**"होरी मानवता की साकार प्रतिमा है।" विवेचन कीजिए।**

उ० होरी प्रेमचन्द द्वारा निर्मित अमर पात्रों में से सर्वोच्चय पद का अधिकारी है। इस सम्बन्ध में लगभग आलोचक एक-मत ही उसे भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि चरित्र मानते है तथा कुछ का कहना है कि प्रेमचन्द ने होरी को निजी आत्मीय स्वरूप माना है। होरी को भारतीय कृषक जीवन का प्रतिनिधि इस रूप में माना जाता है कि भारत के लगभग सभी किसानों को उन्हीं समस्याओं का समाना करना पड़ रहा है। जो होरी के जीवन को निरंतर संघर्षमय बना रही है और उनका अन्त भी वैसा ही हुआ है जैसा की हमारे साधारण किसान का होता आया है। परन्तु यह कहना पूर्णरूप से तर्क प्रतीत नही होता कि होरी के रूप में प्रेमचन्द ने अपना चित्रण किया है। जहाँ तक कि जीवनव्यापी संघर्ष का प्रश्न है वहाँ तक तो उपर्युक्त कथन संगत है। परन्तु जब हम गहराई से देखते है तो होरी के निर्माण की उस कुशल कल्पना एवं शक्ति का अभाव मिलता है जो कलाकार प्रेमचन्द की अपनी विशेषता है। डा० राम विलास शर्मा का मत है कि-"गोदान के किसी पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता। लेकिन अगर मेहता से होरी को जोड़ा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा वह कुछ प्रेमचन्द से मिलता जुलता होगा। मेहता में यदि अपने विचार डाले है तो होरी में बराबर परिश्रम करते रहने की द ढ़-शक्ति और बातों में होरी प्रेमचन्द से बहुत भिन्न है। हम होरी को प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का प्रतिनिधि पात्र नही मान सकते।

होरी पाँच बिघे खेत का मालिक भारत का एक साधारण किसान है। उसका एक बड़ा परिवार है और छोटी-सी आय। और बड़ा परिवार यह भारतीय किसान की जीवनव्यापी समस्या रही है। इस विषमता का परिणाम यह होता

है कि हमारा किसान जी तोड मेहनत करने पर भी दो जून भर पेट रोटी प्राप्त नही कर पाता। और आय से अधिक होने वाले व्यय की पूर्ति के लिए कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। और वह जब एक बार कर्ज की इन प्राणान्तक कष्ट देने वाली भूल-भूलिया में फंस जाता है तो वह उससे बाहर नही निकल पाता। होरी की सम्पूर्ण जीवन गाथा इन्हीं प्राणघातक भूल-भूलिया की परिधि में ही सिमट कर समाप्त हो जाती है। होरी रायसाहब जैसे धूर्त जमींदार का एक साधारण-सा किसान है अन्य किसानों के समान वह भी परिश्रम करता है और कर्ज लेता है। भाग्यवादी है कि थोड़ी मर्यादा को बचाए रखना चाहता है। निहायत इमानदार और साथ ही बेइमान है, दीन-दुखियों को उसके यहाँ आश्रय मिलता है। अपनी गाय को जहर देने वाले भाई व हीरा के भाग जाने पर सम्मान को अपना सम्मान समझ उसके घर की रक्षा करता है, जीवन में कभी दूध-घी मयस्सर न होने पर भी निर्भीकतापूर्वक मेहता जैसे शक्तिशाली पुरूष को पछाड़ देता है, गाय झपटने के लिए भोला को झाँसा देता है, बाँस बेचते समय पाँच रूपये के लिए बेइमानी करने का प्रयत्न करता है। आदि किसान जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करता हुआ वह हमारे सामने आता है। उसके जीवन में अच्छाइयों और बुराइयों का स्वाभाविक सम्मिश्रिण है। उसमें मानवीय अवगुण भी है और दैवी सद्‌गुण भी। एक शब्द में वह पूर्ण मानव है तथाकथित महामानव नही। उसके जीवन की एक ही विशेषता है कि वह जीवन पर्यन्त परिश्रम से मुख नहीं मोड़ता। अपने पाँच बीघे खेत की रक्षा करने में वह अपने प्राणों की बाजी लगा देता है। परन्तु अपनी जायदाद को हाथ से नहीं निकलने देता। इसी कारण गोदान उसके भगीरथ परिश्रम की गाथा तथा किसान जीवन का महाकाव्य माना जाता है।

**(1) "होरी एक अत्यन्त साधारण सीधा-सा किसान है :-**

उसका स्वभाव भोला और निश्छल है, छल छन्दों से दूर रहता है। उसकी कथनी और करनी में प्रायः एकता रहती है। परन्तु समय पड़ने पर अपने स्वल्प से स्वार्थ लाभ के लिए झूठ बोल लेना भी पाप नही समझता। मानव मात्र के प्रति उसके हदय में महत्व और सहानुभूति है। गिरे हुए पर वह कभी ठोकर नही लगाता, हीरा के भाग जाने पर उसके घर की रक्षा करता है। गोबर और झुनिया के कारण उसे भंयकर कष्ट सहने पड़ते है। परन्तु वह झुनिया से कभी एक घड़ी बात तक नही करता।

**(2) "उसका जीवन और उसकी द ष्टि सीमित है" :-**

अपने घर कुनबे और गांव से बाहर उसकी द ष्टि नहीं जा पाती। उस सीमित क्षेत्र में परिश्रम करते हुए वह स्वार्थी बन गया है परन्तु ऐसा स्वार्थी नहीं जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का गला काट डाले। उसके स्वार्थ के परिधि भी सीमित रहती है। वह भोला का विवाह कर देने की बात कहकर उससे गाय झटक लेता है परन्तु उसके मन में बेइमानी नहीं है। समय आने पर वह उसकी कीमत चुका देने की बात सोचता है। बांस बेचने में वह भाई के साथ वह पांच का रूपये की बेइमानी करता है। परन्तु इस कृत्य से भी उसे ग्लानि होती है। रूपा के विवाह के बदले में वह वर पक्ष से दो सौ रूपये लेता है। परन्तु उसी ऋण समस कर ही लेता है। और उसे लेते समय उसे अत्यन्त मानसिक वेदना सहन करनी पड़ती है। उसकी आत्मा हाहाकार कर उठती है। परन्तु और कोई उपाय भी तो नहीं था। मानव जब पाप को करते समय इस बात के प्रति सचेत रहता है कि वह सचमुच पाप कर रहा है तो भविष्य में उसके उद्धार की आशा बनी रहती है। होरी की आर्थिक समस्या यदि विषम न होती तो वह उक्त निन्दनीय कार्य कभी नहीं करता, इसमें संदेह नहीं।

(3) **होरी व्यवहार कुशल हैः-** वह सहानुभूति तथा प्रशंसा के महत्व को पहचानता है और समय-2 पर उनका प्रयोग कर अपना काम निकाल लेता है। वह रायसाहब के यहां प्रायः इसलिए हाजिरी देने जाता रहता है कि उसी के शब्दों में यह मिलने-जुलने का प्रसाद है कि अब तक जान बची हुई है नहीं कहीं पता नहीं चलता कि घर गए गांव में इतने आदमी तो हैं किस पर बेदखली नहीं आई जिस पर कुढ़की नहीं आई जब दूसरों के पांव तले अपनी गर्दन दबी है तो उन पांवों को सहलाने में ही कुशल है। सहानुभूति दिखलाकर वह गाय भोला से प्राप्त कर लेता है। गाय मिलने से पूर्व वह भोला को भूसा देने का वादा कर लेता है परन्तु धनिया के बिगड़ने पर यह कहकर शांत

कर देता है कि भोला धनिया की बहुत प्रशंसा कर रहा था। धनिया अपनी प्रशंसा सुनकर मनचाहा भूसा देने को तैयार हो जाती है। दुलारी सहुआइन से ठिठोली कर वह उसका ह्दय कोमल बना देता है और उससे कर्ज प्राप्त कर लेने का वादा प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार नोहरी की आवभगत और प्रशंसा कर वह रूपा के विवाह के लिए रूपया ले लेता है। होरी की यह व्यवहार कुशलता उसके जीवन को क्षणभर के लिए झंझटों से उबार लेती है।

(4) **होरी एक साधारण हिन्दू ग हस्थ है**:- अपने दरवाजे पर एक सुंदर सी गाय बंधी देखने की उसके जीवन की सबसे बड़ी साध बन गई है। गाय प्राप्त करने के लिए वह भोला को झांसा देता है। परन्तु वह गाय उसके सर्वनाश का कारण बन जाती है। गोबर और झुनिया का प्रसंग इसी के कारण बनता है और फिर तो वह गाय उसके जीवन को संदेह के लिए संकट में डाल मर जाती है। और होरी का अन्त भी गोबर के बच्चे के लिए गाय प्राप्त करने के प्रयत्न में जीतोड़ मेहनत करते हुए ही होता है परन्तु फिर भी उसे गोदान का पुण्य नहीं मिल पाता। उसके जीवन की यही विडम्बना और नियति रहती है।

(5) **होरी परिवार की मर्यादा का रक्षक है**:- उसका परिवार बड़ा है। उसकी मर्यादा की रक्षा करना वह अपना कर्तव्य समझता है। उसके भाई उससे अलग हो जाते हैं और उससे द्वेष रखने लगते हैं परन्तु दमडी बंसोड और हीरा की स्त्री पुनिया के झगड़े में वह दमडी बंसोड को लात जमाता है। उसी दमडी के जिसे उसने पांच रूपये की बेईमानी करने के लिए कहा था। हीरा होरी की गाय को जहर देकर भाग जाता है। दरोगा जब हीरा के घर की तलाशी देने की बात कहता है तो होरी उसे अपना अपमान समझता है और रिश्वत देकर इस संकट को टाल देना चाहता है। उसे अपने वंश की मर्यादा धनिया से भी अधिक प्रिय है। धनिया जब विरोध करती है तो वह उससे भी संबंध तोड़ने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। वह सोचता है-''धनिया से अब मेरा कोई संबंध नहीं, जहां चाहे जाय। जब वह इज्जत बिगाड़ने पर आ गई है तो इस घर में कैसे रह सकती है।'' वह हीरा की अनाथ पत्नी पुनिया की रक्षा करती है। अपनी हानि पर उसकी खेती-बाड़ी संभालता है। बदले में उसे केवल बदनामी मिलती है कि वह पुनिया को लूटे ले रहा है।

(6) **होरी पैत्रिक संपति का रक्षक है**:- जायदाद वाला है जायदाद को जीवन का सर्वस्व और आधार मानता है। जीवन से संघर्ष करता हुआ वह बढ़ता जायदाद की जो केवल पांच बीघा खेत है अन्त तक रक्षा करने का प्रयत्न करता रहता है। इस खेती से उसका गुजारा नहीं होता मगर वह मजूरी करना अपमान समझता है। उसका कहना है कि खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है।'' मर्यादा की यही भावना उसे निरन्तर संकटों में उलझाती चली जाती है।

(7) **होरी बिरादरी को मान्यता देता है**:- जायदाद की मर्यादा, परिवार की मर्यादा आदि के उपरान्त वह बिरादरी की मर्यादा को भी निभाना चाहता है। बिरादरी का सबसे कठोर दण्ड किसी का हुक्का पानी बन्द कर देना होता है। झुनिया के कारण होरी को भी यही दण्ड मिलता है। दण्ड को सहन करने की उसमें शक्ति नहीं है। तीस मन अनाज और सौ रूपये देने पर ही उसका हुक्का पानी खुल सकता है। होरी जैसा व्यक्ति इतना कहां से दे? परन्तु मर्यादा होरी अपना सब कुछ दांव पर लगाकर अपना हुक्का पानी खुलवा लेता है और स्वयं भूखों मरने लगता है। मर्यादा पालन के इस मोह में प्राचीन काल से चले आते हुए संस्कारों का प्रभाव है, जिसका उल्लघंन करना उसके बस के बाहर की बात है। वह जानता है कि इस मर्यादाओं का पालन करने वाले ही समाज में इज्जत पाते हैं और इज्जत पाने की लालसा होरी के मन में भी है। परन्तु मर्यादा रक्षा के प्रयत्न उसे बराबर इतनी ठोकरें लगाते रहते हैं कि अन्त में इस पर से उसका विश्वास हट जाता है। ध्यानसिंह ठाकुर के यहां कथा की आरती लेने जाते समय उसका हाथ खाली है। बिना कुछ चढ़ाये आरती कैसे ले? परन्तु विचार करते-२ वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है- ''क्यों मर्यादा की गुलामी करें। मर्यादा के पीछे आरती का पुण्य क्यों छोड़े? लोग हंसेंगे हंस लें, उसे परवाह नहीं, भगवान उसे कुकर्म से बचाये रखे और वह कुछ नहीं चाहता''। काश! कि होरी में यह सद्बुद्धि पहले ही उत्पन्न हो जाती है तो उसे इतनी ठोकरें न खानी पड़ती परन्तु दुनिया में ठोकरे खाने के बाद ही तो हमारी आंखें खुलती हैं।

**(8) होरी धार्मिक विश्वास में पूर्ण आस्थावान है :-**

भारत का साधारण अनपढ़ व्यक्ति होने के कारण वह समाज के कर्णधारों द्वारा प्रचारित धार्मिक विश्वासों में पूर्ण आस्था रखता है। भाग्यवाद और कर्मवाद में उसका अमिट विश्वास है। उसी विश्वास के अनुसार उसे दरिद्रता का यह अभिलाषा पूर्व-जन्म के किसी कर्म के कारण झेलना पड़ रहा है। ब्राह्मण उसके लिए पूज्य है चाहे वह ब्राह्मण दातादीन जैसा धूर्त ही क्यों न हो। बूढ़े सूखे की विपदायें उसके मन को भीरू बनाये रहती है और ईश्वर के इस रूप से वह सदैव आंशकित रहता है। बिना लिखा-पढ़ी किये उधार लिए हुए रूपयों को चुकाना वह अपना धर्म समझता है चाहे उसे तीस के दो सौ ही क्यों न देने पड़े। अगर ब्राह्मण की एक पाई भी दबा ली तो वह उसकी हड्डी तोड़कर निकलेगी। ब्राह्मण के कोप से उसका वंश नाश हो जाएगा। इसलिए वह दातदीन की पाई-पाई चुकाने की प्रतिज्ञा करता है। होरी प्राचीन परम्परा और विश्वास को धर्म का सच्चा स्वरूप समझता है। कर्मवाद की वह प्रायः दुहाई देता रहता है। वह इसे भगवान की लीला समझकर उसकी आलोचना करने से घबराता है। वह एक स्थान पर गोबर से कहता है - 'यह बात नहीं है बेटा, छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते है। संपति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होनें पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए थे, उनका आनन्द भोग रहे है। हमने कुछ संचा नही तो भोगे क्यों'।

**(9) होरी ईमानदार है :-**

उसके कर्ज की लिखा-पढ़ी हुई है अथवा नहीं इस बात को होरी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह दातादीन की पाई-पाई चुकाना चाहता है, गाय के बदले में भोला को अपने बैल खोल देना देता है, रूपा के विवाह में लिए गए दो सौ की रकम को कर्ज मानकर स्वीकार करता है, बिरादरी के हुक्म को सिर पर चढ़ा खलिहान से ही सारा अनाज ढो-ढोकर पंचों के यहाँ पहुँचा देता है। उसने जिस किसी से भी लिया है उसे अपनी शक्ति भर चुका देने की भावना सदैव उसके मन में रहती है। इतना ईमानदार होते हुए भी उसका सारा जीवन इसी उधेड़बुन में बीत जाता है कि परिवार के कडे को चलाने के लिए कैसे नया कर्ज ले सके और अन्त में इसी कर्ज के चक्कर में पड़ा छटपटाता हुआ दम तोड़ देता है।

**(10) वह मानवता प्रेमी है :-**

होरी का सबसे बड़ा गुण उनकी मानवता है। भंयकर संकटों का सामना करते हुए भी वह मानव मात्र के प्रति अपनी सहृदता एवं सहानुभूति को नहीं छोड़ पाता, उसके भाई उसका विरोध करते हैं परन्तु वह सदैव उनकी सहायता करने के लिए उद्यत रहता है। उनके व्यवहार से उसे दुःख होता है परन्तु बदले में स्वयं दोषी नहीं बन पाता। होरी के भाग जाने पर वह उसके घर-बार को सम्भालता है। शोभा के बीमार होने पर वह उसकी सहायता करने का प्रयत्न करता है। वह प्रत्येक संकटग्रस्त प्राणी की सहायता करने का प्रयत्न करता है। वह सहायता करने में अपने भले-बुरे की चिंता नहीं करता। रायसाहब उसके मालिक है पठानवेशी मेहता को उन पर बन्दूक ताने खड़ा देख पुलिस के भय से थर-थर कांपने वाला होरी अपने प्राणों की बाजी लगाकर उनसे भिड़ जाता है और सबकी रक्षा कर लेता है। झुनिया जब उसके घर आती है तो उसे आश्रय देता है। झुनिया के कारण उसे अनेक संकट झेलने पड़ते हैं। परन्तु वह किसी भी दशा में उसे घर से निकाल बाहर करने के लिए प्रस्तुत नहीं होता, क्योंकि सुनिया गर्भवती है और साथ ही उसके बेटे ने बाँह पकड़ी है। इस अवसर पर वह बिरादरी की भी चिन्ता नहीं करता। बिरादरी के डर से वह हत्यारा नहीं बन सकता। सुनिया की तो उसके बेटे ने बाँह पकड़ी थी परन्तु सिलिया से क्या सम्बन्ध था ? परन्तु जब सिलिया निराश्रित हो जाती है तो उसे होरी के घर में ही शरण मिलती है। शोषण की चक्की में निरन्तर पिसता हुआ भी वह अपनी मानवता को नहीं छोड़ता। सब उसका अनैतिकता से शोषण करते हैं और भूख एवं अत्याधिक निर्धनता से तंग आकर कभी-2 उसे अनैतिक बनने के लिए भी मजबूर करते है, किन्तु उसकी मानवता सदैव धर्म विरोधी कर्मो का विरोध करती रहती है। विषम परिस्थितियों के जाल में तड़प-2 कर अपने प्राण भी गँवा देता है, लेकिन फिर भी वह मानवता से डिग नहीं पाता। इसलिए होरी परिस्थितियों से हार कर भी, म त्यु को प्राप्त करके भी अजेय बना रहता है। मानवता के इन गुणों से विभूषित होने पर ही होरी एक अमर पात्र बन गया है।

**(11) वह आर्थिक अभावों से ग्रस्त है:-**

होरी का संपूर्ण जीवन आर्थिक अभाव की एक करूण कहानी है। वह अन्तिम समय तक परिश्रम करता है, परन्तु उसके जीवन की कोई भी साध पूरी नहीं हो पाती। उसके अपने तन पर फटे कपड़े है, बच्चे नंगे उघाड़े फिरते है। दूध-घी की तो कौन कहे, उन्हें भरपेट अनाज भी नहीं मिलता। समाज का संपूर्ण शोषण चक्र उसे सदैव मुँह बाये निगल जाने के लिए खड़ा रहता है। होरी सबकी चोट सहता है, विनती चिरौरी कर काम निकालता है। गालियां, घुड़की आदि सहने का वह आदि हो चुका है, किसान से मजदूर बन जाता है परन्तु जीवन क्षेत्र के इस अप्रतिम योद्धा को हम कभी भी निष्क्रिय अथवा हताश होते हुए नही देखते। वह निरन्तर परिस्थितियों से जूझता हुआ उन पर काबू पाने का प्रयत्न करता रहता है। अपने पाँच बीघे खेत की रक्षा करने में वह अपनी जान लड़ा देता है, क्योंकि ये ही खेत उसकी मर्यादा के रक्षक हैं। परन्तु जब उन खेतों पर भी बेदखली की नौबत आ जाती है तो होरी की आँखों तले अंधेरा छा जाता है और इस संकट के विज्तार पाने के लिए उसे एक ऐसा कुकर्म करना पड़ता है कि उसकी आत्मा टूट जाती है। वह रूपा के विवाह के बदले में दो सौ रूपये लेता है और वह भी कर्ज समझकर। परन्तु उसकी अन्तरात्मा तड़प उठती है। आज वह अपने को हारा हुआ समझता है। प्रेमचन्द के शब्दों में - -''आज बीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा हुआ कि मानों उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है''।

इस घटना से होरी को प्राणांतक वेदना होती है, परन्तु हिम्मत नही हारता। यह भयानक चोट भी उसे जीवन-संघर्ष से विरत नहीं कर पाती। वह नवीन उत्साह के साथ पुनः रणक्षेत्र में उतर आता है। उसे चिन्ता है कि किसी तरह इस कलंक से उदार पा सके और इसके लिए लू से तपती हुई दोपहरी में कंकड खोदने का काम ृशुरू कर देता है। वह अपनी शक्ति से बाहर परिश्रम करने लगता है जो उसके प्राण लेकर समाप्त होता है। उसके जीवन का यह नवीन अध्याय उसे इतना अवकाश नहीं देता कि वह अपनी अन्तरात्मा की उस वेदना को दूर कर सके। एक दिन उसे लू लग जाती है वह मरणासन्न है। प्रेमचन्द उसकी मानसिक दशा का चित्रण करते हैं - ''जीवन कहता है, जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं। इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय-पताकाएँ हैं''।

**प्र०17. ''धनिया एक कठोर किन्तु स्नेहमयी नारी है''। इस कथन के परिपेक्ष्य में 'गोदान' में चित्रित धनिया का चित्रांकन कीजिए। अथवा**

**''धनिया ऊपर से कठोर है, लेकिन ह्नदय से बहुत कोमल है। प्रेमचन्द के नारी पात्रों में वह अत्यन्त है। उसके बराबर न और कोई परिश्रम करने वाली है और न खरी बात कहने वाली है''। इस कथन की व्याख्या करते हुए धनिया का चरित्र चित्रण कीजिए।**

उ० धनिया 'गोदान' उपन्यास में एक सामान्य हिन्दू पतिपरायणा ग हिणी के रूप में अवतरित हुई है। संपूर्ण कथानक में उसका अपना महत्वपूर्ण स्थान है और एक निजी जिजीविषा का संस्थावन करती हुई वह सर्वत्र दिखाई देती है। झगडालू प्रव ति की होते हुए भी उसके ममत्व एवं स्नेह का अजस्त्र स्त्रोत उमड़ता परिलक्षित होता है। वह अत्यन्त साहस, धैर्य और अघव्यवसाय से परिस्थितिवश आयी हुई भयानकतम विपत्तियों में भी अपने पति होरी के कंधे से कंधा मिलकार उन दैवी एवं सांसारिक विपत्तियों में से संघर्ष करते हुए जीवन संग्राम में होरी का साथ देती है और जैसे अपनी उपस्थिति से उसे अभयदान देती परिलक्षित होती है। उसकी घोर जिजीविषा उसे एक विशिष्ट अस्मिता प्रदान करती है। संपूर्ण जीवन भर पति के साथ समस्याओं से संघर्ष करती हुई धनिया जब अन्त में हमारे सामने अपने म त पति के गोदान के लिए हाथ में बीस आने पैसे लिए खड़ी होती है, तो जैसे प्रेमचन्द के जीवन की सारी करूणा वहाँ धनीभूत हो उठती है।

धनिया के चरित्र की इसी द ढ़ता, अदम्य जिजीविषा, कर्मठता और कोमलता पर टिप्पणी करते हुए भी गोपाल कृष्ण कौल लिखते है, ''धनिया का चरित्र एक द ढ़ साहसी और कर्मठ ग्राम नारी का चरित्र है। परिवार की गाड़ी को वह अपनी व्यवहार-कुशलता से आर्थिक शोषण और सामाजिक रूढ़ियों के दलदल में भी खींचती चली जाती है।

जो बात उसके सहृदय हृदय को उचित प्रतीत हो, फिर वह उसके लिए बड़ी से सामाजिक श्रंखला की परवाह नही करती। वह अपने पुत्र गोबर की असामाजिक प्रेम को अपने साहस के द्वारा पाप बनने से बचा लेती है। गोबर विधवा झुनिया को यौवनासक्ति में गर्भवती बना देता है और जब उसे इस कार्य के दायित्व के बोझ का पता चलता है तब वह झुनिया को अपने घर छिपाकर छोड़ जाता है और खुद शहर भाग जाता है। धनिया तब समाज के भय से झुनिया को अपने घर से भगाती नही, बल्कि उसे स्वीकार कर अपने पुत्र की कायरता को धिक्कारती है। इसी प्रकार ग्राम विप्र की रखैल चमारिन सिलिया को भी परित्याग होने पर वह अपने घर में स्थान देती है।

(1) **पतिव्रता नारी -** धनिया उपन्यास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र होरी की पत्नी है। वह अपने पति के सुख-दुख की सच्ची साथिन है। झगड़ा भी करती है, गाली भी देती है, किन्तु अवसर पड़ने पर पति के लिए प्राण देने को भी तत्पर रहती है। वह प्रारम्भ में ही एक पतिव्रता नारी के रूप में अपने पति को अभयदान देती सी दिखायी देती है। होरी रायसाहब से मिलने जा रहा है और धनिया द्वार पर खड़ी होकर उसे एकटक जाते देखती रहती है। उसकी तत्कालीन मनस्थिति का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते है, ''वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभयदान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकल कर होरी को अपनी अन्दर छिपाये लेता था। विपन्ता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह त ण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार रही थी।''

वह सच्चे अर्थो में होरी की सहधर्मिणी है। होरी जहां अन्याय के सामने सिर झुकाकर अपनी पराजय स्वीकार कर लेता है, वहां धनिया अन्याय का डटकर विरोध करती है और होरी को भी अन्याय के सामने सिर झुकाने के लिए फटकारती है। जीवन-संघर्ष में जो मार उस पर पड़ती है उसे बीस वर्षो तक झेलते रहने से वह झुलसकर रह जाती है, किन्तु हार तो वह फिर भी नहीं स्वीकारती। संघर्षों की श्रंखला ने उसके शरीर को इतना घिस और विदीर्ण कर दिया है कि वह छत्तीस वर्ष की आयु में ही व द्धा-सी प्रतीत होती है। लेखक उसकी इस दशा का वर्णन करते हुए लिखता है-''सारे बाल पक गये, चेहरे पर झुर्रिया पड़ गयी, सारी देह ढल गई, सुन्दर गेहुंआ रंग सांवला हो गया और आँखे से कम सूझने लगा। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्म-सम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। ''धनिया वास्तव में एक कर्मठ भारतीय नारी का चित्र है जिसमें पतिव्रत्य कूट-कूट कर भरा हुआ है।

(2) **आत्म प्रंशसा की भूखी :-**

यह नारी का स्वभाव है कि दूसरों के मुख से प्रशंसा सुनने की भूखी रहती है। इसमें उसे इतना अधिक आत्म-संतोष मिलता है कि ऐसा करके सहज ही में उसे बहलाया फुसलाया जा सकता है। धनिया भी चूंकि एक साधारण नारी है इसलिए वह भी इसका अपवाद नही है। होरी जब भोला की कठिनाइयों को बताकर उसे दो टोकरे भूसा देने की बात करता है तो धनिया बिगड़ उठती है किन्तु जब होरी धनिया की इस दुर्बल नस को पहचानकर उसके सामने प्रशंसा करते हुए कहता है कि भोला उसका बड़ा प्रंशसक है - ''उसकी भलमानसी तो देखो। मुझसे जब मिलता है तेरा बरवान करता है-ऐसी लक्ष्मी है, ऐसी सलीकेदार है''। तो यह सुनते ही धनिया की कठोरता एकदम तिरोहित हो जाती है। उसके मुख पर स्निगधता झलक पड़ी। प्रसन्नता को छिपाए कहा, ''मैं उनके बरवान की भूखी नही हूँ, अपना बरवान धरे रहे''। किन्तु होरी ने इतने भर से उसे फुसला दिया और जब भोला आया तो उसने ऐसी आवभगत की जैसे उसने आज तक कहीं नहीं पायी थी। इतना ही नही, धनिया ने दो नही तीन खांचे भर भूसा भरवा दिया और भोला के साथ होरी और गोबर को भी उसके घर तक पहुँचाने भेज दिया।

(3) **सरल, भोल-भाली किन्तु कठोर प्रव ति :-**

धनिया के स्वभाव में यह सहज विरोधाभास मिलता है कि एक ओर तो वह अत्यन्त सरल, भोली और कोमल स्वभाव की है किन्तु दूसरी तरफ कभी-कभी परिस्थितिवश इतनी उग्रता उसमें दिखाई देती है कि होरी तक उसके सामने घुटने टेक देता है। झुनिया के घर बैठ जाने पर वह उसे फटकारती है और खेत में जाकर होरी को भी बता देती है। इस प्रंसग में उसके चरित्र का यह विरोधाभास एक साथ उजागर हो उठता है। पहले तो वह होरी को डांटते

हुए कहती है, ''मैं तुमसे कहे देती हूँ , मैं अपने घर में न रखूंगी। ........ मेरे घर में ऐसी छत्तीसियों के लिए जगह नही है और अगर तुम बीच में बोले तो फिर या तो तुम्ही रहोगे या मैं ही रहूंगी। और होरी उसके साथ रात के सन्नाटे में घर की ओर चल पड़ता है। होरी और धनिया जब घर के निकट आ गए तो होरी ने कहा कि मैं अभी उसे घर से निकाल बाहर करता हूँ तो धनिया को एकदम से झुनिया की परिस्थिति का ध्यान हो आता है। वह होरी को चुप कराते हुए कहती है - ''देखो हल्ला न मचाना, नही सारा गांव जाग उठेगा और बात फैल जाएगी। ..........इतनी रात गए घर से निकालना उचित नही है पांव भारी है, कही डरा जाये तो और आफत हो। ऐसी दशा में कुछ करते-धरते भी नही बनता''।

**(4) दयार्द्र नारी-हृदय एवं मात स्नेह से परिपूर्ण :-**

धनिया जितनी बाहर से कठोर प्रतीत होती है उतनी है नहीं। वास्तव में परिस्थितियों की उग्रता ने उसमें एक अस्थिर झल्लाहट भर दी है जिससे तनिक-सी भी बात पर वह उग्र हो उठती है किन्तु मनसा-वाचा-कर्मणा वास्तव में प्रकृत्या वह एक दयार्द्र नारी है जिसमें मात -स्नेह छलछला रहा है। झुनिया के प्रसंग में पहले जो उग्रता वह दिखाती है उसके पीछे सामाजिक अपवाद का डर निहित है। वह जानती है कि इस काण्ड के कारण उसे अपयश ही नहीं मिलेगा, समाज की ओर से और भी दण्ड सम्भावित है। इसी कारण वह होरी से उसे घर से निकालने की कहती है। किन्तु जब उसे झुनिया की परिस्थिति का ध्यान आता है तो उसका मात त्व-स्नेह जाग उठता है। इसीलिए स्वयं उपन्यासकार उसके इस मात -स्नेह से प्रभावित होकर लिखता है-''होरी की आंखे आर्द्र हो आयी। धनिया का यह मात -स्नेह उस अंधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिन्ता-जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत यौवनसचेत हो उठा। होरी को इस बीत-यौवना में भी वही कोमल हृदय बालिका नजर आयी, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस अलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था, जो सारे कलंक, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परम्पराओं को अपने अन्दर समेट लेता था।''

होरी से आश्वासन पाकर झुनिया जरा निश्चित हुई तो उसने धनिया के पैर पकड़ लिए। उस समय उसके मात -स्नेह को जो वर्णन प्रेमचन्द जी ने किया है, उसमें धनिया का चरित्र अत्यन्त महान् बन गया है।

''धनिया अपनी करूणा के आवेश को अब न रोक सकी। बोली-तू चल घर में बैठ, मैं देख लूंगी काका और भैया को। संसार में उन्हीं का राज नहीं है। बहुत करेगें, अपने गहने ले लेंगे। फेंक देना उतार कर।''

अभी जरा देर पहले धनिया ने क्रोध के आवेश में झुनिया का कुलटा और कलंकिनी और कलमुंही, जाने क्या-क्या कह डाला था। झाडू मारकर घर से निकालने जा रही थी। अब जो झुनिया ने स्नेह, क्षमा और आश्वासन से भर वाक्य सुने तो होरी के पांव से लिपट गई और वही साध्वी, जिसने होरी के सिवा किसी पुरूष का आंख भरकर देखा भी न था, इस पापिष्ठा को गले लगाए, उसके आंसू पौंछ रही थी और उसके प्रस्त हृदय को कोमल शब्दों से शांत कर रही थी, जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चे को पंखों में छिपाए बैठी हो।

**(5) निर्भीक एवं स्वाभिमान :-**

धनिया के चरित्र में जो निर्भीकता एवं साहस है उससे उसका व्यक्तित्व अत्याधिक निखर उठा है। वह न तो गलत बात सुन सकती है और न ऐंठ बर्दाश्त कर सकती है। असत्य और अन्याय को सर्वदा अस्वीकार करना उसके चरित्र की प्रथम प्रतिश्रुति है। जब भी वह अपने या अन्य परिवार पर अन्याय होते देखती है तो अन्याय करने वाला कितना चाहे समर्थ क्यों न हो, उसका आक्रोश एवं विद्रोह देखने लायक होता है। होरी से जब उसे ज्ञात होता है कि उसकी गाय को विष किसी और ने नही स्वयं होरी के भाई हीरा ने दिया है तो वह आग-बबूला हो उठती है और होरी के समझाने के बावजूद आकाश-पाताल एक कर देती है। पुलिस के दरोगा के सामने जब होरी झूठ बोल जाता है तो धनिया भरी भीड़ के सामने निर्भीयतापूर्वक बिफर कर कहती है - 'गाय मारी है तुम्हारे भाई हीरा ने। सरकार ऐसे बोडम नही है कि जो कुछ तुम कह दोगें, वह मान लेगें'। दरोगा हीरा के घर की तलाशी लेना चाहता है किन्तु होरी को पसन्द नही कि उसके भाई के घर के तलाशी हो। वह पटेश्वरी आदि से ऋण लेकर दरोगा को घूस देना चाहता है। धनिया आक्रोश में भरकर उसके अंगोछे को झटक देती है। रूपये धरती पर बिखर जाते है क्रुद्ध सर्पिणी की भांति फुफकारती हुई होरी से कहती है - 'रूपये कहा लिए जा रहा

है बता। भला चाहता है, तो सब रूपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ। घर के परानी रात दिन मरे और दाने-दाने को तरसे। लता भी पहनने को मयस्सर न होवै। अंजुली भर रूपये लेकर चला है, इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत। जिसके घर चूहे लोटे, वह इज्जत वाला है, दरोगा तलाशी ही तो लेगा, ले ले जहां चाहे तलाशी। एक तो सौ रूपये की गाय गयी, उस पर ऊपर से यह पलोचन। वाह री तेरी इज्जत। और उसका साहस तो देखिए कि जब दरोगाा कहता है कि हो न हो हीरा को फंसाने के लिए धनिया ने ही गाय को विष दे दिया हो, तो धनिया कितने साहस से कड़कते हुए दरोगा को उतर देती है -'हां, दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली, फिर किसी दूसरे का जानवर तो नही मारा? तुम्हारी तहकीकात में यही निकलता है तो यही लिख दो, पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ियां। देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारी अक्कल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है, दूध का दूध पानी का पानी करना दूसरी बात'।

धनिया के इसी साहस, स्वाभिमान और निर्भीकता पर अपने विचार प्रकट करते हुए हंसराज रहबर लिखते है,-'

''धनिया बहुत साहसी औरत है। वह जिस बात को ठीक समझ ले फिर समाज, बिरादरी, नियम, कानून किसी बात की परवाह नही करती, उसे कर डालती है..........अपने अदम्य साहस और कर्मशीलता के कारण वह कई बार गांव भर का नेत त्व करती हुई दिख पड़ती है''।

इस प्रकार धनिया समग्रतः एक ऐसी आदर्श नारी है जिसमें अदम्य साहस, स्वाभिमान, पुरूषार्थ एवं कोमलता के साथ ही पतिव्रत्य एवं मात त्व का ऐसा अनूठा संगम मिलता है कि वह सही अर्थो में एक आदर्श स्नेहशीला नारी का प्रतीक बन गयी है। वह ऊपर से कठोर अवश्य है किन्तु प्रकृत्या वह बहुत कोमल नारी है। वास्तव में वह ग्रामीण नारी समाज की प्रतिनिधि और उसका जीवन्त रूप है।

**प्र० 18. सिद्ध कीजिए कि गोबर के चरित्र में किसान के धैर्य की अपेक्षा मजदूर वर्ग का असंतोष और क्रांति का स्वरूप उजागर हुआ है। इसी आधार पर गोबर का चरित्र का विश्लेषण कीजिए।**

उ० प्रेमचन्द रचित प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में उपन्यास के नायक होरी का पुत्र गोबर प्रेमचन्द की सोद्देश्य चरित्र-स ष्टि है। वह किसान पुत्र है किन्तु मजदूर क्रांति से जुड़ा हुआ होने के कारण किसान मजदूर के शोषण के विरूद्ध मोर्चा लेने की क्षमता लेकर इस उपन्यास में उपस्थित हुआ है। वह नए युग के विचारों का बाहक और युवा क्रांति का अगुवा दिखाई देता है। नए युग की नई सामाजिक, आर्थिक मान्यताओं का झंडा प्रेमचन्द ने गोबर के हाथ में ही दिया है। नई पीढ़ी के विद्रोह को वही वाणी देता है। प्रेमचन्द अपने प्रगतिशील समाजवादी विचारों का प्रतिनिधित्व गोबर के ही माध्यम से करते है। ग्रामीण समाज में किसान के घर में जन्म लेकर भी शहरी सभ्यता में, मशीनी सभ्यता में, मजदूर वर्ग में जीवन बिताने के कारण उसके चरित्र में जाति, बिरादरी, धर्म, झूठी मर्यादा के प्रति अविश्वास का भाव विद्यमान है। वह अपने परिवार ओर माता-पिता के प्रति सहृदयता और संवेदनाएं रखता है। उसके चरित्र की मुख्य विशेषताओं को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते है :-

**(1) नई पीढ़ी का विद्रोही युवक :-**

गोबर नई पीढ़ी के किसान युवक का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपने शोषण के विरूद्ध आवाज उठकार मोर्चा लेने की बात सोचता है। उपन्यास के प्रारंभ में भी उसका एक विद्रोही स्वभाव सामने आ जाता है। होरी जब रायसाहब के यहां जाता है, तब वह अपने पिता से कहता है -''यह तुम रोज-2 मालिकों की खुशामद क्यों करने जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा होकर गालियां सुनाता है, बेकार देनी ही पड़ती है। नजर-नजराना सब तो हम से भराया जाता है फिर किसी की क्यों सलामी करो''। यह उसके भीतर की युवा विद्रोह ही है। जब रायसाहब से मिलकर होरी लौटता है ओर रायसाहब की आन्तरिक कष्टों और इन्द्रो की चर्चा करता है तो गोबर व्यंग्य पूर्वक कहता है-''तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नही दे देते। हम अपने बैल, खेत, हल, खुदाल सब उन्हें देने को तैयार है। करेंगे बदला यह सब धूर्तता है, निरी मोट मर दी। जिसे दुख होता है वह दर्जनो मोटरे नही रखता, महलो में नही रहता, हलवा-पूरी नही खाता और न नाच रंग में लिप्त रहता है। मजे से राय का सुख भोग रहे है उस पर दुखी है''। इस पर होरी गोबर को समझाना चाहता है उसे भाग्यवाद और कर्मवाद की परपंरागत विचारधारा से आश्वस्त करना चाहता है। ईश्वर की लीला बताकर उसके आक्रोश को कम करना चाहता है। तब गोबर कहता है-''यह

सब मन को समझाने की बातें है। भगवान तो सबको बराबर बनाते है यहाँ जिसके हाथ में लाठी है वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है''। होरी के ईश्वर, भाग्य, कर्मफल के सिद्धान्त का गोबर दो टूक उत्तर देता है। उसे जमींदारों, पूंजीपतियों की धार्मिक निष्ठा में भी विश्वास नही है।

किसान प्रायः ऐसा नही सोचता। मजदूर वर्ग में ही अपनी हीन स्थिति का कारण सोचने की शक्ति होती है। होरी कहता है कि मालिक भजन भाव करते है और दान धर्म में रूचि लेते है-''न ही, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर यह पाप का धन पचे कैसे? इसलिए दान धर्म करना पड़ता है। भगवान का भजन भी इसलिए होता है भूखे नंगे रहकर भगवान का भजन करे तो हम देखे। हमें कोई दोनों जून खाने को दे तो हम आठो पहर भगवान का जाप भी करते रहे। एक दिन खेत में अरब गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाए''। गोबर के चरित्र में यह विद्रोही भावना उसी प्रेमचन्द ने आरोपित कर दी है। जब वह गांव में था और मजदूर आंदोलन के संपर्क में आया था प्रारम्भ में प्रकट हुई यह विद्रोही प्रव ति दातादीन के रूपये न चुकाने में, पंचों को ललकारने में पराकाष्ण तक पहुंच जाती है।

(2) **संघर्षशील और लड़ाकू :-**

गोबर में प्रत्येक परिस्थितियों से संघर्ष करने का साहस है। वह निरन्तर संघर्षशील बना रहता है। उसमें पलायनवर्ती नही है। पराजित होकर भी वह न तो निराश होता है और न मैदान छोड़कर भागता है। गोबर गांव में शोषण के तरीको को समझता है। उनके विरूद्ध आवाज उठाता है। संघर्ष करने को तत्पर हो जाता है किन्तु वहाँ वह अकेला है उसका साथ देने कोई नही आता। रायसाहब जमींदार है और उसकी छदम्चालो से गोबर को अन्य युवको से अलग-थलग किए रहते है। उसकी विशिष्टता के सम्बन्ध में डा० राम विलास शर्मा लिखते है, -''होरी के लड़के गोबर में प्रेमाश्रम के बलराज की सी द ढ़ता न हो तब भी वह नए जमाने की रोशनी देख चुका है। बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही है। होरी के मरने के बाद मानो गोबर पिता के हत्यारों के लिए एक चुनौती की तरह जीवित रहता है। वह गोबर जिसने राजनीतिक जलसो के पीछे खड़े होकर भाषण सुने है और उनसे अंग-2 में बिंधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा।'' गोबर की इसी विचारशील द ढ़ता में उसके संघर्ष पूर्ण व्यक्तित्व का रहस्य है। उसमें एक लड़ाकू किसान की तस्वीर उभरती है। जब वह शहर से पहली बार वापस अपने गाँव आता है, तब उसे यह ज्ञात होता है कि पंचों ने उसके पिता से दण्ड लेकर उसकी गरीबी और कष्टों को और बढ़ा दिया है तो पहले तो वह होली के अवसर पर एक व्यंग्य नाटक की रचना करके सरे आम झिंगुरी सिंह, दातादीन, पटेश्वरी और नोखेराम के काले-कारनामों, बेईमानी और शोषण का पर्दाफाश करता है। उन्हें सबसे सामने नीच, क्रूर, बताकर उनका मान-मर्दन करता है।, फिर दातादीन को उसके तीस रूपये कर्ज का नियमानुसार एक रूपया सैंकड़ा ब्याज लेने के लिए चुनौती देता है और कहता है कि हम केवल सत्तर रूपये ब्याज सहित देंगे। एक पैसा भी अधिक नहीं। चाहो तो अदालत में दावा करो। इतना ही नही, वह पंचों को धमकी देता है कि तुम्हारे अत्याचारों की रिपोर्ट मैं रायसाहब से करूँगा वे शहर में वहीं रहते हैं, जहाँ मैं काम करता हूँ और सचमुच में इस धमकी का पंचों पर प्रभाव भी पड़ा था।

उसके संघर्षी व्यक्तित्व के दर्शन मिल में हड़ताल के समय भी होते हैं। वह अकेला मजदूर-आन्दोलन का नेत त्व करते हुए भीड़ में घायल हो जाता है फिर भी निराश नहीं होता और उत्साह से मजदूरों को संगठित करने में जुट जाता है।

(3) **व्यक्तित्व में अन्तर्विरोधः-**

गोबर नवयुवक है, नये युग की आकांक्षाओं का प्रतीक है। किन्तु उसमें संक्रमणकालीन महाजनी संस्कृति के संस्कार भी किसी कोने में छिपे हैं। वह विद्रोही होकर भी अपने माता-पिता के लिए सहायक नहीं हो सकता। वह अपने पिता से भिन्न है फिर भी वातावरण की विषमता का शिकार है, जो विषमता होरी को असफल बनाती है। गोबर एक ओर दोषपूर्ण आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था का विरोध करता है, किन्तु उसके विरूद्ध मोर्चा नहीं ले पाता। वह स्वयं व्यवस्था के जाल में फँस जाता है। वह अन्याय का विरोधी है किन्तु अकेला ही रहता है। परिस्थितियाँ उसे अकेला ही बनाये रखती हैं। शहर जाकर वह मजदूरों के साथ संघर्ष पूर्ण जीवन भी बिताता है और स्वयं महाजनी

संस्कृति के व्यवहार को दोहराता है। वह स्वयं सूद पर दूसरों को रूपया देता है और उसी प्रकार धनवान बनने के सपने देखता है, जैसे गांव में दातादीन, पटेश्वरी, झिंगुरीसिंह या शहर में पूँजीपति आदि धन के बल पर समाज में आतंक और प्रतिष्ठा प्राप्त किये बैठे हैं।

गोबर के चरित्र में परम्पराओं के विरूद्ध विद्रोह है। वह झुनिया को 'विधवा' के रूप में भली प्रकार जान चुका है। उससे युवकोचित भावुकता में प्रेम-सम्बन्ध बढ़ा लेता है। झुनिया को पूरी तरह अपनाने का आश्वासन देता है। जब झुनिया गर्भवती हो जाती है तो वह उसे लेकर अपने घर आता है और माता-पिता के भय से उसे घर के द्वार पर छोड़कर भाग जाता है। उसका क्रांतिकारी स्वरूप यहाँ अद श्य हो जाता है। वह गैर जिम्मेदार बनकर अपनी प्रेमिका-पत्नी को कायर बनकर छोड़ जाता है। इसी प्रकार उसके व्यक्तित्व का छिछोरापन ही माँ-बाप को कठिन परिस्थितियों में छोड़ता है। बाद में वह फिर गांव में आता है और संघर्ष करने में आप को असमर्थ पाकर अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर शहर चला जाता है। यहाँ उसका चरित्र अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। बूढ़े माँ-बाप को कष्टों में छोड़कर पत्नी-पुत्र के साथ सुख से रहने के लिए उसका चला जाना अनुचित और उसके विरोधी स्वभाव के प्रतिकूल है। इसी प्रकार झुनिया से शहर में लड़ाई-झगड़ा करना उसे पीड़ित करना भी उसकी स्वार्थी प्रव ति को प्रकट करता है।

**(4) व्यवहार कुशल :-**

गोबर के चरित्र में बढ़ती उम्र और जिम्मेवारियों के साथ व्यवहार में कुशलता का बोध बढ़ता जाता है। जब वह शहर के मार्ग में कोदई और उसकी पत्नी से मिलता है तो कोदई द्वारा उसकी स्त्री पर किए जाने वाले अत्याचार का विरोध करता है। किन्तु बाद में कोदई उसे अपने घर ले जाता है, जहाँ गोबर अपने सद्व्यवहार और शील से कोदई के माता-पिता का दिल जीत लेता है। इसी प्रकार लखनऊ में वह मिर्जा खुर्शेद को भी अपने कुशल व्यवहार से प्रसन्न कर लेता है और उसके यहाँ नौकरी तथा रहने के लिए मुफ्त मकान प्राप्त करता है। यह उसकी व्यवहार कुशलता ही है कि जब वह लखनऊ से घर प्रस्थान करता है तब मुहल्ले के सभी लोग उसे पहुँचाने आते है तथा तांगा वाला उसे बिना किराया लिये स्टेशन छोड़कर जाता है। इसी प्रकार वह अपनी व्यवहार कुशलता से ही झुनिया के पिता भोला और उसके परिवार के क्रोध को शान्त करके अपनत्व स्थापित करने में सफल नही होता, अपने बैल भी वापस लेने आता है। इसी प्रकार जब वह दुबारा रूपा के विवाह में गांव जाता है तो अपने व्यवहार से सारे गांव को प्रभावित करता है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने लिख है- ''गोबर ने अपने शील, स्नेह और व्यवहार से सारे गांव को मुग्ध कर लिया है। ऐसा कोई घर न था, जहाँ वह अपने मीठे व्यवहार की याद न छोड़ गया हो। भोला तो उसके पैरों पर गिर पड़ा और उसकी स्त्री ने उसको पान खिलाए।''

**(5) कर्त्तव्य परायण व्यक्ति :-**

गोबर यद्यपि यौवन के जोश में होश खोया-सा दिखाई देता है जो झुनिया के श्र ंगारिकत संकेतों के वशीभूत हो जाता है और शहर भाग जाता है। फिर भी वह अपने परिवार के प्रति दायित्व निभाता चाहता है। शहर में नौकरी करके भी वह जिम्मेदार पति के रूप में कमाई करता है। पैसा कमाकर घर लाता हो तो अनेक कर्जदारों का कर्जा चुकता हो उनके वर्ग शत्रुओं से उलझता है। दुबारा जब वह रूपा के विवाह में आता है तो झुनिया और पुत्र को गांव में ही छोड़ जाता है ताकि व द्ध माता-पिता की सार-सम्भाल की जा सके और शहर में रहकर कुछ अधिक पैसा बचाया जा सके। यह उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा की अंग है।

इस प्रकार गोबर का चरित्र दुर्बलताओं और सबलताओं से निर्मित है फिर भी उसका चरित्र उभरते हुए नई पीढ़ी के नौजवान का प्रतीक है। अन्याय और अत्याचार जिसे बर्दाश्त नही, दोषपूर्ण सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था जिसे सहन नहीं, जो प्रखर स्वरों में इनका विरोध करता है, शोषक वर्ग की कलई खोलता है। गोबर के चरित्र में निहित मजदूर क्रांति के तत्व यदि किसान को प्राप्त हो तो वह अपने भाग्य का स्वयं फैसला कर सकता है। गोबर के व्यक्तित्व में किसान की सहनशीलता, भाग्यवाद, कर्मवाद आदि तत्व नही है तो वह संगठन करना चाहता है, शोषण के अड्डों को ध्वस्त करना चाहता है यथा-स्थिति वादियों से लोहा लेना चाहता है, अपने वर्ग के लिए मर मिटना

चाहता है। गोबर अनेक निजी दुर्बलताओं से युक्त होकर भी जीवन की अक्षय चिंगारी से प्रदीप्त हो वह नई पीढ़ी के युवक का प्रतिनिधित्व करता है।

**प्र०19. ''गोदान में मि. मेहता प्रेमचन्द के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।'' इस कथन की समीक्षा करते हुए मेहता के चरित्र का विश्लेषण कीजिए।**

उ० सामान्यतः उपन्यासकार अपने विचारों को अपनी ओर से कहने का अधिकार रखता है किन्तु वह स्वाभाविकता लाने के लिए उपन्यास के किसी पात्र को अपना प्रतिनिधि बना देता है और विभिन्न समस्याओं पर अपने द ष्टिकोण को प्रकट कर देता है। किसी भी उपन्यास में ऐसा पात्र बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। गोदान उपन्यास में भी विद्वानों का विचार है कि मि. मेहता प्रेमचन्द के ही विचारों को व्यक्त करते हैं। मि. मेहता बौद्धिक और आदर्शवादी चरित्र हैं। इस उपन्यास में होरी और मेहता दो पुरूष पात्र अत्यन्त प्रभावित करते हैं। होरी प्रेमचन्द की लेखनी से निकला यथार्थ चरित्र है और मेहता उनकी कल्पना का आदर्श बुद्धि-जीवी है, जिसके चिन्तन, मनन और आचार निष्ठा पर भारतीयता की छाप है। उसके चरित्र की रूपरेखा इस प्रकार है -

**(1) व्यक्तित्व में आकर्षण**

गोदान में मि. मेहता युनिवर्सिटी में दर्शन के प्रोफेसर के रूप में चित्रित किये गये है। मि. मेहता के चरित्र का स जन करने में प्रेमचन्द की पर्याप्त सूझ-बूझ से काम लेना पड़ा है। एक दूर द ष्टि पूर्ण विचारों की तूलिका से उसके चरित्र की सूक्ष्मतम रेखाँए उभरी हैं। मेहता उच्चतम शिक्षा के मण्डित बुद्धिजीवी हैं। उनकी वेशभूषा और शारीरिक सौष्ठव ही भारतीयता का परिचायक है। प्रेमचन्द लिखते हैं-''गोरा-चिट्टा रंग, स्वास्थ्य की लालिमा गालों पर चमकती हुई, नीची अचकन, चूड़ीदार पजामा, सुनहली ऐनक आदि से सज्जित सौम्यता के देवता-से मि.वी. मेहता लखनऊ युनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं। उनका गठन एवं अनाव त शरीर-सौष्ठव आकर्षक है, क्योंकि दर्शन के गहरे अध्ययन में भी उन्होंने अपने स्वास्थ्य की रक्षा की थी और मटके लेकर चलते हुए उनकी मांसल भुजाएँ, चौड़ी छाती और मछलीदार जाँघे किसी यूनानी प्रतिमा के सुगठित अंगों की भाँति उनके पुरूषार्थ को द्योतित कराने में समर्थ हैं।'' मेहता की गोदान के कथानक में स्थान केवल इसीलिए मिला है कि वे प्रेमचन्द के विचारों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करते रहें।

**(2) बुद्धिजीवी समाज समर्पित द ष्टिकोण :-**

मि. मेहता युनिवर्सिटी में दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर हैं। एक हजार रूपये वेतन पाने पर भी सादा जीवन यापन करना उनकी विशेषता है। वे हर बात का बौद्धिक विश्लेषण करते हैं। उनका चिन्तन केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं हैं। वे समाज के दुख-दर्द, नियम वर्ग की वास्तविक समस्याओं, उच्च वर्ग के कार्यो का बौद्धिक मूल्यांकन करते हैं और समाज के व्यापक हित में ही अपने चिन्तन की सार्थकता देखते हैं बुद्धिजीवी के रूप में विभिन्न संस्थाओं और गोष्ठियों में उन्हें व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया गया है। डा० मालती द्वारा संगठित वीमेन्स लीग में उन्हें महिलाओं की स्थिति और कर्त्तव्य पर व्याख्यान के लिए बुलाया जाता है। उनकी तर्क-शक्ति अद्‌भुत है, उनकी मनीषा स्पर्धनीय है और उनकी स्थापना अपने विरोधियों को भी प्रभावित करने में समर्थ है। विषय प्रतिपादन की विशिष्ठ शैली में उनकी बौद्धिकता झलकती है। व्यक्तिगत विचारों में मित्र मण्डली में भी उनकी मेधा अन्य लोगों से ऊँची और मौलिक दिखाई देती है। रायसाहब के यहाँ धनुष यज्ञ के अवसर पर अन्य मित्रों से बात करते हुए वे जमींदारी प्रथा किसान मजदूर की दशा पर विचार व्यक्त करते हैं। डा० मालती के साथ अकेले में भी वे अपने विचारों को व्यक्त करके अपनी बौद्धिकता का परिचय देते है।

वे सच्चे अर्थो में बुद्धिजीवी है जो जवान से और कलम से बौद्धिक काम करते है। उनका लेखन कार्य उनकी बौद्धिक प्रतिभा का परिचायक हैं। रात को लिखते-लिखते देर तक सोते हैं और घड़ी रात रहे उठ जाते है। उन्होनें दो पुस्तकें लिखी थी जिनमें से एक को फ्रांस एकेडेमी ने शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक स्वीकार किया था। इसी से उनकी अध्ययनशीलता सिद्ध हो जाती हैं। मेहता कोई बुद्धिजीवी नहीं हैं। उनकी बौद्धिकता समाज को समर्पित हैं। वे ऐसे बुद्धिजीवी हैं जो निर्धनता की मार सहती हुई शोषित जनता के पक्ष में खड़े होकर अपनी आकट्य दलीलों

से शोषकों को भी प्रभावित करते हैं। वे समाज के सम्पन्न जमींदार-पूंजीपति वर्ग के बीच में खड़े होकर भी अपना स्पष्ट मत प्रकट करने का साहस बताते हैं। गोदान के मित्रों में मि० मेहता सर्वाधिक सुलझे हुए सौम्य व्यक्तित्व के धनी, दार्शनिक, बौद्धिक विवेचना से किसी समस्या के निदान तक पहुँचने वाले व्यक्ति हैं। वे मानव चरित्र की परख करने में अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में- ''वे दर्शन के गहरे अध्ययन में रत रहकर भी शारीरिक श्रम करने वाले बुद्धिजीवियों में से हैं।'' मेहता इस कथन को जीवन में व्यहवद्धत करते हैं।

**(3) स्पष्टवादी :-**

मेहता उन व्यक्तियों में से हैं जो कथनी और करनी में समानता में विश्वास रखते हैं। रायसाहब अमरपाल सिंह के यहाँ दावत में शामिल होकर भी वे उनकी हाँ में हाँ नही मिलाते और जमींदारों की शोषक प्रव ति की आलोचना करते हैं। रायसाहब को स्वयं अपनी स्थिति स्पष्ट करने को बाध्य होना पड़ता है। मेहता रायसाहब से कहते हैं - ''मैं चाहता हूँ कि हमारा जीवन हमारे सिद्धांतो के अनुकूल हो। आप कृषकों के शुभेच्छु हैं, उन्हें तरह-तरह की रियायतें देना चाहते हैं, जमींदार के अधिकार छीन लेना चाहते है, बल्कि उन्हें आप समाज का शाप कहते हैं, फिर भी आप जमींदार हैं, वैसे ही जमींदार जैसे हजारों और जमींदार'' ऐसी स्पष्ट कथनी की हिम्मत ऐसे स्थान पर कौन कर सकता है? ऐसे अन्य लोगों को भी वे अपनी कथनी और करनी में एकता लाने के लिए प्रेरित करते हैं और जो लोग सामने कुछ तथा पीछे कुछ है उन्हें फटकारता है। छिपाव में उनका विश्वास नहीं हैं। वे कहते हैं -''अगर मांस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ, बुरा समझते हो तो मत खाओ। यह मेरी समझ में आता है लेकिन अच्छा ने समझना और छुपकर खाना, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं इसे कायरता भी कहता हूँ और धूर्तता भी, जो वास्तव में एक है।''

अपनी स्पष्टवादिता के कारण ही वे मालती के प्रेम को भी उदासीनता में बदल देते हैं। वे अपने विचारो को स्पष्ट कहना पसन्द करते हैं। विशेषतः सामने वाले का बौद्धिक स्तर भी उन्नत हो तो अपने विचारो को बिना प्रतिक्रिया की परवाह किये वे व्यस्त कर देते हैं, प्रेम में विश्वासघात को वे अक्षम्य अपराध समझते हैं और मालती से कहते हैं कि यदि कोई मुझसे प्रेम करके विश्वासघात करें तो पहले मैं उसे मार डालूँगा फिर स्वयं मर जाउँगा। वे प्रेम को खूखांर शेर मानते हैं जो अपने शिकार पर अन्य का अधिकार नहीं सहन कर सकता। यह जानते हुए भी कि जिस मालती के प्रति उनके हृदय में अत्यन्त कोमल स्थान है, वह इस विचार से अवश्य पींडित होगी, वे अपनी बात निर्भीकता और स्पष्टता के साथ कह देते हैं।

**(4) परोपकारी और निर्लोभी :-**

मेहता स्वयं सादा जीवन और उच्च विचार के विश्वासी हैं। वे प्राध्यापक हैं जो अपने समय में विश्वविद्यालय में एक हजार रूपये मासिक वेतन पाते हैं। उनके वेतन का बहुत बड़ा भाग परोपकार में खर्च होता था। स्वयं एक ही अचकन में जाड़ा काट देते थे। मकान किराया भी समय पर न चुका पाते थे। एक बार तो मकान किराया इतना चढ़ गया कि मकान मालिक कुर्की ले आया। मालती ने वह मामला रफा-दफा किया और मेहता को अपने यहाँ रखना स्वीकार कर लिया। मेहता की आय को जब मालती ने नियंत्रित करना चाहा तो उसे ज्ञात हुआ कि उनके वेतन में अनेक विद्यार्थियों को वे वजीफा देते थे, गरीब छात्रों को आर्थिक सहायता देते थे। कई विधवाएँ प्रति माह उनको व ति पाती थी, अनेक सामाजिक संस्थाएँ चन्दा प्राप्त करती रहती थी। इसी कारण उनका आय-व्यय असन्तुलित था। अन्यथा उनके वेतन में से उन पर स्वयं पर कुछ भी खर्च नहीं था। वे विलास की जिन्दगी नहीं जीते थे। परोपकार में ही अपनी आय का अधिक भाग व्यय कर देते थे। उनमें किसी प्रकार की लोभ की व ति नहीं थी। मेहता की द ष्टि में धन का कोई महत्व नहीं है। वे धन को जीवन-यापन का साधन मात्र मानते हैं। उनका विश्वास है कि धन के समान वितरण मात्र से सामाजिक विषमता का अन्त नहीं हो सकता। उनका तर्क है कि धन को आप किसी उपाय से बराबर-बराबर फैला नही सकते हैं किन्तु बुद्धि, चरित्र, रूप, शक्ति और प्रतिभा को फैलाना असंभव है। अनेक धन कुबेर रूप की चौखट पर नाक रगड़ते हैं, अनेक भिक्षुकों, साधु, संयासियों के सामने घुटने टेकते हैं। इसलिए उनकी द ष्टि में धन का कोई महत्व नहीं है।

**(5) भारतीय नारी के प्रशंसक :-**

मेहता उच्च शिक्षित हैं, वे विश्व सभ्यताओं का अध्ययन तथा चिन्तन मनन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पश्चिम की नारी अपनी आधुनिकता और स्वच्छन्दता में अपने स्थान से गिर गई है। अतः वे भारतीय नारी के आदर्शो को ही स्वीकार्य तथा व्यवहार्य मानते है। नारी सेवा, त्याग, समर्पण, अहिंसा, प्रेम का जीवन ग्रहण करके ही अपने आसपास के जीवन को सुखी बना सकती है। नारी के संबंध में उनके पूज्य तथा श्रद्धा-भाव है। वे अपने निजी विचारों को मिर्जा खुर्शेद के सामने प्रकट करते है, ''मैं आपसे किन शब्दों में कहूँ कि स्त्री मेरी नजरों में क्या है। संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ। मैं उससे यह आशा रखता हूँ कि मैं उसे भी मार डालू तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आये, अगर मैं उसकी आँखों के सामने किसी स्त्री से प्यार करूँ तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी को पाकर मैं उसके चरणों में गिर पडूँगा और उस पर अपने को अर्पण कर दूँगा।

इसी प्रकार वे वीमेन्स लीग के भाषण करते हुए अपने ऐसे ही विचारों को पुष्ट करते हुए कहते है, ''स्त्री पुरूष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना अंधेरे से प्रकाश। मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग, अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श है। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरूष धर्म और अध्यात्म और ऋषि के आश्रय को लेकर उस स्थान लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है पर सफल नही हो सका। मैं कहता हूँ कि उसका अध्यात्म और योग एक तरफ है और नारियों का त्याग एक तरफ।'' मेहता नारी में त्याग, क्षमा, प्रेम आदि गुणों की अपेक्षा करते है। यही भारतीय आदर्श नारी है। पाश्चात्य नारी की समानाधिकार की बातें उन्हें उचित प्रतीत नहीं होती। भारतीय जीवन पद्धति और आदर्शो को ग्रहण करके नारी ग हस्वामिनी बनती है। मेहता नारी के मात त्व पर श्रद्धानत है। अतः वे नारी के बाह्य सौन्दर्य, चंचलता और आकर्षण को कोई महत्व नहीं देते।

**(6) प्रेम और विवाह सम्बन्धी विचार :-**

मेहता अविवाहित है। उन्हें अपने आदर्शो के अनुकूल कोई स्त्री मिल नहीं पा रही है। जिसे वे अपना जीवन साथी बना सके। वे बाह्य रंग, चटक, मटक और विलास में विश्वास नहीं करते। मालती के संबंध में प्रारम्भ में यही धारणा है कि वह बाहरी आकर्षण उत्पन्न करने वाली है इसलिए वे उसके प्रेम-प्रस्ताव को अनदेखा कर देते हैं। जब मालती उपन्यास के अन्त में उसके आदर्शो के अनुकूल बनती है। गांव में जाकर वहाँ की स्त्रियों व बच्चों की सेवा कार्य करती है तभी मेहता उसके त्याग, बलिदान, सेवा समर्पण तथा भारतीय नारी के उच्चादर्शो को उसमें देख पाते है और उसे अपनी जीवन संगिनी बनाने का भी प्रस्ताव रखते हैं किन्तु मालती मेहता के भीतर प्रेमी के रूप में एक हिंसक पुरूष को देखती है और कहती है कि मैं पत्नी बनने की अपेक्षा मित्र बनकर रहना ही पसन्द करूँगी। मेहता ने भी कहा है - ''मैं किसी रमणी को प्रसन्न नहीं कर सकता, मुझसे कोई स्त्री स्वांग नही कर सकती। मैं उसके अन्तः स्थल तक पहुँच जाऊँगा ? फिर मुझे उससे अरूचि हो जाएगी। मेरे लिए रूप, रंग, हाव, भाव और नाजो अन्दाज का मूल्य इतना ही है जितना होना चाहिए। मैं वह भोजन चाहता हूँ जिससे आत्मा की त प्ति हो, उत्तेजक और शोषक पदार्थो की मुझे जरूरत नही।'' मेहता विवाह को अत्यन्त पवित्र मानते है, विवाह के पश्चात् तलाक निन्दनीय है। सेवा को वे दामपत्य जीवन का सर्वोच्च आनंद मानते है - ''सच्चा आनंद, सच्ची शान्ति केवल सेवाव्रत में है। वही अधिकार का स्त्रोत है, वही शक्ति का उद्गम है। सेवा ही वह सीमेंट है जो दम्पति को जीवन पर्यन्त स्नेह और सहचर्य में जोड़े रह सकता है।'' वे परिवार में सुख शांति के समर्थक है। उन्हें मालूम था कि मि. खन्ना मालती के कारण पत्नी की उपेक्षा करते है। वे मालती को खन्ना से विमुख कर देते है और पति-पत्नी को एक कर देतें है। मालती के चरित्र में जो परिवर्तन होता है, वह तितली से सेवाव्रती बन जाती है, इसका श्रेय भी मेहता को है।

**(7) मानवतावादी : शोषण विरोधी :-**

मेहता की विचारधारा मानवता से युक्त हैं। जब वे गांव में आते हैं और किसानों की दीन-हीन दयनीय दशा देखते हैं तो उनके हृदय में बड़ा आघात लगता है। वे उसके कारणों को खोज करते है और मानवीय स्तर पर इसका

निदान खोजते हैं - ''इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण हैं। काश ! ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते तो यो न ठुकराए जाते। देश में कुछ भी हो क्रांति ही क्यों न आ जाए, इन्हें कोई मतलब नही है।'' उनमें मानवीय सहृदयता और संवेदना है। वे शिकार के लिए जाते हैं तब चिड़िया को निकालने वाली उस वनवासी बाला की सदाशयता, सरलता और सेवा-भाव तथा अतिथ्य के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हो जाते हैं। वे उस मैली कुचैली गंदी स्त्री की झोंपडी में जाते हैं और अतिथ्य स्वीकार करते हैं। उनमें शुद्ध मानवीय सदाशयता है। मनुष्य मात्र से प्रेम करने की प्रव ति ही इस कार्य में झलकती है। मालती इस घटना को अन्यथा लेती है तब वे शपथपूर्वक किसी विकार का प्रतिवाद करके अपने शुद्ध मानव-मन का प्रमाण देते हैं।

वे बुद्धिजीवी हैं किन्तु मनुष्यता की हर स्तर पर रक्षा करना और मनुष्य का हित चिंतन करने में ही उनकी बौद्धिकता प्रमाणित होती हैं। वे जीवन और समाज की प्रगति करने के समर्थक है। उनकी मानवतावादी विचारधारा को डा० राम विलास शर्मा रेखांकित करते हैं - "रायसाहब और एक आलोचक है-प्रोफेसर मेहता। यह क्वांर, अध्यापक न मिस मालती जैसी लेडी डाक्टरों का बक्शता है, न रायसाहब जैसे रईसों को। वह उन बुद्धिजीवियों में से है जो जनता से प्रेम करते हैं। उसके शोषको से घ षा करते हैं, जिनकी सहानुभूति और घ णा ने अभी सक्रिय रूप नही लिया है।" वे रायसाहब के शोषण का कई स्थानों पर पर्दाफाश करते हैं। उनमें शोषित वर्ग के प्रति सच्ची सहानुभूति हैं। मजदूरों की हड़ताल के समय वे गंभीरतापूर्वक खन्ना के सामने ही मजदूरों का पक्ष लेते हैं - "आपके मजदूर बिलों में रहते हैं।" वे ऐसे बुद्धिजीवी है जो किसान और मजदूर के शोषण से दुखी है और उनमें एकता को सुद ढ़ करना चाहते हैं। डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं - "अपनी-अपनी लड़ाइयाँ अलग-अलग चलाने की वजह से दोनों में से (किसान-मजदूर) किसी की दशा भी नही सुधर पाती। उनके बीच की कड़ी मेहता है। वह मजदूरों के जीवन में भाग ले चुके हैं और गांव जाकर किसान का हाल भी देखते हैं। एक तरफ से वह जनता में नई एकता के सूत्रधार बनने की तैयारी भी कर रहे हैं।"

स्वयं प्रेमचन्द मेहता के चरित्र में निहित अन्याय और शोषण विरोधी प्रव ति का उद्घाटन मालती के द्वारा करते हैं- "संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अंधविश्वास का, कपट, धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त्त पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे तो सुनने वाले कहाँ से आएंगे और अन्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान बन्द नहीं कर सकते।"

मालती के इन शब्दों में प्रेमचन्द ने अपना संदेश ही दिया है। पढ़े-लिखे लोगों को अन्याय और अत्याचार से पीड़ित जनता के पक्ष में खड़ा होना चाहिये। सबके प्रयत्नों से ही अन्याय और शोषण समाप्त हो सकता है। मेहता अपने तीखे विश्लेषण से रायसाहब और खन्ना जैसे शोषकों की कलई खोलते हैं। मेहता के चिन्तन और सत्य मानवतावादी मार्ग पर मालती को पूरा विश्वास है। वह कहती है-"अपनी विद्या और बुद्धि को अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ।" वस्तुतः मेहता जैसे व्यक्ति ही किसान मजदूरों में चेतना का प्रसार कर सकते हैं और उन्हें शोषण के विरूद्ध खड़ा कर सकते हैं। प्रेमचन्द ने मेहता के माध्यम से बुद्धिजीवियों का आह्वान किया है।

**(8) विनोदी और प्रकृति प्रेमी :-**

मेहता के चरित्र में विनोदप्रियता के प्रति अत्याधिक लगाव दिखाई देता है। रायसाहब के यहाँ धनुष-यज्ञ के अवसर पर उनकी विनोद-प्रियता के दर्शन होते हैं। वे पठान का भेष बनाकर रायसाहब के मित्रों में आ धमकते हैं और मालती का अपहरण करके उसके साथ रोमांस की बातें करते हैं तथा अन्य उपस्थित लोगों को धमकाते हैं। उनकी बातों में, लहजे में, मस्ती भरा विनोद टपकता है। वे विनोद की धुन में इतने मग्न हैं कि मिर्जा खुर्शेद के साथ कबड्डी खेलते हैं और नहीं बोलते और अपनी खेल-भावना को बनाये रखकर जीतते है।

उनके चरित्र में मस्ती, चिन्तन और विश्लेषण तो है ही, मेहता प्रकृति के सौन्दर्य के भी उपासक हैं। उनके अपने घर के अहाते में एक अच्छा-खासा बगीचा है, जिसमें विभिन्न प्रकार के पौधे लगा रखे हैं। प्रकृति के सानिध्य में वे जीवन में नये उत्साह और उल्लास का अनुभव करते हैं। गांव की झाऊ की नाव पर नदी में सैर करते समय

मेहता मालती से कहते हैं-"प्रकृति से स्पर्श होते ही जैसे मुझ में नया जीवन-सा आ जाता है। नस-नस में स्फूर्ति छा जाती है। एक-एक पक्षी, एक-एक पशु जैसे मुझे आनन्द का निमंत्रण देता हुआ जान पड़ता है, मानों भूले हुए सुखों की याद दिला रहा हो। यह आनन्द मुझे और कहीं नही मिलता मालती, संगीत के रूलाने वाले स्वरों में भी नहीं, दर्शन की ऊँची उड़ानों में भी नही। जैसे आपने आपको पा जाता हूँ ,जैसे पक्षी अपने घोंसलो में आ जाएं।" इस कथन से उनके प्रकृति-प्रेम का उद्घोषक है।

गोदान में प्रेमचन्द ने मेहता का चरित्र चित्रण विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए स जित किया है। इस चिरत्र से वे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों में वर्ग-चेतना उत्पन्न करना चाहते है। मेहता प्रेमचन्द के विचारों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेमचन्द के विचारों को प्रकट करते हुए भी होरी को मिलाने से ही पूर्णता होती है। डा० रामविलास शर्मा का मत है-"गोदान के किसी एक पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता। लेकिन अगर मेहता को होरी के साथ जोड़ दिया जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत कुछ प्रेमचन्द से मिलता होगा। मेहता में यदि उन्होंने अपने विचार डाले हैं। तो होरी में बराबर परिश्रम करते रहने की द ढ़ शक्ति है। पर और बातों में होरी प्रेमचन्द से बिल्कुल भिन्न है।"

**प्र०20. "मालती बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी है।" इस कथन को ध्यान में रखते हुए मालती के चरित्र की समीक्षा कीजिए।**

उ० गोदान के नारी पात्रों में धनिया अपने स्वाभाविक ग्रामीण महिला की छवि से और मालती सुशिक्षिता आधुनिक नारी के व्यक्तित्व की छवि से सम्पन्न होकर पाठकों पर अपना विशेष प्रभाव छोड़ने में समर्थ होती है। मालती ऐसा चरित्र है जो प्रेमचन्द के गांधीवाद की छाया में महानता के संपर्क में आकर हृदय परिवर्तन और चित्रोत्थान का आदर्श प्रस्तुत करती है। उपन्यास के प्रारम्भ में जो मालती हमारे सामने आती है वह अन्त में पूरी तरह बदले हुए रूप में आती है। प्रारंभिक रूप में वह हमारी वित ष्णा और भारतीय आदर्शो के विरोध में आचरण करने के कारण कुछ-कुछ घ णा उपेक्षा का कारण बनती है तो मेहता के विचारों के संपर्क में आकर वह त्याग और सेवा के महान आदर्शो से ओत-प्रोत होकर  वह हमारी श्रद्धा का पात्र बनती है। इस प्रकार मालती प्रेमचन्द की लेखनी से निकला ऐसा पात्र बनती है। इस प्रकार मालती प्रेमचन्द की लेखनी से निकला ऐसा पात्र है जिसका गांधीवादी विचारध ारा में चरित्र-परिवर्तन होता है। भारत की आकांक्षाओं और आशाओं के योग्य शिक्षित स्त्रियों को दिशा-निर्देश देकर वह सामाजिक वैयक्तिक आदर्शो की स्थापना करने में सफल होती है।

**(1) मालती का व्यक्तित्व :-**

मालती का प्रथम परिचय इस उपन्यास में जब पाठको से होता है तो उसका व्यक्तित्व परिचय भी स्वच्छंद नारी के रूप में हमारे सामने आता है। प्रेमचन्द मालती का परिचय इन शब्दों में देते है-"उसकी मुख छवि पर हँसी फूट पड़ती है। इंग्लैण्ड से डाक्टरी पढ़कर भाई है और अब प्रेक्टिस कर रही है। ताल्लुकादारों के महलों में उसका बहुत प्रवेश है। वह नवयुग की साक्षात प्रतिमा है। गांव कोमल पर चंचलता कूट-2 कर भरी हुई झिझक या संकोच का नाम नही, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब, पुरूष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हावभाव मनोद्गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया है।" मालती का बाहरी व्यक्तित्व आधुनिक पाश्चात्य नारी के तत्वों से बना है। उसकी शिक्षा-दीक्षा इंग्लैण्ड इग्लैंड में हुई है अतः उसका बाह्य व्यक्तित्व पाश्चात्य प्रदर्शन प्रियता का परिचायक है। उसकी बाहरी रीती नीति भड़कीली पोशाक, आकर्षक बातचीत और बेझिझक पुरूषो से अमर्यादित बातचीत से ऐसा प्रतीत होता है किं वह नारी अपने चरित्र की दुर्बलता के कारण किसी भी पुरूष की अंकशायिनी बन जाती होगी।

**(2) तितली और मधुमक्खी की प्रतीकः-**

मालती का भीतरी और बाहरी व्यक्तित्व भिन्न है। उसके बाहरी रूप को देख कर उसके प्रति भ्रान्त धारण बना लेना अनुचित है। प्रेमचन्द इसलिए उसके व्यक्तित्व के दुर्बल सबल पक्षो पर अपनी ओर से प्रकाश डालकर मालती

में रूचि उत्पन्न करते है। वे चाहते है कि मालती के बाहरी आधुनिका पाश्चात्य नारी के रूप को देखकर पाठक कही उसे अगम्भीर द ष्टि से न देखने लगे इसलिए वे स्वयं उसको भीतरी स्वरूप, प्रेरणा और प्रभाव को व्यक्त करते हुए कहते है-"मालती बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी है। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नही केवल गुड़ खाकर कौन जीवित रह सकता है और जिये भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हँसती है तो केवल इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते है। उसका चहकना चमकना इसलिए नही है कि वह चहकने चमकने को ही जीवन समझती है या उसके निजत्व को अपनी आँखो में इतना बढ़ा लिया कि जो कुछ करे अपने ही करे। नही, वह इसलिए चहकती और विनोद करती है कि इसके उसके कर्त्तव्य का भार हलका हो जाता है।" इस कथन से उसका तितली जैसा बाहरी रूप सौन्दर्य भड़कीला दिखाई देता है। लगता है वह तितली की तरह अपने आकर्षक रंगो से पुष्पो के अनेक पुरूषो से संपर्क करके उनका शोषण करती है। उसकी बोलचाल, रीति-रिवाज, शारीरिक सौन्दर्य और उसका आकर्षण, रहन-सहन आदि सभी कुछ भड़कीला और विलास वासना से परिपूर्ण दिखाई देता है। उसके मित्रों में मेहता, तंखा, खन्ना, रायसाहब, मिर्जा खुर्शेद आदि सभी रंगीन मिजाज के है जो स्वच्छंद नारियों के संपर्क में आकर अपने आपको रंगीन मिजाज के है जो स्वच्छंद नारियों के संपर्क में आकर अपने आपको पाश्चात्य सभ्यता के निकट पाते है आर अपनी विलासी प्रव ति को मीठी मधुर बातों से त प्त करते है। खन्ना मालती पर आसक्त है किन्तु मालती उनसे ऊपरी मधुर व्यवहार बनाए रखती है। ह्रदय से कभी प्रेम नही करती। बाहर से तितली की तरह दिखाई देने वाली मालती में भीतरी तौर पर मधुमक्खी का गुण है। वह आन्तरिक गुणो का संचय करती है और मधुमक्खी की तरह संचित मधु को समाज के लिए समर्पित कर देती है। खन्ना की अपेक्षा वह मेहता में पुरूषोचित गुणो को देखती है और उसी ओर सच्चे ह्रदय से झुकती भी है। मालती भीतर से बाह्य व्यवहार पर इतना ध्यान नही देती जितना व्यक्ति के आंतरिक व्यवहार पर। वह सच्चे अर्थो में मधुमक्खी है जो केवल गुण रूपी मधु की ओर आकर्षित होती है और उन्हीं का संग्रह करती हैं। जब मेहता ने उस पर आरोप लगाया कि तुम्हारे कारण मिसेज खन्ना को कितनी सहनी पड़ी, तब इस सकेंत को समझ कर वह मेहता को आडें हाथों लेती है- "आपने यह अनुमान कैसे कर लिया कि मैं खन्ना और गोंविदी के बीच रहना चाहती हूं। आप ऐसा अनुमान करके मेरा अपमान कर रहे है। इसी के साथ वह खन्ना में अपनी वित ष्णा प्रकट करके कहती है-"मैं खन्ना को अपनी जूतियों की नोंक के बराबर भी नही समझती हूँ।" वह मेहता को भी नहीं बख्शती हैं और कहती हैं-"आपको मुझ पर आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं हैं। अगर आप भी उन्हीं मर्दो में है जो किसी स्त्री पुरूष को साथ देखकर उंगली उठाये बिना नही रह सकते तो शौक से उठाइये, मुझे इसकी परवाह नहीं।"

मालती तो मधु चयन करने वाली मधुमक्खी है जिसे श्रेष्ठता वीरता, उदारता, भारतीयता, रसमयता, प्रसन्नता आदि की रसप्रवणता मेहता में ही दिखाई देती है और वह उसी ओर अनुरक्त होती है। प्रेमचन्द ने उसके ऊपरी जीवन और आंतरिक चेतना को लक्ष्य कर लिखा है-"उसने कितने ही विद्वानों और माताओं को एक मुस्कान में, एक चितवन में, एक रसीले वाक्य में उल्लू बनाकर छोड़ दिया था। ऐसी बालू की दीवार पर वह जीवन का आधार नहीं रख सकती थी। आज उसे वह कठोर ठोस पत्थर-सी भूमि मिल गई थी जो फावड़ों से चिंगारी निकाल रही थी।" मालती में भारतीय नारी का परम्परागत आदर्श द ष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि वह पाश्चात्य नारी के समान प्रेमी से समग्र समर्पण नहीं चाहती अपितु वह उसे श्रेष्ठ मानकर उसके प्रति समर्पित होने में ही अपने व्यक्तित्व, अस्तित्व और जीवन की सार्थकता मानती है। इस द ष्टि से हम उसे बाहर से तितली कह सकते हैं जिसके भड़कीले रूप और चंचल सौन्दर्य र अनेक लोग आकर्षित होते हैं किन्तु वह मधुमक्खी की तरह के गुण ग्राहिका बनकर मधु का ही संचय करती है।

**(3) सच्ची प्रेमिका :-**

मालती तितली की तरह बनाव-ठनाव में मग्न रहकर केवल विलास में डूबने वाली ही नहीं है। वह मित्रों के बाहरी रसिक भाव को समझती है। उन्हें वह बेवकूफ बनाये रहती है। उसका आन्तरिक प्रेम प्राप्त करने में मेहता ही सफल होते हैं। वह अपने जीवन के लिए जिस ठोस और मजबूत आधार की आवश्यकता समझती है, वह आधार उसे मेहता में ही मिलता है। मेहता के प्रति उसके ह्रदय में सच्चा अनुराग है। महता उसे समझ नहीं पाते और उसके प्रेम को

अस्वीकार करते रहते हैं। मालती अपने सच्चे प्रेम को प्रकट करने के लिए मेहता से कहती है-"तुमने मुझे सदैव परीक्षा की आखों से देखा, कभी प्रेम की आँखों से नहीं। क्या तुम इतना भी नही जानते कि नारी परीक्षा नही चाहती, प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अवगुण, सुन्दर को असुन्दर बनाने वाली चीज है, प्रेम अवगुणों को गुण बनता है, असुन्दर को सुन्दर। मैंने तुमसे प्रेम किया, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि तुमने कोई बुराई भी है, मगर तुमने मेरी परीक्षा की और तुम मुझे अस्थिर, चचंल और न जाने क्या-क्या समझ कर मुझसे हमेशा दूर भागते रहे। नहीं, मैं जो कहना चाहती हूँ , मुझे कह लेने दो। मैं क्या अस्थिर और चंचल हूँ , इसलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता, अगर तुमने मेरे सामने उसी तरह आत्म समर्पण किया होता, जैसे मैंने तुम्हारे सामने किया है तो आज मुझ पर यह आक्षेप न करते।" मालती प्रेम को पवित्र, अहिंसक, सीधा-सादा और निश्छल समझती है और उसने इसी धारणा के साथ मेहता से आन्तरिक प्रणय-सम्बन्ध स्थापित किये थे। जब मेहता ने प्रेम के सम्बन्ध में अपने हिंसक और प्रतिशोधात्मक विचार प्रकट किये कि प्रेम सीधी-सादी गाय नहीं, खूंखार शेर है, तो मालती ने प्रेम का विवेचन इस प्रकार किया-"अगर प्रेम खूंखार शेर है तो मैं उससे दूर ही रहूँगी। मैंने तो उसको गाय ही समझ रखा था। मैं प्रेम को संदेह से ऊपर समझती हूँ। वह देह की वस्तु नही, आत्मा की वस्तु है, संदेह का वहाँ जरा भी स्थान नही और हिंसा तो संदेह का ही परिणाम है, वह संपूर्ण आत्म समर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक नही, उपासक बनकर ही वरदान पा सकते हो।"

इसी प्रकार मालती में प्रेम के प्रति उच्चतम समर्पण भाव प्रतिष्ठित है। मेहता ने परीक्षक बनकर तथा अपने प्रति हिंसात्मक प्रेम का प्रदर्शन करके उसके पवित्र, निश्छल, समर्पण युक्त प्रेम को आघात पहुँचाया है। "मेहता ने उसकी आशाओं को द्वार तक लाकर, प्रेम का वह आदर्श उसके सामने रखा है जिसमें प्रेम को आत्मा और समर्पण के क्षेत्र से गिराकर भौतिक धरातल तक पहुँचा दिया था, जहाँ संदेह ओर ईर्ष्या और भोग का राज है, तब उसकी परिश्रम बुद्धि आहत हो उठी।" तात्पर्य यह है कि मालती का प्रेम निष्ठा, विश्वास और समर्पण भाव से भरा है। वह प्रेम के लिए सर्वोच्य उत्सर्ग करने की साध रखती है।

**(4) कर्त्तव्य परायणा :-**

मालती एक विचारशील, कर्मठ, कर्त्तव्यशील महिला है, वह चंचल है, वाक्पटु है और पाश्चात्य वेश-भूषा में सज्जित आधुनिका है। ये सब विशेषताएं उसके चिकित्सा धर्म में सहायक है। मालती उन कर्त्तव्यों को निष्ठा से पूरा करती है जिनसे उसके उद्देश्यों की पूर्ति हो। उसमें चिन्तन और कर्म की एकता है। वह अपने परिवार के प्रति दायित्व को पूरा निभाती है। उनके घर में दो बहिने और बीमार पिता है, जिनके भरण-पोषण का संपूर्ण भार उसी पर है। बहिनो की पढ़ाई भी उसी की देख रेख में चलती है। वह अपने पारिवारिक बजट को संतुलित रखती है। आय और व्यय का दायित्व भी उसी पर आ गया है, तब वह एक कर्त्तव्यपरायण महिला की तरह यर्थाथवादी ग हिणी की तरह उनके बजट पर भी नियंत्रण करती है। भले ही मेहता को भी इस बात का दुख है कि उसके वेतन में से अब कई छात्रो और विधवाओं की व ति में कटौती कर दी गई है।

**(5) सेवा और वात्सल्यमयी महिला :-**

यह सही है कि वैयक्तिक सुख शान्ति तथा आमोद-प्रमोद का जीवन जीने वाली मालती के विचारों में परिवर्तन मेहता के उदात्त और समाजोन्मुखी दर्शन के प्रभाव से ही हुआ था, किन्तु एक बार जो उसने सेवा प्रेम, सहयोग और वात्सल्य के मार्ग पर कदम बढ़ाया तो आगे से आगे बढ़ती ही चली गई। उसने सेवा-भाव तथा वात्सल्य भाव के सामने मेहता का दर्शन बौना दिखाई देने लगा। वह उन महीपषी महिलाओं की पंक्ति में जा खड़ी हुई जो अपने जीवन में सेवा का स्वयं आदर्श बन जाती है। वह अविवाहित है, फिर भी मात त्व की उदात्तता से अभिभूत है। उसने बहिनो के प्रति पूर्ण वात्सल्य-भाव का निर्वाह करके मात त्व का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया था। इसी मात त्व में से जन सेवा का शिशु उत्पन्न होता है। सबको अपना समझना, सबकी सेवा करना, सेवा के अवसरों की तलाश करना, यही तो सेवा का आदर्श है, यही तो मात त्व का मार्ग है। वह विवाहित जीवन के नियन्त्रण और अनेक प्रकार की गार्हस्थिक मर्यादाओं से बंधकर सेवा के मार्ग से भटकना नहीं चाहती, इसलिए वह अपने प्रणय के अभीष्ट व्यक्ति

मेहता के विवाह प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है। वह पत्नी बनने की अपेक्षा मित्र बनकर रहना पसन्द करती है। वह जानती है कि दाम्पत्य के बंधन में बँधकर सेवा के कठिन व्रत को पालने में असमर्थ रहेगी। जब मेहता के सिर में दर्द था और मालती उनके पास बैठकर बातें कर रही थी। तब मेहता ने अपने आपको मालती में मिला देने का अपना निश्चय बताया। मालती अब तक मानव सेवा के लिए समर्पित होने का निश्चय कर चुकी थी। अतः वह मेहता से कहती है-"जिस दिन मन मोह में आसक्त हुआ और हम बंधन में पड़े, उस क्षण हमारा मानवता का क्षेत्र सिकुड़ जायेगा, नई-नई जिम्मेदारियाँ आ जायेंगी और हमारी सारी शक्ति उन्हीं को पूरा करने में लगने लगेंगी। तुम्हारे जैसे विचारवान प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बन्दी नहीं करना चाहती।" मालती के विचारों में स्वार्थो के लिए, निजी सुखों के लिए कोई स्थान नहीं है।

मेहता का सम्पर्क उसे सेवा और त्याग के मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। वह डाक्टर होने के नाते शहर में रहकर तो सेवा करती ही है, किन्तु उसकी द ष्टि भारत के अशिक्षित, रोगग्रस्त, अस्वास्थ्यकर वातावरण में पलने वाले ग्रामीण स्त्री-पुरूषों पर पड़ती है। वह समय मिलते ही गांवों में सेवा करने निकल पड़ती है। एक बार होरी के गांव में भी आती है, जहाँ बच्चों और महिलाओं का स्वास्थ्य परीक्षण करके उन्हें सादा-स्वच्छ जीवन का मर्म सिखाती है। वह ग्रामीण नारियों के सम्पर्क में आती है तब उसके विषय में प्रेमचन्द लिखते हैं-"उसके मन में सेवा की प्रेरणा और भी प्रबल होने लगती। उनके त्यागमय जीवन के सामने अपना विलासी जीवन उसे तुच्छ और बनावटी लगता। उसके रेशमी कपड़े जिन पर जरी का काम था और वह सुगन्ध से महकता शरीर और वह पाउडर से अलंकृत मुखमण्डल स्वयं को लज्जित करने लगा। उसकी कलाई पर बंधी सोने की घड़ी जैसे अपने अपलक नेत्रों से उसे घूर रही थी। उसके गले में चमकता हुआ जडाऊ नेकलेस मानो उसका गला घोंट रहा था। इन त्याग और श्रद्धा की देवियों के सामने वह अपनी ही द ष्टि में नीची लग रही थी।" यह आन्तरिक परिवर्तन ग्राम सेवा के प्रभाव-स्वरूप ही था। उसके सेवा और त्याग को देखकर मेहता के पूर्वाग्रह भी बदल जाते हैं। वे रायसाहब से कहते हैं-"मालती को आपने जाना नहीं और न जानने की परवाह की। मैंने भी यही समझा था लेकिन अब मालूम हुआ कि वह आग में पड़कर चमकने वाली सच्ची धातु है। वह उन वीरों में है जो अवसर पड़ने पर अपने जौहर दिखाते हैं, तलवार घुमाते नहीं चलते।

सेवा-भाव ने उसमें मा तत्व का भी अंकुरण कर दिया है। जब झुनिया का बच्चा उसके सज्जित ड्राइंग रूप में जाकर मचलता है, तो वह झुनिया को ही बच्चे सहित पास के कमरे में रहने के लिए स्वीकृति देती है। बच्चा हार पकड़ता है तो उतार कर उसे खेलने के लिए दे देती है। मंगल को जब चेचक निकल आती है, तब मालती रात-रात भर जाग कर गोद में लिये खिलाती है। वह वात्सल्य मालती को उनकी द ष्टि में न जाने कितना ऊँचा उठा देती है। मेहता मन में सोचते है-"मालती केवल रमणी नही है, माता है और ऐसी-वैसी माता नही, सच्चे अर्थो में देवी और माता और जीवन देने वाली, जो पराये बालक को भी समझ सकती है जैसे उसने मातापन का सदैव संचय किया हो और आज दोनों हाथों से उसे लूटा रही हो। उसके अंग-2 में मातापन फूट पड़ता था, मानो यही उसका यथार्थ रूप हो, यह हाव-भाव, यह शौक सिंगार उसके मातापन के आवरण मात्र हो, जिसमें उस विभूति की रक्षा होती रहे।"

**(6) द ढ़ संकल्पों से युक्त :-**

मालती बाहर से चंचल, आधुनिका, हाजिर जवाब और दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने वाली प्रतीत होती है। किन्तु उसमें सत्य के प्रति निष्ठा और चरित्र की द ढ़ता है। उसमें कर्मशक्ति और समाजोन्मुखी जीवन द ष्टि का विकास होता जाता है। प्रेमचन्द उसके चरित्र की रूपरेखा प्रस्तुत करने के साथ ही स्पष्ट कर चुके है कि उसका बाहरी व्यवहार उसके कर्त्तव्य भार को हल्का करन में सहायक था। उसके चाहने वाले अनेक थे किन्तु उनकी निष्ठा केवल मेहता में थी। खन्ना भी मालती पर जान देने वालों में से एक थे। एक दिन जब खन्ना ने दुहाई दी कि मैंने तुम्हारे ऊपर हजारों रूपये लूटा दिए, तब मालती ने अपने द ढ़ संकल्पो को दोहराया-"मैं रूपवती हूँ। तुम भी मेरे अनेक चाहने वालो में से एक हो। यह मेरी कृपा थी कि जहाँ मैं औरो के उपहार लौटा देती थी, तुम्हारी सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी और जरूरत पड़ने पर तुमसे रूपये भी मांग लेती थी। अगर तुमने

धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया तो मैं तुम्हें क्षमा करूँगी। यह पुरूष प्रकृति है, अपवाद नही, मगर यह समझ लो कि धन ने आजत किसी नारी के ह्रदय पर विजय नही पायी और न कभी पायेगा।" यह कथन मालती के उज्जवल चरित्र और द ढ़ संकल्पों को उजागर करता है।

(7) **प्रेम का उदारीकरण :-**

मालती और मेहता के विचार प्रेम के सम्बन्ध में परस्पर मेल नही खाते। मेहता प्रेम को खूंखार शेर समझते हैं और मालती सीधी गाय। मालती के ह्रदय में प्रेम का उदात्त स्वरूप प्रतिष्ठित है। टकराहट के बावजूद मालती मेहता के प्रति आकर्षित है। यह जानते हुए कि मेहता उससे दूर-2 रहते है वह अपने प्रेम को संकुचित नही होने देती है। प्रेम के कारण ही उसकी द ष्टि गंभीर है और आत्म-परकता से ऊपर उठती है। मालती का प्रेम व्यक्तिगत स्तरों को पार कर उदात्त जन-सेवा में बदलने लगता है। वह विवाह की लौकिक सीमाओं में प्रवेश करके न तो स्वयं छोटा होना चाहती है, न मेहता को ही छोटा होने देती है। वह मेहता के सामने स्वीकार करती है-"तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी तो शेष नहीं रह गया है। वह वरदान मेरे जीवन को सार्थक कर देने के लिए काफी है। मेरी पूर्णता है।" प्रेमचन्द ने मालती के चरित्र को सोद्देश्य और सूझ-बूझ के साथ अंकित किया है। प्रारम्भ में पाठक दूसरी ही धारणा बनाकर उसके चरित्र को लांछित समझता है, किन्तु अन्त में सेवा, त्याग, परोपकार, गरीबों के प्रति असीम अनुराग आदि गुण बरबस हमें उसकी और श्रद्धावमत कर देते है। उसकी प्रारम्भिक दुर्बलताएं परिस्थितिजन्य है, जिन पर वह शनैः-2 विजय प्राप्त करती जाती है। डा० मक्खन लाल शर्मा के शब्दों में-"यह विकास मालती की निजी सूझबूझ है और प्रतिभा से परिचालित न होकर क्रमशः बदली हुई स्थितियों के सम्पर्क में लाता है। उसके इरादों का दायरा पहले परिवार तक सीमित था। अपने व्यवसाय का वह केवल धनोपार्जन का साधन मानती है। जब उसकी द ष्टि व्यक्तियों और वस्तुओं के गहन सम्बन्ध सूत्रों को समझने लगती है तो उसकी सीमाएं विस्त त होने लगती है। वह पैसे की अपेक्षा व्यक्तियों को अधिक महत्व देती है और शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा उसकी द ष्टि, स्वभाव, आचरण, करूणा, दया, सहानुभूति, पद-सेवा एवं सार्वजनिक हितों के कार्यो पर अधिक टिकने लगती है।" इससे स्पष्ट है कि मालती का चरित्र निरन्तर ऊँचाई की ओर उठता गया है।

**प्र०21. "खन्ना का चरित्र 'गोदान' उपन्यास में एक पूंजीवादी शोषक का यथार्थ चरित्र है।" स्पष्ट कीजिए।**

उ०- 'गोदान' में रायसाहब मालती मेहता से सम्बद्ध जो नागर-कथा प्रेमचन्द जी ने प्रस्ततु की है। उसमें खन्ना की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनका पूरा नाम है वेद प्रकाश खन्ना किन्तु उपन्यास में सभी पात्र उन्हें केवल खन्ना कह कर ही संबोधित करते हैं। उपन्यास सभी पात्र उन्हें केवल खन्ना कह कर ही संबोधित कर करते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में राय साहब के यहां धुनष यज्ञ लीला का प्रसंग आता है तो अन्य लोगों मेहता, मालती, तंखा, मिर्जा, एवं ओंकारनाथ के साथ हम उन्हें भी लीला में सम्मिलित होते देखते हैं। वे गाडी से आते हैं और कीमती सूट पहपे होते हैं, साथ ही में उनकी धर्म-पत्नी है गोंविदी एवं मालती भी है। उन्हें दखेकर सहज ही में पाठक अनुमान लगा लेता कि वह पूंजीवादी सभ्यता के एक प्रमुख अंग हैं और लेखक उनके परिचय में भी इसी तथ्य को उद्घाटित करता है कि वे एक धनी व्यक्ति है और उनकी दो चीनी मिलें तो हैं ही, साथ ही वे बैंक के एजेंट का काम करते हैं। उपन्यास में उन्हें एक शोषक के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। खन्ना के चरित्र की विशेषताओं को इन रूपों में देखा जा सकता है।

1. **पूंजीवादी मनोव तिः-** खन्ना का संपूर्ण ढांचा ही एक पूंजीवादी मनोव ति वाले व्यक्ति का ढांचा है। वास्तव में यदि देखा जाए तो वे पूंजीवादी के प्रतिनिधि के रूप में ही उपन्यास में उभरते हैं। वे बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर बनकर उसकी पूंजी के बल पर उद्योग धन्धों पर अपना एकाधिकर कर लेने की चेष्टा करते हैं। उपन्यास के प्रारंभ में ही वे लीला देखने की अपेक्षा रायसाहब से बैंक में धन लगाने एवं उनकी नयी प्रतिभा निर्माणाधीन चीनी मिल में शेयर खरीदने की वार्ता में रत दिखाई देते हैं। वे इतने छल-प्रपंच करते हैं। वाग्जाल रचते हैं कि किसी प्रकार रायसाहब धन लगाने को तैयार हो जाए। लखनऊ में उनकी जिस चीनी मिल में गोबर काम करता है उसको लेकर मजदूरों और मालिकों में बिगाड़ हो जाता है। खन्ना चूंकि शोषक व्यक्ति है इसलिए उनका मत है कि चीनी बाजार में मंदी

छायी हूई है इसलिए घाटे से बचने के लिए मजदूरों की मजदूरी कम कर दी जाय। मिल के डाइरेक्टर होने के नाते वे इस कटौती की घोषणा भी कर देते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि मजदूर हड़ताल पर चले जाते हैं, किन्तु चूंकि खन्ना को मजदूरों से कोई हमदर्दी नहीं है इसलिए वह मजदूरों की नयी भर्ती कर लेते हैं। फलस्वरूप विकट संघर्ष होता है और अन्ततः उग्त हड़ताली एकत्र मजदूर मिल में आग लगा देते हैं। सदैव अधिक से अधिक रूपये एकत्र करने वाला खन्ना इस दुर्घटना से विक्षिप्त हो उठते हैं। कुल मिलाकर खन्ना के चरित्र में पूंजीवादी व्यवस्था के पूंजीपतियों के समस्त्त दुर्गुण हैं। परन्तु मिल में आग लगने की घटना और उनके प्रायश्चित करने से उनके चरित्र में अन्ततः परिवर्तन दिखा दिया गया है।

2. **अत प्त प्रेमी और विलासीः-** खन्ना का संपूर्ण चरित्र देखने से स्पष्ट हो जाता है कि उनका चरित्र अत प्त प्रेमी की करूण कहानी है। इसका मुख्य कारण यह है कि वे अपनी पत्नी गोविन्दी के प्रेम से त प्त नहीं है। गोविन्दी जैसी सुन्दर एवं सती साध्वी पत्नी पाकर भी खन्ना का अत प्त रहना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि वे अत्यन्त विलासी प्रकृति के हैं। यद्यपि वे स्वयं भी गोविन्दी को देवी मानते हैं और गोविन्दी की अगाध पतिपरायणता एव एकनिष्ठ प्रेम के प्रति विशवस्त्त भी है तथापि अपनी विलासी प्रव ति के कारण वे गोविन्दी के प्रेम से सन्तुष्ट नहीं हैं इसलिए निरन्तर उनकी उपेक्षा करते हैं। उनकी अत प्त और विलासी भावना ही उन्हें डा. मालती की ओर प्रेरित-आकृष्ट करते हैं। वे मालती की रूप-माधुरी पर अत्यधिक आकृष्ट है। प्रेमचन्द जी उनकी इस विलास व ति के विषय में लिखते हैं - खन्ना मिस मालती के उपासकों में से थे। जहां मिस मालती जाये, वहां खन्ना का पहुंचना लाजिमा था। उनके आस-पास भंवरे की तरह मंडराया करते रहते थे। हर समय उनकी यही इच्छा रहती थी कि मिस मालती से अधिक से अधिक वही बोले। उनकी अधिक निगाह उन्ही पर रहे। मालती के प्रति उनका यह आकर्षण केवल वासनापरक है। वे उसे एक रूप की गुडिया मानते हैं उससे केवल शारीरिक वासनात्मक संबंध की अपेक्षा करते हैं। आत्मिक रूप में मालती के लिए उनके मन में कहीं कोई स्थान नहीं है। वे केवल भ्रमर बनकर उसके सौन्दर्य एवं यौवन के रस का उपभोग करना चाहते हैं। वे मालती के व्यक्तित्व का कभी सत्कार नहीं करते क्योंकि वे उसे अपने भोग की वस्तु बनाने के लिए ही सदैव प्रयत्नशील रहते हैं न कि उसे अपनी जीवन संगिनी बनाने के लिए। इसीलिए वे मालती पर हजारों रूपये लुटा देते हैं किन्तु जब उनके हाथ कुछ नहीं लगता तो उन्हें ज्ञात होता है कि मालती उन्हें उल्लू बनाती रही है तो वे अत्यधिक बौखला उठते हैं। वे मालती के सामने खीझकर कहते हैं- 'मैंने तुम्हारे पीछे हजारों रूपये लुटा दिये'। खन्ना के चरित्र की इस विशेषता पर तब मालती अत्यन्त मार्मिक व्यंग्य करती हुई कहती है- ''मैं रूपवती हूं और तुम भी मेरे अनेक चाहने वालो में से हो। यह मेरी कृपा थी कि जहां मैं औरों के उपहार लोटा देती थी, तुम्हारी सामान्य से सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी। जरूरत पड़ने पर तुमसे रूपये भी मांग लेती थी। अगर तुमन धमोन्माद इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया तो मैं तम्हें क्षमा करूंगी। यह पुरूष प्रकृति है, अपवाद नहीं, मगर यह समझ लो कि धन से आज तक किसी ने नारी हृदय पर विजय नहीं पायी और न कभी पायेगा'। मालती के इस कथन से भी खन्ना के अत प्त प्रेम एवं विलासिता का ही परिचय मिलता है।

3. **कृपण एवं कायरः-** खन्ना चूंकि एक पूंजीपति है इसलिए स्वभावतः उनके चरित्र में कृष्णता और कायरता का भी आधिक्य है। वे किसी भी भले कार्य के लिए पैसा खर्च नहीं कर सकते। मेहता उनसे व्यायामशाला बनवाने हेतु जब चन्दा मांगने जाते हैं तो वे साफ मुकर जाते हैं किन्तु विलास के नाम पर मालती के पीछे हजारों रूपये लुटा देते हैं इसी प्रकार आपत्ति के समय वीरता का भी उनमें अभाव है। उनकी कायरता का सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि जब रायसाहब के यहां धुनष-यज्ञ की लीला के समय रायसाहब और उनकी मित्र-मंडली गप-शप कर रही थी और तभी मेहता पठान का वेश धारण करके वहां पर पहुंचते हैं और सब की और बन्दूक तान देते हैं तो खन्ना भय से कांप उठते हैं और कातर स्वर से कहते हैं- 'किसी प्रकार कुछ रूपये देकर ही इस बला को टालिये' परन्तु वहां भी इनकी कृष्णता कम नहीं होती, वे उस प्रस्ताव का रूपया भी मालती से दिलाने की बात सोचते हैं।

4. **अध्यवसायी व्यक्तिः -** खन्ना यद्यपि एक चरित्रहीन और विलासप्रिय व्यक्ति है किन्तु इसके साथ ही एक सफल पूंजीपति के भी सारे लक्षण उनके चरित्र में हैं। वे एक अध्यवसायी व्यक्ति हैं। अपने अध्यवसाय के बल पर ही

वे एक साधारण क्लर्क से उन्नति करके बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद तक पहुंचते हैं और फिर मिल-मालिक बन बैठते हैं। वे मिल के शेयर बेचने के लिए कितने प्रयत्नशील रहते हैं, यह सभी अच्छी तरह जानते हैं। रायसाहब को भी अनेक बार अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए पटा लेते हैं। उनके बातचीत के ढंग एवं कार्यप्रणाली से भी उनके अध्यवसायी होने के संकेत मिलते रहते हैं। लखनऊ के सभी लोग उन्हें इसी कारण जानते भी हैं।

5. **अवसरवादी व्यक्तिः-** खन्ना पूंजीवाद के एक प्रमुख अंग अवसरवाद के भी प्रतिनिधि हैं। वह एक अवसरवादी नेता हैं और जनता पर अपने नेत त्व का प्रभाव जमाना चाहते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होनें राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम (कौमी आन्दोलन) में भी बड़ा जोश दिखलाया। वे जिसे के प्रमुख नेता रहे थे और अपने जीवन में दो बार जेल-यात्रा कर चुके थे। इतना होने पर भी जनता उनकी अवसरवादिता को भली-भांति समझती है। जब उनकी मिल में हड़ताल होती है, उसका कारण भी मूलतः उनकी अवसरवादिता ही है। बाजार में मन्दी होने के कारण जब चीनी सस्ती पड़ जाती है तो वे चीनी के इस घाटे की पूर्ति हेतु मजदूरों का वेतन कम कर देते हैं। वेतन की कटोती प्रश्न पर मिल मजदूरों की हड़ताल को भी वे इसीलिए अनुचित ठहराते हैं। इस प्रसंग में मेहता उनकी पोल इन शब्दों में खोलते हैं - 'आपके मजदूर दिलों में रहते हैं'- गन्दें बदबुदार दिलों में, जहां आप एक मिनट भी रह जाएं तो आपको कै हो जाय। कपड़े जो वे पहनते हैं उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगें। मेहता के इस कथन में न केवल खन्ना की, वरन् समस्त पूंजीवादी वर्ग की कलई खुल जाती है।

6 **धूर्त स्वभावः-** खन्ना के चरित्र में धूर्तता भी परिलक्षित होती है। वे बैंक के मैनेजर डाइरेक्टर बनकर उसकी पूंजी के बल पर अपनी धूर्धता से बैंक अनेक उद्योग खोलने में सफल होत हैं। अपने आर्थिक स्वार्थ की सिद्धि हेतु वे जिससे भी मिलते हैं उसको ठगने का प्रयास करते हैं। शिकार के प्रसेंग में उनकी धूर्तता स्पष्ट हो जाती है। वे राय साहब के दल में केवल इसीलिए सम्मिलित होता हैं ताकि उन्हें अपनी चिकनी चुपड़ी बातों से उल्लू बनाकर उनके हाथ अपनी नयी खुलने वाली चीनी मिल के कुछ शेयर बेच सकें। वे मार्ग भर शिकार की ओर ध्यान देने की अपेक्षा इसी चर्चा पर बातें करते रहते हैं।

7. **अप्रिय व्यक्तित्वः-** वे जिन बुरी भावनाओं से ग्रस्त हैं उनके कारण किसी भी व्यक्ति के वे प्रिय पात्र नहीं बन पाते। प्रत्येक नागर व्यक्ति उनसे सम्बन्ध रखता है किन्तु उनमें से प्रत्येक की धारणा उनके प्रति बुरी है। रायसाहब, मालती, मिर्जा खुशेंद ही नहीं, स्वयं उनकी अपनी धर्मपत्नी गोविन्दी तक उनके व्यक्तित्व में अनेक बुराइयां बताती है। समाज में उनका प्रभाव केवल धन से है अन्यथा उन्हें कोई भी पसन्द नहीं करता। वे दिखाने के लिए यद्यपि खद्दर के कपड़े पहनते हैं किन्तु साथ ही मदिरा-पान भी करते हैं। अन्ततः खन्ना के चरित्र के सम्यक अनुशीलन के उपरांत यही कहना उचित होगाा कि वे एक पूंजीपति व्यक्ति हैं और जनता का शोषण करने में किसी से कम नहीं हैं। उनका व्यक्तित्व शोषक पूंजीपति व्यक्ति के रूप में ही अधिक स्पष्टता से उभरा है जिसमें विलासान्धता की भी कभी नहीं है।

**प्र०22. 'गोदान' उपन्यास के आधार पर रायसाहब का चरित्र-चित्रण कीजिए।**

**अथवा**

**रायसाहब अमरपाल सिंह का चरित्र-चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिए कि वे रंगे सियार हैं।**

**अथवा**

**राय बहादुर साहब जमींदार वर्ग के सशक्त प्रतिनिधि हैं। 'गोदान' उपन्यास के आधार पर विवेचन किजिए।**

उ०. 'गोदान' उपन्यास में रायसाहब अमरपाल सिंह की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है वे एक प्रकार से ग्राम और नगर कथा के बीच एक सेतू है। उपन्यास में ग्राम-कथा के अन्तर्गत आने वाले पात्रों में वे इसलिए संबधित हैं क्योंकि वे उस गांव के जमींदार हैं और मालती-मेहता की नगर कथा तो उन्हीं के सान्निध्य में चलती है। प्रेमचन्द जी ने उपन्यास में उन्हें सैद्धान्तिक रूप से एक आदर्श जमींदार के रूप में चित्रित किया है। जो व्यावहारिक द ष्टि से

उदारता और दया के प्रतीक हैं किन्तु उनका व्यावहारिक रूप इससे नितांत भिन्न है। व्यावहार में वे शोषक जमींदार वर्ग ही सशक्त वर्ग प्रतिनिधि बनकर रह गये हैं जिनकी कथनी और करनी में पर्याप्त अन्तर है।

डा० रामविलास शर्मा 'गोदान' के आधार पर रायसाहब के चरित्र के सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं- राय साहब उन हिंसक पशुओं में से हैं, जो गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोलना सीख गये हैं। शिकार तो अपनी जान से हाथ धोता ही है लेकिन मीठी बोली सुनता हुआ, अपाहिज होकर गरजने ओर गुर्राने से सावधान होकर उस जंगली पशु से लड़ता हुआ नहीं। गोदान के रायसाहब को खल पात्र कौन कहेगा? सत्याग्रह संग्राम में बहुत यश कमा चुके हैं। कौंसिल की मेम्बरी तक छोड़ दी थी और जेल चले गये थे। इलाके के आसामी उन पर घोर श्रद्धा करने लगे थे। क्या इनके इलाके के किसानों का जीवन दूसरी जगह के किसानों से कुछ दूसरी तरह का था? नहीं स्वयं प्रेमचन्द जी ने भी एक स्थल पर उनके इस दो मुखे चरित्र पर टिप्पणी देते हुए लिखते हैं- यह नहीं कि उनके इलाके में आसामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो या डोड या गोबर की कडाई कुछ कम हो, मगर यह सरी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। सिंह का काम तो शिकार करना है, और वह गरजने और गुर्राने की बजाय मीठी बोली बोल सकता है, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता, शिकार की खोज में उसे जंगलों में भटकना न पड़ता।

1. **पाखण्डी व्यक्ति और रंगे सियारः-** राय साहब जब-जब सैद्वान्तिक चर्चा करते हैं तब-तब उनका व्यक्तित्व एक आदर्श के साथ उभरता दिखाई देता है किंतु व्यवहार में अपने किसानों के साथ वे जैसा बर्ताव करते हैं वह अत्यन्त निम्न स्तर का है। वास्तव में वे एक रंगे सियार ओर धूर्त जमींदार हैं। वे कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। होरी के समक्ष वे अपने वर्ग की यथार्थ स्तर पर पोल खोलकर अपने व्यक्तित्व को प्रभामाण्डित बनाते हैं, होरी उनकी इस महान विचारणा के आगे श्रद्धानवत होता दिखता है, किन्तु तभी एक नौकर जब यह आकर बताता है बेगार में काम करने वाले मजदूर बिना रोटी पावे काम करने को तैयार नहीं है तो यह सुनते ही रायसाहब का वास्तविक रूप होरी के सामने दिखाई देता है। वे बात बन्द कर क्रोध में कांपते हुए कहते हैं- चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूं। जब कभी खाने को नहीं दिया गया तो आज नयी बात क्यों? होरी के साथ ही पाठक भी रायसाहब के इस दुरंगे रूप को देखकर भौंचके रह जाते हैं।

2. **द्विधाग्रस्तताः-** रायसाहब एक ओर तो साम्यवाद और जमींदारी उन्मूलन का स्वागत करते हैं और दूसरी ओर सारी सुख सुविधाओं का भी खुलकर भोग करते हैं। उनकी इस द्विधाग्रस्तता का मूल कारण यह है कि वे विचारों में अग्रगामी है तथा क्रिया व्यवहार में पश्चगामी। वे बुराई को बुराई मानते हैं किन्तु अवसर आने पर जमींदारों द्वारा की जाने वालीहर बुराई में अपना योगदान भी देते हैं। उनमें उतनी साम्थर्य नहीं कि वे बुराई का खुलकर विरोध कर सके। उनका यह कथन उनके चरित्र की द्विधाग्रस्तता को स्वयं स्पष्ट कर देता है। जब तक सम्पति की बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा। हम मानवता का पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुंचना ही मानवता का, जीवन का अंतिम लक्ष्य है। वास्तव में उनके माध्यम से प्रेमचन्द जी ने तत्कालीन जमींदार वर्ग की द्विधाग्रस्ताा को ही वाणी दी है। रायसाहब ओंकारनाथ ने सम्मुख अपनी और अपने वर्ग की यथार्थ स्थिति प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-'मुझे किसानों के साथ जीना मरना है। मुझसे बढ़कर दूसरा उनका हितेच्छु नहीं हो सकता, लेकिन मेरी गुजर कैसे हो? अफसरों को दावत कहां से दूं, सरकारी चन्दे कहां से दूं? खानदान के सैकड़ों लोगों की जरूरतें कहां से पूरी करूं? मेरे घर का खर्च क्या है, यह शायद आप जानते हैं तो क्या मेरे घर में रूपये फलते हैं, दूंगा तो आसामियों के घर से'। और मेहता रायसाहब की इस द्विधाग्रस्तता वाली नीति पर व्यंग्य करते हुए सबसे कहते हैं-''मानता हूं, आपका आसामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है,मगर प्रश्न यह है कि मध्यम आंच में भोजन स्वादिष्ट पकता है। गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा अधिक सफल हो सकता है।

3. **व्यवहारिक चतुर्थः**- रायसाहब सामाजिक व्यवहार और मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता हैं। किसी व्यक्ति को अपनी लच्छेदार बातों से प्रभावित करके उससे अपना मतलब निकालने में उन्हें महारत प्राप्त है। वे जिस व्यक्ति से भी बातें करते हैं, उसके स्वभाव को समझ-बूझकर ही प्रसंग को उठाते-बदलते हैं। उनके धनुष यज्ञ की लीला का

व्यय पूरा करने के लिए धन की आवश्यकता है। किसानों से वे लगान तो जोर-जबरदस्ती भी ले सकते हैं, किन्तु इस कार्य के लिए वे उन पर दबाव नहीं डाल सकते। इसलिए वे होरी के सामने इस ढंग से बातें करते हैं, अपनी परिस्थिती का ऐसा बखान करते हैं कि होरी जैसा सीधा-सादा अनपढ़ आदमी उनकी चाल में फंस जाता है। उसे क्या पता कि यह चतुराई केवल किसानों से धन प्राप्त हेतु चली गयी है। रायसाहब यह जानते हैं कि होरी का अपने ग्रामीण भाईयों पर अच्छा प्रभाव है औरा किसान जितनी हमदर्दी एक दूसरे किसान की मानता है और सुनता है, उतनी हमदर्दी से जमींदार या उसके कारिन्दों की बात नहीं मानता। किसान को स्वजातिय समझते हैं। जबकि जमींदार का कहा मानना उनकी विवशता है। होरी को वे इसलिए अपने व्यवहार-चातुर्य से अपना काम सिद्ध करने के लिए हथकण्डे के रूपए में प्रयोग करते हैं। परिणामस्वरूप होरी उनके बुद्ध चातुर्य को वास्वविकता समझकर धनिया एवं गोबर के सम्मुख उनकी प्रशंसा करते हुए कहता है-''हम लोग समझते हैं, बड़े आदमी बहुत सुखी होंगे लेकिन सच पूछो तो वह हमसे भी ज्यादा दुःखी हैं। हमें अपने पेट की ही चिन्ता है, उन्हें हजारों चिन्ताएं घेरे रहती है।'' रायसाहब के प्रति होरी की यह सहानुभूति उनके मनोवैज्ञानिक चातुर्य का ही परिणाम है।

4. **जमींदार वर्ग के प्रतिनिधिः-** रायसाहब अपने युग के उन जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्होंन युग के अनुरूप अपने को शोषक रूप में परिवर्तित कर लिया। वह एक जमींदार के रूप में ढोंग का लबादा ओढ़कर जनता का निरन्तर शोषण करते रहते हैं। और ऐसी बातें बनाते हैं जैसे किसानों का उनसे बड़ा हितचिन्तक और कोई नहीं है। साथ ही, वे स्वयं ब्रिटिश सरकार द्वारा शोषित भी है। वे युग की परिस्थितियों को समझकर राष्ट्रीयता और देश भक्ति था आवरण भी अपने ऊपर डाल लेते हैं। वे अपने समस्त जीवन में ऐसे हथकण्डे अपनाते रहते हैं, जिनसे बिना श्रम किए ही उनका सारा रूईसी ठाट-बाट बना रहे। एक ओर तो वे किसानों के प्रति सहानुभूति जताते हैं और दूसरी ओर अवसर मिलते ही सामन्ती तरीकों से उनका शोषण करने में भी नहीं चूकते। वे एक ओर संपति के बंधन से मुक्ति चाहते हैं और दूसरी ओर ससुराल की जायदाद प्राप्त करने के लिए मुकदमा लड़ते हैं। इसी प्रकार जब उन्हें ज्ञात होता है कि झुनिया के प्रसंग को लेकर गांव के पंचो ने होरी पर झाड़ लगााकर रूपये हजम कर लिए हैं तो वे कारिन्दा नोखेराम को बुलाकर डांटते हैं और सारा धन स्वयं हड़प कर जाते हैं। एक ओर वे होरी से सहानुभूति दिखाते हैं और दूसरी ओर कारिन्दे के माध्यम से लगान मिलने पर होरी को बेदखल का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार रायसाहब सैद्धान्तिक रूप सें कितना भी प्रगतिशील बनने का ढोंग रचे वे वास्तव में पतनोन्युखी सामन्ती व्यवस्था और जमींदार वर्ग के ही प्रतिनिधि हैं उसी रूप में उपन्यास में चित्रित हुए हैं।

5. **वीर और साहसीः-** एक ऐसा भी प्रसंग आता है जिसमें हमें रायसाहब का एक और चारित्रिक पहलू देखने को मिलता है। जब रायसाहब धनुष-यज्ञ के समय कमरे में अपनी मित्र-मण्डली के साथ वार्तालाप में निमग्न थे तभी मेहता पठान के वेश में एकाएक उपस्थित होकर एक अच्छा खासा नाटक खड़ा कर देते हैं। वे कहते हैं कि रायसाहब के आदमियों ने उसके आदमियों को लूट लिया है।। अतः या तो रायसाहब एक हजार रूपये दे दे या वह सब को अपनी बन्दूक से मार डालेगा। उसको देखकर सब लोग भयत्रस्त हो जाते हैं किन्तु रायसाहब तब जिस साहस का परिचय देते हैं, उससे उनकी वीरता और अप्रतिम साहस का परिचय मिलता है।

इस प्रकार राय साहब वीर और साहसी व्यावहारिक द ष्टि से अत्यन्त चतुर और द्विधाग्रस्त जमींदार है, जो वैवाहिक द ष्टि से तो प्रगतिशील दिखायी देते हैं किन्तु व्यावहारिक द ष्टि से शोषक जमींदार वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं उनके चरित्र की यह द्विधा उन्हें रंगा सियार ही सिद्ध करती है।

**प्र०.23. गोदान की भाषाशैली पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।**

उ०. भाषा भावों की संवाहिका होती हैं। भाषा के माध्यम से लेखक अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। भाषा के माध्यम से लेखक अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। भाषा के क्षेत्र में प्रेमचन्द सम्राट माने जाते हैं। प्रेमचंद की भाषा जनसाधारण की भाषा है। प्रेमचन्द की भाषा सरल एवं पात्रानुकूल होने के कारण कथा साहित्य की आदर्श भाषा मानी जाती है। जब भी हम किसी लेखक की भाषा के विषय में चर्चा करते हैं तो हमें दो द ष्टियों से विचार करना होता है। पहली, लेखक की अपनी भाषा और दूसरी, उपन्यास के पात्रों की भाषा किसी भी सहित्यिक रचना का महत्व उसकी भाषा शैली की पुष्टि से भी आंका जाता है। प्रेमचंद जी जनता के कथाकार थे। साधारण जनता

के दुःख-दर्द, हर्ष-शोक, उत्पीड़न व अन्याय को उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। इसी कारण गोदान को साधारण ग्रामीणों की समस्याओं से युक्त कृषक जीवन को गीता कहा जाता है। उन्होंने जन साधारण की समस्याओं का चित्रण करने के लिए जनसाधारण की ही भाषा को चुना है। उनकी भाषा (गोदान की भाषा) की सामान्य विशेषताएं निम्न है।

1. **शब्द प्रयोग में उदारताः-** 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद का किसी प्रकार के शब्दों के प्रयोग का आग्रह नहीं है। वे सहजता और प्रचलन के साथ उसकी अर्थ-वहन क्षमता को पर्याप्त महत्व देते हैं। इस उपन्यास में ग्रामीन जीवन से सम्पादित कथानक एंव वातावरण है। अतः इसमें ठेठ ग्रामीण शब्दों का संयत और सुविचारित प्रयोग किया गया है। साथ ही तद्भव और तत्सम शब्दों की भी भरमार है। नागरिक पात्रों के लिए सुसंस्कृत तथा उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का संग्रह किया गया है। डॉ. कमल किशोर गोयनका के शब्दों में -''गोदान की भाषा का शब्द भण्डार संस्कृत, उर्दू व अंग्रेजी भाषाओं के तत्सम व तद्भव शब्दों लोकभाषा, उर्दू व अंग्रेजी भाषाओं के तत्सम व तद्भव शब्दों लोकभाषा आव ति मूलक तथा छन्दात्मक शब्दों के संयोग से निर्मित होता है।''

'गोदान' में सर्वांश, उज्जवल, आकर्षक, विश्राम, आक्षेय, अस्थिर, स्फूर्ति , अन्तस्तल आदि हजारों तत्सम शब्दों प्रयोग हुआ है। जिससे उपन्यास की भाषा में परिस्कार और संस्कारिता आ गई है। तद्भव शब्दों में परसाद, परामी, गिरस्त, दरसन्, लहास, सराय आदि ढेरों शब्द अपनी ग्रामीण गंध लुटाते इस उपन्यास में विद्यमान हैं। घामड़, महावट, अदरबान, बौड़ा, चंगेरी, दौगंड़ा, डांडी, खंखडा आदि देशी तथा ठेठ ग्रामीण शब्द इसमें आंचालिकता, का तत्व भर देते हैं। अंग्रेजी शब्दों में कौंसिल, ड्रामा, कालेज , ग्रेजुएट, मेकअप, युनिवर्सिटी, डाक्टर, प्रोफेसर, कोर्ट फीस आदि तथा उर्दू -फारसी में यथावसर, मयस्सर, साफगोई, हकीकत असवाब, मुर्दादिल, अहमक, दखल आदि अनेक शब्दों का सौंदर्य प्रयोग किया गया है। आव ति मूलक शब्दों का प्रयोग भी इस उपन्यास की भाषागत विशेषता है। यथा दवा-दारू, लू-लपट, ठीक-ठाक, डील-डौल, पत्ती-वती, भाव-ताव, रस-वस, धूम-धाम आदि। ग्रामीण पात्रों द्वारा गांवों की भाषा के सहयोगी शब्द तथा नागरिक पात्रों द्वारा सुसंस्क त सहयोगी शब्दों का प्रयोग प्रेमचंद ने किया है। जैसे डेढी-सवाई, नजर-नजराना, धूस-धास, जमीन-जैजात, चना-चा चबैना तथा मान-मर्यादा, घात प्रतिघात, सेवा-सत्कार आदि।

2. **लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग-** 'गोदान' की भाषा की जीवन्तता का एक मुख्य रहस्य यह है कि इसमें प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का सुंदर प्रयोग किया गया है। इस उपन्यास में वह पद-पद पर मुहावरों का प्रयोग मिलता है। विशेषतः ग्रामीण पात्रों के कथोपकथनों में अनायास ही प्रवाहमय ढंग से मुहारवरे की झंडी सी बंध जाती है। धनिया का यह कथन देखिए जिसमें मुहावरों का सौंदर्य हैं और भाषा की शक्तिमत्ता प्रकट है। ''वह भुग्गा'' वह बहत्तर घाट का पानी पीए हूए है। इसे उंगलियों पर नचा रही है और वह समझता है कि वह उस पर जान दे रही है। तुम समझा दो, नहीं कोई ऐसी वैसी बात हो गई तो कहीं के नहीं के नहीं रहोगे। ''गोदान' में विशेषतः ग्रामीण जीवन की कथा में मुहावरों ओर लोकोक्तियों की बहुतायत है। जैसे-'' कितनी ही कतर ब्योंत करो, मर्दसाठ पर पाठे होते हैं। सोना के मुंह में दही जमा हुआ; भोला की राल टपक पड़ी क्या खिचड़ी पक रही है। आदि।

3. **सुक्तियों के प्रयोग से गंभीरता-** गोदान की भाषा में प्रेमचंद ने जीवनानुभवों का निचोड़ सुक्तियों के रूप में प्रकट किया है। गहन अवसरों पर भाषा भी गहन और भाव-प्रधान हो गई है। प्रेमचन्द के विचार उपन्यास में सुक्ति बनकर व्यक्त हुए हैं।

1. ''विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही त ण था जिसे पकड़े हुए वह सागर पार कर रही थी।''
2. देवता बनकर तुम मनुष्य न रहोगे।
3. स्त्री प थ्वी की भांति धैर्यवान है।
4. पुरूष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरूष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा बन जाती है। आदि ऐसी अनेक सूक्ति गोदान उपन्यास में अंकित हैं।

4. **अलंकारयुक्त भाषा-प्रयोग**- गोदान की भाषा अपने अर्थ का स्पष्टीकरा करने के लिए अलंकारों से भी सजाई गई है। विशेषतः उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों ने अर्थ का मर्म खोलने में सहायता की है और भाषा का लालित्य तथा आकर्षण भी बढ़ाया है। जैसे - सेवा ही वह सीमेंट है जो दम्पति को, जीवन पर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है। '' गाय मन मारे उदास बैठी थी जैसे कोई वधु ससुराल आई हो।'' हरखू सूखी मिर्च की तरह चिपका हुआ। 'तुम्हारा जीवन यज्ञ था, जिसमें स्वार्थ के लिए बहुत थोड़ा स्थान था।''

5. **सीदी-सादी एवं यात्रानुकुल भाषाः-** 'गोदान' की भाषा सीधी सादी है। इसमें विशेष बनाव श्रं गार तथा अलंकारिता एवं जटिलता नहीं है। प्रेमचन्द जनता के साहित्यकार थे और सर्वसाधारण के विकास तथा समझ मे सहयोगी भाषा उनका लक्ष्य था। साधारण भाषा को प्रेमचंद ने साहित्यक रूप प्रदान करके अपने उपन्यासों में प्रयुक्त कियृ। 'गोदान' उसी भाषा का प्रतिनिधि रूप है। भाषा में प्रवाह गति और स्वच्छन्दता है। वह अपने सीधे-सादे अनधड़ रूप में पाठकों तक पहुंचती है। उन्हें विभिन्न दिशाओं में प्रभावित करती है। कहीं से भी कोई अंश उठा लिया जाए, उसमें सरलता, सादगी एवं प्रवाहमयता के दर्शन होंगे। इसी आधार पर पर उसे पहचाना जा सकेगा कि यह प्रेमचंद की भाषा है। भाषा सरल सीधी होने के साथ-साथ पात्रनुकुल भी है जैसे मि० मेहता खुर्शेद अली से कहते हैं-''आपने इस प्रश्न पर ठण्डे दिल से गौर नहीं किया। रोजी के लिए और भी बहुत जरिए हैं। ऐश की भूख रोटियों से नहीं जाती।

6. **चित्रात्मक एवं भाव-व्यंजक भाषाः**-'गोदान' की भाषा में भावों का सूक्ष्म और समर्थ बनाकर प्रस्तुत करने की शक्ति है। भाषा में कुछ ऐसे प्रयोग किए गए हैं कि उनमें भावों की सरस और स्पष्ट व्यंजना होती है। उदाहणार्थ-उसे पांच महीने का पेट है। 2. पांव भारी है। 3. मातादीन ने चमारिन बैठा ली। 4. रात भीग गई। 5. गांव में कांव-कांव मच गई। 6. छाती बिल्कुल सूख गई थी। आदि प्रयोगों में भाव-व्यंजकता है।। भाषा को काव्यात्मक बनाकर भी भावों की सरल व्यंजना करने में प्रेमचंद ने कौशलृका परिचय दिया है। अनेक स्थलों पर गोदान काव्यमय भाषा से परिपूर्ण है। जैसे ''स्त्री-पुरूष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा त्याग और जीवन के उच्चतम आदर्श है। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है।''

भाव व्यंजना के साथ-साथ ही उसमें चित्रात्मकता के भी दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द ने अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन अंकित किए हैं द श्य आंखों के सामने उभर आता है तथा घटनाओं तथा यात्रों की विश्वसनीयता में व द्धि होती है। जैसे समय पर वर्षा न होने पर गांवों की चिंता और भय तथा प्रक ति का भयंकर स्वरूप इस अंश में देखिए ''मगर जब चौमासा आ गया और वर्षा न हुई तो समस्या अत्यन्त जटिल हो गई। सावन का महीना आ गया था और बगूले उड़ रहे थे। कुओं का पानी भी सूख गया था ओर ऊख ताप से जली जा रही थी। नदी से थोड़ा-थोड़ा पानी मिलता था, मगर उसके पीछे आए दिन लाठियाँ निकलती थी। यहां तक कि नहीं ने भी जवाब दे दिया।

7. **सजीव शैली**:- प्रेमचंद की आकर्षण बढ़ाने में उसकी शैली का भी योगदान है। शैली की सजीवता के कारण ही भाषा में सम्प्रेषणीयता का गुण आया है। प्रेमचंद अपने भावों विचारों और अभिव्यक्ति को पाठकों तक पहुंचाने में समर्थ हुए हैं। भाषागत सहजता और स्वाभाविकता ने ही उसे सम्प्रेषणीयता बना दिया। है। प्रेमचंद का शैलीगत प्रयोग ही सहज है। उसे घड़ा नहीं गया। यथावसर व्यांग्यात्मकता, क्षिप्रता, मंदता, विचार प्रधानता, भावात्मकता, प्रवाहमयता प्रेमचंद की भाषा-शैली की विशेषता है।

गोदान की भाषा शैली में भावानुकूलता है। भाव-परिवर्तन के साथ उसकी भाषा शैली में परिवर्तन हो जाती है। क्रोध के आवेश में झुनिया को भला-बुरा कहता है किंतु धनिया द्वारा अपनत्व और करूना प्रस्तुत करने पर वह उसे ढाढस बंधाता है। यह उपन्यास भाषा की द ष्टि से न तो वर्णन प्रधान है, न कि लष्ट है और न बाजारू तथा निम्न स्तर की भाषा का ही इसमें आयोजन है। भाषा की सजीवता के कारण उपन्यास में गतिशीलता आई है। गोदान में यथावसर व्यंग्यप्रधान, आलंकारिक, काव्यमय हास्यव्यंग्य पूर्ण शैलियों का कुशलता पूर्वक निर्वाह किया गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भाषा शैली की द ष्टि से गोदान प्रेमचंद के उपन्यासों में विशेष स्थान रखता है। बल्कि यों भी कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य को गोदान की भाषा शैली ने एक नई दिशा

प्रदान की है। आगे अनेक कथाकारों ने 'गोदान' की भाषा शैली को आदर्श मानकर उसी का अनुकरण किया और हिन्दी को व्यापक तथा सजीव भाषा बनाने में योगदान दिया। जैनेन्द्र ने गोदान की भाषा के आधार पर प्रेमचंद को 'भाषा का जादूगर' कहा है और उनको भाषागत चुस्ती, मुहावरों तथा लोकोक्तियों से सम्पन्न सुगठित भाषा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

## प्रश्न

1. उपन्यास प्रेमचन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. 'गोदान' उपन्यास का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
3. 'गोदान' ग्राम जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य है। क्या आप इस कथन से सहमत है।
4. 'गोदान' में एक सच्ची त्रासदी की तस्वीर प्रवतरित हुई है। क्या आप इस कथन से सहमत है।
5. सिद्ध कीजिए की हिन्दी उपन्यास सहित्य में 'गोदान' मील का पत्थर है।
6. 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचन्द का गाँधीवाद के प्रति मोह भंग हो गया था। क्या आप इस कथन से सहमत है तर्क सहित उत्तर दीजिए।
7. 'गोदान' उपन्यास के नामकरण के सार्थकता सिद्ध कीजिए।
8. उपन्यास कला कि द ष्टि से गोदान की समीक्षा कीजिए।
9. महाकाव्यातमक उपन्यास कि अवधारणा कि कसौटी पर गोदान की महाकाव्यातमकता की परीक्षा कीजिए।
10. 'गोदान' के कथानक कि विशेषताओं का उदघाटन कीजिए।
11. 'गोदान' एक सौद्दश्य उपन्यास है। इस कथन कि विवेचना करते हुए बताईए कि प्रेमचंद इस उपन्यास के माध्यम से क्या कहना चाहते है।
12. प्रेमचन्द ने अपने गोदान उपन्यास में तात्कालिक भारतीय जीवन कि समस्याओं का दिग्दर्शन कराया है। इस कथन को सौदाहरण स्पष्ट कीजिए।
13. 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचन्द ने ग्रामीण और नागरिक जीवन का समग्र चित्रण किया है। इस कथन का विवेचन किजिए अथवा गोदान के देश काल व वातावरण पर टिप्पणी लिखिए।
14. 'गोदान' में दो कथाएं है-1. ग्राम कथा 2. नागरिक कथा लेकिन इन दोनों कथाओं में परस्पर सम्बन्धता का अभाव पाया जाता है। इस कथन के पक्ष अथवा विपक्ष में अपना उत्तर दीजिए।
15. होरी का चरित्र भारतीय किसान का वास्तविक चरित्र है। उपरोक्त कथन को ध्यान में रखते हुए होरी का चरित्र चित्रण कीजिए।
16. धनिया एक कठोर किन्तु स्नेहवादी नारी है। इस कथन के परिपेक्ष्य में गोदान में चरित्र धनिया का चित्रांकन कीजिए।
17. ग्तेबर का चरित्र चित्रण प्रस्तुत कीजिए।
18. 'गोदान' में मि. मेहता प्रेम चन्द के विचारों का प्रतिनिधित्व करते है। इस कथन की समीक्षा करते हुए मेहता के चरित्र का विश्लेषण कीजिए।
19. मालती बाहर से तितली है और भीतर से मधुमक्खी है। इस कथन को ध्यान में रखते हुए मालती का चरित्र चित्रण कीजिए।
20. मि. खन्ना का चरित्र चित्रण कीजिए।
21. राय साहब का चरित्र चित्रण कीजिए।
22. 'गोदान' की भाषा शैली पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

# खण्ड ग

# लघूत्तरी प्रश्न

**प्रश्न 1. 'गोदान' में कृषक जीवन एवं कृषि संस्कृति का मार्मिक चित्रण मिलता है। समझाइए?**

**उत्तर :** प्रत्येक सजग साहित्यकार अपने युग परम्पराओं, मान्यताओं, समाज की समस्याओं, बुराईयों से प्रभावित होकर ही साहित्य रचना की ओर प्रव त्त होता है। प्रेमचंद इसका अपवाद नहीं है। प्रेमचंद की अपने तात्कालिक समाज से प्रभावित है। इसी कारण 'गोदान' में कृषक एवं ग्रामीण जीवन का पूरा चित्र प्रस्तुत किया गया है।

गरीबी की समस्या अधिकतर ग्रामों में पाई जाती है, क्योंकि ग्रामों में अधिकतर कृषक ही होते हैं। जो सामन्तों एवं जमींदारी व्यवस्था के शिकार होकर अपनी जमीन से बेदखल होकर एक खेतिहर मजदूर के रूप में कार्य करने को विवश हो जाते हैं।

'गोदान' उपन्यास में नायक होरी अपनी गरीबी की स्थिति को अपनी पत्नी धनिया से किस तरह व्यक्त करता है—''गाँव में इतने आदमी तो हैं किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई।'' कृषकों की गरीबी के कई कारणों में से एक तो यह था शोषण, ऋणग्रस्तता, धर्मभीरुता आदि। किसानों को जमींदार, कारिन्दे, पुलिस, सामन्त, पटवारी, महाजन आदि सभी लूटते हैं।

गाँव में अधिकतर किसान वहाँ के महाजनों के ऋण जाल में उलझकर आजीवन शोषण के चक्र में फंस जाते हैं। गाँवों के अशिक्षा, अनपढ़ता का साम्राज्य रहा है। जो धनवान थे वे अशिक्षित लोगों पर मनमाने अत्याचार करते रहे। फलतः कृषक दिन-प्रतिदिन कमजोर होते रहे, उनकी हालत ओर भी खसता हो गई।

अशिक्षित रहने के कारण गाँव के किसान, झूठी परम्पराओं, मर्यादा पालन संबंधी बुराइयों के शिकार होते रहे हैं। होरी जैसे व्यक्ति मर्यादा पालन करना अपना कर्तव्य समझते थे। जाति-बिरादरी को खुश रखना आवश्यक मानते थे—भले ही बिरादरी उन्हें संकट में ही क्यों न डाल दे। वे धर्म का और शोषण, अत्याचार का अंतर समझे बिना धर्म के नाम पर संकट उठाते थे। जैसे—''लेकिन ब्राह्मण के रुपए, उसकी एक पाई भी दब गई तो हड्डी तोड़कर निकलेगी।'' होरी जैसा किसान लोकोपवाद से डरता था। पुनिया के पति हीरा ने होरी की गाय को जहर दिया था और उस गाय के कारण उसका घर बर्बाद हो गया था फिर भी हीरा के चले जाने पर होरी अपनी खेती की चिंता छोड़कर दुनिया की खेती इसलिए संभालता कि समाज उसकी बुराई करेगा। चाहे उसके परिवार के सदस्य भूखों मरे, उसके खेत में चाहे अनाज न बोया जाए परन्तु दुनिया के खेत खाली न रहे। केवल समाज में बुरा न बनने के लिए।

प्रेमचंद ने मजदूरों और मिल मालिकों के बीच की समस्या का भी वर्णन किया है। यों तो समाज में सुरक्षा के लिए पुलिस आदि की व्यवस्था रही है परन्तु भ्रष्टाचार भी सदा से विद्यमान है। पुलिस गाँवों में आकर छोटे-से-छोटे मुकद्दमें में भी धन ऐंठने में संकोच नहीं करती। इसी कारण पुलिस, कचहरी, अदालत आदि आज भी गरीब किसानों को सुरक्षा प्रदान नहीं कर पाए।

गोदान उपन्यास की कथावस्तु आरम्भ से अंत तक गाँवों के किसानों की करुण कहानी कहती है। यह ठीक है कि इसमें नागरिक कथा भी है, वह भी एक तरह से ग्रामीण कथा में एकाकार-सी हो जाती है। इस प्रकार

स्पष्ट है कि लेखक ने 'गोदान' उपन्यास में कृषक जीवन एवं कृषि संस्कृति का विस्तार से मार्मिक चित्रण किया है।

**प्रश्न 2. क्या गोदान एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है? तर्क पूर्वक उत्तर दीजिए।**

**उत्तर :** महाकाव्य व उपन्यास दो अलग-अलग विधाएँ हैं। प्रथम काव्य की विद्या है और दूसरी गद्य की। 'महा' विशेषण का प्रयोग काव्य और उपन्यास दोनों के साथ हो सकता है। आचार्य नंद दुलारे वापेयी किसी भी उपन्यास के साथ महाकाव्य शब्द का प्रयोग उचित नहीं मानते। वे **'ऐपिक नोबेल'** नाम को तात्विक द ष्टि से उचित नहीं मानते। वाजपेयी तो स्पष्टतः उपन्यास में महाकाव्य की सी विशेषताएँ रहने पर भी किसी भी उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास मानेंगे नहीं। डॉ० गोपालराय 'गोदान' को ग्राम जीवन एवं संस्कृति का महाकाव्य मानते हैं। इसी आधार पर किसी भी उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास माना जा सकता है। महाकाव्यात्मक उपन्यास में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए—

1. उसमें जीवन का सर्वांगीण चित्रण हुआ हो।
2. प्रमुख पात्र के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण हो।
3. उस उपन्यास में मानव मन की विविध भावनाओं का अंकन हो।
4. उसमें श ंगार वीर, करुण, शांत रसों में से किसी एक रस की प्रधानता हो।
5. उसकी कथावस्तु प्रख्यात या परिचित और मन का रंजन करने वाली हो।
6. उसमें युग का चित्रण एक महान् संदेश देने वाला हो।
7. उसमें प्रकृति का चित्रण हो।
8. शैली गंभीर एवं रोचक हो।

जब हम 'गोदान' उपन्यास पर गहराई से विचार करते हैं तो उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास के रूप में ही देखते हैं। प्रथम तो इस उपन्यास (गोदान) का आकार बड़ा है। दूसरा इसकी कथा ग्राम जीवन एवं नगर जीवन दोनों से संबंधित है जो अनेकों अध्यायों में विभक्त है। भारत मुख्यतः गाँवों का देश है, गोदान की मुख्य कथा भी ग्राम जीवन संबंधी वर्णन को स्पष्ट करने में सहायक हुई है, दूसरे शहरों की जिंदगी की भी जानकारी उसके द्वारा दी गई है। गोदान में किसानों का पूरा जीवन प्रस्तुत कर दिया गया हैं उनमें नाम रखने का ढंग, खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, धर्म, ईश्वर, प्रेम, ईर्ष्या, झूठ, सादगी, शोषण, शान-शौकत, मजदूरों की स्थिति, नारी की स्थिति का भी चित्रण हैं इस प्रकार गोदान उपन्यास की कथावस्तु बहुत विस्त त है। जो कि प्रोफेसर, दार्शनिक, पूँजीपति जैसे लोगों का वर्णन है।

इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण की व्यापकता है। नायक होरी का चरित्र अपने आप में विस्त त है। इसके अतिरिक्त नारी पात्रों, दूसरे पात्रों, महाजनों, जमींदारों, पुलिस वालों, पटवारियों के चरित्र को भी प्रस्तुत किया है। चरित्र चित्रण में यथार्थता, मनोवैज्ञानिकता, सहजता है।

गोदान उपन्यास में यथार्थ का चित्रण है, वर्तमान स्थिति के कारणों का उल्लेख और भविष्य के लिए कुछ संदेश भी है। समानता, प्रेम, सहयोग, मानवता, अपनाने एवं सत्कर्म करने का संदेश भी है। जन-आंदोलन अपनाने का भी संकेत दिया गया है। नई चेतना का भी उल्लेख है। छूआछूत मिटाने का भी संदेश निहित है। उपन्यास में मानव भावनाओं के साथ-साथ करुण रस का व्यापक चित्रण है, यों इसमें वीर भावना श ंगार, शांत रस की भी झलक मिलती है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'गोदान' उपन्यास में अनेक शैलियाँ अपनाई गई है तथा अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग उचित ढंग से किया गया है। इसकी भाषा-शैली महाकाव्यात्मक उपन्यास के अनुरुप है। उपन्यास में जीवन के मार्मिक पहलुओं का वर्णन है, प्रकृति का भी कुछ रूपों में चित्रण किया गया है। प्रेमचंद

के युग की झाँकी इस उपन्यास में प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार 'गोदान' उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास का जा सकता है।

**प्रश्न 3. 'गोदान' भारतीय ग्रामीण और शहरी संस्कृति का अनूठा दस्तावेज है'' स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर :** भारतीय ग्राम्य संस्कृति के आख्याता प्रेमचंद को आरम्भ से ही गाँव से गहरा लगाव रहा है। गाँव के प्रति उनका यह प्रेम उनके उस पत्र से स्पष्ट हो जाता है जो उन्होंने उपेन्द्रनाथ 'अश्क' को लिखा था। उस पत्र में प्रेमचन्द ने लिखा था, ''भाई, मनुष्य का वश हो तो कहीं देहत में जा बसें, दो-चार जानवर पाल ले और जीवन को देहातियों की सेवा में व्यतीत कर दे।''

'गोदान' में उन्होंने, ग्रामीण और शहरी संस्कृति का सूक्ष्म निदर्शन किया है। अत एव 'गोदान' में निरूपित संस्कृति को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं—ग्राम्य संस्कृति और नगरीय संस्कृति।

**ग्राम्य संस्कृति**—'गोदान' में मुख्य रूप से ग्राम्य संस्कृति के अंतर्गत उपन्यास के नायक होरी की आर्थिक विपन्नता, उसके दैन्य और आजीवन कठोर संघर्ष की कहानी है। इसके साथ ही गाँव में व्याप्त धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों का खुला चित्रण हुआ है। होरी के अतिरिक्त हीरा, शोभा, भोला, झुनिया, गोबर, मातादीन, झिंगुरी सिंह, पटेसरी, दातादीन तथा दुलारी सहुआईन आदि पात्र ग्रामीण संस्कृति के संवाहक हैं। गाँव के गरीब किसान-मजदूर महाजनों के अमानवीय शोषण से संत्रस्त हैं। होरी का युवा पुत्र गोबर महाजनी को लूट बताता हुआ कहता है—''किसी को सौ रुपए उधार दिए और उससे जिंदगी भर काम लेते रहे, पर मूल ज्यों-का-त्यों। यह महाजनी नहीं खून चूसना है।''

होरी ग्राम्य संस्कृति का सजीव उदाहण हैं। उसने झूनिया को अपनी पुत्रवधू बनाकर उसे अपने घर में रख लिया। इसके विरोध में गाँव के बड़े व्यक्ति खड़े होते हैं। अतः होरी पर सौ रुपए का दण्ड बोला जाता है। धनिया भी सभा में रुंधे हुए कण्ठ से बोली—''पंचों, गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना, हम तो मिट जाएंगे, कौन जाने, इस गाँव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर से जरूर लगेगा। मुझसे इतना कड़ा जरीमाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है—ऐं?''

भूमि और गोधन ग्रामीण संस्कृति के प्राण हैं। होरी की सबसे बड़ी इच्छा गाय पालने की है, किंतु दुर्भाग्य वश उसे कुछ ही दिन रख पाता है और अंत में उसका गोदान मात्र सवा रुपए से ही हो पाता है।

**नगरीय संस्कृति**—'गोदान' में नगरीय संस्कृति का केन्द्र लखनऊ है। शहरी जीवन को प्रेमचंद ने मालती मेहता, रायसाहब, खन्ना, तंखा, मिर्जा, ओंकार नाथ सिंह आदि पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। नारी जागरण, स्वतन्त्रता अस्तित्व, आर्थिक स्वावलंबन की अभिव्यक्ति, मनोरंजन के आधुनिक साधन, मुकद्दमेबाजी, चुनाव आंदोलन, पिकनिक, आदि शहरी संस्कृति के अंग हैं। 'गोदान' में इन सभी का चित्रण बड़े ही सूक्ष्म रूप में हुआ है।

राय साहब का स्वच्छन्द प्रकृति का पुत्र अपनी एक कॉलेज सहपाठिनी से विवाह कर लेता है। उनकी बेटी अपने चरित्रहीन पति को त्याग देती है। खन्ना निरन्तर पर-स्त्री मालती की ओर, आकर्षित होते चले जाते हैं।

इस प्रकार 'गोदान' में भारतीय संस्कृति के दोनों पक्षों का सूक्ष्म निदर्शन हुआ है। इसमें दोनों पक्षों के धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक पहलुओं का दर्शन होता है। इसके साथ ही प्रेमचंद ने आदिवासी संस्कृति का भी वर्णन किया है। अतः 'गोदान' को भारतीय ग्रामीण और शहरी संस्कृति का अनूठा दस्तावेज माना जा सकता है।

**प्रश्न 4. 'गोदान' में मुख्य चरित्रों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर :** लियो टॉलस्टॉय ने 'वार एण्ड पीस' नामक विश्व प्रसिद्ध उपन्यास के बाद 'गोदान' की व हद उपन्यास माना है। 'वार एण्ड पीस' में सैंकड़ों पात्रों ने अपनी भूमिका प्रस्तुत की है। 'गोदान' भी एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है।

इसे लिखने से पूर्व ही प्रेमचंद ने यह घोषण कर दी थी कि उनका भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा। चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का।

'गोदान' में यों तो सर्वाधिक पात्र हैं, किन्तु इसका केन्द्रीय पात्र होरी ही है। इसके अतिरिक्त धनिया, गोबर, रायसाहब, दुलारी, झुनिया आदि उसी के चरित्र को विकसित करने वाले पात्र प्रतीत होते हैं। यहाँ हम 'गोदान' के केन्द्रीय पात्र और नायक होरी को छोड़कर अन्य प्रमुख पात्रों की भूमिका प्रस्तुत कर रहे हैं।

होरी के बाद धनिया 'गोदान' की महत्त्वपूर्ण स्त्री पात्रा है। वह होरी की पत्नी और गोबर की माँ है। वह व्यावहारिक, धर्म-भीरु, भाग्यवादी, मर्यादा प्रेमिका और संवेदनशील है। उसकी अंतरात्मा अत्यन्त निर्मल है। वह अपने छल-कपट रहित मन से अकृत्रिम वचनों को निकालती है। झुनिया को जब वह अपने घर में रख लेती है तो उसे गाँव वालों के कोप का भाजन बनना पड़ता है वह दातादीन को दो टूक जबाव देती हुई कहती है—''हमको कुल परतिसठा इतनी प्यारी नहीं है महराज, कि उसके पीछे एक जीव हत्या कर डालते। ब्याहता न सही, पर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही, किस मुँह से निकाल देती?''

दातादीन एक अंधविश्वासी एवं धूर्त पंडित है। स्वयं प्रेमचंद के शब्दों में—''वह इस गाँव के नारद थे। यहाँ की वहाँ, वहाँ की यहाँ, यही उनका व्यावसाय था। वह चोरी तो न करते थे। उसमें जान-जोखिम था; पर चोरी के माल में हिस्सा बाँटने के समय अवश्य पहुँच जाते थे।''

'गोबर' गोदान के नायक होरी का पुत्र हैं वह युवा-वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। वह शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने वाला नवयुवक है। जब होरी उसे बताता है कि रायसाहब जैसे अमीर व्यक्ति भी इस संसार में दुःखी हैं तो वह व्यंग्यपूर्वक कहता है—''यह सब कहने की बातें हैं। हम लोग दाने-दाने को मुहताज है। देह पर साबित कपड़े नहीं हैं, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी पर मसनद लगाए बैठे हैं, सैंकड़ों नौकर-चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है। रुपए न जमा होते हों, पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं। धन लेकर आदमी और क्या करता है?''

रायसाहब अमरपाल सिंह सभ्य, सुसंस्कृत और शिक्षित व्यक्ति हैं। प्रेमचंद के अनुसार राय साहब सभा चतुर आदमी थे। अपमान और आघात को धैर्य और उदारता से रहने का उन्हें अभ्यास था। न चाहते हुए भी उन्हें असत्य के मार्ग पर चलना पड़ता है। वह मिस्टर खन्ना से कहते हैं—''मैं उस आदमी को आदमी नहीं समझता, जो देश और समाज की भलाई के लिए उद्योग न करें और बलिदान न करें। मुझे क्या अच्छा लगता है कि निर्जीव किसानों का रक्त चूसूँ और अपने परिवार वालों की वासनाओं को त प्ति के साधक जुटाऊँ, मगर क्या करूँ? जिस व्यवस्था में पला और जिया, उससे घ णा होने पर भी उसका मोह त्याग नहीं सकता और उसी चरखे में रात-दिन पड़ा रहता हूँ कि किसी तरह इज्जत-आबरू बची रहे और आत्मा की हत्या न होने पाए।''

इनके अतिरिक्त तन्खा, मालती, मिर्जा साहब, नोखे राम, लाला पटेश्वरी, मेहता, सिलिया, भोला आदि पात्र कथा को विकसित करने में सहायक पात्र हैं। मालती नगरीय जीवन की प्रमुख पात्रा है जिसका मेहता के साथ प्रेम-प्रसंग भी चलता है। मिर्जा खुर्शेद एक सनकी व्यक्ति हैं जो आए दिन नए-नए तमाशे कराते रहते हैं। खन्ना एक मिल मालिक और बेकार हैं। तन्खा एक चतुर पैंतरेबाज और व्यावहारिक व्यक्ति है। इस प्रकार प्रेमचंद ने जो कुछ कहना चाहा है, उसे उन्होंने 'गोदान' के सभी पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया है।

**प्रश्न 5. ''होरी अपने जीवन संघर्ष में टूट गया था, हारा नहीं।''—'गोदान' के आधार पर होरीराम के साहसिक व्यक्तित्त्व का निरूपण कीजिए।**

**उत्तर :** होरी प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' का प्रमुख पात्र एवं नायक है। उनका पूरा नाम होरी राम हैं वह भारतीय कृषक वर्ग का सशक्त प्रतिनिधि है।

होरी के पास मात्र चार-पाँच बीघा जमीन है जो उसकी तीन संतानों, उसकी पत्नी धनिया तथा स्वयं की आजीविका चलाने का एकमात्र सहारा है। कम जमीन होने के कारण वह गाय भी पालता है और मजदूरी करके जीवन-यापन करने का प्रयत्न करता है। वह अपने व्यवहार में अत्यन्त कुशल है। वह यह अच्छी तरह जानता है कि किससे कैसा व्यवहार किया जाए।

भाग्यवाद होरी की अंतरात्मा में कूट-कूट कर भरा है। निरन्तर संघर्ष और प्रतिकूल परिस्थितियाँ ही व्यक्ति को घोर भाग्यवादी बना देती है। होरी यह स्वीकार करता है कि व्यक्ति अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण ही फल भोगता है। उसके भीतर निर्मल आत्मा होने के कारण वह अत्यन्त, भावुक और संवेदनशील है। उसके भाई हीरा और शोभा उसे वैरभाग रखते हैं। पूरा समाज उसके विरुद्ध है, किंतु होरी किसी को बुरा नहीं मानता है। झुनिया को स्वीकार करते हुए वह कहता है—''डर मत बेटी, डर मत! तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह, जैसे तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिंता मत कर।''

होरी जीवनपर्यन्त संघर्षशील रहा है, उसकी जमीन जाती रही, किसान से मजदूर हुआ; लड़की को प्रौढ़ व्यक्ति हाथों देना पड़ा, तरह-तरह के अपमान सहे-यह सब होरी जैसा ही महान व्यक्तित्त्व ही झेल सकता है। वह जीवन-संग्राम में टूट तो गया, किंतु उसने पलायन नहीं किया। उसके संघर्षरत जीवन और अनवरत साहसिक कार्यों का वर्णन प्रेमचंद ने इस तरह किया है—''होरी प्रसन्न था जीवन के सारे संकट, निराशाएँ मानो उसके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है कि जीवन-संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? उन्हीं हारों में उसकी विजय है।''

डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार होरी के चरित्र में मेहता की कुछ चारित्रिक विशेषताएँ दी जाएँ तो वह प्रेमचंद का प्रतिनिधित्व करने लगता है। डॉ० प्रताप नारायण खण्डन ने होरी को विश्व साहित्य में विशिष्ट पात्र घोषित किया है। अपनी चारित्रिक गरिमा में होरी 'वार एण्ड पीस' के पियरे और नताशा, गोर्की के 'दी मदर' के पावेल ब्लासोव, शेक्सपीयर के मैकबैथ को भी पीछे छोड़ देता है। भारतीय किसान की सादगी, निश्छलता, सहिष्णुता, सहृदयता, संवेदनशीलता, धर्मप्रवणता, व्यावाहरिकता, साहस तथा अवरत संघर्ष का पर्याय ही होरी है।

**प्रश्न 6. 'गोदान' उपन्यास की यथार्थवादी द ष्टिकोण की समीक्षा कीजिए।?**

**उत्तर :** गोदान के कुछ स्थलों को छोड़कर उसमें प्रेमचंद जी ने बहुत ही सुंदर ढंग से यथार्थ का चित्रण किया हैं इस उपन्यास के बारे में समीक्षक गोपालराम के विचार इस प्रकार हैं—''मालती, मेहता की कहानी को छोड़कर शेष गोदान में यथार्थ की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थवादी और व्यापक चित्रण शायद ही किसी भारतीय उपन्यास में मिलें, हिन्दी की तो बात ही अलग है। गोदान भारतीय कृषक जीवन की आँसू भरी कहानी और विषाद गीत है। ग्राम्य जीवन का शायद ही कोई पहलू हो जिस पर उपन्यासकार ने अपनी सहानुभूतिपूर्ण द ष्टि न डाली हो।'' इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि गोदान यथार्थवादी उपन्यास है।

1. **जमींदारी शोषण संबंधी यथार्थ**—प्रेमचंद जी ने किसानों का जमींदारों द्वारा किए जाने वाले शोषण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। जमींदार रायसाहब अमर पाल सिंह दिखावा ऐसा करते हैं कि जैसे वे बड़े देशभक्त और धार्मिक व्यक्ति हैं परन्तु किसानों का शोषण वे निर्ममता से करते हैं।

2. **कृषक जीवन का यथार्थ**—गोदान में कृषक जीवन का यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। प्रेमचंद ने समूचा कृषक जीवन गोदान में प्रस्तुत किया है और उसमें यथार्थवादी द ष्टिकोण अपनाया है। प्रेमचंद ने कृषकों की निर्धनता, मूर्खता, अशिक्षा, अंधविश्वास, हठधर्मिता, आपसी फूट आदि का ही वर्णन नहीं वरन् उनकी सरलता, उदारता, सहजता, सहानुभूति आदि का भी विश्वसनीय चित्रण किया है।

3. **शहरी यथार्थ का चित्रण**—रायसाहब, तंखा, मालती, मिर्जा, मेहता, खन्ना, गोविंदी आदि के माध्यम से प्रेमचंद ने शहरी यथार्थ का चित्रण किया है। खन्ना जैसा व्यक्ति पत्नी की चिंता न कर मालती जैसी महिलाओं से प्रेम लीला करता है। बड़े आदमी अपनी विलासिता के आयोजन जारी रखने हेतु किसानों आदि से रुपए वसूल किया करते हैं। गाँव में शहरों में जाकर नौकरी पाकर ग्रामीण व्यक्ति में कैसा परिवर्तन आ जाता है यह गोबर के माध्यम से प्रेमचंद ने दिखाया है।

4. **महाजनों के शोषण का यथार्थ चित्रण**—गाँवों में महाजनों द्वारा किया जाता रहा शोषण तो जमींदारी शोषण से भी अधिक विकराल था। होरी जैसे किसानों को एक नहीं कई-कई महाजन चूस रहे थे। दुलारी, सहुआइन, झिंगुरी सिंह, पं० दातादीन, मगरूशाह इन सभी का होरी पर कर्ज था। दातादीन ने ब्याज लगाकर अपने तीन रुपए के तीन सौ रुपए होरी की तरफ कर निकाल दिए।

   डॉ० गोपालराय ने कहा है कि, ''गोदान के समस्त पात्रों के चाहे वे प्रधान हो या गोण ग्रामीण हो या शहरी, स्त्री हो या पुरुष, मनोभावों के निरुपण में प्रेमचंद ने यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाई है। परिणामस्वरूप गोदान के समस्त पात्र पूरी तरह यथार्थ मनुष्य प्रतीत होते हैं।

5. **भाषा-शैली यथार्थ**—गोदान में भाषा-शैली का यथार्थ भी अभिव्यक्त हुआ है यह वह उपन्यास है जिसकी भाषा में यथार्थ का रंग है, ग्रामीण जीवन के शब्द हैं, बोलचाल की रंगत और चेतना है तथा प्रत्येक पात्र अपनी स्थिति व्यक्तित्त्व और अपने वैशिष्ट्य व पद के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है।

   इस प्रकार 'गोदान' में ग्रामीण और शहरी जीवन से संबंधित यथार्थ का चित्रण किया है। ग्रामीण जीवन के हर पहलू का यथार्थ गोदान में मिलता है।

**प्रश्न 6. 'गोदान' उपन्यास में आदर्शवादी द ष्टिकोण की समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' में जहाँ यथार्थवाद है वहाँ आदर्शवादी भावनाएँ भी विद्यमान हैं। गोदान का नायक होरी आजीवन संकटों को सहता रहा। होरी के दुःखद अंत पर प्रेमचंद लिखते हैं—''जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ, माने उसके चरणों पर लोट रही थी। कौन कहता है कि जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ हैं।''

प्रेमचंद का यह कथन होरी के संबंध में अनुचित नहीं है। होरी भले ही जीवन में हारा हो परन्तु उसने सामाजिक मर्यादा, परिवार के प्रति दायित्व और कृषक संस्कृति की रक्षा की है। दरोगा जब हीरा के घर की तलाशी लेने के लिए तैयार हो जाता है तब उसका बड़ा भाई होने के नाते होरी अपने बेटे गोबर की झूठी शपथ खाकर दरोगा को विश्वास दिलाता है कि उसने हीरा को गाय के पास खड़े नहीं देखा। होरी जानता है कि हीरा की इज्जत जा सकती है, हीरा को जेल हो सकती है। हीरा के परिवार की रक्षा के लिए वह उसके खेतों में काम करता है। होरी स्वयं ऋणग्रस्त है फिर भी ऋण लेकर भाई की ग हस्थी का ध्यान रखता है। इसी प्रकार गोबर जब गर्भवती झुनिया को छोड़कर भाग जाता है तब झुनिया को भोला के कहने पर भी वह घर से बाहर नहीं निकालता। जब पंच, पंचायत में यह फैसला करते हैं कि या तो वह झुनिया को घर से निकाल दे या दण्ड भरे तब भी वह अपनी सारी फसल दण्ड भरने के लिए पंचों को दे देता है तथा अपना घर गिरवी रखकर ऋण लेकर सौ रुपए दण्ड के लिए भरता है और अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करता है। वह पंडित दातादीन की ब्याज की पाई-पाई चुकाने के लिए कटिबद्ध है।

इसी प्रकार शहरी पात्रों में डॉ० मेहता का चरित्र आदर्शवादी है। वह अपनी आय को निर्धन छात्रों में बाँट देता है। नारी के संबंध में मेहता के विचार आदर्शवादी हैं। मेहता के आदर्शवाद से राय साहब अमरपाल सिंह, मिल मालिक खन्ना, गोविंदी सभी पूर्णतः प्रभावित हैं। मेहता की संगति लेडी डॉ० मिस मालती के जीवन को आदर्शवादी और सेवापरायण बना देती है। वह मालती दिन-रात गरीबों की सेवा में लगी रहती है। ग्रामीण पात्रों में मातादीन पहले सिलिया को रखैल के रूप में रखता है परन्तु बाद में उसका हृदय परिवर्तित हो जाता

है। और वह कहता है—''मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ।'' इस प्रकार 'गोदान' में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहाँ उपन्यास को आदर्शवादी कहा जा सकता है।

चरित्र-चित्रण के संबंध में आदर्श व यथार्थ की सीमा रेखा यह है कि आदर्शवादी चरित्र स्थिर व अप्रगतिशील होता है जबकि यथार्थवादी पात्र परिस्थितियों के कारण अस्थिर और विकासशील। 'गोदान' का होरी अंत तक वही होरी है जो 'गोदान' के पहले प ष्ठ पर हमारे सामने आता है। यही कारण है कि आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के शब्दों में—''गोदान में प्रेमचंद जी भारतीय किसान के आदर्श स्वरूप को भूले नहीं हैं। उपन्यास का नायक होरी सारी बाधाओं और संकटों के रहते हुए भी अपने मूल आदर्श का विस्मरण नहीं कर सकता। वह अंतत आदर्शवादी है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 'गोदान' एक आदर्शवादी उपन्यास है।

**प्रश्न 8. 'गोदान' का पूर्णत यथार्थवादी है और न पूर्णत आदर्शवादी। यह तो आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी है। इस कथन की समीक्षा करें।**

**उत्तर :** नि'संदेह प्रेमचंद के 'गोदान' में एक ओर यथार्थवाद का समावेश है तो दूसरी और आदर्शवाद का। कुछ आलोचक इसे पूर्णतः यथार्थवादी उपन्यास मानते हैं तो कुछ आदर्शवादी। रामाश्रय मिश्र का कथन है कि 'गोदान' के अधिकांश पात्रों के चरित्र-चित्रण में उपन्यासकार की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी द ष्टि ही दिखाई देती है। मालती, मेहता, होरी, गोबिन्दी आदि पात्र आदर्शोन्मुख तथा धनिया, गोबर, ग्रामीण महाजन आदि पात्र यथर्थपरक हैं। अतः 'गोदान' को आदर्शोन्मुख यथार्थ से युक्त उपन्यास कह सकते हैं। जहाँ तक 'गोदान' की मूल संवेदना का प्रश्न है इस चित्रण में भी उपन्यासकार ने अपनी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी विचारधारा का समग्रता से प्रयोग किया है। होरी और धनिया का संघर्ष भरा जीवन, अटूट परिश्रम का दुःखद परिणाम निकलता है जो यह संदेश देता है कि यह समाज की दशा उपयुक्त नहीं है इसे बदलना होगा। होरी जैसे भारतीय किसान का जीवन यथार्थ रूप में चित्रित होकर भी आदर्शोन्मुख है। होरी जीवन के शोषण का शिकार रहता है। वह उसका विरोध नहीं करता उसकी पत्नी धनिया उस का बेटा गोबर उसे बार-बार समझाते हैं परन्तु वह अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। इसी प्रकार शहरी वातावरण में जर्मींदारों द्वारा किया गया शोषण मिल मालिकों द्वारा धन का संग्रह व मजदूरों का शोषण नारी के कर्तव्य व जागरुकता का आंदोलन आदि यथार्थवादी होकर भी आदर्शोन्मुखी है।

वास्तव में प्रेमचंद के सभी पात्र सामाजिक स्तर पर चित्रित हैं उन्हें न तो देवता बनाने का प्रयास किया गया है और न उन्हें दानव के रूप में चित्रित किया है। मानव-जीवन में जो गुण-दोष, अच्छाई-बुराई होती है वही सब पात्रों में द ष्टिगोचर होती है।

होरी जैसे किसान को उपन्यास का नायक बनाकर प्रेमचंद न तो आदर्शवादी उपन्यास लिखने के इच्छुक थे और न मेहता जैसे पात्रों के द्वारा यथार्थवादी बन सकते थे। एक ओर धनिय का यथार्थवादी चरित्र है तो दूसरी और गोविन्दी व डॉ० मालती का आदर्शवादी रूप है। 'गोदान' में आदर्शवादी भावना को भी खोजा जा सकता है तो आदर्शवादी विचारधारा को भी। जिसने जिस प्रकार का द ष्टिकोण अपनाया उसे 'गोदान' वैसा ही दिखाई पड़ा। यदि कुछ ने इसमें दोनों रूप देखे तो 'गोदान' आदर्शोन्मुख-यथार्थवादी उपन्यास सिद्ध हो गया है। अतः कहा जा सकता है कि 'गोदान' यथार्थवादी भी है आदर्शवादी भी है और आदर्शोन्मुखी-यथार्थवादी भी है। इतना अवश्य है कि अन्य उपन्यासों की भांति 'गोदान' में सुधारवादी भावना नहीं है अथवा समस्याओं का समाधान नहीं है। प्रेमचंद 'गोदान' को अन्य उपन्यासों की अपेक्षा एक नूतन रूप प्रदान कर गए हैं। मानों अपने समस्त अनुभव और आदर्श उन्होंने उपन्यास में एक साथ भर दिए हैं। इसी कारण यह उपन्यास पूर्णतः यथार्थवादी भी दिखाई पड़ता है और आदर्शवादी भावना से अनुप्राणित होने के कारण आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भी है।

**प्रश्न 9. 'गोदान' में शोषण और सत्याग्रह आदि विषयों पर भी विचार प्रकट किए गए हैं। इस कथन की समीक्षा की जाए।**

**उत्तर :** गोदान उपन्यास का कथाफलक जहाँ एक ओर ग्राम्य अंचल की कहानी प्रस्तुत करता है तो वहीं दूसरी ओर शहरी जीवन की कहानी भी। दोनों कथाफलकों में किस प्रकार लोगों का शोषण होता है और वे किसतरह सत्याग्रह करते हैं? इसका भी विवेचन हुआ है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास में रायसाहब तथा अन्य कुछ पात्रों के माध्यम से शोषण और सत्याग्रह आदि विषयों पर भी कुछ विचार प्रकट करते हैं।

रायसाहब सत्याग्रह संग्राम में प्रसिद्ध होकर कौंसिल की सदस्यता त्याग कर जेल यात्रा कर आए थे। तभी से जनता में उनका मान बढ़ गया था। यद्यपि उनके इलाके में अन्याय और अत्याचार दूसरे इलाकों की तरह थे लेकिन उनकी कीर्ति पर कलंक न लग सकता था। स्वयं प्रेमचंद के शब्दों में—''जाब्ते का काम तो जैसे सदा चला आया है वैसे ही होगा। रायसाहब की सज्जनता उस पर कोई असर नहीं डाल सकती थी। इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ भर की कमी थी। इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ भर की कमी न होने पर भी उनका यश मानो बढ़ गया था। आसामियों से वह हंस कर बोले लेते थे, यही क्या कम है, सिंह का काम तो शिकार करना है। अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता है तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में उसे जंगल में न भटकना पड़ता। ...शोषक तो वह अब भी है लेकिन अब वह गुर्राकर, गरजकर अपना शिकार नहीं करता, गाँधी टोपी लगाकर जेल जाकर बेचारे गरीब, अनपढ़ आसामियों के हृदय को प्रभावित करके अपना काम करता है। राय साहब जेल जाकर जनता की श्रद्धा के पात्र बने रहते हैं और नजरें और डालियाँ भेजकर सरकार के कृपापात्र। रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाए रखते हैं।''

यही राय साहब होरी को बतलाते हैं कि उनके वैभव का सारा सामान गरीबों से वसूलते हुए उनके खून पसीने की कमाई से सजाता है। जनता की आह से बचने के लिए उन्हें पुलिस हुक्काम, अदालत और वकील की शरण लेनी पड़ती है। जनता समझती है कि वह सुखी है जबकि उनकी आत्मा में बल नहीं है और न ही अभिमान है। मुफ्तखोरी उन्हें अपंग बना देती है, उनका पुरुषार्थ खो जाता है। अफसरों के सामने वे निरीह को प्रजा के सामने वे सशक्त दिखते हैं। उनका शील, विनय और सेवा भावना का लोप हो गया है। मानवता का लक्ष्य उन्होंने सदैव के लिए खो दिया है परन्तु स्वेच्छा से अपना स्वार्थ छोड़ने की भावना उनके लिए अकल्पनीय हो गई है।

पूँजीपति वर्ग से संबंधित कुछ समस्याएँ लेखक ने खन्ना आदि पात्रों के चरित्र को आधार बनाकर उठाई हैं। शक्कर के मिल के स्वामित्व के कारण खन्ना के विचार पूँजीवादी मनोव त्ति का परिचय देते हैं। इसी मिल में आग लग जाने के पश्चात् खन्ना का पश्चाताप और हताशा उनके मानसिक तनाव को प्रकट करती है। इस प्रकार प्रेमचंद ने राय साहब के माध्यम से शोषण एवं सत्याग्रह के प्रति विचार प्रकट किए हैं।

**प्रश्न 10. 'गोदान उपन्यास में नागरिक नारी पात्रों की भरमार है।' विवेचन कीजिए।**

**उत्तर :** प्रेमचंद ने नागरिक नारी पात्रों से संबंधित जो चरित्र उपन्यास में स्थापित किए हैं उनके माध्यम से नारी जीवन की कुछ समस्याओं पर उन्होंने विचार किया है। गोविन्दी और मालती आदि नारी पात्र इस द ष्टिकोण से प्रतिनिधि चरित्र कही जा सकती है। वीमेन्स लीग में व्याख्यान देते हुए एक बार मेहता स्त्रियों के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि ''स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा, दया, त्याग, अंहिसा, जीवन के उच्च आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष, धर्म आध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर इस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है पर सफल नहीं हो सकता। मैं कहता हूँ उसका सारा आध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।'

मिसेज खन्ना स्त्री पुरुष की पारस्परिक श्रेष्ठता का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करती हुई इसी उपन्यास में एक स्थान पर कहती है कि ''वास्तव में पुरुष अपना कर्तव्य भूला हुआ है कि नारी श्रेष्ठ है और सारी जिम्मेदारी उसी पर है। श्रेष्ठ पुरुष है और उसी पर ग हस्थी का भार है। नारी में सेवा, संयम और कर्तव्य

सब कुछ नहीं पैदा कर सकता है। अगर उसमें इन बातों का अभाव है तो नारी में भी रहेगा। नारियों में आज जो विद्रोह है इसका कारण पुरुषों का इन गुणों से शून्य हो जाना है। आधुनिक स्वच्छन, नारी का उदाहरण प्रेमचंद ने मालती के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उसका मनोविश्लेषण करते हुए लेखक ने लिखा है कि ''मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है। और जिए भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हँसती है इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं है कि वह चहकने और चमकने को ही जीवन समझती है या उसके निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लेती है जो कुछ अपने ही लिए करे। नहीं वह इसलिए चहकती और विनोद करती है कि उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।''

मालती के जीवन के इस स्वच्छन्द रूप को प्रेमचन्द सोद्देश्य प्रस्तुत किया है। यही मालती जब भारत की ग्राम-देवियों के सम्पर्क में आती है तो उनके सरल रूप के सम्मुख ''उनके मन में सेवा की भावना और भी प्रबल होने लगती है। उनके त्यागमय जीवन के सामने अपना विलासी जीवन उसे तुच्छ और बनावटी लगता है। उसके रेशमी कपड़े जिन पर जरी का काम था और वह सुगन्ध से महकता हुआ शरीर और वह पाउडर से अलंकृत मुखमंडप स्वयं को लज्जित करने लगा। उसकी कलाई पर बंधी सोने की घड़ी जैसे अपलक नेत्रों से उन्हें घूर रही थी। उसके गले में चमकता हुआ जड़ाऊ नेकलस मानो उसका गला घोंट रहा था। इन त्याग और श्रद्धा की देवियों के सामने वह अपनी द ष्टि से नीची लग रही थी।''

मालती की मनोव त्ति में यह परिवर्तन उसके सामने भारतीय जन-जीवन की यथार्थता को प्रकट कर देता है। फलतः उसके द ष्टिकोण में मूलभूत परिवर्तन हो आता है। अपनी भावनाओं में इसी मूलभूत परिवर्तन के कारण एक बार वह मेहता से कहती है कि ''अभी तक तुम्हारा जीवन आदर्श या जिसमें स्वार्थ के लिए बहुत थोड़ा-सा स्थान था। मैं उसको नीचे की ओर न ले जाऊँगी। संसार में तुम जैसे साधकों की जरूरत है जो अपने पथ से इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाए। संसार में अन्याय की, आतंक की धूम मची हुई है। व्यक्तिगत अंधविश्वास का, कमट धर्म का, स्वार्थ लोलुपता का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे तो सुनने वाला और कहाँ से आएगा, अन्य असत्य प्राणियों की तरह तुम उनकी ओर से अपने कान नहीं बंद कर सकते। तुम्हें वह जीवन भार हो जाएगा। अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्सा और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे चलूंगी। अपने साथ मेरा जीवन भी सार्थक कर दो।''

इस प्रकार स्पष्ट है 'गोदान' में नागरिक नारी पात्र भी एक उत्तम संदेश से मुक्त जीवन-व्यतीत करती है जो कि जनकल्याण की भावना से ओतप्रोत है।

**प्रश्न 11. 'गोदान' उपन्यास के कथानक की समीक्षा अपने शब्दों में कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' उपन्यास का कथानक विस्त त है। कथानक में तीन गुण होने चाहिए—मौलिकता, रोचकता एवं स्वाभाविकता। मौलिकता से अभिप्राय है कि कथानक लेख की अपनी कल्पना की उपज हो। उस पर किसी अन्य कृति का प्रभाव न हो। न वह किसी का छायानुवाद हो। रोचकता से तात्पर्य यह है कि उसमें शुरू से अंत तक पाठक के मन में जिज्ञासा भरी रहे कि आगे क्या होता है। इसको जानने के लिए पाठक अंत तक कृति को पढ़ता हुआ चला जाए। इसी से पाठक के मन में कथानक के प्रति उसके अंत को जानने के लिए जिज्ञासा बनी रहती है। स्वाभाविकता का अर्थ है कि उपन्यास में उन्हीं घटनाओं का वर्णन किया जाए जो जीवन में संभव हो अर्थात् असंभव, अलौकिक, अमानवीय या दैवी घटनाओं का चित्रण न हो।

प्रेमचंद उच्च कोटि के उपन्यासकार थे। उन्हें उपन्यास सम्राट कहा जाता है। वे कथानक के इन सभी गुणों से परिचित थे। उन्होंने गोदान में कथा के उपर्युक्त सभी गुणों को अपनाया है, गोदान के कथानक की समीक्षा संक्षेप में इस प्रकार है—

गोदान में दो कथाएं हैं। उनमें पहली कथा ग्रामीण कथा है जिसे मुख्य कथा जा सकता है और दूसरी नागरिक कथा जिसे गौण कथा कहा जा सकता है। मुख्य कथा अर्थात् ग्राम का नायक होरी है। होरी बेलारी गाँव का रहने वाला पाँच बीघे जमीन का मालिक है। उसके परिवार में उसकी पत्नी धनिया, बेटा गोबर और दो पुत्रियाँ सोना व रूपा है। सारा परिवार दिन-रात परिश्रम करके खेती से जो कुछ प्राप्त करता है उससे गुजारा करता है। होरी के मन में एक गाय खरीदने की है जिसे वह भोला अहीर से प्राप्त कर लेता है। भोला अहीर की बाल विधवा पुत्री का नाम झुनिया है। झुनिया गोबर को देखकर उसके प्रति आकर्षित हो जाती है। दोनों एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। परिणामस्वरूप झुनिया गर्भवती हो जाती है और गर्भवती झुनिया को छोड़कर गोबर शहर में भाग जाता है। होरी और धनिया झुनिया को शरण देते हैं। इस बात पर गाँव के पंच होरी को बिरादरी से बाहर कर देते हैं या उसे दण्ड भरने के लिए कहते हैं। होरी को दण्ड स्वरूप 100 रुपया और 30 मन अनाज पंचों को देना होता है। होरी का भाई हीरा गाय को जहर देकर भाग जाता है। पुलिस हीरा के घर की तलाशी के लिए आती है तब होरी दरोगा को कुछ रुपए देकर मामले को रफा-दफा करवाना चाहता है। होरी को अपनी बेटी सोना के विवाह के लिए ऋण लेना पड़ता है। धीरे-धीरे होरी की आर्थिक दशा इतनी गिर होती है कि उसे अपनी बेटी रूपा के विवाह के लिए वर-पक्ष से 200 रुपए लेने पड़ते हैं। इसी बीच गोबर शहर से आ जाता है और झुनिया को लेकर शहर वापस चला जाता है। गोबर शहर जाकर मिल मजदूर बन जाता है परन्तु एक बार मिल में हड़ताल होने से गोबर को चोट लग जाती है। झुनिया का पहला पुत्र चल बसता है। परन्तु इसी समय गोबर के दूसरा पुत्र हो जाता है। अब झुनिया होरी के यहाँ चली जाती है। होरी उसकी पत्नी धनिया गोबर के बेटे के लिए गाय खरीदने की अभिलाषा में रात-दिन काम करते हैं परन्तु एक दिन खान में कंकल की खुदाई करते समय होरी को लू लग जाती है और वह चल बसता है। होरी के घर कुल मिलाकर 20 आने थे जिनका होरी की म त्यु पर गोदान किया जाता है।

गोदान का दूसरा कथानक राय साहब, प्रो० मेहता, मिल मालिक खन्ना, उसकी पत्नी गोविन्दी, लेडी डॉ० मिस मालती से संबद्ध है। ये सभी परस्पर मिलते रहते हैं। मनोरंजन के लिए शिकार खेलने जाते हैं, शराब पीते हैं और सुख भरी जिंदगी व्यतीत करते हैं। मालती पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगी हुई है। वह सबके साथ निःसंकोच व्यवहार करती है और उसकी सुन्दरता पर सभी मुगध है। मिल मालिक खन्ना मालती के सौन्दर्य पर आसक्त है। मिस मालती प्रो० मेहता से विवाह करना चाहती है।

उपन्यासकार प्रेमचन्द के उपर्युक्त वर्णित गाँव और शहर के इन दोनों कथानकों को मिश्रित रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द ने यह दिखाया है कि गाँवों में प्रायः निर्धन लोग रहते हैं, जो शोषित है और शहर में किसानों की कमाई को जो उन्होंने खून-पसीने से पैदा की है, जमींदार या शोषक वर्ग ऐशो-आराम में उड़ाते हैं। गोदान का कथानक अच्छे कथानक की तीनों विशेषताएँ मौलिकता, रोचकता और स्वाभाविकता को पूरा करता है।

**प्रश्न 12. 'गोदान' उपन्यास में प्रगतिवादी भावना भी दिखाई पड़ती है। तर्क सहित उत्तर दीजिए।**

**उत्तर :** प्रगतिवाद का सर्वप्रथम और महत्त्वपूर्ण लक्षण है—सदियों पुरानी रूढ़ियों का परित्याग। 'गोदान' का नायक होरी भी रूढ़िवादी है, उसकी दरिद्रता का कारण भी यही रूढ़िवादिता है। वह जानता है कि कृषक की खेती से कोई लाभ नहीं होता किंतु फिर भी वह अपनी भूमि का मोह त्याग नहीं पाता। वह कहता भी है—''हम को खेती से क्या मिलता है एक आने नफरी की मंजूरी भी हों नहीं पड़ती, जो दस रुपए महीने का नौकर है वह भी हम से अच्छा खाता-पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें तो और करें क्या? नौकरी कहीं मिलती है? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है।''

प्रेमचंद जी होरी की इस रूढ़िवादिता का कई स्थानों पर उपहास करते भी दिखाई दे देते हैं। होरी का पुत्र गोबर जैसे प्रेमचंद जी के इसी उपहास को स्वर दे रहा है—''जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए

मरजाद और इज्जत सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी औरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती, तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा। यह उसी का दण्ड है। तुम्हारी जगह मैं होता तो या तो जेल में होता या फांसी पा गया होता। मुझसे यह कभी भी बरदाश्त न होता कि मैं कमा-कमाकर सबका घर भरूँ और आप अपने बाल-बच्चों के साथ मुँह में जाली लगाए बैठा रहूँ।''

प्रगतिवाद रूढ़ियों के साथ ही धर्म का भी बहिष्कार करता है। 'गोदान' में मातादीन की आत्मा प्रेमचंद जी की नैतिक भावना के विचारों से ओतप्रोत है। वह अनुभव करता है कि सिलिया का उसने बहिष्कार मात्र इसलिए किया कि वह चमारिन है किंतु जाति के चमार होने या ब्राह्मण होने से ही तो कोई पतित अथवा पवित्र नहीं हो जाता। इसलिए अंत में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि—''समाज के नाते आदमी का अगर धर्म है, तो मनुष्य के नाते भी तो उसका कुछ धर्म है। समाज धर्मपालन से समाज आदर करता है, मगर मनुष्य धर्म पालने से तो ईश्वर प्रसन्न होता है।''

इसी प्रकार उपन्यास के प्रारम्भ में ही राय साहब धर्म के पाखण्डी स्वरूप का विवेचन करके यह सिद्ध कर देते हैं कि—''हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं, लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार।''

जब सिलिया के पिता हरखू ने मातादीन के मुंह में हड्डी का टुकड़ा डाल दिया, तो इससे उसका ब्राह्मत्व चला गया। उस हड्डी के टुकड़े ने तो मातादीन की आत्मा को भी अपवित्र न कर सका। प्रेमचंद धर्म की इस विषमता के कट्टर विरोधी थे, यह भी उनकी प्रगतिशीलता का एक प्रमुख अंग है।

प्रेमचंद ने मेहता के माध्यम से तो उन्होंने कर्मयोग की प्रतिष्ठा के साथ मानव जीवन की एकता को ही ईश्वरत्व घोषित कर दिया। वास्तव में वे एकात्मवाद, सर्वात्मवाद या अहिंसातत्व को आध्यात्मिक द ष्टि से नहीं, भौतिक द ष्टि से ही देखते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गोदान में प्रगतिवादी भावना भी स्पष्ट रूप से उजागर हुई है।

**प्रश्न 13. ''गोदान उपन्यास के संवाद अत्यन्त सुघड़, संक्षिप्त एवं कौतुहलवर्धक हैं।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** किसी भी उपन्यास की कथा के विकास, पात्रों की गत, मानसिक स्थिति, वातावरण के उभार और प ष्ठभूमि के अभिव्यक्तिकरण में संवाद योजा का विशेष महत्त्व है—प्रेमचंद जी के संवाद की इस द ष्टि से विशेष उल्लेख है, साथ ही इसकी एक और विशेषता है—पात्रानुकूलता जो पात्र जिस स्थिति में है जिस स्थान का रहने वाला है, उसका आचरण भी उसी प्रकार का है यह पात्रानुकूलता उनके संवादों को प्राणवान बना देती है। एक उदाहरण देखिए जिसमें ग्रामीण पात्रों की हिन्दी के अपभ्रंश रूप का निदर्शन होता है, साथ ही उनका चरित्र भी उद्घटित हो जाता है—

''मातादीन ने सिलिया की ओर रक्त भरे नेत्रों से देखा—''मैंअब उसका मुँह न देखूंगा, लेकिन परासंचित हो जाने पर फिर तो कोई दोष न रहेगा?''

'परासंचित हो हाने पर कोई दोष प्राय नहीं रहता।
'तो आज ही पंडितों के पास जाओ।'
'आज ही जाऊंगा बेटा।'
'लेकिन पंडित लोग कहे कि इसका परासंचित नहीं हो सकता, तब?'
'उनकी जैसी इच्छा।'
'तो तुम मुझे घर से निकाल दोगे?'

दातादीन ने पुत्र-स्नेह से विह्वल होकर कहा—''ऐसा ककहीं हो सकता है, बेआ। धन जाय, धरम जाय, लोक मरजाद जाय, पर तुम्हें नहीं छोड़ सकता।''

'गोदान' उपन्यास के संवाद पात्रानुकूल होने के साथ ही सौद्देश्य भी है, और उनमें संजीवता है। किसी भी पात्रा का कोई संवाद उठाकर देख लीजिए वे इतने यथार्थ प्रतीत होते हैं कि काल्पनिकता का अभाव ही नहीं होता। होरी और धनिया का यह संवाद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है जो अपनी यथार्थता एवं सजीवता के कारण पात्रों को भी सजीव कर रहे हैं—

धनिया ने होरी को उत्तेजित करके कहा—''बैठ क्या हो, जाकर पटवारी से पूछते क्यों नहीं, यही धरम है तुम्हारा गाँव घर के आदमियों साथ?

होरी ने दीनता से कहा—'पूछने के लिए तूने मुँह भी रखा हो। तेरी गालियाँ उन्होंने न सुनी होगी?'

'जो गाली खाने का काम करेगा, उसे गालियाँ मिलेंगी ही।'

''तू गालियाँ भी देगी और भाई-चारा भी निभाएगी।''

'देखूँगी, मेरे खेत के बीचे कौन जाता है?'

'मिल वाले आकर काट ले जाएँगे, तू क्या करेगी, और मैं क्या करूँगा? गालियाँ देकर अपनी जीभी की खुजली चाहे मिटा ले।'

'मेरे जीते-जी कोई मेरा खेत काट ले जाएगा।'

'हाँ-हाँ तेरे और मेरे जीते-जी सारा गाँव मिलकर भी उसे नहीं रोक सकता। अब वह चीज मेरी नहीं, मंगरू साह की है।'

'मंगरू शाह ने मर-मरकर जेठ की दुपहरी में सिंचाई और गोड़ाई की थी।'

'वह सब तूने किया, मगर अब वह चीज मंगरू साह की है। हम उनके करजदार नहीं है?'

'गोदान' उपन्यास के संवादों में जो भाषा प्रेमचंद जी ने प्रयुक्त की है वह अत्यन्त सरल और प्रभावक है। इस कारण भी 'गोदान' उपन्यास के संवाद रोचक, स्वाभाविक, सजीव, संक्षिप्त तथा पात्रानुकूल बन सके हैं। इस उपन्यास के संवादों में प्रेमचंद जी का कौशल—उनमें उपयुक्त गुणों का समावेश तथा उनका सम्पूर्ण रूप से निर्माण-आदि अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करता है। और इस प्रकार मानव-जीवन का समग्र चित्र—शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण-नागर, कृषक, जमींदार, देश-जाति और वर्ग-प्रत्येक का प्रतिनिधित्व करता है। कुल मिलाकर उपन्यास की संवाद योजना अत्यन्त सशक्त है।

**प्रश्न 14. ''गोदान उपन्यास तत्कालीन समग्र भारत का यथार्थ प्रतिबिम्ब है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' सन् 1936 ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रेमचंद ने 1930 ई० से लेकर सन् 1936 तक के युग का चित्रण किया है। गोदान से पूर्व प्रेमचंद नौ उपन्यास व बहुत-सी कहानियाँ लिख चुके थे। गोदान उनकी प्रौढ़ कृति है। अतः वातावरण की द ष्टि से ग्रामीण एवं शहरी दोनों अंचलों का बहुत ही सजीव वर्णन है। भारतीय जनता उस समय शोषण के चक्र में पिस रही थी। राष्ट्रीय आंदोलन जागरण की अंगडाई ले रहा था। प्रेमचंद ने तत्कालीन युग की समस्याओं का यथार्थ की भूमि का चित्रण किया है। गोदान के युग-चित्रण को दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

1. **राजनैतिक स्थिति**—राष्ट्रीय आंदोलन अंगडाई ले रहा था। राय साहब अमर पाल सिंह जैसे जमींदार जनता की द ष्टि से ऊँचा उठने के लिए जेल जाना समझते थे। अंग्रेजों ने ग्रामीण जनता का शोषण करने के लिए जमींदारों को प्रतिष्ठित कर दिया था। प्रेमचंद गोदान में जमींदार वर्ग के प्रतिनिधि रायसाहब के संबंध में लिखते हैं—

''पिछले सत्याग्रह में राय साहब ने यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़ कर जेल चले गए थे। तब से उसके इलाके के आदमियों को उनमें बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनमें इलाके के आदमियों के साथ कोई खास रियासत की जाती हो या डांट और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। राय साहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था।''

2. **सामाजिक स्थिति**—तत्कालीन भारतीय समाज में दरिद्रता व्याप्त था। संयुक्त परिवार टूट रहे थे। दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, ऋण, बहु-विवाह, चारित्रिक पतन, जाति-पाँति, छुआछूत, बेगारी, रूढ़ियाँ, ब्राह्मणों का पाखण्ड, ग्रामीणों की धर्मभीरुता, कर्मकाण्ड आदि समस्याओं का वर्णन गोदान में हुआ है। पाखण्डी धर्म के ठेकेदारों पर करारा व्यंग्य करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं—

''दातादीन का लड़का मातादीन एक चमारिन के साथ फंसा हुआ था। इसे सारा गाँव जानता था पर वह तिलक लगाता था, पोथीपत्रा जांचता था, कथा भागवत् कहता था, धर्म संस्कार करता था। उसकी प्रतिष्ठा में जरा भी कमी न थी। वह नित्य पूजा स्थान करके अपने पापों का प्रायश्चित कर लेता था।''

प्रेमचंद जी ने पात्रों के बाह्य वातावरण के साथ ही उनके मानसिक वातावरण के भी अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। होरी भोला के यहाँ से गाय लाने वाला है। यह विचार होरी के मन-मस्तिष्क में छाया रहता है। होरी की इस मानसिक दशा का चित्रण करते हुए प्रेमचंद कहते हैं—

''होरी को रात भर नींद नहीं आई। नीम के पेड़ के तले अपनी बांस की खाट पर पड़ा बार-बार तारों की ओर देखता था। गाय के लिए एक नाँद गाड़नी है। बैलों से अलग उसकी नाँद रहे। अभी तो रात को बाहर ही रहेगी, लेकिन चौमासे में उसके लिए कोई दूसरी जगह ठीक करनी होगी। बाहर लोग नजर लगा देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा टोना-टोटका कर देते हैं कि गाय का दूध ही सूख जाता है। थन को हाथ ही नहीं लगाने देती, लात मारती है। नहीं बाहर बाँधना ठीक नहीं।''

वातावरण चित्रण में प्रेमचंद को पूर्ण सफलता मिली है। ग्रामीण अंचल का जीता-जागता चित्र उन्होंने 'गोदान' में प्रस्तुत किया है।

ग्रामीण संस्कृति के होली उत्सव को उन्होंने सजीव कर दिया है। हाँ यह ठीक है कि ग्रामीण वातावरण शहरी परिवेश की अपेक्षा गोदान में अधिक चित्रित हुआ है।

**प्रश्न 15. भाषा शैली की द ष्टि से 'गोदान' उपन्यास की समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** प्रेमचंद के उपन्यासों की भाषा यथार्थपरक, पात्रानुकूल तथा देशकाल की स्थिति के अनुरूप है। उनकी भाषा कथा के प्रवाह, पात्रों की योजना तथा वातावरण की स ष्टि-सभी में पूरा योग देती है। संवादों की भाषा में तो देशकाल का रंग है ही, कथा-वर्णन और पात्रों की रूपरेखा प्रस्तुत करने में भी लेखक की भाषा देशकाल से प्रभावित और वातावरण के वर्णन के सर्वथा अनुरूप है।

उनकी भाषा में सजीवता और रोचकता है। करारा व्यंग्य तथा तीखी चोट प्रेमचंद जी की भाषा की विशेषता है। प्रेमचंद जी की शैली कहीं तो विवरणात्मक है और कहीं विश्लेषणात्मक। जहाँ पर गहन चिंतन है, वहाँ पर तो भाषा गंभीर और तत्सम शब्द-प्रधान है, लेकिन अन्यत्र स्वाभाविक सरल और हिन्दी उर्दू मिश्रित है। 'गोदान' उपन्यास में भी प्रेमचंद जी की भाषागत विविधता द ष्टव्य है। इसमें गंभीर चिंतन के समय भाषा स्पष्टतः विचार प्रधान है, फिर भी वहाँ सरलता का गुण सहज ही विधमान है यथा—

''उनका मानव-प्रेम इस आधार पर अवलम्बित न था कि प्राणी-मात्र में एक आत्मा का निवस है। द्वेत और अद्वेत का व्यापारिक महत्त्व के सिवा वह और कोई उपयोग न समझते थे और यह व्यापारिक महत्त्व उनके लिए मानव-जाति को एक-दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद भाव को मिटाना और मात -भाव को द ढ़ करना ही था। यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्मा में इस तरह जम गई थी कि उनके लिए किसी

आध्यात्मिक आधार की स ष्टि उनकी द ष्टि में व्यर्थ थी। यश, लोभ या कर्तव्य पालन के भाव उनके मन में आते ही न थे। इसकी तुच्छता ही उन्हें इनसे बचाने के लिए काफी थी।''

उनके ग्रामीण पात्रों की भाषा में जहाँ आंचलिकता है तो मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू की रवानगी है। पढ़े-लिखे पंडित की भाषा में तत्सम प्रधानता है। वहीं अंग्रेजी शब्दों की बहुलता प्रो० मेहता की भाषा की एकबानगी देखिए—''मेहता 'देवियों! मैं उन लोगों में नहीं हूँ जो कहते हैं स्त्री व पुरुष में समान शक्तियाँ हैं, समान प्रव त्तियाँ हैं और उनमें कोई विषमता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। यह वह असत्य है जो युग-युगान्तर से संचित अनुभव को उसी तरह ढक लेना चाहता है जैसे बादल का टुकड़ा सूर्य को ढक लेता है।''

धनिया की भाषा का उदाहरण देखिए—

''पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना कौन जाने इस गाँव में रहे या न रहे लेकिन मेरा सराप तुमको जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीमाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा।''

'गोदान की शैली में विविधता है। मुहावरों का प्रयोग प्रेमचंद की शैली की प्रमुख विशेषता है। इससे भाषा में प्रवाह आ गया है। शैली को सशक्त और रोचक बनाने के लिए प्रेमचंद ने लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। गोदान में होरी विधुर भोला से कहता है—

'पुरानी मिसाल झूठी थोड़े है। बिन धरती घर भूत का डेरा' सुक्तियों का प्रयोग भाषा-शैली को और अधिक सशक्त बना देता है जैसे—''सम्पत्ति और सह्रदयता में बेर है।''

अलंकारों का प्रयोग भाषा के सौंदर्य को और अधिक बढ़ा देता है। गोदान में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, वीप्सा, आदि-आदि अलंकारों का प्रयोग बखूबी हुआ है। प्रेमचंद जी साधारणतः छोटे-छोटे वाक्य पसन्द करते थे। गोदान उपन्यास की भाषा का यह कमाल है कि इसमें ग्रामीण कृषकों का जीवन साकार हो उठा है। कई स्थलों पर तो वह इतनी मार्मिक बन पड़ी है कि पाठक की आँखें छलछला जाती है। प्रेमचंद की भाषा की सही विशेषता के कारण उनके उपन्यास बहुत अधिक लोकप्रिय हुए।

**प्रश्न 16. ''मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** तितली से अभिप्राय है—रंग-बिरंगे पंखों से युक्त फूलों पर मंडराने वाली तितली अर्थात् जिस प्रकार तितली कभी किसी फूल पर मंडरा कर उड़ती हुई चुहल करत दिखाई पड़ती है। उसी प्रकार मालती की तड़क-भड़क के रंग-बिरंगे परिधान पहनकर पुरुषों के समाज में विचरण करती है। उसमें झिझक या संकोच का कहीं नामो-निशन नहीं है। मेकअप करके विनोद करती हुई दूसरों को लुभाने और रिझाने की कला में निपुण है।

मधुमक्खी से अभिप्राय है—मधु की मक्खी अर्थात जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों के रस को चूसकर उसे एक स्थान पर एकत्रित करके मधु (शहद) बना देती है परन्तु फिर भी वह स्वयं उसका पान नहीं करती अपितु जन सेवा हेतु जन सामान्य को अर्पित कर देती है। इसी प्रकार मालती भी अपने जीवन के अनुभवों को दूसरों की सेवा करने में लगा देती है। उपन्यास के अंत में दिखाई देता है कि वह निरन्तर गरीबो की सेवा में संलग्न रहती है।

इस तरह बाहर से तितली रूप और भीतर से मधुमक्खी के समान रहकर वह अपना जीवन सार्थक करती है। उसके जीवन से संबंधित कुछ बातें इस प्रकार हैं—

1. **म दुभाषिणी—**मालती के व्यवहार की यह विशेषताएँ है कि वह बोलने में बड़ी चतुर है। कभी भी किसी से कटु शब्द नहीं कहती। उसका ह्रदय, स्नेह, ममता, करुणा व संवेदना से भरा हुआ है। वह अपनी मित्र मंडली को सदा हँसाती रहती है। एक बार भरी मित्र मंडली में उसने ओंकारनाथ को मदिरा पान

करा दिया था वह बड़े स्नेह से ओंकारनाथ से कहती है—'एक रमणी के हाथों से शराब का प्याला पाकर कौन भद्र पुरुष होगा जो इन्कार कर दें? यह तो नारी जाति का अपमान होगा। उस नारी जाति का, जिस के नयन-बालों से अपने द श्य को बिंधवाने की लालसा पुरुष मात्र में होती है। जिसकी अदाओं पर मर-मिटने के लिए बड़े-बड़े महर्षि लालायित रहते हैं। लाइए, बोतल और दौर चलने दीजिए। इस महान अवसर पर किसी तरह की शंका, किसी तरह की आपत्ति राष्ट्र द्रोह से कम नहीं।''

2. **विलासिनी**—भारतीय सभ्यता में जिसे विलास कहते हैं पाश्चात्य संस्कृति में वह आमोद-प्रमोद है। वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करता है। वह प्रो० मेहता को भी अपने प्रेम-जाल में फंसाने का प्रयत्न करती है। जब मालती व प्रो० मेहता शिकार खेलने जाते हैं तो उसे अवसर मिलता है कि वह अपने आंतरिक प्रेम को प्रकट करके किसी प्रकार उसे अपना बना ले। वह बार-बार अपने प्रेम का संकेत करती है। मालती की यह विलासिता अपनी मित्र मण्डली पर छाई हुई है।

3. **नवयुग की नारी**—मालती में भारतीय नारी के समान लज्जा, शील, संयम व आदर्श नहीं है। जैसे भारतीय नारी व पुरुष की परछाई से दूर रहना उचित समझती है, परन्तु मालती में ऐसा कुछ नहीं है। पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति को उसने अपने ऊपर पूरी तरह से ओढ़ रखा है। बड़े लोगों के साथ उठती-बैठती है। सभाएँ करती हैं, सभाओं में जाती है। मनोरंजन करना, पुरुषों से हँसी मजाक करना, प्रेम प्रदर्शन करना सामान्य बातें हैं।

4. **त्याग भावना**—प्रो० मेहता के सम्पर्क में आने से वह अपना जीवन बदल लेती है। वह गरीब और असहाय जनता की सेवा करती है। वह मेहता के आदर्शों पर चलती है परोपकार व नारी-सेवा उसके जीवन के प्रमुख अंग बन गए हैं। अपनी सुख-सुविधाओं का ध्यान न रखकर त्याग और सेवा को अपना जीवन बना लिया है।

इस प्रकार मालती बाहर से तितली स्वरूप है और भीतर से मधुमक्खी स्वरूप है।

**प्रश्न 17. ''गोदान मील का पत्थर है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' प्रेमचंद की एक सशक्त रचना है जिसमें प्रेमचन्द ने न तो पूर्व उपन्यासों की कथा का विश्लेषण किया है और न सुधारवादी, गाँधीवादी या आदर्शवादी भावना का दामन पकड़ा है। होरी नामक किसान को कथा का नायक बनाकर उसकी यथार्थ जीवन की जीवनी को जीवित किया है। वह शोषण का शिकार होता जाता है। एक ओर उसे जमींदार राय साहब का लगान, बेगार, बाकी, नजराना, शगुन आदि देना पड़ता है तो दूसरी ओर पटवारी पटेश्वरी व राय साहब के कारकून चोखेराम और साहूकारों का भी पेट भरना पड़ता है। वह चारों ओर से ऋणग्रस्त है। वह स्वयं चिंतित है। ''फसल में से कुछ खलिहान में तोल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ का कर्ज था जिस पर कोई सौ रुपए सूद के बढ़ते जाते थे। वह अन्य जमींदारों के कर्ज से भी दबा हुआ है। इस प्रकार 'गोदान' होरी के ऋण की विस्त त कहानी है जिससे दबकर वह जमीन, बैल, आदि से हाथ धो बैठा था और मजदूरी करने के लिए मजबूर हो गया था। अंत में वह मजदूरी करते-करते भी संसार से विदा हो जाता है—यह त्रासदी कृषक-जीवन की यथार्थ कहानी है। गोदान में किसानों के उद्धार के लिए कोई भी योजना, सदन या समिति का गठन नहीं किया जाता। न राय साहब जैसा जमींदार उनका ऋण माफ करके उनमें उद्धार की बातें सोचता। इस दिशा में प्रेमचंद ने किसी का हृदय परिवर्तन न करके ग्रामीण जीवन की वास्तविकता पर प्रकाश डाला है कि श्रमिक-वर्ग व कृषक-वर्ग भारत में कितनी दीन-हीन दशा को भोगने के लिए बाध्य है।

शहरी कथा के माध्यम से प्रेमचंद ने राय साहब की जमींदारी व्यवस्था को प्रस्तुत करके उसके द्वारा शोषण-चक्र का जीता-जागता चित्रण किया है। राय साहब शोषक प्रव त्ति का व्यक्ति है। वह रंगा सियार है। वे अपने वर्ग की बुराइयों को जानकर भी उनसे छुटकारा न तो स्वयं प्राप्त करते हैं और न शोषित-वर्ग को

राहत की सांस लेने देते हैं उसके लिए उनके पास यही तर्क है कि उन्हें भी अपने ऑफिसरों को प्रसन्न करना पड़ता है।

प्रो० मेहता के माध्यम से प्रेमचंद दुलार व उपकार अवश्य कराया परन्तु न तो प्रो० मेहता अपना विवाह मालती से कर पाए हैं और न मालती विवाहित हो सकी। गोबर भी आज की विकसित व विद्रोही नव-चेतना का प्रतीक बनकर अंत में आर्थिक-विषमता के कारण एक सामान्य बनकर रह जाता है। जो आज के समाज की यथार्थता है। उसमें भी कोई ऐसा चमत्कारी परिवर्तन नहीं आता जो वह अपने पिता होरी और ग्राम के दीन-हीन निर्धनों का उद्धार कर सके।

भावात्मक रूप में ही नहीं, बल्कि कलात्मक द ष्टिकोण से भी 'गोदान' अपनी पूर्ण रचनाओं से श्रेष्ठ है। इसमें प्रेमचंद ने सरल, सुबोधगम्य, पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। जहाँ ग्रामीण पात्र अपनी बात कहते हैं तो बोलचाल की ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया जाता है। दूसरी ओर शहरी पात्रों में तत्सम, तद्भव तथा अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग है। भाषा में लोकोक्ति मुहावरे आ जाने से भावों की सम्प्रेषणीयता बढ़ जाती है। **डॉ० झारी** का कथन है कि—''भाव सौंदर्य व कला सौंदर्य का जैसा सुन्दर सामंजस्य 'गोदान' में है, वैसा अन्य रचनाओं में नहीं।''

इस प्रकार गोदान की अभिव्यक्ति एवं शिल्प दोनों ही द ष्टियों से मौलिक, प्रभावक व यथार्थवादी है। प्रेमचंद से पूर्व इस प्रकार की सच्चाई और स्वाभाविकता किसी पूर्ववर्ती उपन्यास में नहीं मिलती। इसमें सुधारवादी भावना का समावेश न होकर मानवतावादी स्वर है। इसी कारण कहा जा सकता है कि 'गोदान' हिन्दी उपन्यास साहित्य में मील का पत्थर है।

**प्रश्न 18. ''गोदान गाँधीवाद से प्रेरित नहीं है।'' समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' से पूर्व के उपन्यासों में प्रेमचंद के गाँधीवाद के प्रति मोह को देखकर डॉ० सुरेश सिन्हा का कहना है—''राजनीति के क्षेत्र में जो कार्य गांधी जी ने किया उपन्यास के क्षेत्र में वही कार्य प्रेमचंद जी ने किया है। प्रेमचंद के उपन्यासों में हिंसा पर अहिंसा की विजय मिलती है। उसमें शोषण के विरुद्ध आवाज और समानता का स्वर उद्घोषित होता है।'' इससे सिद्ध होता है कि वे गाँधी के विचारों से प्रभावित थे, किंतु प्रगतिशील रचनाधर्मी होने के नाते, समय के अनुसार उनमें परिवर्तन आता गया। वे समझ रहे थे कि गाँधीवाद से आर्थिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हो पाएगा इसीलिए 'गोदान' उपन्यास तक आते-आते राजनैतिक और आर्थिक विचारों की द ष्टि से व गाँधीवाद से बहुत दूर निकल चुके थे किंतु सत्य, अहिंसा, त्याग, दया, स्नेह और परोपकार जैसे नैतिक मानदण्डों को उन्होंने तब भी प्रक्षय दिया। यद्यपि विभिन्न पात्रों को व्यावहारिक द ष्टि से इन विशेषताओं अथवा विचारों के कारण पराजय झेलनी पड़ती है तथा हड़ताल गाँधीवाद का एक प्रमुख अंग है जो विरोध को स्वर देता है, किंतु उपन्यास में खन्ना की चीनी मिल के मजदूरों का शोषणे रूक नहीं सकता। किंतु मेहता का चरित्र उपन्यास में गाँधीवाद का ही खुला प्रतिरूप है। उनके आदर्शवादी विचारों से प्रभावित होकर ही मालती जैसी तितली का त्याग और सेवा की प्रतिभूति बन जाती है।

साथ इसके हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि उपन्यास की जो केन्द्रीय कथा होरी और उसके गाँव एवं परिवार से सम्बद्ध कथा है—उसमें गाँधीवाद का कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। इस कथा में तो प्रेमचंद जी पूर्णतः प्रगतिवादी लेखक के रूप में ही सामने आए हैं। मालती मेहता की कथा, लगता है प्रेमचंद जी ने संभवतः केवल इसीलिए बीच में जोड़ी है ताकि गाँधीवादी दर्शन के अनुरूप उन नैतिक मूल्यों की स्थापना की जा सके, जो स्वयं प्रेमचन्द जी के लिए भी आदर्श है। किंतु मूल कथा से इसका कोई संबंध नहीं है। इसलिए यहाँ पर स्वीकारना होगा कि उपन्यास में गाँधीवादी दर्शन की अपेक्षा प्रगतिवाद के ही गई और उसी में लेखक की आस्था भी घनित हुई है।

**प्रश्न 19. 'गोदान' के प्रमुख पात्र होरी के वर्ग चरित्र का विश्लेषण कीजिए।**

**उत्तर :** वर्ग पात्र उसे कहा जाता है जो अपने वर्ग के सभी व्यक्तियों में सामान्य रूप से पाई जाने वाली विशेषताएँ रखता है। दूसरे शब्दों में उस पात्र के माध्यम से लेखक ने उससे सम्बद्ध वर्ग की विशेषताएँ व्यक्त की है। जैसे होरी एक किसान है और किसान के चरित्र में वे सब विशेषताएँ दर्शाई गई हैं जो भारत के किसानों में मिलती हैं, इसी आधार पर होरी को भारत के समूचे किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र, वर्ग पात्र, टाइप पात्र कहा गया है। होरी के जीवन की समस्याएँ, उसका चिंतन, उसका व्यवहार वैसा ही जैसा कि आमतौर पर भारत के किसानों का होता है। होरी के जीवन के सूत्र अपने वर्ग से जुड़े हुए हैं और उन्हीं सूत्रों के द्वारा वह अक्षय प्राण-रस पाता है। होरी एक सामाजिक प्राणी है। वह एक किसान की भांति दूसरे किसानों से सम्पर्क रखता है। उसके जीवन की जो विशेषताएँ हैं वे वही हैं जो एक किसान में मिलती हैं।

'गोदान' उपन्यास में होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधि पात्र है। वह अपने गाँव का ही नहीं, भारत के प्रत्येक गाँव में रहने वाले उन करोड़ों किसानों का प्रतिनिधित्व करता है जो जन्म भर परिश्रम करके अपने मन की एक छोटी सी साध भी पूरी नहीं कर पाते। होरी के चरित्र में वे सब दुर्बलताएँ एवं सबलताएँ विद्यमान हैं जो समस्त किसान-वर्ण में पाई जाती है।

होरी के चरित्र में वर्ग गलत था व्यक्तिगत विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. **दरिद्रता**—होरी कुर्मी किसान है परन्तु गरीबी के कारण अच्छा खाना-पानी भी नहीं कर पाता है। वह कड़ा परिश्रम करके, मितव्ययता बरतने के बावजूद भी ऋण के बोझ से उभर नहीं पाता है। गाय खरीदने की उसकी इच्छा कई वर्षों से है परन्तु दरिद्रता उसकी इस इच्छा में सदा बाधक बनी रहती है। दरिद्रता ही उसे बेहया और झूठ बोलने पर मजबूर करती है।

2. **व्यवहार कुशलता**—होरी भोला-भाला किसान है। पर वह बड़ा ही व्यवहार कुशल है। वह जमींदार अमरपाल सिंह के यहाँ आता जाता रहता है। वह समझता है कि मालिक से मिलते-जुलते रहने में ही भलाई है, क्योंकि ''जब दूसरों के पावों तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उनके पांवों को सहलाने में ही कुशल है।''

3. **मर्यादा पालन**—भारत का किसान गरीब भले ही हो परन्तु वह कुछ मर्यादाओं का पालन करना अपना कर्तव्य समझता है। होरी को अपनी लड़की के विवाह की चिंता होती है, वह सोचता है कि ''लड़की का ब्याह न हुआ तो सारी बिरादरी में हंसी होगी।'' चौधरी दमड़ी बंसोड़ को होरी ने बांस बेच दिए थे। हीरा की पत्नी पुनिया ने चौधरी का विरोध किया, दोनों में कहा-सुनी हो गई। चौधरी ने पुनिया को धक्का दे दिया। वह रो पड़ी। होरी उसे लात जमाकर कहता है—''रुपए की गरमी है तो वह निकल जाएगी। अलग है तो क्या हुआ, है तो एक खून, कोई तिरछी आँचा से देखे तो आँख निकाल ले।''

4. **मानवता**—होरी में अनेक दुर्बलताएँ होते हुए भी मानवता थी। वह किसीको दुःख नहीं पहुँचाना चाहता था। वह प्रत्येक के सुख-दुःख में सम्मिलित होता था।

5. **सामाजिकता**—होरी समाज और बिरादरी को महत्व देता है। झुनिया को पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार कर लेने के कारण पंच के दण्ड को स्वीकार करता है। जबकि धनिया पंचों के निर्णय का विरोध करती है। होरी पंचो के दण्ड को सिर झुकाकर स्वीकार कर लेता है। क्योंकि उसका विश्वास है—''पंच में परमेश्वर रहते हैं, उनका जो न्याय है, वह सिर आँखों पर।''

गोदान उपन्यास का नायक किसान होरी भारत के किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला वर्ग पात्र है। उसका व्यक्तित्व उपन्यास के अंतर्गत उसके वर्ग का प्रतीक बनकर आया है वह एक ओर तो किसान वर्ग का प्रतिनिधि है। होरी ने सम्पूर्ण उपन्यास में भारतीय किसान का जो प्रतिनिधित्व किया है वह उसे भारत का जाना-पहचाना किसान सिद्ध कर देता है।

**प्रश्न 20. प्रेमचंद कृत 'गोदान' में चर्चित समस्यओं का चित्रण किया गया है। समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' में कृषक जीवन की आर्थिकर, सामाजिक, धार्मिक आदि दशाओं का युग-दशाओं के अनुरूप चित्रण हुआ है। इसमें पुलिस और बिरादरी के शोषण की स्थितियाँ भी चित्रित हुई हैं। यह उपन्यास प्रेमचंद के समग्र कृतित्व में एक विशिष्ट शैल्पिक उपलब्धि है। अपने समय की बदलती हुई समाजिक स्थिति का जितना सफल और सार्थक चित्रण प्रेमचंद ने 'गोदान' में किया है, वह उनके कलाकार पक्ष की सबलता का परिचायक है। उसमें अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं, जिनका चित्रण इस प्रकार है—

1. **तलाक की समस्या**—प्रेमचंद साहित्य में, एक ही प्रसंग ऐसा है, जहाँ पति पत्नी में तलाक होता है। 'गोदान' के राय साहब अमरपाल सिंह की पुत्री मीनाक्षी पति के दुराचरण के कारण उससे संबंध विच्छेद कर लेती है और साथ ही गुजारे का भी दावा कर देती है।

2. **वेश्या समस्या**—'गोदान' उपन्यास में वेश्याव ति अपनाने के दो कारण बतलाए गए हैं—1. आर्थिक कठिनता और 2. सम्मान का अभाव। डॉ० मेहता और मिर्जा खुर्शेद के मध्य इसी बात पर बहस होती है—मिर्जा साहब कहते हैं कि—''रूप के बाजार में वही स्त्रियाँ आती हैं, जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मान पूर्ण आश्रय नहीं मिलता या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती है।'' परन्तु मेहता की मान्यता है कि—''मुख्यतः मन के संस्कार और भोग-लालसा ही औरतों को इस ओर खींचती है।'' वे आगे कहते हैं—''रोजी के लिए और बहुत से जरिए हैं। ऐश की भूख रोटियों से नहीं जाती। उसके लिए दुनियाके अच्छे-अच्छे पदार्थ चाहिए।''

3. **किसान-जमींदार समस्या**—किसान जमींदार समस्या के एक छोर पर किसान हैं तो दूसरे छोर पर जमींदार। परिस्थितियों का अनिवार्य गति में जमींदार देख रहे हैं कि जमीन पैरों तले से खिसकती जा रही है, यद्यपि ये जमींदार अपने आपको समय के अधिक से अधिक अनुकूल बाने का प्रयास में सचेष्टता में लगे हुए हैं।

4. **महाजनी सभ्यता**—बदला हुआ युग महाजनों का है जो गाँव में किसानों और शहरों में जमींदारों को खोखला बनाए जा रहे हैं सामन्ती व्यवस्था में तब भी एक सीमा है, लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था, में महाजनी सभ्यता तो ऐसी है जिसमें कि गरीब और अधिक गरीब तथा अमीर और अधिक अमीर होता जाता है। इस व्यवस्था के स्पष्ट प्रतीक खन्ना और तनखा है।

5. **औद्योगिक समस्या**—औद्योगीकरण से पूँजीवादी मनोव त्ति का उदय होता है। देश का सारा धन थोड़े से पूँजीपतियों के हाथ में एकत्र हो जाता है। प्रेमचंद औद्योगिक सभ्यता के इन परिणामों से पूर्णतया परिचित थे। मजदूरों की मजदूरी की समस्या को लेकर खन्ना और प्रोफेसर मेहता के बीच विचार-विमर्श होता है और इसी सिलसिले में मेहता मजदूरों के जीवन पर इन शब्दों में प्रकाश डालते हैं—''मजदूर बिलों में रहते हैं-गंदे, बदबूदार बिलों में, जहाँ आप एक मिनट भी रह जाएँ, तो आपको कै हो जाए। कपड़े जो वह पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछोगे। खाना जो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खाएगा।'' इससे सिद्ध होता है कि बड़ी-बड़ी मिलों के मजदूरों को पशुवत् जवन बिताना पड़ता है और उनकी गाढ़ी कमाई से देश के थोड़े से पूंजीपति दिन-प्रतिदिन सम द्धशाली बनते जाते हैं।

इस प्रकार सिद्ध होता है गोदान में अनेक ज्वलंत समस्याएँ विद्यमान है। उपन्यासकार इन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास अवश्य किया परन्तु उन्हें सफलता बहुत कम मिली।

# खण्ड घ

# अतिलघूत्तरी प्रश्न

**प्रश्न 1. 'गोदान' उपन्यास में भारतीय कृषक की जो झलक हमें मिलती है, उसका निरूपण कीजिए।**

**उत्तर :** प्रेमचंद कृत 'गोदान' भारतीय कृषक के संघर्षमय जीवन का महाकाव्य है। इसमें भारतीय कृषक की प्रायः सभी समस्याएँ उभरी हैं। इसमें पारिवारिक विघटन, जमींदारों द्वारा मानमाना शोषण, परस्पर द्वेष-भाव, लगान-बेगार आदि कृषक जीवन के विषय पक्षों का निदर्शन किया गया है।

'गोदान' का नायक होरी थोड़ी-सी जमीन का मालिक है। किंतु कृषक जीवन की गहन ने उसे मजदूर रूप में मरने को बाध्य कर दिया। प्रेमचंद ने होरी के आत्मपीड़न को इस प्रकार व्यक्त किया है—''जो अपन जान खपाते हैं, उनका हक उन लोगों से ज्यादा है, जो केवल रुपया लगाते हैं।''

**प्रश्न 2. ''गोदान में गाँव और शहर की संस्कृति का निरूपण किया गया है''—विचार कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' भारतीय संस्कृति को जीवन्त करने वाला सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें प्रेमचंद ने ग्रामीण और नगर जीवन की अभिव्यक्ति बहुत ही सुन्दर ढंग से की है। इसके साथ ही प्रेमचंद ने आदिवासी संस्कृति का भी चित्रण किया है। ग्रामीण संस्कृति के अंतर्गत उन्होंने ग्रामीणों के भोलेपन, उनके निश्छल जीवन और उसमें व्याप्त अनेक आडम्बरों, उनका समस्याओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

उपन्यास में सेकरी और बेलारी गाँवों के माध्यम से ग्राम्य संस्कृति का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। मेहता, मालती तथा तनखा आदि के माध्यम से नगर-जीवन के रीति-रिवाज, पूँजीपतियों की शान-शौकत, मुकद्दमेबाजी, चुनाव, श्रमिक आंदोलन, पिकनिक, आमोद-प्रमोद के नवीनतम साधनों आदि का वर्णन किया गया है। इन पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव द ष्टिगोचर होता है।

**प्रश्न 3. 'गोदान' में महाकाव्यात्मकता का निरूपण कीजिए।**

**उत्तर :** गोदान में महाकाव्यात्मकता से आशय उसमें निहित महाकाव्य के तत्वों की उपस्थित से है। व्यापक कथाफलक, पात्रों का वैविध्यपूर्ण चरित्राकंन, संवादो की सार्थकता, युग-जीवन की सफल अभिव्यक्ति, महान उद्देश्य आदि तत्व 'गोदान' को महाकाव्य के पद पर आसीन कराते हैं। जिस प्रकार रूसी लेखक टॉलस्टॉय के उपन्यास 'वार एण्ड पीस' को अधिकांश आलोचक महाकाव्य मानते हैं, उसी प्रकार 'गोदान' की महाकाव्यात्मक उपन्यास की श्रेणी में आता है। 'वार एण्ड पीस' में लगभग पाँच सौ पात्र हैं, गोदान में सौ से अधिक पात्र हैं जो जीवन के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

**प्रश्न 4. 'गोदान' के मुख्य चरित्रों की भूमिका निर्धारित कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' का प्रमुख पात्र अथवा नायक होरी है जिसका पूरा नाम होरी राम है। वह कृषक वर्ग का प्रतिनिधि है। अभावों में जीवन व्यतीत करने पर भी वह मानवतावाद का प्रबल पक्षपाती है। उसकी पत्नी धनिया संवेदनशीलता पात्र है। होरी का पुत्र गोबर (गोवर्धन) उन युवकों का प्रतिनिधि है जो शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। वह आधुनिक युग का गर्म मिजाजी युवक है। इनके अतिरिक्त भोला, दातादीन, मातादीन, सिलिया, नोखेराम आदि का कथा ग्रामीण जीवन से संबंधित है तथा मालती, मेहता, खन्ना, तन्खा आदि की कथा नगर जीवन से संबंधित है। राय साहब अमरपाल सिंह, तन्खा, मिर्जा, लाला पटेश्वरी, नोखेराम स्थिर कोटि के पात्र

हैं जबकि गोबर मालती, और होरी विकासशील पात्र हैं। ये सभी पात्र मात्र कल्पना, प्रसूत नहीं है, समाज के विभिन्न वर्गों से ही लिए गए हैं।

**प्रश्न 5. 'गोदान' में आदर्श एवं यथार्थ निरूपण कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' में भारतीय जीवन के विविध पक्षों का यथार्थ अंकन हुआ है। इसमें समस्याएँ ही समस्याएँ हैं, समाधान नहीं। होरी का जीवन संघर्ष, पारिवारिक विघटन, जातिगत द्वेष, लड़ाई-झगड़ा, नीलामी कुर्की, चुनाव आंदोलन, ग्रामीणों का नगर-पलायन, मजदूरों का शोषण आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'गोदान' में जितनी समस्याएँ हैं, उनका उतना समाधान नहीं है। फिर भी प्रेमचंद अपने आदर्शवाद का मोह नहीं त्याग सके हैं होरी के सतत् संघर्ष में वे उनकी आदर्शवादी चेतना ही मुखर हुई है। सिलिया नामक स्त्री पात्र, नारीत्व का आदर्श प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार दुलारी सहुआइन तथा मालती भी नारी जीवन के आदर्श का प्रतीक है। इस तरह गोदान में आदर्श और यथार्थ का मणिकांचन संयोग है।

**प्रश्न 6. हिन्दी उपन्यास में नायक की अवधारणा और उसके बदलते स्वरूप पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर :** नाट्यदर्पणकार ने नाटक में धीरोद्धत धीरोद्वत, धीरललित और धीरप्रशान्त—इन चार प्रकार के नायकों के होने की चर्चा की है। भारतीय विचार पद्धति के अनुसार नायक का स्थान वही पा सकता है जो अपने आपको वश में रख सकता हो। अधीरता का होना नायक के लिए उचित नहीं माना गया है।

'नायक' शब्द संस्कृत की 'नी' धातु से बना है जिसका अर्थ है—ले जाना या नेत त्व करना। यद्यपि उपन्यास के नायक में उन सभी गुणों का होना आवश्यक नहीं है जो नाट्यदर्पणकार ने नाटक के नायक के माने हैं। फिर भी उपन्यास के नायक का 'नेता' होना अनिवार्य है। जो आरम्भ से लेकर अंत तक उपन्यास की कथा का वाहक होता है। वही उसका नायक माना जाता है। नायक के साथ ही उसकी पत्नी या प्रेयसी ही नायिका मानी जाती है। पर यह अनिवार्य नियम नहीं है कि नायक के साथ नायिका अवश्य ही हो अथवा नायिका के साथ नायम हो। प्रेमचंद के 'रंगभूमि' में नायक है, नायिका नहीं। इसी प्रकार 'सेवासदन' में नायिका है तो नायक नहीं है। परन्तु 'गोदान' उपन्यास में नायक होरी है तो नायिका धनिया है।

**प्रश्न 7. 'गोदान' के 'किसान' का विश्लेषण दीजिए।**

**उत्तर :** गोदान में भारतीय किसान की नियति का साक्षात्कार है। जो निर्धनता के पाश में जकड़ा हुआ है और वह तन और मन दोनों ही तरह से 'रुग्ण' दिखाई पड़ता है। वह रूढ़ियों की लड़ाई में परास्त होकर मुक्ति के लिए छटपटाता है।
इस उपन्यास में भारतीय कृषक की प्रायः अनेकों समस्याएँ उभरी हैं जिनमें मुख्यतः बेगारी, जमींदारों का शोषण, लगान-बगोर, परस्पर द्वेष भावना आदि।

'गोदान' का किसान बेगारी करता है, खेत में पैदा किए गए अन्न को कर्ज अदायगी के रूप में जमींदार ले जाता है। ग हस्थी के लिए वह किसान महाजन से कर्ज लेता है और वह कर्ज उस पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी आपाद मस्तक चढ़ता जाता है जिसके बोझ से वह कृषक म त मनुष्य की भांति जीवन यापन करता है। 'होरी' जैसे थोड़ी-सी जमीन के मालिक-किसान इस निर्धनता रूपी अभिशाप से स्वतन्त्र होकर मजदूर बन जाते हों।

**प्रश्न 8. कथोपकथन की द ष्टि से 'गोदान' की समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** प्रत्येक उपन्यास की सफलता उसके संवादों पर निर्भर होती है। संवादों में उपयुक्तता, अनुकूलता, रोचकता, कौतुहलवर्धन करने की क्षमता, संक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता का होना आवश्यक है। 'गोदान' के कथोपकथन में बड़ी सजीवता और स्वाभाविकता है। उसमें नाटकीयता का भी प्रचुर समावेश है। गोबर और झुनिया के रोमांस से पूर्व सरस और मार्मिक संवाद का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

''अब तुम काहे को यहाँ आओगे।''

''अगर भिक्षुक को भीख मिलने की आशा हो तो वह दिन भर और रात भर दाता के द्वार पर खड़ा रहे।''

''तो यह कहो, तुम भी मतलब के यार हो।''

''...तुम मुझसे भीख न मांगकर मुझे मोल ले सकते हो। ...और जानते हो, हाय क्या देना होगा? मेरा होकर रहना पड़ेगा। फिर किसी के सामने हाथ फैलाए देखूंगी, तो घर से निकाल दूंगी।''

**प्रश्न 9. क्या 'गोदान' एक समाजवादी कृति है? स्पष्ट करें।**

**उत्तर :** आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के शब्दों में—''इस उपन्यास का उद्देश्य भारतीय ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों को उपस्थित कर ग्रामीण जीवन की स्थिति का उद्घाटन करना है। यह कार्य समाजवाद का ही पोषक हो, यह आवश्यक नहीं। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में कोई मार्ग-निर्देशन नहीं किया है। अपने अन्य उपन्यासों में प्रेमचन्द ने आदर्शात्मक चर्चा की है और कुछ एक उपन्यासों में तो सामाजिक सुधार के लिए किसी संस्था विशेष की स्थापना भी करा दी है। इन उपन्यासों में प्रेमचंद का सुधार-संबंधी बाद भी झलक उठता है। पर 'गोदान' में किसी भी वाद की स्पष्ट सूचना नहीं दी गई है—ऐसी अवस्था में हम 'गोदान' को न तो समाजवादी कृति कह सकते हैं और न किसी अन्यवाद से ही उसका संबंध निर्धारित कर सकते हैं।

**प्रश्न 10. औंकरनाथ के चरित्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर :** पंडित औंकारनाथ 'बिजली' के यशस्वी सम्पादक हैं। सम्पादक वर्ग की सारी सबलताएँ और दुर्बलताएँ उसमें विद्यमान हैं। व्यक्ति से अधिक उनका महत्व उनके प्रतीकत्व में ही निहित दिखाई पड़ता है। वे समय के साथ चलते और उसे अपने साथ चलाने में अपने जीवन की कृतार्थता महसूस करते चलते हैं। ऐसे व्यक्ति के कथन और कार्य दो भिन्न दिशाओं में धवित होते रहते हैं। वे भी अपनी कथनी और करनी में समत्व लाभ नहीं कर पाए हैं। यही उनकी चारित्रिक शक्ति की सबसे बड़ी विडम्बना बन जाती है। स्वदेशी के भक्त होते हुए भी विदेशी दवाओं के विज्ञान पत्रों में प्रकाशित करते। इनका जीवन एक दीर्घ विलाप था। इनके चरित्र द्वारा-पत्र-सम्पादक की दुरवस्था पर प्रेमचंद ने प्रकाश डाला है।

**प्रश्न 11. 'मिसेज खन्ना' एक आदर्श भारतीय नारी का प्रतिरूप है। इस कथन की समीक्षा दीजिए।**

**उत्तर :** 'मिसेज खन्ना' एक आदर्श भारतीय नारी का प्रतिरूप है। कवि हृदय मिला लेकिन पति विपरीत रूचि का मिला। पति के हाथों पिटती है लेकिन फिर भी विरोध नहीं करतीं। मेहता से अपना दर्द कहती है। क्लबों से दूर रहती हैं, सीधा-सादा सरल स्वभाव था। मालती से घ णा करती है। जीवन के कटु अनुभवों को वह स्वयं मेहता से कहती थी। मेहता की नजर में वह एक आदर्श नारी है। मेहता उसकी अंदर से इज्जत करता है। जब वह दुःखी होती है तो मेहता को बड़ा दुःख होता है कि मि० खन्ना उसका सम्मान नहीं करता। इतना होने पर भी मिसेज खन्ना उफ! तक नहीं करता। शांत चित्त होकर अपना जीवन जीती चली जाती है।

**प्रश्न 12. 'गोदान' में प्रेमचंद का युग चित्रित हुआ है। स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' में ग्रामीण समाज का व्यापक और पूर्ण चित्र मिलता है। ग्राम्य जीवन का वैषम्य, असंतुलन, कदाचार और विद्रुपता इन सबके वर्णन में प्रेमचंद जी ने वातावरण की स ष्टि कर दी है। प्रेमचंद जी ने जो कुछ कहा है, ऐसे ढंग से कहा है कि उसका चित्र सामने आ गया है। पाखण्ड, अनमेल विवाह, अंधविश्वास ईर्ष्या, द्वेष तथा सामाजिक जीवन की समस्त बुराइयाँ तथा अच्छाइयाँ भी विस्तार के साथ मिलती है।

**प्रश्न 13. 'गोदान' नामकरण के औचित्य पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर :** संसार में प्रत्येक वस्तु का कोई-न-कोई नाम अवश्य होता है। बिना नाम के किसी वस्तु की कल्पना भी नहीं की जा सकती। साहित्यकार पर्याप्त बुद्धिमान होने के कारण वह अपनी रचना को ऐसी संज्ञा प्रदान करता है

जो सर्वथा सार्थक संक्षिप्त और मनोरम हो। जिसमें उस रचना का उद्देश्य या मूल स्वर गूंज सके। प्रेमचन्द जी एक उच्चकोटि के उपन्यासकार थे गोदान से पूर्व भी वे अनेक उपन्यास लिख चुके थे, अतः उन्होंने गोदान उपन्यास का नामकरण भी बड़ी-सूझ-बूझ के साथ किया होगा—इसमें संदेह नहीं है।

'गोदान' उपन्यास के नामकरण के विविध आकार सिद्ध होते हैं—1. गोदान एक प्रमुख घटना के रूप में (होरी को गाय पालने की इच्छा एवं उसकी म त्यु पर गो-दान की घटना), 2. उद्देश्य का आभास, 3. सामाजिक मान्यता पर व्यंग्य (जैसे बिना गो-दान के हिन्दू की गति का न होना, 4. कलात्मक नामकरण, 5. प्रेमचंद का गोदान (जीवन की अंतिम कृति गोदान है जैसे प्रत्येक हिन्दू की तरह यह प्रेमचंद का भी हिन्दी साहित्य को गोदान स्वरूप गो-दान है।)

**प्रश्न 14. गोदान में प्रासंगिक कथा क्या है उसका मनोवैज्ञानिक चित्रण कीजिए।**

**उत्तर :** प्रेमचंद कृत 'गोदान' में मातादीन और सिलिया चमारिन की कथा प्रासंगिक है। यह कथा मनोवैज्ञानिक द ष्टिकोण से भी बहुत प्रभावशाली बन पड़ी हैं सिलिया मातादीन के लिए सर्वस्व त्याग देती है। मातादीन भी यद्यपि उससे प्रेम करता है परन्तु उसमें इतना साहस नहीं है कि वह समाज के सामने इस संबंध को स्वीकार कर ले। इसीलिए वह हमेशा दुविधा में पड़ा रहता है। यहाँ तक कि जब उसकी प्रेयसी सिलिया एक पुत्र को जन्म देती है तब वह अपने मन को पक्का करने लगता है। दैवी विडम्बना के फलस्वरूप जब शिशु की म त्यु हो जाती है तब वह निर्भीक भाव से अपने संबंध की घोषण कर देता है। वर्ण व्यवस्था के परम्परागत आदर्शों में उसकी आस्था समाप्त हो जाती है। उसकी शुद्धि कराने के लिए मंत्रोच्चारण आदि किया जाता है। ब्राह्मण वर्ग उसे पुनः स्वीकार कर लेता है। परन्तु सामान्य जनता उसे ब्राह्मण स्वीकार नहीं कर पाती—''यद्यपि विद्वानों ने उसका ब्राह्मणत्व स्वीकार कर लिया लेकिन जनता अब भी उसके हाथ का पानी नहीं पीती। उससे मुहूर्त पूछती है, साइत और लगन का विचार करवाती है, उसे पर्व के दिन दान भी दे देती है पर उससे बर्तन नहीं छुआती।''

**प्रश्न 15. ''धनिया का चरित्र एक द ढ़, साहसी और कर्मठ ग्राम नारी का चरित्र है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** गोदान उपन्यास की नायिका धनिया सर्वगुण सम्पन्न ग्रहिणी है। वह अपने पति का कदम-कदम पर साथ देती है उसका मार्गदर्शन करती है। वह परिवार की गाड़ी को किसी-न-किसी तरह से खींचती चली जा रही है। वह पतिपरायणा नारी है। 'गोदान' में हम उसे कभी भी दूसरे की ओर ताकते नहीं देखते। वह आत्मप्रशंसा की भूखी भी है। होरी कदम-कदम पर उसकी प्रशंसा के पुल बांधता है। भोला का उदाहरण देता है। जीवन में वह सदैव संघर्षशील रही है। सबसे अधिक तो धनिया स्वाभिमानी स्त्री है। अपने स्वाभिमान को वह कभी भी चोट नहीं पहुंचने देती। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह होरी तथा गाँव के लोगों का विरोध भी करना जानती है। इस प्रकार का व्यक्तित्त्व होते हुए भी वह ममता की मूर्ति है। गोबर की पत्नी झुनिया को वह अपने ममत्व की छाँव में, दया के आँचल में समेट लेती है। गोदान में वह नायिका के पद पर है। वह होरी की संबल एवं सहधर्मिणी है। धनिया के बिना होरी का व्यक्तित्त्व अधूरा है।

**प्रश्न 16. 'गोदान' प्रेमचंद की सर्वोत्तम रचना है।'' इस कथन की समीक्ष कीजिए।**

**उत्तर :** उपन्यास जगत में प्रेमचंद का आगमन एक ऐतिहासिक घटना मानी जा सकती है। प्रेमचंद ने अपने समय से पूर्व लिखित उपन्यासों को पढ़ा था। अतः प्रेमचंद की द ष्टि में उपन्यास का उद्देश्य केवल मनोरंजन मात्र नहीं था बल्कि मानव जीवन का चित्रण करना था। 'गोदान' प्रेमचंद का अंतिम व सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। गोदान तक आते-आते प्रेमचंद जी का आदर्शवादी द ष्टिकोण यथार्थवादी हो यगा है। प्रेमचंद की 'सेवासदन', निर्मला, गबन, प्रेमाश्रम, प्रतिज्ञा आदि उपन्यासों में आदर्शवादी द ष्टि है तो रंगभूमि, कर्मभूमि, कायाकल्प में गाँधी जी की अहिंसा, सत्याग्रह, प्रेम, सहनशीलता, सुधारवादी द ष्टि को अपनाया है। 'गोदान' इनसे सर्वथा भिन्न है। यह यथार्थवादी रचना है। नायक होरी के शोषण का जीता-जागता चित्रण है। गोदान प्रेमचंद की कला का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

**प्रश्न 17. ''गोबर की नई पीढ़ी का विद्रोही युवक है।'' गोदन के परिप्रेक्ष्य में गोबर के लिए क्या यह कथन सत्य है?**

**उत्तर :** गोदान का गोबर अधिकारों के लिए जाग त किसानों का प्रतिनिधि है। परन्तु गोबर के चरित्र में दुर्बलता यह है कि वह पलायन करता है और साधारण मजदूर बनकर अनैतिकता के गर्त में गिर पड़ता है। अतः गोबर जाग त किसान का प्रतिनिधित्व करते हुए भी टाईप चरित्र नहीं बन पाता। गोबर के चरित्र मं आज के जाग त युवक की विशेषताएँ मिलती हैं, जैसे गोबर शहर आकर यह जान चुका है कि बड़े लोग किस प्रकार शोषण करते हैं। जिसके हाथ में शक्ति है वह गरीबों का शोषण करके बड़ा आदमी बन जाता है। अतः वह अपने पिता होरी से बार-बार कहता है कि परिश्रम करने पर भी पेट भर रोटियाँ नहीं मिलती तो मरजाद तथा धर्म सभी कुछ ढोंग है। वह अनपढ़ होते हुए भी प्राचीन मर्यादाओं का पालन नहीं करना चाहता। यह उसकी जाग ति एवं नएपन का सूचक है।

**प्रश्न 18. 'गोदान' में प्रो० मेहता के माध्यम से प्रेमचंद की आत्मा बोलती है। इस कथन का औचित्य सिद्ध कीजिए।**

**उत्तर :** मेहता 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद की धारणाओं के वाहक हैं वैसे वे राय साहब के अंतरंग भी हैं। अतः इस वर्ग की सामान्य लक्षणशीलता उनके आचार से प्रतिबिम्बित होती चलती है। अपवाद रूप में अनेक स्थलों पर उनकी स्वलक्षणशीलता भी उभरती है, जो इन्हें इस वर्ग के प्राणियों में विशिष्ट बना डालती है। अपने आचार व प्रचार से वे पूँजीवादी सभ्यता की विशेषताओं को ही आलोकित करते हैं। मेहता के चरित्र में स्पष्टवादिता, निर्भीकता, मेहनती, प्रकृति के प्रति प्रेम, नारी के प्रति सह्रदयता की भावना विद्यमान है।

**प्रश्न 19. 'कथा शिल्प; की विविधता की द ष्टि से गोदान का मूल्यांकन कीजिए।**

**उत्तर :** गोदान उपन्यास में विविध कथा-सूत्र और विभिन्न प्रणालियो को व्याहृत किया गया है। इस द ष्टि से इसमें पर्याप्त विविधता है। इसमें लखनऊ जनपद के नगर एवं ग्रामीण, दोनों क्षेत्रों के प्रायः प्रत्येक वर्ग का प्रत्येक अवस्था के व्यक्ति का चित्र आ गया है—इसमें उच्छ ंखल युवक भी है, देनन्द्रिन कर्म में लिप्त शोषित और उत्पीड़ित व्यक्ति भी हैं, महाजन भी हैं, कारिन्दे और जमींदार भी हैं, बुद्धिजीवी भी हैं और दार्शनिक भी हैं, आदर्शवादी व्यक्ति भी हैं, स्वार्थान्ध एवं मक्कार व्यक्ति भी हैं। इसी प्रकार कथा-प्रणालियाँ भी विविध हैं—कहीं विश्लेषणात्मक है तो कहीं भावात्मक है तो कहीं वर्णनात्मक और कहीं विचारात्मक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि 'गोदान' उपन्यास में यथार्थपरकता देने के लिए विविधता को अपनाया गया है क्योंकि सर्वत्र विविधता ही विविधता है।

**प्रश्न 20. 'गोदान' में लेखकीय उद्देश्य क्या है? समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** कोई भी रचना निरुद्देश्य नहीं होती, उसकी स जता के पीछे कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है। चाहे वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ही न हो। 'गोदान' भी एक सोद्देश्य पूर्ण रचना है। स्वयं प्रेमचंद का उद्देश्य गोदान में वर्णित हुआ है वह यह है कि वे अपने युग के यथार्थ की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं। समाज में व्याप्त अनाचार, अत्याचार, पापाचार तथा भ्रष्टाचार का वर्णन करना चाहते हैं। साथ ही देश की आर्थिक दुर्व्यवस्था का चित्रण करना चाहते हैं, क्योंकि प्रेमचंद एक युगीन कालाकार हैं वे यह भी बताना चाहते हैं कि अंग्रेजी सभ्यता संस्कृति में भारतीय किसानों का किस तरह शोषण होता था। किस प्रकार उनके साथ अत्याचार होता था। जमींदारी व्यवस्था में किसान दिन प्रतिदिन ऋणग्रस्त होते चले जाते थे। इस प्रकार कह सकते हैं कि गोदान उपन्यास में लेखक का अथवा एक उद्देश्य भी रहा है।

**प्रश्न 21. 'गोदान' में गोबर और झुनिया में प्रेम-प्रसंग को अपने शब्दों मे निरुपित कीजिए।**

**उत्तर :** गोबर होरी का पुत्र है और झुनिया भोला सहीर की विधवा पुत्री है। इन दोनों का प्रसंग होरी की मुख्य कथा को पूर्ण गति देता है। गोबर का झुनिया से प्रेम-संबंध होने के कारण जब वह गर्भवती हो जाती है और होरी के घर आ जाती है। गोबर तो घर से भाग जाता है किंतु जाति बाहर की बहू रखने के कारण होरी को पूरे

गाँव से बहिष्कृत ही नहीं होना पड़ता बल्कि पुनः हुक्का पानी चलाने के लिए उसे दण्ड देना पड़ता है। इस भयानक आर्थिक दबाव से होरी की कमर टूट जाती है और इसी के फलस्वरूप उसका घर गिरवी हो जाता है। होरी को अपने ही खेतों में दातादीन की मजदूरी करनी पड़ती है। गोबर शहर जाकर चाय की दुकान खोल कर जब कुछ रुपए कमाकर घर लौटता है उसका स्वाभाविक यौवनगत उच्छ ंखलता विद्रोह का रूप ले लेती है। वह झुनिया को लेकर पुनः लखनऊ लौट जाता है। साहूकारों-महाजनों के प्रति गोबर में अदम्य विद्रोह चेतना है और इसी रूप में प्रेमचंद जी ने उसे प्रस्तुत किया है।

**प्रश्न 22. 'गोदान' के आधार पर ब्राह्मण मातादीन के नैतिक पतन को उजागर कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' के सिलिया और मातादीन के प्रसंग के आधार पर ही मातादीन का नैतिक पतन की कहानी है। सिलिया चमारिन है और मातादीन पंडित और साहूकार दातादीन का पुत्र। मातादीन-सिलिया का प्रेम एक दिन उसे अपने घर में रखने को विश कर देता है, किन्तु जब चमार मातादीन को खूब पीटते हैं और उसके मुँह में हड्डी का टुकड़ा डाल देते हैं और मातादीन को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है तो वह सिलिया को ही उसकी जड़मान कर उसे घर से निकाल देता है। अबला सिलिया को ही होरी के घर शरण मिलती है। उसके बाद तो वह होरी की मुख्य कथा को अत्यधिक प्रेरण और गति देने लगती है। यद्यपि मातादीन का शुद्धि संस्कार कर दिया जाता है किंतु अन्ततः वह सिलिया की झोंपड़ी में ही आकर बस जाता है।

**प्रश्न 23. 'गोदान' उपन्यास की कथावस्तु के आवश्यक गुणों की समीक्षा करें।**

**उत्तर :** प्रत्येक कथा एक श्रेष्ठ कथानक में ढलकर ही श्रेष्ठ एवं व्यापक प्रभाव उत्पन्न करती है। कथा कथानक या कथावस्तु का आधार है, परन्तु कथावस्तु कथा से भी एक उच्च कोटि की संगठन प्रक्रिया हैं कथा कच्चा माल है जो कथावस्तु में ही ढलकर ग्राह्य, वरेण्य एवं पक्का होता है। 'गोदान' उपन्यास की कथावस्तु में सभी गुण विद्यमान हैं—1. **मौलिकता**—यह उपन्यास की कथावस्तु का सर्वप्रथम गुण है। इस आधार पर होरी की असहाय अवस्था, कार्मिक माह में बैलों के मरने पर उत्पन्न स्थिति से संबंधित कथा को ले सकते हैं। 2. रोचकता के अन्तर्गत बूढ़ों की दौड़, कुश्ती आदि का प्रसंग। 3. स्वाभाविकता के रूप में झुनिया के पति और गोबर के प्रेम को ले सकते हैं। 4. मार्मिकता के अन्तर्गत उपन्यास के अनेक स्थल हैं, किसानों की दशा, गोबिन्दी का प्रसंग आदि। 5. **गतिशीलता**—यह गुण तो सम्पूर्ण कथावस्तु के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार से स्पष्ट है कि 'गोदान' उपन्यास की कथावस्तु में सभी गुण सहज रूप में उपलब्ध है।

**प्रश्न 24. 'गोदान' उपन्यास के आधार उ समय की राजनैतिक परिस्थिति का वर्णन कीजिए।**

**उत्तर :** प्रेमचंद ने 'गोदान' उपन्यास में स्वयं राजनैतिक स्थिति पर विचार प्रकट न करके अप्रत्यक्ष रूप में रामसेवक के शब्दों में कहते हैं—''थाना, पुलिस, कचहरी, अदालब सब हैं, हमारी रक्षा के लिए, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है, जो गरीब है, बेबस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। यहाँ तो जो किसान है, वह सबका ............... है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दें, तो गाँव में रहना मुश्किल, जमींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे तो निर्वाह न हो। थानेदार और कॉन्स्टेबल तो, जैसे उसके दामाद हैं। जब उनका दौरा गाँव में हो जाए, किसानों का धरम है कि वह उनका आदर-सत्कार करें, नजर-नयाजदें, नहीं एक रिपोर्ट में गाँव बँध जाए।''

राजनैतिक परिस्थिति का यह उक्त उदाहरण 1936 के समय यथार्थ अभिव्यक्त है। अंग्रेजों का भारतीय जनता एवं किसानों के प्रति ऐसा ही व्यवहार था।

**प्रश्न 25. 'गोदान' उपन्यास के आधार पर आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।**

**उत्तर :** तत्कालीन भारतीय किसान की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी। भारतीय गाँव में दरिद्रता का एकछत्र राज्य था। आर्थिक विपन्नता और दरिद्रता केवल होरी की ही नहीं थी। प्रायः भारत के सभी किसानों की थी। किसान परिश्रमपूर्वक जिस फसल को पैदा करता है, शोषक वर्ग किसान के परिश्रम पर विलासिता का जीवन

जीता है और किसान भूखा ही रह जाता है। होरी का बेटा गोबर बाल विधवा झुनिया को जब अपने घर ले आता है तो पंचायत होरी पर दण्ड लगाती है। उदाहरण—

'होरी की सारी फसल दंड की भेंट हो चुकी थी। बैसाख तो किसी तरह कटा मगर जेठ लगते घर में एक दाना न रहा।

निराहार कोई के दिन रह सकता है। उधार ले तो किससे? गाँव के सभी छोटे-बड़े महाजनों से तो मुँह चुराना पड़ता था। मजूरी करे भी तो किसकी? जेठ की सिंचाई लगी हुई थी लेकिन खाली पेट मेहनत कैसे हो?

होरी की पत्नी धनिया और बेटी के पास कपड़ों की हालत दयनीय है। होरी भारत के 80 प्रतिशत किसानों का प्रतिनिधित्व करता है।

**प्रश्न 26. "मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी।" इस कथन की समीक्षा दीजिए।**

**उत्तर :** मालती तितली स्वरूप है। तितली के समान इधर-उधर भटकती रहती है, विचार करती रहती है। उसके जीवन में उच्छ खंलता विद्यमान है। रंग-बिरंगे परिधान में तितली के समान चहकती है। परन्तु केवल उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है वह अन्दर से मधुमक्खी के समरूप त्यागमयी है। वह अपना जीवन औरों के लिए त्याग देती है। गरीबों की सेवा करती है। अपने व्यवसाय (डाक्टरी) से किसानों की मदद करती है। स्वयं अपनी इच्छाओं को दबाकर दूसरों पर दया-भावना रखती है। मधुमक्खी के समान, जिस तरह मधुमक्खी अपने एकत्रित किए गए रस (शहद) को जनकल्याण हेतु अर्पित कर देती है उसी प्रकार वह भी अपने संग्रह को, अपनी हंसी को दूसरों पर परोपकार में लगा देती है।

**प्रश्न 27. गोदान उपन्यास किसानों के शोषण की कहानी करता है। क्या यह सही है। मुक्ति युक्त उत्तर दीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' उपन्यास का कथाफलक ग्रामीण एवं शहरी अंचल से जुड़ा हुआ है, परन्तु फिर भी ग्रामीण परिवेश ही अधिक मुखर रूप में सामने आया है साथ ही दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए भी हैं। उपन्यास किसानों के शोषण की सच्ची तस्वीर हमें दिखाता है। कदम-कदम पर अनपढ़ किसानों से लगान वसूल किया जाता है, उनका सारा अनाज लगान रूप में खेत से ही जमींदार के घर चला जाता है। इसका स्पष्ट उदाहरण होरी का है। दातादीन क्या, राय साहब क्या, पटेश्वरी क्या सभी शोषण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। बेचारे किसान उन्हीं साहूकारों का लगान चुकाते-चुकाते अंत में म त्यु तक को स्वीकार लेते हैं, होरी इसका प्रमाण है।

**प्रश्न 28. 'गोदान' में राय साहब के माध्यम से जमींदारों की आपसी ईर्ष्या व्यंजित हुई है। स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर :** जब होरी धनुष-यज्ञ लीला समारोह में, राजा जनक के माली की भूमिका के लिए झूठे वर्चस्व एवं दिखावे की वास्तविकता स्पष्ट करते हुए कहते हैं—"हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोष अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हम में से किसी पर डिग्री हो जाए, कुर्की आ जाए, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाए, किसी का जवान बेटा मर जाए, किसी की विधवा बहु निकल जाए, किसी के घर में आग लग जाए, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाए या अपने आसामियों के हाथों पिट जाए तो उसके सभी भाई उस पर हंसेंगे, बगलें जाएंगे, मानो संसार की सम्पदा मिल गई हो और मिलेंगे तो इतने प्रेम से जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं।"

**प्रश्न 29. धनिया वात्सल्य एवं करुणा की प्रतिभा है। स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर :** धनिया वात्सल्य एवं ममत्व की भावना से युक्त नारी है, उसके एक पुत्र गोबर और दो पुत्रियाँ सोना और रूपा है। उनके प्रति तो उसकी ममता अपार है ही अपितु झुनिया के प्रति भी उसकी ममता दिखाई पड़ती है। जब गोबर झुनिया को अपने घर छोड़कर शहर चला जाता है तो उस समय झुनिया के प्रति धनिया की ममता देखते ही बनती है। यद्यपि धनिया आरम्भ में झुनिया के विपरीत थी परन्तु उसके मन में अचानक मात स्नेह उमड़ आता

है। वह स्वयं होरी से कहती है—''देखो तुम्हें मेरी सौगन्ध है, उस पर हाथ न उठाना। वह बेचारी तो दुर्भाग्य की मारी है।'' गोबर ने समाज के बंधनों को तोड़कर विधवा झुनिया से विवाह किया था। समाज इसे स्वीकार नहीं कर पा रहा था परन्तु ऐसे समय में धनिया का झुनिया के प्रति वात्सल्य भावना उसे अपनी गोद में समेटकर किसी छोटे शिशु के समान अभय प्रदान कर रही थी।

**प्रश्न 30. 'गोदान' उपन्यास में प्रो० मेहता के नारी संबंधी विचारों का वर्णन कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' उपन्यास में प्रो० मेहता प्रेमचंद का प्रतिनिधि है। प्रेमचंद नारी के प्रति आंतरिक विचारों को मेहता के माध्यम से प्रकट करते हैं। जैसे मेहता एक स्थान पर कहता है—''मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजुबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है।

स्त्री प थ्वी की भांति धैर्यवान है, शक्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है। पुरुष आकर्षित होता है स्त्री की ओर, जो सर्वांश में स्त्री है।'' कहने का अभिप्राय मेहता की नजर में नारी आदरणीय एवं सम्माननीय है।

**प्रश्न 31. 'गोदान' उपन्यास के कथा विकास की कौन-कौन सी पद्धतियाँ व्यवहृत हुई हैं?'' विवेचन कीजिए।**

**उत्तर :** उपन्यास के शिल्प में विविधता, सुंदरता तथा कलात्मकता लाने के लिए उपन्यासकार विभिन्न कथात्मक पद्धतियों का प्रयोग करता है—इसे वर्णन वैचित्र्य भी कर सकते हैं। 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद जी ने अनेक प्रणालियों से कथा का विकास किया है। कहीं वह सीधे तौर पर वर्णनात्मक रूप से कथा कहते जाते हैं तो कभी पात्रों की मनःस्थिति का विश्लेषण करते चलते हैं, कही कथा का विकास स्म ति के रूप में होता है तो कहीं नाटकीयता दिखाई देती है। क्योंकि यह व हदाकार उपन्यास है इसलिए इसमें अनेक पद्धतियाँ अपनाई गई हैं—1. कथात्मकता तथा वर्णनात्मक पद्धति, 2. नाटकीय अथवा संवादात्मक पद्धति, 3. मनोविश्लेषणात्मक पद्धति, 4. काव्यात्मक अथवा भावात्मक पद्धति, 5. विचारात्मक पद्धति।

**प्रश्न 32. ''मेहता-मालती दोनों प्रेमी युगल का प्रेम-प्रसंग न केवल उनके उदात्त चरित्रों को ही उद्घाटित करता है, वरन् प्रेम और नारी के संबंध में स्वयं प्रेमचंद जी के विचारों को भी प्रकट करता है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** मेहता और मालती के रूप में प्रेमचंद जी ने आदर्श प्रेम का चित्रण किया है। मेहता व्यवसाय से प्राध्यापक और दार्शनिक हैं किंतु जो मानवतावादी द ष्टिकोण, नारी के प्रति उदात भावना और श्रद्धा भावना तथा प्रेम की उज्जवल परिकल्पना उनमें पाई जाती है वह उन्हें एक आदर्श व्यक्ति बना देती है। इसके साथ ही मालती प्रारम्भ में यद्यपि एक आधुनिका, फैंशन परस्त और चुलबुली युवती के रूप में उभरता है और प्रेम को मन बहलाने का एक साधन मात्र समझती है, वही मेहता के संसर्ग में आने के उपरान्त एक प्रेमपरायणा, सात्विक, चरित्र-संपन्न, नैतिकतावादी और आदर्श प्रेमिका का रूप धारण कर लेती है। मेहता के प्रभाव में आने के बाद प्रेम के सच्चे स्वरूप का निदर्शन उसे होता है और आत्म-त्याग एवं समर्पण की साक्षात प्रतिभा बन जाती है मालती। इस प्रकार स्पष्ट है कि मेहता प्रेमचंद के प्रेम संबंधी विचारों का साक्षात प्रतिनिधित्व करता है।

**प्रश्न 33. चरित्र-चित्रण की विभिन्न पद्धतियों का विवेचन कीजिए।**

**उत्तर :** उपन्यास में पात्र के साथ उसका चरित्र-चित्रण भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लेखक की जितनी योग्यता घटना और पात्रों के चयन में अपेक्षित है उससे भी कहीं अधिक उनके संयोजन में—उनके भव्य एवं कलापूर्ण निर्वाह में अपेक्षित है। 'गोदान' उपन्यास में जिन पद्धतियों को अपनाया गया है उनके कारण उपन्यास में चित्रित पात्रों

का चरित्रांकन अत्यन्त सशक्त एवं यथार्थपरक बन पड़ा है और उनमें सहज मार्मिकता का गुण भी आ जाता है। ये पद्धतियाँ निम्न हैं—

1. विश्लेषणात्मक पद्धति, 2. संवादात्मक पद्धति, 3. मनोवैज्ञानिक पद्धति, 4. पूर्वव तात्मक पद्धति, 5. भावात्मक पद्धति।

**प्रश्न 34. 'गोदान' उपन्यास में ग्रामीण एवं नागरिकजीवन से संबंधित कौन-कौन सी समस्याएँ चित्रित हुई हैं?**

**उत्तर :** सामाजिक यथर्थ का चित्रण होने के कारण 'गोदान' उपन्यास में ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की अनेक समस्याओं का अत्यन्त सुन्दर एवं यथार्थपरक चित्रण हुआ है। ये समस्याएँ विभिन्न पक्षों से संबंधित है—विशेष रूप से जर्मीदारों-साहूकरों द्वारा किसानों के आर्थिक शोषण और सामाजिक ढांचे से ये समस्याएँ संबंधित है—
1. किसान-महाजन समस्या, 2. व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व अथवा सामाजिक दबाव की समस्या, 3. अन्तर्जातीय एवं अनुलोम विवाह की समस्या, 4. अनमेल विवाह की समस्या, 5. नारी के घुटन की समस्या।

**प्रश्न 35. 'गोदान' उपन्यास में गाय की महत्ता प्रतिपादित की गई है। समीक्षा कीजिए।**

**उत्तर :** 'गोदान' उपन्यास गो-दान से संबंधित है अर्थात गाय का दान देना। इस उपन्यास में हिन्दू धर्म के व्यक्ति के लिए गाय कितनी अधिक महत्त्वपूर्ण है इसकी महत्ता प्रतिपारित हुई है। क्योंकि कृषक संस्कृति में गाय का भी वही महत्त्व है जो खेत का। गाय के प्रति श्रद्धा भाव कृषक संस्कृति की विशेषता है। प्रत्येक किसान के मन में गाय की लालसा होती है। गाय की सेवा करना किसान की सबसे बड़ी साध होती है। होरी सोचता है—''गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सवेरे-सवेरे गऊ के दर्शन हो जाए तो क्या कहना।'' होरी जब भोला अहीर की गाय को देखता है तो कहता है—''जी चाहता है कि इसके दर्शन करता रहूँ। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो। हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। ग हस्थ के घर में एक गाय भी न हो तो कितनी लज्जा की बात है।'' प्राय' हिन्दू धर्म में मान्यता है कि यदि व्यक्ति का परलोक सुधारना है तो उसके लिए वह स्वयं या उसके परिवार वाले उसके नाम से एक गाय ब्राह्मण को अवश्य दान में दे। अन्यथा उसका परलोक गमन दुःखदायीहोगा। यह तथ्य भी 'गोदान' उपन्यास से स्पष्ट होता है।

# आवारा मसीहा

**एम.ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)**
**M.A. Hindi (Previous)**
**Paper-II**

**दूरस्थ शिक्षा निदेशालय**
**महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय**
**रोहतक–124 001**

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

# विषय-सूची

**खण्ड-क**

व्याख्या 3-29

**खण्ड-ख**

आलोचना

1. आवारा मसीहा : सार 30
2. आवारा मसीहा : नामकरण 34
3. आवारा मसीहा : जीवनी कला के परिप्रेक्ष्य में 37
4. आवारा मसीहा : संवेदनशील हृदय का अंकन 42
5. आवारा मसीहा : उद्देश्य 46
6. आवारा मसीहा : संवाद योजना 50
7. आवारा मसीहा : चरित्र-चित्रण 56
8. चरित्र-चित्रण : शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय 61
9. चरित्र-चित्रण : राजू 66
10. चरित्र-चित्रण : मोक्षदा 69
11. आवारा मसीहा : भाषा शैली 71

# विषय-सूची

## आवारा मसीहा


| क्र. | विवरण | | प ष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| | **खण्ड - क** | | |
| | व्याख्या | ------------------------ | 3-29 |
| | **खण्ड - ख** | | |
| | आलोचना | | |
| 1. | आवारा मसीहा : सार | ------------------------ | 30 |
| 2. | आवारा मसीहा : नामकरण | ------------------------ | 34 |
| 3. | आवारा मसीहा : जीवनी कला के परिप्रेक्ष्य में | ------------------------ | 37 |
| 4. | आवारा मसीहा : संवेदनशील हृदय का अंकन | ------------------------ | 42 |
| 5. | आवारा मसीहा : उद्देश्य | ------------------------ | 46 |
| 6. | आवारा मसीहा : संवाद योजना | ------------------------ | 50 |
| 7. | आवारा मसीहा : चरित्र-चित्रण | ------------------------ | 56 |
| 8. | चरित्र-चित्रण : शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय | ------------------------ | 61 |
| 9. | चरित्र-चित्रण : राजू | ------------------------ | 66 |
| 10. | चरित्र-चित्रण : मोक्षदा | ------------------------ | 69 |
| 11. | आवारा मसीहा : भाषा शैली | ------------------------ | 71 |

# आवारा मसीहा

# खण्ड - क

## व्याख्या भाग

"इस अपराध का दण्ड पीठ पर चाबुक खाना ही नहीं था, अस्तबल में बन्द होना था। परन्तु शरत पर इन बातों को कोई असर नहीं होता था। यहाँ तक कि स्कूल में भी दुष्टता करने से वह नहीं चूकता था। अक्सर वहाँ की घड़ी समय से आगे चलने लगती। उसको ठीक करके चलाने का भार वैसे अक्षय पंडित पर था। लेकिन दो घंटे खूब जमकर काम करने के बाद तम्बाकू खाने की इच्छा हो आना स्वाभाविक था। तब वे स्कूल के सेवक जगुआ की पानशाला में जा उपस्थित होते। इसी समय शरत् की प्रेरणा से दूसरे छात्र उस घड़ी को दस मिनट आगे कर देते।"

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण 'विष्णु प्रभाकर' द्वारा लिखित शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' उपन्यास से 'अवतरित है। शरत बचपन से ही आवारा, शरारती, घुमक्कड़ थे। स्कूल में मित्रों की एक मण्डली तैयार हो गई थी। शरत उनमें प्रमुख थे। पढ़ने लिखने में शरत तेज थे किन्तु अपने इसी शरारती, घुमक्कड़ी स्वभाव से वे एक जगह टिक न सके। इसी कारण उनकी शिक्षा ठीक प्रकार से न चल सकी। शरत के मामा उनकी देखभाल करते थे। एक दिन उनके मामा मोतीलाल बच्चों को लेकर गंगा के किनारे घूम रहे थे कि अचानक ठाकुरदास आ निकले, जो उनके बड़े मामा था। उन्होंने बच्चों को तुरन्त परीक्षा के लिए प्रस्तुत होने के लिए कहा। क्योंकि शरत् ने अपने मित्रों के साथ मिलकर घड़ी को आगे कर दिया था। इसी दण्ड के बारें में लेखक कहता है।

**व्याख्या** : लेखक कहता है कि शरत बिना ही बताए कुछ बालकों के साथ गंगा के किनारे पर घूम रहें हैं। उनसे रहा नहीं गया, वे बिगड़ पड़े। घर आकर उन्होंने शरत् को दण्ड दिया। दण्डस्वरूप उनकी पीठ पर चाबुक मारे। फिर उन्हें घुड़साल में बंद कर दिया। लेकिन वे स्वभाव से ही ऐसे थे कि शान्त रह ही नहीं सकते थे। यहाँ तक कि स्कूल में भी शरारत करने से नहीं चूकते थे। स्कूल की घड़ी की सुई आगे कर देते थे। इसी कारण वह घड़ी वास्तविक समय से आगे चलने लगी। उस घड़ी को ठीक समय पर रखना एवं जाँचना परखना सब वहाँ रह रहे अक्षय पंडित का काम था। अक्षय पंडित तम्बाकू खाने के शौकीन थे। लेकिन दो घण्टे खूब जमकर मेहनतकश कार्य करने के बाद तम्बाकू खाने की ललक हो उठना उनके लिए स्वाभाविक थी। तम्बाकू बनाने अथवा तैयार करने में थोड़ा समय तो लगता ही है इसी कारण वह तम्बाकू खाने के लिए स्कूल के नौकर जगुआ की पान की दुकान पर तम्बाकू खाने चले जाते थे। इस मौके को शरत् देखकर अपने मित्रों को संकेत देते कि घड़ी को आगे कर दें। तभी मित्र घड़ी को दस मिनट आगे कर देते थे।

**विशेष** :
(1) शरत् के शरारती व्यक्तित्व का उद्घाटन है।
(2) शरत् पर दण्ड का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था क्योंकि वे दण्ड खाकर भी शरारत पर शरारत करते रहते थे।
(3) शरत् का स्वच्छन्द स्वभाव व्यक्त हुआ है।
(4) शरत् के बाल्यकाल का वर्णन सहज सरल और अन्य बालकों से हटकर है।
(5) गद्यांश की भाषा सहज, सरल एवं प्रचलित शब्दों की वाहिनी है।

''न जाने कितनी बार वह इस पवित्र मौन-एकान्त में आकर बैठा होगा। दूर से आती बच्चों की शरारतों की आवाजें गंगा की कल-कल ध्वनि में मिलकर एक रहस्मय वातावरण का निर्माण करती होंगी। प्रकृति का सौन्दर्य जैसे उसके थके तन-मन को सहलाता होगा और तब उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की होगी, 'मैं सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी

करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन-भर सौन्दर्य की उपासना करूँगा, कि जीवन-भर अन्याय के विरुद्ध लडूँगा, कि मैं कभी छोटा काम नहीं करुँगा,''

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' उपन्यास से अवतरित है। शरत स्वच्छन्द एवं शरारती स्वभाव के थे। उन्हें एकान्तप्रिय था। बचपन में ही वे एकान्त में जाकर बैठ जाते थे और न जाने कितनी कितनी देर बैठे क्या-क्या सोचते रहते थे। इसी बात का वर्णन करता हुआ लेखक बताता है।

**व्याख्या** : लेखक बताता है कि शरत न जाने कितनी बार कुछ क्षणों के लिए अपनी शरारतों को छोड़कर इस गंगा नदी के पवित्र किनारे पर मौन एकान्त में आकर बैठा होगा। यह वातावरण शरत को प्रिय था और वह इसका आनन्द लेने के लिए यहीं अनेक बार आकर मौन बैठता था और प्रक ति के सौन्दर्य को निहारता था। दूर से बच्चों की शरारतों का शोर और बहती गंगा की कल-कल की ध्वनि निश्चय ही एक रहस्यपूर्ण वातावरण का निर्माण करती होंगी। यह प्रकृति का सौंदर्य शरत के हारे-थके, उदास मन को सहलाता, दुलारता होगा और उसमें संघर्ष करने की हिम्मत भरता होगा। यह हिम्मत, साहस पाकर ही शरत ने प्रतिज्ञा की होगी कि मैं सूर्य, गंगा, हिमालय को गवाह मानकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन भर प्राकृतिक सौन्दर्य की उपासना करुँगा, कि मैं जीवन भर अन्याय, अत्याचार, पाप के विरूद्ध लड़ता रहूँगा, कि मैं जीवन भर छोटा, घ णास्पद, मूल्यहीन, विघटनकारी कार्य नहीं करुँगा। अर्थात शरत ने प्रतिज्ञा की होगी कि मैं और मेरी लेखनी सदैव प्रकृति की उपासना करते रहेंगे, समाज में हो रहे हर अन्याय, अत्याचार के प्रति लड़ते रहेंगे और हम कभी भी घटिया, नीच, छोटा, निन्दनीय, घ णास्पद कार्य नहीं करेंगे।

**विशेष** : (1) शरत के प्रकृति प्रेमी ह्रदय का होना उजागर हुआ है।

(2) शरत साहित्य का उद्देश्य स्पष्ट होता है कि वह साहित्य स जन में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति करेगा। अतः वह सत्य का पक्ष लेगा, सौन्दर्य की उपासना तथा अन्याय का विरोध करेगा।

(3) भाषा दार्शनिक भावों से पूर्ण एवं संस्कृत शब्दावली युक्त है।

(4) परोक्षशैली में शरत का चरित्रांकन हुआ है।

''शरत सुन्दर नहीं था। आँखों को छोड़कर उसमें कोई विशेषता नहीं थी। लेकिन आँखों की यह चमक ही सामने वाले को बाँध लेती थी। वर्ण श्यामता की ओर था और देह थी खूब रोगी, लेकिन पैर हिरन की तरह दौड़ने में मजबूत थे। बिल्ली की तरह पेड़ों पर चढ़ जाता था। बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, लेकिन दिशाहीन कठोर अनुशासन के कारण उसका प्रयोग पथभ्रष्टता में ही अधिक होता था।'' (प ष्ठ-20)

**प्रसंग** : लेखक विष्णु प्रभाकर शरत के आन्तरिक गुणों पर प्रकाश डालता हुआ कहता है कि वह बाह्य रुप से सुन्दर नहीं था।

**व्याख्या** : शरत सुन्दर नहीं था क्योंकि वह बंगाली था। सामान्तः बंगाली लोग श्याम वर्ण और उनके नाक-नक्श तीखे होते हैं। बेशक, वे सुन्दर नहीं पर उनकी आँखे सुन्दर थी उनमें चमक थी। इसी कारण उनका चेहरा आकर्षक हो गया था, तभी तो लेखक ने लिखा है कि जो उन्हें एक बार देख लेता था वह उन्हीं की ओर खींचा चला आता था। उनकी आँखो की चमक व्यक्ति को बाँध लेती थी। उनका रंग सॉवला था और शरीर में भी कई रोग लगे हुए थे लेकिन उनके पैर हिरण की तरह दौड़ने में मजबूत थे। बिल्ली की तरह पेड़ पर चढ़ जाते थे। अतः वे रोगों के होते हुए भी बड़े फुर्तीले थे। उनकी बुद्धि तेज थी। एक बात को सुनकर वह उसे बड़ी जल्दी याद कर लेते थे। लेकिन उनके चरित्र में उच्श्र ंखलता, स्वच्छन्दता थी इसी कारण वे दिशाहीन हो गए थे। उनके नाना-नानी ने उनको कठोर अनुशासन में रचना चाहा नहीं रह पाये और फलतः वे पथभ्रष्ट हो गए, अपनी दिशा से भटक गए।

**विशेष** : (1) शरतचन्द्र चट्टोपाध्य के रंग-रूप का वर्णन किया है।

(2) उनकी आँखों की चमक एवं सुन्दरता की तुलना मीन से की जा सकती है।

(3) शरत की स्वच्छंद प्रव ति का वर्णन है।

(4) लेखक ने बताना चाहा है कि शरत के उसके नाना-नानी ने जितना कठोर अनुशासक में बाँधना चाहा वे उतने ही उच्श्र खल हो गए। अतः उन्हें अनुशासन प्रिय नहीं था।

(5) शरत के बाह्य एवं आन्तरिक चरित्र का यथार्थ अंकन है।

(6) भाषा सहज, सरल है।

''विलासी का जिन लोगों ने मजाक उड़ाया था, मैं जानता हूँ, वे सभी साधु, ग हस्थ और साध्वी ग हिणियाँ थीं। अक्षय स्वर्ग लोक और सती लोक उन्हें मिलेगा। पर वह संपेरे की लड़की जब एक पीड़ित और शय्यागत रोगी को तिल-तिल जीत रही थी, उसके उस समय के गौरव का एक कण भी शायद आज तक उनमें से किसी ने आँखों से नहीं देखा। म त्युंजय हो सकता है एक तुच्छ आदमी हो किन्तु उसके हृदय को जीतकर उस पर कब्जा करने का आनन्द तुच्छ नहीं था।''

**प्रसंग** : लेखक विष्णु प्रभाकर बताना चाहते हैं कि शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय की कहानियों का आधार व्यक्तिगत जीवन रहा है, उसके वैयक्तिगत अनुभव रहे हैं। उन्होंने परम्पराओं की जड़ मान्यताओं के विरूद्ध एक 'विलासी' नामक कहानी लिखी थी। लेकिन लोगों ने उस कहानी का मजाक उड़ाया था। इसी संदर्भ में शरत के क्या विचार थें प्रभाकर जी व्यक्त करना चाहते हैं।

**व्याख्या** : 'विलासी' नामक कहानी के मूल में घटना है कि 'विलासी' नाम की लड़की ने म त्युंजय नामक सपेरे को सेवा से बचा लिया। म त्युंजय ने विलासी से विवाह कर लिया। समाज के ठेकेदार यह सहन न कर सके और म त्युंजय को जाति से बाहर कर दिया। शरत का कहना है कि इसका विरोध करने वाले लोग स्वयं गार्हस्थ जीवन का निर्वाह करने वाले थे, शादी-सुदा थे। उन्हें समाजिक मान्यताओं को तोड़कर विवाह करना स्वीकार्य नहीं हुआ। हाँ, धर्म की जड़ मान्यताओं के अनुसार उनका विरोध करना, धर्म एवं पुण्य का कार्य किया होगा। भले ही उन्हें इस आधार पर निश्चित तौर से स्वर्ग मिले लेकिन यह मानवीयता का कार्य नहीं था। रोगी और शय्यागत मनुष्य की सेवा करने में जो पुण्य है। उससे वे परिचित नहीं थे। तिल-तिल कर मरते हुए रोगी की सेवा करते हुए उसके हृदय को जीतने में जो गौरव है, उससे आशीर्वाद पाने में जो गौरव है उससे वे अपरिचित थे। शायद यह गौरव किसी ने भी (विरोध करने वाले) आँखों से नहीं देखा, उसे अनुभव नहीं किया। शरत् का कहना है कि हो सकता है म त्युंजय तुच्छ व्यक्ति हो, गरीब हो, दीन हो, छोटा हो लेकिन वह दुःखी था, पीड़ित था क्योंकि वह कष्ट में था और कष्ट में व्यक्ति अमीर, गरीब नहीं होता केवल दुःखी होता है। अतः ऐसी हालात में उसकी सेवाकर उसके हृदय को जीतना तुच्छ कार्य नहीं है। उसके हृदय को जीतने का आनन्द भी तुच्छ नहीं है।

**विशेष** : (1) शरत् के क्रान्तिकारी विचार व्यक्त हुए हैं जो उनकी बचपन की प्रतिज्ञा को याद दिलाते हैं कि सदैव अन्याय का विरोध करेंगे।

(2) शरत-धर्म की जड़ मान्यताओं को मानने के पक्ष में नहीं।

(3) शरत के मानवतावादी विचार व्यक्त हुए हैं।

(4) भाषा सरल, सहज एवं आम बोलचाल की है।

''माँ शब्द में जो कोमलता, जो त्याग, जो वात्सल्य और महान् दायित्व गर्भित है, उसी को मूर्त करने में उसने अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी। लेकिन उसके वात्सल्य में एक विशेषता है, वह अपनी कोख से जाए के लिए ही प्रकट नहीं होता बल्कि नारायणी, विश्वेश्वरी, हेमांगिनी, बिन्दो के समान उनके लिए भी अजस्र रूप से झरता है जो संतान स्थानीय होते हुए भी अपनी सन्तान नहीं हैं।

**प्रसंग** : लेखक शरत् की माँ के चारित्रिक गुणों पर प्रकाश डालता हुआ कहता है कि वह अमीर माँ-बाप की पुत्री होते हुए भी अपने पति के साथ अभाव और दरिद्रता में निर्मलता से दिन बिताती हुई अपने त्याग और बलिदान से शरत की पढ़ाई एवं लालन-पालन में दायित्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

**व्याख्या** : लेखक बताता है कि शरत् की माँ एक सम्पन्न परिवार की कन्या होते हुए भी उसने जीवन भर कोई सुख नहीं भोगा। उसने परिवार के दायित्व को पूरा करने के लिए एक-एक करके सारे गहने बेच दिए। वह शुद्ध भारतीय नारी का प्रतीक थी। भारतीय संस्कृति के माँ शब्द में जो कोमलता माधुर्य त्याग, वात्सल्य, बलिदान और दायित्व

भावना समाहित है, शरत् की माँ भुवनमोहिनी ने उसी को वास्तविक जीवन में मूर्त करने के लिए अपने शरीर की सारी शक्ति खर्च कर दी। उसके वात्सल्य भाव की एक विशेषता है कि वह न केवल अपने शरत् के लिए झरता है वह तो नारायणी, विश्वेश्वरी, हेमांगिनी, बिन्दो, आदि अर्थात लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती,दुर्गा आदि के समान सभी बच्चों के लिए झरता है। चाहे वे बच्चे  स्थानीय है या नहीं। अपनी संतान है या नहीं। सभी के लिए समान है।

**विशेष** : (1) शरत् की माँ भुवनमोहिनी के चारित्रिक गुणों का प्रकटीकरण है।

(2) शरत् की माँ को दया, ममता, प्रेम, आदि भावों की प्रतिभूति दिखाया है।

(3) भाषा संस्कृत निष्ठ है।

(4) सामासिक शैली है।

''उस समय धर्म ही व्यक्ति और समाज का मूलाधार था। उसके बिना समाज सुधार की कल्मना हो ही नहीं सकती थी। इसलिए राम मोहनराय ने धर्म संस्कार की ओर ध्यान दिया। उन्होंने निराकार ब्रह्म की साधना, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद को हिन्दू धर्म का शुद्ध रूप प्रमाणित करने की चेष्टा की। उन्होंने इसी उद्देश्य से 'आत्मीय सभा' की स्थापना की। इस सभा में धर्म की चर्चा के अतिरिक्त जातिभेद समस्या,सहमरण, कुलीन प्रथा, सहभोज, निषिद्ध खाद्य समस्या, बाल विधवा, बहु-विवाह और सतीप्रथा आदि कुप्रथाओं पर भी विचार किया जाता था।''

**प्रसंग** : लेखक तत्कालीन धार्मिक राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन करता है।

**व्याख्या** : लेखक कहता है कि 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाज सुधार का कार्य क्रान्ति का रूप लेता जा रहा था। इस सामाजिक क्रान्ति के मूल में धार्मिक मानसिकता थी क्योंकि धर्म ही व्यक्ति और समाज का मूलाधार होता है। इसलिए उसके बिना समाज सुधार की कल्पना व्यर्थ है। अंग्रेजों ने अपने धर्म का प्रचार करने  के लिए हिन्दू धर्म धर्म की बुराइयों को उजागर करना शुरू किया। इस समय राजा राममोहनराय सामने आए। उन्होंने धर्म संस्कारों की ओर ध्यान आकर्षित किया। हिन्दू धर्म  में सुधार लाने की कोशिश की। वे जानते थे कि व्यक्ति और समाज की चेतना धर्म से ही प्रेरित होती हैं। इसलिए सबसे पहले धार्मिक सुधारों की ही आवश्यकता है। इसी कारण भारतीय समाज में आए विखराव को देखते हुए उन्होंने निराकर ब्रह्म की साधना पर बल दिया और एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद को हिन्दू धर्म का मुख्य  स्तम्भ माना है। उन्होंने धार्मिक सुधार हेतु ही 'आत्मीय सभा' की स्थापना की थी जिसमें धार्मिक चर्चा होती थी, समाजिक बुराइयों पर भी चर्चा होती थी। इनके अतिरिक्त भी वे जातिगत भेदभाव, सहमरण, कुलीन प्रथा, सहभोग निषिद्ध खाद्य समस्या , बाल विधवा, बहु-विवाह और सतीप्रथा आदि कुप्रथाओं, बुराइयों पर विचार करते थे जिससे समाज में जाग ति फैलाई जा सके क्योंकि विचार से ही समाज में समस्या के प्रति जागरूकता फैलाई जा सकती है।

**विशेष** : (1) लेखक ने समाजिक सुधार से पहले धार्मिक सुधारों पर बल दिया है।

(2) लेखक ने तत्कालीन समाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन किया है।

(3) लेखक ने राजा राममोहनराय के एकेश्वरवादी विचारों का प्रतिपादन किया है।

(4) भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं प्रभावशाली है।

''ये आन्दोलन जनता के मन के भीतर से होकर प्रकट नहीं हुए थे। इसलिए व्यावहारिक रूप में समाज का एक छोटा सा भाग ही इनसे आन्दोलित हुआ और शेष पुरानी रूढ़ियों से चिपका रहा। जो व्यक्ति सुधारक दल में शामिल हुए उन्हें पुरातनपंथियों ने जाति-बहिष्क त करके अपमानित और लांछित करने की चेष्टा की।''

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : लेखक कहता है कि सती-प्रथा, बाल विधवा, सहमरण, निषिद्ध खाद्य समस्या आदि बुराइयों को दूर करने के लिए जो आन्दोलन हुए वे जनता के मन से नहीं निकले थे, उन्हें केवल धार्मिक सुधार के इच्छुक कुछ नेता ही थे। इसलिए यह जागरुकता कुछ ही लोगों में आ पाई शेष लोग पुरानी रुढ़ियों से ही चिपके रहे। बुराइयों को ही ग्रहण किए रहे। धर्म के ठेकेदार अब भी पुरातन पंथी विचारों और जड़ मान्यताओं को प्रश्रय देते थे। इसी कारण उन्हें

सामाजिक, धार्मिक सुधारकों, आन्दोलनकारियों को अपमानित, कलंकित करके जाति-बहिष्कृत करना शुरू कर दिया। अतः समाज सुधारक आन्दोलनकारी उन्हें धर्म के विरोधी, विद्रोही प्रतीत होते थे। उनकी द ष्टि में तो सती-प्रथा उचित थी, बाल-विधवा भी उचित थी तभी तो वे उन्हें जाति बहिष्कृत करते थे।

**विशेष** : (1) लेखक ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन किया है।

(2) धर्म के ठेकेदारों के शोषण की ओर भी संकेत किया है। और साथ ही व्यंग्य भी किया है।

''समुद्र यात्रा करना पाप था। छोटे भाई की पत्नी से बात करना पाप था। नाच, गान, क्लब, पार्टी सब कुछ पाप था। भागलपुर के प्रवासी बंगाली बिहार के मुंगेर आदि अन्य नगरों के बंगालियों की अपेक्षा अधिक कट्टर थे। और इस दल के नेता थे शरत् के नाना केदारनाथ गंगोपाध्याय। शास्त्रसम्मत आचार विचार उन्हें प्रिय था।''

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : लेखक शरत् के जीवनकाल के प्रारम्भिक दिनों की सामाजिक विचारधारा को व्यक्त करता हुआ कहता है कि समुद्र यात्रा करना पाप है क्योंकि समुद्र यात्रा से व्यक्ति विदेश को गमन करेंगे और वहाँ के उचित अनुचित खाने-पीने से अपने धर्म को भ्रष्ट करेगा। अगर कोई ऐसा करता है तो समाज के, जाति के, धर्म के ठेकेदार उसे प्रायश्चित करवाते और जाति बहिष्कृत भी करते थे। उनकी द ष्टि में छोटे भाई की पत्नी से बात करना, नाचना, गाना, क्लब, पार्टी जाना आदि सब कुछ इस तरह का पाप था। अतः धर्म के ठेकेदार समाज को, व्यक्ति को, धर्म के एक सीमित दायरे में बाँधना चाहते थे। इस कट्टरता में भागलपुर के प्रवासी बंगालियों का विशेष योगदान था। और इस कट्टरपंथी दल के मुख्य नेता शरत् के नाना श्री केदारनाथ गंगोपाध्याय थे। उन्हें यह धर्मगत आचार-विचार, अनुशासन प्रिय था।

**विशेष** : (1) लेखक ने तत्कालीन स्थितियों का अंकन किया है।

(2) लेखक ने बताने की कोशिश की है कि यहीं से शरत के अन्दर विद्रोह का अंकुर जमना शुरू हो जाता है।

(3) भाषा सहज, सरल एवं बोधगम्य है।

(4) वर्णनात्मक शैली है।

"शरत् के अभिनय में जो गांभीर्य, संयम, तेजस्विता और शोक प्रकट करने की भंगिमा थी वह कलकत्ता की प्रतिभाशालिनी अभिनेत्रियों के उन्मत्त उच्छ्वासों में भी नहीं पाई गई थी। राजू द्वारा पागलिनी के अभिनय को याद करके साठ वर्ष बाद भी लोगों को रोमांच आ जाता था।"

**प्रसंग** : शरत् ने अपने मित्र राजू के साथ मिलकर आदमपुर क्लब की स्थापना की थी। इस क्लब के नाटक विभाग ने अनेक नाटकों का मंचन किया था, जिनमें मुख्य रूप से—म णालिनी, बिटवमंगल, चिंतामणि, पाना थे। इनमें शरत् ने भी सराहनीय भूमिका निभाई थी। यहाँ इसी भूमिका की प्रशंसा करता है।

**व्याख्या** : बेशक, शरत् ने कहीं से अभिनय की शिक्षा न ली थी। फिर भी वह एक कुशल अभिनेता था। म णालिनी और पाना के नाटकों के मंचन के समय शरत् ने जो अभिनय किया था, उसमें जो स्वाभाविकता, सात्विकता थी और उसकी गांभीर्यता, संयम, तेजस्विता को देखकर यह कहा जा सकता था कि ऐसा अभिनय विशेषकर शोक के क्षणों को प्रकट करने का अभिनय तो कलकत्ता की अभिनय शिक्षा प्राप्त, अभ्यासरत प्रतिभाशालिनी अभिनेत्रियों भाववेश के क्षणों में भी कर पाती थी। राजू भी शरत् के ही समान अभिनय कला में कुशल था। उसने पागलिनी नाटक में जो अभिनय किया था उसको साठ वर्ष बाद भी दर्शक याद कर रोमांचित हो उठते हैं।

**विशेष** : (1) शरत् के चारित्रिक गुणों में अभिनय कला का भी एक विशेष गुण समाहित है, भले ही आगे चलकर उसका विकास नहीं हुआ।

(2) भाषा सरल सुबोध एवं सहज है।

"इन सब कुसंगतियों, स्वच्छन्द और दुस्साहस पूर्ण प्रव त्तियों के बावजूद इसकी साहित्य साधना मौन-मंथर गति से आगे बढ़ रही थी। दिनभर की यायावर व त्ति के बाद रात्री के एकान्त में वह अपने पोथी पत्रे के बीच पहुँच जाता। नौकरी करते समय भी इस नियम में कोई व्यवधान नहीं पड़ा। प्रारंभ में इसे कविता से प्रेम था परन्तु कविता लिखने का धैर्य उसमें नहीं था।"

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध साहित्यकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्य के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' उपन्यास से अवतरित है। यहाँ लेखक बताना चाहता है कि शरत् ने एक बार एक महफिल में गाना गाया। गाना सुनकर और शरत का मधुर कंठ देखकर वहाँ की बाई कहने लगी कि मैं पैसे के लिए गाती हूँ, गाना मेरा पेशा है, लेकिन आप क्यों मुसाहिबी करते हैं? आप गुणी व्यक्ति हैं आपको यहाँ से चले जाना चाहिए। शरत् उस नौकरी को वहीं छोड़ देता है।

**व्याख्या** : शरत् एक स्वच्छन्द प्रव त्ति का व्यक्ति था। समाज की रूढ़ियों, मान्यताओं के अनुकूल वह कभी नहीं चला। वह वेश्याओं के पास भी जाता, वहाँ गाना गाता भी, सुनता भी और शराब भी पीता लेकिन वह इन कुसंगतियों के बावजूद भी साहित्यिक था। वह दिन भर इधर-उधर भटकता फिरता था लेकिन रात होते ही मौन मंथर गति से रात्रि के एकान्त में साहित्य स जन में लग जाता था। दिन भर जो कुछ अनुभव करता था उसे रात के एकान्त में पन्नों पर उतारता था। रंगून में नौकरी करते हुए भी उसने लिखना नहीं छोड़ा, उसे अभ्यास हो चुका था। प्रारम्भ में उसे कविता से प्रेम था परन्तु कविता के कल्पनालोक में वह अधिक दिन नहीं रह सका क्योंकि उसे तो यथार्थ जीवन को उद्घाटित करना था। इसीलिए उसने काव्य रचना बन्द करके गल्प रचना में अपना ध्यान लगाया।

**विशेष** :
(1) शरत् की रचना-प्रक्रिया की ओर संकेत है।
(2) लेखक बताना चाहता है कि शरत् का उद्देश्य समाज के यथार्थ का अंकन करना था इसीलिए उनका मन कविता में नहीं लगा।
(3) संस्कृतनिष्ठ शब्दावली होते हुए भी भाषा में दुरूहता नहीं है।
(4) भाषा सहज सरल एवं बोधगम्य है।

"एक समय होता है जब मनुष्य की आशाएँ, आकांक्षाएं और अभीप्साएँ मूर्त रूप लेना शुरू कर देती हैं। और यदि बाधाएँ मार्ग रोकती हैं तो अभिव्यक्ति के लिए वह कोई और मार्ग ढूँढ़ लेती हैं। ऐसी ही स्थिति में शरत् का जीवन चरम उपेक्षाओं और अनन्त आशाओं की छाया में बीत रहा था। न साधन, न स्नेह का वरदहस्त, न सहानुभूति, न प्रोत्साहन की अम तवाणी। माँ की म त्यु के बाद तो जैसे जीवन में कोई मधुर और सरस रह ही नहीं गया था। लेकिन उसमें कहीं कुछ ऐसा था जो अतिशय भावुक होने के बावजूद उसे जीवन से हार मानने नहीं दे रहा था। अपने आक्रोश और आकांक्षाओं, अभावों और आदर्शों को अभिव्यक्ति देने के लिए उसे माध्यम मिल गया था।"

**प्रसंग** : शरत् की माँ के देहान्त के बाद उनकी जीवन यात्रा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव आया क्योंकि सहारा देने वाला कोई भी नहीं था और कोई बन्धन भी न था। शरत् के इसी वय:संधि के दौर का वर्णन करता हुआ लेखक कहता है।

**व्याख्या** : व्यक्ति के जीवन में एक ऐसा समय आता है कि जब उसकी आशाएँ, आकांक्षाएँ और इच्छाएँ मूर्त रूप धारण करना चाहती है और मूर्त रूप लेना शुरू भी कर देती हैं। यह किशोरवस्था के तुरन्त बाद का समय होता है। इस अवस्था में दमन प्रक्रिया का भी प्रभाव नहीं चलता क्योंकि अगर आकांक्षाओं के मूर्तिकरण की दिशा में कोई बाधा आती है तो यह अपनी इच्छाओं को अन्य किसी मार्ग से पूर्ण कर लेता हैं। ऐसी स्थिति में शरत् का जीवन चरम उपेक्षा में बीत रहा था। इस उपेक्षा के दौर में भी वह अनेक आशाएँ लिए हुए था। इन आशाओं को पूरा करने के लिए न कोई साधन था, यहाँ तक कि माँ का स्नेह भी नहीं रहा और धन के अभाव में न कोई सहानुभूति ही प्रकट करता था और न ही प्रोत्साहन भरे शब्द ही कहता था। माँ की म त्यु के बाद तो जीवन की सारी मधुरता, सरसता चली ही गयी। लेकिन उनके अन्दर विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रहने, संघर्ष करने की शक्ति विद्यमान थी जो उन्हें हर दुख के अत्यधिक भाववेश के क्षणों में टूट कर भी प्रतिरोधों आघातों का मुकाबला करते रहने के लिए प्रेरित करती थी। उसने अपने दु:ख, आक्रोश, आकांक्षाओं, अभावों और आदर्शों को अभिव्यक्त करने के लिए एक साहित्यरूपी माध्यम मिल गया था। अतः वह साहित्य साधना में निरत हो गया था।

**विशेष** :
(1) लेखक ने शरत के जीवनगत परिवर्तनों की ओर ध्यान आकर्षित कर उनका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।
(2) एक समय होता है – मार्ग ढूँढ लेता है? वाक्य सूक्तिपरक है। जो लेखक के जीवनानुभव का परिणाम है।
(3) शरत ने अपनी कुण्ठा, आक्रोश, दु:ख को साहित्य साधन में उत्साह एवं ऊर्जा बना लिया।

(4) भाषा सहज सरल एवं गरिमामयी है।

(5) वर्णनात्मक एवं सामासिक शैली है।

"स जन के इन दिनों में वह आकण्ठ प्रेम में डूबा हुआ था। इस आयु में हर युवक की आत्मा में प्रेम के लिए तड़प जागती है। विचारों और भावनाओं का जो तूफान उस समय उसके मन और मस्तिष्क को आलोडित करता रहता है उसकी कल्पना करना अत्यन्त दुस्तर कार्य है। कितनी विभिन्नता, कितना विरोधाभास। न सही हाड़ मांस की प्रेमिका, काल्पनिक प्रेमिका से भी तो यह भूमिका निभाई जा सकती है।

**शब्दार्थ** : आलोड़ित = उद्वेलित। दुस्तर = कठिन। आकण्ठ = गले तक।

**प्रसंग** : शरत् की साहित्य लेखन प्रक्रिया किशोरावस्था में ही आरम्भ हो गयी थी। इस अवस्था में व्यक्ति यथार्थ के धरातल पर कम कल्पना लोक में विचरण अधिक करता है। इसी अवस्था में व्यक्ति प्रेम की आकांक्षा करता है। इसी बात की ओभायक्ति लेखक करता है।

**व्याख्या** : लेखक बताता है कि जिस अवस्था में शरत ने साहित्य रचना आरम्भ की। उस अवस्था में वह पूर्णरूप से प्रेम में डूबा हुआ था। यद्यपि उसकी प्रेमिका को कोई नहीं जानता लेकिन वह अपने मामा से कहता है कि— "मैं सचमुच एक लड़की से प्रेम करता हूँ। इस आयु में ऐसा होना स्वाभाविक है। क्योंकि इस उम्र में हर युवा के अन्दर प्यार की प्यास जागती है। इस समय में शरत या किसी भी युवा के मस्तिष्क में जो विचारों और भावनाओं का तूफान उठता है उसकी कल्पना करना भी कठिन कार्य है। यह कितनी विभिन्नता है। विरोधाभास है कि शरत् को सचमुच में किसी का प्यार नहीं मिला, उसे किसी हाड़ मांस से बनी प्रेमिका का प्यार नहीं मिला। उसकी तो काल्पनिक प्रेमिका थी। उसका प्रेम मौन और रहस्यमय था। वह वास्तविक प्रेमिका के अभाव को कल्पना की प्रेमिका से पूरा कर लेता था।

**विशेष** : (1) लेखक ने शरत की जीवनी लिखते हुए उनके पत्रों, डायरियों और लोगों के संस्मरणों को आधार बनाया है। उपर्युक्त तथ्य का आधार भी उनके एवं पत्र मिलता है, जिसमें उन्होंने स्वयं कहा है— "भगवान् ने जब बुद्धि दी थी तो थोड़ी सुबुद्धि भी दे सकते थे। नहीं दी तो इतना प्यार करना क्यों सिखाया? प्यार करने के लिए एक पात्र मुझे भी दे देते तो क्या उनके विश्व में मनुष्यों की पड़ जाती? नहीं जानता यह उनका कैसा न्याय है?"

(2) किशोरावस्था का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

(3) भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी सहज, सरल एवं बोधगम्य है।

(4) वर्णनात्मक शैली है।

"लेकिन क्या एक तरफा प्रेम कम शक्तिशाली होता है? प्रत्युत्तर न मिलने पर भी क्या प्रेम अपने आप में मधुर नहीं होता? प्रेम में सफलता ही उसके होने का प्रमाण नहीं है। मन ही मन किसी के लिए अपने को विसर्जित किया जा सकता है। इस वेदना को स्नेह कहो, प्रेम कहो, आयु का दोष कहो, पर इसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। उसमें प्रेम की भूख अपार है लेकिन त प्ति का कहीं कोई साधन नहीं।"

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवंतरण विष्णु प्रभाकर द्वारा विरचित शरत्-चन्द्र चट्टोपाध्याय के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' उपन्यास से अवतरित है। यहाँ लेखक बताना चाहता है कि शरत् किशोरावस्था में है लेकिन उसे स्नेह का अभाव है। फिर भी वह कल्पना की प्रेमिका से प्रेम करता है।

**व्याख्या** : लेखक कहता है कि युवावस्था में प्रत्येक युवक के हृदय में प्रेम की प्यास जाग उठती है। वह अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति चाहता है। शरत् जैसे कुछ युवक ऐसे भी होते हैं जिन्हें प्यार नहीं मिलता और वे काल्पनिक पात्र से ही प्यार करते हैं। उन्हें बस यह त प्ति मिलती है कि वे प्यार करते हैं। इसी एक तरफी प्यार के बारे में लेखक प्रश्न करता है कि क्या एक तरफी प्रेम में शक्ति कम होती है? वह भी व्यक्ति को शक्ति एवं प्रेरणा दे सकता है। जैसे द्विपक्षीय प्रेम देता है? क्या प्रेम अपने आप में मधुर नहीं होता। प्रेम की सफलता की कामना किए बगैर ही प्रेम किया जाता है। प्रेम के मूल में त्याग, समर्पण एवं देने का भाव है। जिसमें यह भाव विद्यमान है। वह किसी

के भी प्रति स्वयं को समर्पित कर सकता है। इसी प्रेमावस्था में व्यक्ति के हृदय को एक मधुर-सी वेदना सहलाती रहती है। जिसे स्नेह कहो, प्रेम कहो, या फिर युवावस्था का दोष कहो लेकिन प्रेम के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। शरत् में भी प्रेम की भूख है, तड़प है लेकिन इस भूख को दूर करने का कोई भी साधन उसके पास नहीं है।

**विशेष** : (1) युवा मनोविज्ञान की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

(2) युवा मन की आकांक्षाओं, इच्छाओं और तड़पन की अभिव्यक्ति हुई है।

(3) भाषा सरल, सहज एवं भावपूर्ण है।

(4) प्रश्नात्मक शैली है।

"इस पलायन के साथ उसके जीवन रूपी नाटक का एक अंक जैसे समाप्त हो गया। उसकी आयु छब्बीस वर्ष की हो चुकी थी। यौवन का सूर्य मध्यावकाश में था लेकिन जैसे ठण्डे और घने कुहरे ने उसे आच्छादित कर दिया था। 'श्रीकान्त' की तरह दूसरे की इच्छा से दूसरे के घर में वर्ष के बाद वर्ष रहकर वह अपने शरीर के कैशोर्य को यौवन की ओर धकेलता रहा था लेकिन मन को न जाने किस रसातल में खदेड़ता रहा।"

**शब्दार्थ** : अंक = भाग, हिस्सा। आच्छादित = ढकना। कैशोर्य = किशोरावस्था। रसातल = पाताल

**प्रसंग** : माँ की म त्यु के बाद शरत का पिता के साथ छोटी सी बात पर झगड़ा हो गया। वह सब कुछ छोड़ बिना किसी को बताए रंगून चला गया। वह नहीं जनता था कि वह फिर कभी भारत वापिस आएगा या नहीं।

**व्याख्या** : लेखक कहता है कि शरत् का रंगून जाना विषय परिस्थितियों से पलायन था। रंगून जाने से उसके जीवन का एक अंक समाप्त हो गया। मानो उसकी उच्छ खलता, स्वच्छन्दता, प्रेम की तड़प भी खत्म हो गयी हो। उसकी उम्र 26 वर्ष की हो गयी थी। वह पूर्ण रूप से युवा हो गया था लेकिन युवावस्था की सारी इच्छाएँ, कामनाएँ, आकांक्षाएँ, अभाव के बादलों ने ढक ली थी। जिस प्रकार सूर्य की किरणों के स्वाभाविक विकास को घना कुहरा रोक लेता है। उसी प्रकार उसके यौवन की खुशियों में विकास की समस्याओं, अभावों एवम् उपेक्षाओं के घने कुहरे ने ढक लिया था। वह अपने ही नायक श्रीकान्त की तरह सदैव ही दूसरे की इच्छा से दूसरे के घर में रहा, कभी नाना का घर, कभी मित्र का, कभी किराये का लेकिन कभी अपना न हो सका। वह शरीर से युवा होता जा रहा था लेकिन उसकी युवावस्था की जो इच्छाएँ, आकांक्षाएँ थीं उन्हें रसातल में धकेल रहा था अर्थात् उनका दमन कर रहा था।

**विशेष** : (1) शरत् के जीवन एवं विकास में रंगून जाना एक महत्वपूर्ण पड़ाव है इसीलिए लेखक ने उसे एक अंक की समाप्ति कहा है।

(2) यौवन का सूर्य – में उदाहरण अलंकार है।

(3) कलात्मक शैली है।

(4) भाषा सहज, सरल एवं भावपूर्ण है।

"ठाकुर ने कहा है, समुद्र में रत्न है, यत्न करने की आवश्यकता है। संसार में ईश्वर है, साधना करनी चाहिए। काई से ढके तालाब के सामने खड़े होकर यदि जल लेना चाहो तो काई को हटाना होगा। इसी प्रकार माया से ढके हुए नेत्र लेकर ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। सब से पहले माया से मुक्त होना होगा।"

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा विरचित सुप्रसिद्ध साहित्यकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' जीवनीपरक उपन्यास से उद्ध त है।

यहाँ लेखक शरत् के रंगून में जाने के बाद का वर्णन करता है। रंगून में जाने के बाद उन्होंने फिर से काव्य गाष्ठियों, सभाओं आदि में भाग लेना शुरू कर दिया। वह अपने को निरीश्वरवादी कहता था। वह रामकृष्ण मिशन के स्वामी रामाकृष्णानन्द के सम्पर्क में आया। वह उनके अनेक प्रश्नों का समाधान करता था। एक बार शरत् ने स्वामी जी से पूछा कि आप ईश्वर को क्यों नहीं देख पाते तो स्वामी जी ने इसके प्रत्युत्तर में कहा कि–

**व्याख्या** : स्वामी जी ने कहा कि जिस प्रकार समुद्र में अनेक रत्न हैं, परन्तु उन्हें खोजने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। उसी प्रकार ईश्वर भी संसार में सर्वत्र व्याप्त है उसे साधना द्वारा खोजने की आवश्यकता है। किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के लिए कुछ त्याग एवं तपस्या करनी पड़ती है। यदि काई से ढके तालाब से जल निकालना है तो काई को हटाना ही होगा। नहीं तो निर्मल जल नहीं मिल सकता। ठीक इसी प्रकार माया से ढकी आँखों से हम ईश्वर के दर्शन नहीं कर सकते। अगर दर्शन करना चाहते हो तो अपनी आँखों से माया का आवरण हटाना होगा, अज्ञानता की, स्वार्थता की पट्टी को उतारना होगा।

**विशेष** : (1) अद्वैतवादी विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित है।

(2) द ष्टान्त अलंकार है।

(3) उदाहरण शैली है।

(4) भाषा गाम्भीर्य लिए हुए है।

"इस संसार में जिसको हम दुःख कहते हैं वह तो वास्तविक दुःख नहीं है। वह तो उसकी दीक्षा है। सुख पाते ही मनुष्य उसको भूल जाता है। व्यथा रूपी दुःख पाने पर ही उसके मन में समझ आती है। दुःख ही सब से बढ़के इस प थ्वी की प्रिय वस्तु है। नहीं तो उसको याद ही क्यों करोगे? उसकी महिमा की उपलब्धि का अवसर कैसे पाओगे?

शब्दार्थः दीक्षा = परीक्षा

**प्रसंग** : शरत् स्वामी रामकृष्णानन्द से प्रश्न पूछता है कि सुना जाता है कि प्रभु मंगलमय है फिर संसार में इतना दुःख क्यों है? इसके उत्तर में स्वामी जी कहते हैं

**व्याख्या** : इस संसार में जिसे हम दुःख कहते हैं, वह दुःख नहीं है, वह तो व्यक्ति की परीक्षा है। व्यक्ति दुःखो का, कष्टों का सामना करके ही सुखों को प्राप्त करता है। दुखों को सहन करना ही उसकी महानता है। वास्तव में सुख आते ही व्यक्ति प्रभु के वरदान को, उसकी महत्ता एवं प्रभुता को भूल जाता है। दुःख में ही व्यक्ति प्रभु का स्मरण करता है। इसी कारण वह दुःख में भावनात्मक रूप से प्रभु से जुड़ा रहता है। अतः दुःख इस प थ्वी की सबसे प्रिय वस्तु है। अगर दुख नहीं है तो व्यक्ति प्रभु को याद ही नहीं करेगा। और उसका स्मरण नहीं करोगे या दुःख नहीं होंगे तो उसकी महीमा को कैसे जान पाओगे। दुख में ही व्यक्ति स्वयं को लघु समझता है और स्वयं को लघु समझने से ही उसकी महिमा को जानने का अवसर प्राप्त करता है।

**विशेष** : (1) प्रस्तुत गद्यांश की तुलना कबीर निम्न दोहे से की जा सकती है -

दुख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमरिन करे, दुःख काहे को होय॥

(2) सुख दुःख को समभाव से ग्रहण करने के प्रेरणादायक विचार गीता से प्रभावित हैं।

(3) भाषा सहज, सरल एवं बोधगम्य है।

(4) विचारात्मक शैली है।

''पूर्व जन्म में अर्जित फल का नाम अद ष्ट है। अवश्य ही वर्तमान जीवन के कुछ अंशों से उसका सम्बन्ध है जिसको हम चलती भाषा में कर्म कहते हैं। दैव तथा पुरुषकार एक ही हैं। एक को छोड़कर दूसरे गति नहीं। इसीलिए दैव की साधना में पुरुषकार आवश्यक है। इसी तरह पुरुषकार साधना में दैव या भगवत्कृपा आवश्यक है।

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : स्वामी जी कहता है कि अद ष्ट जिसे भाग्य कहते हैं वह और कुछ नहीं है वह पूर्वजन्मों के अर्जित कर्म है पूर्व जन्म के कर्मो का वर्तमान जीवन के किसी अंश पर प्रभाव पड़ता है। जिसे हम चलती भाषा में कर्म कहते हैं। व्यक्ति सुखी है या दुःखी है, अमीर है या गरीब है यह सब पूर्व जन्म के कर्मो का फल है इस फल का निर्माण व्यक्ति के हाथ में है क्योंकि पूर्व जन्म के कर्मो का फल वर्तमान जन्म में भोगता है और वर्तमान जन्म के कर्मो का फल आगत जन्म में भोगता है। अगर वर्तमान जीवन को नहीं तो भविष्य के भाग्य को सुधारा जा सकता है। एक और

उत्तर में स्वामी जी कहते हैं कि देव और पुरुषकार एक ही हैं। दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। देव ही पुरुषकार में इस संसार में आते हैं अतः ब्रह्म अथवा भगवान् की साधना के लिए उनके अवतार की साधना आवश्यक है तथा अवतारों की साधना करने के साथ ही देव की उपासना भी आवश्यक है। पुरुषकार उस अलक्ष्य का ही एक रूप है।

**विशेष** : (1) उपर्युक्त गद्यांश की तुलना 'कामायनी' के निम्न दोहे से की जा सकती हैं -

कर्म का भोग भोग का कर्म

यही जड़ का चेतन आनन्द

(2) लेखक के अवतारवादी विचार गीता से प्रभावित हैं। जिसमें श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं - 'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'।

(3) भाषा दार्शनिकता का पुट लिए हैं।

(4) विचारात्मक शैली है।

''धर्म का सम्बन्ध मन से है। गेरुआ न पहनने पर भी मुक्त हुआ जा सकता है। मनुष्य मन से ही बन्धन में आता है। मन के कारण ही मुक्त होता है। इसलिए पहले मन चाहिए, बाद में बाहर की सहायता। मन यदि अच्छा है तो बाहर के गेरुआ वस्त्र तुम्हारी सहायता करेंगे। नहीं तो ढोंग की ही स ष्टि होगी।

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : स्वामी जी शरत् को कहते हैं कि धर्म का सम्बन्ध मन से है। बाह्य उपकरण केवल साधन हैं, साध्य नहीं। पीले वस्त्र, तिलक, माला इत्यादि ग्रहण किए बिना ही व्यक्ति सांसारिक बंधनों से मुक्ति पा सकता है। वह भगवत् भक्ति कर मोक्ष पा सकता है। मनुष्य मन से ही बन्धन मानता है। मन के बंधन को बाह्य वस्त्र नहीं मुक्त कर सकते। मन का बंधन तो मन से ही दूर हो सकता है। इसी कारण पहले मन से मुक्त होना होगा तभी बाह्य उपकरण पीले वस्त्रादि मुक्ति में सहायता कर सकते हैं। मन मुक्त है तो बाह्य उपकरण सहायता करेंगे। नहीं तो ढ़ोंग ही कहलाएगा। इसलिए पीले वस्त्र पहने बिना ही व्यक्ति साधना कर सकता है। साधु बन सकता है। यदि वह मन से साधु है उसके विचार पवित्र एवं लोक कल्याणकारी हैं तो वह सच्चा साधक है वरन् निरा ढ़ोगी, फरेबी, धोखेबाज है।

**विशेष** : (1) उपयुक्त विचार कबीर के साम्य हैं -

'माला तो कर में फिरे मनुवा फिरै चहुं आरे?

(2) भाषा दार्शनिकता का पुट लिए हुए है और सहज सरल एवं बोधगम्य है।

''धीरे धीरे एक वर्ष बीत गया। एक और नया प्राणी उसके संसार में आ पहुँचा। शिशु की किलकारियों से वह घर गूंजने लगा। जो अब तक प्यार और सहानुभूति के अभाव में निराश्रित होकर भटकता रहा, जिसने सदा उन्हीं स्थानों पर आश्रय पाया जो भले मानुसों के लिए वर्जित थे, इसके जीवन में पत्नी का प्यार और शिशु की किलकारियाँ कितना और कैसा अप्रत्याशित सुख पाया उस आवारा व्यक्ति ने।

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध साहित्यकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' से लिया गया है। शरत् ने रंगून जाकर शान्ति के साथ शादी करली थी। यहाँ लेखक उसी वैवाहिक जीवन का वर्णन करता है।

**व्याख्या** : धीरे-धीरे विवाह को एक वर्ष हो गया। एक पुत्र का घर में जन्म हो गया। घर खुशियों से भर गया था। एक नन्हा शिशु आँगन में किलकारियाँ मारता तो माता-पिता आनन्द विभोर हो उठते हैं। अब तक शरत् का जीवन सहानुभूति के अभाव में बीता था। प्यार की प्यास सदैव शरत् को तड़पाती थी। वह सदा निराश्रित होकर भटकता रहा। सदा दूसरों के घर दूसरों की इच्छा से ही जीना पड़ा। उसने सदैव वहीं आश्रय पाया था जहाँ भले व्यक्तियों के लिए रहता अच्छा न समझा जाता था। उसे सभी आवारा, चरित्रहीन समझते थे। ऐसे आवारा व्यक्ति के जीवन में अब शिशु की किलकारियों और पत्नी के प्यार से मानो एक स्थायित्व आ गया। उसके जीवन की मानो सारी इच्छाएँ पूरी हो गयी। उसे यह सुख अप्रत्याशित था। उसने जिस सुख की कामना की थी वही उसके सामने आ गया था।

**विशेष** : (1) शरत् के वैवाहिक जीवन का वर्णन है।

(2) शरत् के जीवन के सुखात्मक क्षणों का रेखांकन है।

(3) शैली विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है।

''जो कुल को त्याग कर आती हैं उनमें से अस्सी प्रतिशत प्रायः सधवाएँ हैं, विधवाएँ बहुत ही कम हैं। पति के जीवित रहने से ही क्या और कड़े पहरे में रखने से ही क्या? और विधवा होने से भी क्या? अनेक दुःखों से नारी अपना धर्म नष्ट करने को तैयार होती हैं और जिस लिए होती हैं, वह पर पुरुष का रूप नहीं, किसी बीभत्स प्रव त्ति का लोभ नहीं। किसी बात से अपने को मुक्त करने के लिए ही इस दुःख को सिर पर उठा लेती हैं।''

**प्रसंग** : रंगून में जाने के बाद शरत् साहित्य साधना में लग गए, लोग यह मानने को ही तैयार नहीं थे कि शरत् इतना बढ़िया लिख सकते हैं। लेकिन जब उन्होंने 'नारी का इतिहास' लिखा जिसमें बंगाल में कुल त्याग करने वाली भिन्न भिन्न जिलों की सात सौ अभागिनी नारियों के करुण जीवन की कहानी अंकित थी।

**व्याख्या** : शरत् ने 'नारी का इतिहास' लिखने के लिए देश विदेश के इतिहास का मंथन करना पड़ा और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जो महिलाएँ कुल त्यागकर अर्थात-घर से भागकर आती हैं उनमें से अस्सी प्रतिशत महिलाएँ सधवाएँ होती हैं। प्रायः यह माना जाता है कि विधवाएँ ही शारीरिक सुध के लिए ऐसा कार्य करती हैं परन्तु शरत् ने कहा कि इनमें से विधवाएँ बहुत कम थीं। उसने नानी के घर छोड़ने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण खोजा कि पति जिन्दा हो, मर गया हो कोई फर्क नहीं पड़ता, विधवा हो कोई फर्क नहीं पड़ता, पर पुरुष के साथ सोने की इच्छा से नहीं और न ही अन्य घ णीय प्रव तियों के कारण, वह अपने ऊपर हो रहे अमानवीय व्यवहार के कारण पशुत्व व्यवहार के कारण अपने को मुक्ति की आकांक्षा से ग ह-त्याग करती है। अपने बन्धनों को तोड़ने के लिए वह धर्मभ्रष्ट होने का पाप भी अपने सिर पर उठा लेती हैं।

**विशेष** : (1) शरत् का यह निष्कर्ष अनेक पश्चिम के दार्शनिकों के अध्ययन के उपरान्त निकला हुआ है।

(2) यह समाज का कटु यथार्थ प्रकट करने की शक्ति शरत् में ही थी क्योंकि समाज जिन स्त्रियों को पतिता, चरित्रहीन कहता है। उनके दुःख, पीड़ा को समझने की शक्ति शरत् के ही पास थी।

(3) शरत् की मानवीय संवेदना व्यक्त हुई है।

(4) भाषा सहज सरल एवं बोधगम्य है।

''कविता के मूल में कल्पना होने से ही वह महान् नहीं हो जाती। सत्य की उपलब्धि होनी ही चाहिए तभी साहित्य की स ष्टि होती है। सहानुभूति की ऊष्मा से जो वस्तु क्लिष्टता को सरलता में बदलती है, उसकी उपलब्धि अन्तर से ही हो सकती है, नहीं तो कविता को समझने की चेष्टा विडम्बना मात्र है।''

**प्रसंग** : शरत् की आंखे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'जीवने यत पूजा हल न सारा' कविता पढ़कर भीग गयी। शरत् भीगे नयनों से कहने लगें -

**व्याख्या** : कविता के मूल में कल्पना ही होती हैं, परन्तु मेरी कल्पना कभी प्रभावशाली नहीं होती, विचारोत्तेजक एवं मर्मस्पर्शी भी नहीं होती। केवल कल्पना के समावेश से ही कविता महान् नहीं होती उसमें सत्य की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। कविता में मानव मूल्यों की व्याख्या के माध्यम से सत्य की उपलब्धि होनी चाहिए तभी सत् साहित्य का निर्माण होता है। ऐसा होने से कविता में कठिनता नहीं रहती, वह सार्वभौमिक सत्य को वहन करने वाली बन जाती है। उसमें यदि सहानुभूति की उष्मा हो अर्थात-भावात्मक सत्य हो तो उसकी सारी कठिनता समाप्त हो जाती है। इसके लिए लेखक एवं पाठक दोनों का ही भावप्रवण होना आवश्यक है। भावना के आधार पर ही कविता को समझना पड़ता है। व्यक्ति भावनाहीन हो तो वह काव्य को हृदयंगम नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में अगर वह काव्य को समझने की कोशिश करता है तो वह उसका प्रयास होगा। यह कोरी विडम्बना ही होगी।

**विशेष** : (1) शरत् की कविता के संदर्भ में उपर्युक्त टिप्पणी कवियों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करती दिखाई देती हैं।

(2) भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं स्वाभाविक है।

(3) सामाजिक शैली है

''समाज में यदि कोई डाक्टर है, जिसका काम घावों की चिकित्सा करना है, वह क्या किसी की सुनता है? जो पक गया है, उस बांधे रखना, दूसरों के लिए देखने में अच्छा लग सकता है लेकिन जिस आदमी के शरीर में घाव है उसको तो कोई सुविधा नहीं होगी। केवल सौंदर्य स ष्टि के अतिरिक्त उपन्यास लेखक का एक और महत्वपूर्ण काम है। वह काम यदि घाव को देखना है तो वैसा करना ही होगा। आस्टिन मेरे कॉंटेली एवं सारा ग्रेंड ने समाज के अनेक घावों पर से पर्दा उठाया है। ठीक करने के लिए केवल लोगों को दिखाकर भयभीत करने अथवा मनोरंजन करने के लिए नहीं।''

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित बंगाली उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' से अवतरित है। शरत् ने एक उपन्यास 'चरित्रहीन' नाम से लिखा था जिसका साहित्य एवं समाज में बहुत विरोध हुआ। इस पर लेखकों, संपादको, आलोंचकों यहाँ तक कि युवाओं ने भी अश्लील का आरोप लगाया। शरत् इसी आरोप के प्रत्युत्तर में श्री हरिदास चट्टोपाध्याय को एक पत्र में लिखते हैं।

**व्याख्या** : शरत् को समाज की यह मान्यता स्वीकार नहीं हैं कि व्यक्ति नग्न नहीं हो सकता। शरत् प्रश्न करते हैं कि यदि कोई अंग विशेष घायल हो तो क्या उसे भी छिपाकर रखना चाहिए? यह उचित नहीं है। समाज में अनेक बुराइयाँ व्याप्त हैं। उन्हें मात्र दिखाना अच्छा नहीं वह अश्लीलता कही जाएगी परन्तु यदि उस बुराई को दिखाकर उसे दूर करने के उद्देश्य से लेखक यदि किसी पुस्तक की रचना करता है तो वह अश्लील नहीं माननी चाहिए। जिस प्रकार एक डॉक्टर घाव के स्थान पर दवाई इत्यादि लगाता है, उसी प्रकार एक साहित्यकार समाज के किसी घाव पर मरहम लगाना चाहता है। यदि डाक्टर से घाव छिपायेंगे तो रोगी को लाभ नहीं होगा। इसी प्रकार यदि सामाजिक बुराइयों को छिपायेंगे तो इससे उनका बढ़ना नहीं रूक सकता अपितु और ज्यादा फैलेंगी। साहित्यकार का कार्य केवल सौन्दर्य की स ष्टि करना नहीं है, और न ही केवल मनोरंजन करना है, बल्कि उसका जीवन एवं समाज के प्रति दायित्व है जिसका निर्वाह उसे अवश्य ही करना चाहिए। उसका साहित्य में उद्देश्य समाज कल्याण अथवा लोकहित होना चाहिए। अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे समाज की बुराई दिखानी पड़े तो उन्हें निःसंकोच दिखाना चाहिए। लेखक बताना चाहता है कि विश्व के प्रसिद्ध साहित्यकार भी समाज की बुराई को उघाड़ते हैं उनका कहना है कि ख्यात साहित्यकारों ने बुराइयों का चित्रण केवल चमत्कार उत्पन्न करने समाज को भयभीत करने अथवा मात्र मनोरंजन के लिए नहीं किया। उन्होंने तो समाज की बुराई को निकालने के लिए किया है। इसलिए यदि 'चरित्रहीन' की नायिका पुरुषों के वेश में नौकरी करती है तो इसमें कोई बुराई नहीं।

**विशेष** : (1) शरत् की द ष्टि में 'चरित्रहीन' उपन्यास में एक भी शब्द अनैतिक नहीं है। वे कहते भी हैं ''मैं नहीं समझता कि 'चरित्ररीन' में एक शब्द भी अनैतिक है।''

(2) प्रस्तुत गद्यांश के भावसाम्य में मैथिलीशरण गुप्त की साहित्य के उद्देश्य से सम्बन्धित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

केवल मनोरंजन ही न कवि का कर्म होना चाहिए।
इसमें तनिक उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

(3) उपर्युक्त गद्यांश के सार से साहित्य का उद्देश्य लोकमंगल ही ठहरता है।

(4) भाषा सहज सरल एवं बोधगम्य है।

(5) भावात्मक शैली की प्रधानता है।

''लेखक रूप में प्रसिद्ध होने पर उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ रही थी। उसके साथी अब उपेक्षा से उसे चिढ़ाते नहीं थे। इसके विपरीत जब भारत से स्वदेशी आन्दोलन के नेता श्री सुरेन्द्रनाथ सेन रंगून आए तब उनकी अभ्यर्थना के लिए जो सभा अयोजित की गई उसके सभामति के पद पर उसी को बिठाया गया। जीवन में पहली बार वह अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठा था तब वह कितना नर्वस हो उठा था। सेर-डेढ़ सेर की माला उसके गले में पड़ी थी। उसके भार से सीधा खड़ा नहीं हो पा रहा था। देख कर दया आती थी।''

**प्रसंग** : इस समय तक शरत् एक प्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। वे 'विराज बहू' लिख रहे थे। इसको

लिखने के बाद उन्होंने अपने मित्रों को सुनाया, ताकि विचार-विमर्श से उचित संसोधन किया जा सके। इसी बढ़ती प्रतिष्ठा का लेखक विष्णु प्रभाकर यहाँ वर्णन करता है।

**व्याख्या** : शरत् एक लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। साहित्य समाज के साथ-साथ उनकी अन्य वर्गो में भी प्रतिष्ठा बढ़ रही थी। किसी समय उसके मित्र उसकी हँसी-ठिठोली किया करते थे। लेकिन अब वे उसकी उपेक्षा नहीं करते थे। यहीं नहीं जब भारत से स्वदेशी आन्दोलन के नेता जी सुरेन्द्रनाथ सेन रंगून पहुँचे थे तो उनके स्वागत के लिए एक सभा बनाई गई। उस सभा का सभामति शरत बाबू को ही बनाया गया। इससे शरत् को कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई क्योंकि वह सोचता था कि अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठकर वह भीतर ही भीतर छोटा पड़ने लगा। वह सोचने लगा कि अध्यक्ष का पद लेकर उसने गलती की है। उसके गले में सैकड़ों व्यक्तियों ने फूलों की मालाएँ डार्ली। उसका स्वागत किया। पहली ही बार तो उसने अध्यक्ष की कुर्सी संभाली थी। गले में पड़ी मालाओं में सेर-डेढ़ सेर का वजन था। इस वजन के कारण उसे सीधा खड़ा होने में भी परेशानी हो रही थी। उसकी इस परेशानी को देखकर उस पर दया आ रही थी कि इतना दुबला-पतला व्यक्ति कैसे इस सारे बोझ को सहन कर रहा है।

**विशेष** : (1) शरत् के मान-सम्मान और प्रतिष्ठापरक जीवन का अंकन है।

(2) शरत् की मनः स्थिति का चित्रांकन है।

(3) भाषा सहज, सरल एवं भावानुकूल है।

''प्रमाण और साक्षी की आवश्यकता शायद ही पड़ी हो। लेकिन इसमें भी तनिक सन्देह नहीं है कि इन कहानियों के पीछे किसी न किसी रूप में उसकी अनुभूति होती थी। और अनुभूति के ये स्रोत उसे सहज भाव से मिल भी जाते थे। वहीं द ष्टि तो उसका मूल धन थी।''

**प्रसंग** : शरत् को किसी गोष्ठी में शामिल होने में विशेष आनन्द मिलता था। अनेक साहित्यकार प्रतिदिन 'यमुना' के कार्यालय में इकट्ठे होते थे। शरत् भी उनमें शामिल होता था। ये साहित्यक चर्चा की बजाए हंसी मजाक किये करते थे। शरत् अपनी कोई ताजा कहानी सुनाता तो ये लोग उसे मनगढ़ंत कहते थे। इसके उत्तर में शरत कहता कि यह सच्ची घटना है और इसके साक्ष्य एवं प्रमाण देने के लिए भी तैयार हो जाता था। यही वर्णन लेखक विष्णु प्रभाकर यहाँ पर कर रहा है।

**व्याख्या** : शरत् अपनी नई कहानी के सत्य प्रमाण देने को तैयार हो जाता था लेकिन शरत् को यह प्रमाण और साक्ष्य कभी देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी क्योंकि यह बात अपने आप में सत्य है कि शरत् जितनी भी कहानियाँ लिखता था उनके पीछे उनकी अनुभूति होती थी। ऐसी अनुभूति के साधन उसे आसानी से प्राप्त हो जाते थे क्योंकि वह जिस समाज में रहता था उसमें समस्याओं का अम्बार लगा हुआ था और घटनाएँ भी आसानी से, बिना किसी मुसीबत के प्राप्त हो जाती थीं। वह जिस द ष्टिकोण को अनुभूत करके लिखता था, वही उसका मूल होता था। वह इतना ठोस होता था कि उसकी आलोचना करने का अवसर नहीं मिलता था।

**विशेष** : (1) उपर्युक्त गद्यांश इस बात का प्रमाण है कि शरत् सच्ची घटनाओं पर आधारित कहानियाँ लिखता था।

(2) शरत् की कहानियों की हृदय ग्राहयता की ओर संकेत है।

(3) भाषा सहज सरल एवं बोधगम्य है।

'''पल्ली समाज' में केवल दुःख-दैन्य से पीड़ित, संकीर्ण सांस्कृतिक घेरे के भीतर बँधे हुए, परम्परा-प्रचलित कुसंस्कारों से घिरे हुए, बंगाल के निम्न-मध्यवर्गीय देहाती समाज का सीधा-सादा यथार्थ चित्रण है। शरत का बचपन और यौवन का भी कुछ समय गाँव में ही कटा था। गाँव को वह प्यार करता था। उसी के आधार पर उसने इस पुस्तक की रचना की।''

**प्रसंग** : यहाँ लेखक विष्णु प्रभाकर प्रसिद्ध साहित्यकार द्वारा लिखित 'पल्ली समाज' की विशेषताओं पर प्रकाश डालता है।

**व्याख्या** : शरत् की 'पल्ली समाज' रचना मे बंगाल के निम्नमध्यवर्ग के सीधे-सादे, भोले-भाले लोगों का चित्रण किया है। इस वर्ग के लोग केवल दीनता और दुःखों से परेशान ही नहीं थे परन्तु कुछ और भी ऐसी बातें थीं जिनके कारण

उन्हें दुःख उठाना पड़ता था। वे परम्परा से ही बुरे संस्कारों में फँसे हुए थे। बंगाल का देहाती समाज कितना पीड़ित है, दुःखी है और कुसंस्कारों को ढोने को विवश है। इसी बात का चित्रण इस पुस्तक में यथार्थ के साथ किया है। शरत का बचपन और यौवन कुछ समय के लिए गाँव में बीता था। इसीलिए वह गाँव की गली-गली से प्रेम करता था। इसी बात के आधार पर उसने इस की रचना की है।

**विशेष** : (1) 'पल्ली समाज' के उद्देश्य की ओर संकेत है।

(2) शरत यथार्थ जीवन को बोध कर उसे अभिव्यक्त करने की कला में सिद्धहस्त थे। इस बात का यह प्रमाण है।

(3) भाषा सहज, सरल उद्देश्यपरक है।

(4) वर्णनात्मक शैली है।

''हर प्राणवान् व्यक्ति की यही नियति होती है। जिस गांधी को लोगो ने सन्त कहा उसी गांधी को ढोंगी, दम्भी, धोखेबाज तक कहा। गांधी ही ऐसा व्यक्ति था जो सब कुछ हो सकता था। सब कुछ होने के लिए हिया चाहिए। वह हिया शरत् के पास भी था। उसने जीवन में बहुत दुःख भोगा था, बहुत सा पाप भी किया था, पर उससे ऊपर उठकर उसे अभिज्ञता में रूपान्तरित करने की प्राण शक्ति भी उसमें थी। क्योंकि वह मात्र भोक्ता ही नहीं द्रष्टा भी था।''

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवतरण विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध साहित्यकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्य की जीवनी 'आवारा मसीहा' से अवतरित है।

यहाँ लेखक शरत् के उस जीवन एवं संघर्ष का वर्णन करता है, जिस समय शरत् धीरे-धीरे साहित्यिक के रूप में प्रसिद्धि पा रहे थे और कुछ लोग उनका विरोध कर रहे थे। कोई उन्हें कट्टर हिन्दू कहता कोई उसे नास्तिक कहता। उसे लेकर वितण्डावाद चलता रहा।

**व्याख्या** : शरत् का कहना है कि हर शक्तिशाली महान् पुरुष की यह नियति है कि लोग उसके विषय में विभिन्न विवाद खड़े कर देते है, उस पर विभिन्न आरोप लगाते हैं। गाँधी जी का उदाहरण देते हुए लेखक कहता है कि उन्हें कुछ लोग सन्त कहते, कुछ महात्मा कहते तो कुछ उन्हें दम्भी धोखेबाज, ढोंगी कहते थे। गाँधी के हृदय में यह क्षमता थी कि वे इस प्रकार की सारी उपेक्षाओं का पचा सकते थे और पचा भी सके। गाँधी ही एक ऐसा व्यक्ति था जो सबकुछ एक साथ हो सकता था। अच्छा बुरा सब एक साथ। सब कुछ एक साथ होने के लिए शक्ति, सामर्थ्य, और हृदय की विशालता चाहिए। वह गाँधी के पास भी और यह शरत् के पास भी थी। शरत् भी किसी की द ष्टि में अत्यन्त नीच, पतित एवं चरित्रहीन था तो किसी की द ष्टि में देवता, समाज का कल्याणकारी, मसीहा था इसी कारण उसे समकालीन लेखकों ने 'आवारा मसीहा' कहा था। उसने अपने जीवन में बहुत से दुःख सहे, पाप किये परन्तु वह पापी नहीं था। वह इस तरीके से जीवन के अनुभवों का रसग्रहण कर रहा था। वह भोक्ता था परन्तु अभिज्ञता प्राप्त करने के लिए वह द ष्टा बना रहा। वह समाज को नंगी आँखों से देखता एवं खुले हृदय से अनुभव करता रहा। समाज के चरित्रों की अच्छाइयों एवं बुराइयों का अपनी रचनाओं प्रकटीकरण करता रहा। इसी कारण श्रेष्ठ साहित्यकार बना। उन्होंने परम्मराओं का विरोध किया इसीलिए वह असीम शक्त्युक्त पुरुष था।

**विशेष** : (1) लेखक ने शरत् की तुलना युग पुरुष गाँधी से की है जबकि यह उनका शरत के प्रति मोह ही है। वास्तव में गाँधी के आंशिक गुण ही शरत् में थे।

(2) भाषा सहज, सरल और भावपरक है।

(3) भावात्मक शैली है।

''समाज में शरत्चन्द्र अभी भी विद्रोही, आचारहीन और अनीश्वरवादी के रूप में प्रसिद्ध थे। लेकिन वह थे वास्तव में एक धर्म भीरु मानव। उन्होंने यह बात स्वयं स्वीकार की है - ''किसी किसी ने ऐसा भी कहा कि म्लेच्छ भावापन्न मैं ठीक-ठीक हिन्दू नहीं हूँ। हिन्दू धर्म पर मैंने कभी भी कटाक्ष नहीं किया। केवल उसकी अनुदारता पर ही आक्रमण किया है।''

**प्रसंग** : यहाँ लेखक विष्णुप्रभाकर शरत् के व्यक्तित्व की व्याख्या करता हुआ कहता है -

**व्याख्या** : शरत् चाहे कितने ही भलाई के काम करने लग गया हो लोगों की सेवा करता हो, दुःख-सुख में उनके काम आता है लेकिन लोगों की उसके विषय में जो धारणा बन चुकी थी वह अब भी दूर नहीं हुई थी। उनकी नजर में वह अब भी शराब पीता है, वेश्याओं के पास जाता है, मिस्त्री पल्ली में छोटे आदमियों के पास रहता है। अतः उनकी नजर में वह विद्रोही, चरित्रहीन एवं ईश्वर को न मानने वाला है। लेकिन वास्तव में वह मानवता वादी द ष्टिकोण का व्यक्ति था तभी तो वह वेश्याओं का पक्ष लेता था। इसी कारण धर्म के ठेकेदार उसे चरित्रहीन कहते थे। वास्तव में वह धर्म से डरने वाला था। हिन्दू धर्म पर उसे पूर्ण विश्वास था लेकिन वह हिन्दू धर्म एवं समाज की बुराई का उद्घाटन करता था इसीलिए लोग उसे म्लेच्छ प्रव त्ति का व्यक्ति कहते थे। उसे शुद्ध हिन्दू नहीं मानते थे शरत् स्वयं कहते है कि मैंने हिन्दू धर्म पर कभी भी कुठाराघात नहीं किया। उन्होंने उसकी कुप्रथाओं पर ही कुठाराघात किया है। उसके अनुदार भावों पर ही प्रहार किया है। इसी कारण कट्टरपंथी उसके विरोधी हो गये और उसको विद्रोही कहने लगे। जबकी स्वयं शरत् कहता है कि मेरे गले में कण्ठी की माला है। संध्या किए बगैर मैं जल ग्रहण नहीं करता जिस किसी के हाथ का पानी नहीं पीता फिर भी लोग यह मानते हैं कि शरत् ठीक-ठीक हिन्दू नहीं हैं। इसका मतलब लोगों को अपनी मान्यताएँ बदल लेनी चाहिए।

**विशेष** : (1) शरत् के चारित्रिक गुणों का उद्घाटन है।

(2) शरत् के आत्मकथन से गद्यांश और भी जीवंत हो उठता है।

(3) वर्णनात्मक एवं आत्मपरक शैली है।

(4) भाषा सहज सरल एवं काव्यात्मक है।

''वे रूढ़ियों और कुरीतियों, अन्ध परम्पराओं और मूढ़ विश्वासों के विरोधी थे। धर्म की मूल स्थापनाओं के नहीं। समाज के ही निषेधों के कारण सती न रहने पर भी वे यह नहीं मानते थे कि यह असती नारी ही नहीं रही। यह संकीर्ण भेद बुद्धि ही उन्होंने त्यागी थी क्योंकि इससे मनुष्य धर्म का अपमान होता है। वे मानते थे, जब परिस्थितियों से विवश होकर मनुष्य ऐसा कुछ कर बैठता है तो तत्कालीन धर्म और समाज की द ष्टि में बुरा चाहे हो पर मनुष्य सचमुच बुरा नहीं हो जाता।''

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध साहित्यकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' से अवतरित है। शरत् धर्म के मिथ्याचारों, आडम्बरों का सदैव ही विरोध करते थे। लेखक यहाँ पर उनके इसी विरोधी तेवर को व्यक्त करता है।

**व्याख्या** : शरत् ने कभी भी सनातन धर्म की मर्यादाओं की अवहेलना नहीं की। उन्होंने तो जनेऊ तक का समर्थन किया है किन्तु वे धार्मिक रूढ़ियों और कुरीतियों के विरोधी थे। अन्धविश्वासों, अन्धपरम्पराओं, जड़ मान्यताओं के विरोधी थे। उन्होंने अपनी प्रत्येक रचना में इन पर तीव्र कुठाराघात किया किन्तु धर्म की मूल स्थापनाओं का उन्होंने विरोध नहीं किया बल्कि उनका समर्थन ही किया। वे सतीत्व की अपेक्षा नारी के स्वाभाविक गुणों को अधिक महत्व देते थे। उनका मानना है कि समाज के निषेधों, बन्धनों के कारण यदि कोई स्त्री अपना सतीत्व बचाए नहीं रखती तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसका नारीत्व ही समाप्त हो गया। यदि वह स्त्री सतीत्व से विचलित हुई तो अवश्य ही उसकी परिस्थितियों ने उसे विवश किया होगा। अतः उसका नारीत्व अक्षय है, वे धार्मिक संकीर्णता, जो भेद-भाव को जन्म देती है, नहीं मानते थें क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि मनुष्य-मनुष्य से घ णा करें। यह मनुष्यता, मानवीयता नहीं है। यदि परिस्थितियों से विवश होकर व्यक्ति कुछ ऐसा कर बैठता है जिसे समाज अथवा धर्म स्वीकार नहीं करते तो इसमें उसका कोई दोष नहीं, दोष है उसकी विषम परिस्थितियों का। वह व्यक्ति वास्तव में बुरा नहीं हो जाता क्योंकि उसका मनुष्य, उसकी मानवता फिर भी नहीं मरती। वही भी नहीं मरता, हाँ मरता तब, जब इस भूल के कारण उसका अपमान किया जाता है, उसे दण्डित किया जाता है। मनुष्य के बाह्य रूप का अतिक्रमण कर उसके भीतरी विचार, एवं स्वातन्त्र्य भावना को देखा जाता है। बाहर से जो पीड़ित हो, यह पतन सत्य है किन्तु केवल सत्य यह है कि बाहर के इस पतन के भीतर वह अपने नारीत्व को बचाए रखें। बाहरी एवं भीतरी दोनों ही मनुष्य के रूप है और इन दोनों रूपों की सच्ची अभिव्यक्ति को ही यथार्थवाद कहते हैं।

**विशेष** : (1) शरत् के क्रान्तिकारी विचारों की झलक मिलती है।

(2) शरत् पर आवारा, चरित्रहीन के आरोप होते हुए भी उसमें मनुष्यता के गुण विद्यमान हैं।

(3) लेखक बताना चाहता है कि मनुष्य को बाहर से भ्रष्ट किया जा सकता है भीतर से नहीं अगर वह भीतर से पवित्र है तो पवित्र ही बना रह सकता है।

(4) भाषा सहज सरल एवं बोधगम्य है।

''कृतिकार का जीवन उसका अपना होता है। उस पर आक्षेप करने से क्या लाभ? उसका मूल्य तो उसकी कृति से आँकना चाहिए। परन्तु मनुष्य तो स्वभाव से छिद्रान्वेषी है। ढूँढने पर दोष न भी मिले तो वह कल्पना कर सकता है।''

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : लेखक का कहना है कि किसी भी साहित्यकार की रचना से उसका जीवन नहीं मिलाना चाहिए। यह सत्य है व्यक्ति अपनी रचना में अधिकांशतः आत्माभित्यक्ति ही करता है, यह भी सत्य है कि कृतिकार का अपना एक अस्तित्व होता है। वह भी समाज में रहने वाला व्यक्ति है। उसमें भी अच्छाइयों के साथ-साथ कोई बुराई भी हो सकती है लेकिन समाज के लोग इस बात को नहीं मानते। वे तो स्वभाव से ही बुराइयाँ ढूँढने लगते हैं। दूसरों के छिद्रों (कमजोरियों) का अन्वेषण (खोज) करना व्यक्ति को अच्छा लगता है। अगर उसे किसी में दोष न मिले तो उनकी कल्पना कर लेता है।

**विशेष** : (1) लेखक साहित्य के मूल्यांकन का आधार कृति को मानता है न कि व्यक्ति को।

(2) शरत् के चरित्र का रेखांकन हुआ है।

(3) भाषा सहज सरल एवं भावगर्भित है

(4) उपदेशात्मक शैली है।

''राजनीति में योग देना देशवासियों का कर्तव्य है। विशेषकर हमारे देश में यह राजनीतिक आन्दोलन देश की मुक्ति का आन्दोलन है। इस आन्दोलन में साहित्यिकों को सबसे आगे बढ़कर योग देना चाहिए। लोकमत जाग त करने का गुरुभार संसार के सभी देशों में साहित्यिकों पर ही रहा है। युग-युग में उन्होंने ही मनुष्य के मन में मुक्ति की आकांक्षा जगाई है।''

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : अनेक लोग शरत् को कहते हैं कि आपका काम साहित्य चर्चा करना है न कि राजनीतिक चर्चा करना। इसके प्रत्युत्तर में शरत् कहता है कि वर्तमान पराधीन स्थिति में प्रत्येक देशवासी का यह परम कर्त्तव्य है कि वह राजनीति में योगदान दे तथा देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले। यह आन्दोलन कोई साधारण आन्दोलन नहीं है यह तो देश को स्वतन्त्र कराने वाला आन्दोलन है। अन्य किसी राजनीतिक आन्दोलन में व्यक्ति भाग ले या न ले, लेकिन देश की स्वतन्त्रता के विषय में दो राय हो ही नहीं सकती। इस आन्दोलन में प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर प्रत्येक साहित्यकार का विशेष कर्तव्य है कि वह इसमें भरपूर सहयोग करे। शरत् का मत है कि जो देश की दासता, गुलामी को सह सकता है वह साहित्यिक नहीं हो सकता, साहित्यकार पर युगों-युगों से यह दायित्व रहा है कि वह साहित्य के माध्यम से लोकमत में जाग ति लाए। प्रत्येक युग में मानव के हृदय में स्वातन्त्र्य की चेतना साहित्यकार ने ही जगाई है। लेखक की कलम में वह शक्ति होती है जो बड़ी-बड़ी तोपों का सामना कर सकती है। अगर आप की राय मान भी ली तो राजनीति पर चर्चा कौन करेगा आन्दोलन कौन चलाएगा। सभी कुछ न कुछ करते है, कोई वकील, कोई डॉक्टर और कोई विद्यार्थी है। अतः राजनीति परचर्चा करने वाला साहित्यकार नहीं तो और कौन होगा।

**विशेष** : (1) शरत् के क्रान्तिकारी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।

(2) शरत् के ये विचार उन्हें एक सचेतन, जागरूक एवं कर्त्तव्यनिष्ठ साहित्यकार सिद्ध करते हैं।

(3) देश की मुक्ति के आन्दोलन में साहित्यकार का विशेष योगदान बताया है।

(4) भाषा सहज सरल एवं बोधगम्य है।

''युग-युग से जो घर से बाहर नहीं निकली, रसोई और प्रसूति घर के अतिरिक्त जिनका और कोई कर्म क्षेत्र नहीं रहा उनमें से स्वाधीनता के सहस्रों सैनिक कहाँ से आएंगे। लेकिन कमल कीचड़ से ही फूटता है। एक दिन देश के अन्तःपुर से ही वह फूटेगा।''

**प्रसंग** : गाँधीजी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी भाग लेना चाहती थीं। स्त्रियों की इस व्याकुलता को देखकर देशवंधु चितरंजन दास ने आन्दोलन में स्त्रियों के हिस्सा लेने के कार्य की व्यवस्था का भार शरत् पर छोड़ा। शरत् ने 'नारी कर्म मन्दिर' की स्थापना की और उसकी व्यवस्था का भार देश बंधु की बहन उर्मिला देवी को सौंपा। यहाँ शरत् के नारी जाग ति से सम्बन्धित विचार उल्लेखनीय है।

**व्याख्या** : शरत् सोचते हैं कि भारत स्त्रियाँ सैकड़ों वर्षो से घर से बाहर नहीं निकली हैं। वे प्रायः रसोईघर में भोजन बनाने और सगे सम्बन्धियों को भोजन खिलाने के सिवाय और किसी काम में रुचि नहीं लेती रही हैं। ऐसी स्त्रियों में स्वाधीनता के विचार कैसे पैदा किए जा सकते हैं। अतः ये स्त्रियाँ स्वाधीनता आन्दोलन की सैनिक कैसे बन सकती हैं। तुरन्त ही शरत् को सूझ आती है कि कमल तो कीचड़ से ही पैदा होता है। स्त्रियाँ कोमल होती है लेकिन उनका एक रणचण्डी रूप भी होता है। एक दिन स्त्रियाँ भी हिस्सा लेंगी। स्वाधीनता की धार घर-घर से फूटेगी। और यह सत्य भी हुआ।

**विशेष** : (1) यहाँ शरत् के नारी जाग ति संबंधित विचार व्यक्त हुए हैं।

(2) शरत एक भविस्यद ष्टा थे तभी तो उनकी यह भविष्यवाणी सच हुई।

(3) भाषा सहज सरल, एवं उत्प्रेरक हैं।

(4) विचारात्मक शैली है।

''मशाल के दीप्त प्रकाश से अंधकार नष्ट होता है, यही बात सब लोग जानते हैं। लेकिन उससे उठने वाली किंचित बदबू की ओर क्या किसी का ध्यान जाता है। जल प्लावन से धरती उर्वर हो उठती है। यदि उस जल के साथ कुछ मैला भी आ जाए तो परेशान होने की क्या बात है?''

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : गाँधीजी द्वारा चलाए गए आन्दोलन में स्त्रियाँ भी बढ़-चढ़ कर भाग ले रही थीं। कुछ लोगों का मानना था कि ब्रिटिश सरकार की पुलिस स्त्रियों पर कुछ भी अत्याचार कर सकती है। लेकिन शरत् का मत था कि स्त्रियाँ मशाल के प्रकाश के समान हैं। प्रकाश से अंधकार भाग जाता है स्त्रियों के सहयोग से अंग्रेज भाग जाएंगे। उनसे किसी को भी हानि नहीं पहुँचेगी क्योंकि वे मानव की प्रेरणा हैं। वे हर कठिन से कठिन कार्य बड़ी आसानी से कर सकती हैं। वे कीचड़ में कमल के समान हैं। यदि जल से उठने वाली दुर्गध से थोड़ी सी हानि होती है तो उससे लाभ भी बहुत हैं। यदि धरती पानी से डूब जाती है या धरती पर बाढ़ आ जाती है तो धरती उपजाऊ हो जाती है। यदि पानी के साथ कुछ मैल भी आ जाता है तो उससे कोई हानि नहीं होती हैं। उस मैल से ही नए अंकुर फूटते हैं और धरती में नए-नए फूल खिलते हैं।

**विशेष** : (1) शरत् नारी संवेदनात्मक द ष्टिकोण का प्रतिपादन हुआ है।

(2) शरत् ने नारी को शक्तिरुपा के रुप में प्रस्तुत किया है।

(3) भाषा सहज सरल है।

(4) उपदेशात्मक शैली है।

''जिस चेष्टा में, जिस आयोजन में देश की नारियाँ सम्मिलित नहीं, उनकी सहानुभूति नहीं, उस सत्य की उपलब्धि करने का कोई ज्ञान, कोई शिक्षा, कोई साहस जिनको हमने नहीं दिया, उनको केवल घर के घेरे के भीतर बिठाकर, केवल चरखा कातने के लए बाध्य करके कोई बड़ी वस्तु नहीं प्राप्त की जा सकेगी। हमने औरतों को जो केवल औरत बना रखा है मनुष्य नहीं बनने दिया उसका प्रायश्चित स्वराज्य के पहले देश को करना चाहिए।''

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : शरत् का कहना है कि किसी भी बड़े काम के पीछे नारी का सहयोग आवश्यक है। अगर उस काम के पीछे नारी का सहयोग नहीं हो तो वह सफल नहीं हो सकता। यदि किसी अन्दोलन को सफल बनाना है तो औरतों की सहनुभूति प्राप्त करनी होगी। परन्तु हमने नारी को घर की चारदीवारी के भीतर बैठकर चर्खा कातने को बाध्य कर

दिया है जिससे उनकी किसी भी प्रतिभा का विकास अवरुद्ध हो गया है। हमें उनको बराबर का अधिकार देना होगा तभी देश का विकास हो पायेगा। भारत में नारी की घर की शोभा, ग हलक्ष्मी कहकर उसे केवल चारदीवारी के भीतर की शोभा बना दिया गया। वह बाहर निकली कि धर्म से विचलित हो जाएगी अतः उसे घर में ही रहना चाहिए। साहित्य में भी माया, ठगिनी, आदि कहकर उसे समाज में बराबरी के दर्जे में वंचित ही रखा। नारी को केवल औरत (बहू) बनाकर रखा कभी उसे मनुष्य ने वे अधिकार नहीं दिये जो उसे मनुष्य होने के नाते सहज प्राप्त होने चाहिए थे। शरत् का कहना है कि हमें स्वराज्य आन्दोलन से पहले नारी की इस स्थिति को बनाने में खुद को जिम्मेदार ठहराकर पश्चाताप करना होगा, फिर स्वतन्त्रता का आन्दोलन पूर्ण रूप से चल सकता है।

**विशेष** : (1) शरत् नारी को घर, समाज में बराबर का हिस्सा दिलाने के लिए अपने क्रान्तिकारी विचार व्यक्त करता है।

(2) शरत् अपने साहित्य के माध्यम से नारी को सही जमीन देना चाहते थे तभी तो बंगाल की नारियों ने उनके सत्तानवें जन्म दिवस पर उनका हार्दिक अभिन्नदन करते हुए उनकी प्रशंसा में एक पत्र पढ़ा था जिसमें शरत् को नारियों के प्रति सहानुभूति पर विचार व्यक्त करने के लिए विशेष धन्यवाद किया गया था।

(3) भाषा सहज सरल एवं भावगम्य है।

(4) वर्णनात्मक शैली है।

''पश्चिम की सभ्यता का मूल मन्त्र है 'स्टैण्डड आफ लिविंग' को जीवन का मानदण्ड या रहन सहन का दर्जा बड़ा बनाना। हमारे देश की मूल नीति के साथ इसके अन्तर की आलोचना करने का स्थान यहाँ नहीं है किन्तु उनकी समाज नीति की चाहे जैसी व्याख्या क्यों न की जाए, उसका लक्ष्य है धनी होना। उनकी सामाजिक व्यवस्था, उनकी सभ्यता, धन-विज्ञान के साथ जिनका जरा भी परिचय है, वे इस बात को अस्वीकार नहीं करेंगे। इस धनी होने का अर्थ केवल धन संग्रह करना नहीं अपितु साथ ही साथ पड़ोसी को भी धनहीन कर देना इसका दूसरा उद्देश्य है।''

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर रचित शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' से अवतरित है। यहाँ शरत् के उन विचारों का प्रतिपादन किया है जिनमें उन्होंने पश्चिमी सभ्यता का विरोध किया है। उन्होंने इसका विरोध करने के लिए रवीन्द्रनाथ की मान्यताओं का भी विरोध करना पड़ा। मान्यताओं के विरोध में उन्होंने 'शिक्षा का विरोध' नामक निबन्ध लिखा।

**व्याख्या** : शरत् ने पश्चिमी सभ्यता का सही अध्ययन किया था। उनकी सभ्यता को वे भलि भाँति जान गए थे। उन्होंने बताया कि पश्चिमी की संस्कृति वस्तुवादी है, इसका मूल उद्देश्य व्यक्ति को सुख देने वाले उपकरणों को एकत्रित करके अपने रहने का दर्जा ऊँचा किया जाए। सुध, ऐश्वर्य और विलासिता के उपकरण जुटाना ही उनका मूल उद्देश्य है जबकि भारत की संस्कृति में इनका अधिक महत्व नहीं है। यहाँ सुख की बजाए शान्ति को महत्व दिया गया है। सुख शारीरिक भोग से प्राप्त होता है और शान्ति मानसिक तत्व है। जो थोड़े में ही सन्तुष्टि खोज लेती है। भारतीय संस्कृति परमार्थ चाहती है जबकि पश्चिमी संस्कृति स्वार्थ चाहती है। वहाँ स्वयं धनवान होने की आकांक्षा बलवती तो है ही साथ ही यह भी आकांक्षा है कि पड़ोसी निर्धन हो जाए। क्योंकि अगर पड़ोसी देश या व्यक्ति भी धनी हो गया तो फिर उसके धनी होने का महत्व ही नहीं रहेगा। इसी कारण पश्चिम की सभ्यता का विरोध करना चाहिए।

**विशेष** : (1) शरत् की देशभक्ति परिलक्षित है।

(2) पश्चिमी सभ्यता को वस्तुवादी बताकर उसका विरोध करने को कहा गया है।

(3) भाषा सहज सरल एवं स्वाभाविकता और अर्थ गांभीर्य लिए हुए है।

(4) विश्लेषणात्मक शैली है।

''यूरोप और भारत की शिक्षा में असल में विरोध इसी जगह पर है। हमारा ऋषि वाक्य चाहे कितना अच्छा हो, उसे वे ग्रहण नहीं करेंगे। वह उनकी सभ्यता का विरोधी है, और अपनी शिक्षा भी वे हम को नहीं देंगे। बात सुनने में अच्छी नहीं लगती परन्तु वास्तव में है यह सत्य। और दें भी तो उसमें जितनी भिज्ञा है, वह न लेना ही अच्छा।''

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : शरत् कहता है कि दु:ख इसी बात का है कि हमारी ऋषि सभ्यता कितनी भी अच्छी हो लेकिन पाश्चात्य ने उसे बिल्कुल भी ग्रहण नहीं किया। भारत और यूरोप की सभ्यता का भूल विरोध यही है कि उन्होंने अपनी वस्तुवादी भौतिकवादी विचारधारा का प्रचार तो किया परन्तु हमारी आध्यात्मिक विचारधारा एवं सत्य को नहीं स्वीकारा। यही तो मूल अन्तर है कि भारत सत्य की खोज करता है, ज्ञान बाँटता है और पश्चिमी सभ्यता धन की खोज करती है और ईसाइयत फैलाती है। वे हमारी विचारधारा को ग्रहण नहीं करेंगे बल्कि उसको अपनी सभ्यता की विरोधी बताकर उसका विरोध ही करेंगे। उनका सिद्धान्त ही संग्रहण भावना पर टिका है और हमारा त्याग पर टिका हुआ है। शरत् कहते हैं कि उनके पास विज्ञान है लेकिन वे अपना विज्ञान का ज्ञान को छोड़ कर जो वे अपने कूड़े में फेंकने योग्य विचार भारत में फैला रहे हैं वे हम लेंगे नहीं, उन्हें न लेना ही श्रेयस्कर होगा।

**विशेष** : (1) शरत् के पाश्चात्य शिक्षा के विरोध में विचार व्यक्त हुए हैं।

(2) उन्होंने यहाँ रवीन्द्रनाथ के विचारों का भी विरोध करना पड़ा, बेशक वे गुरु हो लेकिन उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा का समर्थन किया था।

(3) भाषा सहज, स्वाभाविक है।

(4) वर्णनात्मक शेली है।

''किन्तु इतनी बड़ी शान्त शक्ति और शुद्ध सत्य निष्ठा की मर्यादा को धर्महीन उद्दण्ड राजशक्ति नहीं समझ सकती जो अनन्य भाव से सत्यनिष्ठ है, जो मन वाणी काया से हिंसा को छोड़े हुए हैं, स्वार्थ के नाम से जिसका कहीं भी कुछ नहीं है, आर्तो के लिए, पीड़ितों के लिए, जो संन्यासी है, इस अभागे देश में ऐसा कानून भी है, जिसके अपराध से इस आदमी को जेल जाना पड़ा।''

**प्रसंग** : गाँधीजी ने राजशक्ति का मुकाबला जनशक्ति से करने के लिए असहयोग आन्दोलन चलाया। गाँधीजी ने स्पष्ट कह दिया था कि भगवान के अतिरिक्त मैं किसी से नहीं डरता। यहाँ गाँधी जी के ही विचारों का प्रतिपादन हुआ है।

**व्याख्या** : गाँधीजी ने जो असहयोग आन्दोलन चलाया था। वह सत्य पर अहिंसा पर आधारित था। परन्तु अंग्रेज सरकार अपनी शक्ति के घमण्ड के कारण सत्य की शक्ति को नहीं समझ सकी। वैसे भी असत्य और अन्याय पर टिकी हुई राजशक्ति कभी भी धर्मनिष्ठता एवं सत्य अहिंसा को नहीं समझ सकती। उसकी समझ में हिंसा की ही भाषा आती है। उन्होंने अहिंसावादी गांधी को गिरफ्तार कर लिया। अंग्रेज सरकार मन, वचन, कर्म से सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलने वाले गाँधी को जेल में ठूसने में जरा सी भी नहीं हिचकी। सत्य के समान ही गाँधी जी शुद्ध मानवतावादी थे। उनके विचार में अहिंसा के द्वारा अत्याचारी का ह्रदय परिवर्तत किया जा सकता है। उनका विचार था कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर चाटा मारे तो उसके सामने दूसरा गाल भी कर दो। गाँधीजी नि:स्वार्थी थे। वे सदैव ही आर्टो, पीड़ितों के हित-चिन्तन में व्यक्त रहे। वे साधारण जीवन व्यतीत करते थे। व्रत और पूजा में अपना समय बिताते थे। वे पूर्णतया से संन्यासी थे। वे तो लोक कल्याण का संकल्प लेकर इस संसार में आए थे। इस साधु संन्यासी, धर्मनिष्ठ, सत्यप्राण व्यक्ति के लिए भी इस अभागे देश में ऐसा कानून बना हुआ है कि उन्हें भी जेल जाना पड़ा। यह देश का दुर्भाग्य ही है कि एक महा लोक कल्याणकारी व्यक्ति को भी जेल जाना पड़ा।

**विशेष** : (1) गाँधी के सत्यवादी, द ढ़ निश्चयी, अहिंसक गुणों का वर्णन हुआ है।

(2) गाँधीजी की मानवतावादी द ष्टि का शरत् पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है।

(3) भाषा सहज, सरल, संस्कृतनिष्ठ एवं कल्यात्मक है।

(4) वर्णनात्मक शैली है।

''सम्पूर्ण अन्त: करण से स्वाधीनता और स्वराज्य की कामना करके वह जब अंग्रेजी राज्य के सब प्रकार के संसर्ग को त्याग करने के लिए राजी नहीं हुए थे, तब उन्हें बहुत सी कड़वी बातें और गालियाँ सुननी पड़ी थीं। बहुत सी कटूक्तियाँ के बीच

एक तर्क यह था कि अंग्रेजों ने यहाँ निरुपद्रव मार्ग से राज्य नहीं स्थापित किया और उसके लिए रक्तपात करने में भी संकोच नहीं किया, तब केवल हम लोगों को निरुपद्रवपंथी रहना होगा, इतनी बड़ी जिम्मेदारी हम काहे के लिए स्वीकार करें।''

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध बंगाली साहित्यकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' से अवतरित् है। शरत् गाँधी जी के प्रत्येक आन्दोलन में पूर्ण साथ दे रहे थे लेकिन हृदय से गरम दल के साथ थे। वे मानते थे कि स्वराज्य लेने में अगर हिंसा का भी सहारा लेने पड़े तो उसमें बुरा नहीं है।

**व्याख्या** : लेखक ने ऐसे लोगों के संबंध में कहा है जो ऊपर से स्वातन्त्र्य आन्दोलन के साथ थे परन्तु अन्दर से वे अंग्रेजी सरकार के साथ थे। ऐसे लोग सम्पूर्ण हृदय से स्वाधीनता तथा अंग्रेजी राज्य से छुटकारा पाने की कामना रखकर भी उसके संसर्ग से बच नहीं सके अर्थात् मन से वे अंग्रेजी सरकार का समर्थन कर रहे थे। इसी कारण उन्हे बहुत गालियाँ सुननी पड़ी। समाज ने उनका खूब विरोध किया। यह भी तर्क देते थे कि अगर अंग्रेज हिंसा का प्रयोग कर रहे हैं तो भारतीय ही क्यों अहिंसा का सहारा लें। अग्रेंज गाँधीजी की अहिंसात्मक नीति को भारतीयों की कमजोरी समझते थे और दमन करते थे। शरत का बार-बार यही कहना था कि जब अंग्रेजों ने अपने राज्य की स्थापना करने के लिए झूठ, छल, कपट और हिंसा का सहारा लिया है तो हम भारतीय भी क्यों न छल कपट से ही अंग्रजों का मुकाबला करें। स्वयं को अहिंसात्मक रखने की महान जिम्मेदारी हम भारतीय ही क्यों वहन करें। लेकिन शरत् के इन तर्को को महात्मा गाँधी ने नहीं माना।

**विशेष** : (1) शरत् की देशभक्ति का प्रकटीकरण है।

(2) शरत् मूलतः गर्म दल का ही साथ देते थे इसीलिए उन्होंने 'पथेर दाबी' नामक उपन्यास लिया जो क्रान्तिकारियों को गीता के समान था।

(3) भाषा सहज सरल एवं काव्यात्मक है।

(4) वर्णनात्मक शैली है।

"यह चित्र दुःख का चित्र है। वेदना का इतिहास है। अन्धकार की तस्वीर है। किन्तु यही क्या आखिरी बात है? यही अवस्था क्या इस जिले के लोग चुपचाप शिरोधार्य कर लेंगे? किसी को भी कोई बात, कोई त्याग, कोई कर्तव्य नहीं दिखाई देगा। जिन लोगों ने देश सेवा के व्रत में जीवन अर्पण कर दिया है, जो लोग किसी भी प्रतिकूल अवस्था को स्वीकार करना नहीं चाहते, जिन्होंने गवर्नमेंट से भी हार नहीं मानी, वे क्या अन्त में अपने देश के लोगों से ही हार मानकर लौट जाएँगे।

**प्रसंग** : सम्पूर्ण देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की लहर चल रही थी। देशबन्धु ने आन्दोलन को नया रूप देने के लिए कौंसिलों में प्रवेश करने का प्रस्ताव रखा था जिसका बंगाल में तीव्र विरोध हुआ। इसी विरोध को देखते हुए शरत् ने कांग्रेस कमेटी के सभापति के पद से इस्तीफा देते हुए भारतीयों की निष्क्रियता और आत्मप्रवंचना पर करारा व्यंग्य करते हुए कहा था–

**व्याख्या** : शरत् का कहना है कि भारतवासियों को अपनी बात कहने की स्वतन्त्रता नहीं है, यह दुःख की बात है और हमारी पीड़ा का इतिहास है। हमारे देश के लोग इतने कर्त्तव्यनिष्ठ, कर्मठ एवं द ढ़ निश्चयी हैं कि उन्होंने देश सेवा के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया है। किसी भी प्रतिकूल स्थिति के आगे उन्होंने झुकना नहीं सिखा है। क्या वे अपने ही लोगों से हार मान जाएंगे। जिन्होंने अंग्रेजी सरकार से हार नहीं मानी क्या वे अपने ही लोगों से हार मान जाएंगे। अर्थात् जो भारतीय लोग स्वतन्त्रता आन्दोलनों के विरूद्ध है उन लोगों से आन्दोलनकारी हार नहीं मानेंगे।

**विशेष** : (1) शरत् के क्रान्तिकारी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।

(2) तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का अंकन है।

(3) जिन लोगों को क्रान्तिकारियों पर विश्वास नहीं था उन पर करारा व्यंग्य भी किया है।

(4) भाषा सहज सरल एवं परिस्थिति अनुकूल है।

"पहाड़ में गति नहीं है, वह निश्चल है। इसी से उसकी चोटी एक जगह पर ऊँची रहती है, उसे नीचे नहीं आना पड़ता। किन्तु हवा के थपेड़े खाने वाले सागर की यह अवस्था नहीं है। वह उठता है, गिरता है, यह उसके लिए लज्जा का कारण नहीं है।

यह उसकी गति का चिह्न है, उसकी शक्ति की धारा है, तभी वह केवल ऊँचा होकर नहीं रहना चाहता। वह जमता है तो बर्फ हो उठता है। उसी तरह अगर हमारा यह भी आन्दोलन है, पराधीन देश का अभिनव गतिवेग, तो उठने गिरने का कानून उसे भी मान लेना होगा नहीं तो चल नहीं सकेगा।"

**प्रसंग** : सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गांधी जी ने जेल जाने के बाद उसे स्थगित कर दिया था क्योंकि उन्हें शंका थी कि हिंसा भड़क सकती है। लेकिन लोग दुःखी हुए और उन्होंने समझा कि आन्दोलन समाप्त ही हो गया है। ऐसे लोगों को समझाते हुए शरत् ने कहा–

**व्याख्या** : पहाड़ की चोटी ऊँची एवं स्थिर है, निश्चल है। उसे नीचे नहीं आना पड़ता। लेकिन समाज में रहते हुए व्यक्ति पहाड़ नहीं बन सकता। ऊँच नीच का परिवर्तन जीवन में अवश्यमभावी है। अन्यथा जड़ता आ जाती है। पहाड़ के समान सागर की स्थिति नहीं है। वह विभिन्न प्रकार की हवाओं के थपेड़े (झोके) खाता है। वह कभी ऊपर उठता है। कभी नीचे गिरता है यह उसके लिए लज्जा की बात नहीं है। इसी तरह आन्दोलन को भी विरोधियों के थपेड़े सहन करने पड़ते हैं। विरोधी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। परिस्थितियों का सामना क रते हुए कई बार समझौते करने पड़ते हैं, झुकना भी पड़ता है। ऊपर भी उठना पड़ता है। आन्दोलन को स्थगित भी करना पड़ता है। इसमें हार मानने एवं लज्जा को कोई बात नहीं है। उठी हुई लहरें गिरने पर समुद्र को कोई लज्जा नहीं होती, बल्कि यह उसकी गति है, शक्ति है, यही उसके जीवन्त होने का प्रमाण है। समुद्र में शक्ति है इसलिए वह केवल ऊँचा रहकर जीना नहीं चाहता अपितु, परिस्थितिवश वह झुक भी जाता है। वही झुकने वाला समुद्र जब जम जाता है तो बर्फ हो जाता है, जिसे कोई तोड़ नहीं पाता। इसी तरह स्वतन्तत्रता का आन्दोलन भी गति का प्रतीक है। यह भी उठता एवं गिरता है, इसे हमें स्वीकार भी कर लेना चाहिए। अन्यथा यह चल नहीं सकता।

**विशेष** : (1) शरत् ने परिस्थितियों के थपेड़ों से झुक जाना, समझौता करने में ही जीवन की गति को स्वीकारा है।

(2) भाषा सहज सरल एवं काव्यात्मक है।

(3) रूपकात्मकता है।

"प्रजा की स्थिति में भारी परिवर्तन आ गया है। अब यह चाहे शिक्षा का परिणाम हो, चाहे युगधर्म का हो, चाहे जमींदारों के अत्याचारों का नतीजा हो, जनता अब जमींदारी प्रथा का नाश चाहती है। दो रोज पहले या दो रोज बाद, जमींदारी मिटेगी ज़रूर। जमींदारी को विदा होना होगा। तुम किसी भी तरह इसे बचा न सकोगे।"

**प्रसंग** : शरत् की रचना प्रक्रिया के तीन युग हैं। पहला है कोरी भावुकता से पूर्ण रोमाण्टिक साहित्य। दूसरा है– नारी मुक्ति आन्दोलन की विचाराधारा से परिपूर्ण साहित्य, तीसरा है– शुष्क राजनीति से प्रेरित विचारात्मक साहित्य। यहाँ उनकी तीसरी विचारधारा ही व्यक्त हुई है। जिसमें वे जागरण नामक उपन्यास की नायिका के पिता से कहलवाते हैं कि–

**व्याख्या** : शरत् का कहना है कि प्रजा की चित्त व त्ति में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है। वह अब दमित होकर नहीं रहना चाहता। वह मुक्ति चाहती है। यह परिवर्तन चाहे शिक्षा के कारण हो क्योंकि शिक्षित व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाता है। चाहे यह परिवर्तन युग की परिस्थितियों के कारण हो क्योंकि इन जमींदारों के अन्याय अत्याचार की परिस्थितियों के कारण हो क्योंकि इन जमींदारों के अन्याय अत्याचार की परिस्थितियों को व्यक्ति एक हद तक ही सहन कर सकता है। जमींदारों के अन्याय एवं अत्याचारों की अति हो चुकी थी अतः जनता में जागरूकता आ गई थी वह सब इस प्रथा का नाश चाहते हैं। दो दिन पहले या दो दिन बात में लेकिन अब इस प्रथा का नाश जरूर होगा। अब इसे समाप्त होना ही होगा क्योंकि लोगों ने इसके विरूद्ध अवज्ञा उठा दी है। उसे अब किसी भी तरीके से बचाया नहीं जा सकता और अन्याय, अत्याचार, शोषण पर टिकी व्यवस्था का नाश होना भी निश्चित होता है, होना भी चाहिए।

**विशेष** : (1) शरत् का उक्त उद्धारण वाला उपन्यास पूरा नहीं हो सका किन्तु उनका यह अंश एक भविष्यवाणी के रूप में साबित हुआ।

(2) यहाँ शरत् के राजनीतिक विचारों का प्रतिपादन है।

(3) भाषा सहज सरल एवं काव्यात्मक है।

(4) यह शरत् की निर्द्वन्द्व अभिव्यक्ति है।

"उस लेख में किसी अज्ञात कारण से रवीन्द्रनाथ उलझ गये। नहीं तो उनके समान महान् द्रष्टा कला के क्षेत्र और उद्देश्य की व्यापकता के सम्बन्ध में अपरिचित हो, ऐसा मैं नही मानता। इसमें कोई संदेह नहीं कि वे आनन्दमूलक सौंदर्य के कवि रहे हैं पर साथ ही दु:ख-दैन्य, अभाव, शोषण और अत्याचार से पीड़ित जीवन के कठोर वास्तविक पहलू की उपेक्षा भी उन्होंने नहीं की।

**प्रसंग** : शरत् स्वतन्त्र चेता व्यक्ति थे। वे रवीन्द्रनाथ की भी गलत बात का विरोध करते नहीं हिचकते थे। शरत दलित, पीड़ित नारियों के पक्षधर थे। एक बार रवीन्द्रनाथ ने एक लेख में व्यंग्य करते हुए कहा उसे कहा—कला विशुद्ध आनन्दमूलक सौंदर्य से सम्बन्ध रखती है। इसका निवास चीतपुर की गन्दी गलियों में नहीं बल्कि वाणी के अनुकूल मंदिर में है। शरत् ने इसके प्रत्युत्तर में कहा कि—

**व्याख्या** : शरत् का मानना है कि रवीन्द्रनाथ एक महान् द्रष्टा हैं, वे यदि कला के क्षेत्र तथा उसके उद्देश्य की व्यापकता को नहीं समझेंगे तो और कौन समझेगा। कला सम्पूर्ण मानवता का हित चाहती है। इस बात से रवीन्द्रनाथ अनभिज्ञ हो शरत् मानने को तैयार नहीं हैं। जिस रवीन्द्रनाथ ने एक कविता में वेश्याओं और दूसरी पतित स्त्रियों को सती शिरोमणि माना हो और पतिता? शीर्षक कविता में एक वेश्या के अन्तर में निहित देवत्व को अत्यन्त मार्मिक सुन्दरता से प्रस्फुटित किया हो, वह आज कहे कि चीतपुर की गन्दी गलियों से कला का कोई सम्बन्ध नहीं। तब यह संदेह होना स्वाभाविक है कि उनके लेख के पीछे कोई रहस्यमय कारण है। हाँ यह सत्य है रवीन्द्रनाथ आनन्दमूलक सौन्दर्य के कवि हैं लेकिन यह भी सत्य है कि उन्होंने अन्याय, शोषण, दु:ख-दैन्य आदि को भी स्वीकारा है। उसकी अवहेलना नहीं की है।

**विशेष** : (1) यहाँ रवीन्द्रनाथ और शरत् की विचारधारा में मूल अन्तर दिखाई देता है कि रवीन्द्र साहित्य के माध्यम से विश्व मानव की खोज करना चाहते थे जबकि इसके विपरीत शरत् चितपुर की गन्दी गलियों में अपनी भूमि पर ही मानवता की खोज करना चाहते थे।

(2) शरत् का मानना है कि वेश्याओं के बुरे माने जाने वाले क त्य शरीर तक सीमित हैं जबकि मन से वे सत् चरित्रा, कुलीन होती हैं।

(3) भाषा सहज सरल एवं काव्यात्मक है।

(5) तार्किक शब्दावली है।

"थियेटर केवल आनन्द के लिए ही नहीं है, लोक शिक्षण का कार्य भी करता है। लेकिन अगर देश के नाट्यकारों ने इस सत्य को प्रतिपादित करते हुए कभी ऐसा नाटक लिखा है तो फौरन ही शान्ति रक्षा के नाम पर आईन की आड़ में राज्य सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। इसीलिए सत्य से वंचित हमारी नाट्यशाला आज देश के सामने लज्जित, व्यर्थ और अर्थहीन है।"

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' से उद्ध त है। शरत् ने अनेक उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, लेख आदि लिखे लेकिन नाटक कभी भी नहीं लिखा। क्योंकि उनकी नाटक और तत्कालीन भारतीय रंगमंच और राजनीति को बारे में उनके विचार थे कि—

**व्याख्या** : शरत् का विचार है कि रंगमंच केवल आनन्द प्रदान करने की वस्तु नहीं हैं। वह लोक को शिक्षित करता है। प्रेक्षकों को जीवन जीने की कला सिखाता है। रंगमंच एक ऐसी रणस्थली है जहाँ सत्य, न्याय की विजय होती है। शरत को दु:ख है कि अगर कोई सत्य को प्रतिपादित करने वाले नाटक की रचना करता है तो सरकार उसका विरोध करती है और शान्ति भंग होने का भय दिखाकर कानून की आड़ में उसे जब्त कर लेती है। लेखक शरत् का 'पथेरदाबी' उपन्यास जब्त कर लिया गया था। उनका कहना है कि यदि लेखक सत्य नहीं लिख सकता, कलाकार सत्य नहीं प्रदर्शित नहीं कर सकता तो नाटक लिखने से क्या लाभ? इसी कारण हमारा रंगमंच देश के सामने लज्जित है, बेकार है, अर्थहीन है, क्योंकि वह सत्य को दिखाने में अक्षम है वो भी सरकार के भय से।

**विशेष** : (1) शरत् के क्रान्तिकारी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।

(2) शरत् ने रंगमंच को सत्य को प्रदर्शित करने वाला स्थल माना है।

(3) भाषा संस्कृतनिष्ठ किन्तु सरल है।

"आदर्श का विरोध मैं नहीं करता। मैं यह भी नहीं मानता कि कोई कहानी या उपन्यास जीवन का फोटो होना चाहिए, पर जो आदर्श यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित नहीं होता, आज के जीवन में मैं उसका कोई मूल्य मानने को तैयार नहीं हूँ। आदर्शवादी होने पर भी टालस्टाय ने प्रत्यक्ष जीवन की सच्चाई को यथार्थवादी द ष्टिकोण को स्वीकार किया।"

**प्रसंग** : शरत् की साहित्यिक चर्चा अनेक लेखकों एवं साहित्यकारों से होती थी। उन्होंने एक कहानी 'अंधा रे आलो' में एक वेश्या का हृदय परिवर्तन दिखाया है जिसे पढ़कर इलाचन्द्र जोशी ने कहा कि यहाँ जीवन सत्य के अनुरूप घटना का विकास नहीं हुआ है। इसके प्रत्युत्तर में शरत कहता है—

**व्याख्या** : शरत कहते हैं कि यह जरूरी नहीं कहानी, उपन्यास में यह आवश्यक नहीं कि उसमें प्रतिपादित सत्य जीवन के अनुरूप ही हो, ऐसा करने से रचना केवल जीवन की फोटो बन कर रह जाएगी। सौंदर्य का नाश ही हो जाएगा। उपन्यास में आदर्श की स्थिति महत्वपूर्ण है। हाँ यह आदर्श की स्थापना यथार्थ की नीवं पर होनी चाहिए। जीवन में जिस प्रकार आदर्श का महत्व है। उसी प्रकार उपन्यास में भी आदर्श का महत्व है। उनका मानना है कि किसी महान् उद्देश्य के लिए यदि यथार्थ को थोड़ा सा मोड़ना पड़े, परिवर्तन करना पड़े तो उससे आदर्श में खराबी नहीं आ जाती। उन्होंने तालस्ताय का उदाहरण देते हुए कहा कि वे एक आदर्शवादी लेखक थे लेकिन उन्होंने भी प्रत्यक्ष जीवन की सच्चाई को व्यक्त करने के लिए यथार्थ वादी द ष्टिकोण को ही अपनाया। अतः आदर्श की स्थापना के लिए यथार्थ का चित्रण आवश्यक है।

**विशेष** : (1) शरत ने यथार्थ का यथावत्-चित्रण उचित नहीं माना।

(2) शरत् के इन विचारों का प्रभाव प्रेमचन्द्र के गोदान पर परिलक्षित होता है।

(3) भाषा सहज, सरल एवं भावप्रवण है।

"अंग्रेजी राज क्षमा कर देगा, इस अधिकार को लेकर हम उसकी निन्दा करें, यह भी कोई पौरुष की बात नहीं है। मैं नाना देशों में घूम आया हूँ और जो कुछ जान सका हूँ, उससे यही देखा है कि एक मात्र अंग्रेजी राज्य को छोड़कर स्वदेशी या विदेशी प्रजा के मौखिक या व्यावहारिक विरोध को और कोई भी राज्य उतने धैर्य के साथ सहन नहीं करता।"

**प्रसंग** : शरत् ने 'पाथेरदाबी' नामक उपन्यास लिखा जिसकी क्रान्तिकारियों में लोकप्रियता देखकर सरकार ने जब्त कर लिया। इसकी लोकप्रियता से एक ओर शरत् बाबू उत्साह से भरे हुए थे तो दूसरी ओर पुलिस एवं प्रशासन का क्षणिक डर भी था। ऐसी स्थिति में शरत् ने गुरूदेव रवीन्द्रनाथ को एक पत्र लिखा और साथ में इस उपन्यास की एक प्रति भी भेजी जिसे पढ़कर रवीन्द्रनाथ ने कहा कि पुस्तक काफी उत्तेजक है। इसमें अंग्रेजी शासन के विरुद्ध पाठकों की प्रसन्नता हुई है। लेखक के हिसाब से यह दोषी नहीं है क्योंकि उसकी द ष्टि में अंग्रेजी राज्य दोषपूर्ण नहीं है। इसी के संदर्भ में रवीन्द्र के विचार यहाँ व्यक्त हैं—

**व्याख्या** : शरत् आपने अंग्रेजी शासन के विरूद्ध पुस्तक लिखकर पाठकों के मन को गुदगुदाया है। परन्तु इससे आपने कुछ कठिनाईयों को मोल ले लिया है। हमारी द ष्टि में अंग्रेजी राज आपको क्षमा नहीं करेगा। अगर वह क्षमा करता है तो हमें उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह हमारा अधिकार नहीं है। सच्चा व्यक्ति स्वार्थी नहीं होता और वह पौरुष के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करता। इसलिए आपने जो कुछ लिखा है वह आपकी द ष्टि में तो ठीक हो सकता है परन्तु शासन की द ष्टि में क्षमा योग्य नहीं है। मैंने अनेक देशों का भ्रमण किया है। उन देशों से नए-नए अनुभव लिए हैं। सबमें मुझे एक ही बात दिखाई देती है कि अंग्रेजी शासनों की अपेक्षा अंग्रेजी शासन में धैर्य है। दूसरा कोई भी देशी या विदेशी राज्य इतनी सहनशीलता और धैर्य का परिचय नहीं दे सकता। इसलिए प्रजा द्वारा मौखिक या व्यवहारिक विरोध करना अनुचित है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अंग्रेजी शासन का खुलकर विरोध न करें क्योंकि इससे हम कष्ट में पड़ सकते हैं।

**विशेष** : (1) यहाँ लेखक ने दर्शाया है कि अंग्रेजी शासन को लेकर शरत् और रवीन्द्रनाथ में भिन्नता थी। शरत् इसी कारण रवीन्द्रनाथ के विचारों का विरोध किया करते थे।

(2) रवीन्द्रनाथ की यह महानता ही है कि वे अंग्रेजी शासन की अच्छी बातों को अच्छी ही मानते थे।

(3) शरत् एक जन लेखक के रूप में सामने आते हैं।

(4) भाषा सहज सरल एवं काव्यात्मक है।

"पराधीन देश के अधः पतित समाज की असहाय अन्तःपुरचारिणियों के हृदय में मूक वेदना को तुमने भाषा में मूर्त कर दिया। उनके दुर्गतिपूर्ण जीवन के सुख-दुःखों की सभी अनुभूतियों को निविड़ सहानुभूति में ढालकर तुमने साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष करा दिया। तुम्हारी अनाविष्ट द ष्टि सूक्ष्म पर्यवेक्षण सामर्थ्य सुगंभीर उपलब्धि शक्ति तथा विचित्र मानव चरित्र की अतलस्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी चित्र की निगूढ़ प्रकृति का गुप्ततम पता पा लिया है। हे नारी चरित्र के परम रहस्यगाता, हम लोग तुम्हारी वन्दना करती है।"

**प्रसंग** : यहाँ लेखक विष्णुप्रभाकर शरत् के साहित्यिक गुणों की व्याख्या है। शरत् दलित, पीड़ित नारी मुक्ति के पक्षधर एवं आन्दोलनकारी थे। इसी कारण शरत् की 57 वीं जन्म जयन्ती पर उनका अभिनन्दन करते हुए बंगाल की नारियों ने एक प्रशंसा पत्र पड़ा था। इस पत्र में कहा गया है–

**व्याख्या** : हे नारी जीवन की पीड़ा को समझने वाले, तुमने दासता की गर्त में गिरे हुए देश के पददलित समाज की पददलित पात्रा अर्थात् नारी जो असहाय है, दुःखी है, पीड़ित है, घर की चारदीवारी में बन्द है, उसका व्यथा कथा को मूर्त रूप में चित्रित किया है। अतः नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। शरत् नारी के सबसे बड़े समर्थक थे। इसीलिए नारी उन्हें अपना देवता मानती थी। तभी तो उन्हें कहा कि तुमने नारियों के दुर्गतिपूर्ण जीवन के सुख-दुःखों की अनुभूतियों को सहानुभूतिपूर्वक देखा तथा अपने साहित्य में ढालकर उनके सुख-दुःख को प्रत्यक्ष कर दिया। अतः नारी को उन्होंने सहानुभूति से देखा। उसकी वेदना, व्यथा, पीड़ा दुःख को देखा और समझा। शरत् की नारी विषयक द ष्टि की विशेषताएँ बताते हुए नारियाँ कहती हैं कि उनकी द ष्टि अनाविष्ट थी (शान्त, निर्विकार) उनकी नजर केवल नारी की बुराई ही नहीं देखती थी, वह उनका छोटे से छोटा गुण अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षक बुद्धि से खोज लेता था। जीवन की अभिज्ञता के कारण वे बड़ी सूक्ष्मता से नारी के जीवन को देख समझ सकते थे। उनकी उपलब्धि गंभीर थी, उन्होंने जीवन के हल्के पक्षों की सदैव ही अवहेलना की तथा गंभीर एवं उज्जवल पक्ष को ही देखा, उनके हृदय में मानव चरित्र की अटल स्पर्शी अनभिज्ञता थी। मानव चरित्र की गहराइयों को वे बड़ी आसानी से पहचान लेते थे तथा उन्होंने प्रकृति का गुप्ततम रहस्य पा लिया था। ऐसे मानव विशेषकर नारी चरित्र के ज्ञाता उसके अन्तर्मन के भावों को समझने वाले व्यक्ति को शत्-शत् नमन है।

**विशेष** : (1) शरत् की नारी को समझने की शक्ति का विश्लेषण किया है।

(2) शरत् का चरित्र गरिमामयी एवं उज्जवल बन पड़ा है।

(3) भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं क्लिष्ट है। परन्तु इस पर क्लिष्टा का आरोप नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यह न विष्णुप्रभाकर द्वारा लिखित 'आवारा मसीहा' की भाषा है और न ही शरत् के किसी उपन्यास की भाषा है। बल्कि यह तो शरत् की प्रशंसा में लिखे एक पत्र की भाषा है।

"कोई धारण या वस्तु बहुत प्राचीन काल से चली आई है, इसी कारण वह सही नहीं है। कुछ भी हमेशा के लिए सही नहीं हो सकता। सतीत्व परिपूर्ण मनुष्यता का एक अंग है। वह मनुष्यता पर हावी नहीं हो सकता। कर्तव्य और अधिकार का सम्बन्ध ऐसा अविच्छिन्न है कि एक न रहे तो दूसरा निरर्थक है।"

**प्रसंग** : शरत् स्वच्छन्द प्रव ति के व्यक्ति थे। उन्होंने कभी भी समाज की गली सड़ी जड़ मान्यताओं को नहीं स्वीकारा बल्कि उनका विराध किया। जब उनसे यह प्रश्न पूछा गया कि आपने सतीत्व की प्राचीन धारणा के विरुद्ध एवं रिवोल्ट खड़ा कर दिया है तो उन्होंने इसके उत्तर में कहा –

**व्याख्या** : मैंने कोई रिवोल्ट नहीं खड़ा किया। यह तो आधुनिक युग का प्रभाव ही है। यह युग नारी पर अत्याचार नहीं सहन कर सकता। यहाँ स्त्री -पुरुष समान हैं। कोई भी बात या धारणा बहुत पुराने समय से चली आ रही है इसीलिए वह सही हो यह मानना गलत है। प्रत्येक पुरानी बात, परम्परा, मान्यता ठीक नहीं होती संभव है जब वह परम्परा चली तब उसका कुछ औचित्य हो परन्तु समय के साथ उसकी प्रत्संगिता समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार सती प्रभा की अब प्रासंगिकता नहीं है। पति की म त्यु पर पत्नी क्यों सती हो जाए? आखिर यह मानवीयता की हत्या है। सतीत्व परिपूर्ण मनुष्यता का एक अंग है। अंग का कभी पूर्ण तत्व नहीं बन सकता। प्रधानता है। मनुष्यता की। यदि मनुष्य ही नहीं रहेगा तो सतीत्व की धारणा को कैसे बचाया जाएगा। अतः मनुष्य प्रथम है। इसलिए सदा ही एक विचार, धारणा, मान्यता सत्य हो यह आवश्यक नहीं। जीवन में कर्त्तव्य और अधिकार का परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध है। यदि अधिकार नहीं रहेंगे तो कर्त्तव्य भी नहीं रहेंगे। एक के बिना दूसरा कोई अर्थ नहीं रखता।

**विशेष** : (1) शरत् के सतीप्रथा विरोधी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।

(2) शरत् ने अपने साहित्य के माध्यम से सतीप्रथा के विरुद्ध एक 'रिवोल्ट खड़ा' कर दिया था।

(3) शरत् की नारी मुक्ति की कामना व्यक्त है।

(4) भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं काव्यात्मक है।

(5) शैली विचारात्मक है।

वह सिद्धान्तवादी नहीं थे, अवसारवादी भी नहीं थे। वह मनुष्य थे। महानता के साथ-साथ मानवीय कमजोरियाँ भी उनमें थीं। कमजोरियों से कटकर कोई महान् नहीं बनता। लेकिन अपवादों को छोड़कर अपने को सन्तुलित रखने का शानदार गुण उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। सिद्धान्त यदि उनका कोई था भी तो एक था—अन्याय का प्रतिकार।''

**प्रसंग** : 'आवारा मसीहा' शरत् की जीवनी है। इसमें लेखक विष्णु प्रभाकर शरत् के साहित्य एवं जीवन के अनेक पहलुओं को प्रस्तुत करता है। यहाँ शरत् के चरित्र का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहता है कि—

**व्याख्या** : शरत् सिद्धान्तवादी नहीं थे। अर्थात-वे किसी विशेष सिद्धान्त से चिपके हुए नहीं थे। वे सिद्धान्तों में रहकर गलत काम करने के पक्षधर नहीं थें। वे अवसरवादी भी नहीं थे कि जैसा अवसर हो वैसा ही बात करने वाले भी नहीं थे। वे अवसर का फायदा उठाना भी नहीं चाहते थे। उन्हें असम्बेली का चुनाव लड़ने के लिए कहा गया था क्योंकि वे लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच चुके थे परन्तु उन्होंने स्पष्ट कहा कि मैं साहित्यकार हूँ, नेता नहीं। अतः उन्होंने चुनाव नहीं लड़ा वे असाधारण प्रतिभा के साधरण मनुष्य थे। महामानव नहीं थे। मनुष्य के समान उनमें अच्छाईया थी तो बुराइयाँ भी थी। इस बात का यह प्रमाण है कि उन्होंने बिना विवाह किए ही एक स्त्री को अपने घर में रख रखा था। वे मानवता के पुजारी थे। उन्हें पशुओं के प्रति प्रेम था, पद्दलितों के प्रति सहानुभूति थी। वे विषम परिस्थितियों में हार मानने वाले इन्सान नहीं थे। उन्होंने तो विषम परिस्थितियों में भी अपनी साहित्य यात्रा को मौन रूप में चलाए रखा। उन्होंने बचपन में जो अन्याय, अत्याचार का विरोध करने की प्रतिज्ञा ली थी उस पर सदैव अडिग रहे। वह चाहे अंग्रेज सरकार द्वारा किया गया अत्याचार हो या फिर हिन्दू समाज द्वारा नारियों पर किया गया अत्याचार।

**विशेष** : (1) शरत् के चारित्रिक गुणों का बखान है।

(2) भाषा की सहजता सरलता एवं काव्यमयकता ह्रदय ग्राहय है।

(3) वर्णनात्मक शैली है।

''कभी किसी भी देश में विप्लव नहीं लाया जा सकता। अर्थहीन अकारण विप्लव की चेष्टा में केवल रक्तपात ही होता है और कोई फल नहीं प्राप्त होता। विप्लव की स ष्टि मनुष्य के मन में होती हैं केवल रक्तपात में नहीं। इसी से धैर्य रखने की उसकी प्रतीक्षा करनी होती है। क्षमाहीन समाज, प्रीतिहीन धर्म, जातिगत घ णा, अर्थनीति की विषमता, स्त्रीजाति के प्रति ह्रदयहीन कठोरता और आमूलचूल प्रतिकार के विप्लव पक्ष में ही राजनीतिक विप्लव संभव न होगा।''

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवतरण विष्णु प्रभाकर रचित सुप्रसिद्ध साहित्यकार शरत् शन्द्रचट्टोपाध्य की जीवनी 'आवारा मसीहा' से उद्ध त है।

सम्पूर्ण देश में गाँधीजी के नेत त्व में असहयोग आन्दोलन चल रहा था। 31 दिस्मबर 1928 ई. को स्वराज्य प्राप्त करने की तिथि निश्चित की गई। गिरफ्तारियाँ हुई। चौरी-चौरा हिंसक घटनाएँ भी हुई। इस स्थिति को देख गाँधी जी ने आन्दोलन को स्थागित कर दिया। यही से शरत् गाँधीजी के विरोधी हो गए और इसके विरोध में 'तरुणों का विद्रोह' भाषण प्रकाशित किया और क्रान्तिकारियों को सचेत किया।

**व्याख्या** : असहयोग आन्दोलन के स्थागित होने से शरत् को बहुत दुःख हुआ वे कहने लगे कि महात्मा जी ने डरकर आन्दोलन को बन्द किया है। देश की जनता की सारी की सारी आशाएँ अकाल कुसुम की तरह एक घड़ी में ही शून्य में मिला दी। शरत् यह विरोध करते हुए भी विप्लव का समर्थन नहीं करते। वे कहते हैं भारत के आकाश में आजकल एक ही शब्द गूँज रहा है, विप्लव। लेकिन युवकों को यह याद रखना चाहिए कि विप्लव के लिए विप्लव नहीं लाया जा सकता। क्रान्ति के लिए क्रान्ति लाई जाए ऐसा संभव नहीं। क्रान्ति के पीछे महान् उद्देश्य होना चाहिए। उद्देश्यहीन विप्लव केवल रक्तपात ही होगा, उससे कुछ नहीं मिलेगा। विप्लव की स ष्टि बाहर से नहीं व्यक्ति के मन से होती है। जब अत्याचार की सीमा समाप्त हो जाती है, तब व्यक्ति के मन से ही विद्रोह निकलता है। विद्रोह ही क्रान्ति को जन्म देता है। जब तक क्षमाहीन समाज रहेगा अर्थात-अंग्रेजी सरकार की छोटी-मोटी भूलों को भी अनदेखा किया जाएगा तब तक क्रान्ति नहीं आएगी। साथ ही जब तक जातिगत घ णा रहेगी, आपसी प्रेम न रहेगा तब तक विप्लव नहीं हो पायेगा। और धन के कारण ऊँच-नीच की स्थिति भी विप्लव में बाधक है। इसलिए धन का बराबर-बराबर बँटवारा होना चाहिए। इसी के साथ स्त्रियों के प्रति हृदयहीन कठोरता को भी समाप्त करना होगा। यह सब कुछ करने के बाद ही राजनीतिक विप्लव संभव हो सकेगा।

**विशेष** : (1) शरत् क्रान्ति को बहुआयामी बताते हैं। उनका मत है कि धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक क्रान्ति के बाद ही राजनीतिक क्रान्ति जन्म ले सकती है।

(2) भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं सारगर्भित है।

"प थ्वी मण्डल के सभी शक्तिशाली जातियों के इतिहास की छानबीन करने पर देखा जाता है कि उनके बीच आत्मकलह न रहती हो, यह बात नहीं। किन्तु किसी बाहरी शत्रु का सामना करने पर वे लोग आपसी विवाद और कलह को स्थगित रखना जानते थे।"

**प्रसंग** : पूर्ववत्

**व्याख्या** : यदि प थ्वी के सभी शक्तिशाली देशों का इतिहास पढ़कर देखें तो मालूम होता है कि उन देशों में विभिन्न विचारों के व्यक्ति न हो, उनमें आपसी झगड़ा, कलह न हो ऐसी बात नहीं, पर उनकी विशेषता इस बात में है कि जब उनके देश पर बाहरी आक्रमण होता है तो वे सारे आपसी मतभेद भुलाकर एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। अपने कलह को स्थगित कर देते हैं। वे किसी भी स्थिति में विदेशी आक्रमणकारियों का साथ नहीं देते जबकि हमारे देश में कुछ देशद्रोही भी हैं जो अंग्रेजों का साथ देते हैं।

**विशेष** : (1) एकता का संदेश प्रवाहित किया गया है।

(2) बाहरी शक्ति से लड़ने के लिए हमें आपसी कलह को स्थगित कर उससे एकजुट हो मुकाबला करना चाहिए।

(3) भाषा सहज, सरल एवं सुबोध है।

"शरत की द ष्टि वर्तमानकाल पर थी। रवीन्द्र शाश्वत मानव के विराट चितेरे थे। शरत मात्र अन्याय का विरोध करते थे और वे किसी भी तरह मनुष्य को छोटा करके नहीं मानते थे। पतिताओं में निहित नारीत्व को उन्होंने प्रकट किया है। यही उनका जीवन-दर्शन था, परन्तु उनके नर-नारी इसी देश के अधिक थे। इसके विपरीत कविगुरु चिरकाल के सत्य को आदर्श के रूप में बार-बार देश और समाज के सामने स्थापित करते रहते है।"

**प्रसंग** : शरत् बाबू और कविगुरु रवीन्द्र बाबू दोनों ही विशाल ह्दय वाले व्यक्ति थे। उन दोनों से जो एक बार मिल लेता था बड़ी जल्दी अपना बना लेते थे। इतना सब-कुछ होने पर भी इन दोनों के आपस में कभी भी विचार नहीं मिल सके। दोनों के बीच विचार के स्तर पर संघर्ष चलता रहता था। अतः दोनों में ही विचारत भिन्नता थी। इसी भिन्नता को लेखक प्रकट करता हुआ कहता है –

**व्याख्या** : शरत् सदैव ही यथार्थवादी थे। वे वर्तमान पर द ष्टि रखते थे। जबकि रवीन्द्र संपूर्ण विश्व में मानवता खोजते थे। उनका ह्दय विश्वव्यापी था। शरत् अपनी मिट्टी से जुड़े लेखक थे। वे अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध सदैव लड़ने के लिए तैयार रहते थे। वे मनुष्य को छोटा करके नहीं देखते थे। वे पतिता नारी में भी नारीत्व ढूँढ लेते थे। उनका मत था कि जिस व्यक्ति ने इन्हें पतिता बनाया है, दोष वही है। ये तो मन से पवित्र हैं। उनके नर-नारी इसी देश के थे। उनका जीवन-दर्शन भी यही था कि समाज में नारी को ऊँचा स्थान दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने चिरकाल के सत्य को आदर्श रूप दिया। वे सत्य को शाश्वत मानते थे। और उसी को देश एवं समाज के सामने उसकी विशालता में रखा।

**विशेष** : (1) शरत् और रवीन्द्रनाथ में विचारों की भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती हैं

(2) शरत् की द ष्टि वर्तमान पर भी जबकि रवीन्द्र की द ष्टि शाश्वत सत्य पर थी।

(3) भाषा संस्कृतनिष्ठ किन्तु सरल सहज है।

*****

# आवारा मसीहा

# खण्ड ख : आलोचना

# अध्याय - 1

# आवारा मसीहा : सार

### आवारा मसीहा के पर्वः

'आवारा मसीहा' श्री विष्णु प्रभाकर ने सुप्रसिद्ध बंगला साहित्य के लेखक श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के जीवन पर आधारित रचना है। साहित्य में इसे 'जीवनी' विधा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसमें विष्णु प्रभाकर ने खण्डों, काण्डों, सर्गों, भागों अध्यायों की बजाए इन तीन पर्वों (भागों) में शरत् के जीवन एवं साहित्य को बांटते हुए अलग-अलग नामों से अभिहीत किया है। पहले पर्व का नाम 'दिशाहारा' रखा है। इसमें शरत् के बाल्यकाल की घटनाएं एक सूत्र में पिरोई गयी हैं। इसमें इच्छाओं के कारण शरत् को भटकना का भी रेखांकन है। दूसरे पर्व का नाम 'दिशा की खोज' है। इसमें शरत् का आजीविका की खोज में देश विदेश में भटकने एवं साहित्यिक जीवन-दर्शन का वर्णन है। तीसरे पर्व का नाम 'दिशान्त' है। इसमें शरत् की उपन्यासकार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा एवं सभाज में उनके भिन्न-भिन्न क्रियाकलापों का वर्णन किया गया है साथ ही उनके स्वर्गवास की घटनाओं को भी अंकित कर दिया है।

### दिशाहाराः

इसमें शरत् के बाल्यकाल का वर्णन किया गया है। उनके पिता मोतीलाल चट्टोपाध्याय 'चौबीस परगना' के कांचड़ापाड़ा के निकट मामूदपुर के रहने वाले और निर्भीक एवं स्वच्छन्द स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी पत्नी का नाम भवनमोहिनी था, जो साधारण रूप रंग की महिला थी। उनके यहाँ शरत्चन्द्र का जन्म 15 सितम्बर 1876 ई. तदनुसार 31 भाद्र, 1283 बंगाब्द आश्विन कृष्णी द्वादशी, सम्वत् 1933, एकाब्द 1798, शुक्रवार की संध्या को हुआ। इनका बचपन देवानन्दपुर में बीता। इनके पिता भायावरी व त्ति के व्यक्ति थे। वे किसी भी स्थान या नौकरी पर अधिक दिन न टिक सके। ऐसी स्थिति में शरत् का जीवन भी प्रभावित हुआ।

शरत् को पाँच वर्ष की आयु में स्कूल भेज दिया गया। वे शुरू से ही नटखट स्वभाव के थे इसीलिए स्कूल में भी शरारत करते रहते थे। कभी वह पंडित की चिलम में तम्बाकू की जगह पत्थर भर देता तो कभी हुक्के में पानी की जगह कुछ और भर देता। उसकी इन्हीं हरकतों से पंडित जी नाराज रहने लगे। एक बार इसी शरारत का पंडित जी को पता चल गया और उन्होंने शरारती का नाम पूछा, एक लड़के ने बता दिया। दण्ड की आशंका कर शरत् कक्षा से भाग खड़ा हुआ और भागता-भागता नाम बताने वाले लड़के को धक्का देना न भूला। इस बात को पंडित जी ने उसके पिता को बता दिया। नाना ने उसकी पिटाई की। कुछ भी हो लेकिन शरत् पढ़ाई में अन्य विद्यार्थियों की तुलना में तेज था। इसी कारण उनके अनेक शरारतों को अनदेखा कर दिया जाता था।

पंडित का लड़का काशीनाथ शरत् का परम मित्र था। दोनों ही घूमते-फिरते हुए तरह-तरह की शैतानियों कर देते थे। शरत् की कक्षा में एक धीरू नाम की एक लड़की पढ़ती थी। शरत् उसके साथ भी शरारत करता था। शायद ही यह धीरू ही उनके सबसे प्रसिद्ध उपन्यास देवदास की नायिका पार्वती बनी। शरत् और काशीनाथ की शरारतों में धीरू भी साथ देती थी। इसी कारण वह सुख-दुःख के साथिन बन गई। एक बार की बात है, शरत् ने एक लड़के को ईंट मारी और भागकर कहीं छिप गया। धीरू को यह सब पता था। धीरू ने शरत् से कहा कि वह यह सब उसकी माँ को बता देगी। यह सुन क्रोधित हो शरत् ने धीरू को एक धौल मारा। इस बात पर धीरू खूब रोई। इसी कारण शरत् की माँ ने उसकी खूब पिटाई की। लेकिन इन

दोनों बालकों की मित्रता में कोई फर्क नहीं पड़ा। दोनों ही दिन भर साथ-साथ घूमते-फिरते, बातें करते दिन बिता दिया करते थे। शाम को जब वे घर पर आते तो इनकी पीठ पूजा होती थी। शरत् को मछली पकड़ने का शौक चढ़ता जा रहा था। इसी बीच उनके पिता को देवानन्दपुर में नौकरी मिली। जिसके कारण शरत् को भी वहाँ रहना पड़ा।

शरत् निर्भीक एवं साहसी था किन्तु सुन्दर नहीं था आँखों को छोड़कर उसमें कोई विशेषता नहीं थी। हाँ वह परोपकारी जरूर था। निडर था। पढ़ने के समय उसे रोना आ जाता था। उसे शरारत करने में मजा आता था। एक दिन वह सबके साथ खेल रहा था। इतने में अचानक नाना आ गए और पूछने लगे कि आज पाठ याद नहीं किया था? तो शरत् ने उत्तर दिया कि आज पंडित जी बीमार हैं इसलिए वे आ नहीं सके। यह सुनकर नाना पंडित भी का हाल पूछने के लिए गए। वह फिर स्वतन्त्रता से खेलने लग गया।

शरत् को नदी के किनारे मौन एकान्त में बैठना भी बहुत पसन्द था तभी तो लेखक लिखता है कि उसने गंगा के किनारे बैठकर यह सौगन्ध खाई होगी कि ‘मैं सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन भर सौंदर्य की उपासना करूँगा, कि मैं जीवन भर अन्याय के विरुद्ध लड़ूँगा, कि मैं कोई छोटा काम नहीं करूँगा। बेशक, शिक्षा में उसका दिल न लगता था पर अल्पायु में ही उसने स्कूल के पुस्तकालय में उपलब्ध महान लेखकों की पुस्तकें पढ़ डालीं।

एक दिन अध्यापक अघोरनाथ अधिकारी गंगा स्नान के लिए जा रहे थे। शरत् भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। तभी किसी स्त्री के रोने की आवाज आई। उन्होंने पूछा कौन रो रहा है? शरत् ने इसके उत्तर में कहा – इस स्त्री का स्वामी अंधा था लोगों के घर बर्तन मांजकर या अन्य काम कर यह उसका और अपना पेट पालती थी। कल रात वह अंधा स्वामी मर गया। यह बहुत दुःखी है। दुःखी लोग बड़ों को दिखाने के लिए जोर-जोर से नहीं रोते। उनका रोना दुःख से विदीर्ण प्राणों का क्रन्दन होता है। मास्टर मुशाई, यह सचमुच का रोना है मास्टर जी रोने का यह सूक्ष्म विश्लेषण सुनकर हैरान हो गए और कहने लगे कि यह बालक साधारण नहीं है। बड़ा होकर अवश्य ही प्रसिद्ध होगा।

पिता के यायावरी स्वभाव के कारण शरत् नाना के घर अधिक दिन न रह सके। जिससे कि शरत् के पढ़ने-लिखने में व्याघात तो पड़ा ही साथ-साथ- उनकी आवारागी भी बढ़ती गयी। गल्प सुनाने में शरत् प्रवीण था और उनमें सूक्ष्म पर्यवेक्षण की अद्भुत क्षमता थी। शरत् फिर से पिता के साथ भागलपुर आकर रहने लगे। यहाँ उनका एक मित्र बना जिसका नाम था राजू। ये दोनों शरारती एवं परोपकारी थे। एक बार माघ के महीने में बंगला स्कूल के पंडित जी की पत्नी का देहान्त हो गया। पंडित जी रोगग्रस्त थे। समस्या थी कि दाह संस्कार कैसे हो? स्कूल के हैडमास्टर ने राजू और शरत् के साथ मिलकर दाह संस्कार की व्यवस्था की। जब राजू, शरत् आदि शवयात्रा पर निकले तो घोर वर्षा आरम्भ हुई। आकाश से ओले पड़ने लगे अब शव के पास बैठना संभव न था, अतः राजू ने कहा कि आप सभी किसी सुरक्षित स्थान पर चले जायें मैं यहाँ शव की रक्षा करता हूँ। बहुत देर तक वर्षा होती रही। वर्षा बन्द होने पर वे लोग वापस लौटे और देखा कि मुर्दा रखा है पर राजू नहीं हैं। फिर देखा कि शव हिल रहा है। सभी डर गए पर देखा कि लाश के साथ राजू लेटा हुआ है और व ओलों से अपनी रक्षा कर रहा है। अतः दोनों ही निडर थे। साथ-साथ रहते थे। इस तरह दोनों का समय बीत रहा था।

ऐसे समय में शरत् की माँ का असामयिक निधन हो गया। इस आघात ने शरत् को तोड़ दिया क्योंकि शरत् आज तक जितना भी पढ़ सका सब उसकी माँ की ही मेहरबानी थी। अतः शरत् समझ गया कि वह पढ़ नहीं पाएगा। अतः पढ़ाई समाप्त हो गयी। हाँ नाटक-थियेटर, गाना-बजाना, साहित्य स जन आदि कार्यों में उसका मन रमने लगा। एक बार शरत् अपने एक मित्र के साथ गाना सुनने के लिए गया। गाना सुनने के बाद दोनों ने शराब पी और वहीं सो गए। सुबह उठने पर उसका मित्र रोने लगा क्योंकि उसकी जेब में तीन हजार रुपये थे, वे नहीं मिले। यह देख नर्तकी आई और शरत् के मित्र पर खूब डाँट मारी और पैसे वापस दे दिए और कहने लगी कि शराब में धुत होकर सबके सामने नोटों की गड्डी में से पैसे निकालकर दे रहे थे। गुण्डे तुम्हें लूटने की ताक में थे इसीलिए मैंने निकालकर अपने पास रख लिए थे। यह द श्य देख शरत् का हृदय पिघल गया और वैश्याओं के प्रति उनके मन में जो भावना थी वह बदल गयीं। इसी कारण वे कहते हैं कि जिन स्त्रियों को हम वैश्या, कुलटा आदि कहते हैं वे भी कितनी ईमानदार और सच्चरित्र हो सकती हैं। माना जाता है कि ‘देवदास’ में चन्द्रमुखी आदि वैश्याओं का चित्रण इसीलिए उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक किया है।

शरत् के जीवन के साथ कितनी अफवाहें जुड़ी हुई हैं, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता परन्तु अधिकांश अपवाद वे स्वयं फैलाते थे। संभवतः ऐसा करने में उन्हें आनन्द का अनुभव होता होगा। वे स्वयं ही मामा से कह देते कि मैं सचमुच में एक लड़की

से प्रेम करता हूँ परन्तु मामा आज तक उस लड़की को ढूँढ नहीं पाए। हाँ एक बात जरूर है कि वे अपने मित्र की बहन निरुपमा की ओर आकर्षित जरूर हुए थे किन्तु इसका कारण था कि वह एक अच्छी कवयित्री थी। वह शरत् की कहानियाँ पढ़ती रहती थी और शरत् भी उसकी कविताओं की प्रशंसा किया करता था।

शरत् के पिता ने कुछ कीमती पत्थर एकत्रित कर रखे थे। एक दिन शरत् को कुछ पैसे की आवश्यकता पड़ गयी और उन्होंने एक पत्थर निकालकर बेच दिया। पूछने पर उसने बताया कि मुझे पैसे की जरूरत थी। इस पर उनके पिता बिगड़ पड़े और शरत् को खूब डाँटा। यह सुनकर शरत घर से निकल भागा। लेकिन उसके घर से भागने का केवल यही कारण न था। उसके घर में बच्चों की देखभाल के लिए एक दायी थी जो बच्चों को कई बार बेमतलब डाँटती थी, पिता से उसकी शिकायत करने पर भी वे उन्हीं का पक्ष लेते थे। पिता के इसी व्यवहार से शरत् क्षुब्ध हो गया और घर छोड़कर चला गया था। वह घूमते-घूमते एक संन्यासी आश्रम में पहुँच गया। वह संन्यासियों से अनुरोध करके वहीं रहने लगा। उसने रुद्राक्ष की माला पहन ली और उनका शिष्य बन गया। परन्तु पिता की ही भाँति उसका भी मायावरी स्वभाव था। अतः वह वहाँ अधिक दिन न टिका सका। वह फिर मुज्जफरपुर में अपने एक मित्र साहु के पास रहने लगा। वह नित्य प्रति संगीत मण्डलियों में भाग लेता। यही नहीं वह प्रायः देर रात तक वैश्याओं के घर से शराब पीकर लौटता, जिस पर ग हस्वामी ने उसे टोका। लेकिन वह कभी न माना। एक दिन भागलपुर से तार आया कि उनके पिता का देहान्त हो गया है अतः वह फिर से भागलपुर आ गया।

शरत् अपने पिता के दाह संस्कार के समय न पहुँच सका। अतः उसके मामा ने उनके पिता का अंतिम संस्कार कर दिया। अब शरत् पर अपने तीन छोटे भाई और एक छोटी बहन का दायित्व आ पड़ा। उसकी सबसे छोटी बहन सुशीला को मकान मालकिन ने अपने पास रख लिया। एक भाई को मित्र के पास काम सिखाने के लिए छोड़ दिया और एक भाई प्रकाश को नाना अघोरनाथ के पास छोड़ दिया। अतः वह इन सबको यहाँ वहाँ छोड़कर स्वयं बर्मा भाग गया।

इसी बीच उन्होंने मित्रों के इस अनुरोध पर कि कुन्तलीन पुरस्कार के लिए कहानी लिखो जिस पर प्रथम आने पर पच्चीस रुपये मिलेंगे। शरत् ने कहानी तो लिखी लेकिन अपने मामा सुरेन्द्रनाथ का नाम कहानी पर लिख भेजा। कहानी प्रथम आई, इनाम मिला, प्रशंसा मिली लेकिन सब उसके मामा को, हाँ मामा ने लोगों से स्पष्ट बता दिया था कि यह शरत् ने लिखी है। इसी दौरान शरत् दिशा की खोज में बर्मा चला गया।

रंगून पहुँचकर पहले तो शरत् अपने मौसा के यहाँ रहा, किन्तु कुछ दिन बाद मौसा स्वर्ग सिधार गए। अतः उसे वह घर, आश्रय छोड़ना पड़ा। फिर उसने एक दोस्त मणीन्द्रनाथ के सहयोग से एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर के कार्यालय में अस्थायी नौकरी मिल गयी। फिर उन्हीं के सहयोग से एग्जामिनर पब्लिक वर्क्स एकाउंटस, रंगून के एक दफ्तर में अस्थायी क्लर्क की स्थायी नौकरी मिल गई। पहले तो उसे पचास रुपये मासिक वेतन मिलता था किन्तु तीन वर्ष के संतोषजनक कार्य के बाद उसका वेतन पैंसठ रुपये हो गया। अतः उनके जीवन की अनिश्चितता एक प्रकार से समाप्त हो गयी।

शरत् ने वहाँ साहित्यिक सभा में हिस्सा लेने लगा और कुछ असहायों की भी सहायता करने लगा। एक बार एक मिस्त्री उधार न चुकाने के कारण अपनी लड़की की शादी एक व द्ध से कर रहा था। लड़की खुश न थी। शरत् ने धन चुकाने का भी आश्वासन दिया परन्तु मिस्त्री न माना। वह बार-बार शरत् से कहता तुम कर लो शादी। अतः शरत् ने विवाह की पूरी रीति के साथ उसके साथ विवाह कर लिया। एक वर्ष बाद एक लड़के ने जन्म लिया और विवाह के दो वर्ष बाद प्लेग की शिकार हो वह म त्यु को प्राप्त हो गयी शरत् इस घटना से टूट गए। उनका लिखना पढ़ना छूट गया लेकिन इसी दौरान बंगाल में वे एक लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे इसी कारण रवीन्द्रनाथ ने कहा था कि उसे बंगाल में वापस लाओ उनके जोड़ का बंगाल में कोई और नही है। अब तक उनका 'चरित्रहीन' उपन्यास प्रकाशित हो चुका था।

शरत् के एक मित्र ने कहा कि अधिकारी की बेटी ब्याहने के योग्य हो गयी है। उसे तुम ग्रहण करो लेकिन वह नहीं माना। इन्हीं दिनों वह ज्वर का शिकार हो गया। इस बीमारी में उस मोक्षदा नाम की लड़की ने खूब सेवा की। जब शरत् की आँखें खुली तो वह सिरहाने बैठी हुई थी। लड़की के पिता कृष्णदास ने शरत् से कहा कि अगर तुम विवाह नहीं कर सकते तो मुझे कुछ पैसे दे दो ताकि मैं देश लौटकर इसकी शादी कर सकूं। पैसे का प्रबन्ध न हुआ। कृष्णदास उस लड़की को वहीं छोड़ कलकत्ता आ गया। उसी दिन से वह लड़की शरत् के घर रहने लगी। इस बात के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता कि वह उनकी विवाहिता हुई या नहीं लेकिन घर में उन्हीं का अनुशासन चलता था।

शरत् भी कुछ दिनों के बाद कलकत्ता में आ गए लगातार साहित्य स जन में लगे रहते। उनकी अधिकांश कहानियाँ 'यमुना' नामक

पत्रिका में ही छपती थी। वे अब एक सम्मानित, प्रतिष्ठित साहित्यकार हो गए थे। उनके 'चरित्रहीन' उपन्यास से बंगाल में खलबली मच गयी। कुछ लोगों ने विरोध किया कुछ ने प्रशंसा।

शरत् ने सदा के लिए रंगून छोड़कर कलकत्ता में आने के बाद अपने परिवार को एकत्रित करने में कोई कसर न छोड़ी। पूरे बंगाल पर उनकी रचनाएँ छा गई। मानो उनके जीवन का स्वर्णयुग आ गया है। उनकी एक के बाद एक रचना प्रसिद्ध होने लगी - श्रीकान्त (प्रथम पर्व), देवदास, निष्कृति, चरित्रहीन, काशीनाथ, एकादश बैरागी, श्रीकान्त (द्वितीय पर्व) ग हदाह, स्वामी, दत्ता आदि के साथ-साथ पत्रिकाओं में भी लेखन कार्य चलता रहा।

अब शरत् की लोकप्रियता शिखर पर थी। वे राजनीति विचारधारा में भी सहयोग देने लगे। हाँ उनके विचार कहीं महात्मा गाँधी व रवीन्द्रनाथ से मेल नहीं खाते थे। शरत् अपनी कथाओं के माध्यम से राजनीतिक विचारों को व्यक्त कर रहे थे। इसी का परिणाम है उनका 'पथेर दाबी' उपन्यास जो क्रान्तिकारियों के लिए गीता का काम कर रहा था। ये दूसरी बात है कि उसकी लोकप्रियता देख अंग्रेज सरकार ने उसे जब्त कर लिया था। लेकिन जब्त करने से पहले ही उनकी सारी की सारी पुस्तकें बिक गयी थी वे अधिकतर क्रान्तिकारियों का समर्थन ही किया करते थे। एक बार उन्हें कहा गया कि एक क्रान्तिकारी एक गुप्त संदेश लेकर आयेगा और 'आलू ले लो' की आवाज लगायेगा। शरत् दुविधा में पड़ गए कि क्योंकि कलकत्ता आने पर उन्होंने कभी अपने हाथ से सब्जी नहीं खरीदी थी। आज यदि आलू वाले को बुलाते हैं तो अपने आप ही लोगों को शक हो जायेगा। नियत समय पर 'आलू ले लो' की आवाज आई। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि इस दोपहरी में व्यक्ति आलू बेच रहा है इससे खरीद लो। जब उनकी पत्नी ने कहा कि उसने कल ही खरीदे हैं जो उन्हें अनेक प्रकार से समझाने लगे कि आलू जल्दी खराब होने वाली वस्तु नहीं है। इसे दया, धर्म का वास्ता देकर आलू वाले को खाना खिलाने के लिए तैयार कर लिया और किसी कार्य से उसे घर से बाहर भेज दिया ताकि इस क्रान्तिकारी से वे बात कर सकें। इस प्रकार वे अनेक संकट सहकर भी क्रान्तिकारियों का साथ देते थे।

देशबन्धु की म त्यु के बाद उनका मन अधिक देर तक राजनीति में नहीं रम सका। वे फिर साहित्य पर अधिक ध्यान लगाने लगे। अब उन्होंने कलकत्ता से दूर गाँव में नदी के किनारे सुन्दर मकान बना लिया था। लेकिन वहाँ एक जमींदार के साथ झगड़ा हुआ जिससे उन्हें कोर्ट कचहरी के चक्कर काटने पड़े।

शरत् की साहित्य सेवा को देखते हुए ढाका विश्वविद्यालय ने उन्हें डी. लिट् की उपाधि से सम्मानित किया और यह समाचार भी फैला कि उन्हें नोबेल पुरस्कार मिलने वाला है। लेकिन वे पुरस्कार के लिए साहित्य न रचते थे। वे जन के लिए साहित्य रचते थे।

व द्धावस्था में उन्हें कैंसर हो गया था परन्तु फिर भी उनकी आत्मशक्ति कम न हुई थी। अंतिम समय में आपरेशन के लिए उनके पास पैसा न था किन्तु मित्रों की सहायता और डॉक्टर की कुछ पैसों की छूट पर उन्हें अंग्रेजी नर्सिंग होम में दाखिल करा दिया गया। वहाँ नियम, कायदे को निभाने वाले न थे। डॉक्टर के मना करने पर भी वे चोरी-चोरी तम्बाकू का सेवन करते रहे। डॉक्टरों ने स्थिति की गंभीरता को भाँप लिया और ऑपरेशन करने के विचार को त्याग दिया। अतः 16 जनवरी, रविवार सन् 1938 को वे अपना पार्थिव शरीर यहीं छोड़ स्वर्गलोक चले गये। इनके जाने से साहित्य की एक अपूर्णीय क्षति हुई। उनके और रवीन्द्र के साहित्य की तुलना करता हुआ लेखक कहता है कि –

"शरत् की द ष्टि वर्तमानकाल पर थी रवीन्द्र शाश्वत मानव के विराट चितेरे थे। शरत मात्र अन्याय का विरोध करते थे और वे किसी भी तरह मनुष्य को छोटा करके नहीं मानते थे। पतिताओं में निहित नारीत्व को उन्होंने प्रकट किया है। यही उनका जीवन-दर्शन था। पर उनके नर नारी इसी देश के थे। इसके विपरीत कविगुरु चिरकाल के सत्य को आदर्श के रूप में बार-बार देश और समाज के सामने स्थापित करते रहते थे।"

अतः शरत् महान साहित्यकार थे। उनका समान बंगाल में दूसरा नहीं था।

*****

# अध्याय - 2

# आवारा मसीहा : नामकरण

चाहे विधाता की स ष्टि हो या मनुष्य का सर्जन हो, प्रत्येक वस्तु को नाम से अभिहीत किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि बिना नाम से किसी भी वस्तु को पुकारा जाना संभव नहीं।

किसी भी साहित्यिक रचना से सन्दर्भ में यह सर्वविदित है कि लेखक उसका नामकरण पहले ही करके चलता है। हाँ कुछ अपवाद रचनाओं के बारे में हम यह मान सकते हैं कि उनका नामकरण या तो रचना पूरे होने के बाद किया गया है या फिर उसका नाम बाद में बदल दिया गया है। लेकिन यह बहुत कम देखने में आता है।

जीवनी के नामकरण का निश्चित मानदण्ड तो नहीं है किन्तु सामान्यतः जीवनी का नामकरण उसके चरितनायक के नाम पर या फिर उसकी केन्द्रीय चारित्रिक विशेषता के आधार पर किया जाता है। क्योंकि यह आवश्यक है कि पाठक रचना के नाम से ही जीवनी के नायक का नाम एवं उसके विषय में परिचित हो जाए। जीवनी को पढ़ने की उत्सुकता उसके नाम से ही जाग त होनी चाहिए। अतः नाम संक्षिप्त, सार्थक, सारगर्भित एवं विशेषता परक होना चाहिए। हिन्दी साहित्य में अनेक जीवनियाँ लिखी गयी हैं। प्रायः उसका नामकरण व्यक्ति के नाम या उसकी चारित्रिक विशेषताओं के आधार बनाकर 'कलम का सिपाही', 'पथ के साथी', 'भारती के सुपुत, मानस का हंस', 'वंशभास्कर', सूरज प्रकाश आदि ऐसे ही नामकरण हैं जो चरितनायक के चारित्रिक गुणों के आधार पर ही रखे गए हैं।

श्री विष्णु प्रभाकर ने भी 'आवारा मसीहा' जीवनी को बंगाल के प्रसिद्ध साहित्यकार शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय के जीवन एवं साहित्य को केन्द्र में रखकर लिखा है। इसके नाम से ही पाठक के ह्रदय में जिज्ञासा उठती है कि क्या विश्वविख्यात लेखक शरत् वास्तव में 'आवारा मसीहा' ही था। सचमुच में ही उनका सारा का सारा जीवन एक आवारा व्यक्ति की तरह इधर से उधर भटकने में बीता। उनका जीवन विरोधाभासों का पुंज है। वे अपने पिता की तरह घुमक्कड़ थे। वो भी एक आवारगी के साथ, उन्हें कभी साहित्यिक गोष्ठी में देखा जाता था तो कभी वैश्याओं के घर गाना गाते हुए।

विष्णु प्रभाकर ने शरत् से सम्बन्धित जो भी सामग्री एकत्रित की उससे तो शरत् पर्यटनशील व्यक्ति ही ठहरते हैं। उनमें घूमते रहने के कारण आवारापन आ गया था। इसी कारण प्रभाकर जी ने उन्हें 'आवारा' कहा है। शरत् की इस आवारगी के कारण ही कुछ लोग तो उन्हें साहित्यकार ही मानने को तैयार न थे। उनका आरोप है कि शरत् अपना समय बुरी संगत् के लोगों एवं वैश्याओं के साथ बिताया करता था। लेकिन यह सच नहीं है। लोगों ने उनकी आवारागर्दी को देखकर उनके विषय में झूठी-सूची बातें गढ़ ली हैं। हाँ, इतना जरूर है कि उन्होंने साहित्य के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को निकालने की चेष्टा की है। शायद इसी कारण वे जहाँ भी जाते, रहते सभ्य लोगों के मुहल्ले को छोड़कर सदा ही वेश्याओं के मोहल्ले में रहते थे। इसका कारण शायद यह था कि उसने वेश्याओं के मोहल्ले में छिपी नारी के ह्रदय की करुणा एवं स्नेहमयी द ष्टि को पहचान लिया था। उसने उनके भावुक ह्रदय की पुकार को सुना था और अपने साहित्य में स्वर भी दिया था। वह शराब पीता था, अफीम खाता था परन्तु वह उसके जीवन का नितान्त व्यक्तिगत अंश था। उन्होंने इसको स्वीकार भी किया है –

"जीवन में मैंने छोटी मोटी भूलें बहुत सी की हैं परन्तु अपनी मूर्खता को मैं उस सीमा तक नहीं खींच ले गया। शराब को मैंने नशे के रूप में ग्रहण नहीं किया। बराबर दवा के रूप में ग्रहण किया है। किसी शारीरिक रोग की दवा के रूप में नहीं बल्कि अपने स्वभाव की एक कमी की पूर्ति के लिए। मैं स्वभाव से अन्तर्मुखी हूँ और बुद्धि से सामाजिक जीवन को पूर्णतया अपनाने पर भी व्यावहारिक रूप से समाज और समूह से भागना चाहता हूँ। समाज के बीच बड़े असंतोष का अनुभव करने लगता हूँ। इसलिए बीच-बीच में कभी-कभी दवा की मात्र में थोड़ी सी मदिरा पी लेता हूँ और तब मैं समाज में सामाजिक प्राणियों की तरह रहने लगता हूँ।"

श्री विष्णु प्रभाकर ने 'आवारा' शब्द के साथ 'मसीहा' शब्द भी जोड़ा है जिसकी समीक्षा करना उतना ही आवश्यक है जितना आवारा शब्द की। 'मसीहा' एक ऐसा विशिष्ट व्यक्ति होता है जिसे पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जिसका विरोध कोई भी करने को तैयार को जाता है लेकिन वह निडर होकर अपने रास्ते पर चलता ही रहता है। समाज ने शरत् बाबू पर चरित्रहीन और नास्तिक का बार-बार आरोप लगाया। असल में जो व्यक्ति धर्म भीरू होता है वही नास्तिक होता है।

वे कहते थे कि भले ही मैं भगवान को न मानता होऊँ लेकिन कम से कम मैं उस व्यक्ति को अवश्य प्यार करता हूँ जो ईश्वर की पूजा करता है। वे एक अशिक्षित और दरिद्र व्यक्ति की सच्ची भक्ति में देवत्व की दर्शन करते थे। यही बात रवीन्द्रनाथ ने भी गीतांजलि में कही है, "ईश्वर सड़क पर पत्थर कूटने वालों के पास है, हमारे पास नहीं, यदि ईश्वर के दर्शन करना है तो हमें दरिद्रों की झोंपड़ी में जाना चाहिए।"

शरत् बाबू ने बचपन से ही अनेक ऐसे कार्य करने आरम्भ कर दिए थे जो एक मसीहा ही कर सकता है। वे प्लेग के रोगियों की सेवा निस्वार्थ भाव से करते थे। दूसरे के दुःखों को दूर करने के लिए वे तन मन धन से जुट जाते थे। वे अछूतों, दरिद्रों और कोढ़ियों की सेवा करते थे। यही कारण था कि उन्होंने एक बूढ़े का संस्कार भारी वर्षा की चिन्ता न करते हुए भी अपने मित्र राजू की सहायता से किया था और रंगून में जब उन्होंने शादी की तब भी यही कारण था। असल में शरत् बंग समाज की कुरीतियों को दूर करना चाहते थे लेकिन फिर भी उन पर आवारागी का आरोप लगता था जिसे वे शान्त मन पी जाते थे।

समाज का तीव्र विरोध सहन करते हुए भी वे अपने नियत कार्य को करते रहे। उन्होंने 'चरित्रहीन' उपन्यास की रचना की जिसका समाज में घोर विरोध हुआ परन्तु उन्होंने प्रकाशन के कहने के बावजूद भी उसका एक कोमा भी बदलने से मना कर दिया था। इस उपन्यास को लेकर उन पर आरोप था कि उन्होंने वेश्याओं के चरित्र को उभारने का प्रयास किया है। परन्तु एक घटना ने उनकी विचारधारा को मजबूती प्रदान की। अचानक एक दिन एक युवती आकर उनके चरणों में गिर पड़ी और कहने लगी कि आपने मुझे बचाया है, आप मेरे गुरु हैं। शरत् इस पर आश्चर्यचकित हो गए। उस लड़की ने फिर अपनी सच्ची कहानी सुनाई। उसने बताया कि उसके पिता बंगाल में किसी कालेज के प्राध्यापक थे। उसका अपने पिता के एक छात्र से प्रेम हो गया था। जब उसके पिता को पता चला तो उसने उन्हें कलकत्ता से बाहर भेज दिया। परन्तु उन दोनों का पत्र-व्यवहार चलता रहा। एक दिन उसके साथ घर से भाग चलने के लिए रात के दो बचे का समय निश्चित हुआ। रात देर तक जागने के लिए और समय बिताने के लिए उसने शरत् का चरित्रहीन उपन्यास खरीदा और पढा। स्वयं वह कहती है –

"मैंने किताब हाथ में लेकर कमरे की अर्गला बन्द कर ली। पढ़े लगी। जब किताब खत्म हुई तब रात के दो बज रहे थे। तब मैंने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया था। 'चरित्रहीन' की किरणमयी ने मुझे उबार लिया। ठीक समय पर खिड़की पर दस्तक पड़ी। समझ गई कि वह आ गया है। खिड़की पर जाकर मैंने उससे विनीत की कि मुझे क्षमा करो, मैं नहीं जा सकूँगी।"

एक नहीं अनेक युवतियाँ उनकी पुस्तकें पढ़कर कुपथ पर जाने से बच गयी। नारी के सच्चे उद्धारक थे शरत् नारी को स्थापित मूल्यों के आधार पर नहीं देखते थे अपितु उसे वे चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर देखते थे। उनका नाम कहना है –

मनुष्य सतीत्व से बड़ा है। इस बात को मैंने एक दिन कहा था और उसी को अभद्र और गंदा कहकर मुझे गाली देने में कुछ उठा नहीं रखा गया। मनुष्य मानो विक्षिप्त हो गया। मैंने अत्यन्त सती नारी को चोरी, जुआखोरी, जालसाजी करते हुए तथा झूठी गवाही देते देखा है। साथ ही इससे उल्टी बात देखने का भी सौभाग्य मुझे मिला।

अतः नारी को उन्होंने अपने साहित्य में वह जमीन एवं प्रतिष्ठा दी है जिसकी सही अर्थों में वह अधिकारिणी थी। उसके साहित्य को पढ़कर स्वयं नारी ही अपने को सुधारने में, जाग त करने में नहीं लगता बल्कि कलुषित से कलुषित मन व्यक्ति भी नारी उद्धार की बातें सोचने लगता है। वे जीवन भर नारी के उद्धार में लगे रहे। इसी कारण वे नारी जाति के मसीहा बन गए। तभी तो बंगाल की नारियों ने उनकी 57वीं जन्म जयन्ती पर उनकी प्रशंसा में एक अभिनन्दन पत्र पढ़ा था, जिसमें लिखा था –

"पराधीन देश के अधः पतित समाज की असहाया अन्तःपुर चारिणियों के हृदय की मूक अनन्त वेदना को तुमने भाषा में मूर्त कर दिया है। उनके दुर्गीत पूर्ण जीवन के सुख दुःखों की सभी अनुभूतियों को निबिड़ सहानुभूति में ढालकर तुमने साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष करा दिया है। तुम्हारे अनाविष्ट द ष्टि सूक्ष्म पर्यवेक्षण-सामर्थ्य, सुगंभीर उपलब्धि, शक्ति तथा विचित्र मानव चरित्र की अत स्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी चरित्र की निगूढ़ प्रकृति का पता पा लिया है। हे नारी चरित्र के परम रहस्यज्ञाता, हम लोग तुम्हारी वन्दना करती हैं।"

"सब तरह का आत्मापमान तथा सब तरह की हीनता की हालत में भी नारी की प्राकृतिक विशेषताएँ सब देशों के सब समाजों में मौजूद हैं। तुमने उसके अकृत्रिम रूप को प्रत्यक्ष किया है। उसकी सत्य प्रकृति का अध्ययन किया है। हे सन्नारियों के अन्तर्यामी हम तुम्हारी वन्दना करती है।"

ऐसी प्रशंसा कदाचित् ही किसी देश के साहित्यिक को मिली हो, लेकिन "शरत् की नारी बंगाल की होकर भी शिल्प की द ष्टि से किसी सीमा को स्वीकार नहीं करती। वातावरण का चित्रण करते समय शरत्चन्द्र बंगाली हैं परन्तु जीवन रस के परिवेश में शिल्पी हैं। शरत् की 'जननी' बंगाल की जननी है, लेकिन प्रेमिका का परिवेश समस्त विश्व है। प्रेम की जो व्यथा वह भोगती है, वह विश्वजनीन है। जो अपमान वह सहती है, वह नारी मात्र ने किसी न किसी रूप में सदा सहा।"

इस प्रकार शरत् के सम्बन्ध में हजारों ऐसी बातें, घटनाएँ हैं जो उन्हें मसीहा कहलाने का अधिकार दिलाती हैं। वे समाज का निरन्तर विरोध सहन करते हुए भी पीछे नहीं हटे। 'चरित्रहीन' जैसी ऊँची कृति का पत्थर मार या जलाये जाने वाले विरोध को सहन करते हुए भी उन्होंने यही कहा कि इस रचना के भीतर झाँककर देखें। तब शायद तुम लोगों को पता चलेगा कि हमारा समाज कैसा है? वे स्त्रियों को बहुत सम्मान देने के पक्षधर थे। इसी कारण रूढ़िवादी और अंधविश्वासी समाज ने उन पर वेश्याओं को अच्छा मानने वाले का आरोप लगा था किन्तु उन्होंने कभी इसकी चिन्ता नहीं की। क्योंकि वे वेश्याओं में मानवता के गुण खोज चुके थे। उनका मानना था कि वैश्या बनती नहीं बनाया जाता है और वे वेश्या बनकर भी शरीर से भले ही न लेकिन मन से पवित्र रहती है।

हाँ वे शराब पीने एवं अफीम खाने के शौकीन थे। किन्तु वे इनका सेवन करने के पश्चात् कभी किसी से लड़ते-झगड़ते न थे। शराब वे व्यक्तिगत कारण से पीते थे और अफीम जीवन को समझने के लिए खाते थे। वे स्वयं कहते हैं –

"जीवन में मैंने छोटी-मोटी भूलें बहुत-सी की हैं परन्तु अपनी मूर्खता को मैं उस सीमा तक खींचकर नहीं ले गया। शराब को मैंने नशे के रूप में ग्रहण नहीं किया। बराबर दवा के रूप में ग्रहण किया है, किसी शारीरिक रोग की दवा के रूप में नहीं, वरन अपने स्वभाव की एक कमी की पूर्ति के लिए। मैं स्वभाव से अंतर्मुखी हूँ और बुद्धि से सामाजिक जीवन को पूर्णतया अपनाने पर भी व्यावहारिक रूप से समाज और समूह से भागना चाहता हूँ। समाज के बीच बड़े असंतोष का अनुभव करने लगता हूँ। इसलिए बीच-बीच में कभी-कभी दवा की मात्रा में थोड़ी-सी मदिर पी लेता हूँ और मैं समाज में सामाजिक प्राणियों के समान रहने लगता हूँ।"

अतः वे अपने जीवन को एक आवारा व्यक्ति के समान जीने के बाद भी किसी को कोई दुःख नहीं पहुँचाना चाहते थे। वे शराब का सेवन दवा के तौर पर करते थे क्योंकि वे अपने को भीतर से बीमार मानते थे। वे शराब पीकर भी दूसरों की सहायता के लिए दौड़ पड़ते थे। वे जो कुछ भी लिखा करते थे उसके पीछे एक महान् उद्देश्य और एक न्याय की भावना होती थी। वे स्वयं कहते भी हैं – "चरित्रहीन की किरणमयी से हजारों स्त्रियों का उद्धार होगा, समाज मेरी इस बात को स्वीकारे या नहीं, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। इसलिए आज यह बात सभी पाठक जानते हैं कि उनकी पुस्तकों से युवकों और युवतियों को लाभ ही हुआ है, हानि नहीं। वे कहते हैं, "सारा मनुष्यत्व सतीत्व से कहीं बड़ा है। इस बात को मैंने एक दिन कहा था और उसी को अभद्र और गंदा कहकर मुझे गाली देने में कुछ उठा नहीं रखा गया।"

अतः शरत्चन्द्र स्वयं बेशक आवारा रहे हों लेकिन नारियों के लिए विशेषकर पतित नारियों के लिए वे मसीहा थे देवता थे उनका चरित्र इतना महान था कि वे आवारा होते हुए भी मसीहा साबित होते हैं। कुल मिलाकर यह कहना गलत न होगा कि श्री विष्णु प्रभाकर ने उनकी जीवन का नाम 'आवारा मसीहा' रखकर उन्हें सही पहचान दी है और साथ ही पाठकों का उपकार भी किया है।

*****

# अध्याय - 3
# आवारा मसीहा : जीवनी कला के परिप्रेक्ष्य में

'आवारा मसीहा' श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध बंगाली उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के प्रामाणिक जीवन के आधार पर लिखी जीवनी है।

जीवनी साहित्यकार व्यक्ति और उसके कार्यकलाप की केन्द्र में रखकर जीवनी लिखता है। वह व्यक्ति के आन्तरिक तथा बाह्य व्यक्तित्व का अंकन करता हुआ उसका सामाजिक रिश्ता, धार्मिक, सांस्कृतिक राजनीतिक, धार्मिक स्थिति, परिस्थिति और उसमें उसकी भूमिका और साहित्यिक योगदान को रेखांकित करता है।

साहित्य के अन्तर्गत जीवनी विधा बहुत पुरानी विधा है लेकिन इसके तत्वों से परिचित अधिकांश पाठक नहीं हैं क्योंकि पाठकों के दो वर्ग होते हैं। एक वर्ग जो सामान्यतः चरितनायक के जीवन परिचय को जानने के लिए पढ़ते हैं। दूसरा वर्ग होता है, विद्यार्थी, शोधार्थी का जो जीवन का अध्ययन परीक्षा के लिए करते हैं। उनके लिए यह आवश्यक है कि वे इसके कला के तत्वों को भी जाने और उन तत्वों पर रचना की परीक्षा करें कि वह खरी उतरती है या नहीं। अतः जीवनी के कला के तत्वों पर 'आवारा मसीहा' की समीक्षा करेंगे।

जीवन के मुख्य तत्त्व निम्न हैं –

1. चरितनायक
2. परिवेश
3. वास्तविक द ष्टि
4. सत्य
5. कल्पना
6. भाषा

अब इन उपर्युक्त उपशीर्षकों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

1. **चरितनायकः**

   जीवनी में चरितनायक के संदर्भ में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है – "वही जीवन-चरित सफलतापूर्वक लिखा हुआ कहा जा सकता है जो चरितनायक ज्यों का त्यों उसकी सजीव मूर्ति पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दे।" इसी सम्बन्ध में राहुल सांकृत्यायन का मत है –

   "लेखक यदि किसी नायक की जीवनी लिखना चाहता है तो उसका कर्त्तव्य है कि जैसा उसे देखे वैसा ही वह पाठकों के सामने रख दे। जीवन चरित में अंदर और बाहर की भावनाओं का एक सेतु होता है जो विषय को जड़ता से बचाता है। इससे मानव की गरिमा, उसकी ख्याति को कोई हानि नहीं पहुँच पाती है। लेखक को चाहिए कि वह अपने मन में केवल एक ही मूर्ति को प्रतिष्ठापित करे और उसी की पूजा-अर्चना करते हुए अन्य पात्रों को उसके सामने लाकर बिठा दे। इसके विपरीत चलने वाला रचनाकार जीवन-चरित्र न लिखकर इतिहास की रचना करने वाला मान लिया जा सकता है।"

   अतः यह आवश्यक है कि चरितनायक महान प्रख्यात् एवं लोक प्रसिद्ध व्यक्ति हो। और जीवन लेखक को चाहिए कि वह चरितनायक के जीवन को क्रमशः अन्वेषित और उद्घाटित करे।

'आवारा मसीहा' का चरितनायक एक विश्वविख्यात उपन्यासकार है जिसका नाम शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय है। वे एक अपराजेय कथा शिल्पी हैं। उनका जीवन मायावरी, आवारगी और साहित्यिक गोष्ठियों, सभाओं में बीता। उनका सारा जीवन विरोधाभासों का पुंज है। उनके जीवन का अन्वेषण करने में लेखक का 14 वर्षों का समय लगा। शरत् इतने महान थे कि प्रसिद्धि पाने पर भी अपनी अपने को छिपाने की ही कोशिश करते थे।

शरत्चन्द्र ने अपने साहित्य में ही अपने को नहीं छिपाया है, वास्तविक जीवन में भी निरन्तर अपने को छिपाने का प्रयत्न किया है। प्रसिद्धि से वे सदा पराड़मुख रहे। लिखते रहे पर प्रकाशन का आग्रह उनकी ओर से कभी नहीं आया। यदि उनके स्वार्थी मित्र अनजाने ही उन्हें अन्धकार में से बाहर न खींच लाते और तब उनकी प्रतिभा तत्कालीन साहित्य जगत् को आलोकित न कर देती तो वे रंगून में ही अपने निर्वासित जीवन का अन्त कर देते। इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है, "कुछ रहस्यमयी मनोग्रंथियों के कारण वे जीवनकाल में अपनी संभावित ख्याति से कतराते थे और लिखते केवल इसलिए चले जाते थे कि म त्यु के बाद उनका प्रकाशन हो तब एक म त लेखक की रचनाओं के भीतर से बोलने वाली महान् आत्मा समस्त लेखकों पर हावी हो जाए।"

शरत् के पिता मायावर, माता सरल हृदय के थे और उनका बचपन घोर गरीबी में बीता। गरीबी के कारण पढ़ाई पूरी न हो सकी। माता-पिता की अकस्मात् म त्यु से घर का दायित्व भार पड़ा पर वे छोटे भाई-बहनों को रिश्तेदारों के घर छोड़ रंगून चले गए और वहाँ 50 रु. मासिक वेतन पर नौकरी पकड़ी। साथ-साथ साहित्य स जन भी चलता रहा। शादी की, एक बच्चा हुआ। पर काल ने दोनों को डस लिया। दु:ख में शराब पीते, अफीम खाते पर साहित्य सेवा बराबर करते। वापस कलकत्ता में आए। गाँव में मकान बनाकर रहने लगे क्रान्तिकारियों का साथ देते थे। साहित्य में खूब प्रसिद्धि पाई। खबर फैली कि उन्हें नोबल पुरस्कार मिलने वाला है परन्तु वे पुरस्कार के लिए साहित्य न रचते थे। उन्हें कैंसर हो गया। इसी रोग के कारण 61 वर्ष की आयु में उनकी म त्यु हो गयी। यहाँ हम उनकी महानता एवं चरित्र की विशेषताओं को निम्न उदाहरणों से व्यक्त कर रहे हैं –

"लकड़ी का घर धूँ-धूँ करके जलने लगा था। यह देखकर उसने उस ट्रंक को फेंक दिया और छलांग मारकर नीचे कूद पड़ा। और एक ओर खड़े होकर अग्निदाह को देखने लगा। उसके कई मित्र जो सामने के मैदान में बैठे हुए वायु सेवन कर रहे थे वहाँ आ गए। उन्होंने देखा, शरत् एकटक अपने जलते मकान को देख रहा है। आकण्ठ सहानुभूति से भरकर एक मित्र ने कहा, "शरत् दा, घर की चीजें तो पड़ी ही रह गईं। आपकी लाइब्रेरी, तैलचित्र, पाण्डुलिपियाँ सब कुछ नष्ट हो गया।"

निस्संग भाव से शरत् ने उत्तर दिया, "हो गया, अब क्या किया जा सकता है?"

एक विदेशी बन्धु की पूरी लाईब्रेरी उसने थोड़े मूल्य पर खरीद ली थी। बड़े परिश्रम से घर को सजाया था। बड़ी साध से तैलचित्र तैयार किए थे। अभागिनी नारियों का इतिहास 'चरित्रहीन' न जाने कितने वर्षों से लिखता आ रहा था। सब कुछ को अपने सामने भस्म होते हुए देखा और मौन खड़ा रहा। बचा सका केवल कुछ पुस्तकों को, अपनी पत्नी को, पक्षी को और प्यारे कुत्ते को।

उसी समय सहसा धोबी का आतंनाद सुना। प्राणों के भय से वह अपनी बकरी खोलना भूल गया था। शरत् तुरन्त दौड़ा। किसी के निषेध की उसने परवाह नहीं की। जलते हुए घर में घुस गया। सभी लोग 'हाय-हाय' करने लगे। परन्तु उसी क्षण आग और धुएँ के कुण्डल के बीच में से बकरी के बच्चे को छाती से चिपकाये हुए वह विद्युत् गति से बाहर आ गया। ठीक उसी समय वह जलता हुआ घर बड़े जोर से टूटकर गिर पड़ा।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक ने साधारण से साधारण घटना के माध्यम से शरत् की महानता को व्यक्त कर दिया है।

## 2. परिवेश:

जीवन लिखते समय लेखक को यह आवश्यक है कि वह चरितनायक के तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण करें। इस द ष्टि से यहाँ पर प्रभाकर जी ने युगीन देशकाल एवं वातावरण को विशेष रूप से व्यक्त किया है। शरत् का जन्म कहाँ हुआ वह कहाँ-कहाँ रहा, किन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों

के बीच रहा, यह सब लेखक ने यहाँ व्यक्त कर दिया है। शरत् के जन्म एवं बचपन का वर्णन करता हुआ लेखक कहता है।

“देवानंदपुर बंगाल का एक साधारण-सा गाँव है। हरा-भरा, ताल-तलैयों, नारियल और केले के व क्षों से पूर्ण। मलेरिया की प्रचुरता भी कम नहीं है। नवाबी शासन में यह फारसी भाषा की शिक्षा का केन्द्र था। इसी गाँव में 15 सितम्बर 1876 ई. शुक्रवार की संध्या को शरत् का जन्म हुआ था। यहीं उसका बाल्यकाल अत्यंत अभाव में आरम्भ हुआ। माँ न जाने कैसे ग हस्थी चलाती थीं। जानती थीं पति कैसे हैं। उनसे शिकवा-शिकायत व्यर्थ है। सार्थक यही है कि घर की शोभा बनी रहे। उन्होंने कभी न गहनों की माँग की, न कीमती पोशाक की ही। आत्मोत्सर्ग ही मानो उनका नाम था। जब भागलपुर में वे रहती थीं तब चाचाओं के इतने बड़े परिवार में उन्हीं का अधिकार था कि सब माँओं के बच्चों को अपनी छाती में छिपाकर उनकी देख-रेख करें। कौन कब आएगा? कौन कब जाएगा? किसको क्या और कब खाना है? ऐसे असंख्य प्रश्नों को सुलझाने में उन्हें साँस लेने की फुरसत नहीं मिलती थी।”

“जिस समय शरत्चन्द्र का जन्म हुआ था वह चहुँमुखी जाग ति और प्रगति का काल था। सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम की असफलता और सरकार के तीव्र दमन के कारण कुछ दिन शिथिलता अवश्य दिखाई दी थी परन्तु वह तूफान के पूर्व की शान्ति जैसी थी। शीघ्र ही क्रान्ति का स्वर फूटने लगा। साहित्य में इस स्वर की सबसे पहले अभिव्यक्ति हुई बंकिमचन्द्र के आनन्दमठ में। इसी उपन्यास ने आधुनिक बंगाल को जन्म दिया तो कालान्तर में सारे देश की प्रेरणा बन गया। लेकिन तुरन्त इस असफलता का परिणाम यह भी हुआ कि लोगों का ध्यान राजनीतिक उथल पुथल से हटकर सामाजिक क्रान्ति की ओर उन्मुख हो गया।

“घोष परिवार के मकान के उत्तर में गंगा के बिल्कुल पास ही एक कमरे के नीचे, नीम, करौंदों के पेड़ों ने उस जगह को घेरकर अंधकार से आच्छन्न कर रखा था। नाना लताओं ने उस स्थान को ऐसे घेर रखा था कि मनुष्य को उसमें प्रवेश करना कठिन था। बड़ी सावधानी से एक स्थान की लताओं को हटाकर शरत् उसके भीतर गया। वहाँ थोड़ी सी साफ सुथरी जगह थीं। हरी भरी लताओं के भीतर से सूर्य की उज्ज्वल किरणें छन-छन कर आ रही थी। और उनके कारण स्निग्ध हरित प्रकाश फैल गया था। देखकर आँखें जुड़ाने लगीं और मन गद्गदी होकर मानो किसी स्वप्न लोग में पहुँच गया। एक बड़ा सा पत्थर वहाँ रखा था। उसके ऊपर बैठकर शरत् ने सुरेन्द्र को बुलाया।”

## 3. वास्तविक द ष्टिः

जीवन लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह चरित नायक के वास्तविक जीवन को उद्घाटित करें। ऐसा करना कठिन जरूर है तभी तो डॉ. जानसन ने लिखा है – “वही व्यक्ति किसी की जीवनी लिख सकता है जो उसके साथ खाता-पीता, बोलता बतियाता, उठता-बैठता रहा हो।” स्वयं इस संदर्भ में प्रभाकर जी का कहना है –

‘आवारा मसीहा’ में भी लेखक ने यही प्रयास किया है कि उसकी द ष्टि वस्तुपरक ही रहे। लेखक ने स्वयं कहा है, “सोचा, बंगला साहित्य में निश्चय ही उनकी अनेक प्रामाणिक जीवनियाँ प्रकाशित हुई होंगी। लेख, संस्मरण तो न जाने कितने लिखे गये होंगे। वहीं से सामग्री लेकर यही छोटी सी जीवनी लिखी जा सकेगी लेकिन खोज करने पर पता चला कि प्रामाणिक तो क्या, सही अर्थों में उसे जीवनी कह सकें वैसी कोई पुस्तक बंगला भाषा में नहीं है।”

इन्हीं कठिनाइयों को व्यक्त करता हुआ लेखक कहता है –

“जीवनी लिखना निःसंदेह कठिन काम है। यूँ देखने में लगता है कि वह कुछ अद्भुत, असाधारण घटनाओं और कुछ क्रांतिकारी विचारों का समुच्चय है। किसी के जीवन को समझने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ आवश्यक अवश्य है।, पर अनिवार्य नहीं। अनिवार्य हैं उन घटनाओं और उन विचारों के पीछे रहने वाले प्रेरणा स्रोत। जो दिखाई देता है, वही सत्य नहीं होता। सत्य को पाने के लिए गहरे उतारना होता है और उस उतरने में जहाँ आस्था का प्रश्न है वहाँ तटस्थता का उससे भी अधिक है। यह सर्वोपरि अनिवार्यता है।

लेखक ने यहाँ पूरी-पूरी कोशिश की है कि शरत् का वास्तविक जीवन व्यक्त हो सके और किया भी है। एक उदाहरण द ष्टव्य है, जो उसके नरनारियों के प्रति मानवीय चरित्र को व्यक्त करता है –

“सहसा इसी समय वह बीमार पड़ गया। बीमार तो वह सदा ही रहता था। स्वतन्त्र और दायित्वहीन जीवन में खाने पीने की व्यवस्था जैसी हो सकती है वैसी इसकी थी। फिर बर्मा ठहरा। मलेरिया और प्लेग आदि का घर। उसका ज्वर

तेज हो चला। इस समय मोक्षदा ने बंगाली नारी के आन्तरिक स्नेह के साथ उसकी देखभाल की। कई दिन बाद, जब उसका ज्वर उतरा तो पाया मोक्षदा उसके सिरहाने बैठी है। पूछ रही है, "अब जी कैसा है?"

यह स्नेहसिक्त संबोधन सुनकर शरत् को शान्ति की याद हो आई। माँ के बाद उसके जीवन में वही तो एक नारी थी, जिसने सचमुच उसे स्नेह दिया था। आज फिर वही स्नेहसिक्त वाणी उसे आन्दोलित करने लगी। द ष्टि में कृतज्ञता भरकर उसने कहा, "अब ठीक हूँ। तुमने मेरी बहुत सेवा की। मेरा सारा कष्ट जैसे तुमने ही सहा है।"

मोक्षदा की आँखें भर आईं। अपना हाथ शरत् के माथे पर धीरे-धीरे फेरते हुए वह अवरुद्ध कण्ठ से बोली, "मुझ अभागिन को इतना बड़ा सौभाग्य कहाँ मिल सकता है?"

शरत् क्षीण पर स्नेहसिक्त स्वर में बोला, "नहीं, नहीं, तुम अभागिनी नहीं हो। तुम बंगाल की नारी हो। तुम चिरस्नेहमयी हो।"

## 4. सत्यः

जीवनी लेखक को चरितनायक के जीवन को सत्य रूप में उद्घाटित करना पड़ता है वह चाहे कितना भी कटु हो। अगर वह उसके चरित्र को टरोड़-मरोड़ के प्रकट करता है तो पाठकों के सामने उसकी छवि सही रूप में न आ पाएगी।

यहाँ प्रभाकर जी ने सत्य को खोजने का पूरा प्रयास किया है। उनकी डायरियों, पत्रों, लेखों से प्रामाणित भी किया है। इसी कारण लेखक ने शरत् का प्रमथनाथ को 12 मार्च 1912 को रंगून से लिया पत्र उद्ध त किया है जो उनके जीवन के अधिकांश तथ्यों को संक्षेप में स्पष्ट करता है –

"यह कह कर तुम दुःखी मत होना। तुमसे मुझे डर नहीं लगता, क्योंकि तुम जान पड़ता है, मेरा विचार करने का गुरु भार लेना नहीं चाहोगे। इसी से कुछ और दिन जीवित रहने पर भी हानि होगी, ऐसा नहीं सोचता हूँ। तुम मेरे मित्र हो, शुभ चिन्तक हो, विचारक होकर मुझे दुःख नहीं दोगे, यही आशा करता हूँ।"

मेरे बारे में जानना चाहते हो। संक्षेप में वह इस प्रकार हैः

1. शहर के बाहर मैदान के बीच में और नदी के किनारे एक छोटे सब घर में रहता हूँ।
2. नौकरी करता हूँ। नब्बे रुपये वेतन मिलता है और दस रुपये भत्ता। एक छोटी दुकान भी है। खर्चा किसी तरह निकल आता है। पूँजी कुछ भी नहीं है।
3. दिल की बीमारी है। किसी भी क्षण...।
4. बहुत पढ़ा है, लिखा प्रायः कुछ भी नहीं। पिछले दस वर्षों में शरीर विज्ञान, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान और इतिहास पढ़ा। शास्त्र भी कुछ पढ़ा है।
5. आग में मेरा सब कुछ जल गया। पुस्तकालय और 'चरित्रहीन' उपन्यास की पाण्डुलिपि भी। 'नारी का इतिहास' करीब चार पाँच सौ प ष्ठ लिखा था, वह भी जल गया। इच्छा थी, इस वर्ष छपवाऊँगा। मेरे द्वारा कुछ हो, यह शायद होने का नहीं, इसलिए सब कुछ स्वाहा हो गया, फिर कुछ करूँगा, ऐसा उत्साह नहीं हो रहा। 'चरित्रहीन' पाँच सौ प ष्ठों में प्रायः समाप्त हो चला था। सब कुछ गया।"

## 5. कल्पनाः

अगर लेखक जीवन के चरितनायक से मिला नहीं है, उसके साथ खेल नहीं, उठा-बैठा नहीं और वह जीवित नहीं है तो लेखक ने जीवनी को रोचक बनाने के लिए कल्पना का भी समावेश करना पड़ता है अन्यथा वह कोरा इतिहास बनकर रह जाएगी। इस द ष्टि से 'आवारा मसीहा' में उचित संदर्भों में कल्पना का समावेश कर दिया है। उदाहरणतः

एक बार शरत् एक मित्र के साथ वैश्या के घर पर गया। उस वैश्या ने नशे में धुत इन लोगों के तीन हजार रुपयों की रक्षा की। शरत् ने भी उस नर्तकी की ओर देखकर सोचा कितनी महान् है यह। पथभ्रष्ट हो जाने पर भी मनुष्य के अन्तर की सद्व त्तियाँ पूरी तरह नष्ट नहीं होतीं। इसी सम्बन्ध में लेखक ने कल्पना की है –

"क्या यही नर्तकी कालीदासी नहीं थी? देवदास के स जन के समय वह उसी के पास जाता था। उसका चरित्र भी नर्तकी

से मिलता है। सब कुछ दान करके वह संन्यासिनी हो गई थी, लेकिन इसके बाद भी पूजा के अवसर पर वह लोगों के घर गीत सुनाने जाती रही। इस समय यदि लोग कुछ देने की चेष्टा करते तो वह कहती, "भगवान् ने इतना दिया था, वही मैं रख नहीं पाई, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए।

यही कालीदासी चन्द्रमुखी के रूप में अवतरित हुई, इस बारे में तनिक भी शंका नहीं है। तभी तो चुन्नीलाल तक उससे कह सका, "नहीं, नहीं, नोट फोट की लालची और ही होती हैं, तुम उनमें से नहीं हो।" (देवदास)

6. **भाषाः**

जीवनी की भाषा संरचना के संदर्भ में यह आवश्यक है कि वह जीवन की भाषा से भिन्न न हो। जैसा पात्र, वातावरण, वर्णन, घटना हो भाषा भी वैसी ही होनी चाहिए। अगर पात्र सभ्य, शिक्षित, साहित्यकार है तो आवश्यक है कि उसकी भाषा सुसंस्कृत हो। इस द ष्टि से 'आवारा मसीहा' की भाषा में सभी गुण विद्यमान हैं। उसमें, अंग्रेजी, उर्दू, बंगाली, संस्कृत शब्दों की भरमार है किन्तु सहज, सरल और बोधगम्य है। उदाहरणतः

लेखक ने एक स्थान पर कहा, "स जन के इन दिनों में वह आकण्ठ प्रेम में डूबा हुआ था। इस आयु में हर युवक की आत्मा प्रेम के लिए तड़पती रहती है। विचारों और भावनाओं का जो तूफान उस समय उसके मन और मस्तिष्क को आलोडित करता रहता, उसकी कल्पना करना अत्यन्त दुस्तर कार्य है। कितनी विभिन्नता, कैसा विरोधाभास। न सही हाड़ माँस की प्रेमिका, काल्पनिक प्रेमिका से तो यह भूमिका निभाई जा सकती है।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रभाकर जी द्वारा लिखित 'आवारा मसीहा' जीवनी, जीवनी कला के तत्वों पर खरी उतरती है। वह बड़ी ही तर्कसंगत, सजीव, चित्रमय, यथार्थ है। उसमें चरितनायक से संबंधित देशकाल वातावरण, सत्यता, भाषा का गठन हुआ है। जो जीवनी को जीवंत बनाने में सक्षम हैं।

*****

# अध्याय - 4

# आवारा मसीहा : संवेदनशील हृदय का अंकन

जीवनी साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें लेखक चरितनायक के कार्यकलाप केन्द्र में रखकर उसका चित्रण करता है। चरितनायक के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही रूपों का अंकन करता हुआ लेखक स्थितियों, परिस्थितियों, घटनाओं का वर्णन करता चलता है। यहाँ चरितनायक ही प्रधान होता है और लेखक उसके भीतर से समाज और युग की सक्रिय शक्तियों का आकुंचन-प्रसारण, स्पन्दन-अवसादन, आलोड़न-विलोड़न और अवतरित द्वन्द्व सूक्ष्मतापूर्वक आकलित करता है। वह इनका परिशीलन उस सीमा तक करता है जहाँ बाह्य शक्तियाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व को जोड़ने, तोड़ने, बनाने, मिटाने, उभारने, दबाने का कार्य करती हैं।

जीवनी लेखक के लिए यह भी अभीष्ट है कि वह चरितनायक के कृतित्व की गरिमा ने सामाजिक जीवन को कितना आन्दोलित, सक्रिय, उद्दीप्त तथा गतिशील बनाया है। उसमें कितनी चेतनता भरी हैं मनुष्य में जिजीविषा सक्रिय रूप से प्रतिफलित होती है। वह सभी घाटों-प्रतिघाटों को सहकर भी जीवित रहना चाहता है। लेकिन यह प्रक्रिया निरर्थक नहीं है, यान्त्रिक नहीं है, सार्थक है, लक्ष्य-युक्त है। उसका लक्ष्य है चेतना में कहीं गहरे पैठे वास्तविक भावों को खोजना, खोजकर अपनी अगणित बाह्य प्रक्रियाओं, आचरणों और सामाजिक सम्बन्धों में उससे तारात्म्य स्थापित करना। उसका परम कर्त्तव्य है कि वह खोजकर उस खोजे हुए सत्य का अंश सामाजिक जीवन को दे जाए।

वैसे जीवनी में चरितनायक को महिमामण्डित करने की परम्परा रही है। ऐसा करने से चरितनायक का वास्तविक चरित्र सामने नहीं आ पाता। जबकि मनुष्य महानता और दुर्बलता का, सद्-असत् व त्तियों का पुंज है। अतः जीवनी लेखक का कर्त्तव्य है कि वह चरितनायक के वास्तविक जीवन चरित्र को पाठकों के सामने लाए। क्योंकि वह मनुष्य है, देवता नहीं है। इसलिए उसे मनुष्य मानकर उसके वास्तविक जीवन का अंकन करना चाहिए और साथ ही यह भी ध्यान रखने की बात है कि उसके चरित्र के उदात्त एवं मानवीय गुणों की अवहेलना न हो जाए।

'आवारा मसीहा' श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित विश्वविख्यात बंगाली साहित्यकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की प्रामाणिक जीवनी है। इसके नामकरण से ही ऐसा जान पड़ता है कि शरत् 'आवारा' व्यक्ति थे लेकिन 'मसीहा' शब्द से उनकी आवारगी की भी गरिमा, महानता प्रकट हो जाती है। वास्तव में वे आवारा होते हुए भी मसीहा ही थे। उनमें बाल्यकाल से ही मानवीय संवेदना का पुंज रहा है। जब वे मास्टर मुशाई के साथ जा रहे थे तो रास्ते में एक स्त्री के रोने का स्वर सुनाई दिया। मास्टर जी के पूछने पर शरत् ने उत्तर दिया – "मास्टर मुशाई, इस नारी का स्वामी अन्धा था। लोगों के घरों में काम-काज करके यह उसको खिलाती थी। कल रात इसका वह अंधा स्वामी मर गया। यह बहुत दुःखी है। दुःखी आदमी बड़े आदमियों की तरह दिखाने के लिए जोर-जोर से नहीं रोते। उनका रोना दुःख से विदीर्ण प्राणों का क्रन्दन होता है। मास्टर मुशाई यह सचमुच रोना है।" छोटे से बालक के मुँह से यह करुणमयी वर्णन सुनकर हतप्रभ हो गए और कहने लगे कि "जो रुदन के विभिन्न रूपों को पहचानता है, वह साधारण बालक नहीं है, बड़ा होकर निश्चय ही मनस्तत्व के व्यापार में प्रसिद्ध होगा।" और शरत् प्रसिद्ध भी हुआ।

शरत् संवेदनशील हृदय के व्यक्ति थे। दुःखी, पीड़ित को देखकर दुखी होते थे। तभी तो लेखक कहता है – "न जाने कितनी बार वह इस पवित्र मौन एकान्त में आकर बैठा होगा।

"न जाने कितनी बार वह इस पवित्र मौन एकान्त में आकर बैठा होगा। दूर से आती बच्चों की शरारतों की आवाजें, गंगा की ध्वनि में मिलकर एक रहस्यमय वातावरण का निर्माण करती होंगी। प्रकृति का सौंदर्य जैसे उसके थके तन-मन को सहलाता

होगा, तब उसने निश्चय ही प्रतिज्ञा की होगी, "मैं सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन भर सौंदर्य की उपासना करूँगा, कि मैं जीवन भर अन्याय के विरुद्ध लड़ूँगा, कि मैं कभी छोटा काम नहीं करूँगा।"

शरत् की मानवतावादी सोच थी यही कारण है कि रंगून में जब प्लेग की बीमारी फैली तो उन्होंने बिना अपनी जान की चिन्ता किए बीमारों की सहायता की थी, तथा म तकों के अंतिम संस्कार करने में भी लगे रहे थे। उनको यह संवेदनशीलता ही उन्हें मसीहा कहलाने का अधिकार दिलाती है। लेखक लिखता है –

"प्लेग का यह आक्रमण इतना भयानक था कि हर व्यक्ति किसी दूसरे की चिन्ता किये बिना भाग खड़ा हुआ। रोगी अकेले तड़प तड़पकर समाप्त होने लगे। शरत् असहाय लोगों की सहायता करने में सदा आगे रहता आया था। यहाँ भी आगे रहा। जहाँ 'प्लेग' शब्द सुनकर बड़े से बड़ा साहसी भी अपने प्रिय से प्रियजन को छोड़ देता था, वहाँ शरत् एक अजनबी के पास भी पहुँच जाता था। बर्फ और औषधि आदि खरीद देने तक में उसे संकोच नहीं होता था। राजू की पाठशाला में मानवीय करुणा का जो पाठ उसने पढ़ा था, उसे वह कभी भूल नहीं सका।

ऐसी बात नहीं कि शरत् केवल मनुष्य मात्र के प्रति संवेदनशील हों, भावुक हों उनकी परिधि तो पशु भी आते थे। उनका मानना है कि पशु भी प्राणी है और प्रत्येक प्राणी को दया की सहानुभूति की द ष्टि से देखना और उनकी रक्षा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। वे सचेत होकर पशुओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त नहीं करते थे बल्कि वे प्रव त्यात्मक आधार पर ऐसे कार्य करते थे जिससे लगता था कि इन्होंने जानबूझकर पशुओं के प्रति दया, करुणा, ममता आदि मानवीय भावनाएँ नहीं दिखाई बल्कि ये तो उनके अन्दर कूट-कूट कर भरी हैं। रंगून में रहते हुए शरत् के मकान में आग लग गयी। उसकी समस्त सम्पत्ति, पाण्डुलिपियाँ इत्यादि जलकर राख हो गयी परन्तु वह फिर भी यही कहता रहा कि अब क्या हो सकता है। उदाहरणतः

"उसी समय सहसा धोबी का आर्तनाद सुना। प्राणों के भय से वह अपनी बकरी खोलना भूल गया था। शरत् तुरन्त दौड़ा। किसी के निषेध की उसने परवाह नहीं की। जलते हुए घर में घुस गया। सभी लोग हाय-हाय करने लगे। परन्तु उसी क्षण आग और धुएँ के कुण्डल के बीच में से बकरी के बच्चे को छाती से चिपकाए हुए वह विद्युत् गति से बाहर आ गया। ठीक उसी समय वह जलता हुआ घर जोर से टूटकर गिर पड़ा।"

इस दया, ममता, करुणा के पीछे उसके संस्कार कार्य कर रहे थे। इसी कारण वह गाँव द्वारा परित्यक्ता दीदी की सेवा करने से नहीं घबराता था। गाँव की एक विधवा लड़की को वह दीदी कहता था। इसी दीदी का 32 वर्ष की उमर में अचानक एक बार पद स्खलन हुआ।

गाँव के स्टेशन का परदेशी मास्टर उसके जीवन को कलंकित करके न जाने कहाँ भाग खड़ा हुआ। उस समय गाँव वाले उसके सारे उपकार, सेवा टहल, सब कुछ भूल गये। बड़ी हृदयहीनता के साथ उन लोगों ने उसका बहिष्कार कर दिया। उसका बोलना चालना बन्द कर दिया। लज्जा, अपमान और आत्मग्लानि के कारण वह बेचारी असहाय हो उठी। उसका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरने लगा, यहाँ तक कि वह मरणासन्न हो गई। इस हालत में कोई भी उसके मुँह में एक बूँद पानी डालने नहीं आया। किसी ने उसके दरवाजे पर जाकर झाँका तक नहीं, जैसे वह कभी थी ही नहीं।

"शरत् को भी यह आज्ञा थी कि वह वहाँ नहीं जाए लेकिन उसने क्या कभी कोई आज्ञा मानी थी। रात के समय छिपकर वह उसे देखने जाता। उसके हाथ पैर सहला दिया करता। कहीं से एक-दो फल लाकर खिला आया करता।"

उन्हें अपने कुत्ते भेलू से बहुत प्रेम था। वे कुत्ते के मनोविज्ञान को समझ जाते थे। इसीलिए उन्होंने इलाचन्द्र जोशी को एक बार कहा था कि –

कुत्ता प्यार में भी क्रोध का भाव जताता हुआ भौंकता है इस सत्य और उसका प्यार पा चुके हैं...... कुत्ता आदमी को आदमी से अधिक पहचानता है, मेरी यह बात तुम गाँठ बाँध लो। "एक दिन एक संभ्रान्त महिला ने उनके लिए थाल भरकर संदेश भेजे। साथ में एक पत्र था। लिखा था – ग्रहण करेंगे तो कृतार्थ होऊँगी – इला।

भेलू ने जैसे ही उस पात्र को देखा वह उसके आसपास मंडराने लगा। बड़े प्यार से शरत् बाबू ने उसे एक संदेश खाने को दिया। खाकर उसने और माँगा। वह माँगता रहा और शरत् तब तक देते रहे जब तक पात्र खाली नहीं हो गया। कवि नरेन्द्र देव बैठे हुए यह सब देख रहे थे। बोले, "यह आपने क्या किया?" उन महिला ने जो संदेश आपके पास श्रद्धापूर्वक भेजे थे, वे सभी आपने कुत्ते को खिला दिये। वह सुनेगी तो कितना कष्ट होगा। सोचो तो!

शरत् बाबू ने उत्तर दिया, "यही तो तुम्हारा दोष है। किसी बात की गहराई में जाकर समझने की चेष्टा नहीं करते। इला ने मुझे संदेश क्यों भेजे थे? इसी आशा से न, कि मैं खाकर त प्त होऊँगा। अब सोचो, मैंने स्वयं न खाकर भेलू को खिला दिया। उन्हें खाकर वह जितना त प्त हुआ है, उतना क्या मैं हो पाता? मेरे विचार से इला का अर्घ्यदान व्यर्थ न होकर पूर्ण रूप से सार्थक हुआ है। जब उसी भेलू की म त्यु हुई तो उन्होंने जिस व्यथा का अनुभव किया ऐसी व्यथा उन्होंने कभी नहीं पाई थी। वे बच्चों की तरह रोये और स्वयम् अपने हाथ से पड़ोसी के बाग में उसके लिए समाधि का निर्माण किया। एक खाते में उसकी म त्यु का संवाद उन्होंने इस प्रकार लिखा, "भेलू, देह त्याग करने का दिन 10 वैशाख ब हस्पतिवार, 1332 सवेरे छः बजे, 23 अप्रैल 1925 ई.। समाधि वेला साढ़े नौ बजे, बागे शिवपुर हावड़ा। रात्रि दिनेर संगी आमार परम स्नेहेर बन्धु।"

शरत् की मानवीयता, दया, करुणा के केन्द्र में विशेषकर नारी थी। नारी के प्रति विशेषकर पतिता के प्रति उनका द ष्टिकोण अत्यन्त मानवीय था। वह उनके शरीर की बजाए उनके भीतर छिपी पवित्र भावना को ही देखता था। उनका मत था कि ये वैश्या बनती नहीं इन्हें विवश किया जाता है। शरीर तो इनका व्यापार है और मन इनका करुणा से भरा पवित्र है। उन्होंने स्वयं कहा – "मैंने अनीति का प्रचार करने के लिए कलम नहीं पकड़ी। मैंने तो मनुष्य के अन्तर में छिपी हुई मनुष्यता की उस महिमा को जिसे सब नहीं देख पाते, नाना रूपों में अंकित करने का प्रयास किया है।" इसी कारण तो वे पतितों के प्रति प्राचीन धारणा के बारे में कहते हैं – "कोई धारणा या वस्तु बहुत प्राचीनकाल से चली आई है, इसी कारण वह सही नहीं है। कुछ भी हमेशा के लिए सही नहीं हो सकता। सतीत्व परिपूर्ण मनुष्यता का एक अंग है। वह मनुष्यता पर हावी नहीं हो सकता।

"सतीत्व की धारणा सदा एक सी नहीं रही। पहले भी नहीं थी। बाद में भी शायद किसी दिन नहीं रहेगी। एक निष्ठ प्रेम और सतीत्व एक चीज नहीं है। मैं मानव धर्म को सती धर्म से बहुत ऊपर स्थान देता हूँ। सतीत्व और नारीत्व ये दोनों आदर्श समान नहीं हैं। नारी हृदय की मंगलमयी करुणा, उसकी जन्मजात मात वेदना उसके सतीत्व से कहीं अधिक महत्व-पूर्ण है। बहुत सी स्त्रियाँ मैंने ऐसी देखी हैं, जिनका किसी दूसरे पुरुष से किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक सम्बन्ध नहीं रहा तथापि उनके स्वभाव में अत्यन्त नीचता, घोर संकीर्णता, विद्वेष भावना और चौरव त्ति पाई गई। इसके विपरीत ऐसी पतिताओं से मेरा परिचय रहा है, जिनके भीतर मैंने मात हृदय की निःस्वार्थ ममता और करुणा का अथाह सागर उमड़ता हुआ पाया है।"

उन्होंने अपने निबन्ध 'नारी का मूल्य' में नारी का पक्ष लेते हुए कहा है – "जिस धर्म ने बुनियाद ही रखी है आदम जननी हौवा के पाप पर और जिस धर्म ने नारी को बैठा रखा है समस्त अधःपतन के मूल में, उस धर्म के सम्बन्ध में जिन लोगों के मन में यह विश्वास है कि सच्चा धर्म यही है उन लोगों से यह कभी हो ही नहीं सकता कि वे नारी जाति को श्रद्धा की द ष्टि से देखें। ऐसे लोगों की श्रद्धा केवल उतनी ही हो सकती है जितने में उनका स्वार्थ लगा हुआ है। इससे अधिक को चाहे श्रद्धा कहो चाहे उसका न्यायोचित अधिकार कहो, वह तो पुरुष ने उसे न आज से हजार बरस पहले दिया है और न आज के हजार बरस बाद देगा।"

सचमुच वे नारी के उद्धारकर्त्ता थे, देवता थे, मसीहा थे। उन्होंने नारी को सही जमीन दिलाने के लिए उनसे अधिकाधिक सम्पर्क किया था। इसी कारण लेखक कहता है –

"समाज के सभी वर्गों की नारियों से उनके सदा सहज और आत्मीय सम्बन्ध रहे। उनकी कहानियाँ सुनने को वे नारियाँ जैसे लालायित रहती थीं। उनके कहने की भावभंगिमा पर वे मुग्ध थीं। उनके विचारों पर वे प्राण न्यौछावर करती थीं। ऐसा निःस्वार्थ, ऐसा उदार, ऐसा मुक्त मनुष्य अब से पहले उन्होंने कहाँ देखा था। उनकी इसी अगाध भक्ति के कारण तो वे उन्हें जान सके और उनके प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर सके, उन्हें मनुष्य की मर्यादा दिला सके।"

इससे स्पष्ट है कि इस संवेदनशील हृदय शरत् का नारी भी सस्नेह आदर करती थीं। उनके सामने अपने दुःखों की कहानी सुनाती थी। उन्हें अपना मसीहा जानकर ही बंगाल की नारियों ने उनकी 57 वीं जन्म जयन्ती पर उनका अभिनन्दन समारोह किया और उनकी प्रशंसा में एक पत्र पढ़ते हुए स्पष्ट कहा कि –

"पराधीन देश की अधःपतित समाज की असहाया अन्तःचारिणियों के हृदय की मूक अनन्त वेदना को तुमने भाषा में मूर्त कर दिया है। उनके दुर्गतिपूर्ण जीवन के सुख दुःखों की सभी अनुभूतियों को निविड सहानुभूति में ढालकर तुमने साहित्य में सत्य

करके प्रत्यक्ष करा दिया है। तुम्हारी अनाविष्ट द ष्टि, सूक्ष्म पर्यवेक्षण सामर्थ्य, सुंगभीर उपलब्धि, शक्ति तथा विचित्र मानव चरित्र की अतल-स्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी चित्र की निगूढ़ प्रकृति का गुप्ततम पता पा लिया है। हे नारी चरित्र के परम रहस्यज्ञाता, हम लोग तुम्हारी वन्दना करती हैं।"

संवेदनशीलता के कारण ही वे आवारा होते हुए भी मसीहा बन गए और अनेक विद्वान उनका आदर करने लगे। उनके चरित्र की महानता को व्यक्त करते हुए आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराम ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए अपनी डायरी में लिखा था –

"धन्य शरत्चन्द्र, तुम इतने दिन कहाँ थे? कहाँ से आ गये। सचमुच तुम्हारे समान लेखक की बड़ी आवश्यकता थी। सामाजिक व्याधि और दुर्नीति का चित्रण करने के लिए तुमने जिस प्रकार कलम पकड़ी, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। तुमने कभी भी धर्म मत के ऊपर ओछा व्यंग्य विद्रूप नहीं किया। इसलिए कुप्रथाओं के ऊपर कुठाराघात करने में कुंठित नहीं हुए। तुम्हारी रचनाएँ मर्मस्पर्शी हैं। अन्तस्तल तक में प्रवेश कर जाने वाले तुम्हारे चरित्रों के साथ एकाकार हुआ जा सकता है। तुम्हारी सबसे बड़ी विशेषता थी कि उनका सुख दुःख पाठकों का सुख दुःख है।"

अतः प्रभाकर जी ने शरत् की जीवनी लिखते समय उनके साहित्य को पढ़कर या अनेक घटनाएँ सुनकर उनकी संवेदना के माध्यम से विश्व की समूची मानवीयता, सहृदयता, करुणा और संवेदना को अंकित किया है। वैसे भी शरत् के अन्दर विश्वव्यापी संवेदना ही थी जिसे उन्होंने अपने साहित्य में क्रिया कलापों में व्यक्त भी किया है।

*****

# अध्याय - 5
# आवारा मसीहा : उद्देश्य

कोई भी साहित्यिक रचना निरुद्देश्य नहीं होती उसके पीछे रचनाकार का कोई न कोई उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्ष उद्देश्य 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है। अप्रत्यक्ष उद्देश्य 'कला कला के लिए' सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है। श्री विष्णु प्रभाकर ने साहित्य की अनेक विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। उनका नाम हिन्दी एकांकी और कहानी के क्षेत्र में ख्यात है।

'आवारा मसीहा' श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित विश्वविख्यात बंगला उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की प्रामाणिक जीवनी है। प्रस्तुत ग्रंथ में लेखक ने शरत् से संबंधित अनेक अद श्य चित्र प्रस्तुत किए हैं जिनमें हमें शरत् के जीवन के दोनों रूपों के दर्शन होते हैं एक आवारगी का जीवन दूसरा 'मसीहा' का जीवन। साथ ही उनके जीवन के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक धार्मिक एवम् आर्थिक परिस्थितियों का सिलसिलेवार ब्यौरा भी मिलता है। प्रभाकर जी ने स्वयं कहा है – "मैंने शरत्चन्द्र जी की जीवनी को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए अनेकानेक विवरणों का उपयोग किया है।" उन्होंने उमा प्रसाद मुकर्जी का ह्रदय से धन्यवाद देते हुए कहा है – क्योंकि उन्हीं के माध्यम से शरत् बाबू के जीवन की अनेक बातें प्राप्त हुई हैं – 'जीवित व्यक्तियों में से मैं सबसे अधिक ऋणी हूँ सुपरिचित पर्यटक स्वनाम धन्य उमाप्रसाद मुकर्जी का जिन्होंने सहज भाव से मुझे अपना लिया।" अतः लेखक का उद्देश्य रहा है कि शरत् का प्रामाणिक जीवन पाठकों तक पहुँचे।

## महिमामण्डित आवारापन एवं मसीहापनः

शरत् का अधिकांश जीवन मायावरी, आवारगी में बीता उनकी रचनाओं में और उनके मिलने वालों के संस्मरणों से उनकी आवारगी का पता चलता है लेकिन हमें यह कदापि न भूलना चाहिए कि उनकी रचनाओं में उनके मसीहापन की झलक सर्वत्र विद्यमान है। भले ही वे आवारा, घुमक्कड़ रहे लेकिन जहाँ-जहाँ उन्होंने दुःख देखा वहीं उन दुःखों एवं कष्टों को दूर करने के लिए यथासम्भव उपाय किए। शरत् को अधिकांश लोग स्वच्छंद व्यक्ति कहते थे और उन पर चरित्रहीन का आरोप तक लगाते थे। कुछ लोगों ने तो लेखक को यहाँ तक कहा कि "क्यों इतना परेशान होते थे, दो चार गुण्डों का जीवन देख लो। शरत्चन्द्र की जीवनी तैयार हो जाएगी।" उनके आवारापन के बारे में लेखक स्वयं भूमिका में लिखता है – "रंगून में एक सज्जन ने मुझसे कहा था," वे एक स्त्री के साथ रहते थे। उनके पास बहुत कम लोग जाते थे। मैं उनका पड़ौसी था, लेकिन उनके कमरे में कभी न गया। वे अफीम खाते थे और शराब पीते थे। वे एक निकृष्ट प्रकार का जीवन बिता रहे थे। मैं उनसे हमेशा बचता था।" लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि – "कृतिकार का जीवन उसका अपना होता है। उस पर आक्षेप करने से क्या लाभ? उसका मूल्य तो उसकी कृति से आँकना चाहिए। परन्तु मनुष्य तो स्वभाव से छिद्रान्वेषी है। ढूँढने पर दोष न भी मिले तो वह कल्पना कर सकता है।" उनका आवारापन उनके बचपन की देन थी क्योंकि उनके पिता मायावरी स्वभाव के थे। और इसी कारण उनकी पढ़ाई एक जगह न हो सकी। वे उन्हें कभी देवानन्दपुर में तो कभी अपने नाना के घर जाना पड़ता था। उन्होंने एक मित्र मण्डली बना ली थी जो श्मशान या एकान्त में जाकर खेला करती, तम्बाकू पिया करती। शरत् बेशक अफीम, शराब, वेश्या के सम्पर्क में रहा हो लेकिन वह जीवन भर अन्याय, अत्याचार के प्रति लड़ता रहा तभी तो लेखक कहता है –

"न जाने कितनी बार वह इस पवित्र मौन एकान्त में आकर बैठा होगा। दूर से आती बच्चों की शररतों की आवाजें, गंगा की ध्वनि में मिलकर एक रहस्यमय वातावरण का निर्माण करती होंगी। प्रकृति का सौंदर्य जैसे उसके थके तन-मन को सहलाता होगा, तब उसने निश्चय ही प्रतिज्ञा की होगी, "मैं सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन भर सौंदर्य की उपासना करूँगा, कि मैं जीवन भर अन्याय के विरुद्ध लडूँगा, कि मैं कभी छोटा काम नही करूँगा।"

अंतः बाल्यकाल से ही उसके हृदय में अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध लड़ने के भाव जाग उठे थे और मानवता के प्रति सहानुभूति के भाव जाग उठे थे। एक बार शरत् मास्टर मुशाई के साथ जा रहा था, एक स्त्री की रोने का स्वर सुनाई दिया। मास्टर जी शरत् से पूछने लगे कि कौन रो रहा है तो शरत् ने उत्तर दिया – "मास्टर मुशाई, इस नारी का स्वामी अन्धा था। लोगों के घरों में काम-काज करके यह उसको खिलाती थी। कल रात इसका वह अंधा स्वामी मर गया। यह बहुत दुःखी है। दुःखी आदमी बड़े आदमियों की तरह दिखाने के लिए जोर-जोर से नहीं रोते। उनका रोना दुःख से विदीर्ण प्राणों का क्रन्दन होताहै। मास्टर मुशाई यह सचमुच रोना है।"

ऐसी थी शरत् की द ष्टि जो दुःखी, पीड़ित को देखकर दुःखी होता था। उनकी मानवतावादी सोच थी। यही कारण है कि रंगून में जब प्लेग की बीमारी फैली तो उन्होंने बिना अपनी जान की चिन्ता किए बीमारों की सहायता की थी, तथा म तकों के अंतिम संस्कार करने में भी लगे रहे थे। उनकी यह मसीहा ही द ष्टि थी। लेखक कहता है कि –

"प्लेग का यह आक्रमण इतना भयानक था कि हर व्यक्ति किसी दूसरे कि चिन्ता किये बिना खड़ा हुआ। रोगी अकेले तड़प तड़पकर समाप्त होने लगे। शरत् असहाय लोगों की सहायता करने में सदा आगे रहता आया था। यहाँ भी आगे रहा। जहाँ 'प्लेग' शब्द सुनकर बड़े से बड़ा साहसी भी अपने प्रिय से प्रियजन को छोड़ देता था, वहाँ शरत् एक अजनबी के पास भी पहुँच जाता था। बर्फ और औषधि आदि खरीद देने तक में उसे संकोच नहीं होता था। राजू की पाठशाला में मानवीय करुणा का जो पाठ उसने पढ़ा था, उसे वह कभी भूल नहीं भूल सका।

शरत् कभी भी सभ्य, शिक्षित समाज में नहीं रहा, वह जहाँ भी गया, रहा, वहीं निम्न वर्ग के लोगों में रहा, गंदी गलियों में रहा, वैश्याओं की गलियों में रहा। इसी कारण वह देश में जाति बहिष्कृत था। उसके रिश्तेदार उसे अपना कहने में भी हिचकते थे। भद्र लोग उसे चरित्रहीन मानते थे। उससे दूर रहने की कोशिश करते थे।

समाज का यह द ष्टिकोण उनके मसीहत्व एवं मानवीयता के गुण को कम नहीं कर पाया। नारी के प्रति विशेषकर पतिता के प्रति उनका द ष्टिकोण अत्यन्त मानवीय था। वह उनके शरीर की बजाए उनके भीतर छिपी पवित्र भावना को ही देखता था। उनका मत था कि ये वैश्या बनती नहीं इन्हें मजबूरन बनाया जाता है और शरीर तो इनका व्यापार है और मन इनका करुणा से भरा पवित्र है। उन्होंने स्वयं कहा – "मैंने अनीति का प्रचार करने के लिए कलम नहीं पकड़ी। मैंने तो मनुष्य के अन्तर में छिपी हुई मनुष्यता की उस महिमा को जिसे सब नहीं देख पाते। नाना रूपों में अंकित करने का प्रयास किया है।" इसी कारण तो वे पतितों के प्रति प्राचीन धारणा के बारे में कहते हैं – "कोई धारणा या वस्तु बहुत प्राचीन काल से चली आई है, इसी कारण वह सही नहीं है। कुछ भी हमेशा के लिए सही नहीं हो सकता। सतीत्व परिपूर्ण मनुष्यता का एक अंग है। वह मनुष्यता पर हावी नहीं हो सकता।" सचमुच में वे नारी के उद्धारकर्त्ता थे, मसीहा थे। उन्होंने नारी को सही जमीन दिलाने के लिए उनसे अधिकाधिक सम्पर्क किया था। इसी कारण लेखक कहता है –

"समाज के सभी वर्गों की नारियों से उनके सदा सहज और आत्मीय सम्बन्ध रहे। उनकी कहानियाँ सुनने को वे नारियाँ जैसे लालायित रहती थीं। उनके कहने की भावभंगिमा पर वे मुग्ध थीं। उनके विचारों पर वे प्राण निछावर करती थीं। ऐसा निःस्वार्थ, ऐसा उदार, ऐसा मुक्त मनुष्य अब से पहले उन्होंने कहाँ देखा था। उनकी इसी अगाध भक्ति के कारण तो वे उन्हें जान सके और उनके प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर सके, उन्हें मनुष्य की मर्यादा दिला सके।"

इससे स्पष्ट है कि नारी भी उनका आदर करती थीं। उनके सामने अपने दुःखों की कहानी सुनाती थी। उन्हें अपना मसीहा जानकर ही बंगाल की नारियों ने उनकी 57 वीं जन्म जयन्ती पर उनका अभिनन्दन समारोह किया था और उनकी प्रशंसा में एक पत्र पढ़ा था जिसमें स्पष्ट लिखा –

पराधीन देश के अधःपतित समाज की असहाया अन्तःपुरचारिणियों के हृदय की मूक वेदना को तुमने भाषा में मूर्त कर दिया है। उनके दुर्गति पूर्ण जीवन के सुख दुःखों की सभी अनुभूतियों को निविड़ सहानुभूति में ढालकर तुमने साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष करा दिया है। तुम्हारी अनाविष्ट द ष्टि, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-सामर्थ्य, सुगंभीर उपलब्धि, शक्ति तथा विचित्र मानव चरित्र की अतलस्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी चित्र की निगूढ़ प्रकृति का गुप्ततम पता पा लिया है। हे नारी चरित्र के परम रहस्य ज्ञाता, हम लोग तुम्हारी वन्दना करती हैं।"

यही कारण है कि वे आवारा होते हुए भी मसीहा बन गए और अनेक विद्वान उनका आदर करते थे। उनके चरित्र की महानता को व्यक्त करते हुए आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए अपनी डायरी में लिखा था –

"धन्य शरत्चन्द्र, तुम इतने दिन कहाँ थे? कहाँ से आ गये। सचमुच तुम्हारे समान लेखक की बड़ी आवश्यकता थी। सामाजिक व्याधि और दुर्नीति का चित्रण करने के लिए तुमने जिस प्रकार कलम पकड़ी, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। तुमने कभी भी धर्म मत के ऊपर ओछा व्यंग्य विद्रूप नहीं किया। इसलिए कुप्रथाओं के ऊपर कुठाराघात करने में कुंठित नहीं हुए। तुम्हारी रचनाएँ मर्मस्पर्शी हैं। अन्तस्तल तक में प्रवेश कर जाने वाले तुम्हारे चरित्रों के साथ एकाकार हुआ जा सकता है। तुम्हारी सबसे बड़ी विशेषता थी कि उनका सुख दुःख पाठकों का सुख दुःख है।"

अतः लेखक विष्णु प्रभाकर का मूलोद्देश्य रहा है शरत्चन्द्र के आवारापन और मसीहापन दोनों ही रूपों का प्रामाणिक वर्णन करना। हाँ यहीं नहीं लेखक ने इस मूलोद्देश्य के अतिरिक्त प्रच्छन्न उद्देश्य के अन्तर्गत तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को भी व्यक्त करना है। क्योंकि धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही लेखक को प्रभावित करती हैं और उसके चरित्र का निर्माण करती हैं। उसके रचना कौशल को प्रकट करती हैं।

## सामाजिक यथार्थः

शरत् धर्म की नैतिक बाध्यताओं रूढ़ियों और व्यक्ति के विकास में बाधक होने वाली मान्यताओं के विरोधी थे। उन्होंने सती प्रथा का खुलकर विरोध किया है। उन्होंने इसके विरोध में स्पष्ट कहा कि –

"कोई धारणा या वस्तु बहुत प्राचीन काल से चली आई है इसी कारण से वह सही नहीं है। कुछ भी हमेशा के लिए सही नहीं हो सकता। सतीत्व परिपूर्ण मनुष्यता का एक अंग है। वह मनुष्यता पर हावी नही हो सकता। कर्त्तव्य और अधिकार का सम्बन्ध ऐसा अविच्छिन्न है कि एक न रहे तो दूसरा निरर्थक हो जाता है। मैं शास्त्र का ज्ञाता होने का दावा नहीं करता। मेरा कोई धर्म ही नहीं है पर जो कुछ देखता आ रहा हूँ इससे लगता है कि शास्त्रों में पुरुषों के लिए किसी कर्त्तव्य की चर्चा नहीं है। उनके अधिकार ही अधिकार बताये गये हैं। पुरुषों के लिए कुछ वर्जित नहीं, पर किसी युवती का ज़रा सा पैर फिसल जाए तो फिर उसकी मुक्ति नहीं, ऐसा क्यों? उसके लिए समाज में फिर लौटकर सम्मान का स्थान प्राप्त करना क्यों बन्द हो जाता है? क्या उसके प्राण नहीं? मैं तो कहता हूँ कि इसमें इतना बड़ा प्राण है जितना किसी ग हस्थ स्त्री में दुर्लभ है।"

शरत् ने भारतीय धर्म एवं समाज में व्याप्त सती प्रथा की मूलभूत समस्या को उठाया है तो लेखक का भी यही उद्देश्य रहा है कि शरत् की यह क्रान्तिकारी विचारधारा आधुनिक समाज का निर्माण करें। तत्कालीन समाज में व्याप्त अंधविश्वास को व्यक्त करता हुआ लेखक कहता है – "विधवा-विवाह, जाति विचार, कुलीनता, धर्म आडम्बर के विषयों में लोगों की भावनाएँ अत्यन्त संकीर्ण दायरे में सीमित थीं। इसलिए नवजागरण के विश्वासी व्यक्तियों को बुरी द ष्टि से देखा जाता था। लेकिन शरत् अपने कार्य के प्रति अडिंग रहे। उनका मानना था कि धर्म ही व्यक्ति और समाज का मूलाधार है। उसके बिना समाज सुधार की कल्पना ही नहीं हो सकती थी। इसीलिए उन्होंने राममोहनराय के धर्म सुधार की ओर ध्यान दिया।

"उन्होंने निराकार ब्रह्म की साधना एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद को हिन्दू धर्म का शुद्ध रूप प्रमाणित करने की चेष्टा की। और उसी उद्देश्य से उन्होंने 'आत्मीय सभा' की स्थापना की। इस सभा में धर्म चर्चा के अतिरिक्त जाति-भेद समस्या, सहमरण, कुलीन प्रथा, सहभोज, निषिद्ध खाद्य समस्या,बाल विवाह, बहु विवाह और सती प्रथा आदि सामाजिक कुप्रथाओं पर भी विचार किया जाता था। यही समाज सुधार का श्रीगणेश था जो बाद में सारे भारत में व्याप्त हो गया और ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज तथा थियोसोफी आदि संस्थाओं के रूप में प्रकट हुआ।"

जिस समय शरत् प्रसिद्धि पा चुके थे उस समय देश में स्वराज्य की क्रान्ति जोर पकड़ रही थी। राजनीति में परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही थी जिन्हें शरत् को भी प्रभावित किया। वैसे भी साहित्यकार का प्रभावित होना स्वाभाविक होता है। यहाँ लेखक ने तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का चित्रण करते हुए लिखा –

देशबन्धु चितरंजनदास स्वयं मन प्राण से इस आन्दोलन में कूद पड़े थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के अम तसर अधिवेशन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। शरत् बाबू का देशबन्धु के साथ अत्यन्त स्नेह था। इसलिए वे भी बड़ी तेजी के साथ उस ओर खिंच आये। जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के प्रतिरोध में हावड़ा में जो विशाल सभा हुई उसमें उन्होंने प्रत्यक्ष भाग लिया और इस प्रकार देशबन्धु के साथ जो सम्पर्क था उसे निरा साहित्यिक नहीं रहने दिया।

हण्टर कमेटी की रिपोर्ट के बाद देश में जो निराशा और क्षोभ पैदा हुआ उससे वे विचलित हो उठे। शीघ्र ही समूचा देश गाँधी के असहयोग आन्दोलन से गूँज उठा। इसी के साथ जुड़ गया खिलाफत का आन्दोलन। इनका प्रमुख कार्यक्रम था – उपाधियों और सरकारी नौकरियों का त्याग, आनरेरी पदों और कौंसिल की मेम्बरी तथा पुलिस और फौज़ की नौकरी, इन सबको छोड़

देना। इसके अतिरिक्त कर अदा करने से इन्कार करना, खिलाफत, पंजाब के अत्याचार और अपर्याप्त सुधार इन तीनों की फग्गू ने उबली हुई त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया। असहयोग आन्दोलन के लिए यह बहुत सही वातावरण था। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने भी महासमिति के सहयोग के निश्चय को स्वीकार कर लिया था, पर सहसा 31 जुलाई की आधी रात के बाद उनका देहावसान हो गया। सारा देश हतप्रभ हो उठा। इस व्यथा ने जैसे सबको पागल कर दिया। व्याकुल मन शरत्चन्द्र ने लिखा, "तिलक केवल हमारे भाई ही नहीं थे, बन्धु ही नहीं थे, नेता ही नहीं थे, वे हम बाईस करोड़ के मलिन ललाट के शुभ गौरवमय तिलक थे। वही तिलक आज मिट गया। हम अनाथ हो गये।

यहाँ लेखक ने तत्कालीन समाज की आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण भी किया है। शरत् का बचपन गरीबी में बीता। गरीबी के कारण पढ़ाई पूरी न हो सकी। देश छोड़कर रंगून जाना पड़ा और पचास रुपये मासिक वेतन की नौकरी करनी पड़ी। यहाँ तक कि शरत् का दूसरा विवाह भी इन्हीं आर्थिक परिस्थितियों के कारण हुआ था।

बंगाल से कृष्णदास अधिकारी दहेज जुटाने के लिए रंगून में आकर नौकरी करने लगे थे। उन्होंने एक बार कहा भी, "लड़की सयानी हो गई है। मैं इसे अकेले लेकर कहाँ घूमता फिरूँ? गरीब ब्राह्मण हूँ। यदि आप अनुग्रहपूर्वक इसे ग्रहण कर लें, तो ये मेरा बड़ा उपकार होगा।" शरत् ने इन्कार कर दिया तो एक दिन कृष्णदास ने कहा, 'यदि आप मोक्षदा से विवाह नहीं करना चाहते तो मुझे कुछ धन दीजिए, जिससे मैं देश लौटकर लड़की का विवाह कर सकूँ।' शरत् के पास इतना पैसा कहाँ था। वह अधिकारी महाशय की सहायता नहीं कर सका। लेकिन तभी एक दिन क्या देखता है कि बिना कुछ कहे कृष्णदास अधिकारी मोक्षदा को उसी के पास छोड़कर भारत लौट गये हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि गरीबी में व्यक्ति अपनी लड़कियों की शादी भी न कर पाते थे।

अतः लेखक का मूल उद्देश्य शरत् के आवारापन एवं मसीहापन दोनों रूपों का वर्णन करना है। और साथ ही तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण करना है। यह कहना गलत न होगा कि लेखक अपने उद्देश्य में सफल हुआ है।

_______________ ***** _______________

# अध्याय - 6
# आवारा मसीहा : संवाद योजना

जीवन लिखते समय लेखक सत्य और कल्पना का सहारा लेता है। लेखक सत्य को उद्घाटित करने के लिए उसमें आवश्यकतानुसार कल्पना का भी समावेश करता है। वह विषय को विस्तार देने के लिए घटनाओं का विश्लेषण करता है। जब लेखक विषय के चित्रण में घटनाओं का प्रदर्शन करता है तो बीच-बीच में संवादों का आना स्वाभाविक हो जाता है। इससे पात्रों के मनोभावों, प्रव त्तियाँ, क्रियाकलाप, आचरण-विचरण आदि का ज्ञान पाठक को सहजता से हो जाता है। संवादों से विषय सरलता से समझ में आ जाता है।

प्रभाकर जी का एक मात्र उद्देश्य चरितनायक से संबंधित गुणों, अवगुणों का दिखाना है। इसी कारण उन्होंने कहीं-कहीं संवादों का भी प्रयोग किया है। 'आवारा मसीहा' के संवाद संगठित, विश्लेषणात्मक, हृदय को झकझोरने वाले एवं वातावरण को प्रदर्शित करने वाले हैं। यहाँ संवादों को यथार्थ रूप देने के लिए लेखक ने सुनियोजित शब्दों को चुना है। इससे कृति में स्वाभाविकता, अनुकूलता आ गई है। यहाँ अधितकर संवाद शरत् बाबू के उपन्यासों से ही उद्ध त किए गए हैं। यही नहीं उनके लेखों, संस्मरणों, पत्रों से भी संवाद उद्ध त किए गए हैं।

'आवारा मसीहा' की संवाद योजना पर निम्नलिखित तथ्यों से विचार किया जा सकता है –

1. संवादों का वर्गीकरण
2. संवादों का विस्तार योजना
3. संवादों के उद्देश्य
4. संवादों के गुण
5. संवादों की भाषा

अब हम 'आवारा मसीहा' की संवद योजना पर विस्तार से चर्चा करेंगे –

## क. संवादों का वर्गीकरण

अगर हम गहराई से देखें तो संवादों के अनेक प्रकार दिखाई देते हैं। इन प्रकारों का अनेक रूपों में वर्गीकरण किया जा सकता है –

1. नाटकीय संवाद
2. भावात्मक संवाद
3. विचारात्मक संवाद
4. विश्लेषणात्मक संवाद
5. मन स्थिति के अनुकूल संवाद

1. **नाटकीय संवादः** इस प्रकार के संवादों में लेखक नाटकीयता भर देता है। जिससे जीवनी के पात्र जीवन्त हो उठते हैं। इनकी विशेषता यह है कि ये संवाद लेखक द्वारा संवेदनशील पात्रों की भाव-भंगिमा, मनः स्थिति और आचरण-विचरण को प्रदर्शित करने वाले होते हैं। उदाहरणतः

   "सुरेन्द्र भीतर आकर कोच के ऊपर बैठ गया। शरत् धीरे-धीरे इसराज बजाकर गाने लगा "मथुरावासिनी, मधुरहासिनी।"

कई क्षण मंत्रमुग्ध रहने के बाद सुरेन्द्र ने पूछा, "यह किसका है शरत्?"

'मेरा।'

'खरीदा?'

'नहीं।'

'तब?'

'नीला ने दिया है।'

'एकदम दे दिया?'

'सीखने के लिये दिया है।'

और यह कहकर शरत् ने बाजे को अंधेरे में छिपा लिया। कहा, "किसी से कहना मत, तुझे भी सिखाऊँगा।"

2. **भावात्मक संवादः** वैसे इस प्रकार के संवाद 'आवारा मसीहा' में कम ही देखने को मिलते हैं फिर भी शरत् के भावुक एवं दुःखातिरेक के क्षणों को कहीं-कहीं व्यक्त किया गया है जिसे शरत् कहता-कहता भावुक और आत्मविभोर हो जाता है –

   "मेरा कलकत्ता का मकान बन चुका है। इस समय मुझे यदि आप पाँच हजार रुपये दें तो चिन्ता दूर हो। जो तीन पुस्तकें समाप्त होने को हैं, आशा करता हूँ, उनसे एक साल में तो यही कर्ज चुकता हो जाएगा। मकान का तखमीना चौदह हजार रुपये का था। जिन लोगों से बातचीत की थी, उनसे तय था कि आधे रुपये इस साल दूँगा और बाकी आधे रुपये अगले साल। पर घटना चक्र से खर्च बढ़ गया और तीन हजार रुपये ज्यादा लग गए। नहीं तो रुपयों की जरूरत न होती।"

3. **विचारात्मक संवादः** इस प्रकार के संवाद लेखक की स्वयम् की जीवनी के चरितनायक के प्रति विचारधारा को व्यक्त करते हैं। आवारा मसीहा का चरितनायक तो एक विचारवान् महान् साहित्यकार रहा है इसलिए यहाँ विचारात्मक संवादों का होना आवश्यक-सा हो जाता है। उदाहरणतः

   "मैं निरन्तर मनुष्यता का अन्तरंग ही देखता हूँ। उसने कहा, दूसरे के कन्धे पर बन्दूक चलाना, अन्य की अभिज्ञता को अपना बनाना, यह मैंने कभी नहीं किया। बहुत ही अभागा यह करेगा। वास्तविक जीवन को देखना चाहने पर शुचिता अशुचिता के चक्कर में पड़ने से बात नहीं बनेगी। अभिज्ञता के कारण ही गोर्की, टालस्टाय, शेक्सपीयर आदि शुचिता के फेर में नहीं पड़े। मूर्त रचना करने पर कल्पना से काम नहीं चलता, अपनी अभिज्ञता चाहिए। मेरी रचनाओं में युक्तियों का प्रयोग और समन्वयात्मक परिणाम अधिक है। रूप और स्वभाव का वर्णन प्रायः नहीं है। यह सब मैं दो चार वाक्यों में ही निबटा देता हूँ, इस पर अधिक ध्यान नहीं देता। असली चीज है उसकी सत्ता व मन, चाहे जो कहिए, मैंने अपनी अभिज्ञता किस प्रकार बढ़ाई इसका विवरण देने की आवश्यकता नहीं, सब बताने लायक भी नहीं। मानव स्वभाववश अथवा दुर्बलता वश यह सब सहन नहीं कर सकता। रवीन्द्रनाथ के उस गीत में जैसा है जो है विष, वह मेरे हिस्से में ही पड़ा है इसमें जो अम त निकला वह अपनी रचनाओं द्वारा सब को दिया है।"

4. **विश्लेषणात्मक संवादः** इस प्रकार के संवादों में कथोपकथन के अतिरिक्त पात्रों की मनः स्थिति, भाव-भंगिमा, क्रिया-कलाप आदि का बीच-बीच में प्रदर्शन होता रहता है। यह प्रदर्शन इतना सूक्ष्म होता है कि इसको विद्वान पाठक ही समझ पाता है। इस प्रकार के संवादों से कृति की कलात्मकतों ही बढ़ती है। उदाहरणतः

   स्वामी जी बोले "ठाकुर ने कहा है, समुद्र में रत्न हैं यत्न करने की आवश्यकता है। संसार में ईश्वर है, साधना करनी चाहिए। काई से ढके तालाब के सामने खड़े होकर यदि जल लेना चाहो तो काई को हटाना होगा। इसी प्रकार माया से ढके हुए नेत्र लेकर ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। सबसे पहले माया से मुक्त होना है।" शरत ने जिज्ञासा की, "माया क्या चीज है?"

स्वामी जी बोले, "विषय वस्तु और कामिनी-कंचन में डूबे रहना ही माया है। इनके मोह को छिन्न-भिन्न करके सरल प्राण होकर पुकारने पर मन शुद्ध होगा। उसकी दया होगी।"

शरत्चन्द्र ने पूछा, "सुना जाता है वे मंगलमय हैं। ऐसा होने पर प थ्वी पर इतना दुःख क्यों है?"

स्वामी जी मुस्कुराए, उत्तर दिया, "इस संसार में जिसको हम दुःख कहते हैं वह तो वास्तविक दुःख नहीं है। वह तो उसकी दीक्षा है। सुख पाते ही मनुष्य उसको भूल जाता है। व्यथा रूपी दुःख पाने पर ही उसके मन में समझ आती है। दुःख ही सबसे बढ़ के इस प थ्वी की प्रिय वस्तु है। नहीं तो उसको याद ही क्यों करोगे? उसकी महिमा की उपलब्धि का अवसर कैसे पाओगे?"

5. **मनःस्थिति के अनुकूल संवादः** इस प्रकार के संवाद पात्रों की मनःस्थिति से सम्बन्धित होते हैं। 'आवारा मसीहा' में इस प्रकार के संवादों की कमी नहीं है क्योंकि यह एक जीवनी है। यहाँ अपनी मनःस्थिति को कथा रूप में व्यक्त करता है। ये संवाद दो व्यक्ति के आमने सामने के नहीं होते बल्कि एक व्यक्ति अपने साथ ही बतियाता दिखाई देता है। उदाहरणतः

"कैसा दुर्भाग्य पूर्ण है मेरा जीवन! कैसा अर्थहीन, निष्फल, नीरस। दिन, मास, वर्ष सिर पर से गुजर जाते हैं, सोच नहीं पाता? भगवान् ने जब बुद्धि दी थी तो थोड़ी सुबुद्धि भी दे सकते थे। नहीं दी तो इतना प्यार करना क्यों सिखाया? प्यार करने के लिए एक पात्र मुझे भी दे देते तो उनके विश्व में मनुष्यों की कमी पड़ जाती? नहीं जानता यह उनका कैसा न्याय है?"

## ख. संवादों की विस्तार योजना

अगर विस्तार की द ष्टि से देखा जाए तो 'आवारा मसीहा' में संक्षिप्त और विस्त त दोनों तरह के संवाद देखे जा सकते हैं। यहाँ इनको इस द ष्टि से परखा जा सकता है –

1. संक्षिप्त संवाद योजना
2. विस्त त संवाद योजना

1. ***संक्षिप्त संवाद योजनाः*** इस प्रकार के संवादों से लेखक थोड़े से ही शब्दों से अधिक बात कह जाता है। यथा –

"तुम इस घर को छोड़ कर क्यों चले गए थे, मोतीलाल?"

"अच्छा नहीं लगता था, छोटे काका।"

"इतनी ठंड में कपड़ा क्यों नहीं पहनते?"

"है नहीं।"

"शरत कहाँ है?"

"झगड़ा करके कहीं भाग गया।"

2. ***विस्त त संवाद योजनाः*** ये संवाद प्रायः लम्बे ही होते हैं। कहीं-कहीं तो एक पूरा पहरा ही हो जाता है। लम्बे संवाद नाटक के मंचन को तो प्रभावित करते हैं पर जीवनी की कलात्मकता को तो बढ़ाते ही हैं। उदाहरणत :–

शरत् बाबू ने उत्तर दिया, "देखो, किरणमयी के चरित्र के द्वारा मैंने नारी-जीवन की व्यर्थता को दिखाना चाहा है। किरणमयी और हाशनबाबू का ग हस्थ जीवन बड़ा की करुण है जो पत्नी को पढ़ाकर सुखी है। दूसरे घोर स्वार्थी है। पुत्र-वधू से खूब काम लेती है। किरणमयी दोनों विरुद्ध प्रति स्त्री-पुरुष के प्रेमहीन मेल को हिन्दू समाज-विधि का नियम मानकर स्वीकार नहीं करती। वहीं से किरणमयी के जीवन आरम्भ होती है।"

## ग. संवादों के उद्देश्यः

जीवनी के संवादों का एक निश्चित उद्देश्य होता है। तथा प्रत्येक संवाद की अपनी विशेषता होती है, ये विशेषता ही उसके

उद्देश्य को प्रकट करते हैं। इस प्रकार के संवादों को देने में लेखक के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं –

1. ***चरितनायक के जीवन को विकास एवं गति देना:*** संवादों से लेखक चरितनायक की कथा को गति देता है। यहाँ लेखक स्वयं वर्णन करने की बजाए पात्रों से ही संवाद कहलवा देता है जिससे कथा में स्वाभाविकता आ जाती है। इससे चरितनायक का वर्णन नहीं साक्षात् रूप सामने आता दिखाई देता है। ये संवाद साथ-साथ कथा का विकास भी करते हैं। यथा :–

   "एक और स्थान पर उन्होंने इस रचना को रवि बाबू के 'गोरा' उपन्यास के पात्र परेश बाबू के अनुकरण पर लिखे जाने की चर्चा की थी। दूसरे स्थान पर उन्होंने कहा था, 'यह उपन्यास रवि बाबू के 'घरे-बाहिरे' से रत्ती भर भी कम नहीं होगा।'

   उस समय हेमेन्द्र कुमार राय ने उनसे पूछा था, "क्या आप अपना उपन्यास लिख चुके हैं?"

   "नहीं, अभी तो लिखना भी आरम्भ नहीं हुआ।"

2. ***साक्षात् रूप की पहचान:*** इस प्रकार के संवाद कथा को गति तो देते ही हैं साथ ही जीवनी में रोचकता भी लाते हैं। पाठकों को ऐसा लगता है कि ये सारी घटनाएँ हमारी आँखों के सामने ही हो रही हैं। इनसे पाठक का तादात्म्य कथा के विषय के साथ बना रहता है। एक उदाहरण देखा जा सकता है –

   "पक्षी उसके पास निरन्तर रहे। एक मैना थी जिसे प्यार से 'मौना' कहकर पुकारता था। अचानक उसकी म त्यु हो गई। वह ऐसे ही दुखी हुआ जैसे कोई सन्तान के मरने पर दुःखी होता है। फिर वह सिंगापुरी नूरी पक्षी ले आया। बड़े प्यार से उसका नाम रखा बाटू-बाबा। उसे बातें करना सिखाया। रात को बार-बार उठकर उसे खिलाता। मित्र कहते, "पक्षियों को क्या रात को खिलाया जाता है?"

   शरत् उत्तर देता, "पक्षी जंगल में रहते हैं। इच्छानुसार खाते रहते हैं, लेकिन जब वे संसार में आकर रहने लगते हैं, तब उन्हें हमारी तरह खाना पीना पड़ता है। यदि हम उन्हें हाथ से न खिलाएँ तो वे बुरा मानते हैं। उन्हें यदि हम प्यार नहीं कर सकते तो बन्द करने से क्या फायदा?"

   वह पक्षी रात के समय गाता भी बहुत सुन्दर था। सुनकर पड़ोसी पूछते, "शरत् बाबू,, रात आपके घर कोई गा रहा था, 'सखिरे की ऑर बोलिये आमि', बड़ा मधुर स्वर था।"

   शरत् हंसकर कहता, "अरे बाटू बाबा गाता है।"

## घ. संवादों के गुण:

संवादों के कुछ गुण होते हैं। जिनके अभाव में कथा की स्वाभविकता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। इस द ष्टि से 'आवारा मसीहा' की संवाद योजना को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखकर परखा जा सकता है –

1. पात्रानुकूलता
2. सरलता
3. प्रसंगानुकूलता
4. रोचकता एवं मार्मिकता

   1. ***पात्रानुकूलता:*** पात्रानुकूल संवाद से मतलब है कि ऐसे संवाद हो जो उनके सामाजिक, सांस्कृति परिवेश एवं वर्ग, ओहदे, आयु के अनुकूल हो। अगर ऐसा नहीं है तो संवाद नीरस एवं उबाऊ लगेंगे जिससे विषय की रोचकता, स्वाभाविकता में बाधा पड़ेगी। ये संवाद देशकाल वातावरण रहन-सहन होने चाहिए। इस द ष्टि से 'आवारा मसीहा' के संवाद पात्रानुकूल दीखते हैं। शरत् बाबू उच्च कोटि के साहित्यकार थे इसलिए उनकी भाषा एवं संवाद में माधुर्य, ओज एवं गम्भीरता सभी प्रकार के गुण पाए जाते हैं। यहाँ प्रभाकरजी ने संवादों की भाषा दैनिक जीवन के बोलचाल के शब्दों से संवारी है। उदाहरणत –

      एक बार शरत् बाबू घूमते-घूमते आम के एक बाग में जा पहुँचे। उन्होंने देखा कि, एक बाबा जी आधी आँखें

खोले हुए सामने ही विराजमान हैं। आसपास गांजा पीने के साधन हैं। दूध के लिए एक बकरी और गाय है। भांग छानने का सरंजाम भी है। शरत् ने तुरन्त आगे बढ़कर बाबा जी के चरण छुए और विनम्र स्वर में कहा, "मैं ग ह त्यागी, मुक्ति-पथान्वेषी हत भाग्य शिशु हूँ। दया करके अपने चरणों की सेवा करने की आज्ञा दीजिए।"

बाबा जी हँसे, फिर सिर हिलाकर बोले, "बेटा घर लौट जा, यह पथ बड़ा ही दुर्गम है।"

शरत् ने करुण स्वर में कहा, "बाबा जी, बहुत से पापी आप जैसे संतों के चरण पकड़कर उतर गए हैं। क्या मैं आपके चरणों में पड़कर मुक्ति भी नहीं पा सकता?"

बाबा जी प्रसन्न हुए। बोले, "तू सच कहता है। अच्छा बेटा, भगवान् की यही इच्छा है तो यहीं रह।"

एक उदाहरण और द ष्टव्य है –

इसी प्रकार एक बानगी और देखी जा सकती है – "एक दिन मामा सुरेन्द्र के साथ बात करते-करते किसी प्रसंग में उसने कहा, "मैं सचमुच एक लड़की से प्रेम करता हूँ।"

सुरेन्द्र आश्चर्य से उसकी ओर देखकर बोला, "क्या सच?"

"हाँ, तुमसे क्या कभी मैं कुछ छिपाता हूँ?"

"कौन है वह?"

"न-न, यह नहीं बताऊँगा।"

"अच्छा, उसका नाम तो बता।"

"उसका नाम है, नीरदा।"

2. ***सरलता:*** 'आवारा मसीहा' के संवादों में कठिनता वहीं दिखाई देती है जहाँ साहित्यिक एवं चिन्तन प्रधान वार्तालाप है। अन्यथा संवाद सहज और सरल है। उदाहरण –

"इसके बाद तुरन्त ही बंगाल कौंसिल के चुनाव आ पहुँचे। देशबन्धु ने शरत्चन्द्र से कहा "आप हावड़ा से खड़े हो जाइये।"

शरत्चन्द्र हंस पड़े। बोले, "आप मजाक करते हैं। मैं कौंसिल के चुनाव में खड़ा होऊँ?"

'क्यों न खड़े हों?'

'ना, ना, उससे क्या? मैं साधारण लेखक हूँ। मैं क्या चुनाव में खड़े होने योग्य हूँ? लोग क्या कहेंगे?'

देशबन्धु विस्मित होकर बोले, "आप क्या कहते हैं, शरत् बाबू?" शरत्चन्द्र ने उत्तर दिया, "ठीक कहता हूँ। देश के लिए मैंने किया क्या है? जेल नहीं गया। वकालत बैरिस्टरी नहीं छोड़ी। किसी प्रकार का देश-निकाला या त्याग स्वीकार नहीं किया। आप मुझको प्यार करते हैं, यह मेरा और आपका व्यक्तिगत मामला है। आप स्वयं कवि और साहित्यिक हैं। साहित्यिक के रूप में ही आप मुझे प्यार करते हैं। मित्रता के नाते मैं आपका प्रियजन हो सकता हूँ, किन्तु देश की जनता कैसे मुझे प्रियजन माने। मैं अपनी साधारण साहित्य साधना को राजनीति का मूलधन बनाना नहीं चाहता।"

3. ***प्रसंगानुकूलता:*** 'आवारा मसीहा' के संवाद प्रसंग, के अनुकूल ही हैं। जो वातावरण, घटना, अवसर है उसी को चित्रित करने वाले संवाद हैं। यथा :–

उस दिन ठीक दोपहर में वे नरेन्द्रदेव के घर जा पहुँचे। उन्होंने पूछा, "इतनी दोपहर में बात क्या है?"

"अरे क्या बताऊँ। एक सभा में जाने की बात है। इसीलिए भाग आया हूँ। वे लोग देखकर लौट जायेंगे।"

"परन्तु सोचेंगे क्या?"

"जो चाहे सोचें। मैं नहीं जा सकता।"

"लेकिन जाने की सम्मति जो दे चुके हो।"

"सम्मति क्या मैंने मन से दी थी। जोर करके उन्होंने ले ली।"

4. ***रोचकता एवं मार्मिकता:*** संवादों में रोचकता एवं मार्मिकता होनी चाहिए। उनमें पाठकों के हृदय को छूने की क्षमता होनी चाहिए। ताकि पात्र के साथ पाठक भी हंसने एवं रोने लगे। यह क्षमता 'आवारा मसीहा' की संवाद योजना में विद्यमान है। उदाहरण –

शरत् ने हंसकर उत्तर दिया। "नींद जब आएगी तो उसे कोई रोक नहीं सकेगा। इसका गाना सुनने दो, बहुत मधुर शिक्षा देते हैं।"

फिर पक्षियों की ओर देखकर बोले, "ओ रे, इतना सुन्दर मत गाओ। एक दिन मेरी तरह ही तुम्हारा यह मधुर कण्ठ भी बन्द हो जाएगा।"

उमाप्रसाद ने कहा, "सो जाओ, आँखों को मूँद लो।"

लेकिन आँखें बन्द करते ही मिट-मिट करके ताकते रहे बोले, "पास आ जाओ, एक बात कहता हूँ, मेरे सीमान्त बन्धु!"

## ङ. संवादों की भाषा:

जीवनी की भाषा में सरसता, रोचकता, सहजता के साथ-साथ आम बोलचाल की होनी चाहिए क्योंकि महान् व्यक्तियों की जीवनी से सामान्य से सामान्य पाठक भी परिचित होना चाहता है। इस द ष्टि से 'आवारा मसीहा' की भाषा आम बोलचाल की है। लेकिन कहीं-कहीं क्लिष्टता भी है। यह क्लिष्टता वहीं है जहाँ शरत् का साहित्यिक रूप उभारा गया है। और यह विषय के अनुकूल भी है क्योंकि वे एक उच्च कोटि के साहित्यकार थे। अतः एक उदाहरण द ष्टव्य है –

एक दिन सहसा गिरीन्द्र ने कहा, "शरत् तुम 'कुन्तलीव पुरस्कार' के लिए गल्प क्यों नहीं लिखते? पच्चीस रुपये मिलते हैं।"

शरत ने पूछा, "यह 'कुन्तलीन पुरस्कार क्या है?" गिरीन्द्र बोला, "स्वदेशी का युग है। सभी देशप्रेमी स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहते हैं और उन्हें देना चाहिए। 'कुन्तलीन' एक सुगंधित स्वदेशी तेल है। बहू बाजार के एच. बसु उसके निर्माता हैं। इसके प्रचार के लिए ही यह प्रतियोगिता चलाई गई है। नामी लेखक इसका निर्णय करते हैं। ये कहानियाँ पुस्तक रूप में भी छपती हैं।"

शरत् ने कहा, "स्वदेशी की बात तो ठीक है, लेकिन कहानी लिखना और फिर पुरस्कार के लिए, मेरे लिए बिल्कुल सम्भव नहीं है। इतने बड़े-बड़े लेखकों के सामने मुझे कौन पूछेगा?"

गिरीन्द्र बोला, "तुम नहीं जानते, तुम बहुत अच्छी कहानियाँ लिखते हो जरूर लिखो। तुम्हें पुरस्कार मिलेगा।"

अतः कहा जा सकता है कि 'आवारा मसीहा की संवाद योजना विश्वविख्यात शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के चरित्र की गरिमा, महिमा, अद्वितीयता को उभारने वाली है। उसमें संक्षिप्तता, कलात्मकता, विश्लेषणात्मकता, रोचकता, सहजता, स्वाभाविकता, मार्मिकता, पात्रानुकूलता, प्रसंगानुकूलता, सरलता, आदि गुण विद्यमान हैं जो इस रचना को पूर्णतया सफल बनाने में सक्षम है।

*****

# अध्याय - 7
# आवारा मसीहा : चरित्र चित्रण

जीवनी के केन्द्र में चरितनायक होता है। लेखक का उद्देश्य चरितनायक के चरित्र को प्रामाणिक रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत करना होता है। लेखक चरितनायक के जीवन-चरित्र का अध्ययन करके मनुष्य के आन्तरिक भावों, विचारों और उससे संबंधित घटनाओं को अध्ययन का विषय बनाता है। इसीलिए लेखक चरितनायक से संबंधित घटनाओं को क्रम से उपस्थित करता है। साथ ही उनकी प्रामाणिकता भी बनाए रखने की भरपूर कोशिश करता है। जीवनी लिखते समय लेखक का उद्देश्य है कि वह ईमानदारी से चरितनायक के व्यक्तित्व को पुनर्निर्मित करे। यह करते हुए उसके लिए यह भी आवश्यक है कि अनुभूति के सहारे अतीत की यात्रा करे और तथ्यों के आसपास कल्पना के भी रंग भरे। चरितनायक का आन्तरिक एवं बाह्य चरित्र का निरूपण बड़ी ही कुशलता से करना पड़ता है।

'आवारा मसीहा' श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित विश्वविख्यात शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की प्रामाणिक जीवनी है। इस जीवनी को लिखने में लेखक के 14 वर्ष लग गए थे। क्योंकि शरत् का जीवन विरोधोभासों का पुंज रहा है। उनमें एक तरफ आवारगी थी तो दूसरी तरफ महानता भी थी। ऐसे महान् व्यक्ति के चरित्र को सत्यता से प्रकट करनी, चित्रित करने के लिए रचना कौशल की ही आवश्यकता होती है और यह रचना कौशल श्री विष्णु प्रभाकर जी में थी। तभी तो वे इस कार्य को सफलतापूर्वक कर पाएं। इस द ष्टि से हम प्रभाकर जी का चरित्र-चित्रण संबंधी कौशल का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे –

1. चरित्र-चित्रण के रूप
2. चरित्र-चित्रण की पद्धतियाँ
3. चरित्र-चित्रण की द ष्टि से समीक्षात्मक विचार

1. ***चरित्र-चित्रण के रूप:*** चरित्र-चित्रण के रूपों के अन्तर्गत लेखक को पात्रों के अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही रूपों को व्यक्त करना होता है। यहाँ प्रभाकर जी ने शरत् के दोनों ही रूपों का उद्घाटन किया है –

   1. **बहिरंग चित्रण:** बहिरंग चित्रण का संबंध पात्रों की बाहरी, आकृति, वेशभूषा, भाव-भंगिमा, क्रियाकलाप आदि बाह्य व्यापार से होता है। प्रभाकर जी ने इस पद्धति से चित्रण यथावश्यक कई स्थलों पर किया है। उन्होंने न केवल शरत् का बल्कि अन्य पात्रों उसके माता-पिता, दोस्त राजू पत्नी मोक्षदा आदि का भी बहिरंग चित्रण किया है। शरत् के बारे में लेखक कहता है –

      वह सुन्दर नहीं था। आँखों को छोड़कर उसमें कोई विशेषता नहीं थी। लेकिन आँखों की यह चमक ही सामने वाले को बाँध लेती है। वर्ण श्यामता की ओर था और देह थी खूब रोगी। लेकिन पैर हिरन की तरह दौड़ने में मजबूत थे। बिल्ली की तरह पेड़ों पर चढ़ जाता था। बुद्धि भी तीक्ष्ण थी लेकिन दिशाहीन कठोर अनुशासन के कारण उसका प्रयोग पथभ्रष्टता में ही अधिक होता है।"

      इसी प्रकार राजू के पिता का बहिरंग चित्रण करता हुआ लेखक लिखता है –

      "श्याम वर्ण, स्वस्थ चेहरा, आजानुबाहु, मुख पर चेचक के सामान्य निशान, शरीर में जितनी शक्ति मन में उतना ही साहस, ऐसे राजेन्द्रनाथ उर्फ राजू के पिता रामरतन मजूमदार डिस्ट्रिक्ट इन्जीनियर होकर भागलपुर आए थे लेकिन मतभेद हो जाने पर उन्हें त्यागपत्र देने में देर नहीं लगी। ठीक गांगुलियों के पास उनका घर था और आसपास की जमीन को लेकर दोनों परिवारों में काफी मनमुटाव भी था। उस समय वहाँ घना वन था। माता-पिता के अनुशासन से पीड़ित बालक इसी वन में शरण ग्रहण करते थे।"

शरत् की माता से संबंधित बहिरंग चित्रण का एक उदाहरण और देखिए –

"मोतीलाल की माँ साहसी सद्ग हिणी थीं तो उनकी पत्नी शान्त प्रकृति, निर्मल चरित्र और अति उदार व त्ति की महिला थी। वह सुन्दर नहीं थीं परन्तु वैदूर्य मणि की तरह अन्तर के रूप से रूपसी निश्चय ही थीं। उनके सहज पतिव्रत और प्रेम की छाया में स्वप्नदर्शी, यायावर पति की ग हस्थी चलने लगी। यहीं पर 15 सितम्बर 1876 ई. तदनुसार 31 भाद्र 1283 बंगाब्द, आश्विन कृष्णा द्वादशी, सम्वत् 1933, शकाब्द 1798 शुक्रवार की संध्या को एक पुत्र का जन्म हुआ।"

**अन्तरंग चित्रणः** अन्तरंग चित्रण के अन्तर्गत पात्रों के मन में उठने वाले भावों उनके संघर्ष, कारण एवं परिस्थितियों की आन्तरिक मनःस्थिति का बाहरी शब्दों से अंकन करना होता है। प्रभाकर जी ने शरत् की आन्तरिक मनोदशा का चित्रण करते हुए कहा –

"पिता की म त्यु का समाचार पाकर शरत् बहुत दुःखी हुआ। विशेषकर इसलिए कि अन्त समय में उनसे भेंट नहीं हो सकी। बेशक वह उनसे लड़कर आया था और यहाँ के इस बोहेमियन जीवन में कौन कह सकता है कि उसने उन्हें कितनी बार याद किया है। लेकिन अब जब वे नहीं रहे तो पिता के अगाध स्नेह की याद आने लगी। वह उसी क्षण भागलपुर के लिए रवाना हो गया।

माता-पिता की म त्यु के पश्चात् जब शरत् अपनी बहन के पास रहने लगा और एक घ णीय जीवन जीने लगा तो उस स्थिति में शरत् के मन ने क्या सोचा होगा। इसका वर्णन लेखक यूं करता है –

"इस घ णा और अपमान के कारण उसके दर्द की कोई सीमा नहीं थी। अक्सर सोचता था कि दूसरे के घर पर रहकर ऐसा अपमान पाने से तो सड़क, जंगल, रेगिस्तान कहीं भी रह जाना अच्छा है। उसकी बड़ी बहन कलकत्ते के पास गोविन्दपुर गाँव में रहती थीं। प्रयत्न किया कि उसके पास जाकर रहे।"

2. ***चरित्र-चित्रण की पद्धतियाँः*** यहाँ लेखक ने निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया है –

   1. मनोवैज्ञानिक पद्धति
   2. विश्लेषणात्मक पद्धति
   3. संवादात्मक पद्धति
   4. पत्र-पद्धति

      1. **मनोवैज्ञानिक पद्धति**: चरित्र-चित्रण को स्वाभाविक एवं यथार्थ रूप देने के लिए लेखक पात्रों का मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रण करता है। मनोवैज्ञानिकता में लेखक पात्र के मनोभावों अन्तर्द्वन्द्व और हृदयगत प्रकृति को सहज रूप में व्यक्त कर देता है। यहाँ लेखक ने शरत् की इसी स्थिति का अंकन किया है –

         "कुछ देर बाद डाक्टर के साथ जब वह वहाँ पहुँचे तो पाया, लकड़ी के एक तख्त के ऊपर चादर से मुँह ढके रोगिणी अचेतन अवस्था में छटपटा रही है। प्राण कंठ में आ गए हैं। एक बुढ़िया उसके सिरहाने बैठी पंखा झूल रही है। डाक्टर तुरंत समझ गए कि प्लेग है और बचने की कोई आशा नहीं है। दो क्षण उसे देखकर वह बाहर आ गए। शरत और कातर हो उठा। विकल-विह्वल वह शान्ति की प्राण-रक्षा के लिए बार-बार डाक्टर से अनुरोध करने लगा। लेकिन वे क्या कर सकते थे? सान्त्वना देकर तथा उपचार बताकर वहाँ से चले गए। शरत् फिर रोगिणी की शय्या के पास आ गया।"

      2. **विश्लेषणात्मक पद्धति**: इस पद्धति के अन्तर्गत लेखक जीवनी के पात्रों के गुणावगुण के संबंध में विश्लेषण करता है। इसमें लेखक अपनी ओर से भी कहने का अवसर रखता है। 'आवारा मसीहा' जीवनी ही वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी है। इसी कारण यहाँ विश्लेषण का अवसर खूब रहता है। लेखक इस अवसर का खूब फायदा उठाता है। उदाहरणत –

         बाग से फल चुरा लाने की कला में भी वह कम कुशल नहीं था। मालिक लोग संदेह करते,पेड़ पर लगे अमरूदों की गिनती भी वे रखते लेकिन वे डाल-डाल तो शरत् पात पात। उसकी तीक्ष्ण

बुद्धि के सामने मालिकों के सब उपाय व्यर्थ हो जाते थे। यदि कभी पकड़ा जाता तो वीरों की तरह दण्ड ग्रहण करता।

वह खिलाड़ी था। विद्रोही भी उसे कह सकते हैं पर बदमाश वह किसी भी द ष्टि से नहीं था। भले ही तत्कालीन मापदण्ड के अनुसार उसे वह उपाधि मिली हो। पिता की तरह उसमें भी प्रचुर मात्रा में सौन्दर्य बोध था। पढ़ने के कमरे को खूब सजा कर रखता। चौकी और उस पर एक सुन्दर सी तिपाई एक बड़ा डेस्क और उसमें पुस्तकें, कापियाँ, कलम-दवात इत्यादि। उसकी पुस्तकें झक-झक करती सी। कापियाँ वह स्वयं करीने से काटकर ऐसे तैयार करता कि देखते ही बनता था।

3. **संवादात्मक पद्धतिः** संवाद कथा का विकास तो करते ही हैं साथ ही नाटकीयता भी भरते हैं जिससे पाठक ऊबाऊपन महसूस नहीं करता और उसे चरित्र को समझने में भी आसानी रहती है। उदाहरणार्थ कुछ संवाद द ष्टव्य है —

'घबराकर उसने पुकारा, "शरत्, ओ शरत्।"

नींद से आँखें भरी थीं। लेटे लेटे शरत् ने कहा, "अन्दर आ जा, अभी सोया हूँ।"

नीला ने पूछा, "बीमार है?"

"हाँ।"

"रक्त की उल्टी हुई है?"

"दुत्त पागल।"

"तो फिर तेरे कपड़ों पर यह रक्त कैसा?"

चकित होकर शरत् ने देखा, सचमुच खून था। बोला, "बेटे नेवले की करतूत है, आज उसने फिर चूहे का शिकार किया है।"

लेकिन जब नीला ने अन्दर आकर इधर उधर देखा तो चकित हो उठा। बोला, "खूब बचा रे शरत्! तुम्हारे नेवले बेटे ने गोखरू साँप मारा है।"

बस फिर क्या था। घर भर में शोर मच गया। भुवनमोहिनी ने माँ मनसा का प्रसाद बाँटा। जब सब प्रसाद ले चुके तो शरत् ने कहा, "जिसकी बदौलत प्राण बचे उसको तो माँ तुमने पूछा ही नहीं।"

4. **पत्र-पद्धतिः** जीवनी को प्रामाणिक बनाने के लिए लेखक ने चरितनायक के पत्रों, लेखों, डायरियों, संस्मरणों आदि का सहारा लेना पड़ता है। यहाँ भी लेखक विष्णु प्रभाकर जी ने शरत् के पत्रों का सहारा लिया है। उदाहरणतः शरत् का रवीन्द्रनाथ को लिखा पत्र जिसे लेखक ने ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है —

'श्री चरणेषु,

आपका पत्र पाया। बहुत अच्छा, वही हो। यह पुस्तक मेरी लिखी हुई है, इसलिए दुःख तो मुझे है, पर कोई खास बात नहीं है। आपने जो कर्त्तव्य और उचित समझा, उसके विरुद्ध न तो मेरा कोई अभिमत है और न कोई अभियोग, पर आपकी चिट्ठी में जो दूसरी बातें आ गई हैं, उस अभिमत में मेरे मन में दो-एक प्रश्न हैं - और कुछ कर्त्तव्य भी हैं। यदि तुर्की-ब-तुर्की लगे तो वह भी आपकी ही शराफत के कारण समझिए। आपने लिखा है, 'अंग्रेजी राज्य के प्रति पाठकों का मन अप्रसन्न हो उठा है।' होने की बात थी, किन्तु यदि मैंने ऐसा किसी असत्य प्रचार के द्वारा करने की चेष्टा की होती तो लेखक के रूप में उससे मुझे लज्जा और अपराध दोनों ही महसूस होते। किन्तु जान-बूझकर मैंने ऐसा नहीं किया। यदि ऐसा करता तो वह राजनीतिज्ञों का धंधा होता। कृति न होती। नाना कारणों से बंगला में इस तरह की पुस्तक किसी ने नहीं लिखी। मैंने जब लिखी है और उसे छपवाया है तो सब परिणाम जानकर किया है।

"जब बहुत मामूली कारणों से भारत में सर्वत्र लोगों को बिना मुकदमे के अन्यायपूर्वक या न्याय का दिखावा करके कैद और निर्वासित किया जा रहा है तो मुझे छुट्टी मिलेगी यानि राजपुरुष मुझे क्षमा करेंगे यह दुराशा मेरे मन में नहीं थी, आज भी नहीं है। किन्तु बंगाल देश के लेखक के हिसाब से पुस्तक में यदि मिथ्या का आश्रय नहीं लिया है एवं उसके कारण ही यदि राजकोप भोग करना होगा तो करना ही होगा। चाहे वह मुँह लटकाकर किया जाए या रोकर किया जाए। किन्तु इससे क्या प्रतिवाद करने का प्रयोजन खत्म हो जाता है।"

3. ***चरित्र-चित्रण की द ष्टि से समीक्षात्मक विचारः*** जीवनी में चरित्र-चित्रण की द ष्टि से कुछ नई विशेषताओं को स्वीकार किया गया है। ये विशेषताएँ निम्न हैं —

   1. यथार्थता
   2. अनुकूलता एवं सजीवता
   3. मौलिकता
   4. संवेदनशीलता

   आगे हम इनका विस्तार से विवेचन करेंगे।

   1. **यथार्थता**ः चूंकि जीवनी एक महान् व्यक्ति की लिखी जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि उसमें कल्पना का पुट यथावश्यक जीवनी के चरितनायक को जीवन्त करने में सहायक हो बाधक न हो। उसमें स्वाभाविकता लाने के लिए हो। यहाँ प्रभाकरजी ने शरत् का चरित्र-चित्रण यथार्थ के धरातल पर ही किया है।

      "गुरु का आदेश था। शरत् को उठना पड़ा। बाहर आकर राजू ने बताया इस मोहल्ले के तारापद का बेटा अभी-अभी हैज़ा से मर गया है। बेचारा तीन साल का बच्चा अनेक प्रयत्न करने पर भी बचा नहीं सका। माँ बाप पागलों की तरह रो-पीट रहे हैं। उनका यह एक ही तो बच्चा था। इसलिए इस रोग के रोगी की लाश को अधिक देर तक नहीं रखना चाहिए। इसी दम श्मशान पहुँचा देना चाहिए। मोहल्ले के सभी लोग यहाँ यात्रा देखने के लिए आ गये हैं। अब तू ही मेरे साथ चल।"

      दोनों तारापद के घर पहुँचे। माँ बाप की समझाकर बच्चे की तलाश श्मशान की ओर ले चले। आधी रात बीत चुकी थी। कुछ दूर जाकर शरत् ने कहा, "साथ में बत्ती ले लेना अच्छा रहता।"

      राजू ने उत्तर दिया, "रहता तो, मगर इस समय मिले कहाँ? देगा कौन? मेरे पास एक दियासलाई है, उसी से काम चला लेंगे। श्मशान ठीक गंगा के तट पर था। जितना बड़ा, उतना ही डरावना। वहाँ जाते लोगों को डर लगता था। दूर-दूर तक बस्ती का निशान नहीं था। चारों ओर बालू का अखण्ड राज्य, कहीं-कहीं खजूर के एक दो पेड़ या कंटीली झाड़ियाँ, यही वहाँ कुछ दिखाई देता था।"

      श्मशान के बीचों-बीच एक झोंपड़ा था। आँधी पानी आने पर या किसी कारण विश्राम करने की आवश्यकता हो तो उसका उपयोग किया जा सकता था। लेकिन लोगों का विश्वास था इस झोंपड़े में भूत रहते थे। दिन में भी उसके भीतर जाने से डरते थे।

   2. **अनुकूलता एवं सजीवता**ः कथा-प्रसंगों के अनुकूल यदि पात्रों का चरित्र-चित्रण हो तो उसमें स्वाभाविकता, सजीवता, यथार्थता, रोचकता आ जाती है। 'आवारा मसीहा' में कोई भी पात्र काल्पनिक नहीं हैं फिर भी उनका चित्रण उनकी दशा, परिस्थिति के अनुकूल है। शरत्, राजू आवारा होते हुए भी मसीहा, देवता स्वरूप साबित होते हैं। इन पात्रों के अन्दर दया, करुणा, मानवीयता झलकती है।

   3. **मौलिकता**ः किसी भी रचना के पात्र तभी हमारे जीवन के आसपास रहने वाले लगेंगे जब उनका

चरित्र-चित्रण मौलिकता से यथार्थ के धरातल पर किया गया हो। इस द ष्टि से 'आवारा मसीहा' के सभी पात्र यथार्थ हैं। उनका चरित्र-चित्रण मौलिकता से किया गया है। उदाहरणत :—

"एक बार एक महिला ने उदासी पंथ के अखाड़े में किसी को सुमधुर स्वर में बंगला गीत गाते हुए सुना। स्वर कुछ पहचाना-सा लगा। इसलिए कौतूहलवश अन्दर की ओर झाँका। गाने वाले की उस ओर पीठ थी, पर उस पर नश्तर का दाग स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उसे विश्वास हो गया कि निश्चय ही यह राजू है।

"समाचार पाकर उसकी माँ तुरन्त हरिद्वार पहुँची परन्तु तब तक वह दल न जाने कहाँ चला गया था। बहुत खोज की गई, लेकिन सब व्यर्थ।

"राजू चला गया। उसकी वेदना का कोई पार नहीं था। उसके साथ बिताए गए अपने जीवन को याद करके उसके कलेजे में टीस उठने लगती। वह उसका कितना बड़ा मित्र था। उसी से उसने लिखना सीखा था कि भले ही इस संसार में दूसरे मूल्य किसी स्तर पर झूठे लगने लगें लेकिन सहज मानवीय करुणा कभी नहीं झुठलाई जा सकती। उस बार जगद्धात्री पूजा के ठीक अगले दिन मामा के घर यात्रा का आयोजन था। कलकत्ता से नामी दल आया था। टोले-मुहल्ले के सभी लोग देखने के लिए दल बनाकर आ पहुँचे। शरत् भी एक कोने में बैठा तल्लीन भाव से देख रहा था कि तभी न जाने कहाँ से राजू आ पहुँचा। पास आकर बोला, "चल उठ।"

बाहर आकर उसने बताया, "उस मोहल्ले के तारापद का बेटा अभी-अभी हैजे से मर गया है। बेचारा तीन साल का बच्चा अनेक प्रयत्न करने पर भी बच नहीं सका। माँ-बाप पागलों की तरह रो-पीट रहे हैं। लेकिन इस रोग के रोगी की लाश को अधिक देर तक नहीं रखना चाहिए। इसी दम श्मशान पहुँचा देना चाहिए। मुहल्ले के सभी लोग यहाँ यात्रा देखने के लिए आ गए हैं। अब तू ही मेरे साथ चल।"

4. **संवेदनशीलता**ः संवेदनशील ह्रदय वाला व्यक्ति ही दूसरे के सुखों, दुःखों को समझ सकता है। और जीवनी में संवेदनशील ह्रदय का चित्रण करना ही जीवनी को यथार्थत, के निकट लाता है। अगर ऐसा नहीं होता है तो उसमें नीरसता एवं शुष्कता आ जाती है। संवेदनशील ह्रदय व्यक्ति पर दुःख कातर होता है। उसी के ह्रदय में अच्छे-बुरे विचार, सुख-दुःख स्वार्थ, पक्षपात, अन्याय, निष्पक्षता आदि की संवेदनाएँ उठती हैं। 'आवारा मसीहा' का चरितनायक शरत् संवेदनशील ह्रदय युक्त व्यक्ति है। जब मास्टर मुशाई उसे अपने साथ ले जाता है तो रास्ते में एक औरत के रोने की आवाज सुनाई देती है। मास्टर मुशाई के पूछने पर कि किसकी आवाज है तो शरत् का संवेदनशील ह्रदय उत्तर देता है —

"मास्टर मुशाई, इस नारी का स्वामी अंधा था। लोगों के घरों में कामकाज करके यह उसको खिलाती थी। कल रात इसका वह अंधा स्वामी मर गया। वह बहुत दुःखी है। दुःखी लोग बड़े आदमियों की तरह दिखाने के लिए जोर-जोर से रोते नहीं। उनका रोना दुःख से विदीर्ण प्राणों का क्रंदन होता है। मास्टर मुशाई, यह सचमुच का रोना है।" शरत् द्वारा किया गया बाल्यकाल में ही यह रोने का ह्रदय-द्रावक वर्णन सुनकर मास्टर मुशाई ही चकित नहीं हुए बल्कि हर पाठक इसे पढ़ कर चकित होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रभाकर जी का चरित्र-चित्रण रचना कौशल जीवन चरित्र-चित्रण कला पर खरा उतरता है। वह स्वाभाविकता के धरातल पर निर्मित है। वास्तव में इस जीवनी को पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि हम शरत् के जन्म से लेकर उनकी म त्यु तक के साक्षी (चश्मदीद) गवाह है और हमें साक्षी बनाने का कार्य किया है जीवनीकार श्री विष्णु प्रभाकर ने।

*****

# अध्याय - 8
# चरित्र-चित्रण : शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

'आवारा मसीहा' जीवनी को पढ़ने से विश्वविख्यात साहित्याकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय का समग्र जीवन एवं साहित्य हमारे समक्ष प्रस्तुत हो जाता। इस जीवनी के लेखने में प्रभाकर जी ने शरत् के लेखों, पत्रों, डायरियों, संस्मरणों, कहानियों, उपन्यासों आदि-आदि सब कुछ का सहारा लिया है। लेखक ने शरत् के साहित्य की समीक्षा भी की है कि उसके कृतित्व की गरिमा से सामाजिक जीवन को कितना आन्दोलित, सक्रिय, उद्दीप्त तथा गतिशील बनाया है। मनुष्य में जीवित रहने की प्रबल इच्छा होती है। वह समस्त घात-प्रतिघातों के बावजूद जीवित रहना चाहता है। परम्परा और परिस्थिति की प ष्ठभूमि में वह सब कुछ सहन करता और उसकी अदम्य जीविका उसे सक्रिय रूप से जीवित रखती है। यह निरर्थक या यान्त्रिक नहीं है बल्कि सार्थक एवं लक्ष्य युक्त है। उसका लक्ष्य है अपनी चेतना में बहुत गहरे में बैठे वास्तविक भाव को खोजना और खोजकर उसकी असंख्य भाव-भंगिमाओं, क्रिया-कलापों, आचरणों-विचरणों और सामाजिक सम्बन्धों को व्यक्त करना है।

शरत् की 'आवारा मसीहा' जीवनी पढ़ने से उनकी इच्छाओं, जिजीविषाओं से पता चलता है कि वे एक ऐसे व्यक्ति थे जो प्रकृति से जुड़े हुए थे और प्रकृति ने उन्हें साहित्य स जन के लिए बनाया था। जन्म से ही उनके भीतर असीम करुणा, दया और सांसारिक माया का एक विशाल साम्राज्य बसा हुआ था। जिससे प्रेरित होकर वे साहित्य स जन किया करते थे। तभी तो लेखक लिखता है —

"न जाने कितनी बार वह इस पवित्र मौन एकान्त में आकर बैठा होगा। दूर से आती बच्चों की शरारतों की आवाजें, गंगा की ध्वनि में मिलकर एक रहस्यमय वातावरण का निर्माण करती होगी। प्रकृति का सौंदर्य जैसे उसके थके तन-मन को सहलाता होगा, तब उसने निश्चय ही प्रतिज्ञा की होगी, "मैं सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन भर सौंदर्य की उपासना करूँगा, कि मैं जीवन भर अन्याय के विरुद्ध लडूँगा, कि मैं कभी छोटा काम नहीं करूँगा।"

बंग समाज के बंधन उन्हें जकड़ना चाहते थे किन्तु वे बन्धनों को कभी मानते न थे। उनकी स्वच्छन्द व त्ति थी। ऐसा माना जाता है कि तत्युगीन समाज की रूढ़ियाँ उनको विवश करती रहती थीं कि वे उच्छ ंखल और चरित्रहीन बने रहें। उनका व्यक्तित्व एक निर्धारित, निश्चित परिपाटी पर चलने वाला नहीं था वह अनेक दिशाओं में चलता था। वे आवारा, उच्छ ंखल, होते हुए भी देवता, मसीहा बने। इसी बात को ध्यान में रखकर उनके चरित्र पर कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे।

### 1. स्वच्छन्द व्यक्तित्वः

शरत् बचपन से ही नटखट एवं स्वच्छन्द स्वभाव का था। वह स्कूल में शरारतें करता रहता था। वह जो कुछ शैतानियाँ करता है उनसे उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति परिपक्व होती रहती है। वह परिवार वालों से भी तरह-तरह की झूठ बोल दिया करता। कभी-कभी मामा को कहता कि वह सचमुच में किसी लड़की से प्रेम करता है। शरत् खेलकूद में ध्यान ज्यादा लगाते थे जबकि उसके नाना नहीं चाहते थे। कि शरत् खेलकूद में अपना समय व्यतीत करे। उनका कहना था — "जो बालक दिनभर नटखटी करने में अपना समय बिताता है वह निकम्मा होता है। इसलिए बच्चों को अपना जीवन बनाने के लिए अच्छे-अच्छे कार्य करने चाहिए।" कभी-कभी वह शरारती बालकों के साथ पकड़ा जाता तो पास के जंगल में छिप जाता था। तब उसे ढूँढना मुश्किल हो जाता था। "उसके छिपने के स्थान श्मशान भूमि अथवा खाली खण्डहर थे। वह बचपन से ही साहसी था। उसके अन्दर डर नाम की कोई चीज न थी। वह खिलाड़ी भी था। वह विद्रोही था परन्तु बदमाश नहीं था किन्तु कुछ लोग उसे बदमाश भी कहते थे। "स्वभाव से ही वह अपरिग्रही था। दिनभर में वह जितनी गोलियाँ और लट्टूज्जीतता, संध्या को वह उन सबको छोटे बच्चों में बाँट देता। देने में मानों उसे आनन्द आता था, लेकिन यह देने के अभिमान का आनन्द नहीं था, यह था भार मुक्ति का आनन्द।" उसकी स्वच्छन्दता के कारण ही लोग

उसे आवारा, चरित्रहीन कहते थे। कुछ लोगों ने तो लेखक विष्णु प्रभाकर को यहाँ तक कहा कि – "क्यों इतना परेशान होते हो, दो चार गुण्डों का जीवन देख लो। शरत्चन्द्र की जीवनी तैयार हो जाएगी।" उनकी आवारगी, स्वच्छन्दता के बारे में लेखक भूमिका में लिखता है – "रंगून में एक सज्जन ने मुझसे कहा था, "वे एक स्त्री के साथ रहते थे। उनके पास बहुत कम लोग जाते थे। मैं उनका पड़ोसी था, लेकिन उनके कमरे में कभी न गया। वे अफीम खाते थे और शराब पीते थे। वे एक निकृष्ट प्रकार का जीवन बिता रहे थे। मैं उनसे हमेशा बचता था।" लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि – "कृतिकार का जीवन उसका अपना होता है। उस पर आक्षेप करने से क्या लाभ? उसका मूल तो उसकी कृति से आँकना चाहिए। परन्तु मनुष्य तो स्वभाव से छिद्रान्वेषी है। ढूँढने पर दोष न भी मिले तो वह कल्पना कर सकता है। उनका आवारापन, उनकी स्वच्छन्दता उन्हीं के बचपन की देन थी क्योंकि उनके पिता यायावरी स्वभाव के थे और इसी कारण शरत् की पढ़ाई एक जगह न हो सकी। उन्हें कभी देवानन्दपुर में तो कभी अपने नाना के घर जाना पड़ता था। उनसे संबंधित इन सब बातों के बावजूद भी हमें यह कदापि न भूलना चाहिए कि उनकी रचनाओं में उनकी मसीहापन की झलक सर्वत्र विद्यमान है। भले ही आवारा, घुमक्कड़ रहे हों लेकिन जहाँ-जहाँ उन्होंने दुःख देखा वहीं उन दुःखों एवं कष्टों को दूर करने के लिए यथासम्भव उपाय किए।

2. **सहृदयताः**

शरत् एक सहृदय व्यक्ति थे। दुखियों को देखकर उनका मन दुःखी होता था। एक बार शरत् अपने अध्यापक के साथ-साथ गंगाघाट की ओर जा रहा था। रास्ते में एक टूटे हुए घर के भीतर से एक स्त्री के धीरे-धीरे रोने की आवाज सुनाई दी। यह करुण-स्वर सुनकर अध्यापक रुक गये और पूछने लगे कि कौन रो रहा है। शरत् ने उत्तर दिया – "मास्टर मुशाई, इस नारी का स्वामी अन्धा थ। लोगों के घरों में कामकाज करके यह उसको खिलाती थी। कल रात वह अन्धा स्वामी मर गया। वह बहुत दुःखी है। दुःखी लोग बड़े आदमियों की तरह दिखाने के लिए जोर-जोर से नहीं रोते। उनका रोना दुःख से विदीर्ण प्राणों का क्रन्दन होता है। मास्टर मुशाई यह सचमुच का रोना है।" रोने का यह सूक्ष्म विश्लेषण सुनकर मास्टर मुशाई हतप्रभ रह गए और लौटकर अपने एक मित्र से कहने लगे कि – "जो रुदन के विभिन्न रूपों को पहचानता है, वह साधारण बालक नहीं है। बड़ा होकर निश्चय ही मनस्तत्व के व्यापार में प्रसिद्ध होगा।" यह सहृदयता ही उसे मनस्तत्व के व्यापार में सिद्ध बना पाई जो उन्हें उच्च कोटि का साहित्यकार बनाने में सक्षम सिद्ध हुई।

3. **विद्रोहीः**

तत्कालीन समाज सड़ी गली मान्यताओं का पुंज था शरत् बाबू इन परम्पराओं, मान्यताओं को अंधग्रस्तता से मानने के सख्त विरोधी थे। वे उनको सहजता से स्वीकार न करते थे। उनके हृदय में जो विरोध उठता था उसे वे प्रकट करते हिचकचाते न थे। तम्बाकू खाते थे, अफीम खाते थे। गंदी गलियों में रहते थे, वैश्याओं की गलियों में रहते थे। उनका मानना था कि वैश्याएँ भी समाज का अंग हैं। लोगों ने झूठी मान्यताओं के कारण उनको समाज से बहिष्कृत कर रखा है। वे तन से नहीं मन से पवित्र हैं। वे उनके अन्दर मानवीयता ढूँढते थे वे कहते थे वे किसी कारण पथभ्रष्ट हो गयी हैं, परन्तु वे नारियाँ हैं, उनमें माँ, बहन, पत्नी का रूप है। उनका बाहरी रूप उनका असली परिचय नहीं है। उनका कहना था – "हजारों ऐसी सती नारियाँ समाज में मिलेंगी जो ऊपर से तो भली और सुपथगामी दिखाई देती हैं परन्तु भीतर से वे झूठी, कुकर्मी, चोर, धोखेबाज, ईर्ष्यालु और जाने क्या-क्या होती हैं। इसके विपरीत जिनको हम दुराचारिणी कहते हैं, उनके भीतर दया, प्रेम, श्रद्धा आदि गुणों की खान रहती है।" उनका मानना था कि परमात्मा ने मनुष्य को मनुष्य बने रहने के लिए बनाया है, दानव नहीं। इसी कारण मनुष्य को मनुष्य से घ णा कभी नहीं करनी चाहिए। घ णा पाप को जन्म देती है और पाप से मनुष्य अपराधी हो जाता है। उनका कहना था शास्त्रों में जो कुछ लिखा है वह समयानुसार ठीक था। लेकिन शास्त्रों में संशोधन करने का मनुष्य का अधिकार है। शास्त्रों में मनुष्य के अधिकारों का वर्णन तो मिलता है लेकिन कर्त्तव्य के बारे में कुछ नहीं मिलता। पुरुष तो कुछ भी करे, उस पर कोई उँगली नहीं उठाता, परन्तु स्त्री का भूल से भी पाँव फिसल जाता है तो लोग उसे कुलटा, कलंकिनी, दुराचारिणी, पथभ्रष्टा और न जाने क्या-क्या कहने लगते हैं। ऐसा क्यों? आखिर वे भी समाज का महत्वपूर्ण अंग हैं उन्हें भी पुरुष के बराबर सम्मान मिलना चाहिए। वह भी प्राणवान् प्राणी है। सती है। ग हस्थी को सजाने एवं पुरुष को जन्म देने वाली है। वह मनुष्य की प्रेरणाशक्ति है, देवी है। इसलिए हमें स्त्री का सम्मान करना चाहिए। अतः समाज के जड़ द ष्टिकोण के प्रति शरत् का यह विद्रोह उचित ही है।

4. **मानवीयताः**

शरत् की मानवतावदी सोच थी। वे दुःखी को देखकर दुःखी होते थे। उनकी सहायतार्थ दौड़ते थे। इसी सोच के कारण रंगून में जब प्लेग की बीमारी फैली तो उन्होंने बिना अपनी जान की चिन्ता किए बीमारों की सहायता की थी, तथा म तकों के अंतिम संस्कार करने में भी लगे रहे थे। उनकी यह मानवीयता ही थी, तभी तो लेखक कहता है –

"प्लेग का यह आक्रमण इतना भयानक था कि हर व्यक्ति किसी दूसरे की चिन्ता किये बिना भाग खड़ा हुआ। रोगी अकेले तड़प तड़पकर समाप्त होने लगे। शरत् असहाय लोगों की सहायता करने में सदा आगे रहता आया था। यहाँ भी आगे रहा। जहाँ 'प्लेग' शब्द सुनकर बड़े से बड़ा साहसी भी अपने प्रिय से प्रियजन को छोड़ देता था, वहाँ शरत् एक अजनबी के पास भी पहुँच जाता था। बर्फ और औषधि आदि खरीद देने तक में उसे संकोच नहीं होता था। राजू की पाठशाला में मानवीय करुणा का जो पाठ उसने पढ़ा था, उसे वह कभी भूल नहीं सका।

शरत् कभी भी सभ्य, शिक्षित समाज में नहीं रहा, वह जहाँ भी गया निम्न वर्ग के लोगों के बीच रहा। इसी कारण वह देश में जात बहिष्कृत था। उसके रिश्तेदार उसे अपना कहने में भी हिचकते थे। भद्र लोग चरित्रहीन मानते थे। उससे दूर रहने की कोशिश करते थे।

समाज का यह द ष्टिकोण उनके मसीहत्व एवं मानवीयता के गुण को कम नहीं कर पाया। नारी के प्रति विशेषकर पतिता के प्रति उनका द ष्टिकोण अत्यन्त मानवीय था वह नारी के शरीर की बजाए उसके भीतर की पवित्र भावना को देखता एवं खोजता था। उनका मत था कि ये वेश्या मजबूरन बनाई जाती हैं। शरीर इनका व्यापार है मन इनका करुणा से भरा पवित्र है। उन्होंने स्वयं कहा – "मैंने अनीति का प्रचार करने के लिए कलम नहीं पकड़ी। मैंने तो मनुष्य के अन्तर में छिपी हुई मनुष्यता की उस महिमा को जिसे सब नहीं देख पाते, नाना रूपों में अंकित करने का प्रयास किया है।" इसी कारण वे पतितों के प्रति प्राचीन धारणा के संबंध में कहते हैं – कोई धारणा या वस्तु बहुत प्राचीनकाल से चली आई है, इसी कारण वह सही नहीं है। कुछ भी हमेशा के लिए सही नहीं हो सकता। सतीत्व परिपूर्ण मनुष्यता का एक अंग है। वह मनुष्यता पर हावी नहीं हो सकता।" सचमुच वे नारी के उद्धारकर्त्ता थे, देवता थे, मसीहा थे। उन्होंने नारी को सही पहचान दिलाने के लिए उनसे अधिकाधिक संपर्क किया था। इसी कारण लेखक कहता है –

"समाज के सभी वर्गों की नारियों से उनके सदा सहज और आत्मीय सम्बन्ध रहे। उनकी कहानियाँ सुनने को वे नारियाँ जैसे लालायित रहती थीं। उनके कहने की भावभंगिमा पर वे मुग्ध थीं। उनके विचारों पर वे प्राण निछावर करती थीं। ऐसा निःस्वार्थ, ऐसा उदार, ऐसा मुक्त मनुष्य अब से पहले उन्होंने कहाँ देखा था। उनकी इसी अगाध भक्ति के कारण तो वे उन्हें जान सके और उनके प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर सके, उन्हें मनुष्य की मर्यादा दिला सके।"

इससे स्पष्ट है कि नारी भी उनका आदर करती थीं उनके सामने अपने दुःखों की कहानी सुनाती थीं। उन्हें अपना मसीहा जानकर ही बंगाल की नारियों ने उनकी 57 वीं जन्म जयन्ती पर उनका अभिनन्दन समारोह किया था और उनकी प्रशंसा में एक पत्र पढ़ा था जिसमें स्पष्ट कहा कि –

पराधीन देश के अधःपतित समाज की असहाया अन्तःपुरचारिणियों के हृदय की मूक वेदना को तुमने भाषा में मूर्त कर दिया है। उनके दुर्गति पूर्ण जीवन के सुख दुःखों की सभी अनुभूतियों को निविड़ सहानुभूति में ढालकर तुमने साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष करा दिया है। तुम्हारी अनाविष्ट द ष्टि, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-सामर्थ्य, सुगंभीर उपलब्धि, शक्ति तथा विचित्र मानव चरित्र की अतलस्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी चित्र की निगढ़ प्रकृति का गुप्ततम पता पा लिया है। हे नारी चरित्र के परम रहस्य ज्ञाता, हम लोग तुम्हारी वन्दना करती हैं।"

यही कारण है कि वे आवारा होते हुए भी मसीहा कहलाए।

5. **श्रेष्ठ साहित्यकारः**

शरत्चन्द्र विश्वविख्यात बंगाली उपन्यासकार थे। उनके बारे में कविन्द्र रवीन्द्र को भी कहना पड़ा था कि उनके जोड़ का बंगाल में दूसरा कोई नहीं है। वे जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। उनके भाग्य में महान साहित्यकार बनना लिखा था। वे बचपन से ही कहानी, कथा आदि सुनने में रुचि लेते थे। वे जमींदार के पुत्र के साथ थियेटर देखने चले जाते

थे। रास्ते में वे पूछते कि क्या तुम इस पर कहानी लिख सकते हो। कुछ ही क्षण बाद वे इसी से मिलती-जुलती कहानी गढ़कर सुनाने लग जाते थे। फिर कुछ दिनों बाद एक कहानी लिखकर भी दिखाते थे। उन्होंने कहानी लिखने की प्रेरणा 'हरिदास की गुप्त बातें और 'भवानी पाठ' जैसे पुस्तकों से मिली। ये दोनों ही पुस्तकें उन्होंने अपने पिता की आलमारी से चोरी छिपे निकालकर पढ़ी थी। क्योंकि उनके पिता कहते थे कि पाठ्य पुस्तक को छोड़कर अन्य पुस्तकें पढ़ना अच्छे लड़कों का काम नहीं है। इसी कारण उन्होंने इन पुस्तकों को जरूर पढ़ा क्योंकि वे देखना चाहते थे कि आखिर इन पुस्तकों में क्या है।

शरत् जहाँ भी जाते, रहते जल्द ही एक मित्र मण्डली बना लेते थे। सभी एकत्रित होते साहित्यिक चर्चा करते। वे अपने मामा सुरेन्द्रनाथ, विभूति भूषण और विधवा बहन के साथ गुप्त रूप से गोष्ठियाँ भी करते थे। उन्होंने युवावस्था में ही काशीनाथ, शिशु, चन्द्रनाथ, हरिचरण बालस्म ति, शुभदा, देवदास, अनुपमा का प्रेम, कोरेल ग्राम आदि कृतियाँ लिखकर प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। उन्हें राजनीति से भी ज्यादा अपने साहित्य से प्रेम था। जब उन्हें चुनाव लड़ने के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा था
''देश के लिए मैंने क्या किया है? जेल नहीं गया, वकालत-वैरिस्ट्री नहीं पढ़ी। किसी प्रकार का देश-निकाला या त्याग स्वीकार नहीं किया। आप मुझको प्यार करते हैं, यह मेरा और आपका व्यक्तिगत मामला है। आप स्वयम् कवि और साहित्यक हैं। साहित्यिक के रुप में ही आप मुझे प्यार करते हैं। मित्रता के नाते मैं आपका प्रियजन हो सकता हूँ, किन्तु देश की जनता कैसे मुझे प्रिय माने। मैं अपनी साधारण साहित्य-साधना को राजनीति का मूलधन बनाना नहीं चाहता।''

इस तरह की बात श्रेष्ठ साहित्यकार ही कर सकता है। उनकी साहित्य साधना के देखते हुए ही उनकी म त्यु पर प्रफुतलचन्द्रमा ने श्रद्धा सुमन चढ़ाते हुए अपनी डायरी में लिखा था —

''धन्य शरत! तुम इतने दिन कहाँ थे? कहां से आ गए? सचमुच तुम्हारे समान एक लेखक की बड़ी आवश्यकता थी। सामाजिक व्याधि और दुर्नीति का चित्रण करने के लिए जिस प्रकार तुमने कलम पकड़ी उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। तुमने कभी भी धर्ममत के ऊपर ओछा व्यंग्य-विद्रूप नहीं किया।''

उनकी श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए लेखक उनकी तुलना रवीन्द्रनाथ से करता है जो उचित भी है—''शरत की द ष्टि वर्तमान काल पर थी। रवीन्द्रनाथ शाश्वत मानव के विराट चितेरे थे। शरत मात्र अन्याय का विरोध करते थे और वे किसी भी तरह मनुष्य को छोटा करके नहीं मानते थे। पतिताओं में निहित नारीत्व को उन्होंने प्रकट किया है। यही उनका जीवन दर्शन था, परन्तु उनके नर-नारी इसी देश के अधिक थे। इसके विपरीत कविगुरु चिरकाल के सत को आदर्श के रूप में बार-बार देश और समाज के सामने स्थापित करते रहते थे। उनकी साहित्यिक साधना के कारण ही उन्हें नोबेल पुरस्कार मिलने की बात फैल गयी थी, पर वे पुरस्कार के लिए साहित्य न लिखते थे, वे तो समाज के लिए लिखते थे।

## 6. सच्चे राष्ट्रभक्तः

शरत् बाबू का राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम था। वे देश सेवा के सामने शेष सभी कार्य छोड़ने को तैयार रहते थे। वे चाहते थे कि भारत जल्दी से जल्दी स्वाधीन हो जाए। वे क्रान्तिकारियों का साथ देते थे। उन्होंने क्रान्तिकारियों के लिए ही 'पथेर दाबी' उपन्यास लिया था जिसकी चारहजार प्रतियाँ छपते ही बिक गयी। सरकार को जब्त करने के लिए दो प्रतियाँ भी बड़ी मुश्किल से मिल पायी थी। यह उपन्यास क्रान्तिकारियों के लिए गीता का काम कर रहा था। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन छेड़ने पर शरत् ने समस्त देशवासियों से अपील की थी कि सभी इसमें बढ़ चढ़कर सहयोग करें क्योंकि वह देश की मुक्ति का आन्दोलन है। उनका मानना था कि जो व्यक्ति दासता में रहकर सांस लेने में गुरेज नहीं करता वह सच्चा साहित्यकार नहीं हैं। सच्चा साहित्यकार दासता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए हर प्रकार का प्रयास कर सकता है। जब उनके साथी कहते कि आप साहित्यकार हैं आपका काम है साहित्य सेवा राजनीति नहीं तो वे उत्तर देते—''यह आपकी भूल है। राजनीति में योगदान देना देशवासियों का कर्त्तव्य है विशेषकर हमारे देश में यह राजनीति आन्दोलन देश की मुक्ति का आन्दोलन है।

इस आन्दोलन में साहित्यिकों को सब से आगे बढ़कर योगदान देना चाहिए। लोकमत को जाग त करने का गुरुभार संसार के सभी देशों में साहित्यिकों का ही रहा है। युग-युग में उन्होंने ही तो मनुष्य के मन में मुक्ति की आकांक्षा जगाई है।

यदि आपकी बात मन लें तो वकील, बैरिस्टर, विद्यार्थी सभी यहाँ तर्क उपस्थित करेंगे, तब राजनीति को कौन सम्भालेगा।''

शरत बाबू चाहते थे कि देश की मुक्ति के आन्दोलन में लोगों को बढ़ चढ़कर भाग लेना चाहिए यहाँ तक कि अगर हिंसा का भी सहारा लेना पड़े तो हमें पीछे नहीं हटना चाहिए। उनसे जब पूछा जाता कि वे अहिंसा और हिंसा में किसका समर्थन करते हैं तो कहते थे—''मैं हिंसा का समर्थन नहीं करता यह ठीक है। फिर भी न जाने क्यों, क्रान्तिकारियों के प्रति मेरे अंदर यह एक कमजोरी रह गयी है। इसलिए खतरा उठाकर भी इनसे संपर्क रखने और कभी कभी यथासम्भव आर्थिक मदद करने में मैं तनिक भी आगा-पीछा नहीं करता। गाँधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन को किन्ही कारणों से स्थगित कर दिया। इस पर शरत् खिन्न हो गए। राजनीति मे सक्रिय न रह सके लेकिन गाँधीजी के प्रति उनकी श्रद्धा ज्यों की त्यों रही। उनका कहना है कि मैं गाँधीजी को व्यक्तिगत रूप से इतना बड़ा मानता हूँ जिसका तुलना आसानी से खोजे नहीं मिल सकती। मेरे मन में उनके पगति लोगों से कहीं अधिक श्रद्धा है। उनके प्रति मेरे मन में यदि वह श्रद्धा नहीं होती तो आज मैं किसी के दबाव या आग्रह से हावड़ा जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष का पद कभी स्वीकार नहीं करता। पर उनके सिद्धान्तों से अक्षरशः सहमत होने की कसम मैंने नहीं खाई। मैं मनुष्य हूँ मिट्टी का जड़ पुतला नहीं हूँ। इसलिए किसी भी साधारण या महत्वपूर्ण विषय पर स्वतंत्र  रूप से चिन्तन करने की सामर्थ्य मुझमें है।

शरत बाबू तो चाहते थे कि देश के मुक्ति आन्दोलन में नारी भी सहयोग करें इसी कारण उन्होंने नारी सभा का गठन भी किया था। गाँधी जी के आह्वान पर जब नारी पुरुष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर क्रान्ति की भूमि पर उतरी थी तो कुछ लोगों को कुछ शंकाए हो रही थी तभी उन्होंने शंकाओं के समाधान हेतु कहा—

मशाल के दीप्त प्रकाश अंधकार नष्ट होता है, यही बात सब लोग जानते है लेकिन उससे उठने वाली किंचित बदबू की ओर क्या किसी का घ्यान जाता है? जल प्लावन से धरती उर्वर हो उठती है? यदि उस जल के साथ कुछ मैला भी आ जाए तो परेशान होने की क्या बात है?''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शरत् का व्यक्तित्व एवं कृतित्व उनके चरित्र को महान् बनाता है, मसीहा की पदवी दिलाता है। उनके चरित में स्वच्छन्दता, सहृदयता, निस्वार्थता आदि गुण और जड़ मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रति विद्रोही तेवर और स्वर उन्हें आवारगी से उठाकर मसीहा बना देता है। उनका यह मसीहापन उन्हें श्रेष्ठ साहित्यकार घोषित करने में सक्षम है।

*****

# अध्याय - 9
# चरित्र - चित्रण : राजू

जीवनी में लेखक का उद्देश्य मुख्य रूप से चरितनायक के चरित्र को उभारना होता है लेकिन इस उभारने की प्रक्रिया में अन्य पात्रों का भी चरित्र-चित्रण करना पड़ता है। जीवनी में चाहे चरित नायक हो, चाहे सहायक पात्र हो सभी के सभी काल्पनिक होकर वास्तिवक होते हैं। जो अन्य सहायक पात्र होते हैं उनका चरितनायक से किसी न किसी प्रकार से संबंध होता है। इनके चरित्र-चित्रण से चरितनायक के अधिकारों, कर्त्तव्यों आदि के साथ-साथ उनका जीवन के प्रति द ष्टिकोण का पता चलता है। यही नहीं चरितनायक के बारे में नई-नई जानकारी होती है।

'आवारा मसीहा में राजू चरितनायक शरत का सहायक पात्र है। वह शरत का मित्र है। उसने शरत का हर कदम पर साथ दिया। वह निडर, साहसी और शरत का प्रेरणास्त्रोत पात्र है। वह शरत की गलत शरारतों के खिलाफ भी था। उन्हें नई-नई शरारतें करने से रोकता भी था। वह शरत के चरित्र को एक नई दिशा प्रदान करने वाला पात्र है। वास्तव में राजू की प्रेरणाशक्ति से ही शरत एक अल्हड़ बालक से प्रसिद्ध साहित्यकार एवं समाज सेवक बन गए। कुछ लोगों का तो यहाँ तक मानना हे कि अगर राजू शरत के जीवन में न आते तो शरत शायद इतने बड़े साहित्यकार न होते।

राजू के पिता का नाम बाबू रामरतन मजूमदार था। वे डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर थे। भागलपुर में आकर रामरतन बाबू शरत के पड़ोस में रहने लगे। कुछ घरेलु सामाजिक कारणों से शरत और राजू के परिवार वालों में अनबन हो गई, पर घर वालों की अनबन का इन दोनों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। अतः दोनों में गहरी मित्रता थी। असल में दोनों स्वभाव से एक थे। वे कभी पतंग उड़ाते, कभी गुल्ली-डंडा खेलते। राजू और शरत दोनों में पतंगबाजी के पेंच लड़ते थे। वास्तव में दोनों की मित्रता ही पतंगबाजी के कारण ही हुई थी।

राजू निडर ओर अच्छे सुझाव देने वाला बालक था। लेकिन जब वह शरत को सुझाव देता तो तब वह शरत के गम्भीर, शान्त और धैर्य पूर्ण उत्तर को सुनकर हैरान हो जाता था। एक उदाहरण द ष्टव्य है -

''उसका अधिकतर समय राजू के साथ बीतने लगा। वह इन दिनों पढ़ना-लिखना छोड़ लकड़ी के कारखाने में काम सीखता था। यदि वह मोती जैसे अक्षर लिख सकता था तो लकड़ी की सुन्दर वस्तुएँ भी बना सकता था। अद्भुत चरित्र था उसका। एक साथ वीरता और बाँसुरी की विद्या में निष्णात। कण्ठ स्वर कैसा मधुर था। हारमोनियम, क्लेयरनेट सभी खूब अच्छी तरह से बजाता था। अभिनय करने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। वह प्रतिभाशालियों के वंश में पैदा हुआ था। इसीलिए प्रतिभा ने उसका मुक्त होकर वरण किया था।

''उसकी एक नाव थी और उसी में वह घूमता रहता था। कभी-कभी घोर अँधेरी रात और पूरमपूर भरी होती गंगा, वह शरत को पकड़ता और कहता, ''चलो नाव में घूम आवें'' शरत को डर लगता, पर राजू तो उसका गुरु है, मना करे भी तो कैसे करे।''

एक बार की बात है, गंगा के घाट पर कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। वहाँ कुछ आवारा किस्म के लड़के आकर उन स्त्रियों के साथ बदमाशी करने की कोशिश करने लगे। राजू और शरत अपनी नाव को ठीक करते-करते यह सब देख रहे थे। राजू से यह नहीं देखा गया। उसने एक व्यक्ति को पकड़ लिया शेष सभी भाग गए। राजू ने उससे पहले तो गंगा में खूब गोते लगवाए और फिर उससे प्रतिज्ञा करवाई कि वह भविष्य में स्त्रियों के प्रति कभी गलत व्यवहार नहीं करेगा। इसी प्रकार एक अंग्रेज ने मोक्षदा संस्कृत पाठशाला के एक अध्यापक की कोड़ों से पिटाई की थी। उसकी पीठ पर खून छलक आया था। राजू से यह सब न देखा गया और अध्यापक से कहने लगा-आप धैर्य धारण करके अपने घर जाएँ। कल जो कुछ होगा उसे आप स्वयम् सुन लेंगे।''

उसी शाम राजू, शरत् और कुछ अन्य लड़के मिलकर एक रस्सी लेकर उस रास्ते पर पहुँच गए जहाँ से वह अंग्रेज हर-रोज शाम को घोड़े पर क्लब जाता था। उन्होंने रस्सी को दो पेड़ों के तने से बाँध दी और स्वयँ पेड़ पर चढ़ गए। अंग्रेज का घोड़ा आया और उसमें उलझकर गिर पड़ा। पड़ते ही ऊपर से सभी कूदे और अंग्रेज की खून पिटाई की और माफी मंगवाई। कारणतः अंग्रेज भागलपुर छोड़कर भाग गया।

अतः राजू साहसी के साथ-साथ बुद्धिमान भी था, निडर भी था। अन्याय को कभी भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उदाहरणतः —

''पास आकर राजू ने शरत से कहा, ''उस मुहल्ले के तारापद का बेटा अभी-अभी हैजे से मर गया है। बेचारा तीन साल का बच्चा अनेक प्रयत्न करने पर भी बच नहीं सका माँ-बाप पागलों की तरह रो-पीट रहे हैं। लेकिन इस रोग के रोगी की लाश को अधिक देर तक नहीं रखना चाहिए। इसी दम श्मशान पहुँचा देना चाहिए। मोहल्ले के सभी लोग यहाँ यात्रा देखने के लिए आ गए हैं। अब तू ही मेरे साथ चल!''

''दोनों तारापद के घर पहुँचे। माँ-बाप को समझा कर बच्चे की लाश श्मशान की ओर ले चले। आधी रात बीत चुकी थी। श्मशान ठीक गंगा के तट पर था। जितना बड़ा उतना ही डरावना। दूर-दूर तक बस्ती का निशान नहीं था। चारों ओर बालू का अखण्ड राज्य, कहीं-कहीं खजूर के एक-दो पेड़ या कंटीली झाड़ियाँ, यही कुछ वहाँ दिखाई देता था।

''श्मशान के बीचों-बीच एक झोंपड़ा था। आँधी-पानी आने पर या किसी कारण विश्राम करने की आवश्यकता हो तो उसका उपयोग किया जा सकता था। लेकिन लोगों का विश्वास था कि इस झोंपड़े में भूत रहते हैं। दिन में भी उसके भीतर जाने से डरते थे।

''लेकिन राजू इन बातों की चिन्ता नहीं करता था। वह सीधा उसी झोंपड़े में जा घुसा। शरत भी पीछे-पीछे चला आया, लेकिन डर के मारे वह काँप रहा था। राजू ने लाश को फर्श पर रख दिया। बोला, ''बहुत देर से बीड़ी नहीं पी है। पहले एक बीड़ी पी लूँ।''

तभी सहसा अंधेरे में एक आवाज आई, ''एक मुझे भी दोगे?''

शरत के रोंगटे खड़े हो गए। शरीर से पसीना बहने लगा। राजू ने पूछा, कौन है ?'' और साथ ही दियासलाई जलाकर देखा, पास ही एक मैले से बिस्तर पर एक आदमी गुदड़ी से ढका हुआ लेटा है।

''...अंत में राजू ने सब से पहले लड़के को गाड़ा, फिर स्नान किया। उसके बाद शरत से कहा-''मैं इस बूढ़े को कंधे पर उठा लेता हूँ। तू इसकी गुदड़ी बगल में दबा ले।''

राजू के चरित्र को उद्‌घाटित करने के लिए लेखक ने एक नहीं कई कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। एक और कहानी सुनिए-एक बार माघ के महीने में बंगला स्कूल के पंडित जी की पत्नी का देहान्त हो गया। पंडित जी रोगग्रस्त थे। समस्या थी कि दाहसंस्कार कैसे हो। स्कूल के हैडमास्टर ने राजू और शरत के साथ मिलकर दाहसंस्कार की व्यवस्था की। जब राजू, शरत आदि शव यात्रा पर निकले तो घोर वर्षा आरम्भ हुई। आकाश से ओले पड़ने लगे। अब शव के पास बैठना संभव न था। अतः राजू ने कहा कि आप सभी किसी सुरक्षित स्थान पर चले जायें मैं यहाँ शव की रक्षा करता हूँ। बहुत देर तक वर्षा होती रही। वर्षा बन्द होने पर वे लोग वापिस लौटें और देखा कि मुर्दा रखा है पर राजू नहीं है। फिर देखा कि शव हिल रहा है। सभी डर गए पर देखा कि लाश के साथ राजू लेटा हुआ है और ओलों से अपनी रक्षा कर रहा है। इस प्रकार राजू की निर्भीकता और साहस को देखकर सभी दंग रह गये।

राजू के ह्रदय में गरीबों के प्रति विशेष आदर था, उनके प्रति दया भाव था। और उनकी यथा संभव सहायता भी करता था। तारापद का बेटा हैजे से मर गया। गाँव में से कोई भी उसकी शव यात्रा में जाने को तैयार न था। लेकिन राजू ने साहस दिखाते हुए उसकी शव यात्रा में शामिल हुआ। उसने शरत के साथ टोली बनाई और चल पड़ा। श्मशान जाने के बाद कुछ देर सुस्ताने के लिए एक झोंपड़ी में बैठे। वहाँ दियासलाई जलाकर बीड़ी पीने लगे ही थे कि एक आवाज आई कि भाई मुझे भी एक बीड़ी पीला दो। देखा तो भूख और प्यास को समेटे गुदड़ी में लिपटा एक बूढ़ा वहाँ लेटा हुआ था। पहले तो उसने बूढ़े को एक बीड़ी दी फिर बूढ़े के मुँह से उसकी करुण कथा सुनी - ''मेरे साथ मेरे दो नाती और मोहल्ले का एक आदमी आया है। उन्होंने सोचा था कि बूढ़ा जल्दी मर जाएगा परन्तु मुझे मरता न देखकर वे मुझे यहाँ छोड़कर यात्रा देखने चले गये हैं। वे बार-बार यह

धमकी देते हैं कि गला दबाकर मुझे मार डालेंगे।'' और फिर शरत से कहा कि मैं बूढ़े को कंधे पर उठा लेता हूँ, तुम इसकी गुदड़ी बगल में दबा लो। गाँव में ले जाकर राजू ने उस बूढ़े की खूब सेवा की जिससे कि वह बूढ़ा ठीक हो गया।

वास्तव में राजू शरत का प्रेरणा स्रोत था। शरत उसी की प्रेरणा से अभिनय भी करता था। परन्तु अचानक एक दिन राजू कहीं चला गया। कुछ दिन बाद एक स्त्री ने उसे हरिद्वार के पास उदासी पंथ के अखाड़े में समधुर बंगला गीत गाते हुए देखा और उससे कहा कि 'तेरे मात-पिता तेरे कारण पागल हो गए हैं।'' परन्तु राजू ने कोई उत्तर न दिया। अतः वह अनासक्त भाव से परिवार को बीच में छोड़कर चला गया था।

अतः राजू में स्वच्छन्दता, उच्छ ंखलता, मानवीयता, दया, करुणा, साहस, निडरता आदि गुण विद्यमान थे जो चरितनायक शरत के प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं। राजू तो बचपन से ही साहसी था, अन्याय के प्रति सीना तान कर खड़ा हो जाता था हाँ, म त्यु से भी निडरता का भाव उसे संन्यासी व त्ति के निकट ले गया। सच्चे अर्थों में राजू शरत का मित्र था।

*****

# अध्याय - 10

# चरित्र-चित्रण : मोक्षदा (हिरण्यमणी देवी)

शरत बाबू जिस स्त्री को अर्धांगिनी, संगिनी मानते थे उसका नाम हिरण्यमयी देवी था। वह शरत की पत्नी थी लेकिन समाज की द ष्टि में, ''शरत बाबू ने उसे अपनी जीवन संगिनी बना लिया था। इन दोनों के प्रेम में कोई संशय न था। वह सीधी, सादी, बहुत सी बातों को न जानने वाली ग्रामीण महिला थी। वह पढ़ी-लिखी भी न थी। शरत बाबू और इनके प्रेम की शुरुआत भी अनोखी है। शरत की पहली पत्नी शान्ति का देहान्त हो चुका था। शान्ति के साथ शरत का दाम्पत्य जीवन शान्तिमय ही बीत रहा था लेकिन उनकी म त्यु के बाद शरत टूट-से गए। इसी कारण वे दूसरा विवाह न करना चाहते थे। उनकी आयु भी काफी हो चुकी थी। कष्टों की मार ने उन्हें अस्वस्थ बना दिया था। रंगून में रहते हुए वे कई स्त्रियों के सम्पर्क में आए पर किसी से भी विवाह की बात न की। कुछ लोगों का मानना था कि रंगून में उनके घर एक स्त्री रहती थी लेकिन यह पता नहीं वह भी कौन ? जीवन संगीनी थी, रखैल थी, पत्नी थी, कुछ नहीं पता।

बंगाल के बहुत से लोग धन कमाने के लिए रंगून जाते थे। कलकत्ता से कृष्णदास अधिकारी नामक व्यक्ति भी धन कमाने के लिए रंगून जा पहुँचा। उसके साथ उसकी पुत्री मोक्षदा थी। वह साधारण लड़की थी। उसे सुन्दर तो कहा ही नहीं जा सकता क्योंकि उसका रंग मटमैला और शरीर सुडौल था। पर द ष्टि से भीगे फूल-पत्तों जैसा लावण्य, चेहरे से यामिनी और स्नेहमयी भी कम नहीं थी। गरीबी के कारण उसके पिता दहेज देकर विवाह करने में असमर्थ थे। उसके पिता ने शरत से अनुनय विनयपूर्वक कहा कि आप या तो पैसे दे दो या मेरी बेटी को पत्नी रूपा स्वीकार करो। लेकिन न तो शरत के पास देने को पैसे थे और न ही शादी करना चाहते थे क्योंकि उन्हें अपनी म त पत्नी की याद सताती रहती थी। अतः वे मानसिक रूप से और किसी से विवाह न करना चाहते थे।

इसी समय शरत बाबू ज्वर के शिकार हो गये। उस समय मोक्षदा ने बड़े स्नेह से शरत की सेवा की। धीरे-धीरे शरत का ज्वर उतर गया और आँखे खुली। देखा कि मो़क्षदा उनके सिरहाने बैठी सेवा श्रशुषा कर रही है। शरत आश्चर्यचकित हो गए और सोचने लगे कि माँ के उपरान्त मोक्षदा ही एक ऐसी स्त्री है जिसने मुझे स्नेह दिया है। अतः वे मोक्षदा के प्रति आकर्षित हो गए।

एक दिन पता चला कि उसके पिता शरत के उपर उसका भार छोड़कर बिना बताए ही चले गए हैं। अब शरत पर उसके विवाह का भार पड़ा जिसे शरत ने स्वीकार भी किया।

तब शरत ने अचानक मोक्षदा से कहा, ''आज मैंने तुम्हारे लिए एक वर ढूँढ लिया है।''

मोक्षदा हठात् शरत की ओर देखने लगी। फिर उसकी आँखें भर आईं। बोली, ''इस तरह की बातें करते आपको अच्छा लगता है ?''

शरत ने कहा, ''ना, ना, मैं परिहास नहीं कर रहा और तुम्हें बुरा भी नहीं मानना चाहिए। आखिर तुम्हें विवाह तो करना ही है, जो व्यक्ति मैंने तुम्हारे लिए ढूँढा है, वह तुम्हारा आदर करता है और तुम्हारे प्रति सदय भी है।''

मोक्षदा ओर भी विस्मित हो उठी। अटक-अटक कर उसने कहा, ''मैं इस बारे में कुछ नहीं जानती। वह व्यक्ति कौन है ? बिना जाने उसके बारे में क्या कह सकती हूँ।''

शरत् ने शरारत से मुस्कुराते हुए कहा, ''तुमने उसे देखा है।''

''क्या ?''

''बहुत बार देखा है।''

जैसे मोक्षदा के मस्तिष्क में प्रकाश उभरने लगा। फिर भी अनजान बने रहते हुए उसने कहा, ''मैं कुछ नहीं जानती।''

शरत् बोला, ''मुझे नहीं जानती।''

मोक्षदा ने एकाएक द ष्टि उठाकर शरत की ओर देखा। अविश्वास और विस्मय से भरी वह द ष्टि शरत क अंतर में भर गई। फिर सहसा भरी हुई बदली की तरह वह नीचे झुकी कि शरत के चरण पकड़ ले लेकिन बीच में ही रोक कर शरत ने कहा, ''क्या तुम्हें वह व्यक्ति स्वीकार है ?''

मोक्षदा ने अब भी कोई जवाब नहीं दिया। वह उसी तरह नीचे झुकी रही। इसके बाद शैव रीति से दोनों ने विवाह कर लिया। यद्यपि समाज ने इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं किया परन्तु शरत् सामाजिक विधि-विधानों को कब मानता था। उसने कहा, ''आज से तुम हिरण्यमयी देवी हुई। तुम खरे सोने के समान हो। इस पर कभी भी किसी प्रकार का मैल नहीं जम सकता। तुम्हारे अन्तर के उज्ज्वल रूप को मैंने देख लिया है। वह मेरी शक्ति बनेगा।''

''और उस दिन से हिरण्यमयी देवी ने कानून सम्मत पत्नी न होते हुए भी पत्नी के दायित्व को पूर्ण रूप से ओढ़ लिया। मन का यह मिलन ही सच्चा विवाह है।'' शायद इसीलिए शरत एक जगह लिखते हैं-''हृदय में प्रेम नहीं तो मन्त्रपूत विवाह विडम्बना मात्र है। आगे चलकर एक ऐसा समय आएगा जबकि प्रेम के द्वारा दोनों का मिलकर एक होना अधिक महत्वपूर्ण समझा जाएगा और कानून के द्वारा दोनों का मिलकर एक होना गौण समझा जाएगा।''

हिरण्यमयी देवी सरल हृदय नारी थी। वह शरत का हर कदम पर साथ देती थी। कहीं कुछ शंका भी होती तो समझाने से मान भी जाती थी। एक बार की बात है कि शरत क्रान्तिकारियों की सहायता करना चाहते थे। उन्हें यह संदेश मिला था कि एक क्रान्तिकारी 'आलू बेचता हुआ आएगा' और महत्वपूर्ण खबर बता के जाएगा। अब शरत के सामने समस्या थी कि वह आलू बेचने वाले को अन्दर कैसे बुलाए क्योंकि उसने कभी इस तरह किसी को बुलाया ही न था। अतः उसने हिरण्यमयी देवी की शरण ली 'बड़ी बहू कोई आलू वाला पुकार रहा है, आलू लोगी क्या ?''

ग हस्वामिनी बोली, ''घर में ढेर सारे हैं। आज ही तो बाजार से आए हैं।'' शरत ने कहा कि वह बड़ी आतुरता से चिलचिलाती धूप में खड़ा है इस पर मुझे दया आ रही है।

तुम्हारी सनक बड़ी अनोखी है, कहकर उसने आलू वाले को बुला लिया। शरत उससे खाने-पीने को पूछने लगा। उधर ग ह स्वामिनी बुदबुदाने लगी। ''तुम खामखाह झंझट मोल लेते हो। आया है आलू बेचने उसे खिलाने की क्या जरूरत है, वह क्या अतिथि है या भिखारी है कि बुलाकर खिलाना होगा। इसके अलावा चूल्हा चौका भी उठा चुका है। मछली वछली भी नहीं रह गई है।

ग हस्वामिनी की इज्जत बचाते हुए शरत बोला, ''जानती हो, इस भरी दोपहरी में बिना खाये जाएगा तो ग हस्थ का अकल्याण होगा।'' अकल्याण की बात सुनकर ग हस्वामिनी तैयार हो गयीं।

अतः कितनी भोली, सरल और करुण हृदयवान नारी थी हिरण्यमयी देवी। वह कितनी भी भोली हो परन्तु विश्व जन-मन के चितेरे कथा शिल्पी शरत के चित्त को जीत लिया था। वह धर्मपरायण एवं सेवापरायण नारी थी।

*****

# अध्याय - 11
# आवारा मसीहा : भाषा शैली

कोई भी रचनाकार अपने भावों की अभिव्यक्ति साहित्य में भाषा के माध्यम से ही करता है। किसी भी रचना की भाषा की गुणात्मकता पर विचार करते समय उसे दो बातों पर मुख्य रूप से ध्यान रखना पड़ता है। एक तो स्वयं रचनाकार की अपनी भाषा दूसरे इसके द्वारा प्रयुक्त चरित्रों की भाषा। यद्यपि दूसरे प्रकार की भाषा भी लेखक के गुण कौशल की ही परिचालक होती है फिर भी पात्रों की विभिन्न मनः स्थितियों को व्यक्त करने में रचनाकार की प्रत्यक्ष भाषा में कुछ भेद आ सकता है और आ भी जाता है। किसी की सहित्यक रचना को जीवंत बनाने में उसकी भाषा शैली का बहुत बड़ा हाथ होता है। अगर उसकी भाषा, प्रभावी, मार्मिक एवं सहज सम्प्रेषणीय नहीं है तो वह केवल शब्दाडम्बर ही लगेगी

'आवारा मसीहा' जीवनी का अध्ययन करते समय उसको जीवंत करने वाली जो भाषागत विशेषताएँ सामने आती हैं, वे निम्न है -

1. साधारण बोलचाल की भाषा
2. दार्शनिक चिन्तन प्रधान भाषा
3. अलंकृत एवं काव्यत्मक भाषा
4. परिनिष्ठित खड़ी बोली
5. प्रसाद एवं माधुर्य गुण सम्पन्न भाषा
6. चित्रात्मक भाषा
7. प्रसंगानुकूलता
8. रोचकता एवं प्रवाह पूर्णता
9. पात्रानुकूलता

अब इन उपर्युक्त शीर्षकों पर 'आवारा मसीहा' के परिप्रेक्ष्य में सोदाहरण विचार किया जाएगा।

### 1. साधारण बोलचाल की भाषाः

शरतचन्द्र जन-जन के लेखक वे अपनी बंग जमीन से जुड़कर ही लिखा करते थे। सामान्य जन जीवन के दुःखों, कष्टों एवं पतिता नारियों का सहानुभूतिपूर्वक चित्रण किया था। अतः यह विष्णु प्रभाकर जी के लिए आवश्यक था कि वे भी उन्हीं की तरह साधारण जन की भाषा को आभिव्यक्ति दें और दी भी है। उदाहरणतः नर्तकी द्वारा कहा गया वह काव्य जो शरत् के मित्र को उसके पैसे न मिलने पर कहा था -

''तुम्हारा दिमाग खराब हुआ था कि तुम वेश्या के घर इतना रूपया लेकर आये। यहाँ दो चार रूपयों के लिए प्राण ले लिये जात हैं, तुम्हारे पास तो हजारों रूपये थे। बार-बार सब के सामने जेब से निकालकर मुझे दे रहे थे। यह क्या व्यापार था। सब की द ष्टि तुम्हारी जेब पर थी और तभी आप लोग नशे से लुढ़कते हुए गद्दे से नीचे चले गये। सब लोगों को विदा करके मैंने आपको ठीक किया और आपके सिरहाने तकिया रखा। तब आप लोगों ने मुझे क्या-क्या नहीं कहा। छोंड़िये, वह तो प्रतिदिन ही सुनती हूँ लेकिन जैसे ही मैं आपको सुलाकर उठी, मेरी द ष्टि रूपये पर पड़ी। उन्हें उठाकर मैंने अपने आँचल में बाँध लिया और इस तरह कमर में लपेट लिया कि जरा भी छेड़ने पर मेरी आँख खुल जाए।''

### 2. दार्शनिक चिन्तन प्रधान भाषाः

साहित्यकार दार्शनिक होता है। साहित्यकार को धर्म, राजनीति, प्रेम, व्यक्ति, जीवन, पाप-पुण्य, अस्ति, नास्ति पर अपने

मौलिक जीवन दर्शन से विचार व्यक्त करने होते हैं। 'आवारा मसीहा' में भी शरत् एवं स्वामीजी का चिन्तन व्यक्त हुआ है। शरत् समस्याएँ रखता है और स्वामी उनका उत्तर देता है -

''शरत् ने उस दिन स्वामी जी से पूछा- 'अच्छा स्वामी जी, आप ईश्वर को क्यों नहीं देख पातें ?'

स्वामी जी बोले, ''ठाकुर ने कहा है समुद्र में रत्न है यत्न करने की आवश्कता है। संसार में ईश्वर है, साधना करनी चाहिए। काई से ढके तालाब के सामने खड़े होकर यदि जन लेना चाहो तो काई को हटाना पड़ेगा। इसी प्रकार माया से ढके नेत्र लेकर ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। सब से पहले माया से मुक्त होना होगा।''

शरत् ने जिज्ञासा की, ''माया क्या चीज है ?''

स्वामी जी बोले, ''विषय वस्तु और कामिनी कंचन में ही डूबे रहना माया है। इनके मोह को छिन्न-भिन्न करके सरल प्राण होकर पुकारने पर मन शुद्ध होगा। उसकी दया होगी।''

शरत् चन्द्र ने पूछा, ''सुना जाता है कि वे मंगलमय है, फिर धरती पर इतना दुःख क्यों है।''

स्वामी जी मुस्कराये, उत्तर दिया, ''इस संसार में जिसको हम दुःख कहते हैं वह तो वास्वविक दुःख नहीं है। वह तो उसकी दीक्षा है। सुख पाते ही मनुष्य उसे भूल जाता है। व्यथा रूपी दुःख पाने पर ही उसके मन में समझ आती है। दुःख ही सब से बढ़के इस प थ्वी की प्रिय वस्तु है। नहीं तो उसे याद ही क्यों करोगे ? उसकी महिमा की उपलब्धि का अवसर कैसे पाओगे ?''

## 3. अलंकृत एवं काव्यात्मक भाषाः

शरत् बंगाली साहित्यकार थे। शरत् की भाषा के बारे में कविन्द्र रवीन्द्र ने कहा था कि भाषा पर इतना सुन्दर अधिकार बंगाल में किसी और का नहीं हो सकता। शरत् की जीवनी लिखने के लिए यह आवश्यक बन जाता है कि उसकी भाषा काव्यात्मक एवम् आलंकरिक हो। क्योंकि शरत् का सनी बंगाल में कोई दूसरा नहीं था। अतः विष्णु प्रभाकर ने अनेक ऐसे रूप में सामने आते हैं यथा -

''एक समय होता है जब मनुष्य का आशाएँ आकाक्षाएँ और अभीप्साएँ मूर्त रूप लेना शुरू करती है। और यदि बाधायें मार्ग रोकती हैं तो अभिव्यक्ति के लिए वह अन्य मार्ग ढूँढ लेती हैं। ऐसी स्थिति में शरत् का जीवन चरम उपेक्षाओं और अनन्त आशाओं की छाया में बीत रहा था। न साधन, न स्नेह का वरद हस्त, न सहानुभूति और न प्रोत्साहन की अम तवाणी, माँ की म त्यु के बाद तो जैसे जीवन में कुछ भी मधुर या सरस रह ही नहीं गया था। लेकिन उसमें कहीं कुछ ऐसा था जो अतिशय भावुक होने के बावजूद जीवन से हार मानने नहीं दे रहा था। अपने आक्रोश और आकांक्षाओं, अभावों और आदर्शो को अभिव्यक्ति देने का माध्यम उसे मिल गया था। इसी माध्यम ने उसमें जीवन जीने की अदम्य चाह पैदा कर दी थी।

''स जन के इन दिनों में वह आकण्ठ प्रेम में डूबा हुआ था। उस आयु में हर युवक की आत्मा में प्रेम के लिए तड़प जाग त होती है। विचारों और भावनाओं का जो तूफान उसके मन और मस्तिष्क को आलोडित करता रहता है, उसकी कल्पना करना अत्यन्त दुस्तर कार्य है। कितनी विभिन्नता, कैसा विरोधाभास। न कहीं हाड़माँस की प्रेमिका, काल्पनिक प्रेमिका से भी तो यह भूमिका निभाई जा सकती है। उसका प्रेम इतना मौन रहस्यमय था कि उसका ताप ही लोगों को छूता था। उसका रूप कभी किसी के सामने नहीं आ सका। नीरदा कभी कल्पना लोक में एकान्त में उसके पास ऐसे आती जैसे नींद में चल रही हो। लिखते देखती रहती, बोलती नहीं। शरत् को यह मौन असत्य हो उठता पर बोलता वह भी नहीं।''

## 4. परिनिष्ठित खड़ी बोलीः

ऊँच कोटि को साहित्यकार जो भी भाषा बोलेंगे परिनिष्ठित ही बोलेगा। शरत् और रवीन्द्र दोनों ही सुशिक्षित एवं ऊँच कोटि के साहित्यकार थे। दोनों के पत्र बंगाली में लिखे हुए थे वे भी अधिकांशतः संस्कृत शब्दावली से युक्त। उनका अनुवाद करते समय यह आवश्यक ही था कि अनुवाद की भाषा परिनिष्ठित ही हो। इसी कारण लेखक ने जीवनी की भाषा गरिमामयी बनाने के लिए परिनिष्ठित भाषा का खूब प्रयोग किया है। उदाहरणत :

''पंटु, कैसा दुर्भाग्यपूर्ण जीवन है मेरा। कैसे अर्थहीन, निष्फल, नीरस, दिन, मास वर्ष सिर पर से गुजर जाते हैं। सोच

नहीं सकता ? भगवान ने जब बुद्धि दी थी थोड़ी सुबुद्धि भी दे सकते थे। नहीं दी तो इतना प्यार करना क्यों सिखाया? प्यार करने के लिए एक पात्र मुझे भी दे देते तो क्या उनके विश्व में मनुष्यों की कमी पड़ जाती ? नहीं जानता यह उनका कैसा न्याय है ?

''आदमपुर क्लब के नाटक विभाग ने अनेक सुन्दर मंचस्थ किए थे-उनमें प्रमुख थे-म णालिनी, बल्वमंगल और जना। शरत् ने इनमें क्रमशः म णालिनी', चिन्तामणि' और जना की भूमिका निभाई थी। राजू ने गिरिजा और पागलिनी का अभिनय करके यश अर्जित किया था। शरत् के अभिनय में जो गांभीर्य, संयम, तेजस्विता और शोक प्रकट करने की भंगिमा थी वह कलकत्ता की प्रभावशालिनी अभिनेत्री के उन्मत उच्छ्वासों में भी नहीं पाई जाती थी।''

''शरत्चन्द्र ने इस त्रासदी को देखा, वे तड़फड़ा उठे। मानो कलाकार के अन्तर की वाणी ने उन्हें सचेत कर दिया हो। उन्होंने राजबंदियों की इस लांछना को धोने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने अपने सभी संगी-साथियों और अनुचरों को बुलाया और कहा, ''हावड़ा में समस्त मुक्त राजबंदियों का अभिनंदन होगा। ऐसी शानदार सभा करनी होगी कि सब देखते रह जाएँ। देश के लिए जिन्होंने अपने को शून्य कर दिया है, उन्हीं के प्रति आज देश विमुख है।''

## 5. प्रसाद एवं माधुर्य गुण सम्पन्न भाषाः

किसी रचना को सरस बनाने के लिए उसमें प्रसाद एवं माधुर्य गुण अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना रचना गुणात्मक नहीं कहला सकती। 'आवारा मसीहा' में दोनों ही गुण विद्यमान हैं। जब लेखक शरत् के भावुक विह्वल हृदय का चित्र प्रस्तुत करता है। तब भाषा में प्रसाद और माधुर्य दोनों ही गुण आ जाते हैं। उदाहरणतः

''न जाने कितनी बार वह इस पवित्र मौन-एकान्त में आकर बैठा होगा। दूर से आती बच्चों की शरारतों की आवाजें गंगा की कल-कल ध्वनि में मिलकर एक रहस्यमय वातावरण का निर्माण करती होंगी। प्रकृति का सौन्दर्य जैसे उसके थके तन-मन को सहलाता होगा और तब उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की होगी, ''मैं सूर्य, गंगा और हिमालय को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन-भर सौन्दर्य की उपासना करूँगा, कि मैं जीवन भर अन्याय के विरूद्ध लडूँगा, कि मैं कभी छोटी काम नहीं करूँगा।''

इस घ णा और अपमान के कारण उसके दर्द की कोई सीमा नहीं थी। अक्सर सोचता था कि दूसरे के घर पर रह रह कर ऐसा अपमान पाने से तो सड़क, जंगल, रेगिस्तान कहीं भी रह जाना अच्छा है। उसकी बड़ी बहन कलकत्ते के पास गोविन्दपुर गाँव में रहती थी। प्रयत्न किया उसके पास जाकर रह सके।''

## 6. चित्रात्मक भाषाः

लेखक ने 'आवारा मसीहा' में कहीं-कहीं किसी पात्र का चरित्र प्रस्तुत करते समय आँखों के सामने चित्र प्रस्तुत करने वाली भाषा को अंकित किया है। जीवनी में यह आवश्यक भी था उदाहरणत –

''और पुराने जीवन की याद करके उन्होंने दीर्घ श्वास खींचा। बड़ी कठिनता से मामा लोग उनको वहाँ से उठाकर ला सके। भोजन करते समय शरत् ने कहा, ''आज यही रहना होगा। सुना है, यहाँ का वैष्णवी ग्रहण व्यापार बहुत रोचक है। कुछ धन जमा करा देने पर किसी को भी वैष्णवी मिल सकती है। एक चादर के पीछे वैष्णवियों का दल इस प्रकार खड़ा कर दिया जाता है कि उनके पैर की उँगली ही दिखाई दे। उस वैष्णवी की उँगली जो पकड़ लेता है वे दोनों एक वर्ष तक एक साथ रह सकते हैं।''

कथा जितनी रोचक थी उतनी ही अविश्वसनीय भी। इसलिए अन्त में बहुत खोज करने पर पता लगा कि अब यह प्रथा समाप्त हो गई है। लेकिन साथ ही यह भी पता लगा कि रात में यहाँ बहुत बड़े-बड़े मच्छर होते हैं।

अरे बाप रे, मच्छर, मलेरिया। तब तो यहाँ रहना नहीं हो पायेगा। अब क्या किया जाए। इस समय कोई जहाज भी हो नहीं जाता। क्यों न नाव से यात्रा की जाए। खूब मजा आएगा।

मामा ने पूछा, ''लेकिन जाना कहाँ होगा?''

''जहाँ भी पहुँच जाएँ। राजशाही तो पहुँच ही सकते हैं। बस एक नौका तैयार की गई। लेकिन भाग्य अच्छा था कि रास्ते में ही शुआलिन्दो जाने वाला जहाज मिल गया। बस सब लोग उसमें सवार हो गए। दिन भर बहुत भाग दौड़ हुई थी, खूब नींद आई। अगले दिन जहाज एक घाट पर जाकर ठहरा। वहाँ के जमींदार से शरत् बाबू का परिचय था। बोले, ''चलो वहीं चलकर चाय पीयेंगे।''

7. **प्रसंगानुकूलताः**

किसी की रचना के लिए यह आवश्यक है कि उसमें प्रयुक्त घटनाएँ, प्रसंग उसकी भाषा से मेल खाते हों अर्थात भाषा उन घटनाओं, प्रसंगों के अनुकूल हो। प्रसंग हो पतिता नारी का और भाषा हो सुसंस्कृत तो रचना की गुणात्मकता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। इस द ष्टि से 'आवारा मसीहा' की भाषा खरी उतरती है। उदाहरणत –

''नाना के घर रहते शरत् को लगभग तीन वर्ष हो गए थे। इससे पहले भी वह माँ के साथ कई बार आ चुका था। सब से पहली बार उसकी माँ जब उसको लेकर आई थी, तो नाना-नानियों ने उस पर धन और अलंकारों की वर्षा की थी। नाना केदारनाथ ने कमर में सोने की तगड़ी पहनाकर उसे गोद में उठाया था। उस परिवार में इस पीढ़ी का पहला लड़का था वह!''

एक स्थान पर शरत बाबू कहते है, ''मास्टर मुशाई, इस नारी का स्वामी अंधा था। लोगों के घरों में कामकाज करके यह उसको खिलाती थी। कल रात इसका वह अंधा स्वामी मर गया। वह बहुत दुःखी है। दुःखी लोग बड़े आदमियों की तरह दिखाने के लिए जोर-जोर से रोते नहीं। उनका दुःख से विदीर्ण प्राणों का क्रंदन होता है। मास्टर मुशाई, यह सचमुच का रोना है।''

8. **रोचकता एवं प्रवाहपूर्णताः**

किसी भी कृति की भाषा की सबसे बड़ी कसौटी यही होती है कि उसमें रोचकता एवं प्रवाह होना चाहिए। यहाँ प्रभाकर जी की भाषा में गंगा सा प्रवाह है। इसमें कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आ पाई है। प्रत्येक प्रसंग, घटना, स्थिति को सरस एवं रोचक रूप में प्रस्तुत किया है। इसी कारण पूरे ग्रंथ की भाषा रोचक बन पड़ी है। जहाँ लेखक ने शरत् की जीवनोपयोगी घटनाओं का रहस्योद्घाटन किया है वहाँ सरल, रोचक संवादों की संरचना की है जैसे -

''लेकिन कहना जितना सरल था, मोक्षदा का छोड़ना उनता ही कठिन था। बचपन से ही जो दूसरों के लिए प्राण संकट में डालता आया है, वह कैसे निरीह लड़की को छोड़ देगा। इसलिए एक दिन लौटकर शरत् ने मोक्षदा से कहा, ''आज मैंने तुम्हारे लिए एक वर ढूँढ लिया है।''

मोक्षदा हठात् की शरत् की ओर देखती रह गई। फिर उसकी आँखें भर आई। बोली, ''इस तरह की बातें करते हुए आपको अच्छा लगता है ?''

शरत् ने कहा, ''ना-ना-परिहास नहीं कर रहा हूँ और तुम्हें बुरा भी नहीं मानना चाहिए। आखिर तुम्हें विवाह करना ही है, जो व्यक्ति मैंने तुम्हारे लिए ढूँढा है, वह तुम्हारा आदर करता है, तुम्हारे प्रति सदय भी है।''

मोक्षदा और भी विस्मित हो उठी। अटक अटक कर उसने कहा, ''मैं इस बारे में कुछ नहीं जानती। वह व्यक्ति कौन है? बिना जाने उसके बारे में क्या कह सकती हूँ ?

शरत् ने शरारत से मुस्कारते हुए कहा, ''तुम ने उसे देखा है।''

'क्या ?'

'हाँ, बहुत बार देखा है।'

जैसे मोक्षदा के मस्तिष्क में प्रकाश उभरने लगा। फिर भी अनजान बने रहते हुए उसने कहा, ''मैं कुछ नहीं जानती।''

शरत् बोला, ''मुझे नहीं जानती ?''

9. **पात्रानुकूलताः**

'आवारा मसीहा' की भाषा पात्रानुकूल है। यहाँ अधिकतर पात्र कुलीन, सभ्य और शिक्षित हैं। उनका सम्पर्क सम्पादकों, प्रकाशकों, कवियों, राजनेताओं आदि से होता रहता था और शरत् एवं रवीन्द्र तो थे ही साहित्यिक व्यक्ति। इसलिए यह आवश्यक था कि उनकी भाषा उन्हीं के वर्ग, ओहदे, के अनुकूल हो। इस द ष्टि में 'आवारा मसीहा' की भाषा खरी उतरती है -

तदुपरान्त शरत् बाबू बोले, ''इस चर्चा में आनन्द आया। केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं, वास्तव में इस प्रकार की गोष्ठियों

की आवश्यकता है। देश को किस प्रकार आगे बढ़ाकर उठाया जा सकता है इस सम्बन्ध में विभिन्न लोगों के विभिन्न मत हैं। बीच बीच में इसी प्रकार पाठकों और लेखकों को एकत्रित होकर विभिन्न प्रयत्नों में सामंजस्य बनाये रखने की आवश्यकता है। इसमें बहुत लाभ है।''

''पहाड़ में गति नहीं है, वह निश्चल है। इसी से उसकी चोटी एक जगह पर ऊँची रहती है, उसे नीचे नहीं आना पड़ता। किन्तु हवा के थपेड़े खाने वाले सागर की यह अवस्था नहीं है। वह उठता है, गिरता है, यह उसके लिए लज्जा का कारण नहीं है, यह उसकी गति का चिह्न है, उसकी शक्ति की धारा है, तभी वह केवल ऊँचा होकर नहीं रहना चाहता। जब जमता है तब बर्फ हो उठता है। उसी तरह अगर हमारा यह भी आन्दोलन है, पराधीन देश का अभिनव गति वेग है, तो उठने गिरने का कानून उसे भी मान लेना होगा। नहीं तो वह चल नहीं सकेगा।''

## शैलीः

प्रभाकर जी द्वारा लिखित विश्वविख्यात उपन्यासकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' में उन्होंने उनके जीवन को समझने के लिए विभिन्न शैलियों का निरुपण किया है। यहाँ उन्होंने जिन शैलियों का प्रयोग किया है, वे निम्न हैं :-

1. आत्मकथात्मक शैली 2. वर्णनात्मक शैली 3. नाटकीय शैली 4. पत्रात्मक शैली 5. भावात्मक शैली

### 1. आत्मकथात्मक शैली :

लेखक ने शरत की जीवनी को प्रमाणिक बनाने के लिए बड़े ही कलात्मक ढंग से उनके आत्मकथ्यों का वर्णन किया है। लेखक ने उनके पत्रों, डायरियों, लेखों और उनके सम्पर्क में आने वाले लोगों से अनुभव प्राप्त किए और उन्हें आवश्यकतानुसार आत्मकथ्य में भी प्रस्तुत किया। उदाहरणतः

''मेरे मानसिक परिवर्तन के सम्बन्ध में बहुत दिन से तुम एक प्रश्न पूछ रही हो, और मैं मौन हूँ। किन्तु मेरे समान जब तुम्हारी उम्र होगी तब शायद तुम समझ सकोगी कि इस संसार में मनुष्य की ऐसी बात भी होती है जिसे वह किसी के सामने नहीं कह सकता। कहे जाने पर कल्याण की अपेक्षा अकल्याण ही अधिक होता है। इसलिए इस मौन की सजा बहुत कठिन है। भीष्म एक दिन स्तब्ध होकर तीरों की वर्षा सह सके थे, यह बात हमेशा हमेशा के लिए महाभारत में लिख दी गई है लेकिन कितनी अलिखित महाभारतों में इस प्रकार की कितनी शरशय्या हमेशा चुपचाप रचित होती रहती हैं, उनके सम्बन्ध में कहीं एक लाईन भी नहीं लिखी गई। संसार में ऐसा ही होता है। तुम्हारे दादा की बहुत उम्र हो गई। बहुतों का बहुत प्रकार से ऋण और नकद शोध करना हुआ है। उसका यह उपदेश कभी भुलाना नहीं कि प थ्वी पर कौतूहल की वस्तुओं का मूल्य ज्ञान-विज्ञान के हिसाब से जितना बड़ा हो, उसे दमन करने का पुण्य भी संसार में कम नहीं है। जिस वेदना का कोई प्रतिकार नहीं उसकी नालिश करने पर नीचे की कीचड़ ही जोर करके ऊपर आ सकती है। यदि उसे बचाया जा सके तो अच्छा है।''

### 2. वर्णनात्मक शैली :

यहाँ लेखक ने वर्णनात्मक शैली का नवीन रूप में प्रयोग किया है। कहीं भी उसमें पुरातन एवं शिथिलता नहीं है। उदाहरणतः ''लेखक के रूप में प्रसिद्ध होने पर उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ रही थी। उसके साथी अब उपेक्षा से उसे चिढ़ाते नहीं थे। इसके विपरीत जब भारत से स्वदेशी आन्दोलन के नेता श्री सुरेन्द्रनाथ सेन रंगून आए तब उनकी अभ्यर्थना के लिए जो सभा आयोजित की गई उसके सभापति के पद पर उसी को बिठाया गया। जीवन में पहली बार वह अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठा था। तब वह कितना नर्वस हो रहा था। सेर-डेढ़ सेर की माला गले में पड़ी थी। उसके भार से सीधा खड़ा नहीं हो पा रहा था। देख कर दया आती थी। भाषण लिखा हुआ था, सुन्दर भी था, पर क्या वह उसे ठीक-ठीक पढ़ पाया ?''

### 3. नाटकीय शैली :

लेखक ने जीवनी को जीवन्त बनाने के लिए नाटक की भाँति जीवन्त संवादों का सहारा लिया है। उदाहरणतः एक दिन अपनी कक्षा के एक विद्यार्थी के हाथ में 'चरित्रहीन' देखकर एक प्राध्यापक ने कहा-''सर ! इसके लेखक तो बहुत प्रसिद्ध हैं।''

प्राध्यापक ने कहा-''होंगे, लेकिन यह पुस्तक भ्रष्ट है।''

विद्यार्थी फिर बोला-''सर ! आप कैसे कह सकते हैं यह पुस्तक भ्रष्ट है ? क्या आपने इसे पढ़ा है ?''

प्राध्यापक ने कहा-''हाँ-हाँ, पढ़ा है, तभी तो कहता हूँ। मेरा लड़का तकिए के नीचे रखकर इसे पढ़ता था। कल मैंने इसे देखा तो फिर सारी पढ़कर ही उठा। मैं जानना चाहता था कि इसमें क्या है ?''

विद्यार्थी बोला-''तब तो सर, मैं भी इसे पढ़कर देख लूँ। भ्रष्ट होगी तो फिर नहीं पढ़ूँगा।

## 4. पत्रात्मक शैली :

प्रभाकर जी ने शरत की जीवनी लिखने में उनके प्रामाणित पत्रों की खूब सहायता ली है। और यह आवश्यक भी था। जहाँ इन पत्रों की सहायता है वहाँ शैली पत्रात्मक हो उठी है। उदाहरणतः 'पाथेर दाबी' उपन्यास के संदर्भ में रवीन्द्र बाबू को लिखा पत्र :-

''श्री चरणेशु,

आपका पत्र आया। बहुत अच्छा, वही हो। यह पुस्तक मेरी लिखी हुई है, इसलिए दुःख तो मुझे है, पर कोई खास बात नहीं है। आपने जो कत्तर्व्य और उचित समझा उसके विरुद्ध न तो मेरा कोई अभिमत है और न कोई अभियोग, पर आपकी चिट्ठी में जो दूसरी बातें आई हैं, उस अभिमत में मेरे मन में दो-एक प्रश्न हैं और कुछ वक्तव्य भी हैं। यदि तुर्की ब तुर्की लगे तो वह भी आपकी ही शराफत के कारण समझिए। आपने लिखा है, 'अंग्रेजी राज्य के प्रति पाठकों का मन अप्रसन्न हो उठा है।' होने की बात थी, किन्तु यदि मैंने ऐसा किसी असत्य प्रचार के द्वारा करने की चेष्टा की होती तो लेखक के रूप में उससे मुझे लज्जा और अपराध दोनों ही महसूस होते। किन्तु जान-बूझ कर मैं ऐसा नहीं करता तो वह राजनीतिज्ञों को धंधा होता। कृति न होती। नाना कारणों से बंगला में इस तरह की पुस्तक किसी ने नहीं लिखी। मैंने जब लिखी है और उसे छपवाया है तो सब परिणाम जान कर ही किया है।...''

## 5. भावात्मक शैली :

लेखक ने कथा में भी भावात्मकता से परिपूर्ण गद्यों की स ष्टि की है। उदाहरणतः-''सभी जानते थे दीपक बुझने वाला है, फिर भी जब कोई आता था तो मुख पर म्लान हंसी की रेखा खिंच जाती थी, मानो मन के पटल पर वे आशा की छांव आंकने का प्रयत्न करते हों। बचपन की याद करते, भागलपुर की गंगा की कहानी याद करते, वर्षा के अंधकार में परम्पार भरी गंगा को तैरकर पार कर जाने की कहानी। ऐसा लगता कि अमा निशा में वह और राजू दोनों नाव में बैठकर तूफानी समुद्र में अन्तहीन यात्रा पर निकल पड़े हैं।

अतः कहा जा सकता है कि प्रभाकर जी की भाषा एवं शैली विश्वविख्यात साहित्याकर शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के 61 वर्ष के जीवन को 500 प ष्ठों में जीवन्त और ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत करने में सम्पूर्णतः सक्षम हैं। इसमें कहीं भी शैथिल्य या बिखराव नहीं है।

*****

# निबन्ध निष्कर्ष

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

# विषय सूची


| | |
|---|---|
| **खण्ड (क) व्याख्या खण्ड** | **5-43** |
| **खण्ड (ख) आलोचना** | **44-85** |
| हिन्दी निबन्धः स्वरूप एवं विकास | 45 |
| साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः सारांश | 48 |
| साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः विशेषताएँ | 50 |
| साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः भाषा-शैली | 52 |
| कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः सारांश | 53 |
| कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः विशेषताएँ | 55 |
| कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः भाषा-शैली | 57 |
| मजदूरी और प्रेमः सारांश | 58 |
| मजदूरी और प्रेमः विशेषताएँ | 60 |
| मजदूरी और प्रेम? भाषा-शैली | 62 |
| कविता क्या है? सारांश | 64 |
| कविता क्या है? विशेषताएँ | 67 |
| कविता क्या है? भाषा-शैली | 69 |
| नाखून क्यों बढ़ते हैं? सारांश | 71 |
| नाखून क्यों बढ़ते हैं? विशेषताएँ | 72 |
| नाखून क्यों बढ़ते हैं? भाषा-शैली | 75 |
| पगडण्डियों का जमाना? सारांश | 76 |
| पगडण्डियों का जमाना? विशेषताएँ | 78 |
| पगडण्डियों का जमाना? भाषा-शैली | 80 |
| अस्ति की पुकार हिमालय? सारांश | 81 |
| अस्ति की पुकार हिमालय? विशेषताएँ | 83 |
| अस्ति की पुकार हिमालय? भाषा-शैली | 85 |
| **खण्ड-ग अतिलघुत्तरीय प्रश्नोत्तर** | **86-96** |
| साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है | 86 |
| कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता | 88 |
| मजदूरी और प्रेम | 99 |
| कविता क्या है? | 91 |
| नाखून क्यों बढ़ते है? | 92 |
| पगडण्डियों का जमाना | 95 |
| अस्ति की पुकार हिमालय | 96 |
| **खण्ड-घ लघुत्तरीय प्रश्नोत्तर** | **97-104** |

# निबन्ध निकष

**खण्ड (क) व्याख्या खण्ड**

**खण्ड (ख) आलोचना**

हिन्दी निबन्धः स्वरूप एवं विकास
साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः सारांश
साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः विशेषताएँ
साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैः भाषा-शैली
कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः सारांश
कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः विशेषताएँ
कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनताः भाषा-शैली
मजदूरी और प्रेमः सारांश
मजदूरी और प्रेमः विशेषताएँ
मजदूरी और प्रेम? भाषा-शैली
कविता क्या है? सारांश
कविता क्या है? विशेषताएँ
कविता क्या है? भाषा-शैली
नाखून क्यों बढ़ते हैं? सारांश
नाखून क्यों बढ़ते हैं? विशेषताएँ
नाखून क्यों बढ़ते हैं? भाषा-शैली
पगडण्डियों का जमाना? सारांश
पगडण्डियों का जमाना? विशेषताएँ
पगडण्डियों का जमाना? भाषा-शैली
अस्ति की पुकार हिमालय? सारांश
अस्ति की पुकार हिमालय? विशेषताएँ
अस्ति की पुकार हिमालय? भाषा-शैली

**खण्ड-ग अतिलघूत्तरीय प्रश्नोत्तर**

साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है
कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता
मजदूरी और प्रेम
कविता क्या है?
नाखून क्यों बढ़ते है?
पगडण्डियों का जमाना
अस्ति की पुकार हिमालय

**खण्ड-घ लघूत्तरीय प्रश्नोत्तर**

# खण्ड क

# व्याख्या खण्ड

## 1. साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है।

1. **"प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के ह दय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते है। मनुष्य का मन जब शोक-संकुल, क्रोध से उद्दीप्त, या किसी प्रकार की चिन्ता से दोचिता रहता है तब उसकी मुखच्छति तमसाच्छन्न, उदासीन और मलिन रहती है, उस समय उसके कंठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी या तो फुटही ढोल समान बेसुरी, बेताल, बेलय या करूणापूर्ण, गद्‌गद्‌ तथा विकृत-स्वर-संयुक्त होती है।**

प ष्ठ-*1*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गंद्याश भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्‌ट कृत महत्वपूर्ण निबंध 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास हैं से उद्‌ध त है। भट्‌ट जी की धारणा है कि समय के साथ-साथ साहित्य में भी परिवर्तन आ जाता है। साहित्य मानव हृदय से प्रस्फुटित होता है अर्थात्‌ साहित्य समाज का दर्पण है। इस विचार तत्व को आगे बढ़ाते हुए लेखक कहता है।

**व्याख्या** : किसी भी देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का ही प्रतिबिम्ब होता है। अर्थात्‌ लेखक समाज में जो भी घटित हुआ देखता है उसे ही साहित्य में रूपायित कर देता है। यदि मानव का हृदय व्यथित होगा तो साहित्य में भी उस पीड़ा की झलक द ष्टिगोचर होगी और यदि उस समय मानव हृदय प्रफुल्लित रहेगा तो साहित्य में भी ऐसा ही भाव-समाहित हो जाएगा। यही कारण है कि किसी जाति विशेष में उस समय जो भाव विद्यमान होंगे वही भाव उस साहित्य की समीक्षा करने पर प्रकट हो जाएंगे। भक्तिकाल में मानव हदय में भक्ति का भाव था अतः यही भाव उस समय के साहित्य में स्पष्ट रूप में झलकता है। जब मनुष्य का मन शोकयुक्त, दुःखी या क्रोध से तमतमा रहा हो या किसी प्रकार की चिन्ता से युक्त हो तो यही भाव उसके मुख-मण्डल पर भी उभरने लगते हैं। ऐसे में उसका चेहरा अन्धकारयुक्त अर्थात्‌ आभाहीन या मलिन होता है अर्थात्‌ इन परिस्थितियों में चेहरे पर निराशा पीड़ा और उदासीनता के भाव उभर आते हैं। उस समय उसके कंठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी अत्यन्त भद्‌दी, फटे हुए ढोल के समान बेसुरी, बेताल बिना लय के या करूणा भाव से युक्त, गद्‌गद्‌ तथा विकृत स्वरों से युक्त होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव के हृदय में जो भाव विद्यमान होते हैं, वही भाव उसके मुख पर भी झलक जाते हैं। मनश्अगर शोकाकुल है तो चेहरे पर पीड़ा का भाव और अगर प्रसन्नचित है तो चेहरा सुमन के समान खिला हुआ प्रतीत होगा।

**विशेष :**

1. लेखक ने साहित्य को जनसमूह के हृदय का विकास कहा है।
2. इस गद्यांश में सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक तथ्य का उद्‌घाटन हुआ है।
3. प्रस्तुत गद्यांश में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का अधिक प्रयोग हुआ है।

4. अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

5. प्रसाद गुण विद्यमान है।

6. प्रस्तुत अवतरण भावपक्ष एवं कलापक्ष की द ष्टि से श्रेष्ठ है।

2. **"मनुष्य के सम्बन्ध में इस अनुल्लंघनीय प्राकृतिक नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है, जिसमें कभी को क्रोधपूर्ण भयंकर गर्जन, कभी को प्रेम का उच्छ्वास, कभी को शोक और परितापजनित हृदय-विदारी करूण-निस्वन, कभी को वीरता गर्व से बाहुबल के दर्प में भरा हुआ सिंहनाद् कभी को भक्ति के उन्मेष से चित्त की द्रवता का परिणाम अश्रुपात आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक भावों को उद्गार देखा जाता है। इसलिए साहित्य को यदि जन-समूह (Nation) के चित्त का चित्रपट कहा जाए तो संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय-समय के आभ्यन्तरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।"**

*प ष्ठ-1*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण साहित्यिक निबंध 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' में से उद्ध त है। लेखक का कथन है कि मनुष्य का व्यवहार प्रसन्न व शोकाकुल अवस्था में भिन्न रहता है, उसके व्यवहार की यही भिन्नता प्रकृति का नियम है। इसी कथन को आगे बढ़ाते हुए भट्ट जी कहते हैं।

**व्याख्या** : जिस प्रकार प्रसन्न व खिन्न दोनों ही अवस्थाओं में मनुष्य के व्यवहार का भिन्न होना एक प्राकृतिक नियम है, उसी प्रकार प्रत्येक देश का साहित्य इसी अनुलंघय नियम का पालन करता है, साहित्य मानव के प्रतिपल बदलते भावों का ही दिग्दर्शन है यथा-इसमें कभी तो मनुष्य की क्रोधावस्था में उत्पन्न भावों के दर्शन होते हैं, कभी प्रेम से उत्साहितपूर्ण भाव, कभी दु:ख के कारण हदय से निकले करूणामयी स्वर, कभी मुनष्य द्वारा वीरता के अभियान से गर्वित होकर की जाने वाले सिंह के समान गर्जना, तो कभी उसमें आँसुओं से भरे भावों की अभिव्यक्ति होती है, जो भक्ति रस में निमग्न होकर उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार साहित्य के अन्तर्गत मनुष्य के नैसर्गिक भाव विद्यमान रहते हैं। इसी तथ्य के आधार पर हम साहित्य को जन-सामान्य के भावों को चित्रित करने वाली चित्रपट कह सकते हैं। किसी देश के इतिहास के अध्ययन द्वारा हम उस देश के बाह्य तत्त्वों को ही हृदयगम कर पाएंगे, जबकि उस देश के साहित्याध्ययन से हम वहाँ की जाति, समाज के धर्म, रीति-रिवाज व अन्य आन्तरिक भावों को स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

**विशेष :**

1. लेखक ने संकेत किया है कि साहित्य समाज का दर्पण है।

2. इस गद्यांश में सार्वभौमिक और सार्वकालिक तथ्य का उद्घाटन हुआ है।

3. सूक्तिपरक शैली का प्रयोग हुआ है।

4. शब्द शक्ति-अभिधा।

5. प्रसाद गुण।

6. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का अधिक प्रयोग हुआ है।

3. **"उस समय अब के समान राजनैतिक अत्याचार कुछ न था इससे उनका साहित्य राजनीति की कुटिल उक्ति युक्ति से मलिन नहीं हुआ था। आये हुए आर्यों की नूतन ग्रथित समाज के संस्थापन में सब तरह की अपूर्णता थी यहीं पर सबका निर्वाह अच्छी तरह होता जाता था किसी को किसी कारण से किसी प्रकार का अस्वास्थ्य**

**न था आपस में एक-दूसरे के साथ अब का सा बनावट का कुटिल बर्ताव न था। इसलिए उस समय के उनके साहित्य वेद में भी कृत्रिम भक्ति, कृत्रिम सौहार्द्र, कपट व त्ति, बनावट और चुनाचुनी ने स्थान नहीं पाया। उन आर्यो का धर्म अब के समान गला घोंटने वाला न था।"**

**प ष्ठ-2**

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण साहित्यिक निबंध 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' में से उद्ध त है। भट्ट जी ने आर्यों के साहित्य 'वेद' की मूलभूत प्रव त्तियों का विवेचन-विश्लेषण करते हुए लिखा है।

**व्याख्या** : वर्तमान समय में राजनीतिक अत्याचारों की संख्या में निसिवासर व द्धि हो रही है, लेकिन वेदकालीन साहित्य में इस प्रकार के अत्याचार नहीं होते थे। व्यक्ति स्वार्थभाव से परे और छल-कपट से दूर थे, यही कारण है कि उस समय के साहित्य में ये प्रव त्तियां द ष्टिगोचर नहीं होती। तत्कालीन राजनीति की प्रशंसा के लिए जिस अतिशयोक्तिपूर्ण और आलंकारिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, उस शब्द आडंबर से वट साहित्य मलिन नहीं हुआ था। नवागन्तुक आर्यों को नए तथा ग्रंथित समाज में सब प्रकार की सुविधा न थी, लेकिन फिर भी असद् प्रव त्तियों के लिए कोई स्थान न था। इसके बावजूद भी सबका जीवन यापन अच्छी प्रकार से हो जाता था। किसी भी व्यक्ति का किसी भी कारण से कोई मन-मुटाव न था। इसलिए सबका जीवन सुख का सागर था। वर्तमान युग में जिस प्रकार से छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, बनावटीपन व स्वार्थ प्रव त्ति की झलक स्पष्ट दिखाई देती है, ऐसी परिस्थितियाँ और इस प्रकार के मानुषी भाव उस समय नहीं थे। सभी में एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता का भाव और स्नेह विद्यमान था। यही कारण था कि आर्यों के साहित्य 'वेद' में बनावटी भक्ति, बनावटी भाईचारा, छल-कपट का भाव और इधर-उधर की बातों के लिए स्थान नहीं था। वस्तुतः उस समय के व्यक्तियों में आसुरी व त्तियों के लिए स्थान नहीं था इसीलिए साहित्य में भी दुष्प्रव त्तियों का प्रचलन नहीं हुआ। आर्यो का धर्म सत्य के आचरण पर टिका हुआ था, इसलिए वह किसी भी व्यक्ति का गला काटने वाला नहीं था। उस धर्म में रूढ़ियों-कुरीतियों के लिए कोई स्थान न था। अतः उनके साहित्य के एक-एक अक्षर से भोलापन व सरलता अम त के समान टपकती दिखाई देती है।

1. लेखक ने आर्यो के साहित्य की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।
2. तत्कालीन और वर्तमान परिस्थितियों की तुलना की है।
3. लेखक ने आज की भ्रष्ट राजनीति पर व्यंग्य किया है।
4. अभिधा शब्द-शक्ति का प्रयोग किया है।
5. प्रसाद गुण विद्यमान है।
6. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
7. मुहावरों के मंजुल प्रयोग से भाषा की उत्कृष्टता स्पष्ट उजागर होती है।

4. **"रामायण के समय से महाभारत के समय के लोगों के हृदयगत भाव में कितना अन्तर हो गया था कि रामायण में दो प्रतिद्वन्द्वी भाई इस बात के लिए विवाद करे रहे थे कि यह समस्त राज्य और राज्य-सिंहासन हमारा नहीं है यह सब तुम्हारे हाथ में रहे, अन्त में रामचन्द्र ने भरत को विवाद मे पराभूत कर समस्त साम्राज्य उनके हस्तगत कर आप आनन्द-निर्भर-चित्त हो सस्त्रीक वनवासी हुए। वहीं महाभारत मे दो दायाद भाई इस बात के लिए कलह करने पर सन्नद्ध हुए कि जितने में सुई का अग्रभाग ढँक जाए इतनी प थ्वी भी बिना युद्ध के हम न देंगे।"**

**प ष्ठ-3**

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यांश भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण साहित्यिक निबंध 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' में से उद्ध त है। आलोच्य निबंध में लेखक ने स्पष्ट किया है कि समय के साथ-साथ साहित्य

भी परिवर्तनशील है। रामायण काल के साहित्य मे नैतिकता की छवि समाहित थी जबकि महाभारतकालीन साहित्य में छल-कपट, स्वार्थपरता और नैतिक मूल्यों का ह्रास हो गया था। लेखक ने दोनों प्रकार के साहित्य में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है।

**व्याख्या** : मनुष्य के ह्रदयगत भाव समय-सीमाओं को लाँघने के पश्चात् पूर्णतः बदलते हुए दिखाई देते हैं। इसी तथ्य को लेखक ने रामायण और महाभारत काल के व्यक्तियों के माध्यम से स्पष्ट किया है। रामायण काल में मानवीय मूल्यों, नैतिकता और सद्व त्तियों की प्रमुखता थी, किन्तु महाभारत युगीन समय में असत्यता, छल-कपट और स्वार्थपरता का साम्राज्य स्थापित हो गया था। उदाहरणार्थ-रामायण में दो प्रतिद्विन्द्वी भाई इस विषय को लेकर विवाद कर रहे थे कि यह सारा राज्य और सिंहासन उसका नहीं है। वे एक दूसरे को राजा बनाना चाहते थे। अन्ततः भगवान राम ने भरत को तर्क-वितर्क में पराजित करके उसे ही सम्पूर्ण राज्य और सिंहासन सौंप दिया तथा स्वयं आनन्दित मन से अपनी पत्नी सीता के साथ वन गमन कर गए। वस्तुतः रामायणकालीन साहित्य में मानवीय मूल्य, धर्म, नैतिकता, इज्जत आदि को स्थान प्राप्त था। इसके विपरीत महाभारतयुगीन साहित्य मे इज्जत भाव, मूल्य, सिद्धान्त, धर्म और समाज को भी ताक पर रख दिया था, क्योंकि महाभारत में दो भाई इस बात के लिए विवाद कर रहे थे कि राज्य-सिंहासन पर तेरा नहीं मेरा अधिकार है। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया था कि सुई की नौंक जितनी जमीन घेरती है वह भी बिना युद्ध के नहीं देंगे।

**विशेष** :

1. इस गद्यांश में रामायण और महाभारतकालीन साहित्य में आए हुए नैतिक पतन और मूल्यों में गिरावट के अन्तर को स्पष्ट किया है।
2. लेखक ने महाभारत काल को नैतिक-मूल्यों के पतन का युग घोषित किया है।
3. रामायण काल को नैतिक मूल्यों के आत्मसात का युग कहा है।
4. 'समय के साथ-साथ मानव के ह्रदयगत भावों में भी अन्तर हो जाता हैं।'

   इस सार्वभौमिक सत्य का उद्धाटन हुआ है।
5. शब्द शक्ति-अभिधा।
6. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से प्रस्तुत गद्यांश श्रेष्ठ है।

5. **"जिनकी कविता के प्रधान नायक श्री रामचन्द्र आर्य जाति के प्राण, दया के अम तसागर, गाम्भीर्य और पौरूष दर्प की मानों सजीव प्रतिकृति थे। वे प्रीति और समभाव से महानीच जाति चांडाल तक को गले लगाते थे। उन्होंने लंकेश्वर से प्रबल प्रतिद्विन्द्वी शत्रु को भी कभी त ण के बराबर नहीं समझा। स्वर्ण मंडित सिंहासन और तपोपवन में पर्णकुटी उन्हें एक-सी सुखकारी हुई। उनके स्मितापूर्वाभिभाषित्व और उनकी बोलचाल की मुग्धमाधुरी पर मोहित हो दण्डकारण्य की असभ्य जाति ने भी अपने को उनका दास माना।**

*प ष्ठ-4*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यांश भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण साहित्यिक निबंध 'साहित्य जनसमूह के ह्रदय को विकास है' में से उद्ध त हैं। इसमें लेखक आदि कवि बाल्मीकि और उनकी सुकृति के नायक रामचन्द्र जी के गुणों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि-

**व्याख्या** : संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ व आदिकवि की कविता के मुख्य पात्र श्री रामचन्द्र जी आर्य जाति के सिरमौर व प्राण हैं, दया-भाव उनके ह्रदय में सागर के जल की तरह प्रवाहित है तथा गंभीरता व पौरूषत्व की मानों सजीव प्रतिमूर्ति है। उनके मन में सभी के प्रति प्रेम-भाव है तथा वे सभी प्रणियों को समानता की द ष्टि से देखते थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण उन्होंने निम्नतम जाति चाण्डाल को भी अपने गले से लगाने में संकोच नहीं किया। अर्थात् श्री रामचन्द्र जी किसी भी प्राणी के प्रति भेद-भाव नहीं करते थे। लंका का राजा रावण उनका प्रबल शत्रु था परन्तु उन्होंने उसको या उससे भी अधिक प्रबल शत्रु को भी अपने से

भी हीन तथा नीच नहीं समझा। इसी कारण उन्हें मणिजड़ित सिहांसन तथा घास-फूस से बनी कुठिया में भी एक जैसे सुख की अनुभूति होती थी। अर्थात् वे सुख और दुःख दोनों को समभाव से देखते थे। उनके ओंठों पर चिर-परिचित प्रेम भरी मुस्कान और उनके मधुर वचनों से प्रभावित होकर जंगल की असभ्य और बर्बर जाति ने भी श्री राम को अपना स्वामी मानते हुए, स्वयं उनके अधीन हो गए थे।

**विशेष** :

1. इसमें लेखक ने श्री रामचन्द्र जी के गुणों का प्रभावशाली चित्रण किया है।
2. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. भाषा सरल एवं सुबोध है।
6. मुहावरों का मंजुल प्रयोग किया गया है।

6. **"शत्रु-संहार और निज कार्य-साधन निमित्त व्यास ने महाभारत में जो-जा उपदेश दिये हैं और राजनीति की काठ-ब्योंत जैसी-जैसी दिखाई है उसे सुन बिस्मार्क सरीखे इस समय के राजनीति के मर्म में कुशल पुरूषों की अकिल भी चरने चली जाती होगी। इससे निश्चय होता है कि प्रभुत्व और स्वार्थ-साधन तथ प्रवंचता परवश भारतवर्ष उस समय कहाँ तक उदार भाव समवेदना आदि उत्तम गुणों से विमुख हो गया था।"**

*प ष्ठ-4*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण साहित्यिक निबंध 'साहित्य जनसमूह के हदय का विकास का अन्तर स्पष्ट करने के बाद लेखक इन पंक्तियों के साहित्य की मूल प्रव त्ति क ा अन्तर स्पष्ट करने के बाद लेखक इन पंक्तियों के माध्यम से महाभारत की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कह रहा है।

**व्याख्या** : रामायण में वाल्मीकि ने अपनी कल्पना के प्रधान नायक श्री रामचन्द्र को जिन-जिन अवगुणों से विरक्त रखा, वही अवगुण महाभारत की विशेषता बन गए। महाभारत में महर्षि वेदव्यास ने शत्रुओं का हनन करने में जो नियमों का उल्लंघन दिखाया है, अपनी स्वार्थपूति हेतु जिन नित कार्यो को पूरा करने के लिए जिन-जिन साधनों एवं हथकंडों पर प्रकाश डाला है और उसमें राजनीति अधिकारों का दुरूपयोग किया है, वे सभी कार्य इतने घ णित है। कि संभवतः राजनीतिक के पुरोधा बिस्मार्क भी उनको पढ़कर आश्चर्यचकित हो जाता है कि अपने धूर्तमन के कारण भारत रामायण के समय में वर्णित प्रेम, उदारता, संवेदना आदि सद्गुणों से विमुख हो चुका था। तात्पर्य यह है कि महाभारत काल में भारतीय समाज दुर्गणों को आवरण से ढक चुका था।

**विशेष** :

1. इसमें लेखक ने युधिष्ठिर के 'अश्वत्थामा हतः नरो वा कुंजरो वा' कथन की ओर संकेत करते हुए उसके सत्यवादी स्वरूप पर व्यंग्य किया है।
2. महाभारत युद्ध के मूल कारणों की ओर संकेत किया गया है।
3. गुण-प्रसाद।
4. शब्दशक्ति-लक्षणा, अभिधा।
5. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
6. 'काट-ब्योंत' जैसे मुहावरों के प्रयोग से से भाषा जीवंत हो उठी है।

7. भाषा भावों को वहन करने में पूर्णतः सक्षम है।

**7. "संस्कृत यद्यपि बोलचाल की भाषा इस समय न रह गयी थी, पर हर एक विषय के ग्रंथ इनमें एक से एक बढ़-चढ़कर बनते गये। और साहित्य की तो यहाँ तक तरक्की हुई कि कालिदास आदि कवियों की उक्तियुक्ति से मुकाबले वेद का भद्दा और रूखा साहित्य अत्यन्त फीका मालूम होने लगा। कालिदास की एक-एक उपमा पर और भवभूति, भारवि, श्रीहर्ष, बाण की एक-एक छता पर वेद का उमदा सूक्त, जिनमें हमारे पुराने आर्यों ने मरपच साहित्य की बड़ी भारी कारीगरी दिखलाई है, न्यौछावर हैं।"**

*प ष्ठ-5*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण साहित्यिक निबंध 'साहित्य जनसमूह के ह्दय का धर्म के अनुयायियों ने संस्कृत के स्थान पर प्राकृत भाषा को महत्व दिया जो नंद और चन्द्रगुप्त के काल में और ज्यादा विकसित हुई। इसी तथ्य को आगे बढ़ाते हुए लेखक कहता है।

**व्याख्या** : चन्द्रगुप्त और नंद के समय में संस्कृत की जगह प्राकृत जन-सामान्य की भाषा बन गई थी। लेकिन फिर भी संस्कृत में सभी विषयों के श्रेष्ठ ग्रंथों की रचना हुई है। जहाँ तक साहित्य का प्रश्न है तो उसमें कालिदास जैसे कवियों ने ऐसे-ऐसे ग्रंथों की रचना की है, जिनके सामने प्राकृतिक वातावरण का चित्रण करने वालो वेदों का साहित्य भी फीका और हीन नजर आया। अर्थात् संस्कृत साहित्य के समक्ष प्राकृत साहित्य ठहर भी नहीं सकता, बराबरी की तो बात ही दूर है। वैदिक काल के आर्यों ने अपने कठिन परिश्रम और गहन अनुसंधान के पश्चात् जिन श्रेष्ठ कृतियों की रचना की है, वही कृतियाँ कालिदास की उपमा और भवभूति भारवि, बाण, श्रीहर्ष के सूक्ष्म वर्णन के समक्ष निरर्थक प्रतीत होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राकृत साहित्य की तुलना में संस्कृत साहित्य, कलापक्ष व भावपक्ष दोनों द ष्टियों में श्रेष्ठ है।

**विशेष** :

1. प्राकृत और संस्कृत साहित्य की परस्पर तुलना की गई है।
2. उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है।
3. संस्कृत साहित्य की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है।
4. शब्द शक्ति-अभिधा।
5. गुण-प्रसाद।
6. रस-शांत।
7. तद्भव शब्दावली का अधिक प्रयोग हुआ है।
8. भाषा प्रवाहमयी एवं विषयानुकूल है।

**8. "हमारी एक हिन्दू जाति के असंख्य टुकड़े होते-होते यहाँ तक खण्ड हुए कि अब नए-नए धर्म और मत-प्रवर्त्तक होते ही जाते हैं। ये टुकड़े जिनता वैष्णवों मे अधिक हैं उतना शैव-शाक्तों में नहीं और आपस में एक का दूसरे के साथ मेल और खान-पान जितना कम इनमें है उतना औरों में नहीं। राम के उपासक कृष्ण के उपासक से लड़ते हैं, कृष्ण के उपासक रामापासकों से इत्तिफाक नहीं रखते।**

*प ष्ठ-6*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यांश भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट कृत महत्वपूर्ण साहित्यिक निबंध 'साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास है से अवतरित है। बौद्ध धर्म तांत्रिकों आदि के प्रभाव से विकृत हो गया तथा इससे समस्त हिन्दू समाज भी छिन्न-भिन्न हो चुका था, इसी कारण यह अलग-अलग जाति व सम्प्रदाय में वर्गीकृत हो गया।

**व्याख्या** : लेखक कहता है कि हिन्दू जाति-शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन आदि के रूप में अलग-अलग खंडों में बँटती चली गई। इन अलग-अलग खंडों के धर्म प्रवर्त्तक भी अलग-अलग ही हो गए। अर्थात् इन धर्म प्रवर्त्तकों ने हिन्दू समाज को अनेक टुकडों में बाँट दिया। शैव धर्म इतने खंडों मे विभाजित नहीं हुआ जितने ज्यादा खण्ड वैष्णव धर्म के हो गए थे। वैष्णव धर्म के पुनः अत्यधिक खण्ड होने से इस धर्म के विभिन्न मतानुयायियों में सबसे अधिक मतभेद है और वे आपस में एक-दूसरे की खान-पान की वस्तुओं को भी ग्रहण नहीं करते। वैष्णव धर्म के अन्तर्गत कृष्णोपासक राम के उपासकों से दूर रहते हैं, यह दूरी आपसी इर्षा-भाव के ही कारण है। ऐसी ही स्थिति रामोपासकों की भी है, ये भी कृष्ण उपासकों से दूरी बनाए रखते हैं।

**विशेष** :

1. हिन्दू जाति के ह्रास के कारणों पर प्रकाश डाला गया है।
2. लेखक की मान्यता है कि इन्हीं धर्म प्रवर्त्तकों के कारण आज देश की ऐसी दशा है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. तद्भव शब्दों का प्रयोग भी किया गया है।
6. भाषा प्रवाहमयी और विषयानुकूल है।

## 2. कवियों की उर्मिला-विषय उदासीनता

1. **"जी में आया तो राई का पर्वत कर दिया जी में न आया तो हिमालय की तरफ भी आँख उठाकर न देखा। यह उच्छं खलता या उदासीनता सर्वसाधारण कवियों में तो देखी ही जाती है, आदि कवि तक इससे नहीं बचे। क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी का निषाद द्वारा वध किया गया, देख जिस कवि-शिरोमणि का ह्रदय दुःख से विदीर्ण हो गया, और जिसके मुख से "मानिषाद" इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी वहीं पर दुःख कातर मुनि, रामायण निर्माण करते समय, एक नवपरणीता दुःखिनी वधू को बिल्कुल ही भूल गया।"**

*प ष्ठ-8*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गंद्याश द्विवेदी युग के प्रवर्त्तक एवं भाषा परिष्कारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण निबन्ध 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता से उद्ध त है। आलोच्य निबन्ध में लेखक ने कवियों द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्र उर्मिला के प्रति अपनी सहानुभूति और आत्मीयता प्रकट की है। आदिकवि वाल्मीकि, तुलसीदास व भवभूति आदि ने अपनी कृतियों में उर्मिला से सम्बन्धित एक भी पंक्ति नहीं लिखी, जिससे व्यथित होकर द्विवेदी जी ने अपने ह्रदय की करूणा के दो शब्द उर्मिला के विषय में कहते हुए इस निबंध की स ष्टि की है। लेखक कवियों के इस विचित्र स्वभाव की ओर संकेत करते हुए कहते हैं।

**व्याख्या** : कवि का स्वभाव मूलतः अस्थिर होता है। वे इच्छा होने पर छोटी सी बात को भी शब्दों की इमारत से बड़ा बनाकर दिखा देते हैं और यदि उनकी इच्छा न हो तो वे हिमालय जैसे विशल पर्वत की भी अनदेखी कर देते हैं। रामायण की महत्वपूर्ण पात्रा उर्मिला को सभी ने उपेक्षित कर डाला। इस प्रकार कवियों का समाज बड़ा ही विचित्र और उच्छ खंल होता है। कवियों की यह विशेषता साधारण कवियों में ही नहीं मिलती बल्कि आदि कवि बाल्मीकि भी इस विशेषता से जुड़े हुए है। काम-क्रीड़ा में रत क्रौंच और क्रोचिनी पक्षियों में से एक का वध कर देने पर भी जिस कवि ने उस शिकारी को श्राप दिया और उस पक्षी के करूण-क्रंदन को सुनकर कवि के ह्रदय में दुःख का संचार हो गया। जिसके मुख से 'मानिषाद' आदि काव्य का श्लोक प्रस्फुटित हुआ। जिसका हदय दया व ममता भाव से भरा हुआ था, उस कवि ने भी रामायण जैसे महाकाव्य की रचना करते

समय नववधु उर्मिला के त्याग-तपस्या व दुःखों को सर्वथा स्त्री के प्रति तनिक भी संवेदना प्रकट नहीं की और न ही उसकी दशा का वर्णन किया। वस्तुतः कवियों ने यहाँ अपने उच्छ खंल स्वभाव का ही परिचय दिया है।

**विशेष** :

1. लेखक ने कवियों के उच्छ खंल व विचित्र स्वभाव को स्पष्ट किया है।
2. प्रस्तुत गंद्याश में कवियों की उर्मिला के प्रति उदासीनता को रेखांकित किया गया है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्षणा।
4. गुण-प्रसाद।
5. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
6. मुहावरों के प्रयोग से भाषा में जीवंतता आ गई है।
7. भाषा प्रसंगानुकूल एवं भावों को वहन करने में सक्षम है।

**2. "उसका चरित्र सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया। मुने! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यों? इस सर्वसुखवंचिता के विषय मे इतना पक्षपात-कार्पण्य क्यों? क्या इसलिए कि इसका नाम इतना श्रुतिसुखद, इतना मंजुल, इतना मधुर है और तापसजनों का शरीर सदैव शीतातप सहने के कारण कठोर और कर्कश होता है-पर नहीं, आपका काव्य पढ़ने से तो यही जान पड़ता है कि आप कठोरता प्रेमी नहीं।"**

*प ष्ठ-8*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यवतरण द्विवेदी के प्रवर्त्तक एवं हिन्दी भाषा परिष्कारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण भावात्मक निबन्ध 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता से उद्ध त है। आलोच्य निबंध में लेखन ने कवियों द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्र उर्मिला के प्रति अपनी सहानुभूति और उदासीनता प्रकट की है। इसमें लेखक ने कवि की कठोरता और उर्मिला की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है।

**व्याख्या** : माण्डवी और श्रुतिकीर्ति दोनों ही अपने-अपने पतियों भरत एवं शधुघ्न के साथ ही अयोध्या में थी, अतः उन्हें पति-वियोग की विरह-अग्नि नहीं सहनी पड़ी। केवल उर्मिला ही एक पतिवियोग से पीड़ित ऐसी स्त्री है जिसका चरित्र प्रशंसनीय एवं उल्लेखनीय होने पर भी बाल्मीकि ने रामायण में उसे उपेक्षित ही रखा। लेखक आदि कवि वाल्मीकि को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे मुनि! आपने सभी सुखों से वंचित, देवी के समान उर्मिला के साथ इतना कंजूसी भरा पक्षपात क्यों किया। क्या इसलिए कि उसका नाम इतना सुन्दर, मधुर और सुनने में सुखदायी था, जबकि आप जैसे तपस्वियों का शरीर शीत और ताप को सहते रहने के कारण अत्यधिक कठोर और कर्कश हो गया है। आपकी कृति को पढ़ने से तो ऐसा लगता है जैसे आप कठोर ह्रदय नहीं बल्कि करूणा के सागर है। तात्पर्य यह है कि रामायण को ह्रदयंगत करने से कवि के सह्रदय होने की प्रतीति होती है।

**विशेष** :

1. इसमें लेखक ने कवि वाल्मीकि के काव्य दोष का उद्घाटन किया है।
2. लेखक ने कवियों द्वारा उर्मिला की उपेक्षा एवं तिरस्कार का वर्णन किया है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

6. भाषा संजीव, सरल एवं सुबोध है।

3. **"इतनी घोर दुःखिनी होने पर भी आपने दया न दिखाई। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आँख भर भी न लेने दिया। जिस दिन राम और लक्ष्मण, सीतादेवी के साथ, चलने लगे-जिस दिन उन्होंने अपने पुरत्याग से अयोध्या नगरी को अन्धकार में, नगरवासियों को दुःखोद्धि में और पिता को म त्यु-मुख में निपतित किया, उस दिन भी आपको उर्मिला याद न आई। उसकी क्या दशा थी, वह कहीं पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा, इतनी उपेक्षा!"**

*प ष्ठ-9*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गंद्याश द्विवेदी युग के प्रमुख निबन्धकार एवं हिन्दी भाषा परिष्कारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण भावात्मक निबन्ध 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' से उद्ध त है। इस निबंध में लेखक ने कवियों द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्र उर्मिला के प्रति अपनी सहानुभूति और आत्मीयता प्रकट की है। लेखक कहता है कि बाल्मीकि के काव्य को पढ़कर यह नहीं लगता कि वे एक कठोर हृदय कवि हैं लेकिन फिर भी उन्होंने पति-वियोग से पीड़ित उर्मिला की दशा का चित्रण अपने काव्य में क्यों नहीं किया। अपने इसी कथन के परिप्रेक्ष्य में द्विवेदी जी कहते हैं।

**व्याख्या** : श्री राम के वनगमन प्रसंग से समस्त अयोध्यावासियों में सबसे अधिक पीड़ित उर्मिला ही थी क्योंकि प्रथमतया तो अपनी बड़ी बहन जानकी का बिछोह तथा द्वितीय प्राणाधार पति लक्ष्मण का वियोग भी सहना पड़ रहा था। वस्तुतः सम्पूर्ण अयोध्या में उर्मिला ही सबसे अधिक दुःखी थी, किन्तु हे कवि! फिर भी आपने अपने काव्य से उसे अछूता ही रखा। आपके हृदय में उस दुःखी स्त्री के लिए कोई दया-भाव न था। जब उर्मिला के प्राणाधार पति लक्ष्मण चौदह वर्ष के लिए वनगमन कर रहे थे ऐसे में भी तुमने उसे लक्ष्मण से नही मिलवाया। जिस समय राम, लक्ष्मण और सीता वनवास के लिए चलने लगे तब नगर त्यागने से दुःखी सम्पूर्ण अयोध्या नगरी निराशा के अन्धकार में डूबी हुई थी, समस्त अयोघ्यावासी दुःख के सागर में गोते लगा रहे थे, उनके वनगमन से पिता दशरथ भी म त्यु के मुख में गिरते जा रहे थे, लेकिन कितने दुःख की बात है कि आदि कवि बाल्मीकि को उस दिन भी उस करूणा की मूर्ति उर्मिला की स्म ति नहीं आई। उसकी अपने पति के वियोग में क्या दशा हुई होगी, यह भी भुला बैठे। अपनी बहन जानकी से बिछुड़कर वह कैसी अवस्था में जी रही थी, पति-वियोग के कारण कहाँ पड़ी अश्रु बहा रही थी आदि किसी भी अवस्था को चित्रण न करके कवि ने उर्मिला के प्रति अन्याय ही किया है। भावार्थ यह है कि साधारण कवियों ने ही नहीं, रामायण जैसे महान ग्रंथ के रचनाकार ने भी उर्मिला के प्रति उपेक्षा एवं उदासीनता प्रकट की है।

**विशेष** :

1. रामायण की उपेक्षित पात्र उर्मिला के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।
2. कवियों के उच्छ ंखल स्वभाव को भी रेखांकित किया गया है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्षणा।
4. गुण-प्रसाद।
5. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
6. मुहावरों के प्रयोग से भाषा में रोचकता आ गई है।
7. भाषा भावानुकूल एक प्रवाहमयी है।

4. **"उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम-जानकी के लिए दे डाला और यह आत्मोत्सर्ग उसने तब किया जब उसे ब्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था। उसके अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी 14 वर्ष पति-वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। नवोढ़त्व को प्राप्त होते ही जिस उर्मिला ने, रामचन्द्र और जानकी के लिए, अपने**

**सुख-सर्वस्व पर पानी डाल दिया उसी के लिए अन्तर्दर्शी आदि कवि के शब्द-भण्डार में दरिद्रता!"**

*प ष्ठ-9*

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के प्रवर्तक एवं हिन्दी भाषा परिष्कारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण निबंध 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' से उद्ध त है। आलोच्य निबंध में लेखक ने कवियों द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्र उर्मिला के प्रति अपनी सहानुभूति और आत्मीयता प्रकट की है। इसी संदर्भ में द्विवेदी जी आगे कहते हैं।

**व्याख्या** : लक्ष्मण ने अपने आराध्य देव श्री राम के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण और सेवाभाव से युक्त होकर चौदह वर्ष तक बनवास जाने के लिए तत्पर हो गए। उन्होंने सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं का परित्याग कर अपना शरीर श्री राम के चरणों मे अर्पित कर दिया, इसलिए लक्ष्मण महान है। लेकिन उर्मिला ने तो उससे भी बढ़कर अपने स्वार्थ का त्याग किया है। उर्मिला अपने पति लक्ष्मण को अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम करती थी, अभी उसके विवाह को सम्पन्न हुए अल्पावधि ही व्यतीत हुई थी कि उसने अपने समस्त सुखों, स्वार्थ आदि को त्याग कर अपने प्राणाधार पति को सीता-राम के चरणों मे समर्पित कर दिया। अतः उनका त्याग लक्ष्मण के त्याग से भी कहीं अधिक महान है। वास्तव में उसने अपने सबसे अच्छे सुखद सांसारिक क्षणों का त्याग कर दिया। जो भौतिक सुख उसे विवाहोपरान्त मिलने चाहिए थे, जैसा उन क्षणों में आनन्द प्राप्त होता, वही आनन्द, वही सुख चौदह वर्ष पश्चात के मिलन में नहीं है। कारण स्पष्ट है रति-क्रिया या वैवाहिक सुख के लिए अल्हड़ उम्र ही उचित होती है, आयु बढ़ने के साथ-साथ वुद्धि भी परिपक्व हो जाती है और मन में उठने वाली वे उमगें भी शान्ति के मार्ग पर अग्रसर होने लगती हैं। लेखक वाल्मीकि के काव्य विषयक दोष को उजागर करते हुए कहता है कि उनकी रचना के मूलाधार राम व सीता की सेवा भावना के लिए जिस उर्मिला ने अपने स्वार्थ का परित्याग कर अपने पति को उनके साथ वन में भेज दिया और स्वयं दुःखों की काली छाया में पड़ी अश्रुपात करती रही, उसी उर्मिला की करूण दशा का चित्रण करने के लिए कवि ने अपनी कृति में शब्दों की इतनी दरिद्रता दिखाई कि उर्मिला के विषय में दो शब्द भी नहीं लिख सके। वस्तुतः उर्मिला के महान चरित्र को इन कवियों ने अपेक्षित ही किया है।

**विशेष** :

1. इसमें उर्मिला के व्यक्तित्त्व के उज्जवल गुणों पर प्रकाश डाला है।
2. यहाँ उर्मिला की त्याग-भावना के दर्शन होते हैं।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. शैली-भावात्मक।
6. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
7. मुहावरों के प्रयोग से भाषा सजीव हो उठी है।

5. **"उर्मिला भी पतिपरायणता-धर्म को अच्छी तरह जानती थी। पर उसने वन-गमन की हठ, जान-बूझ कर, नहीं की। यदि वह भी साथ जाने को तैयार होती, तो लक्ष्मण को अपने अग्रज राम के साथ उसे ले जाने में संकोच होता और उर्मिला के कारण लक्ष्मण अपने उस आराध्य-युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर सकते। यह बात उसके चरित्र की बहुत बड़ी महत्ता की बोधक है। बाल्मीकि को ऐसी उच्चाशय रमणी का विस्मरण होते देख किस कवितामर्मज्ञ को आन्तरिक वेदना न होगी।**

*प ष्ठ-9-10*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार एवं हिन्दी भाषा परिष्कारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण निबंध 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता से उद्ध त है। प्रस्तुत निबंध में लेखक ने कवियों द्वार उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्र उर्मिला के प्रति अपने सहानुभूति एवं आत्मीयता प्रकट की है। आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी महानकृति

रामायण में उर्मिला के विषय में एक शब्द भी नहीं लिखा, यद्यपि त्याग उर्मिला ने भी किया था। सीता की छोटी बहन होने के कारण उर्मिला को भी पति-प्रेम और पति-पूजा की शिक्षा साथ-साथ मिली है। इसी वक्तव्य को आगे बढ़ाते हुए लेखक कहता है।

**व्याख्या** : उर्मिला और सीता दोनों ही एक ही परिवार और एक ही संस्कार में पली-बढ़ी थीं अतः स्वाभाविक रूप से उर्मिला में भी वही भाव अनुस्थूत थे। उसमें अपने पति के प्रति कर्त्तव्य का निर्वाह करने की भावना जानकी के समान थी लेकिन उर्मिला ने अपने पति के साथ वनवास जाने की वैसी हठ जानबूझकर नहीं की जैसी सीता ने राम के समक्ष की थी। वह इस बात को भली-भाँति जानती थी कि वन जाने की हठ की तो, प्रथम तो यह कि लक्ष्मण के साथ जाती तो लक्ष्मण को अपने बड़े भाई राम के साथ उसे ले जाने में संकोच होती, क्योंकि लज्जा और मर्यादा का प्रश्न है, दूसरा यदि लक्ष्मण उर्मिला को अपने साथ ले जाते तो अपने आराध्य देव राम-सीता की सेवा अच्छी प्रकार से नहीं कर पाते। यही सोचकर उर्मिला ने अपने बहन के पद-चिह्नों का अनुकरण नहीं किया। यही तथ्य उसके चरित्र की महानता का द्योतक है। ऐसे महान विचारों वाली स्त्री के विषय में वाल्मीकि ने अपनी रचना में कुछ भी नहीं लिखा। चरित्र के उच्च आसन पर विराजमान ऐसी स्त्री को विस्मरण होते देखकर कविता का मर्म जानने वाले प्रत्येक सहृदय को आन्तरिक वेदना अवश्य होगी। कवि को ऐसी स्त्री के विषय मे अपने काव्य में अवश्य स्थान देना चाहिए था।

**विशेष** :

1. प्रस्तुत गद्यांश में लक्ष्मण की राम-सीता के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त होती है।
2. कवियों द्वारा तिरस्कृत एवं उपेक्षित पात्र उर्मिला की ओर पाठक-वर्ग का ध्यान खींचा गया है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. इसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
6. भाषा भावों को वहन करने में पूर्णतः सक्षम है।

**6. "आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक "लषण" पर इतनी सख्ती क्यों? अपने कमण्डलु के करूणावारि की एक भी बूँद आपने उर्मिला के लिए न रखी। सारा का सारा कमण्डलू सीता को समर्पण कर दिया। एक ही चौपाई में उर्मिला की दशा का वर्णन कर देते। अथवा उसी के मुँह से कुछ कहलाते। पाठक सुन तो लेते कि राम-जानकी के वनवास और अपने पति के वियोग के सम्बन्ध में क्या-क्या भावनाएँ उसके कोमल ह्रदय में उत्पन्न हुई थीं।"**

प ष्ठ-*10*

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार एवं हिन्दी भाषा परिष्कारक आचार्य महावीर प्रसार द्विवेदी कृत उनके महत्वपूर्ण निबंध 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' से अवतरित है। आलोच्य निबंध में लेखक ने कवियों द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्र उर्मिला के प्रति अपनी सहानुभूति एवं आत्मीयता प्रकट की है। इन पंक्तियों में लेखक ने तुलसीदास द्वारा अपनी महान रचना 'रामचरितमानस' में उर्मिला की उपेक्षा किए जाने पर अपना क्षोभ प्रकट किया है।

**व्याख्या** : द्विवेदी जी तुलसीदास को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि आपने अपने आराध्य देव श्री राम के अनन्य सेवक लक्ष्मण के वन-गमन सम्बन्धी प्रसंग को अपने महान ग्रंथ में उद्घाटित न करके पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया है। दूसरे, लक्ष्मण को चौदह वर्ष का वनवास जाते समय भी उसे अपनी पत्नी उर्मिला से मिलने नहीं दिया। अतः हे कवि! लक्ष्मण के प्रति इतनी कठोरता उचित नहीं है। वास्तव में गोस्वामी जी ने अपनी भावना रूपी कमण्डल में रखे करूणा रूपी जल की एक बूँद भी उर्मिला को न दी। अर्थात् तुलसीदास के ह्रदय में व्याप्त करूणा का एक अंश भी उर्मिला को न मिला। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण भावनाएँ करूणा

प्रतिभा आदि सीता के चरित्र-चित्रण में लगा दी। द्विवेदी जी कहते हैं कि यदि ज्यादा सम्भव न था तो कम से कम एक ही चौपाई मे उर्मिला की दयनीय स्थिति का चित्र खींच देते, या फिर लक्ष्मण के समक्ष उसके अपने मुख से एक संवाद ही निकलवा देते, लेकिन दुःख की बात है कि उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। यदि तुलसीदास जी ऐसा कर देते तो पाठकों को उर्मिला की दयनीय स्थिति का पता चला जाता। पाठक वर्ग उसके मुख से सुन लेते कि राम-सीता के वनवास जाने और अपने पति लक्ष्मण के वियोग के सम्बन्ध में उसके हृदय में कौन-कौन से भाव प्रस्फुटित हो रहे हैं। लेकिन तुलसी ने तो उर्मिला को जनकपुर से अयोध्या पहुँचाकर एकदम भूला दिया, जो उचित नहीं था।

**विशेष** :

1. इसमें तुलसीदास का उर्मिला के प्रति उपेक्षा स्पष्ट होता है।
2. तुलसीदास के काव्य-दोष पर भी प्रकाश डाला गया है।
3. इस गद्यांश मे लक्ष्मण के प्रति अन्याय का भी संकेत मिलता है।
4. तत्सम् शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
5. शब्द-शक्ति-अभिधा।
6. गुण-प्रसाद।
7. 'सख्ती' जैसे फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

## 3. मजदूरी और प्रेम

1. **"ब्रह्माहुति से जगत पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरी प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में, फल-फल में बिखर रहा है। व क्षों की तरह उसका भी जीवन एक प्रकार का मौन जीवन है। वायु, जल, प थ्वी, तेज और आकाश की निरोगता इसी के हिस्से में है। विद्या यह नहीं पढ़ा, जप और तप यह नहीं करता, सन्ध्या-वन्दादि इसे नहीं आते, ज्ञान, ध्यान का इसे पता नहीं, मन्दिर, मस्जिद, गिरजे से इसे कोई सरोकार नहीं, केवल साग-पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है।"**

*प ष्ठ-15*

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के सुप्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्णसिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध के प्रथम खण्ड 'हल चलाने वाले का जीवन' से अवतरित है। आलोच्य निबंध में लेखक ने श्रम को एक नैतिक आध्यात्मिक मूल्यवत्ता प्रदान की है। यहाँ पर लेखक ने किसान के जीवन का वर्णन करते हुए लिखा है।

**व्याख्या** : पौराणिक कथाओं के अनुसार यह माना जाता है कि यह समस्त विश्व ब्रह्मा की आहुति से उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार ब्रह्मा के समान किसान भी इस संसार में अनाज पैदा करता है। अर्थात् एक जीवन देता है और दूसरा उस जीवन के अस्तित्व को कायम रखता है। खेत में कार्य करके, अपनी परिश्रम के बलबुते पर वह ईश्वर से नाता जोड़े हुए है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति परिश्रम करता है, ईश्वर भी उसी की मदद करता है। किसान का जीवन फसल के प्रत्येक पत्ते, फूल और फल आदि में द ष्टिगोचर होता है। अर्थात् किसान जीवन भर परिश्रम करता है, उसी परिश्रम का परिणाम लहलाते हुए खेत, हरे-भरे बाग के रूप में हमारे समक्ष होते है। किसान की तुलना एक व क्ष से की जा सकती है, जिस प्रकार एक व क्ष दूसरों को छाया, फूल-फल लकड़ी आदि प्रदान करता है लेकिन अपना बखान कहीं नहीं करता, उसी प्रकार किसान भी अपनी मेहनत का राग अलापता नहीं फिरता। उसका शरीर वायु, जल, प थ्वी, तेज और आकाश आदि से शक्ति ग्रहण करके निरोग रहता है। किसान का जीवन आडम्बरों, छल-प्रपंचों से दूर होता है इसलिए वह न तो विद्या ग्रहण करता है, न किसी आराध्य देव का जप और तपस्या करता है, न तो विद्या सुबह-शाम प्रभु का नाम लेता है। वह मंदिर और मस्जिद में भी नहीं

जाता बल्कि वह तो साधारण भोजन सब्जी-रोटी खाकर अपना पेट भरता है। वस्तुतः किसान बनावटी जीवन न जीकर यथार्थ के धरातल पर जीवन व्यतीत करता है।

**विशेष** :

1. प्रस्तुत गद्यांश में किसान के जीवन की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।
2. किसान कृत्रिम जीवन की अपेक्षा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना अधिक पसंद करता है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. संस्कृत और फारसी के शब्दों का प्रयोग किया गया है।
6. भाषा भावानुकूल एवं प्रवाहमयी है।

2. **"जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं झुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते हैं तब मुझे मालूम होता है कि नंगे सिर, नंगे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लँगोटी कमर में, एक काली कमली कन्धे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिए हुए गौओं का मित्र, बैलों का हमजोली, पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठाने वाला, भूखों और नंगों को पालने वाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।**

प ष्ठ-*16*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युग के सुप्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्णसिंह कृत 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध के प्रथम खण्ड 'हल चलाने वाले का जीवन' से उद्ध त है। प्रस्तुत निबंध में लेखक ने श्रम को एक नैतिक आध्यात्मिक मूल्यवता प्रदान की है। इस गद्यांश में लेखक ने किसान के जीवन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है।

**व्याख्या** : जब कभी मैं इन बिना मुकुट-ताजों के गोपालस्वरूप किसानों के दर्शन करता हूँ तो मेरा मस्तक श्रद्धा से स्वयं ही झुक जाता है, क्योंकि उनके मन में किसी के प्रति न तो कोई छल-कपट है और न घ णा तथा वे साधारण जीवन व्यतीत करते है। जब मुझे किसी साधु-संन्यायी के दर्शन होते हैं तो मुझे किसान का जीवन भी उन्हीं के समान लगता है। नंगे सिर, सिर पर एक टोपी, कमर में लंगोटी, कन्धें पर काला कम्बल और एक लम्बी लाठी लिए हुए गायों का मित्र व रखवाला, बैलों का साथी तथा पक्षियों का हमराज, महाराजाओं को अन्न प्रदान करने वाला, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बैठाने वाला किसान ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसान दिन-रात मेहनत करके, गर्मी में नंगे सिर, काँटों मे नंगे पैर और एक कम्बल में गुजर करने वाला राजाओं का भी पेट भरता है एवं उनके खजाने भी भरता रहता है। वह स्वयं अभावमय जीवन जीकर दूसरों को सुख-सुविधाएँ उपलब्ध कराता है। वह इस संसार रूपी बगीचे का माली है, क्योंकि वह सभी व्यक्तियों के लिए अन्न उपलब्ध कराता है। किसान ही खेतों का वास्तविक एवं सच्चा स्वामी है। अतः किसान फकीरों की तरह स्वयं के अस्तित्व को समाप्त कर दूसरों का पालन-पोषण करता रहता है।

**विशेष** :

1. इसमें किसान के जीवन की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।
2. किसान की त्याग-भावना को भी रेखांकित किया गया है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. संस्कृत-उर्दू मिश्रित शब्दावली अवलोकनीय है।
6. भाषा सजीव, सरल एवं भावानुकूल है।

**3. "इस माता और इस बहन की सिली हुई कमीज मेरे लिये मेरे शरीर का नहीं मेरी आत्मा का वस्त्र है। इसका पहनना मेरी तीर्थ-यात्रा है। इस कमीज में उस विधवा के सुख-दुःख, प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन-रूपिणी गंगा की बाढ़ चली जा रही है। ऐसी मजदूरी और ऐसा काम-प्रार्थना, सन्ध्या और नमाज से क्या कम है?"**

प ष्ठ- *18*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युग के सुप्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्णसिंह कृत 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध के त तीय खण्ड 'मजदूरी और प्रेम' से अवतरित है। आलोच्य निबंध में परिश्रम को उदात्त स्थान प्रदान करते हुए एक नैतिक आध्यात्मिक मूल्यवता प्रदान की गई है। इन पंक्तियों में लेखक एक विधवा स्त्री के कठिन परिश्रम का वर्णन करते हुए कहता है।

**व्याख्या** : उस अनाथ विधवा ने सारी रात बैठकर, अपने सुखों का त्याग करके एक कमीज की सिलाई की है। यह औरत मेरे लिए माँ और बहन से कम नहीं है। इसके द्वारा सिली हुई यह कमीज मेरे लिए शरीर का वस्त्र नहीं, बल्कि आत्मा का वस्त्र है, क्योंकि इस अनाथ विधवा ने इसे अपने परिश्रम से सीलकर उसके इतना पवित्र बना दिया है कि उस कमीज का संबंध आत्मा के साथ स्थापित हो गया है। वह दिन-रात भूखी रहकर कमीज सीती है, अतः यह कमीज पहने से उसी प्रकार दुःखों का निवारण हो जाता है जैसे तीर्थ-यात्रा पर जाने से होता है। इस कमीज में उस विधवा के सुख-दुःख, प्रेम और आत्मा की पवित्रता आदि मिले हुए हैं तथा वह गंगा मैया की भाँति सभी प्रकार के भौतिक दुःखों से मुक्ति दिलाने वाली है। इस प्रकार की परिश्रमयुक्त मजदूरी जिसमें काम के प्रति सच्ची निष्ठा हो, समर्पण और आत्मीयता का भाव हो, वह प्रभु-प्रार्थना, सन्ध्या तथा नमाज आदि से किसी भी रूप में कम नहीं है। अतः जो कर्म करता है, ईश्वर भी उसी की याचना को स्वीकार करता है।

**विशेष** :

1. लेखक ने परिश्रमी व्यक्ति के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त की है।
2. परिश्रम नमाज, ईश्वर, प्रार्थना और सन्ध्या के समकक्ष माना है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्षणा।
4. गुण-प्रसाद।
5. रस-शांत।
6. 'नमाज' जैसे उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।
7. प्रस्तुत गद्यांश भाषा, भाव और शैली की द ष्टि से अत्युत्तम है।

**4. "हाथ की मेहनत से चीज में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज में कहाँ। जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके इर्द-गिर्द की घास-पात खोदकर में साफ करता हूँ उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बन्द किये हुए अचार या मुरब्बे से नहीं आता। मेरा विश्वास है कि जिस चीज में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं, उसमें उसके ह्दय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्म रूप से मिल जाती है और उसमें मूर्दे को जिन्दा करने की शक्ति आ जाती है।**

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के सुप्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्णसिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध के खण्ड 'प्रेम-मजदूरी' से लिया गया है। प्रस्तुत निबंध से परिश्रम का उदात स्थान प्रदान करते हुए एक नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यवता प्रदान की गई है। लेखक हाथ से मेहनत करके बनाई हुई वस्तुओं की महता स्वीकारते हुए लिखता है।

**व्याख्या** : हाथ से परिश्रम करके बनाई हुई वस्तु में एक अलग ही प्रकार की आनन्दोपलब्धि होती है। मशीनों द्वारा उत्पादित ऐसी वस्तुओं में आनन्द रूपी रस नहीं मिल सकता, क्योंकि हाथ से निर्मित वस्तु में बनाने वाले का प्रेम एवं आत्मीयता अनुस्यूत रहती है। लेखक अपने आशय को उदाहरण देकर स्पष्ट करते हुए कहता है कि यदि मैं अपने हाथ से आलू बोता हूँ, उसमें

खाद पानी देता हूँ और उसके पास उगी हुई खरपतवार साफ करता हूँ, तब समय आने पर जो आलू मुझे प्राप्त होंगे, उन्हें खाने में मुझे जो रसानुभूति होती है वह टीन बन्द अचार या मुरब्बे में नहीं मिलती। उस आलू में मेरा परिश्रम और आत्मीयता मिली हुई है जबकि अचार-मुरब्बा मशीनों से बना हुआ है। मेरा विश्वास है कि जिस वस्तु के निर्माण में मनुष्य के प्रेम से परिपूर्ण हाथ लगते हैं, वह वस्तु रसमय हो जाती है। उसमें उत्पादक के हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्मरूप से मिल जाती है। प्रेम और पवित्रता से भरी ऐसी वस्तुएँ निष्प्राण को भी प्राणवान कर देती हैं। अतः हाथ से निर्मित वस्तुओं में प्रेम-भाव विद्यमान रहता है जबकि मशीनों से निर्मित वस्तु के प्रति व्यापारिक द ष्टिकोण रहता है।

**विशेष** :

1. लेखक ने मानव हस्त से उत्पादित वस्तुओं को महत्व दिया है।
2. इसमें मशीनों से निर्मित वस्तुओं को नकारा गया है।
3. इस गद्यांश में श्रम की महत्ता को स्थापित किया गया है।
4. शब्द शक्ति-अभिधा।
5. गुण-प्रसाद।
6. इसमें तद्भव शब्दावली के साथ-साथ उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया गया है।
7. भाषा प्रवाहमयी एवं विषयानुकूल है।

5. **"आजकल भाप की कलों का दाम तो हजारों रूपया है, परन्तु मनुष्य कौड़ी के सौ-सौ बिकते हैं। सोने और चाँदी की प्राप्ति से जीवन का आनन्द नहीं मिल सकता। सच्चा आनन्द तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाए तो फिर स्वर्गप्राप्ति की इच्छा नहीं, मनुष्य-पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है। मन्दिर और गिरजे में क्या रखा है? ईट, पत्थर, चूना कुछ की कहो-आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मन्दिर, मस्ज़िद, गिरजा और पौथी में न करेंगें। अब तो यही इरादा है कि मनुष्य की अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे।"**

*प ष्ठ-19-20*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युग के सुप्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्णसिंह कृत 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध के खण्ड 'मजदूरी और कला' से उद्ध त है। आलोच्य निबंध में परिश्रम को उदात्त स्थान प्रदान करते हुए नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यवत्ता प्रदान की गई है। इन पंक्तियों में लेखक ने मशीनी सभ्यता का विरोध किया है।

**व्याख्या** : सम्प्रति भाप की मशीनों से बनी हुई वस्तुओं का मूल्य तो हजारों रूपये है जबकि मानव एक कौड़ी के सौ-सौ बिकते है। आज के वैज्ञानिक युग में मानव का कोई मूल्य नहीं है। जीवन में परिश्रम करके सच्ची शांति और सुख मिल सकता है जबकि सोना-चाँदी अर्जित करने में कोई सुख नहीं मिलता। लेखक कहता है यदि मैं अपने कार्य में लगा रहूँ अथवा मुझे कुछ करने के लिए कार्य मिलता रहे तो मुझे स्वर्ग प्राप्ति की भी इच्छा नहीं होगी। मेरे लिए मानव-पूजा ही ईश्वर-पूजा है, क्योंकि मानव के सुकर्मों द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। अगर हमें सच्चे ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो ईट, पत्थर और चूने से बनी मूर्ति की पूजा, मन्दिर व गिरजे में जाना, ज्ञान के ग्रन्थ-श्रीमद्भागवत, कुरान और बाइबिल आदि सभी का त्याग कर परिश्रमी मनुष्य की पूजा करेंगें, क्योंकि ईश्वर तो मजदूर के हृदय में निवास करता है। यही वास्तविक कला और उचित धर्म है।

**विशेष** :

1. इस गद्यांश में श्रम के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।
2. लेखक मानव-पूजा को ही सच्ची ईश्वर-पूजा मानता है।
3. लोकोक्ति के प्रयोग से भाषा सजीव हो उठी है।

4. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्षणा।

5. गुण-प्रसाद।

6. भाषा सहज, सरल और भावों को वहन करने में पूर्णतः सक्षम है।

**6. "जाति-पाँति, रूप-रंग और नाम-धाम तथा बाप-दादे का नाम पूछे बिना ही अपने आप को किसी के हवाले कर देना प्रेम-धर्म का तत्व है। जिस समाज में इस तरह के प्रेम-धर्म का राज्य होता है। उसका हर कोई हर किसी को बिना उसका नाम-धाम पूछे ही पहचानता है, क्योंकि पूछने वाले का कुल और उसकी जात वहाँ वही होती है जो उसकी, जिससे कि वह मिलता है। वहाँ सब लोग एक ही माता-पिता से पैदा हुए भाई-बहन हैं। अपने ही भाई-बहनों के माता-पिता का नाम पूछना क्या पागलपन से कम समझा जा सकता है?**

*प ष्ठ-22*

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के सुप्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्णसिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' के खण्ड 'मजदूरी और फकीरी' से लिया गया है। आलोच्य निबंध में लेखक ने श्रम को एक नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यवत्ता प्रदान की है। इन पंक्तियों में लेखक ने सच्चे प्रेम की स्थापना पर बल और उसके महत्व का प्रतिपादन किया है।

**व्याख्या** : प्रेम रूपी धर्म का मूलतत्व यह है कि व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की जाति, वर्ण, नाम और वंश आदि को जाने बिना ही उसमें मित्रता कर लेता है। जिस समय में इस प्रकार के प्रेम रूपी धर्म का प्रचलन होता है वहाँ प्रत्येक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का नाम, पता आदि पूछे बिना ही पहचान जाता है। अर्थात् मानव का मानव के बीच प्रेम सम्बन्ध ही आपसी पहचान है। जब कोई अपरिचित व्यक्ति आपस मे मिलते हैं तो उन दोनों का वंश और जाति भी एक ही होती है-प्रेम। ऐसे समाज के लोग एक ही माता-पिता की सन्तान हैं, अर्थात् वे परमपिता परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं। फिर भी यदि कोई व्यक्ति अपने ही भाई-बहनों से उसके माता-पिता का नाम पूछे तो वह मूर्ख ही कहलाएगा, क्योंकि हम सब का पिता ईश्वर है और हम सब उसकी ही सन्तान है।

**विशेष** :

1. लेखक ने समाज में प्रेम रूपी धर्म को चलाने का आग्रह किया है।

2. इसमें परमशक्ति परमात्मा के वर्चस्व को स्वीकार किया है।

3. शब्दशक्ति-अभिधा।

4. गुण-प्रसाद।

5. तद्भव शब्दावली के साथ-साथ उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

6. भाषा भावों को वहन करने में पूर्णतः सक्षम है।

**7. "पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होने वाला है। वहाँ के गम्भीर विचार वाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर लेने वाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस नये प्रभात का पूर्व ज्ञान हुआ है। और, हो क्यों न? इंजनों के पहिये के नीचे दबकर वहाँ वालों के भाई-बहन नहीं-नहीं उनकी सारी जाति पिस गई, उनके जीवन के धुरे टूट गये, उनका समस्त धन घरों से निकलकर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया। साधारण लोग मर रहे हैं, मजदूरों के हाथ-पाँव फट रहे हैं, लहू चल रहा है। सरदी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ दरिद्रता का अखण्ड राज्य है, दूसरी तरफ अमीरी का चरम द श्य।"**

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यांश द्विवेदी युग के सुप्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्णसिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' निबंध के खण्ड-'पश्चिमी सभ्यता का एक नया आदर्श' से अवतरित है। पाश्चात्य देशों मे जहाँ पहले मशीनों से बनी हुई वस्तुओं को महत्व

दिया जाता था अब वहाँ के लोगों की धारणा और उनके चिन्तन में बदलाव आ रहा है। लेखक पश्चिमी देशों मे प्रयुक्त मशीनों के अवगुणों पर प्रकाश डालते हुए कहता है।

**व्याख्या** : पाश्चात्य देशों में समाज एक नए परिवर्तन को आत्मसात कर रहा है। उन देशों के चिंतक, दार्शनिक, बुद्धिजीवी, वर्ग इस नए परिवर्तन के स्वागत के लिए बाँहे फैलाए खड़े हैं। अर्थात् ये चिंतक मशीन से बनी वस्तुओं के स्थान पर मनुष्य के हाथ से बनी वस्तुओं के प्रयोग का महत्व समझा रहे हैं। जिस प्रकार पक्षियों को सूर्य के उदय होने से पहले ही प्रभात का आभास हो जाता है उसी प्रकार इस वर्ग को भी नए परिवर्तन रूपी प्रभात का आभास हो चुका है। आखिर यह आभास क्यों न हो, क्योंकि मशीनों के अत्यधिक प्रयोग के कारण बेरोजगारी फैली है और समाज की मूल व्यवस्था भी छिन्न-भिन्न हो गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि मजदूरों को उद्योग-धन्धों से हटा दिया गया है और उनका स्थान मशीनों ने ले लिया है। उनके जीवन के घुरे टूट गऐ हैं, अर्थात् जीविका के साधन समाप्त हो गए हैं। समाज का सारा धन कुछ मुख्य उद्योगपतियों के पास एकत्र होता जा रहा है। समाज के मजदूर व्यक्ति बेरोजगारी, भूख, शोषण आदि के कारण म त्यु को प्राप्त हो रहे हैं। अत्यधिक शोषण के कारण उनके पैरों से रक्त प्रवाहित हो रहा है। उन मजदूरों के पास खाने के लिए न तो पर्याप्त भोजन है और न ही पहनने के लिए वस्त्र है। मशीनी युग के कारण गरीब और ज्यादा गरीब हो रहे हैं तथा अमीर और ज्यादा सम्पन्न। आज मशीनों के दुष्परिणाम भी हमारे समक्ष आ रहे हैं।

**विशेष** :

1. इस गद्यांश में मशीनी युग पर व्यंग्य किया गया है।
2. समाज पर पड़ने वाले मशीनों के कुप्रभाव को रेखांकित किया गया है।
3. शब्दशक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. तद्भव शब्दावली के साथ-साथ 'इंजन' जैसे अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।
6. भाषा विषयानुकूल है।

## 4. कविता क्या है?

1. **"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है।, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मुनष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते है। और कर्मयोग और ज्ञान योग का समकक्ष मानते हैं।"**

*प ष्ठ - 31*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी निबंध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है' नामक प्रबन्धात्मक निबन्ध में से अवतरित हैं। इसमें शुक्ल जी ने कविता की परिभाषा देते हुए उसके विविध आयामों का उद्घाटन किया है।

**व्याख्या** : लेखक कहता है कि जब व्यक्ति की आत्मा सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाती है, तब आत्मा की उस अवस्था को ज्ञान दशा कहते हैं। अर्थात् सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर मनुष्य को वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार जब मनुष्य का हृदय स्वार्थ के बन्धनों से विरक्त होकर अर्थात् अपना-पराया, सुख-दुःख, लाभ-हानि को भूल जाता है तब उसके हृदय की उस अवस्था को रस दशा कहते हैं। हृदय को रस-दशा मे लाने के लिए मनुष्य ने अपनी वाणी से संबंधित कुछ नियमों की रचना की है। इन नियमों की कसौटी पर खरी उतरने वाली किसी भी व्यक्ति की वाणी कविता कहलाती है। कवि की इस शब्द-साधना को हम भावयोग कहते हैं, जो कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष है। अर्थात् मनुष्य के मन में उठने

वाले भावों के उद्रेक से, शब्दों द्वारा कविता का स जन होता है, इन्हें ही भावयोग कहते हैं। जिस प्रकार कर्मशील व्यक्ति अनासक्त भाव से कार्य में लीन रहता है और ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान-साधना द्वारा परम तत्त्व को प्राप्त करता है, उसी प्रकार कवि भी निर्वैयक्तिक होकर भावाभिव्यक्ति द्वारा कविता का स जन करता है।

**विशेषः**

1. इसमें शुक्ल जी द्वारा काव्य की मौलिक परिभाषा दी गई है।
2. इस गूढ़ विषय से शुक्ल जी के भारतीय साहित्यशास्त्र के सूक्ष्म ज्ञान का परिचय मिलता है।
3. भाषा संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से युक्त तथा व्याकरण सम्भत है।
4. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्षणा।
5. गुण-प्रसाद।
6. पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से प्रामाणिकता आ गई है।
7. भाषा प्रसंगानुकूल एवं कसावट से युक्त है।

**2. "कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता हैं वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष स ष्टि के साथ हमारे सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।"**

*प ष्ठ-31*

**प्रसंगः** प्रस्तुत गद्यांश हिन्दी निबंध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'कविता क्या है' नामक प्रबन्धात्मक निबंध में से अवतरित है। इन पंक्तियों में लेखक कविता के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहता है।

**व्याख्याः** कविता मनुष्य के हृदय को रसावस्था तक पहुँचा देती है। वहाँ पहुँचकर व्यक्ति स्वयं के राग-द्वेषों से मुक्त हो जाता है। उसकी भावनाएँ व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठाकर लोक हृदय के साथ तादात्कार कर लेती हैं। इस अवस्था में वह संसार की अनेक गतिविधियों को, संघर्षों, जय-पराजय, जीवन के रहस्यों को अपने सुख-दुःख से न जोड़कर अनासक्त रूप से अनुभव करता है। इस सामान्य अनुभूति पर पहुँचे हुए मनुष्य को व्यक्तिगत-स्वार्थों का बोध नहीं रहता। वह अपने व्यक्तित्व को जन-सामान्य में विलीन कर देता है। वह सामान्यजन के सुख-दुःख में सुखी-दुःखी होने लगता है। दूसरे व्यक्ति जिन भावों को अनुभव कर रहे हैं, वह भी उन्हीं भावों को आत्मसात् करता है। बारम्बार इसी अनुभूति से गुजरने पर सहृदय के मनोभावों का संस्कार होता है तथा शेष विश्व के साथ जो रागात्मक (प्रेमपरक) या सहज रूप से भावनात्मक संबंध जुड़ जाता है। इससे हमारे संबंधों की रक्षा और निर्वध्न होता है।

**विशेष :**

1. लेखक ने कविता को मनोविकारों के परिष्कार का साधन माना है।
2. इस गद्यांश की तुलना भट्टनायक के साधरणीकरण व्यापार से भी की जा सकती है।
3. इसमें शुक्ल जी की तत्वान्वेषी द ष्टि का परिचय मिलता है।
4. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्षणा।
5. गुण-प्रसाद।
6. भाषा संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से युक्त है।

7. वाक्य एक दूसरे के साथ गहन रूप से सम्बद्ध हैं।

3. **"सभ्यता की व द्धि के साथ-साथ ज्यों-ज्यों मनुष्यों के व्यापार बहुरूपी और जटिल होते गए त्यों-त्यों उनके मूल रूप बहुत कुछ आच्छन्न होते गए। भावों के आदिम और सीधे लक्ष्यों के अतिरिक्त और-और लक्ष्यों की स्थापना होती गई, वासनाजन्य मूल व्यापारों के सिवा बुद्धि द्वारा निश्चित व्यापारों का विधान बढ़ता गया। इस प्रकार बहुत से ऐसे व्यापारों से मनुष्य घिरता गया जिनके साथ उसके भावों का सीधा लगाव नहीं।"**

*प ष्ठ-32*

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्यांश हिन्दी निबंध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'कविता क्या है' नामक प्रबन्धात्मक निबंध में से अवतरित है। इसमें लेखक ने बढ़ते हुए व्यापारों के कारण मानव के हृदय परिवर्तन पर प्रकाश डाला है।

**व्याख्या** : जैसे-जैसे मानव का विकास होता गया, वैसे-वैसे मनुष्य का कार्य-व्यापार भी विस्त त होता गया। अन्य व्यक्तियों के साथ बढ़ते संबंध व व्यापार के कारण उसके स्वयं के कार्य जटिल होते गए अर्थात् मानव के कार्यों का उसके मूल लक्ष्य से बहुत कम संबंध दिखाई देने लगा। उसकी भावनाओं के लक्ष्य भी बदलते चले गए। पहले-पहल मानव रोटी, कपड़ा और मकान आदि वासनाओं के साथ लगाव रखता था, किन्तु अब उनकी जगह सम्पूर्ण सांसारिक ऐश्वर्यों को अर्जित करना चाहता है। अब उसका संबंध वासना-पूर्ति के अतिरिक्त बौद्धिक और मानसिक त ष्णा की पूर्ति से है। इस प्रकार मनुष्य ने ऐसे अनेक व्यापारों का प्रयोग व निर्माण किया है, यही व्यापार उसके मूल क्रिया-कलापों से भिन्न थे तथा उसके भावों के साथ इस क्रिया-व्यापार का कोई संबंध नहीं था।

**विशेष** :

1. शुक्ल जी ने गूढ़ विषय को सरल भाषा में स्पष्ट किया है।
2. शब्द शक्ति-अभिधा।
3. गुण-प्रसाद।
4. अलंकार-पुनरूक्ति।
5. भाषा संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से युक्त है।
6. भाषा विषयानुकूल एवं परिमार्जित है।
7. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

4. **"इसकी प्रच्छन्नता का उद्‌घाटन कवि-कर्म का एक मुख्य अंग है। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाएगी त्यों-त्यों कवियों के लिए यह काम बढ़ता जाएगा। मनुष्य के हृदय की व त्तियों से सीधा संबंध रखने वाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उसे बहुत से पर्दों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों हमारी व त्तियों पर सभ्यता के नये-नये आवरण चढ़ते जायेंगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जायेगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जाएगा।"**

*प ष्ठ-33*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हिन्दी निबन्ध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विरचित 'कविता क्या है' के 'सभ्यता के आवरण और कविता' खण्ड कसे लिया गया है। सभ्यता के साथ-साथ मानव के भावों का भी रूप बदलता जाता है। आज सभ्यता के विकास के साथ कवि-कर्म भी कठिन होता जा रहा है, इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लेखक कहता है-

**व्याख्या** : सभ्यता के विकास के साथ-साथ हमारी मूल व त्तियाँ, मनोभाव आदि भी नये रूप में हमारे समक्ष आते हैं। अतः कवि या कविता का मूल कार्य इन आवरणों को हटाकर मानव के मूल मर्म की पहचान कराना है। अतः सभ्यता के विकास के साथ-साथ कवियों के लिए यह कार्य कठिन होता चला जाएगा। मनुष्य के हृदय की मूल प्रव त्तियों को जगाने के लिए उसे

जीवन के ऐसे रूपन ओर व्यवहार सामने लाने होंगे जिनका सीधा सम्बन्ध मानवीय रागों से हो। अर्थात् मनुष्य के हृदय में छिपे भावों का जो सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध पर विकासशील सभ्यता अनेक परतें डालती जा रही है। अतः कवि के भावों का सीधा सम्बन्ध दिखाने के लिए इन कुप्रव त्तियों रूपी पर्दों को पुनः हटाना पड़ेगा। मानव को कविता की आवश्यकता इसलिए पड़ेगी, क्योंकि वह अपनी कृत्रिमता से दुखी होकर अपने सामान्य रूप के दर्शन करने हेतु तरसेगा। कृत्रिमता से दुःखी होगा अपने सामान्य रूप के दर्शन करने हेतु तरसेगा। कृत्रिमता बढ़ने से मनुष्य को स्वयं के व्यक्तित्व खोने का डर भी बराबर बना रहेगा। अतः हम ज्यों-ज्यों सभ्य होते जाएंगे त्यों-त्यों हमारी व तियाँ नए-नए आवरणों में लिपटती जाएगी। ऐसी परिस्थितयों में इन व त्तियों को समझने के लिए कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी और कवियों का कार्य भी अधिक कठिन होता चला जायेगा।

**विशेषः**

1. लेखक ने सभ्यता का सीधा सम्बन्ध मन की व तियों से स्थापित किया है।
2. शब्द शक्ति-अभिधा।
3. गुण-प्रसाद।
4. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
5. पुनरूक्ति-प्रकाश अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. लेखक कविता को साधन और जीवन को साध्य मानता है।

5. **"अनन्त रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है - कहीं मधुर, सुसज्जित या सुन्दर रूप में; कहीं रूखे बेडौल या कर्कश रूप में; कहीं भव्य, विशाल या विचित्र रूप में; कहीं उग्र कराल या भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय उसके इन सब रूपों में लीन होता है, क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुख भोग नहीं, बल्कि चिर-साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है जो केवल कूजित निकुंज और शीतल सुख-स्पर्श समीर इत्यादि की ही चर्चा किया करते हैं, वे विषयी या भोगलिप्सु हैं।"**

*प ष्ठ - 37*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी निबंध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'कविता क्या है' निबंध के 'कविता और स ष्टि-प्रसार' खण्ड से अवतरित है। इसमें लेखक ने कवि के वास्तविक कर्म की ओर संकेत करते हुए लिखा है-

**व्याख्या** : मनुष्य प्रकृति के विभिन्न रूपों को देखता है। कभी वह हमारे समक्ष सुन्दर रूप में आती है, तो कभी कुरूप एवं रूखे में प्रकट होती है (बाढ़ और भूकंप के रूप में)। कभी वह भव्य विशाल रूप में दिखाई पड़ती है तो कभी भंयकर व विकराल रूप में। एक सच्चा कवि प्रकृति के इन सभी रूपों से प्रेम करता है तथा इन विषयों पर कविता स जन भी करता है। वह प्रकृति के साथ अनादिकाल से सम्बद्ध है, इसलिए वह प्रकृति के प्रति अनुराग भाव रखता है। जो कवि प्रकृति चित्रण के नाम पर पूर्ण रूप से खिले फूलों की सुगंध, पराग के प्रति आकृष्ट होने वाले भँवरों, कोयल की मधुर ध्वनि और ठण्डी हवा के झोकों का स्पर्श इत्यादि का चित्रण करते हैं-वे विषय-वासनाओं तथा सांसारिक भोग वासना लिप्त रहते हैं। अर्थात् उन कवियों को सहृदय कवि के दायरे में नहीं रखा जा सकता।

**विशेषः**

1. सच्चा कवि वही है जो प्रकृति के किसी भी रूप का चित्रण अपनी कविता में करता हो।
2. लेखक ने कवि के वास्तविक कर्म की ओर संकेत किया है।
3. शब्द शक्ति-अमिधा।
4. गुण-प्रसाद।

5. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का अधिक प्रयोग किया गया है।

6. भाषा भावों को वहन करने में पूर्णतः सक्षम है।

7. लेखक ने गूढ़ विषयों पर लेखनी चलाकर हिन्दी-साहित्य को सम द्ध किया है।

6. **"जो केवल अपने विलास या शरीर-सुख की सामग्री ही प्रकृति में ढूँढ़ा करते हैं उनमें उस रागात्मक"सत्व" की कमी है जो व्यक्त सत्ता मात्र के साथ एकता की अनुभूति में लीन करके हृदय के व्यापकत्व का आभास देता है। सम्पूर्ण सत्ताएँ एक ही परम सत्ता और सम्पूर्ण भाव एक ही परम भाव के अन्तर्भूत हैं। अतः बुद्धि की क्रिया से हमारा ज्ञान जिस अद्वैत भूमि पर पहुँचता है उसी भूमि तक हमारा भावात्मक हृदय भी इस सत्व-रस के प्रभाव से पहुँचता है। इस प्रकार अन्त में जाकर दोनों पक्षों की व त्तियों का समन्वय हो जाता है। इस समन्वय के बिना मनुष्य की साधना पूरी नहीं हो सकती।"**

*प ष्ठ - 38*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हिन्दी निबंध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'कविता क्या है' निबन्ध के 'कविता ओर स ष्टि-प्रसार' खण्ड से उद्ध त है इसमें लेखक का अभिमत है कि कविता का अन्तिम लक्ष्य परम सत्ता (ईश्वर) के दर्शन तथा अन्त-व त्तियों का समन्वय है, इसी तथ्य का प्रसार करते हुए वे कहते हैं-

**व्याख्या** : जो कवि प्रकृति में केवल निजी सुख-विलास ढूँढते हैं, उनमें उस भावात्मक चेतना की कमी होती है जिसके सहारे मनुष्य सम्पूर्ण स ष्टि के साथ आत्मीय संबंध मनुष्य उस परम तत्व तथा उसकी रचना (संसार) से एकाकार अनुभव करता है। इस प्रकार उसके हृदय का विस्तार हो जाता है। इस संसार में दिखाई देने वाली अलग-अलग सत्ताएँ वास्तव में एक ही परम सत्ता के अधीन हैं और मन में उठने वाले अनेक भाव एक ही परम भाव में लीन हो जाते हैं। बुद्धि द्वारा ज्ञान अर्जित करके हम उस परम अनुभूति परमात्मा के दर्शन कर सकते हैं। हमारे हृदय द्वारा कुत्सित कार्यों का विसर्जन करने पर अपनी व्यक्तिगत अनुभूति के बल पर भी उस परम सत्ता के सानिध्य तक पहुँच सकते हैं। यहाँ पहुँचकर बुद्धि-मार्ग और भाव-मार्ग की साधना भी परस्पर मिल जाती है। जब तक इन दोनों व त्तियों का आपसी मिलन नहीं होगा तब तक मनुष्य की ज्ञान व काव्य साधना पूर्ण नहीं हो सकती।

**विशेषः**

1. शुक्ल जी ने बुद्धि और हृदय के समन्वय को ही साधना का सफल रहस्य माना है।

2. लेखक ने 'अद्वैत', 'रागात्मक सत्व' जैसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है जिससे भाषा में गहनता आ गई है।

3. शब्दशक्ति-अमिधा।

4. गुण-प्रसाद।

5. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

6. परमात्मा की एकनिष्ठ सत्ता को स्वीकार किया गया है।

7. भाषा परिनिष्ठित एवं परिमार्जित है।

7. **"कविता ही हृदय को प्रकृत दशा में लाती हैं और जगत बीच क्रमशः उसका अधिकाधिक प्रसार करती हुई उसे मनुष्यत्व की उच्च भूमि पर ले जाती है भावयोग की सबसे उच्च कक्षा पर पहुँचे हुए मनुष्य का जगत के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है। उसकी अश्रुधारा में जगत की अश्रुधारा का, उसके हास-विलास में जगत के आनन्द न त्य का, उसके गर्जन-तर्जन में जगत के गर्जन-तर्जन का आभास मिलता है।"**

*प ष्ठ - 44-45*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हिन्दी निबन्ध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विरचित 'कविता क्या है' निबंध के 'मनुष्यता की उच्चभूमि' खण्ड से उद्ध त है। कविता मनुष्य के भावों या मनोविकारों को विस्त त करती है। कविता के ही माध्यम से हम सांसारिक सुख-दुःख आदि का स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं। मानव जीवन पर पड़ने वाले कविता के प्रभाव को लेखक स्पष्ट करते हुए कहता है।

**व्याख्या** : कविता मानव हृदय में वास करने वाले, काम-क्रोध, घ णा-ईर्ष्या आदि मनोविकारों को दूर करके मानव हृदय का इतना अधिक विस्तार कर देती है कि वह समस्त संसार के सुख में सुखी व दुःख में दुःखी होने लगता है। वह स्वाभाविक अवस्था में आ जाता है, यही अवस्था मनुष्य की उच्च भूमि कहलाती है। उच्चभूमि पर पहुँचने का यह कार्य कविता द्वारा भावनाओं को उद्वेलित करने से होता है। यहाँ पहुँचकर मनुष्य का समस्त संसार के साथ एकीकरण हो जाता है, अर्थात् इस विश्व के प्रत्येक व्यक्ति सुख-दुःख, पीड़ा-शोक आदि उसके सुख-दुःख बन जाते हैं। उसमें निज तत्त्व का भाव तिरोहित हो जाता है। यही कारण है कि उसके आँसुओं में जगत् की पीड़ा का आभास मिलता है। संसार की प्रसन्नता में उसका आनन्द दिखाई पड़ता है, संसार के क्रोध में उसके क्रोध का आभास होता है। भावार्थ यह है कि कविता से मनुष्य भावयोग को प्राप्त कर विश्व की अनुभूति के साथ मिल जाता है।

**विशेषः**

1. लेखक ने मनुष्य पर कविता के प्रभाव का वर्णन किया है।
2. काव्य के इस प्रयोजन पर भारतीय काव्यशास्त्र का प्रभाव लक्षित होता है।
3. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
4. शब्दशक्ति - अभिधा, लक्षणा।
5. गुण-प्रसाद।
6. अनुप्रास अलंकार के प्रयोग से भाषा का लालित्य देखते ही बनता है।
7. भाषा सुगठित एवं प्रवाहपूर्ण है।
8. **"कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत् के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उसके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य-स्थापन है। इतने गम्भीर उद्देश्य के स्थान पर केवल मनोरंजन का हल्का उद्देश्य सामने रखकर जो कविता का पठन-पाठन या विचार करते हैं, वे रास्ते में ही रह जाने वाले पथिक के समान हैं। कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है, पर उसके उपरान्त कुछ और भी होता है और वही सब कुछ है।"**

*प ष्ठ - 45-46*

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण हिन्दी निबंध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विरचित 'कविता क्या है' निबंध के 'मनोरंजन' खण्ड से अवतरित है। इन पंक्तियों में शुक्ल जी ने काव्य-प्रयोजन पर प्रकाश डाला है।

**व्याख्या** : कविता का मूल उद्देश्य संसार के मार्मिक द श्यों को प्रस्तुत करके, उन द श्यों के साथ मानवीय हृदय सम्बन्ध स्थापित करना है। अर्थात् कविता पढ़ने से मानव के हृदय का साधारणीकरण हो जाता है और वह जगत के किसी भी मार्मिक द श्य (भिखारी, भूखें-नंगे बच्चे) को देखकर स्वयं को उनसे जुड़ा हुआ पाता है। कविता के इस महान उद्देश्य के स्थान पर जो लोग उससे निचले दर्जे का मनोरंजन करना चाहते हैं और इसी निमित कविता-कामिनी का स जन करते हैं, वे पथ को ही अपनी मंजिल मानकर वहीं पर रह जाने वाले यात्री के समान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे पथ कभी मंजिल नहीं होता, अपितु लक्ष्य तक पहुँचने का साधनमात्र है, उसी प्रकार मनोरंजन कविता का पूर्ण लक्ष्य नहीं अपितु मानव हृदय के साथ तादात्म्य स्थापित करना है। भले ही कविता पढ़ने से मनोरंजन अवश्य होता हो परन्तु इसके पश्चात हमारी चित्तव त्तियों का विस्तार और उनका परिष्कार भी होता है। यही कविता का अन्तिम एवं मूल लक्ष्य है।

**विशेषः**

1. लेखक ने काव्य-प्रयोजन को उद्भाषित किया है।

2. कविता का मूल लक्ष्य मनोरंजन न होकर हृदय का परिष्कार है।

3. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

4. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्षणा।

5. गुण-प्रसाद।

6. शुक्ल जी के वैचारिक उत्कर्ष का पता चलता है।

7. भाषा सुगठित एवं प्रभावोत्पादक है।

**9. "काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त-विधान के लिए कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है उसी प्रकार नाद-सौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है। श्रुति-कतु मानकर कुछ वर्णों का त्याग, व तिविधान, लय, अन्त्यानुप्रास आदि नाद सौन्दर्य-साधन के लिए ही हैं।"**

प ष्ठ - *58*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी निबंध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'कविता की भाषा' खण्ड से अवतरित है। लेखक का मानना है कि कविता के लिए वर्ण-विन्यास अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने इन पंक्तियों में कविता के वर्ण-विन्यास पर ही प्रकाश डालते हुए कहा है।

**व्याख्या** : कविता का स जन करना, अपने आपमें बहुत बड़ी कला है। कविता में किसी भी वस्तु आदि के भावपूर्ण और सुन्दर चित्रण के लिए कवि चित्र विधा का सहारा लेता है। इसी प्रकार कविता के ध्वन्यात्मक गुण के लिए अर्थात् उसे गेय बनाने के लिए कवि संगीत-कला का सहारा लेता है। कवि अपने काव्य को गेय रूप प्रदान करने के लिए कविता में कुछ वर्णों का त्याग करता है, ताकि सुनने वालों को वे तिक्त न लगे। कविता में काव्यात्मकता का गुण लाने के लिए व त्ति सम्बंधी नियमों, लय और अन्त्यानुप्रास जैसे अलंकारों का भी प्रयोग किया जाता है।

**विशेषः**

1. काव्य को संगीतयुक्त बनाने के तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

2. लयात्मकता लाने के लिए काव्य में कुछ वर्णों के त्याग पर बल है।

3. शब्दशक्ति-अमिधा।

4. गुण-प्रसाद।

5. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

6. भाषा परिभार्जित, विषयानुकूल एवं भावों को वहन करने में सक्षम है।

**10. "मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य-असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में, पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, दर्शन न हो; पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा। बात यह है कि मनुष्य अपने ही व्यापारों का ऐसा सघन और जटिल मंडल बाँधता चला आ रहा है; जिसके भीतर बँधा-बँधा वह शेष स ष्टि के साथ अपने हृदय का सम्बन्ध भूला सा रहता है। इस परिस्थिति में मनुष्य को अपनी मनुष्यता खोने का डर बराबर रहता है। इसी से अन्तः प्रकृति में मनुष्यता को समय-समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य-जाति के साथ चली आ रही है और चलेगी। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं।"**

प ष्ठ - *62*

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण हिन्दी निबंध-साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है' निबंध के 'कविता की आवश्यकता' खण्ड से अवतरित है। इसमें लेखक ने कविता और मानव-जीवन का अटूट संबंध स्थापित करते हुए जीवन

के व्यापक क्षेत्र में कविता की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। इन पंक्तियों में कविता की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं।

**व्याख्या** : कविता मानव-जीवन के लिए अत्यावश्यक तथा लाभप्रद है। यही कारण है कि संसार की प्रत्येक सभ्य और असभ्य जातियों के पास तक भी कविता का वर्चस्व है। किसी देश में इतिहास, विज्ञान अथवा दर्शन भले ही न हो किन्तु कविता अवश्य होती है, क्योंकि विज्ञान और दर्शन बौद्धिक चिन्तन का परिणाम है, इसलिए सब जगह इसका विकास संभव नहीं, किन्तु कविता का संबंध मनुष्य की स्वाभाविक और जन्मजात रागात्मक व तियों से है। सभ्यता के विकासक्रम में मानव ने अपने चारों ओर व्यापारों की जटिलता का आवरण बना लिया है। उन भौतिक तथा दार्शनिक उलझनों के कारण कभी-कभी उसका संबंध जगत् से टूटता प्रतीत होता है। ह्रदय के इस रागात्मक दुराव के कारण उसे अपनी मनुष्यता के खोने का भय बना रहता है। अतः मानव का यह मनुष्यत्व तभी जाग त रह सकता है जब उसका शेष स ष्टि के साथ वही रागात्मक संबंध पुनर्जीवित हो उठे। यह कार्य कविता के माध्यम से ही पूर्ण हो सकता है। कविता सदैव ही यह प्रयत्न करती है कि मानव का प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद न हो। कविता मानव के मानवीय गुणों को जगाने के लिए निरन्तर मानव जाति के साथ चलती आ रही है और चलती रहेगी। जानवर प्रव त्ति के मनुष्यों को कविता-कामिनी की आवश्यकता नहीं होती।

**विशेषः**

1. शुक्ल जी ने कविता को मनुष्यता की संरक्षक तथा प्रेरक बताया है।
2. इतिहास, विज्ञान और दर्शन आदि की तुलना में कविता की व्यापकता स्वयं सिद्ध है।
3. शब्दशक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. भाषा-संस्कृतनिष्ठ।
6. इसमें शुक्ल जी की काव्यशास्त्रीय सूक्ष्म द ष्टि का परिचय मिलता है।

## 5. नाखून क्यों बढ़ते हैं?

1. **नख-धर मनुष्य अब एटम-बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वचिंत नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती हैं कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नखदन्तावलम्बी जीव हो-पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।"**

*प ष्ठ - 68-69*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित "नाखुन क्यों बढ़ते हैं?" निबन्ध से अवतरित है। इसमें मनुष्य की आदिम व त्तियों को, बर्बरता एवं पशुआ को उद्घाटित करके उसे मानवता का सन्देश दिया है। नाखून मानव की आदिम पशुता के चिह्न हैं तथा उनको काटना मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान है। एटम बम आदि भयंकर हथियारों का निर्माण उसके नाखूनों का या बर्बरता का ही विस्तार है। लेखक ने इसे समाप्त करके मनुष्यता का संदेश दिया है।

**व्याख्या** : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मनुष्य की आदिम व त्तियों का उद्घाटन करते हैं। वे कहते हैं कि प्राचीन समय में मनुष्य अपने नाखूनों से अपनी रक्षा करता था। ये उसकी रक्षा के लिए थे, लेकिन ये उसकी पाश्विक व ति की भी याद दिलाते हैं। लेकिन वर्तमान समाज में मनुष्य की समस्याएँ बढ़ गई हैं। अब उसने अपने नाखूनों का विकल्प एटम बम जैसे भयानक हथियारों में ढूँढ लिया है। वह ऐसे भंयकर अस्त्रों पर अपने विकास का विश्वास रखता है। लेकिन उसके नाखून अब भी बढ़ रहे है।

इतनी सभ्यता और विकास के बाद भी उसकी बर्बरता, उसका पशुत्व उसके नाखूनों के रूप में मौजूद है। ये नाखून उसको याद दिलाते हैं कि कभी मानव भी दांत और नाखूनों के सहारे जीने वाला जीव था। पशुओं की तरह ही वह व्यवहार करता था। मानव के सौन्दर्य के नहीं बल्कि खाने-पीने एवं सोने वाले जानवर की तरह नाखून मनुष्य के इसी आदिम रूप के अवशेष हैं जो अब भी मनुष्य में मौजूद है। एटम बम नाखूनों का ही विस्तार है। हथियारों का संग्रह इसी पशु व त्ति को याद कराता है। लेखक व्याप्त अमानवीयता या पशुता को स्पष्ट करता है।

**विशेषः**

1. मनुष्य में पल रही आदिम व त्तियों को रेखांकित किया है। नाखून तो आत्मरक्षा के लिए थे जबकि एटम बम-दूसरे को मारने के लिए हैं।
2. वर्तमान समय में युद्ध की विभीषिका एवं हथियार-संग्रह की होड़ की ओर ध्यान आकर्षित करके इसे बर्बरता की निशानी माना है।
3. मानव इतिहास की आदि व्यवस्था को कथ्य सम्प्रेषण का आधार बताया है।
4. ललित शैली में व्यक्तिगत से सामूहिक की ओर, एक विशेष अनुभव से सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है।
5. भाषा की सम्प्रेषण शक्ति अनुपम है। वर्ण्य विषय को अभिव्यक्ति देने में पूर्णतः सक्षम है।
6. शब्दशक्ति-अभिधा।
7. गुण-प्रसाद।

**2. मानव-शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यासजन्य सहज व त्तियाँ रह गयी हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे व त्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात व त्तियाँ अनजान की स्म तियों को ही कहते हैं।**

*प ष्ठ - 70*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित "नाखुन क्यों बढ़ते हैं?" निबन्ध से अवतरित है। इसमें मनुष्य की आदिम व त्तियों को, बर्बरता एवं पशुआ को उद्घाटित करके उसे मानवता का सन्देश दिया है। नाखून मानव की आदिम पशुता के चिह्न हैं तथा उनको काटना मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान है। एटम बम आदि भयंकार हथियारों का निर्माण उसके नाखूनों का या बर्बरता का ही विस्तार है। लेखक ने इसे समाप्त करके मनुष्यता का संदेश दिया है। इसी सन्दर्भ में उसकी सहजात व त्तियों को रेखांकित किया है।

**व्याख्या :** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहते है कि मानव-शरीर का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिको का स्पष्ट मत हैं कि मनुष्य में बहुत ऐसी व त्तियाँ बची हैं जो वह करता है। ऐसी व त्तियाँ उसके अन्दर मौजूद है जिनकी अब उसे आवश्यकता नहीं है, लेकिन पहले के समय में उनके बिना मनुष्य का काम नहीं चलता था, बार-बार वह इनको प्रयोग करता था। ये व त्तियाँ उसके अन्दर रह गई हैं। इन कार्यों को बार-बार करने से शरीर इनका अभयस्त हो गया है। शरीर इनका आदी हो गया है। ये व त्तियाँ अनायास ही अपना काम करती रहती हैं। जैसे नाखूनों का बढ़ना, बालों का बढ़ना, दाँतो का दुबारा उठना आदि। पहले व्यक्ति को अपनी रक्षा के लिए, जंगली जीवन के खतरों से मुकाबला करने के लिए, दाँतों की आवश्यकता थी, लेकिन अब उसे इनकी आवश्यकता नहीं है। उसे नाखूनों की जरूरत नहीं है फिर भी ये बढ़ते रहते हैं। पहले बाल मनुष्य की चमड़ी की सुरक्षा के लिए जरूरी थे, वे बढ़ते रहते हैं। लेकिन अब शरीर की रक्षा में इनका कोई विशेष महत्व नहीं है इसके लिए मनुष्य ने वस्त्र आदि का निर्माण कर लिया है मनुष्य को कच्चा मास, कठोर भोजन, छीलने काटने के लिए दाँत की भी आवश्यकता होती थी, इस कार्य मे दाँत टूट भी जाते थे, लेकिन वे फिर उग आते थे। अब उसे ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी दाँत उग आते हैं। पलकें मनुष्य की आँखों की रक्षा और उसके अंधेरे भरे संघर्षपूर्ण जीवन में आवश्यक थी

लेकिन अब ऐसा वातावरण नहीं है फिर उनकी पलकें गिरती हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि असल में मानव की जो अनजान स्म तियाँ है वही सहजात व त्तियाँ हैं। ये स्म तियाँ उसके मस्तिष्क में बैठ गई हैं। यद्यपि भौतिक रूप से मनुष्य को इनकी आवश्यकता नहीं है लेकिन ये उसके जीवन का अनिवार्य हिस्सा रही हैं। अतः अवसर मिलते ही ये स्वमेव हो जाती है। व्यक्ति को इनके लिए अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता।

**विशेषः**

1. मनुष्य की आदिम व त्ति नाखूनों के बढ़ने के माध्यम से उसकी पशुता को उद्घाटित किया है।
2. प्राणी पशुता के निष्कर्षो को संजोकर गवेषणात्मकता का परिचय दिया है तथा अपनी बात को वैज्ञानिक आधार दिया है।
3. इतिहास के माध्यम से वर्तमान में बढ़ती पशुता-बर्बरता की ओर संकेत किया है।
4. भाषा की सम्प्रेषण शक्ति अनुपम है। मानव की पशुता तथा बर्बरता की विभीषिका को इन्ही संवेनात्मक एवं मानवता वादी स्वरों से उभारा जा सकता है।
5. शब्द शक्ति-अभिधा।
6. गुण-प्रसाद।

3. **"हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों मे इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचार गया है। हम कोई नौसिखए नहीं है, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिये गये है। हमारी परम्परा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्जवल है। हमारे अनजान में भी ये बाते हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती है। यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं। उपकरण नये हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं।**

*प ष्ठ - 70-71*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित "नाखून क्यों बढ़ते हैं?" निबन्ध से अवतरित है। नाखून मानव की आदिम पशुता के चिन्ह हैं तथा उनको काटना मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान है। एटम बम आदि भयंकर हथियारों का निर्माण उसके नाखूनों का या बर्बरता का ही विस्तार है। लेखक ने इसे समाप्त करके मनुष्यता का संदेश दिया है। भारतीय इतिहास में इस प्रश्न पर विभिन्न द ष्टियों एवं कोणों से विचार किया है।

**व्याख्या** : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि हमारा इतिहास बहुत पुराना है। मनुष्य की मनुष्यता और पशुता के बारे में हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उनके भावों और उनके कोणों से विचार किया गया है। हमारी सभ्यता और संस्कृति बहुत पुरानी है। हमारा दर्शन बहुत परिपक्व है। जिसमें इन सभी समस्याओं पर तरह-तरह से विचार किया है। हम विचार करने में कोई नौसिखिए नहीं है। ऐसा नहीं है कि हम रातों-रात सवालों के अनजान जंगल में छोड़ दिये गये हों। प्रश्नों को समझने की विचारने की, हमारी सम द्व परम्परा है। हमें उत्तराधिकार काफी मात्रा में मिला है। हमारे संस्कार उज्जवल हैं। हमारी परम्परा हमें एक विशेष दिशा में सोचने को मजबूर करती है। यद्यपि परिस्थितियाँ बदल गई हैं नये विकास से नई-नई चीजें आ रही हैं जिससे समाज की उलझने भी बढ़ रही हैं, लेकिन हमारी मूल समस्याएँ नहीं बदलीं। हमारा जो मानवता के प्रति तकाजा है वह नहीं बदला। मानव के प्रति प्रतिबद्धता एवं पशुता का त्याग करने की हमारी ललक नहीं बदली। उसी संदर्भ में हम सोचतें हैं कि हमारी दिशा वही है।

**विशेषः**

1. भारतीय परम्परा, चिन्तन एवं दर्शन के मानवतावादी मूल्यों को उद्घाटित किया है।
2. मनुष्यता के प्रश्न पर भारतीय द ष्टिकोण को रेखांकित किया है।

3. भाषा कथ्य को सम्प्रेषित करने में सक्षम है। संवेदनात्मक एवं मानवता परक शब्दों से ही विषय की विडम्बना उजागर हो सकती है।

4. शब्दशक्ति-अभिधा।

5. गुण-प्रसाद।

**4. परन्तु में ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नयी अनुसन्धित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नये खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसचिंत भण्डार में वह हितकर वस्तु निकल आऐ, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?**

*प ष्ठ - 71*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित "नाखून क्यों बढ़ते हैं?" निबन्ध से अवतरित है। इसमें मनुष्य की आदिम व तियों को, बर्बरता एवं पशुता को उद्घाटित करके उसे मानवता का सन्देश दिया है। नाखून मानव की आदिम पशुता के चिन्ह हैं तथा उनको काटना मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान है। एटम बम आदि भयंकार हथियारों का निर्माण उसके नाखूनों का या बर्बरता का ही विस्तार है। लेखक ने इसे समाप्त करके मनुष्यता का संदेश दिया है। इसी सन्दर्भ में परम्परा के तर्क आधारित मूल्यांकन पर जोर देते हैं।

**व्याख्या** : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है कि नये अनुसंधान के नशे में चूर होकर हम अपनी परम्परा को, अपने ऐतिहासिक संस्कारों को खो दें यह भी उपयुक्त नहीं है। नयी खोजें अपनी जगह हैं लेकिन अपनी विरासत का, अपनी परम्परा का भी हमें सम्मान करना चाहिए। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते लेकिन सब नये खराब भी नहीं होते। परम्परा में अच्छाइयाँ भी होती हैं और बुराइयाँ भी। परम्परा का न तो अंधानुकरण करना उचित है और न ही उन्हें पूरी तरह छोड़ देना। अच्छे लोग पुराने और नए की प्रासंगिकता को, उसकी सार्थकता के तर्क के आधार पर जाँच-परख लेते हैं जो पुरानी परम्परा में और नये अनुसंधान में जो भी मनुष्य की भलाई के काम का होता है। उसके विकास में सहायक होता है उसे ग्रहण कर लेते हैं और बाकी को छोड़ देते हैं, उनकी यह चयन द ष्टि तर्क के आधार पर निर्मित होती है। जबकि मूर्ख व्यक्ति दूसरों के इशारे पर नाचते हैं वे तर्क का सहारा नहीं लेते बल्कि जैसा दूसरे कहते हैं वे वैसा ही करते हैं। लेखक कहता है कि हमें परीक्षण करके, तर्क के आधार पर मनुष्य के हित की बात सोचनी चाहिए। यदि वह बात हमारी परम्परा में है तो हमारे लिए यह सुखद है। परम्परा का मूल्यांकन करके उसमें व्याप्त मानव हित के तत्वों को अपनाना चाहिए। परम्परा के प्रति हमारी आलोचनात्मक द ष्टि होनी चाहिए।

**विशेषः**

1. परम्परा के प्रति विवेकपूर्ण, तार्किक रूख अपनाने पर जोर दिया है।

2. भारतीय परम्परा एवं दर्शन में मानवतावादी स्तर एवं विवेकपरक चिन्तन का अनुमान कालिदास के उदाहरण में निहित है।

3. भाषा कथ्य को सम्प्रेषित करने मे पूर्णतः सक्षम है।

4. वर्तमान की समस्या को समझने के लिए इतिहास का प्रयोग करने को उचित ठहराया है।

5. शब्द शक्ति-अभिधा।

6. गुण-प्रसाद।

**5. भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बन्धनों से अपने**

**को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात से भिन्न है। आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुःख के प्रति समवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्‌भावित बन्धन हैं।**

*प ष्ठ - 71*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित "नाखून क्यों बढ़ते हैं?" निबन्ध से अवतरित है। इसमें मनुष्य की आदिम व त्तियों को, बर्बरता एवं पशुआ को उद्‌घाटित करके उसे मानवता का सन्देश दिया है। नाखून मानव की आदिम पशुता के चिह्न हैं तथा उनको काटना मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान है। एटम बम आदि भयंकर हथियारों का निर्माण उसके नाखूनों का या बर्बरता का ही विस्तार है। लेखक ने इसे समाप्त करके मनुष्यता का संदेश दिया है। भारतीय चिन्तन के मानवता के आदर्श को रेखांकित किया है।

**व्याख्या :** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि भारत के ऋषियों ने मानव-धर्म पर, मनुष्यता में छिपी पशुता के विषय पर अनेक प्रकार से अनेकों कोणों से विचार किया है। इस समस्या को विभिन्न तरीकों से सुलझाने की कोशिश की है। इस देश में समस्त वर्णों और जातियों का एक सामान्य आदर्श है-मनुष्य स्वयं द्वारा अनुशासित रहे। मनुष्य अपने बन्धनों में बंधता है। वह स्वयं के ऊपर अनुशासन रखता है। मानव और पशु में यह मूलभूत अन्तर है। मनुष्य स्वशासी होता है, लेकिन पशु नहीं है। मनुष्य में भी आहार निद्रा आदि गुण पशुओं की तरह हैं। मनुष्य पशुओं से भिन्न है। मनुष्य अपने ऊपर संयम रखता है, एक-दूसरे के प्रति संवेदना एवं सहानुभूति रखता है, उसमें श्रद्धा, तप और त्याग की भावना होती है जो पशुओं में नहीं होती । इसी से मनुष्य और पशु में भिन्नता है। और ये जो संयम के, श्रद्धा के, तप के, त्याग के, सहानुभूति और संवेदना के गुण या बन्धन हैं वे मनुष्य ने स्वयं अपने ऊपर लगाए हैं।

**विशेषः**

1. मनुष्यता के भारतीय आदर्श की व्याख्या की है।
2. भारतीय परम्परा, चिन्तन एवं दर्शन में व्याप्त मानवता को रेखांकित किया है।
3. मानव और पशु के अन्तर को स्पष्ट करने की कोशिश की है।
4. भाषा कथ्य को सम्प्रेषित करने में सक्षम है।
5. शब्द शक्ति-अभिधा।
6. गुण-प्रसाद।

**6. "उसने कहा था-बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मन सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा-प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छ ंखता पशु की प्रव त्ति है, 'स्व' का बन्धन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गयी, आदमी के नाखून बढ़ने की प्रव त्ति ही हावी हुई।"**

*प ष्ठ - 72*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित "नाखून क्यों बढ़ते हैं?" निबन्ध से अवतरित है। इसमें मनुष्य की आदिम व त्तियों को, बर्बरता एवं पशुआ को उद्‌घाटित करके उसे मानवता का सन्देश दिया है। लेखक ने गाँधी जी की विचारधारा को प्रस्तुत करते हुए कहा है।

**व्याख्या :** अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी ने कहा था कि व्यक्ति बाह्य उच्छ ंखता की तरफ ध्यान न देकर अपने मन में व्याप्त क्रोध, विनाश, हिंसा, द्वेष आदि की ओर ध्यान देकर इनका समूल विनाश कर देना चाहिए। हमें अपने मन में छिपी हुई हिंसक प्रव त्तियों को निकालकर फेंक देना चाहिए। भ्रमपूर्ण बातों से दूर रहना चाहिए। अपने मन से क्रोध और द्वेष को दूर रखो तथा

दूसरों के लिए जीवन जीते हुए कष्ट भी सहो। कभी भी आराम की बात न सोचकर प्रेम प्रचार की बात सोचनी चाहिए, क्योंकि विश्राम से मन में अकर्मण्यता की भावना उत्पन्न होती है और प्रेम से साहचर्य बढ़ता है। हमें अपने हृदय की कुव त्तियों को निकालकर मन को शुद्ध करना चाहिए और जीवन में सदैव कर्म करते रहना चाहिए। महात्मा गांधी ने कहा था कि संसार की सबसे सर्वोत्तम वस्तु प्रेम है क्योंकि वह हमारे अन्तःकरण मे व्याप्त है। आदमी का आदमी के प्रति प्रेम वह परस्पर आत्मीय बंधन मानव का स्वभाव है जबकि उदण्डता पशु का स्वभाव है। महात्मा गाँधी की यह बात किसी को अच्छी लगी या नहीं, इस विषय में कुछ नहीं कह सकते किन्तु उसे गोली मार दी गई। इससे स्पष्ट है कि आदमी पर उदण्डता की प्रव त्ति ही हावी रही। अर्थात् मानव अब भी पशु प्रव त्ति से मुक्त नहीं हुआ है, उसके नाखून अब भी बढ़ रहे है।

**विशेषः**

1. लेखक ने शांति और अंहिसा के पुजारी महात्मागांधी की विचारधारा को प्रस्तुत किया है।
2. वर्तमान में भी मानव में पाश्विक प्रव त्ति व्याप्त है-इस ओर भी संकेत किया गया है।
3. शब्दशक्ति-अभिधा, लक्षणा।
4. गुण-प्रसाद।
5. शैली-संवादात्मक।
6. भाषा सहज, सरल एवं भावानुकूल है।
7. लेखक ने मानव को परिश्रम करने की प्रेरणा दी है।

**7. "सफलता और चरितार्थता में अन्तर है। मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडम्बर के साथ सफलता का नाम दे रखा है। परन्तु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबसे मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अन्ध सहजात व द्धि का परिणाम है, जो उसके जीवन मे सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व-निर्धारित, आत्म-बन्धन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।**

*प ष्ठ - 73*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित "नाखून क्यों बढ़ते हैं?" निबन्ध से अवतरित है। इसमें मनुष्य की आदिम व त्तियों को, बर्बरता एवं पशुआ को उद्घाटित करके उसे मानवता का सन्देश दिया है। इसी सन्दर्भ में कथा कथित सफलता एवं मानव की चरितार्थता पर विचार करते हुए लेखक कहता है।

**व्याख्या** : सफलता प्राप्त करने और मानव चरित्र को प्रभावित करने में बहुत बहुत अन्तर है। मनुष्य ने जो अपने म त्यु के औजार इकट्ठे किये हैं, बाह्य उपकरणों की खोज की है, भौतिक और वैज्ञानिक प्रगति से सुख-सुविधा के सामान बनाए हैं। उनसे वह तथाकथित सफलता प्राप्त कर सकता है। लेकिन अपने मानव चरित्र को सिद्ध करने में प्रेम है, मित्रता है, त्याग है। समाज कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने में ही मानव चरित्र की सार्थकता है। बाह्य साधनों को इकट्ठा करना, अधिक से अधिक सम्पत्ति हासिल करने को मनुष्य ने अपनी सफलता माना है। उसके लिए जो वह आडम्बर करता है इसमें उसका मूल चरित्र पुष्ट नहीं होता बल्कि मैत्री, प्रेम, त्याग, सहानुभूति एवं लोक मंगल की भावना से ही उसके व्यक्तित्व की सफलता है। नाखूनों का बढ़ना उसकी सफलता की ओर संकेत करता है तो मनुष्य का नाखूनों को काटना उसके मानवीय चरित्र को उद्घाटित करता है। नाखूनों का काटना या अपने चरित्र को सार्थक करना-उसने स्वयं अपने ऊपर बन्धन लगाये हैं। यही मनुष्य का आदर्श है। मानवता की कसौटी पर खरा उतरना ही मानव जीवन का लक्षण है।

**विशेषः**

1. पशुता और मानवता के संघर्ष को रेखांकित किया है।

2. मनुष्यता को बढ़ावा देना ही मनुष्य का लक्ष्य है।

3. सफलता और मानवता में अन्तर करने की कोशिश की है।

4. त्याग, मैत्री, प्रेम, लोकमंगल को मानवता के आधार मूल्य माना है।

5. भाषा कथ्य को सम्प्रेषित करने मे सक्ष्म है। सूत्र रूप में प्रयुक्त भाषा स्थायी प्रभाव छोड़ती है।

6. शब्दशक्ति-अभिधा।

7. गुण-प्रसाद।

## 6. पगडण्डियों का जमाना

**1. "मुझे आशा थी कि अब ये अपने मौलिक देव-रूप में प्रकट होंगे और कहेंगे-'वत्स तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल, तुझे क्या चाहिए? हम वर देने के 'मूड' में हैं। बोल, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूँ? या कहे तो, किसी समीक्षक की तेरे घर में पानी भरने की ड्यूटी लगा दूँ?"**

*पृष्ठ - 112*

**प्रसंग :** प्रस्तुत सुप्रसिद्ध व्यंग्य-निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडण्डियों का जमाना' नामक निबंध से उद्ध त है। लेखक ने कुछ समय पूर्व सत्यवादी बनने की प्रतीज्ञा की थी। उसके पास एक सज्जन अपने पुत्र के अंक बढ़वाने के लिए आया। सत्यवादी बने रहने की प्रतिज्ञा को ध्यान में रखकर लेखक ने सोचा कि यह व्यक्ति इन्द्र और विष्णु के रूप में मेरी परीक्षा लेने आया है। इसी संदर्भ में लेखक आगे कहता है।

**व्याख्या** : वह (लेखक) मन ही मन सोचता है कि जिस प्रकार प्राचीनकाल में जब साधक किसी साधना में रत होने की प्रतीज्ञा करते थे तब देवता मनुष्य का रूप धारण करके उनकी परीक्षा लेने के लिए पहुँच जाते थे और उन्हें अपने कर्म के प्रति अडिग देख प्रसन्न होकर वरदान माँगने के लिए कहते थे। ठीक उसी प्रकार ये सज्जन भी वास्तव में मानव न होकर इन्द्र और विष्णु हो सकते हैं और अब मेरे द्वारा अनैतिक कार्य के मना किए जाने पर ये अपने मूल रूप (देवता) में प्रकट होकर कहेंगे- हे पुत्र् तू अपनी परीक्षा में खरा उतरा है। हम तुम्हें अशीर्वाद देने के मूड में हैं, इसीलिए तुम बताओ कि तुम्हें क्या वरदान चाहिए। यदि तुम चाहो तो हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक पूरा अध्याय तुम्हारें नाम पर लिखवा दूँ। जिससे तुम्हारा नाम हिन्दी भाषा के क्षेत्र मे अमर हो जाएगा। तुम्हारे ईमानदार व्यक्तित्व को पुरस्कृत करने के लिए, तुम चाहो तो तुम्हारे घर में किसी समालोचक को पानी भरने के काम पर लगा दूँ।

**विशेष :**

1. इस गद्यांश में लेखक ने मानव द्वार अपनाए जाने वाले अनैतिक कार्यों पर व्यंग्य किया है।

2. शब्द शक्ति-अभिधा।

3. गुण-प्रसाद।

4. शैली-व्यंग्यात्मक।

5. 'मूड', 'डयूटी' जैसे अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

6. भाषा सरल, एवं प्रभावोत्पादक है।

**2. "अच्छी आत्मा 'फोल्डिंग' कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गए, नहीं तो मोड़कर कोने में टिका दिया। जब कभी आत्मा अडगा लगाती है, तब मुझे समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के दानव अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी पर तोते मे क्यों रख देते थे। वे उससे मुक्त होकर बेखटके दानवी कर्म कर सकते थे। देव और दानव में अब भी तो यही फर्क है-एक की आत्मा अपने पास ही रहती है और दूसरे की उससे दूर।"**

*पृष्ठ - 113*

**प्रसंग :** प्रस्तुत सुप्रसिद्ध व्यंग्य-निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडण्डियों का जमाना' नामक निबंध से उद्ध त है। लेखक ने कुछ समय पूर्व सत्यवादी बनने की प्रतीज्ञा की थी। उसके पास एक सज्जन अपने पुत्र के अंक बढ़वाने के लिए आया। लेकिन लेखक के असमर्थता जताने पर गाली-गलौंज देकर चले जाते हैं। तब लेखक ने अपनी आत्मा से पूछा। आत्मा ने कहा ईमानदार बनने की कोई जरूरत नहीं है, जब आगे जमाना बदले तो तुम भी बदल जाना। यहाँ लेखक अपनी सचेतन आत्मा पर व्यंग्य करते हुए कहता है।

**व्याख्या** : आत्मा मनुष्य को अच्छे-बुरे कार्य के प्रति सचेत करती रहती है परन्तु आधुनिक युग में एक अच्छी आत्मा में उस कुर्सी के समान गुण होने चाहिए जो समेटी जा सकती हो अर्थात् अच्छी आत्मा में परिस्थितियों के अनुसार समायोजन की शक्ति होनी चाहिए। जिस प्रकार फोल्डिंग कुर्सी की आवश्यकता हो तो खोलकर बिछा ली अन्यथा मोड़कर कोने में रख दिया उसी प्रकार आत्मा भी ऐसी ही होनी चाहिए। लेखक कहता है कि वर्तमान युग में जब उसकी आत्मा उसे गलत कार्य करने से रोकती है तब लेखक सोचता है कि अब मुझे ध्यान में आया कि पुरानी कथाओं में पहले राक्षस अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी पर तोते मे क्यों रख देते थे? क्योंकि उनकी आत्मा भी उनके उचित-अनुचित कार्य में अवश्य ही बाधा डालती होगी। अतः वे अपनी आत्मा को तोते में रखकर, बिना किसी संकोच के दयनीय कर्म कर सकते थे। देवता और दानव में यही एक अन्तर है कि देवताओं की आत्मा उनके साथ रहती है और उन्हें अनैतिक कार्य करने से रोकती है, जबकि राक्षसों की आत्मा उनसे दूर होने के कारण वे कुत्सित कर्म करते रहते हैं।

**विशेषः**

1. आत्मा रहित मनुष्य के कर्मों पर प्रकाश डाला गया है।
2. गुण-प्रसाद।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. शैली व्यंग्यात्मक।
5. इसमें उर्दू और अंग्रेजी की शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है।
6. आम बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया गया है।

**3. "देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण-पत्र है। ईमान के पास बेईमानी की सिफारिशी चिट्ठी न हो तो कोई उसे दो कौड़ी को न पूछे। यही सब सोचकर मैं ढीला हो गया। अब मैं बड़े खुले मन से नम्बर बढ़वाता हूँ।"**

*प ष्ठ - 113*

**प्रसंग :** प्रस्तुत सुप्रसिद्ध व्यंग्य-निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडण्डियों का जमाना' नामक निबंध से उद्ध त है। आज प्रत्येक मानव असफलता से बचने के लिए अनैतिक कर्मों का सहारा लेता है। आज के समय में सच्चाई, ईमानदारी आदि का कोई मूल्य नहीं है। लेखक ऐसे समाज पर व्यंग्य करते हुए कहता है।

**व्याख्या** : आज के समय में प्रत्येक सच्चे आदमी को अपने कार्य पूर्ण करने के लिए अनैतिकता अर्थात झूठ का सहारा लेना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति सफलता प्राप्त करने हेतु असत्य का सहारा लेता है और सफलता अर्जित कर लेता है। प्रत्येक ईमानदार और परिश्रमी व्यक्ति के पास बेईमानी की सिफारिशी चिट्ठी न हो तो आज के युग में कोई उसे दो कौड़ी को रोजगार भी न दे, क्योंकि अगर सफलता प्राप्त करनी है तो परिश्रम की नहीं सिफारिश की आवश्यकता अधिक होती है। लेखक कहता है कि इन क्रिया-कलापों को देखकर उसने अपने मन में जो ईमानदारी का संकल्प किया था, वह टूटकर बिखर गया है। अब वह भी संसार के अन्य व्यक्तियों की तरह बेईमान बनकर, आदर्शो का परित्याग करके तथा उचित-अनुचित की चिन्ता न करते हुए खुले मन से विधार्थियों के अंक बढ़वाने का कार्य करता हूँ।

**विशेषः**

1. लेखक ने आज के मनुष्य के बदले हुए स्वरूप पर कटु व्यंग्य किया है।
2. समाज के भ्रष्ट शासकों पर भी कटु प्रहार किया गया है।
3. शब्दशक्ति-अभिधा, लक्षणा।
4. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है।
5. भाषा सरल एक प्रसंगानुकूल है।

4. **"इसमें अधिकांश दया के पात्र हैं। ये बेहद परेशान और घबड़ाये हुए लोग हैं। कोई चाहता है कि लड़का पास हो जाए, तो उससे नौकरी करा दें, जिससे परिवार की दुर्दशा कम हो। किसी को चिन्ता है कि लड़का फेल हो गया, तो और एक साल उसकी पढ़ाई का खर्च कैसे चलाऊँगा। कोई चाहता है कि लड़की पास हो जाए, तो उसकी शादी करके बोझ हल्का करूँ। बहुत दुःखी और परेशान लोग होते हैं, इनमें कुछ तो इतने दीन होते हैं कि जी होता है, पहले इनके गले लगकर रो लिया जाये।"**

प ष्ठ - *114*

**प्रसंग :** प्रस्तुत सुप्रसिद्ध व्यंग्य-निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडण्डियों का जमाना' नामक निबंध से उद्‌ध त है। जो व्यक्ति परिश्रम की अपेक्षा अनैतिक कार्यों द्वारा सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, लेखक कहता कि वे दया के पात्र है। उनकी इसी दयनीय स्थिति को रेखांकित करते हुए परसाई जी लिखते हैं।

**व्याख्या** : जो व्यक्ति अनुचित और अनैतिक कार्यों द्वारा सफलता अर्जित करना चाहते हैं, उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है। ये सदैव परेशान और घबराए हुए होते हैं क्योंकि परिश्रम करना इनकी आदत नहीं है। कोई व्यक्ति अपने पुत्र के अंक बढ़वाना चाहता है ताकि वह परीक्षा में पास हो सके। जिससे उसकी नौकरी लग जाए तथा घर की आर्थिक स्थिति भी सुधर सके। इस प्रकार किसी अन्य व्यक्ति को यह चिन्ता है कि उसके पुत्र के अंक न बढ़वाए गए तो वह परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाएगा और उसकी एक वर्ष की पढ़ाई का खर्च नहीं उठा सकेगा। ऐसे ही कोई अपनी बेटी के अंक बढ़वाकर परीक्षा में पास होते ही उसकी शादी कर देना चाहता है ताकि उसके सिर का बोझ हल्का हो सके। वास्तव में ये अनुचित कार्य करने वाले अत्यन्त दुःखी और परेशान होते है क्योंकि अनैतिक तरीकों से कार्य निकलवाने में परेशानी तो उठानी ही पड़ती है। इन अनैतिक कार्य करने वालों के चेहरे दयनीय होते हैं कि एक बार तो मन करता है कि पहले इनके गले लगकर इनकी ऐसी स्थिति पर रोया जाए और बाद में इनका कार्य किया जाए।

**विशेषः**

1. प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने अनैतिक कार्यों द्वारा सफलता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों पर करारा व्यंग्य किया है।
2. 'कुछ तो इतने दीन होते हैं' के द्वारा लेखक उनकी ऐसी स्थिति के लिए उन्हें ही उत्तरदायी ठहराता है क्योंकि वे परिश्रम नहीं करना चाहते।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. भाषा आम बोलचाल की एवं भावानुकूल है।
6. 'उर्दू' के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

5. **"सालों से ये सड़के बन्द हैं और सब पगडण्डियों से जा रहे हैं। चलते-चलते पगडण्डियों के काँटे और झाड़ियाँ साफ हो गयी हैं और वे सड़कों जैसी चिकनी और चौड़ी हो गयी हैं। बेझिझक, नंगे पाँव इन पर लोग चल रहे हैं। आम सड़क पर चलने वाला अब बेवकूफ या पागल समझा जाएगा। अब आम सड़कें खुल भी जायें, तो लोग उन पर चलने मे झिझकेंगे। मरम्मत् वाले भी इसीलिए ढीले पड़ गए है। मगर उपयोग न होने से आम सड़कों**

**पर झाड़ियों और जंगली पौधे उगेंगे और व ढक जायेगी। तब किसी को आभास भी न होगा कि इस देश में कहीं आम सड़कें भी हैं।"**

*प ष्ठ - 115*

**प्रसंग :** प्रस्तुत सुप्रसिद्ध व्यंग्य-निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडण्डियों का जमाना' नामक निबंध से उद्ध त है। जो व्यक्ति परिश्रम की अपेक्षा अनैतिक कार्यों द्वारा सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, लेखक कहता कि वे दया के पात्र है। उनकी इसी दयनीय स्थिति को रेखांकित करते हुए परसाई जी लिखते हैं।

**व्याख्या** : आज के युग में आदर्श, नैतिकता और ईमानदारी रूपी सड़कें बन्द हो गई हैं और सभी व्यक्ति सफलता प्राप्त करने हेतु परिश्रम न करके अनैतिक व अनुचित साधनों रूपी पगडंडी को अपना रहे हैं। अनैतिकता या सिफारिश रूपी पगंडडी। पर अधिकांश व्यक्तियों के चलने से इसके दोनों ओर जो झिझक, संकोच और भय रूपी जो काँटे व झाड़ियाँ थी वे भी समाप्त हो गए हैं। अर्थात् लोग अब इस रास्ते पर चलने के अभ्यस्त हो गए हैं। अब व्यक्ति इन अनैतिक साधन रूपी पगडंडियों पर बिना संकोच के चल रहे हैं, उन्हें किसी का भय नहीं है। सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश भी इस आदत का आदी हो चुका है। आज जो व्यक्ति सच्चाई व परिश्रम रूपी आम सड़क पर चलता है लोग उसे मूर्ख समझते हैं। अगर ये परिश्रम या नैतिकता की सड़कें खुल भी जाएं तब भी लोग इन पर चलने में संकोच करेंगे। इसलिए सच्चे नेता व कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकारी भी सच्चाई रूपी सड़क की मरम्मत नहीं कर रहे हैं। यदि हमने नैतिकता रूपी सड़क का उपयोग नहीं किया तो अल्पावधि में इस सड़क पर भ्रष्टाचार रूपी झाड़ियाँ और जँगली पौधे उग आएँगे, जिससे ये सड़के टूट जाएँगी। तब भविष्य में किसी भी व्यक्ति को यह आभास भी नहीं होगा कि कभी यहाँ नैतिकता या ईमानदारी रूपी आम सड़कें भी थीं।

**विशेषः**

1. लेखक ने आने वाले समय की उस विडंबना की ओर संकेत किया है, जब नैतिकता और ईमानदारी खोजने से भी न मिलेगी।
2. इसमें 'सड़के'-ईमानदारी और 'पगडण्डियाँ' अनैतिकता के प्रतीक रूप में आई हैं।
3. शब्दशक्ति-अभिधा, लक्षणा।
4. गुण-प्रसाद।
5. संस्कृत व उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया गया है।
6. इसमें स्वार्थी व परिश्रम न करने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य किया है।
7. भाषा प्रवाहमयी व भावानुकूल है।

**6. "लगता है, आम सड़कें अब भविष्य के पुरातत्ववेत्ता को ही मिलेंगी। वही इन्हें खोजेगा। वह निष्कर्ष निकालकर बताएगा कि उस जमाने में इस देश में आम सड़कें तो थी, पर कोई उन पर चलता नहीं था। सब पगडण्डी पकड़ते थे। अनुपयोग के कारण सड़के दब गयी थीं।"**

*प ष्ठ - 115*

**प्रसंग :** प्रस्तुत सुप्रसिद्ध व्यंग्य-निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडण्डियों का जमाना' नामक निबंध से उद्ध त है। इसमें लेखक ने बताया है कि नैतिकता का प्रचलन समाप्त हो गया है और देश में अनैतिकता, बेईमानी और भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। इसी संदर्भ में कल्पना करते हुए लेखक कहता है।

**व्याख्या** : देश में बेईमानी और अनैतिकता ने इतना प्रसार कर लिया है कि अगर ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करने वाला जानकार इस देश में नैतिकता, परिश्रम और ईमानदारी की खोज करेगा तो ये चीजें उसे इतिहास के गर्भ से निकालनी पड़ेगी। अन्वेषण-प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही वह निष्कर्ष निकालकर बताएगा कि कभी इस देश में भी नैतिकता, सच्चाई व ईमानदारी रूपी सड़कों का प्रचलन था लेकिन कोई भी व्यक्ति इन सड़कों पर चलने के लिए उत्सुक नहीं था। सभी व्यक्ति शार्टकट तरीके से बिना परिश्रम किए ही सफलता अर्जित कर लेते थे। अतः वे पगडण्डियों रूपी शार्टकट (अनैतिकता) रास्ते को अपनाते थे।

जब कोई भी व्यक्ति सच्चाई रूपी सड़कों पर नहीं चला तो अनुपयोग के कारण ये सड़के दब गई और अनैतिकता रूपी पगंडण्डियों का प्रचलन हुआ।

**विशेषः**

1. लेखक ने भावी समाज की कल्पना की है।
2. देश में बढ़ रही बेईमानी व अनैतिकता पर व्यंग्य किया गया है।
3. शब्द शक्ति अभिधा, लक्षणा।
4. गुण-प्रसाद।
5. पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है।
6. भाषा प्रवाहमयी और कसावट युक्त है।
7. **"सफलता के महल का सामने का आम दरवाजा बन्द हो गया है। कई लोग भीतर घुस गए हैं और उन्होंने कुण्डी लगा दी है। जिसे उसमें घुसना है, वह रूमाल नाक पर रखकर नाबदान में घुस जाता है। आसपास सुगन्धित रूमालों की दुकानें लगी हैं। लोग रूमाल खरीदकर उसे नाक पर रखकर नाबदान में से घुस रहे हैं। जिन्हें बदबू ज्यादा आती है और जो सिर्फ मुख्य द्वार से घुसना चाहते हैं। वे खड़े दरवाजे पर सिर मार रहे हैं और उनके कपोलों से खून बह रहा है।"**

प ष्ठ - *115*

**प्रसंग :** प्रस्तुत सुप्रसिद्ध व्यंग्य-निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडण्डियों का जमाना' नामक निबंध से उद्ध त है। इसमें लेखक ने सफलता अर्जित करने के ढंग पर प्रकाश डालते हुए कहा है।

**व्याख्या** : परिश्रम रूपी आम सड़क सफलता रूपी महल तक ले जाती है लेकिन अब मेहनत या सफलता रूपी मुख्य दरवाजा बन्द हो गया है क्योंकि व्यक्ति शार्टकट तरीके से सफलता अर्जित करना चाहते हैं। जो व्यक्ति इस सफलता रूपी महल में प्रवेश पा चुके हैं उन्होंने इस महल के मुख्य द्वार को अन्दर से बन्द कर लिया है। अतः जो व्यक्ति अब इस महल में घुसना चाहते हैं वे इस महल में अनैतिकता रूपी गंदी नालियों के माध्यम से प्रवेश करते हैं। कुछ व्यक्ति नैतिकता रूपी रूमाल का आवरण ओढ़कर इन्हीं गंदी नालियों से प्रवेश कर रहे हैं। इस सफलता रूपी महल के आस-पास लोगों ने भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी रूपी दुकानें खोल रखी हैं। इसी भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के सहारे वे सफलता रूपी महल में घुस रहे हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति अनैतिक साधनों से घ णा करते हैं तथा परिश्रम के बल पर सफलता अर्जित करना चाहते हैं, वे उस सफलता रूपी मुख्य द्वार पर खड़े सिर मार रहे हैं, उनके शरीर से खून बह रहा है। तात्पर्य यह है कि हमारे समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे इतना भ्रष्टाचार फैल चुका है कि कोई भी व्यक्ति अपनी मेहनत से सफलता न पाकर अनैतिक कार्यों द्वारा सफलता प्राप्त कर लेता है।

**विशेषः**

1. लेखक ने समाज में फैले भ्रष्टाचार पर कटु व्यंग्य किया है।
2. इसमें देश के यथार्थ को भी उजागर किया गया है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्ष्णा।
4. गुण-प्रसाद।
5. उर्दू व संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग किया गया है।
6. भाषा विषयानुकूल एवं प्रवाहमयी है
7. शैली व्यंग्यात्मक है।

# 7. अस्ति की पुकार हिमालय

1. **"संस्कृत भाषा में वैसे अस्ति क्रिया के बिना वाक्य पूरा हो जाता है, हिन्दी या अंग्रेजी की तरह अस्ति की समानार्थ क्रिया देने की विशेषता नहीं है। तब क्यों यह अपार्थ अस्ति का आग्रह? वह भी कालिदास के द्वारा? कालिदास शब्दों में मितव्ययी, इस तरह शब्द बिखेरते नहीं और अभी अपने अन्तिम ग्रंथ का पहला श्लोक लिखने जा रहे हैं और बिना जरूरत अस्ति की झक सिर पर सवार हो गयी? तो कहीं कुछ गड़बड़ है, कहाँ हिमालय में या कालिदास में, या शायद हिमालय और कालिदास की धरती में, इसका अनुसंधान करना चाहिए।"**

पृष्ठ - *116*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित उनके भावात्मक निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' में से उद्ध त है। इसमें लेखक ने कालिदास द्वारा एक श्लोक में प्रयुक्त 'अस्ति' शब्द पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है।

**व्याख्या** : संस्कृत भाषा में 'अस्ति' क्रिया के बिना भी वाक्य पूर्ण हो जाता है। संस्कृत में हिन्दी या अंग्रेजी की भाँति अस्ति की समानार्थक क्रिया देने की भी आवश्यकता नहीं है। अर्थात् हिन्दी या अंग्रेजी में यदि 'अस्ति' क्रिया नहीं देनी है तो उसकी समानार्थक क्रिया देकर ही काम चलाया जा सकता है, जबकि संस्कृत में ऐसा नहीं है। तब लेखक क्यों व्यर्थ की अर्थहीन अस्ति के पीछे लगा हुआ है? कम शब्दों से ही अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने वाले कालिदास के श्लोक में 'अस्ति' जैसे अर्थहीन शब्द का क्या प्रयोजन हो सकता है। कालिदास अपने काव्य में व्यर्थ के निरर्थक शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं, लेकिन वे अपनी अन्तिम कृति के प्रथम श्लोक में ही 'अस्ति' जैसे निरर्थक शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, लेखक कहता है कि अवश्य ही इस शब्द के पीछे कोई न कोई रहस्य अवश्य है। यह रहस्य हिमालय या कालिदास में है या फिर इन दोनों की धरती अथवा भावभूमि में है, इसकी खोज करनी चाहिए।

**विशेषः**

1. इसमें कवि कालिदास का 'अस्ति' के प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है।
2. शब्द शक्ति-अभिधा।
3. गुण-प्रसाद।
4. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के साथ-साथ उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।
5. भाषा विषयानुकूल एवं प्रवाहमयी है।

२. **"क्योंकि वे हिमालय को भारतीय जीवन-प्रवाह का स्रोत मानते थे, इस जीवन प्रवाह में भाषा, संस्कृति, समाज-चेतना, ऐसा सभी कुछ शामिल है जिसका समष्टि चैतन्य से सम्बन्ध हो। राहुल जी के लिए जीवन भर हिमालय भूत नहीं, भविष्यत् नहीं, केवल अस्ति रहा, केवल हिमालय ही नहीं, हिमालय की प्रतिकृति संस्कृत भाषा की उनके लिए अस्ति रूप थी, उस भाषा के मूर्धन्य कवि कालिदास अस्ति रूप थे, हिमालय की छाया में बसी हुई सामान्य जनता शक्ति का अजस्त्र स्रोत थी। मैं समझता हूँ इसीलिए हमारे जैसे बहुत से आस्तिकों से वह कहीं ज्यादा आस्तिक थे।"**

पृष्ठ - *116*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित उनके भावात्मक निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' में से उद्ध त है। इसमें लेखक ने राहुल सांकृत्यायन से सम्बन्धित घटना का उल्लेख किया है।

**व्याख्या** : राहुल जी हिमालय को भारतीय जीवन प्रवाह का स्रोत मानते हैं क्योंकि वे हिमालय को सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक स्वीकारते हैं। वे भारतीय जीवन प्रवाह में भाषा संस्कृति और सामाजिक चेतना आदि सभी को सम्मिलित करते हैं, जिसका सम्पूर्ण समाज की चेतना से गहरा सम्बन्ध है। अर्थात् वे रीति-रिवाज, परम्पराएँ और भाषा आदि सभी का हिमालय से गहन सम्बन्ध मानते हैं। उन्होंने अपने जीवन में हिमालय को भूत और भविष्य की द ष्टि से नहीं देखा, बल्कि उनके हिमालय के प्रति गहन श्रद्धा व आत्मीयता रही है। इसके साथ-साथ वे देव भाषा संस्कृत के प्रति भी सम्मान रखते थे, क्योंकि संस्कृत भाषा

यहीं पर उत्पन्न हुई थी, अतः उन्हें इस भाषा में हिमालय का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था। इसी भाषा के प्रकांड़ कवि कालिदास भी सम्मानीय थे। हिमालय की छाया में बसी भारत वर्ष की समस्त जनता भी उनकी शक्ति का निरन्तर बहने वाला स्रोत थी। लेखक कहता है कि हमारे जैसे बहुत सारे आस्तिकों से ज्यादा राहुल सांकृत्यायन आस्तिक थे।

**विशेषः**

1. इसमें लेखक ने हिमालय को सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक स्वीकार किया है।
2. राहुल सांकृत्यायन की संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा अभिव्यक्त हुई है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा।
4. गुण-प्रसाद।
5. शैली-भावात्मक।
6. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

3. **"मुझे सुनायी नहीं पड़ता, सुनाई न पड़े इसके लिए शहरों में काफी सरंजाम है, पान की दुकानों पर अहर्निश बजते रेडियो, यान्त्रिक वाहनों की चिल्ल-पों, जुलूसों की अर्थहीन नारेबाजी, ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों के द्वारा प्रसारित हरिनाम संकीर्तन और संगीत का बुखार उतारने वाली फिल्मी धुनों का व न्दगान और बच्चों के स्कूल से उठती हुई मछली हट्टे की शोरगुल। या शायद जैनेन्द्री भाषा में मुझे ही कुछ हो गया है या न-कुछ हो गया है। मुझे ही क्यों मेरे अड़ोसी-पड़ोसी सब को ही तो यह हो गया है कि हिमालय या किसी भी अस्ति की पुकार नहीं सुनायी पड़ती।"**

पृष्ठ - *117*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित उनके भावात्मक निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' में से उद्ध त है। इसमें राहुल सांकृत्यायन हिमालय के प्रति गहन श्रद्धा भाव रखते हैं और उन्हे हिमालय की पुकार भी सुनाई देती है, परन्तु लेखक को यह आवाज सुनाई नहीं देती। इसी का कारण बताते हुए लेखक कहता है।

**व्याख्या** : लेखक को हिमालय की आवाज सुनाई नहीं पड़ती, क्योंकि शहर में चारों तरफ ध्वनि प्रदूषण फैला हुआ है। वहाँ अनेक प्रकार के कार्य-व्यापारों के कारण जिनमें-पान की दुकानों पर अहर्निश बजते रेडियों की ध्वनि गूंजती रहती है। वहाँ अनेक वाहनों के हॉर्न बजते रहते हैं, जुलूसों की अर्थहीन ध्वनियाँ, ध्वनि फैलाने वाले यन्त्रों द्वारा भगवान का कीर्तन-भजन और फिल्मी गानों की धुन आदि सभी की कर्ण विस्फोटक ध्वनि सर्वत्र सुनाई देती रहती है। इसके अतिरिक्त स्कूलों में बच्चों के समूहगान की ध्वनि भी प्रत्येक स्थान पर सुनाई देती है। इतने शोर-गुल में लेखक को हिमालय की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। जिस प्रकार जैनेन्द्र लिखते हैं कि मुझे कुछ हो गया है या न कुछ हो गया है। अर्थात् लेखक को लगता है कि मुझमें कोई शारीरिक दोष आ गया है जिसके कारण वह ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। लेकिन यह ध्वनि मुझे ही नहीं, मेरे आस-पड़ोस में रहने वाले व्यक्तियों को भी सुनाई नहीं देती।

**विशेषः**

1. लेखक ने शहरों में व्याप्त ध्वनि-प्रदूषण पर व्यंग्य किया है।
2. शब्द शक्ति-अभिधा।
3. गुण-प्रसाद।
4. लेखक ने अपने कथन को स्पष्ट करने के लिए प्रसिद्ध कहानीकार जैनेन्द्र की शब्दावली का उदाहरण दिया है।
5. तत्सम् शब्दों का प्रयोग हुआ है।
6. भाषा प्रसंगानुकूल एवं प्रवाहमयी है।

4. **"हम जानते हैं कि अभी कल जिसके सात पुरखों को हमने एक सांस मे तारा था,उसी की कुर्सी पर बैठते ही जब आरती उतार रहे हैं, तो वह भी हमारे भक्तिभाव का मर्म जानता होगा। पर साथ ही हम दोनों भली भाँति समझते हैं, यही जनतन्त्र है, ऐसे ही सब चलता है, हमारी नजरों में एकनिष्ठ श्रद्धा कोई मूल्य नहीं रखती, क्षण-क्षण नया-नया रूप धारण करने वाली श्रद्धा ही वास्तविक युगश्रद्धा है।"**

*प ष्ठ - 117*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित उनके भावात्मक निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' में से उद्ध त है। इसमें मिश्र जी ने समाज की स्वार्थ भावना व भारत की जनतन्त्रात्मक प्रणाली पर व्यंग्य किया है।

**व्याख्या** : वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के पद तथा कुर्सी को देखकर ही उसे सम्मान देता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ की भावना से ग्रस्त है। अधिकारी या नेता इस बात से भी भली-भाँति परिचित है कि जब तक उसे यह पद नहीं मिला था तब तक जो व्यक्ति अब खुशामद कर रहे हैं, वे ही उस समय गालियाँ देते थे। वे दोनों ही एक-दूसरे के वास्तविक रूप से परिचित हैं, दोनों ही अवसर का फायदा उठाते हैं। स्वार्थी जनता व पदासक्त नेता, दोनों एक-दूसरे के मनोभावों से परिचित होते हैं। भारतीय जनतन्त्र में ऐसा ही होता है। जनतन्त्र में कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धाभाव नहीं रखता। वस्तुतः जनतन्त्र में अवसरवादिता के कारण प्रतिपल नया रूप धारण करने वाली श्रद्धा ही युगश्रद्धा है। अर्थात् जिसके पास पद है, ताकत है, साधारण व्यक्ति उसी के प्रति श्रद्धान्वत हो जाते, पद और ताकत जाते वे अवसर का फायदा उठाकर किसी दूसरे तक पहुँचा देते हैं, यही आज के युग की श्रद्धा है।

**विशेषः**

1. लोकतन्त्र प्रणाली के लिए घातक अवसरवादिता पर व्यंग्य किया गया है।
2. शब्द अभिधा, लक्षणा।
3. गुण-प्रसाद।
4. शैली-व्यंग्यात्मक।
5. अलंकार-पुनरूक्ति प्रकाश।
6. भाषा में प्रवाहमयता का गुण विद्यमान है।

5. **"हिमालय में भी रस नहीं रहा। फिर उसने इतना धोखा दिया, हम उसके आसरे सोते रहे और लाल चींटियों का दल रेंगकर आया, हमारे सीमान्त का श्यामल प्रसार चट कर गया। आखिर उसे हमने पासबाँ मानकर ही तो इतना सम्मान दिया था, हमने उसे भाल कहा, अपनी किस्मत का लेखा-जोखा उसमें अंकित कराया और उसने कुछ नहीं किया, हमारी सुख नींद नष्ट हो गयी और लगा कि एक बड़ा तिलिस्म टूट गया। कैसा नगपति, कैसा विशाल?"**

*प ष्ठ - 117-118*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित उनके भावात्मक निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' में से उद्ध त है। इसमें लेखक कहना चाहता है कि हम भारतीयों को हिमालय पर बड़ा विश्वास था कि यह अन्य देशों के आक्रमण से हमारी रक्षा करेगा लेकिन चीनी आक्रमण ने हमारा यह भ्रम तोड़ दिया। हिमालय चुपचाप खड़ा देखता रहा।

**व्याख्या** : लेखक अपनी व्यथा को स्पष्ट करते हुए कहता है कि हिमालय पर्वत की रसमयता समाप्त हो गई है। आज हमारी द ष्टि में हिमालय का वह महत्व नही रहा क्योंकि हमने उसे अपने प्रहरी के रूप में माना और इसी भरोसे निश्चिन्त हो गये। लेकिन चीन के सैनिकों ने हमारे उस प्रहरी को लांघ कर सीमा में घुस गये और कुछ भागों पर अधिकार जमा लिया। हमने हिमालय को अपने पड़ोसी जैसा सम्मान प्रदान किया, उसे भारत का मस्तिष्क कहा और अपनी किस्मत का लेखा-जोखा उसमें अंकित करवाया, लेकिन उसने कुछ नहीं किया। वह भारत-वर्ष की सुरक्षा भी न कर पाया। 1962 के चीनी आक्रमण से पहले हिमालय को प्रहरी के रूप में मानकर चैन की नींद सोते थे लेकिन चीनी आक्रमण से वह नींद टूट गई और हमें ऐसा लगा मानो

हम जादू के भ्रमजाल से निकलकर यथार्थ के धरातल पर पहुँच गए हैं। यह पर्वत इतना विशाल और सर्वश्रेष्ठ होने पर भी हमारी रक्षा न कर पाया।

**विशेषः**

1. लेखक ने भारत पर 1962 के चीनी आक्रमण के प्रसंग को उठाया है।
2. इसमें चीनी आक्रमण की निर्ममता की ओर भी संकेत है।
3. लेखक ने भारतीय प्रशासन की अकर्मण्यता पर भी कटु व्यंग्य किया है।
4. शब्द शक्ति-अभिधा एवं लक्षणा।
5. गुण-प्रसाद।
6. उर्दू व संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
7. शैली व्यंग्यात्मक है।

6. **"हम हिमालय और उसके अस्ति से इतनी तटस्थता आज दिखला रहे हैं और यह जतला रहे हैं कि इस अस्ति की पुकार हम तक नहीं आती, हम क्यो करें? हमें देश का दर्द नहीं होता, हम क्यो करें? हमें किसी चीज का दर्द नहीं होता, हम क्या करें? पर यही क्या कम दर्द है कि दर्द नहीं होता? 'दर्द नहीं होता' का दर्द भी तो एक प्रकार का अस्ति है, प्रकाशवान न सही, सिलहती सही, पर अस्ति तो है।"**

*पृष्ठ - 120*

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित उनके भावात्मक निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' में से उद्ध त है। इसमें लेखक कहता है कि जब तक हम 'अस्ति' का भाव मन में जाग त नहीं कर लेते, तब तक स्वार्थ के क्षेत्र से बाहर नहीं निकल सकते।

**व्याख्या** : लेखक कहता है कि हम हिमालय और उसके अस्तित्व से बहुत ज्यादा दूरी बनाए हुए हैं। अर्थात् पहले हिमालय के प्रति अगाध आस्था थी लेकिन जब से चीनी सेना द्वारा हिमालय को लांघकर भारतीय क्षेत्र पर अधिकार करने की बात मन में आती है, तब से हमने हिमालय के अस्तित्व को नकार दिया है। हम बहाना यह बना रहे हैं कि हिमालय के अस्तित्वबोध की पुकार हम तक नहीं पहुँच रही, ऐसे में हम क्या करें। यदि स्वार्थ-भाव के कारण हमारे अन्दर अपने देश के संकटों के प्रति कोई दया भाव नहीं उठता तो इसमें हमारा क्या दोष है। जब हम यह कहते है कि हमारे मन में देश के प्रति कोई दर्द-भाव नहीं उठता, उसके प्रति आत्मीय सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता तो बड़ा दुःख का अनुभव होता है। लेखक कहता है कि 'दर्द नहीं होता' यह भी दर्द के अस्तित्व को तो दर्शाता ही है अर्थात् इतना कहने से मन में एक टीस तो उत्पन्न होती है। हमारे हृदय में देश के प्रति दर्द का अस्तित्व मुखर न होकर धुंधला-सा है, लेकिन हमें संतोष है कि इस दर्द का अस्तित्व तो है, कम ही सही।

**विशेषः**

1. लेखक ने उन भारतीयों पर व्यंग्य किया है जो भारतवासी कहलवाकर इसके प्रति आत्मीय संबंध नहीं बना पाते।
2. इसमें 'अस्ति' के प्रश्न को भी स्पष्ट किया है।
3. शब्द शक्ति-अभिधा, लक्षणा।
4. गुण-प्रसाद।
5. शैली-व्यंग्यात्मक।
6. उर्दू एवं संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
7. भाषा प्रसंगानुकूल एवं प्रवाहमयी है।

# खण्ड (ख)

# आलोचना

## हिन्दी निबंधः स्वरूप एवं विकास

निबंध साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। इसमें किसी भी विषय को जन-सामान्य के लिए बोधगम्य बनाया जा सकता है क्योंकि निबंध में विचारों का सम्प्रेषण सुगम व सुलभ रूप में होता है। निबंध गद्य में ही लिखा जाता है। संस्कृत में गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है- "गद्य कवीनां निकषं वदन्ति"। आचार्य शुक्ल ने भी इसी संदर्भ में कहा है-"यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।"

### परिभाषा एवं स्वरूप

'निबन्ध' का शाब्दिक अर्थ है-बांधना अर्थात् व्यवस्थित करना। 'निबंध' शब्द 'ऐस्ये' (essay) के अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु व्युत्पत्ति की द ष्टि से दोनों में अन्तर है। निबंध साहित्य इतना विस्त त और वैविध्यपूर्ण है कि इस शब्द को लक्षणों के घेरे में बाँधना दुष्कर हो जाता है। वस्तुतः फिर भी कतिपय विद्वानों ने निबंध को परिभाषित करने का प्रयास किया है-

(क) **पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ-**

(1) औस्बर्न के अनुसार-"किसी सामयिक विषय पर हल्के गप-शप के अन्दाज में लिखा गया लेख निबंध होता है।"

(2) प्रीस्टले के अनुसार-"निबन्ध यथार्थ व्यक्तित्व की ऐसी ईमानदार अभिव्यक्ति होती है जो कलात्मक और स्वतः पूर्ण बातचीत के रूप में व्यक्त होती है।

(3) अलेग्जेंडर स्मिथ के अनुसार-"साहित्यिक विधा के रूप में निबन्ध इस रूप में गीतिकाव्य से साम्य रखता है कि वह किसी ऐसी केन्द्रिय भावस्थिति के आधार पर गठित होता है जो गम्भीर या व्यंग्यपरक, अथवा किसी नोक-झोंक के रूप में हो सकती है। ऐसी भावस्थिति या मूड बनने की देर है कि आद्यन्त निबन्ध ऐसे विकसित होता है जैसे रेशम के कीड़े के गिर्द उसका गोला।"

(4) सुप्रसिद्ध अंग्रेजी निबन्धकार एफ० बेकन के अनुसार-"निबंध सघन ज्ञान के वे कुछ प ष्ठ हैं जिनमें विचार सहज रूप में व्यक्त होते हैं।"

(ख) **भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ-**

(1) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध के स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करते हुए लिखा है, "संसार की हर एक बात और सब बातों से सम्बन्ध है अपने-अपने मानसिक संघटन के अनुसार किसी का मन किसी सम्बन्ध सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। ये सम्बन्ध-सूत्र एक दूसरे से बंधे हुए, पत्तों के भीतर की नसों के समान चारों ओर एक जाल के रूप में फैले रहते हैं। तत्त्वचिन्तक या दार्शनिक केवल अपने व्यापक सिद्वान्तों के प्रतिपादन के लिए उपयोगी कुछ सम्बन्ध सूत्रों को पकड़कर किसी ओर सीधा चलता है और बीच के ब्यौरे में कहीं नहीं फैलता; पर निबन्ध लेखक अपने मन की प्रव ति के अनुसार स्वच्छन्द गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता रहता है, यही उसकी अर्थ-सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है।

(2) बाबू गुलाबराय के अनुसार-"बाबू गुलाबराय ने निबन्ध के विभिन्न तत्वों और गुणों पर विशदतापूर्वक विचार करते हुए निबन्ध की बहुत ही संगत परिभाषा प्रस्तुत की है जो इस प्रकार है-"निबन्ध उस गद्य-रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक-संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया है।"

(3) डॉ० भगीरथ मिश्र के अनुसार-इन्होंने निबन्ध के विभिन्न गुणों को अंगीकार करते हुए कहा है-निबन्ध वह गद्य रचना है जिसमें लेखक किसी भी विषय पर स्वच्छन्दता-पूर्वक परन्तु एक विशेष सौष्ठव, सहिति, सजीवता और वैयक्तिकता के साथ अपने भावों, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि निबन्ध गद्य साहित्य की पुष्ट विधा है इसके अन्तर्गत किसी एक विषय पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया जाता है। अतः निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्त्व, विषय की व्यापकता, एक सूत्रता, संवेदनशीलता, भाव-गाम्भीर्य आदि गुण विद्‌यमान रहते हैं।

## निबन्ध के तत्त्व

(1) **वैयक्तिकता:** निबन्धकार की आत्मीयता और वैयक्तिकता निबन्ध की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। वैयक्तिकता के कारण ही वह सम्बन्धी अपने ज्ञान या पाण्डित्य की अपेक्षा अपनी भावना, और अपनी अनुभूति को अपने पाठक तक सम्प्रेषित करने में सचेष्ट होता है। निबन्ध के पाठक की रूचि भी वस्तु सम्बन्धी जानकारी के बजाय लेखक की तत्सम्बन्धी प्रतिक्रिया की प्रकाशन-मुद्रा, उसकी भाव-भंगिमा, उसकी वचन-भंगिमा, उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति की मार्मिकता-संक्षेप में निबन्धकार के व्यक्तित्व प्रकाशन में होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध में वैयक्तिकता नामक तत्व को स्वीकारते हुए कहा है-"आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो।" इस प्रकार वैयक्तिकता को निबन्धों का केन्द्रीय गुण और विशेषता कहा जा सकता है।

(2) **स्वतः पूर्णता:** प्रत्येक निबंध में स्वतः पूर्णता का गुण होना चाहिए। जिस विचार, भाव या पक्ष को लेकर निबन्धकार निबंध-लेखन कार्य करता है, उसे पढ़ते हुए सहृदय के मन में एक प्रकार की पूर्णता, स्पष्टता और सन्तोष का भाव जाग त होना चाहिए। यदि निबन्ध अपूर्णता, अस्पष्टता या असन्तोष का भाव मन में छोड़े, अथवा वह इस प्रकार की जिज्ञासाएँ मन में जाग त करे जिनके समाधान के बिना निबन्ध अपूर्ण लगता हो, तो इसे निबन्ध की सीमा और उसका अवगुण ही माना जाएगा। भले ही निबन्ध में विचार की अपेक्षा भाव या निजी अनुभूति का महत्त्व होता है, पर अनुभूति को इस अभिव्यक्ति में भी एक प्रकार का तारतम्य, विकास-क्रम तथा पूर्णतया का बोध आवश्यक है।

(3) **वैचारिकता:** निबन्ध में विचार ओढ़नी में जुड़े हुए सितारों की भाँति गुम्फित रहते हैं। इन विचारों में हृदय और बुद्धि के योग का समन्वय होता है। विचार प्रायः सभी प्रकार के निबन्धों में अनुस्यूत रहते हैं। केवल भावात्मकता ही निबंध का प्राण नहीं है, वह तो काव्य है जबकि कोरी वैचारिकता-ज्ञान। अतः अल्पाधिक मात्रा में किया गया दोनों का संयोग निबन्ध के लिए आवश्यक है।

(4) **शैली:** निबन्ध-लेखन अत्यन्त कठिन कर्म है। इसे वही लिख सकता है जिसे यह कला आती है। निबन्ध-लेखन की अपनी एक कलात्मक शैली होती है। इसक अन्तर्गत लेखक विचारों के अनुकूल उत्कृष्ट एवं सरल भाषा का प्रयोग करता है और बीच-बीच में भाषा के विटामिन-अलंकार, मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ और व्यंग्य आदि डालकर उसे रमणीय बना देता है।

(5) **मौलिकता:** निबंध की सफलता लेखक द्वारा उसके प्रतिपादन या कथन की मौलिकता में निहित है। विषय भले ही सुपरिचित हो, उसे देखने और अनुभव करने की मौलिक तथा नवीन द ष्टि में ही निबन्ध की सफलता निहित है। विश्वभर की कहानियों की समस्या मूल रूप में मनुष्य के सुख-दुःख से समन्वित उसके सीमित अनुभवों से सम्बद्ध होती है, पर प्रत्येक कहानीकार अपने अनुभव की मौलिकता के कारण प्रत्येक कहानी को आकर्षक, रोचक और सफल बना देता है। इसी प्रकार अनुभव की मौलिकता और उस अनुभव की अभिव्यक्ति की मौलिकता निबन्ध की सफलता के आधार हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त पाँचों तत्त्वों के सुसंगठित रूप में निबन्ध किसी विषय का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है। निबन्ध के लिए ये तत्व आवश्यक हैं।

## निबन्ध का विकास

(1) **भारतेन्दु युग:** राष्ट्रीय जागरण की स्फूर्ति उत्साह, उमंग, देशप्रेम, जनवाद, समाचार-पत्रों का प्रकाशन और अग्रेंजी साहित्य के सम्पर्क आदि अनेक कारणों से साहित्य के भिन्न-भिन्न रूपों के साथ-साथ निबन्ध का भी आविर्भाव हुआ। इस काल के प्रमुख निबन्धकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्‌ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी,

बालमुकुंद गुप्त, अम्बिकादत्त व्यास आदि प्रमुख है। बालकृष्ण भट्ट ने 'चरित्रपालन', 'साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास है', 'प्रतिमा', 'आत्मनिर्भरता', जैसे विचारात्मक; 'आँसू', 'मुग्ध माधुरी', पुरूष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर हैं', 'संसार महानाट्यशाला', चन्द्रोदय', 'पौगण्ड या किशोर', 'शंकराचार्य' और 'नानक' जैसे वर्णनात्मक; 'आँख', 'नाक', 'कान', 'बातचीत', जैसे साधारण विषयों पर विविध निबन्ध लिखे हैं, जिनमें रूचि-अरूचि स्वभाव और उनके जनजीवन को देखने के द ष्टिकोण का, हास्य एवं व्यंग्य की उद्धरण और उदाहरणपूर्ण चुटीली शैली में, समावेश मिला है। प्रतापनारायण मिश्र ने जहाँ एक ओर 'भौं' 'बुढ़ापा', 'होली', 'धोखा', मरे को मारे', 'द', 'ट', तथा 'काल', 'स्वार्थ' जैसे गम्भीर विषयों पर भी लेखनी चलाई है। बालमुकुन्द गुप्त ने 'शिवशम्भु का चिट्ठा' जैसे व्यंग्यमयी निबन्ध भी लिखे। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'मंगल', 'दिल्ली दरबार में मित्र मंडली के यार' आदि प्रमुख निबन्धों की स जना की है।

(2) **द्विवेदी युगः** इस युग के निबन्ध-लेखकों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, डॉ. श्यामसुन्दरदास, पण्डित पदमसिंह शर्मा 'कमलेश अध्यापक पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय है। इस युग में आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' के सम्पादक पद से भाषा के सुधार, सत-साहित्य के प्रसार, लेखक निर्माण और पाठकों की ज्ञान-व द्धि आदि का महान कार्य किया। उन्होंने लेखकों को सुसंस्क त ढंग से बात करना सिखाया। उन्होंने अंग्रेजी के आदर्श निबंधकार बेकन के निबन्धों का अनुवाद करवाकर, हिन्दी लेखकों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने निबन्धों को बोधगम्य शैली में प्रस्तुत करके सामान्य हिंदी पाठक को शिक्षित करने का प्रयास किया है। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए उनके निबन्धों को 'बातों का संग्रह' कहा है। इनके प्रमुख निबन्ध हैं - 'दण्डदेव का आत्मनिवेदन' (आत्म-कथात्मक शैली), 'महाकवि माघ का प्रभात वर्णन' (भावात्मक शैली), 'हैजे की कर्त्तव्य-परायणता' (व्यंग्यात्मक शैली) आदि। अध्यापक पूर्णसिंह ने 'सच्चीवीरता', 'आचरण की सभ्यता', 'पवित्रता', 'मजदूरी और प्रेम', तथा 'कन्यादान' जैसे अल्पसंख्या में निबन्ध लिखकर इस क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने व्यंग्य-शैली के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक और पुरातात्विक सन्दर्भो पर निबन्ध लिखे। परिणामस्वरूप इस युग के निबंधों के विषय गम्भीर हैं और वे शिष्ट एवं शिक्षित व्यक्तियों के ही अधिक निकट हैं। निबंधों के माध्यम से इस युग में भाषा का परिष्कार हुआ।

(3) **शुक्ल युगः** इस युग में निबंधकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, पदमलाल पन्नालाल बख्शी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, राधाक ष्ण, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, माखनलाल चतुर्वेदी और डॉ. रघुवीर सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस युग में आचार्य शुक्ल ने अपने निबंध संग्रह 'चिन्तामणि' भाग-1 व भाग-2 में नए विचार, नई अनुभूति और नवीन शैली पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करके हिन्दी-निबंध के विकास की गति में युगान्तर उपस्थित किया। उनके प्रमुख निबंधों में-'क्रोध', 'घ णा', 'श्रद्धा और भक्ति', 'उत्साह', 'कविता क्या है', साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद', 'काव्य में रहस्यवाद', 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', 'तुलसी का भक्ति मार्ग' आदि उल्लेखनीय है। अतः आचार्य शुक्ल के निबन्ध सच्चे अर्थो में उनकी बौद्धिक यात्रा के आलोक बिन्दु हैं। इस युग में गम्भीर विषयों पर लिखने वाले निबन्धकारों में गुलाबराय का नाम भी उल्लेखनीय है।

(4) **शुक्लोत्तर युगः** पत्र-पत्रिकाओं की निरन्तर बढ़ती संख्या के कारण इस युग में विपुल मात्रा में विपुल रचना हुई। इस युग के प्रतिष्ठित निबन्धकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. विनय मोहन शर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा, अज्ञेय, जैनेन्द्र, धर्मवीर भारती, डॉ. देवराज, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, कुबेरनाथ राय, प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र, विजयेन्द्र स्नातक, रघुवीर सहाय आदि प्रमुख हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। जहाँ उन्होंने खोजपूर्ण सहित्यिक निबन्धों की रचना है, वहाँ श्रेष्ठ ललित-निबंधों पर भी लेखनी चलाई है। उनके प्रमुख निबंध हैं-'अशोक के फूल', 'कुटज', 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?', 'शिरीष के फूल', 'आम फिर बौरा गये', आदि। श्री विद्यानिवास मिश्र भी आधुनिक युग के एक प्रबुद्ध साहित्यकार हैं। उन्होंने भारतीयता को विक त करने वाली चिन्तन-पद्धतियों से सदैव ही टक्कर ली है। उनके निबन्ध मूलतः इसी टकराहट की उपज हैं। उनके निबंध-संग्रहों में - 'कदम की फूली डाल', 'तुम चन्दन हम पानी', 'मेरे राम का मुकुट भींग रहा है', 'अस्मिता के लिए', 'लागो रंग हरी', 'गाँव का मन', आदि विशेष रूप से चर्चित हुए हैं। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्री लाल शुक्ल और रवीन्द्रनाथ त्यागी सशक्त व्यंग्य लेखक हैं। जीवन के अनेक परिचित संदर्भो को लेकर वर्तमान समाज व्यवस्था के नियामकों के प्रति तीखा एवं अमोघ व्यंग्य लिखकर इन निबंधकारों ने हिन्दी व्यंग्य-लेखन परम्परा को नयी दिशा प्रदान की है। परसाई जी इनमें अग्रणी हैं।

डॉ. नगेन्द्र निबंध लिखते हुए पाठकों से जुड़ जाते हैं। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से साहित्य की अनेक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। उनके निबंधों में शुक्ल जैसी मौलिकता, हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसी रोचकता और गुलाबराय जैसी स्पष्टता एवं सरलता के दर्शन होते हैं।

समसामयिक हिंदी निबंध में वैचारिक खुलापन आने के साथ-साथ युग की समस्याओं, जटिलताओं, चुनौतियों पर तार्किक बहस केन्द्रित विवेक वयस्कता में पर्याप्त व द्धि हुई है। युवा निबन्धकारों में प्रभाकर पालीवाल, प्रदीप माण्डव, कर्ण सिंह चौहान, चंचल चौहान, विजय मोहन सिंह ज्ञानरंजन जैसे बहुत से महत्त्वपूर्ण निबन्धकार इस दौर में उभरे हैं। हास्य व्यंग्य विनोद की दिशा में भी शरद् जोशी, रवीन्द्र कालिया जैसे निबन्धकार विशेष योगदान दे रहे हैं। हिंदी काव्य-भाषा के रूप में तथा राष्ट्र-भाषा के रूप में जैसे विषयों पर भी अनगिनत निबन्ध लिखे जा रहे हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी निबंध ने आज सर्वतोन्मुखी उन्नति की है। हमारा हिन्दी निबन्ध साहित्य विश्व की किसी भी भाषा के निबन्ध साहित्य के समक्ष गर्व और विश्वास से खड़ा होने में पूर्ण सक्षम है।

# साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास हैः सारांश

एक निबंधकार के रूप में बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के निबन्धकारों में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर विराजमान हैं। 'साहित्य के निबंधकारों में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर विराजमान हैं। 'साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास है' नामक निबंध में बालकृष्ण भट्ट जी ने प्रतिपादित किया है कि समय के साथ साहित्य का स्वरूप बदलता रहता है। साहित्य में नित्य या शाश्वत जैसी कोई चीज नहीं है। आलोच्य निबंध का सार इस प्रकार है-किसी भी देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के ह्रदय के आदर्श भावों का ही प्रतिरूप है। किसी कालखण्ड में जीवन-यापन करते हुए, उस जाति में जो भाव अनुस्यूत रहते हैं, वे ही भाव तत्कालीन साहित्य को समद ष्टि से देखने पर अद्‌ध त हो जाते हैं। मनुष्य को जब दुःखों की काली छाया घेर लेती है, जब वह क्रोधित होता है, उसका मन दो दिशाओं मे ंगमन कर रहा होता है, तो ऐसे में उसके मुख उसका मन दो दिशाओं में गमन कर रहा होता है, तो ऐसे में उसके मुख की आभा उदासीन-मलिन और निष्प्रभ होती है। ऐसी मनोदशा उसके कण्ठ से फुटे हुए ढोल के समान बेसुरी ध्वनि ही प्रस्फुटित होती है। ठीक इसके विपरीत जब चित्र आनन्द के सागर में गोते लगा रहा होता है तो मुख भी कमल के समान खिला हुआ दिखाई देता है, नेत्र हँसते हुए से और शरीर को प्रत्येक अंग चुस्त व फिरकी की तरह क्रियाशील दिखाई देता है; प्रसन्नचित मुद्रा के कारण कण्ठ से निकलने वाली ध्वनि भी कोयल से भी अधिक मीठी और सुहावनी होती है। मनुष्य से सम्बन्धित इस प्राकृतिक नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य करता है। इसी साहित्य में क्रोध, प्रेम, शोक, करूणा, वीरता, भक्ति, अहंकार आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक भावों का उद्‌गार देखा जाता है। इसीलिए साहित्य को मानव के चित्र में उभरने वाले भावों का चित्रपट कहा जाए तो संगत होगा। किसी देश का इतिहास पढ़ने से उस देश का बाह्य ज्ञान ही प्राप्त होगा लेकिन साहित्य के अनुशीलन से किसी जाति के सम्पूर्ण समय के आन्तरिक व बाह्य तथ्यों का ज्ञान हो सकता है।

हमारे पूर्वज आर्यों का साहित्य 'वेद' है। उस समय आर्यों की शैशवावस्था होने के कारण ही तात्कालीन साहित्य में भोलापन, उदारभाव, निष्कपट व्यवहार आदि के भाव मिलते हैं। उन्होंने कणाद, कपिल, कालिदास, भवभूति और श्रीहर्ष आदि महान आत्माओं का भी अंधानुकरण नहीं किया। प्रातःकाल विकसित सूर्य की प्रतिभा देख उनके सीधे-सीधे चित्त ने बिना कुछ छानबीन किए इसे अज्ञात और अज्ञेय शक्ति मान लिया। वायु जब तीव्र वेग से बहने लगी तो उसे भी ईश्वरीय शक्ति समझकर उसकी स्तुति करने लगे। उस समय वर्तमान युग के समान राजनैतिक अत्याचार अल्प मात्र भी न था, इसी से उनका साहित्य राजनीतिक यशोगान से मलिन नहीं हुआ था। उस समय आपस में एक-दूसरे के साथ आज जैसा कुटिलता या बनावट का भाव न था। इसलिए उस समय के उनके साहित्य 'वेद' में भी बनावटी भक्ति, कृत्रिम आदर-भाव, कमलव ति और बहकाने या इधर-उधर की बातों ने स्थान नहीं पाया था। उनका धर्म आज के समान विकृत न था। अतः उनका विनम्र स्वभाव, भोलापन और उदार भाव उनके साहित्य के एक-एक वर्ण से टपक रहा है। इनके (आर्यों) के ह्रदय में जो-जो भाव उदित हुए, वे ही सब एक नए प्रकार का साहित्य 'उपनिषद' नाम से जाना गया। आर्यों की संख्या बढ़ोतरी से इनकी मान्यताओं से भिन्नता आ गई, तब इनको एकता के सूत्र में बाँधने के लिए और अपने-अपने गुण कर्म से लोग चल-विचल हो सामाजिक नियमों को जिसमें किसी प्रकार की हानि न पहुँचे, इसलिए स्म तियों के साहित्य का उद्‌भव हुआ। यहाँ तक जो साहित्य पनपा, उसमें 'वेद' की भाषा का अनुकरण हुआ परन्तु दिन-प्रतिदिन उनकी भाषा अत्याधिक सरल, कोमल और परिष्कृत होती गई। इन स्म तियों और आर्य ग्रंथों की भाषा को हम वैदिक और आधुनिक संस्कृत के बीच की भाषा कह सकते हैं। अब से संस्कृत के भी दो भाग हो गए थे-वैदिक और लौकिक। 'वेद' के पश्चात् रामायण और महाभारत साहित्य क बड़े-बड़े अंग माने गए। रामायण के समय भारतीय सभ्यता का प्रेम के उत्साह से भरा हुआ यौवन था, परन्तु महाभारत के समय तक यह क्षतिग्रस्त हो वार्धक्य भाव तक पहुँच गई थी। रामायण के प्रधान पुरूष श्रीरामचन्द्र थे और महाभारत के बुद्धिशील, कूट-युद्ध-विशारद, भगवान् श्रीकृष्ण या उनके हाथ की कठपुतली युधिष्ठिर थे। रामायण और महाभारत के समय में लोगों के ह्रदयगत भाव में बहुत अन्तर आ गया था। रामायण में दो प्रतिद्विन्द्वी भाई इस बात के लिए विवाद कर रहे थे कि यह समस्त राज्य और राज्य सिंहासन हमारा नहीं है, यह सब तुम्हारे हाथ में रहे और अन्ततः रामचन्द्र जी ने भरत को राज्य सौंपकर सीता के साथ वन चले गए। वहीं महाभारत में दो भाई इस बात के लिए झगड़ा कर रहे थे कि सुईं के अग्रभाग जितना भू-भाग भी हम युद्ध के बिना नहीं देंगे। महाभारत के कविकुलगुरू व्यास और रामायण के बाल्मीकि से कोई भी नहीं बढ़ पाया। बाल्मीकि ने अपने नायक राम में जो-जो अवगुण देखे, वे ही व्यास के समय में गुण बन गए। इनकी कविता का मुख्य लक्ष्य था कि अपना मान-सम्मान, गौरव और प्रभुत्व जहाँ

तक हो सके न जाने पाए। धर्म के साक्षात् अवतार और सत्यवादी युधिष्ठिर की सत्यवादिता भी निज-कार्य-साधन के समय सब खुल गई।

महाभारत के उपरान्त देश की दशा-परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य में बड़ा परिवर्तन आ गया। इन्होंने संस्कृत को विकृत करके प्राकृत भाषा जारी की। तब से संस्कृत सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा न रही। प्राकृत का अर्थ है-नीचों की भाषा। अतः संस्कृत नाटकों में उत्तम पात्र ब्राह्मण या राजा आदि की भाषा संस्कृत और नीच पात्र की भाषा प्राकृत रखी गई। आगे चलकर प्राकृत का बहुत विकास हुआ और इसके अनेक भेद हो गए-शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी और पैशाची आदि। इस भाषा में अनेक साहित्यिक ग्रंथ लिखे गए। गुणाढ्य कवि का आर्यावर्द्ध लक्षश्लोक का ग्रंथ व हत्कथा प्राकृत में ही है। जैनियों के सब ग्रंथ प्राकृत में ही हैं, उनके स्तुति-गान भी इसी भाषा में हैं। इससे अवगत होता है कि प्राकृत किसी समय वेद की भाषा नहीं रह गई थी परन्तु इसमें हर एक विषय के ग्रंथ रचे गए। साहित्य का विकास तो इतना हुआ कि कालिदास के आलंकारिक कथन के मुकाबले 'वेद' का भद्दा और रूखा साहित्य अत्यन्त फीका मालूम होने लगा। कालिदास की एक-एक उपमा पर और भारवि,श्रीहर्ष और बाण की एक-एक छटा पर 'वेद' का उमदा साहित्य न्यौछावर है। संस्कृत साहित्य के लिए विक्रमादित्य का समय 'अगस्तन पीरियड' कहलाता है, अर्थात् संस्कृत परिष्कार की चरम सीमा तक पहुँच गई थी।

बौद्धों के बाद भारत में एक जमाना पुराण-साहित्य का भी आया। उस समय बहुत से पुराण, उप-पुराण और संहिताएं भी रची गई। जब तक शुद्ध वैदिक-साहित्य हम लोगों में प्रचलित था तब तक जातीयता के द ढ़ नियमों में तनिक भी अन्तर नहीं होने पाया था। पुराणों के साहित्य के प्रचार से एक बड़ा लाभ भी हुआ अर्थात् वेदों के समय की जिन रीति-रस्मों के नाम से हमें घिन्न आती थी उनके प्रचार करने में बौद्धों को विशेष सुविधा हुई तथा पुराणकर्त्ताओं ने शुद्ध सात्विकी धर्म को स्थापित किया। अनेक मन-मतान्तरों का प्रचार भी पुराणों की ही करतूत है। पुराण वाले तो विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और दुर्गा आदि के पूजन से ही संतोष करके रह गए। लेकिन तंत्रो ने बड़ा संहार किया। हिन्दू जाति के असंख्य टुकड़े होते-होते यहाँ तक खण्ड हुए कि अब तक नए-नए धर्म और मत प्रवर्तक जन्म ले रहे हैं। प्राकृत के उपरान्त देश में साहित्य के दो ग्रंथ और मिलते हैं, पदमावत और प थ्वीराज रासो। पद्मावत की कविता में थोड़ा बहुत रस मिलता तो है लेकिन प थ्वीराज रासो में प्रशंसा के लायक कुछ नहीं है। मत-मतान्तरों के कारण हमारी भाषा भी गुजराती, मराठी, बंगाली इत्यादि के भेद रूप में प्रत्येक प्रान्त की भिन्न-भिन्न भाषा हो गई। इन भाषाओं में बंगाली सबसे अधिक कोमल, मधुर और सरस है। मराठी अत्यन्त कठोर जो कानों में विष घोलने वाली है, पंजाबी अत्यन्त भद्दी व कठोर है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी विस्तार में अपनी बहिनों में सबसे बड़ी है। ब्रज भाषा कुछ माधुर्य अवश्य है पर यह इतनी जनानी बोली है कि इसमें श्र ंगार रस के अतिरिक्त दूसरा रस आ ही नहीं सकता। उर्दू हिन्दी के विकास को इस कदर रोके हुए है कि शुद्ध हिन्दी तुलसी, सूरदास इत्यादि कवियों पद्य-रचना के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलती।

# साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास है: विशेषताएँ

बालक ष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकारों में से एक हैं। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि विभिन्न विधाओं पर लेखनी चलाई है। इनके सम्पूर्ण निबंध साहित्य को सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और मनोविकारात्मक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इन्होंने आलोच्य निबंध में साहित्यिक प्रव त्तियों का विवेचन-विश्लेषण करते हुए वैदिक एवं लौकिक संस्कृत तथा रामायण और महाभारत की सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक विशेषताओं पर भी द ष्टिपात किया है। डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने भट्ट जी के प्रस्तुत निबंध के विषय में लिखा है-"'साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास है' में भट्ट जी ने प्रतिपादित किया है कि समय के साथ साहित्य का स्वरूप बदलता रहता है। साहित्य में नित्य या शाश्वत जैसी कोई चीज नहीं है। भट्ट जी के ये विचार प्रगतिशील माने जाते हैं और यह समझा जाता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इतिहास द ष्टि इससे प्रभावित है।" तिवारी जी का यह कथन सत्य प्रतीत होता है क्योंकि लेखक ने वैदिक एवं लौकिक भाषा तथा रामायण एक महाभारतकालीन साहित्य जैसे गूढ़ विषय पर अपनी लेखनी चलाई है। प्रस्तुत निबंध की विशिष्टता निम्नवत है।

1. **साहित्य मानव ह्रदय का प्रतिबिम्ब:** लेखक का मत है कि किसी भी देश का साहित्य वहाँ रहने वाले मानवीय ह्रदय का आदर्श रूप होता है। अगर आज हमें किसी काल के व्यक्तियों के मन के भावों को जानना है तो उस समय के साहित्य की समालोचना से भली-भाँति पता चल सकता है। क्योंकि साहित्य मानव मन का ही प्रतिबिम्ब है। इसी को दूसरे शब्दों में कहें तो साहित्य समाज का दर्पण है। लेखक ने अपने कथन की प ष्टि के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया है-मनुष्य का मन जब दुःख से परिपूर्ण हो या उसे किसी प्रकार की चिन्ता हो तो उसके ह्रदय के यही भाव उसके चेहरे तथा ध्वनि से प्रस्फुटित होते हैं। इसी प्रकार के भाव प्रसन्नता में भी दिखाई देते हैं। मानव के इन्हीं भावों को प्रत्येक देश का साहित्य आत्मसात करता है। लेखक कहता है-"इसलिए साहित्य को यदि जन-समूह के चित्त का चित्रपट कहा जाए तो संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम से सब समय-समय के आभ्यन्तरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।" अतः साहित्य में मानवीय भावों की अभिव्यक्ति होती है।

2. **वेदकालीन साहित्य की प्रव त्तियों का विवेचन:** भट्ट जी का कहना है कि वेदकालीन साहित्य में न राजनीतिक कुटिलता है, न छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष और न ही क त्रिम सौहार्द है। उस समय के व्यक्तियों का स्वभाव बच्चों के समान उदार, निष्कपट व्यवहार, भोलापन आदि वेदकालीन साहित्य का पवित्र माधुर्य प्रदान करता है। लेखक कहता है-"उस समय अब के समान राजनैतिक अत्याचार कुछ न था इसी से उनका साहित्य राजनीति की कुटिल उक्ति युक्ति से मलिन नहीं हुआ था आपस में एक-दूसरे के साथ अब का सा बनावट का कुटिल बर्ताव न था। इसलिए उस समय के उनके साहित्य वेदों में भी कृत्रिम भक्ति, कृत्रिम सौहार्द, कपट व ति, बनावट और चुनाचुनी ने स्थान नहीं पाया। उन आर्यों का धर्म अब के समान गला घोंटने वाला न था। सिधाई, भोलापन और उदार-भाव उनके साहित्य के एक-एक अक्षर से टपक रहा है।" इस प्रकार लेखक ने वेदकालीन साहित्य की विशेषताओं का सूक्ष्मपरक विश्लेषण किया।

3. **संहिता या उपनिषदों की विशेषतओं का चित्रण:** लेखक ने संहिता या उपनिषदों की मूलभूत विशेषताओं का चित्रण करते हुए मनु, हारीत, अत्रि, याज्ञवल्क्य आदि द्वारा रचित साहित्य में चित्रित राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों का प्रतिपादन किया है। इस साहित्य में वेदकालीन साहित्य की भाषा का ही अनुकरण होता गया। दिन-प्रतिदिन इनकी भाषाा अत्यधिक सरल एवं परिष्कृत होती गई। इन सभी की गणना वैदिक भाषा में ही की जाती है।

4. **रामायण और महाभारतकालीन साहित्य की प्रव तियों का विवेचन:** रामायण के समय में भारतीय सभ्यता अपने चरम पर थी किन्तु महाभारत के समय में वही सभ्यता क्षतिग्रस्त हो चुकी थी। इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लेखक कहता है-"रामायण में दो भाई इसलिए संघर्षरत थे कि समस्त राज्य और सिंहासन हमारा नही है। वे दोनों एक दूसरे को सिंहासन सौंपने को तत्पर थे, जबकि महाभारत युग में दो भाई इस बात के लिए संघर्ष कर रहे थे कि जितने में सुई का अग्र भाग ढक जाए इतनी प थ्वी भी बिना युद्ध के हम न देंगे। निबंधकार ने महाभारत काल के नैतिक पतन

का भी चित्रांकन किया है यथा "युधिष्ठिर धर्म के अवतार और सत्यवादी प्रसिद्ध है पर उनकी सत्यवादिता निज-कार्य-साधन के समय सब खुल गई। "अश्वथामा हतः नरों वा कुंजरों वा" इत्यादि कितने उदाहरण इस बात के हैं विस्तारभय से नहीं लिखते।"

उस समय भारत वर्ष स्वार्थ साधन, प्रवंचना, प्रभुत्व आदि के कारण उदारभाव और संवेदना आदि उत्तम गुणों से विमुख हो गया था, "शत्रु-संहार और निज कार्य-साधन निमित्त व्यास ने महाभारत में जो-जो उपदेश दिए हैं और राजनीति की काट-ब्योंत जैसी-जैसी दिखाई है उसे सुन बिस्मार्क सरीखे इस समय के राजनीति के मर्म में कुशल राजपुरूषों की अकिल भी चरने चली जाती होगी।"

4. **भाषा के विकास का परिचयः** लेखक ने वेदकालीन साहित्य, महाभारत और रामायणकालीन साहित्य, बौद्ध साहित्य, पुराण साहित्य और पद्‌मावत व प थ्वीराज रासो आदि साहित्य में भाषा के विकास को प्रस्तुत किया है। वेदकालीन साहित्य में संस्कृत, उपनिषद, साहित्य में भी संस्कृत और आगे चल कर स्म तियों में संस्कृत के दोनों रूप वैदिक और लौकिक संस्कृत, बौद्ध साहित्य में संस्कृत को बिगाड़ कर प्राकृत तथा इनसे परिवर्तित होती हुई हिन्दी हमारे समक्ष आई। आगे चलकर हमारी भाषा के भी भेद हो गए, जिसमें गुजराती, मराठी, बंगाली, ब्रज भाषा, बुन्देलखंडी, भोजपुरी आदि कई भेद है इसके साथ-साथ भाषाओं की प्रकृति पर भी प्रकाश डाला है यथा-"बंगाली सबसे अधिक कोमल, मधुर और सरस है। मरहठी महाकठोर और कर्णकटु तथा पंजावी निहायत भद्दी, कठोर और रूखापन में उर्दू की छोटी बहन है। अब अपनी हिन्दी की ओर आइये। इसमें सन्देह नहीं विस्तार मे हिन्दी अपनी बहनों में सबसे बड़ी हैं ब्रजभाषा में यद्यपि कुछ मिठास है पर यह इतनी जनानी बोली है कि इसमें सिवाय श्र ंगार के दूसरा रस आ ही नहीं सकता।" इस प्रकार लेखक ने विभिन्न कालों के साहित्यों में प्रयुक्त भाषा के विकास को प्रदर्शित किया।

6. **पुराण-साहित्य की विशेषताओं का वर्णनः** बौद्ध साहित्य के उपरान्त भारत में पुराण साहित्य का विकास हुआ। इस साहित्य में बहुत सारी घिनौनी रीतियों और रस्मों आदि का विकास हुआ। अनेक मत-मतान्तरों, तन्त्र-मन्त्रों का प्रचार तथा मद्य-मास का प्रचार भी पुराणों की ही करतूत है। इस समय जाति-पाति और उनके देवता-भैरो, काली, डाकिनी, शकिनी, भूत-प्रेत आदि का प्रचलन हो गया था। लेखक का कथन है कि तांत्रिकों की कृपा न होती तो हिन्दुस्तान ऐसा जल्द न डूबता।

7. **भाषा-शैलीः** प्रस्तुत निबंध में लेखक ने संस्कृतनिष्ठ भाषा के अत्याधिक प्रयोग के उपरान्त भी सहज, सरल एवं आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। लेखक ने अपने साहित्यिक निबंधों में तर्कपूर्ण आलोचनात्मक शैली का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं व्यंग्य और भावात्मक शैली के भी दर्शन होते है। अतः भाषा और शैली की द ष्टि से प्रस्तुत निबंध प्रशंसनीय है।

इस प्रकार लेखक ने 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' नामक निबंध में 'साहित्य' जैसे गूढ़ विषय पर सरल भाषा में लेखनी चलाई है तथा वे अपनी मान्यताओं को प्रतिस्थापित करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। इसमें लेखक ने साहित्य के बदलते हुए स्वरूप को विभिन्न बिदुओं के माध्यम से प्रष्ठबद्ध किया है।

# साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है : भाषा-शैली

बालक ष्ण भट्ट एक स्वतन्त्रचेता और प्रगतिशील विचारों के भारतेन्दुयुगीन निबंधकारों में सर्वोपरि स्थान के अधिकारी है। उन्होंने एक हजार से भी ज्यादा निबंध लिखकर हिन्दी निबन्ध साहित्य के विकास में महान् योगदान दिया है। उनकी भाषा में सम्बन्ध में डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का अभिमत है-"उन्होंने एक ओर तो खड़ी बोली से हिन्दी के गद्य को संस्कृतनिष्ठ बनाने का प्रयत्न किया है और दूसरी ओर उन्होंने हिन्दी गद्य को सम द्ध एव समुन्नत बनाने के लिए उसे अरबी-फारसी एवं अंग्रेजी के लोक-प्रचलित शब्दों से भी सुसज्जित किया। उनका भाषा पर असाधारण अधिकार था और वे विषयानुकूल भाषा का प्रयोग किया करते थे। यदि विषय अधिक गम्भीर होता तो भाषा भी गुरूता गम्भीरता से सम्पन्न हो जाती थी और यदि विषय हल्का-फुलका या हँसी-मजाक से सम्बन्धित होता तो भाषा भी चुलबुली एवं सरल हो जाती थी।" इसीप्रकार डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का अभिमत है-" भट्ट जी की भाषा का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि उसमें विविधता है, स्वाभावितकता है और विषयानुकूलता है। भट्ट जी ने कहीं तो तीखी एवं मर्मभेदी आलोचना के लिए तीखी एवं चुटीली भाषा का प्रयोग किया है तो कहीं भारतीय समाज की दयनीय स्थिति एवं दुर्दशा का चित्रण करने के लिए भाव-प्रवण भाषा को अपनाया है, कहीं तत्कालीन समाज व शासन पर सात्विक क्रोध प्रकट करने के लिए तीक्ष्ण व्यंग्यप्रधान गूढ़ भाषा का प्रयोग किया है और कहीं जनसाधारण तक अपनी किसी मान्यता, धारणा तथा अपनी बात को पहुँचाने के लिए सरल, सुबोध एवं बोलचाल की भाषा को अपनाया है। इनता ही नहीं, भट्ट जी ने अपनी भाषा को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों, कहावतों एवं चुभते हुए वाक्यों से सुसज्जित किया है।" अतः भट्ट जी सरल से सरल और गंभीर से गंभीर विषय को भी अपनी भाषा के बन्धन में बांधने मे सफल हुए हैं।

लेखक ने अपने आलोच्य निबंध 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है', में तत्सम्, अरबी-फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का भी यथा स्थान प्रयोग किया गया है। उन्होंने तत्सम् शब्दों का अपने निबंध में प्रचूर मात्रा में प्रयोग किया है, यथा परिलुप्त, पूर्वाभिभाषित्व, उद्दीप्त, दोचिता, परिस्फुट, महाव्याधि, मुखच्छवि, तमसाच्छन्न, परिप्लावित, प्रतिकृति, सूच्यंग, उन्माद, लावण्य, उद्वेलित, नैव दास्यामि, पोच, स्मार्त, उच्छेद आदि। अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों को भी उन्होंने खुलकर प्रयोग किया है, यथा-जनून, फिरके, जुदाई, अमला, कौमियत, अलबत्ता, मुहाजिब, मुआवजा, इश्क, अजिज वाजिब, मरपच, इत्तिफाक, मुआइना, तनहा, उमदा, तहरीर, दायाद, हकीकत, हिमाकल आदि।

उनके प्रस्तुत निबंध में संस्कृत एवं अरबी फारसी के शब्दों की बहुलता होने पर भी कहीं-कहीं बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग किया है लेकिन जहाँ भावों का गाम्भीर्य मिलता है वह भाषा भी गम्भीर एवं प्रौढ़ हो जाती है, जैसे-"उनके स्मितपूर्वाभिभाषित्व और उनकी बोलचाल की मुग्धमाधुरी पर मोहित हो दण्डकारण्य की असभ्य जाति ने भी अपने को उनका दास माना। अहा! धन्य श्री रामचन्द्र का अलौकिक माहत्म्य धन्य बाल्मीकि की कल्पना-सरसी जिसमें ऐसे-ऐसे स्वर्णकमल प्रस्फुटित हुए।" इसी प्रकार प्रस्तुत निबंध में सरल एवं सजीव भाषा के भी दर्शन होते हैं-"प्राकृत के उपरान्त हमारे देश के साहित्य के दो नमूने और मिलते हैं एक पद्मावत और दूसरा प थ्वीराज रासो। पद्मावत की कविता मे जो किसी कदर कुछ थोड़ा-सा रस है भी, पर प थ्वीराज रासो में तारीफ के लायक कौन सी बात है यह हमारी समझ में बिल्कुल नहीं आती।"

भट्ट जी ने अपने निबंध मे कहीं-कहीं अलंकारों का भी प्रयोग किया है, यथा-"जब चित्त आनन्द की लहरी से उद्वेलित हो न त्य करता है और सुख की परम्परा में मग्न रहता है,उस समय मुख विकसित कमल-सा प्रफुल्लित नेत्र मानों हँसता-सा, और अंग-अंग चुस्ती और चालाकी से फिरहरी की तरह फरका करते हैं।" इसमें कहीं जो उपमा की छटा द्रष्टव्य है और कहीं पुनरूक्ति प्रकाश की योजना।

भट्ट जी ने इसमें अभिधा व लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग किया है। उनकी भाषा लोकोक्ति एवं मुहावरों के प्रयोग से सरस, सजीव एवं चित्ताकर्षक है। भाषा को अत्याधिक उत्क ष्ट बनाने के संस्कृत के वाक्यों का भी प्रयोग किया है, "अश्वत्थामा हतः वा कुंजरों वा" आदि।

जहाँ तक भट्ट जी की शैली का प्रश्न है तो उन्होंने अपने भावात्मक निबंधों में भावात्मक शैली, विचारात्मक निबंधों मे विवरणात्मक शैली, साहित्यिक निबन्धों में आलोचनात्मक शैली और सरस निबंधों में रसात्मक शैली का तथा कतिपय साहित्यिक निबंधों में लाक्षणिक शैली का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' निबंध भाषा शैली की द ष्टि से सफल निबंधों की श्रेणी में समाहित है।

# कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता : सारांश

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ गद्यकार है। द्विवेदी जी के निबंधों की प्रमुख विशेषताएँ हैं-सांस्कृतिक पुनरूस्थान, सामाजिक एकता, राष्ट्रीय जाग ति, विश्व-प्रेम, भाषा परिष्कार, और अतीत का गुणगान। उन्होंने यह निबंध रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'काव्येर उपेक्षिता' निबन्ध से प्रेरित और प्रभावित होकर लिखा है। इस निबंध में साहित्यकारों द्वारा उपेक्षित-तिरस्कृत रामायण की महत्त्वपूर्ण यात्रा उर्मिला के प्रति सहानुभूति एवं आत्मीयकता प्रकट की है।

कवि का स्वभाव बड़ा ही विचित्र होता है, जिसको महत्त्व दिया तो उसे पूर्णरूपेण महिमामंडित कर दिया और जिस वस्तु की उपेक्षा की तो कभी उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। इन्हीं कवियों के मन में आया तो राई का भी पर्वत बना दिया और मन में आया तो हिमालय जैसी विशाल चीज को भी उपेक्षित कर दिया। यह विशेषता साधारण कवियों पर ही लागु नहीं होती बल्कि आदि कवि वाल्मीकि भी इससे अछूते नहीं रह सके। काम-क्रीड़ा मे लिप्त क्रोंच-क्रोचिनी में से एक पक्षी का वध कर देने पर भावुक कवि के हृदय से करूणा की धारा फूट पड़ी लेकिन वही रामायण की रचना करते समय नव-विवाहिता उर्मिला को बिल्कुल विस्म त कर दिया। उर्मिला के प्रति उन्होंने तनिक भी सहानुभूति एवं संवेदना प्रकट नहीं की।

वाल्मीकि कृत रामायण का पाठ करने वालों को प थमतया उर्मिला के दर्शन, सीता, माण्डवी और श्र ति-कीर्ति के साथ होते हैं। ऐसा लगता है कि रामायण की रचना सीता और मर्यादा पुरूषोत्तम राम जी के चरित्र-चित्रण के लिए ही हुई है। माण्डवी और श्रुति-कीर्ति के जीवन के विशेषता तो इसमें है ही नहीं। उर्मिला जैसी पात्रा को रामायण में उचित स्थान प्राप्त होना चाहिए और इसकी वह अधिकारिणी भी थी, किन्तु कवि ने इस पात्र के साथ न्याय नहीं किया। लेखक वाल्मीकि को सम्बोधित करके कहता है-"मुने! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यों? क्या इसलिए कि इसका नाम श्रुतिसुखद, इतना मंजुल, इतना मधुर है।" तपस्या में रत रहने के कारण मुनिगणों का शरीर कर्कश और कठोर हो गया है लेकिन वाल्मीकि के काव्यावलोकन से यह विदित हो जाता है कि आप कर्कश प्रेमी नहीं है। वस्तुतः इस उपेक्षा या तिरस्कार का कारण उर्मिला का भाग्यदोष ही है।

बड़े ही दुःख की बात है कि वाल्मीकि ने उर्मिला को केवल नववधू के रूप में एक बार दिखाकर चुप बैठ गए। जब उर्मिला लक्ष्मण की विवाहिता बनकर अयोध्या आई तभी कवि को उनकी याद नहीं आई। जब लक्ष्मण अपने बड़े भाई के साथ वनवास के लिए जा रहे थे, उस समय तो कवि को उर्मिला के आँसू बहते हुए दिखने चाहिए थे, लेकिन इस द श्य से भी पाठकगण वंचित ही रहे। रामचन्द्र के राज्याभिषेक के समय भी सम्पूर्ण अयोध्यानगरी खुशियाँ मना रही थी, किन्तु उस समय उर्मिला खुशियाँ मना रही थी या नहीं, इसका वर्णन भी नहीं किया। अपने पति के आराध्य मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्र जी को राजसिंहासन पर आसीन होते देख उर्मिला कितनी आनन्दित होती, इसका भी कवि ने अनुमान नहीं किया। वही उर्मिला जो एक घण्टे बाद अपने पति को राम-सीता के साथ चौदह वर्ष का वनवास जाते हुए देखकर, जड़ से अलग हुई बेल की भांति निर्जीव, आँसु बहाती हुई राजमहल की किसी कोठरी में जमीन पर पड़ी हुई आपको दिखाई नहीं दी। ऐसी सती के लिए भी आपके पास वचनों की दरिद्रता क्यो? उर्मिला तो सीता की छोटी बहन थी, इसलिए उसे तो बहिन और पति दोनों के वियोग सहन करना पड़ा। इतनी दुःखिनी होने पर भी कवि की लेखनी से उर्मिला के प्रति कोई शब्द नहीं निकला। जिस दिन राम-सीता और लक्ष्मण वनवास के लिए चलने लगे उस समय सम्पूर्ण नगरवासी दुःख रूपी समुद्र में डूब रहे थे तथा पिता दशरथे भी म त्यु के समीप थे, उस अवस्था में भी कवि को उर्मिला की याद नहीं आई। उसकी क्या दशा थी, वह दुःख में कहां पड़ी हुई थी इस विषय में भी कवि ने कुछ नहीं सोचा।

लक्ष्मण ने अपने अग्रज श्री राम के प्रति स्नेहभाव के कारण ही राजसी सुख-सुविधाओं का परित्याग करके अपना शरीर उनके चरणों में समर्पित कर दिया। लेकिन उर्मिला का त्याग तो लक्ष्मण से भी बड़ा था। उर्मिला ने अपने प्राणाधार पति का राम के चरणों में उस समय समर्पित किया था जब उसे विवाह करके आए हुए कुछ ही समय हुआ था। जो सुख उर्मिला को उन चौदह वर्षो में प्राप्त होता, वह सुख उसे कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। जिस नवविवाहिता उर्मिला ने राम-सीता के लिए अपने सम्पूर्ण सुखों को न्यौछावर कर दिया और उसी उर्मिला के लिए कवि के शब्द-भण्डार में दरिद्रता उचित नहीं।

सीता ने जहां पर पति के प्रति प्रेम और पूजा-भाव की शिक्षा प्राप्त की थी वहीं पर उर्मिला ने भी वही शिक्षा प्राप्त की थी। उर्मिला भी पतिपरायणता-धर्म को अच्छी तरह जानती थी लेकिन उसने लक्ष्मण के साथ वन-गमन की हठ नहीं की, क्योंकि

उसके साथ जाने से लक्ष्मण अपने आराध्य श्री राम की सेवा अच्छी प्रकार से नहीं कर पाता। इतना सोचकर भी उर्मिला ने सीता का अनुकरण नहीं किया, यही बात उसके चरित्र की महानता को सिद्ध करती है। बाल्मीकि द्वारा चरित्र के उच्च आसन पर विराजमान रमणी को विस्म त होता देखकर प्रत्येक कवितामर्मज्ञ को आन्तरिक दु:ख अवश्य ही होगा।

तुलसीदास ने भी अपने काव्य में उर्मिला को हाशिये पर रखकर उसके साथ अन्याय किया है। उसने भी वन-गमन जाते समय लक्ष्मण को उर्मिला से मिलने नही दिया। माँ ये मिलने के बाद शीघ्र ही कह दिया कि 'गये लषण जहँ जानकिनाथा' अर्थात् लक्ष्मण, जानकी के स्वामी राम के साथ चले गऐ लेखक कहता है कि हे कवि! आपने अपने कमण्डल की करूणा रूपी जल की एक बूंद भी उर्मिला के लिए नहीं रखी, अपनी सम्पूर्ण जल-राशि सीता को समर्पित कर दी। कम से कम एक चौपाई ही उर्मिला के हिस्से में रख देते, जिससे पाठकगण इस बात से अवगत हो जाते कि राम-सीता के बनवास जाने से और अपने पति वियोग के कारण उसके हृदय में क्या-क्या कोमल भावनाएँ उत्पन्न हुई थी। हे कवि! उर्मिला को जनकपुर से साकेत पहुँचाकर भूल जाना कहाँ का न्याय है।

संस्कृत कवि भवभूति ने इस विषय में अवश्य ही कुछ कृपा की है। राम-सीता और लक्ष्मण के वन से लौट आने पर कवि को एक बार उर्मिला की याद आई है। उर्मिला के चित्र को देखकर सीता लक्ष्मण से पूछती है कौन है? भाभी के मुख से मजाक भरे शब्द सुनकर लक्ष्मण लज्जाभाव से मन की मन कहने लगे कि उर्मिला को सीता जी पूछ रही हैं। उन्होंने सीता के प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही चित्र पर हाथ रख दिया और वह ढह गया। बड़े ही क्षोभ की बात है कि कविगण उर्मिला के उज्जवल चरित्र चित्र को आज तक इसी प्रकार ढहाते आए हैं।

# कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता : विशेषताएँ

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सजग एवं युग-चेता साहित्यकार थे। उन्होंने अनेक विषयों को अपने निबंधों का आधार बनाया है। उन्होंने विपुल निबंध साहित्य लिखकर हिन्दी निबंध साहित्य को सम द्ध किया है। साथ ही उन्होंने अन्य साहित्यकारों को निबंध लिखने के लिए प्रेरित किया। वे भली-भाँति जानते थे कि इतिहास के पात्रों के माध्यम से वर्तमान युग के लोगों को देश-भक्ति व समाज-सुधार की प्रेरणा दी जा सकती है। इसलिए उन्होंने कुछ उपेक्षित पात्रों के जीवन पर निबंध लिखे हैं। 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' नामक निबंध में उन्होंने लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के त्याग का उल्लेख किया है। आचार्य द्विवेदी को इस बात पर भी खेद हुआ कि बाल्मीकि और तुलसीदास जैसे महान् कवियों ने भी उर्मिला के महान् त्याग पर कोई ध्यान नहीं दिया।

अपने युग के साहित्यकारों को नए-नए विषयों पर निबंध रचने की प्रेरणा देने वाले आचार्य द्विवेदी ने 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' नामक निबंध लिखा जिससे प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' जैसे महाकाव्य का प्रतिपादन किया। अतः द्विवेदी जी की प्रेरणा से ही मैथिलीशरणगुप्त महान् कवि बन गए और उर्मिला सदा के लिए अमर हो गई। द्विवेदी जी ने अपने प्रस्तुत निबंध में सम्पूर्ण आत्मीयता एवं सहानुभूति उर्मिला के लिए समर्पित कर दी है। आलोच्य निबंध की प्रव त्तियाँ निम्नलिखित हैं।

1. **कवि उपेक्षिता उर्मिला का चित्रांकनः** उर्मिला लक्ष्मण की धर्म पत्नी और रामायाण व महाभारत के उपेक्षित पात्रों में प्रमुख है। द्विवेदी जी ने अपने आलोच्य निबंध में कवियों द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्र उर्मिला का सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है। सर्वप्रथम तो आदि कवि बाल्मीकि ने अपनी चर्चित रचना रामायण में उर्मिला के विषय में एक भी पंक्ति नहीं लिखी, जबकि उर्मिला का त्याग लक्ष्मण से भी बढ़कर था। उसे अपने पति व अपनी बहन सीता का विरह सहन करना पड़ा। लेखक ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है "जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी 14 वर्ष पति-वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता।" इसी प्रकार तुलसीदास ने भी अपने महाकाव्य रामचरितमानस में राम-सीता के चरित्र को तो पूर्णरूपेण महिमा मंडित किया है किन्तु उर्मिला के चरित्र के प्रति बाल्मीकि की तरह उपेक्षा भाव दिखाया है। इस संदर्भ में द्विवेदी जी कहते है-"एक ही चौपाई में उर्मिला की दशा का वर्णन कर देते। अथवा उसी के मुँह से कुछ कहलाते। पाठक सुन तो लेते कि राम-जानकी के बनवास और अपने पति के वियोग के सम्बन्ध में क्या-क्या भावनाएँ उसके कोमल हृदय में उत्पन्न हुई थीं।" भवभूति ने इस विषय पर अवश्य की कुछ लिखा है।

2. **कवियों के उच्छ ंखल स्वभाव का वर्णनः** द्विवेदी जी ने अपने प्रस्तुत निबन्ध में कवियों के विचित्र स्वभाव का वर्णन किया है, "कवि स्वभाव से ही उच्छ ंखल होते है वे जिस तरफ झुक गये, झुक गए। जी मे आया तो राई का पर्वत कर दिया, जी मे आया तो हिमालय की तरफ भी आँख उठाकर न देखा। यह उच्छ ंलता या उदासीनता सर्व-साधारण कवियों में तो देखी ही जाती है। आदि कवि तक इससे नहीं बचे।" लेखक का यह तथ्य पूर्णतः सत्य है क्योंकि रामायण की महत्वपूर्ण पात्र उर्मिला को किसी भी कवि ने अपने काव्य में स्थान नहीं दिया। आदि कवि बाल्मीकि ने क्रौंच पक्षी के जोड़े के वध को देखकर अपनी समस्त करूणा उसको समर्पित कर दी लेकिन नवविवाहिता दुःखिनी वधू को पूर्णतया ही विस्म त कर दिया। तुलसीदास का स्वभाव भी बाल्मीकि से अलग नहीं था। उन्होंने भी अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' में उर्मिला को तिरस्कृत कर दिया। इसी प्रकार भवभूति भी कुछ ज्यादा नहीं लिख पाए। अतः कवि का स्वभाव बड़ा ही विचित्र होता है, वह छोटे से छोटे विषय को महिमा-मण्डित कर दे और बड़ी से बड़ी महान वस्तु को उपेक्षित कर दे।

3. **भारतीय संस्कृति की विशिष्टताः पतिप्रेमः** प्रस्तुत निबंध के माध्यम से लेखक ने भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग पति-प्रेम और पति-पूजा के सन्देश को समस्त सुधि पाठकों तक सम्प्रेषित किया है। लेखक ने आलोच्य निबंध में इसे स्पष्ट करते हुए कहा है-"उर्मिला की क्या यह भावना न थी? जरूर थी। दोनों ही एक घर की थीं। उर्मिला भी पति-परायणता-धर्म को अच्छी तरह जानती थी। पर उसने लक्ष्मण के साथ वन-गमन की हठ, जान बूझकर नहीं की।" क्योंकि अगर वह पति के साथ चलती तो उनके पति को बड़े भाई राम के साथ ले जाने में संकोच होता, जो

भारतीय संस्कृति में मर्यादा का हनन होता। सीता भी अपने पति को परमेश्वर मानती है और उसकी पूजा करती है। सीता देवी का मत था कि

**जहँ लगि नाथ नेह अरू नाते।**
**पिय बिनु तियाहिं तरनि ते ताते।।**

इस प्रकार भारतीय संस्कृति के अनुपालन से प्रस्तुत निबंध का महत्त्व और भी बढ़ गया है।

4. **करूण रस का समावेशः** कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनतता नामक निबंध में करूण रस के छींटे सर्वत्र दिखाई देते हैं। यह रस उर्मिला के विरह प्रसंग में दिखाई देता है। प्रस्तुत निबंध की पंक्तियाँ पढ़ते हुए सहृदय के द ग से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगती है, यथा "लक्ष्मण ने राजपाट छोड़कर अपना शरीर रामचंद्र को अर्पण किया। यह बहुत बड़ी बात की पर उर्मिला ने इससे भी बढ़कर आत्मोत्सर्ग किया। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम-जानकी के लिए दे डाला और यह आत्मसुखात्सर्ग उसने तब किया जब उसे ब्याह कर आए हुए कुछ की समय हुआ था।" इसी प्रकार निबंध में अनेक स्थलों पर करूण रस व्याप्त हैं जब लक्ष्मण राम और सीता के साथ बनवास जा रहे थे तब भी कवि ने उर्मिला द्वारा लक्ष्मण को एक आँख-भर देख भी न लेने दिया उस समय वह पता नहीं महल के किस कोने में पड़ी रो रही थी, उस समय भी कवि को उर्मिला की याद नहीं आई। लेखक कहता है कि हे महाकवि! उर्मिला के लिए तुम्हारे शब्द-भण्डार में इतनी दरिद्रता। वस्तुतः सम्पूर्ण निबंध में करूण रस की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है।

5. **भाषा शैलीः** प्रस्तुत निबंध में द्विवेदी जी ने सहज-सरल एवं स्वाभाविक आम बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया है। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, अतः उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम् शब्दों का बहुल प्रयोग हुआ है। इसके साथ ही उर्दू-फारसी के शब्दों को भी प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत निबंध में उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग के साथ-साथ करूण रस के छींटे भी सर्वत्र दिखाई देते है। अतः भाषा और शैली की द ष्टि से द्विवेदी जी का आलोच्य निबन्ध सर्वश्रेष्ठ है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने अपने इतिहास, साहित्य-दर्शन, धर्म शिक्षा, पौराणिक चरित्र आदि विषयक निबन्धों के माध्यम से समाज की नैतिक और सांस्कृतिक चेतना को जगाने को तथा कवियों द्वारा उपेक्षित पात्रों को सम्मान देने का सफल प्रयास किया है। अतीत के प्रति तर्कसम्मत द ष्टि और आदर्शनिष्ठ जीवन-प्रेरणा उनके लेखन के गुण हैं।

# कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता : भाषा-शैली

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक निबंधों की रचना की है। उनके आरम्भिक निबन्धों की भाषा में अनेक त्रुटियाँ थीं, किन्तु वे धीरे-धीरे दूर होती गई और उनके बाद के निबंधों में शुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्बन्ध में डॉ० जयनाथ जटिल के विचार द ष्टव्य हैं-"सरलतम भाषा में कठिनतम बात कहना, इनका आदर्श है। संक्षिप्त, सरल, सुबोध, सुसम्बद्ध वाक्य-विन्यास, लगता है कोई ज्ञान व द्ध वयोव द्ध हितैषी गुरू बालकों या युवकों को समझा बुझाकर अपनी बात मनवाना चाहता है, द्विवेदी जी की भाषा में न तो वक्रता है, न चमत्कार, चुटीला व्यंग्य तो खोलने पर मिल जाएगा, व्यंग्यात्मक अर्थ विस्तार नहीं। कसावा भी कम है, पर भाषा सम्पन्न है। अभिव्यंजना की स्वाभाविक शक्ति इसमे है। अर्थ का दुराव द्विवेदी जी की भाषा में तलाश करने पर भी नहीं मिलता। इनकी भाषा के राजपथ पर चलते हुए पाठक अर्थफल का रस बराबर लेता रहता है। न वह ऊबड़-खाबड़, न कठोर, न बुद्धि के पैर छीलने वाली, न दुर्गम।" इसमें द्विवेदी जी की भाषा-शैली के समस्त बिन्दुओं का उजागर किया गया है। उनके 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' में सरल, सहज एवं आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। वे संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, अतः प्रस्तुत निबंध में संस्कृत के तत्सम् शब्द बहुधा मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं यथा-विदीर्ण, उच्छ ंखल, अल्पादल्पतरा, परदुःखकातर, कार्पण्य, मानिषाद, नवपरणिता, आत्मसुखोत्सर्ग, छिन्नमूल, नाना पुराण निगमासम्मत, परमाराध्य, आत्मोत्सर्ग, निपतित, कवितामर्मज्ञ, अन्तर्दशी, आराध्य-युग्म, दुःखोदधि, उच्चाशय, भ्रात स्नेह,कौतुक आदि।

उन्होंने अपनी भाषा को सुसज्जित करने के लिए संस्कृत की सूक्तियों के उद्धरणों का बड़ा सहयोग लिया है, यथा-

**'हा हतविधिलसते! परमकारूणिकेन मुनिना वाल्मीकितापि विस्म तासि।'**

इसके अतिरिक्त वे उन्होंने अवधी भाषा की सूक्तियों का भी प्रयोग आलोच्य निबंध में किया है। यथा-

**'जहँ लगि नाच नेह अरू नाते।**
**पिय बिनु तियहिं तरनि ते ताते।।'**

× × ××

**'गये लषण जहँ जानकिनाथा।'**

द्विवेदी जी अपने प्रस्तुत निबंध में उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया है, यथा, कागज़, मतलब, खबर, तकलीफ, खैर, मतलब आदि

उनके प्रस्तुत निबंध में वाक्य-रचना अत्यन्त सुगठित एवं व्याकरण सम्मत है। छोटे एवं बड़े दोनों प्रकार के वाक्यों का भावानुकूल प्रयोग किया है। छोटे वाक्यों का उदाहरण प्रस्तुत है-"उर्मिला की क्या यह भावना न थी? जरूर थी। दोनों एक ही घर की थी।"

लेखक ने यथास्थान प्रश्नवाचक वाक्यों का भी प्रयोग किया है। इन वाक्यों के प्रयोग से भाषा में रोचकता आ गई है, यथा-"उर्मिला की क्या यह भावना न थी? अथवा 'लक्ष्मण कौन हैं?" आदि।

प्रस्तुत निबंध मे उन्होंनें अपनी भाषा में करूण रस का भी समावेश कर दिया है। यथा-"इतनी घोर दुःखिनी होने पर भी आपने दया न दिखलाई। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम-जानकी के लिए दे डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी 14 वर्ष पति वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता।" अतः लेखक ने उर्मिला के करूणामयी चित्र को प्रस्तुत करके अपनी भाषा में करूण रस का संचार कर दिया है। लेखक ने अपने निबंधों में वर्णनात्मक, भावात्मक, विवेचनात्मक, व्यंग्यात्मक, खंडनात्मक, विवेचनात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया है। प्रस्तुत निबंध में लेखक ने कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है।

अतः स्पष्ट है कि आचार्य द्विवेदी जी के निबंधों में प्रयुक्त भाषा के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। उनके निबंधों को भाषा का निरन्तर विकास होता रहा है। उन्होंने तत्कालीन अव्यवस्थित एवं त्रुटियों से युक्त भाषा को व्याकरण सम्मत बनाकर शुद्ध रूप में अपने निबंधों में उसका सफल प्रयोग किया है।

# मजदूरी और प्रेम : सारांश

भावात्मक निबंध के प्रमुख प्रवर्त्तक अध्यापक पूर्णसिंह द्वारा रचित निबंध 'मजदूरी और प्रेम' में श्रम को एक नैतिक आध्यात्मिक मूल्यवत्ता प्रदान की गई है। इसमें मजदूरों के हृदय से निकलने वाली श्रम-चेतना से भावित सीधी सच्ची अनुभूतियों में नये साहित्य की परिकल्पना की गई है। प्रस्तुत निबंध को लेखक ने विभिन्न भागों में विभाजित किया है, जिनका सारांश निम्न प्रकार से है।

1. **हल चलाने वाले का जीवनः** हल चलाने वाले किसान व गडरिये का स्वभाव अत्यन्त सहनशील व मधुर होता है, क्योंकि वे अपने शरीर को खेत रूपी हवनकुण्ड में समर्पित करके अन्न उपजाता है। यह मत प्रचलित है कि ब्रह्म की आहुति से संसार का जन्म हुआ है। ठीक उसी प्रकार किसान अन्न उत्पन्न करता है, अतः वह भी ब्रह्म के समान है। खेत उसके ईश्वरीय प्रेम का केन्द्रबिन्दु हैं। उसका जीवन अत्यन्त सीधा एवं सरल है। किसान के जीवन पर प्रकाश डालते हुए लेखक कहता है-"विद्या यह नहीं पढ़ा जप और तप यह नहीं करता, संध्या वन्दनादि इसे नहीं आते, ज्ञान-ध्यान इसे पता नहीं, मन्दिर, मस्जिद, गिरजे से इसे कोई सरोकार नहीं, केवल साग-पात खाकर ही यह भूख निवारण कर लेता है।" सुबह उठकर खेत जोतने चल देता है। सुबह और शाम, दिन और रात भगवान इनके हृदय में अद्‌भुत आध्यात्मिक भावों की व ष्टि करता है। यह अपने म दु वचनों से आगन्तुक का स्वागत करता है और कभी भी किसी के साथ विश्वासधात नहीं करता। दया, वीरता और प्रेम इन किसानों में देखा जाता है, वह अन्य कहीं नहीं है। जो व्यक्ति नंगे सिर, नंगे पाँव, सिर पर टोपी, कमर में लँगोटी, कन्धे ंपर काला कम्बल, हाथ में लाठी, गायों का मित्र, बैलों का हमजोली, महाराजाओं का अन्नदाता, भूखों और नंगों को पालने वाला हो समझ लीजिए वह किसान ही है।

2. **गडरिये का जीवनः** किसान की तरह गड़रिये का जीवन भी पवित्रता और सात्विकता से युक्त है। वह सघन वन में हरे-भरे व क्षों के नीचे अपनी सफेद ऊन वाली भेड़ों को चराता है। गडरिये के बाल भी सफेद ही है। क्योंकि वह सफेद भेड़ों का मालिक है। उसके गाल लालिमा से युक्त हैं। इसकी प्रिय पत्नी पास बैठी रोटी पका रही है। इसकी दो जवान पुत्रियाँ भी हैं, जो इनके साथ जंगल में भेड़ चराती घूमती है। उन्होंने अपने माता-पिता और भेड़ों के अतिरिक्त किसी बाहरी दुनिया को नहीं देखा। उनका अपना घर-बार भी नहीं है। भेड़ों की सेवा ही इनकी पूजा है। किसी भी भेड़ के बिमार होने पर सारा परिवार दुःखी हो जाता है इनके सात्विक एवं पवित्र जीवन को देखकर लेखक के भाई को इनसे ईर्ष्या होती है और वह भेड़ लेने का आग्रह करता है। वह कहता है-"ऐसा होने से कदाचित् इस बनवासी परिवार की तरह मेरे दिल के नेत्र खुल जाए और मैं ईश्वरीय झलक देख सकूँ। इन लोगों के जीवन में अद्‌भूत आत्मानुभव भरा हुआ है।

3. **मजदूर की मजदूरीः** किसी भी मजदूर की मजदूरी का ऋण कभी भी पैसे से नहीं चुकाया जा सकता, वह अन्न या धन से नहीं बल्कि परस्पर प्रेम-भाव से ही चुकाया जा सकता है। अन्न, धन और पानी-ये सभी ईश्वर की देन है। लेखक ने एक जिल्दसाज मजदूर का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि उस मजदूर ने मेरी पुस्तक पर जिल्द चढ़ा दी लेकिन मैं उसे कुछ भी नहीं दे सका। वह मेरा अभिन्न मित्र हो गया। जब मैं उस पुस्तक पर हाथ रखता हूँ तभी मुझे उस मजदूर के प्रति ऐसे भाव उभर आते है जैसे भरतमिलाप हो रहा हो। इसी प्रकार अनाथ विधवा सारी रात बैठ कर एक कमीज़ सीती है। और साथ की साथ दिन को खाना न मिलने के कारण अपने दुःख को रोती भी है। वह कमीज में टाँके लगाते हुए यह आशा करती है कि कल कमीज़ तैयार होगी तो उसे खाने को मिलेगा। अनाथ विधवा द्वारा कठोर परिश्रम करके बनाए हुए कमीज़ को लेखक आत्मा का वस्त्र कहता है। वह इसे पहनना तीर्थ-यात्रा से समान मानता है। इस कमीज़ मे ंउस विधवा का सुख दुःख प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन-रूपी गंगा की बाढ़ चली जा रही है। इस प्रकार की मजदूरी और ऐसा कार्य प्रार्थना, सन्ध्या और नमाज से कम नहीं है।

4. **प्रेम-मजदूरीः** इस शीर्षक के अन्तर्गत लेखक को मजदूर के हाथ से बने हुए काम मे उसकी प्रेममय-पवित्र आत्मा की सुगन्ध आती है। यन्त्रों की सहायता से बनाये हुए चित्र निर्जीव से प्रतीत होत है जबकि हाथ से बनाऐ हुए चित्रों में चित्रकार की आत्मा तक के दर्शन हो जाते है। हाथ से बनाऐ हुए चित्र ऐसे लगते हैं। जैसे किसी बस्ती में रौनकता

और सजीवता विद्यमान हो जबकि यन्त्र से बनाए हुए चित्र श्मशान के समान है। हाथ की मेहनत से बनाई हुई चीज में जो रस भर जाता है वह भला यन्त्र द्वारा बनाई गई चीज मे कहाँ। लेखक आगे कहता है कि जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, पानी देता हूँ और खरपतवार साफ करता हूँ तो उस आलू मे जो रस मुझे आता है। वह किसी टीन में अन्दर बन्द किये हुए अचार या मुरब्बे में नही आता जिस चीज में मनुष्य के कोमल हाथ लगते है, उसमें उसके हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्म रूप से मिल जाती है तथा उसमें म त को भी जीवित करने की शक्ति आ जाती है। लेखक कहता है कि होटल में बना भोजन स्वादिष्ट नहीं होता क्योंकि वहाँ मनुष्य को मशीन बना दिया जाता है। इसके विपरीत अपनी प्रियतमा के हाथ से बने हुए रूखे-सूखे भोजन में बहुत रस आता है। मेरी प्रिया जब मुझे अपन हाथों से जल पिलाती है तो मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं प्रेमाम त का पान कर रहा हूँ। जो व्यक्ति ऐसे प्रेम के प्याल का पीता हो उसके लिए शराब क्या वस्तु है।

5. **मजदूरी और कलाः** इसमें लेखक कहता है कि आदमियों का व्यापार करना मूर्खों का काम है लोहे और सोने के बदले मानव को बेचना महापाप है। सम्प्रति मशीनों का मूल्य तो हजारों रूपये है लेकिन मुनष्य एक कोड़ी के सौ-सौ बिकते हैं सोने और चाँदी की प्राप्ति से जीवन का आनन्द नहीं मिल सकता, सच्चा आनन्द तो कार्य करने से ही मिलता है। मानव-पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है। नया साहित्य मजदूरों के हृदय से निकलेगा। मजदूरों की मजदूरी ही यथार्थ पूजा होगी।

6. **मजदूरी और फकीरीः** मजदूरी और फकीरी का महत्व भी कम नहीं है। मजदूरी और फकीरी मनुष्य के लिए परमावश्यक है, क्योंकि बिना मजदूरी किए फकीरी का उच्च भाव कमजोर पड़ जाता है। जब तक जीवन रूपी वन में पादरी, मौलवी, पण्डित और साधु, सन्यासी आदि हल, कुदान और खुरपा लेकर मजदूरी न करेगें तब तक उनका आलस्य दूर नहीं हो सकता, उनका मन और बुद्धि अनन्त काल तक कुत्सित कार्य करती रहेगी। वास्तव में मजदूरी करना जीवन-यात्रा का आध्यात्मिक नियम है।

7. **समाज का पालन करने वाली दूध की धाराः** इसमें लेखक ने लालो नाम के एक बड़ई का उदाहरण प्रस्तुत किया है। गुरूनानक भागों की हलवा-पूरी से खून और लालों की मोटी-रोटी से दुग्धधारा निकालते है। यही धारा शिवजी की जटा से और मजदूरों की उँगलियों से निकलती है। मजदूरी करने से हृदय पवित्र होता है और हाथ की मजदूरी से ही सच्चे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। जब तक धन और ऐश्वर्य की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी की उन्नति नहीं होती तब तक भारत ही नहीं किसी अन्य देश की दरिद्रता भी दूर नहीं हो सकती।

8. **पश्चिमी सभ्यता का एक नया आदर्शः** इसमें लेखक ने पाश्चात्य देशों द्वारा मशीनों की पूजा छोड़कर मनुष्य की पूजा को अपना आदर्श बना रही मानवता का वर्णन किया है। अब वे देश पूँजीवादी सभ्यता का विरोध करके मजदूरों से प्रेम करने लगे। मशीनों अथवा इंजनों के पहिये के नीचे दबकर उनके भाई-बहन ही नहीं समग्र जाति पिस गई। साधारण लोग मरने लगे और मजदूरों की हालत अत्यन्त दयनीय हो गई। मशीनें मनुष्य का पेट भरने और मजदूरों को सुख देने के लिए बनाई गई थी परंतु इन्होंने मनुष्य को ही निगल लिया। बड़े दुःख का विषय है कि पाश्चात्य देश तो मशीनों का परित्याग करके मजदूरी को प्राथमिकता देने लगे हैं। जबकि भारतीय इनको अपना रहे हैं। मशीनों की वह मजदूरी किस काम कि जो सोने-चाँदी के भण्डार में तो व द्धि करती रहे और बच्चों, स्त्रियों और कारीगरों को भूखा, नंगा रखे। भारत जैसे गरीब देश में मनुष्य के हाथों की मजदूरी के बदले मशीनों से काम लेना विनाश को आमन्त्रित करना है। ऐसे में दरिद्र प्रजा और भी दरिद्र होकर रह जाएगी मनुष्य को मनुष्य ही सुख दे सकता हैं एक दूसरे के प्रति निष्कपट सेवा से ही मनुष्य जाति का कल्याण हो सकता है। चैतन्य आत्मा की पूजा से ही ऐश्वर्य, तेज, बल और पराक्रम की प्राप्ति होती है। इसी चैतन्य-पूजा से मानव-समाज का भला हो सकता है।

# मजदूरी और प्रेम : विशेषताएँ

सरदार पूर्ण सिंह के सभी निबंध भावात्मक स्तर के है, जिनमें मजदूरी और प्रेम भी इसी स्तर का निबंध है। इस निबंध में लेखक ने किसानों के स्वाभाविक एवं सरल जीवन का अत्यन्त आकर्षक शैली में चित्रण किया है। उन्होंने इस निबंध में मजदूरों के प्रति उदार द ष्टिकोण अपनाकर अपने मानवतावादी होने का प्रमाण भी प्रस्तुत किया है। डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने उनके 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए लिखा है "प्रस्तुत निबंध में श्रम को एक नैतिक आध्यात्मिक मूल्यवत्ता प्रदान की गई है। मनुष्य पूजा को ईश्वर पूजा माना गया है। मजदूरों के हृदय से निकलने वाली श्रम-चेतना से भावित सीधी सच्ची अनुभूतियों में नये साहित्य की परिकल्पना की गई है। शूद्र-पूजा को देव-पूजा के समकक्ष माना गया है। धन की पूजा को नास्तिक कहा गया है और यान्त्रिक सभ्यता की तुलना में सहज नैतिक मूल्यबोध पर आध त सभ्यता की श्रेष्ठता का उद्धोष किया गया है। ये सभी विचार बिन्दु द्विवेदी युग की सुधारवादी जीवन द ष्टि से अलग नये युग की नवीन चेतना और नए मूल्यबोध के सूचक है।" इस प्रकार तिवारी जी ने आलोच्य निबंध की प्रमुख विशेषताओं को उजागर किया है। प्रस्तुत निबंध की प्रमुख विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं।

1. **किसान के सात्विक जीवन का चित्रांकनः** लेखक की द ष्टि में किसान का जीवन त्याग और आदर्श का जीवन है। उसका खेत हवनशाला के समान होता है जहाँ वह प्रतिदिन अपने खून की आहुति देता है। जिस अनाज को खाकर हम अपने जीवन का विकास करते हैं, वह किसान की ही मेहनत का फल होता है। किसान को ब्रह्मा की संज्ञा देना और उसी खेती को ईश्वरीय-प्रेम का केन्द्र कहना उचित होगा। उसका जीवन अत्यन्त साधारण एवं व क्ष के समान मौन एवं त्यागमय है। निबंधकार ने किसान के परिश्रमी एवं सात्विक जीवन का चित्रांकन इस प्रकार किया है-"जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते हैं तब मुझे मालूम होता है कि नंगे सिर, नंगे पाँव, एक टोपी सिर पर , एक लँगोटी कमर में, एक काली कमली कन्धे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिये हुए गौवों का मित्र, बैलों को हमजोली, पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठाने वाला, भूखों और नंगों को पालने वाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।" इस प्रकार लेखक ने किसान को परिश्रमी, साधु स्वभाव, त्यागी, तपस्वी, दया, प्रेम और वीरता की सजीव प्रतिभूति कहा है।

2. **परिश्रम के महत्व पर बलः** इस निबंध में लेखक ने किसान के अतिरिक्त गडरिये के सहज-सरल एवं परिश्रमी जीवन का चित्रण किया है। गड़रिया सांसारिक बंधनों से दूर, खुली आकाश की छत के नीचे, प्रकृति के स्वच्छन्द एवं पवित्र वातावरण में जीवन-यापन करता हुआ ऊन कात रहा है। परिश्रमी होने के कारण ही वह शरीर से स्वस्थ है। इसी प्रकार मजदूरी और फकीरी में लेखक ने परिश्रम के महत्व को स्थापित करते हुए कहा है-"बिना परिश्रम के फकीरी व्यर्थ है और ब द्धि शिथिल पड़ जाती है।" अतः भीख माँगने का विरोध करते हुए निबंधकार ने परिश्रम करके जीवन-यापन करने को श्रेष्ठ माना है। इसी प्रकार लेखक ने 'समाज का पालन करने वाली दूध की धारा में परिश्रम को दूध की धारा के समान स्वारथ्यवर्धक माना है। यथा "मजदूरी करने से हृदय पवित्र होता है, संकल्प दिव्य लोकान्तर में विचरते हैं। हाथ की मजदूरी से ही सच्चे ऐश्वर्य की उन्नति होती है।" अतः परिश्रम ही जीवन के समस्त सुखों की चाबी है।

3. **मशीनी सभ्यता का विरोधः** प्रस्तुत निबंध के 'मजदूरी और कला' नामक खण्ड में लेखक ने मशीनों के प्रयोग से नकारा है, क्योंकि इनके प्रयोग से मजदूर बेराजगारी का शिकार हो जाता है। मशीनों के प्रयोग से मानव अकर्मण्य और आलसी हो गया है। हाथ से कार्य करने वाले व्यक्ति सदैव परिश्रमी और स्वच्छ चित्त रहता है। अतः लेखक मशीनों की भर्त्सना करते हुए कहता है-"मशीनें बनाई तो गई थीं मनुष्यों का पेट भरने के लिए- मजदूरों को सुख देने के लिए-परन्तु वे काली-काली मशीनें ही काल बनकर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं। प्रभात होने पर ये काली-काली बलायें दूर होगीं। मनुष्य के सौभाग्य का सूर्योदय होगा।" अत' लेखक मशीनों के दुष्प्रभाव को देखते हुए उनसे छुटकारा पाना चाहता है।

4. **मशीन की अपेक्षा मानवीय हस्त परिश्रम पर बलः** लेखक मशीनी कार्य की अपेक्षा मानव के हाथ से किए हुए काम को ही श्रेष्ठ मानता है। इसे स्पष्ट करते हुए वह कहता है-"मुझे तो मनुष्य के हाथ से बने हुए कामों में उसकी प्रेममय पवित्र आत्मा की सुगंध आती है। हाथ की मेहनत से चीज में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज में कहाँ। जिस आलू को मै स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके इर्द-गिर्द की घास-पात खोदकर मैं साफ करता हूँ उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बन्द किए हुए आचार-मुरब्बे में नहीं आता।" लेखक तो यहाँ तक कह देता है कि जिस चीज में मनुष्य के प्रेम से परिपूर्ण हाथ लगते हैं, उस वस्तु में भी प्रेम का संचार हो जाता है और मुर्दे को भी जीवित करने की शक्ति आ जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि मशीन में भावनाएँ, प्रेम, हृदय, दया, करूणा कुछ भी नहीं है। जबकि मानव में ये समस्त भाव अनस्यूत हैं। अतः मानव की मेहनत ही श्रेष्ठ है।

पाश्चात्य देशों में भी एक नया परिवर्तन देखने को मिल रहा है। वे भी मशीनों को परित्याग करके मजदूरी को महत्त्व प्रदान करने लगे हैं। अब वे मशीनों की पूजा को छोड़कर मनुष्यों की पूजा को ही अपना आदर्श मान रहे हैं। इस परिवर्तन के कारण को स्पष्ट करते हुए लेखक कहता है-"इंजनों के पहिये के नीचे दबकर वहाँ वालों के भाई-बहन, नहीं-नहीं उनकी सारी जाति पिस गई उनके जीवन के धुरे टूट गए, उनका समस्त धन घरों से निकलकर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया।" इस जीवन से तंग आकर उन देशों ने मशीनों की अपेक्षा मजदूरों के परिश्रम पर बल दिया है।

5. **मजदूरी के प्रति आदर-भावः** लेखक की द ष्टि में मजदूरी और फकीरी का गहन सम्बन्ध है। तभी तो फ्रांस के जान ऑफ आर्क ने भेड़े चराई, महात्मा टॉलस्टाय ने जूते गाँठे, उमर ख्ययाम ने तम्बू सीए, खलीफ़ा उमर ने चटाइयाँ बुर्नी, भगवान श्री क ष्ण ने गौएँ चराई। इन सभी के उदाहरणों से लेखक ने प्रमाणित किया है कि मजदूरी आदर के योग्य वस्तु है। इस द ष्टि से मजदूरी करने वाला मजदूर भी सम्मानवीय होगा। लेखक कहता है कि कुछ लोग मजदूरी से घ णा करते हैं तथा मजदूर को शुद्र कहते हैं जो उचित प्रतीत नहीं होता। मजदूरों से ही देश का विकास होता है। उसका साक्षी जापान है। जापान के व्यक्ति अपने हाथों से काम करते हैं, इसलिए सम्पन्न हैं। हमारा भारतवर्ष भी मजदूरी के बल पर साधन-सम्पन्न बन सकता है।

6. **परिश्रम का मूल्य धन की अपेक्षा प्रेम हैः** आलोच्य निबंध में 'मजदूर की मजदूरी' खण्ड में लेखक ने परिश्रम व्यक्ति की मेहनत का मूल्य पैसे से न चुकाकर प्रेम से चुकाने की बात कही है। लेखक स्पष्ट करता है कि-"आपने चार आने पैसे मजदूर के हाथ में रखकर कहा-"यह लो दिन भर की अपनी मजदूरी।" वो तो प थ्वी से निकली हुई धातु के टुकड़े थे अतएव ईश्वर के निर्मित थे। मजदूरी का ऋण तो परस्पर की प्रेम-सेवा से चुकता होता है, अन्न-धन देने से नहीं। वे तो दोनों ही ईश्वर के हैं।" अतः मानव का मानव से सम्बन्ध पैसे से नहीं बल्कि प्रेम से ही स्थायी रह सकता है। लेखक ने भी प्रस्तुत निबंध में धन-सम्पदा की अपेक्षा प्रेम-सम्पदा को महत्त्व दिया है।

वस्तुतः लेखक ने दीन-दलित, शोषित, मजदूर वर्ग, किसान आदि के प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट की है तथा परिश्रम को ही मानव का सर्वोत्कृष्ट धर्म स्वीकार किया है। इस निबंध में लेखक ने बड़ी ही सहज, सरल एंव प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। धारा एवं भावात्मक शैली का प्रयोग किया है। हृदय से निकले हुए इनके शब्दों को किसी शैली विशेष की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। उपर्युक्त समग्र बिन्दुओं का अवलोकन करने के उपरान्त कह सकते हैं कि सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों में मानवीय संवेदना और लोक चेतना का सुन्दर समन्वय हुआ है।

# मजदूरी और प्रेम : भाषा-शैली

सरदार पूर्ण सिंह को अंग्रेजी, पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू आदि विविध भाषाओं का असाधारण ज्ञान था। वे मूलतः रसायनशास्त्री थे। उन्होंने भावात्मक एवं लाक्षणिक शैली के निबंधों की एक नवीन परम्परा का विकास किया। निबंधों का विषय मुख्य रूप से नैतिक होते हुए भी वे आधुनिक युग की नवीनतम विचारधारा से परिपूर्ण थे। उन्होंने अपने मात्र छह निबन्ध लिखकर निबंध लेखन की नई शैली, नए विषय, नई भाव-भंगिता, विलक्षण लाक्षणिक अभिव्यक्ति अलंकृत भाषा तथा लोक-कल्याणकारी द ष्टि प्रदान की। उनके भावात्मक निबंधों के विषय में डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का अभिमत है-"पूर्ण सिंह ने अपने भावात्मक निबंधों के द्वारा आधुनिक जगत की नूतन विचारधारा से उद्दीप्त नूतन रचना-शैली का श्रीगणेश किया है, सहृदयों को आह्लादित करने वाली काव्यात्मक पद्धति का गद्य में समावेश करके गद्य की नीरसता व शुष्कता को भी सरस एवं आह्लादकारिणी बनाने का प्रयास किया है, भाषा और भाव की एक नूतन विभूति को सामने लाकर निबंध की नूतन लाक्षणिक पद्धति का आविष्कार किया है, आलंकारिक प्रयोगों के साथ-साथ उक्ति वैचित्र्य का समावेश करके गद्य में भावाभिव्यक्ति की एक नूतन प्रणाली का प्रवर्तन किया है, वाक्य में अपूर्व चमत्कार उत्पन्न करके काव्यात्मक आनन्द उत्पन्न करने का प्रयास किया है, रहस्यात्मक ढंग से भावों की अभिव्यक्ति करके एक चमत्कारपूर्ण नूतन अभिव्यक्ति को जन्म दिया है, विषयानुकूल भाषा में स्वाभाविक प्रवाह लाकर गद्य में भी रस-संचार की नूतन पद्धति का श्रीगणेश किया है और व्यंग्यात्मक द ष्टान्तों के साथ-साथ अपने हृदय का भी योग देकर गद्य-शैली की नूतन परिपाटी चलाई है।" इसी प्रकार डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने उनकी भाषा-शैली के विषय में लिखा है-"भाषा और शैली की द ष्टि को अधिक महत्व देने के कारण कुछ निबंधकारों की विचारधारा का उचित महत्व नहीं आंका जा सका। पूर्ण सिंह उनमें से एक हैं। पूर्णसिंह अच्छे वक्ता थे। उनके निबंधों में वक्तत्व कला की छाप स्पष्ट है वे भावावेग में पाठक को बहा ले जाते हैं और उसके चित्त को प्रभावित करते हैं। पूर्ण सिंह की भाषा में छायावादी कवियों जैसी लाक्षणिकता और मूर्त विद्यायिनी क्षमता है। अध्यापक पूर्णसिंह अपनी भाव प्रधान आवेगमयी शैली और लाक्षणिक भाषा के लिए स्मरणीय है।" इस प्रकार पूर्णसिंह ने अपने निबंधों की भाषा को सरस, सजीव एवं स्मरणीय बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

उन्होंने अपने आलोच्य निबंध में यथास्थान तत्सम्, तद्भव, उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों का सफल एवं सार्थक प्रयोग किया है। इनकी भाषा की विशेषताएँ इस प्रकार हैंः

(क) **शब्द विधानः** प्रस्तुत निबंध में इन्होंने संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है, यथा-आध्यात्मिक, मुग्ध, प्रेयसी, व्यष्टिरूप, प्रफुल्लित, प्रातःकालीन, नभोलालिमा, मानुषिक, अन्योन्याश्रय, तांडवन त्य, लेशमात्र, कलावन्त, प्राणायाम, वक्षस्थल, प्रेमाम त आदि।

पूर्ण सिंह के निबंधों में उर्दू-फारसी के शब्दों की भी भरमार है और उन्होंने लोक प्रचलित उर्दू-फारसी के शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया है। यथा-लकीर, इन्तजार, दुनिया, जिल्दसाज, फकीर, नुस्खा, औलिया, खुदा, अचार-मुरब्बे, बेनकाब, दस्तकारी, सितम, दीदार, खफा, बदौलत, बुत, हुस्न, हमराज, कलाम आदि।

निबंधकार ने अपने 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध में अंग्रेजी के शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया है-स्कूल, कॉलिज, टीन, मशीन, होटल, इंजन, फोटो, आर्ट, ऑफ आदि।

(ख) **वाक्य निबंधः** निबंधकार की भाषा में चित्रमयता का गुण भी विद्यमान है। उन्होंने अपने छोटे से छोटे वाक्यों द्वारा किसान का चित्र हमारी आँखों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है-"नंगे सिर, एक टोपी सिर पर, एक लंगोटी कमर में, एक काली कमली कंधे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिए गायों का मित्र, बैलों का हमजोली, पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठाने वाला, भूखों और नंगों का पालने वाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।" इसी प्रकार प्रश्नवाचक वाक्यों का प्रयोग करके भाषा को और ज्यादा रोचक बना दिया है। जैसे-"गेरूये वस्त्रों की क्यों पूजा करते हो? गिरजे की घंटी क्यों सुनते हो? रविवार क्यों मनाते हो? पाँच वक्त की नमाज क्यों पढ़ते हो? त्रिकाल संध्या क्यों करते हो?"

उन्होंने अपनी भाषा में नाद-सौन्दर्य की पूर्ति के लिए एक ही शब्द की पुनराव ति से परिपूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया है, यथा-"उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनके लेख बासी, उनका विश्वास बासी और उनका खुदा भी बासी हो गया है।

इतना ही नहीं उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू-फारसी तथा संस्कृत की शब्दावली से परिपूर्ण वाक्यों का भी प्रयोग किया है, यथा

**"किसी के घर कर में न घर कर बैठना इस दारे फानी में।**
**ठिकाना वेठिकाना और मकाँ वर ला-मकाँ रखना।।"**

× × × ×

**हुए थे आँखों के कल इशारे इधर हमारे उधर तुम्हारे।**
**चले थे अश्कों के क्या फबारे इधर हमारे उधर तुम्हारे।।**

इसी प्रकार अंग्रेजी के वाक्यों का भी प्रयोग किया है यथा-"We shall beat the world with the tips of our fingers".

पूर्ण सिंह ने प्रस्तुत निबंध में कही-कहीं विरोधात्मक उक्तियों द्वारा भाषा में एक अपूर्व ओज भर दिया है, यथा-"मशीने बनाई तो गई थीं मनुष्यों के पेट भरने के लिए परन्तु वे काली-काली मशीनें ही काल बनकर, उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुंह खोल रही हैं।

(ग) **शब्दों में व्याकरणिक दोषः** उनकी भाषा में कही-कहीं व्याकरण की द ष्टि से दोष भी मिल जाते हैं, यथा-सुफेद (सफेद), रवाज (रिवाज), अध्यात्मिक (आध्यात्मिक) आदि। उनके ये प्रयोग प्रसंगानुकूल होने की वजह से खलते नहीं है।

(घ) **शब्द शक्तियाँ:** प्रस्तुत निबंध में आवश्यकतानुसार शब्द-शक्तियों का प्रयोग हुआ है। इसमें लेखक ने अभिधा व लक्षणा शब्द-शक्ति का आश्रय लिया है। अभिधा शब्द-शक्ति का उदाहरण द ष्टव्य है-"गाढ़े की एक कमीज को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठकर सीती है, साथ ही साथ वह अपने दुःख पर रोती भी है-दिन को खाना न मिला।"

(ङ) **गुण विधानः** प्रस्तुत निबंध की भाषा में माधुर्य, प्रसाद और ओज-तीनों गुणों को स्थान मिला है। इसमे माधुर्य गुण भी सर्वत्र अवलोकनीय है, जिसके कारण निबंध में मधुरता एंव सरसता का संचार हुआ है। जैसे-"मिट्टी के घड़े को कन्धों पर उठाकर, मीलों दूर से उसमें मेरी प्रियतमा ठंडा जल-भर कर लाती है, उस लाल घड़े का जल जब मै पीता हूँ, तब जल क्या पीता हूँ, अपने प्रेयसी से प्रेमाम त को पान करता हूँ। जो ऐसा प्रेम प्याला पीता हो उसके लिए शराब क्या वस्तु है।" इसी प्रकार गडरिये की कन्या के सौन्दर्य-वर्णन में भी इसी गुण का प्रयोग हुआ है।

(ट) **मुहावरें और लोकोक्तियों:** अध्यापक पूर्णसिंह ने भाषा में बल और प्रवाह उत्पन्न करने के लिए अनेक स्थलों पर मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है, इस प्रयोग से अभिव्यंजना शक्ति में भी व द्धि हुई है, यथा-वह फूले अंग नहीं समाता, रग-रग उसकी नाच रही है, मन के घोड़े हार गए हैं, बुद्धि बासी पड़ गई है, जिस डाल पर बैठे हैं, उसी डाल को स्वयं ही कुल्हाड़ी से काटना है आदि।

(ठ) **अलंकार प्रयोगः** उन्होंने प्रस्तुत निबंध में उपमा, उदाहरण मानवीकरण, उपमा, विरोधाभास और रूपक अलंकारों का प्रयोग देखते ही बनता है। विरोधाभास-"कामना सहित होते हुए भी मजदूरी निष्काम होती है।"

(ड) **शैली-पक्षः** आलोच्य निबंध में लेखक ने भावप्रधान शैली, धारा शैली आदि का अधिक प्रयोग किया है। धारा शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"जब कभी मैं इनसे - मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते हैं तब मुझे मालूम होता है कि नंगे सिर, नंगे पाँव, एक टोपी सिर पर,... समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।"

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषा के प्रयोग की द ष्टि से अध्यापक पूर्ण सिंह के निबंध अत्यन्त सफल सिद्ध हैं। उनके निबंधों की भाषा में सरलता, सहजता, प्रवाहमयता, चित्रात्मकता, काव्यमयता आदि सब गुण लक्षित हैं।

# कविता क्या है? सारांश

हिन्दी निबन्धों के क्षेत्र में पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का स्थान अप्रतिम और अद्वितीय है। उनके सभी निबन्ध विचारात्मक हैं, जिसमें 'कविता क्या है'? भी सम्मिलित है।

मानव के परस्पर क्रिया-व्यापार को जीना कहते हैं और उस व्यापार-स्थल को जगत कहते हैं। जब व्यक्ति इस विश्वव्यापी व्यापार के सामने अपनी सत्ता भूलकर शुद्ध अनुसूचित रूप हो जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द अभिव्यक्ति करती है उसे कविता कहते हैं।

कविता ही मनुष्य को स्वार्थ भावना से ऊपर उठाकर सामान्य भाव भूमि पर ले आती है। इस स्थान पर पहुँच कर मनुष्य अपने आपको विस्म त कर देता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है। वन, पर्वत, नदी, नाले, मेघ, वर्षा लता, चट्टान, कछार, हल, खेत, झोंपड़े आदि अत्यन्त प्राचीन रूप-व्यापार, मानव हृदय में जितनी मार्मिक अनुभूति उत्पन्न करते हैं उतना कल-कारखाने, गोदाम, स्टेशन आदि क त्रिम रूप नहीं कर पाते।

1. **सभ्यता के आवरण और कविता:**सभ्यता की व द्धि के साथ-साथ ज्यों-ज्यों मनुष्यों के व्यापार बहुरूपी और कठिन होते गए त्यों-त्यों उनके मूल रूप भी बहुत कुछ आच्छन्न होते गये। मनुष्य के समक्ष जैसे-जैसे लक्ष्य जटिल और अमूर्त हुए, वैसे-वैसे रक्षा के उपाय भी जटिल होने लगे। जैसे भाई को सम्पति से वंचित करने के लिए कानूनी दस्तावेज बना दिया जाए तो उसके क्रोध का कारण वे शब्द और कागज का टुकड़ा नहीं होगा बल्कि ये तो सभ्यता के आवरण मात्र हैं। अतः उस व्यक्ति और उस कुत्ते के क्रोध में, जिनके सामने का भोजन कोई दूसरा कुत्ता छीन रहा है, इनमें कविता की द ष्टि से कोई भेद नहीं। अगर भेद है तो विषय के रूप बदलने का, इसी का नाम सभ्यता है। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाएगी त्यों-त्यों कवियों के लिए कविता का कर्म कठिन होता जाएगा और इसकी आवश्यकता भी बढ़ती जाएगी। सारांश यह है कि काव्य के लिए हमें अनेक स्थानों पर भावों के विषयों के मूल और आदिम रूपों तक जाना होगा, जो दिखाई भी देंगे और विलुप्त भी होगें। जब तक प्रस्तुत विषय मूर्त और गोचर रूप में नहीं मिलेगें तब तक काव्य का ढांचा खड़ा नहीं हो सकेगा। काव्य के लिए अर्थ ही नहीं बिम्ब-विधान को भी ग्रहण करना होगा।

2. **कविता और स ष्टि-प्रसार:** कविता मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य पक्ष में सामंजस्य स्थापित करके उसकी भावात्मक सत्ता का प्रसार करती है। यदि मनुष्य शेष स ष्टि से अपने-आपको अलग कर ले या अमानवीय कार्य करे तो वह मनुष्यता-विहीन हो जाता है। जो व्यक्ति, लहलहाते हुए खेतों, नालों, झरनों, कलरव करते पक्षियों, फूलों, दुखियों, अनाथों, अबलाओं, विनोदपूर्ण द श्यों की प्रकृति के अनुरूप न बदलता हो तो उसके जीवन को मरूस्थल की यात्र के समान ही निरर्थक समझना चाहिए।

   काव्य-द ष्टि प्रसार के तीन क्षेत्र हैं- (1) नरक्षेत्र (2) मनुष्येत्तर बाह्य स ष्टि (3) समस्त चराचर। प्रकृति के प्रति प्रेम का मूल कारण स्थायी-साहचर्य से उत्पन्न लगाव है, केवल सौन्दर्य-बोध नहीं है। जो व्यक्ति प्रक ति के केवल मकरन्द की तरफ आकृष्ट होने वाले भंवरे, कोयल की मधुर ध्वनि इत्यादि रूप में रूचि लेते हैं, वे विषयी या भोगलिप्सु हैं। सच्ची सहृदयता तो वही मानी जाएगी, जहाँ मनुष्य केवल असाधारण द श्यों तक ही सीमित न रहकर साधारण द श्यों में भी मन रमा सके। जो व्यक्ति प्रकृति में विलास की सामग्री तलाशते हैं, वे रागात्मक सत्त्व से शून्य होते हैं। व्यक्तिगत भाव एक परम भाव के साथ समन्वित हो जाते हैं। समन्वय के बिना मनुष्य की साधना पूरी नहीं होती।

3. **मार्मिक तथ्य:** मनुष्योतर प्रकृति पर जब मानवीय भावों का आरोप किया जाता है सूक्ति या सुभाषित का प्रादुर्भाव होता है। परन्तु जब पशु-पक्षी या प्रक ति के रूप-व्यापार या परिस्थिति का वर्णन किया जाता है, तो वह हमारे भावों का आलम्बन हो जाता है। प्रकृति के विस्त त क्षेत्र में बन्दर, बिल्ली, कुत्ता आदि की अपेक्षा मानव के लिए मार्मिक तथ्य हैं। सजीव प्रकृति ही नहीं, जड़ प्रकृति भी मानव को कहीं उदारता या उग्रता, भव्यता का आभास देती है तो कहीं आकुलता, उच्छ ंखलता और भीषणता का। सच्चे अनुभूति-योगी या कवि द ष्टाभाव से इसका अनुभव करते हैं। कहीं-कहीं हमारे अन्योक्तिकारों ने जीवन तथ्यों के साथ उनके साम्य का बहुत अच्छा मार्मिक उद्घाटन किया है। मनुष्य की व ति उस समय शान्त और निःस्वार्थ हो जाती है जब वह अनन्त व्यापक सत्ता में नरसत्ता का अनुभव करने लग जाता है।

जो तथ्य हमारे किसी भाव को उत्पन्न करे उसे उस भाव का आलम्बन कहना चाहिए। ज्ञान ही भावों के संचार के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। आज मनुष्य का ज्ञानक्षेत्र बुद्धिजनित या विचारात्मक होकर विस्त त हो गया है। अतः उसके विस्तार के साथ हमें अपने हृदय का भी विस्तार करना पड़ेगा।

4. **काव्य और व्यवहार :** मानव को कर्म में प्रेरित करने की शक्ति भाव में होती है ऊपर से कठोर, निर्मम और बौद्धिक लगने वाले क्रिया-व्यापार के अन्तर्गत भी कोई न कोई राग-द्वेष-लोभ, करूणा, क्रोध प्रेम आदि में संलग्न रहता है। किसी भी द श्य को हमारे भावों का विषय बनाना कवि का कार्य है। अगर किसी देश से यह कहा जाए कि अमुक देश प्रतिवर्ष तुम्हारा इतना रूपया उठाकर ले जाता है तो उस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि यह राजनीतिक अन्दाज में कही गई बात है। लेकिन उस देश के समक्ष भीषण और करूण द श्य, भूख से तड़पते बालक, दरिद्रता आदि द श्य दिखाए जाएं तो बहुत से व्यक्ति क्रोध और करूणा से व्याकुल हो उठेगें। इस प्रकार के द श्य भावना में लाना कवि का कार्य है। कविता भावप्रसार द्वारा कर्मण्य के लिए कर्मक्षेत्र का और विस्तार कर देती है। चर और अचर के किसी मार्मिक भाव में रूचि लेने वाले कवियों की क्रियाओं का इन अर्थलिप्सुओं के लिए कोई महत्व नहीं।

5. **मनुष्यता की उच्च भूमिः** जिस प्रकार मनुष्य में पशुओं की अपेक्षा ज्ञान-प्रसार की विशेषता अधिक होती है, उसी प्रकार भाव-प्रसार की भी। मनुष्य में ज्ञान-प्रसार के साथ-साथ भाव-प्रसार भी क्रमशः बढ़ता गया है। वह अपने परिजनों, पड़ौसियों, देशवासियों, प्राणि-मात्र ही नहीं रेत-पत्थर से भी सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इस हृदय-प्रसार का स्मारक स्तम्भ काव्य है, जिसकी उत्तेजना से हमारे जीवन में एक नए जीवन का संचार हो जाता है। हम स्वार्थ से मुक्त होकर मनुष्यता की उच्च भूमि पर पहुँच जाते हैं। अर्थलोलुप व्यक्ति अपने भावों को दबा देते हैं और संसार के मार्मिक पक्ष से मुँह मोड़ लेते हैं। कविता ही पत्थर के समान, निर्मम पुलिस कर्मचारियों के लिए दवा का कार्य करती है। कविता ही हृदय को प्रक त दशा में लाती व उसका अधिक से अधिक प्रसार करती हुई समस्त जगत के साथ आत्मीय संबंध स्थापित करती हैं।

6. **भावना या कल्पनाः** जो वस्तु हमसे दूर है, उसकी मूर्ति मन में लाना 'उपासना' कहलाती है। इसी को पुराने धार्मिक लोग 'ध्यान', साहित्य वाले 'भावना' तथा आजकल के व्यक्ति 'कल्पना' कहते हैं। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भावों के प्रर्वतन के लिए भी भावना या कल्पना अपेक्षित होती है। यही पाठक के मन में बिम्ब विधान करके भावों के उद्वेलन का कार्य करती है। कल्पना दो प्रकार की होती है।- विधायक और ग्राहक। कवि में विधायक और श्रोता या पाठक में ग्राहक कल्पना अपेक्षित होती है। यूरोपीय-साहित्य में कल्पना को बहुत अधिक प्रधानता दी गई है, किन्तु यह काव्य का साधन है, साध्य नहीं।

7. **मनोरंजनः** कविता का उद्देश्य मनोरंजन है परन्तु इसका अन्तिम लक्ष्य संसार के साथ मनुष्य-हृदय का सामंजस्य स्थापित करना है। जो व्यक्ति इस गम्भीर उद्देश्य के स्थान पर मनोरंजन को ही अन्तिम लक्ष्य मानते हैं, वे रास्ते में रह जाने वाले पथिक के समान है। मनोरंजन द्वारा कविता पाठक के चित को बाँधे रखती है। मनोरंजन तो किस्से-कहानी में भी होता है परन्तु कविता और कहानी के रस में अन्तर है। पाठक, कविता में निमग्न होकर कहता है -'जरा फिर तो कहिए' कहता है, जबकि कहानी में 'आगे क्या हुआ' की जिज्ञासा अत प्त होती है। मनोरंजन करना ही कविता का अन्तिम उद्देश्य मान लिया जाए तो फिर कविता भी विलास की सामग्री हुई। बाल्मीकि और तुलसीदास जैसे कवियों ने भी मनोरंजन के लिए नहीं वरन् लोक-सुख के लिए कविता लिखी।

8. **सौन्दर्य**ः 'सौन्दर्य मन के भीतर की वस्तु है' - यूरोपीय-समीक्षा की यह धारणा भ्रामक है। वास्तव में सुन्दर वस्तु से अलग सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं है। कुछ वस्तुएँ रूप-रंग में ऐसी आकर्षक होती है कि उनके समक्ष हमारी सत्ता तिरोहित हो जाती है और हम उस वस्तु के भाव-रूप में परिणत हो जाते हैं। जिस वस्तु का हमारी भावना से अत्याधिक लगाव होगा, वह वस्तु उतनी ही हमारे लिए सुन्दर कही जाएगी।

9. **चमत्कारवाद**ः चमत्कार का अर्थ है- शब्दों की क्रीड़ा, उपमान की विचित्रता, वाक्य की वक्रता। चमत्कार मनोरंजन की सामग्री है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उक्ति- चमत्कार का प्रयोग भावुक कवि भी करते है। परंतु उक्ति-वैचित्र्य काव्य का अनिवार्य लक्षण नहीं हैं। जो उक्ति पाठक को किसी भाव में लीन न करके कथन के अनूठे ढंग, वर्ण-विन्यास

की निपुणता या कवि-कौशल की ओर आकृष्ट करे, वह काव्य नहीं सूक्ति है। जहाँ रसात्मकता और चमत्कार दोनों का संगम हो, वहाँ प्रधानता के आधार पर सूक्ति या काव्य का निर्णय हो सकता है। मतिराम ने भी अपने सवैयों में सरसता और उक्ति-वैचित्र्य का मनोरम संगम किया है।

10. **कविता की भाषा**: कविता में कही गई बात चित्र-रूप में हमारे समक्ष आनी चाहिए, इसके लिए गोचर रूपों के विधान की आवश्यकता है। कविता अगोचर भावनाओं को भी स्थूल-गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है, इस मूर्त-विधान के लिए वह लक्षणा शब्द-शक्ति से काम लेती है। कविता की भाषा में दूसरी विशेषता यह है कि उसमें जातिवाचक शब्दों की जगह विशेष रूप-व्यापार सूचक शब्दों का अधिक से अधिक प्रयोग होता है। इसकी त तीय विशेषता वर्ण-विन्यास संगीतानुकूल प्रयोग है। नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है। उसी के सहारे कविता लोगों की जुबान पर चढ़ जाती है। जो छन्द को व्यर्थ समझते हैं वे लय को आवश्यक मानते हैं। काव्य-भाषा की चौथी विशेषता यह है कि उसमें व्यक्तियों के नामों के स्थान पर उसके रूप गुण या कार्य-बोधक शब्दों का व्यवहार किया जाए। जैसे 'कृष्ण' के लिए मुरारी, कंसनिकन्दन, मुरलीधर आदि शब्दों का प्रयोग प्रसंग के अनुकूल होना चाहिए।

11. **अलंकार**: किसी वस्तु का व्यापार के भावों को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए उस वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाया जाता है, कभी उसी के समान रूप-रंग में मिलाकर, कभी बात को घुमा-फिराकर कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न विधान और कथन के ढंग को अलंकार कहते हैं। इनके सहारे कविता का प्रभाव बढ़ता है। कहीं-कहीं तो अलंकार अनिवार्य हो जाते है। फिर भी ये साधन है, साध्य नहीं। जयदेव, भामह, उद्भत आदि अलंकारवादी आचार्य भले ही अलंकार को काव्य का अनिवार्य धर्म मानें, किन्तु परवर्ती संस्कृत आचार्यो ने काव्य के प्रस्तुत और अप्रस्तुत नाम स्पष्ट भेद कर दिये हैं।

12. **कविता पर अत्याचार**: कुछ लोभी, स्वार्थी और चाटुकार कवियों ने कविता द्वारा अयोग्य आश्रयदाताओं की स्तुति कराई है। ऐसे कवि कविता अपनाने की योग्यता नहीं रखते। सच्चे कवि राजाओं की सवारी और ऐश्वर्यमय जीवन में सौन्दर्य ढूँढा करते अपितु घास-फूस के झोंपड़ों, किसानों, बच्चों को भोजन खिलाते पक्षियों, दौड़ते हुए कुत्तों और चोरी करती हुई बिल्लियों में भी सौंदर्य ढूंढा करते है। वे दूसरों की खुशामद करने के लिए कविता नहीं लिखते, बल्कि स्वान्तः सुखाय के लिए लिखते हैं।

13. **कविता की आवश्यकता**: मनुष्य के लिए कविता इतनी उद्देश्यमयी वस्तु है कि संसार की सभ्य-असभ्य जातियों में कविता का वर्चस्व पाया जाता है और सदा ही रहेगा। व्यापार कार्य में संलग्न रहते हुए मनुष्य अपने हृदय तत्व को विस्म त कर चुका है, ऐसे में उसके मानवीय गुणों से वंचित होने का खतरा है। इन्हीं मानवीय गुणों को बचाए रखने के लिए कविता मनुष्य के साथ चली आ रही है और चलती रहेगी। पशुओं को कविता की आवश्यकता नहीं है।

# कविता क्या है? : विशेषताएँ

हिन्दी निबन्धों के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक विशिष्ट आदर्श स्थापित किया है। वे पहले विचारक और भाव विवेचक हैं, जिन्होंने भावों का सर्वांगीण और पूर्ण मनोविज्ञान सम्मत स्वरूप उपस्थित किया है। 'निबन्ध क्या है?' में लेखक ने कविता के स्वरूप, आधार, रागात्मिका व त्ति और उसके विस्तार तथा मानव जीवन में कविता का स्थान आदि अनेक प्रश्नों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। यह एक सैद्धान्तिक निबन्ध है जिसमे शुक्ल जी का आचार्यत्व अपनी पूर्णता में प्रकट हुआ है। इस निबन्ध की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं :-

1. **'कविता की परिभाषाः** शुक्ल जी ने 'कविता' की शास्त्रीय परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा है कि संसार में रहते हुए मानव मन में अनेक भाव उभरते हैं, लेकिन जब मनुष्य अपनी प थक सत्ता की भावना को और अपने आपको बिल्कुल भूलकर विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह ह्रदय से मुक्त होकर रसानुभूति करता है। आगे लेखक कहता है-"ह्रदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।"

2. **प्रकृति वर्णनः** प्रस्तुत निबंध के मार्मिक तथ्य खण्ड में लेखक ने प्रकृति वर्णन किया है। प्रकृति का प्रसंग आते ही वे अपने गुरू-गम्भीर विवेचन को विराम देकर प्रकृति की विविधरूपा द श्यावली में रम जाते हैं। यथा- "भूमि, पर्वत, चट्टान, नदी, नाले, टीले, मैदान, समुद्र, आकाश, मेघ, नक्षत्र इत्यादि की रूप गति आदि से भी हम सौन्दर्य, माधुर्य भीषणता, भव्यता, विचित्रता, उदासी, उदारता, सम्पन्नता इत्यादि की भावना प्राप्त करते हैं। .... स्वार्थ-भूमि से परे पहुँचे हुए सच्चे अनुभूति-योगी या कवि इनके द्रष्टा मात्र होते हैं।" अतः शुक्ल जी ने प्रकृति प्रेम की छटा सम्पूर्ण निबंध में बिखेर रखी है।

3. **कविता लोकमंगल का साधनः** आचार्य शुक्ल कविता को लोकमंगल का साधन मानते हैं। उनके शब्दों में कविता हमारे मनोभावों को उच्छवासित करके हमारे जीवन में एक नया जोश डाल देती है। हम स ष्टि के सौन्दर्य को देखकर मोहित होने लगते हैं। इस प्रकार कविता की प्रेरणा से कार्य में प्रव त्ति बढ़ जाती है। डॉ॰ नामवर सिंह के अनुसार-"उनका समूचा कृतित्व केवल सूर, तुलसी, जायसी का रसास्वादन नहीं है। सूर, तुलसी, जायसी ही नहीं, आधुनिक हिन्दी साहित्य की आलोचना के द्वारा ही वे जनता को वह राजनीतिक शिक्षा दे रहे थे, जन-जागरण का संदेश दे रहे थे, जिस जन-जागरण का संदेश प्रेमचंद अपने ढंग से, निराला अपने ढंग से और जयशंकर प्रसाद अपने ढंग से दे रहे थे।" उनका प्रस्तुत निबंध भी लोकमंगल की कामना से ओत-प्रोत है। अतः उनके अनुसार मानव ह्रदय को द्रवीभूत करके उन्हें स्वाभाविक धर्म पर लाने का सामर्थ्य काव्य में ही है।

4. **मौलिक चिन्तनः** प्रस्तुत निबन्ध में स्थापित काव्य के प्रतिमान, हिन्दी साहित्य और आलोचना में से उद्भूत हुए हैं। इन पर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद जैसी कोई पूर्व धारणा स्थापित नहीं है। ये प्रतिमान अत्यन्त सजग लोकमांगलिक द ष्टि वाले प्रखर मस्तिष्क से उपजे हैं इन्हें 'कला-कला के लिए' जैसा मूल्य-निरपेक्ष सिद्धांत मान्य नहीं। कविता के कलात्मक सौन्दर्य तक सीमित रहने वाले आलोचकों को पथ में रह जाने वाले पथिक के समान दिग्भ्रमित मानते हैं।

5. **देशानुराग का भावः** प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से देश के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया है। यह प्रेम परम्परागत रूप में न आकर नए रूप में प्रदर्शित हुआ है। लेखक का प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से देश की प्रकृति, उसके फूल-पत्ते, उसकी भूमि, रंग, सुगन्ध के साथ प्रेम प्रदर्शित हुआ है। वे कालिदास को सच्चा देश-प्रेमी मानते हुए कहते हैं कि - "मेघदूत प्राचीन भारत के सबसे भावुक ह्रदय की अपनी प्यारी भूमि की रूप-माधुरी पर सीधी-सादी प्रेम द ष्टि है।"

6. **देशानुराग का भावः** प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से देश के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया है। यह प्रेम परम्परागत रूप में न आकर नए रूप में प्रदर्शित हुआ है। लेखक का प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से देश की प्रकृति, उसके फूल-पत्ते, उसकी भूमि, रंग, सुगन्ध के साथ प्रेम प्रदर्शित हुआ है। वे कालिदास को सच्चा देश-प्रेमी मानते हुए कहते हैं- "मेघदूत प्राचीन भारत के सबसे भावुक ह्रदय की अपनी प्यारी भूमि की रूप-माधुरी पर सीधी-सादी प्रेम-द ष्टि है।"

6. **हास्य व्यंग्यः** शुक्ल जी ने हास्य व्यंग्य का अपने निबन्ध में एक शस्त्र के रूप में प्रयोग किया है। उनकी वाणी में कहीं तो उपहास, कहीं तिरस्कार, कहीं क्रूर आघात, कही छेड़खानी आदि द ष्टिगोचर होते हैं। रीतिकालीन कवियों के संदर्भ में उनका व्यंग्य देखने लायक है - "एक प्रकार के कविराज तो रईसों के मुँह में मकरध्वज रस झोंकते थे, दूसरे प्रकार के कविराज कान में मकरध्वज रस की पिचकारी देते थे, पीछे तो ग्रीष्मोपचार आदि के नुस्खे भी कवि लोग तैयार करने लगे।" उन्होंने प्रस्तुत निबन्ध में 'जानवरों को कविता की जरूरत नहीं' जैसे वाक्यों द्वारा कबीर की व्यंग्यमयी भाषा का अनुकरण किया है। जिस प्रकार कबीर पाखण्डियों तथा माया संलग्न व्यक्तियों पर शब्दमयी खड़ग से बरस पड़ते थे, उसी प्रकार शुक्ल ने भी वही कार्य किया। यथा - "अथांगम से ह्रष्ट, 'स्वीकार्य साघयेत' के अनुयायी काशी के ज्योतिषी और कर्मकाण्डी, कानपुर के बनिये और दलाल, कचहरियों के अमले और मुख्तार ऐसों को कार्य-भ्रंशकारी, मूर्ख, निरे-निठल्ले या खब्त-उल-हवास समझ सकते हैं..... कवि और भावुक हाथ-पैर न हिलाते हों, यह बात नहीं है। पर 'अर्थियों' के निकट उनकी बहुत सी क्रियाओं का कोई अर्थ नहीं होता।"

7. **कविता सम्बन्धी सम्पूर्ण विवेचनः** आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता के सभी पक्षों, विवादों अथवा मान्यताओं आदि सभी पर अपनी लेखनी चलाई है। यथा- 'कविता क्या है' में कविता की परिभाषा, उसकी भाषा-शैली और प्रयोजन को अनेक शीर्षकों में विभाजित किया है - 'कविता और स ष्टि प्रसार', 'मार्मिक तथ्य', 'काव्य और व्यवहार', 'भावना या कल्पना', 'मनोरंजन', 'सौन्दर्य' आदि। इसी प्रकार उन्होंने काव्य-भाषा के भी खण्ड किये है - 'चमत्कारवाद', 'कविता की भाषा', 'अलंकार' आदि। अतः शुक्ल जी ने अपने आलोच्य निबन्ध में कविता के किसी भी रूप को अनदेखा नहीं किया।

8. **व्यक्तित्व का प्रतिफलनः** साहित्य में लेखक का व्यक्तित्व अनिवार्यतः अनुस्यूत रहता है। 'कविता क्या है' निबन्ध में भी शुक्ल जी के व्यक्तित्व का प्रतिफलन हुआ है। उनकी सहृदयता की छाप आलोच्य निबन्ध में पग-पग पर मिलती है। उनकी आत्मीयता का विस्तार केवल मानव तक ही नहीं, पशु-पक्षी और पेड़-पौधों तक भी है। जब मानव अपने सुख प्राप्ति के लिए विभिन्न जीवों (बिल्ली, बन्दर, कुत्ते आदि) की भर्त्सना करता है तो लेखक उसे खिन्न हो जाता है। जो व्यक्ति व्यवहार से क्रूर और भावशून्य है उनके विषय में शुक्ल जी का मत है।" यह महाभयानक मानसिक रोग है। इससे मनुष्य आधा मर जाता है।" वे कविता को मानव की खोई हुई इसी संवेदना को पुनर्जीवित करने का माध्यम मानते हैं। जो व्यक्ति कविता रूपी गंगा में डुबकी नहीं लगाते उन्हें शुक्ल जी ने जानवर की संज्ञा दी है।

9. **कविता शाश्वत हैः** संसार की प्रत्येक सभ्य और असभ्य जातियों में इतिहास, विज्ञान, दर्शन आदि चाहे न हो कविता अवश्य होती है। वस्तुतः मनुष्य अपने कार्य-व्यापारों की जटिलता में फँसा रहकर शेष स ष्टि के साथ अपने हृदय का पूर्ण सम्बन्ध नहीं रख पाता। अतः मनुष्य में मानवीय गुण स्थायी रखने के लिए कविता मनुष्य जाति के संग लग गई है। संसारिक बन्धनों में बंधा मनुष्य कभी-कभी इतना कठोर हो जाता है कि उसमें किसी का उपकार करने तथा करूणा की भावना नहीं रहती। इस प्रकार की मनःस्थिति को जड़ता की संज्ञा देनी पड़ती है। इस प्रकार की जड़ता से बचने के लिए कविता ही एकमात्र साधन है।

उपर्यक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शुक्ल जी ने प्रस्तुत निबन्ध में कविता का सर्वांगीण विवेचन करते हुए उसके प्रत्येक अंग का सूक्ष्म एवं विषद चित्रण किया है। शुक्ल जी ने कविता के आंतरिक पक्ष यथा- भाव, मनोविकार, रागात्मकता, कार्य-विस्तार आदि को विशेष महत्व दिया है। भाषा, नाद-सौन्दर्य, अंलकार आदि बाह्य पक्षों के अतिरिक्त मनोरंजन आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला है। शुक्ल जी का यह निबन्ध उनके व्यक्तित्व का भी प्रतिनिधित्व करता है।

# कविता क्या है? : भाषा-शैली

हिन्दी निबन्धों के क्षेत्र में आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्धों का एक विशिष्ट आदर्श स्थापित किया है। उनके विचारात्मक निबन्धों में एक सुव्यवस्थित विचार परम्परा है। निबन्धों की शैली या टैक्नीक की द ष्टि में रखते हुए आचार्य शुक्ल के विचारात्मक निबन्धों की मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :-

1. **संगठित विचार-परम्परा**: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों की सर्वप्रमुख विशेषता है - संगठित विचार परम्परा। उनकी विचार-पद्धति अत्यन्त सुव्यवस्थित और अखण्ड चिन्तन प्रसूत है। अर्थसम्पन्नता, परिष्कृति, प्रौढ़ता एवं पुष्टता की द ष्टि से यह अनुपम है। विचार और भाषा मिलकर एक रूप हो गये हैं। भाषा में इतना कसाव, सघनता और संक्षिप्तता है कि एक शब्द को भी निकाला नहीं जा सकता। ऐसा लगता है कि मस्तक में विचारों की धाराएँ बड़ी तेजी से फूट रही हैं, विचारों की भीड़-सी उमड़ रही है। प्रत्येक वाक्य का वाक्यखण्ड सिद्धांत सूत्र के रूप में परस्पर अटूट होकर जुड़ा हुआ है यथा-"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है।"

2. **सूत्र रूप में कहने की प्रव त्ति**: शुक्ल जी की शैली सूत्रात्मक भी है, क्योंकि उन्होंने सूत्र रूप में कितने ही गूढ़-गम्भीर वाक्य लिखे हैं, जैसे- "समन्वय के बिना मनुष्य की साधना पूरी नहीं हो सकती", "नाद-सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है।"

   इन छोटे से एक दो वाक्यों में उपस्थित किए गये विचारों को व्याख्या की आवश्यकता पड़ेगी।

3. **विषयप्रधानता तथा व्यक्तिप्रधानता**: उनके निबन्ध विचारात्मक होने के कारण विषय प्रधान तो हैं ही, परन्तु साथ ही उनमें उनके व्यक्तित्व की पूरी छाप भी है। उन्होंने अपने विषय और व्यक्तित्व दोनो का समन्वय किया, विषय पर विचार करते हुए उन्होंने अपने व्यक्तित्व को भी पीछे नहीं रखा। 'कविता क्या है' निबन्ध में भी शुक्ल जी का व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है।

4. **मुहावरों एवं समास शैली का प्रयोग**: शुक्ल जी ने लोकोक्ति एवं मुहावरों से भी अपनी शैली को सुसज्जित किया है, यथा-'कीर्ति की लालसा', 'भाग छिनता चला जा रहा है।'

   कहीं-कहीं शुक्ल जी ने समासान्त पदावली का प्रयोग करते हुए कवित्वमयी अंलकृत भाषा-शैली का प्रयोग किया है - "केवल प्रफुल्ल-प्रसून प्रसाद के सौरभ-संचार, मकरंद-लोलुप मधुप-गुजार, कोकिल कूजित निकुज और शीतल सुख-स्पर्श समीर इत्यादि की चर्चा किया करते हैं वे विषयी या भोगलिप्सु हैं।

5. **व्यंग्य तत्व की प्रधानता**: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल में हास्य-व्यंग्य की जो प्रव त्ति थी, अवसर आने पर उसका दर्शन हमें उनकी सभी प्रकार की रचनाओं में मिलता है। 'कविता क्या है' निबन्ध में उन कवियों या लेखकों पर व्यंग्य किया है जो प्रकृति के सौन्दर्य पक्ष पर ही रचना करते हैं, "जो केवल ... भव्यता और विचित्रता में ही अपने हृदय के लिए कुछ कर पाते हैं, वे तमाशबीन है - सच्चे भावुक या सहृदय नहीं।

6. **निगमन एवं आगमन शैली का प्रयोग**: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने विचारात्मक निबन्धों में प्रधानतः दो शैलियों का प्रयोग किया है - आगमन और निगमन शैली। आगमन शैली में निबंधकार अपने विचारों की विवेचना और व्याख्या करने के पश्चात् प्रोक्ति के अन्त में उनका निष्कर्ष सूत्रतः कहता चलता है। लेखक ने 'कविता क्या है' निबन्ध के आरम्भ में आगमन शैली का प्रयोग किया है, जिसका अन्त अनुच्छेद के अन्तिम वाक्य में हुआ है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं व्यास शैली का भी प्रयोग हुआ है।

7. **अलंकार प्रयोग**: शुक्ल जी ने अपने प्रस्तुत निबन्ध में रूपक, उपमा, अनुप्रास आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है, जिससे भाषा के सौन्दर्य व द्धि में चार चाँद लग गए हैं, यथा - 'वे रास्ते में ही रह जाने वाले पथिक के समान' (उपमा),'प्रत्युत पल्लव गुम्फित पुष्पहास' (अनुप्रास)', 'कविता देवी के मन्दिर' (रूपक) आदि।

8. **बिम्बात्मक भाषा**: शुक्ल जी की भाषा की एक प्रमुख विशेषता ' बिम्बात्मकता' भी है। वे किसी प्रसंग का वर्णन इस प्रकार करते है कि सहृदय की आँखों के समक्ष एक चित्र सा उभर आता है। यथा - "हवा के झोंको से उसकी टहनियाँ और पत्ते हिल-हिलकर मानो बुला रहे हैं। हम धूप से व्याकुल होकर उसकी ओर बढ़ते हैं। देखते हैं, उसकी जड़ के पास एक गाय जुगाली कर रही है। हम लोग भी उसी के पास आराम से जा बैठते हैं। इतने में एक कुत्ता जीभ निकाले हाँफता हुआ उस छाया के नीचे आता है और हममे से कोई उठकर उसे छड़ी लेकर भगाने लगा है।

9. **शब्द भण्डार**: शुक्ल जी की भाषा शुद्ध तत्समप्रधान परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी है, जो समीक्षा एवं आलोचना के लिए अत्यन्त समक्ष एवं समर्थ है। उन्होंने अपने आलोच्य निबंध में अत्यन्त प्रौढ़ एवं प्रांजल भाषा का प्रयोग किया है। उनकी तत्सम प्रधान भाषा का एक उदाहरण द ष्टव्य है - "पेड़-पौधे, लता-गुल्म आदि भी इसी प्रकार कुछ भावों या तथ्यों की व्यंजना करते हैं जो कभी-कभी कुछ गूढ़ होती है।..... शिशिर के कठोर शासन में उनकी दीनता को; मधुकाल में उनके रसोन्माद, उमंग और रास को; प्रबल वात के झकोरो में उनकी विकलता को.... देख सकती है।" प्रस्तुत निबंध में शुक्ल जी ने कुछ नए शब्दों का भी निर्माण किया है, जो उसकी बहुज्ञता का ही प्रमाण है।

10. **कथन की चमत्कारिता**: शुक्ल जी की भाषा की एक महत्वपूर्ण विशेषता चमत्कारिक ढंग से कही गई बात है। ऐसे कथन का प्रभाव सहृदय पर गहन छाप छोड़ जाता है। 'कविता क्या है' निबंध में कविता के प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं - "मनोरंजन वह शक्ति है जिससे कविता अपना प्रभाव जमाने के लिये मनुष्य की चित्त-व त्ति को स्थिर" किए रहती है, उसे इधर-उधर जाने नहीं देती।

इस प्रकार आचार्य शुक्ल के निबंधों में जहाँ व्यंजनार्थ उपादान और गंभीर हास्य मिलता है, वहाँ गंभीर और जटिल विषयों पर समीक्षात्मक विवेचन भी रहता है। उनके प्रस्तुत निबंध की शैली में, उनका व्यक्तित्व स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने अत्यन्त सुष्ठु वाक्य-विन्यास का प्रयोग किया है। उनके गम्भीर वाक्यों को देखकर ही डॉ॰ नामवर सिंह को कहना पड़ा था - कितना अच्छा होता कि एक वाक्य वाले निबन्धों की कोई विधा होती।" अतः भाषा और शैली की द ष्टि से उनका यह निबन्ध अत्यन्त सफल और स्वाभाविक बन पड़ा है।

# नाखून क्यों बढ़ते हैं? : सारांश

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ज्योतिषशास्त्र, हिन्दी, संस्कृत, बंगला के उद्भत विद्वान, हिन्दी -साहित्य के सम्मानित साहित्यकार, मूर्धन्य आलोचक एवं उच्चकोटि के निबंधकार थे। वे जीवन की छोटी से छोटी सामान्य रूप से घटित होने वाली घटनाओं की चर्चा करते हुए सहसा बड़े से बड़े जीवन-मूल्यों के साथ उन्हें जोड़कर हमें चकित कर देते हैं। इस निबन्ध में वे 'नाखून क्यों बढ़ते है?' यह छोटा सा प्रश्न उठाते हैं और उसके माध्यम से हमारा ध्यान इस बड़े सत्य की ओर आकृष्ट करते है कि मनुष्य के भीतर नाखून बढ़ा लेने की जो सहज प्रव ति है वह उसकी पशुता की निशानी है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते है कि कई बार छोटे-छोटे बच्चे ऐसे प्रश्न पूछ बैठते हैं कि कम ज्ञान रखने वाले पिता के लिए बच्चे द्वारा किये गये प्रश्न का उत्तर देना कठिन हो जाता है। एक दिन द्विवेदी जी ऐसी ही स्थिति में फँस गए जब उनकी छोटी लड़की ने उनसे प्रश्न किया कि नाखून क्यों बढ़ते हैं? लेखक इस प्रश्न को सुनकर कुछ सोच ही नहीं पा रहा था। बार-बार काट दिए जाने के बाद भी ये हर तीसरे दिन बढ़ जाते हैं। लेकिन इस बात को कोई नहीं जानता कि ये नाखून आखिर क्यों बढ़ते हैं। व्यक्ति यदि इन नाखूनों को काट देता है तो फिर ये निर्लज्ज अपराधी की भाँति थोड़े समय ही खाली छोड़ने के बाद सेंध लगाकर हाजिर हो जाते हैं। आखिर ये नाखून इतने निर्लज्ज, बेशर्म व बेहया क्यों हैं?

कुछ लाख वर्ष पूर्व जब मनुष्यजंगली अवस्था में था तब नाखून मनुष्य के लिए जीवन-रक्षक अस्त्र के रूप में थे। उन दिनों जब मनुष्य को अपने प्रतिद्वन्दियों से जूझना पड़ता था, नाखून उसके लिए अत्यन्त आवश्यक अंश था । जैसे-जैसे मनुष्य का विकास होता गया उसके जीवन-रक्षक अस्त्रों में भी परिवर्तन आता गया। जीवन-रक्षक अस्त्र के रूप में मनुष्य ने शुरू-शुरू में पत्थर के ढेले व पेड़ की डालों का उपयोग किया। श्रीराम की वानर सेना ने ऐसे ही अस्त्रों का प्रयोग किया था। इसके बाद मनुष्य ने हड्डियों से वज्र आदि का निर्माण किया। देवराज इन्द्र ने महर्षि दधीचि की हड्डियों से निर्मित वज्र से ही राक्षसों को पराजित किया था। अस्थियुग के पश्चात् मनुष्य ने धातु-युग में प्रवेश किया। उसके लौह आदि धातुओं से अस्त्र बनाकर नाग, सुपर्ण, यक्ष, गंधर्व, असुर, राक्षस आदि को परास्त किया। आज नख-धर मनुष्य ने बन्दूक, तोप, बम, बम-वर्षक वायुयान तथा एटमबम जैसे भयंकर व घातक अस्त्र बना लिए हैं पर उसके नाखून आज भी बढ़ते रहते हैं। सम्भवतः प्रकृति बढ़ते नाखूनों के माध्यम से मनुष्य को याद दिलाती रहती है कि वह आज भी हिंसक पशु की भाँति नख-दन्तावलम्बी जीव है।

निबन्धकार सोचता है कि शायद अब मनुष्य नाखून को नहीं चाहता है। इसीलिए वह अपने बच्चों को नाखून न काटने पर डांटता है। मनुष्य सम्भवतः नहीं चाहता कि आदिमयुगीन बर्बरता का कोई चिन्ह उसमें रहे; परन्तु हिरोशिमा जैसे हत्याकाण्डों को देखकर लगता है कि मनुष्य ने अभी अपनी पाशविक हिंसक व त्ति का त्याग नहीं किया है पशुता और हिंसा-व त्ति मनुष्य का स्वभाव है, इसीलिए मनुष्य के नाखून बार-बार काटे जाने पर भी बढना बंद नही करते। ये मनुष्य की भंयकर पाशवी व त्ति के जीवंत प्रतीक हैं।

भारतवासियों के स्वभाव का यह एक प्रमुख गुण रहा है कि वे निम्नगामिनी व त्तियों की ओर नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भी मानवोचित बनाते रहे हैं। यही कारण है कि दो हजार वर्ष पूर्व रचे गये 'कामसूत्र' में विलासी नागरिकों द्वारा सुकुमार विनोद के लिए त्रिकोण, वर्तुलकार, चन्द्राकार व दन्तुल आदि अनेक प्रकार की आकृतियों के नाखून काटने का उल्लेख मिलता है।

प्राणी-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव-शरीर में नाखून का बढ़ना, केशों का बढ़ना, दाँतो का दुबारा आना तथा पलकों का गिरना आदि कुछ ऐसी सहजात व त्तियाँ है जो अनायास ही और शरीर के अनजाने में भी अपने-अपने काम करती रहती हैं। नख बढ़ाने की सहजात व त्ति मनुष्य की पशुता का प्रमाण है। नाखूनों को काटने की प्रव ति मनुष्य की मनुष्यता का चिन्ह है। मनुष्य ने यह जान लिया है कि पशु बनकर वह प्रगति नहीं कर सकता है इसीलिये उसने पशुता को छोड़ दिया है; नाखूनों के रूप में कुछ चिन्ह उसके भीतर अभी अवश्य शेष रह गये हैं। नाखून उन्हीं चिन्हों के प्रतीक हैं। इन चिन्हों के रहते हुए मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता। नाखून अर्थात् अस्त्र बढ़ाने की प्रव ति मानवता-विरोधिनी है।

लेखक की छोटी लड़की द्वारा उठाया गया प्रश्न-'नाखून क्यों बढ़ते है? तथा लेखक के द्वारा पूछा गया प्रश्न - 'ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? वास्तव में एक ही प्रश्न के दो रूप है। दोनों का एक ही उत्तर है कि नाखून व अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ना पशुता

की निशानी है। पशुता की इस निशानी को 'स्व' के बंधन द्वारा ही मिटाया जा सकता है। भारतीय परम्परा महिमामयी उत्तराधिकार सम्पन्न व संस्कार उज्जवल है। अनजाने में भी भारतीय मानस 'स्व' के बंधन को ही महत्व देता है। इसीलिये अंग्रेजी में जिसे 'इण्डिपेण्डेंस' कहा जाता हे, भारतीय उसे 'स्वाधीनता', 'स्वतन्त्रता' तथा स्वराज्य कहते हैं। वास्तव ने 'स्व' का बंधन स्वीकार करना हमारी संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है।

भारत में अनेक जातियाँ आ-आकर बसती रही हैं। उन सभी की सभ्यताओं और द ष्टिकोण में भेद है। अनेक जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना बड़ा कठिन कार्य था। परन्तु हमारे ऋषि-मुनियों ने देखा कि सभी जातियों, वर्णो, धर्मो व सभ्यताओं में एक आदर्श समान हैं, वह आदर्श है- अपने को अपने ही बंधनों में बांधना। संयम, संवेदना, श्रद्धा, तप, ज्ञान, अक्रोध, सत्याचरण आदि सद्‌गुणों के कारण मनुष्य पशुओं से भिन्न है। महाभारत में इन्हीं गुणों को सब वर्णो का सामान्य धर्म कहा गया है -

**एतद्‌िध त्रितंय श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।**
**निर्वेरतं महाराज सत्यमक्रोध एव च।।**

गौतमबुद्ध ने भी सबके सुख-दुःख को सहानुभूतिपूर्वक देखने को ही मानवता कहा है। यही आत्मनिर्मित बंधन मनुष्य को मनुष्य बनाता है। गांधी जी भी 'स्व' के बंधन को ही सुख-सम द्धि का आधार मानते थे। वे कहते थे -'बाहर नहीं भीतर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो।..... प्रेम की बात सोचो, आत्मपोषण की बात सोचो। लेकिन 'स्व' के बंधन के समर्थक गांधी को गोली मार दी गई।

प्राणी-शास्त्रियों का मत है कि एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब मनुष्य की पशुता समाप्त हो जाएगी और वह मारक अस्त्रों का प्रयोग बंद कर देगा। हमारा कर्त्तव्य है कि हम छोटे बच्चों को समझाएँ कि नाखून ही मानवता का आदर्श है। विनाशकारी मारक अस्त्रों तथा बाहरी उपकरणों का संचय करके मनुष्य सफलता तो प्राप्त कर ही सकता है।, चरितार्थता नहीं। मनुष्य-जीवन की चरितार्थता तो प्रेम, मैत्री व त्याग में ही है। नाखून बढ़ते है तो बढ़े। मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा क्योंकि नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की पशुता का चिन्ह है। स्व-निर्धारित आत्म-बंधन ही मनुष्य को चरितार्थता की ओर ले जा सकते हैं।

# नाखून क्यों बढ़ते है? : विशेषताएँ

'नाखून क्यों बढ़ते हैं' हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रमुख निबन्ध है। इस निबन्ध की कला के माध्यम से द्विवेदी की निबन्ध कला को समझा जा सकता है। इस निबन्ध की निम्न विशेषताएँ हैं :-

1. **मानवतावादी स्वरः** 'नाखून क्यों बढ़ते है' निबन्ध में मनुष्यता पर तथा मनुष्यता में छिपी पशुता पर मानवतावादी द ष्टिकोण से विचार किया है। मनुष्य का उद्देश्य है मानवता का विकास करना और पशुता का त्याग करना। मानवता और पशुता के बीच निरन्तर संघर्ष है। मनुष्य को अपनी मनुष्यता का विकास करना चाहिए। नाखून पशुता के प्रतीक हैं। नाखूनों को काटना मनुष्यता की पहचान है द्विवेदी का यही संदेश है कि "कम्बख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़े, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।"

2. **भारतीय संस्कृति का पक्षः** 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध में द्विवेदी जी ने भारतीय संस्कृति के उज्जवल पक्ष को प्रस्तुत किया है। भारतीय मानस और भारतीय संस्कारों में व्याप्त मनुष्यता को, विभिन्न जातियों एवं वर्णो के अहिंसा, अक्रोध सत्य के सामान्य आदर्श को तथा 'स्वाधीनता', 'स्वतन्त्रता, आदि शब्दों की व्याख्या करते हुए बताया है कि भारतीय चिन्तन में 'स्व' का बन्धन हमेशा रहा है। संयम, मैत्री, सहानुभूति एवं मानवतावादी संवेदना भारतीय संस्कृति के अनिवार्य तत्व हैं। भारतीय संस्कृति के इस पक्ष का चिन्तन की उज्जवलता का उद्घाटन हुआ है।

3. **प्राचीन एवं नवीन का समन्वयः** इस निबन्ध में मनुष्यता और पशुता की समस्या को प्राचीन तथा नवीन संदर्भो में समझने की चेष्टा की है। बर्बरता के आदिम रूप नाखून, दाँत, हड्डी तथा पेड़ की शाखाएँ आदि तथा आधुनिक युग के बंदूक और एटम बम को एक साथ प्रस्तुत किया है। हिरोशिमा-नागासाकी की विभीषिका का उदाहरण देकर अपना पक्ष पुष्ट किया है। एटम बम को नाखूनों का विस्तार मानकर उसे नवीन संदर्भ दिये हैं तथा आदिम युग में उनकी जरूरत को बताकर उनकी महत्ता को रेखांकित किया है।

4. **व्यक्तित्व की छापः** 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध में द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की गहरी छाप है। ऐतिहासिक अनुभव में अपने अनुभव मिलाकर निबन्ध के विषय को प्रामाणिक एवं रोचक बनाया है। छोटी लड़की के बाल-सुलभ प्रश्न से इतनी गम्भीर समस्या पर ऐतिहासिक संदर्भो में समस्या को समझना द्विवेदी जी के व्यक्तिव्त का अनिवार्य हिस्सा है। इस निबन्ध में उनके व्यक्तित्व की छाप का उदाहरण देखा जा सकता है- "मेरा मन पूछता है - किस ओर? किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर"।

5. **भाव तत्व की प्रधानताः** 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध में भाव तत्व की प्रधानता है। मनुष्यता का विकास, मनुष्य में पशुता के अवशेष एवं भारतीय संस्कृति में इस प्रश्न पर विभिन्न द ष्टियों एवं कोणों से हुए चिन्तन से परिचित कराना ही इनका मकसद है। इसके लिए किसी आडम्बरयुक्त शैली नहीं बल्कि सहज-सरल भाषा एवं सरल-स्पष्ट शैली में प्रस्तुत किया है।

6. **गवेषणात्मकताः** द्विवेदी जी की खोजपूर्ण द ष्टि रही है। कामसूत्र से सजावट के विभिन्न रूप प्रस्तुत करना उनकी गवेषाणत्मक एवं शोधपूरक द ष्टि का परिचायक है। प्राणी वैज्ञानिकों के सहजातव ति सम्बन्धी निष्कर्षो को निबंध में संयोजित करना तथा भारतीय मानस के 'स्व' बन्धन सम्बन्धी चिन्तन का विवेचन करना उनकी गवेषणात्मक, खोज एवं शोधपरक द ष्टि का परिचायक है।

7. **संक्षिप्तताः** संक्षिप्तता इस निबन्ध की कला की रेखांकित करने योग्य विशेषता है। छोटे से निबन्ध में मानवता एवं उसमें छिपी पशुता को ऐतिहासिक संदर्भो में समझा है। इसमें अतिरिक्त विस्तार नहीं है। वर्णन का अधिक समय निबन्धकार के पास नहीं है। सूत्र रूप में अपनी बात कहकर विषय को सम्प्रेषित किया है।

8. **भाषा शैलीः** 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध की शैली में जिज्ञासा, कौतूहल एवं रोचकता के तत्व विद्यमान हैं। प्रत्येक शब्द एवं वाक्य में ज्ञान की धारा प्रवाहित है। प्रश्नों को उठाना एवं उनके उत्तर देने की शैली में पाठक से जुड़ाव बढ़ा है। सामान्य से लगने वाले प्रश्न से इतने गम्भीर प्रश्न पर ऐतिहासिक संदर्भो में निबन्ध लिखने की भाषा एवं शैली में

> पाठक का जुड़ाव बढ़ा है। सामान्य से लगने वाले प्रश्न से इतने गम्भीर प्रश्न पर ऐतिहासिक संदर्भो में निबन्ध लिखने की भाषा एवं शैली अभिभूत करने वाली है। सूक्तियों का प्रयोग 'अस्त्र बढ़ाने की प्रव ति मनुष्यता की विरोधनी है', पूरे दर्शन को समेटे हुए है। युद्ध की विभीषिका को, हथियार संग्रह की घातक प्रव ति को मानवीय संवदेना के साथ इसी भाषा में उभारा जा सकता है।

इस निबन्ध की सार्थक विषयवस्तु अभिभूत कर देने वाली अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण शक्ति को देखकर द्विवेदी जी की निबन्ध कला का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। विविध शैलियों में विविध विषयों पर कलम चलाकर द्विवेदी ने हिन्दी के चोटी के निबन्धकारों में गिनती कराई है। इसके निबन्धों की रसभरी भाषा विषय का पूरी सांस्कृतिक परम्परा, इतिहास, वर्तमान एवं भावी संदर्भो में एक साथ ही परिचय कराती है।

# नाखून क्यों बढ़ते है? : भाषा-शैली

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उच्च कोटि के आलोचक, उपन्यासकार, अन्वेषक, कुशल वक्ता, सफल अध्यापक एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद श्रेष्ठ निबंधकार हैं। वे ज्योतिषशास्त्र, हिन्दी, संस्कृत व बंगला के उद्‌भत विद्वान और हिन्दी-साहित्य के सम्मानित साहित्यकार थे। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' नामक निबन्ध में द्विवेदी जी ने सरल, सहज एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उनके निबन्धों की भाषा-शैली का विश्लेषण करते हुए डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है- "इस प्रकार आपकी भाषा संस्कृत एवं शिष्टजनानुमोदित है। वह व्याकरण के अनुशासन से अनुशासित है, उसमें सभी प्रकार के विचारों एवं भावों के वहन करने की अपूर्व क्षमता है, वह जनसाधारण के सर्वथा अनुकूल है, वह सर्वसाधारण की बोलचाल के शब्दों से सुसज्जित है, वह पांडित्यपूर्ण विवेचन के साथ-साथ व्यंग्य-विनोद से भी परिपूर्ण है।, उसमें भावुकता एवं कवित्व की भी छटा विद्यमान है तथा वह सरल, सजीव एवं बोधगम्य है।" इनकी भाषा शुद्ध, प्रौढ़ परिमार्जित, सरस तथा साहित्यिक खड़ी बोली है। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व का प्रतीक है। वे कहीं-कहीं छोटे-छोटे वाक्यों का भी प्रयोग करते हैं, जिनमे खड़ी बोली का सहज-स्वाभाविक रूप प्रकट होता है, जैसे "मेरा मन पूछता है- किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर?" इसी प्रकार जहाँ भाव-गम्भीर्य का प्रतिपादन करना हो तो वे लम्बे-लम्बे वाक्यों का प्रयोग करते हैं- "नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अन्ध सहजात व ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व-निर्धारित, आत्म-बन्धन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।" अतः वे दोनों प्रकार के वाक्यों को लिखने में सिद्धहस्त हैं।

उनके निबंधों की भाषा-शैली का मूल्यांकन करते हुए डॉ॰ शिवकुमार शर्मा ने लिखा है- "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में भाषा और शैली दोनो विषयानुरूप हैं। .... ग्रामीण एवं व्यावहारिक प्रसंगों में वे बोलचाल की भाषा को अपनाते हैं। आप अपने ललित निबन्धों में लालित्यमयी भाषा के प्रयोक्ता है आधुनिक जीवन के फैशन व विकृतियों के चित्रण में वे तीखी हास्य व्यंग्यात्मक भाषा का सफल प्रयोग करते हैं। भाषा और शैली जैसे कि उनकी वंशवर्तिनी हो। उनके निबंधों में व्यास, समास, धाराप्रवाह, संलाप, निगमन, अनुगमन, विवेचन व विश्लेषण आदि शैली के सभी रूपों को अपनाया है।

द्विवेदी जी का शब्द-भण्डार अत्यन्त व्यापक है। उनकी भाषा में संस्कृत का पूर्ण वैभव, लोकजीवन की समूची सरसता और भावाभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता है। उनकी भाषा का सामान्य स्वाभाविक रूप विषयानुसार परिवर्तन है। उनके निबन्धों, अनुसंधान ग्रंथों एवं आलोचनात्मक कृतियों की भाषा अधिक संस्कृत शब्दों की तत्परता लिए हुए- उर्दू-अंग्रेजी शब्दो का अत्यन्त न्यून मात्रा में प्रयोग करने वाली गंभीर एवं संयत है। 'नाखून क्यों बढते हैं' निबन्ध में अत्याधिक तत्सम शब्दो को अपनाया गया है- पाश्वीव त्ति, उत्स, ततः किम्, दाक्षिणात्य, नख-दंतावलम्बी, अल्पज्ञ, अनुसंधित्सा, उद्‌भाषित, अधोगामिनी, बर्बरता तथा संस्कृत के छन्द का प्रयोग किया गया है -

**"एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।**
**निवैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च।।**

इन्होंने प्रस्तुत निबन्ध में अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का भी पर्याप्त प्रयोग किया है- इण्डिपेडेन्स सेल्फडिपेंडेंस आदि। इनकी भाषा में स्थानीय रंग भी देखा जा सकता है - नौ सिखुए, सेंध आदि। इन्होंने उर्दू-फारसी के शब्दों को भी खूब अच्छी तरह अपनाया है, जैसे अक्सर, बेहया, मुमकिन, नाखून, कमबख्त, मजबूत आदि। कहीं-कहीं मुहावरों का प्रयोग करके उन्होंने अपनी अभिव्यक्तियों को सुद ढ़ बनाया है। इन्होंने भाषा का आलंकारिक प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया है। उपमा, रूपक, मानवीकरण आदि अलंकारों ने उनकी भाषा में उक्तिवैचित्र्य के साथ-साथ अर्थगांभीर्य की भी स ष्टि की है। जहाँ तक शैली का प्रश्न है तो इन्होंने अपने निबंधों में विचारात्मक, व्यंग्यात्मक एवं भावात्मक शैलियों का प्रयोग किया गया है।

वस्तुतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की शैली के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति की उदात्त और व्यापक प ष्ठभूमि, मौलिक द ष्टिकोण, तर्कपूर्ण विवेचन, गंभीर चिन्तन, आत्मीयता तथा भावुकता ने उनकी शैली को ऐसी विशेषताएँ प्रदान की है कि जिससे "शैली ही मनुष्य है"-अंग्रेजी का यह कथन उन पर पूर्णरूपेण चरितार्थ हो जाता है।

# पगडण्डियों का जमाना : सारांश

श्री हरिशंकर परसाई एक सिद्ध व्यंग्यकार है। वे अपने निबन्धों में आधुनिक जीवन की असंगतियों और विकृतियों पर करारी चोट करते है। वे केवल गुदगुदाते या चिकोटी नहीं काटते, तीखा प्रहार करते हैं। इस निबन्ध में उन्होंने दिखाया है कि आज का युग किसी न किसी प्रकार स्वार्थ-सिद्धि में विश्वास करता है।

लेखक कहता है कि मैने जीवन में पुनः ईमानदार बनने का प्रयास किया लेकिन असफलता ही हाथ लगी। एक दिन उनके पास एक सज्जन आए और उन्होंने लेखक से कहा कि वे अपने परिचित अध्यापक से कहकर मेरे सुपुत्र के अंक बढ़वा दें। मैं उनका यह काम करवा देता लेकिन काफी समय बाद लेखक को अपने ईमान की बात याद आई थी और उसने पूरी तरह ईमानदार बन जाने की अटल प्रतिज्ञा कर ली थी। उस सज्जन की बात सुनने के बाद लेखक को पौराणिक कथाएं स्म त हो आई, जिसमें देवता अपने भक्तों की परीक्षा लेने के लिए प थ्वी पर आ जाते थे। उसने सोचा कि प्रतिज्ञा किए हुए देर नहीं हुई कि इस सज्जन के रूप में इन्द्र या विष्णु मेरी परीक्षा लेने आ पहुँचे। लेखक ने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया और कहा कि अंक बढ़वाने जैसे अनुचित कार्य को मैं नहीं करूंगा। उसे आशा थी कि अब ये सज्जन अपने मौलिक देवरूप में होकर कहेंगे- "वत्स, तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल, तुझे क्या चाहिए? हम वर देने के 'मूड' में है। बोल, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूँ।" लेकिन वे सज्जन नकारात्मक उत्तर पाकर रोष प्रकट करते हुए चले गए। लेखक कहता है कि मैं जिस सज्जन को देवता समझ बैठा था, वह तो आदमी निकला। मैंने अपनी आत्मा से पूछा कि तू ही बता! क्या गाली खाकर, अपनी बदनामी करवाकर मैं ईमानदार बना रहूँ? आत्मा ने कहा कि ऐसी कोई जरूरत नहीं है। ईमानदार बनने की इतनी भी क्या जल्दी है, जब जमाना बदलेगा तो तुम भी बदल जाना। मेरी आत्मा कभी-कभी बड़ी सुलझी हुई बात कहती है लेकिन जब कभी आत्मा रोड़े अटकाती है तब मेरी समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के मानव अपनी आत्मा को निकालकर दूर किसी पहाड़ी पर तोते में क्यों रखते थे, क्योंकि उनकी आत्मा भी अवश्य ही बुरे कार्यों में टाँग अटकाती होगी। वे इससे मुक्त होकर बेखटके अपने अनुचित कार्यों में संलग्न हो सकते हैं। देवता और दानव में यही अन्तर है कि एक की आत्मा अपने पास रहती है और दूसरे की उससे दूर। लेखक कहता है कि मैंने ऐसे व्यक्ति भी देखे हैं जिन्होंने अपनी आत्मा कुत्ते और सुअर में रख दी है। अब तो जानवरों ने भी यही कला सीख ली है; कुछ कुत्ते और सुअर अपनी-अपनी आत्मा किसी आदमी में भी रख देते हैं। लेखक ने अपनी आत्मा की आवाज सुनकर ईमानदारी त्याग दी है।

लेखक किसी राधेश्याम नामक दुकानदार का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहता है कि उसने एक-एक पैसे का उचित हिसाब रखकर बिक्रीकर के दफ्तर ले गया। वहाँ उससे झूठा हिसाब कह कर रिश्वत ली गई। उसने सोचा कि सच्चाई के लिए रिश्वत देने की अपेक्षा ज्यादा अच्छा है झूठ के लिए रिश्वत दूं। इसी प्रकार एक स्त्री नौकरी के सिलसिले में एक बड़े ओहदे वाले व्यक्ति के पास चरित्र-प्रमाणपत्र लेने गई तो उस आदमी ने उसे अपने शयन-कक्ष मे ले जाना चाहा और बाद में सच्चरित्र का प्रमाणपत्र देना चाहा। पहले देवता आदमी बनकर ठगते थे, किन्तु अब आदमी देवता बनकर ठगते हैं। वस्तुतः हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण पत्र है। ईमान के पास बेईमानी की सिफारिशी चिट्ठी न हो तो व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं। यही सोचकर लेखक अब खुले मन से अंक बढ़वाता है।

लेखक को जो व्यक्ति कभी-कभी मिलते हैं वे वर्ष में दो बार अवश्य दिखाई दे जाते हैं- एक तो स्कूल या कॉलेज में प्रवेश के दिनों में, दूसरे पेपर आऊट करवाने या अंक बढ़वाने हेतू। कल जो सज्जन आए थे, वे लेखक को दो वर्ष पहले मिले थे, उस छोटी सी मुलाकात में ही उन्होंने इतनी आत्मीयता पैदा कर ली थी कि उसका भाई परीक्षा में बैठने लगा तो मेरी याद सताने लगी। जिस प्रकार विरहिणी को वर्षा में अपने प्रियतम की याद सताती है, उसी प्रकार परीक्षा के मौसम में लोगो का विरह जाग त हो उठता है। कोई व्यक्ति पेपर के हिण्ट लेने के लिए आता है, कोई पेपर आऊट करवाने के लिए और कोई अंक बढ़वाने के लिए। इस तरह के व्यक्तियों की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय होती है। इनमें से कोई चाहता है कि उसका लड़का पास हो जाए, तो उसे नौकरी दिला दें, जिससे परिवार की आर्थिक स्थिति सुधर जाए, कोई चाहता है कि लड़की पास हो जाए तो उसकी शादी कर दें। लेखक इन व्यक्तियों की निर्लज्जता और बेझिझकता से परेशान है, क्योंकि पहले व्यक्ति किसी अनैतिक कार्य करवाने में बड़ी लज्जा और संकोचवश ही दूसरे व्यक्ति को कह पाते थे, लेकिन सम्प्रति अंक बढ़वाने इस तरह आते हैं जैसे, बाजार में सब्जी खरीदते हों। वे निर्लज्जतापूर्वक मेरी आँखों में देखते हैं और

अधिकारपूर्वक कहते हैं कि अंक बढ़वाने हैं। पहले प्रतीकात्मक शैली में पत्र लिखते थे लेकिन अब खुला कार्ड तक भी डाल देते हैं।

लेखक दस वर्षो की इस प्रगति से परेशान है। वह सोचता है कि इस प्रकार के अनैतिक कार्य करवाने के लिए मेरे पास कोई भी व्यक्ति संकोचवश नहीं आता ताकि मैं आश्वस्त हो जाऊँ। अब ईमानदारी, परिश्रम और नैतिकता की सभी सड़के बन्द हो गई है और सभी व्यक्तियों ने पगडंडियों को अपना लिया है। प्रत्येक व्यक्ति बिना परिश्रम किए पगडंडियों रूपी शार्टकट रास्ते से लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं। इस रास्ते पर चलते हुए आड़े आने वाली समस्यायें भी समाप्त हो गई हैं। जो व्यक्ति सड़क रूपी नैतिकता के रास्ते पर चलेगें उन्हें पागल माना जाएगा। अब यदि नैतिकता पर चलने की प्रतिज्ञा कर भी ली जाए तो लोग उन पर चलने में झिझकेंगे। ऐसा लगता है कि ये नैतिकता रूपी आम सड़कें भविष्य के पुरातत्ववेता को ही मिलेगी। वे ही बता सकेंगे कि उस जमाने में नैतिकता, परिश्रम तो थी, परन्तु कोई उन पर चलने वाला नहीं था। सफलता रूपी महल का परिश्रम रूपी दरवाजा बन्द हो गया है, लेकिन कई लोगों ने अन्दर घुसकर कुण्डी बन्द कर ली है। घुसने वाले लोग नाक पर रूमाल रखकर नाबदान रूपी अनैतिक तरीके से घुस रहे हैं। जिन व्यक्तियों को इन कार्यो से नफरत है और जो ईमानदार है तथा परिश्रम के बल पर लक्ष्य पाना चाहते हैं, वे सफलता रूपी दरवाजे पर खड़े-खड़े सिर मार रहे हैं लेकिन उन्हें लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो रही है।

# पगडण्डियों का जमानाः विशेषताएँ

श्री हरिशंकर परसाई को एक व्यंग्य-निबन्धकार के रूप में जाना जाता है। इनकी रचनाओं में व्यंग्य केवल व्यंग्य के लिए ही नहीं आता अपितु व्यंग्य के माध्यम से ये समाज में व्याप्त समस्याओं, कुरीतियों, भ्रष्टाचार और अनैतिकता पर करारी चोट करते हैं? इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी कृतियों में व्यंग्य के माध्यम से विभिन्न समस्याओं के प्रति जन-जाग ति उत्पन्न करने के कर्त्तव्य को भी अत्यन्त कलात्मकतापूर्ण निभाया है। इस संदर्भ में डॉ॰ रामशंकर त्रिपाठी ने उनके निबंधों का मूल्याकंन करते हुए लिखा है - "परसाई जी अपने निबंधों में राजनेताओं, प्रशासकों, बुद्धिजीवियों, सेठ साहुकारों, धर्म की ध्वजा लेकर चलने वाले महात्माओं, पण्डों, पुजारियों, अवसरवादियों सभी के छद्म आचरण पर करारा प्रहार किया है। वस्तुतः परसाई जी जोरदार ढंग से अपनी बात कहते हैं, वह बात गद्य को किस विधा का रूप ले रही है, इसकी परवाह वे नहीं करते।" इसी प्रकार डॉ॰ श्याम सुन्दर मिश्र ने भी हरिशंकर परसाई की समाज के प्रति जागरूकता को, रूढ़ियों एवं विकृतियों के प्रति व्यंग्य को निम्न शब्दों में रूपायित किया है - " आप बेखटके परसाई के सम्पूर्ण लेखन को एक साथ सुनिश्चित क्रम में संजोकर इस देश की जिन्दगी का विश्वसनीय इतिहास बना सकते हैं, जहाँ जनसामान्य से लेकर बड़े से बड़े राजनीतिक नेता, प्रशासक, बुद्धिजीवी, मध्यवर्गीय अध्यापक, डॉक्टर, वकील, थानेदार, विश्व के बड़े से बड़े राष्ट्रनायक, कूटनीतिज्ञ, युद्धशास्त्री, अवसरवादी पदलोलुप राजनीतिज्ञ, साहूकार, पूंजीपति,राजनीतिक और सामाजिक घटनाएँ, अपराध, अनाचार, दिशाहीनता, शोषण के अमानवीय रूपान्तर, अकाल, भूखमरी, बाढ़, युवा-आक्रोश, जन-आन्दोलन, साम्प्रदायिक दंगे, धार्मिक अनाचार और इस सबसे बेखबर मध्यवर्गीय शालीनता से आक्रांत रचनाकार, कलाकार के साथ ही धार्मिम छद्म ...... सबके सब एक साथ मिल जायेंगे।

इस प्रकार परसाई जी ने समाज के प्रत्येक पहलू को अपनी लेखनी का निशाना बनाया है। उनका मूल उद्देश्य समाज में व्याप्त इन विकृतियों को अपने व्यंग्य बाण द्वारा शमन करना है। 'पगडण्डियों का जमाना' निबंध की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :-

1. **नैतिकता एवं ईमानदारी का निषेधः** आलोच्य निबन्ध में परसाई जी कहना चाहते हैं कि आज के युग में नैतिकता, मानवीय मूल्य, ईमानदारी, सत्यवादिता और परिश्रम नाम की चीज ही समाप्त हो चुकी है। कोई भी व्यक्ति परिश्रम नहीं करना चाहता। सभी व्यक्ति शार्टकट रास्ते से लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं, कोई भी सड़कों रूपी नैतिकता व ईमानदारी के मार्ग पर न चलकर पगडण्डी रूपी अनैतिकता के शार्टकट रास्ते पर चलना चाहते हैं। परसाई जी इस तथ्य को अपने निबन्ध में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - "सफलता के महल के महल का सामने का आम दरवाजा बन्द हो गया है। कई लोग भीतर घुस गए हैं और उन्होंने कुण्डी लगा दी है। जिसे उसमें घुसना है, वह रूमाल नाक पर रखकर नाबदान में घुस जाता है।"

2. **अनैतिक कार्य करने वालों की दयनीय स्थिति का चित्रणः** 'पगडण्डियों का जमाना' नाम निबन्ध में लेखक ने उन व्यक्तियों की सामाजिक, आर्थिक, व मानसिक स्थिति को उजागर किया है जो जीवन में परिश्रम नहीं करना चाहते और सफलता के दर्शन करने को आतुर रहते हैं। उनकी इसी स्थिति का चित्रण करते हुए लेखक कहता है - "इनमें अधिकांश दया के पात्र है। ये बेहद परेशान और घबराए हुए लोग हैं। कोई चाहता है कि लड़का पास हो जाए, तो उससे नौकरी करा दें, जिससे परिवार की दुर्दशा कुछ कम हो। किसी को चिन्ता है कि लड़का फेल जो गया, तो और एक साल उसकी पढ़ाई का खर्च कैसे चलाऊँगा। कोई चाहता है कि लड़की पास हो जाए, तो उसकी शादी करके बोझ हल्का करूँ। बहुत दुःखी और परेशान लोग होते हैं, इनमें कुछ तो इतने दीन होते हैं कि जी होता है, पहले इनके गले लगकर रो लिया जाए।" इतना ही नहीं ये व्यक्ति पहले तो अनैतिक कार्य गुपचुप रूप से करवा लेते थे लेकिन अब इस वर्ग के व्यक्ति निःसंकोच, बेझिझक और निर्लज्जता से अपने कार्य को अंजाम देने लगे हैं। आज के युग में अनैतिक कार्य करवाने वाले इस तरह आते हैं, जैसे बाजार में सब्जी खरीदने आए हों और बड़े आत्मविश्वास व अधिकारपूर्वक आँखों में झांककर निर्भकतापूर्वक कहते हैं 'नम्बर बढ़वाने हैं। पहले दबी-छिपी चिट्ठियाँ आती थीं, लेकिन अब खुली चिट्ठी ही नहीं खुला कार्ड तक आ जाता है। अतः समाज में अनैतिकता का बोलबाला हो गया है ओर उनकी आर्थिक स्थिति भी परिश्रम करने वालों की अपेक्षा अच्छी नहीं है।

3. **शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचारः** आलोच्य निबन्ध में लेखक ने शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर करारा व्यंग्य किया है। आज नैतिकता, परिश्रम, सत्यता, ईमानदारी ओर आदर्श का स्थान अनैतिकता, असत्यता, बेईमानी आदि ने ले लिया है। इनसे शिक्षा का क्षेत्र भी अछूता नहीं है। आज का विद्यार्थी परिश्रम न करके, परीक्षा में अंक बढ़वाने के लिए उचित-अनुचित माध्यमों को अपनाता है। इसी तथ्य को आलोच्य निबन्ध में परसाई जी ने स्पष्ट करते हुए कहा है - "इधर मार्च में जो आता है, नम्बर बढ़वाने या 'पेपर आऊट' करवाने आता है। बात यह है कि सारे 'सिलेबस' और 'प्रास्पेक्टस' गलत हैं। उनमें उन दो पर्चों का उल्लेख नही होता, जो जरूरी होते हैं। एक पर्चा शुरू का और दूसरा आखिरी। पहला पर्चा 'पेपर आऊट' करने का होता है और आखिरी नम्बर बढ़वाने का। जो इन्हें अच्छी तरह कर ले, वह पास हो जाता है, पहला दर्जा भी पा सकता है। इन पर्चो को कुछ विद्यार्थी खुद कर लेते हैं। वे प्रतिभावान हैं और उनका भविष्य उज्जवल है। कुछ के अभिभावक ये पर्चे करते हैं। ऐसे परमुखापेक्षी विद्याथियों का भविष्य सन्दिग्ध है। उनकी अपेक्षा उनके अभिभावक का फिर भी कुछ भविष्य है। निबन्धकार का यह कथन मुझे सन् 2003 में और भी ज्यादा प्रासंगिक दिखाई दिया, क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में निबंधकार द्वारा बताए गए कुछ ऐसे ही द श्य दिखाई दिए।

4. **हास्य-व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोगः** 'हास्य' और 'व्यंग्य' दोनो ही शब्दों का प्रयोग कृतिकार जब एक साथ करता है तो तात्पर्य यह है कि अपनी बात को ओष्ठों की मुस्कुराहट से कह भी जाता है और सुनने वाला मन ही मन तिलमिला कर रह जाता है। परसाई जी ने भी समाज में व्याप्त बुराईयों पर हास्य-व्यंग्य विधा का प्रयोग किया है, ताकि इन विकृतियों का शमन हो सके। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों में व्याप्त घूसखोरी, शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, परिश्रम न करके अनैतिक तरीकों द्वारा सफलता अर्जित करने वालो पर कटु व्यंग्य किया है। यथा-"लगता है, आम सडकें अब भविष्य के पुरात्तववेत्ता को ही मिलेगी।" आज समाज में नैतिकता व ईमानदारी के दर्शन नहीं होते, क्योंकि चहुँ दिशाओं में अनैतिकता का सामाज्य व्याप्त है। अतः लेखक व्यंग्य करते हुए कहता है कि यही नैतिकता इतिहास के तथ्यों की खोज करने वालों को मिल पाएंगे, तभी पता चलेगा कि कभी यहाँ भी व्यक्ति ईमानदारी व नैतिकता के मार्ग पर चलते थे। लेखक द्वारा व्यंग्य रूपी बाण चलाने के पीछे इन विकृतियों के सुधार की ही भावना निहित है।

5. **सरकारी कर्मचारियों में व्याप्त रिश्वतखोरीः** सरकारी कर्मचारियों का कार्य ईमानदारी के साथ काम करते हुए जनता की सेवा करना है, लेकिन आज इसके विपरीत हो रहा है। वे बेईमानी से कार्य करते हुए जनता से अपनी सेवा करवाते हैं। लेखक ने प्रस्तुत निबंध में बिक्रीकर विभाग में व्याप्त रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार पर व्यंग्य विधा द्वारा कुठाराघात किया है। लेखक ने राधेश्याम नाम के एक दुकानदार का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इनकी पोल खोल दी है- "उसने पैसे-पैसे की बिक्री का सही हिसाब रखा और उसे बिक्रीकर के दफ्तर ले गया। वहाँ उससे कहा गया कि हिसाब झूठा है। तब उसे सच्चे हिसाब को सच्चा मनवाने के लिए घूस देनी पड़ी। कह रहा था - मैं भी अब झूठा हिसाब रखूंगा। उसे घूस देकर सच्चा बनवा लिया करूँगा। सच्चाई के लिए घूस देने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि झूठ के लिए घूस दूँ। इतना महँगा ईमान अपनी हैसियत के बाहर है तो बेईमानी सस्ती पड़ेगी।" लेखक कहना चाहता है कि वर्तमान युग में सच्चे कार्य करवाने के लिए भी रिश्वत की आवश्यकता होती है, यही हमारे देश की विडम्बना है।

निष्कर्षतः लेखक ने 'पगडण्डियों का जमाना' निबन्ध में, समाज में व्याप्त शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार, सरकारी कर्मचारियों में व्याप्त रिश्वतखोरी, व्यक्तियों में अनैतिकता का समावेश, भ्रष्टाचारी अध्यापकों पर प्रहार और मध्यवर्गीय समाज की नारियों का शोषण आदि को व्यंग्य-विधा द्वारा प्रस्तुत करके, उनमें सुधार की कामना की है।

# पगडण्डियों का जमानाः भाषा-शैली

हरिशंकर परसाई हिन्दी के सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार है। इनकी रचनाओं में व्यंग्य केवल व्यंग्य के लिए नहीं होता, अपितु व्यंग्य के माध्यम से ये समाज में व्याप्त बुराईयों, भ्रष्टाचार व समस्याओं पर करारी चोट करते हैं। 'पगडण्डियों का जमाना' भी उनका एक व्यंग्यात्मक निबन्ध है, जिसमें सरल, स्वाभाविक एवं आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। इनके व्यंग्य में चुटीलापन है। वक्रता तथा लक्षणा-व्यंजना इनकी भाषा-शैली की विशेषताएँ कही जा सकती है। जहाँ उन्होंने लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्ति का प्रयोग किया है, वहाँ निबन्ध में कलात्मक सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। यथा- "लगता है, आम सड़कें अब भविष्य के पुरात्ववेता को ही मिलेगी। वही इन्हें खोजेगा। वह निष्कर्ष निकालकर बताएगा कि उस जमाने में इस देश में आम सड़के तो थी, पर कोई उन पर चलता नहीं था। सब पगडण्डी पकड़ते थे। अनुपयोग के कारण सड़के दब गयी थी।" उनके निबंध में चित्रात्मकता का गुण भी विद्यमान है। वे अपने भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं कि शब्दों के माध्यम से पाठक के मन-मस्तिष्क में एक चित्र सा उभर आता है। यथा - "अपने दोस्त, रमेशचन्द के भाई सुरेश की मोटर साइकिल, जिस पर अंग्रेजी में नम्बर 2431 लिखा है, बिगड़ गयी है। वह आपके मित्र सिन्हा के पास सुधरने गयी है। आप उसे सुधरवा दें कि कम से कम 40% तो काम देने लगे।"

शब्द-योजना तथा वाक्य-विन्यास वक्रता का गुण लिए है और व्यंग्य-विनोद तथा तीखा शब्द प्रहार इनकी रचनाओं की विशेषताएँ है। परसाई जी ने अपनी रचनाओं में प्रयुक्त व्यंग्य में कहीं भद्दापन या अशिष्टता नहीं आने दी है। प्रस्तुत निबंध में भी उन्होंने व्यंग्य के तीक्ष्ण बाण छोड़े हैं- "देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण-पत्र है। ईमान के पास बेईमानी की सिफारिशी चिट्टी न हो, तो कोई उसे दो कौड़ी को न पूछे। यह सब सोचकर मैं ढीला हो गया।अब मैं बड़े खुले मन से नम्बर बढ़वाता हूँ।" इसी प्रकार आलोच्यनिबंध में प्रतीकात्मक शब्दावली का भी सुन्दर प्रयोग किया है।, जिससे भाषा में कसावट आ गई - "जब कभी आत्मा अड़ंगा लगाती है, तब मुझे समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के दानव अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी तोते में क्यों रख देते थे वे उससे मुक्त होकर बेखटके दानवी कर्म कर सकते थे। देव और दानव में अब भी तो यही फर्क है- एक की आत्मा अपने पास रहती है और दूसरे की उससे दूर।" यही नहीं उन्होंने प्रतीकात्मक शब्दो का भी प्रयोग किया है, यथा - 'सड़क', ईमानदारी का प्रतीक है, तो 'पगडण्डी' अनैतिकता, शार्टकट का प्रतीक बन कर आया है।

अपनी भाषा को अधिकाधिक परिनिष्ठित, परिमार्जित एवं प्रांजल बनाने के लिए उन्होंने संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है। यथा वत्स, आत्मरा, वशीभूत, तटस्थ आदि।

परसाई जी ने अपने आलोच्य निबंध में भाषा को समसामयिक बोलचाल की पदावली से अंलकृत करने के लिए तथा लोक व्यवहार के अनुकूल बनाने के लिए अंग्रेजी के बहुप्रचलित शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया गया जैसे - हिण्ट, नीग्रो, डयूटी, नम्बर, मूड, फोल्डिंग, प्रास्पेक्ट्स, पेपर आऊट, मोटर साईकिल आदि। इसके साथ-साथ उर्दू-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। यथा - परेशानी, अरसे, फर्क, नावदान, यकीन, सिर्फ, मामूली, घूस आदि। इसी तरह उन्होंने अपनी भाषा को मुहावरों एवं कहावतों से सुसज्जित करके उसे अर्थगांभीर्य से परिपूर्ण किया है। यथा- बगले झांकना, दरवाजे पर सिर मारना, घूस देना, आत्मा कुत्ते में रख देना आदि। जहाँ तक प्रस्तुत निबन्ध की शैली का प्रश्न है तो परसाई जी ने वर्णनात्मक और व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग मुख्य रूप से किया है लेकिन कहीं-कहीं संवाद शैली का भी प्रयोग हुआ है, यथा- "मैंने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया और प्रकट कहा, "मैं इसे अनुचित और अनैतिक मानता हूँ। मैं यह काम नहीं करूंगा"। वर्णनात्मक शैली का भी एक उदाहरण द ष्टव्य है - "सालों से ये सड़के बन्द हैं और सब पगडण्डियों से जा रहे हैं। चलते-चलते पगडण्डियों के काँटे और झाड़ियाँ साफ हो गयी हैं। और वे सड़कों जैसी चिकनी और चौड़ी हो गयी है। बेझिझक, नंगे पाँव इन पर लोग चल रहे हैं। आम सड़क पर चलने वाला अब बेवकूफ या पागल समझा जाएगा। अब आम सड़कें खुल भी जाये, तो लोग उन पर चलने में झिझकेंगें। मरम्मत वाले भी इसीलिए ढीले पड़ गए हैं। मगर उपयोग न होने से आम सड़कों पर झाड़ियाँ और जंगली पौधे उगेंगे अैर वे ढक जायेगी। तब किसी को आभास भी न होगा कि इस देश में कहीं आम सड़कें भी हैं।"

इस प्रकार निष्कर्षतः कह सकते है ंकि परसाई जी की भाषा-शैली व्यंग्य से ओत-प्रोत है। उनके प्रस्तुत निबन्ध में भावों और विचारों का गाम्भीर्य एवं शब्दों का चयन, वाक्य-विन्यास, मुहावरे और लोकोक्तियों का समुचित प्रयोग भाषा की परिनिष्ठितता एवं प्रामाणिकता का ही परिणाम है।

# अस्ति की पुकार हिमालय : सारांश

श्री विद्यानिवास मिश्र जी का यह निबन्ध भावात्मक निबन्धों की श्रेणी में आता है। इस निबंध में उन्होंने कालिदास रचित 'कुमारसंभव' की इस पंक्ति को- "अस्ति उत्तस्यां दिशि देवात्मा हिमालयों नाम नगाधिकराजः" सामने रखकर प्रतिपादन किया है। इसमें लेखक ने समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं को भी उठाया है।

संस्कृत भाषा में 'अस्ति' के बिना भी काव्य पूर्ण हो जाता है और उसमें हिन्दी या अंग्रेजी की तरह 'अस्ति' की समानार्थक क्रिया देने की आवश्यकता नहीं है। कालिदास अपने ग्रंथ का निर्माण करते समय शब्दों को बिखेरते नहीं तथा अपने ग्रंथ का अंतिम श्लोक लिखने जा रहे हैं और बिना जरूरत पूर्ण होने का भाव सिर पर सवार हो गया। इसलिए या तो कालिदास या हिमालय में कुछ न कुछ गड़बड़ है इसलिये इसकी खोज करनी चाहिए। कई वर्ष पहले लेखक को स्व. राहुल जी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे कहते है हिमालय मुझे बुला रहा है, अपना काम समेटिये, अब यहाँ काम नहीं हो सकता। ऐसे नास्तिक आदमी को हिमालय का बुलावा, विश्वास नहीं होता। आखिर हिमालय देवताओं की आत्मा है तथा श्रीमद्भागवत गीता के अनुसार हिमालय साक्षात भगवान वासुदेव का विग्रह है। राहुल जी किसी वस्तु के आस्तित्व बोध पर अधिक विश्वास रखते थे, क्योंकि वे हिमालय को भारतीय जीवन-प्रवाह का स्रोत मानते हैं, जिसमें भाषा, संस्कृति, समाज-चेतना ऐसा सभी कुछ शामिल है जिसका समष्टि चैतन्य से सम्बन्ध हो। राहुल जी के लिए जीवन भर हिमालय भूत या भविष्य नहीं केवल 'अस्ति' स्वीकारते हैं। लेखक कहता है कि मैंने कुमारसम्भव और हिमालय की कथाएँ पढ़ी है और हेमाली राजा की कहानियाँ भी सुनी हैं, लेकिन मुझे हिमालय की तरफ से कभी बुलावा नहीं मिलता। शायद यह शहरों में व्याप्त ध्वनि प्रदुषण के कारण मुझे वह आवाज सुनाई नहीं पड़ती। मुझे ही नहीं मेरे पड़ौसियों को भी हिमालय की 'अस्ति' की पुकार सुनाई नहीं देती। वैसे हम आस्तिकता के साथ-साथ कुण्डली दिखाने, रत्न धारण करने, मंगलवार को हनुमान जी के यहाँ लड्डू चढ़ाने जाते हैं, देवताओं का दरबार करते हैं, मनौती माँगते हैं, भारतीय संस्कृति की बात करते हैं; लेकिन ये सभी चीजे केवल छल हैं। हम देवताओं को अफसर या नेता और अफसर या नेता को देवता मानते हैं। हम देवता को ही नहीं पूजते बल्कि उसके स्थान को भी पूजते हैं। जिस प्रकार नेता या अफसर की महिमा उसकी कुर्सी को पाकर है, उसी प्रकार देवता के स्थान की है। हमारी नजरों में एकनिष्ठ श्रद्धा ही वास्तविक युग-श्रद्धा है। इसी पैमाने से हम देवता को भी नापते हैं। भारत वर्ष की राष्ट्रीय एकता की बात करनी होगी तो वहाँ नगाधिराज हिमालय का नाम जरूर लेना होगा।

लेखक कहता है कि अब तो हिमालय में भी रस नहीं रहा, क्योंकि उसने हमें धोखा दिया है। हम उसे संरक्षक या प्रहरी मानकर निश्चिंतता पूर्वक सोते रहे और चीनी सेना ने हमारे हरे-भरे भाग पर कब्जा कर लिया। हमने हिमालय पर्वत को पड़ौसी मानकर ही यह सब कुछ किया। हमारी सुख की नींद टूट गई और लगा कि एक बहुत बड़ा तिलिस्म टूट गया है। यह तो चीनी सेना की मेहरबानी हुई कि वह आंतक जमाकर पुनः लौट गई। हमने इसे एक बुरा स्वप्न मानकर विस्म त कर दिया और इसके असर को कम करने के लिए कविताएँ भी लिखी। अब तो एक धुंधली सी याद बाकी रह गई है तथा हार-जीत का अन्तर भी समाप्त हो गया है। अब हिमालय के विश्वासघात करने का दुःख नहीं रहा। हम वस्तुतः सिद्धावस्था में पहुँच चुके हैं इसलिए हमें वर्तमान नहीं छू सकता, हमें केवल भूतकाल को पकड़ना है या भविष्य को खींचना है, वर्तमान हमें तनिक भी प्रभावित नहीं करता। इसीलिए हम 'अस्ति' की अटपटी भाषा नहीं समझ पाते। लेखक कहता है हम खुद अपने आप में हिमालय है अर्थात् ऐसे बर्फ का घर जहाँ कभी बर्फ नहीं पिघलती, जिसमें चीजें ज्यों की त्यों पड़ी रह जाती हैं और जैविक व्यापार जहाँ आकर समाप्त हो जाता है। आज परिवारों में वंश के नाम पर असंख्य तनाव है-सास-बहू के बीच, पिता-पुत्र के बीच, भाई-भाई के बीच, देवरानी-जेठानी के बीच आदि। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी बेईमान हो गए हैं। जिन्दगी एक ठहराव रह गई है, जिसमें कुछ चीजे अटक गई हैं। लोग कहते हैं यह युग अर्थ प्रधान है, परन्तु जहाँ तक मैं समझता हूँ यह युग शब्द प्रधान है। शब्द की महिमा के आगे किसी की महिमा नहीं है। शब्द की महिमा न होती तो हिन्दुस्तान के सम्पादक हिमालय जैसे अर्थशून्य विषय पर लेख लिखने के लिए आग्रह क्यों करते। हिमालय भी एक शब्द है, हिन्दुस्तान दूसरा शब्द है और हिन्दुस्तान का हिमालयपरस्त लेखक एक तीसरा, पाठक चौथा। चारों शब्द हैं इसलिए एक दूसरे से जुड़े हुए है। अगर ये अर्थ होते तो इनमें आपसी लगाव-टकराव होता, झगड़े होते, कोई टूटता, कोई तोड़ता। परन्तु शब्द बड़े मासूम होते हैं, ये एकता में विश्वास करते हैं तथा इनमें कभी भी आपसी तनाव की संभावना नहीं होती।

अगर हिमालय एक विषय के रूप में भूगोल होता तो उसे आसानी से भुलाया जा सकता है, कमरे के मानचित्र हटा देने से इस समस्या का समाधान हो जाता। अगर यह इतिहास होता भी प्रगतिशील बनकर इससे मुक्ति मिल जाती और अगर यह चौकीदार होता तो भी निद्रा की गोली से इसके पर बल की पुकार से छुट्टी मिल जातीं परन्तु यह न भूगोल है, न इतिहास है, न भूगोल या इतिहास का प्रहरी, यह तो केवल 'अस्ति' है। हिमालय के अस्ति का स्मरण कालिदास ने कुमारसंभव के बीज के रूप में किया है। वर्तमान युग में हिमालय और उसकी अस्ति से इतनी तटस्थता आज इसलिए दिखा रहे हैं कि इस अस्ति की पुकार हम तक नहीं पहुँच पाती। आज हमें अपने देश व किसी अन्य चीज का कोई दर्द नहीं है, क्योंकि आज मानव संवेदनहीन हो गया है। लेखक एक कहानी का हवाला देते हुए कहता है कि जब शिव बारात लेकर गए तो उसने  खा-पीकर हिमालय की सम्पूर्ण धन-दौलत को समाप्त कर दिया तथा दहेज में पार्वती को बावनहंडा दिया गया। यह सुहाग पतिव्रता नारियों ने घमंडवश नही भोगा। निम्न जाति की ही स्त्रियों ने इसे भोगा, पार्वती ने भी उन्हें मुक्त भाव से दिया। अतः हमारी निःस्व संस्कृति का सुहाग अहम् से परिपूर्ण धनी वर्ग में न होकर उसी अकिंचन वर्ग में सुरक्षित है, जहाँ देश का अस्ति है। हमने स्वयं को अधनंगे, अकिंचन लोगों से अलग मान रखा है, उसी का यह वैरूप्य है कि हिमालय स्याह पड़ा दीखता है। क्या इस विरूप 'अस्ति' की पुकार हमारे आस्तित्व-बोध से रहित व्यक्तित्व को अनाव त कर सकेगी?

# अस्ति की पुकार हिमालय : विशेषताएँ

डॉ. विद्यानिवास मिश्र हिन्दी के प्रसिद्ध निबन्धकार है। ललित निबंध लेखन के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। ये संस्कृत, पालि, प्राकृत, अंग्रेजी, फ्रांसीसी तथा फारसी आदि भाषाओं के पारंगत विद्वान है। भारतीय संस्कृति, भारतीय धर्म-साधना तथा प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का लेखक ने गहराई से मंथन किया है। इन्होंने प्रायः तीन प्रकार के निबंधों में लेखक का अगाध पाण्डित्य, असाधारण शास्त्र ज्ञान तथा लोक जीवन और लोक संस्कृत का संस्पर्श स्पष्ट देखा जा सकता है। उनका 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध ललित-निबंधों की श्रेणी में आता है। इनके ललित निबन्धों के संदर्भ में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कहना है - "मिश्र जी ने अपने ललित निबन्धों द्वारा हिन्दी के निबंध -साहित्य को अत्याधिक सम द्ध बनाया है। आपके ये निबन्ध गहन अनुभूति एवं चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति के ही भण्डार नहीं है।, अपितु इनमें लेखक ने समसामयिक समस्याओं की ओर व्यंग्यपूर्ण संकेत करते हुए आधुनिक जीवन में व्याप्त विषमताओं के चित्र बड़ी तत्परता एवं तल्लीनता के साथ अंकित किए हैं। ये लेखक के मन की उन्मुक्त उड़ान को केवल अवकाश ही प्रदान नहीं करते, अपितु लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व में सन्निहित मुक्त आवेश को भी स्वर प्रदान करते है"। आलोच्य निबंध में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि हिमालय भारतीय जीवन-प्रवाह का स्त्रोत है तथा समष्टि चैतन्य से इसका गहन सम्बन्ध है। इस निबंध की प्रव त्तियों को जानने से पहले मिश्र जी के निबंधों की विशेषताओ से सम्बन्धित डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी जी के विचार जानना उचित होगा। "विद्यानिवास मिश्र आचार्य द्विवेदी की परम्परा में एक प्रख्यातनामा निबंधकार हैं। उन्होंने ललित निबंधों को प्राणिक प्रतिष्ठा प्रदान की है। ..... क्या ही कथ्य और क्या ही अभिव्यक्ति, दोनो ही द ष्टियों से उन्होंने भारतीय मन-मेधा-मनीषा का भाव प्रभावी रूपायन किया है।" अतः उनके निबंध भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष दोनो ही द ष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। आलोच्य निबंध के वैशिष्टय पर प्रकाश डालने से निम्न तथ्य उजागर होते हैं।

1. **मानव की स्वार्थपरक आस्तिकता का चित्रणः** प्रस्तुत निबंध में लेखक ने मानव की स्वार्थपरक आस्तिकता पर व्यंग्यमयी बाणों से तीव्र प्रहार किया है। आज का सभ्य मानव भी कुण्डली दिखाता है, ग्रहों को प्रसन्न करने के लिए रत्न धारण करता है और हनुमान जी को प्रसन्न करने के लिए मंगलवार को मन्दिर में लड्डू चढ़ाने जाता है। इतना ही नहीं वह देवताओं का दरबार करता है, मनौती माँगता, लेकिन यह सब उसका दिखावा व ढोंग मात्र है। यह सभी कार्य वह अपने कार्यो को पूर्ण करने के लिए स्वार्थपूर्तिवश ही करता है। आधुनिक मानव की यह आस्था उसके लिए स्वार्थ का ही द्योतक है। आधुनिक मानव की इसी स्वार्थी प्रव ति को स्पष्ट करते हुए लेखक कहता है - "हम देवताओं को अफसर या नेता और अफसर या नेता को देवता मानते हैं। हम धान पूजते हैं , माई का हो बरम्ह का हो, तेलियामसान का हो, अगियाबीर का हो, लंगोटी वाले का हो, या नंगे का हो। हम देवता नहीं पूजते क्योंकि देवता की महिमा उसके स्थान को पाकर हैं, जैसे नेता या अफसर की महिमा उसकी कुर्सी को पाकर है। हम जानते हैं कि अभी कल जिसके सात पुरखों को हमने एक सांस में तारा था, उसी की कुर्सी पर बैठते ही जब आरती उतार रहे है तो वह भी हमारे भक्तिभाव का मर्म जानता होगा। पर साथ ही हम दोनों भली-भाँति समझते हैं, यही जनतन्त्र है, ऐसे ही सब चलता है, हमारी नजरों में एकनिष्ठ श्रद्धा कोई मूल्य नहीं रखती, क्षण-क्षण नया-नया रूप धारण करने वाली श्रद्धा ही वास्तविक युगश्रद्धा है। इस प्रकार प्रस्तुत निबन्ध में मानव के स्वार्थी रूप पर कटाक्ष किया है।

2. **सांस्कृतिक मूल्यों का विघटनः** जब से पाश्चात्य संस्कृति का आयात इस देश में हुआ है, तभी से भारतीयों ने अपनी संस्कृति को तिलांजलि दे दी है। सभी इस संस्कृति को बासी कह कर इससे विमुख हो रहे हैं। इसका परिणाम यह निकल रहा है कि मानव अपने मानवीय मूल्यों को भूला बैठा है और अनैतिक कार्यों में संलग्न हो रहा है। हिमालय वास्तव में भारतीय जीवन-प्रवाह का स्त्रोत है, हमारी संस्कृति का प्रतीक है, किन्तु वैज्ञानिक युग के कारण मानव को हिमालय की पुकार सुनाई नहीं पड़ती। इसका कारण यह है कि हम अपनी संस्कृति को भुलाकर पाश्चात्य समीकरण की दुनिया में प्रवेश कर गए हैं।

3. **शहरों में व्याप्त ध्वनि-प्रदूषण की समस्याः** लेखक कहता है कि स्व० राहुल सांकृत्यायन जी को तो हिमालय की पुकार सुनाई देती है लेकिन मुझे और मुझे ही नहीं मेरे आस-पड़ौस के व्यक्तियों को भी यह आवाज सुनाई नहीं देती। लेखक ने इस प्रसंग के साथ ध्वनि-प्रदूषण के प्रश्न को भी जोड़ दिया है इसलिए लेखक कहता है कि मुझे हिमालय की

आवाज शहरों में व्याप्त ध्वनि-प्रदूषण के कारण सुनाई नहीं पड़ती- “पर मुझे यह बुलावा नहीं मिलता या शायद मिलता है, मुझे सुनायी नहीं पड़ता, सुनाई न पड़े इसके लिए शहरों में काफी सरंजाम हैं, पान की दुकानों पर अहर्निश बजते रेडियों, यान्त्रिक वाहनों की चिल्ल-पों, जलूसो की अर्थहीन नारेबाजी, ध्वनि-विस्तार यंत्रों के द्वारा प्रसारित हरिनाम संकीर्तन और संगीत का बुखार उतारने वाली फिल्मी धुनों का व ंदगान और बच्चों के स्कूल से उठती हुई मछली हट्टे का शोरगुल।” अतः लेखक ने प्रस्तुत निबंध के माध्यम से विकराल रूप धारण कर रहे 'ध्वनि-प्रदूषण' की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

4. **पारिवारिक सम्बन्धों में तनावः** वर्षो पहले भारतीय परिवारों में मध्य जो आत्मीयता, स्नेह, सौहार्द था वह अब बिल्कुल समाप्ति के कगार पर है। वर्तमान समय में परिवारों का खण्डन हो रहा है। सभी व्यक्ति अकेले ही जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। यह समस्या आने वाले समय में इतना भंयकर रूप धारण कर सकती है। कि देश को खण्ड-खण्ड करने में भी सहायक हो सकती है। लेखक ने इसी समस्या को आलोच्य निबंध में उठाया है- “कहाँ का कुल, कहाँ का कर्ता? कुल के नाम पर अनगणित तनाव हैं, सास-बहू के बीच देवरानी-जेठानी के बीच और हर तनाव के बाद एक टूटन है।” लेखक ने इस समस्या पर करारा व्यंग्य करते हुए इस समस्या का मूल कारण धन को माना है। इसलिए वह धन के महत्व को नकारते हुए इसे विवाद का केन्द्र बिन्दु स्वीकार करता है- “अगर ये अर्थ होते तो इनमें आपस में अलगाव होता, टकराव होता, झगड़े होते, कोई टूटता, कोई तोड़ता।” मिश्र जी ने मानवीय जीवन के यथार्थ सत्य को उद्घाटित कर दिया है और इस समस्या पर कटु-व्यंग्य भी किया है।

5. **हिमालय के विश्वासघात का चित्रणः** लेखक की धारणा है कि जब भी राष्ट्रीय एकता की बात उठेगी, तब-तब हिमालय का नाम ज़रूर आएगा। यह सीमा पर हमारी रक्षा भी कर रहा है। हमें हिमालय पर पूर्ण विश्वास था कि इसे शत्रु कभी भी नहीं लांघ सकता लेकिन इसने भी हमारे साथ विश्वासघात किया-” तो हिमालय में भी रस नहीं रहा। फिर उसने इतना धोखा दिया, हम उसके आसरे सोते रहे और लाल चींटियों का दल रेंगकर आया, हमारे सीमान्त का श्यामल प्रसार चट कर गया। आखिर उसे हमने पासवां मानकर ही तो इतना सम्मान दिया था, हमने उसे भाल कहा, अपनी किस्मत का लेखा-जोखा उसमें अंकित कराया और उसने कुछ नहीं किया, हमारी सुख नींद नष्ट हो गयी और लगा कि एक बड़ा तिलिस्म टूट गया।” लेखक ने इसे भारत का सजग प्रहरी माना था लेकिन 1962 के चीनी आक्रमण ने भारतीयों का सारा भ्रम तोड़ दिया। हिमालय चीनी सेना से भारतीय क्षेत्र की रक्षा नहीं कर पाया; अतः लेखक ने हिमालय को विश्वासघाती का दर्जा दे दिया।

6. **भाषा-शैलीः** प्रस्तुत निबन्ध की भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है। इसमें लेखक ने संस्कृतनिष्ठ तत्सम, अंग्रेजी, उर्दू-फारसी व देशज शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा को सुघड़ बनाने के लिए लाक्षणिक एवं आलंकारिक शब्दों के साथ-साथ मुहावरों के प्रयोग की छटा भी देखते ही बनती है। लेखक ने व्यंग्य शैली के साथ-साथ व्याख्यात्मक और लाक्षणिक शैली का भी प्रयोग किया है। भाषा एवं शैली के द ष्टि से मिश्र जी का यह निबंध उत्तम हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हे कि मिश्र जी ने उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त 1962 के चीनी युद्ध का भी संकेत किया है। इसके अतिरिक्त देवताओं की पूजा करना और उन पर लड्डू चढ़ाना जैसे बाह्य आडम्बरों को भी रूपायित किया है। अतः मिश्र जी का 'अस्ति की पुकार हिमालय' नामक ललित निबन्ध समग्र द ष्टिकोण से देखने पर सफल निबन्ध की श्रेणी में आता है।

# अस्ति की पुकार हिमालय : भाषा-शैली

श्री विद्यानिवास मिश्र ललित निबंध लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनकी रचनाओं में चिन्तन की मौलिकता तथा शैलीगत वैशिष्ट्य झलकता है। इनके गद्य में काव्य जैसी मधुरता तथा औदात्य की गरिमा है। इन्हें हिन्दी गद्य का एक विशिष्ट शैलीकार माना जा सकता है। इनके निबन्ध बहुत ही प्रभावशाली तथा लालित्यपूर्ण है। अज्ञेय के शब्दों में - "इनके निबन्ध लालित्य उंडेलते नहीं, पाठक के मन में उपजाते है, यही उनकी रोचकता का रहस्य है।"

किसी भी रचना में रचनाकार के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति तथा उसके उद्देश्य की सिद्धि भाषा और शैली के माध्यम से ही होती है। प्रस्तुत निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' की भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है। उन्होंने भाषा में तत्सम, तद्भव और देशज आदि शब्दों का प्रयोग किया है। मिश्र जी की भाषा के संदर्भ में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मत द्रष्टव्य है- "इनकी भाषा लोकोन्मुखी हैं, उसमें कवित्व की सरसता है, उक्तियों की विचित्रता है। और अभिव्यंजना का सौष्ठव है। यही कारण है कि विषय- विवेचन, चिन्तन-मनन, विचार-द ष्टि, भाव-भंगिमा, कल्पना-प्रवणता तथा अभिव्यंजना शैली की नूतनता, विलक्षणा एवं विदग्धता के कारण ही श्री औंकारनाथ शर्मा ने मिश्र जी की भाषा-शैली के सन्दर्भ में लिखा है - "इनके निबंधों में प्रसादमयी भाषा शैली, कथात्मक चित्रों की अधिकता और विवेचन की तथ्यपूर्ण गम्भीरता विद्यमान है।

उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृतिनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है, यथा अहर्निश, अस्ति, अपार्थ, अच्छत, उद्भासित, अनुसन्धान, निःस्वता, सम्प्रक्त, तदाकार, सिसक्षा आदि। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत के श्लोकों का भी प्रयोग किया है। आलोच्य निबन्ध में उन्होंने उर्दू-फारसी के शब्दों का भी प्रचूर मात्रा में प्रयोग किया है, जैसे- सरंजाम, गनीमत, महसूस, शोरगुल, दायरा, मज़ाक, ज़िन्दगी, हर्ज़, कायम, गाहे-बेगाहे, फरार, फासला आदि।

अपनी भाषा द्वारा विशेष प्रभाव डालने के लिए कहीं-कहीं अंग्रेजी के लोक प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, यथा- इण्डियन कल्चर, सेकण्ड, मेगावाटो, रेडियों आदि। इसी प्रकार अपने निबंध में उन्होंने ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है - थान, गड्डी, टटपूंजिए, कीच-कोदो आदि।

इनकी भाषा में मुहावरों की छटा भी देखते ही बनती है। मुहावरों के ये प्रयोग इतने उपयुक्त एवं सार्थक है कि इनसे भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति में अत्याधिक उन्नति हुई है, यथा - हाथ पसारना, पानी-पानी होना, नींद हराम होना, सिर पर सवार होना आदि। इन्होंने अपनी भाषा में लाक्षणिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है, जिससे भाषा में गूढ़ता, गहनता का विकास हुआ है। यथा- " तो हिमालय में भी रस नहीं रहा। फिर उसने इतना धोखा दिया, हम उसके आसरे सोते रहे और लाल चींटियों का दल रेंगकर आया, हमारे सीमान्त का श्यामल प्रसाद चट कर गया।" लाक्षणिक प्रयोगों के साथ-साथ उन्होंने आलंकारिक शैली में भी अपने भावों एवं विचारों की रमणीय अभिव्यंजना प्रवाहित की है। इनकी भाषा- शैली के सन्दर्भ में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कहना है - "मिश्र जी ने अपने ललित निबन्धों में ललित भाषा का प्रयोग करते हुए उसे गद्य काव्य का गौरव प्रदान किया है, उसे विविध अर्थच्छवियों से अंलकृत किया है, उसे संस्कृत की ललित पदावली से झंकृत किया है, उसे लोकभाषा के माधुर्य से अनुरंजित किया है, उसे जन-जन की भाषा बनाने का प्रयत्न किया, उसके विविध पदबन्धों में एक विलक्षण सौन्दर्य की स ष्टि की है, उसे लाक्षणिकता के द्वारा भावों की मधुर गूंज से गुंजायमान किया है तथा उसे मुहावरों एवं अलंकारों से एक विशिष्ट गति प्रदान करते हुए निरन्तर उत्कर्ष की ओर अग्रसर किया है।"

इस प्रकार उन्होंने अपने निबन्ध में ललित भाषा का प्रयोग करते हुए अलंकृत, लाक्षणिक, तत्सम, देशज, आदि शब्दावली का प्रयोग करते हुए उसमें लोकोक्ति एवं मुहावरों के रूप में भाषा के विटामिनों का भी प्रयोग किया है। अतः भाषा-शैली की द ष्टि से 'अस्ति की पुकार हिमालय' एक महत्वपूर्ण निबन्धों के अन्तर्गत आता है।

# खण्ड (ग)

# अतिलघूत्तरीय प्रश्नोत्तर

## साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास है

**प्रश्न 1 'साहित्य जन-समूह के चित्त का चित्रपट है' स्पष्ट कीजिए?**

उत्तर : मानव-मन में उठने वाले भाव ही अभिव्यक्त होकर साहित्य का रूप धारण कर लेते हैं। इसीलिए तो साहित्य में कहीं क्रोधपूर्ण भयंकर गर्जना, कहीं प्रेम का उद्‌गार, कहीं दुःख, कहीं शरीर की भुजाओं के बल के घमण्ड से सिंह के समान गजर्ना, कहीं भक्ति रस में निमग्न होकर अश्रुधारा का प्रभाव आदि का संयोजन मानवीय भावों का परिणाम है। अतः साहित्य जनसमूह के चित्त का चित्रपट है।

**प्रश्न 2 आलोच्य निबंध में लेखक ने किस अनुल्लंधनीय प्राकृतिक नियम का उल्लेख किया है, स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर : साहित्य समाज का दर्पण है। समाज मानवों की ही एक संस्था का नाम है और मानव के भावों से ही साहित्य का उदय होता है। अगर मानव प्रसन्नचित्त है तो उसके चेहरे का भी वह प्रसन्नता खिले हुए पुष्प की भाँति झलक जाती है किन्तु जब मनुष्य उदास होता है तो उसका चेहरा और कण्ठ्य ध्वनि दोनों में ही रूखापन होता है। अतः मानव के इसी बदलते हुए स्वरूप को साहित्य भी आत्मसात कर लेता है।

**प्रश्न 3 वैदिककालीन आर्यों ने किन प्राकृतिक शक्तियों की आराधना की है और क्यों?**

उत्तर : आर्य बच्चों की तरह भोले, निष्कपट व्यवहार एवं उदरमना थे। वे कभी भी जाति-भेद, वर्ण-विवेक आदि के झगड़ों मे नहीं पड़े और न ही प्राकृतिक पदार्थों की छानबीन की। यही कारण था कि उन्होंने प्रातः कालीन सूर्य, जल के भरे हुए बादलों के समूह और प्रबल वेग से बहने वाली वायु आदि को ईश्वरीय शक्ति मानकर इनकी आराधना करने लगे थे।

**प्रश्न 4 'साहित्य जनसमूह के ह्रदय का विकास है' में लेखक ने वैदिककालीन सभ्यता की किन विशेषताओं पर प्रकाश डाला है?**

उत्तर : वैदिककालीन युग में वर्तमान युग के समान राजनैतिक अत्याचार नहीं थे। यही कारण था कि उनका साहित्य भी राजनीति की कुटिल आलंकारिक-शैली से मुक्त था। वे एक-दूसरे के प्रति वैर-भाव भी नहीं रखते थे और उनका धर्म भी किसी का अहित करने वाला नहीं था।

**प्रश्न 5 प्रस्तुत निबंध में लेखक ने उपनिषद और स्म ति साहित्य के विषय मे क्या विचार प्रस्तुत किए हैं?**

उत्तर : भट्ट जी कहते है कि आर्यों को प्राकृतिक पदार्थों का अनुसरण करते हुए ईश्वर के विषय में जो-जो भाव उत्पन्न हुए वे उपनिषद साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। जब इन्हीं आर्यों की संख्या बढ़ी तो इनके रीति-रिवाज और वर्ताव में भी भिन्नता आ गई। वस्तुतः इनमें एकता स्थापित करने के लिए जिन सामाजिक नियमों का स जन हुआ, वह स्म ति साहित्य कहलाया।

**प्रश्न 6 लेखक ने स्म तियों और आर्य ग्रंथों की भाषा के विषय में क्या कहा है, स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर : लेखक ने स्म तियों और आर्य-ग्रंथों की भाषा को वैदिक और आधुनिक संस्कृत के बीच की भाषा कहा है। उसी समय संस्कृत को दो भागों मे विभाजित किया गया वेद तथा लोक। वर्तमान में संस्कृत के पाठकों के लिए यही वैदिक और लौकिक संस्कृत कामधेनु का काम दे रही हैं। उस समय संस्कृत आम बोलचाल की भाषा रही थी।

# कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता

**प्रश्न 12 आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कवियों की उच्छ ंखलता को किस प्रकार प्रदर्शित किया है?**

उत्तर : निबंधकार का कथन है कि कवि स्वभाव से ही स्वतन्त्र स्वभाव के होते हैं। वे चाहे तो तुच्छ से तुच्छ विषय को भी राई का पर्वत बना दें और मन में न आया तो विशाल एवं विस्त त विषय की भी हिमालय पर्वत के समान उपेक्षा कर दें। इन कवियों की यही उच्छ खंलत साधारण कवियों से लेकर आदि कवि वाल्मीकि तक में पाई जाती है।

**प्रश्न 13 लेखक के अनुसार वाल्मीकि रामायण में कौनसा पात्र अधिक पीड़ित है और कवि ने किसी उपेक्षा की है?**

उत्तर : लेखक की कथन हे कि रामायण मे ंएकमात्र दीन-हीन पात्र उर्मिला ही है, क्योंकि वह तो सीता की तरह अपने पति के संग भी न जा सकी, उसका कर्त्तव्य उसके आड़े आ गया। द्विवेदी जी के अनुसार ही-"रही बाल-वियोगिनी देवी उर्मिला, सो उसका चरित्र सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया।"

**प्रश्न 14 द्विवेदी जी ने वाल्मीकि कृत रामायण के किन-किन स्थलो ंपर उर्मिला के चरित्रांकन को आवश्यक समझा है?**

उत्तर : लेखक ने मुख्य रूप से लक्ष्मण के वन-प्रयाण के समय, श्री राम के राज्यभिषेक की तैयारियों के समय, अपने पति के परमाराध्य राम के राज सिंहासन पर आसीन होने के पश्चात्, राजा दशरथ की म त्यु के समय व चौदह वर्ष के लिए वनवास जाते लक्ष्मण व राम-सीता आदि स्थलों पर उर्मिला के चरित्रांकन को आवश्यक समझा है।

**प्रश्न 15 लेखक ने प्रस्तुत निबंध में सीता और उर्मिला के किस स्वभावगत अन्तर को स्पष्ट किया है?**

उत्तर : उर्मिला सीता की छोटी बहन थी। दोनों ने एक ही परिवार में रहकर शिक्षा अर्जित की थी, दोनों ने ही पति-प्रेम और पति-पूजा की शिक्षा पाई थी। सीता जहाँ अपने पति के साथ वन में पति की सेवा करना चाहती है वहीं उर्मिला अपने पति लक्ष्मण के उद्देश्य (अपने आराध्य राम की सेवा) को पूरा करने के लिए उनके मार्ग का रोग नहीं बनना चाहती। यदि उर्मिला चाहती तो वह भी सीता की भाँति हठ करके पति-संग वनागमन कर सकती थी किन्तु उस समय उनके पति अपने आराध्य राम की सेवा ठीक ढंग से न कर पाते।

**प्रश्न 16 द्विवेदी जी ने आलोच्य निबंध में लक्ष्मण एवं उर्मिला के त्याग में से किसे श्रेष्ठ माना है और क्यों?**

उत्तर : लेखक ने उर्मिला एवं लक्ष्मण के त्याग की तुलना करते हुए उर्मिला के त्याग को अधिक श्रेष्ठ माना है। क्योंकि लक्ष्मण ने श्री राम चन्द्र जी के चरणों मे ंअपना शरीर भ्रात प्रेम के कारण अर्पित किया था जबकि नवविवाहिता उर्मिला ने अपनी आत्मा भी प्रिय पति को राम-जानकी के चरणों में समर्पित कर दिया ताकि वे अपने अग्रज की सेवा सुश्रुषा कर सके। यहाँ उर्मिला का त्याग दूसरों के हित के लिए है।

**प्रश्न 17 लेखक ने राम काव्य का महान ग्रंथ 'रामचरितमानस' में किस कमी को रेखांकित किया है?**

उत्तर : इस महान ग्रंथ में कवि ने वाल्मीकि की तरह उर्मिला के मार्मिक चित्र को प ष्ठबद्ध नहीं किया। तुलसीदास ने तो अपने आराध्य की अर्धागिनी सीता का ही सबसे अधिक चित्रण किया है। उन्होंने अपने भावना रूपी कमण्डल में करूणा रूपी जल की एक बूँद भी उर्मिला के लिए बचाकर नहीं रखी। इन्होंने उर्मिला के सम्बन्ध में एक चौपाई भी नहीं लिखी। इन्होंने उर्मिला को जो जनकपुर से साकेत पहुँचाकर, उसकी सुधि नहीं ली यह उनके महाकाव्य की सबसे बड़ी कमी है।

**प्रश्न 18 भवभूति द्वारा अपने काव्य में उर्मिला विषय चित्रण को स्पष्ठ कीजिए।**

उत्तर : वाल्मीकि और तुलसी के विपरीत भवभूति ने उर्मिला के विषय में अवश्य ही अल्पाधिक मात्रा में चित्रण किया है। लक्ष्मण अपनी पत्नी उर्मिला का चित्र देख रहा था अचानक सीता देवी आ गई और लक्ष्मण से विनोद भरी शैली में पूछ बैठी-लक्ष्मण कौन है?' लक्ष्मण लज्जित होकर मन ही मन कहने लगे उर्मिला को सीता देवी पूछ रही हैं।

में परिवर्तित हो जाती है। इन व्यक्तियों में पादरी, मौलवी, पंडित और साधु आदि आते हैं। अगर यही व्यक्ति आलस्य को छोडकर परिश्रम करें तो भगवान का वास इनके अन्दर ही हो जाएगा।

**प्रश्न 25 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध में लेखक ने 'नए साहित्य' की चर्चा की है, उसको संक्षिप्त रूप में प्रकट कीजिए।**

उत्तर : लेखक कहता है कि सम्प्रति साहित्य में नवीनता द ष्टिगोचर नहीं होती क्योंकि आज का सम्पूर्ण साहित्य ही पुराने साहित्य की नकल मात्र है अब जिस नए साहित्य का प्रचलन होगा वह मजदूरों के हृदय से निकलेगा। उन मजदूरों के कंठ से निकलने वाला वह साहित्य मानवीय भेद-भाव को दूर करके प्रेम का संचार करेगा। ये बेजुबान कवि जब जंगल मे लकड़ी काटेंगे तब उससे उत्पन्न स्वर इनके असभ्य स्वरों से मिलकर जो स्वर निकलेगा वह आने वाले कलाकारों के लिए ध्रुपद व मल्हार का काम करेगा।

**प्रश्न 26 प्रस्तुत निबंध में लेखक ने प्रेम आधारित समाज की कल्पना की है, स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर : प्रेम से परिपूर्ण समाज मे किसी व्यक्ति के नाम, जाति, वंश, वर्ण आदि के विषय मे जानने की जिज्ञासा नहीं होती क्योंकि सभी व्यक्ति एक ही परमपिता परमात्मा की संतान हैं। यह समस्त संसार एक कुटुंब के समान है। लंगड़े-लूले, अंधे, बहरे तथा बलवान, निरोग, रूपवान आदि सभी एक ही छत के नीचे रहते है क्योंकि उनमें परस्पर प्रेम-भावना है।

**प्रश्न 27 'पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होने वाला है'- पंक्ति से लेखक का क्या आशय है?**

उत्तर : निबंधकार कहता है कि पाश्चात्य देशों के बुद्धिजीवी, दार्शनिक, चितंक आदि सभी मशीनों की जगह मजदूरो ंसे काम लेने की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि अत्यधिक मशीनों के प्रयोग से वहाँ के अधिकांश नागरिक बेरोजगारी को झेल रहे हैं। देश का समस्त धन कुछ उद्योगपतियों के पास एकत्रित होता जा रहा है, इसलिए अब उन्होंने मशीनों से कार्य करना बन्द करके मजदूरों को रोजगार देना प्रारम्भ कर दिया है। अतः पाश्चात्य देशों में नए युग का सूत्रपात हो रहा है।

**प्रश्न 28 प्रस्तुत निबंध लिखने के पीछे लेखक का क्या प्रतिपाद्य है?**

उत्तर : निबंधकार ने प्रस्तुत निबंध के माध्यम से यह संदेश प्रसारित करना चाहा है कि किसी भी देश, समाज या व्यक्ति का हित तभी हो सकता है जब मजदूरों को उचित सम्मान मिले। मजदूरों की मजदूरी को धातु के टुकड़ों से नहीं बल्कि प्रेम भावना से चुकाया जाना चाहिए। पंडित, मौलवी, कवि, साधु और पादरियों आदि सभी को आलस्य को छोड़कर परिश्रम करना चाहिए, तभी देश का विकास होगा। यही निबंध का मूल उद्देश्य भी है।

केवल वस्तुओं के ही रंग-रूप के सौन्दर्य को प्रदर्शित नहीं करती बल्कि वह मानव के कर्म और व त्ति के सौन्दर्य के मार्मिक द श्य भी प्रस्तुत कर देती है। कवि की द ष्टि सदैव सौन्दर्य की तरफ ही जाती है, वह सौन्दर्य चाहे वस्तुओं के रूप-रंग में हो या मानव के मन, वचन और कर्म में।

**प्रश्न 36 प्रस्तुत निबंध में शुक्ल जी ने भाषा की किन-किन विशेषताओं पर प्रकाश डाला है?**

उत्तर : संसार के गोचर और अगोचर रूपों को दर्शाने के लिए कई बार भाषा की लक्षणा-शक्ति से काम लिया जाता है। इस शब्द-शक्ति का प्रयोग संसार के सभी कवि करते है। भाषा में दूसरी विशेषता यह रहती है कि उसमें जातिसंकेल वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप-व्यापार-सूचक शब्द अधिक पाए जाते हैं। तीसरी विशेषता कविता की भाषामें वर्ण-विन्यास की है। चौथी विशेषता यह है कि कहीं-कहीं व्यक्तियों के नामों के स्थान पर उनके रूप-गुण या कार्य -बोधक शब्दों का व्यवहार किया जाता है।

**प्रश्न 37 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता में अलंकारों की स्थिति के विषय में क्या अभिमत प्रकट किया है?**

उत्तर : कविता में भावना को चटकीली करने, भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने या उसके रंग-रूप,गुण आदि में अधिक सौन्दर्य लाने के लिए उस वस्तु के समान गुण वाली वस्तुओं को सामने रखना पड़ता है। इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कहने के ढंग को अलंकार कहते है। अलंकार के सहारे की कविता का प्रभाव बढ़ जाता है, लेकिन ये साधन है, साध्य नहीं। अगर अलंकार को साध्य मान लिया जाए तो कविता का रूप इतना विकृत हो जाता है कि वह कविता नहीं रह जाती।

**प्रश्न 38 'कविता पर अत्याचार' कहकर शुक्ल ने किस बात की और संकेत किया है?**

उत्तर : लोभी, स्वार्थी और दूसरों के तलवे चाटने वाले कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से अपात्रों की ही स्तुति की है और जिनसे इन्हें अर्थ प्राप्ति नहीं हुई उनकी बिना किसी कारण के ही निन्दा की है। ऐसी कुछ व ति वाले कवि कविता पर अत्याचार ही करते हैं।

# पगडण्डियों का जमाना

**प्रश्न 46 'पगडण्डियों का जमाना' निबंध मे ंलेखक ने 'पगडण्डी' शब्द किस प्रतीकात्मक अर्थ में प्रस्तुत किया है?**

उत्तर : लेखक ने 'पगडण्डी' शब्द को रिश्वत या भ्रष्टाचार रूपी छोटे मार्ग का प्रतीक माना है। आज के आधुनिक समाज में कोई भी व्यक्ति मेहनत व परिश्रम रूपी साधारण एवं लम्बी सड़क का प्रयोग नहीं करता। प्रत्येक व्यक्ति रिश्वत एवं भ्रष्टाचार रूपी पगडण्डी का प्रयोग करके अल्प समय में ही सफलता प्राप्त करना चाहता है। अतः 'पगडण्डी' रिश्वत एवं भ्रष्टचारी रूपी शॉर्टकट मार्ग है।

**प्रश्न 47 प्रस्तुत निबंध में लेखक ने राधेश्याम नामक पात्र के द्वारा कौन सी समस्या को उठाया है?**

उत्तर : राधेश्याम एक ईमानदार दुकानदार है वह अपनी दुकान की बिक्री के एक-एक पैसे का हिसाब-किताब रखता है। लेकिन उसे बिक्रीकर के दफ्तर में झूठा कहा गया और उसे अपने सच्चे हिसाब को सच्चा बनाने के लिए घूस देनी पड़ी। अतः लेखक ने आज के सरकारी तन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को दिखाकर रिश्वतखोरी जैसी विकराल समस्या को उठाया है।

**प्रश्न 48 'पगडण्डियों का जमाना' निबंध में लेखक ने व्यंग्य-शैली का प्रयोग किया है, स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर : हरि शंकर परसाई का यह निबंध व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया है। लेखक ने सम्प्रति साहित्यकारों पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि वे केवल चार कहानियाँ लिखकर ही उस युग के प्रवर्तक साहित्यकारों की सूची में अपना नाम तलाशने लगते हैं इसी प्रकार उन्होंने सरकारी तंत्र पर व्यंग्य करते हुए बिक्रीकर विभाग में व्याप्त रिश्वतखोरी की समस्या को उजागर किया है।

**प्रश्न 49 पगडण्डियों का जमाना निबंध में लेखक ने कबीर की भांति सुधारवादी द ष्टिकोण को अपनाया है, स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर : प्रस्तुत निबंध में लेखक की सुधारवादी, द ष्टि का पता तब चलता है जब वह ईमानदार बनने का संकल्प लेता है। लेखक चाहता है कि लोग रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचारी रूपी पगडण्डी को छोड़कर परिश्रम और ईमानदारी रूपी लम्बी सड़क पर चलने का संकल्प ले। जो व्यक्ति लेखक के पास अंक बढ़वाने के लिए आते हैं उससे लेखक अत्यधिक चिंतित है समाज में सुधार देखना चाहता है।

**प्रश्न 50 हरि शंकर परसाई ने प्रस्तुत निबंध में सफलता रूपी महल के विषय में क्या धारण व्यक्त की है?**

उत्तर : लेखक का विचार है कि जिन व्यक्तियों ने इस सफलता रूपी महल में प्रवेश पा लिया है उन्होंने मुख्य दरवाजे को अन्दर से बन्द कर लिया है। जो व्यक्ति अपने परिश्रम के बल पर सफलता रूपी महल मे ंप्रवेश पाने के लिए मुख्य द्वार को खुलवाना चाहते हैं, वे अपना सिर उस दरवाजे पर पटक-पटक कर लहुलुहान हो गए हैं लेकिन सफलता प्राप्त नहीं हो रही है। जिन व्यक्तियों ने रिश्वतखोरी रूपी पगडण्डी को अपनाया है वे व्यक्ति बदबूदार नालियों रूपी भ्रष्टाचार के माध्यम से सफलता प्राप्त कर रहे हैं।

# खण्ड (घ)

# लघूत्तरीय प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1 बालकृष्ण भट्ट के निबंधों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।**

उत्तर : भट्ट जी ने एक हजार से भी अधिक निबंध लिखकर हिन्दी साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके सम्पूर्ण निबंध साहित्य को सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और मनोविकारात्मक वर्गों में बाँटा जा सकता है। उनके निबंध साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. **समाज सुधार की भावना**ः बालकृष्ण भट्ट जी ने जब लेखनी चलानी आरम्भ की उस युग में सुधारवादी आन्दोलन सामूहिक और व्यक्तिगत के स्तर पर आरम्भ हो चुके थे। भट्ट जी के ऐसे अनेक निबंध हैं जिनमें उन्होंने समाज में फैली विभिन्न बुराइयों (जैसे बाल-विवाह, मूल्यों का विघटन) का यथार्थ चित्रण करके समाज का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया।

2. **राजनीतिक चेतना**ः भट्ट जी ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना जगाने हेतु 'हिन्दी प्रदीप' नामक मासिक पत्रिका का आरम्भ किया। वे चाहते थे कि भारतीयों में सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना भी उत्पन्न हो जिससे हमारा राष्ट्र विकास के पथ पर अग्रसर हो सके। उन्होंने अपने निबंध 'साहित्य जनसमूह के_हृदय का विकास है' मे वेदकालीन राजनीति के माध्यम से आज की भ्रष्ट राजनीति पर भी प्रकाश डाला है।

3. **पौराणिक साहित्य की प्रव त्तियों पर प्रकाश**ः भट्ट जी न अपनी संस्कृति के प्रति लगाव उत्पन्न करने के लिए पौराणिक साहित्य के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' में लेखक ने रामायण, महाभारत और वेदकालीन साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति की विशिष्टिताओं को उजागर किया। इससे उनका राष्ट्र के प्रति प्रेम-भाव भी झलकता है।

**प्रश्न 2 बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में प्रयुक्त भाषा शैली पर टिप्पणी लिखिए।**

उत्तर : श्री बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं। यह युग गद्य के विकास का आरम्भिक युग था। उस समय हिन्दी गद्य की भाषा पूर्ण रूप से व्याकरणबद्ध नहीं हो पाई थी, अतः उनके कुछ निबंधों में व्याकरण के नियमों का उल्लंघन भी हुआ है। लेकिन फिर भी इनके निबंधों की भाषा में प्रवाहमयता का गुण निरन्तर प्रवाहमान रहता है। उन्होंने अपने निबंधों में संस्कृतनिष्ठ भाषा को अधिक महत्त्व दिया है, परन्तु वे लोक प्रचलित उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों का प्रयोग निषेध नहीं मानते। उन्होंने 'साहित्य जनसमूह के_हृदय का विकास है' में उपर्युक्त भाषाओं के शब्दों के साथ-साथ भाषा का अलंकृत रूप, लोकोक्ति एवं मुहावरों की मनोरम छटा और अभिधा व लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग करके भाषा को परिष्कृत एवं चिताकर्षक बना दिया है।

इस युग में भाषा शैली में एकरूपता नहीं आ सकी थी इसलिए इस युग के निबंधकारों ने वैयक्तिक प्रयोग ही किए है। भट्ट जी के निबंधों में उपदेशात्मक, भावात्मक और विचारत्मक शैलियों के साथ-साथ गवेषणात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है।

अतः स्पष्ट है कि भट्ट जी के निबंध साहित्य का भाव पक्ष अधिक पुष्ट है। फिर भी उनकी रचना शैली में विविधता होते हुए भी विशुद्धता नहीं है।

**प्रश्न 3 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' में भट्ट जी ने किन-किन पहलुओं को उजागर किया है?**

उत्तर : प्रस्तुत निबंध में लेखक ने सर्वप्रथम साहित्य के विषय में अपना मत प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार किसी भी देश

**प्रश्न 6 'कवियों की उर्मिला विषय उदासीनता' निबंध का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर : द्विवेदी जी ने राम रामायण की प्रमुख पात्र उर्मिला के प्रति कवियों की उपेक्षा को रूपायित करके अपने प्रस्तुत निबंध में उसी उपेक्षित पात्रा उर्मिला को उचित सम्मान दिया है। आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी कृति रामायण में उर्मिला के विषय में एक भी पंक्ति नहीं लिखी, जबकि उर्मिला का त्याग लक्ष्मण से भी बढ़कर था। जब विवाह के पश्चात् उर्मिला अयोध्या आती है तो उसी समय उनके पति के आराध्य श्री राम चन्द्र को चौदह वर्ष का वनवास मिल जाता है। लक्ष्मण ने स्वयं को श्री राम के चरणों में अर्पित कर दिया। लक्ष्मण ने यह त्याग सब अपने भ्रात स्नेह के कारण किया, लेकिन उर्मिला का त्याग तो इससे भी बढ़कर था। लेखक का कथन है कि "पर उर्मिला ने उससे भी बढ़कर आत्मोसुखोत्सर्ग किया। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा अधिक प्यारा अपना पति राम-जानकी के लिए दे डाला और यह आत्मसुखोत्सर्ग उसने तब किया, जब उसे ब्याह कर आए कुछ ही समय हुआ था। उसने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला।" अतः आचार्य द्विवेदी को इस बात पर खेद हुआ कि वाल्मीकि और तुलसीदास जैसे उच्चकोटि के कवियों ने भी उर्मिला के महान त्याग पर कोई महत्त्व नहीं दिया। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में लक्ष्मण को राम के साथ वन में जाने से पूर्व माता सुमित्रा से मिलते हुए दिखाया है, किन्तु उनका उर्मिला से मिलने का कोई वर्णन नहीं किया। अतः प्रस्तुत निबंध में उर्मिला की त्याग भावना को चित्रित करना ही लेखक का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

**प्रश्न 7 'कविता क्या है' नामक निबंध के आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की काव्य सम्बन्धी धारणाओं का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।**

उत्तर : शुक्ल जी के अनुसार कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष स ष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा का निर्वाह होता है। कविता रागों या मनोव त्तियों का स ष्टि के साथ सामंजस्य स्थापित करके मानव जीवन को व्यापकत्व की अनुभूति पाने मे समर्थ बनाती है। आचार्य शुक्ल कविता को लोकमंगल का साधन भी मानते हैं। उनके शब्दों में कविता हमारे मनोभावों को उच्छवासित करके हमारे जीवन में एक नया जोश डाल देती है। कविता की प्रेरणा से ही कार्य में प्रव त्ति बढ़ जाती है। किसी भी कार्य को करने की प्रेरणा मन से ही मिलती है, अतः मन में वेग का आना अतिआवश्यक है, जो केवल कविता में वर्णित रागात्मक व त्तियों से संभव है। कविता के द्वारा संसार के सुख-दुख, आनन्द तथा कलेश आदि को यथार्थ रूप मे अनुभव करने के अभ्यास से हृदय की स्तब्धता और जड़ता समाप्त होती है, एवं मनुष्यता का विकास होता है। शुक्ल जी कविता का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन नहीं मानते। यह सत्य है कि कविता पढ़ते समय मनोरंजन होता है, मनोरंजन करना कविता का प्रधान गुण है किन्तु यही सब कुछ नहीं है। मनोरंजन अथवा मन को सुख पहुँचाना ही कविता का प्रधान गुण माना जाए तो कविता केवल विलास की सामग्री मात्र हो जाएगी। कविता की भाषा में श्रुतिसुखदता का गुण भी आवश्यक है। वस्तुतः भाव सौन्दर्य और नाद-सौन्दर्य से कविता की स ष्टि होती है। शुक्ल जी ने कविता में अलंकार प्रयोग को भी स्वीकृत किया है, लेकिन अलंकार ही कविता नहीं, रस और भाव कविता के प्राण हैं।

**प्रश्न 8 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों की भाषा शैली पर टिप्पणी लिखिए।**

उत्तर : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने निबंध साहित्य में प्रौढ़ एवं प्रांजल भाषा का प्रयोग किया है। शब्द-चयन, वाक्य-रचना, साद श्य-विधान, व्यंजना शक्ति आदि में इनकी भाषा निपुणता का बोध होता है। चिंतन तथा भाषा के उत्कर्ष ने इसके निबंधों को विरल सफलता प्रदान की है। शुक्ल जी की निबंध शैली इनके प्रखर व्यक्तित्व की परिचायक है। इन्होंने अपने निबंधों में आवश्यकता के अनुरूप समास शैली व्यास शैली, निष्कर्षात्मक अथवा आगमन शैली, निगमन या प्रसारात्मक शैली का आश्रय लिया है। लोकोक्तियों, मुहावरों, अंग्रेजी, अरबी-फारसी, आंचलिक शब्दावली का भी इन्होंने यथावसर अपने निबंधों में प्रयोग किया है। इनके निबंधों में दार्शनिक गम्भीरता के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य की छटा भी देखी जा सकती है। इनमें गंभीर विवेचन के साथ-साथ गवेषणात्मक चिंतन का मणिकंचन संयोग मिलता है। शुक्ल जी के गम्भीर व्यक्तित्व के अनुकूल ही इनके निबंधों के विषय भी अत्यन्त गम्भीर एवं प्रौढ़ है। विचार-शक्ति के तटस्थ संघटन के साथ-साथ भाव-व्यंजना का वैचित्र्यपूर्ण माधुर्य मिलता

और प्रेम' नामक निबंध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। निबंधकार की मानवीय संवेदना उस समय अपनी चरम सीमा को छू लेती है, जब वह गडरिये के जीवन के सम्बन्ध में लिखता है कि किस प्रकार वह खुले आकाश के नीचे विचरण करते हुए जीवन-यापन करता है। इनका हृदय निश्छल और निष्कपट होता है। ये पूर्णतः आध्यात्मिक हैं क्योंकि भेड़ों की सेवा ही इनकी पूजा होती है। जब कोई भेड़ बीमार पड़ जाती है तो इन्हें बहुत दुःख होता है। ये प्रकृति के पुजारी नित्य ईश्वर के दर्शन किया करते हैं इसमें लेखक ने यह भी प्रस्थापना की है कि मनुष्य पूजा ही ईश्वर-पूजा है। जब हम मानव-मात्र के कल्याण हेतु परिश्रम करते है। तो हमारी बुद्धि का विकास होता है। अपने काम से हमें संतुष्टि मिलती है। सुख और आनन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार मानव-मात्र के लिए काम करने वाला व्यक्ति निरन्तर-साधनारत रहकर तथा प्रेम भावना से ओत-प्रोत होकर मानवता का सच्चा उपासक बन जाती है। उसका हृदय शुद्ध एवं निर्मल होता रहता है। किसान अपने परिश्रम से मानव-सेवा करता है। ईश्वर भी उसे साक्षात् दर्शन देता है क्योंकि वह भूखा रहकर समस्त जन का पेट भरने के लिए अन्न उत्पन्न करता है। वह दया, प्रेम और वीरता की साकार मूर्ति है। निष्कर्षतः 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध मे मानवीय संवेदना और लोक चेतना का सुन्दर समन्वय हुआ है।

**प्रश्न 12 अध्यापक पूर्ण सिंह के निबंधों में प्रयुक्त भाषा-शैली का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

उत्तर : अध्यापक पूर्ण सिंह को हिन्दी संस्कृत, पंजाबी, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं का असाधारण ज्ञान था। उन्होंने अपने निबंधों में यथास्थान तत्सम्, तद्भव, उर्दू, पंजाबी व अंग्रेजी के शब्दों का सफल एवं सार्थक प्रयोग किया है, यथा-रोमांस, निशलम्ब, आध्यात्मिक, समष्टिरूप, प्राणायाम जैसे तत्सम् शब्दों का प्रयोग हुआ है। उर्दू-फारसी के लोक प्रचलित शब्द भी प्रचूर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं, जैसे-फकीर, कलाम, जिन्दसाज, सितम, औलिया, हुस्न, हमराज आदि। इसके अतिरिक्त होटल, इंजन, स्कूल, कॉलिज, फोटो, आर्ट आदि। उन्होंने अपने निबंधों में अंग्रेजी उर्दू व संस्कृत के वाक्यांशों को भी उद्ध त किया है। प्रवाहमयता उनके निबंधों की अन्य विशेषता है जिसका प्रमुख कारण है छोटे एवं सरल वाक्यों का सफल प्रयोग। उन्होंने चित्रात्मक भाषा का भी सफल एवं सार्थक प्रयोग किया है। 'मजदूरी और प्रेम' शीर्षक निबंध मे किसान, गडरिये आदि के अनेक शब्द चित्र अंकित किए है, जिन्हें पढ़कर उनका जीवन हमारी आँखों के समक्ष प्रत्यक्ष एवं साकार हो उठता है। उन्होंने लोक प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों के सफल प्रयोग से भाषा को सारगर्भित लाक्षणिक और अर्थव्यंजक बना दिया है। अतः उनके निबंधों की भाषा में सरलता, सहजता, प्रवाहमया, चित्रात्मकता, काव्यमयता आदि सभी गुण अनुस्यूत हैं।

अध्यापक पूर्ण सिंह भारतीय संस्कृति में रंगे हुए अत्यन्त भावुक निबंधकार थे। इसलिए उनके अधिकांश निबंध भावात्मक शेली में रचित हैं। धारा-प्रवाह उनकी निबंध शैली का प्रमुख गुण हैं। इनकी भावात्मक धारा-शैली में ओज, माधुर्य और प्रसाद तीनों गुणों का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसी भावात्मक शेली के दर्शन उनके 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध में होते है। सूक्तिपरक वाक्यों के प्रयोग ने भी इनकी रचना-शैली को और अधिक सुन्दर एवं प्रभावशाली बना दिया है। वस्तुतः अध्यापक पूर्ण सिंह के निबंधों में भावात्मक, चित्रात्मक और व्यंग्यात्मक आदि शैलियों का सुन्दर एवं सफल प्रयोग हुआ है।

**प्रश्न 13 'नाखून क्यो बढ़ते है' निबंध के माध्यम से द्विवेदी जी क्या संदेश देना चाहते हैं? स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर : प्रस्तुत निबंध के माध्यम से द्विवेदी जी संदेश देना चाहते हैं कि मानव को अपनी पाश्विक हिंसक प्रव त्ति का परित्याग करके मानव मात्र के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। लाखों वर्ष पूर्व जब मनुष्य जंगली था, तब उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून आवश्यक थे क्योंकि तब नाखून ही उसके अस्त्र थे। आदिम युग से अब तक की लम्बी विकास-यात्रा में मनुष्य ने आत्म-रक्षा के लिए पाषाण, लोहे के हथियार, बंदूक, तोप, बम, एटम बम आदि मारक अस्त्रों का निर्माण किया है, लेकिन प्रकृति ने हिंसक प्रव त्ति के प्रतीक नाखूनों से मनुष्य को वंचित नहीं किया है। चूँकि नाखून पशुता के चिह्न हैं, अतः मनुष्य को वंचित नही किया है। चूँकि नाखून पशुता के चिह्न हैं, अतः मनुष्य नहीं चाहता कि वह पशुता और बर्बरता के प्रतीक नाखूनों को सहेज कर रखे। द्विवेदी जी कहना चाहते हैं कि एक ओर तो मनुष्य नाखूनों को काट देना चाहता है और दूसरी और वह मारक शस्त्रास्त्रों की अंधी दौड़ में शामिल हो रहा है। विनाशक हथियारों की अंतहीन और अंधी दौड़ वास्तव में इस बात को प्रतीक और प्रमाण है। कि मनुष्य

प्रव त्ति, अनुचित कार्य करने वालों की शोचनीय अवस्था और शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर व्यंग्य रूपी खडग से प्रहार किया है। लेखक ने सरकारी तन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर व्यंग्य करते हुए लिखा है-"तब उसे सच्चे हिसाब को सच्चा मनवाने के लिए घूस देनी पड़ी। कह रहा था-मैं भी अब झूठा हिसाब रखूँगा। उसे घूस देकर सच्चा बनवा लिया करूंगा। सचाई के लिए घूस देने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि झूठ के लिए घूस दूँ। इतना महँगा इमान अपनी हैसियत के बाहर है। इससे तो बेइमानी सस्ती पड़ेगी।" इसके अतिरिक्त परसाई जी ने उन व्यक्तियों को भी अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है जो परिश्रम न करके पगडण्डियों रूपी भ्रष्ट मार्ग अथवा शॉर्ट कट रास्ते पर चलकर सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे व्यक्तियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है, ''बहुत दुःखी और परेशान लोग होते हैं, इनमें से कुछ तो इतने दीन होते हैं कि जी होता है, पहले इनके गले लगकर रो लिया जाए।'' इसी प्रकार लेखक ने शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी व्यंग्य का निशाना बनाया है और उनकी पोल खोलने का स्तुत्य प्रयास किया है। उन्होंने उन साहित्यकारों पर भी व्यंग्य किया है जो दो-चार कहानियाँ लिखकर उस युग के सर्वोच्च साहित्यकारों में अपना नाम लिखवाना चाहते हैं। निष्कर्षतः प्रस्तुत निबंध में परसाई जी ने सर्वत्र व्यंग्य-शैली का प्रयोग किया है।

**प्रश्न 17 'पगडण्डियों का जमाना' निबंध की प्रव त्तियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

उत्तर : श्री हरि शंकर परसाई को एक व्यंग्य-निबंधकार के रूप में व्याप्त समस्याओं, कुरीतियों, भ्रष्टाचार और अनैतिकता पर करारी चोट करते है। इन्होंने प्रथमतया तो शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को रूपाचित किया है। आज का विद्यार्थी परिश्रम न करके परीक्षा में अंक बढ़वाने के लिए उचित-अनुचित माध्यमों को अपनाता है। ये विद्यार्थी भ्रष्टाचारी अध्यापकों से मिलकर पेपर भी आऊट करवा लेते है। दूसरे, परसाई जी कहते है कि आज के युग में ईमानदारी, नैतिकता, सत्यवादिता, मानवीय मूल्य और परिश्रम आदि तत्थ समाप्त होते जा रहे है। सभी व्यक्ति पगडण्डियों रूपी शॉर्टकट रास्ते से मंजिल तक पहुँचना चाहते है। कोई भी व्यक्ति लम्बी सड़कों रूपी नैतिकता व ईमानदारी के मार्ग पर नहीं चलना चाहता। अतः समाज में नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। प्रस्तुत निबंध में लेखक ने बिक्री कर विभाग में व्याप्त रिशवतखोरी एवं भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया है। सरकारी विभागों में कोई भी व्यक्ति ईमानदारी से काम करना नहीं चाहता, सभी को रिशवतखोरी के जरिए पैसा कमाने की होड़ लगी हुई है। प्रस्तुत निबंध में लेखक ने उन व्यक्तियों की आर्थिक, मानसिक स्थिति को उजागर किया है जो जीवन में परिश्रम नहीं करना चाहते। इनमें से अधिकतर व्यक्ति दया के पात्र होते है। लेखक कहता है कि आज के युग में अनैतिक कार्य करवाने वाले इस तरह आते है जैसे बाजार मे सब्जी खरीदने आऐ हों। निष्कर्षतः लेखक ने व्यंग्य विधा द्वारा शिक्षा, सरकारी तन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार और व्यक्तियों में अनैतिकता के समावेश पर आघात करते हुए इन कुरीतियों में सुधार लाने का प्रयास किया है।

**प्रश्न 18 'पगडण्डियों का जमाना' निबंध की भाषा-शैली पर टिप्पणी कीजिए।**

उत्तर : हरिशंकर परसाई जी का यह एक व्यंग्यात्मक निबंध है। इसमें उन्होंने सरल, स्वाभाविक एवं आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। इन्होंने भाषा में लक्षणा व व्यंजना शब्द शक्ति का भी प्रयोग किया है। जैसे-'लगता है, आम सड़कें अब भविष्य के पुरातत्त्ववेता को ही मिलेंगी। वहीं इन्हें खोजेगा। वह निष्कर्ष निकालकर बताएगा कि उस जमाने में इस देश में आम सड़कें तो थी, पर उन पर कोई चलता नहीं था।'' उनकी भाषा में चित्रात्मकता का गुण भी विद्यमान है। प्रस्तुत निबंध में एक चित्र-सा उभर आता है। आलोच्य निबंध में व्यंग्य भाषा के प्रमुख गुण के रूप में उभर आया है, यथा-''देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण-पत्र है। ईमान के पास बेइमानी की सिफारिशी चिट्ठी न हो, तो कोई उसे दो कौड़ी को न पूछे।'' इसी प्रकार परसाई जी ने अपने प्रस्तुत निबंध में भाषा में कसावट लाने के लिए प्रतीकात्मक शब्दावली का प्रयोग किया है, जैसे-पगडण्डी, सड़क, शार्टकट, अनैतिकता आदि। उन्होंने अपनी भाषा को अधिक प्रांजल बनाने के लिए संस्कृतनिष्ठ तत्सम् शब्दावली का भी प्रयोग किया है, साथ ही साथ ड्यूटी, नम्बर, मूड, फोल्डिग, पेपर आउट जैसे अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में अर्थगाम्भीय भर दिया है। प्रस्तुत निबंध में लेखक ने व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है। इस प्रकार आलोच्य निबंध और शैली की द ष्टि से परसाई जी का उत्कृष्ट निबंध है।

# आधुनिक गद्य साहित्य
# (ब)

**आधे-अधूरे**
**चन्द्रगुप्त**
**कहानियाँ**

**एम.ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)**
**M.A. Hindi (Previous)**
**प्रश्न पत्र-2**
**Paper-2**

**दूरस्थ शिक्षा निदेशालय**
**महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय**
**रोहतक—124 001**

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

# विषय-सूची

**आधे-अधूरे**

**खण्ड क व्याख्या** 8

**खण्ड ख आलोचना**

1. आधे-अधूरे : कथासार / कथावस्तु 23
2. आधे-अधूरे : प्रतिपाद्य 27
3. आधे-अधूरे : आधुनिकता 30
4. आधे-अधूरे : युग-बोध 33
5. आधे-अधूरे : प्रयोगधर्मिता 36
6. आधे-अधूरे : भाषा-शैली 39
7. आधे-अधूरे : चरित्र-चित्रण 44
8. आधे-अधूरे : अभिनेयता 47
9. सावित्री का चरित्र-चित्रण 52
10. महेन्द्रनाथ का चरित्र-चित्रण 56
11. अशोक का चरित्र-चित्रण 59
12. बिन्नी का चरित्र-चित्रण 62

**खण्ड ग लघूत्तरीय** 64

**चन्द्रगुप्त**

**खण्ड-कः व्याख्या** 71

गद्य

पद्य

**खण्ड-खः आलोचना** 102

1. चन्द्रगुप्त की कथा-योजना 102
2. चन्द्रगुप्त नाटक में चित्रित परिस्थितियाँ 105
3. चन्द्रगुप्त नाटक की अभिनेयता 108
4. चन्द्रगुप्त नाटक की गीत-योजना 110
5. चन्द्रगुप्त नाटक में ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय 113
6. चन्द्रगुप्त नाटक की संवाद योजना 116
7. चन्द्रगुप्त नाटक मे अन्तर्द्वन्द्व - योजना 120
8. चन्द्रगुप्त नाटक में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना 123
9. चन्द्रगुप्त नाटक मे चरित्र-चित्रण 126
   - क. चन्द्रगुप्त
   - ख. चाणक्य
   - ग. सिंहरण
   - घ अम्भीक

ङ. सिकंदर
च पर्वतेश्वर
छ राक्षस
ज अल्का
झ सुवासिनी
ट कल्याणी
ा कार्नेलिया

10. चन्द्रगुप्त नाटक की भाषा-शैली 142
11. चन्द्रगुप्त नाटक का उद्देश्य/संदेश 145

**कहानियाँ**

**1. उसने कहा था -चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन 149
II. कहानी-सार 152
III. चरित्र-चित्रण 154
(क) लहना सिंह
(ख) सूबेदारनी
(ग) सूबेदार हजारा सिंह
IV. उद्देश्य 158

**व्याख्या** 160

**2. कफन -प्रेमचन्द**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन 164
II. कहानी-सार 166
III. चरित्र-चित्रण 167
(क) घीसू
(ख) माघव
IV. उद्देश्य 171

**व्याख्या** 173

**3. आकाशदीप -जयशंकर प्रसाद**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन 179
II. कहानी-सार 182
III. चरित्र-चित्रण 183
(क) चम्पा
(ख) बुद्धगुप्त
IV. उद्देश्य 187

| | | | |
|---|---|---|---|
| | **व्याख्या** | | 189 |
| **4.** | **पत्नी** | **-जैनेन्द्र** | |
| | **आलोचना** | | |
| | I. तात्त्विक विवेचन | | 194 |
| | II. कहानी-सार | | 196 |
| | III. चरित्र-चित्रण | | 198 |
| | (क) कालिन्दी | | |
| | (ख) सुनन्दा | | |
| | IV. उद्देश्य | | 202 |
| | **व्याख्या** | | 204 |
| **5.** | **वापसी** | **-उषा प्रियंवदा** | |
| | **आलोचना** | | |
| | I. तात्त्विक विवेचन | | 209 |
| | II. कहानी-सार | | 213 |
| | III. चरित्र-चित्रण | | 214 |
| | IV. उद्देश्य | | 217 |
| | **व्याख्या** | | 220 |
| **6.** | **परिन्दे** | **-निर्मल वर्मा** | |
| | **आलोचना** | | |
| | I. तात्त्विक विवेचन | | 226 |
| | II. कहानी-सार | | 226 |
| | III. चरित्र-चित्रण | | 229 |
| | (क) लतिका | | |
| | (ख) डॉ० मुकर्जी | | |
| | (ग) मि० ह्यूबर्ट | | |
| | IV. उद्देश्य | | 234 |
| | **व्याख्या** | | 236 |
| **7.** | **बयान** | **-कमलेश्वर** | |
| | **आलोचना** | | |
| | I. तात्त्विक विवेचन | | 242 |
| | II. कहानी-सार | | 244 |
| | III. नायिका का चरित्र-चित्रण | | 245 |
| | IV. उद्देश्य | | 247 |
| | **व्याख्या** | | 249 |

# आधुनिक गद्य साहित्य

**पूर्णांकः 100**
**समयः 3 घंटे**

***निर्देशः***

1. खंड (क) में निर्धारित साहित्यकरों से सम्बद्ध दस लधु प्रश्न दिये जायंगे। परीक्षार्थियों को प्रत्येक प्रश्न का (लगभग 30 से 50 शब्दों में उत्तर देना होगा। प्रत्येक प्रश्न दो अंकों का होगा और पूरा प्रश्न बीस अंकों का होगा।
2. खंड (क) में निर्धारित सभी सात शीर्षकों में से किन्ही 6 में से एक-एक गद्यांश व्याख्या के लिए पूछा जाएगा, परीक्षार्थियों को इनमें से किन्हीं तीन की व्याख्या लिखनी होगी। प्रत्येक व्याख्या के लिए 10 अंक निर्धारित हैं। पूरा प्रश्न 30 अंकों का होगा।
3. द्रुत-पाठ के लिए निर्धारित प्रत्येक विधा से तीन-तीन रचनाओं के एक-एक प्रश्न पूछें जाएंगे। कुल 15 प्रश्न जिनमें से परीक्षार्थियों को प्रत्येक विधा से एक-एक प्रश्न करना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न चार अंक का होगा। लघूत्तरी प्रश्न परिचयात्मक प्रकृति के ही होंगे।
4. खंड (क) में निर्धारित सभी सात शीर्षकों से संबद्ध पांच आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे, परीक्षार्थियों को उनमें से किन्ही दो के उत्तर देने होंगे आलोचनात्मक प्रश्न 15 अंक का होगा।

**खण्ड 'क'**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | **आधे-अधूरे** | प्रतिपाद्य, आधुनिकता बोध, प्रयोगधर्मिता, चरित्र-चित्रण और नाट्य भाषा। |
| 2. | **चन्द्रगुप्त** | इतिहास और कल्पना, अभिनेयता, चरित्र-चित्रण, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक संदर्भ। |
| 3. | **कहानियाँ** | पाठ्य कहानीकारों की कहानियों की विशिष्टता, प्रतिपाद्य और चरित्र। |

# आधे-अधूरे

**खण्ड क व्याख्या**

**खण्ड ख आलोचना**

1. आधे-अधूरे : कथासार / कथावस्तु
2. आधे-अधूरे : प्रतिपाद्य
3. आधे-अधूरे : आधुनिकता
4. आधे-अधूरे : युगबोध
5. आधे-अधूरे : प्रयोगधर्मिता
6. आधे-अधूरे : भाषा-शैली
7. आधे-अधूरे : चरित्र-चित्रण
8. आधे-अधूरे : अभिनेयता
9. सावित्री का चरित्र-चित्रण
10. महेन्द्रनाथ का चरित्र-चित्रण
11. अशोक का चरित्र-चित्रण
12. बिन्नी का चरित्र-चित्रण

**खण्ड ग लघूत्तरीय**

# आधे-अधूरे : मोहन राकेश

## खण्ड क : व्याख्या

***मैं नहीं जानता, आप क्या समझ रहे हैं, मैं कौन हूँ, और क्या आशा कर रहे हों, मैं क्या कहने जा रहा हूँ। आप शायद सोचते हों कि मैं इस नाटक में कोई निश्चित इकाई हूँ—अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता, व्यवस्थापक या कुछ ओर; परंतु मैं अपने संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता। उसी तरह जैसे इस नाटक के संबंध में नहीं कह सकता। क्योंकि यह नाटक भी मेरी ही तरह अनिश्चित है। अनिश्चित होने का कारण यह है कि...परंतु कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज का कुछ-न-कुछ होता है, हालाँकि यह आवश्यक नहीं कि जो कारण दिया जाए, वास्तविक कारण वही हो। और जब मैं अपने ही संबंध में निश्चित नहीं हूँ तो और किसी चीज के कारण-अकारण के संबंध में निश्चित कैसे हो सकता हूँ?***

**प्रसंग**—मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' एक प्रयोगात्मक नाटक है। नाटक में राकेश जी ने एक ही व्यक्ति को चार-चार व्यक्तियों की भूमिका में प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम मंच पर आने वाले व्यक्ति को काले सूट वाला व्यक्ति नाम दिया है। यही काले सूट वाला व्यक्ति के अनिश्चित कथानक और नाटक के प्रतिपाद्य से दर्शकों को अवगत करवाता है। जिस प्रकार सभी पात्र पूरे नाटक के दौरान असमंजस की स्थिति में दिखाई देते हैं, उसी प्रकार प्रारंभ में ही काले सूट वाला व्यक्ति अपनी अस्मिता के विषय में अनिश्चितता व्यक्त करता है।

**व्याख्या**—काले सूट वाला व्यक्ति दर्शकों की उत्सुकता की अभिव्यक्ति स्वयं करते हुए कहता है कि यह स्वाभाविक ही है कि आप यह जानना चाहते होंगे कि मेरी इस नाटक में क्या भूमिका है? शायद दर्शक मुझे अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता या व्यवस्थापक समझते होंगे। काले सूट वाला व्यक्ति अपनी अस्पष्ट स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है कि भले ही दर्शक उससे नाटक के बारे में और नाटक में उसकी स्थिति के बारे में जानने के इच्छुक हैं लेकिन वह स्वयं भी इस बारे में स्पष्ट नहीं है कि उसे क्या करना है? हर चीज के पीछे कोई-न-कोई कारण होता है लेकिन सदा ऐसा नहीं होता कि जो कारण दिया जाए, वही वास्तविक कारण हो। इस प्रकार मंच पर आने वाला काले सूट वाला व्यक्ति नाटक के विषय में और स्वयं अपने विषय में अनिश्चितता की स्थिति में है।

**विशेष**
1. काले सूट वाले व्यक्ति की अनिश्चित मनःस्थिति को प्रयुक्त किया गया है।
2. नाटक में किए जाने वाले नए प्रयोग की ओर संकेत किया गया हैं कि एक ही व्यक्ति कई भूमिकाओं में प्रस्तुत होगा।
3. नाटक के प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मूल उद्देश्य भी अनिश्चित सा है।
4. प्रश्नवाचक शैली का प्रयोग हुआ है।
5. आम बोलचाल की साधारण भाषा का प्रयोग हुआ है।

***खैर, इसमें आपकी क्या दिलचस्पी हो सकती है कि मैं यहाँ से बाहर क्या हूँ? शायद अपने बारे में इतना कह देना ही काफी है कि सड़क के फुटपाथ पर चलते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह मुझमें कोई मतलब नहीं रखते कि मैं कहाँ रहता हूँ, क्या काम करता हूँ कि किससे मिलता हूँ और किन-किन परिस्थितियों में जीता हूँ। आप मतलब नहीं रखते क्योंकि मैं भी आपसे मतलब नहीं रखता, और टकराने के क्षण में आप भी मेरे लिए वही होते हैं, जो मैं आपके लिए होता हूँ। इसलिए—ये टकराने वाले व्यक्ति होने के नाते आपमें और मुझमें बहुत बड़ी समानता है। यही समानता आपमें और उसमें, और दूसरे में, उस दूसरे में और मुझमें...बहरहाल इस गणित की पहेली में कुछ नहीं रखा है।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्य अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' नाटक से लिया गया है। एक ही व्यक्ति

चार भूमिकाओं में प्रस्तुत होने के कारण मंच पर आने वाले पहले व्यक्ति को काले सूट वाला व्यक्ति कहा गया है। मंच पर विराजमान काले सूट वाला व्यक्ति नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व नाटक के विषय में और नाटक में अपनी स्थिति के बारे में दर्शकों को अवगत करवाना चाहता हैं साथ ही यह भी स्पष्ट करना चाहता है कि मंच पर आने से व्यक्ति कोई विशेष व्यक्ति नहीं बन जाता। यह चरित्र तो कोई भी निभा सकता है। काले सूट वाला व्यक्ति नाटक के मूल उद्देश्य तक पहुँचना चाहता है कि वर्तमान मध्यवर्गीय समाज में लगभग सभी की स्थिति एक जैसी है।

**व्याख्या**—काले सूट वाला व्यक्ति कहता है कि वर्तमान समय में किसी की भी रुचि इस बात में नहीं है कि अमुक व्यक्ति जो बाहर से दिखाई देता है, क्या वह अंदर से भी वैसा ही है? सामान्यतः समाज में रह रहे दो व्यक्तियों की स्थिति ऐसी ही है जिस तरह फुटपाथ पर चलते दो व्यक्ति आपस में टकराकर सिर्फ घूरकर एक-दूसरे को देखते हैं और अपना रास्ता नापने लगते हैं। इसमें दोनों में से किसी को भी एक दूसरे से परिचय करने की आवश्यकता नहीं होती। काले सूट वाला व्यक्ति अपने को और दर्शकों को क्षण भर टकराने वाले दो व्यक्तियों के रूप में देखता है। और कहना चाहता है कि मंचासीन मुझमें आप लोगों में कोई विशेष अंतर नहीं है। मेरी जगह आप भी हो सकते थे। यहाँ यह सब कहने का अभिप्राय यह है कि समाज में किसी की कोई निश्चित भूमिका नहीं है। एक ही व्यक्ति को चार भूमिकाओं में लाने का नया प्रयोग करना भी यह दर्शाता है कि व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न रूपों में आता है। उसकी कोई निश्चित सीमा और पात्रता नहीं बाँधी जा सकती।

**विशेष**— 1. प्रस्तुत पंक्तियों में वर्तमान समाज में आत्मकेंद्रित व्यक्ति के विषय में बताया गया है।

2. यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न मुखौटे बदल कर अपनी भूमिका बदल लेता है।

3. आम बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। फिर फाड़ लाई एक और किताब! ज़रा शरम नहीं कि रोज़-रोज़ कहाँ से पैसे आ सकते हैं नई किताबों के लिए। (सोफे के पास आकर) अशोक बाबू यह कमाई करते रहे हैं दिन भर! (तस्वीरें उठाकर देखती) एलिज़ाबेथ टेलर...आड्रेहेबर्न...शर्ले मैक्लेना! जिंदगी काट रहे हैं इन तस्वीरों के साथ।

**प्रसंग**—प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश के प्रसिद्ध नाठक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। 'आधे-अधूरे' नाटक की प्रमुख नारी पात्र सावित्री दफ़्तर से वापस लौटने पर घर को अस्त-व्यस्त पाती है। आते ही घर को कुछ व्यवस्थित रूप देना चाहती है सावित्री का परिवार एक सामान्य परिवार नहीं है। बच्चे भी उदण्ड प्रव त्ति के हैं। दफ़्तर से घर लौटते ही सावित्री छोटी लड़की के स्कूल बैग को समेटने लगती है और लड़के अशोक के द्वारा काटी गई तस्वीरें देखती है। तभी गुस्से में बड़बड़ाती हुई कहती है—

**व्याख्या**—सावित्री दफ़्तर से थकी-हारी वापस लौटने पर देखती है कि छोटी लड़की किन्नी का बैग खुला पड़ा है और उसकी एक किताब फटी हुई है। परिवार अर्थाभाव झेल रहा है क्योंकि कमाने वाली अकेली सावित्री ही है। महेन्द्रनाथ न तो नौकरी वगैरता करता है, न ही घर की ओर ध्यान देता है। सावित्री किन्नी की घटी हुई किताब देखकर बड़बड़ाती है कि नई किताबों के लिए रोज़-रोज़ पैसे कहाँ से आएँगे। लड़के अशोक की पढ़ने-लिखने में दिलचस्पी नहीं है। वह फिल्मी तस्वीरें काटता रहता है। विभिन्न अंग्रेजी फिल्मी सितारों जैसे एलिजावेथ टेलर, ओड्रेहेबर्न, शर्ले मैक्लेन आदि की तस्वीरें कटी हुई देखकर लगता है कि अशोक को अंग्रेजी फिल्मों से भी लगाव है। कुल मिला कर सावित्री और मेहन्द्रनाथ के परिवार के तनावयुक्त जीवन की झाँकी दिखाई देती है।

**विशेष**— 1. प्रस्तुत अवतरण में सावित्री के तनाव को प्रस्तुत किया गया है।

2. स्पष्ट है कि सावित्री की अपनी आवारगी का असर बच्चों पर भी आ गया है।

3. नाटक के मूल कथ्य की ओर अस्पष्ट संकेत इन पंक्तियों में मिलता है।

4. नाटककार ने पर्याप्त रंग संकेत दिए हैं।

***स्त्री*** : *किसने खा लिया? मैंने?*

***पुरुष एक*** : *नहीं, मैंने! पता है कितना खर्च था उन दिनों इस घर का? चार सौ रुपए महीने का मकान था। टैक्सियों में आना-जाना होता था। किस्तों पर फ्रिज खरीदा गया था। लड़के-लड़की की कान्वेंट की फीसें जाती थीं...।*

**प्रसंग**—प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश रचित सुप्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है यह गद्यांश पुरुष एक यानि मेहन्द्रनाथ और सावित्री के मध्य बोला गया संवाद है। महेन्द्रनाथ और जुनेज़ा पहले एक ही फैक्टरी में साँझेदार थे। जिसमें घाटा हो चुका है। सावित्री जुनेज़ा को ईमानदार आदमी नहीं समझती जबकि महेन्द्रनाथ उसे ईमानदार समझता है। महेन्द्रनाथ स्पष्ट करता है कि फैक्टरी में उसने जितना पैसा लगाया था, उस हिसाब से उसने शीघ्र ही अपने हिस्से का पैसा निकालकर प्रयोग कर लिया था। महेन्द्रनाथ जुनेज़ा को ठीक व्यक्ति ठहराते हुए, अपने विगत खर्च को ही वर्तमान स्थिति के लिए कारण मानता है। जबकि सावित्री ऐसा नहीं समझती।

**व्याख्या**—सावित्री कहती है कि हमने कितना धन प्रयोग कर लिया होगा? जो हमें फैक्टरी से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। और क्या स्वयं मैंने उस पैसे को खा लिया? महेन्द्रनाथ सावित्री को एक-एक करके खर्च गिनवाता है और यह स्पष्ट करना चाहता है कि हमने फैक्टरी का कितना पैसा प्रयोग किया था। हर महीने चार सौ रुपया मकान का किराया जाता था। इधर-उधर आने-जाने के लिए टैक्सियों का प्रयोग किया जाता था। फ्रिज की किस्तें जाती थीं। बच्चे महँगे स्कूलों में पढ़ते थे। महेन्द्रनाथ यह बताना चाहता है कि यदि उसने जुनेज़ा के साथ मिलकर फैक्टरी लगाई थी तो उस समय उन्होंने खर्च भी इतने बढ़ा लिए थे कि फैक्टरी से उनका हिस्सा निकलता रहा और इसीलिए यह घाटे का सौदा साबित हुआ। फैक्टरी में हुए घाटे के लिए महेन्द्रनाथ जुनेज़ा को दोष नहीं देना चाहता।

**विशेष**— 1. सावित्री और महेन्द्रनाथ के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि अर्थाभाव में झगड़े अधिक होते हैं और एक दूसरे पर दोशारोपण किया जाता है।

2. गद्यांश में जो व्यर्थ के खर्चे दिखाए गए हैं, उनसे महेन्द्रनाथ व सावित्री की अदूरदर्शिता का पता चलता है।

3. प्रसंगानुकूल सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है।

***लड़की*** : *पर कौन सी अड़चन है?...उसके हाथ में छलक गई चाय की प्याली, या उसके दफ़्तर से लौटने में आधा घंटे की देर—ये छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होती, मगर अड़चन बन जाती हैं। एक गुबार-सा है जो हर वक़्त मेरे अंदर भरा रहता है और मैं इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूँ। और आखिर...?*

*आखिर वह सीमा आ जाती है। जहाँ पहुँचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है।*

***स्त्री*** : *क्या?*

***बड़ी लड़की*** : *कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में स्वाभाविक नहीं रहने देतीं।*

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश के प्रसिद्ध नाटक आधे-अधूरे से अवतरित है। प्रस्तुत संवाद बड़ी लड़की विन्नी और उसकी माँ सावित्री के मध्य वार्तालाप है। इस परिवार के सामान्य सम्बन्धों में कटुता सी आ चुकी है और परिवार में आवारगी का वातावरण बन गया है। पहले तो मनोज नामक युवक घर की बड़ी लड़की विन्नी को भगा ले जाता है और विवाह कर लेता है। लेकिन वह विन्नी के साथ सामान्य पारिवारिक जीवन नहीं जी पाता। और सदा ही ऐसा अनुभव करता है जैसे विन्नी अपने मायके के परिवार में आवारापन को अपने साथ ले आई है। मनोज की इसी भावना की अभिव्यक्ति विन्नी अपने मायके लौटने पर अपने माता-पिता के सामने करती है—

**व्याख्या :** विन्नी कहती है कि मनोज और मेरे मध्य न जाने ऐसी कौन सी विशेष अड़चन है, जो दोनों के सम्बन्धों को सामान्य नहीं रहने देती। उन दोनों के मध्य छोटी-छोटी बातों को लेकर तनाव हो जाता है। जैसे चाय की प्याली छलक जाना या आधा घण्टा दफ़्तर से देर से लौटना कोई ऐसी विशेष बातें नहीं हैं, जिनमें कारण आपस के तनाव उत्पन्न हो। लेकिन अंदर-ही-अंदर किसी अनजानी वजह से एक खीज सी उत्पन्न हो जाती हैं और तब वह अपना सारा क्रोध मनोज पर उतार देती है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर मनोज विन्नी पर आक्षेप लगाता है कि वह अपने घर से ही कोई ऐसी चीज़ लेकर आई है कि जिससे वह स्वाभाविक जीवन नहीं जी पाती। मनोज का संकेत यहाँ उसके परिवार के आवारापन के सम्बन्ध में ही है। विन्नी के परिवार की यही आवारगी उसके मनोज के सम्बन्धों को सामान्य नहीं रहने देती। शायद विन्नी भी पर पुरुष आर्कषण से ग्रस्त है। तभी मनोज के साथ छोटी-छोटी बातों पर खीज उठती है।

**विशेष :** 1. पात्रों की मनोदशा का सही चित्रण इस गद्यांश में हुआ है।

2. नाटककार ने बड़े सही ढंग से यह व्यक्त किया है कि किस प्रकार पारिवारिक वातावरण का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है।
3. सरल शब्दावली में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को उजागर किया है।

***कई-कई दिनों के लिए अपने को उससे काट लेती हूँ। पर धीरे-धीरे पर चीज फिर उसी ढर्रे पर लौट आती है। सब कुछ फिर उसी तरह होने लगता है जब तक कि हम...जब तक कि हम नए सिरे से उसी खोह में नहीं पहुँच जाते। मैं यहाँ आती हूँ...यहाँ आती हूँ तो सिर्फ़ इसीलिए कि...***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। यही बड़ी लड़की विन्नी का कथन है। बड़ी लड़की मनोज के व्यवहार से तालमेल नहीं बैठा पाती और मायके वापस लौट आती है। मनोज विन्नी और उसके परिवार पर कटाक्ष करता रहता है। मनोज कहता है कि वह अपने घर से कोई-न-कोई मनहूस चीज़ साथ ले आई उनके सम्बन्ध सामान्य नहीं रह पा रहविन्नी जल-भुन जाती है और अपने आपको मनोज से काटना चाहती है। विन्नी प्रत्येक छोटी बात पर मनोज को परेशान करना चाहती है। कुछ समय के लिए दिखावे के तौर पर जीवन फिर उसी ढर्रे पर चलने लगता है। अपनी माँ के साथ वार्तालाप करती हुई विन्नी अपने और मनोज के सम्बन्धों को इस प्रकार अभिव्यक्त करती है—

व्याख्या : विन्नी अपनी माँ को बताती है कि मनोज को कष्ट पहुँचाने के लिए वह कई-कई दिनों तक अपने को मनोज से अलग कर लेती है। विन्नी को संस्कारों में ही आवारगी मिली है। वह प्रत्येक छोटी-बड़ी बात करवाना चाहती है, नौकरी करना चाहती है। मनोज को तंग करने के उद्देश्य से ही वह कई-कई दिनों तक मनोज से बात नहीं करती। परंतु धीरे-धीरे उनकी दिनचर्या सामान्य होने लगती है लेकिन बहुत कम समय के लिए ऐसा हो पाता है और फिर से छोटी-छोटी बातों पर खीज उत्पन्न होने लगती है। मनोज विन्नी के पैत क संस्कारों और व्यवहार के कारण क्षुब्ध है। आपसी अनबन के कारण विन्नी अपने घर आ जाती है। विन्नी यह जानने के लिए अपने घर आती है कि वह क्या कारण हो सकता है जिसके कारण मनोज उस पर सदैव कटाक्ष करता रहता है। मनोज कहता है कि अवश्य ही वह कोई ऐसी चीज साथ लेकर आई है, जिसके कारण वह मनोज के साथ सामान्य नहीं रह पाती।

**विशेष :** 1. विन्नी व मनोज के सम्बन्धों में आई कटुता का वर्णन किया गया है।
2. आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों के आए बिखराव व अलगाव बोध को व्यक्त किया गया है।
3. प्रस्तुत प्रसंग में विन्नी स्वयं को पारिवारिक तनाव का प्रमुख कारण स्वीकारती है।
4. प्रसंगानुसार सरल भाषा का प्रयोग हुआ है?

***मेरा अपना घर ! ... हाँ। और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है वह इस घर में, जिसे लेकर मुझे बार-बार हीन किया जाता है (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा, कि क्या चीज़ है वह? और कहाँ है वह? इस घर में खिड़कियों-दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहाँ छिपी है, वह मनहूस चीज़ जो वह कहता है मैं इस घर में अपने अंदर लेकर गई हूँ?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश के सुप्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। प्रस्तुत पंक्तियों में विन्नी अपने-आपको टटोलते हुए यह सब कहती है। मनोज बात-बात पर लांछन लगाता है कि वह अपने घर से कोई ऐसी मनहूस चीज़ साथ लाई है जो उन दोनों के सम्बन्धों को सामान्य नहीं रहने देती। मनोज विन्नी के पारिवारिक संस्कारों के बारे में भली-भाँति परिचित है। इस परिवार का आवारापन उससे छिपा नहीं है। अप्रत्यक्ष रूप से मनोज इसी अवारापन पर कटाक्ष करता रहता है। विन्नी अपनी माँ के पास लौट आती है और वह चीज़ ढूँढ लेना चाहती है जिसके कारण मनोज और उसके बीच तनाव रहता है। सावित्री कहती है यह उसका अपना घर है, वह चाहे जब यहाँ आ सकती है। इस पर विन्नी क्रोधित होकर कहती है—

**व्याख्या :** विन्नी आवेश में आकर कहती है कि यह ठीक है कि यह मेरा अपना घर है। लेकिन मैं इस घर में बार-बार वह चीज़ ढूँढने आती हूँ जिसके कारण हमारे घर में तनाव रहता है और उस चीज़ के लिए मनोज उसे बार-बार फटकारता है। विन्नी प्रश्न पर प्रश्न करती जाती है। वह किसी भी प्रकार उस मनहूस चीज़ को ढूँढ लेना चाहती है। विन्नी अपनी माँ से पूछती हुई कहती है वह मनहूस चीज़ छत में, दीवारों में, दरवाज़ों में तथा घर के सदस्यों मम्मी, डैडी, किन्नी या अशोक में, कहाँ हो

सकती है? विन्नी आवेश में अपनी माँ के हाथों को पकड़ कर झकझोरती हुई पूछती है कि वह चीज़ क्या है और इस घर में कहाँ है? विन्नी आज स्पष्ट रूप से उस चीज़ के बारे में जान लेना चाहती है कि वह जो मनहूस साए की तरह उसके साथ इस घर से मनोज के घर तक चली गई है।

**विशेष :** 1. प्रस्तुत अवतरण में सावित्री और महेन्द्रनाथ के परिवार के चारित्रिक पतन की ओर संकेत किया गया है।

2. विन्नी की मनोदशा का सटीक वर्णन हुआ है कि वह किस प्रकार अपने व अपने परिवार के अवगुणों से परिचित होते हुए भी अनभिज्ञ बनी हुई है।

3. प्रश्नावाचक शैली का प्रयोग किया गया है।

4. भाषा सरल, प्रसंगानुकूल व भावानुकूल है।

***हाँ पूछकर ही जानना है आज। कितने साल हो चुके हैं मुझे ज़िंदगी का भार ढोते? उनमें से कितने साल बीते हैं मेरे इस परिवार की देखेरख करते? और उस सबके बाद में आज पहुँचा कहाँ हूँ? यहाँ कि जिसे देखो वही मुझसे उलटे ढंग से बात करता है? जिसे देखो, वही मुझसे बदतमीज़ी से पेश आता है?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित चर्चित नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। इस नाटक में नाटककार ने महेन्द्रनाथ के बिखरते परिवार के विषय में विस्तार से चलता है। महेन्द्रनाथ ने जुनेज़ा के साथ फैक्टरी लगाई थी। जिसमें मुखिया का पद और सम्मान नहीं मिल पाता। इस घर का कोई भी सदस्य एक-दूसरे के प्रति आदर और प्रेमभाव नहीं रखता। महेन्द्रनाथ को कदम-कदम पर अपमान का घूँट पीना पड़ता है। इस प्रकरण में लड़के अशोक के आवारापन की झलक मिलती है। वह अश्लील पुस्तकें पढ़ता है। इस विषय में किसी की रोक-टोक उसे पसन्द नहीं। महेन्द्रनाथ जब स्वयं को उपेक्षित महसूस करता है तो सावित्री और बच्चों को सम्बोधित करता हुआ प्रश्न पूछता है—

**व्याख्या :** उपेक्षित महेन्द्रनाथ पत्नी और बच्चों से पूछना चाहता है कि कितने वर्षों से उसने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयत्न किया है। परिवार की देखरेख की जिम्मेदारी भी उसने निभाई है। यदि फैक्टरी घाटे में चली गई तो इसमें महेन्द्रनाथ का क्या दोष? अब महेन्द्रनाथ की कोई कमाई नहीं है। इसी कारण परिवार का कोई भी सदस्य उसे आदर की द ष्टि से नहीं देखता। महेन्द्रनाथ अनुभव करता है कि ज़िंदगी जी नहीं रहा है अपितु अपनी ज़िंदगी को ढो रहा है। परिवार का कोई भी सदस्य महेन्द्रनाथ से सम्मानजनक तरीके से बात नहीं करता। अशोक अपनी गलती मानने की अपेक्षा औरों में दोष निकालने लगता है। जब महेन्द्रनाथ की आर्थिक स्थिति अच्छी थी तो परिवार के सभी सदस्यों ने ऐसे आराम से जीवनयापन किया। वर्षों तक सुख-सुविधा का जीवन प्रदान करने के उपरान्त महेन्द्रनाथ को वर्तमान निर्धन अवस्था के कारण अपमान और उपेक्षा का जीवन झेलना पड़ा रहा है।

**विशेष :** 1. महेन्द्रनाथ की मनःस्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है।

2. विघटन के कगार पर पहुँचे परिवार की घुटन का चित्रण हुआ है।

3. सभी पात्रों के चरित्र का स्पष्ट उद्‌घाटन हुआ है।

4. भाषा भावानुकूल व सरल है।

***किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़-स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ—बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वज़ह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में है?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्य अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश कृत नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। प्रस्तुत पंक्तियाँ पुरुष एक यानि ग हस्वामी महेन्द्रनाथ के द्वारा कहा गया है। महेन्द्रनाथ उसे अनुभव करता है कि घर में उसे पूरा मान-सम्मान और अधिकार मिलने की अपेक्षा तिरस्कार और अपमान मिलता है। ग हस्वामी होने के नाते उसे केवल उस रबड़-स्टैंप की तरह प्रयोग किया जाता है, जिस स्टैंप को किसी विशेष काम के समय केवल ठप्पा लगाकर काम चला लिया जाता है। महेन्द्रनाथ अनुभव करता है कि वह तो रबड़-स्टैंप भी नहीं अपितु रबड़ का एक टुकड़ा मात्र है जिसकी कोई उपयोगिता नहीं। सावित्री अनुभव करती है कि महेन्द्रनाथ से परिवार को कभी भी ऐसा कुछ नहीं मिला जो मिलना चाहिए था। ऐसी स्थिति में महेन्द्रनाथ कहता है—

**व्याख्या :** पुरुष एक यानि महेन्द्रनाथ कहता है कि ठीक है, किसी भी मामले में मैंने अपना कर्तव्य ठीक नहीं निभाना। इस नाते

में वह रबड़ स्टैंप भी नहीं हूँ जिसका प्रयोग विशिष्ट पद और अधिकार का हकदार व्यक्ति कर सकता है। महेन्द्रनाथ परिवार में अपनी उपेक्षा पर तिलमिला उठता है। वह कहता है कि मैं तो रबड़-स्टैंप भी नहीं अपितु मैं तो घिसा हुआ रबड़ का टुकड़ा हूँ। वह कह उठता है कि इस नाममात्र के मुखिया व्यक्ति का घर में। टिके रहने का अब कोई औचित्य नज़र नहीं आता। इस प्रकार परिवार की उपेक्षा के शिकार महेन्द्रनाथ के आक्रोश की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है।

**विशेष :** 1. महेन्द्रनाथ के मन की कड़वाहट की स्पष्ट अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में मिलती है।

2. महेन्द्रनाथ के परिवार की स्थिति की स्पष्ट अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में मिलती है।

3. महेन्द्रनाथ के आक्रोश घुटन व विवशता की अभिव्यक्ति सरल और प्रभावशाली भाषा में हुई है।

अपनी ज़िंदगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिंदगी चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी ज़िदंगियाँ चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अंदर से मैं आराम-तलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश रचित नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। प्रस्तुत गद्यांग महेन्द्रनाथ द्वारा कहा गया है। सावित्री कदम-कदम पर महेन्द्रनाथ थे। अपमानित करती रहती है। वह उसे रबड़-स्टैंप भी नहीं समझती। वह कहती है कि रबड़ स्टैंप का भी पद, अधिकार व सम्मान होता है। महेन्द्रनाथ इन सब बातों से आहत हो जाता है घर के सदस्यों की नाकायाबी के लिए स्वयं को ज़िम्मेदार मानता हुआ कहता है—

**व्याख्या :** महेन्द्रनाथ घर की वर्तमान स्थिति के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानता हुआ कहता है कि मेरे ही कारण घर की यह स्थिति हुई है। घर के सभी सदस्य अपने-अपने कर्तव्य से भटके हुए हैं। इस बात का अहसास महेन्द्रनाथ को हो चुका है कि उसने ही स्वयं ही अपना जीवन बेकार किया है। वह स्वयं को दोषी मानता हुआ कहता है कि आज तुम जिस प्रकार का आवारगी का जीवन अपना चुकी हो, उसका जिम्मेदार मैं ही हूँ। बच्चों की जिंदगी चौपट करने के लिए भी वह स्वयं को ही उत्तरदायी मानता है। आज अशोक की जो हालत है, वैसी एक बीस वर्षीय युवक की नहीं होनी चाहिए। वह अपनी पढ़ाई से मन हटा चुका है और आवारा घूमता है। बड़ी लडकी के घर से भाग जाने के लिए भी वह स्वयं को कुसूरवार ठहराता है। इतना सब कुछ होने पर भी वह इस घर में चिपका हुआ है क्योंकि वह आरामपरस्त है। महेन्द्रनाथ कहता है कि मेरी आदत हो चुकी है कि मैं सुविधासम्पन्न आरामपरस्ती का जीवनयापन करता रहूँ। इस घर में पड़े-बड़े व्यर्थ का जीवन जीते हुए महेन्द्रनाथ को ऐसा लगता है मानों उसकी हड्डियों में जंग लग गया हो। कहने का अभिप्राय यह है कि अब महेन्द्रनाथ कोई कार्य करने लायक नहीं रह गया है। यही कारण है कि वह स्वयं को घरघुसरा अर्थात सदा घर में पड़ा रहने वाला कहता है।

**विशेष :** 1. इस गद्यांश में महेन्द्रनाथ द्वारा सावित्री का कटाक्ष करने के साथ-साथ, स्वयं अपनी चारित्रिक कमियों की ओर संकेत किया है।

2. महेन्द्रनाथ के आलसी और सुविधाभोगी जीवन के कारण हुई घर की स्थिति का वर्णन किया गया है।

3. मुहावरों का प्रयोग हुआ है जैसे—घरघुसरा होना, ज़िंदगी चौपट करना, हड्डियों में जंग लगना।

***पहले पांच सेकंड आदमी की आँखों में देखता रहेगा। फिर होंठों के दाहिने कोने से जरा सा मुसकुराया। फिर एक-एक लफ़्ज़ को चबाता हुआ पूछेगा...(उसके स्वर में) आप क्या सोचते हैं, आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है? ढूँढ-ढूँढकर सरकारी हंदी के लफ़्ज़ लाता है—युवा लोगों में! अराजकता!***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्य अवतरण प्रसिद्ध नाटककार मोहन रोकश द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रयोगशील नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। इन पंक्तियों में लड़का अशोक अपनी मम्मी के दफ़्तर के बास के बारे में अपने विचार प्रकट करता है। सावित्री चाहती है कि जब उसका बास उसके घर आए तो अशोक उससे अवश्य मिले। सावित्र अपने बास के माध्यम से अशोक को नौकरी दिलवाने की बात करती है। इस पर लड़का कहता है मुझे उस आदमी के माध्यम से नौकरी नहीं चाहिए। अशोक अपनी मम्मी के बॉस का बार-बार घर आना बिल्कुल पसन्द नहीं करता और वह आदमी यदि उसकी मम्मी का बास न होता तो वह उसे कान पकड़ कर घर से बाहर निकाल देता। इस बात पर सावित्री आगबबूला हो उठती है और बड़ी लड़की से कहती है—ये लोग हैं जिनके लिए मैं जानमारी करती हूँ रात दिन। अशोक उस व्यक्ति की नकल उतारता है और उस व्यक्ति के प्रति अपनी मानसिकता प्रकट करता है।

**व्याख्या :** लड़का कहता है कि व्यक्ति पहले कुछ सैकंड तो सामने वाले व्यक्ति की आँखों में देखता रहेगा। फिर होठों के दाहिने ओर से थोड़ा मुस्कराएगा। उसी व्यक्ति की नकल उतारता हुआ कहता है कि वह एक-एक शब्द को चबाता हुआ पूछता है 'आप क्या सोचते हैं, आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है? वह व्यक्ति सरकारी हिंदी यानि सामान्यतः दफ़्तरों में बोली जाने वाली हिंदी बोलता है। लड़का इन सब बातों को पसन्द नहीं करता। वह उस व्यक्ति के पहनने-ओढ़ने के तथा बात करने के तरीके पर व्यंग्य करता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एक जवान बेटा यह बिल्कुल भी पसन्द नहीं करता कि उसकी मम्मी के दफ़्तर का कोई व्यक्ति उनके घर पर आकर उनके व्यक्तिगत मामलों में दखल दे।

**विशेष :** 1. युवा वर्ग की मानसिकता को उजागर किया गया है।

2. लड़का यह भली-भाँति समझता है कि उसकी मम्मी के बास का उनके घर आना उचित नहीं है अतः उसका आक्रोश स्पष्ट दिखाई देता है।

3. प्रसंगानुकूल सरल, स्वाभथवक शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

***मैं प्रायः कहा करता हूँ कि खाना और पहनना, इन दो द ष्टियों से...वह अमरीकन भी यही बात पर रहा था कि जितनी विविधता इस देश के खानपान और पहनने में है...और वही क्या, सभी विदेशी लोग इस बात को स्वीकार करते हैं। क्या रूसी, क्या जर्मन! मैं कहता हूँ, संसार में शीतयुद्ध को कम करने में हमारी कुछ वास्तविक देन है, तो यही कि. ..तुम अपनी इस साड़ी को ही लो। कितनी साधारण है, फिर भी...यह हड़तालों-अड़ताओं का चक्कर न चलता अपने यहाँ, तो अपना वस्त्र उद्योग अब तक...अच्छा तुमने वह नोटिस देखा है जो यूनियन ने मैनेजमेंट को दिया है?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित उनके सुप्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। इस नटक में मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय परिवार में विघटित होते मानव-मूल्य व स्तरीकरण की अंधी दौड़ में बिखरते परिवार को दर्शाया है। इसी के फलस्वरूप पारिवारिक सदस्यों के आपसी सम्बन्धों में भी शून्यता आ जाती है। ऐसे विघटनशील परिवार में न तो बड़े-छोटों की भावना को समझ पाते हैं और न ही छोटे-बड़ों का सम्मान करते हैं। सावित्री अपनी और अपने परिवार महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु अनेक बड़े लोगों के सम्पर्क में आती है। वह अपने दफ्तर के बास सिंघानियाँ को घर पर आमन्त्रित करती है। वह चाहती है कि किसी प्रकार सिंघानियाँ अशोक को नौकरी दिलवा दे। लेकिन अशोक को उसकी बोलचाल, उसका बैठने का ढंग और उसका आचार-व्यवहार अच्छा नहीं लगता। लेकिन पुरुष दो यानि सिंघानियाँ बात-बात पर अपने ज्ञान की शेखी बघारता है।

**व्यख्या :** सिंघानियाँ खान-पान के विषय में अपना ज्ञान बघारता हुआ करता है कि भारतवर्ष में खानपान और पहनावे की विविधता है। वह इस बात की पुष्टि किसी अमेरिकन के कथन द्वारा करता है कि वह अमेरिकन भी यही बात कह रहा था कि यहाँ के खान-पान पहनावे में विविधता है। अमेरिकन ही नहीं सारे विश्व के लोग हमारे देश के अच्छे खानपान और पहनावे की प्रशंसा करते हैं। सिंघानियाँ आगे कहता है कि वर्तमान समय में जो शीतयुद्ध पूरे विश्व में चल रहा है उसे कम करने में भी भारत का ही योगदान है। सिंघानियाँ एक के बाद एक बैसिर पैर की बातें करता जाता है। इसी क्रम में वह सावित्री की साड़ी की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि तुम्हारी साड़ी साधारण है और भी...। स्वाभाविक ही है कि वह साड़ी की प्रशंसा करता है। साड़ी की बात से वह वस्त्र उद्योग तक आ जाता है कि यदि हड़तालें न होतीं तो हमारा वस्त्र उद्योग बहुत विकसित होता। इस पूरे अवतरण में यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष दो यानि सिंघानिया अपने अधकचरे ज्ञान को प्रदर्शित करके यह दिखाया चाहता है कि वह बहुत बड़ा आदमी है और उसके संबंध विदेशों तक हैं।

**विशेष :** 1. सिंघानिया के माध्यम से सावित्री के चरित्र को उद्घाटित करने में सहायता मिली है।

2. सिंघानिया भले ही उच्च पद पर आसीन पाँच हजार वेतन पाने वाला अधिकारी है लेकिन आचार-व्यवहार की अभद्रता सहज स्पष्ट है।

3. नाटककार ने पाठकों को कुछ विश्व समस्याओं से भी जोड़ा है यथा—संसार में चल रहा शीतयुद्ध, भारतीय खान-पान की विविधता, हड़तालों का अर्थव्यवस्था पर पड़ता दुष्प्रभाव आदि।

4. भाषा आम बोलचाल की सरल एवं प्रसंसानुकूल है।

***मत कह, नहीं कह सकता तो। पर मैं मिन्नत-खुशामद से लोगों को घर बुलाऊँ और तू आने पर उनका मज़ाक उड़ाए, उनके कार्टून बनाए—ऐसी चीज़ें अब मुझे बिल्कुल बर्दाश्त नहीं हैं। सुन लिया? बिल्कुल-बिल्कुल बर्दाश्त नहीं हैं।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्य अवतरण सुप्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश के नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। प्रस्तुत गद्यांश उस समय का है जब सिंघानिया सावित्री के घर आता है। सिंघानिया का उठने-बैठने का तरीका, बातचीत करने का ढंग और व्यवहार शिष्ट व्यक्ति का नहीं है। उसके व्यवहार से अशोक खिन्न हो जाता है और बैठे-बैठे सिंघानिया का कार्टून बनाता रहता है। सिंघानिया के जाने के बाद सावित्री उस कार्टून को देखकर क्रोधित होती है। वह अशोक पर अपना क्रोध उतारती है। सावित्री यह साबित करने का प्रयत्न करती है कि मैं जिन-जिन व्यक्तियों को अपने घर बुलाती हूँ, उसके पीछे कहीं परिवार की भलाई ही छिपी होती है। लेकिन अशोक यह जताना चाहता है कि ऐसे व्यक्तियों को घर पर बुलाया ही क्यों जाता है जिनके आने से हमें अपने छोटे का आभास अधिक महसूस लगता है।

**व्याख्या :** सावित्री ज़ोर देकर अशोक से पूछना चाहती है कि यह साफ-साफ बता दे कि सिंघानिया के बारे में तू क्या कहना चाहता है? लेकिन अशोक एक कार्टून के माध्यम से उस व्यक्ति के बारे में अपनी मनोभावनाएँ व्यक्त करना चाहता है। लेकिन स्पष्ट तोर पर कुछ नहीं कहता। सावित्री कहती है कि मैं तो प्रार्थना करके इतने बड़े पदों पर आसीन व्यक्तियों को अपने घर बुलाती हूँ और तुम उनका मज़ाक उड़ाते हो, उनके कार्टून बनाते हो। लेकिन मैं तो घर की खुशहाली के लिए अपने ही कार्यों के कारण उन बड़े व्यक्तियों को बुलाती हूँ। यदि तुम इस प्रकार उनकी अवमानना करते रहे तो मैं आगे बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं करूँगीं। सावित्री चेतावनी देती हुई फिर से कहती है क्या तुमने अच्छी प्रकार से सुन लिया कि आगे से मेहमानों का अपमान मैं बिल्कुल भी सहन नहीं करूँगी। लेकिन अशोक इस बात का उत्तर प्रश्न के रूप में देता है। वह कहता है कि अगर बर्दाश्त नहीं कर सकती तो ऐसे व्यक्तियों को घर बुलाती ही क्यों हो, जिनके आने से घर की शांति भंग होती है। और उन बड़े व्यक्तियों के सामने हम ओर भी अधिक छोटे नज़र आने लगते हैं

**विशेषः**
1. युवा वर्ग का आक्रोश अशोक के माध्यम से व्यक्त हुआ है।
2. सावित्री के चरित्र का उद्घाटन हुआ है कि बड़प्पन की दौड़ में अपनी मान-मर्यादा को भी भुला बैठी है।
3. उच्च वर्ग के सामने और अधिक छोटे दिखाई पड़ते के आभास की बात में कटु सत्य छिपा है।
4. सावित्री के आक्रोश भी अभिव्यक्ति आम बोलचाल की भाषा द्वारा हुई है।

***अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ संबंध बनाकर रखना चाहती हूँ तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो, तो मैं छोड़ दूँगी कोशिश। हाँ इतना कहकर कि मैं अकेले दम इस घर की ज़िम्मेदारियाँ नहीं उठाती रह सकती और एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज़ का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीपती रहूँ रात-दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठी रहूँ अपनी जगह? उससे तो तुममें से कोई छोटा नहीं होगा।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांध सुप्रसिद्ध प्रयोगशील नाटकाकर मोहन राकेश कृत प्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। बड़प्पन की दौड़ में सावित्री और महेन्द्रनाथ का परिवार विघटन के कगार पर आ जाता है। सावित्री महेन्द्रनाथ को नाकारा और आधा अधूरा समझती है। वह बड़े-बड़े लोगों को अपने घर आमन्त्रित करती है। उसका बेटा अशोक घर में आने वाले इन तथाकथित बड़े लोगों को सम्मान की द ष्टि से नहीं देखता। वह सिंघानिया से ठीक प्रकार से पेश नहीं आता और उसका कार्टून बनाता रहता है। सावित्री को जब इस बात का पता चलता है तो वह क्रोध से आगबबूला हो जाती है। अशोक समझता है कि बड़े लोगों के सामने हमें अपने छोटेपन का आभास और अधिक होने लगता है। इस पर सावित्री कहती है कि बड़े लोगों से संबंध में परिवार के हित के लिए बनाए रखना चाहती हूँ।

**व्याख्या :** सावित्री और उसके बेटे अशोक में सिंघानिया के जाने के बाद झड़प हो जाती है। अशोक इन बड़े लोगों के सामने अपने आपको और अधिक छोटा समझने की बात कहता है। सावित्री कहती है कि यदि मैं इन बड़े लोगों से संबंध बनाकर रखती हूँ तो इसमें मेरा अपना निजी कोई स्वार्थ नहीं है अपितु मैं तो तुम्हीं लोगों के लिए ऐसा करती हूँ। यदि इन बड़े लोगों के आने से तुम अपने आपको छोटा समझते हो तो मैं इस घर की स्थिति सुधारने की यह कोशिश छोड़ दूँगी। लेकिन मैं अकेली पूरे घर का दायित्व किस प्रकार सँभाल पाऊँगी। महेन्द्रनाथ की ओर संकेत करती हुई कहती है कि एक वह व्यक्ति है जिसने घर का सारा धन व्यापार में डुबो दिया और अब खाली बैठा है। घर का अन्य कोई भी सदस्य अपनी कोशिश से घर चलाने का कोई अन्य तरीका नहीं ढूँढता है और जब मैं कोशिश करती हूँ तो इसे अपना अपमान समझते हैं। ऐसी स्थिति में मैं किस प्रकार इस परिवार के साथ निभा सकती हूँ। इस परिवार में किसी को किसी भी प्रकार की चिंता नहीं है। ऐसी

स्थिति में सावित्री परिवार का उत्तरदायित्व अकेली निभा पाने में अपने आपको असमर्थ पाती है। सावित्री कहती हैं कि मैं भी अन्य सभी की भाँति दायित्व रहित जीवन व्यतीत करने लगूँगी तब तो कोई किसी प्रकार की हीन भावना से ग्रस्त नहीं होगा?

**विशेष :** 1. प्रस्तुत पंक्तियों में सावित्री ने महेन्द्रनाथ और अशोक पर कटु व्यंग्य किए हैं।

2. अपनी नौकरी की आड़ में सावित्री ने अपने चरित्र की कमजोरी के छिपाने का प्रयत्न किया है।

3. प्रश्नवाचक शैली का प्रयोग हुआ है।

4. आम बोलचाल की सरल, बोधगम्य भाषा का प्रयोग हुआ है।

***मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जीने को। पर जितने हैं, उन्हें मैं इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूँगी। मेरे कहने से जो कुछ हो सकता था इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ से यह अंत है उसका—निश्चित अंत!***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। वास्तव में ही इस नाटक के सभी पात्र 'आधे-अधूरे' हैं। यह प्रसंग उस समय है जब सिंघानिया सावित्री के घर होकर वापस लौट जाता है। अशोक इस प्रकार घर आने वाले व्यक्तियों को बिल्कुल पंसद नहीं करता। सावित्री यह दिखाना चाहती है कि वह बड़े लोगों को घर इसलिए आमन्त्रित करती है कि घर की स्थिति सुधारी जा सके। और किसी प्रकार अशोक को नौकरी मिल जाए। लेकिन अशोक को अपनी मम्मी के इन बड़े लोगों से सबंध और इनका घर आना-जाना बिल्कुल पसंद नहीं। सिंघानिया के जाने के बाद सावित्री, अशोक और बड़ी लड़की में खूब बहस होती है। अशोक बार-बार सावित्री को कहता है कि जब घर का कोई भी सदस्य उसका कोई अहसान नहीं मानता तो सावित्री उनके लिए नौकरी या बड़े लोगों के यहाँ आना-जाना क्यों करती है? अंत में सावित्री कह उठती है कि आगे से मैं केवल अपने लिए ही जीवन जीऊँगी।

**व्याख्या :** सावित्री और उसके पुत्र अशोक में सिंघानिया के जाने के बाद काफी तनातनी हो जाती है। अशोक यह बिल्कुल स्वीकार नहीं करता कि उसकी मम्मी के बड़े लोगों के साथ संबंध परिवार की भलाई के लिए हैं। इस पर सावित्री कह उठती है कि मैं आगे से परिवार के किसी सदस्य का कोई ध्यान नहीं रखूँगी और केवल अपने लिए ही जीवन जीऊँगी। सावित्री को लगता है कि उसकी अधिक उम्र शेष नहीं रह गई है। लेकिन जितना भी जीवन शेष बचा है वह दूसरों के लिए निभाते हुए नहीं अपितु अपने लिए व्यतीत करेगी। क्योंकि इस परिवार के लिए वह जितना कर सकती थी, कर चुकी है। सावित्री कहना चाहती है कि मेरे लाख प्रयत्न करने पर भी इस घर में से किसी एक का भी न हो सका तो मैं अब आगे ऐसा करूँगी ही नहीं। और सावित्री के मतानुसार अब इस घर का अंत निश्चित है।

**विशेष :** 1. सावित्री यह जान चुकी है कि उसका आवारापन का जीवन उसके जवान बच्चे अब स्वीकार नहीं करेंगे।

2. एक बदचलन नारी के बच्चों पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव को दर्शाया गया है।

3. भाव की द ष्टि से छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग उचित प्रतीत होता है।

***मैंने हमशो हर चीज़ के लिए उसे किसी-न-किसी का सहारा ढूँढते पाया है। खासतौर से आपका। यह करना चाहिए या नहीं—जुनेज़ा से पूछ लूँ। वहाँ जाना चाहिए या नहीं—जुनेज़ा से पूछ लूँ। वहाँ जाना चाहिए या नहीं—जुनेज़ा से राय कर लूँ। कोई छोटी-से-छोटी चीज़ खरीदनी है, तो भी जुनेज़ा की पसन्द से। कोई बड़े-से-बड़ा खतरा उठाना है—तो भी जुनेज़ा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझसे ब्याह करने का फैसला भी कैसे किया उसने? जुनेज़ा को हामी करने से।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। नाटक की नारी पात्र सावित्री अपने पति महेन्द्रनाथ को आधा-अधूरा व्यक्ति समझती है क्योंकि वह प्रत्येक कार्य अपने मित्र जुनेज़ा की सहायता से करता है। पुरुष चार यानि जुनेज़ा महेन्द्रनाथ के बारे में सावित्री को कहता है कि उसे तुमने अपने शिकंजे में जकड़ रखा है। वह कहता है कि महेन्द्रनाथ चाहते हुए भी अब उस शिकंजे से बाहर नहीं निकल सकता। लेकिन दूसरों पर निर्भर है। वह स्वयं कोई भी निर्णय नहीं ले सकता। ऐसा आक्षेप लगाती हुई सावित्री कहती है—

**व्याख्या :** सावित्री पुरुष चार यानि जुनेज़ा से कहती है कि जब से मैंने महेन्द्रनाथ को जाना है तब से ही उसे हर छोटे-बड़े कार्य में निर्णय के लिए किसी दूसरे पर निर्भर पाया हैं विशेषतौर पर तो वह सदैव जुनेज़ा का ही सहारा ढूँढता है। वह कभी भी किसी कार्य करने से पहले जुनेज़ा का मत जानना चाहता है। चाहे कहीं जाने की बात हो या कोई वस्तु खरीदने से संबंधित निर्णय लेना हो। किसी बड़े कार्य में कोई बड़ा खतरा दिखाई देता हो तो भी वह जुनेज़ा से सलाह करके उस खतरे

को उठाने का न उठाने की बात का निर्णय करता है। सावित्री कहती है कि महेन्द्रनाथ ने उससे विवाह करने का निर्णय भी जुनेज़ा के हाँ करने से ही किया था। सावित्री ऐसे व्यक्ति को आधा समझती है जो अपनी किसी भी बात का निर्णय स्वयं नहीं ले सकता और हर छोटी-बड़ी बात के लिए दूसरे पर निर्भर हो।

**विशेष :** 1. महेन्द्रनाथ के आधे-अधूरे को दर्शाया गया है।

2. सावित्री के चरित्र का पता चलता है कि अपने अंदर झाँकने की अपेक्षा पराक्षेपी अधिक है।

3. छोटे वाक्यों और सरल शब्दावली में गूढ़ भावों की व्यंजना हुई है।

***और उस भरोसे का नतीजा? कि अपने-आप पर उसे कभी किसी चीज़ के लिए भरोसा नहीं रहा। ज़िंदगी के हर चीज़ की कसौटी—जुनेज़ा। जो जुनेज़ा सोचता है, जो जुनेज़ा चाहता है, जो जुनेज़ा करता है, वही उसे भी सोचना है, वही उसे भी चाहना है, वही उसे भी करना है। क्यों? क्योंकि जुनेज़ा तो एक पूरा आदमी है अपने में। और वह खुद? वह खुद एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई भी नहीं है।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्य अवतरण प्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश के चच्रित नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने चार पुरुष पात्रों की भूमिकाएँ एक ही व्यक्ति से करवाई हैं। यह संवाद सावित्री और पुरुष चार यानि जुनेज़ा के बीच का है। महेन्द्रनाथ की ओर से जुनेज़ा सावित्री को समझाने आता है लेकिन सावित्री महेन्द्रनाथ में अनेक कमियाँ निकालती है। वह आक्षेप लगाती है कि महेन्द्रनाथ हर बात के लिए जुनेज़ा पर निर्भर है। इस पर जुनेज़ा कहता है कि मैं उसका दोस्त हूँ और उसका मुझ पर भरोसा है। इसीलिए वह ऐसा करता है। तब सावित्री कहती है—

**व्याख्या :** सावित्री पुरुष चार यानि जुनेज़ा को सम्बोधित करती हुई कहती है कि महेन्द्रनाथ ने हर बात के लिए जुनेज़ा पर भरोसा किया। और उस भरोसे का परिणाम यह हुआ कि महेन्द्रनाथ की आत्मनिर्णय की शक्ति ही समाप्त हो गई। महेन्द्रनाथ के हर क्षेत्र में अपना आदर्श जुनेज़ा को बना लिया कि महेन्द्रनाथ जैसा सोचता है, जैसा चाहता है, जैसा वह करता है, वैसा ही सब महेन्द्रनाथ भी सोचता, चाहता और करता है। सावित्री कहती है कि जुनेज़ा तो अपने घर की सारी जिम्मेदारियाँ निभाता है, वह तो पूरा आदमी है। लेकिन महेन्द्रनाथ न तो कोई कार्य मन लगाकर करता है, न ही कोई निर्णय ले सकता है। इस प्रकार वह पूरे आदमी का आधा तो क्या चौथाई भी नहीं है। क्योंकि महेन्द्रनाथ अपने प्रत्येक छोटे-बड़े कार्य के लिए जुनेज़ा पर निर्भर है। इस प्रकार सावित्री महेन्द्रनाथ के बारे में जुनेज़ा को ही देवी मानते हुए उसे खरी-खोटी सुनाती है।

**विशेष :** 1. सावित्री की मानसिकता उजागर हुई है।

2. सावित्री अपनी कमियों को छुपाने के लिए महेन्द्रनाथ की कमियाँ गिनवाती है।

3. प्रश्नवाचक शैली व सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***मुझे उस असलियत की बात करने दीजिए जिसे मैं जानती हूँ।...एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक ज़रूरत पूरी करने के लिए। कौन ज़रूरत? अपने अंदर के किसी उसको...एक अधूरापन कह लीजिए उसे...उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए...अपने में...पूरा होना होता है। किन्हीं दूसरों को पूरा करते रहने में ही ज़िंदगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेन्द्र के लिए ज़िंदगी का मतलब रहा है...जैसे सिर्फ दूसरों के खाली खाने भरने की ही एक चीज़ है वह। जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते हैं, उम्मीद करते हैं...या जिस तरह वे सोचते हैं उनकी ज़िंदगी में उसका इस्तेमाल हो सकता है।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश रचित नाटक आधे-अधूरे से लिया गया है। सावित्री और पुरुष चार यानि जुनेज़ा के मध्य महेन्द्रनाथ को लेकर वार्तालाप चलता है। जुनेज़ा महेन्द्रनाथ का मित्र होने के नाते सावित्री को समझाने आता है जिससे कि महेन्द्रनाथ और सावित्री का जीवन सामान्य ढंग से चल सके। लेकिन सावित्री महेन्द्रनाथ की कमियाँ गिनवाना शुरू कर देती है। सावित्री को यह बिल्कुल पसंद नहीं कि महेन्द्रनाथ हर बात के लिए जुनेज़ा पर निर्भर रहे। जुनेज़ा उसे समझाता है कि यह असलियत नहीं है। सावित्री जनेज़ा की पूरी बात सुने बिना ही अपने तर्क देना शुरू कर देती है।

**व्याख्या :** सावित्री जुनेज़ा से कहती है कि मैं तो उस असलियत की बात करना चाहती हूँ जिसे मैं जानती हूँ। व्यक्ति अपना घर बसाकर अपने अंदर के अधूरेपन और ज़रूरत पूरा कर लेता है तो वह अपने आपमें पूर्ण महसूस करता है। सावित्री को लगता है कि महेन्द्रनाथ अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सका। साथ ही दूसरों के अधूरेपन को भरने के लिए अपना जीवन काट

रहा है। सावित्री अनुभव करती है कि वास्तव में तो जुनेज़ा के लिए ही महेन्द्रनाथ अपना जीवन जी रहा है। वह जुनेज़ा के खालीपन को भरने की चीज़ मात्र है। सावित्री व्यंग्य करती है कि अन्य व्यक्ति जिस प्रकार भी महेन्द्रनाथ का इस्तेमाल करना चाहे कर सकते हैं। यहाँ तक कि दूसरे व्यक्ति तो महेन्द्रनाथ की सोच को भी अपने अनुसार बदल सकते हैं।

**विशेष :** 1. सावित्री महेन्द्रनाथ के व्यापार में हुए घाटे के लिए अप्रत्यक्ष रूप से जुनेज़ा को दोषी ठहराती है।

2. सावित्री, महेन्द्रनाथ और जुनेज़ा की चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन सूक्ष्म व प्रभावी ढंग से हुआ है।

3. सावित्री अनुभव करती है कि घर में आधा-अधूरा दिखाई देने वाला महेन्द्रनाथ बाहर के लोगों के अनुसार कार्य करता है।

4. आम बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***वज़ह इसकी मैं थी—यही कहना चाहते हैं न? वह मुझे खुश रखने के लिए ही यह लोहा, लकड़ी जल्दी-से-जल्दी घर में भरकर हर बार अपनी बर्बादी की नींव खोद लेता था। पर असल में उसकी बर्बादी की नींव क्या चीज़ खोद रही थी. ..क्या चीज़ और कौन आदमी...अपने दिल में तो आप भी जानते होंगे।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्य अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश कृत नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। महेन्द्रनाथ की पत्नी सावित्री घर के उगमगाते हालात के लिए महेन्द्रनाथ को ही पूरी तरह दोषी ठहराती है। पुरुष चार यानि जुनेज़ा के साथ महेन्द्रनाथ का साँझा व्यापार था। लेकिन महेन्द्रनाथ ने सदा ही अपना हिस्सा शीघ्र ही बीच में निकाल और घर के लिए आराम का सामान इकट्‌ठा करता रहा। उस समय तो पूरा परिवार ऐशोआराम का जीवन बिता रहा था। शीघ्र ही जब व्यापार में महेन्द्रनाथ का हिस्सा समाप्त हो गया और महेन्द्रनाथ बेरोजगार हो गया तो उसे घर में ताने दिए जाने लगे। जुनेज़ा सावित्री को कहता है कि भले ही महेन्द्रनाथ बहुत जल्दबाज़ी बरतता था लेकिन इसकी वज़ह सावित्री ही थी। यह सुनकर सावित्री आवेश में आ जाती है।

**व्याख्या :** सावित्र आवेश में आकर पुरुष चार यानि जुनेज़ा से कहती है कि आप यही कहना चाहते हैं कि न कि महेन्द्रनाथ व्यापार में कहीं भी सफल नहीं हुआ तो इसका कारण मैं हूँ। महेन्द्रनाथ अपने वेतन से अधिक सामान घर में लाकर अपने आपको विनाश के कगार पर ला रहा था। सवित्री पूछना चाहती है कि क्या वह घर छोटा-मोटा सामान (जिसे वह लोहा, लकड़ी का नाम देती है) मुझे खुश करने के लिए लाता था। सावित्री और जुनेज़ा घर की बर्बादी के लिए एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। सावित्री जुनेज़ा को ही अप्रत्यक्ष रूप से दोषी ठहराते हुए कहती है कि उसकी बर्बादी के लिए जो चीज़ या जो व्यक्ति जिम्मेदार है, वह आप जानते ही हैं। इस प्रकार सावित्री साफ-साफ जुनेज़ा को ही महेन्द्रनाथ के घर की बर्बादी के लिए दोषी ठहराती है। क्योंकि महेन्द्रनाथ हर बात के लिए, हर निर्णय के लिए जुनेज़ा पर निर्भर है।

**विशेष :** 1. सावित्री की क्षुब्ध मनोव त्ति का अंकन हुआ है।

2. सावित्री की स्पष्टवादिता का पता चलता है।

3. नाटककार ने इस कथन में यह स्पष्ट किया है कि सावित्री और महेन्द्रनाथ के मनमुटाव का कारण महेन्द्रनाथ की मित्रमण्डली थी।

4. व्यंग्यात्मक किंतु सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***महेन्द्र अब दोस्तों में बैठकर पहले की तरह खिलता नहीं। महेन्द्र अब वह पहले महेन्द्र रह ही नहीं गया! और महेन्द्र ने जी जान से कोशिश की, वह वहीं बना रहे किसी तरह। कोई यह न कह सके जिससे कि वह अब पहले वाला महेन्द्र रह ही नहीं गया। और इसके लिए महेन्द्र घर के अंदर रात-दिन छटपटाता है। दीवारों से सिर पटकता है। बच्चों को पीटता है। बीवी के घुटने तोड़ता है। दोस्तों को अपना फर्सत का वक्त काटने के लिए उसकी ज़रूरत है। महेन्द्र के बगैर कोई पार्टी जमती नहीं।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश रचित नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। जुनेज़ा सावित्री को समझाने की बहुत कोशिश करता है जिससे उसकी और महेन्द्रनाथ की ग हस्थी सुचारु रूप से चल सके। दोनों का वार्तालाप बहुत लम्बा चलता है। जुनेज़ा महेन्द्रनाथ के घर की वर्तमान स्थिति के लिए सावित्री के आवारापन को दोषी ठहराता है। लेकिन सावित्री महेन्द्रनाथ को आधा-अधूरा व्यक्ति मानती हुई कहती है कि महेन्द्रनाथ के घर की अपेक्षा अपनी मित्र-मण्डली को अधिक महत्त्व दिया है। वह कहती है कि महेन्द्रनाथ की बर्बादी की नींव उसके मित्रों ने ही खोदी है।

**व्याख्या :** सावित्री जुनेज़ा से बात करते हुए आवेश में आकर कहती है कि जब से महेन्द्रनाथ ने सावित्री से विवाह किया तभी से महेन्द्र के चाहने वालों को यह बात अच्छी नहीं लगी। सावित्री जुनेज़ा पर आक्षेप लगाती हुई कहती है कि आप लोगों को हमारे विवाह के बाद ऐसा लगा कि मेहन्द्र हमसे छीन लिया गया है। स्वाभाविक ही था कि महेन्द्र अब दोस्तों को कुछ कम समय दे पाता होगा। इसलिए महेन्द्र के दोस्त कहने लगे कि महेन्द्र अब पहले की तरह दोस्तों की महफिल में बैठकर खिलखिलाकर हँसता नहीं। उसका स्वभाव कुछ बदला सा गया है। और महेन्द्र इस प्रयत्न में लगा रहा कि दोस्तों के लिए वह पहले वाला महेन्द्र ही बना रहे। और उसके मित्र उसमें कोई परिवर्तन अनुभव न कर सकें। इसी चक्कर में महेन्द्र घर में सामान्य न रह पाया। घर के अंदर वह घुटन अनुभव करने लगा। इसी घुन की अभिव्यक्ति उसके व्यवहार से दिखाई देने लगती है। कभी वह दीवार से सिर पटकता है और कभी अपना आक्रोश बच्चों व पत्नी को पीटकर प्रकट करता है। महेन्द्रनाथ के दोस्तों को अपन समय व्यतीत करने के लिए उसकी आवश्यकता अनुभव होती है। दोस्तों के लिए मज़ाकिया किस्म का महेन्द्र उसके मनोरंजन का एक साधन है। उसके अभाव में उसे दोस्तों को पार्टी में लुत्फ़ नहीं मिलता। सावित्री महेन्द्रनाथ की मनःस्थिति के लिए उसकी मित्रमण्डली को दोषी ठहराती है।

**विशेष :** 1. सावित्री की स्पष्टवादिता लक्षित होती है।

2. ऐसा प्रतीत होता है कि सावित्री की अपनी चारित्रिक कमियाँ ही नहीं अपितु महेन्द्रनाथ की मित्र-मण्डली की उसके घर के विखराव के लिए दोषी है।

3. छोटे-छोटे वक्याशों का सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***बच्ची थीं या जो भी थीं, पर बात बिल्कुल इसी तरह करती थीं जैसे आज करती हो। उस दिन भी बिल्कुल इसी तरह तुमने महेन्द्र को मेरे सामने उधेड़ा था। कहा था कि वह बहुत लिजलिजा और चिपचिपा सा आदती है। पर उसे वैसा बनाने वालों में नाम तब दूसरों के थे। एक नाम था उसकी माँ का दूसरा उसके पिता का...।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अन्तरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश के प्रसिद्ध नाटक आधे-अधूरे से लिया गया है। सावित्री और महेन्द्रनाथ के बीच अत्यधिक कटुता आने पर परिवार बिखराव की स्थिति तक पहुँच जाता है। जुनेज़ा महेन्द्रनाथ और सावित्री में समझौता करवाने के उद्देश्य से उनके घर आता है। लेकिन सावित्री जुनेज़ा की एक नहीं सुनती। सावित्री परिवार की वर्तमान स्थिति के लिए सारा दोष महेन्द्रनाथ और मित्र-मण्डली को देती है। लेकिन जुनेज़ा सावित्री को कहता है कि आज तो वह महेन्द्रनाथ में कमियाँ निकालते हुए उसके मित्रों को दोषी बता रही है लेकिन वास्तविकता यह है कि सावित्री को प्रारम्भ से ही महेन्द्रनाथ से नफरत थी। और उसकी कमजोरियाँ छिपाने के लिए किसी-न-किसी पर दोषारोपण करना उसका स्वभाव है।

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि तुमने बाईस वर्ष पहले मुण्डली यह बात कही थी कि महेन्द्रनाथ एक लिजलिज़ा और चिपचिपा इंसान है। इस पर सावित्री कहती है कि तब मैं नासमझ बच्ची थी। जुनेज़ा इस बात पर अपना तर्क देता है कि चाहे बाईस वर्ष पहले तुम बच्ची थी लेकिन बात इसी प्रकार करती थी। उस समय भी तुम महेन्द्रनाथ में इतनी ही कमियाँ निकालती थी, जितनी आज निकाल रही हो। आज की तरह उस समय भी उसे चिपचिपा और लिजजिला इंसान समझती थी। अन्तर सिर्फ इतना है कि आज महेन्द्रनाथ के व्यवहार के लिए दोषी व्यक्तियों के नाम अलग हैं। बाईस वर्ष पहले उसको ऐसा बनाने वालों में उसके माता-पिता के नाम थे। जुनेज़ा के इस कथन से स्पष्ट होता है कि सावित्री को तो महेन्द्रनाथ में दोषान्वेषण करने ही हैं, चाहे उसके लिए दोषी किसी को भी ठहराना पड़े।

**विशेष :** 1. जुनेज़ा के माध्यम से सावित्री के चरित्र को विश्लेशित किया गया है।

2. अपनी कमियों को छिपाकर सावित्री की परदोषारोपण की प्रव त्ति को उजागर किया गया है।

3. सहज, सरल एवं भावानुकूल शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

***असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता ज़िंदगी में, तो साल-दो-साल बाद तुम यही महसूस करतीं कि तुमने ग़लत आदमी से शादी कर ली है। उसकी ज़िंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेज़ा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती, यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है—कितना एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण मोहन राकेश रचित प्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। यहाँ पुरुष चार यानि जुनेज़ा और सावित्री के मध्य संवाद से यह व्यक्त होता है कि सावित्री व्यर्थ ही महेन्द्रनाथ पर दोषारोपण करती रहती, वास्तव में सावित्री है कि फ्लर्ट किस्म की औरत। महेन्द्रनाथ एक-एक करे उन व्यक्तियों के नाम गिनवाता है, जो-जो सावित्री के सम्पर्क में रहे हैं। पहले जुनेज़ा, फिर शिवजीत, उसके बाद जगमोहन। सावित्री का स्वभाव ही ऐसा है कि वह कुछ दिन एक व्यक्ति से प्रभावित होती है, उसकी ओर आकर्षित होती है और कुछ दिन बाद उसे उसमें कमियाँ नज़र आने लगती हैं। तब सावित्री उस व्यक्ति को छोड़कर अगले व्यक्ति को तलाशने लगती हैं इन्हीं कारणों से वह अपने पति महेन्द्र के प्रति पूर्णतः समर्पित कभी नहीं हो सकी। इसी भाव की अभिव्यक्ति यहाँ जुनेज़ा के कथन से होती है।

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि तुमने सदैव ही महेन्द्रनाथ को हीन समझा। तुमने कभी जुनेज़ा, कभी शिवजीत और कभी जगजोहन को अपना बनाना चाहा। कुछ ही दिनों में सम्पर्क के बाद तुम्हें उस व्यक्ति में कमियाँ नज़र आने लगतीं और तुम उसे छोड़कर अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित हो जाती। इसी सन्दर्भ को आगे बढ़ाता हुआ जुनेज़ा कहता है कि वास्तव में महेन्द्र की जगह यदि इनमें से भी कोई व्यक्ति तुम्हारा जीवनसाथी होता तो भी साल दो साल बाद ही तुम यह अनुभव करती कि मैंने जिस व्यक्ति से विवाह किया है, वह ठीक नहीं है क्योंकि तुम संतोषी प्रव त्ति की नहीं है और दोषान्वेषण तुम्हारी आदत है। जुनेज़ा आगे कहता है कि तुम एकाएक ही काफी कुछ पा जाना और दिखा करना चाहती हो। ऐसा एकदम और किसी एक व्यक्ति के साथ संभव नहीं हो पाता इसलिए तुम सदैव ही अपने आपको रिक्त अनुभव करती हो और उदास रहती हो।

**विशेष :** 1. जुनेज़ा द्वारा सावित्री की चारित्रिक कमियों की ओर संकेत किया गया है।

2. सावित्री के चरित्र की कमियाँ सहज विश्वसनीय हैं।

3. सामान्य बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग किया गया है।

***देखा है कि जिस मुट्ठी में तुम कितना कुछ एक साथ भर लेना चाहती थीं, उसमें जो था वह भी धीरे-धीरे बाहर फिसलता गया है कि तुम्हारे मन में लगातार एक डर समाता गया है, जिसके मारे कभी तुम घर का दामन थामती रही हो, कभी बाहर का और कि वह डर एक दहशत में बदल गया। जिस दिन तुम्हें एक बहुत बड़ा झटका खाना पड़ा...अपनी आखिरी कोशिश में।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। 'आधे-अधूरे' समकालीन ज़िंदगी का सार्थक नाटक है। जुनेज़ा और सावित्री के मध्य लम्बा संवाद चलता है जिसमें सावित्री यह साबित करने का प्रयत्न करती है कि महेन्द्रनाथ एक कुढ़ने वाला व्यक्ति है। सावित्री की इस शिकायत पर पुरुष चार यानि जुनेज़ा कहता है कि आज महेन्द्र एक कुढ़ने वाला व्यक्ति है लेकिन वह पहले ऐसा नहीं था। वह तो सदा प्रसन्नचित रहने वाला व्यक्ति था। सावित्री ने बात-बात पर उसे हीन साबित करके उसे कुढ़ने वाला व्यक्ति बना दिया। सावित्री कहती है कि जुनेज़ा ने उसके आसपास के वातावरण को पूरी तरह नहीं देखा और जाना है। इस बात पर जुनेज़ा कहता है—

**व्याख्या :** जुनेज़ा महेन्द्रनाथ की वर्तमान दशा के लिए सावित्री को दोषी ठहराते हुए कहता है कि उसने महेन्द्रनाथ और उसके आसपास को पूरी तरह देखा है और यह भी देखा है कि तुम एकाएक ही जिस मुट्ठी में बहुत कुछ भर लेना चाहती थीं, वह भी धीरे-धीरे समाप्त होता चला गया। जो चीज़ सावित्री घर या बाहर प्राप्त करने की कोशिश कर रही थी, उसके न मिलने पर डर का भाव उसके अंदर समाता चला गया। सावित्री ने घर के सदस्यों को तो अपना कभी समझा ही नहीं और बाहर के जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में वह आई वे सब एक-एक करके दूर होते गए। इससे सावित्री के मन में डर और गहरा होता चला गया। सावित्री ने बाहर के व्यक्तियों में से आखिरी कोशिश मनोज के रूप में की थी। जिससे सावित्री को सबसे बड़ा धोखा मिला जब वह बड़ी लड़की बिन्नी को लेकर भाग गया।

**विशेष :** 1. जुनेज़ा ने सावित्री के चरित्र के उस पक्ष को उद्घाटित किया है जिसमें उसने अपनी रिक्तता को भरने के लिए अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क बनाए किंतु उसकी अपूर्णता पूर्ण होने की बजाय और बढ़ती गई।

2. मनोज के चरित्र की ओर संकेत किया गया है।

3. जुनेज़ा की स्पष्टवादिता झलकती हैं

4. बोलचाल की सरल शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

***फिर भी तुम्हें लगता रहा है कि तुम चुनाव कर सकती हो। लेकिन दाएँ से हटकर बाएँ, सामने से हटकर पीछे, इस कोने से हटकर उस कोने में...क्या सचमुच कहीं कोई चुनाव नजर आया है तुम्हें बोलो? आया है नज़र कहीं ?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांग प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित चर्चित नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। इस नाटक में नाटककार ने सामान्य मध्यवर्गीय परिवार में पनपती महत्त्वाकांक्षाओं और उन्हें पूरा करने के लिए निम्न-से-निम्न प्रकार के हथकण्डे अपनाए जाने का निर्णय किया है। महेन्द्रनाथ की नौकरी न होने के कारण और व्यापार में सफलता न मिलने के कारण वह एक बेकार समझा जाने वाला व्यक्ति बन चुका है। सावित्री उसे पति सम्मान नहीं देती। वह तो चाहती है कि उसे महेन्द्र से बेहतर मिले तो वह इस परिवार से छुटकारा पा ले। सावित्री के इसी स्वभाव पर कटाक्ष करता हुआ जुनेज़ा कहता है—

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री के चरित्र पर आक्षेप लगाता हुआ कहता है कि तुमने अनेक पुरुषों में से किसी-न-किसी एक को चुनने का प्रयत्न किया। सावित्री के अंत में यह मान लिया कि सब पुरुष एक जैसे होते हैं, अलग-अलग मुखौटे, पर चेहरा सबका एक जैसा है। लेकिन सावित्री इसी प्रयत्न में लगी रही दाएँ नहीं तो बाएँ, आगे या पीछे, इधर-उधर कोई पुरुष महेन्द्रनाथ से बेहतर मिल जाएगा। लेकिन जुनेज़ा पूछना चाहता है कि क्या वास्तव में कोई चुनाव कर सकी। जुनेज़ा यह स्पष्ट करना चाहता है कि सावित्री का स्वभाव ही ऐसा है कि किसी एक पुरुष के साथ जीवनयापन नहीं करना चाहती। उसे तो प्रत्येक में कुछ-न-कुछ कमी लगने लगती है और फिर अपने स्वभावानुसार वह फिर अन्य पुरुष के चुनाव में लग जाती है।

**विशेष :**
1. जुनेज़ा के कथन से स्पष्ट है कि सावित्री अपने अंदर की अपूर्णता को ढकने के लिए जगमोहन, शिवजीत, जुनेज़ा या मनोज आदि में पूर्णता की तलाश करती रही है।
2. मंचन के लिए उपयुक्त सरल, सजीव, भाषा का प्रयोग हुआ है।

***तुम्हारा घर है, तुम बेहतर जानती हो। कम-से-कम मानकर यही चलती है। इसलिए बहुत कुछ चाहते हुए भी मुझे अब कुछ भी संभव नज़र नहीं आता। और इसीलिए फिर एक बार पूछना चाहता हूँ तुमसे—क्या सचमुच किसी तरह तुम उस आदमी को छुटकारा नहीं दे सकतीं?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश द्वारा लिखे गए नाटक 'आधे-अधूरे' से अवतरित है। पुरुष चार यानि जुनेज़ा और सावित्री के बीच सावित्री और महेन्द्रनाथ के घर के हालात के बारे में विस्तारपूर्वक बातचीत होती है। महेन्द्रनाथ की उस घर में स्थिति को लेकर भी बहस होती है। सावित्री महेन्द्र के दोस्तों को उसकी वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराती है जबकि जुनेज़ा इसके विपरीत सावित्री को दोषी बताता है।

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि तुम अपने घर को भले ही बेहतर जानती हो। और नहीं भी जानती हो तो भी यह तो तुम समझती अवश्य हो कि मैं ही अपने घर की वर्तमान स्थिति के विषय में बेहतर जानती हूँ। इस घर की स्थिति सुधारने का अब कोई उपाय नज़र नहीं आता। वास्तव में सावित्री को अपने परिवार के किसी भी सदस्य से विशेष लगाव नहीं है। उसे अपने आवारापन से ही फुर्सत नहीं है। वह अपने बच्चों को भी यथोचित समय नहीं दे पाती। सावित्री के उत्तरदायित्व विहीन व्यवहार को देखकर जुनेज़ा कहता है कि भले ही मैं तुम्हारे परिवार की स्थिति को सुधारना और पति-पत्नी के संबंध मधुर करने का प्रयत्न करना चाहता हूँ। लेकिन जुनेज़ा को ऐसा होना असंभव नज़र आता है। पति-पत्नी के संबंधों को सुधारने के उद्देश्य में सफलता न मिलते देखकर जुनेज़ा आगे कहता है कि सावित्री किसी प्रकार महेन्द्रनाथ को अपने बनावटी प्रेम से मुक्त ही कर दे।

**विशेष :**
1. जुनेज़ा ने सावित्री के चरित्र पर तीखे प्रहार किए हैं।
2. महेन्द्रनाथ और बच्चों के व्यवहार पर सावित्री के चरित्र से पड़ रहे प्रभाव को चित्रित किया गया है।
3. सावित्री के बनावटी प्रेम की पोल खोली गई है।
4. मंचन योग्य आम बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***इसलिए कि आज वह अपने को बिल्कुल बेसहारा समझता है। उसके मन में यह विश्वास बिठा दिया है तुमने कि सब कुछ होने पर भी उसकी ज़िंदगी में तुम्हारे सिवा कोई चारा, कोई उपाय नहीं हैं और ऐसा क्या इसीलिए नहीं किया तुमने कि ज़िंदगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम-से-कम यह नामुराद मोहरा तो हाथ में बना ही रहे?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश रचित प्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। जब जुनेज़ा और सावित्री के मध्य लम्बा संवाद चलता है तो जुनेज़ा सावित्री के चरित्र को परत-दर-परत खोलता चला जाता है। सावित्री अनेक

पुरुषों से सम्बन्ध बनाती है और प्रत्येक व्यक्ति में उसे कोई-न-कोई कमी नज़र आती है। सावित्री महेन्द्रनाथ को लिजलिजा और चिपचिपा इंसान कहती है। जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि किसी तरह वह महेन्द्रनाथ को सचमुच ही छुटकारा दे दे। सावित्री पूछना चाहती है कि जुनेज़ा बार-बार महेन्द्रनाथ को छुटकारा देने की बात क्यों कह रहा है? सावित्री की बात का उत्तर देते हुए जुनेज़ा कहता है—

**व्याख्या :** जुनेज़ा स्पष्ट करता है कि सावित्री के व्यवहार ने महेन्द्रनाथ को बिल्कुल असहाय बना दिया है। महेन्द्रनाथ को यह विश्वास दिला दिया गया है कि सावित्री के बिना उसका कोई अस्तित्व या जीवन जीने का कोई आधार नहीं है। आज स्थिति ऐसी हो चुकी है कि महेन्द्र अपने आपको नितान्त अकेला महसूस करता है। सावित्री को अनेक पुरुषों से सम्बन्ध बनाने पर भी जब किसी पूर्ण पुरुष की प्राप्ति नहीं हुई तो उसने सोचा कि महेन्द्रनाथ के उसके पति बने रहने में ही भलाई है। इससे समाज में उसे सामाजिक संरक्षण तो मिलता ही रहेगा। सावित्री महेन्द्रनाथ को समाज में दिखावे मात्र के लिए ही अपने बनावटी प्रेम में बाँधे रखना चाहती है। वह न तो उसके प्रति पूर्णतः समर्पित है और न उसे पूर्णतः मुक्त कर पाती है। जुनेज़ा आगे कहता है कि तुमने महेन्द्रनाथ को अपने ऊपर इतना निर्भर बना दिया है कि वह न तो कोई निर्णय करने में समर्थ है, न ही अपने को किसी कार्य के योग्य समझता है। इससे भले ही सावित्री को भी कुछ विशेष प्राप्ति नहीं होती लेकिन इतना अवश्य लगता रहेगा कि निकम्मा और नाकारा ही सही लेकिन व्यक्ति रूपी मोहरा तुम्हारी इच्छानुसार कार्य करने वाला है।

**विशेष :** 1. सावित्री के दिखावटी पत्नीत्व को दर्शाया गया है।

2. जुनेज़ा ने सावित्री के चरित्र के कटु सत्य को रेखांकित किया है।

3. मंचन योग्य सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***तो ठीक है वह नहीं आएगा। वह कमज़ोर है, मगर इतना कज़ोर नहीं है। तुमसे जुड़ा हुआ है, मगर इतना जुड़ा हुआ है। उतना बेसहारा भी नहीं है जितना वह अपने को समझता है। वह ठीक से देख सके, तो एक पूरी दुनिया है उसके आसपास। मैं कोशिश करूँगा कि वह आँख खोलकर देख सके।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्य अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है। जुनेज़ा पहले तो सावित्री को समझाने का प्रयत्न करता है कि किसी प्रकार सावित्री और महेन्द्रनाथ का पारिवारिक जीवन सामान्य हो सके। लेकिन जब जुनेजा घर के बाहर न्यू इंडिया की गाड़ी खड़ी देखता है तो वह समझ जाता है कि सावित्री से मिलने जगमोहन आया है। उसे लगता है कि अब किसी भी प्रकार सावित्री और महेन्द्र का जीवन सामान्य नहीं हो सकता। अब जुनेज़ा महसूस करता है कि अब सावित्री को सचमुच ही महेन्द्रनाथ को छुटकारा दे देना चाहिए। इस बात पर सावित्री कहती है कि मुझे उस मोहरे की कोई आवश्यकता ही नहीं है जो न खुद चलता है, न औरों को चलने देता है। जुनेजा सावित्री के मुख से ऐसा सुनकर कुछ हताश हो जाता है।

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि इस घर में महेन्द्रनाथ को बेकार समझा जाता है, इसलिए वह यहाँ नहीं आएगा। भले ही वह अशक्त है लेकिन इतना अशक्त भी नहीं कि इस परिवार के सदस्यों द्वारा उसे अपमानित किया जाए। घर से कटा हुआ होने के कारण उसे बेसहारा तो कहा जा सकता है लेकिन उसे अपने आपको इतना बेसहारा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि उसकी पूरी मित्र-मण्डली उसके साथ है। यदि वह अपने मित्रों को अपना समझे तो उसके पास एक पूरी दुनिया है। वास्तव में इस परिवार ने महेन्द्रनाथ को विवेकशून्य बना दिया है केवल आवश्यकात है एक बार आँख खोलकर भली-भाँति उन्हें देखने और परखने की। हो सकता है इस परिवार की वास्तविकता से सही मायने में परिचित होने के उपरान्त वह इस परिवार को भूल सके।

**विशेष :** 1. जुनेजा द्वारा महेन्द्रनाथ के खोए हुए आत्मविश्वास और स्वाभिवान को जाग त करने का प्रयास इन पंक्तियों में उजागर होता है।

2. महेन्द्रनाथ का सावित्री के प्रति प्रेम और सावित्री की महेन्द्रनाथ के प्रति उपेक्षा इन पंक्तियों में स्पष्ट है।

3. मंचन योग्य सरल, बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है।

4. छोटे-छोटे वाक्यों में गंभीर भावाभिव्यक्ति हुई है।

# 1

# आधे-अधूरे : कथासागर / कथावस्तु

आधे-अधूरे एक सामाजिक नाटक है और इस नाटक में नाटककार ने मध्यवर्गीय निम्न आय वाले परिवार की ज्वलन्त समस्याओं को उजागर किया है। पाँच सदस्यों के परिवार में आर्थिक कठिनाइयों तथा व्यक्ति असन्तोष ने मनुष्यों में ही नहीं अपितु घर के वातावरण में भी एक दमघोटू मनहूसियत भर दी है। बेकार लड़के और पति के निठल्लेपन और बौने चरित्र से ऊबी स्त्री अपने काल्पनिक पूरेपन की तलाश में इतनी महत्त्वाकांक्षी हो गई है कि ऊँचे पद के पुरुषों से शारीरिक संबंध बना कर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करना चाहती है परन्तु अन्ततः निराश, हताश, क्लांत होकर उसी घर में लौटने पर विवश है। ग हस्वामी की मर्यादा से च्युत पुरुष भी घर से भागकर भी उसी में लौटने के लिए विवश है। बड़ी लड़की, अशोक आदि बच्चे भी घर के दमघोटू वातावरण के खिलाफ नपुंसक आक्रोश व्यक्त करते हैं। संभवतः घर के सभी सदस्य अपने असन्तोष, खोज, कुंठा, टूटन, घुटन की यातना भोगने के लिए अभिशप्त हैं।

नाटक की शुरुआत काले सूट वाले आदमी के लम्बे एकालाप से होती है। वह यह इशारा भी करता है कि नाटक के शेष पुरुष पात्रों के रूप में भी वही बार-बार दर्शकों के सामने आएगा।

दिनभर दफ्तर में काम से थकी-हारी और घर के सामान से लदी स्त्री घर की अव्यवस्थित हालत को देखते ही परेशान और उत्तेजित हो जाती है। इसी मनःस्थिति में उसका सामना पुरुष-एक यानि अपने पति महेन्द्रनाथ से हो जाता है। दोनों में स्त्री के बॉस सिंघानियाँ के घर आने की बात को लेकर विवाद होता है। स्त्री यानि सावित्री के मुताबिक वह बॉस को अपने बेटे अशोक की नौकरी लगवाने के लालच में बुला रही है। जबकि महेन्द्रनाथ और अशोक दोनों इस तर्क से सहमत नहीं है। कमाऊ पत्नी और निठल्ले पति के उस वाद-विवाद के दौरान घर, घटनाओं और चीजों का पिछला कच्चा-चिट्ठा खुलता है। स्त्री घर तथा बच्चों की हालत बिगाड़ने की जिम्मेदारी पुरुष के कंधों पर डालना चाहती है और पुरुक्ष स्त्री के कंधों पर। पुरुष जगमोहन और मनोज जैसे सावित्री के पुरुष-मित्रों का नाम लेकर स्त्री को हीन दिखाना चाहता है तभी बाहर से बड़ी लड़की बिन्नी आ जाती है उसके हालचाल के माध्यम से नाटककार यह बता देता है कि बिन्नी ने अनजाने में माँ के प्रेमी मनोज से ही भागकर शादी कर ली थी। अब वह भी अपने माँ-बाप की तरह दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट है। अपनी स्कूली जरूरतों की शिकायतों को लिए छोटी लड़की किन्नी आती है। अश्लील किताब पढ़ने को लेकर भाई-बहन में झगड़ा होता हैं। सबसे अपमानित और आहत होकर महेन्द्रनाथ हमेशा के लिए घर छोड़ने की धमकी देकर चला जाता है।

पुरुष दो के रूप में सावित्री का चालू बॉस सिंघानियाँ आता है। उसकी अभद्र और असंगत हरकतों से क्रुद्ध अशोक परोक्षतः उसका मजाक उड़ाता है। माँ के नाराज होने पर वह उस पर भी यह लांछन लगा देता है कि अपनी खुशी के लिए वह हमेशा बड़े-बड़े आदमियों से ही अपने सम्बन्ध-सम्पर्क बनाती रही है। बेहद आहत और दुखी होकर सावित्री सबके लिए घर छोड़ने का मन बना लेती है। यहाँ नाटक का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है।

उत्तरार्द्ध के प्रथम द श्य में अशोक, बिन्नी, किन्नी के जरिए रचनाकार बताता है कि एक भिन्न स्तर पर ये सब भी अपने माँ-बाप की नारकीय जिन्दगी का विस्तार भर ही है। स्त्री घर छोड़ने के इरादे से अपने पूर्व-प्रेमी जगमोहन के साथ बाहर जाती है और उसकी चालाकी से हताश, क्रुद्ध और दुःखी होकर खाली हाथ वापस लौटते ही किन्नी को पीट देती है। घर पर महेन्द्रनाथ का दोस्त जुनेज़ा उसके इंतजार में है। सावित्री बिन्नी की उपस्थिति में पति महेन्द्रनाथ को रीढहीन, लिजलिजा और आधा-अधूरा आदमी बताती है। पुरुष चार यानी जुनेजा भी तब स्त्री का कच्चा चिट्ठा लेकर बताता है कि पिछले इक्कीस सालों से वह कितनी बार किस-किस के साथ भाग जाने का असफल प्रयास करती रही है? जितना कुछ वह पाना चाहती है वह उसे कभी किसी भी एक पुरुष से नहीं मिल सकता। इसलिए अधूरेपन के अहसास से दुखी रहना ही उसकी नियति है। यही आकर स्त्री महसूस करती है कि अलग-अलग मुखौटों के बावजूद सब पुरुषों का चेहरा एक ही है सब आधे-अधूरे हैं। एक-दूसरे से अलग होने का निर्णय लेने के बावजूद सावित्री की तरह महेन्द्रनाथ भी नाटक के अन्त में फिर घर वापस आ जाता है और नाटक के सभी पात्र घर के इस नरक में फिर से वही शुरुआत करने को पुनः तैयार हो जाते हैं।

'आधे-अधूरे' नाटक की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त, आकर्षक एवं सुगठित है। यह अपने सामाजिक कलेवर में उस मध्यवर्गीय परिवार की विघटनशीलता को प्रकट करती है जो स्तरीकरण की दौड़ में दौड़ता आर्थिक, मानसिक विसंगतियों को झेलता है। नाटक की कथावस्तु को फिल्मी स्टाइल की भाँति अन्तर्विकल्प नाम देकर दो भागों में बाँटा गया है। पूरे नाटक की कथावस्तु केवल एक ही द श्य पर खेली जा सकती है। उसमें जरा सा भी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। मौलिकता, संक्षिप्तता, रोचकता, यथार्थता और सम्बद्धता आदि 'आधे-अधूरे' नाटक की कथावस्तु के महत्त्वपूर्ण गुण है। इसकी कथावस्तु अत्यन्त सरल व सीधी है क्योंकि इसमें विविध घटनाओं का घटाटोप नहीं है, व्यर्थ के प्रसंगों की योजना नहीं की गई है और वस्तु को आदि से अन्त तक एक ही मुख्य कथा पर नियोजित किया गया है। लेखक ने कथावस्तु को अनावश्यक विस्तार से बचाकर न तो नाटक का कलेवर बढ़ने दिया है और न कथा की गति में कोई अवरोध आने दिया है। नाटक की कथावस्तु के विकास की द ष्टि से चार भाग स्वीकारे जाते हैं—

1. प्रारम्भ, 2. विकास, 3. चरम सीमा, 4. परिणति

1. **प्रारम्भ**—नाटक को नाटककार के प्रारम्भ पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि इस भाग में नाटक की कथावस्तु हमारे सम्मुख आती है। नाटक का प्रारम्भ कौतूहल व जिज्ञासा युक्त होना चाहिए। 'आधे-अधूरे' में काले सूट वाले व्यक्ति द्वारा कथावस्तु के उद्घाटन पक्ष को बड़े सुन्दर और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। काले सूट वाले व्यक्ति का वह उद्घाटक अंश नाटकीय कथावस्तु से दर्शकों-पाठकों को इस प्रकार से बाँध देता है कि उनकी कौतूहलता व जिज्ञासा बढ़ती जाती है। इस प्रकार से इस नाटक का आरम्भ अत्यन्त आकर्षक, कौतूहलपूर्वक है।

2. **विकास**—कथानक के विकास में भी सभी घटनाएँ आती हैं जो दर्शकों की कल्पना से परे एकदम नया मोड़ लेकर कौतूहल बनाए रखती हैं। इनकी मोड़ों को नाटकीय स्थल भी कहा जाता है।

सावित्री जगमोहन के साथ नए जीवन की शुरुआत करने के लिए गई है, दर्शकों की धड़कनें बढ़ जाती हैं कि आगे क्या होगा? क्या वह जगमोहन के साथ नए जीवन का आरम्भ करेगी या नहीं? नाटककार ने नाटकीय युक्तियों का भी प्रस्तुत नाटक में भरपूर प्रयोग किया है। यथा—घर की चीज़ों का बिखराव, पुरुष का फाइलें झाड़ना, अखबार पढ़ना, लड़के का तस्वीरें काटना, पैड पर कार्टून बनाना, मोटर की बैटरी डाउन होना, डिब्बे का खोलना, पैंट में कीड़ा घुसने का नाटक करना, छोटी लड़की का हकलाना आदि घटनाएँ कथावस्तु का विकास करती हैं।

3. **चरमसीमा**—नाटक की कथावस्तु में चरम सीमा का दर्शन कई स्थानों पर होता है। जब सावित्री जगमोहन के साथ नया जीवन बिताने का फैसला करती है। तथा जब पुरुष तथा स्त्री दोनों घर छोड़कर चले जाते हैं। इन स्थलों पर नाटक की कथावस्तु या कौतूहल चरम-सीमा पर पहुँच जाता है।

4. **परिणति**—नाटकान्त में नायक या नायिका फल की प्राप्ति करते हैं और यहाँ पर दर्शक या पाठक की जिज्ञासा शान्त होती है। 'आधे-अधूरे' नाटक के अन्त में स्त्री-पुरुष दोनों अपनी घर छोड़ने की नियति को त्यागकर उसी घर के दमघोटू वातावरण में लौटने को विवश हैं। मध्यवर्गीय परिवार की इन्हीं सामाजिक-आर्थिक मानसिक विसंगतियों की चरिकालीनता को द्योतित करता हुआ यह नाटक समाप्त हो जाता है।

जहाँ तक कथावस्तु की संक्षिप्ति का प्रश्न है—इसको दो-ढाई घण्टे में सफलतापूर्वक मंचित किया जा सकता है। डॉ. पुष्पा बंसल का कथन है—''कुल छब्बीस घण्टों का समय ही इसका सम्पूर्ण कथानक है। उसमें शाम के पाँच बजे से लेकर शाम के सात बजे के लगभग तक का समय विकल्प अन्तराल से पहले लिया गया है और यही दो-ढाई घण्टे का समय विकल्प अन्तराल के बाद। बाईस-तेईस वर्ष का समय, क्योंकि इन चार-पाँच घण्टों में सिमट आया है।''

इसके साथ-साथ कथावस्तु को फिल्मी स्टाईल में अन्तराल और विकल्प दो भागों में विभाजित किया गया है। नाटककार का यह विभाजन इसलिए सार्थक लगता है क्योंकि प्रथम भाग की समस्याओं का समाधान दूसरे भाग के अन्त तक हो जाता है। नाटककार ने कथावस्तु को संक्षिप्त करने के लिए बहुत सारी घटनाओं को तो केवल सूचित कर दिया है जैसे महेन्द्रनाथ का व्यापार से घाटा उठाना, जगमोहन का सावित्री से व्यवहार, महेन्द्र द्वारा सावित्री की शारीरिक प्रताड़ना, किन्नी-सुरेखा काण्ड आदि।

कथावस्तु में रोचकता का समाहार करने के लिए नाटककार ने कहीं हास्य, कहीं व्यंग्य और कहीं मनोरंजन की स ष्टि की है। सिंघानिया प्रसंग का उदाहरण द्रष्टव्य है—

**''लड़का** : (उसकी नकल उतारता हुआ) ''अच्छा यह बतलाइए कि आपके राजनीतिक विचार क्या हैं? राजनीतिक विचार है मेरे—खुजली और मरहम।''

× × × × ×

**पुरुष दो** : (बड़ी लड़की से) तुम्हें पहले कहीं देखा है...नहीं देखा?

**बड़ी लड़की** : नहीं तो।

**पुरुष दो** : फिर भी लगता है देखा है...काई और लड़की होगी। बिल्कुल तुम्हारे जैसी थी। विचित्र बात नहीं यह?

**बड़ी लड़की** : क्या?

**पुरुष दो** : कि बहुत से लोग एक-दूसरे जैसे होते हैं। हमारे अंकल हैं एक। पीठ से देखो मोरारजी भाई लगते हैं।

**लड़का** : हमारी आंटी है एक गर्दन काटकर देखो—जीना लीली ब्रिजिदा नजर आती है।''

हास्य-व्यंग्य आदि से रोचकता का भाव-सहज और स्वाभाविक रूप से आया है।

नाटककार ने कथावस्तु में नए-नए प्रयोग भी किए हैं। नाटककार ने चलचित्रों की भाँति नाटक के मध्य में अन्तराल रखा है न की परम्परागत नाटकों की भाँति इसका अंकों में विभाजन किया यथार्थ के प्रस्तुतिकरण में यह विभाजन सार्थक लगता है।

इसी प्रकार से 'आधे-अधूरे' नाटक में पांचो अर्थ-प्रकृतियों का भी प्रयोग हुआ है। नाटक का प्रारम्भ काले सूट वाले व्यक्ति के उद्घाटक अंश से होता है। वास्तव में उद्घाटक अंश भावी घटनाओं को पूर्व-सूचनाओं के साथ ही आधुनिक मानव अनिश्चित व्यक्तित्व को स्पष्ट कर देता है। अतः इस प्रसंग में बीज नामक अर्थ-प्रकृति मुख सन्धि और आरम्भ नामक कार्यावस्था का प्रयोग हुआ है। कथावस्तु वैसे दो प्रकार की होती है—आधिकारिक और प्रासंगिक कथा। महेन्द्रनाथ-सावित्री की कथा ही आधिकारिक कथा के अन्तर्गत आती है। बिन्नी-मनोज प्रसंग को प्रकरी के अन्तर्गत रखा जा सकता है। लेकिन पूरे नाटक में कहीं भी पताका के दर्शन नहीं होते हैं। प्रत्याशा, कार्यावस्था और गर्म सन्धि उस स्थल पर दिखाई देते हैं। जहाँ महेन्द्रनाथ अपनी स्थिति को खड़े से टुकड़े के समकक्ष मानता है। नियतप्ति और विमर्श सन्धि उस स्थल पर दिखाई देते हैं जहाँ सावित्री घर के विकास हेतु संघर्ष करती है और कठोर परिश्रम करके विषम स्थिति से निपटने के लिए तत्पर है। नाटक के अन्तिम भाग में जुनेज़ा-सावित्री-महेन्द्रनाथ के चरित्र को परत-दर-परत उधेड़ता है, में निर्वहरण सन्धि और फलागम के दर्शन होते हैं।

इसके अतिरिक्त 'आधे-अधूरे' नाटक के कथानक का आदि-मध्य और अन्त अत्यन्त स्पष्ट है। नाटककार ने प्रारम्भ में ही काले सूट वाले व्यक्ति से उद्घाटन अंश प्रस्तुत करवाया है और फिर प्रेक्षक के समक्ष महेन्द्रनाथ परिवार की विघटनशीलता या प्रदर्शन शुरू होता है।

सिंघानियाँ के फूहड़ व्यवहार को लेकर अशोक-सावित्री में तकरार, सावित्री का जगमोहन के साथ घर छोड़ कर नया जीवन अंश से प्रारंभ करने हेतु जाना और बिन्नी-किन्नी का तकरार युक्त प्रसंग नाटक के मध्य को सुस्पष्ट करते हैं। इसके पश्चात कथा तीव्रता से अन्त की ओर अग्रसर होती है। जुनेज़ा का महेन्द्रनाथ को सावित्री से मुक्ति दिलवाने हेतु आगमन, सावित्री का जगमोहन द्वारा इन्कार करने पर पराजित होकर उदास मन से घर लौटना तथा सावित्री जुनेज़ा के लम्बे-लम्बे, एक-दूसरे के चरित्र को प्रकाशित करते संवाद तथा महेन्द्रनाथ का लड़खड़ाते हुए घर में प्रवेश करने से नाटक की कथा का अन्त होता है।

**डॉ. जयदेव तनेजा** ने नाटक के कथानक के सम्बन्ध में कहा है—

''इस नाटक का कथानक महान् और विराट् घटनाओं से रहित है। पात्रों की संवेदनाओं की आपसी टकराहट और उनके आन्तरिक विस्फोट से ही नाटक आगे बढ़ता है।

नाटक जिस बिन्दु से चलता है अन्त में उसी बिन्दु पर जा पहुँचता है, जहाँ काले सूट वाला आदमी सिगार से राख झाड़ते हुए अन्तर्मुख भाव से कहता है—''फिर एक बार, फिर से वही शुरुआत।''

कथ्य और शिल्प की यह अन्विति अभूतपूर्व और अद्भुत है। इस घोर यथार्थवादी नाटक के साथ 'प्रस्तावना' और एक ही अभिनेता द्वारा विविध पुरुष पात्रों की भूमिकाएँ निभाने वाली अयथार्थवादी रंग-युक्ति का प्रयोग करके राकेश ने संरचना से बड़े साहस का परिचय दिया है।

अतः स्पष्ट है कि इस नाटक में किसी काल्पनिक अथवा ऐतिहासिक वस्तुओं को प्रेक्षकों के सामने नहीं रखा गया है। अपितु भोगे हुए यथार्थ की ईमानदारी के साथ अभिव्यक्ति हुई है। आज महानगरों के मध्यवर्गीय परिवार किस हद तक विघटनशील होकर टूटते-बिखरते जा रहे हैं, यह इस नाटक में यथार्थ रूप से निरूपित हुआ है। इसकी कथावस्तु में न तो प्रसाद के नाटकों की विस्त तता एवं जटिलता है, न ही भारी भरकम संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग, बल्कि संक्षिप्त, सरल एवं रोचक कथावस्तु फिल्मी शैली में प्रयोग की गई है। जिससे दर्शक शीघ्र ही इसकी कथावस्तु से तादात्म्य कर लेते हैं। सारांश यह है कि प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त, सरल, हृदयग्राही, रोचक एवं अभिनव प्रयोगशीलता का आग्रह लिए हुए है।

# 2

# आधे-अधूरे : प्रतिपाद्य (उद्देश्य)

कोई भी रचनाकार अपनी रचना का प्रणयन किसी उद्देश्य की पूर्णता के लिए ही करता है। राकेश जी नई पीढ़ी के रचनाकार हैं। इन्होंने आधुनिक जीवन की यांत्रिकता और विघटनशील मूल्यों का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया है। उन पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद, नीत्से के व्यक्तिवाद और किर्केगार्द, कामू, सार्ग आदि के अस्तित्ववाद का व्यापक प्रभाव है। इसलिए उनके नाटकों में व्यक्तिवादिता, रोमांस एवं सामाजिक यथार्थ का निरूपण हुआ है।

'आधे-अधूरे' नाटक हमारे समाज—विशेष रूप से नागर समाज के जीवन की विसंगतियों, विडम्बनात्मक स्थितियों के सघन बिन्दुओं, पात्रों की मनःस्थितियों एवं संवेदनाओं की टकराहट के आन्तरिक विस्फोट को नाटकीय रूप से रेखांकित करता है। इस नाटक में राकेश जी ने आधुनिक युगीन सांस्कृतिक-पारिवारिक विघटन, अजीब कशमकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या और आवारगी आदि के संकट को रेखांकित किया है।

'आधे-अधूरे' वर्तमान समाज के ऐसे सभी मनुष्यों की नाटकीय जिन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज है जो अर्थलिप्सा, भौतिकता और काल्पनिक अहं की म ग-मरीचिका में फँस कर पारिवारिक एवं आध्यात्मिक शांति को पूरी तरह खो देते हैं। आत्मिक सम्बन्धों को भूलकर मनुष्य सांसारिक अर्थ के चक्कर में अपने जीवन के मूल अर्थ को स्वीकार आधी-अधूरी जिन्दगी बिताने के लिए विवश है। जीवन के हर क्षेत्र में अधूरेपन की भावना से ग्रस्त तथा पीड़ित है। मोहन राकेश के शब्दों में इस नाटक में—''अधूरे का मतलब इनकंम्लीट और आधे का मतलब हाफ है। यह आज के सामान्य वर्ग से सम्बन्धित है जो अपने में 'आधा' भी है और 'अधूरा' भी। यह इस शहर के एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसे परिस्थितियाँ निचले वर्ग की ओर धकेलती जा रही हैं। उनके जोश, पराजय, इच्छाएँ, संघर्ष और इसके साथ-साथ स्थिति का हाथ से फिसलते जाना—मैंने सब कुछ इसमें दिखाने की कोशिश की है।''

विडम्बना यह है कि स्वयं आधे-अधूरे होने के बावजूद हम दूसरे के अधूरेपन को बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। और काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटककर अपनी और दूसरों की जन्दगी नरक बना देते हैं। इस नाटक में मध्यवर्गीय शहरी परिवार का मुखिया महेन्द्रनाथ पराश्रित एवं निठल्ला हो गया है। फलतः उसकी पत्नी सावित्री नौकरी करके परिवार का पालन-पोषण कर रही है। परन्तु वह धन, ऐश्वर्य और काल्पनिक पूरेपन की तलाश में मर्यादा की चौखटे लाँघकर आवारा (फलर्ट) हो गई है। बड़े-बड़े नामधारियों, पदधारियों के सम्पर्क में आती है। इन नामधारी और पदधारी पुरुषों से एक तरफ तो सेक्स की पूर्ति चाहती है और दूसरी तरफ अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार। सावित्री की यह आवारगी एक अच्छे-खासे परिवार को विघटित कर देती है। निठल्लेपन, बेकारी के कारण परिवार का मुखिया अपने-आपको पंगु अनुभव करता है, लड़का अशोक अपनी माँ के पुरुष-मित्रों एवं अपनी बेरोजगारी से क्षुब्ध है। बड़ी लड़की तो घर के दमघोटू वातावरण से बचने के लिए प्रेमी मनोज के संग फरार हो जाती है। जीवन के हर क्षेत्र में हारा पुरुष महेन्द्रनाथ अपना प्रतिकार स्त्री से लेता है। बिन्नी मध्यवर्गीय परिवार की इस इस भयावह स्थिति को व्यक्त करते हुए कहती है—

"मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़िया-घर के एक पिंजरे में रहती हूँ...आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना—खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर—मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयावह द श्य इस घर में देखें है मैंने। कोई भी बाहर का आदमी उन सबको देखता-जानता, तो यही कहता कि क्यों नहीं बहुत पहले ही ये लोग...।''

आधुनिक युग के अधिकांश मध्यवर्गीय परिवारों को इस यंत्रणा में पिसना पड़ता है।

इस नाटक में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में आई उदासीनता का निरूपण यथार्थ के धरातल पर हुआ है। इन सम्बन्धों में अब

साथ-साथ रहने की और सामाजिक सम्बन्धों को ढोने की कटुता ही शेष है। ग हपति की मर्यादा से वंचित महेन्द्रनाथ अपने व्यंग्यों से स्त्री को छेदता रहता है। स्त्री के पुरुष मित्रों के घर आने से पहले घर से बाहर निकल पड़ता है। अपनी इस नियति को स्वीकार करने के लिए महेन्द्रनाथ विवश है।

''मैं इस घर में एक रबड़-स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ—बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में? नहीं बता सकता न? मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है। (लड़के की तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से/(बड़ी लड़की की तरफ इशारा) यह बिना बताए एक रात घर से क्यों चली गई थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिल्कुल सामने आकर) और तुम भी...इतने सालों से क्यों चाहती रही हो कि...?...अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घरघसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।''

महेन्द्रनाथ के इस कथन में जो लाचारी, विवशता, नैराश्य है वह आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक स्तर पर एक ऐसे टूटे हुए व्यक्ति का खण्डित प्रतिबिम्ब है जो वर्तमान युग की स्तरीकरण की दौड़ में भागने वाले किसी भी मध्यवर्गीय मनुष्य के चेहरे पर देखी जा सकती हैं

नाटककार ने इस नाटक में यह स्पष्ट किया है कि जब परिवार की आय पर्याप्त थी तो चार सौ रुपए वाले किराए के मकान में महेन्द्रनाथ का परिवार रहता था, टैक्सियों में आना-जाना होता था, बच्चों की कान्वेंट फीसें जाती थीं, दावतें होती थीं, शराब चलती थी, किन्तु इस ऐय्याशी ने उन्हें अपने सामाजिक स्तर से ऐसे धकेल दिया है कि यह मध्यवर्गीय परिवार एकाएक निम्न मध्यवित्तीय परिवार की श्रेणी में आ गया।

सामाजिक स्तरीकरण की यह भूख महेन्द्रनाथ के पूरे परिवार की सुख-शान्ति को लील गई।

नाटककार का उद्देश्य केवल नर-नारी सम्बन्धों का विश्लेषण भर नहीं है। नाटककार ने आज की युवा पीढ़ी (अशोक, बिन्नी) के दिशाहीन आक्रोश, निष्क्रिय जीवन आदि को भी गहरे स्तर में निरूपित किया है। अशोक अपनी कामुक प्रव त्ति से परिचालित होकर अश्लील तस्वीरें काटता है, सिलाई सेंटर वाली वर्णा के पीछे जूतियाँ चटकता है तो बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ घर से भाग जाती है। उनसे भी कहीं आगे बढ़कर किन्नी जैसी छोटी लड़की के भीतर जमी यौन-उत्सुकता के जरिए नाटककार ने जीवन की विसंगतियों की तरफ संकेत किया है। किन्नी घर के सभी सदस्यों को 'मिट्टी का लौंदा' कहती है।

नाटककार ने स्पष्ट करना चाहा है कि आधुनिक महानगरीय परिवेश में मानवीय असंतोष और कामनाओं की पूर्ति न होने के कारण व्यक्तित्व एवं सम्बन्धों में अधूरापन पैदा होना स्वाभाविक है। इस नाटक में भी महेन्द्रनाथ का परिवार अपनी स्तरीयता की होड़ के कारण विघटन के कगार पर पहुँच गया है। नाटक की नायिका सावित्री अपनी इच्छाओं, असंतोष एवं झूठे अहं के कारण न तो कभी अपने पति के प्रति समर्पित हो पाती है और न ही बच्चों को पर्याप्त मात त्व दे पाती है। वह सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक मूल्यों को ताक पर रखकर क्रमशः शिवजीत, जुनेज़ा, मनोज, सिंघानिया, जगमोहन आदि पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाती है। सावित्री महेन्द्रनाथ से प्रेम विवाह करने के दो साल बाद ही उससे उकता जाती है एवं उसे अधूरा समझने लगती है। उसके बाद वह काल्पनिक पूरेपन की तलाश में चार पुरुषों से सम्बन्ध बना कर भी अकेली, अधूरी अशान्त ही बनी रहती है। पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा सावित्री के अन्दर की इस आवारगी का प्रकटन करते हुए कहता है—

''पुरुष चार—''असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल-दो-साल बाद तुम यही महूसस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेजा, कोई, शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती, यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है—कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहती।''

यहाँ पर पुरुष चार के शब्दों से स्पष्ट है कि इस नाटक में सावित्री और अन्य पात्र अपने अधूरेपन को भरने के लिए विकृत

मूल्यों का दामन पकड़ते हैं। जिसके कारण उत्पन्न असामंजस्य और कटुता सारे परिवार को बिखेर ही नहीं देती बल्कि ऐसे जहरीले वाातवरण का निर्माण भी कर देती है जो पूरे परिवार की तबाही का कारण भी बन जाती है।

**डॉ. नरनारायण राय** इस नाटक के व्यापक उद्देश्य को लक्षित करते हुए कहते हैं—''आधे-अधूरे की रचना के पीछे नाटककार, का यह उद्देश्य रहा है कि वह व्यक्तित्व और संबंधों, दोनों के अधूरेपन को उजागर कर सके। इस बात को कहने के लिए नाटककार, ने जिस जीवन स्थिति का चुनाव और निर्माण किया है वह अपने आप में भी कुछ कह जाती है उसे पारिवारिक विघटन की दिशा का चित्रण, बदलते हुए आर्थिक मूल्यों के संदर्भ में सम्बन्धों के बदलते हुए मूल्यों का परीक्षण, परिस्थितियों के समक्ष आदमी की पराजय की नियति का दिग्दर्शन, मानवीय सन्तोष का अधूरापन और कामनाओं की अत प्ति का अंकन, आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की गाथा, महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार की अभावग्रस्ताता आदि को कथ्य में समाहित किया है। लेकिन मुख्य कथ्य नर-नारी, सम्बन्ध और नियति का हस्तक्षेप तथा इन सबके बीच से उभरने वाले जीवन के अधूरेपन का, व्यक्तित्व के अधूरेपन का अहसास कराना वस्तुता नाटक का मूल कथ्य है।''

कुल मिलाकर यह नाटक स्त्री-पुरुष के लगाव और तनाव, पारिवारिक विघटन तथा मानवीय असन्तोष के अधूरेपन को मूर्त करता है। नाटककार राकेश की सूक्ष्म द ष्टि में मध्यवर्गीय परिवारों में दिन-प्रतिदिन बढ़ती आर्थिक विषमता के सम्भाव्य परिणामों के साथ-साथ सामाजिक सम्बन्धों में आई विक्तता, और शून्यता, प्रेम विवाह के दुष्परिणाम, अत प्त कामभावना एवं स्तरीकरण की झूठी होड़ के दुष्परिणामों को भी सशक्त ढंग से निरूपित किया है।

# 3

# आधे-अधूरे : आधुनिकता

आधुनिकता एक ऐसी जीवन-द ष्टि है जिसके केन्द्र में वर्तमान काल रहता है। औद्योगीकरण के प्रभाव स्वरूप पुरानी मान्यताएँ एवं सम्बन्ध-सूत्र टूटकर नए सम्बन्ध-सूत्र एवं नई मान्यताएँ निर्मित हो रही हैं। आधुनिक युग की पूँजीवादी प्रणाली में आधुनिकता बदलते अर्थ-सम्बन्धों से उपजी नवीन द ष्टि है। औद्योगिक वैज्ञानिक प्रगति के सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ कुछ नए भ्रष्ट मूल्य भी आधुनिकता का जामा पहनकर समाज में मान्य हो रहे हैं। इन्हीं मूल्यों से सामाजिक एवं वैयक्तिक सम्बन्धों में बिखराव उत्पन्न होता है। अब, एकाकीपन, आत्मपीड़ा, अन्तर्विरोध, अस्तित्व का संकट, निराशा, कुण्ठा, मूल्यहीनता आदि के मूल में आधुनिकता का नकारात्मक पहलू है। अबाध स्वतन्त्रता को नितान्त स्वातन्त्र्य वस्तु मानकर उसे निरपेक्षता की सीमा तक खींच ले जाने मे पहले व्यक्ति सामाजिक सन्दर्भों से करता है और अन्त में अपने व्यक्तित्व के बिखराव, घुटन, टूटन एवं कुण्ठित होने का कारण बनता है।

नाटककार मोहन राकेश के नाटकों पर प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद और यथार्थवाद का प्रभाव है। राकेश जी की अनुभूति में बौद्धिकता की प्रधानता है तथा वैयक्तिक-स्वतन्त्रता, औद्योगीकरण, नगरीकरण, कुण्ठा, तनाव, विद्रोह, अजनबीपन, अमानवीयता, घोर नैराश्य, क्रूरता, विसंगति, अनिश्चय आदि आधुनिक भाव बोधों से युक्त है।

मोहन राकेश इन सभी आधुनिक संकटों से गुजरे हैं और आधुनिकता को स जनात्मक अभिव्यक्ति दी है। 'आधे-अधूरे' नाटक का सम्पूर्ण परिवेश आधुनिक है। इस नाटक में मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन की गाथा और स्त्री-पुरुष संघर्ष, तनाव का चित्रण चरम सीमा तक हुआ है। इस नाटक के समकालीन परिवेश में आज के बुद्धि वर्ग के कनफ्यूजन और उनके भावात्मक जीवन की असहाय चीख है। पूरे नाटक में सम्बन्धों का विघटन और जुड़े रहने की छटपटाहट आर्थिक विवशता और दोहरेपन, विलगाव और खण्डित होने की प्रक्रिया और नए मूल्यों की खोज आधुनिकता के सन्दर्भ में व्यक्त हुई है।

नाटक में आधुनिकता का बोध उस स्तर पर भी होता है जब बड़ी लड़की अपनी इच्छानुसार घर से भागकर अपने प्रेमी से शादी करती है। शादी के बाद उसे अपने नए घर में भी सब कुछ गलत लगता है। इसका कारण 'हवा' बताया गया है जो बड़ी लड़की और मनोज के बीच से गुजर कर बेचैनी पैदा कर गई है। यह 'हवा' आधुनिक युग की अर्थलिप्सा, ऊँची महत्वाकांक्षाओं की 'हवा' है।

पुरुष दो और स्त्री के संवादों से भी आधुनिकता का बोध होता है। पुरुष की बातों से उसकी भोगलिप्सा, कामुकता आदि बुरी प्रव त्तियों का प्रकटन जो कि आज के युग के अधिकारी वर्ग की संकीर्ण एवं लोलुप द ष्टि की परिचायक है। पुरुष दो अपनी कामुकता का प्रदर्शन करता हुआ कहता है—

"**पुरुष दो:** अच्छा -अच्छा...हाँ।...ठीक है...देखूँगा मैं। (घड़ी देखकर) अब चलना चाहिए। बहुत समय हो गया। (उठता हुआ) तुम घर पर आओ किसी दिन। बहुत दिनों से नहीं आई।

स्त्री और बड़ी लड़की साथ ही उठ खड़ी होती है।

**स्त्री** : मैं भी सोच रही थी आने के लिए। बेबी से मिलने।

**पुरुष दो** : वह पूछती रहती है, आंटी इतने दिनों से क्यों नहीं आई? बहुत प्यार करती है अपनी आंटियों से। माँ के न होने से बेचारी...।"

परिवार को सुचारु रूप से चलाने के लिए नारी का योगदान होता है। नारी त्याग, ममता, स्नेह, वात्सल्य के रूप से अपने परिवार रूपी व क्ष को सींचती है। पहले नारी का कार्यक्षेत्र केवल घर की चारदीवारी तक ही सीमित था। नारी ने शिक्षा पाकर अपने कार्यक्षेत्र के दायरे को व्यापक बना दिया। वह रूढ़िवादी एवं परंपरावादी परिवेश से मुक्त होकर आधुनिक चेतना पाकर एक

ऐसी विचारधारा की ओर उन्मुख हुई जो पूर्व स्थिति से भिन्न है। आधुनिकता की इस नई चेतना ने ही उसके समक्ष कुछ असंगतियों को जन्म दिया जो बाद में समस्या बन गई। यह नाटक नारी की उन समस्याओं को उजागर करता है। यह जवान बच्चों की एक ऐसी माँ की कथा है जिसको उसकी खोखली महत्त्वाकांक्षा के असन्तोष, आक्रोश असंबद्धता, अजनबीपन (अपने पति और बच्चों के प्रति) और अकेलेपन की मनहूसियत ने चारों ओर से घेर रखा है। जीवन के प्रति उसकी इस असंतुष्टि अत प्ति का कारण है, उसके कुत्सित और भ्रमित जीवन मूल्य।

'आधे-अधूरे' की सावित्री समर्पणशीला, कर्त्तव्यवेदी पर मर मिटने वाली नारी नहीं है। वह व्यक्तिगत सुख को महत्त्व दूती है। वह दुखी है क्योंकि महेन्द्रनाथ से विवाह करके वह यह अपेक्षा रखती है कि पति उसके अधूरेपन को पूर्णता प्रदान करे, इसके लिए जरूरी है कि पति पूर्ण हो। जुनेज़ा जब सावित्री को धिक्कारता है कि महेन्द्रनाथ में हीन भावना आ गई है, उसके लिए सावित्री जिम्मेदार है, महेन्द्रनाथ की बीमारी के लिए भी वह जिम्मेदार है, तब वह भड़क जाती है, कहती है : ''यूँ तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता-फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है, पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत हो।

सावित्री एक पूरे आदमी की तलाश में एक, दो, तीन और चार पुरुषों को आजमा चुकी है। कुछ और नामों का भी नाटक में संकेत दिया गया है जिनको वह आजमा चुकी है। इन सबको उसने आधा-अधूरा पाया है, एक-सा पाया है। सावित्री के इस कथन में कि ''सब-के-सब एक-से हैं, अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा?...सबका एक ही।'' और पुरुष चार के इस जवाब में आधुनिकता बोध गहराने लगता है—

जुनेज़ा सारी स्थिति का जायजा लेने के बाद कहता है—''इसकी जगह आज अगर जुनेज़ा, जगमोहन, शिवजीत या कोई और भी होता तब भी वह इतनी ही असन्तुष्ट इतनी ही अपूर्ण रहती जितनी अब है। क्योंकि उसने जीवन को किन्हीं निश्चित अर्थों से जीने की द ष्टि नहीं पाई है। वह कहता है कि उसके लिए जीने का मतलब है, 'कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर, कितना कुछ एक साथ ओढ़कर' जीना। 'इतना कुछ तुम्हें एकसाथ न मिल पाता और इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती तुम इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहती।''

नाटककार ने जुनेज़ा के इस कथन से स्पष्ट किया है कि आधुनिकता के नाम पर आज की नारी अपने परम्परागत रूप को त्यागकर अपनी बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं के लिए अपने 'व्यक्तित्व' के ह्रास एवं पारिवारिक विघटन का कारण बनती है।

आधुनिक युग से नारी घरेलू दाम्पत्य जीवन की जिम्मेवारी के साथ-साथ नौकरी करके अर्थापार्जन भी कर रही है। इस दोहरे दायित्व के निर्वाह में वह अपने मशीनीकरण का विद्रोह भी करती है। सावित्री भी अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए नौकरी करती है तथा घर आने पर सारे सामान को अव्यवस्थित देखकर क्षुब्ध हो जाती है। वह क्षोभ में लड़के से कहती है, ''—यहाँ सब लोग समझते क्या हैं, मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस-पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती है? मगर किसी के मन में जरा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं...।'' जो स्त्री माँ बनकर, पत्नी बनकर ग हस्थी का 'घर' बनाए रखती है, उसे यदि सारे सदस्य मशीन समझें तो आधुनिक परिवेश की नारी विद्रोह करती है।

महेन्द्रनाथ का बिखरा हुआ व्यक्तित्व आज के मानव के व्यक्तित्व का बोध कराता है। व्यापार में घाटा खाया हुआ, वह एक बेकार-फालतू पति बनकर रह गया है। अब उसे पत्नी की जली-कटी सुननी पड़ती है जिससे उसक स्वाभिमान आहत होता हैं। उसमें अपनी निरर्थकता, अपनी अस्मिता का ज्ञान जागता है, क्योंकि इस घर में उसे कोई कुछ नहीं समझता। उसे दुत्कार, अनादर और अपमान सहना पड़ता है। वह फालतू आदमी है। वह 'इस घर में रबर स्टैम्प भी नहीं', रबड़ का एक टुकड़ा मात्र है—बार-बार घिसा जानेवाला।' यह व्यक्तित्व के विघटन और अस्मिता का प्रश्न आधुनिक स्थितियों में अस्तित्ववाद के कुछ पहलुओं को प्रकाशित करता है।

लड़के और लड़की बिन्नी की बातों से भी बहुत बार अस्वीकार और खीझ के माध्यम से आधुनिकता-बोध उजागर होने लगता है। लड़के की माँ को यह कहना है कि बुलाती ही क्यों हो ऐसे लोगों को जिनके आने से हम जितने छोटे हैं उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।' परोक्ष रूप से इस बात की पुष्टि करता है कि आधुनिक युग में व्यक्ति के व्यक्तित्व का अस्तित्व रहना जरूरी है अन्यथा उसमें व्यर्थता का एहसास जगता है और यही व्यर्थता का एहसास आधुनिकता की एक प्रव त्ति है और नाटक के अन्तिम पन्नों पर बिन्नी के ये शब्द कि 'मिट्टी के लोदें—सबके सब मिट्टी के लोदें' एब्सर्ड नाट्य-परम्परा के आधुनिक भाव बोधों जैसे लगते हैं।

बड़ी लड़की का घर से भाग जाना, परन्तु वहाँ पर चैन न मिलना आधुनिक यान्त्रिक जीवन की व्यापक बेचैनी का सूचक है।

इसने अपना पति अपने-आप चुना है, फिर भी वह वहाँ पर खुश नहीं। वह शादी से पहले समझती थी कि मनोज को उसने जान लिया है, परन्तु 'अब वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था'। उसका यह कथन कि 'दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहे, एक हवा में साँस लें उतना ही ज्यादा एक-दूसरे से अपने आपको अजनबी महसूस करे।' एलियेनेशन, कटाव की स्थिति को उभारता है ,जो आज के जीवन में घर कर गई है। आज हर व्यक्ति एक-दूसरे से तो क्या खुद से भी अजनबीपन महसूस करता है। वह अपने-आपको परिवेश, घर-परिवार—सबसे कटा हुआ महसूस करता है।

**डॉ. इन्द्रनाथ मदान** के अनुसार, ''माँ के घर को बेटी के घर में दोहराया जा रहा है।'' परन्तु 'इस टूटते-बिखरते परिवेश में आधुनिकता का बोध इतना मानव की नियति के स्तर पर नहीं है जितना उसकी स्थिति के स्तर पर है और इतना जितना इसलिए कि एक स्तर को दूसरे स्तर से अलगाया नहीं जा सकता।' यहाँ (लड़की के घर में) भी 'अलगाव-अजनबीपन' की स्थिति है।

नाटककार ने अपने रंग संकेतों एवं मंच सज्जा में भी आधुनिक भावबोधों की अभिव्यक्ति की है। पारिवारिक विघटन का एक जीवन द श्य नाटककार ने दिखलाया है, मंच पर—''दो अलग-अलग प्रकाश-व त्तों में लड़का और बड़ी लड़की। लड़का सोफे पर औंधा लेट कर टाँगें हिलाता सामने 'पेशेंस' के पत्ते फैलाए। बड़ी लड़की पढ़ने की मेज पर प्लेट रखे स्लाइसों पर मक्खन लगाती।..पास में टिन कटर और 'चीज; का एक डिब्बा। पूरा प्रकाश होने पर कमरे में वह बिखराव नजर आता है जो एक दिन ठीक से देख-रेख न होने से आ सकता है...यहाँ वहाँ चाय की प्यालियाँ...अस्त-व्यस्त चीजें। कमरे की यह अस्तव्यस्तता, बिखरापन, देख-रेख की कमी घर को संचालित करने वाली इकाइयों के बिखराव की प्रतिलिपि है। सब एक-दूसरे से विमुख होकर अपनी जिन्दगी जी रहे हैं। यहाँ इन सब से आधुनिक युग की विसंगतियों ही प्रकट होती हैं।

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 'आधे-अधूरे' नाटक की स्थितियों द्वारा नाटककार ने जमाने की सही नब्ज पर अँगुली रखी है जो सामयिक परिवेश में आधुनिकबोध को परखने में सक्षम है। नाटक बदलते जीवन-मूल्यों की कथा कहता है।

'आधे-अधूरे' में आधुनिक महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन का विराट अंकन है। आत्म-जिज्ञासा, आत्म-सन्तुष्टि, व्यक्तिगत ईमानदारी, विलेषणात्मिका द ष्टि, जीवन ढोने का अवसाद एवं क्लान्ति, जीवनचर्या में अवकाश की कमी। ये सब आधुनिकता की विशिष्ट पहचानें हैं। 'आधे-अधूरे' का प्रत्येक पात्र इन विशेषताओं को लिए हुए है। आधुनिकता व्यक्तित्व के स्वतन्त्र अस्तित्व में विश्वास रखती है। प्रस्तुत नाटक के परिवार के सभी पात्र अपने-अपने मन में अपनी-अपनी एक प्रतिमा बनाए बैठे हैं, जिसको वे किसी दूसरे की मानसिक प्रतिमा के लिए समर्पित नहीं कर सकते। प्रत्येक के लिए निजी इच्छा, निजी जीवन द ष्टि, निजी धारणाएँ, निजी जीवन मूल्य सबसे बढ़कर है। ''वैवाहिक जीवन की मध्यवर्गीय विडम्बनाओं के कारण परिवार का प्रत्येक व्यक्ति आधा-अधूरा रहकर अपने-अपने ढंग का संत्रास भोगता है। प्रत्येक पात्र की नियति व त्तात्मक है। सभी लोग पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण से निकट दूर आते हुए बाहर जाकर भी वापस लौटने की नियति से बाध्य हैं।"

प्रस्तुत कृति में समकालीन जीवन की समस्त व्यक्तिगत विसंगतियाँ संवेदना के स्तर पर जीवित और अभिव्यक्त होती हैं। मुख्य है एक परिवार को आधार बनाकर जीवन में तनाव की स्थिति को रेखांकित करना और यह दिखाना कि आज का हर व्यक्ति किस प्रकार विभिन्न स्तर पर तनाव झेलने के लिए विवश है। इसीलिए ओम शिवपुरी ने इसे ''समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक नाटक'' माना है।

# 4

# आधे-अधूरे : युग-बोध

प्रत्येक साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने समसामयिक परिवेश से अवश्य प्रभावित होता है। सजग साहित्यकार अपने युग के चारों तरफ के वातावरण, घटनाओं, समस्याओं आदि को सचेतन द ष्टि से देख-परखकर अपने युग का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है।

युगीन समस्याएँ एवं घटनाक्रम साहित्यकार की संवेदना से सम्प क्त होकर साहित्य में अवतरित होती है। अतः सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही साहित्यकार की संवेदना के निर्माण, परिवर्तन एवं गति की सूचक होती हैं। मोहन राकेश कालीन परिवेश में विभिन्न परिस्थितियों के उलटफेर, बदलते जीवन मूल्यों और वर्तमान जीवन की जटिल जीवन स्थितियाँ युग-प ष्ठभूमि बनकर साहित्य में अवतरित हुई हैं। अतः राकेश जी के सम्पूर्ण नाट्य साहित्य पर इन युगीन परिस्थितियों का पर्याप्त प्रभाव है। मोहन राकेश उन नाटककारों में से हैं जिन्होंने अपने परिवेश से प्रभावित होकर विभिन्न विसंगतियों के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए अपने नाटकों की रचना की है।

'आधे-अधूरे' नाटक का स जन स्रोत भी उनका युग परिवेश एवं निजी जीवन ही है। चिरन्तन काल से ही मानव परिस्थितियों से लड़ता आकर उन्हें नव्य परिवेश एवं आयाम प्रदान करता आ रहा है। परन्तु आज की यान्त्रिक मानसिकता, भीतर-बाहर के दबावों, आर्थिक वैषम्यों एवं यौनाचारों की स्वच्छन्दता की प्रव त्ति ने परिवर्तन ला सकने की क्षमता पर एक प्रश्न-चिह्न -सा लगा दिया है। तभी तो आज का मानव अपने ही आधे-अधूरेपन से संत्रस्त, अपने में ही दब-घुटकर उन्हीं परिस्थितियों में बने रहने के लिए विवश हो जाता है कि जिन्हें उसकी मानसिकता 'अयाचित' स्वीकार करती है। तभी तो वह वित ष्णा से भरकर भी, बार-बार 'नये अर्थ' के लिए जाकर भी जहाँ से शुरुआत करता है, वहीं लौट आने को विवश हो जाता है।

मोहन राकेश की नाट्य प्रतिभा अपने आस-पास बिखरे परिवेश में नई रचना (धर्मिता) की तलाश करती है। 'आधे-अधूरे' नाटक अपने समकालीनता के प्रतिबद्ध है। इसलिए वह अपने परिवेश के साथ व्यक्ति को आँक रहा है। जिसमें उसकी निगाह इतिहास के परिवेश से हटकर, आज के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले सामाजिक परिवेश पर गई है। मध्य वित्तीय स्तर से ढहकर निम्न मध्य वित्तीय स्तर पर आया हुआ एक परिवार उसका केन्द्र-बिन्दु है।

युग बोध की द ष्टि से इस नाटक में स्पष्ट किया गया है कि आज मानव स्वयं को ऐसी परिस्थितियों में जकड़ा हुआ पाता है, जो उसे आत्मकेन्द्रित तथा आत्मरत बना देती हैं। जिसके कारण उसका सम्बन्ध समाज तथा बाहरी जीवन से कट जाता है या शिथिल पड़ जाता है। अपने इस यथार्थ में उसको अनेक स्वरूपों में प्रस्तुत होना अनिवार्य हो गया है। वह कभी विद्रोही है, तो कभी मात्र निषेधात्मक चीत्कार या आक्रोश है, कभी अजनबीपन का भटकाव है तो कभी सचेत सक्रिय एवं ठोस यथार्थ की पहचान है, कभी वर्जनाओं से प्राप्त असहनीय नैराश्य में भटकाव की असीमता एवं निरर्थकता को ढोने वाला अभिशप्त है। अतः यह पूरा नाटक अपने परिवेश की उपज है।

इस नाटक का नायक महेन्द्रनाथ एक नाकारा निकम्मे और लिजलिजे किस्म का आत्मविश्वासहीन पुरुष है, जो अपने नाकारेपन के एहसास से छटपटाता है, किन्तु आर्थिक रूप से अपनी स्त्री की कमाई पर आश्रित रहने के कारण दयनीय स्थिति में जी रहा है। एक स्त्री है, जो अपने इस निकम्मे पति के प्रति खीझ से भरी घर की टूटती-बिखरती जिन्दगी से ऊब कर 'एक पूरे आदमी' की तलाश में इधर-उधर भागती है। वह चाहती है कि ''असल आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी शख्सियत हो?'' इसी मादे और शख्सियतवाले आदमी की तलाश में वह अधूरे आदमियों से टकरा-टकरा कर लौटती है और अपनी खीझ में चीखती-चिल्लाती, तार-तार होती हुई उसी लिजलिजे आदमी के साथ जिन्दगी जीने के लिए मजबूर होती है। घर में रोज-रोज की यह चीख घर की बड़ी लड़की और लड़के तथा छोटी लड़की पर अपना प्रभाव डालती है। बड़ी लड़की किसी के साथ भाग जाती है, जो बाद में पता चलता है कि उसकी माँ का ही एक

प्रेमी था। लड़का। आवारा ओर धरीहीन निकल जाता है और ''एलिजाबेथ टेलर, आड्रे हेपबर्न...शर्लेमैम्लेन...जनाब जिन्दगी काट रहे हैं इन तस्वीरों के साथ।'' तेरह वर्ष की अवस्था की छोटी लड़की उद्धत, अशिष्ट और विद्रोह की आग में लिपटी इसी परिवेश के अनुसरण में चौपट हो रही है। देखने में यह कहानी जितनी सीधी लग रही है परन्तु इसमें रोजमर्रा के दिखाई देने वाले पात्रों के माध्यम से मध्य वित्तीय परिवार की टूटती हुई कड़ियाँ और ढहते हुए मूल्यों का खाका पेश किया है। जिन्हें देखकर लगता है इस नाटक के पात्रों में हममें से कोई भी हो सकता है। इसे महज एक साधारण परिवार की त्रासदी कहकर टाला जा सकना सम्भव नहीं है। यह एक आईना है जो अपने-आपसे अपने आस-पास के जीवन से साक्षात्कार कराता है। नाटक के अन्दर भी स्वाकारोक्ति है। ''विभाजित होकर भी मैं किसी-न-किसी अंश में आपमें से हर एक व्यक्ति हूँ''

आजादी के बाद की बदली हुई परिस्थितियों में सबसे भारी बदलाव आया—स्त्रियों की हैसियत में। इस परिवर्तन से प्रभावित होने वाला वर्ग था देश का सबसे बड़ा वर्ग यानी मध्यवर्ग। जहाँ धर्म और नैतिकता के बन्धन सबसे ज्यादा थे। इसलिए प्रतिक्रियाएँ और विस्फोट भी सबसे ज्यादा इसी दायरे में हुए। सावित्री जैसी एक स्त्री अगर नौकरी करके अपने परिवार को पुरुष की तरह चलाने लगती है तो उसके पारिवारिक परिवेश को हर कोने से सर्वाधिक प्रहार झेलने होते है। सावित्री चूँकि आधुनिक महत्त्वाकांक्षिणी नारी है इसलिए सभी भौतिक सुख-सुविधाओं का उपयोग करना चाहती है। चूँकि महेन्द्रनाथ उसकी इन इच्छाओं की पूर्ति करने में असमर्थ है इसलिए वह स्वयं घर से बाहर निकल पड़ती है। वह जीविकोपार्जन के लिए नौकरी करती है और घर से बाहर के संसार से परिचित होने के उपरान्त विपक्षगामी हो जाती है। उसे लगता है कि उसका पति आधा-अधूरा है इसलिए वह अपने अधूरेपन को पूर्ण करने के प्रयत्न में अन्य लोगों के सम्पर्क में आती है। अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह धन और वैभव के पीछे भागती है। आवारा होती चली जाती है। वह बड़े-बड़े नामधारियों के सम्पर्क में आती है। क्योंकि उसे व्यक्ति नहीं उसे पद, वैभव और सामाजिक प्रतिष्ठा से प्यार है। सावित्री की यह धन की पिपासा, एक अच्छे-खासे परिवार को दीमक की तरह चाट जाती है। घर के अन्य सदस्य भी वर्तमान युग के प्रभाव से युक्त दिखाई देते हैं जिसमें मनुष्य अपने 'स्व' और आत्मकेन्द्रित सोच के कारण अजनबीपन, घुटन, कुण्ठा, संत्रास आदि से पीड़ित है। राकेश जी ने आधुनिक युग की युवा पीढ़ी की उच्छंखलता को भी निरूपित किया है।

बिन्नी-अशोक इस घर के फूहड़ वातावरण एवं माता-पिता के रिक्त, तिक्त, शून्य सम्बन्धों से अछूत नहीं रह पाते और बिन्नी अपनी प्रोढ़ा माँ के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है। लेकिन माता-पिता के संस्कारों के कारण ही उसका वैवाहिक जीवन भी सुखमय नहीं है। अशोक सारा दिन पिता की भाँति बेकार-बेगार रहकर अभिनेत्रियों की अश्लील तस्वीरें काटता रहता है। वर्णा उद्योग सैंटर वाली के पीछे जूतियाँ चटखता रहता है। किन्नी अपनी उम्र से अधिक परिपक्व हो गई है और यौन-सम्बन्धों में रस लेने लगती है। किन्नी घर के सभी सदस्यों को 'मिट्टी का लौंदा' कहती है। इसके साथ-साथ आधुनिक युग की पूँजीवादी व्यवस्था में पिसते निम्न मध्यम वित्तीय परिवार की अर्थाभाव की समस्या को भी नाटककार ने इस परिवार के माध्यम से चित्रित किया है।

महेन्द्रनाथ-सावित्री का यह परिवार पूर्व में अत्यन्त सम्पन्न और सम द्ध परिवार था तथा व्यापार के घाटे के कारण और ऊल-जलूल खर्चों के कारण अब आर्थिक संकट की दलदल में फँसा हुआ है। लेकिन नायिका सावित्री अपनी इच्छाओं पर तुषारापात होते देखकर परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए परिवार के स्तर को विकसित करने के लिए अनेक अमीर पुरुषों से सम्पर्क बनाती है। एक ओर तो वह इसमें सैक्स की पूर्ति करती है तथा दूसरी तरफ अर्थाजन।

इस नाटक में महानगरीय परिवेश की सफल अभिव्यक्ति को लक्षित करते हुए **डॉ. प्रतिभा अग्रवाल** का कहना है—''महानगरीय विशेषकर दिल्ली का जीवन जीने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवार की परिस्थितियों, सम्बन्धों, आपसी मनमुटाव, घुटन, त्रासदी आदि का ऐसा सशक्त चित्रण सम्भवतः अन्य किसी भारतीय नाटक में नहीं है।'' स्त्री-पुरुष के एक-दूसरे को उधेड़ते, नोचते-काटते स्नेह रहित सम्बन्ध, बालकों की बदजुबानी-अशिष्टता-अखण्डता और माता-पिता के प्रति आदर-श्रद्धा का अभाव, पारिवारिक विघटन-टूटन-कुण्ठा आदि को उजागर करता यह नाटक सामाजिक दशाओं का दस्तावेज बन गया है।

नाटककार मोहन राकेश 'आधे-अधूरे' में आधुनिक युग में प्रचलित प्रेम-विवाह की समस्या को भी उजागर करना चाहता है। महेन्द्र-सावित्री, बिन्नी-मनोज के माध्यम से नाटककार प्रेम-विवाह की असफलता की ओर इशारा करना चाहता है। विवाह से पूर्व सावित्री के जुनेज़ा, जगमोहन और शिवजीत आदि से सम्बन्ध थे लेकिन बाद में महेन्द्रनाथ का प्रेम-व्यापार विवाह में परिणत हो गया लेकिन उनका यह प्रेम-विवाह सफलता के सोपानों पर नहीं चढ़ सका।

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि इस नाटक के माध्यम से मोहन राकेश ने आज के युग बोध को ही उजागर करना

चाहा है। 'आधे-अधूरे' आज की इस उबाऊ-कुढ़नशील जिन्दगी का ही आलेख है। एक टूटता हुआ परिवार, एक मध्यवित्तीय से निम्न मध्यवित्तीय घर, किस प्रकार तनाव-खीझ, तनातनी, लाचारी और विवशता में जीता है—यह सामयिक बोध से ही जुड़ा प्रश्न है। पति-पत्नी का विवाहोपरान्त कुछ सालों में ही ऊबकर एक-दूसरे से छुटकारा पाने की कोशिश, उनकी बात-बात में व्यंग्य और विक्षोभ, विवाह की अनावश्यक आवश्यकता और गलत चुनाव—ये सब युगीन विडम्बना को उभारते हैं।

आज रसहीन और अनिश्चित जिन्दगी की यथार्थपरक अभिव्यक्ति करने वाले नाटक में नाटककार ने अपने युग के जीवन की विसंगतियों को पूरी तल्खी के साथ व्यक्त किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् मध्यवर्ग में आर्थिक विषमताओं ने क्रमशः पारिवारिक बिखराव, मानसिक तनाव और नैतिक पतन को बढ़ावा दिया है। नाटककार राकेश ने इस नाटक में आज की संत्रासपूर्ण परिस्थितियों की कटु सम्भावनाओं का संकेत दिया है।

**डॉ. जयदेव तनेजा** मोहन राकेश की परिवेश जन्य सजगता को लक्षित करते हुए लिखते हैं—

"मोहन राकेश ने यथार्थवादी नाटकों की रचना की है उनके नाटकों का परिवेश चाहे कोई भी हो, परन्तु उसमें संघर्षरत—छटपटाता हुआ 'आदमी' आज का ही है।''

# 5

# आधे-अधूरे : प्रयोगधर्मिता

'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' दो ऐतिहासिक पौराणिक कथानक पर आधारित नाटकों के पश्चात् 'आधे-अधूरे' राकेश जी का तीसरा नाटक है। राकेश जी का समस्त साहित्य नए भावबोधों की अभिव्यक्ति करता हुआ अपने पार्थक्य प्रभाव की स ष्टि करता है। प्रथम दो नाटकों में नाटककार ने अतीत की कथा को आधार बनाकर समकालीन जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत किया परन्तु 'आधे-अधूरे' नाटक में राकेश जी ने प्रयोगधर्मिता के नये आयाम प्रस्तुत किए है। ऐतिहासिक कथानक लेने पर उनकी रचनात्मक शक्ति का अधिकांश अतीताश्रित वातावरण और परिवेश को बनाए रखने में खर्च होता रहा। अतः प्रयोगधर्मी नाटककार ने इस नाटक में अपनी अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए ऐतिहासिकता का परिवेश छोड़कर समसामयिकता से सीधा साक्षातकार किया है।

'अंधायुग' की तरह यह नाटक भी आधुनिक हिन्दी नाटकों में नई प्रव त्तियों का अग्रदूत माना जा सकता है। इसके द्वारा हिन्दी नाटक में महानगरों के परिवेश में मध्यवित्त परिवार के बिखराव और विसंगति के चित्रण की परंपरा प्रचलित हुई। इसमें राकेश जी ने 'आषाढ़ का एक दिन' भावुकता से उबरते हुए विसंगतियों को अधिकाधिक धारदार ढंग से चित्रित किया है। इसलिए यह नाटक समकालीन जीवन की विसंगतियों के संदर्भ में आधे-अधूरे व्यक्तित्व की पहचान और उसकी पूर्णता की खोज को और आगे तक ले जाता है। इस प्रयोगधर्मी विकास-यात्रा को **इन्द्रनाथ मदान** ने इस प्रकार रेखांकित किया है'' 'लहरों के राजहंस' में आधुनिक मानव की नियति की खोज है। नंद और सुन्दरी एक ऐसे बिन्दु पर पहुच चुके हैं कि इनका एक दूसरे से अलग होना लाजमी हो गया है। नाटककार के सामने सबसे बड़ी समस्या इनको अलगाने की है। इसलिए कहना पड़ता है कि नाटक का मूल उद्देश्य घर की खोज में व्यक्तित्व की खोज है और व्यक्तित्व की खोज में घर की खोज। घर का मतलब उसकी दीवारों और छतों से नहीं है। कालिदास मल्लिका को छोड़कर चले जाने के लिए विवश है और 'आधे-अधूरे' का नायक टूटे घर में लौटने पर लाचार है। 'आषाढ़ का एक दिन' में अलग होने का अंदाज रोमांटिक है, 'लहरों के राजहंस' में यह रोमांटिक-बोध से छुटकारा पाने का है और 'आधे-अधूरे' में यह वास्तव का सामना करने में उजागर होता है।''

कथावस्तु की द ष्टि से अपने पहले ही नाट्य परंपरा की तुलना में इस नाटक में निम्नलिखित नई प्रव त्तियाँ प्रयोगों के रूप में दिखाई देती है—

1. कस्बों या महानगरों के मध्यवर्गीय परिवारों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की अत्याधुनिक परिणतियों को पैनी द ष्टि से उजागरक करता है। शिक्षित एवं नौकरी पेशा औरतों में आधुनिक भाव-बोध के कारण आए बदलाव को हिन्दी नाटक में प्रथम बार इस रूप में चित्रित किया गया है इस द ष्टि से मोहन राकेश ने नये नाटककारों को प्रभावित किया है। यहाँ मल्लिका और सुंदरी का एक निष्ठ प्रेम न होकर सावित्री की ऊब, खीज अत प्ति का निदर्शन है। डॉ. गिरीश कर्नाड के 'हयवदन' नाटक में भी स्त्री पात्र सावित्री की तरह पूरेपन की तलाश में भटकती है। नाटककार ने मनोवैज्ञानिक ढंग से आधुनिक स्त्री की उलझन को सामने रखा है कि स्वयं सावित्री भी अपने स्वयं के अन्तर्विरोधों को जुनेज़ा के मुख से सुनकर स्तब्ध रह जाती है—

''**पुरुष चार :** असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में तो साल-दो-साल बाद तुम यही महूसस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में कोई महेन्द्र, कोई जुनेज़ा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है—कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ जीना। वह उतना—कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहतीं।''

यह प्रयोग नाटककार का एकदम नया एवं आधुनिक जीवन की सच्चाइयों को सशक्त ढंग से व्यक्त करने वाला है।

2. पिछले नाटकों की तुला में इस नाटक में पात्र अपनी असाधारणता को छोड़ते हुए बिल्कुल सामान्य हो गए हैं। फिर भी उनके द्वारा आधुनिक मनुष्य के ठहराव और संशय को नाटककार व्यक्त कर सका है। नाटक के प्रारंभ में ही पुरुष एक (महेन्द्रनाथ) दर्शकों को संबोधित करते हुए कहता है : ''बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी-न-किसी अंश में आपमें से हर एक व्यक्ति हूँ। और यही कारण है कि नाटक के बाहर दो या अंदर, मेरी कोई भी निश्चित भूमिका नहीं है।'' तथा नाटक के अन्त तक पहुँचते हुए स्त्री (सावित्री) कहती है : ''मैंने आपसे कहा है न बस! सब-के-सब एक से बिल्कुल एक से हैं आप लोग अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा? चेहरा सब का एक ही।''

   शहरी जिन्दगी की यान्त्रिकता, संघर्ष एवं अर्थ लिप्सा ने इन पात्रों को एक सा बना दिया है। यह भी राकेश जी का संवेदनात्मक स्तर पर एक नवीन प्रयोग है।

3. यह नाटक अस्तित्ववादी और विसंगतिवादी नाटकों के बीच की कड़ी बन गया है। पाश्चात्य नाट्य परम्परा के अनुकरण से विसंगति, अजनबीपन और अधूरेपन का चित्रण है। मनुष्य की पहचान खोए जाने का एहसास हमें पुरुष, स्त्री, बड़ी लड़की जैसे पात्रों से होता है। पुरुष एक का कथन है : ''मुझे पता है कि मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर-ही-अन्दर इस घर को खा लिया है।''

   तो अपने आपसे अजनबी होते जाते मनुष्य का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। वो लोग वर्षों तक साथ-साथ रहकर भी एक-दूसरे को नहीं पहचान पाते। बड़ी लड़की कहती है : ''शादी से पहले मुझे लगता था कि मैं मनोज को बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ पर अब आकर...अब आकर लगने लगा कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।''

4. प्रयोगधर्मिता का एक नया आयाम यह है कि राकेश जी का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद मिलता है। 'आधे-अधूरे' नाटक में काले सूट वाले की चार भूमिकाएँ राकेश जी के भीतर वाले विभाजित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है जो आरोपों-प्रत्यारोपों में जीता है। अतः युगीन संगति में मिथक का संशोधन निजी आवश्यकताओं के लिए करना भी प्रयोगधर्मी नाटककार की प्रयोगशीलता का अन्यतम उदाहरण है।

   नाट्यशिल्प की द ष्टि से 'आधे-अधूरे' नाटक के शुरू होते ही काले सूट वाले व्यक्ति का दर्शकों से वार्तालाप एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है, जो ब्रेख्त के प्रभाव से आया है। भाषा और संवादों की अतिरिक्त सजगता ने भी इस नाटक की प्रयोगधर्मिता को एक अलग आयाम दिया है। हर पात्र के संवाद बीच में टूटते हुए, टूटकर फिर शुरू होते हुए लगते हैं। इन संवादों में एवसर्ड नाटक का प्रभाव झलकता है। सावित्री और महेन्द्रनाथ ही नहीं, उनकी छोटी लड़की एकालाप करती है—ये सभी पात्र जगह-जगह बड़बड़ाते हुए अपने-आपसे बात करते हुए भी दिखाई देते हैं। पुरुष दो से बातें करता हुआ लड़का उसका कार्टून बनाता जाता है। बाद में उसे देखकर स्त्री को लगता है कि यह चेहरा उसके पति के जैसा ही है।

**''लड़का** : चेहरा देखा है पाँच हजार तनखाह वाले का?

(पैड पर बनाया गया खाका लाकर उसे दिखाता हैं)

**बड़ी लड़की** : यह उसका चेहरा है?

× × × × ×

**बड़ी लड़की** : सिर पर क्या है यह?

**लड़का** : सींग बनाए थे, काट दिए। कहते है...सींग नही होते।

× × × × ×

**स्त्री** : यह चेहरा कुछ-कुछ वैसा नहीं है?

**बड़ी लड़की** : कैसा?

**स्त्री** : तेरे डैडी जैसा?''

संवादों में विद्रूप और व्यग्य विसंगतिबोध को ओर अधिक गहराई से स्थापित करते हैं। इस नाटक में ऐसे संवादों की आद्यन्त भरमार है। इसके अलावा 'आधे-अधूरे' नाटक की पात्र योजना सीमित एवं यथार्थवादी है। सावित्री, महेन्द्र, जुनेज़ा, अशोक

आदि पात्र बिल्कुल यथार्थ के धरातल से उठाए गए हैं। इस यथार्थकता से नाटक ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों की जीवन्त अभिव्यक्ति की है।

रंगशिल्प की द ष्टि से भी प्रयोगधर्मी नाटककार ने अभिनव एवं सार्थक प्रयोग किए हैं। नाटक का सारा द श्यबन्ध सावित्री के घर से शुरू होकर उसी में समाप्त हो जाता है। काले सूट वाले का बार-बार नये व्यक्ति की भूमिका में आना और जगह-जगह दिए गए रंग संकेत नाटक को अभिनेयता की द ष्टि से सफल एवं प्रयोगधर्मी बनाते हैं **डॉ. नरनारायण राय** का कथन है—''एक छोटा सा रंगोपकरण पूरे नाटक को नया अर्थ दे जाता है। 'आधे अधूरे' में ऐसे कई प्रयोग हैं : कैंची और कतरन, कमरे में बन्द किन्नी और उसकी चीख, सिंघानियाँ की पतलून में सुरसुराता कीड़ा, कमरे में बन्द घड़ी जो महेन्द्र का सहारा है आदि ऐसे ही साभिप्राय और सार्थक द श्य रंग प्रयोग है। नाटक के जिस द श्यबंध की कल्पना नाटककार ने प्रस्तुत की है, पूरे घर की कहानी वह द श्यबंध ही कह देता है।" इसके अलावा इस नाटक में राकेश के पूर्ववर्ती नाटकों की काव्यता के स्थान पर बौद्धिकता प्रधान है। आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की सभी समस्याओं को साधारण यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत करने वाला अभिनय व मंचीय नाटक है।

नाट्य शिल्प की द ष्टि से इस नाटक में दो प्रयोग एकदम अगल ढंग के हैं :

(1) एक पात्र का कई भूमिकाओं में उतरना,

(2) नाटककार द्वारा पात्रों के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के स्थान पर जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग।

काले सूट वाला आदमी ही पुरुष एक, दो, तीन और चार की भूमिका में उतरता है। पात्रों के नामों का प्रयोग न करके नाटककार यह प्रदर्शित करना चाहता है कि आधुनिक समाज में मनुष्य की निजता और पहचान खोती जा रही है।

नाटककार का यह प्रयोग सावित्री के कथन—''मैंने आपसे कहा है न, बस! सब-के-सब...सब-के-सब! एक-से! बिल्कुल एक-से हैं आप लोग! अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा?—चेहरा एक ही!''—को चरितार्थ करना चाहा है। नाटककार अनुभूति देना चाहता है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में स्तरीकरण एवं असन्तोष से ग्रस्त हर पुरुष एक जैसा अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है। इसके अलावा नाटककार की प्रयोगधर्मिता चाहे रंगमंच के सम्बन्ध में हो या फिर नाट्यशिल्प से सम्बन्धित प्रतीकों बिम्बों के रूपों में सार्थक अभिव्यक्ति में सहायक है। **डॉ. रीता कुमार** का कथन है—''यह नाटक पूर्णतः यथार्थवादी शैली पर आद्ध त है, जिसमें अनेक सार्थक प्रतीकों का प्रयोग यथार्थ की कटुता को तीव्रता से व्यक्त करने के लिए किया गया है। कमरे के तीन दरवाजे सावित्री के जीवन में प्रवेश करने वाले तीन पुरुषों का प्रतीक है, इन तीन दरवाजों को पारिवारिक विघटन के छिद्र भी माना जा सकता है। नाटक में सर्वाधिक प्रभावशाली प्रतीक अशोक द्वारा की गई कैंची की 'चक-चक' ध्वनि है। एक कोने में तस्वीरें कतरता हुआ यह पात्र दिशाभ्रान्त युवावर्ग के मूक विद्रोह का प्रतिनिधित्व करता है। अनेक मार्मिक स्थलों पर नीरवता में सुनाई देने वाली यह 'चक-चक' ध्वनि मानवीय सम्बन्धों के चुकने तथा जीवन-मूल्यों के प्रति अवज्ञा भाव की सूचक है। नाटक के मध्य में छोटी लड़की का सिसकते हुए खाली कमरे को पार करना वातावरण पर छाए संत्रास को तीव्रतम कर जाता है। 'एक खण्डहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत' क्षण-क्षण टूटती सावित्री के जीवन की करुण त्रासदी का सजीव द श्य उपस्थित कर देता है। राकेश ने इस नाटक में प्रकाश और संगीत योजना से भी कई सशक्त नाटकीय बिम्बों का निर्माण किया है। नाटक के प्रारम्भ में 'अधटूटा टी-सेट' आदि बिखरी वस्तुओं के द श्यबन्ध पर भटकता आलोक तथा खण्डहर की आत्मा कासंगीत वातावरण में छाए तनाव और घुटन से टूटते पात्रों का सजीव बिम्ब दे जाते हैं।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राकेश जी एक नितान्त प्रयोगधर्मी नाटककार है। उन्होंने कथ्य और शिल्प दोनों द ष्टियों से इस नाटक में नवीन एवं सार्थक प्रयोग किए हैं। कथ्य के स्तर पर उन्होंने अपनी पैनी द ष्टि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की आधुनिक परिणति, एकनिष्ठ प्रेम का अभाव, आधुनिकता का दम भरने वाली स्त्री के अन्तर्विरोधों, शहरी जिन्दगी की यान्त्रिकता, संघर्ष, अर्थलिप्सा अजनबीपन, संत्रास, कुण्ठा और नितान्त व्यक्तिकता को यथार्थ के कटु धरातल पर परखती है।

शिल्प के स्तर पर भाषा एवं संवादों की अतिरिक्त सजगता, पात्रों का यथार्थ और मनोवैज्ञानिक धरातल पर चरित्र-चित्रण, ब्रेख्त आदि के प्रभाव से आई ऊलजलूलियत जो की आधुनिक संवेदना को और गहराई से मूर्त करती है। अभिनव रंगमंचीय प्रयोग में रंग संकेतों की प्रतीकात्मकता कम समय और कम स्थान पर ढेर सारी समस्याओं को प्रस्तुत करना आदि नाटककार की प्रयोगधर्मिता को प्रार्थक्य प्रभाव से मुक्त बनाता है।

# 6

# आधे-अधूरे : भाषा-शैली

भाषा भावों और विचारों की वाहिनी है। किसी भी रचनाकार को अपने संवेदनात्मक लक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए भाषा एवं संवादों का सहारा लेना पड़ता है। नाटककार मोहन राकेश भाषा के प्रयोग और महत्त्व को लेकर बहुत सजग थे। इस क्षेत्र में वे अपनी प्रयोगव त्ति के कारण एक प्रतिनिधि नाटककार के रूप में सामने आते हैं। जहाँ 'आधे-अधूरे' नाटक की भाषा का प्रश्न है इस नाटक की भाषा अत्यन्त सरल व आम बोलचाल गुणों की भाषा है तथा साहित्यिक से युक्त है। अंग्रेजी-उर्दू के जनप्रचलित शब्द भी स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं। इस भाषा में क्लिष्टता, दुर्बोधता या जटिलता के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रतिदिन जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा ही 'आधे-अधूरे' की भाषा है। यद्यपि सहज-सरल और साहित्यिकता से युक्त आम बोलचाल की भाषा है, लेकिन फिर भी गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति करने वाली साहित्यिक भाषा है।

नाटककार मोहन राकेश यथार्थवादी रचनाकार हैं। इसलिए उनकी भाषा-शैली भी यथार्थपरक है। सपाट बयानी और व्यंग्यता उनकी भाषा शैली की निजी विशेषता है। इसके अतिरिक्त भाषा में पात्रनुकूलता एवं प्रसंगानुकूलता भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। हास्यपूर्ण प्रसंग, व्यंग्यप्रधान संवाद और कटुतापूर्ण परिवेश की अभिव्यक्ति देने वाली हरकत की भाषा इस नाटक को गहन अर्थवत्ता प्रदान करती है।

'आधे-अधूरे' नाटक में प्रयुक्त भाषा का सम्यक् अनुशीलन करने के उपरान्त हमें सामान्यतः भाषा शैलीगत निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं—

1. सहजता, सरलता एवं रोचकता
2. भावानुकूल एवं प्रवाहमयता
3. पात्रानुकूल भाषा
4. ध्वन्यात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता
5. विभिन्न भाषाओं के शब्दों एवं मुहावरों में सार्थक
6. यथार्थवादी शैली एवं सपाट बयानी

1. **सहजता सरलता एवं रोचकता :** इस नाटक की भाषा में सहजता, सरलता एवं रोचकता के गुण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। कहीं भी दुरूहता, क्लिष्टता एवं जटिल शब्दावली का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके साथ-साथ पात्रों के संवादों मे प्रयुक्त भाषा में सर्वत्र स्वाभाविकता और सरलता से युक्त बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है। यथा—

''**लडका** : पूछ ले इससे। अभी बता देगी, तुझे सब...जो सुलेखा को बता रही थी बाहर।

**छोटी लड़की :** (सुबकने के बीच) वह बता रही थी मुझे कि मैं उसे बता रही थी?

**लड़का** : तू बता रही थी।

**छोटी लड़की :** वह बता रही थी।

**लड़का** : तू बता रही थी। अचानक मुझ पर नजर पड़ी कि मैं पीछे खड़ा सुन रहा हूँ तो...

**छोटी लड़की :** सुरेखा भागी थी कि मैं भागी थी?

**लड़का** : तू भागी थी।

**छोटी लड़की :** सुरेखा भागी थी।''

यहाँ पर प्रयुक्त बोलचाल की शब्दावली से स्वाभाविकता एवं सरलता का गुण द्विगुणित होकर प्रकट होता है। इसके साथ-साथ गम्भीर भावों का वहन करने वाली शुद्ध साहित्यिक भाषा भी अपने परिमार्जित रूप में रोचकता, सहजता युक्त होकर आधुनिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का साधन बनी है—यथा—

''**जुनेज़ा** : बिल्कुल मानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि अपनी आज की हालत का जिम्मेदार महेन्द्रनाथ खुद है। अगर ऐसा न होता, तो आज सुबह से ही रिरियाकर मुझसे न कह रहा होता कि जैसे भी हो, मैं इससे बात करके इसे समझाऊँ। मैं इस वक्त यहाँ न आया होता, तो पता है क्या होता''

उद्ध त पंक्तियों में मध्यमवर्गीय परिवार की विसंगतियों का कारुणिक अंकन सरल एवं साहित्यिक भाषा में हुआ है।

2. **भावानुकूलता एवं प्रवाहमयता :** 'आधे-अधूरे' नाटक की भाषा पूर्णता भावानुकूल एवं प्रवाहमयता के गुणों से ओत-प्रोत है। प्रसंगानुकूल गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति में गम्भीर भाषा का प्रयोग हुआ है और हल्के-फुल्के प्रसंगों पर हल्की-फुल्की भाषा का प्रयोग हुआ है। इसके साथ-साथ सभी प्रसंगों में चाहे हल्के हों या गहन भावों से युक्त, भाषा में सहज गति, प्रवाहमयता एवं अविच्छिन्नता बनी रहती है। तल्खी, बेचैनी एवं आक्रोश की भाषा में प्रवाहमयता का उदाहरण देखिए—

''**बड़ी लड़की :** मेरा अपना घर!...हाँ। और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है। (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा, कि क्या चीज है वह? और कहाँ है वह? इस घर के खिड़कियों-दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जिसे जो वह कहता है कि मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गई हूँ? (स्त्री की दोनों बाँहें हाथ में लेकर) बताओ ममा, क्या है वह चीज? कहाँ पर है वह इस घर में?''

यहाँ पर प्रयुक्त भाषा वातावरण में घुटन-टूटन एवं पात्रों की छटपटाहट भरी मनःस्थिति को प्रकट करने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसके अलावा हल्के-फुल्के प्रसंगों पर हल्की-फुल्की भाषा का प्रयोग है यथा—

''**स्त्री** : मैं नहीं लूँगी चाय।

**बड़ी लड़की** : सबके लिए बना रही हूँ एक-एक प्याली।

**लड़का** : मेरे लिए नहीं।

**बड़ी लड़की** : क्यों पानी रख रही हूँ सिर्फ पत्ती लानी है...।

**लड़का** : अपने लिए बनानी है, बना ले।

**बड़ी लड़की** : मैं अकेली पिऊँगी? इतने चाव से चीज-सैंडविच बना रही।''

3. **पात्रानुकूल भाषा :** राकेश जी के सभी नाटकों में पात्रों की मनः-स्थिति प्रव त्ति एवं व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा प्रयुक्त है। 'आधे-अधूरे' नाटक के पात्र अपनी मनःस्थिति में स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, पहला राजा आदि नाटकों के पात्रों की तरह लम्बे-लम्बे एवं दार्शनिक वाक्यों का प्रयोग नहीं करते हैं। अपितु अपने समकक्षी व्यक्ति को श्रोता बनाकर बोलचाल की शब्दावली में अपने मन की भड़ास निकालते हैं। महेन्द्रनाथ जैसे दब्बू एवं पराश्रित पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व को रचनाकार ने उसकी मनोदशा के रूप में व्यक्त किया है यथा—

''सचमुच महसूस करता हूँ। मुझे पता है कि मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर-ही-अन्दर इस घर को खा लिया है। (बाहर दरवाजे की तरफ चलता है) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए।''

अशोक भी अपने पिता की भाँति बेकार, अकर्मण्य आवारा एवं फैशनपरस्त नवयुवक है। अतः उसके संवादों में अक्खड़पन, विद्रोही प्रव त्ति झलकती है।—पुरुष दो की भोंडी हरकतों से क्षुब्ध होकर अशोक का कथन है—''तुम्हारा बॉस न होता, तो उस दिन मैंने कान से पकड़कर घर से निकाल दिया होता। सोफे पर टाँग पसारे आप सोच कुछ रहे हैं, जाँघ खुजलाते देख किसी तरफ रहे हैं और बात मुझसे कर रहे हैं...(नकल उतारता) 'अच्छा, यह बताइए कि आपके राजनीतिक विचार क्या हैं? 'राजनीतिक विचार हैं मेरे खुजली और उसकी मरहम!''

नाटक की नायिका सावित्री के संवादों की भाषा में भी उसके चरित्र के अनुरूप आवारापन, निर्लज्जता एवं क्षुब्ध मनोदशा का प्रकटन हुआ है—

**''स्त्री** : (आवेग में उसकी तरफ मुड़ती) मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी। महेन्द्र भी एक आदमी है, जिसका अपना घर-बार है पत्नी है, यह बात महेन्द्र को अपना कहने वालों को शुरू से ही रास नहीं आई। महेन्द्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नजर में आपका ही कुछ आपसे छीन लिया।''

इसी तरह नाटक के अन्य पात्रों की भाषा भी उनके चरित्र के अनुरूप ही है। किन्नी की भाषा में विद्रोहीपन, अशिष्टता, जिद्दीपन झलकता है तो पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा की भाषा में जीवन के अनुभव की गहराई।

4. **ध्वन्यात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता :** इस नाटक में स्थान-स्थान पर पात्रों की कारुणिक मनःस्थिति, भयावह परिवेश की विसंगति एवं घुटन, टूटन, बिखराव आदि को व्यक्त करने के लिए नाटककार ने भाषागत ध्वन्यात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता का प्रयोग किया है। नाटक में कई स्थलों पर शब्द और उसके अभिधेय अर्थ को नकारने की कोशिश की गई है। सिंघानिया के संवाद शब्दों के अभिधेय अर्थ का अतिक्रमण कर जाते हैं—

**''पुरुष दो:** हाँ हाँ...जरूर (बड़ी लड़की से) लो तुम भी। (स्त्री से) बैठ जाओ अब।

**स्त्री** : (मोढे पर बैठती) उस विषय में सोचा आपने कुछ?

**पुरूष दो** : (मुँह चलाता) किस विषय में?

**स्त्री** : वह जो बात मैंने की थी आपसे...कि कोई ठीक-सी जगह हो आपकी नजर में, तो...

**पुरुष दो** : बहुत स्वादिष्ट है।''

यहाँ पर स्त्री और पुरुष दो के संवादों में तार्किक संगति न होते हुए भी दोनों की मनःस्थिति व्यक्त होती नजर आ रही है। 'वह जो...तो...' के उत्तर में 'बहुत ही स्वादिष्ट है' वाक्य समकालीन जीवन की विसंगत स्थितियों को नाटकीय ढंग से सम्प्रेषित करता है। नाटककार की यह प्रव त्ति एवसर्ड नाटकों की भाषा से अनुप्राणित है।

नाटक में यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा-शैली को अपनाया गया है। नाटक के लगभग सभी पात्रों की भाषा में व्यंग्य की तीखी मार दिखाई देती है। इससे जहाँ भाषा में विचित्र्य का समावेश हुआ है, वहीं चमत्कार भी उत्पन्न हो गया है। विशेष रूप से महेन्द्रनाथ एवं अशोक के संवादों की भाषा तो पूर्णतः व्यंग्यपरक है। सावित्री एवं महेन्द्रनाथ की वार्तालाप पूर्णतः व्यंग्यपरक है। यथा—

**''पुरुष एक** : हाँ-हाँ सिंघानिया को लगवा ही देगा जरूर। इसलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर।

**स्त्री** : शुक्र नहीं मानते कि एक इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से...।

**पुरुष एक** : मैं नहीं शुक्र मनाता? जब-जब किसी नये आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मानता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था, फिर मनोज आने लगा था।

**स्त्री** : (स्थिर द ष्टि से उसे देखती) और क्या-क्या बात रह गई है कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।

**पुरुष एक** : क्यों जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए।''

यहाँ पर महेन्द्रनाथ का व्यंग्यपरक संवाद सावित्री की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करता है। इसी तरह अशोक एवं सावित्री के संवादों में अशोक व्यंग्यपरक शैली में सिंघानिया एवं सावित्री के चरित्र का उदघाटन करता है-

**''लड़का** : मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है?

**स्त्री** : तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

**लड़का** : उसकी किसी 'बड़ी' चीज की वजह से। एक को कि वह इंटेलेम्यअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं उसकी तनख्वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।

**स्त्री** : और में उन्हें इसलिए बुलाती हूँ कि...

**लड़का** : पता नहीं किसलिए बुलाती हो, पर बुलावा सिर्फ ऐसे ही लोगों को हो। अच्छा, तुम्हीं बताओ, किसलिए बुलाती हो?''

इसी तरह किन्नी, बिन्नी, जुनेज़ा आदि के संवादों में भी व्यंग्यपरक भाषा प्रयुक्त हुई है।

5. **विभिन्न भाषाओं के शब्दों एवं मुहावरों का सार्थक प्रयोग :** 'आधे-अधूरे' नाटक में सामान्य बोलचाल की उर्दू-अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी ही अधिकांश प्रयुक्त हुई। यों एकाध स्थलों पर संस्कृत शब्द भी तत्सम रूप में व्यवहृत हुए हैं। अधिकाशं जनसामान्य में प्रचलित शब्द ही हैं। जिन भाषाओं के शब्द प्रसंगानुकूल किन्तु नाटक में प्रयुक्त हुए हैं उनका आकलन नीचे किया जा रहा है देखिए—

1. **तत्सम शब्दों का प्रयोग** इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग बहुत कम मात्रा में हुआ है और वह हुआ भी है तो विशेष प्रयोजन से ही, यथा—

   ''आप क्या सोचते हैं आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है?''

   ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क हैं न कम्पनी के, तो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते हैं जापान से तो एक पूरा प्रतिनिधि मण्डल ही आया हुआ था पिछले दिनों।—अभी उस दिन मैं जापान की पिछले वर्ष की औद्योगिक सांख्यिकी देख रहा था...'' यहाँ पर 'युवा', 'अराजकता', 'प्रतिनिधिमण्डल' आदि शब्द तत्सम हैं।

2. **तद्भव शब्दों का प्रयोग :** नाटक में तत्सम शब्द तो केवल एक विशिष्ट अवसर पर ही प्रयुक्त हुए हैं। अधिकांश हिन्दी के तद्भव शब्दों का ही प्रयोग 'आधे-अधूरे' में हुआ। इससे नाटक की भाषा में स्वाभाविकता एवं विकास का गुण आ गया है। शब्दों की यह तद्भवता हिन्दी के कुछ शब्दों में द्रष्टव्य है—घर (ग ह), सीख (शिक्षा), आँखें (अक्षि), बूढ़ा (व द्ध), होंठ (ओठ), माँ (मात ), साड़ी (साद क), रात (रात्रि) आदि-आदि।

3. **देशज शब्दों का प्रयोग**—तत्सम एवं तद्भव शब्दों के साथ ही भाव सम्प्रेषण की सुविधा के लिए नाटककार ने 'आधे-अधूरे' नाटक में, कुछ देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है, यथा—चिढ, तिलमिला, खीझना, चरख चरख, किट-किट, मुनिया, लोंदा आदि।

4. **उर्दू शब्दों का प्रयोग**—'आधे-अधूरे' नाटक में उर्दू भाषा के शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। नाटक में प्रत्येक प ष्ठ तो क्या प्रत्येक संवाद अथवा प्रत्येक पंक्ति में कोई-न-कोई उर्दू शब्द अवश्य व्यवहृत हुआ है। पर इतना अवश्य है कि उर्दू होते हुए भी ये शब्द आम बोलचाल के हैं। सरल भाव-संप्रेषण की सुविधा के लिए ही नाटककार ने इन शब्दों का प्रयोग किया है। भारी-भरकम संस्कृतनिष्ठ शब्दों की भरमार की अपेक्षा इस प्रकार की चलती हिन्दी-उर्दू भाषा नाटक के कथन को बड़ी सरलता से सम्प्रेषित करने में सहायक हुई है। यथा—कोशिश, मजाक, बरदाश्त, काफी, वजह, नौबत, राय, किराया, शऊर, जवाब, चेहरा, सवाल, सिर्फ, अखबार, शिकायत, खास, शादी, ज्यादा आदि।

5. **अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग :** नाटक में यत्र-तत्र प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी खुलकर हुआ है। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग पात्रों के संवादों में भी है और स्वयं नाटककार ने अपने मंचीय संकेतों में भी इनका प्रयोग किया है यथा—सिगार, फुटपाथ, स्कूल बैग, मैगजीन, टी, ट्रे, कबर्ड, बॉस, फैक्टरी, प्रेस, फ्रिज, मीटिंग, बोर्ड, पर्स, डैडी, काफी, ट्रांसफर, किट, क्लास, फाउण्डर्स डे पी.टी. आदि।

अतः राकेश जी ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा शैली में समाहित करके उसे गहन भावों से युक्त एवं लोक जीवन की भाषा बनाया है राकेश जी ने अपनी नाट्य भाषा में मुहावरों का कम किन्तु सार्थक प्रयोग किया है। जिन मुहावरों का नाटककार ने प्रयोग किया है वे नाट्य-कथ्य के सम्प्रेषण में अत्याधिक सहायक सिद्ध हुए हैं। इन मुहावरों से राकेश जी की नाट्य-भाषा की व्यंजनात्मकता गहराई प्राप्त करती है। जिन मुहावरों का प्रयोग नाटक में हुआ है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं 'शहदेना', 'जिन्दगी काटना', 'मन का गुबार निकालना', 'मारा-मारा फिरना', 'जबान खोलना', 'अपने को हलाक करना', 'हड्डियों में जंग लगाना', 'जानमारी करनी', 'नाक में नकेल डालना', 'उल्लू बनाना', 'मिट्टी के लोंदे', 'जिन्दगी का भार ढोना', 'जिन्दगी की कमाई', 'रबड़ स्टैंप का ठप्पा', 'जिन्दगी को चौपट करना', 'घरघुसरा होना' आदि-आदि। वाक्यों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(*i*) तुम्हारी शह में उसका घर में आना-जाना न होता, तो क्या यह नौबत आती कि लड़की उसके साथ जाकर बाद में इस तरह...?

(*ii*) जापान ने इन सबकी नाक में नकेल कर रखी है आजकल

(*iii*) उल्लू बना रहा था उसे।

6. **सपाटबयानी एवं यथार्थवादी शैली :** यथार्थवादी नाटक होने की वजह से नाटक की भाषा शैली में सपाटबयानी एवं यथार्थवादी शैली व्यवहृत है। इस यथार्थपरक भाषा-शैली से नाटककार ने आधुनिक जीवन की नग्न सच्चाइयों, विसंगतियों को बड़े प्रभावी ढंग से प्रकट किया है। नाटक में चित्रित परिवार की वास्तविकता, परिवेश में तनाव, घुटन, घर के सदस्यों में आन्तरिक संघर्ष तथा समूचे परिवेश की कुरूपता एवं भयावयता को प्रकट करने के लिए नाटककार ने सपाटबयानी एवं यथार्थवादी भाषा-शैली का प्रयोग किया है। संवादों में शब्दों की कसावट और स्पष्टता महानगरीय परिवेश की विसंगतियों को प्रभावी ढंग से स्थापित करती है। मानव-जीवन की निर्ममता और मानव के न शंसतापूर्वक व्यवहार का तीखा एवं वास्तविक रूप किन्नी की इन पक्तियों से प्रकट होता है—

''मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं घर में नहीं, चिड़ियाघर के एक पिंजरे में रहती हूँ यहाँ...आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना...उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर...सिहरकर। मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक द श्य देखे हैं इस घर में मैंने।''

इन पंक्तियों में यथार्थवादी शैली में समकालीन जीवन की विषय स्थितियाँ निरूपित हुई हैं। अतः कहा जा सकता है कि मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को नाटकीय रूप में चित्रित करने के लिए जिस हरकत भरी भाषा की आवश्यकता थी उसी प्रकार की भाषा को नाटककार ने 'आधे-अधूरे' में प्रयुक्त किया है। आज के जीवन के जटिल अनुभवों, अनुभूत संवेदनाओं, उलझी हुई जीवन स्थितियों और अपने आप से या आपस में जूझते आधे-अधूरे चरित्रों की तनावपूर्ण विस्फोटक मनःस्थितियों को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत करने के लिए बोलचाल की इसी स जनात्मक भाषा की आवश्यकता थी। यही कारण है कि नाटककार ने अपनी भाषा-शैली में विभिन्न प्रयोग करते हुए उसे जन-जीवन की भाषा बनाकर प्रस्तुत किया है। **डॉ. गोविन्द चातक** इस नाटक की भाषा के बारे में लिखते हैं—

''इस नाटक की भाषा नाटक के क्षेत्र में वर्षों से व्याप्त जड़ता को भंग करने में सफल हुई है। इसमें सहजता ताजगी, लोच और चालूपन है, वह नाट्य भाषा की संपूर्ण संवेदनाओं और आंतरिक शक्तियों का उपयोग करता दिखता है। अपने कथ्य के अनुरूप यह भाषा आरोपों-प्रत्यारोपों उलझनों-उपालंभी, तल्खियों-झल्लाहटों को बखूबी व्यक्त करती है।''

इतना ही नहीं 'आधे-अधूरे' की भाषा का अनगढ़पन एवं अतिसाधारण रूप भी लोक-प्रयोग के स्तर पर युगबोध की जटिल एवं सूक्ष्म संवेदना को व्यंजित करता है। अतः साधारण या बोल-चाल की भाषा को भी नाटककार ने अपने अनुभव की समग्रता देकर आधुनिक युग की विसंगतियों की अभिव्यक्ति की भाषा बनाया है इस नाटक को **निर्देशक ओम शिवपुरी** ने नाटक की भाषिक महत्ता प्रकट करते हुए कहा है—

''पहले वाचन के समय ही मुझे इसकी भाषा में बड़ी कशिश लगी थी। कहना न होगा कि इस नाटक की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन—सब कुछ ऐसा है, जो बहुत सम्पूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है। लिखित शब्द की यही शक्ति और उच्चरित ध्वनि समूह का यही बल है, जिसके कारण यह नाट्य-रचना बंद और खुले, दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाए रख सकी।''

निष्कर्षतः 'आधे-अधूरे' की भाषा शैली हमारे आधुनिक समाज की जन-प्रचलित भाषा है। यथार्थवादी शैली में वास्तविक जीवन स्थितियों को प्रकट करने वाली तथा नाटक में उठाई गई समस्याओं की सशक्त अभिव्यक्ति करने वाली अत्यन्त उत्कृष्ट, स्वाभाविक एवं जीवन के गहन अनुभव-खण्डों को व्यक्त करने वाली सशक्त भाषा है।

# 7

# आधे-अधूरे : पात्र चरित्र-चित्रण

पात्र एवं उनका चरित्र-चित्रण नाटक का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। नाटक कथा वस्तु को दर्शकों या पाठकों तक पहुँचाने के लिए पात्रों की अवतरणा की जाती है तथा पात्रों के संवादों एवं क्रियाकलापों के माध्यम से नाटककार का अभीष्ट दर्शकों तक पहुँच जाता है। नाटक की कथावस्तु के साथ-साथ नाटककार के विचार भी पात्रों को मध्यम से ही सम्प्रेषित होते हैं। **डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल** नाटक के चरित्रों की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—''चरित्र के माध्यम से ही कथावस्तु बनती है। चरित्र का व्यक्तित्व, उसकी इच्छाशक्ति ही नाटक का दूसरा कार्य-व्यापार है। नाटक के अन्य तत्त्वों के अनुरूप ही चरित्र-चित्रण के विभिन्न शिल्प नाट्य साहित्य में देखने को मिलते हैं।''

'आधे-अधूरे' नाटक में जिन पात्रों को नाटककार ने प्रस्तुत किया है वे सब हमारे समाज की विशेषकर महानगरीय समाज की विसंगतियों को यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत करते हैं। इस नाटक में नाटककार ने आधुनिक निम्न मध्यवित्त परिवार की समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया है। अतः नाटक के सभी पात्रों का यथार्थ चरित्र-चित्रण हुआ है। प्रस्तुत नाटक में निम्नलिखित पात्रों की अवतारणा हुई है।

1. काले सूट वाला आदमी जो कि पुरुष एक, पुरुष दो पुरुष तीन तथा पुरुष चार की भूमिकाओं में भी है। उम्र लगभग उनचास-पचास। चेहरे की शिष्टता में एक व्यंग्य।''

पुरुष एक के रूप में—वेशान्तर पतलून-कमीज। जिन्दगी से अपनी हार चुकने की छटपटाहट लिये। पुरुष दो के रूप में—पतलून और बन्द गले का कोट। अपने आप से सन्तुष्ट, फिर भी आशंकित। पुरुष तीन के रूप में—पतलून टी शर्ट। हाथ में सिगरेट का डिब्बा। लगातार सिगरेट पीता। अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव-भाव में। पुरुष चार के रूप में—पतलून के साथ पुरानी काट का लम्बा कोट चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा अहसास। काइयाँपन।

2. स्त्री : उम्र चालीस में छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण। दूसरी साड़ी विशेष अवसर की।
3. बड़ी लड़की : उम्र बीस के ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का उतावलापन। कभी-कभी उम्र से बढ़ कर बड़प्पन। साड़ी माँ से साधारण। पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।
4. छोटी लड़की : उम्र बारह और तेरह के बीच। भाव, स्वर, चाल—हर चीज में विद्रोह। फ्राक चुस्त, पर एक मोजे में सुराख।
5. लड़का : उम्र इक्कीस के आस-पास। पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुर्शट धुल-धुलकर घिसी हुई। चेहरे से यहाँ तक हँसी से भी झलकती खास तरह की कड़वाहट।

ये सभी पात्र हमारे अपने समाज के उस वीभत्स यथार्थ को मूर्त करते हैं जिसे हमारा मध्य वर्गीय समाज झेल रहा है। **डॉ. विजय बापट** ने 'आधे-अधूरे' के पात्रों के विषय में ठीक ही लिखा है—'' 'आधे-अधूरे बेहद चर्चा वाला नाटक है जिसमें आधुनिक जीवन का साक्षात्कार प्रस्तुत किया है इस नाटक में विघटित होते हुए आज के मध्यवर्गीय शहरी परिवार का कड़वाहट भरा चित्रण किया गया है जिसकी विडम्बना यह है कि व्यक्ति स्वयं अधूरा होते हुए भी औरों के अधूरेपन को सहना नहीं चाहता काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटककर अपनी और दूसरों की जिन्दगी नरक बना देता है। नाटककार इस प्रक्रिया को विशेष व्यक्तियों या परिवारों तक सीमित न रखकर सामान्य मानता हैं इसी कारण वह पात्रों को नाम न देकर पुरुष एक, दो पुरुष दो, पुरुष तीन, पुरुष चार, स्त्री, लड़का, बड़ी लड़की, छोटी लड़की कहकर पात्रों को प्रस्तुत करता है। वैसे बाद में उनके नाम भी दिए जाते हैं। लगता है कि नाटककार जातिगत नाम भी उभारना चाहता है। इस नाटक में महानगरों में रहने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवारों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है।''

नाटक की सबसे सशक्त पात्र सावित्री है। वह नौकरी करके अपने निठल्ले पति एवं सारे परिवार का भरण-पोषण कर रही है। वह अपने आपको घर की सबसे उत्तरदायी सदस्या समझकर वैयक्तिक सम्बन्धों एवं नैतिकता की बलि चाहती है। वह परिस्थितियों की आड़ में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और आवारापन को छिपाना चाहती है। परन्तु नाटककार ने सावित्री का चरित्र-चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है। वह आधुनिक कामुक और सुविधाजीवी नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। उसे अपना पति इसलिए अधूरा दिखता है कि वह उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत नहीं देखती। वह व्यक्ति में कई चीजें एक साथ देखना चाहती है—पद भी, व्यक्तित्व भी, वैभव भी और एक पूरा आदमी भी। इसलिए पथ-भ्रष्ट होकर पारिवारिक बिखराव का कारण बनती है। नाटककार ने आधुनिक सावित्री के चरित्र को यथार्थ के धरातल पर वीभत्स रूप में चित्रित किया है। पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा द्वारा नाटककार के सावित्री के विद्रू पूर्ण चरित्र का यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक उद्‌घाटन किया है। यथा—

''पुरुष चार : असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल-दो-साल बाद में तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेज़ा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है—कितना-कुछ एक साथ होकर, कितना-कुछ एक साथ पाकर और कितना-कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना-कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस-किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहती।''

नाटक में महेन्द्रनाथ एक असफल व्यापारी है तथा अपनी ऐय्याशी में उसने सारा पैसा उड़ा दिया है जिसके कारण अब परिवार आर्थिक अभाव की दलदल में धँसा हुआ है। अब बेकार-बेगार रहकर फाइलों की धूल झाड़ता रहता है, चाय पीता रहता है तथा अखबार पढ़ता रहता है। न उसका अपना कोई स्वतन्त्र चिन्तन है और न निर्णय लेने की क्षमता बल्कि प्रत्येक बात के लिए दूसरों पर आश्रित रहता है। उसकी अवस्था घर में अत्यन्त दयनीय एवं शोचनीय है कि वह एक नौकर से भी बदतर जीवन जी रहा है। ग हपति की मर्यादा से च्युत महेन्द्रनाथ अपनी महत्त्वहीन स्थिति को स्वकारते हुए कहता है—

***पुरुष एक :*** *किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़-स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ—बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। उसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में?*

नाटककार ने महेन्द्रनाथ के चरित्र-चित्रण के माध्यम से एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जो आधुनिक समाज के मध्यवर्गीय निम्न मध्यवित्तीय परिवार का मुखिया है। जो अपने निठल्लेपन, पराश्रिता एवं अकर्मवत के कारण अपमानित एवं महत्त्वहीन जिन्दगी जीने के लिए विवश है। नाटककार ने महेन्द्रनाथ की चारित्रिक दुर्बलताओं के चित्रण से मध्यवर्गीय परिवारों के कर्णधारों को सचेत किया है।

इसके अतिरिक्त अशोक, बिन्नी, किन्नी, जुनेज़ा, सिंघानिया आदि पात्रों को सहायक पात्रों की श्रेणी में परिगिनत किया जा सकता है। नाटककार ने इन सभी पात्रों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को सुरक्षित रखते हुए इनका प्रयोग सावित्री—महेन्द्रनाथ के चरित्र को प्रकाशित करने के लिए किया है। परन्तु यहाँ नाटककार की पात्र योजना की एक विशिष्ट बात और दिखाई देती है कि सभी पात्र मूलतः एक-दूसरे के कट्टर विरोधी द ष्टिगोचर होते हैं। एक-दूसरे से ऊबे हुए एक ही छत के नीचे जीवनयापन के लिए विवश है। डॉ. विजय बापट ने पात्रों के चरित्रांकन के विषय में ठीक ही लिखा है—

''इस नाटक के स्त्री-पुरुष के आपसी निजी सम्बन्ध करीब-करीब चूक गए हैं और अब साथ-साथ रहने की और सामाजिक सम्बन्ध ढोने की कटुता ही शेष है। पुरुष महेन्द्रनाथ—जीवन में असफल होकर स्त्री की कमाई की रोटी तोड़ रहा है। ग हपति की मर्यादा से वंचित रहकर भी तानों-व्यंग्यों से स्त्री को भेदता रहता है, अपनी इस नियति को स्वीकारने के लिए विवश होकर भी पूर्णतः स्वीकार नहीं कर पाता। आज के परिवार में बच्चों की माँ-बाप के प्रति श्रद्धा तो काफुर हो गई है ममता भी उड़ती चली जा रही है, बच्चे विपथगामी होते जा रहे हैं और नाटक के वाक्य—'अँधेरा अधिक गहरा होता जा रहा है'—की यथार्थ अनुभूति हो जाती है।''

शास्त्रीय रूप से चरित्र-चित्रण की द ष्टि से पात्रों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—स्थिर चरित्र वाले पात्र और गतिशील चरित्र वाले पात्र। प्रस्तुत नाटक में लगभग सभी पात्र स्थिर चरित्र वाली श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। लगभग सभी पात्रों में टुटन-घुटन और जड़ता व्याप्त है तथा सभी 'आधे-अधूरे' हैं और सम्पूर्णता की खोज में भटक रहे हैं। सावित्री पूर्णता की

खोज अनेक पर-पुरुषों में करती है, महेन्द्रनाथ अपने मित्रों में पूर्णता की खोज करता है, बिन्नी मनोज में, अशोक वर्णा में और किन्नी सुरेखा आदि में पूर्णता की खोज में भटक रहे हैं।

नाटककार ने पात्रों के व्यक्तित्व का चित्रण उनकी भाषा उनके क्रिया कलापों द्वारा किया है। सावित्री का बड़े लोगों के सम्पर्क में आना, महेन्द्रनाथ का सावित्री पर शारीरिक एवं मानसिक आक्रमण, अशोक, किन्नी एवं बिन्नी के कामुक क्रियाकलाप उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। इसके अलावा नाटककार ने अन्य पात्रों के कथनों से भी पात्र विशेष का चरित्र-चित्रण किया है। सावित्री—महेन्द्रनाथ के पर-आश्रित स्वरूप, लिजलिजा-चिपचिपा व्यक्तित्व, ऐय्याशी, बेकारी-बेगारी पर प्रकाश डालती है तथा महेन्द्रनाथ सावित्री के पर-पुरुषों के साथ सम्बन्धों का उधेड़ता है और उसकी चारित्रिक हीनता पर व्यापक-विशद् प्रकाश डालता है। इसी प्रकार से जुनेज़ा, सावित्री-महेन्द्रनाथ के बारे में भी काफी कुछ स्पष्ट कर देता है। इसी प्रकार से बिन्नी भी सावित्री-महेन्द्रनाथ के सम्बन्धों पर प्रकाश उगलती हुई कहती है—''इतने साधारण ढंग से उड़ा देने की बात नहीं है, अंकल। मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़ियाघर के एक पिंजरे में रहती हूँ जहाँ...आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहता है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना...उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कामेड पर ले जाकर...(सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक द श्य देखे है। इस घर में मैंने।

नाटक में अशोक का चरित्र भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। वास्तव में वह महेन्द्रनाथ-सावित्री के कटु-तिक्त सम्बन्धों पर प्रकाश डालती हैं वह अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ घर छोड़कर भाग जाती है लेकिन उसका दामपत्य जीवन सुखमय नहीं है। उसे अपना घर 'चिड़ियाघर-सा लगता हैं अतः बिन्नी काल की सावित्री है। किन्नी के रूप में घर की फूहड़ वातावरण की छवि स्पष्ट द ष्टिगोचर होती हैं वह पढ़ाई में ध्यान न देकर यौन सम्बन्धों में रस लेती है वह अशिष्ट, मुँह फट, जिद्दी और उद्दण्ड है।

अन्य पुरुष पात्रों में जगमोहन, सिंघानियाँ, जुनेज़ा और मनोज आदि प्रमुख है। यदि इन चारों पात्रों को एक-दूसरे के स्थान पर रखते हुए कोई अन्तर नहीं पड़ता।

अतः इस नाटक में केवल चार पात्र है क्योंकि चार पुरुषों की भूमिका में केवल एक दो पुरुष अभिनय करता हैं जहाँ तक इनमें से मुख्य और गौण पात्रों के चुनाव का प्रश्न है इसमें सभी पात्र मुख्य कहे जा सकते हैं केवल एक छोटी लड़की किन्नी को छोड़कर परन्तु सर्वाधिक सशक्त पात्र (स्त्री) अर्थात सावित्री ही है जो सम्पूर्ण नाटकीय कथा का केन्द्र है और नाटक की समस्या का मूल कारण भी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस नाटक में पात्र एवं उनके चरित्र-चित्रण में नाटककार ने अत्यन्त कुशलता दिखाई है। भले ही इस नाटक के सभी पात्र त्रस्त एवं पस्त चरित्र के विकासहीन एवं घटना रहित है। परन्तु फिर भी ये एक ऐसे दर्पण को प्रस्तुत करते है जिसमें आस-पास के जीवन और परिवेश की कड़वी सच्चाइयों से हमारा साक्षात्कार होता है। इस नाटक के परिवेश में छटपटाते संघर्षरत पात्र बिल्कुल आज के आदमी हैं डॉ. पुष्पा बंसल ने राकेश की पात्र-योजना के बारे में लिखा है—

" 'आधे-अधूरे' शैल्पिक प्रयोगों का नाटक है। दूसरा प्रयोग इसमें नाटक के पात्रों को लेकर है। एक ही पुरुष को चार विभिन्न पात्रों की भूमिका में उतारा गया है। वास्तव में 'आधे-अधूरे' की पात्र योजना का वैशिष्ट्य यह नहीं है कि इसमें एक पुरुष से वेश बदलकर चारों पुरुष पात्रों की भूमिका कराई गई है, प्रत्युत वस्तुस्थिति यह है कि इसमें दो ही पात्र हैं एक पुरुष, एक नारी। पुरुष एक है केवल परिस्थिति भेद से या वेशभूषा भेद से वह चाहे भिन्न प्रतीत होता है। इस सत्य का उद्घाटन किया गया है—नारी का वर्टिकल विस्तार करके। महेन्द्रनाथ, सिंघानियाँ, जुनेज़ा, जगमोहन ये सब एक ही पुरुष के भिन्न रूप हैं एवं किन्नी, बिन्नी, सथवत्री नारित्व की तीन विभिन्न स्टेज है पुरुष पात्र के अधूरेपन को वर्टिकल रूप में भी देखा गया है—अशोक कल का महेन्द्रनाथ इस प्रकार प्रस्तुत नाटक के सभी पात्र दिव्य एवं काल में विस्तारित पुरुष एवं नारी ही है''। अतः राकेश जी ने 'आधू-अधूरे' में आधे-अधूरे पात्रों का स्वाभाविक, यथार्थपरक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण करके जीवन की विद्रपूताओं की सशक्त अभिव्यक्ति की है।

# 8

# आधे-अधूरे : अभिनेयता

आधुनिक नाट्य-साहित्य के शिखर पर पहुँचने वाले महान नाटककार मोहन राकेश की रंगचेतना अत्यन्त परिष्कृत और बहुमुखी थी। वास्तव में मोहन राकेश रंगमंच के गहरे पारखी थे इसलिए विद्वानों ने उन्हें 'आधुनिक नाटकों का मसीहा' कहा है। उनकी रंगचेतना का ज्ञान उनके समस्त नाट्य साहित्य से परिलक्षित होता है। प्रसाद जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं किन्तु उसके नाटकों का अभिनय कठिन है। इसलिए उनके नाटकों को इस द ष्टि से अधिक सफल माना नहीं जाता है। किन्तु मोहन राकेश इस द ष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। उनके 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राजहंस' न जाने कितनी नाट्य संस्थाओं द्वारा रंगमंच एवं अभिनय की वे तमाम सम्भावनाएँ उपलब्ध है जो उसके लिए उपेक्षित हैं।

'आषाढ़ का एक दिन' एवं 'लहरों के राजहंस' के सफल मंचन के उपरान्त जब राकेश जी का 'आधे-अधूरे' नाटक रंगमंच पर अभिनीत किया गया तो दर्शक विमुग्ध रह गए। इसके सफल मंचन एवं यथार्थपरक प्रस्तुतीकरण के कारण ही संगीत नाटक आकदमी ने इसे पुरस्कृत करके हिन्दी के यथार्थवादी नाटकों के स जन को प्रोत्साहन दिया है।

आधुनिक नाटककारों में केवल मोहन राकेश के नाटकों में ही रंगमंच का गहरा अनुभव, नाटकीय भाषा की खोज और वर्तमान जीवन को मंच पर मूर्त करने के निरन्तर प्रयोगों का अथक परिश्रम दिखाई देता है। उनका अपना कथन भी है, कि उनका नाट्य-लेखन 'हिन्दी रंगमंच' की तलाश के रूप में प्रारम्भ हुआ, जिसकी रूपरेखा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—''हिन्दी रंगमंच को हिन्दी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। हमारे दैनन्दिन जीवन के राग-रंग को प्रस्तुत करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूप—नाटकीय प्रयोगों के अभ्यन्तर से जन्म लेगा।'' इसीलिए उन्होंने हिन्दी रंगमंच की सम द्धि के लिए प्राचीन परम्परा का पुनरान्वेषण आवश्यक माना। भारतीय नाट्य-द ष्टि सर्वथा अनुकूल है, क्योंकि यहां नाटक को द श्य के साथ श्रव्य भी माना जाता है। हिन्दी रंगमंच के पाश्चात्य रंगमंच के प्रति अनुकरणमूलक द ष्टिकोण को भी राकेश की दूरद ष्टि ने शीघ्र ही पहचान लिया और उसे एक नई सार्थक दिशा दी। उनकी सर्वप्रमुख विशेषता हिन्दी नाटकों को साहित्यिकता के साथ-साथ सम द्ध रंगमंचीय में ढालने की दिशा का निर्देश करना है। अनुभूति का गहरा तत्त्व उनके रंगमंच का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, जो प्रथम दो नाटकों (आषाढ़ का एक दिन व लहरों के राजहंस) के आन्तरिक काव्यात्मकता का अद्भुत गुण देता है। 'आधे-अधूरे' में यह तत्त्व अप्रत्यक्ष होकर भी त्रासद वातावरण का गहरा प्रभाव छोड़ जाता है। उसी सर्जक अनुभूति के साथ वातावरण स ष्टि राकेश के रंग-शिल्प की एक प्रमुख विशेषता है, जो घटना का पात्र की प ष्ठभूमि देने के साथ-साथ नाटक के सम्प्रेषण को भी प्रभावशाली बना जाती है।

'आधे-अधूरे' रंगमंचीय प्रयोगों का नाटक है। प्रसिद्ध अभिनेता-निर्देशक सत्यदेव दुबे का कहना है—"Till date 'Adhe Adure' is the most successfull amongust the plays Produced in Hindi anywhcre in India."

वैसे इस नाटक का ओम शिवपुरी के निर्देशन में दिशान्तर, नई दिल्ली; सत्यदेव दुबे के निर्देशन में थिएटर यूनिट, बम्बई; श्यामानन्द जलान के निर्देशन में अनामिका, कलकत्ता; अमाल अल्लाना के निर्देशन में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (रंगमण्डल), दिल्ली के अतिरिक्त पटना, देहरादून, वाराणसी, जमशेदपुर, कानपुर, हैदराबाद, जम्मू और भारत वर्ष के लगभग प्रत्येक रंगनगर में सफतापूर्वक मंचन किया जा चुका है।

'आधे-अधूरे' नाटक की अभिनेयता निम्नालिखित गुणों एवं विशेषताओं के कारण अत्यन्त सफल मानी जाती है—

1. कथानक के अंगों से संगठन
2. पात्रों की सीमित संख्या एवं यथार्थपरक चित्रण

3. चुस्त संवाद योजना
4. सहज-सरल भाषा योजना
5. सफल द श्य योजना
6. पर्याप्त रंग संकेत-रंग निर्देश
7. वेशभूषा एवं साज-सज्जा

1. **कथानक के अंगों के संगठन :** 'आधे-अधूरे' नाटक का कथानक अयन्त संघठित, संक्षिप्त, सरल एवं रोचक है। नाटककार ने दिखाया है कि किस प्रकार से एक मध्यवर्गीय परिवार स्तरीकरण की दौड़ में दौड़ता हुआ विघटनशीलता के कगार पर पहुँच गया है। इस परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए सामाजिक, नैतिक एवं पारिवारिक मूल्यों की तिलांजलि दे देकर अपने आपको और पूरे परिवार को मानसिक यान्त्रणाओं के अन्धकूप में धकेल देता है। नाटककार ने कथानक के सभी अंगों में संगठन करते हुए संक्षिप्तता, कसावसहट एवं प्रभविष्णुता के ग्रन्थों को कथानक को समाहित किया है। छब्बीस घण्टे की अल्पावधि में लिपटी-सिमटी संक्षिप्त और रोचक कथावस्तु का सफलतापूर्वक दो-ढाई घण्टे में मंचन किया जा सकता है। उन्होंने कथावस्तु के अन्तराल विकल्प को दो भागों में विभाजित किया है। केवल एक ही द श्यबन्ध पर सारा नाटक सफलतापूर्वक खेला जा सकता है। किंचित मात्रा में भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। कथानक का विभाजन न अंकों और न द श्यों में प्रस्तुत किया गया है कथानक को संक्षिप्त रूप देने के लिए उन्होंने अपनी जाग त द श्य-सूक्ष्म विवेक का भी भरपूर सहारा लिया है।

इसके अतिरिक्त नाटककार की भाषा संवाद एवं रंगसंकेत कथावस्तु का विकास करने की पूरी क्षमता रखते हैं। नाटक में प्रस्तुत (प्रयुक्त) चरित्रों का चरित्रिक विकास कथावस्तु को इतनी गति देता है कि भविष्य में घटने वाली अलक्ष्य घटनाओं का संकेत भी मिल जाता है। इस ही द श्यबन्ध में सम्पूर्ण कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिए नाटककार में यथास्थान पर्याप्त रंग संकेत दिए है। उससे द श्य निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है। यथा—

''**पुरुष एक :** (हाथ बढ़ाकर) लाओ, मुझे दे दो।

**स्त्री :** (पाजामें को झाड़कर फिर से तहाती हुई) अब क्या दे दूँ! पहले खुद भी तो देख सकते थे।

गुस्से में कवर्ड खोलकर पाजामें को जैसे उसमें कैद कर देती है। पुरुष एक फालतू-सा इधर-उधर देखता है, फिर एक कुर्सी की पीठ पर हाथ रख लेता है।

(कबर्ड के पास आकर ट्रे उठाती) चाय किस-किसने पी थी?''

जहाँ तक काल-अन्विति का प्रश्न है नाटक में केवल चौदह या पन्द्रह घण्टों की परिस्थितियों को कथावस्तु का जामा पहनाया गया है। पहले दिन पाँच बजे शाम से लेकर दूसरे दिन सात बजे शाम तक की घटनाओं में नाटककार ने बड़ी कुशलता के साथ मंचरच करने का प्रयास किया है। इससे नाटक की अभिनेयता को पर्याप्त बल मिलता है। नाटक का कार्य-व्यापार मंच पर आए हुए पात्रों द्वारा बड़ी तीव्रगति से आगे बढ़ता है। इसका एक कारण यही है कि इसकी कथावस्तु संक्षिप्त है। इसके पात्र घटनाक्रम को मोड़ने में पूर्णतः सक्षम है। कथानक के अंगों में संगठन है। कथा-संयोजक दर्शकों को स्तब्ध एवं जिज्ञासु बनाए रखता है।

2. **पात्रों की सीमित संख्या एवं यथार्थपरक चित्रण :** प्रस्तुत नाटक की पात्रसंख्या भी अत्यन्त सीमित है—केवल दो पुरुष पात्र और तीन स्त्री पात्र ही समस्त कथा को व्यक्त कर देते हैं। एक ही व्यक्ति पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष चार की भूमिकाओं में प्रस्तुत होता है। पात्र-संख्या सीमित होने के कारण उनका चरित्र-चित्रण भी बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है। महेन्द्रनाथ, सावित्री अशोक, विन्नी आदि सभी पात्रों का चरित्रांकन वास्तविक मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ। इससे जहाँ पात्रों के चरित्र चित्रण में सजीवता आई है। वही रंगमंच पर नग्न यथार्थ से साक्षात्कार भी दर्शकों को हुआ है। दर्शक पात्रों की मनःस्थिति, स्वभाव और आचार-विचारों से शीघ्र ही परिचित हो जाते है **डॉ. रीता कुमार** ने राकेश की पात्र-योजना के बारे में लिखा है—''राकेश ने अपने किसी भी नाटक में पात्रों की भीड़ एकत्रित नहीं की। विभिन्न सामाजिक विसंगतियों को मूर्त करने में आवश्यक पात्रों की ही योजना की है। हिन्दी नाटकों में पहली बार पात्रों के आनतरिक द्वन्द्व और मनोभाव, विसंगतियों और संवेदनशील व्यक्ति के संघर्ष को, एकरस जिन्दगी की ऊब और निरर्थक के तथा बेमानी होते पारस्परिक सम्बन्धों के बोझ को ढोती व्यक्ति की विवशता को उनके नाटकों के पात्र बहुत सशक्त रूप में मूर्त करते हैं।''

इसके अलावा पात्रों की वेशभूषा, भाषा, संवाद आदि में रंगमंच के अनुकूल है। दर्शक इन यथार्थवादी धरातल के पात्रों से तादात्म्य शीघ्र करके नाटक की कथावस्तु का रस ग्रहण करने लगते हैं। अतः 'आधे-अधूरे' में त्रस्त और परस्त-चरित्र भले ही विकासहीन एवं व्यक्तिवादी 'अहं' से ग्रस्त हो, पर फिर भी ये पात्र एक दर्पण को प्रस्तुत करते हैं जो हमें अपने-आप को अपने आस-पास के जीवन और परिवेश से परिचित कराते हैं।

3. **चुस्त-संवाद योजना :** राकेश जी ने प्रस्तुत नाटक की संवाद योजना एकदम चुस्त, बहुअर्थीगर्भी एवं रंगमंचीय द ष्टि के अनुकूल की है। नाटककार ने प्रत्येक पात्र को रंगमंच पर इस प्रकार अभिव्यक्ति प्रदान की है कि नाटककार का कथ्य एवं पाठकों की संवेदना एकाकार हो गई है। पात्रों के अति लघु तीखे संवाद अन्य पात्रों एवं दर्शकों पर अस्त्र की भाँति वार करते हैं। इस नाटक की संवाद-योजना में संवाद की तीव्रता उसके प्रभाव को और अधिक सघन बनाती है, पात्रों के मानसिक आक्रोश की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन बनी है।

मोहन राकेश चुस्त-चुटली, सरल-प्रवाहशील संवाद योजना की अवतरण में निष्णात है। वास्तव में इन संवादों का सारा सौन्दर्य इनकी रचना-बनावट में है जहाँ नाटकार की आत्मीयता और पात्रों की आत्मीयता एकाकार हो गई है। उन्होंने नायक-नायिका (महेन्द्रनाथ -सावित्री) की टकराहट को संवादों के माध्यम से भी अभिव्यक्त किया है–

''**पुरुष एक** : काफी अच्छा आदमी है जगमोहन और फिर से दिल्ली में उसका ट्रांसफर भी हो गया है...कह रहा था आएगा किसी दिन मिलने।

**स्त्री** : खूब तारीफ करो और जिस-जिसकी हो सके तुमसे।'' पूरे नाटक में राकेश की संवाद योजना कहीं भी सतही, उथली, अस्वाभाविक या भाषाजाल प्रतीत नहीं होती। इतने बड़े-बड़े नाटक में एक भी पंक्ति शून्य, जड़, अपाठ्य नहीं कही जा सकती। वास्तव में ये लघुकाय संवाद 'देखने में छोटे लगें पर घात करें गम्भीर' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं अर्थात आकार में छोटे-छोटे, चुस्त-चुटीले पर सम्पूर्ण अर्थ को वहन करने की क्षमता निहित है।

**डॉ. बन्सल** ने 'आधे-अधूरे के संवादों की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए लिखा है–''आधे-अधूरे के अतिलघु, तीखे संवाद ने अस्त्रों के समान तेजी से उठकर गहरा वार करते है। वे बिजली के समान चमकते हैं और कौंध कर विलीन हो जाते हैं।''

यथा–

**स्त्री** : फिर भी कोई खास बात।

**बड़ी लड़की** : खास बात कोई भी नहीं?

**स्त्री** : तो?

**बड़ी लड़की** : और सभी बातें खास हैं।

**स्त्री** : जैसे?

**बड़ी लड़की** : जैसे...सभी बातें?

**स्त्री** : तो मेरा मतलब है कि...?''

अतः आधे-अधूरे की संवाद योजना अत्यन्त संक्षिप्त चुस्त-चुटील और अभिनेय गुण से युक्त है जिसके कारण यह नाटक रंगमंच की कसौटी पर खरा उतरा है।

**डॉ. गिरीश रस्तोगी** कहा कहना है–''इस नाटक के संवाद की गति को ज्यादा महत्त्व दिया गया है, यह विकास का लक्ष्य है। केवल सिंघानियाँ एवं संवादों को एक ठहराव है अन्यथा नाटक के संवादों में मति ही गति है, क्योंकि वह उन सभी पात्रों के मानसिक आक्रोश को अभिव्यक्त करने के लिए जरूरी है और तीखेपन में तेजी और तल्खी सवाभाविक भी है इसके अतिरिक्त कही संवाद अधूरे-अस्फूट है कहीं पूरे-पूरे लम्बे और कहीं एकदम छोटे।'' इस नाटक की संवाद-योजना में पात्रानुकूलता, स्वाभाविकता, सरलता, संक्षिप्तता, व्यंग्यात्मकता, यर्थापरकता, रोचकता आदि के गुण नाटक के रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रेषित करते है।

सिघांनियाँ प्रकरण में स्त्री एवं लड़के के संवादों से सिंघानियाँ की कामुक एवं स्वार्थपरकता पर व्यंग्य किया गया है। यथा–

''**स्त्री** : तू एक मिनट जाएगा बाहर?

**लड़का** : क्यों?

**स्त्री** : बैटरी डाउन हो गई है। धक्का लगाना पड़ेगा।

**लड़का** : अभी से? अभी तो नौकरी की बात तक नहीं की उसने...

**स्त्री** : जल्दी चला जा। उन्हें पहले ही देर हो गई है

**लड़का** : अगर सचमुच दिला दी उसने नौकरी, तब तो पता नहीं।''

4. **सहज-सरल भाषा-योजना :** जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, रंगमंचीय नाटक के लिए उसका अत्यन्त महत्त्व है क्योंकि क्लिष्ट भाषा अक्सर उसके अभिनयन में बाधक बन जाती है। प्रसाद के नाटकों को मंच पर सफलता न मिलने का एक मुख्य कारण उनकी भाषागत क्लिष्टता भी रहा है। उनकी काया-कठिन्य के कारण दर्शक की ग्रहण क्षमता कुण्ठित हो जाती है। राकेश जी को रंगमंच का पूरा अनुभव है और रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटकों की भाषा कैसी होनी चाहिए इसका पूर्ण ज्ञान है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में भी रंगमंचानुकूल भाषा का ही प्रयोग हुआ है—यह और बात है कि परिवेशगत यथार्थता को बनाए रखने के लिए उन्हें कुछ संस्कृतनिष्ठ शब्दों को भी प्रयुक्त करना पड़ा। आधे-अधूरे उनका सामाजिक समस्या-नाटक है इसलिए इसमें आधुनिक-परिवेश को यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर सकने वाली उस भाषा को प्रयुक्त किया गया है जो बोलचाल की उर्दू-अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी तो है ही साथ ही नाटकीय कथावस्तु के सर्वथा उपयुक्त है।

'आधे-अधूरे' की भाषा आम आदमी की भाषा होते हुए भी सर्जनात्मक शक्ति और रंगतत्त्वों से पूर्ण है। भाषा की सादगी, सच्चाई और तनाव को व्यक्त करने की क्षमता स्थान-स्थान पर पाठक को करंट के समान छू जाती है। घर-घुसरा, नाशुके आदमी, रबड़ का टुकड़ा—जैसे आज के समाज में प्रचलित इन नये शब्दों से राकेश जी ने इस नाटक की भाषा को रंगमंचीय सम्प्रेषण के अनुकूल और गहन अर्थवत्ता से युक्त बनाया है। अतः प्रस्तुत नाटक की भाषा सर्वत्र सहज, सरल, यथार्थपरक, रोचक प्रवाहमयी एवं व्यंग्यप्रधानता के गुणों से युक्त सही अर्थों में रंगमंचीय भाषा है।

5. **सफल द श्य योजना :** मंच सज्जा एवं द श्य योजना का चुनाव राकेश जी ने अत्यन्त सावधानी सुलभता के आधार पर किया है। यह पूरा नाटक एक ही द श्यबन्ध में सफलतापूर्वक मंच पर अभिनीत हो सकता है। इसकी द श्य-योजना में द श्य परिवर्तन करने की आवश्यकता निर्देशक को नहीं पड़ती है। यह सफल द श्य-योजना राकेश जी की अनुभवी रंगमंचीय द ष्टि का परिणाम है। महेन्द्रनाथ और सावित्री के घर का वह बड़ा कमरा जो बैठने-उठने के लिए प्रयुक्त होता है, में साग नाटक घटित हो जाता है। इस कमरे को नाटककार ने बहुउद्देशीय प्रयोग किया है। नाटककार ने मंच पर द श्य योजना के इतने पर्याप्त रंग संकेत दिए हैं कि पूरी द श्य-योजना इसी कमरे में साकार हो जाती है। द श्य योजना के लिए राकेश जी ने उन उपकरणों का चयन किया जो लगभग हर मध्यवर्गीय परिवार में सहज उपलब्ध हो जाते हैं। इस सहज-सुलभ उपकरणों को जुटाना ही राकेश की अनुभवी रंगद ष्टि का परिणाम है। **श्री ओम शिवपुरी** ने नाटक के द श्य स्थल के बारे में लिखा है—'' 'आधे-अधूरे' कार्य स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफे, कुर्सियाँ, अलमारी, किताबें, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब इस पर धूल की तह जम गई है क्रॉकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गई है। इस परिवार का हर सदस्य एक-दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा तक में तल्खी की गन्ध है, जो पाँच व्यक्तियों के मन में भरी हुई है—अब, घुटन, आक्रोश, विद्रुप, दम घोटने वाली मनहूसियत जो मरघट में होती है।''

अतः राकेश जी ने अपनी द श्य-योजना में कुछ भी ऐसा नहीं रखा है जो रंगमंच पर उपस्थित करना कठिन हो। इतना ही नहीं उपलब्ध उपकरणों वस्तुओं के भी सरलतम प्रयोग से सफल द श्य-योजना की है।

6. **पर्याप्त रंग संकेत एवं रंग निर्देश :** मोहन राकेश ने निर्देशक की सुविधा के लिए 'आधे-अधूरे' नाटक में पर्याप्त मात्रा में रंग-संकेत या रंग-निर्देश दिए हैं। नाटक के प्रारम्भ में ही यह रंग संकेत, रंग-निर्देश द ष्टव्य है—''पर्दा उठने पर सबसे पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टैबल पर छोड़ा गया अधटूटा और आलोकित होता है। फिर फटी किताबों और टूटी कुर्सियों में से एक-एक कुछ सेकेंड बाद प्रकाश सोफे के उस भाग पर केन्द्रित हो जाता है जहाँ बैठा काले सूट वाला आदमी सिगार के कश खींच रहा है। उसके सामने रहते प्रकाश उसी तक सीमित रहता है, पर बीच-बीच में कभी यह कोना और कभी वह कोना साथ आलोकित हो जाता है।''

नाटककार ने इन रंग संकेतों या रंग निर्देशों के माध्यम से एक तरफ तो नाटक के रंगमंचीय स्वरूप में मजबूत किया है, दूसरे मध्यवर्गीय परिवार की दयनीय स्थिति, घुटन, कुण्ठा आदि रंगध्वनि में उजागर किया है। राकेश जी ने रंग-संकेतों के साथ

प्रकाश एवं ध्वनि योजना द्वारा भी प्रस्तुत नाटक के मंचन को सफल बनाने की कोशिश की है। नाटक के मार्मिक क्षणों में उभरने वाला शोकप्रद और खण्डहर की वीरानियत का संगीत एवं पात्रों की धुँधली आकृतियों पर सिमटता हल्का प्रकाश नाटक को गहरी अर्थवत्ता प्रदान करता है। इसके साथ-साथ एक ही द श्यबन्ध पर काल-परिवर्तन का संकेत भी उसके रंग संकेतों की व्यापकता एवं सार्थकता को प्रकट करता है।

अतः राकेश जी ने अपने रंग संकेतों, प्रकाश एवं ध्वनि व्यवस्था से नाटक की अभिनेयता को सफलता की सीढ़ी तक पहुँचाने का काम स्वयं ही कर दिया, न किसी नाट्य निर्देशक पर निर्भर रहे।

7. **वेशभूषा एवं साज-सज्जा :** नाटककार ने अपने पात्रों की वेशभूषा एवं साज-सज्जा के बारे में स्पष्ट रंग निर्देश दिए हैं। चारों पात्रों की वेशभूषा के बारे में रंगसंकेत नाटक के प्रारम्भ में ही मिलते हैं—पुरुष एक के रूप में वेशान्तर पतलून-कमीज, पुरुष दो के रूप में पतलून और बन्द गले का कोट। पुरुष तीन के रूप में पतलून, टीशर्ट तथा पुरुष चार के रूप में—पतलून के साथ में पुरानी काट का लम्बा कोट। इसी प्रकार सावित्री की वेशभूषा-ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण दूसरी साड़ी विशेष अवसर की इसी प्रकार बड़ी लड़की की सगी माँ से साधारण छोटी लड़की फ्रॉक चुस्त, पर एक मोजे में सुराख लड़के की वेशभूषा के बारे में पतलून के अन्दर दबी-भड़कीली बुशर्ट, धुल-धुलकर घिसी हुई इन पात्रों के लिए वेशभूषा अत्यन्त सरल व सहज ग्राह्य है।

इस प्रकार नाटककार ने अपने सभी पात्रों की वेशभूषा को उनके व्यक्तित्व, मनःस्थिति और कार्य कलाप के अनुरूप रखा है। किसी भी पात्र के लिए मेकअप भी अनिवार्य नहीं है जिससे पात्र अपनी सरल और साधारण वेशभूषा में जन-जीवन की समस्याओं को और गहराई से मूर्त करते हुए सीधे दर्शक द्वारा साधारणीकृत हो जाते हैं। **ओम शिवपुरी** ने इस नाटक की वेशभूषा एवं साज-सज्जा के बारे में लिखा है—''प्रस्तुति की अन्य उल्लेखनीय विशेषता थी—मेकअप का न होना। नायिका केवल वही मेकअप किए हुए थी, जो उस जैसी स्त्री वास्तविक जीवन में करती है। इसके अलावा किसी कलाकार ने पाउडर इत्यादि छुआ भी नहीं था। नाटक की साज-सज्जा भी अत्यन्त स्वाभाविक सादी होते हुए भी सार्थक है। इस प्रकार की सरल-सुलभ वेशभूषा कहीं भी सहजता से उपलब्ध हो सकती है।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक के कथानक के अंगों में संगठन, पात्रों की सीमित संख्या और यथार्थवादी, चित्रण, सरल और सार्थक रंगभाषा, सफल संवाद योजना, पर्याप्त रंग संकेत, पात्रनुकूल वेशभूषा और सरल-सहज प्राप्त मंच सज्जा की सामग्री के कारण रंगमंच की कसौटी पर एकदम खरा उतरता है।

यह नाटक 'धर्मयुग' में अपने प्रकाशन और दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता तथा देशभर में अन्य कई स्थानों पर हुए मंचन के कारण इतना प्रसिद्ध हो गया था कि इसी नाटक पर राकेश जी के 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' और नेहरू फैलोशिप मिली। सुप्रसिद्ध नाट्य-निर्देशक **ब.व. कारंत** के अनुसार, ''हिन्दी रंगमंच पर 'आधे-अधूरे' की शायद हिन्दी का एकमात्र मौलिक नाटक है जो सबसे ज्यादा खेला गया और पसन्द किया गया। पहली बार इसने साहित्यिक और रंगमंचीय नाटक में भ्रामक अन्तर को भी मिटाया।''

**नैमिचन्द्र जैन** का कथन भी इस नाटक की रंगमंचीय सफलता के विषय में उल्लेखनीय है—''वह (आधे-अधूरे) निःसंदेह रंगमंच पर प्रस्तुत करने योग्य; सार्थक और समकालीन संवेदना के समीप का नाटक है...'आधे-अधूरे' आज के इंसानों की जिन्दगी को किसी कदर आज के ही मुहावरों में प्रस्तुत करता है।''

# 9

# सावित्री : चरित्र-चित्रण

सावित्री 'आधे-अधूरे' नाटक की प्रमुख एवं सशक्त पात्रा है। वह नाटक में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है तथा नाटक की सभी घटनाओं के मूल में वहीं है। नाटक के अन्य सभी पात्र उससे सम्बन्धित है तथा फलभोक्त्री भी वहीं सिद्ध होती है। अतः निर्विवाद रूप से नाटक की नायिका है। उसके बहिरंग व्यक्तित्व का चित्रांकन नाटककार ने इस प्रकार से किया है—''उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाऊज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण। दूसरी साड़ी विशेष अवसर की।''

सावित्री इस नाटक की सबसे अधिक विवादास्पद एवं सशक्त पात्रा है। सावित्री का दोहरा व्यक्तित्व है, एक घर के भीतर और दूसरा बाहर। घर में उसे अपने पति व बच्चों की देखभाल, चिन्ता करनी है। बाहर उसका अपने बॉस से संबंध बनाए रखना तथा अपने बेटे की नौकरी के लिए पर-पुरुषों से संबंध रखना। लेकिन यह न उसके बेटे को पसंद है न पति को। आज का जमाना सिफारिश और पैसों का है। सावित्री की त्रासदी ही यह है कि घर में दो पुरुषों के होने पर भी उसे ही बाहर के आदमियों से निपटना पड़ता है। सावित्री के निमंत्रण पर घर आए मेहमानों का बेटा मजाक उड़ाता है तो पति घर से गायब रहता है। वह तंग आकर एक दिन बेटे से कह देती है—'अगर उसे यह पसन्द नहीं तो वह आज से उसके लिए कोशिश करना बन्द कर देगी।' अगर बाप-बेटे को सावित्री का यह रूप पसन्द नहीं तो वे उसकी नौकरी छुड़वाकर स्वयं जा सकते हैं। यह काम वे करना नहीं चाहते और उसे ताने देने से भी नहीं चूकते। 'आधे-अधूरे' में नारी की इस मनोव्यथा का यथार्थ चित्रण हुआ है। आखिर अपने परिवार के लिए इतना खपकर सावित्री को क्या मिला? वही अपमान ताने व्यंग्य आदि। उसकी आदतें उन्हें पसन्द नहीं थी पर वे फिर भी चुप थे क्योंकि उसी से घर का खर्चा चल रहा था।

कहा जाता है कि ग हलक्ष्मी से ही घर स्वर्ग बनता है। अगर वह उच्छ ंखल हुई तो अच्छा खासा घर भी नरक बन जाता है। आधुनिक विचारों वाली शिक्षित एवं नौकरीपेशा नारी भी अपने घर को स्वर्ग बना सकती है, यदि वह खोखली एवं अर्थहीन महत्वाकांक्षा में न पड़कर अपने व्यक्तित्व को संयमित बनाए रखे। अगर वह झूठे दिखावे, अर्थहीन स्वाभिमान, कोरी चपलता से दिग्भ्रमित हो जाए, तो भले ही वह तितली बन जाएगी पर ग हिणी कदापि नहीं बन सकती। 'आधे-अधूरे' नाटक में सावित्री एक ऐसी ग हिणी है जिसका भरा-पूरा परिवार तो है पर वह उस परिवार को घर नहीं बना पाती। वह दीन-हीन और आत्मसमर्पण वाली नारी न होकर अपने अहं और स्वाभिमान को सुरक्षित रखने वाली स्वावलम्बी स्त्री है। सारे परिवार के बोझ को ढोती वह अपनी मर्जी अपनी इच्छाओं को सब पर लादने की क्षमता रखती है। क्योंकि वह परिवार का आर्थिक केन्द्र बिन्दु है—अन्य सभी उस पर आश्रित हैं। आर्थिक रूप से परिवार की पोषिका होने के कारण वह अपनी उच्छखंल महत्त्वाकांक्षाओं को जबर्दस्ती परिवार पर थोपती और पूरे परिवार के विघटन का कारण बनती है। अतः नाटक में सावित्री की प्रमुख रूप से निम्नलिखित चारित्रिक विशेषताएँ उभर कर सामने आती है—

1. **कर्त्तव्य बोध युक्त नारी :** नाटक में महेन्द्रनाथ तो कर्त्तव्यपथ से विचलित है। परन्तु सावित्री नाटक में कर्त्तव्यरायण नारी के रूप में द ष्टिगोचर होती है। सथवत्री कठोर परिश्रम करके अपने बेकार-बेगार पति महेन्द्रनाथ और अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण करती है। नाटक के प्रारम्भ में ही वह लदी-थकीहारी घर में प्रवेश करती है। नाटककार का कहना है—-''स्त्री (सावित्री) कई-कुछ सँभाले बाहर आती है। कई-कुछ में कुछ घर का है, कुछ दफ्तर का है, कुछ अपना। चेहरे पर दिन-भर के काम की थकान है और इतनी चीजों के साथ चलकर आने की उलझन। आकर सामान कुर्सी पर रखती हुई पूरे कमरे पर एक नजर डाल लेती है।'' इस प्रकार एक ओर तो सावित्री परिवार के लिए अर्थार्जन करती है तो दूसरी तरफ बाल-बच्चों की जिम्मेदारी-दायित्व को भी अपने दुर्बल कन्धों पर द ढ़ता से सँभाले हुए है। अपने पुत्र अशोक, पुत्री बिन्नी-किन्नी के विकास-सुख-सुविधा के लिए भी चिन्तित है। इस घर का कुछ बन जाए, इसलिए भी वह भरसक प्रयास

करती है। इसी हेतु वह अपने बॉस सिंघानियाँ को घर पर आमन्त्रित करती है। और अपने बच्चों को भविष्य एवं परिवार की आर्थिक दशा सुधारने के लिए अपने चरित्र को भी पतन की गर्त में गिरा देती है।

**डॉ सुन्दर लाल कथरिया** का कहना है—''सावित्री उस आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जिसका पति महेन्द्रनाथ निठल्ला है। फलतः वह परिवार के संचालन का बोझ ढोती है। उसे अपने बेटे की नौकरी और बेटी के सुख की चिन्ता है। परिवार की आर्थिक अव्यवस्था और उससे उत्पन्न तनाव से वह दिनोंदिन कटु होती जाती है। परिवार के लिए दिन-रात जुटे रहकर भी वह उपेक्षा और तिरस्कार पाती है।''

2. **महत्त्वाकांक्षी आधुनिक नारी :** 'आधे-अधूरे' नाटक में सावित्री एक महत्त्वाकांक्षी नारी के रूप में द ष्टिगोचर होती है। महेन्द्रनाथ सावित्री की महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने में सर्वथा असमर्थ है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु वह अन्य पुरुषों का अवलम्बन पाकर घर में विषैले वातावरण से मुक्त होने का प्रयत्न करती है। किन्तु उसके जीवन में आने वाले सभी पुरुष-जुनेज़ा, शिवजी, जगमोहन और मनोज—अपनी किसी-न-किसी दुर्बलता से अपूर्ण सिद्ध होते हैं। आगे का मार्ग बन्द पाकर जब वह अतीत में लौटकर एक नई जिन्दगी अपनाने के संकल्प से जाती है, तो वहाँ भी जगमोहन बच्चों के भविष्य की आड़ में अपना दामन छुड़ा लेता है। वह पुनः ढही हुए संकल्पों की रेत में लौट आती है। कितनी त्रासदायक बन जाती है जिन्दगी, जब व्यक्ति चाहकर अपनी परिस्थितियों से मुक्त न हो पाए, जब अतीत और भविष्य वर्तमान के अँधेरे में खो चुके हो। अपूर्णता के इस संसार में पूर्णता की अपेक्षा करना अपने साथ दूसरों के जीवन में विष घोलने के समान है। नाटक के अन्त में आने वाला जुनेज़ा सावित्री के जीवन की इसी वास्तविकता पर प्रकाश डालता है, कि चारों पुरुषों में से कोई भी पुरुष उसका पति होता तो भी उसकी निराशा का स्वरूप यही होता। जुनेज़ा के निम्न संवाद सावित्री के अवचेतन का प्रतिबिम्ब है—''क्योंकि तुम्हारे यहाँ जीने का मतलब रहा है...कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना।'' नाटककार का कहना है—''जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं, उसकी तनख्वाह को, नाम एवं रुतबे को बुलाया है।'' प्रारम्भ में महेन्द्रनाथ एक सम द्ध व्यापारी था, इसी हेतु सावित्री उससे विवाह करती है। महेन्द्रनाथ स्पष्ट कहता है—''उन दिनों इस घर का खर्च बहुत अधिक था तथा सावित्री को खुश करने के लिए वह चार सौ रुपए महीना के किराए पर बड़ी-बड़ी कोठियाँ लेता है, किस्तों पर फ्रीज खरीदता है और आना-जाना भी टैक्सियों में होता तथा बच्चों को कॉन्वेंट जैसे महँगे स्कूलों में पढ़ाया जाता है।'' परन्तु अब सावित्री अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु विपथगामिनी बन जाती है।

अतः कहा जा सकता है कि सावित्री उस आधुनिक नारी का प्रतिरूप है जो अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और इच्छाओं की पूर्ति हेतु पर-पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाकर भारतीय नारी के आदर्श एवं एक गरिमा को ठेस पहुँचाती है तथा अपने परिवार के विघटन का कारण बनती है।

3. **भौतिक सुख-सुविधा भौतिक भोगिनी नारी :** सावित्री वास्तव में एक सुविधा भोगिनी नारी है। वह केवल अपनी सुविधाओं पर ध्यान देती है। वह यह भी नहीं सोचती कि उसकी भोगवादिता परिवार पर धुन लगा रही है। वह कामुक और सुविधाजीवी नारियों का ही प्रतिनिधित्व करती है। अपना पति उसे आधा-अधूरा लगता है, क्यों? इसलिए कि वह उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत नहीं देखती। वह आदमी में कई चीजें एक साथ देखना चाहती है—पद भी, व्यक्तित्व भी, वैभव भी और एक पूरा आदमी भी। सावित्री के साथ विवाह के समय महेन्द्रनाथ एक सफल एवं सम द्धशाली व्यापारी था और सावित्री की इच्छाएँ असीम, अनन्त और अपार थी लेकिन महेन्द्रनाथ की नासमझी और ऐय्याशी प्रव त्ति ने सारे धन को लुटा दिया, जिसके कारण सावित्री की इच्छाओं पर तुषारापात हो गया। सावित्री को कठोर परिश्रम करके अब पूरे परिवार का पालन-पोषण करना पड़ता है और अपने सुखों के प्रति ललक के कारण ही वह जगमोहन के साथ घर छोड़ने के लिए तत्पर है।

सुप्रसिद्ध रंगशिल्पी **ओम शिवपुरी** का कहना है—''महेन्द्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता है। सावित्री भी उसे चाहती रही होगी, लेकिन ब्याह के बाद महेन्द्रनाथ को बहुत निकट से जानने पर उसे, उससे वित ष्णा होने लगी, क्योंकि जीवन में सावित्री की अपेक्षाएँ बहुमुखी और अनन्त है।'' नाटक में पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा स्त्री की उच्च महत्त्वाकांक्षाओं और म ग त ष्णा और उसके अन्तर्विरोध को प्रकट करते हुए कहता है—

"पुरुष चार : असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में, तो साल-दो-साल बाद, तुम यही महसूस करतीं कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र कोई जुनेज़ा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है—कितना-कुछ एक साथ होकर,

कितना-कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढकर जीना। वह उतना-कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता इसलिए जिस-किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहतीं।'

4. **दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट नारी :** सावित्री अपने दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट है। वह अपने पति महेन्द्रनाथ के निठल्लेपन, पराश्रित एवं दब्बूपन के कारण उसे पति रूप में पाकर सन्तुष्ट नहीं है। विवाह से पूर्व महेन्द्रनाथ एक सफल और धनाढ्य व्यापारी था लेकिन उसने विवाह के बाद सारा पैसा ऐय्याशी में उड़ा दिया जिसके कारण परिवार का जीवन में सुखों के प्रति गहरी ललक थी और उसकी इच्छाएँ भी असीम और अनन्त थी। लेकिन अब उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं हो सकती थी, वह महेन्द्रनाथ को आधा-अधूरा मानकर उसके लिए कभी भी पत्नी-प्रेम का समर्पण नहीं कर पाई। इतना ही नहीं क्षुब्ध हालत में तो वह अपने-आप को महेन्द्र की पत्नी मानने से भी इनकार करती है—

''मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी। महेन्द्र भी एक आदमी है, जिसके अपना घर-वार है, पत्नी है, यह बात महेन्द्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नजर में आप का ही कुछ आपसे छीन लिया। महेन्द्र अब पहले की तरह हँसता नहीं। महेन्द्र अब दोस्तों में बैठकर पहले की तरह खिलता नहीं। महेन्द्र अब वह पहले वाला महेन्द्र नहीं रह गया। और महेन्द्र ने जी जान से कोशिश कि वह वही बना रहे किसी तरह। कोई यह न कह सके जिससे कि वह पहले वाला महेन्द्र का नहीं गया और इसके लिए महेन्द्र घर के अन्दर रात-दिन छटपटाता है। दीवारों से पटकता है। बच्चों को पीटता है। बीवी के घुटने तोड़ता है।''

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि सावित्री दाम्पत्य जीवन से कितनी असन्तुष्ट थी। विवाह के दो वर्ष के भीतर ही महेन्द्रनाथ सावित्री को एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई से भी कम, एक लिजलिजा और चिपचिपा आदमी लगने लगता है और पूरे आदमी की तलाश में उसके सामने सबसे पहले आता है—महेन्द्र का मित्र जुनेज़ा, जो पैसे और दबदबे वाला एक काइयाँ व्यक्ति है। जुनेज़ा के साथ कोई मार्ग न मिल पाने के कारण उसकी द ष्टि क्रमशः शिवजीत, जगमोहन, मनोज एवं सिंघानिया जैसे पर-पुरुषों पर पड़ती है। वह उनके साथ अपने बाकी जीवन को बिताने की असफल कोशिश करती है।

5. **विपथगामिनी एवं अहंकारी महिला :** सावित्री इस नाटक में एक ऐसी कामुक और विपथगामी आधुनिक महिला का प्रतिनिधित्व करती है जो अपनी सुविधाओं के व्यामोह में यहाँ-से-वहाँ भटकती है किन्तु उसे हर पुरुष एक जैसा मिला जिसने उसे निचोड़ा, रस लिया और फिर निचुड़ी स्थिति मे या तो उसकी लड़की को रात के अँधेरे में भगा ले गया या फिर उसे सहानुभूति के दो-चार शब्द कहकर दुत्कार दिया।

अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और काल्पनिक पूरे पन की तलाश में वह भारतीय नारी के समस्त आदर्शों को सूली पर पर चढ़ाकर पाँच-पाँच पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाती है। ऊँचे पद तनख्वाह और व्यक्तित्व के लिए अपने पतिव्रत रूप को त्याग कर विपथगामिनी बनती है। तथा अपने परिवार की घुटन-टूटन का कारण बनती है।

इसके साथ-साथ वह स्वावलम्बी एवं कमाऊ महिला है और उसका पति निठल्ला, बेकार, बेगार है जिसके कारण वह अहं भाव से युक्त हो गई है। वह चाहती है कि इस घर में जो कुछ भी हो वह उसी की इच्छा के अनुरूप हो। वह इतनी अहंकारी महिला है कि अपने पति महेन्द्रनाथ को भी पति स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह स्पष्ट कहती है—'मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी।' वह पग-पग पर महेन्द्र के ग हपतित्व को चुनौती देती है—

''पुरुष एक : पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

स्त्री : तुम्हारा घर। हुँह।

पुरुष एक : तो मेरा घर नहीं है यह? कह दो नहीं है।

स्त्री : सचमुच तुम अपना घर समझते इसे, तो।''

वह अपने पति महेन्द्रनाथ के मैले पाजामे को इस प्रकार उठाती है जैसे मरा हुआ जानवर। वह महेन्द्रनाथ को पाजामें, चाय की जूठी प्यालियों आदि के लिए भी डाँटती है।

वह इतनी जिद्दी हठीली एवं अहंभाव से युक्त महिला है कि पुरुष चार (जुनेज़ा) के याद दिलाने पर उसके समक्ष अपनी हठी का प्रदर्शन करते हुए महेन्द्रनाथ को अपने ही पास रख लेने को कहती है। वह पुरुषों की इस साजिश के प्रति क्षुब्ध हो उठती है और कहती है—''आप जाइए और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रखिए। इस घर में आना और रहना सचमुच हित में नहीं है उसके। और मुझे भी...मुझे भी अपने पास उस मोहरे की बिल्कुल-बिल्कुल जरूरत नहीं है जो न खुद चलता है और न किसी और को चलने देता है।''

6. **यन्त्रणाओं की शिकार :** इस नाटक में सावित्री का इतना फ्लर्ट (आवारा) होना एक मनोवैज्ञानिक कारण भी रखता है। यह ठीक है कि वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की म ग त ष्णा में वह पद, सम्मान, वैभव और पूरे आदमी की तलाश में भटकी है। परन्तु महेन्द्रनाथ के व्यवहार, उसकी परमुखपेक्षिता, दब्बू प्रकृति, निठल्लापन आदि की प्रतिक्रिया में वह मानसिक आघातों से पीड़ित हुई है तथा काल्पनिक पूरेपन की तलाश में आवारा बनी हैं।

जीवन के हर मोड़ पर अपने पति की असफलताओं से क्षुब्ध सावित्री का नारीत्व विद्रोह करने लगता है। वह अपने पति के रूप में पूरे आदमी की तलाश की एक यथोचित यंत्रणा झेलती है। महेन्द्रनाथ के व्यवहार को नाटककार ने कई स्थलों पर स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। यथा—''फलाँ से तुम ठीक से बात क्यों नहीं करतीं? तुम अपने को पढ़ी-लिखी कहती हो?. ..तुम्हें तो लोगों के बीच उनके बैठने की भी तमीज नहीं है...और वही महेन्द्र जो दोस्तों के बीच दब्बू-सा बना हल्के-हल्के मुस्कराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है।...बोल, बोल, बोल, चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे में समझता हूँ? मानोगी वह सब नहीं जो मैं कहता हूँ।'' पर सावित्री फिर भी वैसे नहीं चलती। वह सब कि नहीं मानती।

बड़ी लड़की बिन्नी के शब्दों में महेन्द्रनाथ का राक्षस रूप ऊभर कर सामने आता है। ''आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना...उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने के कमोड पर ले जाकर...(सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक द श्य देखे हैं इस घर में मैंने।''

इस प्रकार सावित्री के चरित्र में आवारापन वर्तमान आर्थिक विसंगतियों, बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं और पति के निठल्लेपन और पारिवारिक यन्त्रणाओं के कारण हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सावित्री पूरे नाटक की केन्द्रीय पात्रा है। नाटक की समस्त कथावस्तु उसके चारों तरफ घूमती है। नाटक की फलभोगिन भी वही है। अतः हम उसे नाटक की नायिका कह सकते हैं। परिस्थितियों और महत्त्वाकांक्षाओं ने उसे भटकाया है। भटकाया ही नहीं छला भी है। कुल मिलाकर सावित्री का चरित्र वर्तमान समाज में विवशतावश नौकरी के बोझ से दबी मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करता है। पति की आर्थिक असफलता घर के बोझ को पूर्णता उस पर लाद देती है। घर की टूटती-बिखरती जिन्दगी से ऊब कर पिछले बीस-बाईस सालों से अपनी कल्पना के 'एक पूरे आदमी' की तलाश में इधर-उधर भागती रही है। अपने मादे और अपनी शख्सियत वाले पूरे आदमी की तलाश में वह अधूरे आदमियों से टकरा-टकरा कर लौटती है और अपनी खीझ में चीखती-चिल्लाती, तार-तार होती है और उसी अधूरे-पुरुष महेन्द्रनाथ के साथ जीने के लिए मजबूर होती है।

सावित्री को 'आधे-अधूरे' नाटक में उस महत्त्वाकांक्षिणी आधुनिक नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो पति की असमर्थता अथवा आर्थिक वैषम्य को उसका अधूरापन मानकर स्वयं अपने अधूरेपन को अन्य पुरुषों से सम्बन्ध को पूर्ण होने का पूर्ण प्रयास करती है और यह पर-पुरुष आकर्षण उसके व्यक्तित्व को ही तोड़कर रख देता है।

# 10

# महेन्द्रनाथ : चरित्र-चित्रण

दोस्तों का चहेता और हँसमुख महेन्द्रनाथ सावित्री से शादी के बाद कारोबार में लगातार असफल होकर आज पत्नी की कमाई पर जिन्दा, लड़ने-कुढ़ने वाला और पत्नी के परिचितों या प्रेमियों के आने पर चुपचाप घर से चला जाने वाला एक पराजित, कटु और कभी-कभी खूँखार बन जाने वाला अजीब-सा कुंठित व्यक्ति बन गया है।

महेन्द्रनाथ सम्पूर्ण नाटक में 'पुरुष एक' नाम से ही आता है। उम्र पचास के आस-पास, चेहरे की विशिष्टता में एक व्यंग्य है। यों अपनी स्त्री की कमाई की रोटियाँ तोड़ रहा है और ग ह पति की मर्यादा से वंचित है। जीवन की लड़ाई में हार की छटपटाहट है, वह तीन बच्चों का बाप है। पत्नी के परिचितों के आने पर घर से निकल जाता है। ''सावित्री को महेन्द्रनाथ सदा से दब्बू, व्यक्तित्वहीन, पर-निर्भर लम्य है और आधा-अधूरा आदमी भी। मन की कटुता और तिम्तता के व्यंग्यबाणों से पत्नी के अन्तरमन को भेदता रहता है। नाटक के प्रारम्भ में पुरुष का परिचय स्वागत भाषण के माध्यम से होता है। वह स्वयं कहता है, ''यह नाटक भी अपने में मेरी तरह अनिश्चित है।'' महेन्द्रनाथ नाटक का नायक है, साथ ही बेकार, निराश और असफल पति है। शादी के बाद ही उसकी पत्नी को वह एक पूरे आदमी का आधा चौथाई अर्थात् अधूरा, लिवलिवा और चिपचिपाता-सा आदमी लगने लगा।

डॉ. पुष्पा बंसल का कहना है—''ग हपति होते हुए भी वह घर का स्वामी नहीं रह गया है, सबसे बड़ा होने पर भी (वयोव द्धत्व के नाते) उसको सम्मान नहीं मिलता। मन में एकदम न चाहने पर भी घर के काम-काज में उसका प्रयोग एक स्टैम्प के समान किया जाता है।'' नाटक के महेन्द्रनाथ के चरित्र की निम्नलिखित प्रव त्तियाँ उद्घाटित होती है।

1. **कमजोर एवं पराश्रित व्यक्तित्व :** महेन्द्रनाथ में न तो स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता है और न ही स्वतन्त्र रूप से कोई निर्णय लेने का सामर्थ्य है। न उसकी अपनी कोई विचारधारा है और न उसका अपना कोई व्यक्तित्व है। वह हमेशा प्रत्येक बात के लिए दूसरों पर आश्रित रहता है। वह हर बात के लिए दूसरों के मुँह की ओर ताकता रहता है। सावित्री स्पष्ट घोषणा करती है—''जब से मैंने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज के लिए किसी-न-किसी को सहारा ढूँढते पाया है।. ..यह कहना चाहिए या नहीं...जुनेज़ा से पूछ लूँ। यहाँ जाना चाहिए या नहीं जुनेज़ा से राय ले लूँ। कोई छोटी-सी-छोटी चीज खरीदनी है तो भी जुनेज़ा की पसन्द से। कोई बड़े-से-बड़ा खतरा उठाना है—तो जुनेज़ा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझसे ब्याह करने का फैसला भी किया, उसने जुनेज़ा की हामी भरने से।'' स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता न होने के कारण तथा पर-आश्रित होने के कारण महेन्द्रनाथ की बौद्धिक क्षमताएँ कुंठित हो गईं तथा व्यक्तित्व का पूर्णरूप से विकास नहीं हो पाया। अतः स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ पर-आश्रित व्यक्ति है।
2. **शंकालु प्रव त्ति :** महेन्द्रनाथ इस नाटक में शंकालु प्रव त्ति का स्वामी नजर आता है। अपनी पत्नी सावित्री के कार्यकलाप पर शंकालु द ष्टि रखता है। सावित्री अपने बेटे अशोक की नौकरी लगवाने के लिये अपने कामुक पुरुष-मित्र सिंघानिया को घर बुलाती है तो महेन्द्र सावित्री के चरित्र को शंका की द ष्टि से देखता है—इसकी झलक निम्नलिखित उदाहरण में द्रष्टव्य है—

''**पुरुष एक** : कौन आएगा? सिंघानियाँ

**स्त्री** : उसे किसी के यहाँ खाना खाने जाना है इधर। पाँच मिनट के लिए यहाँ भी आएगा। मुझे यह आदत अच्छी नहीं लगती तुम्हारी कितनी बार कह चुकी हूँ।

**पुरुष एक** : तुम्हीं ने कहा होगा उससे आने के लिए।

**स्त्री** : कहना फर्ज नहीं बनता मेरा, आखिर मेरा बॉस है।

**पुरुष एक** : बॉस का मतलब यह थोड़े ही है कि...?

**स्त्री** : लोगों को तो ईर्ष्या है मुझसे कि दो बार मेरे घर आ चुका है। आज तीसरी बार आएगा।

**पुरुष एक** : तो लोगों को भी पता है वह आता है?''

महेन्द्रनाथ अपनी इस शंकालु भावना का प्रदर्शन तब भी करता है जब उसकी बड़ी लड़की बिन्नी मनोज के घर से भाग कर चली आती है। वह अपनी शंका सावित्री पर प्रकट करता है और उससे कहता है कि वह बिन्नी से पूछे कि वह अपना घर छोड़कर क्यों चली आई है। वह बिन्नी के विषय में अपनी शंका इस प्रकार प्रकट करता है—

''**पुरुष एक** : मुझे तो यह उस तरह आयी लगती है।

**स्त्री** : चाय ले लो।

**पुरुष एक** : इस बार कुछ सामान भी नहीं है साथ में।

**स्त्री** : हो सकता है थोड़ी ही देर के लिए आई हो।

अतः स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ शंकालु स्वभाव का व्यक्ति है। इसका मुख्य कारण उसकी पत्नी का चरित्रहीन होना है।

3. **ईर्ष्यालु एवं कुढनशील :** महेन्द्रनाथ को सावित्री के चरित्र पर सन्देह तो हमेशा ही रहता है उसके साथ ही सावित्री के पुरुष मित्रों से उसे ईर्ष्या भी होती है। जब-जब कोई व्यक्ति उसके घर आता है वह जल उठता है और वह ऐसे लोगों की उपस्थिति में स्वयं घर से बाहर चला जाता है। बहाने बनाकर घर से चला जाना उसकी ईर्ष्या प्रव त्ति का ही परिचायक है सिंघानियाँ के आने से पहले का यह वार्तालाप उसकी ईर्ष्या प्रव त्ति का परिचय देता है।

''**पुरुष एक** : उसमें क्या है? आदमी को काम नहीं हो सकता बाहर?

**स्त्री** : वह तुम्हें आज भी हो जाएगा तुम्हें।

**पुरुष एक** : जाना तो है आज भी मुझे...पर तुम जरूरी समझो मेरा यहाँ रहना तो...।

**स्त्री** : तुम्हें सचमुच कहीं जाना है क्या? कहाँ आने की बात कर रहे थे तुम?

**पुरुष एक** : सोच रहा या जुनेज़ा के यहाँ हो आता।''

**श्री ओम शिवपुरी** का कहना है—''यह सावित्री के पुरुष मित्रों को जानता है, और जब-तब उनका जिक्र करके अपने दिल की भड़ास निकालता रहता है। अपने कुचले आत्मसम्मान को बचाने की खातिर वह अकसर शुक-शनीचर घर छोड़कर चला जाता है। लेकिन कुछ घण्टे बाद वापिस लौट आता है—थका, हारा, पराजित...क्योंकि यहीं उसकी नियति है।''

वह फाइलों से जूझता है। सावित्री की बातें सुनना चाहता है। इसलिए फाइलों की उठा-पटक करता है क्योंकि उसे सिंघानियाँ से ईर्ष्या भी है। वह इस बात से भी जलता है कि सावित्री जिन लोगों के सम्पर्क में आती है वे महेन्द्रनाथ की अपेक्षा प्रतिष्ठित, सम्मानित और ऊँचे पदों वाले लोग होते हैं। अपनी इस जलन का प्रदर्शन भी वह स्वयं कर देता है, ''अधिकार, रुतबा, इज्जत—यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे। मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है।''

नाटक में महेन्द्रनाथ प्रत्येक क्षण एक कुढ़ा हुआ व्यक्ति दिखाई देता है वह स्वयं को सबसे छोटा अपाहिज व्यक्ति अनुभव करता है इसीलिए प्रत्येक बात पर कुढ़ता रहता है। स्वयं उसके घर के सदस्य ही उसकी उपेक्षा करते हैं और बात-बात पर अपमानित करते रहते हैं। अपनी पत्नी की घोर उपेक्षा और प्रताड़ना के कारण ही वह ओछा बन जाता है और न कहने योग्य बातें भी अपने बच्चों के सामने ही कह देता है। पत्नी की उपेक्षा से वह तिलमिला जाता है किन्तु प्रतिरोध करने की शक्ति न होने के कारण केवल कुढ़ता ही रह जाता है यथा—

''**पुरुष एक** : यह सब कहता है वह? और क्या-क्या कहता है?

**स्त्री** : वह इस वक्त तुमसे बात नही कर रह रही।

"**पुरुष एक** : पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

**स्त्री** : तुम्हारा घर! हहँ!

**पुरुष एक** : तो मेरा घर नहीं है यह? कह दो नहीं है।

**स्त्री** : सचमुच तुम अपना घर समझते इसे तो...।

**पुरुष एक** : कह दो, जो कहना चाहती हो।

**स्त्री** : दस साल पहले कहना चाहिए था मुझे...जो कहना चाहती हूँ।

**पुरुष एक** : कह दो अब भी...इससे पहले कि दस साल, ग्यारह साल।''

नाटक में और कई स्थल हैं जहाँ पर ईर्ष्याभाव एवं कुढ़नशीलता महेन्द्रनाथ की चारित्रिक विशेषता बनकर उभरती है।

4. **प्रभावहीन व्यक्तित्व एवं आरामतलब :** महेन्द्रनाथ का व्यक्तित्व अपनी पराश्रिता, दब्बूपन एवं आरामतलब जिन्दगी के कारण प्रभावहीन हो गया है। वह ग हस्वामी होकर भी ग हपति की मर्यादा से वंचित है। उसे न घर में सम्मान प्राप्त है न बाहर। उसकी पत्नी उसे पति मानने से इन्कार करती है—''मत कहिए मुझे महेन्द्रनाथ की पत्नी।'' बड़ी लड़की घर से भाग जाती है। लड़का अशोक निकम्मा हो जाता है तथा छोटी लड़की उद्दण्ड हो जाती है। महेन्द्रनाथ अपने को 'रबड़ स्टैम्प' और रबड़ का टुकड़ा मानता है। उसका जीवन अस्तित्वहीन और अर्थहीन हो गया है, ऐसा उसे हरदम लगता है। वह अपना आत्म-विश्लेषण और आत्म-परीक्षण करते हुए कहता है—''अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ.. .इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ...क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ।'' अपना आत्मपरीक्षण करते हुए आगे कहता है, ''मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ, जिसने अन्दर-ही-अन्दर इस घर को खा लिया है। महेन्द्रनाथ सारा दिन घर में बेकार-बेगार रहकर चाय पीता रहता है, अखबार पढ़ता रहता है और घर के सारे सामान को अव्यस्थित करके रख छोड़ता है जिससे सावित्री आकर बड़बड़ाती है। बाल बच्चों के प्रति कर्त्तव्य को वह निभाता नहीं है बल्कि उन्हीं के समक्ष सावित्री को पीटता है, उसके बाल नोचता है, जिससे बालक उसका सम्मान नहीं करते। महेन्द्रनाथ स्पष्ट कहता है—''मेरी क्या यही हैसियत है इस घर में जो जब जिस वजह से जो भी कह दे, चुपचाप सुन लिया करूँ? हर वक्त की धुतकार, हर वक्त की कोंच, बस यही कमाई है यहाँ मेरी इतने सालों से।''

अतः स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ अपने परिवार में उपेक्षित और तिरस्कृतपूर्ण जीवनयापन कर रहा है। न ही उसको अपने घर में सम्मान-प्राप्त है और न बाहर। आरामतलबी एवं आलसी प्रव त्ति ने उसके हृदय में हीन भावना उत्पन्न कर दी है। इसीलिए बेकारी की हालत के कारण बच्चे एवं पत्नी उससे दूर होते जा रहे हैं। बच्चों एवं पत्नी के प्रति कर्त्तव्य को भी वह भली-भाँति नहीं निभाता तथा अपनी ऐय्यासी के कारण पूरे परिवार को आर्थिक अभाव की दलदल में धकेल दिया है। महेन्द्रनाथ की बेकारी-बेगारी एवं आरामतबली-अकर्मकता के कारण सावित्री की इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती जिसके कारण वह पर-पुरुषों से सम्पर्क जोड़ती है। जिससे उसका परिवार विघटन के कगार पर पहुँच जाता है।

अतः कहा जा सकता है कि महेन्द्रनाथ के रूप में मोहन राकेश जी ने एक ऐसे मध्यवर्गीय निम्न आय वाले परिवार के मुखिया का चित्रण किया है जो अपने पराश्रित, आलसीपन और दब्बूपन के कारण एक-दूसरा हुआ आधा-अधूरा व्यक्ति है। वह नाटक का नायक है परन्तु सबसे दुर्बल और दयनीय पात्र भी है। वह ग हस्वामी होकर ग हपति की मर्यादा से वंचित है। पूरे परिवार की भर्त्सना सहता है। अपमानित होकर घर छोड़ता है परन्तु अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण उसी घर में लौटकर अपमानित और निरर्थक जिन्दगी जीने के लिए मजबूर है।

# 11

# अशोक का चरित्र-चित्रण

'आधे-अधूरे' नाटक में अशोक एक महत्त्वपूर्ण सहायक पात्र के रूप में उपस्थित हुआ है। अशोक इस नाटक में आधुनिक युवा पीढ़ी की पीड़ा, आक्रोश, अकर्मण्यता, अस्वीकार और पलायन को साक्षात रूप में मंच पर प्रस्तुत करता है।

आधुनिक विचारधारा से अनुप्राणित यह नवयुवक फ्रेंच कट दाढ़ी, रंग-बिरंगी बुशर्ट-पतलून तथा नई-नई पत्रिकाओं का अध्ययन आदि में रुचि रखता है। वह कर्तव्य पथ से च्यूत, बेकार-बेगार नवयुक है, जो सारा दिन घर पर रहकर पत्रिकाओं में से अश्लील तस्वीरें काटता रहता है। उद्योग सैंटर वाली वर्णा के पीछे जूतियाँ चटखाता फिरता है। नाटककार मोहन राकेश ने उसका परिचय इस प्रकार दिया है—''उम्र इक्कीस के आसपास। पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुशर्ट धुल-धुलकर घिसी हुई। चेहरे से, यहाँ तक कि हँसी से भी झलकती खास तरह की कड़वाहट।'' अशोक की महेन्द्रनाथ भी भाँति बेकार-बेगार है और कोई भी कार्य निष्ठापूर्वक नहीं कर सकता। वह न तो मन लगाकर पढ़ाई कर सका और न एयरफ्रीज में नौकरी ठीक प्रकार से कर पाता है। उसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ द ष्टिगोचर होती हैं।

1. **स्पष्टवादिता एवं वाकपटुता :** अशोक पूरे नाटक में एक स्पष्टवादी वाकपटु पात्र के रूप में प्रकट होता है। वह अपनी रुचि के प्रतिकूल बात को चाहे वह बात कड़वी हो, भद्दी हो या अच्छी हो। नई स्पष्ट एवं वाक्चातुर्य से प्रकट कर देता है। वह जानता है कि उसकी माँ अपने बॉस सिंघानिया का बहुत आदर करती है और उसके विषय में अपमानजनक बातें नहीं सुन सकती, किन्तु स्वयं उसके मन में सिंघानियाँ की जो 'इमेज' बनी है उसे भी वह झुठला नहीं सकता। निम्नलिखित वार्तालाप में उसकी स्पष्टवादिता स्पष्ट रूप से मुखर हो रही है। देखिए—

**'स्त्री** : दोनों बार इसी के लिए बुलाया था मैंने उसे। आज भी इसी की खातिर...।

**लड़का** : मेरी खातिर? मुझे लेना-देना है उससे?

**बड़ी लड़की** : ममा उसके जरिए तेरी नौकरी के लिए कोशिश कर रही होंगी न...।

**लड़का** : मुझे नहीं चाहिए नौकरी। कम-से-कम उस आदमी के जरिए हरगिज नहीं।

**बड़ी लड़की** : क्यों, उस आदमी को क्या है?

**लड़का** : चुकन्दर है वह आदमी है? जिसे न बैठने का शऊर है न बात करने का।

**स्त्री** : पाँच हजार तनख्वाह है उसकी। पूरा दफ्तर सँभालता हैं

**लड़का** : पाँच हजार तनख्वाह है, पूरा दफ्तर सँभालता है, पर इतना होश नहीं कि अपनी पतलून के बटन...

**स्त्री** : अशोक।''

इतना ही नहीं है वह अपनी माँ सावित्री को भी उसके गलत कार्यों के लिए फटकारने में नहीं हिचकता। वह जानता है कि सिंघानियाँ जैसे लोगों की मनोव त्ति कैसी है इसलिए वह अपनी माँ से कहता है—

'नहीं बर्दाश्त है, तो बुलाती क्यों हो ऐसे लोगों को घर कि जिनके आगे...? जिनके आगे हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।...आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है उसकी किसी 'बड़ी चीज की वजह से। एक को कि वह इंटलेक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तरक्की चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं—उसकी तनख्वाह को, नाम को रुतबे में बुलाया है।...बात को रहने दो, ममा! मैं नहीं चाहता मेरे मुँह से कुछ ऐसा निकल जाय तुम...।''

इन संवादों से अशोक की स्पष्टवादिता ही नहीं अपितु वाक्पटुता भी झलकती है।

2. **आवारा एवं चरित्रहीन युवक :** इस नाटक में अशोक के कार्यकलापों से पता चलता है कि वह एक आवारा एवं चरित्रहीन युवक है। वह घर को घर न समझकर तीन-तीन दिन तक घर से गायब रहता है। लड़कियों के पीछे जूती चटकाता फिरता है। पढ़ाई की किताबों से नाता तोड़कर अश्लील किताबें पढ़ता है। अभिनेत्रियों के अश्लील चित्र जमा करने का उसे विशेष शौक है। बिन्नी के शब्दों में, वह सेंटर वाली वर्णा के पीछे भागता है और घर की अनेक वस्तुएँ उसे भेंट कर चुका है। अश्लील पुस्तकें पढ़ने के आरोप में पकड़े जाने पर भी वह अपनी हठता का परिचय देता है। यथा—

**छोटी लड़की :** झूठ बिल्कुल झूठ। मैंने देखी भी नहीं यह किताब।

**लड़का :** नहीं देखी?

**छोटी लड़की :** तू तकिए के नीचे रखकर सोए, तो भी कुछ नहीं, मैंने जरा निकलकर देख भर ली, तो...।

**पुरुष एक :** मैं देख सकता हूँ?

**लड़का :** नहीं...आपके देखने की नहीं है। अब फिर पूछो मुझसे कि इसकी उम्र कितने साल की है।

**बड़ी लड़की :** क्यों अशोक...यह वही किताब है न कैसनीवा वाली?''

इसके साथ-साथ वह अपनी माँ की जरा सी भी इज्जत नहीं करता है एवं अपने आवारापन के कारण पढ़ाई एवं नौकरी दोनों में असफल है।

3. **अशिष्ट एवं विद्रोही युवक :** अशोक के माध्यम से मोहन राकेश ने आज के युग वर्ग की अशिष्टता एवं विद्रोहीपन को चित्रित किया है। माँ सावित्री के चारित्रिक पतन एवं पिता की महत्त्वहीन स्थिति ने अशोक की मानसिकता को विद्रोही एवं अशिष्ट बना दिया है। अपने पारिवारिक तनावपूर्ण सम्बन्धों से उसके अन्दर खीज एवं विद्रोह की प्रव त्ति पनपती है। वह अपने घर के परिवेश में विद्रोही हो जाता है। इसी विद्रोहीपन के कारण उसके व्यवहार में भी अशिष्टता आ गई है। अशोक के विद्रोह एवं अशिष्टता का एक उदाहरण देखिए।

''**लड़का :** मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने किस वजह से बुलाया है?

**स्त्री :** तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

**लड़का :** उसकी किसी 'बड़ी' चीज की वजह से। एक को कि वह इंटेलेक्युअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं—उसकी तनख्वाह को, नाम को रुतबे को बुलाया है।

**स्त्री :** और मैं उन्हें इसलिए बुलाती हूँ कि...

**लड़का :** पता नहीं किसलिए बुलाती हो पर बुलावा सिर्फ ऐसे ही लोगों को ही। अच्छा, तुम्हीं बताओ, किसलिए बुलाती हो?''

अतः कहा जा सकता है कि अशोक के चरित्र में विद्रोह का भाव अपनी तमाम विद्रूपताओं के साथ प्रकट हुआ है।

4. **आधुनिक विचारधारा का फैशनपरस्त युवक :** इस नाटक में अशोक आधुनिक विचारधारा के फैशनपरस्त युवक के रूप में चित्रित है। वह पाश्चात्य संस्कृति में अंधानुकरण से भौतिकता से जुड़ा नवयुवक है। वह आधुनिकता के आवरण में अपने बड़ों की इज्जत करना भूल गया है तथा नित बदलते फैशनों को अपनाता है। वह शरीर से दुबला-पतला है किन्तु फैशन की तरफ उसमें विशिष्ट आकर्षण है। नाटककार ने उसकी वेशभूषा के बारे में लिखा है—

''पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुशर्ट धुल-धुलकर घिसी हुई।''

जब बिन्नी उससे शेव न बनाने का कारण पूछती है तो वह इस प्रकार से कहता यथा—

''**बड़ी लड़की :** शेव करना छोड़ दिया है क्या तूने?

**लड़का :** (अपने चेहरे को छूता हुआ) मैं फ्रेंचकट रखने की सोच रहा हूँ। कैसी लगेगी चेहरे पर?''

इतना ही नहीं वह अपनी फैशनपरस्ती में पत्रिकाओं से भी नये-नये फैशनों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

5. **बेरोजगार एवं दायित्वहीन युवक :** अशोक एक बेरोजगार दायित्वबोधहीन युवक है। वह अपनी नौकरी को अपनी दायित्वहीनता के कारण छोड़ देता है। एयरफ्रीज में मिली नौकरी को वह अपनी अकर्मण्यता के कारण छोड़ देता है। इसके

अलावा वयस्क होने पर भी वह अपने घर के प्रति जरा भी चिन्तित नहीं है। वह विदेशी मैग्जीनों से तस्वीर काट-काटकर अपना खाली समय काट रहा है।

नाटक के प्रारम्भ में ही सावित्री अशोक की कारगुजारी पर प्रकाश डालते हुए कहती है—''और अशोक बाबू यह कमाई करते रहे हैं दिनभर। (तस्वीरें उठाकर देखती) एलिजाबेथ टेलर...आड्रेहेबर्न...शैल मैम्लेन। जिन्दगी काट रहे हैं इन तस्वीरों के साथ।''

इस सन्दर्भ में डॉ. सुन्दर लाल कथूरिया का कथन है—

''वह अपनी इक्कीस वर्षीय आयु में ही, जब उसे अपने पैरों पर चलना चाहिए था, विरक्त होकर अथवा निरुपाय अवस्था में निकम्मा हो बैठता है। उसकी सहानुभूति पिता महेन्द्रनाथ के प्रति शायद इसलिए है कि उन दोनों की प्रव त्ति में कहीं गहरी समानता है। उसके क्रिया-कलापों में अभिनेत्रियों की तस्वीरें काटना, यौन-विषयक पुस्तकों को पढ़ने आदि में जहाँ यौवन के एक यथार्थ को अभिव्यक्ति मिलती है वहाँ अनेक यथार्थ निकम्मेपन की आड़ में दब भी जाते हैं।''

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अशोक आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है। चेहरे पर हँसी के साथ ही युवा पीढ़ी की बेचैनी, दुःख, हैरानी, अस्वीकार, पलायन और आक्रोश भी व्यक्त होता है। अपने को बेकार और आवारा सिद्ध करता है। परिवार के तनाव, विद्रोह और उबाऊ सन्दर्भों के कारण अशोक के व्यक्तित्व में भी नकारात्मक तत्त्व आ गए हैं।

डॉ. जयदेव तनेजा ने अशोक के चरित्र की गुण-दोष की विवेचना करते हुए स्पष्ट लिखा है—''लड़के अशोक के चेहरे की हँसी से झलकती कड़वाहट आज की युवा पीढ़ी की पीड़ा अस्वीकार, पलायन और आक्रोश तथा आन्तरिक तनाव को अपनी तेजाबी से प्रकट करती है। इक्कीस वर्षीय अशोक चलना शुरू करने से पहले ही विरक्त और निकम्मा होकर बैठ गया है। उसकी प्रच्छन्न सहानुभूति पिता के प्रति (क्योंकि शायद उन दोनों में कहीं गहरी समानता है) और माँ के प्रति प्रकट वित ष्णा एवं असहमति है। काम-काज और जीवन के यथार्थ से मुँह मोड़कर अभिनेत्रियों की तस्वीरों, यौन-विषयक पुस्तकों और वर्णा से रोमांस के बीच जिन्दगी बिता रहा है।''

# 12

# बड़ी लड़की अर्थात् बिन्नी का चरित्र-चित्रण

इस नाटक में बड़ी लड़की अर्थात् बिन्नी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वह महेन्द्रनाथ एवं सावित्री की बड़ी लड़की तथा अशोक एवं बिन्नी की बड़ी बहन है। नाटककार ने उसका परिचय इस प्रकार दिया है—''उम्र बीस से ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलापन। कभी-कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। साड़ी माँ से साधारण। पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।''

बिन्नी अपनी मर्जी से अपनी माँ के प्रेमी मनोज से शादी करने पर भी विवाहित जीवन की खुशियों से वंचित है। मनोज के साथ रहते हुए भी अलगाव-बोध से पीड़ित है सावित्री द्वारा पूछने पर वह स्पष्ट कहती है कि, ''शादी से पहले मुझे लगता था कि मैं मनोज को अच्छी तरह जानती हूँ पर अब आकर...अब आकर लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।''

बिन्नी के विषय में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसकी स्थिति नाटक की मूल समस्या का उद्घाटन करने में बहुत सहायक है। वह अपने परिवार की स्थिति को अपने संवादों एवं व्यवहार से स्पष्ट करती है। अपने माता-पिता के आपसी सम्बन्धों के खोखलेपन और पारिवारिक परिवेश की कटुता को स्पष्ट करते हुए वह पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा को बताती है—

''आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना. ..उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बंद कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर...(सिहरन) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक द श्य देखे हैं इस घर में मैंने।'' बिन्नी की चारित्रिक विशेषताएँ इस नाटक में निम्नलिखित रूप में ऊभर कर आई है—

1. **आवारा एवं हताश युवती :** बिन्नी के चरित्र में अपनी माँ सावित्री की भाँति ही आवारापन भी दिखाई देता है। यह आवारापन सम्भवतः उसके अन्दर अपने माता-पिता के आवारापन को देखकर ही उपजा है। वह अपनी माँ के प्रेमियों को प्रत्यक्ष रूप से घर में आता-जाता देखती थी। एक दिन स्वभावतः अपने घर में आने वाले मनोज नामक युवक के प्रति वह भी आकर्षित हो जाती है और एक रात बिना घर वालों को बताए वह मनोज के साथ भाग जाती है—एक नया घर बसाने। वह घर तो बसा लेती है किन्तु वहाँ खुश नहीं रह पाती क्योंकि एक व्यक्ति से आजीवन सम्बद्ध हो जाना तो उसने सीखा ही नहीं था। उसकी माँ ही जब एक व्यक्ति से सम्बन्ध न रख सकी तो वह कैसे रह पाती। और भागकर अपने पिता के घर आ गई। इस प्रकार उसके चरित्र में आवारापन के साथ ही हताशा भी घर कर गई। उसकी निराशा का चित्रण निम्नलिखित संवाद से होता है—

**''स्त्री** : तू खुश है वहाँ पर?

**बड़ी लड़की** : (बचते स्वर में) हाँ बहुत खुश हूँ।

**स्त्री** : सचमुच खुश है?

**बड़ी लड़की** : और क्या ऐसे ही कह रही हूँ?

**पुरुष एक** : (बिल्कुल दूसरी तरफ मुँह किए) यह तो कोई जवाब नहीं है।

**बड़ी लड़की** : (तुनककर) तो जवाब क्या तभी होता अगर मैं कहती कि मैं खुश नहीं हूँ, बहुत दुखी हूँ?''घर के कुण्ठित और विषैले वातावरण से मुक्ति के लिए वह मनोज के साथ भाग जाती है, किन्तु अपने नये जीवन को स्वाभाविक नहीं बना पाती। यही बिन्नी का आवारापन है और इसी आवारापन के कारण अपने नये घर में दमघोटू वातावरण, अपरिचय, अजनबीपन से हताश एवं निराश है।

2. **पारिवारिक-यन्त्रणाओं से पीड़ित :** बिन्नी जिस परिवार में पली और बड़ी हुई है। वह इतना अनुशासनहीन एवं चरित्रहीन परिवार है कि बिन्नी को संस्कारगत आदर्श मिल नहीं पाते हैं। बिन्नी ने विघटनशील परिवार के विघटन को प्रत्यक्ष रूप से झेला है। पिता महेन्द्रनाथ के रूप मे कभी दब्बूपन देखती है तो कभी अपने उसी पिता का राक्षसी रूप। माँ सावित्री की महत्वाकांक्षाओं से उसे वह आवारापन की शिक्षा-दीक्षा मिली है। अपने घर को वह चिड़ियाघर मानती है। वह अपने घर के दमघोटू एवं भयावह वातावरण का खुलाशा जुनेज़ा अंकल के सामने करती है—

''आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना. ..उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर...(सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक द श्य देखे हैं इस घर में मैंने।''

इतना ही नहीं घर में उससे छोटे अशोक और किन्नी भी उसका सम्मान नहीं करते हैं।

प्रेमी मनोज के संग भागकर नया घर बसाती है तो यहाँ भी पारिवारिक यातनाएँ उसकी पीछा नहीं छोड़ती हैं। उसका दामपत्य जीवन सुखी नहीं है। वह मनोज को छोड़कर वापस उसी घर के विषाक्त वातावरण में आने के लिए मजबूर है। वह मानती है कि वह इस घर से कुछ ऐसी चीज या हवा ले गई है जो उसे सहज नहीं रहने देती है।

3. **विखराव भरा व्यक्तित्व :** पारिवारिक विघटन अजनबीपन कुण्ठा एवं अलगाव-बोध ने बिन्नी के व्यक्तित्व को कुचल कर रख दिया है। सम्पूर्ण नाटक में उसके चेहरे पर अवसाद तथा उतावलापन झलकता है। वह कभी युवाओं की तरह चंचल होकर मनोज के साथ घर से भाग जाती है और कभी प्रौढ़ों की तरह अपने परिवार के सदस्यों को शिक्षाप्रद सांत्वना देती है। अपने इस बिखराव को दूर करने अथवा उससे मुक्ति पाने के लिए बीना कभी मनोज से लड़ पड़ती है, कभी उससे दूर रहना चाहती है, कभी उसकी इच्छा के विरुद्ध नौकरी कर लेना चाहती है। उसके मन में गुबार फट नहीं पाता, अपनी माँ से अपने इस बिखराव को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है—

''एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है और मैं इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे बाहर निकल लूँ।...क्योंकि मुझे कहीं लगता है कि...कैसे बताऊँ क्या लगता है? वह (मनोज) जितने विश्वास के साथ यह बात करता है, उससे...उससे मुझे अपने से एक अजब-सी चिढ़ होने लगती है। मन कहता है—मन करता है कि आस-पास की हर चीज को तोड़-फोड़ डालूँ।''

बिन्नी का यह बिखराव उसके व्यक्तित्व को अधूरा बना देता है। वह मनोज से सच्चा प्यार करके भी उसके साथ अजनबीपन महसूस करती है। उसके मन की यही अशान्ति उसके दुःखों का मूल कारण बनती है।

4. **पारिवारिक रिश्तों में संवेदनशीलता :** बिन्नी के चरित्र का सबसे उज्ज्वल पक्ष यह है कि वह पारिवारिक रिश्तों में अत्यन्त संवेदनशील है। वह अपने माता-पिता, भाई-बहन एवं पति मनोज के साथ गहन रूप से जुड़ी है। माता-पिता के घर का तनाव उसे खलता है। वह घर के दमघोटू वातावरण से भागी जरूर थी। परन्तु उसे अपने परिवार के सभी सदस्यों से बहुत लगाव है। बिन्नी खुद अपने दाम्पत्य जीवन की एक रसता से तनाव पूर्ण है। फिर भी अपने माता-पिता का तनाव कम करना चाहती है। वह अपनी माँ की सहेली जैसी बनकर उसके तनाव को कम करना चाहती है—यथा

**''बड़ी लड़की :** (उसके पीछे जाकर) ममा!
तुम तो आदी ही रोज-रोज ऐसी बातें सुनने की। कब तक इन्हें मन पर लाती रहोगी?
(उसकी तरफ आती) एक तुम्हीं करने वाली हो सब कुछ इस घर में। अगर तुम्हीं ...''

पिता के प्रति भी उसकी सहानुभूति है। वह अपने भाई-बहन को ममता एवं शिक्षा देती है। परन्तु उसकी विडम्बना यह है कि वह अपने परिवार को तनाव एंव घुटन से मुक्ति दिलाने में कोई कारगर भूमिका नहीं निभा पाती है। वस्तुतः उसकी एक भूल ने उसके संघर्ष की जड़ बना दिया है।

अतः कहा जा सकता है कि पारिवारिक परिस्थतियों ने बिन्नी जैसी सुशिक्षित युवती को चंचल ह्रदया, आवारा कुण्ठित एवं बिखरे व्यक्तित्व की स्वामिनी बना दिया है। पारिवारिक यन्त्रणाओं से अभिशप्त इस युवती के पूरे व्यक्तित्व में बिखराव एवं अधूरापन दिखाई देता है। परन्तु अपने इस बिखरे व्यक्तित्व में भी वह पारिवारिक रिश्तों में अत्यन्त संवेदनशील है। अपने आप टूटकर अपने परिवार को बचाए रखने की कोशिश उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष है।

# खण्ड ग

# लघूत्तरीय प्रश्न

**प्रश्न 1** : 'आधे-अधूरे' नाटक के प्रतिपाद्य (उद्देश्य) पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में नाटककार ने आधुनिक परिवेश में महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार के अभावपूर्ण जीवन तथा आपसी तनाव को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किया है। पूँजीवादी प्रणाली में स्तरीकरण की दौड़ तथा यान्त्रिक सभ्यता के प्रभाव से उत्पन्न स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में तनाव और इस तनावजन्य पारिवारिक विघटन के साथ-साथ मानवीय असन्तोष के अधूरेपन को मूर्त किया गया है। इसके साथ-साथ नाटककार ने मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक विषमता के सम्भाव्य परिणामों की खोज करते हुए आधुनिक नारी की स्वच्छन्द मनोव त्ति, कशमकश, दिशाहीनता, आवारगी के साथ पारिवारिक विघटन को कई कोणों से तदरूप रूप में चित्रित है।

**प्रश्न 2** : 'आधे-अधूरे' नाटक की कथावस्तु पर टिप्पणी लिखिए।

**उत्तर** : इस नाटक में स्थूल रूप से कोई निश्चित कथावस्तु नहीं हैं सम्पूर्ण नाटक में विषम परिस्थितियों में उलझे पात्रों की मनःस्थिति की टकराहट, अन्तर्द्वन्द, आक्रोश, तल्खी और कुण्ठाएँ सामयिक की अभिशप्तता को उजागर करती है। नाटक में निश्चित कथा न होते हुए परिस्थितियाँ ही कथावस्तु का निर्माण करती चलती है। पाँच सदस्यों के परिवार में आर्थिक कठिनाइयों ने मनुष्यों में ही नहीं, घर के वातावरण को भी दमघोंटू बना दिया है। घर के सभी सदस्य एक-दूसरे से दूर छिटकना चाहते हैं, घर से बाहर निकलना चाहते हैं। परन्तु नियति ने उन्हें पंगु बना दिया है। अन्ततः क्लांत होकर उन्हें वापस उसी दमघोंटू वातावरण में लौटना पड़ता है। नाटक का प्रारम्भ एक काले सूट वाले व्यक्ति के स्वयं को 'सड़क पर टकराने वाला आदमी' कहने से होता है। इस नाटक की कथावस्तु की प्रमुख विशेषता हमारी जानी-पहचानी जिन्दगी की साधारण बातों को असाधारण ढंग से प्रकट करने में है।

**प्रश्न 3** : 'आधे-अधूरे' नाटक के नायकत्व पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : 'आधे-अधूरे' नाटक में प्रमुख पुरुष पात्र तो महेन्द्रनाथ है। परन्तु इस नाटक में परिस्थितियों के उलट-फेर ने उसे नाटक का सबसे दयनीय, कमजोर एवं विवश पात्र बना दिया है। इसके विपरीत महेन्द्रनाथ की पत्नी पूरे नाटक की घटनाओं, परिस्थितियों की नियामक बन कर उभरी है। आधुनिक जीवन की अधिकाधिक विसंगतियाँ सावित्री के माध्यम से ही प्रकट हुई है, जो कि नाटक की कथावस्तु की मूल हैं। वह आधुनिक महत्त्वाकांक्षी नारी के रूप में अपना ऐसा दबदबा बनाती है कि नाटक के बाकी पात्र उसी के चरित्र का विकास करने के उपकरण बन जाते हैं। वह कथावस्तु में अन्त तक प्रभावी भूमिका में उपस्थित रहती है और फलभोक्त्री होती है। अतः कहा जा सकता है कि पिछले दोनों नाटक की तरह यह नाटक भी नायिका प्रधान है। सावित्री निर्विवाद रूप से नाटक की नायिक है।

**प्रश्न 4** : 'आधे-अधूरे' नाटक के नामकरण पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : 'आधू-अधूरे' नाटक के नामकरण का आधार मोहन राकेश ने इस नाटक के मूल अथवा केन्द्रीय भाव को बनाया है। इस नाटक में मोहन राकेश ने अधूरे व्यक्तित्व प्रस्तुत करके उसकी परिस्थितियों और आधे-अधूरेपन की अभिव्यक्ति की है। इस नाटक के सभी पात्र खासकर नाटक की नायिका सावित्री अपनी असीमित आकांक्षाओं के मध्य अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों एवं परिवेशगत आधे-अधूरेपन की भावना से ग्रस्त हैं। पूरे नाटक में सावित्री

काल्पनिक पूरेपन की तलाश में व्यर्थ ही भटकती है। अपने परिवार के विघटन का कारण बनती हैं। महेन्द्रनाथ, अशोक, बिन्नी और किन्नी भी आधे-अधूरेपन, अलगावबोध तथा मानसिक कुण्ठा एवं तनाव से ग्रस्त एवं पस्त हैं। इस प्रकार नाटककार ने मध्यवर्गीय परिवार के आधे-अधूरे व्यक्तित्व की यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए सर्वथा उपयुक्त नाम रखा है।

**प्रश्न. 5** : 'आधे-अधूरे' नाटक में आधा-अधूरा क्या है?

**उत्तर** : इस नाटक में अधूरे व्यक्तित्व, अधूरे प्रसंग, अधूरी दायित्वहीनता अधूरी समर्पण भावना, आधुनिकता की अधूरी व्याख्या से जनित अधूरी-आधुनिकता, अनिश्चित और अधूरा जीवन-दर्शक आदि को नाटककार पूर्णतः यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है। यान्त्रिकता और स्तरीकरण की होड़ में एक महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार की विडम्बनाओं और विसंगतियों ने परिवार के सभी सदस्यों में अपने व्यक्तित्व में तथा अपने सम्बन्धों में अधूरापन, अलगावबोध और दिशाहीनता का आभास कराया गया है। पति-पत्नी, माँ-बेटी माँ-बेटे आदि सम्बन्धों में अजनबीपन, ने अधूरेपन की अनिश्चित कार्यकलाप, अधूरी कथावस्तु अर्द्धविकसित पात्रों के माध्यम से मंच पर प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इस नाटक का चित्रित अधूरापन अनेक स्तरों पर मानवीय जीवन की विडम्बनाओं को निरूपित करता है।

**प्रश्न 6** : 'आधे-अधूरे' नाटक की प्रयोगधर्मिता पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : यह नाटक आधुनिक नाट्य साहित्य नई प्रव त्तियों का अग्रदूत माना जा सकता है। नाटककार ने कथावस्तु एवं नाट्य शिल्प दोनों द ष्टि से नये-नये और सार्थक प्रयोग किए हैं। महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक विषमता, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की आधुनिक परिणति और दमघोटू पारिवारिक वातावरण में घुटते, पिसते कुण्ठित सदस्यों की नियति का यथार्थ के धरातल पर चित्रण है। इतना ही नहीं घर के सदस्य काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटकते-टूटते रहते हैं। कथ्य की द ष्टि से राकेश जी का यह नया प्रयोग है। पाश्चात्य अस्तित्ववादी और विंसगतिवादी की तर्ज पर विसंगति, अजनवीपन, और अधूरेपन का चित्रण भी सर्वथा नवीन प्रयोग है।

नाट्य शिल्प की द ष्टि से काले सूट वाले व्यक्ति का दर्शकों से वार्तालाप, एक पुरुष का चार भूमिकाओं में होना, भाषा एवं संवादों की अतिरिक्त सजगता, एक ही द श्यबन्ध में नाटक समाप्त होना और फिल्मों की तरह मध्य में अन्तराल देना आदि नवीन एवं सार्थक प्रयोग हैं।

**प्रश्न 7** : 'आधे-अधूरे' नाटक की आधुनिकता पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में पात्रों की ऊब, एकाकीपन, म त्युबोध, आत्मपीड़ा, अन्तर्विरोध, अस्तित्व संकेत, निराशा, कुण्ठा और मूल्यहीनता आदि का बोध सर्वत्र दिखाई देता है। यह आधुनिकता का नकारात्मक पहलू है। इस नाटक का सम्पूर्ण परिवेश आधुनिक है। पारिवारिक विघटन में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की कड़वाहट, तनाव और जुड़े रहने की छटपटाहट के साथ-साथ बौद्धिक वर्ग के कनफ्यूजन में नये मूल्यों की तलाश है। यह नये मूल्यों की खोज आधुनिकता के सन्दर्भ में व्यक्त है। लड़की अस्वाभविक होने का कारण घर की हवा बताया गया है। आधुनिक नारी सावित्री की खोखली महत्त्वाकांक्षाएँ, आक्रोश एवं काल्पनिक पूरेपन की तलाश में चार-चार पुरुषों से सम्पर्क बनाना भी आधुनिक परिवेश की कटुता को मूर्त करता है।

नाटक में शिल्प की द ष्टि से भी रंगसंकेतों एवं अच्छा से अस्त-व्यस्त चीजें, पात्रों की स्थिति, मंच पर द श्यबन्ध की स्थिति आधुनिक युग की विसंगतियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करती है। नाटक में दर्शाया गया है कि आज का व्यक्ति किस प्रकार विभिन्न स्तरों पर तनाव झेलने के लिए विवश है।

**प्रश्न 6** : 'आधे-अधूरे' नाटक के युगबोध पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : मोहन राकेश अपने युग के वातावरण, परिवेश, घटनाओं और समस्याओं को अपना स जन स्रोत बनाते हुए एक मध्यवित्तीय स्तर से ढहकर निम्न मध्यवित्तीय स्तर पर आए हुए परिवार की समस्याओं को अपना केन्द्र बिन्दु बनाया है। इस पूरे नाटक में वर्तमान युग के मानव की आत्मकेन्द्रिता, अजनवीपन, नपुंसक आक्रोश की असहाय चीख, असहनीय नैराश्य, अस्तित्व संकट और भटकाव की स्थिति का चित्रण है! सावित्री इस युग की ऐसी आधुनिकता है जो अपनी असीम एवं खोखली महत्त्वाकांक्षाओं के लिए पूरे परिवार की बली देने के लिए तैयार

है। टूटते परिवार की तनाव-खीझ, तनातनी, लाचारी और स्तरीकरण की झूठी दौड़ समसामयिक युग की ज्वलन्त समस्याएँ हैं। अतः आज की रसहीन और अनिश्चित जिन्दगी की विडम्बना को ही उजागर करता है।

**प्रश्न 9** : 'आधे-अधूरे' नाटक अभिनेयता पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : मोहन राकेश की रंगचेतना अत्यन्त परिष्कृत एवं बहुमुखी थी। आधे-अधूरे रंगमंचीय प्रयोगों का नाटक है। इस नाटक का कथानक अत्यन्त संघठित, संक्षिप्त, सरल एवं रोचक है। छब्बीस घण्टे की अल्पावधि में लिपटी-सिमटी संक्षिप्त कथावस्तु का सफलतापूर्वक दो-ढाई घण्टे में मंचन किया जा सकता है। पात्रों की सीमित संख्या होने के कारण उनका चरित्र बड़ा मनोवैज्ञानिक ढंग से स्पष्ट होता है। संवाद-योजना भी पात्रानुकूल, एकदम चुस्त एवं बहुअर्थी है, जो रंगमंचीय द ष्टि से अनुकूल है। बोलचाल की सामान्य, सरल भाषा अभिनय के लिए है। तथा विशेष शब्दों का प्रयोग व्यंगपरकता को सार्थक बनाता है। एक ही द श्यबन्ध में पूरे होने वाले नाटक की मंचीय सामग्री इसकी साधारण है कि हर माध्यवर्गीय परिवार में सहज उपलब्ध हो जाती है। पर्याप्त रंग संकेतों के माध्यम से नाटक के मंचीय स्वरूप को मजबूती मिली है। तथा मार्मिक स्थलों की विशिष्ट संवेदना प्रकट होती है। पात्रों की वेशभूषा एवं साज-सज्जा भी उनके व्यक्तित्व, मनःस्थिति और कार्यकलापों के अनुरूप है। किसी पात्र के लिए मेकअप अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस नाटक में वे सभी गुण हैं जो एक नाटक को रंगमंच पर खरा उतरने के लिए आवश्यक है।

**प्रश्न 10** : 'आधे-अधूरे' नाटक की भाषा-शैली पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक की भाषा हमारे आधुनिक समाज की जन-प्रचलित भाषा है। सर्वत्र व्यावहारिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है। बोलचाल की सरल भाषा के अनुरूप तत्सम, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। सपाटबयानी और व्यंगता इस नाटक की भाषा शैली की विशेषता है। हास्यपूर्ण प्रसंगों, व्यंग्यपूर्ण संवादों, ध्वन्यात्मकता युक्त और मुहावरेदार भाषा में वह सामर्थ्य है जो समकालीन तनाव को पकड़कर तथ्य का सफल सम्प्रेषण करें।

**प्रश्न 11** : 'आधे-अधूरे' नाटक की पात्र-स ष्टि पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : आधे-अधूरे नाटक के सभी पात्र अपने अधूरेपन में भी पूरेपन की तलाश के लिए बेचैन हैं। सभी पात्र त्रस्त एवं परस्त चरित्र के स्वामी हैं और स्थिर तथा विकासहीन प्रव त्ति वाले हैं। परन्तु ये एक ऐसा दर्पण हमारे सामने रखते हैं कि आस-पास के जीवन और परिवेश की कड़वी सच्चाइयों से हमारा साक्षात्कार होता है। एक ही पुरुष पात्र चार विभिन्न पात्रों की भूमिका में वस्तुपरक सच्चाई को व्यक्त करता है। सावित्री के रूप में ऐसी आधुनिका का चित्रण है जो सामयिक युग की कोई भी शिक्षित एवं महत्त्वाकांक्षी नारी हो सकती है। अशोक, किन्नी, विन्नी, सिंघानिया आदि पात्रों का भी स्वाभाविक यथार्थपरक, एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण करके नाटककार ने जीवन की विद्रपूताओं और विंसगतियों का चित्रण किया है।

**प्रश्न 12** : 'आधे-अधूरे' नाटक की संवाद-योजना पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक की संवाद-योजना विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है। नाटक के संवाद प्रारम्भ से अन्त तक गत्यात्मक और क्रियात्मक हैं। प्रत्येक पात्र नपा-तुला बोलता है। इन संवादों में भावों की पूर्णता, अर्थ की सहज ग्राहिता और पात्रानुकूलता के गुण विद्यमान हैं। कई स्थलों पर संवाद देखने में अधेरे लगते हैं परन्तु अभीष्ट अर्थ देने में परे हैं। कहीं-कहीं संवाद मानसिक ग्राफ को शब्दवद्ध करते हैं। प्रत्येक पात्र की मन-स्थितियों की घुटन, तनाव, ऊब आदि को स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करने में संवादों की भूमिका महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस नाटक के संवाद संक्षिप्त, गतिशील, चरित्रोद्वारक रंगमंचीय एवं नाटकीयता पूर्ण हैं।

**प्रश्न 13** : 'आधे-अधूरे' नाटक के देशकाल या वातावरण पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में देशकाल या वातावरण का सुन्दर एवं सजीव वर्णन हुआ है। नाटककार ने पात्रों के स्वरूप विधान, गतिविधियों संवाद योजना आदि में देशकाल का विशेष ध्यान रखा हैं नाटक में महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार

का बाह्य चित्रण ही नहीं अपितु उनके खान-पान, रहन-सहन वेशभूषा, मान्यताओं परम्पराओं का सुन्दर चित्रण है। नाटक में मध्यवर्गीय आधुनिक परिवारों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। घर बाह्य स्थिति का वर्णन रंग निर्देशों द्वारा स्पष्ट किया गया है। अतः नाटक देशकाल और वातावरण की द ष्टि से सफल नाटक है।

**प्रश्न 14 :** 'आधे-अधूरे' नाटक में प्रयुक्त रंग-निर्देशों पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर :** इस नाटक में प्रयुक्त रंगनिर्देश इसके मंचीकरण में सहायक होने के साथ-साथ पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक क्षोभ तथा विसंगत परिस्थितियों में भी जीवन घसीटने की विवशता को मुखरित करते हैं। पुरुष एक का अखबार की रस्सी बनाना और बाद में उसके टुकड़े-टुकड़े कर देना उसके झुँझलाए मन का क्षोभ है। अशोक का पतलून मैं क्रीड़ा महसूस करना तथा उसे मार देना पूँजीपतियों के शोषण को खत्म करने के प्रयास का संकेत है। इसके अलावा नाटक में स्थान-स्थान पर प्रयुक्त रंग निर्देश कथानक और चरित्रों को सुनियन्त्रित रखते है और नाटक के मंचीय गुण बढ़ाते हैं।

**प्रश्न 15 :** आधे-अधूरे' नाटक की संगीत योजना पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर :** इस मैं नाटककार ने मंच पर द श्यों को प्रभावी बनाने के लिए संगीत की सार्थक योजना की है। नाटक के भावनात्मक स्थलों को प्रभावशाली बनाने के लिए कहीं पर मंद-मंद संगीत और कहीं पर तेज आवाज में संगीत का प्रयोग किया है। खण्डहर में आत्मा को व्यक्त करने का हल्का संगीत, कैंची की चक्-चक् ध्वनि तथा नाटक के अन्त में खण्डित होकर स्त्री और लड़के का रह जाना हल्के मातमी संगीत से प्रभावपूर्ण बनाया गया हैं इस प्रकार नाटककार की संगीत-योजना उसके गहरे रंगानुभव का प्रमाण है।

**प्रश्न 16 :** 'आधे-अधूरे' नाटक की प्रकाश योजना पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर :** पूरे नाटक में प्रकाश एवं ध्वनि-योजना का समन्वित प्रयोग किया गया है। नाटककार ने पात्रों की मनःस्थिति, भावनाओं को गहरे स्तर पर अभिव्यक्ति करने के लिए विभिन्न रंगों का प्रयोग किया है। नाटक के आरम्भ में कमरे की वस्तुओं पर भटकता प्रकाश, अन्तराल के स्थान पर हल्के-प्रकाश का प्रयोग करके नाटककार ने नाटक के कथ्य को अधिक प्रभावी बनाया है। यह नाटककार की अनुभवी संचीय द ष्टि की परिचायक है।

**प्रश्न 17 :** 'आधे-अधूरे' नाटक की द श्य-योजना पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर :** यह नाटक एक ही द श्यबन्ध में पूरा हो जाता है। इसमें नाटककार ने प्रतीकात्मक शैली में पात्रों के जीवन और वातावरण में व्याप्त विघटन और संत्रास की अनुभूति का परिचय दिया है। धूल-धूसरित वस्तुएँ, फटी किताबें और कमरे में आँकते तीन दरवाजे पात्रों की भटकती अपूर्ण जिन्दगी को सांकेतित करते हैं। प्रारम्भ के ही द श्य में सशक्त नाटकीय बिम्ब है—टूटे-फूटे फर्नीचर का ढेर, दीमक लगी टाइलें, टूटा टी सेट आदि वस्तुओं में पात्रों की विश ंखलित जिन्दगी का आभास भी मिलता है और दर्शकों को नाटकोचित मनःस्थिति में लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी हो जाता है। इसी प्रकार पूरे नाटक में सरल-द श्य-योजना द्वारा नाटक को मंचीय स ष्टि से सफल बनाया गया है।

**प्रश्न 18 :** आधे-अधूरे नाटक की वेशभूषा पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर :** इस नाटक में वेश परिवर्तन तो है ही नहीं, जिस वेशभूषा में पात्र एक बार मंच पर उपस्थित होता है। चारों पुरुष पात्रों तथा तीनों स्त्री पात्रों की वेशभूषा उनकी भावदशा के अनुकूल साधारण और सहत प्राप्य है! चार पुरुषों की वेशभूषा में क्रमशः पतलून कमीजें, पतलून बदगले का कोट, पतलून-टीशर्ट और पतलून-पुराने काट का लम्बा कोट है। सावित्री और बिन्नी की वेशभूषा में ब्लाउज और साधारण साड़ी है। छोटी लड़की किन्नी को चुस्त फ्रॉक तथा लड़के अशोक की भड़कीली बुराई सभी पात्रानुकूल मनःस्थितियों को प्रकट करने में पूर्णता सक्षम है। इसके साथ-साथ नाटककार ने वेशभूशा सम्बन्धी पर्याप्त संकेत को देकर नाटक के मंचन को सफल बनाने में सहयोग दिया है।

**प्रश्न 19 :** महेन्द्रनाथ का चरित्र-चित्रण कीजिए।

**उत्तर :** महेन्द्रनाथ सम्पूर्ण नाटक में 'प्रमुख एक' नाम से आता है। उम्र पचास के आसपास और चेहरे की विशिष्टता में एक व्यंग्य है। वह इस नाटक में ग हपति होते हुए भी ग हपति की मर्यादा से च्यूत, बेकार, निराश और असफल पति है। घर में उसकी हैसियत मात्र एक 'रबर स्टैम्प' है। राकेश जी ने महेन्द्रनाथ को ऐसे मध्यवर्गीय निम्न आय के मुखिया का प्रतिरूप बनाया है जो अपनी पराश्रिता, आलसीपन, शंकालु एवं ईर्ष्यालु प्रव त्ति और प्रभावहीन व्यक्तित्व की आरामतलबी के कारण पूरे परिवार की भर्त्सना करता रहता है और अपमानित होकर भी उसी रूप में रहने के लिए विवश है।

**प्रश्न 20 :** सावित्री का चरित्र-चित्रण कीजिए।

**उत्तर :** सावित्री इस नाटक की सबसे विवादास्पद और प्रमुख पात्र है। वह उस महत्त्वाकांक्षिणी आधुनिक नारी के रूप में चित्रित की गई है जो अपने पति की बेकारी और आर्थिक वैषम्य के कारण एक तरफ तो नौकरी करके पूरे परिवार का भरण-पोषण कर रही है तो दूसरी तरफ उसके अन्दर कुछ भोर हासिल करके ही कचोट उसे आवारा बना देती है। वह आत्मसमर्पण करने वाली भारतीय नारी न होकर स्वावलम्बी एवं भौतिक सुख-सुविधाओं की पिपासी नारी है। शीर्ष पदस्थ पुरुषों से सम्बन्ध बनाकर एक तरफ तो अपने बेटे को नौकरी दिलाना चाहती है तो दूसरी तरफ अपनी काम-भावना की पूर्ति। अपने पति को आधा-अधूरा मानकर चार-चार पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाती है। लेकिन उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ फिर भी पूरी नहीं होती है। सावित्री की यह पूरेपन की तलाश उसे आवारा बना देती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सावित्री एक महत्त्वाकांक्षी और कामुक नारी है जो भौतिक सुविधाओं, पर-पुरुष आर्कषण एवं काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटकती है, टूटती है और अन्त में उसी अधूरे पुरुष के साथ कटुतापूर्ण जीवन जीने के लिए मजबूर होती है।

**प्रश्न 21 :** अशोक का चरित्र-चित्रण कीजिए।

**उत्तर :** इस नाटक में अशोक आज की युवापीढ़ी के आक्रोश उग्रता, मूल्यहीनता, बेरोजगारी की पीड़ा आदि का प्रतिनिधित्व करता है। वह जीवन की कर्मशीलता भूलकर अभिनेताओं की तस्वीरें काटने में ही जीवन की इतिश्री समझता है। उसे अपनी माँ के पुरुष-मित्रों से घ णा होती है। अपनी घ णा को वह विद्रोही स्वरूप में व्यक्त करता है। पारिवारिक वातावरण और अपनी अकर्मण्यता से अशोक के अन्दर खीज, अशिष्टता, आवारापन एवं नपुंसक विद्रोह उत्पन्न होता है। साथी है वह फ्रैंच कट रखने वाला फैशनपरस्त नवयुवक है और अपनी बेकारी एवं पारिवारिक तनाव के कारण उसके व्यक्तित्व में ये नकारात्मक तत्त्व आ गए हैं।

**प्रश्न 22 :** बड़ी लड़की का चरित्र-चित्रण कीजिए।

**उत्तर :** इस नाटक में किन्नी का चरित्र विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत हुआ है। पारिवारिक परिस्थितियों ने इस सुशिक्षित युवती के व्यक्तित्व में सर्वत्र बिखराव पैदा किया है। बिन्नी में अवसाद, उतावलापन, असन्तोष और अत प्ति है। मनोज के साथ जिन्दगी जीने को विवश है। सम्भवतः अपनी माँ सावित्री भी जीवन के बिखराव और घुटन, टूटन की स्थिति उसके जीवन से भी लिपट गई है। परन्तु अपने इस बिखरे व्यक्तित्व में संवेदनशीलता है।

**प्रश्न 23 :** छोटी लड़की किन्नी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

**उत्तर :** इस नाटक में छोटी लड़की किन्नी समाज के उन बच्चों का प्रतीक है, जो माता-पिता की उपेक्षा का शिकार होने पर असंमयत ही यौन-प्रसंगों में रुचि लेकर अपने भविष्य को अन्धकार में धकेलते हैं। अपने जिद्दीपन एवं मुँह पर प्रव त्ति के कारण व नाटक में स्थान-स्थान पर अपने बड़ों का ध्यान आकृष्ट करती है। बारह-तेरह वर्ष की आयु में 'कैसोनोबा' जैसी कामुक पुस्तकें पड़ने वाली बिगड़ी हुई लड़की है। घर के सभी सदस्यों को वह मिट्टी के लोंदे समझती है।

**प्रश्न 24 :** सिंघानिया का चरित्र-चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में सिंघानिया सावित्री का बोस है। वह एक ऐसे प्रवंचक अधिकारी के रूप में चित्रित है जो कामुक प्रव त्ति का स्वामी तथा आत्मप्रसंशक है। सभ्यता, आचरण व शिष्टाचार का उसमें सर्वथा अभाव है। उसकी कामुक नजर सावित्री के साथ-साथ, बिन्नी पर भी पड़ती है। अतः सिंघानिया एक कामुक व्यक्तित्व का चालबाज और महिला सहकर्मी के यौन-शोषण करने वाला घटिया किस्म का अधिकारी जो अपने पद एवं वेतन का भरपूर फायदा उठता है।

**प्रश्न** 25 : जुनेज़ा का चरित्र-चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : जुनेज़ा इस नाटक के समस्त क्रिया-व्यापार सशक्त गवाह एवं वस्तु स्थितियों का परिचायक बनकर सशक्त पात्र के रूप में उभरता है। वह स्पष्टवादी एवं भविश्य द ष्टा के साथ-साथ महेन्द्रनाथ का सच्चा मित्र भी है। वह महेन्द्रनाथ का हितचिन्तक एवं हितसाधक बनकर उसकी उन्नति में सहायक बनना चाहता है। इतना ही नहीं सावित्री को सुपथ पर लाने की कोशिश करता है। सटीक तर्क देकर वह सत्य को उद्घाटित करने में समर्थ है। इस नाटक में वह महेन्द्रनाथ के परिवार का हितचिन्तक, अनुभवी, दूरदर्शी तथा तार्किक व्यक्तियों के रूप में चित्रित हुआ है।

# चन्द्रगुप्त

**खण्ड-कः व्याख्या**

गद्य

पद्य

**खण्ड-खः आलोचना**

1. चन्द्रगुप्त की कथा-योजना
2. चन्द्रगुप्त नाटक में चित्रित परिस्थितियाँ
3. चन्द्रगुप्त नाटक की अभिनेयता
4. चन्द्रगुप्त नाटक की गति-योजना
5. चन्द्रगुप्त नाटक में ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय
6. चन्द्रगुप्त नाटक की संवाद योजना
7. चन्द्रगुप्त नाटक मे अन्तर्द्वन्द्व - योजना
8. चन्द्रगुप्त नाटक में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना
9. चन्द्रगुप्त नाटक मे चरित्र-चित्रण

   क. चन्द्रगुप्त
   ख. चाणक्य
   ग. सिंहरण
   घ अम्भीक
   ङ. सिकंदर
   च पर्वतेश्वर
   छ राक्षस
   ज अल्का
   झ सुवासिनी
   ट कल्याणी
   ा कार्नेलिया

10. चन्द्रगुप्त नाटक की भाषा-शैली
11. चन्द्रगुप्त नाटक का उद्देश्य/संदेश

# खण्ड-क: व्याख्या

**१. "आर्यावर्त्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रताड़ना की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड-राज्य से जर्जर है। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।" (प ष्ठ ४५)**

**संदर्भ-प्रसंग**

चन्द्रगुप्त नाटक में प्रथम अंक से उद्धत प्रस्तुत गद्यांश में मालवगणपति का पुत्र सिंहरण भारतवर्ष के भावी विनाश की सूचना देता है। वह तक्षशीला के गुरुकुल से निकला है। वहाँ उसे तक्षशिला की राजनीति के विषय में जानकारी प्राप्त करने का आदेश मिलता है। अतः वह देशद्रोही आम्भीक के कुचक्रों के प्रति सजग है। चाणक्य के इस कथन पर कि यवनों के दूत यहाँ क्यों आये हैं, सिंहरण उत्तर देता है।

**व्याख्या**

मैं यह जानने का प्रयास कर रहा हूँ कि यवन के दूत तक्षशिला में क्यों आए हैं? उनका आना अकारण नहीं है। तक्षशिला के राजकुमार से मिलकर वे षड्यंत्र रच रहे हैं। वे सम्पूर्ण आर्यावर्त्त को गुलाम बनाना चाहते हैं ये लोग धोखे और जालसाजी का जाल बुनकर समस्त आर्य-खण्ड पर अधिकार जमाना चाहते हैं। तक्षशिला के राजकुमार से ये यवन मिलकर ऐसी तैयारी कर रहे हैं कि भविष्य में आर्यावर्त्त इनका गुलाम हो जाए। उत्तर भारत के सब राज्य आपस में द्वेष-भाव से भरे हैं। द्वेष के कारण वे आपस में ही लड़ते रहते हैं और समय आने पर एक-दूसरे की सहायता नहीं करते। अतः जल्दी ही चौकाने वाली एक विनाशक घटनाएँ घटेंगी। जैसे विस्फोट से पूर्व धीरे-धीरे आग सुलगती रहती है वैसी ही उत्तराखण्ड के राज्यों में राग-द्वेष-स्वार्थ की आग सुलग रही है। यह आग शीघ्र ही विस्फोट का भयानक रूप लेगी।

**विशेष**

1. सिंहरण ने आम्भीक द्वारा यवनों से की गई अभिसन्धि की ओर संकेत किया है।
2. सिंहरण के चरित्र की विशेषताएं आरम्भ से ही उभरने लगती हैं। वह भारत के प्रति कर्त्तव्य परायण है, भविष्य को देखने वाला है, वर्तमान में सजग है जागरूक है।
3. नाटक की 'प्रारम्भावस्था' की सिद्धि होती है।
4. कथन एवं भाषा पात्रोचित होते हुए भी नाटकोपयोगी है।

**२. ''ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अम त होकर जीता है। वह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया-स्तूपों को ठुकरा देता है, प्रकृति के कल्याण के लिए ज्ञान का दान देता है। (प ष्ठ ४६)**

**संदर्भ प्रसंग**

'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रयय अंक से उद्घ त प्रस्तुत गद्यांश में मालवगणपति का पुत्र सिंहरण भारतवर्ष के भावी विनाश की सूचना देता है वह तक्षशिला के गुरुकुल से निकला है। वहाँ उसे तक्षशिला की राजनीति के विषय में जानकारी प्राप्त करने का आदेश मिलता है, अतः वह देशद्रोही आम्भीक के कुचक्रों के प्रति सजग है। चाणक्य के इस कथन पर कि यवनों के दूत यहां क्यों आये हैं, सिंहरण उत्तर देता हैः

**व्याख्या**

तुम भ्रम में हो राजकुमार! तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि ब्राह्मण किसी के राज्य में किसी के अधीन नहीं रहता। वह न ही किसी के अन्न पर पलता है जहाँ रहता है वही कल्याण करता है अतः ब्राह्मण पर किसी का कोई एहसान नही। वह तो अपने ही मन के राज्य में रहता है। मन जैसा कहे वैसा ही करता है। राज्य नामक राजनीतिक संस्था के नियमों को ब्राह्मण नहीं

मानता। वह तो अम त के समान सुख व शांति देने के लिए ही जीवित रहता है। अतः तुम व्यर्थ ही यह घमण्ड मत करो कि मैं तुम्हारे राज्य में रहता हूँ और तुम्हारे अन्न पर पलता हूँ। ब्राह्मण कमजोर नहीं होता। उसमें सब प्रकार के सुख व शक्ति प्राप्त करने की क्षमता होती है किन्तु वह कभी भी भौतिक सम द्धि के पीछे नहीं दौड़ता। धन-सम्पति माया है और ब्राह्मण माया के इस भण्डार का बेहियक ठुकरा देता है। स ष्टि में जितने भी लोग रहते हैं उन सब की भलाई के लिए ब्राह्मण उनको ज्ञान देता है उनको जीवन के सही तत्त्व समझता है।

**विशेष**

1. चाणक्य के चरित्र का प्रकाशन।
2. चाणक्य के माध्यम से प्रसाद जी ने ब्राह्मणत्व का महत्त्व स्थापित किया है।
3. चाणक्य ब्राह्मण का वही आदर्श स्थापित करता है, जो गीता में श्री कृष्ण ने कर्मयोगी का निश्चित किया है वहाँ भी कर्म योगी को विश्व के माया स्तूपों से सर्वथा मुक्त माना है। यहाँ भी ब्राह्मण को निस्वार्थ भाव से विश्व के मायाजालों से मुक्त रहकर विश्व कल्याण करने वाला कहा है।
4. आम्भीक एवं चाणक्य के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है एक का मिथ्या गर्व व्यंजित है दूसरे की विश्व-कल्याण करने की भावना एवं स्पष्टवादिता व्यंग्य है।
5. भाषा परिष्कृत, अलंकृत एवं नाटकोचित है।
6. 'माया-स्तूपों' में रुपक अलंकार है।

४. **''हाँ-हाँ, रहस्य है। यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल-स्वर्ण से पुलकित होकर, आर्यावर्त्त को सुख-रजनी की शांति-निद्रा में उत्तरापथ की अगेला धीरे से खोल देवे का रहस्य है। क्यों राजकुमार! सम्भवतः तक्षशिलाधीश बाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्घाटन करने गये थे। (प ष्ठ 47)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत अवतरण 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम द श्य से उद्धत है। आम्भीक देश-द्रोही होने के कारण सदैव सतर्क रहता है। उसे चाणक्य, सिंहरण आदि के वार्तालाप में अपने विरुद्ध कुचक्रों का स जन प्रतीत होता है। उसे आशंका है कि इन लोगों ने राजनीतिक मामलों में कुछ रहस्य छिपा रखा है। अतः वह क्रोधपूर्वक अलका से चुप रहने को कहता है। उसके क्रोध को तीव्रतर करने के लिए सिंहरण अत्यंत व्यग्यंपूर्ण शब्दों में कहता है।

**व्याख्या**

हाँ, निश्चय ही कोई रहस्य है और इस रहस्य को मैं बताता हूँ - तुम अपने स्वार्थ अपने स्वार्थ के लिए सारे आर्यावर्त्त के साथ विश्वासघात करना चाहते हो। आर्यावर्त्त अभी सुखी है। सब तरफ शांति छाई हुई है। तुम यवनों के साथ मिलकर इस सुख-शांति को नष्ट करने पर तुले हुए हो। यवन आक्रमणकारियों ने तुमको काफी स्वर्ग दिया है, शायद और तुम उसी की खुशी में अपने ही देश के साथ विश्वासघात करने जा रहे हो। मुझे यह सब पता है। तुम तो यह काम इतना चुपचाप करना चाहते हो कि किसी को भी इसकी भनक न पड़े किन्तु तुम्हारा यह रहस्य मुझसे नहीं छपा है। तक्षशिला महाराजा बाल्हीक के पास भी शायद तुम यही गोपनीय बात बतलाने गये थे।

**विशेष**

1. आम्भीक की स्वार्थपरता एवं शङ्कलुंता पर प्रकाश पड़ता है।
2. सिंहरण की निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता व्यंजित है।
3. व्यग्यांत्मक भाषा का कुशलतापूर्वक वर्णन किया गया है।
4. 'तुम मालव हो और यह मगध.......का सर्वनाश होगा।'

**४. ''तुम मालव हो और यह मागध, यहीं तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्म-सम्मान इतने ही से संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पद्दलित होंगे? आज जिस व्यंग्य**

**को लेकर इतनी घटना हो गई है, वह बात भावी गांधार-नरेश आम्भीक के हृदय में शल्य के समान चुभ गई है। प चनद-नरेश पर्वर्तवर के विरोध के कारण यह क्षुद्र-हृदय आम्भीक यवनों का स्वागत करेगा और आर्यावर्त्त का सर्वनाश होगा।'' (प ष्ठ ४८)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत कथन जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम द श्य से उद्ध त किया गया है। आम्भीक एवं अलका के चले जाने के बाद चंद्रगुप्त, आम्भीक द्वारा किए गए सिंहरण के अपमान का बदला लेने के लिए कहता है। वह उसके अपमान को अपना अपमान समझता है किंतु चाणक्य सम्पूर्ण राष्ट्र को एक समझता है, वह व्यक्ति एवं क्षेत्रवाद को गर्हित समझता है। सम्पूर्ण आर्यवर्त्त की रक्षा एवं सम्मान उसका ध्येय है। वह दोनों को समझाते हुए कहता है।

**व्याख्या**

जब तुम लोग मालव एवं मगध होने का संकुचित द ष्टिकोण दोगे और राष्ट्र की व्यापक भावना को स्वीकार करोगे तभी राष्ट्र का कल्याण सम्भव है और तुम अपने को मालव समझ कर अपने सम्मान की रक्षा को आवश्यक समझ रहे हो या अपने सम्मान की पूर्णता समझ रहे हो। सिंहरण से यह कहने के पश्चात् वे चंद्रगुप्त से कहते हैं कि तुम भी अपने को मगध के प्रति अपनी निष्ठा के बल पर गौरवान्वित समझते हो किन्तु इनके अलग-अलग स्वाभिमान से राष्ट्र को कभी भी सम्मान नहीं मिलेगा। तुम्हारा वास्तविक स्वाभिमान यही है कि तुम अपनी संकुचितता का परित्याग करके समस्त आर्यावर्त्त को अपना समझ कर उसके सम्मान की रक्षा करो। यदि हमने अपने इस संकुचित द ष्टिकोण को नहीं त्यागा तो निकट भविष्य में ही आर्यावर्त्त के सभी राष्ट्र स्वतंत्र रहकर अलग-अलग पड़ जायगें और विदेशी आक्रमणकारी एक-एक करके इन सभी को अपने वश में करते चले जायेंगे। आज की छोटी-सी घटना ने ही आम्भीक को उत्तेजित कर दिया है वह गांधार का भावी राजकुमार है। आज की घटना उसके हृदय में कांटा बन कर चुभ गई और अवसर मिलने पर वह सम्पूर्ण देश का अमंगल करने के लिए पर्याप्त है। फिर गांधार नरेश का पंचनंद नरेश पर्वतेश्वर से विरोधी भी है। अतः यह भी सम्भव है कि अवसर मिलने पर वह उससे भी बदला लेने के लिए सन्नद्ध हो जाए। वह लालची युवक यदि यवन-आक्रमणकारियों का स्वागत करे और सम्पूर्ण राष्ट्र का अमंगल करें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा क्योंकि ये सारे कार्य उसकी प्रव त्ति के अनुसार ही होंगे। अतः इन परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि हम मालव एवं मगध होने की संकुचित भावना को त्याग कर सारे राष्ट्र को एक समझे।

**विशेष**

1. प्रसाद जी ने अपनी सभी नाटकों में राष्ट्रीय भावना को मुखर किया है। यहाँ भी चाणक्य के माध्यम से ऐसा किया गया है। उनकी राष्ट्रीयता की भावना अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई पड़ती है।
2. अतीत से सामग्री ग्रहण कर तत्कालीन परिस्थितियों को मुखरित किया गया है।
3. चाणक्य की राष्ट्रीयता एवं दूरदर्शिता अंकित की गई है।
4. यहाँ सूच्च वस्तु के रूप में आम्भीक के द्वारा यवन आक्रमणकारियों की सहायता की सम्भावना को प्रस्तुत किया गया है आम्भीक के चरित्र का पतन भी मुखरित होता है।
5. भाषा परिष्कृत एवं सुंसस्कृत है।

**५. ''एक अग्निमय गंधक का स्रोत आर्यावर्त्त के लौह-अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। च चला रण-लक्ष्मी इंद्र-धनुष-सी विजय माला हाथ में लिये उस सुंदर नील-लोहित प्रलय-जलद में विचरण करेगी और वीर-हृदय मयूर-से नाचेंगे।'' (प ष्ठ ४६)**

**संदर्भ प्रसंग**

'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम द श्य से अवतरित प्रस्तुत गद्यांश में 'प्रसाद' ने वीर पुरुष के निर्भीक हृदय का स्पष्टीकरण किया है। सिंहरण एक ऐसा वीर है जो युद्ध की आशंका से भयभीत न होकर प्रोत्साहित होता है जब उसे निकट भविष्य में भारत पर होने वाले आक्रमण का निश्चय हो जाने पर वह समय की उस चुनौती का सामना शौर्यपूर्वक करने के लिए सन्नद्ध हो जाता है।

**व्याख्या**

यवन-सेवा आर्यावर्त्त पर आक्रमण करेगी उस समय वीरों के शरीर में शौर्य अग्निमय गंधक की भांति बहेगा। जैसे गंधक में जलने की क्षमता होती है वैसी ही वीर सैनिक में शत्रु को खाक कर देने वाला जोश बहेगा। शस्त्रों के भंडार में जिस प्रकार आग लगने से भयानक विस्फोट होता है वैसे ही आर्यावर्त्त के शस्त्र भंडार से वीर सैनिक हथियार लेकर शत्रुओं के बीच विस्फोट करेंगे। चारों ओर प्रलय का सा विनाश फैलेगा। जैसे प्रलय-कालीन बादलों में बिजली चमकती है वैसी ही भयानक रण में रण की देवी विचरणा करेगी। उसके हाथों में विजय की सतंरगी माला होगी। रण में जीतने वाले के गले में रण-देवी वह सतरंगी माला डालेगी। रण की देवी भी लक्ष्मी के सम्मान अत्यंत चंचल होती है। पल-पाल में विजय-पराजय की स्थितियां बदलती रहती है। रण क्षेत्र में रक्त व आग के बीच इसी रण देवी को देखकर वीर सैनिक प्रसन्न होंगे। रण की भयानकता से वे उसी तरह पुलकित होंगे जैसे कि बादलों को देखकर मोर खुशी से नाचने लगता है।

**विशेष**

1. युद्ध की विभीषका का वर्णन किया है।
2. जिस समय प्रसाद जी ने इस नाटक स जन किया उस समय भारत पर अंग्रेजों का राज्य था। उनकी फूट डालने की नीति का परिणाम सभी भारतवासी भोग रहे थे। उसकी अभिव्यंजना भी यहां हुई है।
3. सिंहरण की वीरता प्रदर्शित की गई है। उसके उत्साह का वर्णन किया गया है।
4. भाषा कलात्मक एवं आलंकारित होने से विलष्ट हो गई है। प्रथम पंक्ति में रूपक अलंकार है तो दूसरे वाक्य में निश्चय ही सागरूपक है। 'इन्द्रधनुष सी विजय माल' और 'वीर हृदय मयूर-से' उपमा अलंकार का प्रयोग है।
5. वीर-हृदय का एक चित्र स्व. दिनकर जी के शब्दों में देखियेः

   **''युद्ध की ललकार सुन प्रतिरोध से,**
   **दीप्त हो अभिमान उठता बोल है।**
   **चाहता बस तोड़ कर बहना लहू,**
   **आ स्वयं तलवार जाती हाथ में।''**
6. स्वगत कथन होते हुए भी कथन की दीर्घता तो नहीं किन्तु रंगमच की द ष्टि से भाषा दुरूह अवश्य है।

**६. ''मानव कब दानव से भी दुर्दान्त, पशु से भी बर्बर और पत्थर से भी कठोर, करूणा के लिए निखकाश हृदयवाला हो जाएगा, नहीं जाना जा सकता। अतीत सुखों के लिए सोच क्यों अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूंगा; फिर चिंता किस बात की?'' (प ष्ठ ४६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पद्यांश 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम द श्य से अवतरित है। 'प्रसाद' जी की यह विशेषता है कि वे अपने विभिन्न नाटकीय पात्रों के माध्यम से अपने जीवन के अनुभवों एवं सिद्धान्तों को स्पष्ट कर देते हैं अलका सिंहरण को देखते ही उसके निर्भीक व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाती है। आम्भीक के चले जाने पर वह सिंहरण को अत्यंत प्रेमपूर्वक समझाती है कि मनुष्य को अपने जीवन और सुख का भी ध्यान रखना चाहिए वह कहती है कि जिस ढंग से तुमने तक्षशिला के राजकुमार आम्भीक को अपमानजनक उत्तर दिये है, उनसे तुम्हारा जीवन विपत्तिग्रस्त हो सकता है, आम्भीक तुम्हारी जीवनलीला समाप्त कर सकता है। अलंका के उक्त कथन के प्रत्युत्तर से सिंहरण पहले आम्भीक के पतन की ओर संकेत करता है और फिर अपने प्रति प्रकट की गई अल्का की सहानुभूति का उत्तर देता है।

**व्याख्या**

मनुष्य का जीवन बड़ा अनिश्चित है उसके विषय में ठोस रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह कब किस तरह का आचरण करेगा, यह कोई नहीं जानता। मानव किसी भी समय दानव से भी अधिक भयानक बन सकता है। वह कभी-कभी पशु से भी अधिक हिंसक बन जाता है और कभी इतना अधिक कठोर रूप धारण कर लेता है कि उसके सामने पत्थर की कठोरता भी कुछ नहीं रहती। जिस मनुष्य के मन में करूणा छिपी रहती है। वही मनुष्य कभी-कभी इतना हृदयहीन बन जाता है कि उसमें करूणा का एक कण भी नजर नहीं आता। इसलिए मनुष्य जीवन के विषय में सोचना व्यर्थ है। रही बात जीवन के सुख की,

तो मेरे मतानुसार आदमी को बीते हुए सुखों की चिंता नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनको किसी भी कीमत पर नहीं लौटाया जा सकता। उधर जो भविष्य अभी आया भी नहीं है उसके लिए डरे क्यों? पता नही भविष्य आए भी या नहीं भी आए। अब रहा वर्तमान तो उसको अपने अनुकूल बना लेने की मुझ में क्षमता है। इसलिए मैं किसी भी प्रकार के सुख की चिंता नहीं करता।

**विशेष**

1. प्रस्तुत पंक्तियों में सिंहरण का आत्मविश्वास एवं कर्मयोग और बाहुबल का विश्वास द ष्टिगोचर होता है वह वास्तव में एक वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें कर्त्तव्य एवं साहस के दर्शन होते हैं।
2. यहां मानव जीवन के दौर्बल्य एवं उसके अद्यः पतन की ओर संकेत किया गया है।
3. भाषा में ओजगुण द ष्टव्य है।

**७. ''झोंपड़ी ही तो थी, पिताजी यही मुझे गोद में बिठा कर राज-मन्दिर का सुख अनुभव करते थे। ब्राह्मण थे, ऋतु और अम त जीविका से संतुष्ट थे, पर वे भी न रहे। कहां गये, कोई नहीं जानता। मुझे भी कोई नहीं पहचानता यही तो मगध का राष्ट्र है। प्रजा की खोज है किसे? व द्ध दरिद्र ब्राह्मण कहीं ठोकरें खाता होगा या मर गया होगा।'' (प ष्ठ ५४)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के त तीय द श्य से उद्धत की गई है चाणक्य तक्षशिला से अपने निवास स्थान पर पाटिलीपुत्र में वापिस आता है किन्तु उसे वहाँ अपना कुछ भी अवशिष्ट नहीं मिला। वह कहता है कि:

**व्याख्या**

यही वह स्थान है जहां पर मेरी छोटी-सी झोपड़ी थी। आज वह भी जीर्ण-शीर्ण दशा में है। मेरे पिताजी इसी स्थान पर बैठकर, गोदी में लेकर मुझे खिलाया करते थे। वे पूर्ण संतुष्ट रहते थे। मुझे गोदी में लेकर इस झोंपड़ी में ही राज-भवन का सा सुख अनुभव किया करते थे। अर्थात् उन्हें जो कुछ प्राप्त था उसी में वह आनंद एवं संतुष्टि का अनुभव करते थे। वे ब्राह्मण थे और ज्ञान के आधार पर विश्व के सामान्य नियमों का पालन करते हुए जीवन यापन करते थे। अर्थात् विश्व के नियामक नियमों अर्थात् वे नियम जिनके द्वारा विश्व का नियमित संचालन होता है, का पालन करते हुए यज्ञ करके उससे बची सामग्री से अपनी जीविका चलाते थे। किन्तु आज कोई नहीं जानता वे कहां है। मुझे भी आज कोई पहचानता नहीं है कि वह किस अवस्था में हैं। आगे वह अपने पिता के विषय में सोचता हुआ कहता है कि वे गरीब ब्राह्मण थे न जाने आज कहां मारे-मारे फिरते होंगे। या कौन कह सकता है कि वे म त्यु को प्यारे हो गए हों।

**विशेष**

1. मानव प्रकृति का चित्रण किया गया है मानव को अपनो से प्रेम होता है। उनका ध्यान उन्हें सदा बना रहता है।
2. चाणक्य के हृदय में सहज स्वाभाविकता, कोमलता आदि भावनाओं का निदर्शन यहां हुआ है।
3. प्रजा के प्रति मगध की उदासीनता का वर्णन है।
4. भाषा भावानुकूल, सहज, स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण है।

**८. ''पिता का पता नहीं, झोपड़ी भी न रह गयी। सुवासिनी अभिनेत्री हो गयी—सम्भवतः पेट की ज्वाला से। एक साथ दो-दो कुटुम्बों का सर्वनाम और कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है। क्या इसीलिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था? मगध! मगध! सावधान! इतना अत्याचार! सहन असम्भव है? तुझे उलट दूंगा। क्या बनाऊँगा, नहीं, तो नाश ही करूँगा। एक बार चलूँ नंद से कहूँ। नहीं, परन्तु मेरी भूमि, मेरी व त्ति, वहीं मिल जाय, मैं शास्त्र-व्यवसायी न रहूँगा, मैं कृषक बनूँगा। मुझे राष्ट्र की भलाई-बुराई से क्या। तो चलूँ यह एक लकड़ी का स्तम्भ अभी उसी झोपड़ी का खड़ा है, इसके साथ मेरे बाल्यकाल की सहस्त्रों भाँवरिया लिपटी हुई हैं, जिन पर मेरी धवल मधुर हँसी का आवरण चढ़ा रहता था। शैशव की स्निग्ध स्म ति। त्रिलीन हो जा।'' (प ष्ठ ५६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पक्तियां जयशंकर प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के त तीय द श्य से उद्ध त है। जब चाणक्य पाटिलीपुत्र लौट कर आता है तो उसे प्रतिवेशी से पता लगता है कि उसके पिता को मगध सम्राट ने निर्वासित कर दिया है और शकटार बन्दीग ह में पड़ा है उसकी बाल परिचिता सुवासिनी अभिनेत्री बनने पर मजबूर हो गई है तो वे क्रोधाभिभूत हो गए। प्रतिवेशी के चले जाने पर चंद्रगुप्त क्रोधावेश में सोचता है।

**व्याख्या**

पिताजी का कोई ज्ञान नहीं कि वे कहां है एक झोपड़ी थी। वह भी टूट-फूट गई। सुवासिनी अभिनेत्री बन गई। सम्भव है उसका जब कोई वाक्य न रहा हो तो पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए उसने अभिनेत्री बनना स्वीकार किया हो। इस प्रकार एक साथ दो परिवार - एक मेरा (चाणक्य) और दूसरा शकटार का - नष्ट हो गये, राजा को किसी की कोई चिंता नहीं। पाटिलीपुत्र - मगध की राजधानी मानो कुसुमपुर ही विलासिता का कानन है, फूलों की सेज पर क्रीड़ा कर रही है। अर्थात् विलासिता की क्रीड़ में सो रहा है। क्या मानव समाज ने राष्ट्र एवं स्वराजा का निर्माण इसलिए किया था कि वह आनंद मनाए और प्रजा त्रस्त रहे। वस्तुतः राष्ट्र का निर्माण किया तो इसलिए था कि मानव उसकी छत्र-छाया में रहकर सुख-शांति से रह सके किन्तु यहां इसका विपरित हो ही रहा है। चाणक्य पुनः उत्तेजित हो जाता है। वह अत्याचार के बाहुल्य की कल्पना करके चिल्ला पड़ता है, मगध शासक सावधान हो जाओ। अब और अधिक अत्याचार सहन नहीं किये जा सकते हैं मैं तुझे नष्ट कर दूंगा तुझे पलट दूंगा। अर्थात् अत्याचारी शासक को बदल दूंगा। तेरे स्थान पर नवीन शासन व्यवस्था की स्थापना करूंगा। वह कुछ देर सोचकर कहता है कि एक बार कम से कम नन्द से भेंट करके कह कर देख लिया जाये कि मुझे मेरी भूमि मिल जाये, व त्ति मिल जाए तो मैं सब झगड़ों को छोड़कर कृषक का जीवन व्यतीत करूंगा। मैं अब अध्यापन कार्य भी नहीं करूंगा। मुझे इस विश्व से क्या लेना देना है, मुझे राष्ट्र की अच्छाई बुराई से क्या तात्पर्य है, चाणक्य की एक लकड़ी के खड़े खम्बे को देखकर कहते हैं कि सम्पूर्ण झोंपड़ी तो गिर गई है - नष्ट हो गई है केवल एक खम्बा शेष रह गया है। इसी स्तम्भ के साथ न जाने मेरी कितनी स्म तियां सम्बन्धित हैं न जाने मैंने कितनी क्रीड़ाएँ इस स्तम्भ के साथ की थीं इसके साथ मधुर एवं सहज क्रीड़ाओं की स्म तिया लिपटी हुई हैं। इसे देखकर आज वे सब स्म ति-पटल पर उभर कर आ रही हैं। जब सब कुछ समाप्त हो गया। तो मेरे हृदय की स्म ति का यह अवशेष भी क्यों रह जाये और वह सोचकर उस खम्बे को भी खींच कर गिरा दिया है।

**विशेष**

1. चाणक्य का अंतर्द्वन्द्व मुखर हो उठा है एक ओर वे मगध को उलटने की बात सोचते हैं दूसरी ओर शांतिप्रिय जीवन के लिये कृषक का जीवन बिताने की बात करते हैं।
2. मानव की सहज उदासीनता का भी वर्णन यहां किया गया है।
3. मगध के अत्याचारी शासक की प्रजा के प्रति उदासीन भाव की व्यंजना की गई है।

**६. ''वह तो रहेगा ही! जिस दिन उसका अन्त होगा, उसी दिन आर्यावर्त्त का घ्वंस होगा। यदि अमात्य ने ब्राह्मण-नाश करने का विचार किया हो तो जन्मभूमि की भलाई के लिए उसका त्याग कर दें, क्योंकि राष्ट्र का शुभचिंतन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं एक जीव की हत्या से डरने वाले तपस्वी बौद्ध, सिर पर मैडराने वाली विपत्तियों से रक्त-समुद्र की आंधियों से, आर्यावर्त्त की रक्षा करन में असमर्थ प्रमाणित होंगे।'' (प ष्ठ ६१)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के पंचम द श्य से ली गई हैं। चाणक्य ने नंद सभा में अचानक प्रवेश करके बौद्ध धर्म के मानव-जीवन के लिए अपूर्ण बताया और अपने को ब्राह्मणत्व स्नातक के रूप में प्रस्तुत किया। नंद ब्राह्मणों से जलता है। वह इन्हें जलता हुआ अंगारा समझाता है और ताप केन्द्र समझता है इसी पर चाणक्य कहता है कि:

**व्याख्या**

ब्राह्मण निश्चय ही तेजवान रहेगा। उसी से राष्ट्र का भला होगा वह परिस्थितियों का अध्ययन करता है और मार्ग का निर्माण करता है जिस दिन ब्राह्मणों का नाश हो जाएगा। उसी दिन आर्यावर्त्त का भी नाश हो जाएगा। यदि अमात्य ने यह निश्चय

कर लिया है कि वह ब्राह्मणों को समाप्त कराके राष्ट्र का बौद्ध धर्म के सहारे उद्धार करेंगे तो यह उनकी महामूर्खता होगी। और उन्हें अपना अनिष्टकारी विचार त्याग देना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण ही राष्ट्र की भलाई के विषय में सोच सकता है ब्राह्मणत्व के समाप्त होने के साथ-साथ राष्ट्र भी परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा जाएगा। क्योंकि बौद्ध लोग तो एक जीव की हत्या करने से भी डरने वाले होते हैं और राष्ट्र की रक्षा में नर हत्या भी सम्भव है इसलिए वे राष्ट्र पर आने वाली विपत्तियों से उसकी रक्षा कर पाने में असमर्थ ही रहेंगे। यहां तो रक्त पाल की सम्भावना है। अतः बौद्ध धर्म का प्रसार करना निरर्थक है।

**विशेष**

1. चाणक्य की स्पष्टवादिता एवं दूरदर्शिता द्रष्टव्य है।
2. भाषा सीधी-सरल एवं प्रवाहयुक्त है।

**१०. ''जन्म भूमि के लिए ही यह जीवन है फिर जब आप-सी सुकुमारियां इसके सेवा में कटिबद्ध है, तब मैं पीछे कब रहूंगा।'' (प ष्ठ ६६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पक्तियां जयशंकर प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के पांचवे द श्य से उद्ध त की गई हैं। सिंहरण यवन द्वारा घायल हो जाता है। अलका का स्नेह सिंहरण पर बढ़ता जा रहा है। सिंहरण साहसी और निर्भीक युवक है। अलका उसे विदा देने के लिए आयी है। वह अपने देश वापिस जा रहा है? अलका उसके साथ मालविका को भेज रही है क्योंकि वह अकेला जाने की स्थिति में नही है। तभी सिंहरण अलका से कह रहा है किः

**व्याख्या**

जैसा तुम कहोगी मैं वैसा ही करूंगा। मैं शीघ्र ही वापिस आऊँगा। अब आप जैसी सुकुमारी नारियां राष्ट्र सेवा के लिये प्रस्तुत हैं तो मैं देश सेवा के कार्य करने में कदापि पीछे नहीं रहूँगा। मात भूमि की रक्षा करना पवित्र कार्य है। ऐसे पवित्र कार्य करने में कभी भी पीछे नही रह सकता। मेरे जीवन की सार्थकता मात भूमि की रक्षा करने में ही है जब कोमल नारियां युद्ध की भयानकता वरण कर सकती हैं तो मैं तो पुरुष हूँ जो नैसगिंक रूप से कठोरता एवं ओज के प्रतिरूप हैं। अतः मैं राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए कटिबद्ध हूँ।

**विशेष**

1. इन पंक्तियों के लिखने के काल में नारियां भारतीय स्वातंत्रय युद्ध में भाग लेने लगी थीं। इस प्राचीन भाव को मुखर करके नाटककार ने युवकों को उत्तेजना प्रदान की है।
2. सिंहरण की राष्ट्रीयता, निर्भीकता, कर्त्तव्य परायणता आदि तो व्यंजित हैं ही; अलका की देशभक्ति भी अभिव्यक्त हुई है।

**११. ''समीर की गति भी अवरूद्ध है, शरीर का फिर क्या कहना है। परन्तु मन में इतने संकल्प और विकल्प? एक बार निकलने पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है और ब्राह्मण के कोमल हृदय में कर्त्तव्य के लिए प्रलय की आंधी चला देने की भी कठोरता है। जकड़ी हुई लौह श्र ंखले। एक बार तू फूलों की माला बन जा और मैं मदोन्मत विलासी के समान तेरी सुंदरता को भंग कर दूँ। क्या रोने लगूँ? इस निष्ठुर यंत्रणा की कठोरता से बिलबिलाकर दया की भिक्षा माँगू? माँगू कि मुझे भोजन के लिए एक मुट्ठी चने जो देते हो, न दो, एक बार स्वतंत्र कर दो? नहीं, चाणक्य! ऐसा न करना। नहीं तो तू भी साधारण-सी ठोकर खाकर चूर-चूर हो जाने वाली एक बामी हो जाएगा। तब मैं आज से प्रण करता हूँ कि दया किसी से न माँगूगा और अधिकार तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा क्या कभी नहीं? हाँ-हाँ कभी किसी पर नहीं। मैं प्रलय के समान अबाध गति और कर्त्तव्य में इन्द्र के वज्र के समान भयानक बनूँगा।'' (प ष्ठ ६८)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के सप्तम द श्य से उद्ध त की गई हैं। चाणक्य को नंद ने पकड़ कर बन्दीग ह में रख छोड़ा है। चाणक्य ने प्रतिज्ञा की है कि वह नंद वंश का समूल नाश करेगा। बन्दीग ह में चाणक्य अपने विचार पर पुनर्विचार करते हैं। यहाँ उनका अंतर्द्वन्द्व मुखर हुआ है। वे सोचते हैं किः

**व्याख्या**

यहाँ जब, बन्दीग ह में हवा तक प्रवेश नहीं कर सकती तो इस शरीर के विषय में क्या कहा जा सकता है? वह तो पूर्ण रूप से अपने वश में नहीं है किन्तु मन में फिर भी अनेकानेक विचार आ रहे हैं एक आन्दोलन मन में चल रहा है। कभी एक विचार आता है तो कभी दूसरा विचार आता है। यदि किसी प्रकार से भी मैं एक बार इस बन्दीग ह से अपने आपको मुक्त कर पाता तो मैं यह सिद्ध कर देता कि यह दुर्बल ब्राह्मण राज्य को उलटने की शक्ति भी रखता है। ब्राह्मण अगर एक ओर कोमल है। दया का पुतला है तो वह अवसर पडने पर कर्त्तव्य पालन करने के लिए अत्यंत कठोर भी होता है, वह प्रलय तीव्र वायु एवं झझांवात का कारण भी बन सकता है। यदि मेरे शरीर को जकड़ने वाली इस्पात की कठोर श खलाएं व पुष्प मालाओं के समान कोमल पड़ जाएं और मैं मदोन्मत होकर इनको एक झटके के साथ तोड़ दूं। अगले ही क्षण वे सोचते हैं कि यह सब कुछ हो सकना अत्यंत ही कठिन है? असम्भव है तो मैं क्या करूँ? क्या रोने लगूँ? बन्दीग ह की कठोरता से भयभीत होकर शिथिल बन जाऊँ। बंदी ग ह से मुक्त होने की भीख माँगू कि बंदीग ह के कष्ट सहन करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मुझे मुक्त कर दो। क्या मैं इन क्रूर अत्याचारी शासकों से भिक्षा मांगू कि मुझे मुक्त कर दो। किन्तु अगले क्षण ही उसके मस्तिष्क में दूसरा विपरीत भाव आ जाता है। चाणक्य सोचता है कि नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा, मैं कभी भी ऐसा नहीं करूँगा। यदि मैं इन छोटे-से कष्टों से ही विचलित हो गया तो मेरी स्थिति वैसी ही हो जायेगी जैसी कि एक छोटी-सी ठोकर खाने वाले की हो जाती है और वह उसे चूर-चूर होकर साहस त्याग बैठता है। मैं इतना दुर्बल भी नहीं हूँ। कि साधारण-सी यंत्रणा भी सहन न कर सकूं, मैं सब कुछ सहन करने के लिए कठोर हूँ। वह फिर प्रतिज्ञा करता है कि जीवन में वह कभी भी किसी से दया याचना नहीं करेगा और वह कभी समर्थ एवं लायक होने पर किसी पर दया करेगा भी नहीं। क्योंकि जो जैसा करता है वैसे वैसा मिलना ही चाहिये। वे कहते हैं कि मैं अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये प्रलय की आँधी के समान अत्यंत तीव्र गति से बढ़ूंगा। मैं कर्त्तव्य मार्ग में इन्द्र के वज्र के समान भयानक एवं कठोर बनकर अग्रसर रहूँगा।

**विशेष**

1. इस स्वागत कथन में चाणक्य का अन्तर्द्वन्द्व मुखर हुआ है किन्तु वह कर्त्तव्य को नहीं भूल पाता है जो इसका उज्जवल पक्ष हैं।
2. चाणक्य के चरित्र की द ढ़ता पर भी प्रकाश पड़ता है।
3. भाषा का प्रवाह तो सराहनीय है किन्तु आलंकारिता से दुरूहता आ गई है, जो रंगमंच की द ष्टि से बहुत उपयुक्त नहीं है किन्तु पात्रानुकूल भाषा उपयोगी है।
4. मध्य में रूपक एवं 'मदोन्मत, विलासी के समान' और 'प्रलय के समान अबाध गति' में उपमा अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया गया है।

**१२. ''त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान के लिए हैं लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाए, ऐसा नहीं हो सकता। कात्यायान! अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्डनीति की आवश्यकता है।'' (प ष्ठ ६६)**

**संदर्भ प्रसंग**

मगध के बंदीग ह में ब्राह्मण चाणक्य को समझाने के लिए वररूचि को उसके तप और त्याग का ध्यान दिलाकर उससे क्षमा का आग्रह करने लगा। उत्तर में चाणक्य ने ब्राह्मणत्व का वास्तविक अर्थ बताते हुए उसको इन शब्दों में सावधान किया:

**व्याख्या**

मैं ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण होने के नाते हमने समस्त भौतिक सुखों का त्याग किया है? किसी के बुरे कामों से भी हम तिलमिलाने नहीं प्रत्युत उसे माफ कर देते हैं। हम सद्कर्मों के लिए तपस्या करते हैं और विद्या का उपार्जन करते हैं। इन सब के पीछे हमारा लक्ष्य केवल इतना ही है कि हम संसार का भला करने की शक्ति प्राप्त कर सकें और लोगों को ऐसा ज्ञान दें सकें कि वे उसके आधार पर उत्तम जीवन व्यतीत कर सकें हमने यह सब इसलिए नहीं किया हैं कि राजाओं की तलवार से डरकर सिर झुकालें का धन के लोभ में जीवन की सच्चाई को छोड़ दें। हमें किसी भी प्रकार का भय और अपने पथ से विचलित नहीं कर सकता। तुम्हारे पास जो धन सम्पत्ति है, तुम मुझे उसका लोभ क्यों देते हो? धन को तो हम लोगों में अपनी इच्छा से त्याग

है पर आज तुम उसी का सहारा लेकर और मुझे उसी का लोभ देकर मुझे अपमानित करना चाहते हो; मुझे अपने पद से विचलित करना चाहते हो लेकिन यह तुम्हारी भूल है। मैं ऐसे प्रलोभन से कभी विचलित नहीं हो सकता। कात्यायन! तुम भूल रहे हो, आज हमारे देश की स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट हो गया है कि यहां की जनता को पाणिनि की व्याकरण को पढ़ाने से काम नहीं चलेगा। बल्कि इन्हें अर्थशास्त्र और दण्डनीति भी पढ़ानी होगी - जनता को शास्त्रों का ज्ञान कराना होगा, उसे राजनीतिक दांव-पेच समझाने होंगे और जो गलत काम करता है उसे दंड देना होगा।

**विशेष**

1. चाणक्य के माध्यम से ब्राह्मणत्व धर्म का सुंदर चित्र ख च गया है नाट्यकार ने ब्राह्मण के लिए क्षमा एवं त्याग आवश्यक गुण माने है। इन्ह के आधार पर उसे सम्मान मिलता है।
2. प्रसाद जी ने 'स्कंदगुप्त' नाटक में भी ब्राह्मण को 'त्याग और क्षमा' की प्रतिमूर्ति प्रतिपादित किया है।
3. प्रसाद ने आधुनिक जीवन में पश्चिमी सभ्यता के कारण दो दोषों - सत्ता (लोहा) और आर्थिक शोषण (सोना) की ओर भी इंगित किया है।
4. भाषा में ओज एवं श्रोत को बांधने की शक्ति है।

**१३. ''महाराज! मुझे दण्ड दीजिए, कारागार में भेजिए, नहीं तो मैं मुक्त होने पर भी यहीं करूंगी। कुलपुत्रों के रक्त से आर्यावर्त्त की भूमि सिंचेगी। दानवी बनकर जननी जन्मभूमि अपनी संतान को खायेगी। महाराज! आर्यावर्त्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कट जाएंगे। स्मरण रहे, यवनों की विजयवाहिनी के आक्रमण को प्रत्यावर्त्तन बनाने वाले यही भारत संतान होंगे। सब बचे हुए क्षतांग वीर, गंधार को भारत के द्वार-रक्षक को विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे और उसमें नाम लिख जाएगा मेरे पिता का आह! उसे सुनने के लिए मुझे जीवित न छोड़िए, दण्ड दीजिए! म त्यु-दण्ड।'' (प ष्ठ ६६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के अष्टम द श्य से उद्ध त की गई हैं सिल्यूकस का दूत अलका को बंदी बनाना चाहता था। वह स्वयं ही अपने पिता के पास आ गई है। गंधार नरेश को अलका के अपमान का दुख है। इस सबका कारण वह आम्भीक के क त्यों को ठहराता है। अलका कह रही है किः

**व्याख्या**

महाराज आप मुझे कठोर दण्ड दीजिए। बंदीग ह में बंद करवा दीजिए अन्यथा मैं तो फिर वही कार्य करूंगी जो अब तक करती रही हूं अर्थात् देशप्रेमियों की सहायता करूंगी। देश की रक्षा में हाथ बटाऊंगी यह भारतभूमि अपने ही शूरवीर, योद्धाओं के रक्त से रंजित होगी। जो मात भूमि देवी के समान पालक होती है अब वही राक्षसी का रूप धारण करके अपनी संतानों की हत्या करेगी, उनके रक्त से स्नान करेगी अर्थात् यहां के वीर युद्ध करेंगे और मरेंगे और उनके रक्त में यह भूमि रंजित हो उठेगी। वह आगे कहती है कि सभी लोग एक जैसे नहीं होते हैं। सभी लोग आम्भीक की भांति देशद्रोही अथवा लालची नहीं होंगे। अनेकों वीर निश्चय ही आर्यावर्त्त के सम्मान के लिए - इस भूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे, क्योंकि वे देश का सम्मान अपना ही सम्मान समझते हैं आप मेरी बात याद रखना कि अपने को विश्वविजयी समझने वाली यवनों की सेना ने आर्यावर्त्त की पद्दलित कहने का दुस्साहस किया तो आर्यावर्त्त के वीर पुरुष निश्चय ही शत्रु को नाकों चने चबा देगें, उनके आक्रमण को विफल बनाने में सफल होंगे और योद्धा जो युद्ध के पश्चात् विकलांग बचेंगे, अपंग एवं निस्सहाय व्यक्ति गंधार नरेश को विश्वासघाती समझेंगे और कहेंगे कि यह देश आर्यावर्त्त का द्वार था और उसके राजकुमार ने स्वर्ण-मुद्राएं लेकर देशद्रोहियों का परिचय दिया है और देशद्रोहियों की पंक्ति में मेरे पिता का नाम सबसे ऊपर होगा। महाराज! मैं यह सब कुछ सुनना नहीं चाहती। मुझे जीवित न छोड़िए और वह म त्यु दण्ड की याचना करती है।

**विशेष**

1. अलका का क्षत्राणि के रूप में चित्रण है।
2. विश्वासघाती के प्रति रोष एवं घ णा भाव।
3. भाषा ओजपूर्ण और अभिनयोचित।

**१४. ''महाराज! धर्म के नियामक ब्राह्मण है, मुझे पात्र देखकर उसका संस्कार करने का अधिकार है। ब्राह्मणत्व एवं सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है। वह अपनी रक्षा के लिए, पुष्टि के लिए और सेवा के लिए इतर वर्णों का संगठन कर लेगा। राजन्य संस्कृति से पूर्ण मनुष्य को मूर्धाभिषिक्त बनाने में दोष ही क्या।'' (प ष्ठ ७४)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के नवम द श्य से उद्ध त की गई है आचार्य चाणक्य ने पर्वतेश्वर से आग्रह किया कि मगध उद्धार के लिए वह अपनी सेना भेजें। वह वहां चन्द्रगुप्त को शासनाधीन बनाना चाहते हैं पर्वतेश्वर ने चन्द्रगुप्त को व षण कहा तो आचार्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय सिद्ध किया और कहा कि:

**व्याख्या**

महाराजा! धर्म क्या है, इसका निश्चय करने का अधिकार ब्राह्मण को होता है। समाज में ब्राह्मण ही धर्म की व्यवस्था करता है। इसलिए ब्राह्मण होने के नाते मुझे यह हक है कि मैं इस बात का निर्माण करूं कि कौन व्यक्ति कौन से धर्म का पालन करने योग्य है। अगर पात्र में योग्यता है तो ब्राह्मण उसका किसी भी धर्म में संस्कार कर सकता है। तुम्हें इस मामले में दखल नहीं देना चाहिए। सब लोग यह जानते हैं कि ब्राह्मण का धर्म उसकी विद्या पर आधारित होता है। उसकी बात सब लोगों को माननी पड़ती है आदिकाल से आज तक हर कहीं ब्राह्मण अपनी बुद्धि के बल पर ही धर्म की व्यवस्था करता रहा है । ब्राह्मण का धर्म है उसकी रक्षा के लिए और समाज की व्यवस्था बनाये रखने के लिए उसी में अन्य कई वर्णों की व्यवस्था की है, जैसे —क्षत्रिण, वैश्य और शूद्र। इन वर्णों से अलग-अलग काम है और ब्राह्मण ही इन सबका नियमन करता है। मैं जानता हूं कि चन्द्रगुप्त में एक राजा होने के सब गुण विद्यमान हैं। इसलिए उसको राजा के पद पर बैठने में कोई दोष नहीं है।

**विशेष**

1. यहां ब्राह्मण को महत्व न दिया जाकर ब्राह्मणत्व पर बल दिया गया है, जो तप, त्याग और विद्या संचयन की तत्परता से प्राप्त होता है।
2. प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त को मौर्य वंशी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है जो चन्द्रगुप्त के नायक होने में सहायक है।
3. ओजस्वी भाषा का वर्णन किया है।

**१५. ''रे पद्दलित ब्राह्मणत्व? देख, शूद्र ने निगड़बद्ध किया, क्षत्रिय निर्वासित करता है, तब जल—एक बार अपनी ज्वाला से जल! उसकी चिनगारी से तेरे पोषक वैश्य, सेवक शूद्र और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न हों जात हूं पौरव।'' (प ष्ठ ७५)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रणीत नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के नवम् द श्य से उद्ध त की गई हैं। चाणक्य पर्वतेश्वर की सभा में पर्वतेश्वर से सहायता के लिए कहता है। किन्तु वह तैयार नहीं होता। चाणक्य भी क्रोधाभिभूत होकर उसके गर्व के चूर होने और आर्यावर्त्त के यवनों द्वारा पदाक्रांत होने की सम्भावना ही नहीं भविष्यवाणी भी करता है। इस पर पर्वतेश्वर ने चाणक्य से उसकी सीमा से बाहर हो जाने के लिए कहा तो चाणक्य आकाश की ओर देखकर कहता है:

**व्याख्या**

मेरे ब्राह्मण होने को आज सब लोगों ने अपमानित किया है। मेरे ब्राह्मण धर्म की इन्होंने शक्ति के भेद में अंधे होकर कुचला है। शुद्र राजा नंद ने मेरी शिखा खींचकर मुझे अपमानित किया और क्षत्रिय राजा पर्वतेश्वर ने आज मुझे अपने राज्य से निकाल दिया है। तब क्या करूं? इसी तरह अपमानित होता रहूँ? नहीं यह नहीं हो सकता मुझे अब अपनी बुद्धि बल का प्रयोग करना होगा। अत्याचारी के विनाश की आग में मैं जलूँ और चारों ओर उसी आग को फैला दूं। सब लोग ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए आगे बढ़े। अब मुझे वह काम करना चाहिए जिसके प्रभाव से ब्राह्मणों का पोषण करने वाले वैश्य पैदा हों ताकि ब्राह्मण निराश्रय न रहें। ब्राह्मण की सेवा करने वाले के लिए शूद्र पैदा हों और उसकी रक्षा करने वाले क्षत्रिय आगे बढ़े। इस समय तो न कोई ब्राह्मण का पोषक है न सेवक और न ही रक्षक। तो आज से मेरा यही संकल्प रहा कि मैं अब वह काम करूंगा जिससे ब्राह्मण को कभी अपमानित न होना पड़े। राजा पौरव। मैं जा रहा हूँ किन्तु अब तुम सावधान रहना।

### विशेष

1. यहाँ चाणक्य का आत्मसम्मान बोल रहा है। उसकी प्रतिज्ञा से एक बार सहृदय को लगने लगता है कि यवन भारत में न टिकने पायेंगे और मगध की जनता को भी नन्द से छुटकारा मिल जायेगा।
2. ओजमयी भाषा का प्रयोग किया गया है।

**१६. ''जब आंधी और करका-व ष्टि, अवर्षण और दावाग्नि का प्रकोप हो, तब देश की हरी-भरी खेती का रक्षक कौन है? शून्य व्योम प्रश्न को बिना उत्तर दिये लौटा देता है? ऐसे लोग भी आक्रमणकारियों के चुंगल में फँस रहे हों; तब रक्षा की क्या आशा! झेलम के पार सेना उतरना चाहती है, उन्मत्त पर्वतेश्वर अपने विचारों में मग्न है।'' (प ष्ठ ७७)**

### संदर्भ प्रसंग

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद जी द्वारा विरचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के दशम द श्य के अंत से ली गई है। चन्द्रगुप्त की सिंह से रक्षा करने के बाद, उसे चाणक्य के साथ, सिल्यूकस अपने शिवर में ले जाता है उन्हें परस्पर मित्रता का व्यवहार करते हुए देखकर अलका चक्कर में पड़ जाती है। वह सोचती है कि कहीं ये लोग भी यवन आक्रमणकारियों की राजनीति के शिकार तो नहीं हो गये हैं। अलका के इस स्वागत कथन में इसी को अभिव्यक्ति दी गई है।

### व्याख्या

आर्य - चाणक्य और चन्द्रगुप्त भी यवनों का साथ दे रहे हैं। अब इस देश की रक्षा कैसे होगी? इन्हीं पर तो आर्यावर्त्त की रक्षा का भार था। किन्तु अब कोई आशा नहीं। जिस समय भयानक आंधी चल रही हो और ओलों की व ष्टि हो रही हो तब खेती की रक्षा सम्भव नहीं होती। इसी भांति आज चारों तरफ ही देशद्रोही अपने-अपने स्वार्थों में लगे हुए हैं। ऐसी देशा में देश की रक्षा नहीं हो सकती। यदि चारों ओर सूखा पड़ रहा हो और साथ ही जंगलों में आग लग जाये तब भी खेतों को कौन बचा सकता है। अर्थात् उस दशा में खेती उजड़ती ही है। इसी भांति इस देश का उजड़ना भी अब निश्चित है। मेरे मन में अनेक प्रश्न उठ रहे हैं। लेकिन जैसे मेरे मन का आकाश मेरे प्रश्नों को ज्यों का त्यों लौटा देता है। वहाँ इन प्रश्नों का कोई जवाब नहीं। मुझे समझ में नहीं आता अब देश की रक्षा कैसे होगी? चाणक्य और चन्द्रगुप्त के अलावा और कौन है ऐसा जो देश को बचा सके? ये देशभक्त समझे  जाने वाले महापुरुष भी जब यवन आक्रमणकारियों के जाल में फंस रहे हैं, उस दशा में यहाँ की रक्षा की आशा करना व्यर्थ है और लोग तो पहले से ही विदेशियों से मिल चुके या अपने-अपने हैं क्षेत्र में तटस्थ बैठे हैं।

### विशेष

1. यहाँ अलका को नारी सुलभ शका अभिव्यक्त है।
2. अलका की राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं सजगता का प्रमाण भी मिलता है।
3. भाषा आलंकारिक बन गई है। स्वगत कथन प्रायः भाषा की बोझिलता वहन करते पाये जाते हैं? यहाँ भी यही है।

**१७. ''भूमा का सूख और उसकी महत्ता का जिसको आभासमात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते, दूत! वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीड़ा-कन्दुक नहीं बन सकता। तुम्हारा राजा अभी झेलम भी नहीं पार कर सका, फिर भी जगद्विजेता की उपाधि लेकर जगत को वंचित करता है। मैं लोभ से, सम्मान से या भय से किसी के पास नहीं जा सकता।'' (प ष्ठ ७८)**

### संदर्भ प्रसंग

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रणीत नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के ग्यारहवे ं द श्य से उद्धत किया गया है सिंधु तट पर दाण्डयायन ऋषि का आश्रम है। सिकंदर के दूत ने उनसे आकर कहा कि जगत विजेता सिंकदर आपसे कुछ उपदेश ग्रहण करना चाहते हैं। 'जगद् विजेता' शब्द पर व्यंग्य करते हुए दाण्ड्यायन का विचार हैः

### व्याख्या

उस पर मसत्ता की शक्ति एवं महत्ता का जिसे बोध हो जाता है, जिसे समस्त स ष्टि में व्याप्त उस दिव्य शक्ति की छवि का थोड़ा-सा भी भान हो जाता है, उसे इस संसार के भौतिक नश्वर उपकरणों से प्राप्त होने वाले सुख तनिक भी आकृष्ट नहीं कर सकते। ऐसा व्यक्ति किसी बलवान् एवं सत्तासम्पन्न व्यक्ति की इच्छा का दास नहीं बनता। वह प्रत्येक कर्म आंतरिक प्रेरणा

से प्रेरित होकर करता है उसे सांसारिक आकर्षणों एवं मोह-ममताओं से कोई प्रयोजन नहीं रहता। कारण भूमा का सुख अपरिमेय एवं अनंत है, जबकि भौतिक सुख उसकी तुलना में अत्यंत सीमित और क्षणिक है। अतः जिसे उस सुख का अणुमात्र भी प्राप्त हो जाता है, उसे भौतिक सुखों की अपार-राशि भी उसकी तुलना में नगण्य प्रतीत होती है। इसलिए दाण्ड्यायन को सिंकदर का वैभवसम्पन्न रूप तनिक भी प्रभवित नहीं कर सकता। वह उच्च विचारों वाले महात्मा एवं तपस्वी है और ब्राह्मनंद के आस्वादयिता है। वह सिंकदर के हाथों की कठपुतली नहीं - वह जो करते हैं, अपने अन्तः करण की प्रेरणा से प्रेरित होकर। फिर दाण्ड्यायन सिंकदर के लिए प्रयुक्त 'जगद्विजेता' शब्द का उपहास करते हुए कहते हैं कि अभी तो वह झेलम भी नहीं पार कर पाया, तो फिर उसे 'जगद्विजेता' की उपाधि से सम्बोधित करना निरर्थक है। अभी तो उसे समग्र भारतवर्ष पर विजय प्राप्त करती है - फिर 'जगद्विजेता' कहलाने का कैसा?

विशेष

1. दाण्ड्यान के माध्यम से भारतीय ऋषियों का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।
2. यहां शैवागम की शब्दावली प्रयुक्त है प्रसाद जी के दर्शन को अभिव्यक्ति मिली है।

**१८. ''समस्त आलोक, चैतन्य और प्राणशक्ति, प्रभु की दी गई है। म त्यु के द्वारा वही इसको लौटा लेता है। जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्धा से बढ़कर दूसरा दम्भ नहीं। मैं फल-मूल खाकर अंजलि से जलपान कर, त ण-शय्या पर आंख बन्द किये सो रहा हूँ। न मुझसे किसी को डर है और न मुझको डरने का कारण है। तुम ही यदि हठात् मुझे ले जाना चाहो तो केवल मेरे शरीर को ले जा सकते हो, मेरी स्वतंत्र आत्मा पर तुम्हारे देवपुत्र का भी अधिकार नहीं हो सकता।'' (प ष्ठ-७६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के ग्यारहवें द श्य से उद्धत की गई हैं। सिंकदर के दूत ऐनिसाक्रीटीज से दाण्ड्यान ने जाने से इन्कार कर दिया तो ऐनी. ने कहा 'यदि न जाने पर देवपुत्र दण्ड दें'। तो इस पर बड़ी ही निडरता से दाण्डयायन उत्तर देता है।

**व्याख्या**

मैं अपनी जरूरत की वस्तुओं के लिए किसी का मोहताज नहीं भगवान ने प्रकृति को अनेक वस्तुओं से भर रखा है। मैं अपनी आवश्यकताएं उसी से पूरी कर लेता हूँ। अतः मैं दूसरों के आधीन कैसे रहूँ। प्रकृति की भांति मैं भी स्वतंत्र हूं। किसी और भी आज्ञा मानने के लिए मैं मजबूर नहीं। इस संसार में जितना भी प्रकाश फैला हुआ है और जितना भी ज्ञान है। वह भगवान का दिया हुआ है इसी भांति सारी प्रकृति में जो चेतना फैली है वह भी भगवान की दी हुई  है और हम मनुष्यों में जो प्राणशक्ति है। वही भी भगवान ने ही दी है अब जो चीज भगवान ने दी है। उसे आदमी कैसे छीन सकता है। जब आदमी मर जाता है तो मानों भगवान उससे अपनी दी गई ये सारी वस्तुएं वापस ले लेता है। मनुष्य चूंकि किसी को चेतना और प्राण दे नहीं सकता इसलिए उसे यह भी हक नहीं कि वह किसी के प्राण ले ले। तुम्हें सोचों जो वस्तु मनुष्य किसी को दे नहीं सकता उसे दूसरे से छीन लेने का क्या हक है? ऐसा करना सबसे बड़ा मिथ्या वर्ग है। अतः तुम्हारा बादशाह भी यदि मेरे प्राणों को लेने का गर्व करे तो यह झूठा घमण्ड है। आदमी को ऐसे मिथ्या गर्व का शिकार नहीं होना चाहिए।

**विशेष**

1. प्रसाद जी द्वारा दाण्ड्यान के माध्यम से भारत के तत्वज्ञानी महात्मा का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।
2. दार्शनिक विचारों पर गीता का प्रभाव स्पष्ट है।
3. ओजस्वी भाषा का प्रभावी रूप।

**१६. 'जयघोष तुम्हारे चारण करेंगे, हत्या, रक्तपात और अग्निकांड के लिए उपकरण जुटाने में मुझे आनंद नहीं। विजय-त ष्णा का अंत पराभव में होता है। अलक्षेन्द्र। राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, केवल विजयों से नहीं। इसलिए अपनी प्रजा के कल्याण में लगो।'' (प ष्ठ-८०.८१)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के ग्याहरवें द श्य से उद्धत की गई है। सिकंदर, सिल्यूकस, कार्नेलिया, एनिसाक्रीटीज के साथ दाण्ड्यायन के आश्रम पर जाता है दाण्ड्यायन ने अलक्षेन्द्र का स्वागत किया। किन्तु सिंकदर तो आर्शीवाद में जयघोष सुनना चाहता था? दाण्ड्यायन ने निर्भीकता से कहाः

**व्याख्या**

तुम्हारी जयजयकार चारण करेंगे। मैं तुम्हारा चारण नहीं इसलिए तुम्हें जय की बात नहीं कह सकता। तुम युद्ध के नाम पर ऐसे ही हत्या और क्रूर कर्म करने वाले लोगों को इकट्ठा कर रखा है तुम्हें इसी में आनंद मिलता है लेकिन मुझे ऐसा नहीं होता है। सिकंदर! तुम यह क्यों भूल जाते हो कि त ष्णा किसी भी चीज की बुरी है। जो आदमी विजय की त ष्णा के वशीभूत होकर भटकता है उसे अंत में पराजित होना पड़ता है इसलिए तुम इस त ष्णा को छोड़ दो। तुम अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहते हो तो उसके लिए सुव्यवस्था से काम लो। तुम जनता पर इतने बढ़िया तरह से शासन करो कि लोगों का दिल जीत लो और वे अपने आप ही तुम्हारा साम्राज्य में मिलते जायें। इस तरह लोगों का दिल जीतने से तो साम्राज्य बढ़ सकता है? किन्तु रक्तपात और हत्या करके विजय हांसिल कर लेने से साम्राज्य नहीं बढ़ते। वे जल्दी ही बिखर जाते हैं? इसलिए मैं तो तुम्हें यही सलाह दूंगा कि अपनी प्रजा का कल्याण करो। अपने आप को अपनी प्रजा की भलाई में लगा दो।

**विशेष**

1. भारत के विद्वानों में राजनीतिक रहस्यों का उद्घाटन है।
2. भारतीय राजनीति का विशद आकर्षक परिचय दिया है।
3. भाषा प्रसंगानुकूल, नाटकीय व प्रवाहमयी है।

**२०. ''लूट के लोभ से हत्या - व्यवासियों को एकत्र करके उन्हें वीर-सेना कहना, रण-कला का उपहास करना है।'' (प ष्ठ-८७)**

**सदंर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद कृत 'चन्द्रगुप्त' नाटक के द्वितीय अंक के प्रथम द श्य से लिया गया है। चन्द्रगुप्त और सिंकदर की परस्पर वार्ता चल रही है। चन्द्रगुप्त मगध का उद्धार करना चाहता है, जबकि सिकंदर का कहना है कि वह उसे हस्तगत करने का प्रयत्न कर रहा है। चन्द्रगुप्त को सिकंदर का उक्त कथन उप्रिय लगता है। जब सिकंदर उसे अपनी सहायता देने की बात करता है। तब वह निर्भीक शब्दों में कहता है। - 'मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ, परन्तु यवन लुटेरों की सहायता से नहीं'। इस पर सिकंदर उसे भय दिखाता है, किन्तु वह यवनों के लुटेरेपन को अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है।

**व्याख्या**

चन्द्रगुप्त निर्भीकता से कहता है। यवन वास्तविक वीर नहीं है। वे वास्तव में लुटेरे हैं जिस भांति लुटेरे अन्यान्य साधन अपना कर दूसरों का माल हड़प करना चाहते हैं। उसी प्रकार यवन भी लुटेरे हैं वे हत्या करके दूसरों को डरा कर उनका वैभव, सम्पन्नता अपहत करना चाहते हैं। ये वीर नहीं है। वे वीरता के नाम पर कलंक हैं। ये रणकला का मजाक उड़ाते फिरते हैं। विश्व में वास्तविक वीर सदा कर्त्तव्य भावना के वशीभूत होकर ही युद्ध करते हैं राज्य, धन, दौलत के वशीभूत होकर नहीं, लोभी बन कर नहीं। यवन भी इसी प्रकार भारतीय जनता को लूटते हैं, उस पर अत्याचार करते हैं, गरीब एवं निरीह प्रजा पर इस प्रकार के कहर ढाना वीरता का उपहास नहीं तो और क्या हैं? वीरता तो यह है कि सेना से उड़ा जाए। ये वीर नहीं ये वास्तविक लुटेरे हैं। वास्तविक वीर वे हैं जो प्रजा के कल्याण के लिए अत्याचार एवं अत्याचारी से युद्ध करते हैं वे लोभी बनकर कभी भी नरहत्या नहीं करते हैं। वास्तविक वीर सदा मानव कल्याण की बात सोचते हैं। इस प्रकार यवनों को वीर कहना निश्चय ही वीरता एवं रण कौशल का उपहास करना है।

**विशेष**

1. प्रसाद ने एक वाक्य में ही यवन रणनीति का विश्लेषण किया है।
2. चन्द्रगुप्त की निर्भीकता, वीरता, साहस, स्पष्टवादिता आदि के दर्शन होते हैं।
3. भारतीय वीरता का आदर्श भी अभिव्यजित हुआ है।
4. भाषा पर अपूर्व प्रभावी अधिकार का एक वाक्य में ही हो तो वह वाक्य उद ध त किया जा सकता है।

**२१. ''पौधे अन्धकार में बढ़ते हैं, और मेरी नीलिलता भी उसी भांति विपत्ति तम में लहलही होगी। हाँ केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो चाणक्य सिद्ध देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों।'' (प ष्ठ-८१)**

**संदभ प्रसंग**

प्रस्तुत पद्यांश जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के दूसरे अंक के दूसरे द श्य से उद्धत है। मगध पर विपत्तियों के बादल घिर रहे हैं। सिंहरण को यवन आक्रमण की सूचना प्राप्त हुई और वह चला आया। वह गुरूदेव चाणक्य की आज्ञा पाकर कर्त्तव्य में लग जाने के लिए तत्पर है। चाणक्य निश्चित है। वह झेलम तट पर चन्द्रगुप्त एवं सिंहरण को अपनी नीति समझ रहा है।

**व्याख्या**

पौधे अंधकार में बढ़कर यौवन प्राप्त करते हैं, मेरी नीति रूपी लता भी विपत्ति - धनिष्ठतम् विपत्ति - रूपी अंधकार में बढ़ती है, फलीभूत होती है। जब विपत्ति के मेघों की मात्रा अधिक होती है तभी उसका मस्तिष्क भी या बुद्धि और भी उत्तम नीतियों का निर्धारण करती है वह इन विपत्तियों से विचलित नहीं होता अपितु और भी अधिक सूझ-बूझ का परिचय देता है। वह कहता है कि इस समय की परिस्थितियों को देखते हुए हम केवल वीरता और शौर्य के आधार पर सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि हमारे पास यवनों से टक्कर लेने के लिए पर्याप्त सैन्य-शक्ति का अभाव है अतः हमें जिस मार्ग से सफलता मिल सकती है उसे अपनाना चाहिए। वह अपना मत स्पष्ट करता है कि सफलता के लिये साधना चाहे जैसे अपनाई जाये किन्तु सफलता मिलनी चाहिए। उसकी नीति में सफलता या परिणाम आवश्यक है। साधन को वह महत्त्व नहीं देता है। यह सिद्धि की प्राप्ति के लिए साधनों की नैतिकता को आगे नहीं रखता है। उसे जैसे भी हो सफलता मिलनी चाहिए।

**विशेष**

1. चाणक्य की राजनीति स्पष्ट की गई है। उसने अलका, सिंहरण और चन्द्रगुप्त को छद्मवेश धारण करके यवन सेना में अवरोध उत्पन्न कराया है। स्वयं भी ब्रह्मचारी बनकर इसमें भाग लेता है।
2. चाणक्य का राजनैतिक या नीति निर्धारक रूप मुखरित हुआ है।
3. भाषा नाटकीय प्रभावशाली एवं आलंकारिक है।

**२२. ''फूल हंसते हुए आते हैं, मकरंद गिराकर मुरझा जाते हैं, आँसू से धारणी को भिगोकर चले जाते हैं। एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निःश्वास फेंककर चला जाता है।'' (प ष्ठ-६५)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पक्तियाँ जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अंक चतुर्थ द श्य से उद्ध त की गई है, सिन्धु देश की कुमारी मालविका मालव में सिंहरण की वाटिका में चन्द्रगुप्त के विरह में निमग्न है। उसका मन उदास है। वह अपने मन के अनुकूल ही प्राकृतिक अपकरणों में निराशापूर्ण प्रतिबिम्ब देखती है।

**व्याख्या**

मालविका कहती है कि विश्व में सभी पुरुष मुसकराते हुये, हँसते हुए आते है और मकरंद गिराकर अर्थात् वातावरण को सुगन्धित करके फिर मुरझा जाते हैं अर्थात् इनका जीवन अत्यंत ही करूणापूर्ण है। एक क्षण में मुस्कराते हैं, तो दूसरे ही क्षण वे मुरझा कर गिर पड़ते हैं। वह महसूस करती है कि ये पुण्य ओस के रूप मे ंअपनी व्यथा के अश्रु गिराते हैं और समाप्त हो जाते हैं। वह इसी प्रकार की दशा यवन की भी सोचती है। कि पवन का अत्यन्त कोमल झोंका आता है, प्रफुल्ल होकर आता है। किन्तु विश्वास लेता हुआ यहाँ से चला जाता है पवन के इस प्रकार दीर्घ श्वास छोड़ने में ऐसा विदित होता है मानो वह जगत के प्रति दुखात्मक भाव प्रकट करता है। वह आगे सोचती है। कि क्या वास्तव में यह सम्पूर्ण विश्व, यहां के सभी प्राणी एवं पदार्थ रोने के लिए नहीं है किन्तु अगले ही क्षण वह सोचती है कि नहीं ऐसा नहीं है, सभी के लिये एक जैसे नियम नहीं है। यदि किसी के भाग्य में रोना अर्थात् कष्ट सहन करना लिखा है तो किसी के भाग्य में हर्ष अर्थात् सोभाग्य, आनंद आदि लिखा है। किन्तु वह सोचती है कि उसके भाग्य में तो रोना ही रोना लिखा है।

**विशेष**

1. मालविका के चरित्र का सुभ चित्रांकत है।
2. मालविका के मन में चन्द्रगुप्त के प्रति सोई भावना पल्लवित हो गई है।
3. प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप में मालविका के मनोगत भावों का साम्य है।

**२३. ''स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है। परन्तु बिछलने का भय भी हो जाता है। अद्‌भुत युवक है। देखूं कुमार सिंहरण कब आते हैं।'' (प ष्ठ-९६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत वाक्य जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अंक के चतुर्थ द श्य के अंतिम भाग से उद्ध त है। मालविका अन्य देशों को घूमने की इच्छा से आई थी किन्तु वह अलका के स्नेह से प्रभावित होकर तक्षशिला में रहने लगी। वह चन्द्रगुप्त के इन्द्रजाली रूप पर विमुग्ध हो जाती है वह एक सरल हृदय नारी है जिसके कारण चन्द्रगुप्त उससे प्रभावित है वह रस भाव को मालविका से स्पष्ट करके चला जाता है मालविका का सोपा प्रेमांकुर प्रस्फुटित हो उठा।

**व्याख्या**

मालविका कहती है कि प्रेम संसार का तत्त्व है प्रेम हृदय की कोमल एवं स्निग्ध बना देता है किन्तु यह भी तथ्य ही है कि जहाँ चिकनापन होता है वहाँ विघलन भी आ जाती है। यही कारण है कि प्रेम मार्ग पर चलते समय विचलित होने का भय सर्वदा बना रहता है? वास्तविकता यह है कि मालविका को चन्द्रगुप्त से शंका होती है कि वह प्रेम मार्ग में विचलित न हो जाये और उससे सम्बन्ध स्थापन में यही भय रहता है।

**विशेष**

1. यहाँ मालविका के निश्छल हृदय का दर्शन होता है।
2. भाषा प्रभावी नाटकीय है।
3. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।
4. प्रेम का मनमोहक चित्रण है।

**२४. ''तारों से भरी हुई काली रजनी का नीला आकाश- जैसे कोई विराट् गणितज्ञ निभ त में रेखा-गणित की समस्या सिद्ध करने के लिए बिन्दु दे रहा है।'' (प ष्ठ-१०५)**

**संदर्भ-प्रसंग**

जय शंकर प्रसाद कृत 'चन्द्रगुप्त' नाटक के द्वितीय अंक से उद्धत प्रस्तुत गद्यांश में अलका के हृदय में विद्यमान पर्वतेश्वर के प्रसाद में है। यद्यपि चाणक्य की मंत्रणानुसार वह पर्वतेश्वर की प्रिया बनना अंगीकार कर लेती है, तथापि उसके हृदय-मंदिर में उसका इष्टदेव सिंहरण ही निवास करता है। सिंहरण को भुला पाना उसके लिए किसी भी मूल्य पर सम्भव नहीं है। सहसा वह आकाश की ओर द ष्टिपात करती है।

व्याख्या

अलका कहती है कि तारों की भरी हुई काली रात्री और नीलाकाश भी क्या है। ऐसा लक्षित होता है मानो कोई सत्य के ऊपर रहस्य का आवरण डाल रहा हो, किन्तु असंख्य नक्षत्र भी तो झिलमिला रहे हैं। ये नक्षत्र मानो अंधकार के आवरण को हटाकर वास्तविकता तक पहुंचना चाहते हैं। अलका को यह रात्रि ऐसी प्रतीत होती है मानो कोई विराट गणितज्ञ शून्य में रेखागणित की किसी जटिल समस्या का समाधान करने के लिए बिन्दु दे रहा हो।

**विशेष**

1. अलका के आन्तरिक भावनाओं का प्राकृतिक उपादानों पर सुन्दर आरोपण है।
2. संस्कृतनिष्ठ प्रभावी भाषा का प्रयोग है।

3. सुंदर चिंतन का प्रभावी चित्रण है।
4. आकर्षक भावभिव्यक्ति है।

**२५. ''ब्राह्मण राज्य करना, नहीं जानता करना भी नहीं चाहता, है।, वह राजाओं का नियमन करना चाहता है; राजा बनाना जानता है। इसलिए तुम्हें अभी राज्य करना होगा और करना होगा वह कार्य जिसमें भारतीयों का गौरव हो और क्षात्र धर्म का पालना हो।'' (प ष्ठ-११७-११८)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के त तीय अंक के द्वितीय द श्य से उद्ध त की गई हैं। पर्वतेश्वर एक वीर एवं साहसी योद्धा है किन्तु वह अलका से पराजित होता है। वह भावना - आत्मग्लानि के भाव से अभिभूत होकर आत्महत्या करने पर तुला है किन्तु चाणक्य उचित अवसर पर पहुँच कर उसे बचा लेता है पर्वतेश्वर चन्द्रगुप्त से भी प्रसन्न है वह जब कहता है कि मैं विश्वस्त ह्रदय से कहता हूँ कि चन्द्रगुप्त आर्यावर्त्त का एक छत्र सम्राट होने के उपयुक्त है।''

**व्याख्या**

चाणक्य कहता है कि हे पर्वतेश्वर। ब्राह्मण स्वयं राज्य नहीं करता और न राज्य करने की उसमें योग्यता ही होती है। परन्तु वह इससे कठिनतर कार्य कर सकता है। वह योग्य व्यक्ति को राजा बनाना जानता है, उसके राज्य का संचालन कर सकता है अतः तुम्हें भी अपने क्षत्रिय-धर्म का पालन करते हुए राज्य करना होगा। जिन यवनों ने तुम्हें लाच्छित और अपमानित किया है, उनसे किसी न किसी प्रकार प्रतिशोध लेना ही होगा। ऐसा करने से एक और तुम्हारा सम्मान होगा और दूसरी और भारतीय गौरवान्वित होंगे।

**विशेष**

1. देश रक्षक चाणक्य के समक्ष भारत का सम्मान सदा रहता है।
2. भाषा सरल, सुगम, सुबोध है।
   अभिव्यक्ति स्पष्ट है।

**२६. ''मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली-भांति परिचित रहता है। परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिए। असम्भव कहकर किसी काम को करने से पहले कर्मक्षेत्र में कांपकर लड़खड़ाओं मत पौरव! तुम क्या हो - विचार कर देखो तो। सिकंदर ने जो क्षत्रय नियुक्त किया है, जिन सन्धियों को वह प्रगतिशील रखना चाहता है वे सब क्या है? अपनी लूट-पाट को वह साम्राज्य के रूप में देखना चाहता है। चाणक्य जीते-जी यह नहीं होने देगा। तुम राज्य करो। (प ष्ठ-११८)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के त तीय अंक के द्वितीय द श्य से उद्ध त की गई हैं चाणक्य ने पर्वतेश्वर के गए सम्मान को पुनः प्रतिष्ठित करने की बात कही तो पर्वतेश्वर ने उसे असम्भव कहा। चाणक्य को अप्रिय लगा।

**व्याख्या**

चाणक्य कहता है कि वीर व्यक्ति के लिए इस संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है सच्ची लगन एवं उत्साह द्वारा वह कठिन-से-कठिन एवं विकट से विकट समस्याओं एवं परिस्थितियों का भी सामना कर सकता है। अतः उसका कर्त्तव्य है कि वह किसी कार्य को करने से पूर्व लड़खड़ाये नहीं। यह सत्य है कि मनुष्य में दुर्बलता एवं सबलता दोनों तत्व विद्यमान रहते हैं और वह अपनी दुर्बलताओं से ही प्रायः परिचित रहता है, किन्तु उसे अपनी शक्ति से भी अवगत रहना चाहिए। यद्यपि तुम अपनी दुर्बलताओं के कारण यवनों को पराजित न कर सके, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि तुम सामर्थ्य-विहीन हो, अशक्त हो, अपने उद्योग बल द्वारा तुम निश्चय ही असम्भव को सम्भव तथा कठिन को सरल बना सकते हो। कर्मक्षेत्र में कांप लड़खड़ाना अशोभनीय है।

**विशेष**

1. यहाँ चाणक्य के माध्यम से कर्मवाद की स्थापना है।
2. प्रसाद का जीवन-दर्शन मुखरित हुआ है।
3. आलंकारिक भाषा होते हुए भी दुरूहता नहीं है।
4. सहृदय भाषा से बंधा रहता है।

**२७. ''नहीं चन्द्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल-कुंज, घने जंगल सरिताओं की माला पहने हुए शैल-श्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की चांदनी, शीतकाल की धूप, और भोले कृषक तथा सरला कृषक-बालिकाएं बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमाएं हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि भारतभूमि क्या भुलायी जा सकती है? कदापि नहीं अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है। यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।'' (प ष्ठ-११६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के त तीय अंक के द्वितीय द श्य से उद्ध त है? कार्नेलिया भारतीय संस्कृति एवं चन्द्रगुप्त से प्रभावित है उसे अपनी ग्रीक देश स्म ति भी बनी रहती है। चन्द्रगुप्त कार्नेलिया से भारत देश के साथ-साथ चन्द्रगुप्त को भुलाने की पेशकश करता है।

**व्याख्या**

कार्नेलिया कहती है कि चन्द्रगुप्त ऐसा नहीं हो सकता, वह भारत को नहीं भूला सकती। भारत देश उसे अपनी मात भूमि की भांति लगने लगा है। इस देश के हरे-भरे वन, सघन फानन, फली-फूली क्यारियां, पर्वत-श्रेणियां पर कलकल ध्वनि करती हुई अम त के समान जल वाली नदियां, जो ऐसी लगती हैं, मानों पर्वतों के गले की हार हों, वर्षा से उत्पन्न होने वाली हरियाली, ग्रीष्म ऋतु की कोमल चांदनी, शीतकाल में मधुर लगने वाली सुंदर धूप, यहां के अत्यंत म दुल स्वभाव वाले निष्कपट कृषक और प्राकृतिक सौन्दर्य ने नैसगिंक सौन्दर्य लिए कृषक बालिकाएं बहुत प्रिय लगते हैं। इस देश का सुख-सौन्दर्य स्वप्न के समान आकर्षक है अर्थात् यह देश सुख-सम्पदा से परिपूर्ण है। इस देश ने सदैव ज्ञान की रक्षा की है, यह ज्ञान का पोषक है। और सदा दूसरों को ज्ञान का दान दिया करता है। यहां के प्रत्येक मानव का हृदय प्रेम से भरा हुआ है, सभी का व्यवहार सौहार्द्रपूर्ण होता है। मनमोहक एवं स्नेहशील, प्रणयपूर्ण भूमि-भारत को भुला पाना सम्भव नहीं है। भारत से इतर देश केवल स्त्री-पुरुषों को जन्म देते हैं। किन्तु भारत में मानव के साथ-साथ मनवोचित गुणों को भी जन्म दिया जाता है यहाँ के मानव मानवीय गुणों से परिपूर्ण है।

**विशेष**

1. भारतीय प्रकृति का मनोरम चित्रण किया गया है।
2. भारत में मानवीय गुणों का जन्म दिखाकर तो भारतीय संस्कृति एवं यहां के महानुभावों के गौरव को अत्यंत उच्च भूमि पर पहुँचा दिया है।
3. सहज कथन में माधुर्य-गुण दर्शनीय है।
4. रूपक अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

**२८. ''सिकंदर ने भारत से युद्ध किया है और मैंने भारत का अध्ययन किया है। मैं देखती हूं कि ग्रीक और भारतीयों के अस्त्र का ही नहीं, इसमें दो बुद्धियां भी लड़ रही है। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है, सिकंदर और चन्द्रगुप्त उनके अस्त्र हैं।'' (प ष्ठ-१२०)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत अभिनयपूर्ण कथन प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के त तीय अंक के द्वितीय द श्य से उद्ध त किया गया है। कार्नेलिया को ज्ञात है कि चन्द्रगुप्त और सिकंदर का युद्ध अवश्य होगा। वह इनके पारस्परिक युद्ध के प्रति अपने निष्कर्ष को बताते हुए चन्द्रगुप्त से कहती है कि:

**व्याख्या**

सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया है किन्तु उसने (कार्नेलिया ने) भारत के विषय में विचार किया है। मैंने इसे, इसके निवासियों को, यहां की संस्कृति को जानने का प्रयास किया है। ग्रीक निवासी होने के कारण मैं वहां से तो पहले ही अच्छी तरह परिचित हूं। यह जो ग्रीक एवं भारतीयों का युद्ध है, यह केवल बाहुबल और अस्त्र-शास्त्रों का ही युद्ध नहीं है अपितु यहां बुद्धियों का युद्ध भी है। वास्तव में यहां दो देशों के दो विशिष्ट मनीषी-बुद्धिमान अरस्तु एवं चाणक्य की बुद्धियां भी युद्धरत हैं। ग्रीक की मनीषा का प्रतिनिधित्व कर रहा है। सिकंदर और भारतीय बुद्धि कौशल का प्रतिनिधित्व कर रहा है। चन्द्रगुप्त। वास्तव में युद्ध तो अरस्तु और चाणक्य की बुद्धियों का है। सिकंदर एवं चन्द्रगुप्त तो इन दोनों के इशारे पर युद्ध करने वाले अर्थात् ये दोनों इनकी युद्धनीति से युद्ध करते हैं अर्थात् चन्द्रगुप्त की शक्ति एवं नीति का निर्धारण चाणक्य के अनुसार है तो सिकंदर अरस्तु की नीति पर कार्य कर रहा है। यहां सैन्य बल के साथ-साथ कूटनीति का विशेष संघर्ष है।

**विशेष**

1. ग्रीक एवं भारत की तुलनात्मक प्रस्तुति है।
2. कार्नेलिया का गंभीर चिंतन का वर्णन है।
3. यहां चाणक्य भारतीय विचारधारा और अरस्तु ग्रीक की विचारधारा के प्रतीक रूप है।
4. भाषा ओजगुण और अभिनयोचित है।

**२६. ''समझदारी आने पर यौवन चला जाता है - जब तक माला गूँधी जाती है, तब तक फूल कुम्हला जाते हैं। जिससे मिलने के सम्भार की इतनी धूमधाम, सजावट, बनावट होती है, उसके आने तक मनुष्य ह्रदय को सुंदर और उपयुक्त नहीं बनाये रह सकता। मनुष्य की चंचल स्थिति तब तक श्यामल कोमल ह्रदय को मरूभूमि बना देती है। यही तो विषमता है। मैं—अविश्वास कूट-चक्र और छलनाओं का कंकाल, कठोरताओं का केन्द्र! आह! तो इस विश्व में मेरा कोई सुह द नहीं?'' (प ष्ठ-१२६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद कृते नाटक 'चन्द्रगुप्त' के त तीय अंक के छठवें द श्य से उद्धत है। कुसुमपुर में मालविका एवं पुलका चली जाती हैं। चाणक्य के विचारों में खो जाती है। उसमें प्रेम की अनेकानेक तरंगे आ रही थी। वह अपने प्रिय के प्रति समर्पित रहने के लिये उन्मुक्त रहता था। किन्तु राजनीतिक दांव-पेचों ने उसके सभी भावों को कुचल दिया था, उसी समय वह एक सुन्दरी-सुवासिनी के सम्पर्क में आया था किन्तु उसे भी नन्द के दुर्व्यवहार ने गायब कर दिया। इन पंक्तियों में चाणक्य इन्हीं कल्पनाओं एवं यथार्थपूर्ण जीवन पर विचार करता हुआ कहता है कि:

**व्याख्या**

जीवन में यौवन पहले आते है और समझदारी बाद में। जब तक आदमी जीवन को सही तरीके से समझने के योग्य बनता है तब तक यौवन बीत जाता है। उस समय तक न यौवन रहता है न यौवन का उन्माद। जिस तरह फूल को गंध लेनी हो तो उसे टहनी से तोड़ते ही सूघ लो या उसे अपनी शोभा बना लो। किन्तु यदि हम उसे माला में गूंथने बैठ जायें, तो जब तक माला गुंथकर तैयार होगी तब तक फूल मुरझाा जाएगें, उनमें न रंग रहेगा न चमक। यही दशा जीवन की भी है। आदमी समझदारी के साथ जीवन का उपभोग करने का प्रयत्न करे तो जीवन को समझने, समझने में ही यौवन बीत जाता है और फिर पश्चाताप के अतिरिक्त आदमी के पास कुछ नहीं रह जाता। आदमी विवाह करके जिसे अपने जीवन में बुला लेना चाहता है उसके स्वागत के लिए वह खूब सजावट करता है। उत्सव करता है और अनेक प्रकार का आडम्बर करता है। किन्तु जब तक वह उसे प्राप्त करने में समर्थ होता है, तब तक वह अपने ह्रदय को सुन्दर और यौवन के अनुकूल भावनाओं से पूर्ण नहीं रख पाता। मैने सुहासिनी को चाहा था। मन में उसके लिए कैसी-कैसी कल्पानाएँ की थीं लेकिन उस समय शायद समझ नहीं थी। आज जब समझ आ गयी तो ह्रदय में यौवन का उन्माद नहीं है आज तो मेरा ह्रदय रेगिस्तान की भांति सूखा और भावनाहीन हो गया है। यौवन की अस्थिर चंचलता समाप्त सी हो गई है। यौवन की मधुर भावनाओं से भरे रहने वाले कोमल ह्रदय में अब तो वैसा कुछ भी नहीं रह गया है। यही जीवन का आत्मविरोध है। यौवन काल में मनुष्य का ह्रदय उन्माद से भरा रहता है, लेकिन समझ नहीं होती और जब समझ आती है तो यौवन नहीं रहता। मैं इसका साक्षात उदाहरण हूँ। आज मेरे मन में किसी के प्रति कोई

विश्वास नहीं। हृदय में अनेक प्रकार की कुटिलताएँ और राजनीतिक प्रपंच भरे हुए हैं। यौवन की भासलता का तो एक कण भी अब शेष नहीं। हृदय में कोमलता और दया भी नहीं रही। अपने लक्ष्य को हर कीमत पर पूरा करने की कठोरता भरी हुई है। लगता है कि इस सम्पूर्ण विश्व में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जो मुझे प्यार कर सके या जिसे मैं प्यार कर सकूँ।

**विशेष**

1. चाणक्य के प्रभावी अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण है।
2. प्रसाद यथार्थ जीवन के दर्शन को सुन्दर प्रस्तुत करते हैं।
3. भाषा काव्यात्मक एवं आलंकारिक अभिनयोचित है।

**३०. ''तुम सहायता करोगे? आश्चर्य! मनुष्य, मनुष्य की सहायता करेगा, वह उसे हिंस्रपशु के समान नोच न डालेगा। हाँ, यह दूसरी बात है कि वह जोक की तरह बिना कष्ट दिये रक्त चूसे। जिसमें कोई स्वार्थ न हो, ऐसी सहायता। तुम भूखे भेड़िये।'' (प ष्ठ-१३०)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के त तीय अंक के छठवें द श्य से उद्धत है। राकटार वनमानुष की भांति एक मिट्टी के ठेर से बाहर निकल आया है। प्रकाश में उसकी आंखे चौधियां रही है। उसके सात पुत्रों की हत्या का दोष नन्द के सिर पर है। वह इस अंधकूप में अत्यंत कष्टमय जीवन व्यतीत करके बाहर आया है। वह निश्चित हो जाता है। चाणक्य उसे दुःखी समझ कर उसे जल पिलाकर होश में लाता है और उसकी सहायता करता है।

**व्याख्या**

नाटककार कहता है कि आज के संसार में वस्तुतः वह अत्यन्त आश्चर्य का ही विषय है कि मनुष्य दूसरे मनुष्य की सहायता करे। वह तो किसी न किसी प्रकार से दूसरे का शोषण ही करेगा। नंद ने उसके प्रति जो विष्ठुर अत्याचार किये, क्या वे मानवीय क त्य वह भला उन्हें कभी भूल सकता है। वस्तुतः मनुष्य मनुष्य की सहायता न करके हिंसक वन्य-पशु की भांति उसे नोचने की ही चेष्टा करता है। हाँ, यह दूसरी बात है कि वह मानवता के नाते कभी पशुवत न नोचे और जोक की भांति ही उसका धीरे-धीरे रक्त चूस-चूस कर उसे खोखला कर देती है, यही स्थिति चाणक्य जैसे मनुष्यों की है। इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो सर्वथा निःस्वार्थ भाव से किसी अन्य मनुष्य की सहायता प्रव त्त हो।

**विशेष**

1. प्रतिहिंसा की अग्नि मानव को अत्यन्त कठोर एवं अविश्वासी बना देती है, चित्रांकन है।
2. नंद के अत्याचारों का वर्णन है।
3. भाषा अभिनयोचित प्रवाहपूर्ण एवं ओजपूर्ण है।

**३१. 'चन्द्रगुप्त! मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा साम्राज्य करूणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। आनंद-समुद्र में शांति द्वीप का अधिवासी ब्राह्मण मैं, चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र मेरे दीप थे, अनन्त आकाश बिताना था, शस्यामला कोमला विश्वम्भरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म था, सन्तोष धन था। उस अपनी ब्राह्मण की, जन्म-भूमि को छोड़कर कहाँ आ गया। (प ष्ठ-१५६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पक्तियां जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के चतुर्थ अंक के पांचवें द श्य के नायक चन्द्रगुप्त के पिता चाणक्य द्वारा उस समय कही गई हैं, जब चन्द्रगुप्त उससे अपने माता-पिता के अपमान करने का कारण पूछता है- ''यह अक्षुण्णा अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं? केवल साम्राज्य का ही नहीं, देखता हूँ, आप मेरे कुटुम्ब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं।''

**व्याख्या**

चाणक्य कहता है कि चन्द्रगुप्त। मैं ब्राह्मण हूँ। आज मुझे पछतावा हो रहा है कि ब्राह्मण होकर भी मैं राजनीति में क्यों फँस गया। मेरा साम्राज्य राजनीति का नहीं बल्कि करूणा का था। अधिक से अधिक लोगों पर दया करना अपनी दया भावना से

अधिकाधिक लोगों का मन जीतना, यही मेरे लिए उपयुक्त था। मेरा धर्म शासन को उलटना नहीं और न ही वह राजनैतिक दावपेंचों में है अपितु मेरा धर्म तो प्रेम था - बिना किसी भेदभाव के सब लोगों को समान रूप से प्रेम करना ही मेरा धर्म था। - ब्राह्मण होने के नाते मुझे शान्तिप्रिय होना चाहिए था और राजनीतिक कुचकों से दूर रहना चाहिए था। लोक कल्याण में ही आनंद महसूस करते हुए मुझे शान्तिपूर्वक रहना था। लेकिन मैं वैसा नहीं कर सका। स्वतंत्र प्रकृति में रहते हुये मैं देखता था कि चाँद-सूरज और तारे मेरे लिए द्वीपों का काम करते थे, खुला हुआ नीला आकाश मेरे सीर पर बिताने का काम करता था और हरी-भरी धरती ही मेरा बिछौना थी। किन्तु देखते-देखते यह सब बदल गया। अपनी बुद्धि के द्वारा लोगों को ज्ञान देते रहना ही मेरा कर्म था। मेरा कर्त्तव्य यही था। कि मैं अज्ञान को मिटांऊ। संतोष ही मेरा सबसे बड़ा धन था - मुझे न किसी प्रकार की त ष्णा थी न ही कोई लोभ था। अपनी स्थिति से मैं पूर्णतः संतुष्ट था। लेकिन मैं अपने उस ब्राह्मण धर्म को छोड़कर राजनीति में चला आया। और इस तरह न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया।

**विशेष**

1. ब्राह्मण का सुंदर विवेचन है।
2. भाव अत्यंत प्रभावी और मनमोहक है।
3. भाषा अभिनयोचित ओजपूर्ण है।

**३२. ''मानव-हृदय में वह भाव द ष्टि तो हुआ ही करती है। यही हृदय का रहस्य है, तब हम लोग जिस स ष्टि में स्वतंत्र हो, उसमें परखता क्यों मानें? मैं क्रूर हूँ, केवल वर्तमान के लिए; भविष्य के सुख और शान्ति के लिए, परिणाम के लिए नहीं। श्रेय के लिए मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए; सुवासिनी। जाओ।'' (प ष्ठ-१६५-१६६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश प्रस्तुत कृत नाटक चन्द्रगुप्त के चौथे अंक के अष्ठ द श्य से लिया गया है सुवासिनी और चाणक्य का वार्तालाप है। चाणक्य सुवासिनी को समझाता है कि वह राक्षस के साथ ही जुड़ने का प्रयास करे। वही उसका सच्चा साथी हो सकता है। इसी क्रम में वह कहता हैः

**व्याख्या**

मनुष्य के हृदय में प्रेम और उदासीनता के ऐसे भाव तो पनपते ही रहते हैं। इन भावों की दुनिया केवल मानव हृदय ही है। मानव हृदय में ऐसे भावों का उदय और अवसान कोई अस्वाभाविकता नहीं। ये भाव चूंकि हमारे हृदय तक ही सीमित रहते हैं इसलिए हम चाहे तो इन पर नियंत्रण भी कर सकते है कम से कम हृदय में उत्पन्न होने वाले इन भावों के विषय में आदमी स्वतंत्र होता है; चाहे जिस भाव को पनपने दे चाहे जिसे कुचल दे। अतः इस प्रसंग में हमें दूसरों के अधीन नहीं होना चाहिए। इसीलिए मैं अपने आप को तुमसे तटस्य करके तुम्हें सलाह दे रहा हूँ कि राक्षस पर ही विश्वास करो। मेरे हृदय में जितनी भी कठोरता है वह केवल वर्तमान जीवन तक ही सीमित है; मैं वर्तमान को अपने अनुकूल करने के लिए ही कठोर बनाता हूँ। मैं किसी भी ऐसे काम को पसंद नहीं करता जिससे भविष्य की सुख-शांति नष्ट हो जाय। जिन कामों को भविष्य में करता जिससे भविष्य ही सुख-शांति नष्ट हो जाए। जिन कामों का भविष्य में अच्छा परिणाम हो उनके लिए मैं वर्तमान में किसी भी प्रकार का कष्ट सहन कर सकता हूँ। अच्छे काम के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह हर प्रकार का त्याग करने को तैयार रहे। हमें भी ऐसा करने के लिए तत्पर रहना चाहिए, इसीलिए सुवासिनी। तुम जाओ और राक्षस में ही विश्वास रखो।

**विशेष**

1. मानवीय कार्य चित्रांकन है।
2. चाणक्य का सुंदर चरित्र प्रकट हुआ है।
3. भाषा अभिनयोचित आकर्षक है।
4. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

# व्याख्या (पद्य)

1. **तुम कनक किरण के अन्तराल में**
**लुक-छिप कर चलते हों क्यों?**
**नत मस्तक गर्व वहन करते**
**यौवन के धन, रस कन ढरते।**
**हे लाज भरे सौन्दर्य।**
**बता दो मौन बने रहते हो क्यों? (प ष्ठ-५२)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां 'जयशंकर प्रसाद' को नाटक 'चन्द्रगुप्त' से संकलित की गई हैं। नाटककार ने इन पंक्तियों में सुवासिनी के जीवन, परिस्थिति, व त्ति और प्रणय का स्पष्टीकरण करते हुए नारी का अद्वितीय रूपचित्र अंकित किया है।

**व्याख्या**

इन पंक्तियों में 'प्रसाद' ने अत्यन्त सूक्ष्म तरीके से नारी-सौंदर्य का वर्णन किया है। नारी का सौन्दर्य सुनहरी किरणों के सुनहरेपन में निहित नहीं है, अपितु उन किरणों के अर्न्तजगत में विद्यमान है। यह सौन्दर्य अत्यन्त गोपनीय भाव से मनुष्य के हृदय को झककोर देता है। सौन्दर्य गर्व से गर्वित यह सुन्दरी नतमस्तक है। नाटककार उसे सम्बोधित करते हुए कहता है कि वह तो साक्षा् यौवन के बादल के समान है, जो जलकणों की बारिश न करके रस और आनन्द की वर्षा करता है। उसका लज्जायुक्त सौन्दर्य उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देता है। वह सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति न जाने लज्जाभार से नत क्यों रहती है?

**विशेष**

1. इन पंक्तियों में नाट्ककार ने सूक्ष्य भावों के माध्यम से नारी सौन्दर्य का सुन्दर एवं मनमोहक वर्णन प्रस्तुत किया है।
2. छायावादी विचार प्रतिपादित किये गये हैं।
3. उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. नारी के लिए 'लाज भरे सौन्दर्य' विशेषण का प्रयोग किया गया है।

2. अधरों के मधुर कगारों में
कलकल ध्वनि की गुंजरों में?
मधुसरिता-सी यह हँसी तरल
अपनी पीते रहते हो क्यों?
बेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगंघा की कली खिली
अब सान्ध्य मलम-आकुलित
दुकूल कलित हो, यों छिपते हो क्यों?

**(प ष्ठ-५२)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गीत नाट्ककार 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के दूसरे द श्य से उद्धत किया गया है। इन पंक्तियों में नाटककार सौन्दर्य को एक वेगवती सरिता के समान गतिशील मानते हुए अपनी ही हँसी के आनन्द में झूमकर मतवाली सौन्दर्यवती का वर्णन करते हैं:

**व्याख्या**

नाटककार ने सौन्दर्य को एक वेगवती सरिता माना है वह अपनी ही हँसी में आनन्दमय मतवाली क्यों हो रही है? उसे ऐसा

प्रतीत हो रहा है कि वह मदिरापान करके मतवाली हँसी-हँस रही है। उसे होंठ सरिता के कगारों के समान हैं तथा उन पर उमड़ने वाला कल-कल हास सरिता की कल-कल ध्वनि के समान आकर्षक हैं आगे नाटककार कहते हैं कि अब सांध्यकाली-बेला समाप्त हो गई है। रात्रि में चन्द्रमा विकसित होकर प्रफुल्लित है। अब रजनी के आगमन के साथ-साथ उन्मुक्त मिलन का उपयुक्त अवसर है। अब संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे अपने मुख-मण्डल पर सन्ध्याकालीन मलय-समीर द्वारा चंचल बने अवगुंठन धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

**विशेष**

1. नाटककार की भाषा-शैली अत्यन्त सरल एवं सहज है।
2. छायावादी विशेषताओं का आकलन भी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।
3. उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. आन्तरिक भावों को लक्षण-व्यंजना के माध्यम से अभिव्यक्ति मिल पाई है।
5. रजनीगन्धा की कली खिली में सांकेतिक अर्थाभिव्यक्ति का मार्मिक प्रयोग हुआ है।

3. **निकल मत बाहर दर्बल आह!**
**लगेगा तुझे हँसी का शीत**
**शरद नीरद माला के बीच**
**तड़प ले चपला-सी भयभीत**
**पड़ रहे पावन प्रेम-फुहार**
**जलन कुछ-कुछ है मीठी पीर**
**सम्हाले चल कितनी है दूर**
**प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर** (प ष्ठ 53)

**संदर्भ प्रंसग**

_प्रस्तुत गीत 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के द्वितीय द श्य से उद्धत किया गया है। इस गीत में राक्षस ने सुवासिनी द्वारा गाए गए गीत के भावों का उत्तर देने की कोशिश की है।

**व्याख्या**

नाटककार राक्षस के माध्यम से कह रहे हैं - हे वेदना तुम हृदय में ही स्थित रह, अपने आपको विश्व के समक्ष प्रस्तुत न होने दे, अन्यथा तुझे विश्वजन का उपहास-पात्र बनना पड़ेगा। तुझे विश्व की सहानुभूति प्राप्त नहीं हो सकेगी। तू इस तदभ मे ंउसी प्रकार तड़प ले जिस प्रकार शरदकालीन घने बादलों के मध्य बिजली चमकर्ती है। प्रेम प्रंसग को इंगित करते हुए नाटककार कहते हैं कि उसके जीवन में प्रेम की द ष्टि हो रही है। इस प्रेम द्वारा ही उसे मधुर वेदना का अनुभव होता है। यह वेदना एक ओर उन्हें जलाती है, तो दूसरी ओर आंनद भी प्रदान करती है। अपनी वेदना को अभिव्यक्त करने के लिए उसे व्याकुल नहीं होना चाहिए और उसके अन्तिम परिणाम को जानने के लिए अधीर नहीं होना चाहिए।

**विशेष-**

1. राक्षस के हृदयगत भाषा को इस गीत में सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है।
2. नाटककार की भाषा-शैली सरल एवं सरस है।
3. छायावादी भावों को अभिव्यक्ति मिली है।

4. **अश्रुमय सुन्दर विरहं निशीथ**
**भरे तारे न दुलकते आह!**
**न उफना दे आँसू हैं भरें**
**इन्ह आँखों में उनकी चाह**

**काकली-सी बनने की तुम्हें**
**लगन लग जाय न हे भगवान्**
**पपीहा का पी सुनता कभी।**
**अरे कोकिल की देख दशा न; (प ष्ठ 53)**

### संदर्भ प्रसंग

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' से उद्धत की गई हैं इनमें नाटककार स्वयं को रजनी से उपमित करते हुए कहा है-

### व्याख्या

नाटककार कह रहे है कि जिस प्रकार उसका हृदय अश्रुपूर्ण है, उसी प्रकार रजनी का भी । रजनी की सुन्दरता का कारण उसका विरह ही है। तारे रजनी के नेत्र है, किन्तु वे अश्रु-वर्षण नहीं करते नाटककार की कामना है कि उसके नेत्रों से अश्रुपात न हो। कारण वही तो उसकी सम्पदा है, उन्ह में उसके प्रिय की स्म ति एवं चाहत व्याप्त है। नाटककार भगवान से याचना करता है कि कहीं उसे भी कोकिला एवं पपीहे की भाँति अपनी वेदना को मुखारित करने की लगन न लग जाय। कोयल अपनी मनोव्यथा को पंचक तान में व्यक्त करती है, उसकी मीठी आवाज संपूर्ण वातावरण को 'झंकृत कर देती है, किन्तु उसे अपने अभीष्ट-प्रियतम - की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार यदि पपीहा भी कितनी ही रट लगाकर प्रियतम को पुकारे उसे सुनकर कौन आता है।

### विशेष-

1. नाटककार ने वेदना की अभिव्यक्ति को मर्म स्पर्शी भावों में व्यक्त किया है।
2. छायावादी विशेषताओं का आकलन भी सुन्दर बन पड़ा है।
3. अर्थ गरिमा, कल्पना की रमणीयता, भाव सौन्दर्य के लिए यह अन्यतम गीत है।
4. माधुर्य एवं संगीत सभी इस गीत में पाये जाते हैं।
5. **हृदय है पास, साँस की राह**
**चले आना-जाना चुपचाप**
**अरे छाया बन, छू मत उसे**
**भरा है तुझमें भीषण ताप**
**हिलाकर धड़कन से अविनीत**
**जगा मत सोया है सुकुमार**
**देखता है स्म तियों का स्वप्न**
**हृदय पर मत कर अत्याचार (प ष्ठ 53)**

### संदर्भ प्रसंग

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के दूसरे द श्य से उद्धत की गई हैं इनमें नाटककार ने वेदना के सामीप्य हाने का आह्वान करते हुए कहा है-

### व्याख्या

नाटककार कह रहे है कि वेदना उसके समीप अत्यन्त मौन भाव से श्वासों के मार्ग से आये और वही स्थिर हो जाए, क्योंकि उसका हृदय भी पास ही शयन कर रहा है। वह छाया बनकर भी उसे स्पर्श न करे। क्योंकि उसका हृदय अत्यन्त सुकुमार एवं स्निग्घ है, जबकि वह भीषण ताप की जवाला से परिपूर्ण है नाटककार का सुकुमान हृदय निद्रालीन है, इसलिए वेदना को उसे किसी भी प्रकार से कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए। नाटककार का हृदय तन्द्रवस्था में प्रियतम की मधुर स्म तियों का आनन्द लूट रहा है, वह अपनी इस दशा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहता । वियोग के क्षणों में प्रिय की विगत स्म तियाँ ही प्रणयी का एकमात्र सहयोगी होती हैं।

**विशेष-**

1. संक्षिप्त शब्दों में प्रेम का मुखर इतिहास प्रस्तुत किया गया है।
2. नाटककार की भाषा-शैली सहज भावों से युक्त है।
3. छायावादी विचारों की अभिव्यक्ति अत्यन्त मनमोहक रूप में प्रस्तुत की गई है।

**अरूण यह मधुमय देश हमारा।**
**जहाँ पहुँच जनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।**
**सरस तामरस गर्भ विभा पर- नाच रही तरूशिखा-मनहोर।**
**घिटका जीवन हरियाली पर-मंगल कुंकुम सारा।**
**लघु सुरघनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे ।**
**उड़ते खग जिस ओर मुँह किये - समझ नीड़ निज प्यारा।**
**बरसाती आँखों के बादल-बनते जहाँ भरे करूणा जल।**
**लहरें टकराती अनन्त की-पाकर जहाँ किनारा।**
**हेम-कुम्भ ले उषा सवेरे - भरती ढलकाती सुख मेरे।**
**मदिर ऊँघते रहते जब-जग कर रजनी भर तारा।**

**(प ष्ठ** 82)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अंक के प्रथम द श्य से उद्ध त की गई हैं इनमें सेनापति सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया ने गाया है। वह भारतीय संस्कृति एवं दर्शन से प्रभावित है तथा चन्द्रगुप्त पर आसक्त देते हुए कहती है कि-

**व्याख्या**

नाटककार कह रहे है कि भारत अत्यन्त सौन्दर्यशाली एवं शोभा का अगाघ आगार है। यह देश माघुर्य से परिपूर्ण है। भारत वर्ष की भूमि सिद्धों एवं महात्माओं की पावन भूमि है। इस देश में आने पर अनन्त एवम् असीम आकाश को भी आधार मिल जाता है। प्रातः कालीन सूर्योदय के कुकुंम रंग के प्रकाश में सुन्दर एवं सरस कमल के उपर केशर की पीली-पीली पंखुड़ियों के समान परमाणु क्रिड़ाएँ करने लगते हैं। और व क्षों की सुन्दर-सुन्दर शाखाऐं भी न त्य करने लगती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उषा के आगमन से चारों ओर जीवन एवं जाग ति और स्फूर्ति की लहर का आगमन हो गया हो। समस्त पक्षी, भारतवर्ष को अपना प्रियतम नीड़ समझ कर प्रातःकालीन मलयगिरि पवन की धारा के साथ-साथ इन्द्रधनुष की भाँति विभिन्न रंगों वाले पंखों को फैलाए हुए, उड़ें चले आ रहे हैं। वे समझ रहे है की यही हमारा आश्रय स्थल है और यहीं उनको वास करना है। यहा नेत्र रूपी बादल करूणा-जल की द ष्टि करते रहते हैं इसी देश में अनन्त सागर की परस्पर टकराने वाली लहरों को एक किनारा मिलता है। प्रभातकालीन बेला में रतिभर जागने के कारण जब तारक समुदाय उन्माद में मस्त हुआ-सा गुँघने लगता है, तो यहाँ उषा रूपी सुन्दरी सूर्य रूपी स्वर्णिम कुंभ से जन-जीवन पर सुख-सौन्दर्य, आशा एवं स्फूर्ति बरसाने लगती है।

**विशेष-**

1. नाटककार ने इन पंक्तियों में अर्थ-गरिमा, आवगत गव्यता, कल्पना की रमणीयता एवं सौंदर्य का मार्मिक वर्णन किया है।
2. राष्ट्रीयता की परिपाटी को नाटककार ने अत्यन्त उच्च शिखर पर पहुँचा दिया है।
3. छायावादी प्रकृति को उभारा गया है।
4. नाटककार की भाषा-शैली मर्मस्पर्शी भाव-युक्त है।

**प्रथम यौवन-मदिरा से मत्त, प्रेम करने की भी परवाह,**
**और किसको देना है ह्रदय, चीन्हने की न तनिक थी चाह।**

**बेच डाला था ह्रदय अमोल, आज वह माँग रहा था दाम,**
**वेदना मिली तुला पर तोल, उसे लोभी ने ली बेकाम उड़ रही है।**
**द त्पथ में धूल, आ रहे हो तुम वे परवाह,**
**करू क्या द ग-जल से छिडकाव, बनाऊँ मैं यह बिछलन राह।**
**सँभलने धीरे-धीरे चलो, इसी मिस तुमको लगे विलम्ब;**
**सफल हो जीवन की सब साघ मिले आशा का कुछ-अवलम्ब।**
**विश्व की सुषमाओं का स्रोत, वह चलेगा आँखो की राह,**
**और दुर्लभ होगी पहचान, रूप-रत्नाकर भरा अथाह।**

(**प ष्ठ** 101)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गीत 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अकं के पंचम द श्य से लिया गया है। अलका सिंहरण की ओर आकृष्ट है इसी परिद श्य की नाटककार ने चित्रित करते हुए कहा है-

**व्याख्या**

जिस समय उसके जीवन में यौवन ने प्रवेश किया था तो उसे मस्ती से परिपूर्ण बना दिया और उसके ह्रदय में प्रेम की ज्वाला भर दी इससे उसने अपना ही बेच दिया। उसे इस बात की तनिक भी परवाह नहीं की कि वह अपना ह्रदय किसे समर्पित कर रही है। उसे उस समय अच्छे-बुरे की कोई पहचान तक नही की थी। अपने प्रिय पात्र के प्रति बिना सोच-विचार के पूर्ण समर्पित कर दिया था। किन्तु जब उसने पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया है और उसके ह्रदय का रस घट रिक्त होने लगा है, उसके ह्रदय पर कुठाराघात होने लगा हे। (क्योंकि उसे सिहरन से विरक्त होना पड़ रहा था) उसे विगत समय की मधुर स्म ति वेदना दे री है। उसका ह्रदय पीड़ा से भरा हुआ है। वेदना इतनी अधिक है कि उसके ह्रदय की कोमलता भी नष्ट हो रही है। ह्रदय शुष्क हो चला है, नेत्रों से आसुओ की धारा फूट निकली है और आहें स्वतः निकल पड़ी है। प्रिय की स्म ति अब उसे सता रही है तथा अश्रुओं का मार्ग पर छिड़काव हो रहा है। अब प्रियतम इस मार्ग पर सोच-विचार से चलना पड़ेगा चाहे वक्त ज्यादा लग जायें । वह अपनी मनोकामनाएँ सिद्ध करने में लगी हैं उसके जीवन के समस्त अरमान पूर्ण हो जायें तथा उसकी आकांक्षाओं की तनिक अवलम्बन मिल जाय। यदि किसी कारणवश प्रिय न आ सकेगा, तो वह उसके समस्त रूप-सौदर्य एवं आकर्षण को नेत्रों के अश्रुओं के माध्यम से बहा देने को तत्पर रहेगी। जिससे वह अपने प्रियतम की पहचान न कर पाये।

**विशेष-**

1. नाटककार ने प्रेम के राग को अत्यन्त सुन्दर ढंग से चित्रित किया है।
2. भावों एवं विचारों की सुन्दर अभिव्यक्ति देखने में आई है।
3. प्रेम के साथ-साथ आत्म-निष्ठा का आकलन मार्मिक रूप से उभरा है।
4. गीत छायावादी शैली पर आधारित रहा है।
5. सूक्ष्मता, कल्पना तथा वैयक्तिकता के दर्शन अवलोकनीय हैं।

8 **बिखरी किरन अलका व्याकुल हो विरस वदन पर चिन्ता लेख,**
**छायापथ में राह देखती गिनती प्रणत-अवधि की रेख।**
**प्रियतम के आगमन-पंथ में उड़ न रही है कौमल धूल,**
**कादम्बिनी उठी यह ढँकने वाली दूर जलधि के कूल।**
**समय-विह्ग के कृष्णाक्ष में रजत चित्र-सी अंकित कौन-**
**तुम हो सुन्दरि तरल तारिके! बोलो कुछ, बैठो मत मौन!**
**मन्दाकिनी समीप भरी फिर प्यासी आँखे क्यों नादान।**
**रूप-निशा की उषा में फिर कौन सुनेगा तेरा गान।**

(**प ष्ठ** 106)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अकं के सप्तम द श्य से उद्धत की गई हैं। अलका पर्वतेश्वर के प्रासाद में अपने जीवन के संघर्षमय श्रण बिता रही है। उसके हृदय में प्रेम की ललक उठ रही है उन्हीं का उल्लेख नाटककार ने यहां पर किया है।

**व्याख्या**

आकाश मण्डल में जिस प्रकार तारों के प्रकाश की किरणें फैल रही हैं ठीक उसी प्रकार उसके बालों की लटे उसके कुम्हलाए मुखमण्डल पर बिखर रहीं हैं। वह आकाश गंगा देखते हुए अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। छायापथ में उड़ने वाले परमाणु उसके प्रियतम के आगमन की आशा को जीवित करते हैं किंतु आकाश में अचानक गहरे काले बादल छाकर उसकी आशा को निराशा में बदल देते हैं। उसका यौवन धीरे-धीरे खत्म होता जा रहा हैं वह क्षीण होने पर है। वह जीवन के इस कृष्णपक्ष में समय रूपी पक्षी को अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। उसकी स्थिति इस समय चंचल तारिका के समान है जो सुन्दर होते हुए भी मौन है।

नाटककार को अलका का यह मौन खलता है वह उसे बोलने के लिए प्रेरित करते हैं कि अपने प्रिय के निकट रहते हुए तू जाकर उसके दर्शन से अपने नेत्रों को त प्त कर सकती हो। नाटककार का आशय यह है कि वह अपने सौंदर्य को रात्री के समय आनन्दमय कर ले अन्यथा यह प्रातः काल के आगमन के साथ ही उसका यह सुन्दर यौवन फीका पड़ जाएगा। कहने का भाव यह है कि यौवन की समाप्ति पर उसकी महत्ता कम हो जाएगी।

**विशेष-**

1. नाटककार ने यहा पर संघर्षमय जीवन का चित्रण किया है।
2. रूपक अंलकार का सुन्दर चित्रण देखने में आया है, यथा 'किरण-अलक' 'चिन्ता-लेख' 'रूप-निशा' आदि।
3. भावों को गीत के अनुरूप अभिव्यक्ति मिली है।
4. वैयक्तिकता के दर्शन आवलोकनीय है।

**आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा!**
**मधु पीकर पागल हुआ, करता प्रेम-प्रलाप,**
**शिथिल हुआ जाता हृदय जाता हृदय, जैसे अपने आप!**
**लाज के बन्धन खोल रहा!**
**बिछल रही चाँदनी, छवि-मतवाली रात,**
**कहती कम्पित अधर से, बहकाने की बात।**
**कौन मधु-मदिरा घोल रहा?**

(**प ष्ठ** 126)

**संदर्भ प्रसंग-** प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के त तीय अंक के पंचम द श्य से ली गई हैं। इनमें सुवासिनी नन्द सभा में अपना गीत प्रस्तुत कर रही हैं -

**व्याख्या-** आज उसके जीवन में यौवन अंकुरित हुआ है। उसके हृदय के तार प्रेम एवं यौवन की मादकता से झंकृत हो रहे हैं। उसके भाव कोयल की वाणी के समान हो चुके हैं। आज उसे ऐसा अनुभव होने लगा है कि मानों उसमें मदिरा-पान के कारण उन्मत्तता छा रही है। आनन्द एवं सुख की अनुभूति के कारण मानो उसका शरीर शिथल हो रहा है, वह अपनी भावनाओं को स्वयं अभिव्यक्त कर रहा है। यौवनकाल ने उसे अधिक मादक बना दिया है। और इसी कारण उसने लज्जा का आवरण उतार कर फैंक दिया है। प्राकृतिक उपादानों का वर्णन करत हुए वह कहती हैं कि चारों ओर चाँदनी फैल रही है जो वातावरण को और भी मतवाला बना रहीं है। यह सुन्दरी रूपी निशा झिलमिलाते नक्षत्रों रूपी अधरों के माध्यम से उसे इस बात का संकेत दे रही है कि यौवन की रात्री बहुत कम रह चुकी है तथा इसका जितना चाहे अभी आनन्द लिया जा सकता है। वह कहती है कि मुझे ज्ञात नहीं है कि मेरे मादक यौवन को कौन उत्तेजित करने के लिए मदिरा का मिश्रण घोल रहा है और इसे उत्तेजना दे रहा है।

**विशेष-**

1. संक्षिप्तता एवं माधुर्य को इस गीत में देखा जा सकता है।
2. 'मधुमदिरा' 'कहती-कम्पित' अलंकार इस गीत में प्रयुक्त किये गये हैं।
3. प्राकृतिक उपादानों का चित्रण नाटककार ने पूर्ण सफलता के साथ प्रस्तुत किया है, जो कि गीत के अनुरूप हुआ है।
4. उत्तेजित भाव का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

**10 सुधा सीकर से नहला दो!**
**लहरें डूब रही हों रस में,**
**रह न जाएँ वे अपने वश में,**
**रूप राशि इस कथित ह्रदय सागर को बहला दो।**
**अन्धकार उजला हो जाए,**
**हँसी हंस माला मँडराये,**
**मधुर का आगमन कलरव के मिस कहला दो।**
**करूणा के आंचल पर निखरे,**
**घायल आँसू हैं जो बिखरे, ये मोती बन जायँ, म दुल कर से लो सहला दो**

प ष्ठ 145

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गीत 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के प्रथम द श्य से उद्धत किया गया है। इनमें कल्याणी पर्वतेश्वर यहाँ बन्दी होने तथा प्रियतम की स्म ति में उसके मनोभावों को अभिव्यक्त दी गई है।

**व्याख्या**

वह कहती है कि जिस प्रकार चन्द्रमा समस्त प्रकृति का अपनी अनूठी आभा से आलोकित कर देता हे। उसी प्रकार वह उसे भी अपने अम त तुल्य कणों से आप्लवित कर दे। इससे उसके समस्त कष्ट अपने आप ही मिट जायेंगे। उसके ह्रदय में उठने वाली उमंगे रस में अभिषिक्त हो जायेगी। इस ह्रदय रूपी सागर को आनन्द रस में डूबो कर वेदना को दूर भगा डालो। उसके जीवन में निराशा एवं वेदना के अन्धकार ने डेरा जमाया हुआ है। उसे अपने उज्जवल धवन रश्मियों से परिपूरित कर दे। पक्षियों के कलरव के माध्यम से बसन्त की पूर्णीम उसके ह्रदय के आनन्द एवं हर्षोल्लास का आगार बन जाए। अपनी स्निग्ध भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए वह आगे कहती है कि उसके करूणा से व्याप्त ह्रदय को वेदना अश्रुओं के रूप में नेत्रों के अन्त में एकत्र हैं। तुम उन अश्रुओं को अपने कोमल हाथों की अंगुलियों से इस प्रकार सहलाओ की वह मोती बन जाएँ अर्थात् तुम इस मायूसी को हर्षोल्लास एवं खुशी में परिवर्तित कर दो।

**विशेष** -

1. करूणा एवं दयनीय स्थिति का आकलन सुन्दर शब्दों में किया गया है।
2. हँसी हँसमाला में रूपक और मधुराका आगमन कलरवों में अलंकार है।
3. नाटककार की भाषा शैली अत्यन्त सरल एवं सरस तथा भावोनुकुल रही है।

**11 कैसी कड़ी रूप की ज्वाला?**
**पड़ता है पतंग सा इसमें मन होकर मतवाला,**
**सान्धय गगन सी रागमयी यह बड़ी तीव्र है हाला,**
**लासैह श्रंखला से न कड़ी क्या यह फूलों की माला?**

.(प ष्ठ 148)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत, पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के द्वितीय अंक से ली गई हैं। सुवासिनी एवं राक्षस का

वार्तालाप तथा राक्षस का पुनः क्रियाशील होना दिखाया गया है।

**व्याख्या** - रूप सौन्दर्य का प्रखर अत्यन्त तीव्र होता है। इसकी प्रचण्डता से हृदय बुरी तरह घायल हो जाता है। रूप का प्रभाव सीधे हृदय को प्रभावित करता है। यह हृदय में शूल की भांति चुभता है। इसमे जादू की सी शक्ति होती है। मानव का मन रूप सौन्दर्य पर उसी प्रकार से आसक्त होता है, जिस प्रकार पतंग दीपक की लौ पर अपने प्राण न्यौछावर कर देता है। रूप सौन्दर्य अत्यन्त मादक होता है। इसकी मादकता सांध्यकालीन लालिमा के समान होती है। यह सौन्दर्य देखने में तो अत्यन्त कोमल, पुष्पों के समान सुगन्धित एक पुष्पमाला के समान मधुर लगता है। परन्तु वास्तव में यह लौह से भी अधिक कठोर होता है, जो शरीर की व्यवस्था ही बिगाड़ देता है।

**विशेष** -

1. लेखक ने रूप सौन्दर्य का महत्त्व अत्यन्ते मनमोहक रूप में प्रेषित किया है।
2. पतंग सा एवं 'सान्धय-गगन-सी' में उपमा की छंटा विकीर्ण हो रही है।
3. 'रागमयी' में श्लेष का आगमन हुआ है।

**12 मधुप कब एक कली का है।**
**पाया जिसमें प्रेम रस, सौरभ और सुहाग**
**बेसुध हो उस कली से, मिलता भर अनुराग,**
**बिहारी कु जगली का है।**
**कुसुम धुल से घूसरित, चलता है उस राह,**
**कँाटों में उलझा तदपि, रही लगन की चाह,**
**बावला रंगरली का है।**
**हो मल्लिका, सरोजनी, या यूथी का पु ज,**
**अलि को केवल चाहिए, सुखमय क्रीडा-कु जः**
**मधुप कब एक कली का है!**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गीत 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के चतुर्थ द श्य से उद्धत किया गया है। मालविका ने चन्द्रगुप्त की आसक्ति की प्रव ति को मधुप के माध्यम से अभिव्यक्त किया है-

**व्याख्या**

भ्रमर कभी भी पुष्प पर आश्रित रहने वाला नहीं है। वह जिस कली में रस देखता है उसी की ओर आकृष्ट हो जाता है। वह पुष्प के यौवन, सुगन्ध आदि को देखकर उसी में उलझ जाता है और मदमस्त होकर उसका रस चूसता है और पूर्ण आनन्द लेकर वह उस पर से उड़ जाता है। इस प्रकार वह एकानिष्ठ प्रेमालप नहीं करता वह तो कु जों में विहार करने वाला होता है।स्वार्थ प्रधान होता है। यदि भ्रमर को कोई पुष्प धूल धूसरित दिखाई पड़ता है और उससे उसकी लगन लग गई है तो वह फिर धूल, काँटो आदि की चिन्ता नहीं करता। वह काँटों से उलझ कर भी उससे लिपट जाता है। वास्तविक रूप से उसे पागल प्रेमी ही कहा जायेगा। जो प्रेम के मार्ग में किसी विघ्न बाधा की चिन्ता नहीं करता और रंगरलियाँ मनाने में मस्त रहता है। भ्रमर को तो इस संचयन मात्र से लगन है। उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि पुष्प मल्लिका है। भ्रमर तो सदैव आनन्द क्रीडा को ही पसन्द करता है। वह कभी भी एक पुष्प पर आश्रित नहीं रहता है। तथापि पुष्प बदलता रहता है।

**विशेष** -

1. सम्पूर्ण गीत में अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।
2. नाटककार की भाषा शैली प्रभावशाली एवं युक्तियुक्त है।
3. भ्रमर के माध्यम से मानव मन के मनोभावों को सुन्दर अभिव्यक्ति दी गई है।

**13 ओ मेरी जीवन की स्म ति! ओ अन्तर के आतुर अनुराग।**
**बैठ गुलाबी विजन ऊषा में गाते कौन मनोहर राग?**

**चेतन सागर उर्मिल होता यह कैसी कम्पनमय तान,**
**यो अधीरता से न मीड़ लो अभी हुए हैं पुलकित प्राण।**
**कैसा है यह प्रेम, तुम्हारा युगल मूर्ति की बलिहारी।**
**यह उन्मत विलास बता दो कुचलेगा किसकी क्यारी?**
**इस अनन्त निधि के है नाविक, हे मेरे अनंग अनुराग।**
**पाल सुनीला बन, तनती है, स्म ति यों उस अतीत में जाग।**
**कहाँ ले चले कोलाहल से मुखरित तट को छोड़ सुदूर,**
**आह! तुम्हारे निर्दय डाँडों में होती है लहरे चूर।**
**देख नहीं सकते तुम दोनो चकित निराशा है भीमा,**
**बहको मत क्या न है बता दो क्षितिज तुम्हारी नव सीमा?**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जय शंकर प्रसाद' के चतुर्थ अंक के चतुर्थ द श्य से संकलित की गई है। मालविका किसी के प्रति प्रेमाभिभूत है। वह अपने संवेदनशील मन को सम्बोधित करती हुई कह रही है-

**व्याख्या**

वह कह रही है कि न जाने उसके हृदय में अवस्थित स्म तियाँ उसे क्यों आहादित कर रही है। उसके हृदय में अनेक प्रकार के स्वर्णिम स्वपन जन्म ले रहे हैं। वह सचेत है फिर भी न जाने क्यों वह एक विशेष प्रकार की आशंका एवं कम्पन से पुलकित हो उठती है। उसे एक आशंका भी लगी हुई है कि अभी जो मन पुलकित हुआ है वह व्याकुलता के कारण समाप्त न हो जाए। वह अपने प्रेमी को सम्बोधित करती हुई कह रही है कि उसका प्रेमी चन्द्रगुप्त भी एक विचित्र प्रकार का प्राणी है। उसका प्रेम तीव्रता एवं आतुरता प्रदान करने वाला है। जिसके कारण इन युगल मुर्तियों ने उसके हृदय में स्थान बना लिया है। तुम मेरे भावना रूपी अनुराग के नाविक हो नाविक को हृदय से अतीत की मादक स्म तियों में चले जाने का अवसर प्रदान कर रहे हो। अतीत की मादक स्म तियाँ मुझे व्याकुल कर रही हैं। जिससे वह स्म तियों के पंखो पर चढ़कर स्वार्थ, घ णा, प्रवंचना आदि से भरे विश्व से दूर जाने का प्रयास करती हैं। साथ ही उसकी पूर्वानुभूति एवं स्म तियाँ उसे द्वन्द्व में खींच लाती हैं। उसे अनेक प्रकार के विचार भावनाओं के सागर में डुबाने लगते हैं। भावनाओं के सागर के शान्त हो जाने पर वह अपने आतुर अनुराग को सम्बोधित करती हुई कहती है कि वे उसके निराशाजन्य एवं कुण्ठाग्रस्त जीवन को नहीं देखना चाहते तो उसे एक नवजीवन की रूपरेखा तो स्पष्ट कर दें।

**विशेष** -

1. स्म तियों का सागर नाटककार की लेखनी से हिलोरे खाने लगता है जो कि मर्मस्पर्शी है।
2. मानसिक अन्तर्दन्द्व सुन्दर रूप से उद्घाटित हुआ है।
3. भाषा शैली भावानुकूल है।

14 **हिमाद्री तुंग श ंग से**
**प्रबुद्ध शुद्ध भारती**
**स्वयंप्रभा समुज्ज्वला**
**स्वतन्त्रता पुकारती**
**अमर्त्य वीरपुत्र हो, द ढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,**
**प्रशस्त पुण्य पंथ है- बढ़े चलो, बढ़े चलो।।**
**असंख्य कीर्ति रश्मियाँ,**
**विकीर्ण दिव्य दाह सी।**
**सपूत मात भूमि के**
**रूको न शूर साहसी।**
**अराति सैन्य सिन्धु में। सुवाडवाग्नि से जलो, प्रवीर हो जयी बनो बढ़े चलो बढ़े चलो। (प ष्ठ 161-62)**

**संदर्भ प्रसंग** - प्रयुक्त पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के षष्ठम द श्य से उद्धत कि गई है। भारतीयता की पुकार एवं नवयुग की चेतना गीत का प्राण है।

**व्याख्या** - नाटककार ने भारतीयों की सुप्त चेतना को जाग त करते हुए कहा है कि हिमालय के उन्नत शिखर से प्रबुद्ध एवं शुद्ध सरस्वती, जो अपने प्रकाश से दीप्त एवं सदैव स्वतन्त्र रहने वाली है। उन्हें पुकार-पुकार कर यह संदेश दे रही है कि वे देवताओं की वीर सन्तान है, म त्यु से भयभीत होना उनके लिए अशोभनीय है। निरन्तर संघर्ष करते-करते अपने प्राणों का विसर्जन कर देना ही उनका कर्तव्य है। यदि वे द ढ़ प्रतिपन होकर चिन्तन करें तो उन्हें याद होगा कि कर्तव्यपथ कितना प्रशस्त एवं व्यापक होता है। इस मार्ग में कहीं कोई बाधा नहीं है। उनकी यश रूपी असंख्य किरणें दिव्य ज्वाला बनकर इस मार्ग को सदैव आलोकित करती चलेंगी। अतएव मात भूमि के इन सुपुत्रों को अपने कर्त्तव्य से कदापि विचलित नहीं होना चाहिए। अपनी गति एवं उर्जा में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देना चाहिए। यदि शत्रुओं की सेना रूपी सागर उन्हें बहाने की चेष्टा करे तो भी उन्हें भयभीत नहीं होना चाहिए। श्रेष्ठ वीर सदैव कर्तव्य पथ पर अग्रसर होकर अन्ततः विजय पताका फहराते है।

**विशेष** -

1. गीत की भाषा ओजस्विनी एवं शैली उद्बोधनात्मक है।
2. प्रस्तुत गीत पद सौष्ठव, ओजगुण एवं वीरत्व भावना की द ष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है।
3. राष्ट्रीय भावना को उत्तम ढ़ंग से मुखरित किया गया है।
4. भाषा शैली भावोनुकूल रही है।

15 **सखे! वह प्रेममयी रजनी।**
**आँखों में स्वपन बनी,**
**सखे! वह प्रेममयी रजनी।**
**कोमल द्रुमदल निष्कम्प रहे,**
**ठिठका सा चन्द्र खड़ा**
**माधव सुमनों में गूँथ रहा**
**तारों की किरन अनी।**
**सखे वह प्रेममयी रजनी।**
**नयनों में मंदिर विलास लिये,**
**उज्जवल आलोक खिला।**
**हँसती सी सुरभी सुधार रही,**
**अलको की म दुल अनी।**
**सखे! वह प्रेममयी रजनी।**
**मधुर मन्दिर सा यह विश्व बना,**
**मीठी झनकार उठी।**
**केवल तुमको भी देख रही**
**स्म तियों की भीड़ घनी।**
**सखे! वह प्रेममयी रजनी।**

(प ष्ठ 174-175)

**संदर्भ प्रसंग** - प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के नवम् द श्य से उद्धत की गई हैं। सुवासिनी कार्नेलिया के साथ हैं। वह उसके मन में चन्द्रगुप्त के प्रति अनुराग जाग त करने के लिए अभिनय करती हैं। उसी के उद्वेलित यहाँ पर मुखरित हुए हैं।

**व्याख्या** - सुवासिनी कार्नेलिया के प्रति प्रेममयी रजनी का रहस्य उद्घाटित करते हुए कहती हैं कि हे सखी, यह रात्रि अत्यन्त मादक हैं। यह मन में अनेक प्रेम एवं सौन्दर्य के भाव जाग त करने वाली हैं। यह रजनी मानव के नेत्रों में अनेक प्रकार के स्वपनों

का संचरण करने वाली हैं। यह हमारी सुसुप्त भावों को झंक त करके हमारे अतीत के भावों को साकार रूप प्रदान करने का प्रयास करती हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों रात्रि का सौन्दर्य नेत्रों में स्वपन बनकर प्रवेश कर गया है। रात्रि के प्रेममयी होने से प्रेम के प्रभाव प्रकृति के अनेक उदाहरण पर दिखाई पड़ते है।। व क्षों पर कोमल किसलय कम्पन विहीन हैं। चन्द्रमा की मानों ठिठक कर खड़ा हो, बसन्त भी मानों पुष्पों की माला गुँथ रही हो, वह पुष्पों में मानों तारों की प्रकाश किरणों के ध ाागे पिरो रहा है। चन्द्रमा में विशेष आभा है। उसके नेत्रों के मादक बनाने की शक्ति न जाने कहाँ से आ गई है। चारों ओर उज्जवल प्रकाश फैला है सौरभ से वातावरण सुगन्धित है ऐसा प्रतीत होता है कि चारों ओर साज-श्रंगार चल रहा है। इसीलिए यह रात्री प्रेममयी है। स ष्टि बसन्त ऋतु का रूप धारण कर गई सी लगती है। इस मादक रजनी में तुम्हारी प्रेम की मादक स्म ति हो उठी है। स्म तियों का ऐसा सिलसिला चला है कि अब ह्रदय तुम्हारे दर्शन के भूखे हैं। यह रजनी अत्यधिक प्रेममयी होकर उदित हुई है।

**विशेष** -

1. रात्रि के उद्दीपनकारी रूप की चर्चा की गई है।
2. इस गीत में अनेक विशेषताओं का आगमन हुआ है, संगीत माधुर्य गुण आदि।
3. नाटककार की भाषा शैली प्रभावशाली एवं युक्तियुक्त रही है।
4. प्रस्तुत गीत में पद साष्ठव भावात्मक की द ष्टि अत्यन्त उत्कृष्ट है।

# खण्ड ख: आलोचना

## 1-'चन्द्रगुप्त' नाटक की कथा योजना

नाटककार प्रसाद ने 325 ई॰ पूर्व के भारत की राजनीति को आधार बनाकर कथानक खड़ा किया है। इस नाटक की कथा वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है।

यूनान का सम्राट सिंकदर भारत पर आक्रमण करता है। भारत की उत्तरी सीमा पर पहला राज्य गांधार का होता है। गांधार का राजकुमार आम्भीक धन के लोभ से सिकंदर के साथ मिल जाता है। नाटके में इस घटना की सूचना सिंहरण, चाणक्य और आम्भीक के वार्तालाप से मिलती है।

सिंहरण मालव राज्य का महाबलीाधिकृत होता है। उसने चन्द्रगुप्त के साथ ही तक्षशीला के गुरूकुल के स्नातक की उपाधी प्राप्त की होती है। चाणक्य उस गुरूकुल का आचार्य होता है। चाणक्य अपने गुरूकुल के स्नातकों को लेकर मगध के राजा के पास जाता है। वहाँ बौद्ध धर्म समर्थक राजा नंद के साथ विवाद बढ़ जाने के कारण चाणक्य को भरी सभा में अपमानित होना पड़ता है। चन्द्रगुप्त को भी वहाँ सं भागना पड़ता है।

चाणक्य को देश की चिंता होती है। वह एक ओर नंद वंश का नाश करने की प्रतिज्ञा किये होता है और दूसरी तरफ उसका लक्ष्य होता है आर्यावर्त की रक्षा। नंद की कैद में उसे मगध का आमात्य फुसलाने के लिए आता है। लेकिन चाणक्य उसे मुँह तोड़ ज्वाब देता है कि वह मगध के लिए दूत का कार्य नहीं कर सकता। चन्द्रगुप्त चाणक्य की मगध की कैद से छुड़ता है। बाहर आकर चाणक्य देश की शक्ति संगठित करने के कार्य में लग जाता है।

उधर पर्वतेश्वर को सिकंदर के आक्रमण का सामना करना होता है। पर्वतेश्वर ने मगध के राजा को शुद्र कहकर अपमानित किया था।इसलिए मगध का राजा नंद उसकी सहायता नहीं करता। चाणक्य जानता है कि अकेला पर्वतेश्वर सिंकदर का सामना नहीं कर सकता। इसलिए वह पर्वतेश्वर के पास जाता है कि वह चन्द्रगुप्त के नेत त्व में मालव और मगध की सेना को साथ लेकर सिकंदर के विरूद्ध लड़े। लेकिन पर्वतेश्वर उसकी बात नहीं मानता और उसे अपमानित करके अपने राज्य से निकाल देता है। उधर सिंहरण भी विदेशी आक्रमण की ओर से सचेत रहता है। मगध का राजा नंद विलासिता में डूबा रहता है। मगध का आमत्य राक्षस अपनी प्रेयसी के आँचल को ही क्षितिज मानकर असके तले सोया रहना चाहता है। दाण्डयानपन के तपोवन में अलका, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, सिकंदर, सिल्यूकस आदि का एक साथ मेल होता है। सिल्यूकस ने मुर्छित चन्द्रगुप्त को सिंह से बचाया होता है। तपोवन में दाण्डयापन सिकंदर के सामने चन्द्रगुप्त के सम्राट होने की भविष्यवाणी करता है।

चन्द्रगुप्त सिकंदर के निमन्त्रण पर कुछ समय के लिए यवन सेना के शिविर में रहता है। सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया उससे प्रभावित होती है। सिकंदर पर व्यंग्यात्मक चौट करने के कारण चन्द्रगुपत को वहाँ से भी भागना पड़ता हे। उधर चाणक्य की सलाह से सिंहरण चन्द्रगुप्त और नटों का रूप धारण करके पर्वतेश्वर की सेना के शिविर में जाते हैं। मगध की राजकुमारी कल्याणी भी पुरूष वेश में पर्वतेश्वर का सिकंदर के साथ युद्ध होता है। प्रकृति उसका साथ नहीं देती। सिंहरण उसकी वक्त पर सहायता करता है। फिर भी पर्वतेश्वर की पराजय होती है। सिकंदर उसकी वीरता से प्रभावित होकर उसके साथ मैत्री कर लेता है। सिंहरण और अलका को पर्वतेश्वर के बन्दीग ह में स्थान मिलता है।

सिकंदर की नीयत मगध पर आक्रमण करने की भी होती है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त और सिंहरण उसे रोकने की योजना बनाते हैं। मालव गणराज्य के सैनिक चन्द्रगुप्त को अपना सेनापति स्वीकार कर लेते हैं। अलका पर्वतेश्वर को लोभ देती है कि वह उसके साथ विवाह कर लेगी और बदले में वह सिंहरण को मुक्त करा लेती है। अलका पर्वतेश्वर को बाध्य करती है कि वह सिकंदर के रण निमंत्रण पर न जाये।

इसी बीच मालविका व चन्द्रगुप्त की बीच प्रणय पनपता है। सिकंदर मगध पर आक्रमण करने की योजना बदल देता है। भारत से लौटते समय उसे मालव गणराज्य से लड़ना पड़ता है। चन्द्रगुप्त सिंहरण आदि सामूहिक रूप से सिकंदर का मुकाबला करते हैं। युद्ध में सिकंदर घायल होता है। सिंहरण सिकंदर को प्राणशिक्षा देता है और चन्द्रगुप्त कृतज्ञतावश सिल्यूकस को छोड़ता है। सिकंदर इन सबसे मैत्री करके लौट जाता है।

इस बीच चाणक्य राक्षस को अपनी चाल में फँसा लेता है। इसके परिणामस्वरूप मगध का राजा नंद राक्षस के विरूद्ध हो जाता है। राक्षस के मगध पहुँचाने ही उसको सुहासिनी के साथ ही बंदी बना लिया जाता है। बाद में शकटकार, सेनापति मौर्य, राक्षस, सुवासिनी आदि सभी नंद की कैद से भाग निकलते हैं। चन्द्रगुप्त मगध के सैनिकों को पराजित करता हुआ नंद की राजसभा में आता है। प्रजा के सामने उसके अत्याचारों की कहानी दोहराई जाती है। शकटकार नंद की हत्या कर देता है। चन्द्रगुप्त मगध का सम्राट बनता है। सिंहरण और अलका का विवाह हो जाता है। पर्वतेश्वर इसे अपमान समझकर मरना चाहता हे। किन्तु चाणक्य उसे बचा लेता है। चाणक्य अपनी कूट नीति से पर्वतेश्वर को चन्द्रगुप्त का अनुगत बना देता है।

उधर नन्द की हत्या के बाद उसकी पुत्री कल्याणी अस्थिर हो जाती है। पर्वतेश्वर उसे बलपूर्वक अपनी बनाना चाहता है। किंतु कल्याणी उसे मार देती है। और स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। दूसरी तरफ मालविका भी चन्द्रगुप्त का बचाने के लिए अपने प्राण दे देती है। चन्द्रगुप्त का अब एक विरोधी रहता है। आम्भीक। वह भी चाणक्य, अलका और चन्द्रगुप्त के प्रभाव से ही सही मार्ग पर आ जाता है।

चाणक्य से बदला लेकने के लिए राक्षस सिल्यूकस से मिल जाता है। सुवासिनी कैदी के रूप में कार्नेलिया के पास पहूँचा दी जाती है। सिल्यूकस फिर से भारत पर आक्रमण करता है। दोनों में युद्ध होता है। कार्नेलिया को चन्द्रगुप्त के साथ उसके पिता का युद्ध अच्छा नहीं लगता। सही अवसर पर सिंहरण आकर चन्द्रगुप्त की सहायता करता है। सिल्यूकस पराजित होता है। चाणक्य सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करवा देता हे। और स्वयं सन्यास ग हण कर लेता है।

**कथानक की समीक्षा** - प्रस्तुत नाटक में मुख्य कथा है, चन्द्रगुप्त व चाणक्य द्वारा मिलकर नंद वंश का नाश और सिकंदर के आक्रमण से भारत की रक्षा। इसमें सिल्यूकस की पराजय सिंहरण और अलका, राक्षस, सुवासिनी, आम्भीक, अलका कल्याणी कार्नेलिया व मालविका की कथाये प्रासंगिक कथाये मुख्य कथा की सहायक बनकर आई हैं। सिंहरण और अलका चन्द्रगुप्त के कार्य को ही सरल बनाते हैं। कल्याणी और मालविका चन्द्रगुप्त के लिए मर जाती हैं। राक्षस और सुवासिनी को भी चाणक्य मोहरों के रूप में चलता है। नंद की हत्या शकटयार द्वारा कर दी जाती है। इस प्रकार नाटक के अंत तक भी प्रासंगिक कथाओं का लोप हो जाता है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया के परिणाम के साथ कथा का अंत होता है। अतः कथा विभाजन की द ष्टि से कथानक इतना उलझ जाता है कि उसे सम्भालने के लिए लेखक ने जुदाई चमत्कार सा किया है, जैसे - शटकार का भूमि तोड़कर बाहर आना। कथा सुत्र काफी बिखरे हुए से लगते हैं बीच-बीच में आपस जुड़ते हुए अन्त तक एकमय हो जाते हैं। यही कथा संगठन की सफलता है।

कथा विकास की द ष्टि से कथानक की पाँच अवस्थाएं होती हैं। आरम्भ, उत्कर्ष, प्रात्याशा, नियताप्ति और फलागम। प्रस्तुत नाटक में इन पांचों अवस्थाओं का सफल निर्वाह हुआ है। चूँकि प्रसाद पर पाश्चात्य नाटयकला का प्रभाव भी था इसलिए उनके नाटकों में संघर्ष को बहुत विस्तार मिला है। संघर्ष के कारण ही कथानक में क्रियाशीलता बनी रहती है। शिथिलता नहीं आती।

नाटक का आरम्भ जिज्ञासा से भरा हुआ है। सिंहरण की बातों से अनेक प्रश्न मन में उठते हैं- आम्भीक यवनों से क्यों मिला है? यवन राजा कौन है? वह भारत पर आक्रमण क्यों कर रहा है? क्या आर्यवर्त की रक्षा हो सकेगी? आदि। इस द ष्टि से नाटक का आरम्भ एकदम सफल माना जाएगा। कथानक के मध्य तक घटनाएं बढ़ जाती हैं। सिकंदर दांडयान के आश्रम में विजय का आशीर्वाद लेने आता है और यही उसे दाण्डयान की भविष्यवाणी सुननी पड़ती है कि भारत का भावी सम्राट चन्द्रगुप्त होगा। यह उत्कर्ष बहुत ही नाटकीय है। चाणक्य की चालें यहाँ तक प्रत्यक्ष होने लगती हैं।

पर्वतेश्वर और सिकंदर के बीच युद्ध होता है और इस युद्ध में पर्वतेश्वर की पराजय प्रात्याशा की स्थिति मानी जा सकती है इसके बाद सिकंदर मगध पर आक्रमण करने का विचार छोड़कर लौट जाता है। चाणक्य अपनी चालाकी से पर्वतेश्वर को भी सिकंदर के विरूद्ध कर लेता हे। मालवो के साथ होने वाले युद्ध में सिकंदर बुरी तरह घायल होता है और चन्द्रगुप्त के साथ मैत्री करके जलमार्ग से लौट जाता है। यह स्थिति नियताप्ति की कही जा सकती है। उधर नंद के शासन का भी अन्त होता है। शकटकार द्वारा नंद की हत्या कर दी जाती है। पर्वतेश्वर का भी अन्त हो जाता है। मगध की एकमात्र राजकुमारी कल्याणी आत्महत्या कर लेती है। एक तरह से यह निश्चित सा हो जाता है कि चन्द्रगुप्त को ही फल की प्राप्ति होगी लेकिन तभी कथानक फिर मोड़ लेता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त के कटु अहंकार से रूठकर चला जाता है। सिंहरण भी चन्द्रगुप्त का साथ छोड़ देता है।

उसी समय सिल्यूकस भारत पर आक्रमण करता है। चन्द्रगुप्त की फल प्राप्ति एक बार फिर डगमगा जाती है। ऐसा लगता है कि कहीं चन्द्रगुप्त अकेला होने के कारण अंत में आकर पिट ना जाए। किंतु युद्ध के दौरान अचानक सिंहरण और चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त को सहायता मिलती है। इस सहायता पर चन्द्रगुप्त भी चौंक जाता है युद्ध के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त ही विजय होता है। सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ हो जाता है, यही फलागाम की अवस्था है।

कथानक में अंतर्द्वन्द्व, स्वागत कथन, हत्या व आत्महत्या के द श्य व संघर्ष की तीव्रता पाश्चात्य तत्त्व हैं। नियताप्ति और फलागाम के बीच कथानक में नाटकीय परिवर्तन भी पाश्चात्य नाटय कला के संघर्ष तत्त्व से प्रभावित है। इस तरह कथानक में भारतीय व पाश्चात्य तत्त्वों का समन्वय मिलता है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त नाटक की कथावस्तु सुसंगठित है। कथानक का कलेवर विस्त त होते हुए भी बिखरा नहीं है। प्रसाद ने अत्यंत कुशलता के साथ कथा सूत्रों को एक दूसरे से मिलाया है।

# 2.'चन्द्रगुप्त' नाटक में चित्रित परिस्थितियाँ

'चन्द्रगुप्त' एक ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय भारत की जैसी स्थिति थी, उसका वर्णन किया गया है। लेखन ने प्रस्तुत नाटक के माध्यम से उस युग को हमारे सामने प्रस्तुत किया है ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे प्रसाद का द ष्टिकोण भी यही रहा है कि इतिहास के अप्रकाशित तथ्यों को सामने लाया जाये। यही कारण है कि उनके सामने नाटकों में युग बोलता है, इतिहास बोलता है और अतीत की परिस्थितियां अपनी कहानी अपने आप कहती सी लगती है। वैसे भी यह माना ही जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसके लिए जरूरी है कि साहित्य में समाज की परिस्थितियों का चित्रण भी हो। फिर मनुष्य भी तो सदैव समाज के बीच ही रहता है। अतः जहां मनुष्य है वहीं उसका समाज भी होगा; भले ही वह साहित्य हो या कला, इतिहास हो या कविता।

चन्द्रगुप्त नाटक प्रसाद की प्रसिद्ध नाट्य कृतियों में गिना जाता है। इस नाटक में जिस युग का कथानक है उस युग की राजनीतिक स्थिति का व्यापक चित्रण हुआ है। लेखन ने प्रस्तुत नाटक में जिन विविध परिस्थितियों का चित्रण किया है। उन्हें हम निम्नलिखित शीर्षकों में देख सकते हैं।

(i) **राजनैतिक स्थिति**—'चन्द्रगुप्त' नाटक में मौर्ययुगीन भारत की राजनैतिक दशा का विस्त त चित्रण हुआ है।

(अ) **विदेशी आक्रमण** : उस समय उत्तरी भारत की सीमाओं पर यवन आक्रमणकारियों का आतंक था। विश्व की यात्रा पर निकले सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था। यवन आक्रमणकारी सीमावर्ती राजाओं से मिलकर इस देश को जीतना चाहते थे। सिंकदर ने गंद्यार नरेश को अपने पक्ष में मिलाकर पंजाब पर आक्रमण किया। पंजाब के राजा पौरस ने यवन सेना का डटकर मुकाबला किया लेकिन अंततः उसे पराजित होना पड़ा। पंजाब को जीत लेने के बाद सिंकदर ने मगद्य पर आक्रमण का विचार किया लेकिन मगध की लक्षाधिक सेना के विषय में सुनकर यवन आक्रमणकारी डर गये। भारत से लौटते हुये सिंकदर को मालवा गणराज्य का विरोध सहना पड़ा। उस युद्ध सिकंदर घायल हुआ। वहां से सिकंदर जल मार्ग द्वारा लौट गया। फिलिप्स को उसने भारत का क्षत्रय बनाया।

सिकंदर के बाद उसी के एक सेनापति सेल्यूकस ने एक बार फिर भारत पर आक्रमण किया। इस बार सेल्यूकस का सामना चन्द्रगुप्त ने किया था। युद्ध में सेल्यूकस पराजित हुआ। उसने चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि कर ली। इस तरह उस युग में देश की उत्तरी सीमाओं पर विदेशी आक्रमणकारियों का आतंक बना रहा। नाटक में इनका कई स्थलों पर वर्णन हुआ है।

(ब) **आन्तरिक फूट-** उस समय भारत की आंतरिक स्थिति बिखरी हुई थी। उत्तराखंड के राजा आपसी राग-द्वेष के कारण बिखरे हुये थे। गंद्यार, पंजाब व मगध के राजाओं में दुश्मनी थी। सिकंदर के भारत आक्रमण के समय गंद्यार और मगद्य के राजाओं ने पर्वतेश्वर का साथ नही दिया। नाटक के आरम्भ में ही सिंहरण कहता है "उत्तरापथ के खण्ड राज-द्वेष से जर्जर है।" चाणक्य भी संकेत करता है "क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होगे।" चाणक्य पर्वतेश्वर के पास जाकर उसे समझाता भी है कि वह मगघ की सहायता लेकर सिकंदर के आक्रमण का विरोध करे। किन्तु पर्वतेश्वर उसे स्वीकार नहीं करता। मगघ का राजा नंद पर्वतेश्वर की सहायता करना नहीं चाहता क्योंकि उसने नंद की शुद्र कहकर उसका अपमान किया था। और उसकी कन्या के साथ विवाह करने से इंकार कर दिया। ऐसे ही व्यक्तिगत कारणों से उत्तराखंड के राजा एक दूसरे से नाराज हुये बैठे थे। सिकंदर ने इसका फायदा उठाया और उसने इतिहास पन्नों पर सदैव के लिए राजा पौरस का दुर्भाग्य लिख दिया।

(स) **राजनीतिक कुचक्र-** उस समय गन्धार का राजकुमार आम्भीक लोभ और स्वार्थ में फंसकर सिकंदर की सहायता कर रहा होता है। वह सिकंदर का विरोध किये बिना उसे पंजाब की ओर बढ़ने देता है। नाटक के आरम्भ में ही सिंहरण इस और संकेत कर देता है- "आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारण की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है।" इसके अनंतर एक बार फिर सिंहरण आम्भीक पर चोट करता है। यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल स्वर्ण से पुलकित होकर आर्यावर्त की सुख-रजनी की शान्ति निद्रा में उत्तरापथ की अर्गला धीरे से खोल देने का रहस्य हैं क्योंकि राजकुमार सम्भवतः तक्षशिलाधीश वाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्घाटन करने गये थे?"

इसी भांति राक्षस आदि अपने स्वार्थ के कारण देश के भीतर ही राजनैतिक कुचक्र रचते रहते है। मगघ के कैद में

चाणक्य को प्रलोभन देकर राक्षस चाहता है कि चाणक्य तक्षशिला में मगघ के दूत का कार्य करे। बाद में वही राक्षस अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सेल्यूकस से मिल जाता है। और मगघ के नष्ट करने में उसकी सहायता करता है।

(द) **शासन के अत्याचार -** मगघ का राजा नन्द अत्यंत विलासी होता है। वह मगघ के शासन को सुरा और सुंदरी के नाम लिखकर जैसे विलासिता में डूबा रहता है। सीमा पर विदेशियों के आक्रमण की उसे कोई चिंता नहीं। वह अपनी जिंदगी की विलासिता पर कोई आक्रमण सहन नहीं करता। इसके लिए वह प्रजा पर खुलकर अत्याचार करता है। शकटार और उसके बच्चों को अंघे कुएँ में डाल देता है।, मौर्य सेनापति और उसकी पत्नी को कैद लेता है। तथा राक्षस और सुवासिनी को शादी के मंडप से उठाकर कारावास में डाल देता हैं इसी भांति चाणक्य के पिता चणक को मरवाकर वह सारे कुसुमपुर को नष्ट देता है। जनता भी उसके अत्याचारों से बहुत दुखी होती है एक ब्रह्मचारी के शब्दों में नंद के अत्याचारों का विवरण इस प्रकार है "महापझ का जारज-पुत्र नन्द केवल शस्त्रबल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के शिर पर ताण्डव न त्य कर रहा है। वह सिद्धांत विहीन, न शंस, कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिक का अनुयायी बनकर दोनों में भेद नीति चलाकर बल संचय करता रहता है।

(ii) **धार्मिक स्थिति -** उस समय वैदिक धर्म का पतन हो रहा था। बौद धर्म को राज्य की और से प्रोत्साहन मिल रहा था। चाणक्य ब्राह्मण होने के कारण ही नंद के दरबार में अपमानित होता हैं मगघ का राजा और उसके मंत्री सभी बौद्ध धर्म के अनुयायी होते है। ब्राह्मण लोग भी बौद्धों पर जब तक कटाक्ष करते रहते हैं और बौद्ध धर्म के मानने वाले बाह्मण को नष्ट कर देना चाहते है। राक्षस स्पष्ट कहता है। "मैं स्वयं ह्रदय से बौद्ध मत का समर्थक हूँ। " राष्ट्र का शुभ चिंतन केवल ब्राह्मण ही कर सकते है। एक जीव की हत्या से डरने वाले तपस्वी बौद्ध, सिर पर मड़राने वाली विपत्तियों से रक्त समुद्र की आंधियों से, आर्यावर्त की रक्षा करने में असमर्थ प्रमाणित होगे।" चाणक्य एक अन्य स्थल पर यह भी कहता है कि यवन आक्रमणकारी ब्राह्मण और बौद्ध का भेद नहीं देखेंगे, धार्मिक भेद के आधार पर एक दूसरे की सहायता न करके शत्रु को मौका देना सबसे बड़ी भूल हैं किन्तु उसकी बात कोई नहीं मानता। ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का भेद, सिकंदर के विरूद्ध पर्वतेश्वर की पराजय के रूप में, भारत को कलंकित कर देता है।

(iii) **समाजिक स्थिति -** उस समय समाज में शायद आर्थिक कठिनाइयों नहीं थी। कला और सर्गीत को बढ़ावा मिला हुआ था। राजा के साथ नगर की प्रजा भी कभी-कभी आमोद-प्रमोद में सम्मिलित होती थी। न त्य और संगीत में लोगों की रूचि थी। राक्षस, सुवासिनी, मालिका आदि पात्र संगीत और न त्य में पारंगत होते है तो चन्द्रगुप्त, कार्नेलिया आदि की रूचि संगीत व न त्य की ओर अधिक झुकी हुई होती है। कला का उत्कर्ष समाज की आर्थिक सम द्धि का सूचक होता है। नगरवधुओं की प्रथा भी समाज में प्रचलित थी। नटों का खेल भी होता था, चाणक्य की प्रेरणा से चन्द्रगुप्त व अलका नट-नटी का रूप घरकर पर्वतेश्वर के शिविर में जाते है। समाज में सन्यासियों का आदर था। शिक्षा को राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिला हुआ था। मगघ राज्य की ओर से युवकों को गुरूकुल में शिक्षा प्राप्ति के लिए भेजा जाता था, एक नियत राशि उन खर्च की जाती थी। तभी तो नंद कहता है "किन्तु राजकोष का रूपया व्यर्थ ही स्नातको को भेजने में लगता है या इसका सदुपयोग होता है, इसका निर्णय कैसे हो?"

इतना होने के उपरान्त भी प्रजा पर राज्य का आंतक छाया रहता था। प्रजा अपने राजा के गलत कार्यो की भी आलोचना नहीं कर सकती थी; उसके लिए भी प्रजा को दण्ड भोगना पड़ता था। आश्रम व्यवस्था का प्रचलन था। चाणक्य चन्द्रगुप्त के पिता को वानप्रस्थ आश्रम में दीक्षा लेने की बात कहता है। चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाने के बाद वह स्वयं भी तपस्वी हो जाता है।

पतिव्रता की धारणा उस समय भी स्त्रियों के मन में बैठी हुई थी। सुवासिनी स्वयं का राक्षस की घरोहर समझाते हुये नंद की विलासिता का उपकरण बनने से मना कर देती हैं प्रस्तुत नाटक के सभी स्त्री पात्रों में यह एक निष्ठा देखी जाती है। प्रेम विवाह का भी प्रचलन था- सिंहरण अलका और चन्द्रगुप्त कार्नेलिया और राक्षस सुवासिनी प्रेम विवाह ही करते है।

वर्ग व्यवस्था और जाति व्यवस्था विद्यमान थी। ब्राह्मण केवल विद्या-दान ही करते थे तथा देश की रक्षा का भार क्षात्रियों पर था शूद्रों को हेय द ष्टि से देखा जाता था। ऊंचे वर्ग में विलासिता व्याप्त थी।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में प्रसाद ने उस युग के सभी पक्षों को उभारने का प्रयास किया है। एक नाटक रचना में युग-चित्रण जिस सीमा तक होना चाहिये, प्रसाद ने उसका निर्वाह किया हैं हर घटना के साथ परिस्थितियां जुड़ी हुई है; कोई भी घटना शून्य से टपकी हुई नहीं लगती। घटनाओं और परिस्थितियों में विरोधाभास कही भी नहीं है।

**चद्रगुप्त नाटक की अभिनेयता-** प्रसाद के नाटकों की अभिनेयता बहुत अधिक विवादास्पद है। आलोचकों के अनुसार प्रसाद के नाटकों का रगमंच पर अभिनेय नहीं किया जा सकता। प्रसाद के नाटकों का अभिनय करने के लिए जैसे रंगमंच होना जरूरी है वे हमारे देश में नहीं है। प्रसाद ने रंगमंच को ध्यान में रखकर नाटक नहीं लिखे हैं। प्रसाद के नाटक अपेक्षाकृत लम्बे हैं प्रसाद के नाटकों की भाषा क्लिष्ट होती हैं जिसे कि सामान्य दर्शक नहीं समझ सकते। ऐसे ही कई आरोप प्रसाद के नाटकों पर लगाये जाते है।

**यहाँ एक बात विचारणीय है-** नाटक के अनुकूल रंगमंच का निर्माण किया जाये या रंगमंच के अनुसार नाटक लिखे जाये? सामान्यतः तो नाटक पहले लिखे गये होते है और रंगमंच का निर्माण बाद में होता है। अतः रंगमंच की कमजोरी का दोष नाटककार पर नहीं लगाना चाहिए। हमारा देश सम द्ध नहीं है।, यहाँ की जनता का मानस नाटको की द ष्टि से परिपक्व नहीं हैं इसीलिए यहा उत्तम कोटि के रंगमंच भी नहीं बने है। अब यदि किसी श्रेष्ठ नाटक का अभिनय करने के लिए श्रेष्ठ रंगमंच न मिले तो उसमें नाटककार का क्या दोष? यदि कोई यह कहे कि कुछ भी हो रंगमंच के अनुसार ही नाटक लिखे जाने चाहिऐ, तब तो नाटक साहित्य की दशा बहुत शोचनीय हो गई होती। प्रसाद के युग में 'नौटकी', 'रास' आदि प्रचलित थे किसी भी स्थान पर दो तख्ते डालकर वे लोग अपना काम चला लेते थे। उनमें व्यर्थ की उछल-कूद ओर सस्ती किस्म का मनोरंजन अधिक होता था। यदि प्रसाद भी तख्तों पर दिखाये जाने वाले नाटक ही लिखते तो नाटक की जो दशा होती उसके विषय में सोचना भी अच्छा नहीं लगता। यदि प्रसाद के नाटकों का अभिनय विदेशों के रंगमंच पर किया जाये तो कही कोई समस्या नहीं आयेगी। विदेशों में रंगमंच इतने सम द्ध है कि वहाँ हवाईजहाज की उड़ान, चलती रेलगाड़ी आदि के द श्य भी रंगमंच पर दिखाये जा सकते है। अतः यह स्पष्ट है कि प्रसाद के नाटको पर अभिनेयता का दोष लगाने वालों की बात में कितना दम है।

इस सम्बंध में प्रसाद का द ष्टिकोण भी जानलेवा जरूरी है। प्रसाद ने लिखा था कि वे फारसी कम्पनियों और नाटकों वालों के लिए नाटक नही लिखते जो तांगे खोमचे वालों को दर्शक के रूप में जुटाकर तमाशा दिखला देते है। निश्चय ही उनका उद्धेश्य नाटकों के माध्यम से भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के गौरवशाली पक्षों को प्रकाश में लाना था। फिर, प्रसाद पर विदेशी नाटय कला का प्रभाव भी खूब पड़ा। इसीलिये उनके नाटकों के आत्महत्या, बघ आदि के द श्य आ गये है। संक्षेप में सम द्ध रंगमंच के अभाववश यदि अच्छे नाटकों का अभियन न किया जा सके तो उसके लिए नाटककार पर दोष लगाना व्यर्थ है।

# 3-'चन्द्रगुप्त' नाटक की अभिनेयता

चन्द्रगुप्त प्रसाद का प्रसिद्ध नाटक गिना जाता है। बनारस में इस नाटक का सफल अभिनय किया जा चुका हैं प्रस्तुत नाटक की अभिनेयता पर निम्नलिखित शीर्षकों के सहारे विचार किया जा सकता है-

(i) **द श्य योजना-** चन्द्रगुप्त नाटक के चार अंक हैं और चार अंकों में कुल 44 द श्य हैं प्रथम अंक में ग्यारह, दूसरे अंक में दस, तीसरे अंक में नौ और चौथे अंक में चौदह द श्य हैं इतने अधिक द श्यों की योजना साधारण बात नहीं हैं कई द श्य तो एक-दम अलग और भिन्न प्रकार है जिनकी योजना के लिए बीच में पर्याप्त समय जरूरी है। किन्तु द श्य ऐसे भी नहीं हैं जिनकी योजना असम्भव हो। पहले अंक को ही लीजिये इसमें प्रथम द श्य गुरूकुल का है। दूसरा द श्य उद्यान का, तीसरा द श्य एक मग्न कुटीर का चौथा उपवन का। इन चार द श्यों की योजना सुगमता के साथ की जा सकती हैं पांचवा द श्य मगध की राजसभा का है। जिसके लिए थोड़ा परिवर्तन जरूरी होगा। छठा द श्य फिर सिन्धु नदी के किनारे का है। सातवां द श्य बन्दी ग्रह का, आठवां प्रकोष्ठ का, नवां राजसभा का, दसवा कानन पथ का और ग्यारहवा दाण्डयायन आश्रम का। इनमें छः सात, आठ व नवें द श्य की योजना लगभग एक जैसी ही हैं अतः प्रथम अंक के लिए दो पर्दे पर्याप्त है।

दूसरे अंक में दस द श्य हैं-पहला द श्य सिन्धु का किनारा, दूसरा झेलम का तट, ये दोनों द श्य एक जैसे ही हैं तीसरा द श्य युद्ध भूमि का हैं जिसके लिए विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। चौथे द श्य में एक उद्यान दिखाया जाता हैं यहा तक की द श्य योजना भी सुगम है पांचवा द श्य बन्दीग्रह, का छठा परिषद का, सातवां महल का। ये तीनों द श्य एक जैसे ही है। आठवां द श्य फिर रावी के तट का है, नवां द श्य भी वैसे ही है और नवे द श्य में दुर्ग दिखाया जाता है। स्पष्ट है कि दूसरा अंक भी द श्य योजना की द ष्टि से आपत्तिजनक नहीं है।

तीसरे अंक में नौ द श्य है। प्रथम तीन द श्य क्रमशः विपाशा और रावी के तट के हैं। चौथा द श्य मार्ग का है इन चारों द श्यों की एक साथ योजना की जा सकती हैं पांचवा द श्य नंद की रंगशाला है। छठा कुसुमपुर के प्रान्त मार्ग का है। सातवां महल के प्रकोष्ठ का, आठवां पथ का और नवां फिर नंद की रंगशल्य का। अतः तीसरा अंक भी द श्य योजना के लिए सामान्य है।

चौथे अंक में चौदह द श्य हैं। पहला उपवन का, दूसरा पद का , तीसरा परिषद ग ह का चौथा प्रकोष्ठ का, पांचवा महल का एक भाग, छठा सिन्धु तट का, सातवां महल का, आठवां पथ का, नवां ग्रीक शिविर का, दसवां युद्ध भूमि का, ग्याहरवां शिविर का, बारहवा पथ का, तेरहवा तपोवन का, चौदहवां राजसभा का, द श्य है।इस अंक की द श्य योजना में कुछ अधिक परिवर्तन है उसके लिए अधिक स्फूर्ति, दक्षता और सूझबूझ की आवश्यकता है।

कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक की द श्य योजना असम्भव नहीं। चार-पांच प्रकार के पर्दो से काम चलाया जा सकता हैं यदि द श्यों की संख्या किसी को अधिक लगे तो समझदारी के साथ उनका सम्पादन करके संख्या को घटाया जा सकता है। यही बात नाटक के दीर्घ कलेवर के सम्बंध में भी कही जा सकती है।

(i) **पात्र-** नाटक की सफलता पात्र योजना पर भी निर्भर करती है। अभिनेयता द ष्टि से पात्र यथा सम्भव कम होने चाहिए। क्योंकि अधिक पात्रों को दर्शक याद नहीं रख पाते हैं। इसके अतिरिक्त पार्टी व्यवस्थापक के लिए अधिक पात्रों की व्यवस्था करना कठिन एवं महंगा पड़ता है।

'चन्द्रगुप्त में कुल 21 पात्र है।- 18 पुरूष पात्र और 8 स्त्री पात्र है यह संख्या निश्चय ही अधिक है किन्तु यदि ध्यान से देखा जाये तो मुख्य रूप से चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिहंरण, पर्वतेश्वर, सिकंदर, सिल्यूकस, अलका, कार्नेलिया आदि 8-10 पात्र ही अधिक महत्त्व रखते है। शेष पात्रों का काम कम है और वे रंगमंच पर भी कम आते है। अतः पात्रों की अधिकता से इस नाटक में तो कोई विशेष व्यवधान नही पड़ता फिर भी पात्रों की संख्या कम ही होनी चाहिये।

इस नाटक के पात्र प्रभावशाली व्यक्तित्व के है चाणक्य के प्रति दर्शको में हर बार एक नया कोतूहल जाग त होता है। चन्द्रगुप्त तो वैसे भी बार-बार आकर प्रभाव शाली कार्य करता है। सिंहरण नाटक के आरम्भ में ही अपनी छाप जमा जाता है। युद्ध वाले द श्य में पर्वतेश्वर भी दर्शको का दिल जीत लेता है, सिंकदर भारत से लौटते समय अपने ह्रदय की विशालता के कारण एक अमित याद छोड़ जाता है। स्त्री पात्रों में प्रायः सभी के व्यक्तित्व प्रभावशाली है। अतः पात्रों की तरफ से दर्शकों के मन में उकताहट आने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

(ii) **संवाद-** नाटक का आनंद दर्शकगण घटनाओं को देखकर और पात्रों की बातें सुनकर प्राप्त करते है। नाटक में दर्शक जितनी बात देखता हैं उतनी ही बात सुनता भी है। अतः रंगमंच पर संवादों का महत्त्व भी बढ़ जाता है। संवाद छोटे-छोटे, सरल, नाटकीय और मुहावरेदार हो तो बढ़िया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के सवादों का पक्ष थोड़ा शिथिल कहा जा सकता है। इसमे 16 के लगभाग स्वगत कथन है और स्वगत कथन प्रायः उकताने वाले होते है। कहीं-कहीं वार्तालाप भी लम्बे हो गये है। नाटक के शुरू वाले संवाद अच्छे हैं उनमें प्रभावामकता गति, सरसता, चुस्ती आदि भी है। कई स्थलों पर संवादों की भाषा कठिन है और कुछ संवाद काव्यात्मद भाषा में भी हैं फिर भी कुछ सरल, प्रतिकात्मक और व्यग्यात्मक संवादों का कारण नाटक आकर्षण बना रहता है। संवादों की क्लिष्टता तो प्रयास करके दूर की जा सकती है तथा लम्बे संवाद भी छोटे किया जा सकते है। इस तरह थोड़ा सा प्रयत्न करके चन्द्रगुप्त वाटक के संवाद भी अभिनय की द ष्टि से सफल बनाये जा सकते है।

(iii) **रस-** 'चन्द्रगुप्त' नाटक में वीर रस का प्राधान्य है नाटक के आरम्भ में ही वीर रस के छीटें लगना शुरू हो जाते हैं युद्ध के स्थल सभी वीर रस से पूर्ण हैं इसके अतिरिक्त श्र ंगार रस का भी परिपाक हुआ है। सभी प्रणय पक्षों में श ंगार रस की निष्पति हुई हैं नाटक के गीतों में भी श्र ंगार और वीर रस का परिपाक हुआ है। अलका और चन्द्रगुप्त नट-नदी के वेश में जब पर्वतेश्वर के पास जाते हैं उस समय हास्य रस की योजना भी हुई है। इस तरह रस-योजना की द ष्टि से भी चन्द्रगुप्त सफल नाटक है। मुख्य रस इसमें वीर ही है। श्र ंगार वीर का सहकारी बनकर आया है।

(iv) **अभिनय योजना-** अभिनय, भारतीय शास्त्रों के अनुसार, चार प्रकार का होता है- आहार्य, आंगिक, वाचिक और सात्विक।

**अ. आहार्य-** इसमें पात्रों की वेश-भूषा आती है। प्रस्तुत नाटक में वेशभषा के कोई संकेत नहीं है। इस प्रसंग में निर्देश को स्वयं निर्णय लेना पड़ेगा।

**आ. आगिक-** युद्ध आदि के द श्यों व न त्य में इस प्रकार का अभिनय होता है। 'चन्द्रगुप्त' में कई स्थलों पर इसके दर्शन होते है। सिकदर-पुरू का युद्ध, मालवों के विरूद्ध सिकंदर का युद्ध, चन्द्रगुप्त व सिल्यूकस का युद्ध आदि। सुवासिनी के न त्य में भी इसका उदाहरण देखा जा सकता है।

**इ. वाचिक-** मगघ की कैद में चाणक्य, सिकंदर से पराजिक पुरू व सिल्यूकस-कार्नेलिया के अन्तिम संवाद से इसके उदाहरण मिलते है।

**ई. सात्त्विक** - रूदन, हास्य, करूणा, उन्माद आदि में सात्त्विक अभिनय के उदाहरण देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार अभिनय के चारों और अंगों की योजना प्रस्तुत नाटक में मिलती है।

अन्तः में हम यह कह सकते हैं कि 'चन्द्रगुप्त' नाटक का अभिनय सफलतापूर्वक किया जा सकता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक निश्चय ही बड़ा है। द श्य भी अधिक है। पात्रों की संख्या भी अधिक है। किंतु ये सब बाधायें तो सफल सम्पादन द्वारा दूर की जा सकती है यदि रंगमंच विकसित हो तो यह नाटक भी निश्चित ही अभिनेय है यह बात प्रसाद के सभी नाटकों पर चरितार्थ की जा सकती है। फिर प्रसाद ने जिस में नाटक लिखे थे। उसके मुकाबले आज तो रंगमंच और अधिक विकसित हो चुके हैं, इस वैज्ञानिक युग में किसी भी प्रकार के द श्य को रंगमंच पर दर्शा देना मुश्किल नहीं।

# 4-'चन्द्रगुप्त' नाटक की गीत-योजना

नाटककार प्रसाद मूलतः कवि थे। उनके कविमन की भावुकता एवं तरलता उनकी किसी भी साहित्यिक रचना की प्रसाद दिए बिना नहीं रही हैं। यही कारण है कि उनका गद्य भी काव्यमय हो गया है।

नाटकों में तो गीतों का प्रयोग संस्कृत साहित्य में भी होता था। हिन्दी नाटकों में गीतों की प्रव त्ति संस्कृत से ही आई है। पहले तो नाटक में गीतों का उद्देश्य दर्शकों को प्रभावित करना व उनका मनोरंजन करना होता था। किंतु बाद में गीत मनोविज्ञान परक होने लगे। गीतों का उद्देश्य पात्रों का चरित्र विश्लेषण व उनके आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति हो गया।

प्रसाद के नाटकों में गीत निश्चय ही मनोविज्ञान परक हैं। उनके प्रारम्भिक नाटकों में तो गीत अपेक्षाकृत कम रहे है किंतु बाद के नाटकों में गीत बढ़ते गए। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में 13 गीत हैं- पहले अंक में दो, दूसरे में तीन, तीसरे में एक और चौथे में छः गीत हैं। सभी गीत भाव-भाषा की द ष्टि से उत्कृष्ठ हैं। परिस्थितयों की द ष्टि से इस नाटक के गीतों को पांच भागों में बांटा जा सकता है-

(i) एक या अधिक लोगों के समक्ष गाये गए गीत-

नाटक में कुछ गीत ऐसे हैं जो किसी एक से अधिक व्यक्तियों के आग्रह पर गाये गए हैं, यथा प्रथम अंक में सुवासिनी नंद के उद्यान मे कई लोगों के समक्ष गाती है।

**"तुम कनक किरण के अन्तराल में**
**लुक-छिप कर चलते हो क्यों ?**
**नत मस्तक गर्व वहन करते**
**यौवन के घन, रस कन ठरते।"**

इसी अंक में राक्षस भी गीत गाता है। जिसके श्रोता मगध के कई नागरिक भी होते हैं ऐसे गीतों की संख्या इस नाटक में छः है। अन्य गीत मालविका व सुवासिनी गाती है- तीन गीत मालविका चन्द्रगुप्त के आग्रह पर गाती है। और एक गीत सुवासिनी कार्नेलिया के आग्रह पर गाती है।

(ii) एकांत गीत-

ऐसे गीत नाटक के पात्रों ने केवल एकांत में गाए हैं अपने ही मन की प्रेरणा से व स्वयं की ही तुष्टि के लिए। ऐस चार गीत हैं। जिन्हें कार्नेलिया, अलका, कल्याणी व मालविका गाती है। इन गीतों में गाने वाले पात्रों की मानसिक स्थिति व्यक्त हुई है द्वितीय अंक में कार्नेलिया का गाया गीत-

**"अरुण यह मधुमय देश हमारा !**
**जहां पहुंच जजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।**
**सरस तामरस गर्भ विभा पर-नाच रही तरूशिखा मनोहर**
**छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुकुंम सारा।**
**लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे।**
**उड़ते खग जिस ओर मुंह किये समझ नीड निज प्यारा।"**

(iii) नेपथ्य गीत-

इस कोटि का केवल एक गीत है। ऐसे गीत का उद्देश्य भावों को उत्तेजित करना है। 'कैसी कड़ी रूप की ज्वाला' गीता इसी कोटि का है।

(iv) प्रयाण गीत-

इस प्रकार का भी केवल एक गीत है। नाटक में चौथे अंक में अलका इस गीत को गाती हैं। इसका लक्ष्य जन मानस में राष्ट्रीय भावना जाग त करना है।

"हिमाद्रि तुंग श्र गं से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती-

स्वयं प्रभा समुज्जवला
स्वतंत्रता पुकारती-
अमर्त्य वीरपुत्र हो, द ढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पथं है- बढ़े चलों, बढ़े चलों।।"

उक्त गीत परिस्थित व अवसर के सर्वथा अनुकूल है।

(v) एक अन्य गीत अलका द्वारा पर्ववेश्वर के समक्ष गाया जाता है। जो एक तरह से एंकात गीत ही है जिस का लक्ष्य परिस्थित व भावना के रंग को गहरा करना है।

विषय की द ष्टि से-

इस द ष्टि से प्रस्तुत नाटक के गीतों को दो भागों में बांटा जा सकता है- सौन्दर्य-प्रेम सम्बंधी तथा राष्ट्र सम्बन्धी।

सौन्दर्य-प्रेम सम्बंधी-

लगभग ग्यारह गीत सौर्न्दय और प्रेम सम्बंधी ही हैं, यथा-

**नेपश्य गीत-'कैसी कड़ी रूप की ज्वाला'**
**राक्षस द्वारा गाया गया- 'निकल मत बाहर दुर्बल आह'**
**सुबासिनी के गीत - 'तुम कनक किरण के अंतराल में'**
**'आज इस यौवन के माधवी कुंज में'**
**'सखे वह प्रेममयी रजनी'**
**अलका द्वारा गाया गया- 'प्रथम यौवन की मदिरा से मत'**
**'बिखरी किरण अलस व्याकुल हो'**
**मालविका के गीत- 'मधुप कब एक कली का है'**
**'बज रही वंशी आठों याम की'**
**'आ मेरी जीवन की स्म ति'**
**कल्याणी- 'सुधा सीकर से नहला दो'**

इसके सभी गीतों में मन की कोमक भावनाएं भरी हुई हैं। सुवासिनी का 'हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो मौन बने रहते हो क्यों? गीत अत्यन्त प्रभावशाली व रोमाचंक है प्रेम में मिलने वाली आशा-निराशा, संयोग-वियोग, उल्लास-उमंग आदि को प्रसाद ने अत्यन्त रमणीय ढ़ग से व्यक्त किया है। रूप-सुधा के हर-प्यालों में डूबता मन, अनन्त अनुराग का मनोहरी राग, पुष्य क्यारी के कुचले जाने की आशंका, प्रेममय रजनी में चाँद की ठिठकन आदि की कई स्वर्गिक अनुभूतियां इन गीतों में व्यक्त हैं।

**देश भक्ति के गीत-**

दो गीत देश भक्ति के हैं। उनमें उनमें से एक गीत कार्नेलिया गाती हैं अरूण यह मधुमय देश हमारा ? इस गीत में भारतीय संस्कृति की उस गरिमा का चित्रण है जिससे कार्नेलिया प्रभावित होती है। नाटक मे तो ऐसा लगता है मानों कार्नेलिया के मन में भारत के प्रति जो भावना है वही गीत में ढल कर प्रत्यक्ष हो गई है।

दूसरा गीत अलका गीत है। सिल्यूक्स का मुकाबला करने के लिए वह जनता में राष्ट्रीय चेतना जाग त करती है। यह गीत अत्यंत भावपूर्ण व प्रेरणादायक है- 'हिमादि तुंग श्र ंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती'।

क्या ये गीत अभिनव में बाधक हैं ?

कुछ आलोचकों का मत है कि प्रसाद ने गीत नाटक के लिए नहीं लिखे प्रत्युत स्वतंत्र रूप से लिखे हुए लिखे गीतों को नाटक में जड़ दिया है। इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार से जड़ना भी गलत नहीं यदि वह पात्र, स्थान व परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल बैठ जाय। प्रसाद का कोई भी गीत, इस नाटक में, अप्रासंगिक नहीं लगता।

दूसरा आरोप यह लगाया जाता है कि गीतों के कारण अभिनय की हानि होती क्योंकि काफी समय तो गीतों में ही निकल जाता

है, जैसे-चौथे अंक में मालविका एक साथ तीन गीत गाती है जिनके अभिनय में चालीस मिनट लग सकते हैं। किंतु आलोचक यहां भूल जाते हैं। कि समय व अभिनय सम्बंधी दिक्कतें निर्देशक के सोचने की बात है। वह आवश्यक समझे तो गीतों में कांट-छांट भी कर सकता है।

अतः गीतों से प्रसाद के नाटक के माधुर्य कोमलता व रसात्मकता ही आई हैं उनकी गीत-योजना परिस्थिति, पात्र, स्थान, मनोदशा आदि के अर्वथा अनुकूल है।

# 5-'चन्द्रगुप्त' नाटक में ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय

चन्द्रगुप्त प्रसाद का सर्वोत्तम नाटक है। नाटककार का द ष्टिकोण इतिहास क्षेत्र में सर्वत्र ही खोजपूर्ण रहा है और उन्होने मौर्यवंश और तत्कालीन भारत-दशा के ऊपर पड़े हुए जन-श्रुतियों एवं अज्ञानता के आवरण को हटाकर प्रकाश में लाना चाहा है कहीं भी उन्होनें ऐतिहासिक घटना अथवा सत्य को लोक प्रसिद्धि से पोषित अथवा ग्रन्थित करके समन्वय का झूठा प्रयास नहीं किया। विशेषता यह है कि ऐतिहासिकता निभाई है। समाज, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता आदि स्तम्भों का दिव्यदर्शन है। पात्रों का चरित्र का विकास ऐतिहासिकता के आधार पर ही हुआ है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक के पात्र अधिकांश में ऐतिहासिक ही है। भारतीय पात्रों में नंद, राक्षस, वररूचि, शकटार चन्द्रगुप्त चाणक्य, आम्भीक और पर्ववेश्वर तथा यवन पात्रों में सिकंदर, सिल्यूकस, फिलिप्स, मेगास्थनीज ये सभी इतिहास के प्रसिद्ध नाम हैं। स्त्री पात्रों में नंद और सिल्यूकस की एक-एक कन्या की चर्चा भी इतिहास में मिलती है, प्रसाद जी ने उन्हीं का कल्याणी और कार्नेलिया नाम रखा है। घटनाएं तो अधिकांश में ऐतिहासिक हैं ही। विवादग्रस्त विषयों पर प्रसाद जी ने स्वयं भूमिका में लिख दिया हैं। उनकी भूमिका में वर्णित उल्लेखनीय तत्व निम्न हैं।-

1. भारत में इससे 800 वर्ष पूर्व एक क्रांति हुई थी, जिसमें जिन जातियों को अपने कुल की क्रमागत वशं मर्यादा विस्म त हो गई थी वे याज्ञिक पवित्र ब्राह्माणों के अर्बुगिरि वाले महान यज्ञ से सुसंस्कृत होकर चार जातियों मे विभक्त हो गई। सभी का नाम 'अग्निकुल' प्रसिद्ध हुआ। धीरे-धीरे अपनी कर्तव्य-निष्ठा और वीरता पूर्ण पराक्रमों से इनकी गणना श्रेष्ठा और वीरतापूर्ण पराक्रमों से इनकी गणना श्रेष्ठ क्षत्रियवंश में होने लगी। इस कुल की अनेक शाखाएँ है। पर मौर्यशाखा लोकवियुक्त है। इनकी प्रमुख राजधानी पिप्पली कानन थी।
2. नाटककार विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त को प्रायः 'व षल' कहकर सम्बोधित किया है। इससे तत्कालीन हिन्दी काल की मनोव त्ति ही ध्वनित होती है। वस्तुतः 'व षल' शब्द में तो उनका क्षचियत्व और भी प्रमाणित होता है---जो क्षत्रिय वैदिक क्रियाओं से उदासीन हो जाते थे, वे धार्मिक द ष्टि से व षलत्व को प्राप्त होते थे। वस्तुतः वे जाति के क्षत्रिय थे।
3. ग्रीक इतिहास-लेखक भी सहमत है कि चन्द्रगुप्त को राजक्रोध के कारण पाटलिपुत्र छोड़ना पड़ा था।
4. पुरू के युद्ध मे जगद्विजयी सिकंदर को कहना पड़ा-आज हमें बराबरी का पराक्रमी शत्रु मिला। 'इस युद्ध के सिकंदर का अश्व 'बूका फेलस' हत हुआ और स्वयं सिकंदर भी घायल हुआ।
5. इतिहास से पता चलता है कि कि सिल्यूकस से चन्द्रगुप्त का युद्ध सिन्धु तट पर हुआ था।
6. बौद्धधर्म तथा पुराणों की कथाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि चाणक्य के वेद धर्मवलम्बी, कूट राजनीतिज्ञ, प्रखर प्रतिभाव हठी और चन्द्रगुप्त की उन्नति का मूल कारण है।

इस प्रकार उपरोक्त ऐतिहासिक उल्लेखों को आधार मानकर तथा अपनी साहित्यिक प्रतिमा से उनमें श्र खंला आरोपित करके प्रसाद जी ने प्रस्तुत नाटक को जो स्वरूप प्रदान किया है उसमें चाहे नाटककार ने कल्पना का कितना ही उपयोग किया हो, पर इसकी ऐतिहासिकता निर्विवाद है।

### इतिहास सम्मत घटनाएँ-

नाटक के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक हैं, ऐतिहासिक तथ्य सर्वथा इतिहास सम्मत हैं-चन्द्रगुप्त क्षत्रिय है। इसके लिए प्रसाद जी ने भूमिका में विष्णु पुराण का उदाहरण दिया है। 'व षल' कहने का तात्पर्य केवल यही है कि उसके वशं मे आर्य-संस्कारों की तुष्टि एवं सम्व द्धि नहीं हो सकी इतिहास कारों ने भी उसे क्षात्रिय प्रमाणित किया है और पिप्लीकानन का मौर्य राजकुमार बतलाता है।

(i) नाटक में वर्णित चन्द्रगुप्त की सशक्त क्षमताओं की देखकर उसका क्षत्रियत्व स्वयं सिद्ध होता है।

(ii) चन्द्रगुप्त सिकंदर से उसी के शिविर में मिला और वहीं यवन राजनीति की उसने समझा है तथा सिकंदर के युद्ध होने पर वह ग्रीक शिविर से पराक्रम और कौशल पूर्वक भागा है। यह भी इतिहासानुकूल ही हैं।

(iii) आम्भीक ने पुरू के जन्मजात वैर के कारण ही उसे नीचा दिखाने के लिए सिकंदर से अभिसन्धि की है। साथ ही सिकंदर

के साथ हुए संघर्ष में पुरू पराजित भी हुआ है। तत्पश्चात् वचनबद्ध होकर उसका मित्र भी बना है- यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है।

(iv) जगंल में चन्द्रगुपत का व्याघ्र से सामना दिखाना ऐतिहासिक घटना है।

(v) चाणक्य की कूटनीति तथा चन्द्रगुप्त के भुजबल से नंद वंश का समूल उन्मूलन इतिहास के अनुसार ही नाटक में दिखाया गया है। इतिहास के अनुसार इस नाटक में भी पर्वतेश्वर (पुरु) ने चन्द्रगुप्त की सहायता की है। उसके दक्षिण विजय के अभियान का संकेत भी नाटक में मिलता है।

(vi) नाटक का चतुर्थ अकं उसी ऐतिहासिक घटना की पुष्टि के लिए है जिसमें सिल्यूकस का भारत पर आक्रमण तथा चन्द्रगुप्त का उससे संघर्ष करते हुए उसे पराजित करना तथा उसकी पुत्री का चन्द्रगुप्त से विवाह होना सिद्ध होता है।

**लोक-भुत घटनांए-**

नाटक में उन घटनाओं के रेखाचित्र में रंग भर गया है जो इतिहास में तो कहीं-कहीं ही, पर संस्कृत साहित्य और लोक विश्रुति में प्रचलित है। वे घटनाएं निम्नलिखित हैं।

(i) नंद के द्वारा चाणक्य की शिखा खिंचवाकर अपमानित किया जाना।

(ii) नंद की हत्या में अकेले चाणक्य का ही हाथ न होना और व्यक्तियों का भी उसमें हाथ होना।

(iii) चाणक्य और चन्द्रगुप्त तक्षशिला में मिलने से पूर्व भी परिचित थे पर इसका कोई भी संकेत नाटक में नहीं है।

(iv) नंद की पुत्री और चन्द्रगुप्त का प्रणय सम्बंध था, जो विवाह में परिणत हुआ, पर नाटक में इसे नहीं दिखाया गया।

(v) चाणक्य की जन्मभूमि पाटलिपुत्र ही बताई गई है।

**परिवर्तित घटनाएँ-**

प्रसाद जी एक बड़े कुशल नाटककार हैं। अतः प्रसाद जी ने भी ऐतिहासिक घटनाओं को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही संयोजित किया है प्रसाद जी ने कल्पना के मनोवांछित योग से कथानक को राष्ट्रीयता से परिपुष्ट बनाया है।

(i) चन्द्रगुप्त मगद्य सेनापति के रूप में चित्रित है। पर्वतेश्वर के द्वारा उसके क्षत्रियत्व में शंका उठाई गई है और चाणक्य ने पर्वतेश्वर के समक्ष चन्द्रगुप्त का क्षत्रित्व सिद्ध किया है।

(ii) नाटक में चन्द्रगुप्त और चाणक्य को वहां पूर्व परिचित न दिखाकर तक्षशिला विद्यालय में भेंट कराई है चाणक्य को वहां पहले स्नातक, फिर आर्चाय के रूप में चित्रित किया है और चन्द्रगुप्त को मगध से शिक्षा-प्राप्ति के लिए तक्षशिला गया हुआ बताया है।

(iii) मालव सेना का संचालन सिंहरण द्वारा कराके प्रसाद जी ने इतिहास के मौन को मुखरित किया है और कल्पना द्वारा ही उससे सम्बधित घटनाओं की स ष्टि की है।

(iv) इतिहास नन्द के बधिक को व्यक्तिगत रूप से बताने में असमर्थ है। पर प्रसाद ने शकटार द्वारा उसका वध करके घटना की तर्क संगति बैठाई है।

(v) चाणक्य द्वारा सिकंदर के परिवर्तित होने पर सम्मानपूर्वक विदा किए जाने में प्रसाद जी ने इतिहास के तथ्यों को नए रूप में प्रकाशित करने की प्रव ति दिखाई है।

(vi) पुरु, पौरस के स्थान पर पर्वतेश्वर नाम देने में प्रसाद जी की सांस्कृतिक रुचि की झलक मिलती है।

(vii) इतिहास आम्भीक को अपनी करनी में दुखी होते हुए नहीं बतलाता, पर प्रसाद ने उसे पश्चाताप की अग्नि में शुद्ध करके देश भक्ति के पक्ष में खड़ा किया है

**काल्पनिक घटनाएँ-**

प्रसाद जी ने कुछ घटनाएं तथा पात्रों का काल्पनिक रूप पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। घटनाओं को नवीन घटनाओं को नवीन रूप देने एवं प्राचीन पात्रों के नए ढ़ग से तथा नवीन पात्रों के सज न प्रस्तुत किया है।

प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त नाटक के कुछ नवीन घटनाओं एवं नवीन पात्रों की स ष्टि भी की है। ये काल्पनिक घटनाएं और पात्र निम्न है।

(i) तक्षशिला की राजकुमारी अलका एवं मालव कुमार सिंहरण का प्रेम-प्रसंग काल्पनिक है, फिर भी नाम और उनके सम्बन्धित घटनाओं से तत्कालीनता की गंध लाने लगी है।

(ii) चन्द्रगुप्त और कल्याणी का प्रणय-प्रसंग तथा कल्याणी का आत्महत्या करके मरना। चन्द्रगुप्त और मालविका की प्रेमिका स्निग्धता तथा मालविका द्वारा अपना जीवन चन्द्रगुप्त के लिए उत्सर्ग करना।

(iii) चन्द्रगुप्त की हार्दिकता के साथ सुवासिनी के प्रति उनकी उनकी कोमल भावनाओं के प्रसंग।

(v) राक्षस और चाणक्य का संघर्ष। इसी प्रसंग में चाणक्य द्वारा जाली पत्र लिखकर राक्षस को पराभूत करके हुए सुवासिनी को विस्मय-विमुग्ध करना नवीन ही है। हा मुद्राराक्षस में राक्षस की मुद्रा से सम्बन्धित कुछ तथ्य अवश्य मिले जाते हैं।

(vi) चाणक्य के द्वारा सुवासिनी को कार्नेलिया के समीप भेजना।

(vii) चन्द्रगुप्त के साथ चाणक्य का कृत्रिम कलह दिखाना आदि घटनाएं पूर्णतः नवीन हैं।

**पूर्ण रूपेण ऐतिहासिक पात्र**- चन्द्रगुप्त, चाणक्य, नन्द, राक्षस, वरूचि, शकटार, पुरू या पर्वतेश्वर, सिकंदर, सिल्यूकस, दाण्डायन।

**अर्ध ऐतिहासिक पात्र**- कार्नेलिया और सुवासिनी

**काल्पनिक पात्र**- अलका, मालविका, सिंहरण, चाणक्य आदि

इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त नाटक के कथानक और चरित्र स ष्टि द्वारा इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है। प्रसाद जी की अनुशीलनगत समन्वयात्मक द ष्टि ने इतिहास की विस्म तियों एवं अंधकार युग को आलोकित करके हमारे समक्ष रखा है।

# 6-'चन्द्रगुप्त' नाटक की संवाद-योजना

नाटक में संवादों का बहुत अधिक महत्त्व होता है। संवादों से ही नाटक में नाटकीयता आती है। इन्ही के सहारे कथा आगे बढ़ती है। संवाद पात्रों के चरित्र का भी उदघाटन करते है। कहीं-कहीं संवादपूर्ण घटनाओं की सूचना देते है। कथा सगंठन में भी संवाद सहायक होते हैं। इस प्रकार संवादों का नाटक में अत्यधिक महत्व होता है।

प्रसाद के नाटकों में संवाद-योजना प्रभाशाली होती है भाषा की द ष्टि से कहीं-कहीं संवाद कठिन अवश्य लगते हैं फिर भी नटकीयता में कोई कमी नहीं आती। चन्द्रगुप्त नाटक की संवाद-योजना भी स्प हरणीय हैं।

(1) **परिसिथिति के परिचायक संवाद**- नाटक के प्रारम्भ में ही चाणक्य सिहंरण-आम्भीक-चंद्रगुप्त व अलका के संवादों से देश की तत्कालीन राजनीतिक दशा का ज्ञान होता है। उनके संवादों से ज्ञात होता है कि यवन-सेना को भारत पर आक्रमण होना है, तक्षशिला का राजकुमार आम्भीक पवनों की सहायता कर रहा हैं, देश के राजा परस्पर द्वेषवश्या बिखरे पड़े है आदि।

जैसे-

"चाणक्य :-----क्या तुम जानते हो कि यवनों के दूत यंहा क्यों आये हैं?

सिंहरण : मैं उसे जानने की चेष्ठा कर रहा हूँ। अर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारण की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड राजदेष से जर्जर है।"

''''''''''''''''''''''''''''''''''''''''''

"आम्भीक : वह काल्पनिक मायाजाल है ; तुम्होरे प्रत्यक्ष नीच कर्म उन पर पर्दा नहीं डाल सकते।

चाणक्य : सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय ! इसी दस्यु से और मलेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य जाति पतन के कगार पर खड़ी और मलेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य जाति पतन के कगार पर खड़ी धक्के की राह देख नही है।

(2) **छोटे व प्रवाहशील संवाद**- प्रस्तुत नाटक में छोटे-छोटे संवाद भी हैं। ऐसे संवाद सरल, चदुल, अर्थपूर्ण, और प्रवाहपूर्ण है, यथा-

"आम्भीक : कैसा विस्फोट ? युवक तुम कौन हो ?

सिंहरण : एक मालव।

आम्भीक : नही, विशेष परिचय की आवश्यकता है ?

सिंहरण : तक्षशिला गुरुकुल का एक छात्र।"

''''''''''''''''''''''

"सेनापति : राजकुमारी !

कल्याणी : सावधान सेनापति !

सेनापति : क्षमा हो, अब ऐसी भूल न होगी। हॉ, तो केवल एक मार्ग है।

कल्याणी : वह क्या ?

सेनापति : घायलों की शुश्रषा का भार ले लेना है।"

ऐसे छोटे-छोटे सरल संवादों से नाटक बोझिल नहीं बनता। उसमें सरसला बनी रहती है। एकदम पक्की सड़क पर चलने जैसा आनंद महसूस होता है।

(3) **चरित्र के उद्घाटन-**

नाटक में पात्रों के कथन ही उसके चरित्र का निर्धारण करते हैं। उनकी बातें उनके चरित्र का पैमाना बन जाती है या तो उनके कार्यों से उनका व्यक्तित्व उभरता है या उनकी बातों से। इसीलिए संवाद इस द ष्टि से भी महत्त्वपूर्ण होते है। आम्भीक और सिंहरण का ही संवाद देखिये। "आम्भीक : बस-बस दुर्घर्ष युवक ! बता, तेरा अभिप्राय क्या है ?

सिंहरण : कुछ नहीं।

आम्भीक : नहीं, बताना होगा। मेरी आज्ञा है।

सिंहरण : गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है ; अन्य आज्ञाएं अवज्ञा के कान से सुनी जाती है राजकुमार।"

यहां आम्भीक की आशिष्टता की आशिष्टता व घमण्ड के साथ-साथ सिंहरण की विनम्रता साहस और निर्भीकता का उद्घाटन हुआ है। प्रसाद ने प्रस्तुत नाटक में कई स्थलों पर इस प्रकार संवाद-शैली से चरित्र का उद्घाटन किया है। प्रथम अंक के हो ग्यारहवें द श्य में एक छोटा सा संवाद तीन पात्रों के व्यक्तित्व का दर्पण बन गया है। तीन वाक्य! तीन पात्रों और तीन ही चरित्र ! देखिये-

"चन्द्रगुप्त : देवि ! कृतज्ञता का बंधन अमोध है'

चाणक्य : राजकुमारी ! उस परिस्थिति पर उपने विचार नहीं किया है, आपकी शंका निर्मूल है।

दाण्डयायन : संदेह न करो अलका ! कल्याण कृत को पूर्ण विश्वासी होना पड़ेगा। विश्वास सुफल देगा, दुर्गति नही।"

एक उदाहरण और देखिये। दूसरा अंक और पहला द श्यः फिलिप्स और कार्नेलिया का वार्तालाप। प्रेम का विज्ञापन करता फिलिप्स और दूसरी तरफ चन्द्रगुप्त की अनुरक्ता कार्नेलिया-

"फिलिप्स : कुमारी ! न जाने फिर कब दर्शन हों, इसलिए एक बार इन कोमल करों को चुमने की आज्ञा दो।

कार्नेलिया : तुम मेरा अपमान करने का साहस न करो फिलिप्स।

फिलिप्स : प्राण देकर भी नही कुमारी ! परन्तु प्रेम अंधा है।

कार्नेलिया : तुम अपने अन्धेपन से दूसरे की ठुकराने का लाभ नहीं उठा सकते फिलिप्स ! चरित्र के प्रकाशक ऐसे सफल संवाद प्रसाद के किसी भी नाटक में देखे जा सकते है।

**घटनाओं के परिचायक :**

नाटक में घटनाओं को प्रत्यक्ष घटते हुए कम दिखाया जाता है अधिकतर उन्हें पात्रों द्वारा कहलवा दिया जाता है। इसीलिए संवादों से घटनाओं का परिचय मिलता है। इससे संकलन त्रय का भी निर्वाह हो जाता है। प्रस्तुत नाटक में प्रथम अंक का तीसरा द श्य ! चाणक्य और प्रतिवेशी का संवाद ! इसके द्वारा पता चलता है कि चाणक्य के पिता ने किया व नन्द ने उन्हें कैसा दण्ड दिया ? इसी के आगे का एक अंश देखिये-

"चाणक्य : होने दो ; परन्तु यह तो बताओं-शकटार का कुटुम्ब कहां पर है ?

प्रतिवेशी : कैसे मनुष्य हो ? अरे राज-कोपानल में वे सब जल मरें ।--------

चाणक्य : हे भगवान ! एक बात दया करके और बता दो- शकटार की कन्या सुवासिनी कहां है !

प्रतिवेशी युवक ! वह बौद्ध बिहार मे चली गयी थी, परंतु वहां भी न नह सकी । पहले तो अभिनय करती फिरती थी, आजकल कहां है, नही जानता।"

तीसरे अंक के प्रथम द श्य का एक संवाद देखिये।

राक्षस और एक चर की वार्ता-

राक्षस : क्या समाचार है ?

चर : बड़ा ही आतंक जनक है अमात्य !

राक्षस : कुछ कहो भी।

चर : सुवासिनी पर आप से मिलकर कुचक्र करने का अभियोग है, वह कारागार में है।

राक्षस : और भी कुछ ?

चर : हां अमात्य प्रान्त दुर्ग पर अधिकतर करके विद्रोह करने के अपराध में आपको बन्दी बनाकर ले आने वाले के लिए पुरस्कार की घोषणा की गई।

इस प्रकार के संवादों से नाटक के कथानक में गति आती है। निश्चय ही ऐसे संवादों का नाटक में बहुत महत्व होता है।

**दार्शिनिकता से प्रभावित संवाद-**

प्रसाद ने इतिहास, पुराण व दर्शन का गहन अध्ययन किया था। इसलिए उनकी रचनाओं में दार्शनिक विचारों का प्राचुर्य है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के ग्यारवहें द श्य में दार्शिनिक विचारों की अभिव्यक्ति है। दाण्डयायन बिल्कुल दार्शनिक लगते है ; उनकी वार्ता में भी दार्शनिकता है, यथा-

"एनिसाक्रीटीज : महात्मन,

दाण्डयायन : चुप रहो, सब चले जा रहे है, तुम भी चले जाओ। अवकाश नहीं, अवसर नहीं।

एनिसाकीटीज : मुझ से कुछ मत कहो। की अपने आप ही कही, जिसे आवश्यकता होगी, सुन लेगा।

''''''''''''''''''''''''''''''''''''

"एनिसाक्रीटीज : देवपुत्र जगद्विजेता सिकंदर ने आपका स्मरण किया है।

दाण्डयायन : भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है उनको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते।----

एनिसाक्रीटीज : महात्मन ! ऐसा क्यों ? यदि न जाने पर देव पुत्र दण्ड दें ?

दाण्डयायन : मेरी आवश्यकताए परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरी करती है। उसके रहते दूसरों का शासन कैसा ?----

ऐसे दार्शनिक सम्वादों से लेखक की विचारधारा का ज्ञान होता है। लेखक इसके द्वारा जीवन के परिष्कार का भी प्रयत्न करता है।

**भावपूर्ण संवाद-**

मन की कोमलता व भावुकता से भरे संवाद भी प्रस्तुत नाटक में आए हैं। मालविका 'चन्द्रगुप्त' नंद-सुवासिनी, सुवासिनी-राक्षस, कार्नेलिया सुवासिनी व कार्नेलिया-एलिस आदि के कई संवाद भावपूर्ण, तरल एवं स्निग्ध है। ये प्रणय की मधुरिमा से सिक्त है।

"सिंहरण : मैं .......................... अलका ! मुझसे पूछती हो

अलका : दूसरा उपाय क्या है ?

सिंहरण : मेरा सिर घूम रहा है। अलका। तुम पतेश्वर की प्रणयिनी बनोगी ! अच्छा होता कि इसके पहले ही में न रह जाता।

अलका : क्यों मालव, इससे तुम्कारी कुछ हानि है ?

सिंहरण : कठिन परीक्षा न लो अलका ! मै बड़ा दुर्बल हूँ। मैं ने जीवन और मरण में तुम्हारा संग न छोडने का प्ररण किया है।"

''''''''''''''''''''''''''''''''''''''''

"सुवासिनी : राजकुमारी ! प्रेम में स्म ति का ही सुख है। एक ठीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है।

कार्नेलिया : तुम क्या कहती हो ?

सुवासिनी : ........................... धधकते हुए रमणी-वक्ष पर हाथ रख कर उसी कम्पन में स्वर मिलाकर कामदेव गाता है। .......................... वही काम संगीत की तान .......................... युक्तियों के मुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है।

कार्नेलिया : सखी। मदिरा की प्याली में तू स्वप्न-सी लहरों की मत आन्दोलित कर।

ऐसे संवादों से नाटक मनोरमा माधुर्य और रस की स ष्टि होती है।

## वनोदपूर्ण संवाद-

प्रस्तुत नाटक में दों-तीन स्थलों पर विनोद पूर्ण संवादों की योजना हुई है। एक स्थल पर नट-नटी के वेश में चन्द्रगुप्त, अलका आदि पर्वतेश्वर के साथ विनोद करते है। चौथे अंक के छठे द श्य में कात्पायन और चाणक्य का विनोद पूर्ण संवाद थोड़ा मनोरंजक है, यथा-

"कात्यायन : (हंसकर) - यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि तुम.......................... सुवासिनी अच्छा.............. विष्पुगुप्त गार्हस्थ्य जीवन कितना सुंदर है।

चाणक्य : मूर्ख हो, अब हम-तुम साथ ही ब्याह करेंगें।

कात्यायन : मैं ? मुझे नही--- मेरी ग हिणी तो है।

चाणक्य : (हंसकर) - एक ब्याह और सही। अच्छा बताओं, काम कहाँ तक हुआ ?"

इस प्रकार चन्द्रगुप्त नाटक में लेखक ने विविध प्रकार के संवादों की योजना की है। कही-कही भाषा की द ष्टि से संवाद थोड़े कठिन भी लगते है, जैसे कार्नेलिया के साथ सुवासिनी की वार्ता ; आम्भीक के साथ सिंहरण की बातचीत आदि। वैसे इस नाटक में संवादों की कुछ अन्य कोटियों भी मिलती हैं, यथा व्यग्यात्मक, उत्तेजनात्मक, काव्यात्मक आदि फिर भी कुल मिलाकर प्रस्तुत नाटक की संवाद योजना सफल मानी जायेगी। हाँ, जहाँ-जहाँ स्वपत आये है वे स्थल निश्चय ही संवाद सौष्ठव की द ष्टि से शिथिल कहे जायेगें। प्रस्तुत नाटक में लगभग पन्द्रह स्वगत आये हों प्रायः स्वगत लम्बे, द्वन्द्वात्मक और थोड़े बहुत कठिन हैं। संवाद योजना में जहां तक सम्भव हो ऐसे स्वगत कथन नही होने चाहिये। किंतु प्रसाद के अधिकांश नाटकों में यह दोष पाया जाता है। इसे हम उनके दार्शनिक व चिंतनशील व्यक्त्तिव का परिणाम ही मान सकते हैं।

# 7-'चन्द्रगुप्त' नाटक में अन्तर्द्वंद्व-योजना

द्वंद्व का अर्थ है संघर्ष ; दो विरोधी पक्षों का टकारव। दो व्यक्ति, दो गुट, दो भावना, दो विचार। इनमें से किसी के भी टकराव को संघर्ष या द्वंद्व कहां जायेगा। अतः द्वंद्व दो प्रकार का होता है- आंतरिक और बाहरी। ह्रदय में उठने वाले विरोधी विचारों को आंतरिक द्वंद्व या अंतर्द्वंद्व कहते है। तथा समाज में दो व्यक्ति या पक्षों के टकराव को बाह्य द्वन्द्व कहते है।

यह द्वंद्व या संघर्ष पाश्चात्य नाटकों की विशेष्ता है। इसकी योजना से कथानक में क्षिप्रता आती है, गतिशीलता बढ़ती है वे क्रियाशीलता बनी रहती है। प्रसाद के नाटकों में संघर्ष आघात मिलता है। उनमें संघर्ष के दोनों पक्ष मिलते हैं। कहीं-कहीं अन्तर्द्वन्द्व बढ़ा-चढ़ा मिलता है।

'चन्द्रगुप्त' प्रसाद के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटकों में गिना जाता है। इसमें द्वन्द्व की दोनो स्थितियाँ है। इसी कारण कथानक में शिथिलता नहीं आ पाई है। हाँ, अन्तर्द्वन्द्व वाले स्थल निश्चय ही कहीं-कहीं कथानक में शिथिलता ला देते हैं।

**बाह्य द्वन्द्व-**

इसे हम स्पष्ट शब्दों में संघर्ष कहेंगें कि नाटक के आरम्भ में ही संघर्ष का सूत्रपात हो जाता है। गुरुकूल में आम्भीक अपनी अशिष्टता से वातावरण में तनाव ला देता है और फिर चन्द्रगुप्त के साथ द्वन्द में पराजित होता है। उधर सिंहरण व चाणक्य की बातों से ज्ञात होता है कि भारत की उत्तरी सीमा पर सिकंदर का आक्रमण होने वाला है। संघर्ष की प ष्ठभूमि यहीं दिखने लगती है। आगे यह संघर्ष अन्त तक चलता है। नाटक में बाहरी संघर्ष कई रूपों में चलता है- (अ) सिकन्दर व पर्वतेश्वर के बीच, (आ) सिकंदर व चन्द्रगुप्त, चाणक्य, सिंहरण के बीच, (इ) चन्द्रगुप्त-सिल्यूकस का संघर्ष, (ई) नंद और चन्द्रगुप्त-चाणक्य के बीच, (उ) राक्षस व चाणक्य के बीच, (ऊ) पर्ववेश्वर व मगध के बीच, (ए) आम्भीक व पर्ववेश्वर के बीच, (ऐ) आरम्भीक व चाणक्य के बीच, (ओ) नन्द व राक्षस के बीच, (औ) नन्द व शकटार के बीच आदि।

(अ) **सिकंदर व पर्वतेश्वर के बीच-** सिकंदर आम्भीक को अपने पक्ष में मिला कर पर्ववेश्वर पर आक्रमण करता है। आम्भीक व्यक्तिगत अनबन के कारण पर्वतेश्वर के विरूद्ध सिकंदर की सहायता करता है। युद्ध में पर्वतेश्वर पराजित होता है पर सिकंदर उसके साथ मैत्री स्थापित करता है। किंतु इस संघर्ष का अभी अन्त नहीं होता।

(आ) **सिकंदर का चन्द्रगुप्त—चाणक्य आदि के साथ युद्ध-** भारत से लौटते वक्त सिकंदर को चन्द्रगुप्त-सिंहरण आदि के संगठन का मुकाबला करना पड़ता है। इसमें सिकंदर पराजित होता है। वह चाणक्य व चन्द्रगुप्त के साथ मित्रता का हाथ बढ़ाकर लौटता है। सिकंदर के साथ नाटक के विविध पात्रों का संघर्ष यहाँ समाप्त होता है।

(इ) **चन्द्रगुप्त व सिल्यूकस का युद्ध-** सिकंदर की म त्यु के बाद सिल्यूकस एक बार फिर भारत पर आक्रमण करता है। इस बार आम्भीक पर्ववेश्वर व मगध की सेना भी चन्द्रगुप्त का साथ देती है। सिल्यूकसं पराजित होता है। वह अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करता है। इस सघर्ष की समाप्ति यहीं पर हो जाती है।

(ई) **नन्द व चन्द्रगुप्त चाणक्य के बीच-** सीमा पर संर्घर्ष के अतिरिक्त देश में आंरिक संघर्ष भी चलते हैं। मगध राजा नन्द अत्यंत विलासी व अत्याचारी होता है। वह चाणक्य का अपमान कर उसे व चन्द्रगुप्त को निर्वासित करता है, शकटार को उसके पुत्रों के साथ अन्धे कुएं में डाल देता है, चन्द्रगुप्त के पिता व माता को कैद कर लेता है, चाणक्य नंद के नाश की प्रतिज्ञा करता है। वह चन्द्रगुप्त के साथ मिलकर इस प्रण को पूरा करता है। जनता के सामने भरी सभा में नन्द के विरुद्ध आरोप लगाये जाते है। उसी समय शकटार उसका वध कर देता है।

(उ) **राक्षस व चाणक्य के बीच-** राक्षस चाणक्य को आरम्भ से ही नहीं स्वीकारता। मगध के कैद में चाणक्य को वह प्रलोभन देकर मिलाना चाहता है पर सफल नही होता। बाद में चाणक्य उसके विरुद्ध चाल चलता है। वह राक्षस को नन्द के विरुद्ध भड़का देता है और एक चाल द्वारा नंद के मन में य बात बैठा देता है कि राक्षस गद्दार है। नंद राक्षस को विवाह के मंडप से उठवा कर कैद कर लेता है। राक्षस को चाणक्य की चाल ज्ञात हो जाती है। वह फिर से चाणक्य का विरोधी हो जाता है। बाद में मगध पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो जाने का राक्षस सिल्यूस से मिलकर अपना प्रतिशोध पूरा करना चाहता है। किंतु सिल्यूकस पराजित हो जाता है। चाणक्य सुवासिनी व राक्षस का परिणाम कराता है। राक्षस अंत में चाणक्य की महानता ह्रदय से स्वीकार कर लेता है।

(ऊ) **पर्वतेश्वर व मगध के बीच-** पर्वतेश्वर मगध के राजा को शुद्ध कहकर उसकी कन्या के साथ विवाह करने से इन्कार कर देता है। इसके कारण मगध का राजा व राजकुमारी कल्याणी उसके विरोधी हो जाते है। बाद में पर्वतेश्वर कल्याणी पर बलात हक जमाना चाहता है कि किन्तु कल्यणी उसकी हत्या कर देती है।

(ए) **आम्भीक व पर्वतेश्वर के बीच-** आम्भीक पर्वतेश्वर के विरूद्ध सिकंदर की सहायता करता है। युद्ध के मैदान में दोनों का सामना होता है। बाद में चाणक्य के प्रयत्नों से इस विरोध का शमन होता है।

(ऐ) **आम्भीक व चाणक्य-** आम्भीक शुरू से ही चाणक्य व चन्द्रगुप्त का विरोध करता है। बाद में चाणक्य की कूटनीति व अलका के त्याग से प्रभावित होकर आम्भीक चाणक्य की महानता स्वीकार कर लेता है।

(ओ) **नंद व राक्षस-** चाणक्य की चाल में फंस कर राक्षस नन्द की निगाह में गद्धार हो जाता है। अतः नंद राक्षस व सुवासिनी को कैद कर लेता है। राक्षस के मन से नंद से प्रतिशोध की भावना जाग उठती है। लेकिन इस बीच शकटार नंद का वध कर देता है।

(औ) **नंद व शकटार-** शकटार नंद का अमात्य होता है। किंतु किसी कारण वश नंद उसे व उसके सात बच्चों को अन्धे कुएँ में डाल देता है शकटार के सब बच्चे मर जाते हैं। वह किसी तरह कैद से निकल भागता है। अंत में वह नंद की हत्या करता है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में शुरू से अंत तक संघर्ष चलता है। संघर्ष के कारण कथा में गति बनी रहती है। क्रियाशीलता कहीं भी नहीं रूकती। नाटक के अंत के सब संघर्षो का शमन हो जाता है। संघर्ष की कड़ियों में नाटकीय मोड़ा भी है। इसके कारण नाटक में रूचि बनी रहती है।

**अन्तर्द्वन्द्व**- प्रस्तुत में अन्तर्द्वन्द्व भी अन्त तक चलता है इन अन्तर्द्वन्द्वों से पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ा है। कथानक को गति मिली है घटनाओं का ज्ञान हुआ है, कथा के भावी मोड़ के संकेत भी मिलते हैं।

चाणक्य का अन्तर्द्वन्द्व सबसे लम्बा है। उसके स्वागत से ज्ञात होता है कि उसके मन में सुवासिनी के प्रति आसक्ति है। वह नंद का नाश करना चाहता है और लक्ष्य की सिद्धि के लिए वह कुछ त्याग सकता है यथा "जकड़ी हुई लोह श्रखंले। एक बार तू फूलों की माला बन जा और मैं मदोन्मत विलासी के समान तेरी सुंदरता को भंग कर दूँ। क्या रोने लगूं? इस निष्ठुर यंत्रणाओं की कठोरता से बिलबिलाकर दया की भिक्षा मांगू?"

प्रथम अंक के अंत में अलका के मन में द्वंद्व उठता है क्या चाणक्य और चन्द्रगुप्त भी देश द्रोही ही गए? वे भी यवनों से मिल गए? "आर्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त - ये भी यवनों के साथी। जब आँधी और कारका व ष्टि अवर्षण और दावाग्नि का प्रकोप हो तब देश की हरी-भरी खेती का रक्षक कौप है? शून्य व्योग प्रश्न को उत्तर दिये बिना लौटा देता है। ऐसे लोग भी आक्रमणकारियों के चंगुल में फंसे रहे हों, तब रक्षा की क्या आशा। झेलम के पार सेना उतरना चाहती है, उन्मल पर्वतेश्वर अपने विचारों में मग्न हैं।" (प . 77) इससे एक ओर उसकी राष्ट्र भक्ति प्रकट होती है तो दूसरी और उतावलापन जो उसे बिना समझे ही निर्णय लेने पर बाध्य कर देता है।

चतुर्थ अध्याय में कल्याणी के मन में उसकी वर्तमान दशा को लेकर द्वन्द्व उठता है - नन्द की हत्या। मगध पर चन्द्रगुप्त का शासन। वह इस अवस्था में जीवित रहे या मर जाय? "मैं अब सुख नहीं चाहती। सुख अच्छा है न दो।............. हाँ, यह सच है। परन्तु तुम मेरे पिता के विरोधी हुए इसलिए उस प्रणय को प्रेम की पीड़ा को मैं पैरों से कुचल कर, दबा कर खड़ी री। अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा।" (प . 146) इससे कल्याणी के मन में कोमलता व अस्थिरता प्रकट होती है।

चतुर्थ अंक में मालविका और चाणक्य संवाद के समय चन्द्रगुप्त के मन में द्वन्द्व उठता है कि इतना संघर्ष होने के बाद भी उसकी स्थिति क्या है?

"संघर्ष। युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो, मालविका, आशा और निराशा का युद्ध, भावों और अभावों का द्वंद्व। कोई कभी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची में रिक्त-चिह्न लगा देता है।"

क्या उसे चाणक्य के हाथों में कठपुतली बनकर रहना पड़ेगा? यह अन्तर्द्वन्द्व चन्द्रगुप्त की मानसिक दुर्बलता को प्रकट करता

है। जिस चाणक्य ने उसे सम्राट बनाया था। उसी चाणक्य पर वह शक करता है।

चतुर्थ अंक में भारत और यहाँ के आकर्षण में कार्नेलिया का अन्तर्द्वन्द्व उसके चरित्र का उद्घाटक है। उसे भारत से प्रेम है, भारतीय चन्द्रगुप्त से प्रेम है। वह चाहती है कि उसके पिता शांति पूर्वक रहे आक्रमण न करें। "कार्नेलिया - किस पर आक्रमण होगा, पिताजी?

सिल्यूकस- चन्द्रगुप्त की सेना पर। वितरता के इस पार सेना आ पहुंची है अब युद्ध में विलम्ब नहीं।

कार्नेलिया- पिताजी, उसी चन्द्रगुप्त से युद्ध होगा जिसके लिए उस साधु ने भविष्यवाणी की थी? वही तो भारत का राजा हुआ न!

सिल्यूकस- हाँ, वही तो,....................."

कार्नेलिया- और उसी ने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी - फिलप्स का वह अशिष्ट आचरण।"

(प. 173)

इस स्थल पर कार्नेलिया के मन की उज्जवलता सामने आई है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में आंतरिक एवं बाहरी संघर्ष की एक साथ सुंदर योजना हुई है। प्रसाद के सभी नाटकों में अन्तर्बाह्य संघर्ष का समन्वय मिलता है। संघर्ष नाटक का अनिवार्य तत्त्व है और प्रसाद ने इस तत्त्व की महत्त समझते हुए ही अपने सभी नाटकों में इसका निर्वाह किया है। प्रसाद की नाट्यकला में भारतीय एवं पश्चिमी नाट्य तत्त्वों का समन्वय मिलता है। संघर्ष तत्त्व भी इसी का प्रमाण है।

# 8.'चन्द्रगुप्त' नाटक में राष्ट्रीय सांस्क तिक चेतना

साहित्यकार युग द ष्टा एवं युग स ष्टा होता है। समय की आवश्यकता को समझ कर तदनुरूप अपनी लेखिनी का उपयोग करना प्रसाद जी जैसे सजन साहित्यकार की प्रक ति के सर्वथा अनुकूल था। प्रसाद जी ने अनुभव किया था कि भारत दिनानुदिन अधिक पंगु होता जा रहा है। कारण यह कि विदेशी सरकार ने दीर्घकाल तक भारत पर शासन करने के उद्देश्य से यहाँ की जनता को मानसिक द ष्टि के रूग्ण और हीनता की भावना से ग्रस्त रखने को निश्चय कर रखा था ताकि जनमानस जाग त होकर आजादी की माँग न करें। प्रसाद जी ने इस तथ्य को समझा कि राष्ट्रीयता की भावना का विकास करके ही अँग्रेज जैसे खूंखार शत्रु से आजादी प्राप्त की जा सकती है। यही कारण है कि उन्होंने अपने सभी नाटकों में राष्ट्रीयता की भावना के उन्मेष के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किये। किन्तु प्रसाद की राष्ट्रीय भावना एक विशेष कोटि की है। दूसरे शब्दों में उनकी राष्ट्रीयता का विवेचन करते हुए समय हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि वे ऐतिहासिक नाटककार हैं और ऐतिहासिक नाटककार इतिहास की सर्वथा उपेक्षा कैसे कर सकता है। यदि वह ऐसा करेगा तो अनेक सैद्धान्तिक दोष स्वतः उठ खड़े होगें। यही कारण है कि व्यापक राष्ट्रीय भावना के समर्थक होते हुए भी प्रसाद जी ने राष्ट्रीयता के पुराने और संकीर्ण विचारों को भी यथास्थान अभिव्यक्ति दी है। ऐसे स्थलों को देखकर हमें प्रसाद की राष्ट्रीय भावना पर संदेह नहीं करना चाहिए बल्कि ऐतिहासिक नाटककार की सीमा समझकर उसे प्रांसगिक अभिव्यक्ति मान लेना चाहिए। उदाहरणार्थ प्रसाद ने जिस युग को अपने नाटकों को विषय बनाया है उस युग में राष्ट्रीयता की भावना प्रान्तीयता की भावना तक ही सीमित थी। यही कारण है कि चन्द्रगुप्त, अलका आदि जैसे सजग पात्र भी प्रान्तीयता की भावना से ग्रस्त प्रतीत होते हैं। चन्द्रगुप्त कहता है-

**"आर्य हम मागध हैं और यह मालव।"**

अलका प्रान्तीयता की भावना से आक्रांत है-

"गणतन्त्र में सब प्रजा वन्यवीरूध के समान फल फूल रही है। इधर उन्मत्त मगध साम्राज्य की कल्पना में निमग्न है।"

राष्ट्रीयता की भावना का संदेह साहित्यकार दो रूपों में दे सकता है-(1) जातीय अभिमान से मण्डित पूर्व पुरूषों की वीरता का गौरव गान कर तथा (2) वर्तमान परिस्थिति की हीनता की ओर पाठकों का ध्यान आक ष्ट कर उससे मुक्त होने की प्रेरणा देकर। प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में राष्ट्रीयता की भावना जगाने के उद्देश्य से इन दोनों पद्धतियों का उपयोग हुआ है। 'चन्द्रगुप्त' के स्त्री एवं पुरुष दोनों ही श्रेणियों के पात्र देश भक्ति की भावना से ओत-प्रोत हैं। चन्द्रगुप्त, अलका और सिहरण जिस प्रकार निजी सुख-सुविधाओं का त्याग कर राष्ट्रीय हित में लगे रहते हैं, वह वास्तव में उत्क ष्टतम है। प्रसाद की लेखिनी से निःस त राष्ट्रीयता की अजस्त्रधारा ने तत्कालीन विद्वानों को भी आक ष्ट किया था। तभी एक विद्वान् ने कहा था-

"नैराश्यपूर्ण वर्तमान और भविष्य में प्रसाद जी के आशावादी नाटक राष्ट्रीय आन्दोलन को अग्रसर करने के अनुपम साधन है। इस रूप में इनका महत्व किसी राष्ट्रीय नेता से कम नहीं। नाटककार प्रसाद की अन्यतम विशेषता यही है कि उनके नाटक साहित्यिक द ष्टि से जितने उपादेय है, राष्ट्रीय भावना को उन्मेय करने में भी वे इतने सफल है।

राष्ट्रीयता की भावना के उन्मेष के लिए सर्वप्रमुख चीज यह है कि देश के गौरवमय अतीत के प्रति जनता में आकर्षण पैदा किया जाय। प्रसाद जी ने इस कार्य को बड़ी दक्षता पूर्वक किया है। उन्होंने अपने नाटकों की कथावस्तु का चयन भारतीय इतिहास के गौरवमय अतीत से किया है। इस उद्देश्य से उन्होने वैदिक काल से लेकर बारहवीं शती तक के भारतीय इतिहास का मनोयोग पूर्वक अध्ययन मनन और आलोड़न किया। 'करूणालय' में वैदिक काल का, 'सज्जन' में महाभारत काल का, 'जनमेजय का नागयज्ञ' में उपनिषदकाल का 'अजातशत्रु' में बौद्ध काल का , विशाख में बौद्धों के पतन काल का, 'चन्द्रगुप्त' में यूननियों के आक्रमण काल का, 'स्कंदगुप्त' में हूणविद्रोह काल का, 'राज्यश्री' में हर्षकाल का तथा 'प्रायश्चित' में जयचन्द काल का ऐतिहासिक अवलम्ब लेकर कथावस्तु निर्मित की गई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसाद का समग्र नाटक-साहित्य ही राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत है। फिर भी 'चन्द्रगुप्त' में व्यक्त राष्ट्रीयता की भावना अधिक सशक्त है।

डा॰ दशरथ ओझा ने उचित ही कहा है-

"प्रसाद जी जिस प्रव त्ति और उद्देश्य को लेकर नाटक-निर्माण में तल्लीन हुए थे, उसका चरम उत्कर्ष 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रकट होता है। प्रसाद जी भारत के प्राचीन गौरव का गान करने वाले, राष्ट्रीयता के चटक रंग में रंगे ऐसे कुशल नाटककार हैं, जिन्होंने

भारतीय इतिहास के उस उन्नत हिन्दू काल की प्रमुख घटनाओं को अपने ग्रन्थों के लिए चुना है जिस पर आज कोई भी देश गौरव कर सकता है।" इस नाटक में तत्कालीन इतिहास को राष्ट्रीयता के ढाँचे में ढालने का सफल प्रयत्न किया गया है। उस समय का भारत व्यक्तिगत वैमनस्य का भार था, जबकि "आर्यावर्त का इतिहास लिखने के लिए कुचक्र और प्रताड़ना की लेखिनी और मसि प्रस्तुत हो रही थी "और" उत्तरापथ के खण्डराज्य द्वेष से जर्जर" थे, संभवतः समस्त आर्यावर्त पदाक्रांत होने वाला था। उत्तरापथ में बहुत से छोटे-छोटे गणतन्त्र थे जो 'सम्मिलित यवनबल को रोकने में असमर्थ' थे। सारांश यह कि उचित नेत त्व और स्वस्थ भावना के अभाव में देश की राष्ट्रीयता की प्रेरणा देने वाला तथा छिन्न-भिन्न हुई इस राष्ट्रीय शक्ति को एकत्रित करने वाले किसी महामानव या प्रभावशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी। आचार्य चाणक्य ने अभी आवश्यकता की पूर्ति 'चन्द्रगुप्त' नाटक में की है। प्रसाद ने चाणक्य के माध्यम से देश के प्रति अपनी समग्र श्रद्धा भावना को उड़ेल दिया है। आचार्य चाणक्य अपने श्ष्यिों को इसी व्यापक राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाते हैं-

"तुम मालव हो और यह मागध, यही तुम्हारे मान का अवसान है न, परन्तु आत्मसम्मान इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यवर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा।" देश में कुछ अभीक जैसे गद्दार भी होते हैं किन्तु सिंहरण जैसे वीर की कमी भी नही होती। अलका कहती है-

आर्यावर्त के सब बच्चे अंभीक जैसे नहीं, वे इनकी मान प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कर जायेंगे। अलका का यह विश्वास निराधार नहीं क्योंकि उसे सिंहरण जैसे वीर पुरूष की निम्न उक्ति पर विश्वास है-

"परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं गांधार भी है। यही क्या समग्र आर्यावर्त है। .. गांधार आर्यावर्त से भिन्न नहीं है, इसलिए उसके पतन को मैं अपना अपमान समझता हूँ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि नाटककार ने तत्कालीन इतिहास का सहारा लेकर 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय-भावना के उन्ष में एक गति दी, अतीत की घटनाओं द्वारा वर्तमान के लिए राष्ट्रीयता का अमर सन्देश दिया है जो 'चन्द्रगुप्त' के एक-एक पात्र के जीवन और उसे उनके कार्यों से स्पष्ट है। यदि हम चाणक्य और अलका इन पात्रों की उक्तियों पर ध्यान दें तो उक्त तथ्यों की पुष्टि होगी। चाणक्य की चित्रंण नाटककार ने राष्ट्रनायक के रूप में किया है। वह दूरदर्श राजनीतिज्ञ है। वह समझ जाते है कि-"अब केवल परिणित से काम नहीं चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्डनीति की आवश्यकता है। हर सच्चे राष्ट्र सेवक की भाँति उसे भी क्षोभ है कि-

"कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है। क्या इसलिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था। ... यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मणों का भेद न रखेंगे। राष्ट्र जब शत्रुओं के आक्रमण के खतरे से गुजर रहा हो, तो उस समय अलका जैसी राष्ट्र-सेविका का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। अलका कितनी सजग है, यह निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है-

'तक्षशिला के वीर नागरिको! एक बार अभी-अभी सम्राट् चन्द्रगुप्त ने इसका उद्धार किया था, आर्यावर्त-प्यारा देश-ग्रीकों की विजय-लालसा से पुनः पद्दलित होने जा रहा है, तब तुम्हारा शासक तटस्थ रहने का ढोंग करके पुण्यभूमि को परतन्त्रता की श्रंखला पहनाने का द श्य राजमहल के झरोखों में देखेगां। राजा कायर है और तुम?" राष्ट्र के नौजवान सपूतों को सम्बोधित कर अलका कहती है-

**हिमाद्रि तुंग श्रंग से**
**प्रबुद्ध शुद्ध भारती—**
**स्वयं प्रभा समुज्वला**
**स्वतन्त्रता पुकारती—**
**अमर्त्य वीर पुत्र हो, द ढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।**
**प्रशस्त पुण्य पंथ है-बढ़े चलो, बढ़े चलो।**
**असंख्या कीर्ति-रश्मियाँ,**
**विकीर्ण दिव्य दाहसी,**
**सपूत मात भूमि के**

**रूको न शूर साहसी**

**अराति सैन्य सिन्धु में-सुवाडवाग्नि से जलो,**

**प्रवीर हो जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।**

प्रस्तुत गीत की एक-एक पंक्तियाँ देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत हैं। नाटककार ने अलका के माध्यम से अपने उस हृदय के उद्‌गार को शब्द प्रदान किया है जो सदा सर्वदा यही चाहता है कि देश सुखी और सम द्ध बने। अलका के निम्न शब्द-

"राज्य किसी का नहीं है। वह अनुशासन का है- भाई, तक्षशिला तुम्हारी नहीं और हमारी भी नहीं है। तक्षशिला आर्यावर्त का एक भू-भाग है, वह आर्यवर्त का होकर रहे, इसके लिए मर मिटो।" यह सिद्ध करते हैं कि प्रसाद जी राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानते थे।

पराधीन जनमानस में शक्ति-संचार के लिए प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में जातीय अभिमान की अभिव्यक्ति भी बड़े प्रभावशाली ढंग से की है। किये गए उपकार का बदला चुकाना भारतीय संस्क ति की विशेषता रही है। तभी चन्द्रगुप्त सिल्यूकस को बन्दी नहीं बनाता। वह कहता है-

"यवन सेनापति ! आय क तध्न नहीं होते। आपको सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देना ही मेरा कार्य था।" भारतीय गुणग्राही होते हैं। चाणक्य सिकन्दर से कहते हैं-

"तुम वीर हो सिकन्दर ? भारतीय सदैव उत्तम गुणों की पूजा करते हैं।" प्रसाद जी ने विदेशी पात्रों के मुख से भी भारतीय गौरव का कथन कराया है। कार्नेलिया का 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' शीर्षक गीत अत्यंत मार्मिक है।

सिकन्दर कहता है-

"आर्यवीर ! मैंने भारत में हरक्यूलिस, एचलिस्त की आत्माओं को भी देखा और देखा डिमास्थनीज को।"

इस प्रकार सिद्ध है कि 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय-भावना की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है।

# 9-'चन्द्रगुप्त' नाटक में चरित्र-चित्रण

चन्द्रगुप्त इस नाटक का सर्वप्रमुख पात्र है। यह मगध का निर्वासित राजकुमार होता है। उसके पिता मगध की सेना के माहबलधिकृत थे। किन्तु नन्द द्वारा उन्हें पद से हटा दिये जाने पर उनका परिवार बिखर गया। चन्द्रगुप्त भी भटकने लगा। फिर चाणक्य ने इसकी सहायता की। चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त आगे चलकर सम्पूर्ण आर्यावर्त का सम्राट बना। चन्द्रगुप्त की चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैः-

1. **स्वतन्त्रता रक्षक**- नाटक के आरम्भ में ही चन्द्रगुप्त को हम सर्वसाधारण की स्वतन्त्रता के रक्षक के रूप में देखते हैं। वह सिंहरण व आम्भीक को कहता है- "प्रत्येक निरापद आर्य स्वतन्त्र है, उसे बन्दी नहीं बना सकता।" उसकी यह भावना नाटक में अन्त तक बनी रहती है। यह आर्यावर्त की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए शक्तिभर प्रयन्तन करता है। उसे यह सहन नहीं होता कि यवन आक्रमणकारी आर्यावर्त को गुलाम बनाये। वह इसलिए सिकन्दर को कहता है- "मैं यवनों को अपना शासक बनने को आमन्त्रित करने नहीं आया है।"

2. **आत्मसम्मानी**- चन्द्रगुप्त स्वाभिमानी राजकुमार है। वह किसी भी कीमत पर अपने आत्मसम्मान को ठेस नहीं लगने देता। उसके मत में आत्मसम्मान की रक्षा ही जीवन की सार्थकता है। वह चाणक्य को कहता भी है- "आर्य! संसार भी की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्मसम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।" अपने स्वाभिमान के प्रति वह कितना जागरूक है इसका उदाहरण एक अन्य स्थल पर भी मिलता है। सिकन्दर उसे भारत का सम्राट बनाने में सहायता देना चाहता है लेकिन वह साफ कह देता है "मुझे आपसे सहायता नहीं लेनी।" इतना ही नहीं वह इसी क्रम में आगे कहता है-"मुझे लाभ से पराभूत गान्धार राज आम्भीक समझने की भूल न होनी चाहिए, मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ।" नाटक के चौथे अंक में यूनानी सेनापति फिलिप्स उसे द्वन्द्व युद्ध के लिए चुनौती देता है तब भी वह साफ कह देता है कि "आधी रात, पिछले पहर, जब तुम्हारी इच्छा हो।"

3. **द ढ़प्रतिज्ञ**- चन्द्रगुप्त चाणक्य के सामने प्रतिज्ञा करता है कि उसके रहते आक्रमणकारी आर्यावर्त का नाश नहीं कर सकते। वह चाणक्य को कहता है "गुरूदेव, विश्वास रखिए! यह सब कुछ नहीं होने पायेगा। यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता है कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेंगे।" चौथे अंक में भी जब चन्द्रगुप्त को ज्ञात होता है कि सिंहरण सेनापति के पद को छोड़ना चाहता है तो चन्द्रगुप्त विचलित नहीं होता। बल्कि कहता है कि आज से मै ही बलाधिकृत हूँ। कोई सहायता न दे तो भी मैं विचलित नहीं होऊँगा।

4. **कृतज्ञ**- चन्द्रगुप्त, सिल्यूकस के अहसान को भूलता नहीं है। सिल्यूकस ने जंगल में उसे व्याघ्र का शिकार होने से बचाया था। उसके लिए चन्द्रगुप्त सदैव सिल्यूकस का कृतज्ञ बना रहता है। वह कहता भी है-"भारतीय कृतध्न नहीं होते। सेनापति! मैं आपका अनुग हित हूँ, अवश्य आपके पास आऊँगा।" इसी भांति सिकन्दर के विरूद्ध लड़ाई में वह सिल्यूकस को घेर लेता है किन्तु उसे मारता नहीं, निकल जाने देता है। क्योंकि सिल्यूकस ने भी एक बार उसके प्राण बचाये थे। वह कहता है- "यवन सेनापति, मार्ग चाहते हो या युद्ध? मुझ पर कृतज्ञता का बोझ है। तुम्हारा जीवन! इतना ही नहीं नाटक के अन्त में भी, सिकन्दर की म त्यु के बाद जब सिल्यूकस पुनः भारत पर आक्रमण करता है तो भी चन्द्रगुप्त युद्ध में सिल्यूकस को मारता नहीं। इस तरह प्रमाणित होता है कि चन्द्रगुप्त में कृतज्ञता की भावना अन्त तक बनी रहती है।"

5. **विनम्रता** - कृतज्ञता के साथ-साथ चन्द्रगुप्त में विनग्रता भी मिलती है। वह वीर है पर उद्दण्ड नहीं। तपोवन में जब सिकन्दर उसे अपने शिविर मं निमन्त्रित करता है तो चन्द्रगुप्त बहुत ही विनम्रता के साथ जवाब देता है- "अनु-ग हीत हुआ। आर्य लोग किसी नियन्त्रण को अस्वीकार नहीं करते।" कहीं-कहीं उसमें जो उग्रता दिखती है वहाँ उसका स्वाभिमान भी प्रकट हुआ है; उसे उद्दण्डता समझना भूल होगी।

6. **निडर व स्पष्टवादी**- सही बात कहने में चन्द्रगुप्त को कोई संकोच नहीं होता। वह सिकन्दर के शिविर में कुछ दिन रहा। वहीं वर उसने सिकन्दर को साफ बतला दिया कि वह उनकी रण कला का अध्ययन करने के लिए ही उनके शिविर में टिका रहा। उसे अन्य और कोई लोभ नहीं- "अवश्य ही यहां रह कर यवन रण नीति से मैं कुछ परिचित हो गया हूँ........मैं मग्ध का उद्धार करना चाहता हूँ पर यवन लूटेरों की सहायता से नहीं।" वह सिकन्दर के शिविर में ही बिना किसी भय के साफ चोट करने वाले शब्दों में कहता है-"लूट के लोभ से हत्या, व्यावसायियों को एकत्र

करके वीर सेना कहना, रण कला का उपहास करना है।" सिकन्दर के सामने ही वह आम्भीक को बुरी तरह फटकार देता है- "स्वच्छ हृदय भीरू कायरों की सी वंचक शिष्टता नहीं जानता। अनार्य! देशद्रोही! आम्भीक! चन्द्रगुप्त रोटियों के लालच या घ णाजनक लोभ से सिकन्दर के पास नहीं आया है।"

7. **कर्त्तव्यनिष्ठ**- चन्द्रगुप्त को इस नाटक में हम एक कर्मठ योद्धा के रूप में देखते है। वह व्यक्तिगत सुख के लिए राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य की हानि नहीं होने देता। राजकुमारी कल्याणी के प्रति उसका यह कथन उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है- "राजकुमारी से मेरा प्रणाम कहना और कह देना कि मैं सेनापति का पुत्र हूँ, युद्ध ही मेरी अजीविका है।" इसी भांति एक अन्य स्थल पर भी जब सिल्यूकस के विरूद्ध युद्ध के समय सिंहरण सेनापति का पद छोड़ देता है उस समय चन्द्रगुप्त की जागरूकता और कर्मठता प्रशंसनीय है। कर्तव्य के प्रति वह कितना कठोर हो जाता है इसका उदाहरण प्रस्तुत करने वाली पंक्तियां द ष्टवय हैं- "देश में डोंडी फेर दें कि आर्यावर्त में शस्त्र ग्रहण करने में जो समर्थ है, सैनिक है और जितनी सम्पत्ति है, युद्ध विभाग की है।" इसी के बाद जब एक सैनिक उससे पूछता है कि शिविर आज कहाँ रहेगा? तब चन्द्रगुप्त जवाब देता है " अश्व की पीठ पर सैनिक। कुछ खिला दो, और अश्व बदलो। एक क्षण विश्राम नहीं।"

8. **नीतिज्ञ**- चन्द्रगुप्त को सेनापति होने के नाते युद्ध कौशल और युद्ध नीति का पूरा ज्ञान है। वह जानता है कि यवन सेना का मुकाबला भारतीय रण नीति को अपनाकर नहीं किया जा सकता। इसीलिए वह ग्रीक शिविर में उनकी रण नीति का अध्ययन करता है। युद्ध के मैदान में सेना को किस तरह जमाया जाय यह भी चन्द्रगुप्त भली-भाँति जानता है। उसके कुछ कथन इस बात के प्रमाण हैं- "कल्याणी के मागध सैनिक और क्षुद्रक अपनी घात में हैं। यवनों को इधर आ जाने दो। सिंहरण, थोड़ी सी हिस्त्रिकाओं पर मुझे साहसी वीर चाहिए। .....यवनों की जल सेना पर आक्रमण करना होगा। विजय के विचार से नहीं, केवल उलझाने के लिए और उनकी सामग्री नष्ट करने के लिए।" वह सिंहरण को भी समझा देता है कि यवन सैनिक दूसरी नीति से युद्ध करते हैं। अतः उनसे युद्ध करने के लिए उन्हीं की नीति से युद्ध करना होगा।

यहाँ तक तो चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व का अच्छा पक्ष ही उभरा है किन्तु उसमें कुछ मानव सुलभ दुर्बलताएँ भी हैं। लेखक ने शायद उसके चरित्र को सहज और स्वाभाविक बनाये रखने के लिए ही ऐसे प्रसंगों की योजना की है। चन्द्रगुप्त मनुष्य पहले है और सम्राट आद में। यौवन और सौन्दर्य की तरफ आकर्षित होना मानव का स्वभाव है, भले ही वह साधारण मनुष्य हो या सम्राट। कल्याणी मालविका और कार्नेलिया के प्रति उसके मन में प्रेम के जो अंकुर लहराते हैं वे इसी बात के सूचक हैं। लेखक ने मालविका के समक्ष चन्द्रगुप्त से यह स्वीकार करवाया है कि उसके मन में सम्राट होने के उपरान्त भी एकाकीपन फैला हुआ है। वह युद्धकाल में भी मालविका के पास कुछ प्रेम भरे पल व्यतीत करने आता है।

इसी भाँति चन्द्रगुप्त में सत्ता का अहम् भी है। जब वह सम्राट बन जाता है तो कुछ समय के लिए जीवन और मरण के साथ देने वाले गुरू की मर्यादा भी भूल जाता है। आचार्य चाणक्य की कूटनीति को समझे बिना ही वह तिलमिलाने लगता है। चौथे अंक में उसके स्वागत की कुछ पंक्तियां देखिये "भीषण संघर्ष करके भी मैं कुछ नहीं हूँ। मेरी सत्ता एक कठपुतली सी है। तो फिर....मेरे पिता मेरी माता इनका तो सम्मान आवश्यक था। वे चले गये मैं देखता हूँ कि नागरिक तो क्या मेरे आत्मीय भी आनंद मनाने से वंचित किये गये। यह परतन्त्रता कब तक चलेगी?"

चन्द्रगुप्त को जिस चाणक्य ने सड़क से उठाकर सम्राट की स्थिति तक पहुँचाया वह उसी चाणक्य को समझााने में भूल करता है। जो चाणक्य हर पल चन्द्रगुप्त के नाम लिखता गया, हर कहीं उसी का यश गाता और जिसकी एक ही अदम्य इच्छा थी कि चन्द्रगुप्त को भारत का सम्राट बनाये। उसी पर चन्द्रगुप्त ने शक किया। भारत का सम्राट होने वाले चन्द्रगुप्त में इतनी समझ नही थी कि वह अपने आचार्य और संरक्षक चाणक्य के निर्णय के पीछे छिपी हुई भावना का अनुभव कर सके, यह जानकर हमें कुछ अच्छा नहीं लगता। गुरूदेव के चरणों की शपथ खाने वाला चन्द्रगुप्त ही बाद में उन्हें कह देता है।" अक्षुण्य अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं? केवल साम्राज्य का ही नहीं देखता हूँ आप मेंरे कुटुम्ब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं।" इतनी बड़ी बात उसने केवल इस भ्रम का शिकार होकर कह दी कि चाणक्य ने उसके माता पिता का अपमान किया है। युद्ध में विजय प्राप्त करके लौट रहे चन्द्रगुप्त का स्वागत करना चाहते थे उसके माता पिता किन्तु चाणक्य जानता था कि स्वागत की भीड़ में शत्रु चन्द्रगुप्त का नुकसान कर

सकते हैं और उसे चन्द्रगुप्त का जीवन बचाना था। इसलिए उसने चन्द्रगुप्त का नुकसान कर सकते हैं और उसे चन्द्रगुप्त का जीवन बचाना था। इसलिए उसने चन्द्रगुप्त के माता पिता की इच्छा को पूरा नहीं होने दिया और चन्द्रगुप्त अपने गुरू की उक्त आन्तिरक भावना को न समझ सका या कहें कि भावावेश में आकर उसने गुरू चाणक्य को भी गलत समझ लिया।

इन कमीयों के बावजूद भी चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व इस नाटक में प्रभावशाली हैं। सबसे सक्रिय पात्र है। उसमें बल, शक्ति, साहस, सूझबूझ, स्वाभिमान आदि का अद्‌भुत सामन्जस्य मिलता है।

## चाणक्य

डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त के शब्दों में- "चाणक्य एक ऐसे भारत का स्वपन देखता है जो छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त न हो और अखण्ड सार्वभौम राज्य हो। यहीर नाटक का फल है, नाटक का समस्त कार्य व्यापार इसी फल की ओर उन्मुख है और चाणक्य भी इसके लिए सर्वाधिक प्रयत्नशील है। वही इसका बीज बोता है, उसे पल्लिवत करता है और फल प्राप्त होते ही निष्काम भाव से कर्मपथ से हट जाता है। अतः चाणक्य ही नाटक का नायक है।" डॉ॰ गुप्त का कथन कुछ अंशों तक उचित प्रतीत होता है। सत्यता तो यह है जैसा कि श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है-

"चाणक्य तो मौर्य के साथ तपस्या में निरत होने के लिए कर्मक्षेत्र के रंगमंच को छोड़कर चला जाता है। अतएव, फल का उपभोक्ता वह हो नहीं सकता। जो नाटकीय फल का उपभोक्ता नहीं माना जा सकता, वह उस नाटक का नायक भी नही हो सकता।" अतः शास्त्रीय द ष्टि से चन्द्रगुप्त नाटक का नायक है तो व्यावहारिक द ष्टि से चाणक्य को नाटक का नायक माना जा सकता है क्योंकि सभी घटनाओं और स्थितियों में इसका योग है। चारित्र्य के वचिार से भी चाणक्य का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली रहा है।

चाणक्य श्रेष्ठ गुणों का भण्डार है। वह स्वाभिमानी, कर्मठ, योग्य गुरू, द ढ़ संकल्पी और निस्प ही ब्राह्मण है। प्रो॰ भूषण स्वामी का मत दर्शनीय है-चाणक्य एक ऐसा रूढ़ पात्र है जिसके ऊपर विध्न-बाधाओं आदि का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। वह एक ऐसा पत्थर है जिसके स्पर्श से लोग निखर तो सकते हैं किन्तु उस पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं छोड़ सकते। पूरे नाटक ही क्या, प्रसाद-साहित्य में वह अकेला पात्र है जो गगन सा गम्भिर, समुद्र सा विशाल, धरती सा क्षमाशील एवं शतशत अनल सा भयंकर है।" उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. **ब्राह्मण धर्म का प्रबल समर्थक** - चाणक्य ब्राह्मण होने के कारण ब्राह्मण धर्म का प्रबल समर्थक है। उसमें जातिगत स्वाभिमान है। वह निर्भिक, निस्प ह त्यागी और स्वतन्त्रचेता है। आम्भीक के कुचक्र सम्बन्धी आरोप का उत्तर देते हुए वह अपने स्वाभिमान, स्वतंत्रचेता और निर्भिकता का परिचय देता है- "राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, वह स्वराज्य में विचरता है और अम त होकर जीता है।" त्याग, क्षम, तप, और विद्या उसके प्रमुख गुण थे। वह भय अथवा लालच से कोई कार्य नहीं करता है। वह स्पष्ट करता है। वह स्पष्ट कहता है- "लोहे ओर सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाए, ऐसा नहीं हो सकता।" चन्द्रगुप्त को सेनापति बनने में जब पर्वतेश्वर विघ्न डालता है तब वह ब्राह्मण धर्म की दुहाई देकर स्पष्ट कहता है - "महाराज! धर्म के नियामक ब्राह्मण हैं, मुझे पात्र देकर उसका संस्कार करने का अधिकार है, ब्राह्मणत्व एक सार्वभौमिक शाश्वत बुद्धि वैभव है।" इस प्रकार नाटक में चाणक्य ने सर्वत्र ही ब्राह्मण धर्म की महत्ता प्रदर्शित की है।

2. **कर्मठ एवं द ढ़ प्रतिज्ञ** - चाणक्य द ढ़-प्रतिज्ञ और कर्मठ व्यक्ति है। नन्द कुल के विनाश के लिए वह प्रथम प्रतिज्ञा करता है- "यह शिखा नन्द कुल की काल-सर्पिणी है, वह तब तक बन्धन में न होगी, जब तक नन्द कुल निःशेष न होगा।" उसकी दूसरी प्रतिज्ञा थी- "दया न किसी से माँगूगाँ और अधिकर तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा। चाणक्य दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी करके दिखाता है। अपने बुद्धि बल से वह चन्द्रगुप्त का सेनापति बनाता है तथा सिंहरण, अलका आदि विभिन्न पात्रों के सहयोग से अपनी योजनाएँ क्रियान्वित करता है। अन्ततः उसे सफलता मिलती ही है।

3. **कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी** - चाणक्य कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी है। वह सम्पूर्ण भारत को एक देखना चाहता है। देश का कल्याण ही उसका लक्ष्य है। इसके लिए हर सम्भव प्रयास करता है। श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा उसकी नीति पर

प्रकाश डालते हुए लिखते हैं- "उसकी नीति है कि जब कोई कार्य-व्यापार चलता रहे, तत्सम्बन्धी रहस्य और भेद की बात किसी को ज्ञात न हो। जितने अधिक से अधिक उग्र संघर्षों में वह पड़ता है, उसकी बुद्धि उतनी ही अधिक कार्य-तत्पर हो उठती है। उसे अपना स्वार्थ पूर्ण करना ही अभिष्ट रहता है, किन उपायों और उपादनों से पूर्ण करना होगा, इसकी कुछ चिन्ता नहीं करता।" चाणक्य के शत्रु भी उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। सिल्यूकस के अनुसार वह 'बुद्धिसागर' है तो राक्षस का मत है- "वह विलक्षण बुद्धि का ब्राह्मण है, उसकी प्रखर प्रतिभा कूट राजनीतिक के साथ दिन रात जैसे खिलवाड़ किया करती हैं।" कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शिता के कारण ही वह छल से राक्षस की आंगुलीय मुद्रा ले लेता और नन्द के प्रति उसके मन में वैमनस्य उत्पन्न कर देता है। अपनी दूरदर्शिता के कारण ही वह चन्द्रगुप्त को मगध जाने से रोकता है तथा चन्द्रगुप्त के राजा बन जाने पर विजयोत्सव न मनाने की आज्ञा देता है। मालविका की म त्यू हो जाने पर उसकी दूरदर्शिता तथा उसके कूटनीतिज्ञ होने का परिचय मिलता है। अपनी नीति पर उसकी दूरदर्शिता तथा उसके कूटनीतिज्ञ होने का परिचय मिलता है। अपनी नीति पर प्रकाश डालते हुए वह पहले ही सिंहरण व चन्द्रगुप्त से कह देता है- "पौधे अन्धकार में बढ़ते हैं और मेरी नीति लता भी उसी भाँति विपत्ति तम में लहलही होगी। हाँ केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो चाणक्य सिद्धि देखता है चाहे कैसे ही हो।"

4. **उदारता की प्रतिमूर्ति** - चाणक्य उदार और कोमल भी है। राक्षस सिकन्दर, सिल्यूकस और आम्भीक के प्रति उसकी उदारता दर्शनीय है। सुवासिनी के प्रति उसका प्रेम प्रदर्शित करके नाटककार ने उसकी कोमल व त्ति का परिचय दिया है। नाटक के प्रारम्भ में ही जब वह अपनी झोपड़ी व पिता का पता लगाने गया था तब ही उसे ज्ञात हुआ कि शकटार को बन्दी बना लिया गया है और उसकी बेटी सुवासिनी अभिनेत्री बन गई। इस सबको सुनकर उसे दुःख हुआ। त तीय अंक के प ष्ठ द श्य में हमें चाणक्य की कोमलता-व त्ति का परिचय मिलता है। कुसुमपुर को देखकर वह सोचता है- "वह सामने कुसुमपुर है, जहाँ मेरे जीवन का प्रभात हुआ था। मेरे उस सरल हृदय में उत्कृट इच्छा थी- कोई भी सुन्दर मन मेरा साथी हो। प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी और उसके लिए मन में सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी। सुवासिनी न-न-न, वह कोई नहीं।" अन्त में सुवासिनी द्वारा विवाह का प्रस्ताव रखने पर वह कहता है- "सुवासिनी! तुम्हारा प्रणय, स्त्री और पुरूष के रूप में केवल राक्षस से अंकुरित हुआ, और शैशव का वह सब केवल हृदय की स्निग्धता थी। तुम राक्षस से प्रेम करके सुखी हो सकती हो। और मैं अभ्यास करके तुमसे उदासिन हो सकता हूँ।"

5. **कर्मवीर** - चाणक्य आजीवन कर्म में लीन रहने वाला सच्चा कर्मयोगी है। वह चन्द्रगुप्त और सिंहरण आदि सभी पात्रों को अपने संकेतों पर नचाता है। उसका कहना है- "ब्राह्मण राज्य करना नहीं जानता, करना भी नहीं चाहता, हाँ राजाओं का नियमन करना जानता है, राजा बनना जानता है।" कर्म में निरत वह सदा क्रूर एवं निष्ठुर बना रहता है क्योंकि उसका विचार है- "महत्त्वकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में पलता है।" वह निष्ठुर है वर्तमान के लिए। उसका सारा प्रयास भविष्य की सुख-शान्ति के लिए ही होती है। इसके निए वह अपना सर्वस्व त्याग कर देता है। यहाँ तक कि अपने हृदय की मधुर स्म ति सुवासिनी तक का भी छोड़ देता है। उसका कहना है - "श्रेय के लिए मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए।" अतः अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करके वह उसकी सिद्धि में ही अपने जीवन की सफलता स्वीकार करता है।

6. **महान विचारक** - चाणक्य एक महान विचारक भी है। वह प्रत्येक कार्य पर पहले भली-भाँति विचार करता है, फिर क्रियान्वित। अपने विचारों के बल पर ही वह सब पात्रों को उचित निर्देश देता है। पर्वतेश्वर जब छूरा निकालकर आत्महत्या करना चाहता है, जब चाणक्य ही उसका मार्गदर्शन करता है। वह पर्वतेश्वर को आत्महत्या से रोकते हुए यवनों से प्रतिशोध लेने के लिए तैयार करते हुए कहता है- "मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली-भाँति परिचित रहता है। परन्तु उसे अपने बल से अवगत होना चाहिए। असम्भव कहकर किसी काम को करने से पहले कर्मक्षेत्र में काँपकर लड़खड़ाओं मत पौरव। इतना ही नहीं, वह यंत्र-मंत्र अनेक सुक्तियों का प्रयोग करके अपने गहन चिन्तन मनन का परिचय देता है। जैसे, वह पौरव से कहता है- "तामस त्याग से सात्त्विक ग्रहण उत्तम" इसी प्रकार - "व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधा न पड़े," "महत्त्कांक्षाओं का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है," "श्रेय के लिए मनुष्य का सब त्याग करना चाहिए" आदि।

चाणक्य का गहन चिन्तन शनैःशनैः उसे दार्शनिक बना देता है। अपने जीवन के समय क्रिया कलापों पर विचार करता हुआ वह चन्द्रगुप्त से कह उठता है-"मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रों से कुत्सित और कलंकित हो उठा है। किसी छायाचित्र, किसी काल्पनिक महत्त्व के पीछे भ्रमपूर्ण अनुसंधान करता दौड रहा हूँ।" शान्ति खो गई, स्वरूप विस्म त हो गया। जान गया, मैं कहाँ और कितने नीचे हूँ। अपने बाल्यकाल, पिता, घर, नगर, और सुवासिनी आदि के विषय में सोचते हुए चाणक्य कहता है- "समझदारी आने पर यौवन बीत जाता है-जब तक माला गूँथी जाती है, तब तक फूल कुम्लहा जाते हैं।" नाटक के अन्त में जब ध्यानस्थ चाणक्य आँख खोलता है, तब उसे प्रतीत होता है- "चैतन्य सागर निस्तरंग है और ज्ञान ज्योति निर्मल है। तो क्या मेरा कर्म कुलाल चक्र अपना निर्मित भाण्ड उतार कर धर चुका? ठीक तो, प्रभात-पवन के साथ सब की सुख कामना शान्ति आलिंग्न कर रही है। देव! आज मैं धन्य हूँ"

इस प्रकार चाणक्य एक विचारक और दार्शनिक के रूप में भी हमारे सामने आता है।

7. **अचल हिमानी व्यक्तित्व** - चन्द्रगुप्त का शासन निष्कण्टक करने के लिए बढ़ी क्रूरता और ह्रदय हीनता देता है, जब कल्याणी पर्वतेश्वर के कलेजे में छुरी घोंप कर उसकी हत्या करती है और स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है चन्द्रगुप्त कल्याणी की आत्महत्या से दुःखी है- पर चाणक्य उसे निष्कण्टक समडता है। उसकी मान्यता है कि -"महत्त्वकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में पलता है। चलो अपना काम करो, विवाद करना तुम्हारा काम नहीं! अब तुम स्वछन्द होकर दक्षिण पथ जाने का आयोजन करो।" वह चन्द्रगुप्त को बिना किसी उलझन के दक्षिणी पथ जाने के आदेश देता है। राक्षस के षडयन्त्र को निरर्थक करने के अभिप्राय से ही वह विजयोत्सव का निषेध करता है। चन्द्रगुप्त के माता-पिता विजयोत्सव के न होने से अप्रसन्न होते हैं और दोनों बाहर चले जाते हैं। चाणक्य के इस कार्य से चन्द्रगुप्त भी असन्तुष्ट हैं किन्तु, चाणक्य की द ष्टि तो सिद्धि पर है-साधन की तो उसे रंचमात्र चिंता नहीं। चाणक्य का विश्वास है कि माता-पिता के रहते चन्द्रगुप्त के एकाधिपत्य में बाधा पड़ती है। चाणक्य को सब कुछ सह्म है, पर चन्द्रगुप्त के एकाधिकार में तनिक भी विघ्न सहन नहीं है।

अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए छल और कपट का आश्रय लेना चाणक्य के लिए कोई बड़ी बात नहीं है। पर्वतेश्वर को मगध का आधा राज्य दिलाने का आश्वासन देकर उसने मगध क्रान्ति में उसकी सहायता ली। राक्षस की मुद्रा एवं पत्र के द्वारा नन्द और राक्षस वैमनस्य तथा शत्रुता कराने की चेष्टा की। राक्षस को बन्दी बनाने और मुक्त करने का अभिनय करा कर चाणक्य राक्षस का विश्वास प्राप्त कर लेता है। चर के मुख से वास्तिविक स्थिति का ज्ञान होने पर राक्षस अपनी मुर्खता पर पश्चाताप करता है और यथाशीर्घ मगध पहुँचने की चेष्टा करता है।

चाणक्य जटिल राजनीति की गुत्थियाँ सुलझाने तथा क्रूरतापूर्वक उसे कार्यान्वित करने में जितना निपुण और द ढ़ प्रतिज्ञ है वैसे ही उसके चरित्र का मधुर और भावना से अखिल दूसरा पक्ष भी है। इस संसार में वह अकेला और सुहृदविहीन है। युवावस्था में उसकी भी इच्छा थी कि कोई उसका मित्र तथा उसके जीवन में आने वाले हर्ष-विवाद में सहचर होता है। कुसुमपुर को देखकर उसकी भावप्रणवता व्यक्त हो पड़ी है-

"वह सामने कुसुमपुर है, जहाँ मेरे जीवन का प्रभात हुआ था। मेरे उस सरल ह्रदय में उत्कृट इच्छा थी कि कोई भी सुन्दर-मन मेरा साथी हो। प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी और उसके लिए सर्वस्व लूटा देने की सन्नद्धता थी।"

वह सुवासिनी को भूलने की चेष्टा करता है परन्तु उसकी स्म ति बराबर उसके मानस-पटी पर उभर आती है। सुवासिनी के सामने पड़ने पर चाणक्य की प्रणय भावना उसकी आँखों में झलक उठती है। उसके स्मरण दिलाने पर चाणक्य अपने संयमित करता है और पुनः अपने कर्त्तव्य मार्ग पर उन्मुख हो जाता है।"

इस प्रकार संघर्ष में उसका जीवन किस प्रकार बिखरता चलता है, वह उसके सबल चरित्र की विशेषत है। एक ओर राजनिति है जहाँ वह क्रूर, शील और अचल हिमानी के समान जड़-गौरव का उपासक है और फिर अपने आप को झकझोर कर उद्देश्य के लिए प्रेम की बलि चढ़ा है, जिसमें सचमुच ही प्रेमिका सुवासिनी का जीवन सुखद हो सकता है। अन्तर्ज्वाला की एक नन्हीं सी चिन्गारी लेकर वह जीवन से विरक्ति की ओर जाता है, जहाँ पर वह ब्राह्मण की रेखा परिलक्षित होती है-

"मैं आज जैसे निष्काम हो रहा हूँ। विदित होता रहा है कि आज तक जो कुछ किया, वह सब भ्रम था, मुख्य वस्तु आज सामने आई। आज मुझे अन्तर्निहित ब्राह्मणत्व की उपलब्धि हुई हैं।"

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि चाणक्य के चरित्र में विभिन्न विरोधी गुणों का समन्वय हुआ है। वह क्रूर एवं कठोर है तो कोमल भी है, वह निर्भिक स्वाभिमानी है तो उदार भी है। उसका प्रमुख लक्ष्य राष्ट्र का कल्याण है। इसकी सिद्धि के लिए वह उचित अनुचित सभी साधनों का प्रयोग करता है क्योंकि "वह सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे भी हों।" वह नाटक में आदि से अन्त तक छाया हुआ है। वही सब घटनाओं, कार्यों व प्रसंगों का केन्द्र बिन्दु है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि चन्द्रगुप्त नाटक में चाणक्य कार्य, सशक्त एवं द ढ़ पात्र है।

# सिंहरण

'चन्द्रगुप्त' नाटक में सिंहरण की एक ऐसा पात्र है, जो कि वास्तव में सच्ची वीरता और क्षत्रित्व का प्रतिनिधित्व करता है। इसके साथ ही साथ उसके चरित्र में कर्त्तव्य परायणता और संघर्षमय प्रकृति का भी योग है। समस्त पुरुष पात्रों में सिंहरण ही का चरित्र समय और परिस्थिति के अनुकूल बन पड़ा है।

1. **निर्भिक** - सिंहरण मानवगण के राष्ट्रपति का पुत्र है, जो कि वास्तव में सच्चा वीर है। उसकी वीरता और निर्भिकता उसके प्रत्येक संवाद में द ष्टिगत होती है। वह तक्षशीला विश्विद्याालय का छात्र है जहाँ उसने राजनीति, अर्थशास्त्र और शस्त्रशास्त्र की शिक्षा चाणक्य जैसे महान् गुरू से ग्रहण की है। हमें सिंहरण के दर्शन नाटक के प्रथम अंक के प्रथम द श्य में होते हैं। जिससे उसके तक्षशीला के स्नातक होने का परिचय मिलता है। इसके साथ ही साथ यह भी पता चलता है कि वह चाणक्य का चन्द्रगुप्त की तरह अन्धानुकरण करने वाला नहीं है, बल्कि उसका अपना एक अलग व्यक्तित्व है। वह दूरदर्शी है, वह जानता है कि किस परिस्थिति में उसका क्या कर्तव्य है और इसलिए चाणक्य को सतर्क करता हुआ कहता है-

   "आर्यावर्त्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रताडण की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड राज्य-द्वेष से जर्जर है। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।"

2. **कर्मठ** - सिंहरण एक कर्मशील पुरूष है, जिसके रक्त में बलिदान गुंजरित है, जिसके स्नायु-तन्तुओं में देश की दुर्दशा -प्रसूत पीड़ा मसोस कर कोलाहल करती रहती है, जिसके शब्दों में बादल की गम्भीर गर्जना भरी है तथा जिसकी भावनाओं में पर्वत की स्थिरता है। मुगल साम्राज्य में षड्यन्त्र रचने की सूचना पहले ही गुरूकुल में मिल जाती है। वह पहले ही जानता है कि आम्भीक यवनों से संधि कर चुका है, इसलिए उसको देखते ही वह उससे घ णा करने लगता है। यद्यपि आम्भीक राजकुमार है और सिंहरण एक स्नातक, लेकिन फिर भी वह राजकुमार के प्रश्नों के उत्तर देना अपने सम्मान के विरूद्ध समझता है, क्योंकि उसकी द ष्टि में आम्भीक देशद्रोही है। इसके विपरीत स्नातक होते हुए भी वह अपने व्यक्तित्व को अधिक महत्त्व देता है क्योंकि वह स्वतंत्र है, उसे अपने देश की चिन्ता है, उसके मन में यवनों के प्रति आन्तरिक घ णा है, वह अपना कर्त्तव्य और कर्मक्षेत्र अच्छी तरह जानता है। इसलिए वह आम्भीक के प्रश्नों के उत्तर देना पसंद नहीं करता और उसकी विनम्रता अशिष्टता का रूप धारण कर लेती है और उसके उत्तरों में है घ णात्मक ऐंठन। देखिए-

   "आम्भीक - कैसा विस्फोट है? युवक तुम कौन हो?

   सिंहरण - एक मालव!

   आम्भिक - नहीं, विशेष परिचय की आवश्यकता है।

   सिंहरण - तक्षशीनला गुरूकुल का एक छात्र।

   आम्भिक - "देखता हूँ कि तुम दुर्विनीत भी हो।"

   इस वार्तालाप में जब आम्भिक उससे उसका परिचय पूछता है, तो वह केवल 'एक मालव' कह कर अपना परिचय देता है, बाद में आम्भीक हठ करने पर भी इतना ही बतलाता है कि वह तक्षशीला गुरूकुल का एक छात्र है। इससे ही हमें पता चलता है कि उसमें एक आत्मबल है। उसे अपने पर विश्वास और फिर मौर्य-संस्कृति की उस पूर्ण ज्योति का आभास है, जो उस समय यवन सन्धियों में संगुम्फित आशाओं से धुंधली हो रही है। इस प्रकार तक्षशीला के गुरूकुल में ही उसके व्यक्तित्व के दोनों पक्ष स्पष्ट हो जाते हैं। पहला देशभाक्त मालव का और दूसरी ओर वह अलका की ओर आकर्षित है।

3. **राष्ट्र भक्त** - सिंहचरण सच्चा देशभक्त है। देश की स्थिति से भली भाँति परिचित होने के कारण वह सदा देश के लिए मर मिटने को तत्पर रहता है। वह वीर हृदय है, जो हर पल युद्ध के लिए सन्नद्ध है। वर्तमान स्थिति का वर्णन करता हुआ वह कहता है- "एक अग्निमय गन्धक का स्रोत आर्यावर्त्त के लौह अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। चंचला रण लक्ष्मी इन्द्रधनुष सी विजय माला हाथ में लिए उस सुन्दर नील लोहित प्रलय जलद में विचरण करेगी और वीर हृदय मयूर से नाचेंगे।" उसका वीर हृदय सदा नाचता ही रहता है। देश के हितार्थ ही वह बन्दी रहता है। उद्‌भांड में सिन्धु पर बन रहे सेतु का मानचित्र बनाकर मलाविका जब अलका को देती है तब तक यवन सैनिक उसे छिनना चाहता है परन्तु सिंहरण शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर अलका से वह मानचित्र ले लेता है और यवन सैनिक का सामना करता है- "उसके (मानीचत्र के) अधिकारी का निर्वाचन खड्ग करेगा। तो फिर सावधान हो जाओ, (तलवार खींचता है)" सिंहरण के भीषण प्रत्याक्रमण से भयभीत होकर यवन सैनिक भाग जाता है और सिंहरण घायल हो जाने पर भी नौका में बैठाकर आगे के कार्य में तल्लिन हो जाता है। जाते समय वह अलका से कहता है- "जन्मभूमि के लिए ही यह जीवन है।" वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य के संकेत पर कार्य करता है। मालवों के स्कन्धवार में युद्ध-परिषद् के सम्मुख अपनी स्थिति बताता हुआ वह कहता है- "मैं मालव सेना का बलाधिकृत हूँ। मुझे सेना का अधिकार परिषद् ने प्रदान किया है और साथ ही मैं सन्धि विग्रहक का कार्य भी करता हूँ। पंचनंद की परिस्थिति स्वयं देख आया हूँ और मगध चन्द्रगुप्त को भी भलीभाँति जानता हूँ। मैं चन्द्रगुप्त के आदेशानुसार युद्ध चलाने के लिए सहमत हूँ।" चन्द्रगुप्त उसे उसके भयानक दायित्व का स्मरण कराता है और समझाता है कि हमें यवन आक्रमणकारियों को हटाना है और उन्हें, जिस प्रकार हो, भारतीय सीमा से बाहर करना है। इसलिए शत्रु की ही नीति से युद्ध करना होगा। सिंहरण सहर्ष स्वीकार करता हुआ कहता है- "सेनापति की सब आज्ञाएँ मानी जाएगी, चलिए।" नाटक के अन्त तक वह आज्ञाकारी सैनिक बनकर अपनी देशभक्ति का परिचय देता है।

4. **कर्त्तव्यपरायण एवं स्वाभिमानी** - सिंहरण देश भक्ति जैसे महान दायित्व को पूर्णरूपेण निभाने में सफल सिद्ध होता है। यवन आक्रमणकारियों का सामना करते हुए जब सिकन्दर ही उसके सामने आ जाता है, तब वह उसे घायल करने में चूकता नहीं। वह पहले ही सिकन्दर से कहता है- "तुमको स्वयं इतना साहस नहीं करना चाहिए सिकन्दर! तुम्हारा प्राण बहुमुल्य है।" परन्तु जब सिकन्दर आगे बढ़कर उस पर भाले का वार करता है तो वह कब पीछे रहता है। सिकन्दर शीघ्र ही उसके भयानक प्रत्याघात से घायत होकर गिर जाता है। यद्यपि तीन यवन सैनिक कूदकर सिंहरण से युद्ध करने पहुँचते हैं परन्तु वह उनसे युद्ध न करते हुए कहता है- "यवन! दुस्साहस न कर! तुम्हारे सम्राट की अवस्था शोचनीय है, ले जाओ, इनकी शुश्रूसा करो!" दुर्ग का द्वार टूट जाने पर, जब यवन सैनिक अन्दर घुस आते हैं, तब सिंहरण मालव सैनिकों को द ढ़ रहने की प्रेरणा देता हुआ कहता है- "कुछ चिन्ता नहीं! द ढ़ रहो। समस्त मालव सेना से कह दो सिंहरण तुम्हारे साथ मरेगा। अलका! मालव के ध्वंस पर ही आर्यों का यशो-मंदिर ऊँचा खड़ा हो सकेगा।" इस प्रकार एक और वह अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय देता है तो दूसरी और अपने स्वाभिमान का।

5. **आदर्श प्रणयी** - सिंहरण एक ओर देश प्रेमी है तो दूसरी ओर अलका का सच्चा पणयी, नाटक में प्रारंभ से ही वह अलका से प्रभावित होता है। यद्यपि अलका का भाई आम्भीक देशद्रोही है और पिता गान्धार नरेश स्वयं यवनों के समर्थक, परन्तु अलका का देश प्रेम और सहृदयता उसे आकर्षित किए बिना नहीं रहती। प्रारम्भ में वह अलका के स्नेहानुरोध से ही गान्धार छोड़कर जाता है। बन्दीग ह में अलका के साथ घायल सिंहरण अपनी दुर्बल स्थिति को स्वयं ही उसे बताता है। अलका के यह कहने पर कि वह यदि पर्वतेश्वर से विवाह कर ले तो उसे बन्दीग ह से छुड़ा सकती है, तब सिंहरण कहता है - "अच्छा होता कि इससे पहले मैं ही न रह जाता। कठिन परिक्षा न लो अलका! बड़ा दुर्बल हूँ। मैं जीवन-मरण में तुम्हारा संग न छोड़ने का प्रण किया है। और तुम पंचनंद की अधीश्वरी बनने की आशा में ××× तब मुझे रणभूमी में प्राण देने की आज्ञा दो।" इस प्रकार वह अलका के प्रति अपने प्रेम का संकेत देता है। अतः देश के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर चुकने के बाद अलका और सिंहरण दोनों का विवाह हो जाता है।

6. **श्रेष्ठ विचारक** - सिंहरण नाटक में यत्र-तत्र अपने अनेक विचार प्रस्तुत करके अपने गहन चिन्तन मनन का परिचय देता है। नाटक के प्रारम्भ में वह अलका को समझता हुआ कहता हैं- "भद्रे, जीवन काल में भिन्न-भिन्न मार्गों परीक्षा करते हुए जो ठहरता हुआ चलता है, वह दूसरों को लाभ ही पहुँचाता है। यह कष्टदायक तो है, परन्तु निष्फल नहीं।" अलका के यह कहने पर कि मनुष्य को अपने जीवन और सुख का ध्यान रखना चाहिए, सिंहरण कहता है- "मानव कब दानव से भी दुर्दान्त, पशु से भी बर्बर और पत्थर से भी कठोर, करूणा के लिए निखकण्ठ हृदयवाला हो जाएगा,

नहीं जाना जा सकता। अतीत सुखों के लिए सोच क्यों, अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा, फिर चिन्ता किस बात की?" अन्त में आम्भीक को समझाता हुआ वह कहता है- "मनुष्य साधारण धर्मा पशु है, विचारशील होने से मनुष्य होता है और निःस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।"

इसी प्रकार वह सम्राट चन्द्रगुप्त की मानसिक वेदना पर विचार करते हुए कहता है- "सम्राट मनुष्य हैं। अपने से बार-बार सहायता करने के लिए कहने में, मानव स्वभाव विद्रोह करने लगाता है।" इस प्रकार सिंहरण का चरित्र एक श्रेष्ठ चिन्तक और विचारक के रूप में भी देखा जा सकता है।

वास्तव में सिंहरण एक देशभक्त, कर्त्तव्यशील, आत्माभिमानी एवं भावुक युवक है जिसके चरित्र में शौर्य और कोमलता का मणिकांचन संयोग हुआ है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में वह सच्ची मानवता का प्रतिनिधित्व करता है। सिंहरण का चरित्र नाटक में सबसे अधिक प्रभावशाली चरित्र है। कुरूक्षेत्र हो या हृदय का कोमल प्रान्त, सिंहरण हर प्रान्त में अपनी निष्ठा का परिचय देता है। मात भूमि की रक्षा के लिए जहाँ वह अपना जीवन उत्सर्ग करने को तैयार है, वहाँ दूसरी ओर जीवन और मरण में प्रेयसी का साथ न छोड़ने की निष्ठा भी उसके चरित्र में मिलती है। चन्द्रगुप्त का चरित्र जहाँ एक अन्तर्द्वन्द्वमयी स्थिति में डांवाडोल रहता है, वहाँ सिंहरण प्रत्येक स्थिति में अडिग रहता है और अपने कर्त्तव्य का पालन करता हुआ चलता है। नाटक के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सिंहरण का यही स्वरूप देखने को मिलता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सिंहरण के संवादों से लिया गया निम्नलिखित अंश इस कथन की चरितार्थता प्रमाणित करता है- "और यह समय चाहे मालव न मिलें, पर प्राण देने का महोत्सव पर्व वे नहीं छोड़ सकते।"

## आम्भीक

चन्द्रगुप्त नाटक में आम्भीक तक्षशीला का राजकुमार है, जो कि गान्धार का सम्राट बनने का स्वपन देखा करता है। आम्भीक के चरित्र में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं-

1. **उच्चंखल युवक** - आम्भीक के प्रथम दर्शन हमें नाटक के प्रथम अंक के प्रथम द श्य में होते हैं, जहाँ कि उसके चरित्र का प्रारम्भ एक असंयत और उच्छंखल युवक के रूप में हुआ है। वह तक्षशीला के गुरूकुल में सिंहरण एवं चाणक्य द्वारा किसी भी प्रकार अपनी सच्ची आलोचना नहीं  सुना सका। उसके अन्तर्जगत में भ्रमात्मक आत्मश्लाघा भरी हुई है। चाणक्य तथा सिंहरण दोनों को वह कुचक्रों का मूल बतलाता है। आम्भीक के मतानुसार चन्द्रगुप्त भी कुचक्र वर्ग का एक सैनिक है। इस प्रकार की पारस्परिक विद्वेषजन्म  मानापमान की भावना प्रेरित होकर वह राष्ट्र का विरोधी हो जाता है।

2. **देशद्रोही** - सिल्यूकस से मिलकर यवन-युद्ध में वह पर्वतेश्वर का विरोध करता है। इतना ही नहीं, वरन् वह यह प्रण कर लेता है कि वह देश के विरूद्ध यवनों का सहायक होगा। उसकी बहन अलका देश के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करने के लिए तैयार हैं- वह घर-बार सभी छोड़कर अपने आपको सामयिक परिस्थितियों से लड़ने के लिए तत्पर करती है परन्तु उस देशद्रोही आम्भीक की आँख उसकी दुर्बुद्धि एवं भ्रमात्मक मानापमान की भावना के कारण बन्द हैं। वह वास्तविकता को पहचान नहीं पाता है। देश पर किस प्रकार और कैसे विपत्ति के बादल घिरे हुए हैं- इसका उसे तनिक भी ज्ञान नहीं है। वस्तुतः यह कहना उचित होगा कि सब कुछ का ज्ञान होते हुए भी वह अज्ञानी, उद्दण्ड एवं उच्छ ंखल है।

3. **पश्चाताप की भावना** - उसके चरित्र का पतन वहीं हो जाता है जहाँ पर कि वह अपनी सगी बहन की हत्या तक करने को तैयार हो जाता है लकिन अन्त में अपनी भूल समझकर वह चाणक्य की शरण में चला जाता है और अपने आपको सुधारने का प्रयत्न करने लगता है।  इस प्रसंग में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

   "आम्भीक - यह अलका है। तक्षशीला में उत्तेजना फैलाती हुई- यह अलका?

   चाणक्य - हाँ आम्भीक! तुम इसे बन्दी बनाओ, मुँह बन्द करो।

   आम्भीक - (कुछ सोच कर) असम्भव! मैं भी साम्राज्य में सम्मिलत होऊँगा।

   चाणक्य - यह मैं कैसे कहूँ? मेरी लक्ष्मी अलका ने आर्यगौरव के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं उठाए। वह भी तो इसी

वंश की बालिका है। फिर तुम तो पुरूष हो, तुम्ही सोचकर देखो।

आम्भीक - व्यर्थ का अभिमान अब मुझे देश के कल्याण में बाधक न सिद्ध कर सकेगा। आर्य चाणक्य, मैं मौर्य साम्राज्य के बाहर नहीं हूँ।

चाणक्य - तब तक्षशिला दुर्ग पर मगध सेना अधिकार करेगी, यह तुम सहन करोगे?

"आम्भीक - (आवेश में) हार चुका ही हूँ, पराधीन हो ही चुका हूँ। अब स्वदेश के अधीन होने में उससे अधिक कलंक तो मुझे लगेगा, आर्य चाणक्य!"

"आम्भीक - सब स्वीकार है ब्राह्मण। मैं केवल एक बार यवनों के सम्मुख अपना कलंक धोने का अवसर चाहता हूँ। रणक्षेत्र में एक सैनिक होना चाहता हूँ। और कुछ नहीं।"

4. **राष्ट्र-प्रेमी** - वह राष्ट्र प्रेमी भी है। राज्याधिकारी होने के लालच में प्रथम जहाँ उसने सिल्यूकस की युद्ध क्षेत्र में सहायता की थी, वही आम्भीक अन्त में, युद्ध में सिल्यूकस को घायल करता हुआ अपने प्राण त्याग देता है।

5. **कायर** - आम्भीक महत्त्वकांक्षी है, परन्तु कायर। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरी करने के लिए देश की स्वतंत्रता बेच देता है। पर्वतेश्वर ने "अपने लोक विश्रुत कुल की कुमारी का ब्याह" उसके साथ उसकी "कायरता" के कारण ही नहीं किया और उसकी अपनी बहन के शब्दों में 'उस प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए जो लड़कर मर नहीं गया, वह कायर नहीं तो और क्या है?' चन्द्रगुप्त उसके मुँह पर उसे 'देशद्रोही', 'अन्यायी' कहता है, परन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं होता। द्वितीय यवन युद्ध में अपनी स्वार्थपरता और दुर्नीति के कारण अलका को भी बन्दी बनाता है।

   आम्भीक के चरित्र के उत्थान और विकास प्रेरणा को प्रसाद ने बहुत ही सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया है। आम्भीक प्रारम्भ में हमारे सामने देश-द्रोही एवं पतित रूप में आता है। अन्त में देश के लिए ही अपना प्राणोत्सर्ग करते हुए द ष्टिगत होता है।

   इस प्रकार प्रसाद जी ने आम्भीक के चरित्र का स जन एक उच्छंखल, देशद्रोही और अन्त में एक वीर सैनिक के रूप में किया है। इसके साथ उसके चरित्र में एक विशेषता यह भी है कि वह अपनी भूल को मान लेता है और उसे सुधारने का प्रयत्न भी करता है। इसीलिए वह अन्त में अपनी भूल समझकर चाणक्य की शरण में चला जाता है। प्रसाद जी के नाटकों में क्रमशः विकसनशील चरित्र का आम्भीक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

## सिकंदर

ग्रीक सम्राट सिकन्दर महत्त्वकांक्षी व्यक्ति था जो सारे विश्व को विजय कर लेने की इच्छा से भारत की ओर बढ़ा था। नाटक में उसका चरित्र एसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है-

1. **साहसी** - सिकन्दर के साहस का बड़ा प्रमाण उसका विश्व विजय की यात्रा पर निकलना ही है। एशिया के पश्चिमी खण्ड को अपनी विजय परिधि में बाँधकर भारत की ओर बढ़ना उसकी इस साहसिकता साध का घोतक है। वह वीर है और वीरता का प्रशंसक भी। "सिकन्दर केवल सेनाओं को आज्ञा देना ही नहीं जानता।" बल्कि स्वयं लड़ना जानता है और शत्रु को सावधान करके प्रहार करता है। सिकन्दर की वीरता में खिलाड़ी की सी भावना हैं।" इसीलिए वह पर्वतेश्वर की वीरता पर मुग्ध होकर कह उठता है, "आज मुझे पराजय का विचार नहीं। मैंने एक आलौकिक वीरता का स्वर्गीय द श्य देखा है।" पर्वतेश्वर की नहीं चन्द्रगुप्त, सिंहरण और अलका की वीरता की भी वह प्रशंसा करता है।

2. **कूटनीतिज्ञ** - कुशल सेनापति होने के साथ सिकन्दर चतुर राजनीतिज्ञ भी है। आक्रमण से पूर्व ही आम्भीक को अपनी ओर मिला लेना तो उसकी कूट चातुरी है ही, वह चन्द्रगुप्त को भी अपने जाल में फँसाना चाहता है, वहाँ अपनी कूटनीति का परिचय भी देता है। भारत से लौटते समय भी उसने अपनी सेना को दो दलों में विभाजित कर दिया। "अपनी विद्रोही सेनर को स्थल मार्ग से लौटाकर नौ दल द्वारा स्वयं सिन्धु-संगम तक के प्रदेश को विजय कर लेना चाहता था। इस प्रकार उसकी कूटनीति प्रत्यावर्तन में भी विजय चाहती है।"

3. **गुणग्राही** - सिकन्दर गुणग्राही है, केवल वीरता ही नहीं अन्य गुणों को भी उसे पहचान है, और प्रत्येक गुणी व्यक्ति का वह हृदय से आदर करता है। इसीलिए वह इस दाण्ड्यायन और चाण्क्य के आगे श्रद्धावनत है। दाण्ड्यायन के आश्रम में स्वयं जाकर उनकी अभ्यर्थना करना और चाणक्य को "धन्य" कहकर उसकी प्रशंसा करना इसका प्रमाण

है। भारतीय वीरों और दार्शनीकों का अभिनन्दन करता हुआ वह कहता है "आर्य वीर! भारत में हरक्यूलिस, एचिक्लिस की आत्माओं को देखा और देखा डिमास्थनीज को। सम्भवतः प्लेटों और अरस्तु भी होंगे। मैं भारत का अभिनन्दन करता हूँ।" यह उसकी सर्वगुणग्राहकता का द्योतक है।

4. **विवेकी** - सिकन्दर में धैर्य और विवेक है। सिल्यूकस फिलिप्स सम्बन्धी विवाद में इसी विवेक और धैर्य का परिचय देता है। फिलिप्स से षड्यंत्र की बात सुनकर वह आवेश में नहीं आता। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वारा उसके सेनापतियों को घायल करके निकल जाने की घटना पर वह उत्तेजित नहीं होता, बल्कि गम्भीरता से विचार करता है और सिल्यूकस की बात धैर्य से सुनता है। इसी प्रकार अपन सेना द्वारा विद्रोह किये जाने पर भी वह विवेक और अद्भुत संतुलन का परिचय देता है।

   प्रसाद ने सिकन्दर पर दो आरोप लगाये हैं- "लूट के लोभ से हत्या, व्यापारियों को एकत्र करने वाला" और "निरीह जनता का अकारण वध" करने वाला। ये आरोप किसी पक्षपात के कारण नहीं, बल्कि यवन रणनीति के कारण हैं और फिर इतना अन्दर तो इतिहास और साहित्य में हो ही सकता है।

## पर्वतेश्वर

पर्वतेश्वर इतिहास का एक प्रमुख पात्र है। वह पंजाब का राजा है। इसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषतएँ पाई जाती हैं-

1. **क्षात्रधर्म का पालक** - पर्वतेश्वर क्षात्र तेज से आप्लावित परिलक्षित होता है। उसे अपने क्षत्रीय धर्म पर बहुत अभिमान है। जब चाण्क्य उससे सहायता माँगने आता है तो वह उसकी याचना को ठुकरा देता है। इस क्षात्र-धर्म के गर्व का परिचय हमें स्थान-स्थान पर मिलता है। नन्द की बेटी कल्याणी के विवाह प्रस्ताव को वह अस्वीकार कर देता है— "प्राच्य देश के बौद्ध और शुद्र राजा की कन्या से हम परिणय नहीं कर सकते।" वह चाणक्य को यह कहकर अपने देश से निर्वासित कर देता है कि "शूद्र शासित राज्य में रहने वाले ब्राह्मण के मुख से यह बात शोभा नहीं देती।" जब सिंहरण उससे सेना सहित उस स्थान -विशेष को छोड़कर पहाड़ी पर चले जाने को कहता है तब उसके तिरस्कार भरे उत्तर में उसका अभिमान छलकता हुआ दिखाई देता है, "मालव! खड्ग-क्रीडा देखनी हो तो खड़े रहो, डर लगता हो तो पहाड़ी पर जाओ।"

2. **भारतीय संस्कृति का उपासक और संरक्षक** - वह भारतीय संस्कृति का संरक्षक और उपासक है। इसका आभास ग्रीक विजेताओं के साथ घमासान युद्ध में घायल हो जाने पर मिलता है। जब सिकन्दर उससे पूछता है कि भारतीय वीर पर्वतेश्वर! अब तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूँ? उस पर भी वह भारतीय आदर्श को सामने रखकर बड़े गर्व और अभिमान के साथ उत्तर देता है- "जैसा एक नरपति अन्य नरपति के साथ करता है, सिकन्दर!" यहाँ तक उसके चरित्र का विकास द ष्टिगोचर होता है।

3. **पराक्रम और शोर्य** - पर्वतेश्वर पराक्रम और शौर्य की साकार प्रतिभा है जिसका प्रमाण सिकन्दर के साथ उसका युद्ध है। वह पराक्रम में अद्वितीय है। उसने अपनी कुल, मर्यादा और शैर्य के आधार पर ही उसने अपनी बहन का विवाह का पुरूष आम्भीक के साथ नहीं किया और उसे अपना शत्रु बना लिया। उसका साहस यवन-युद्ध के समय प्रकट होता है, अब वह, "स्वयं गज सेना का संचालन करता है।" वह रणभूमि में जाकर खड़ा हो जाता है, वह कहता है "जय-पराजय ही उसे चिन्ता नहीं...... युद्ध में जय या म त्यु दोनों में से एक होनी चाहिए।" वह भागते हुए सैनिकों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि, "आज रणभूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है।" "रक्त के नाले धमनियों में बहें, परन्तु एक पग भी पीछे हटना पर्वतेश्वर के लिए असम्भव है।" युद्ध में घायल होने पर सिकन्दर भी अपने मुख से यह कहता है "मैंने अलौकिक वीरता का स्वर्गीय द श्य देखा है। होमर की कविता में पढ़ी हुई जिस कल्पना से मेरा हृदय भरा है, उसे यहाँ प्रत्यक्ष देखा है।"

4. **चारित्रिक स्वरूप** - उसके चिरत्र का पतन वहीं प्रारम्भ हो जाता है, जहाँ उसे सिकन्दर से सन्धि हो जाने पर, सन्धि के नियमों के अनुसार मालवों के विरुद्ध सहायता देनी है और दूसरी ओर वह अलका को भी पाना चाहता है। यह है पर्वतेश्वर के अभिमानी स्वरूप का पतन जिसने चाणक्य को अपमानित किया था और इसके साथ ही साथ उसने अलका को भी अपना बनाना चाहा था। अलका और पर्वतेश्वर के निर्मलिखित संवाद द्रष्टव्य हैं-

पर्वतेश्वर - सुन्दरी अलका! तुम कब तक यहाँ रहोगी?

अलका - यह बन्दी बनाने वाले की इच्छा पर निर्भर है।

पर्वतेश्वर - तुम्हें कौन बन्दी कहता है? यह तुम्हारा अन्याय है, अलका चलो, सुज्जीत राजभवन तुम्हारी प्रतीक्षा में है। वह मनुष्य जिसे ग्रीक-विजेता सिकन्दर "भारतीय वीर पर्वतेश्वर" कह कर पुकारता है, ऐसा महान व्यक्ति ऐसी नीचता की बाते कहे तो इस से बढ़कर उसके चरित्र के पतन की पराकाष्ठा और क्या हो सकती है?

इस प्रकार चन्द्रगुप्त नाटक में पर्वतेश्वर के चरित्र के दो रूप हैं—वीर रूप और विलासी रूप। यद्यपि प्रसाद जी ने इसके चरित्र को उभारने का भरपूर प्रयास किया है परन्तु फिर भी वे इसके ऐतिहासिक स्वरूप को उसके अनुसार संभाल नहीं सके।

## राक्षस

राक्षस के चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं-

1. **विलासिता** - प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में राक्षस मगध का अमात्य है, जो बाद में चन्द्रगुप्त का भी अमात्य बना दिया जाता है। सर्वप्रथम हमें उसके दर्शन, प्रथम अंके के द्वितीय द श्य में, मगध सम्राट नन्द के विलास-कनन में, एक विलासी युवक और सुवासिनी के प्रेमी के रूप में होते हैं। उसका प्रेमी और विलासी रूप उसके इस उत्तर से स्पष्ट होत जाता है, जबकि मगध-सम्राट नन्द के आग्रह पर यह उत्तर देता है-

   "इसका मूल्य होगा एक पात्र कादम्ब!" और उसके तुरन्त बाद ही वह सुवासिनी के गीत के बाद, उसका उत्तर देता हुआ एक गीत गाता है और इसी समय उसको मगध का अमात्य नियुक्त कर दिया जाता है।

2. **प्रेमी** - इसके बाद हमारे सामने इस राक्षस के दो रूप स्पष्ट होते हैं- पहला सुवासिनी के प्रेमी के रूप में और दूसरा नन्दवंश के अमात्य के रूप में जहाँ कि वह अपने उत्तरदायिव को अच्छी तरह निभाता है। उसका एक संवाद ही उसके उत्तरदायी स्वरूप को प्रकट कर देता है- "मैं इसका फल दूँगा। मगध जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का अपमान करके यों ही नहीं बच जाएगा। ब्राह्मणों का यह.....।"

   वह परिस्थितियों के अनुसार अपने को बदलना जानता है, राजसत्ता के अनुसार आचरण भी करता है। उस समय वह अपने प्रेमी रूप का भूल जाता है और परिस्थितियों को समझते हुए उत्तर देता है-

   ''राक्षस - राजकुमारी, राजनीति महलों में नहीं रहती, इसे हम लोगों के लिए छोड़ देना चाहिए। उद्धत पर्वतेश्वर अपने गर्व का फल भोगे और ब्राह्मण चाणक्य परीक्षा देकर ही कोई साम्राज्य-नीति समझ लेने का अधिकरी नहीं हो जाता।"

3. **विचारशीलता** - इस नाटक में राक्षस एक विचारशील अमात्य का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेम में मनुष्य अन्धा हो जाता है। वह अपने ऊँचे-ऊँचे आदर्श को भी इसके लिए छोड़ देता है। इसीलिए जब सुवासिनी का नाम उसके सामने आता है, तो वह सिर पकड़कर बैठ जाता है और पसोपेश में पड़ जाता है।

   इन्हीं विचारो के अंधड़ में राक्स्स उड़ा-उड़ा सा फिरता रहता है और जब वह स्थिर होता है, तो अपने आपको परिस्थितियों से पराजित पाकर चन्द्रगुप्त का अमात्य हो जाता है।

   इस प्रकार हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त नाटके में राक्षस का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है, वह चाणक्य की कूटनीति का माध्यम है। चाणक्य समय-समय पर उससे काम लेता रहता है। इसीलिए उसकी प्रशंसा 'अमात्य राक्षस' और 'बुद्धिकुशल अमात्य' कह कर करता रहता है। लेकिन निष्पक्ष द ष्टि से हम कह सकते हैं कि प्रसाद ने राक्षस के चरित्र का स जन एक मद्यप, विलासी और प्रेमी के रूप में किया है जो कि राजनीति से सर्वथा दूर है।

## अलका

प्रसाद जी द्वारा रचित 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अलका ही एक ऐसी अकेली नारी पात्र है, जिसके चरित्र का पूरा विकास नाटक में मिलता है। अलका तक्षशीला की राजकुमारी है। उसके सर्वप्रथम दर्शन हमें प्रथम अंक के प्रथम द श्य के क्रान्तिकारी वातावरण में होते हैं, जहाँ राज्य विरोधी षड्यन्त्र रच रहे हैं, युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं। इसी द श्य में - जब चाणक्य, सिंहरण, चन्द्रगुप्त

एवं आम्भीक के वार्तालाप से उसे ज्ञात होता है कि राज्य में षड्यन्त्रों की व्यूह-रचना हो रही है, तो वह अपना पथ निश्चित कर लेती है कि वह जीवन भर अपने देश की सेवा करेगी। इसके लिए वह अपने भाई आम्भीक और पिता को, और यहाँ तक कि राज्य को भी छोड़ देती है और इसलिए आम्भीक तथा यवन सैनिक सदैव उस पर संदेह करते हैं एवं उसे बन्दी बना लेते हैं क्योंकि उन्हें डर है कि गान्धार राज्य में विद्रोह फैला देगी। यहाँ ऐसा लगता है मानो वह आग की चिनगारी हो जो कि राज्य को भस्म कर देगी, जिससे कि आम्भीक राजकुमार जो कि सर्वस्व है, डरता है।

1. **निर्भीकता** - अलका अपने विचारों पर द ढ़ है, अपने उद्देश्य को पाने के लिए कटिबद्ध है, इसीलिए वह किसी से नहीं डरती। उसे सिर्फ अपने भारत देश की चिन्ता है। जब वह यवन सैनिकों द्वारा बन्दी बना कर लायी जाती है और आम्भीक के विचारों को जानती है, तो वह बड़ी निर्भिकता और बिना किसी हिचकिचाहट के उत्तर देती है। वह यह अच्छी तरह जानती है कि इस समय आम्भीक के सिर पर राजसत्ता का नशा चढ़ा हुआ है। इसी तरह जब वह सिल्यूकस से मिलती है, तो बड़ी निर्भिकता से उत्तर देती है-

   "सिल्यूकस - तुम कहाँ सुन्दरी राजकुमारी!

   अलका - मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदीयाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं! फिर मैं और कहाँ जाऊँगा यवन?"

2. **व्यवहार कुशल** - अन्य नारी पात्रों की भाँति अलका अपने उद्देश्य के पीछे पागल नहीं है, वरन वह व्यवहार कुशल भी है। वह परिस्थिति और समय के अनुकूल तत्क्षण निर्णय लेती है। जहां और जब भी उसके सामने कोई भी संकट का रूप आया है, तुरन्त समस्याओं का सरलीकरण उसने निश्चित कर लिया है और किया है। प्रथम अंक के दसवें द श्य में जब सिल्यूकस से उसकी भेंट होती है तो उसको डर लगता है कि कहीं वह कुछ अनुचित बर्ताव न कर बैठे। इसलिए उसको धोखा देने का निश्चय करती है। इसी प्रसंग में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है-

   ''सिल्यूकस - यहाँ तो तुम अकेली हो सुन्दरी!

   अलका - सो तो ठीक है (दूसरी ओर देखकर सहसा) परन्तु देखो, वह सिंह आ रहा है।

   (सिल्यूकस उधर देखत है, अलका दूसरी ओर निकल जाती है।)

   सिल्यूकस - निकल गई? (दूसरी ओर जाता है। और उसको भुलावा देकर चली जाती है तथा अपने प्रतियुत्पन्नमतित्व का परिचय देती है।)

3. **प्रवीण एवं बुद्धिमती नारी** - पर्वतेश्वर अलका को अपनी रानी बनाना चाहता हैं। यहाँ अलका चालाकी से काम लेती है। वह उसकी रानी बनना स्वीकार कर लेती है। परन्तु इसके साथ ही कुछ शर्तें भी रख देती है कि वह सिंहरण को मुक्त कर दे, साथ ही, वह तब तक स्वतंत्र रहेगी, जब तक देश परतंत्र है, इसके अतिरिक्त पर्वतेश्वर को यवनों के विरुद्ध युद्ध करना होगा। इस प्रकार सिंहरण स्वतंत्र हो गया और अपनी बातों को पूरा न कर सकने से पर्वतेश्वर अलका को अपनी रानी नहीं बना सका। उसे परिस्थितयों से बाध्य होकर नहीं का अभिनय भी करना होता है तथा युद्धभूमि में अपने प्रिय सिंहरण की सहायता करने में वह बन्दी भी बनायी जाती है।

4. **कर्त्तव्यपरायण एवं वीरांगना** - किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो, वह अपने कर्त्तव्य को नहीं भूल सकती—पहले से ही इसका संकेत मिलता है। पहले द श्य में ही वह अपने कर्त्तव्य की सतर्कता की ओर संकेत करती है। सिंहरण को जहाँ भी किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता पड़ी है, वहीं अलका के हाथों का सहारा लेकर वह खड़ा हो पाया है। उसकी यह कर्त्तव्यपरायणता उस समय अधिक निखर उठी है, जब वह हँसते-हँसते मालव दुर्ग की रक्षा का भार अपने ऊपर लेती है। घायलों की सेवा का भार तो नितान्त हल्का सा है। दुर्ग रक्षा के लिए वह किसी पुरूष वीर से कम सतर्क नहीं है। जब यवन आक्रमणकारी उस दुर्ग पर आक्रमण करते हैं और एक-एक करके यवन सैनिक आगे आते हैं, तब वह बड़ी ही तत्परता से पहले आए हुए दो यवन सैनिकों को बाण से मारती है। तीसरा सैनिक सिकन्दर महान है। वह बच गया, परन्तु उसके ऊपर इसकी वीरता के चिह्न बन गए। इन सभी स्थानों में अलका पूर्ण कर्त्तव्यपरायण है।

5. **आदर्श नारी** - जहाँ वह अपने बाह्य जीवन में कर्त्तव्य को निभाने में सफल रही है वहीं उसने नारीगत सहज कोमलता

का परिचय भी दिया है। नाटक के प्रारम्भ में ही पता चल जाता है कि वह सिंहरण की ओर आकर्षित है। वह एक सच्ची भारतीय नारी है जो प्रेम करती है। परन्तु अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखते हुए, वह सिंहरण की यथाशक्ति सहायता करने का प्रयत्न करती है। सम्पूर्ण नाटक में जहाँ भी उसका प्रसंग आया है, कहीं भी उसने अपनी उलझनों का, प्रेमालाप और उन्मत प्रलापों का आश्रय नहीं लिया है। प्रसाद जी ने ऐसे स्थलों पर गीतों से सहायता ली है। 'प्रेम की आह की' साँस कभी भी उसके होंठों पर नहीं आई है। वह प्रेम का उपहास 'प्रेम' कह कर नहीं करना चाहती, प्रेम सर्वदा ही उसके कर्तव्य में सहायक होता है और कर्तव्य सदा उसके प्रेम का सहायक बनता है। अन्त में सिंहरण एवं अलका का मिलन होता है और यहीं पर कहानी का अन्त हो जाता है। इसमें सिंहरण के प्रति उसका प्रेम, श्रद्धा, भक्ति सब कुछ है। इसके अलावा देशभक्ति भी उसके चरित्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

6. **देश प्रेम** - अलका नाटक के प्रारम्भ से ही हमें देश-सेविका के रूप में द ष्टिगोचर होती है। श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने इसी ओर संकेत करते हुए लिखा है- "स्त्री पात्रों में अलका का चरित्र अधिक स्फुट हुआ है।...... चन्द्रगुप्त और सिंहरण की बाते उसकी अन्तर्व त्ति के अनुकूल हैं। अतएव बद्धमूल हो जाती हैं। देशभक्ति की वहीं धुन उसमें भी समा जाती हैं।" भाई आम्भीक के देशद्रोही हो जाने पर वह सबसे अधिक उसका विरोध करती है ओर अपने पिता के समक्ष निर्भीकतापूर्वक कहती है- "महाराज! आर्यावर्त्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कर नष्ट हो जाएँगे।" अपने देश प्रेम को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है- "मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदीयाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं।" आचार्य चाणक्य, चन्द्रगुप्त और सिंहरण के संकेत पर ही वह कर्मरत रहती है। अपने आदर्श चरित्र से वह बाद में अपने भाई को भी देशद्रोही से देशप्रेमी बना लेती हैं। वह आम्भिक से कहती हैं- "भाई,...... राज्य किसी का नहीं है। सुशासन का है। जन्मभूमि के भक्तों में आज जागरण है। स्वतन्त्रता के युद्ध में सैनिक और सेनापति का भेद नहीं। जिसकी खड्ग-प्रभा में विजय का आलोक चमकेगा, वह वरेण्य हैं उसकी पूजा होगी, भाई!..... इसके लिए मर मिटो।" उसके द्वारा गाया गया यह गीत उसके देश प्रेम का ही सूचक है-

**"हिमाद्रि तुँग श ंग से**
**प्रबुद्ध शुद्ध भारती**
**स्वयं प्रभा समुज्ज्वला**
**स्वतन्त्रता पुकारती।**
**अमर्त्य वीरपत्र हो, द ढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,**
**प्रशस्त पुण्य पंथ है- बढ़े चलो-बढ़े चलो।"**

इस प्रकार अलका के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उसका देश प्रेम ही है।

इस प्रकार हम देखते है कि अलका के चरित्र में सम्पूर्ण नारीत्व मुखरीत हो उठा है। उसमें देशभक्ति और प्रेम-परायणता कूट-कूट कर भरी हुई है। इसके साथ ही 'चन्द्रगुप्त' नाटक में उसका वीर क्षत्राणी रूप भी मुखरित हो उठा है। चाणक्य के शब्दों में-"मेरी लक्ष्मी अलका ने आर्य गौरव के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं उठाए?"

## सुवासिनी

प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सुवासिनी के माध्यम से एक ऐसे पात्र का स जन किया है, जो कि चंचल मनोव त्तियों का परिचायक है। वह शकटार की पुत्री, नन्द की नर्तकी, चाणक्य की पूर्व-परिचिता एवं अनुरागर जिता तथा राक्षस की प्रणयिनी हैं। सभी रुपों में उसका एक रूप परिस्थिति के सतरंगी आइने सा है। नाटक में उसके सर्वप्रथम दर्शन हमें नन्द के विलासकानन की नर्तकी के रूप में होते हैं। यहीं से उसके चरित्र का प्रारम्भ होता है जिसके दो रूप हैं। एक तो वह 'नन्द' के विलासकानन की रानी है दूसरे हार्दिक पक्ष में वह आर्य राक्षस की प्रेयसी है। कोकिल कल काकली के कारण विलास कानन की सुन्दरी सुवासिनी नन्द की अभिनयशाला की रानी बनती है और राक्षस मन्त्री बनता है। सुवासिनी का यह पद स्वयं नन्द द्वारा घोषित किया जाता है-

"नन्द और सुवासिनी, तुम अभिनयशाला की रानी!"

1. **सफल प्रेयसी** - इसके साथ ही साथ राक्षस का प्रेम भी बढ़ता चलता है। नाटककार ने बड़ी सफलता से इस कार्य का सम्पादन किया है। सुवासिनी परिस्थितियों से लड़ती है परन्तु अपना व्यक्तित्व नहीं खोती। वह पूर्ण रूप से राक्षस की प्रेयसी है। राक्षस भी उसके लिए चिन्तित है। अपनी आँखों के सामने मिटते हुए अंधकार पर भी राक्षस को संदेह होता है कि क्या सचमुच उसके सामने प्रकाश आ रहा है? यहाँ नाटककार ने राक्षस से स्वगत भाषण करा कर सुवासिनी के चरित्र का विश्लेषण किया है। देखिए-

"राक्षस - एक परदा उठ रहा है या गिर रहा है, समझ में नहीं आता- (आँख मींच कर) सुवासिनी। कुसुमपुर का स्वर्गीय कुसुम मैं हस्तगत कर लूँ? नहीं, राजकोप होगा। परन्तु जीवन व था है। मेरी विद्या, मेरा परिष्कृत विचार सब व्यर्थ हैं। सुवासिनी एक लालच है, एक प्यास है, वह अम त है, उसे पाने के लिए सौ बार मरूँगा।"

2. **संगीत-प्रेम** - सुवासिनी परिस्थितियों के सुख दुःख की क्यारी की वह बेल है, जिसमें संगीत एवं सौन्दर्य के दो कोमल कुसुम हैं। इसी कारण से उसके जीवन प्रवाह की गति में उतार चढ़ाव आता है।

3. **महत्त्वाकांक्षी नारी** - सुवासिनी नारी है। उसमें भी मानवीय दुर्बलताएँ हैं। वह महत्त्वाकांक्षी हैं। मानवीय दुर्बलताओं का रूप उसके चरित्र में मिलता है और उसकी महत्त्वकांक्षाओं की ओर संकेत राक्षस से हट कर चाणक्य की ओर आकर्षण में हैं। एक बार वह चाणक्य की स्म ति संजोती है, फिर राक्षस से बाहुपाश में मुक्त ह्दय से सोना चाहती है। दूसरी बार पुनः चाणक्य की ओर घूमती है। राक्षस से परिणय सम्बन्धी घोषणा में समाप्ति तथा उसके जीवन का अन्त होता है।

4. **कर्त्तव्यपरायण नारी** - सुवासिनी एक कर्त्तव्यपरायण नारी है, जो कि अपनी परिस्थितियों को अच्छी तरह पहचानती है। उसके सामने चाहे जैसे कठिन से कठिन परिस्थिति हो, वह उसका सामना करने के लिए सदैव तैयार रहती है। जब तक वह सोचती है कि वह अकेली और स्वतंत्र है, तो वह अपने मन के अनुसार अमात्य राक्षस को अपना समर्पण कर देती है। परन्तु जैसे ही वह जान जाती है कि उसके पिता शकटार जीवित हैं, वह स्वतंत्र नहीं है, बल्कि खोयी हुई सम्पत्ति तो अपने आप को पिता पर छोड़ देती है। वह अपने कर्त्तव्य को पहचानती है और उसको जो भी काम दिया जाता है, वह उसको अपना कर्त्तव्य समझकर निभाती है। जब चाणक्य उसे कार्नेलिया की दूति बना कर भेजतमा है, तो वह दूती का काम भी बड़े सफलतापूर्वक करती है।

5. **प्रेम की प्रतिमूर्ति** - सुवासिनी की ह्दय प्रेमपूर्ण है, वह प्रेम करना जानती है और फिर उसे निबाहना भी। हाँ कहीं-कहीं पर कर्त्तव्य और प्रेम में अन्तर न कर सकने के कारण धोखा खा जाती है परन्तु, फिर एकदम सम्भल जाती है। राक्षस को समर्पण करने के पश्चात् उसको अपने बचपन के साथी चाणक्य की याद आ जाती है, इस समय उसके सामने एक समस्या उपस्थित हो जाती है कि वह राक्षस को वरण करे या चाणक्य को, ब्राह्मण चाणक्य स्वयं ही इसका हल प्रस्तुत कर देता है। वह अपने अनुभव के आधार पर कार्नेलिया को बतलाती है कि प्रेम क्या होता है, वह उसकी व्याख्या इन शब्दों में करती है-

"कार्नेलिया - अच्छा, यौवन और प्रेम को क्या समझती हो?

सुवासिनी - अकस्मात् जीवन-कानन में, एक राका-रजनी की छाया में छिपकर मधुर वसन्त घुस आता है, शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौन्दर्य का कोकिल-"कौन"? कह कर सबको रोकने टोकने लगता है, पुकारने लगता है। राजकुमारी! फिर उसी में प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू भरी स्म तियाँ मकरन्द सी उसमें छिपि रहती हैं।"

6. **मानवता की उपासिका**- राजनर्तकी होते हुए भी सुवासिनी में मानवीयता है। वह अपने कर्त्तव्य और प्रेम के सामने नन्द की प्राणयिनी होना अस्वीकार कर देती है और अपने कर्त्तव्य के सामने अपने प्रेम-पक्ष को, जो कि राक्षस के प्रति है, एक तरफ रख देती है। यद्यापि वह महवकांक्षिणी है लेकिन फिर भी उसने अपने चरित्र को सदैव बनाए रखा । इतना सब कुछ होने पर भी वह अपना व्यक्तित्त्व बनाए रखती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुवासिनी के चरित्र का प्रारम्भ जहाँ पतनावस्था से प्रारम्भ होता है, वहाँ उसका अन्त अपनी उन्नति की चरमावस्था पर होता है।

# कार्नेलिया

कार्नेलिया सिल्यूकस की राजकुमारी है। सम्पूर्ण नाटक में केवल यही नारी पात्र ऐसा है, जिसमें भावात्मक प्रबलता, चारित्रिक गम्भीरता, बौद्धिक अचलता एवं रूढ़ता का समन्वय नाटककार ने किया है। इस पात्र के चरित्र में कहीं भी उतार-चढ़ाव नहीं है। उसमें सर्वदा दो ही बातों का प्रधान्य दिखलायी देता है-पहला भारतीयतानुराग और दूसरा प्रेम। इन्हीं प्रसंगों के सम्बन्ध ा में उसमें भावुकता, द ढ़ता और शान्तिप्रियता दिखलायी पड़ती है।

1. **भारत भूमि की अनुरागी**- यद्यपि यह विदेशी रमणी है, लेकिन फिर भी वह भारत के एक-एक कण से, एक-एक अणु से अत्यधिक प्रेम करती है। वह इसको अपनी जन्भूमि के समान ही प्रेम करती है। वह इसकी नैसर्गिक सुषमा से अत्यधिक प्रभावित है। एक स्थल पर वह चन्द्रगुप्त से कहती है-

   "कार्नेलिया- नहीं चन्द्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्भूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल कु ज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैल-श्रेणी, हरी भरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीतकाल की धूप और भोले कृषक तथा सरल कृषक बालिकाएँ बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमाएँ हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि-भारतभूमि क्या भुलायी जा सकती है? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।"

2. **अहिंसा की पुजारिन**- जब उसको यह ज्ञात होता है कि इसी पवित्र भारतभूमि को उसका पिता अपनी वाहिनी से रक्त-र जित करेगा, तो उसको बहुत दुःख होता है। वह बड़े ही सबल और भावकतापूर्ण शब्दों में अपने पिता को युद्ध न करने की सलाह देती है। देखिए-

   "कार्नेलिया - पिता जी! यह पाप की मलिन छाया है, उसकी भावों में कितना अन्धकार है, आप देखते नहीं। उससे अलग रहिए। विश्राम लीजिए। विजयों की प्रव चना में अपने को न हारिए। महत्त्वाकांक्षा के दाव पर मनुष्यता सदैव हारी है। डिमास्थनीज ने ××××।''

3. **आदर्श प्रेयसी**- वह प्रणय के रूप और उसकी गम्भीरता को अच्छी तरह समझाती है। वह दाण्ड्यायन के आश्रम में चन्द्रगुप्त से प्रथम मिलन में ही प्रभावित हो जाती है। दाण्ड्यायन की भविष्यवाणी से भी चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व का प्रभाव उस पर पड़ता है। फिर तो उत्तरोत्तर चन्द्रगुप्त के उत्कर्ष को देखने और समय-समय पर उसके मिलन के कारण उसकी अनुराग कलि विकासोन्मुख होती रहती है। कुछ दिनों के उपरान्त अपने पिता के साथ जब वह पुनः भारत आती है, तो उसकी मुरझायी हुई प्राचीन स्म तिलता भारतीय वायु की शीतलता से हरी-भरी हो जाती है। जिस समय सिल्यूकस के मूँह से सुनती है, 'चन्द्रगुप्त का मन्त्री चाणक्य उससे क्रुद्ध होकर कहीं चला जाता है और इस समय पंचनद में उसका कोई सहायक नहीं रह गया है, तो उसके मुँह से मात्र इतना ही निकलता है, "हाँ पिताजी!" इस सूक्ष्म उत्तर में कितना विषाद और क्षोभ भरा हुआ है! लेकिन, फिर भी उसने अपने पिता से कह दिया-

   "कार्नेलिया - पिताजी, उसी चन्द्रगुप्त से युद्ध होगा, जिसके लिए उस साधु ने भविष्यवाणी की थी? वही तो भारत का राजा हुआ न?

   कार्नेलिया - पिताजी, आप ही ने म त्यु-मुख से उसका उद्धार किया था और उसी ने आपके प्राणों की रक्षा की थी।"

   कार्नेलिया - और उसी ने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी।"

   इस प्रकार वह विभिन्न तर्क देकर चन्द्रगुप्त के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है लेकिन फिर भी युद्ध हुआ और सिल्यूकस की पराजय हुई। इस पर फिर जब वह चन्द्रगुप्त को दण्ड देने लगता है, तो वह स्पष्टयता अपना प्रेम प्रकट करती है। देखिए-

   कार्नेलिया - युद्ध तो हो चुका। अब क्या मेरी प्रार्थना सुनेंगे पिताजी! विश्राम लीजिए! चन्द्रगुप्त का तो कोई अपराध नहीं, क्षमा कीजिए पिताजी! (घुटने टेकती है)

   "कार्नेलिया - (रोती हुई) मैं स्वयं पराजित हूँ। मैने अपराध किया है पिताजी! चलिए, इस भारत की सीमा से दूर ले चलिए नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी।" अन्त में उसका पिता मान जाता है और उसे गले लगा कर कहता है-

   "सिल्यूकस - (उसे गले लगाकर) अब मैं जान गया कार्नी, तू सुखी हो बेटी! मुझे भारत की सीमा से दूर न जाना होगा-

तू भारत की साम्राज्ञी होगी।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्नेलिया एक अचल और भावात्मक पात्र हैं, और जहाँ ग्रीक-संस्कृति का प्रतीक है, वह पूर्णरूपेण सफल हुई है एवं उसने उसका प्रदर्शन भी अच्छा किया है। जहाँ तक उसके स्वयं के व्यक्तित्व का प्रश्न है, वह भारतीय वातावरण के अनुसार खूब अच्छी तरह निखरा भी है।

## कल्याणी

कल्याणी के चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं-

1. **विषादपूर्ण जीवन**- 'कल्याणी' मगध की राजकुमारी है। वह चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है। उसका चरित्र प्रारम्भ से लेकर अन्त तक दुःख पूर्ण है। उसने अपने दुःखपूर्ण जीवन का परिचय इस प्रकार दिया है-

   ”कल्याणी - मरे जीवन के दो स्वपन थे- दुर्दिन के बाद आकाश के नक्षत्र विलास-सी चन्द्रगुप्त की छवी और पर्वतेश्वर से प्रतिशोध किन्तु मगध की राजकुमारी आज अपने ही उपवन में बन्दिनी है। मैं वही तो हूँ-जिसके संकेत पर मगध का साम्राज्य चल सकता था। वही शरीर है, वही रूप है, वही हृदय है, पर छिन गया अधिकार और मनुष्य का मानदण्ड ऐश्वर्य। अब तुलना में सबसे छोटी हूँ। जीवन लज्जा रंगभूमि बन रहा है। सिर झुका लेती है तो जब नन्दवंश का कोई न रहा तब एक राजकुमारी बच कर क्या करेगी?”

2. **स्वाभिमानी एवं वीरांगना** - कल्याणी के जीवन के केवल दो ही उद्देश्य थे- एक तो चन्द्रगुप्त का प्रेम पाना और दूसरा पर्वतेश्वर से प्रतिशोध। सहज स्वाभिमानी होने के कारण अपने कुल और अपनी सम्मान रक्षा की भावना हृदय में जाग्रत हो उठती है। यवह पुरूष वेश धारण कर सेना का संचालन करती है और उत्तरापथ के रणक्षेत्र में भी आ जाती है। अब उसका महत् उद्देश्य, पर्वतेश्वर की रक्षा करके अपने शौर्य और अपनी हिम्मत की धाक् जमाना था। इस प्रकार उसे हर समय अपने कर्त्तव्य और ध्येय का ध्यान रहता है। जब वह देखती है कि पर्वतेश्वर उसके ऽऊपर अत्याचार करना चाहता है, तो वह उसकी हत्या कर देती है और स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है।

3. **आदर्श प्रेमिका** - कल्याणी चन्द्रगुप्त को बचपन से जानती है। वह कुछ समय के लिए शिक्षा के लिए तक्षशीला चला आया था और वापस लौटने पर उससे मिलता है तथा कल्याणी कहती है, ”मुझे न भूले होंगे।” चन्द्रगुप्त से उसका अत्यधिक लगाव है। अतएव अपने पिता नन्द की राज्य सभा में भी वह चन्द्रगुप्त का पूरा समर्थन करती है। परन्तु नन्द की म त्यु से उसके सारे सुख-स्वपन भंग हो जाते हैं और उसके मुँह से केवल इतना ही निकलता है-

   ”कल्याणी-हाँ, यह सच है। परन्तु, तुम मेरे पिता के विरोधी हुए, इसलिए उस प्रणय को प्रेमी-पीड़ा को मैं पैरों से कुचल कर, दबाकर खड़ी रही। अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा। पिता! लो मैं भी जाती हूँ।

   इसके पूर्व कल्याणी स्पष्ट रूप में चन्द्रगुप्त के प्रति अपनी प्रेम भावना व्यक्त कर चुकी है-

   कल्याणी - ”परन्तु मौर्य! कल्याणी ने वरण किया था केवल एक पुरूष को-वह था चन्द्रगुप्त।”

   इस प्रकार कल्याणी ने अपने सम्मान के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया। प्रसाद जी ने कल्याणी का स जन एक आत्मसम्मानी, कर्त्तव्यनिष्ठ और स्वावलम्बी नारी के रूप में किया है, जो कि अपने सम्मान की रक्षा के लिए पंजाब के राजा पर्वतेश्वर की हत्या कर देती है और स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है।

# 10-'चन्द्रगुप्त' नाटक की भाषा शैली

रचना यदि रचनाकार के व्यक्तित्व का बिम्ब है तो शब्द भावों के दर्पण कहे जा सकते हैं। रचना विचारों का कोश होती है और शब्द होते हैं अर्थ के भण्डार। इसलिए रचना में भाषा का यानि शब्दों का बहुत अधिक महत्त्व होता है। शब्द यदि मरे हुये हों तो रचना जीवित नहीं रह सकती; शब्दों में अर्थ का स्पन्दन न हो तो रचना में प्राणों का संचार नहीं होता। डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी यह स्वीकारा है कि उत्तम कोटि की बात सम द्ध भाषा द्वारा ही व्यक्त की जा सकती है।

प्रसाद की रचनाओं में भाषा बहुत सम द्ध मिलती है। प्रसाद एक ओर इतिहास, पुराण व दर्शन के पंडित थे तो दूसरी ओर उन्हें सरस्वती का आशीर्वाद भी मिला था। बस यही उनके ज्ञान को उतना ही गरिमापूर्ण माध्यम मिला। जैसे रेखाओं में रंग, रंग में चमक और चमक में स्निग्धता। प्रसाद का सम्पूर्ण साहित्य इतना ही सुन्दर, स्निग्ध और स्तुत्य है।

'चन्द्रगुप्त' प्रसाद की प्रमुख नाटय रचना है। इसमें भारतीय इतिहास के एक तेजस्वी सम्राट चन्द्रगुप्त और कालजयी आचार्य चाणक्य की प्रतिभा का चित्रण है। इस रचना की भाषा, रचना के कथानक और प्रतिपाद्य के संवहन में तनिक भी नहीं लचकी है। भाषा के अनेक रूप इस नाटक में मिलते हैं- सरल भी, कठिन भी, मधुर भी, परिष्कृत भी और तद्भव भी। ऐसा लगता है जैसे भावों और विचारों ने भाषा की राह चलते हुये मनपसंद शब्दों को सूंघ-सूंघ कर उठा लिया है। प्रसाद की भाषा का भावों के साथ इतना अधिक तादात्मय मिलता है।

1. **शब्द योजना** - यह भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है। प्रसाद भाषा के सन्दर्भ में कट्टर भारतीय रहे हैं। उनके साहित्य में तत्सम शब्दों का प्राचुर्य मिलता है। इसी के साथ तद्भव तथा प्रचलित सरल शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है। किन्तु विभाषी शब्द उनके साहित्य में नहीं मिलते। सामासिक शब्दों की भी उनके साहित्य में कमी नहीं। जैसे मूर्धाभिषिक्त, तक्षशिलाधीश, पादाक्रान्त, अभिशाप अस्त्र, करका व ष्टि आदि।

   शब्द योजना पर प्रसाद का कितना अधिकार था इसे हम उनके नाटक में विद्यमान भाषा के विविध रूपों में देख सकते हैं।

2. **सामासिक भाषा** - ऐसी भाषा में कसावट होती है। जिस तरह दीवार में से एक ईंट को भी हिलाना सम्भव नहीं होता वैसे ही सामासिक भाषा के एक भी शब्द के साथ छेड़छाड़ नहीं की जा सकती। जैसे - "विनम्रता के साथ निर्भिक होना मालवों का वंशानुगत चरित्र है.........गुरूकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है; अन्य आज्ञाये, अवज्ञा के कान से सुनी जाती है।"

   इसी तरह अन्य कई स्थलों पर भी भाषा का यह कसा हुआ रूप द ष्टिगोचर होता है। जैसे- "तुम अपने अन्धेपन से दूसरों को ठुकराने का लाभ नहीं उठा सकते फिलिप्स।"

   > "विजय त ष्णा का अन्त पराभव में होता है।"
   >
   > "महत्त्वाकांक्षा के दांव पर मनुष्यता सदैव हारी है।"
   >
   > "स्म ति जीवन का पुरस्कार है सुन्दरी!"

   ऐसी कसी हुई भाषा के कारण नाटक में त्वरा आ गई है। जिस तरह घोड़े की चाल में शिथिलता चाबुक लगते ही दूर हो जाती है वैसे ही प्रस्तुत नाटक में कसी हुई भाषा ने कथानक में चुस्ती बनाये रखी है।

(3) **आलंकारिक भाषा** - प्रसाद ने काव्य की भांति गद्य में भी रूपक खड़े किये हैं। रूपकों के माध्यम से उन्होंने विचारों को आलंकारिक तरीके से व्यक्त किया है। जैसे - एक स्थल पर वे कहना चाहते हैं कि कुछ देशद्रोही शत्रु से मिलकर आर्यावर्त की स्वतन्त्रता नष्ट करने पर तुले हुये हैं। इस बात की अभिव्यक्ति उनके शब्दों में इस प्रकार हैं "आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारण की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है।"

इसी भांति एक और उदाहरण द्रष्टव्य है- आम्भीक भारत की उत्तरी सीमा पर सिकन्दर का मुकाबला न करके उसे आगे बढ़ने देना स्वीकार कर लेता है; बदले में उसे सिकन्दर से काफी धन मिला है। इस बात को लेखक ने इन शब्दों में कहा है "यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल-स्वर्ण से पुलकित होकर, आर्यवर्त की सुख रजनी की शान्ति निन्द्रा में उत्तरापथ की अर्गला धीरे से खोल देने का रहस्य है।"

ऐसी भाषा आम पाठकों और श्रोताओं की समझ से परे होती है। किन्तु प्रसाद का कथन है कि उन्होंने आम आदमी के लिए नाटक नहीं लिखे हैं। उनकी आलंकारिक भाषा उनके गद्य का सौन्दर्य है।

4. **काव्यात्मक भाषा** - प्रसाद मूलतः कवि थे। इसीलिए कई बार गद्यकार प्रसाद पर कवि प्रसाद हावी हो जाते हैं और उनके नाटक, उपन्यास व कहानियों में काव्यात्मक गद्य के नमूने बिखरने लगते हैं। प्रस्तुत नाटक में भी ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। मुख्य रूप से सुवासिनी और कार्नेलिया का वार्तालाप तो काव्यात्मक भाषा का ज्वलंत उदाहरण है, जैसे- "अकस्मात् जीवन कानन में एक राका रजनी की छाया में छिपकर मधुर बसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौन्दर्य का कोकिल 'कौन?' कहकर सब को रोकने टोकने लगता है, पुकारने लगता है। राजकुमारी! फिर एसी में प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू भरी स्म तियाँ मकरमंद सी उसमें छिपि रहती हैं।"

इसके अतिरिक्त कार्नेलिया, चाणक्य, मालविका, चन्द्रगुप्त आदि के भी कई कथन गद्यमय काव्य के उदाहरण कहे जा सकते हैं। जैसे- "मदिरा की प्याली में तू स्वपन सी लहरों को मत आन्दोलित कर। स्म ति बड़ी निष्ठुर है। यदि प्रेम ही जीवन का सत्य है तो संसार ज्वालामुखी है।" कहीं-कहीं भाषा की यह काव्यात्मकता क्लिष्ट भी हो गई है। जैसे- "अतीत के कारग ह में बन्दिनी स्म तियाँ अपने करूण निश्वास की श्रंखलाओं को झन-झनाकर सूचीभेद्य अन्धकार में सो जाती है।"

इस काव्यात्मक भाषा के लिए भी प्रसाद की आलोचना की जाती है। किन्तु एक बात हमें ध्यान में रखनी है कि प्रेम, सौन्दर्य, यौवन आदि की अभिव्यक्ति सीधी सरल भाषा में प्रभावात्मक नहीं बनती। मन में जब भावों की बाढ़ आ रही हो तब भाषा स्वतः काव्यात्मक हो जाती है। क्योंकि प्रेम और यौवन स्वयं में ही एक काव्य है। अतः ऐसे स्थल सामान्यजन को कठिन अवश्य लगते हैं लेकिन उस कठिन होने में ही ऐसे स्थलों की सुन्दरता है।

5. **पात्रनुकूल भाषा** - प्रसाद ने एक बार कहा था कि वे रचना को भाषा का अजायबघर नहीं बना सकते। अर्थात् पात्रों के अनुकूल भाषा के रूप में परिवर्तन करते चलना प्रसाद को अच्छा लगता है। फिर भी उनके साहित्य में अलग-अलग प्रव ति वाले पात्रों की भाषा में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए नाटक के आरम्भ में ही आम्भीक चाणक्य और सिंहरण के संवाद को लिया जा सकता है। आम्भीक की भाषा से अशिष्टता स्पष्ट झलकती है जबकि सिंहरण के शब्दों में साहस, विनम्रता, तेज और मर्यादा भरी हुई है। चाणक्य की भाषा में द ढ़ता, विवेक, चालाकी आदि महसूस की जा सकती है। उधर मालविका, कार्नेलिया व सुवासिनी की भाषा, प्रेम के पराग में भीगी हुई लगती है; हर शब्द को फूल की तरह सूँघकर उठाने की इच्छा होती है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि प्रसाद के नाटकों में पात्रानुकूल भाषा नहीं मिलती। यह सत्य है कि उनके सभी पात्र कठिन भाषा बोल लेते हैं लेकिन उसमें भी कही न कहीं अन्तर अवश्य होता है। चाणक्य की भाषा में आम्भीक नहीं बोल सकता और आम्भीक की भाषा सिंहरण के ओठों पर नहीं झलक सकती। यह भी एक प्रकार का भाषागत सौन्दर्य है।

6. **दार्शनिकता से प्रभावित भाषा** - प्रस्तुत नाटक के प्रथम अंक के ग्यारहवें द श्य में दाण्ड्यायन की भाषा में दार्शनिकता भरी हुई है। यह दार्शनिकता भावों की द ष्टि से भी और शब्दों की द ष्टि से भी। जैसे- "भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास-मात्र हो जाता है उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते, दूत! वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीढ़ा कन्दुक नहीं बन सकता।"

7. **प्रतिकात्मक भाषा** - कई बार बात को साफ-साफ शब्दों में न कहकर सांकेतिक रूप में कह दिया जाता है। ऐसे स्थलों पर भाषा प्रतिकात्मक हो जाती है। प्रतिकात्मक भाषा में अर्थगत सौन्दर्य वैसे ही छिपा रहता है जैसेसीपी में मोती। मोती के भीतर का पानी ही जिस तरह उसकी आब होता है वैसे ही प्रतिकात्मक भाषा से उसका अर्थ सौन्दर्य छलकता रहता है। सुवासिनी का एक कथन देखिए- "धनियों के प्रमोद का कटा-छँटा हुआ शोभा व क्ष। कोई डाली उल्लास से आगे बढ़ी, कुतर दी गयी। दमाली के मन से सँवरे हुए गोल-मटोल खड़े रहो।"

इस प्रसंग में चाणक्य के स्वगत की भी कुछ पंक्तियां अविस्मरणीय हैं- "जब माला गुंथी जाती है तब तक फूल कुम्हला जाते है.........मनुष्य की चंचल स्थिति तब तक एस श्यामल-कोमल हृदय को मरूभूमि बना देती हैं..........और सामने सफलता का स्म ति सौध। वह, इन लाल बादलों में दिग्दाह का धूम मिल रहा है।"

इस तरह चन्द्रगुप्त नाटक की भाषा अत्यन्त सम द्ध है। भावों के अनुकूल इस भाषा में जितने उतार-चढ़ाव है वह

स्प हणीय है। किसी भी पात्र को ले लीजिए। अलग-अलग स्थितियों में उसकी भाषा मधुर, कठोर, कोमल, रूक्ष, सरल और कठिन होती गई है। उदाहरण के लिए चन्द्रगुप्त के ही कुछ कथन लीजिए- "ठीक है, प्रत्येक निरपराध आर्य स्वतन्त्र हैं, उसे कोई बन्दी नहीं बना सकता है।"

"स्वच्छ हृदय भीरू कायरों की सी वंचक शिष्टता नहीं जानता। अनार्य! देशद्रोही! आम्भीक! चन्द्रगुप्त रोटियों के लालच या घ णाजनक लाभ से सिकन्दर के पास नहीं आया है।"

"रणभेरी के पहले यदि मधुर मुरली की एक तान सुन लूँ, तो कोई हानि न होगी। मालविका! न जाने आज ऐसी कामना जाग पड़ी है।"

"यह अक्षुण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं? केवल साम्राज्य का ही नहीं देखता हूँ, आप मेरे कुटुम्ब का भी नियन्त्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं।"

"संघर्ष! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो मालविका! आशा और निराशा का युद्ध?, भावों और अभावों का द्वन्द्व! कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची में रिक्त चिन्ह् लगा देता है।"

अतः स्पष्ट है कि भाषा के सरल कठिन कोमल काव्यात्मक आदि सभी रूप प्रसाद के इस नाटक में मिलते हैं। प्रसाद का मानस भारतीय संस्कृति का उपासक रहा है और इसलिए उनकी भाषा भी संस्कृत, परिष्कृत, प्रांजल और शुद्ध है।

**शैली** - प्रस्तुत नाटक में प्रसाद ने अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। नाटक में तो वैसे संवादशैली ही प्रमुख होती है किन्तु इसके अतिरिक्त भी स्वगत शैली अन्तर्द्वन्द्व शैली, व्यंग्यात्मक, भावात्मक, काव्यात्मक आदि शैलियों के अन्य कई रूप हैं। इस नाटक में लगभग पन्द्रह स्थल स्वगत और अन्तर्द्वन्द्व शैली के उदाहरण है। इस शैली गत विविधता के कारण नाटक में नयापन बना रहता है। अभिव्यक्ति में एकरसता नहीं आती। भाषा की भांति ही उनका प्रस्तुत नाटक में शैली पक्ष भी श्रेष्ठ है।

# 11-'चन्द्रगुप्त' नाटक का उद्देश्य

साहित्य स जन एक गम्भीर प्रयास है और गम्भीर प्रयास निरूद्देश्य कैसे हो सकता है? पाश्चात्य हवा के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में भी किसी समय कलावादी विचारधारा ने जोर पकड़ा। किन्तु पाश्चात्य साहित्य के समान यहाँ भी आदर्श से प्रेरित होकर किसी श्रेष्ठ कृति का स जन नहीं हो पाया। प्रसाद जी एक जागरूक साहित्यकार थे। उनके समक्ष साहित्य संस्कार के साथ-साथ पराधीन भारतीय जनता के मानसिक परिष्कार का उद्देश्य भी था। इस भावना से प्रेरित होकर प्रसाद जी ने अपन समग्र नाट्य-कृतियों में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीयता की भावना को प्रश्रय दिया। किन्तु एक कुशल साहित्य शिल्पी होने के कारण उन्होंने इन दो प्रमुख उद्देश्यों का इस प्रकार प्रतिपादन नहीं किया कि वे आरोपित लगें बल्कि उन्होंने कला के आवरण में प्रस्तुत किया है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के तीन प्रमुख तत्व माने गए हैं वस्तु, नेता और रस। स्मरणीय है भारतीय आचार्यो ने नाट्य-रचना के प्रसंग में उद्देश्य को प थक् मानकर उसकी चर्चा नहीं की है। उनकी द ष्टि में रस ही चरम उद्देश्य है और यही नाटक का लक्ष्य भी है। साधारणीकरण और रस-निष्पति को सम्पूर्ण प्रक्रिया केवल नाटक के प्रसंग में सटीक बैठती है। अतः स्वभावतः नाट्यशास्त्र में रस को नाटक के अन्य तत्वों की तुलना में विशेष महत्त्व मिला है।

इसके विपरीत पाश्चात्य आचार्यो ने रस के स्थान पर शील वैचि य प्रदर्शन और उद्देश्य को नाट्य रचना का उद्देश्य माना है। प्रारंभ में तो वहाँ भी प्रसाद जी जिस समय नाटक स जन कर रहे थे उस समय हिन्दी में केवल सुखान्त नाटकों का ही प्रचलन था। प्रसाद के भी अधिकांश नाटक सुखान्त ही हैं। किन्तु उनके कुछ नाटक पारम्परिक सुखान्तकी से भिन्न प्रकार के हैं। तात्पर्य यह है कि उनका अन्त सुःख-दुःख से भिन्न एक विशिष्ट स्थिति में होता है। ऐसे नाटकों को सुखान्त कहा जाये या दुखान्त, यह विवाद का विषय बना हुआ है। 'चन्द्रगुप्त' भी प्रसाद की एक ऐसी कृति है जिसके अन्त के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं।

चन्द्रगुप्त सुखान्त नाटक की श्रेणी में आता है या दुखान्त नाटक की श्रेणी में, इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें कई द ष्टियों से विचार करना होगा। सर्वप्रथम हम नाटक के अन्त को लें। 'चन्द्रगुप्त' अन्त में मौर्य साम्राज्य पर छाए हुए विपत्तियों के सारे बादल छट जाते हैं। नन्द-वंश का अन्त हो जाता है और उसके बाद सिकन्दर भी अपने आक्रमण में विफल होकर वापस लौट जाता है। सन्धि के नियमों को तो सिल्यूकस स्वीकार करता ही है, साथ ही दूरदर्शी चाणक्य उसकी पुत्री कार्नेलिया को भी चन्द्रगुप्त के लिए मांग लेते हैं, चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया एक दूसरे को प्रेम करते हैं और द ष्टि से नायक को नायिका की प्राप्ति होती है। मौर्यवंश का बच रहा एक मात्र शत्रु नन्द आमात्य राक्षस भी सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रति स्वामिभक्त बन जाता है तथा चाणक्य की आज्ञा से उसका मन्त्रित्म स्वीकार कर लेता है। उपर्युक्त सभी घटनाएँ सुख की द्योतक हैं। नाटक के अन्त की कुछ पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं।

चन्द्रगुप्त - "विजेता सिल्यूकस का मैं अभिनन्दन करता हूँ, स्वागत"।

सिल्युकस - "सम्राट चन्द्रगुप्त। आज मैं विजेता नहीं विजित से अधिक भी नहीं हूँ।"

× × ×

कार्नेलिया - "उस बुद्धिसागर, आर्य-साम्राज्य के महामन्त्री, चाणक्य को देखने की बड़ी अभिलाषा थी।"

चन्द्रगुप्त - "उन्होंने विरक्त होकर, शान्तिमय जीवन बिताने का निश्चय किया है।"

(साहसा चाणक्य का प्रवेश, अभ्युत्थान देखकर प्रणाम करते हैं।)

× × ×

चाणक्य - "ग्रीस की गौरवलक्ष्मी कार्नेलिया को मैं भारत की कन्या बनाना चाहता हूँ।"

× × ×

सिल्यूकस - (कार्नेलिया की ओर देखता है, वह सलज्ज सिर झुका लेती है।)

तब आओ बेटी, आओ चन्द्रगुप्त।

(दोनों सिल्यूकस के पास जाते हैं, सिल्यूकस उनका हाथ मिलाता है। फूलो की वर्षा की जय ध्वनि)

चाणक्य - (मौर्य का हाथ पकड़कर) चलो, अब हम लोग चलें।"

नाटक के अन्त की उपरि उद्ध त पंक्तियों पर ध्यान देने से दो बातें उभर कर आती हैं। प्रथम यह कि उक्त सारी घटनाएं सुख और आनन्दवर्धक हैं। जो नाटक के सुखान्त होने की बात सिद्ध करती हैं। दूसरे नाटककार द्वारा चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के पिता का रंगमंच से हटने की सूचना दिया जाना एक प्रकार से नाटककार द्वारा ही नाटक की सुखान्त का खण्डन प्रतीत होता है संपूर्ण नाटक के सुत्रधार के रूप में चाणक्य को प्रेक्षकों के मानस में प्रतिष्ठित कर एकाएक उन्हें वैराग्य ग्रहण करते हुए देख प्रेक्षकों को मानस व्यथित सा हो उठता है। उनकी भावना को एक प्रकार से ठेस लगती है। वस्तुतः सम्पूर्ण नाटक के कलेश्वर में चाणक्य का व्यक्तित्व जितना भास्वर और उदात रूप में प्रस्तुत हुआ है उसे देखते हुए उनका एकाएक सन्यास ग्रहण करना अस्वाभाविक न होने पर भी सामान्य जन मानस के लिए दुःख का कारण बनता है।

वस्तुतः प्रसाद भारतीय जीवन द ष्टि के प्रबल समर्थक साहित्यकार हैं। भारतीय जीवन पद्धति की यही विशेषता है कि वह त्याग में ही गौरव का अनुभव करती है। नाटक के आरम्भ में चाणक्य के व्यक्तित्व का बढ़ता हुआ प्रभाव पाठकों को सुखद प्रतीत होता है। क्योंकि चाणक्य के उस प्रभावशाली व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जिसके नियन्त्रण में देश अपने भीतर और बाहर के शत्रुओं से मुक्ति पा सकें। किन्तु जब भीतर और बाहर शत्रुओं का शमन हो जाता है और नाटक के नायक अर्थात् चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के विकास का समय आता है उस समय भी चाणक्य का पहले वाला नियन्त्रण स्वरूप स्वयं चन्द्रगुप्त को भी पसन्द नहीं आया है और शायद प्रेक्षक भी चाणक्य के इस रूप को और अधिक समय तक पसन्द न कर सकता। वस्तुतः नाटक पढ़ते समय इस स्थल पर आकार पाठक का मानस एक प्रकार से क्षुब्ध हो उठता है और उसे चाणक्य के महत् उद्देश्य में भी सन्देह होने लगता है। जैसे अत्यधिक लोकप्रिय राजनेता भी जब अति महत्त्वाकांक्षी होकर कार्यरत रहते हैं तो उनके महान् उद्देश्य के बावजूद भी उनके क्रिया कलापों पर सन्देह होने लगता है, वही स्थिति नाटक के अन्त में चाणक्य की हो उठी है। नाटककार भारतीय जीवन पद्धति की श्रेष्ठता से पूर्णतः आश्वस्त है अतः उन्होंने चाणक्य से भी उसी आदर्श का पालन करवाया है। वस्तुतः चाणक्य प्रेक्षकों को अत्यन्त प्रिय है अतः उनका सन्यास ग्रहण उनकी भावना को आघात अवश्य पहुँचाता है किन्तु उन्हें चाण्क्य के इस त्याग मंडित व्यक्तित्व के प्रति और अधिक श्रद्धा हो जाती है। नाटककार चाणक्य के इसी मिश्रित व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहते थे।

आलोचकों में 'चन्द्रगुप्त' नाटक के सुखान्त या दुःखान्त होने के विवाद का कारण चाणक्य और चन्द्रगुप्त के पिता सन्यास ग्रहण है। किन्तु इस घटना के कारण यदि आलोच्य कृति को सुखान्त नहीं भी माना जाये तो दुःखान्त तो माना ही नहीं जा सकता क्योंकि तब तो वह भारतीय नाट्यादर्श के विरुद्ध होता। वस्तुतः नाटक की अन्तिम घटना के कारण दुःख के स्थान पर शान्ति पूर्ण प्रसन्नता ही बढ़ती है अतः चन्द्रगुप्त नाटक को प्रसादान्त कहना समग्रतः उपयुक्त है। प्रसाद का अर्थ है शान्तिपूर्ण प्रसन्नता जिसकी प्राप्ति दर्शक एवं पाठकों को होती है।

# कहानियाँ

**1. उसने कहा था** **-चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी-सार

III. चरित्र-चित्रण

(क) लहना सिंह

(ख) सूबेदारनी

(ग) सूबेदार हजारा सिंह

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**2. कफन** **-प्रेमचन्द**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी-सार

III. चरित्र-चित्रण

(क) घीसू

(ख) माघव

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**3. आकाशदीप** **-जयशंकर प्रसाद**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी-सार

III. चरित्र-चित्रण

(क) चम्पा

(ख) बुद्धगुप्त

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**4. पत्नी** **-जैनेन्द्र**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी-सार

III. चरित्र-चित्रण

(क) कालिन्दी

(ख) सुनन्दा

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**5. वापसी -उषा प्रियंवदा**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी-सार

III. चरित्र-चित्रण

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**6. परिंदे -निर्मल वर्मा**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी-सार

III. चरित्र-चित्रण

(क) लतिका

(ख) डॉ० मुकर्जी

(ग) मि० ह्यूबर्ट

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**7. बयान -कमलेश्वर**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी-सार

III. नायिका का चरित्र-चित्रण

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

# उसने कहा था

## (पं० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी')

## तात्त्विक विवेचन

'उसने कहा था' पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित हिन्दी की सर्वाधिक चर्चित कहानियों में से एक है। यह कहानी 'सरस्वती' नामक पत्रिका में सन् 1915 में छपी थी। गुलेरी जी ने इससे पूर्व 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' नामक दो और कहानियाँ भी लिखीं, किन्तु उनकी अमरता का कारण 'उसने कहा था' ही है। इस कहानी ने उन्हें श्रेष्ठ कहानीकारों की अग्रिम पंक्ति में बिठा दिया। यह कहानी हिन्दी कहानी परंपरा में मील का पत्थर मानी जाती है। इतिहास की द ष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रथम महायुद्ध की प ष्ठभूमि पर लिखी गई इस कहानी में एक सैनिक लहनासिंह के प्रेम से प्रेरित कर्त्तव्य, त्याग और बलिदान की मार्मिक कथा प्रस्तुत की गई है। इस कहानी में वह सर्वांगीण तत्त्व भरे हैं जो युगों-युगान्तरों तक अमर रहेंगे। इसमें सहज मानवीय तत्त्वों का पूर्ण विकास तो है ही सही, उसकी कलात्मकता ने तो उसे चार चाँद ही लगा दिए हैं। विनोद प्रियता, वाक्पटुता, कथावस्तु का स्वाभाविक विकास, कथोपकथाओं की सजीवता, वातावरण की सबल स ष्टि, चरित्रों का अद्भुत चित्रण ये कुछ ऐसी अन्य विशेषताएँ हैं, जो इसे अलग ही प्रतिष्ठित करती हैं। इसमें कहानी कला की सभी विशेषताएँ सन्निहित हो गई हैं।

**1. कथानक (कथावस्तु) :-**

'उसने कहा था' कहानी का कथानक अत्यंत सुन्दर, स्वाभाविक और सुगठित है। कथावस्तु में रोचकता और कौतूहल उत्पन्न करने की विशेष क्षमता है। कहानी का शीर्षक पाठक के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है। यह इतना आकर्षक है कि पाठक इसको देखते ही कहानी पढ़ने के लिए लालायित हो उठते हैं। उनके मन में प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं-किसने कहा था? किससे कहा था ? क्या कहा था ? आदि। उनकी जिज्ञासा कहानी के अंत में ही शान्त होती है। इस कहानी का प्रारंभ अम तसर के बाजार में एक चौक की दुकान से होता है। एक लड़का अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया है और दूसरी ओर से एक लड़की रसोई के लिए बड़ियाँ लेने आई हैं दुकानदार को किसी अन्य ग्राहक से उलझा हुआ देख ये दोनों आपस में सामान्य परिचियात्मक बातें करने लगते हैं। सामान्य परिचय के बाद दुकान से सौदा लेकर वे दोनों साथ-साथ चलते हैं। चलते-चलते रास्ते में लड़का उस लड़की से मुसकुराकर पूछता है-'तेरी कुड़माई हो गई ?' इस पर लड़की स्वाभाविक लज्जा से आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर भाग जाती है। इसी प्रकार उन दोनों की मुलाकात अक्सर इधर-उधर दुकानों पर हो जाती है और लड़का अक्सर अपना उपरोक्त प्रश्न दुहरा देता है। लड़की भी 'धत्' कहकर भाग जाती है। एक दिन पुनः वही प्रश्न पूछे जाने पर लड़की लड़के को आशा के विपरीत उत्तर देती है-'हाँ हो गई' और प्रमाण में अपना रेशम से कढ़ा हुआ सालू बताकर भाग जाती है। लड़का लहनासिंह के दिल को इस बात से गहरी ठेस लगती है और वह उस दिन व्याकुल सा राह में आने वालों को अन्यमनस्कता में गिराता ढेलता नशे की सी हालत में अपने घर पहुँचता है। कहानी का पहला द श्य यहीं समाप्त हो जाता है। कहानी पाँच द श्यों में विभाजित है। अगले द श्यों में युद्ध का चित्रण है।

पहले द श्य में लड़की और लड़के का परिचय और उनके बीच पनपे प्रेम को दिखाकर दूसरे द श्य में कथानक एकदम लड़ाई के मोर्चे पर पहुँच जाता है। नं० 77 सिक्ख राइफल्स के जवान अंग्रेजों की ओर से फ्रांस में जर्मनी के विरुद्ध मोर्चों पर डटे हैं। सूबेदार हजारासिंह की कमान में मोर्चे पर डटे जमादार लहनासिंह तथा अन्य जवान कड़ाके की ठंड होने पर भी उत्साह से भरे हैं तथा पारस्परिक मजाक आदि में व्यस्त हैं। तभी वजीरासिंह लहनासिंह से बीमार बोधासिंह का हालचाल पूछता है और उसकी देखभाल में कहीं खुद लहनासिंह न मांदा पड़ जाए। इस पर लहनासिंह बुलेल की खड्ड के किनारे, भाई कीरतसिंह की गोदी पर सिर होने और अपने हाथ से लगाए आम के पेड़ की छाया के नीचे मरने की बात कहता है। तब वजीरासिंह कहता है कि क्या मरने-मारने की बात लगाई है और सैनिकों में ताजगी भरने के लिए गीत गाता है। दूसरा द श्य यहीं समाप्त हो जाता है।

तीसरे द श्य में लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ अपने सैनिक कर्त्तव्य का पालन करते हुए बीमार बोधासिंह की अपने सारे गर्म कपड़े पहनाकर भी देखभाल करता है; तभी एक जर्मन जासूस उन्हें धोखा देने के लिए सिक्ख सैनिकों के लपटन साहब का रूप धारण करके आता है और खंदक में दस आदमी छोड़ने की कहकर सूबेदार हजारासिंह को शेष साथियों के

साथ दूसरी खाई की ओर भेज देता है। लहनासिंह लपटन के कपटी रूप को पहचानकर दियासिलाई लाने के बहाने जाकर सोए हुए वजीरासिंह को जगा देता है। तीसरा द श्य यहीं समाप्त हो जाता है।

चौथे द श्य में लहनासिंह वजीरासिंह को सारा षडयंत्र समझाकर सूबेदार को वापस बुलाने भेज देता है और लौटने पर कपटी लपटन को तीन गोले रखते देख कुहनी पर बंदूक मारता है। लपटन पिस्तौल की गोली दाग देता है जो लहनासिंह की जाँघ में लगती है, पर लहना अपनी बंदूक से लपटन का सफाया कर देता है। उसके बाद जर्मन सैनिकों से जमकर युद्ध होता है, पीछे से सूबेदार व साथी सैनिक जर्मनों को घेर लेते हैं। दो तरफे आक्रमण से जर्मन समाप्त हो जाते हैं परन्तु लहना को गंभीर घाव हो जाते हैं जिसे वह मिट्टी से पूर लेता है और घाव पर साफा बाँध लेता है। घायलों को ले जाने वाली गाड़ी में लहना सिंह सूबेदार और उसके पुत्र बोधासिंह को जबरदस्ती गाड़ी पर चढ़ा देता है और सूबेदार हजारासिंह से कहता है-"सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।" सूबेदार लहना का हाथ पकड़कर कृतज्ञ होते हैं-"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?" गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया और वजीरासिंह से बोला-"वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे, तर हो रहा है। चौथा द श्य यहीं समाप्त हो जाता है।

पाँचवे द श्य में लहनासिंह लड़ाई के घावों के कारण मरणासन्न है। इस अवस्था में उसके स्म ति पटल पर अतीत की एक-एक घटनाओं के द श्य उभर आते हैं। उसे बचपन की घटना लड़की से परिचय और उसकी सगाई होने की बात सुनकर क्रोधित होने की याद आती है। इस घटना के पच्चीस वर्ष बाद की स्म तियों में लहनासिंह डूबा हुआ है कि वह नं० 77 राइफल्स में जमादार हो गया है और छुट्टी पर घर गया है। अफसर की बुलावे की चिट्ठी आने पर सूबेदार हजारा सिंह की चिट्ठी मिली कि हमारे घर होते हुए जाना। मैं और बोधासिंह साथ चलेंगे। जब चलने लगे सूबेदारनी ने पूछा-मुझे पहचाना ? लहना के मना करने पर सगाई वाली बात याद दिलाकर सुप्त प्रेम को जाग्रत कर दिया और मार्मिक स्वर में कहा कि जिस तरह दही वाले की दुकान के आगे ताँगे से बचाया था और आप घोड़ों की लातों में चले गये थे। ऐसे ही इन सूबेदारजी तथा बोधासिंह को बचाना। अतीत की इन्हीं स्म तियों में खोये हुए लहनासिंह का सिर वजीरासिंह अपनी गोद में रखे हुए हैं। लहनासिंह बीच-बीच में बड़बड़ाता है-'वजीरा, पानी पिला-उसने कहा था।' थोड़ी देर बाद अपने भाई कीरतसिंह व अपने लगाए आम के पेड़ को मूर्च्छा में याद कर बड़बड़ाते हुए अपने प्राण त्याग देता है।

इस प्रकार कथानक संघटन बड़े ही कलात्मक ढंग से सुगठित है। आदि, मध्य और अंत को बड़ी सुन्दरता से एक-दूसरे से जोड़ा गया है। इसमें आदि मध्य से बिल्कुल अलग दिखाई देता है, पाठक को कथासूत्र ही हाथ नहीं लगता परन्तु अंत में कहानी का सम्पूर्ण आकर्षण उद्दीप्त हो उठता है और पाठकों की जिज्ञासा शांत हो जाती है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है-"कहानी द श्यों में विभाजित है। इसका पहला द श्य लड़की और लड़के के पहले परिचय का चित्र है जो कहानी से कटकर स जन-प्रक्रिया का अंग न रहकर कहानीकार के स्म ति-पटल पर अंकित रहता है। अगले द श्यों में युद्ध का चित्रण है। पाठक पहले द श्य को भूल जाता है; लेकिन 25 साल के बाद लहनासिंह के स्म ति चित्रों के माध्यम से यह द श्य गहरे रूप में कहानी से फिर जुड़ जाता है। इस तरह यह 'बेकार' अंश अंत में कहानी का अंग बन जाता है। इस तरह कहानी के विभिन्न अंश एक श ंखला में बंध जाते हैं, घटना, उद्देश्य, चरित्र, वातावरण आदि सिमटकर पाठक अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं।"

**2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण :-**

प्रस्तुत कहानी में यों तो अनेक पात्र हैं किन्तु प्रमुख पात्र लहनासिंह ही है। उसका चरित्र कहानीकार ने बड़ी सफल्ता से चित्रित किया है। लहनासिंह कर्त्तव्य पर बलिदान होने वाला निस्वार्थी युवक है। उसमें देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। उसका त्याग और बलिदान आदर्श रूप में उपस्थित होता है। कहानी में उसके सम्पूर्ण जीवन की झांकी उपस्थित हुई है। उसका परिचय पाठकों को एक चंचल बालक के रूप में होता है। लड़की से 'तेरी कुड़माई हो गई ?' का प्रश्न पूछना और उत्तर में 'धत्', और 'हाँ' सुनकर चंचलता में भीड़ से टकराता हुआ घर को जाना उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसके पश्चात् लहनासिंह जमादार के रूप में फ्रांस के मोर्चे पर दिखाई देता है। वह अत्यंत द ढ़ता से अपने सैनिक कर्त्तव्य की रक्षा करता हुआ दिखाई देता है। वह अपने को संकट में डालकर खंदक की रक्षा में तत्पर होता है। लहना को प्रेम से कर्त्तव्य अधिक प्रिय है। जिस पंजाबी लड़की की कुड़माई (सगाई) होने की सुनकर वह कभी विचलित हो उठा था, वही उसको अपने पति और पुत्र की रक्षा का भार सौंपती है। वह गुरुता से अपने इस कर्त्तव्य का पालन करता है। उसकी वीरता ओर

कुशलता से ही शत्रुओं के प्रयत्न विफल होते हैं तथा बोधा की भी रक्षा होती है। इस प्रकार इस कहानी में लहनासिंह के रूप में नवयुवकों को प्रेरणा देने वाले एक आदर्शपूर्ण पात्र की योजना की है। शेष पात्रों में सूबेदार हजारासिंह एक सीधे-साधे सैनिक हैं। वह बिना सोचे समझे अपने बड़े अधिकारियों की आज्ञा का पालन करना जानते हैं। जर्मनी लपटन अत्यंत चालाक तथा धूर्त है। वजीरा सिंह आदि अन्य सैनिक कर्त्तव्यनिष्ठ हैं। पात्र योजना और चरित्र-चित्रण की द ष्टि से यह एक सफल कहानी है।

**3. कथोपकथन (संवाद) :-**

कहानी में कथोपकथन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करने के साथ-साथ कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाते हैं। परिस्थिति एवं पात्रों को जोड़ने के लिए और आंतरिक भावों एवं मनोव त्तियों के उद्घाटन के लिए कथोपकथन (संवाद-तत्व) की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। 'उसने कहा था' कहानी के कथोपकथन मनोवैज्ञानिक, सजीव और परिस्थिति के अनुकूल है। अम तसर के बाजार में लड़का और लड़की की बातचीत में कथोपकथन की सभी विशेषताएँ समन्वित हो गई हैं :-

'तेरे घर कहाँ है ?'

'मगरे में - और तेरे ?'

'माँझे में - यहाँ कहाँ रहती है ?'

अतर सिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ। उनका घर गुरु बाजार में है।'

कथोपकथनों की भाषा स्वाभाविक और परिस्थिति के अनुकूल है। पंजाबी वातावरण होने के कारण पंजाबी भाषा के शब्द भी यत्र-तत्र आ गये हैं। कहीं-कहीं पर कथोपकथन पूर्ण रूप से नाटकीयता लिये हुए हैं। निम्न उदाहरण में देखिए :-

कौन - वजीरासिंह।

हाँ - क्यों लहना क्या कयामत आ गई - जरा तो आँख लगने दी होती।

होश मे आओ - कयामत आई है और लपटन की वर्दी पहनकर आई है।

क्या ?

इस प्रकार कहानी के संवाद रोचक गतिशील, प्रभावशाली तथा भावाभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ हैं।

**4. वातावरण (देश-काल) :-**

कहानी का प्रारम्भ वातावरण का चित्र उपस्थित कर देता है। अम तसर के बाजार में बंबूकार्ट का सजीव वर्णन है। इसी प्रकार की शब्दावली को हम नित्य-प्रति शहरों में इक्के-ताँगे वालों के मुख से सुनते हैं। कहानीकार पंजाबी वातावरण सफलता के साथ उपस्थित करके उसके बीच में पंजाबी लड़का और लड़की को मिलाता है। इसी प्रकार फ्रांस की युद्धभूमि का सजीव चित्रण, शीत की ठिठुरन, मेंम की चर्चा आदि के सफल चित्रण के कारण कहानी का कथानक यथार्थ-सा लगने लगता है। कहानी में वातावरण का निम्न चित्र लहनासिंह की म त्यु की ओर संकेत देते हुए परिस्थिति को कितना बिम्बग्राही बना देता है-"लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी, जैसी बाणभट्ट की भाषा में दन्तवीणोपदेशाचार्य कहलाती है।"

**5. भाषा-शैली :-**

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। प्रस्तुत कहानी की भाषा मँजी हुई परिष्कृत है। उसमें माधुर्य, प्रसाद और ओज तीनों गुणों के साथ-साथ सरलता, स्वाभाविकता और प्रवाहमयता मिलती है। कहानी में आँचलिक भाषा का प्रयोग सुन्दर और मुहावरेदार है। स्थानीय भाषा वातावरण का गतिमय चित्र पाठक के सामने प्रस्तुत कर देती है। भाषा में पंजाबीपन का आधिक्य कथानक को सजीव और गति प्रदान करने में बहुत ही सहायक हुआ है। जबान के कोड़े, कान पक गए, मीठी छुरी, आँखे चढ़ाना, दूर की सोचना आदि आम प्रचलित मुहावरों का उचित प्रयोग कहानी की भाषा को समर्थ व भावाभिव्यंजक बनाता है। खालसाजी, हटो बाछा, जीऊण्ण जोगिए, उमरांवालिए, कुड़माई, होराँ आदि

शब्दों के प्रयोग से आंचलिक और स्थानीय रंग उपस्थित हो गया है।

कहानी की शैली में विशिष्टता और वक्रता है किन्तु कथानक की सरसता, रोचकता तथा रोमांचकारी विवरण उसकी वक्रता या दुरूहता को खटकने नहीं देते। शैली और शिल्प विधान की द ष्टि से यह अद्‌भुत है। कहानी का आरम्भ और मध्य, अंत द्वारा बहुत ही कलात्मकता से जुड़े हैं। कथानक का बीच में से टूटना और एक अद्‌भुत स जन से जुड़कर इतना सुगठित और सम्बद्ध हो जाना इस कहानी की उत्कृष्ट शैली और शिल्प विधान का उदाहरण है।

**6. उद्देश्य :-**

कर्त्तव्यपरायणता के साथ प्रेम की निर्मल तथा पावन अनुभूति की रक्षा करना ही प्रस्तुत कहानी का मुख्य उद्देश्य हैं, जिसमें कहानीकार को पूर्णतया सफलता मिली है। साथ ही जीवन की दुरूहता, राजभक्ति, वचनपालन, दूसरे के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर देना और उसका किंचित भी विज्ञापन न करना आदि का चित्रण भी कहानी में सुन्दरता से किया गया है।

'उसने कहा था' कहानी की सभी समीक्षकों ने प्रशंसा की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं-"इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुप्ति है। घटना इसकी ऐसी है, जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है-केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्जता, वेदना की वीभत्स विड्ढ ति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।" डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने इस कहानी की विशिष्टता प्रतिपादित करते हुए इसे अमर कहानी कहा है-"इसमें किशोरावस्था के प्रेमांकुर का विकास, त्याग और बलिदान से ओत-प्रोत पवित्र भावना के रूप में किया गया है। कहानी का अंत गंभीर एवं शोकपूर्ण होते हुए भी उसमें हास्य और व्यंग्य का समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुँचती। विभिन्न द श्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वाभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषताएँ एक से एक बढ़कर हैं। कहानी की प्रथम पंक्ति ही पाठक के हृदय को पकड़कर बैठ जाती है और जब तक पूरी कहानी नहीं पढ़ लेता, उसे छोड़ती नहीं तथा जिसने एक बार कहानी को पढ़ लिया वह 'उसने कहा था' वाक्य को कदाचित जीवन-भर भूल नहीं पाता। क्या भाव, क्या विचार, क्या शिल्प और क्या शैली-सभी की द ष्टि से यह कहानी एक अमर कहानी है।"

## प्रष्टव्य

1. कहानी कला की द ष्टि से 'उसने कहा था' कहानी की समीक्षा कीजिये।
2. 'उसने कहा था' नामक कहानी की विशेषताएँ लिखिये।
3. 'उसने कहा था' कहानी की समालोचना के स्तर पर परखते हुए हिन्दी कहानी साहित्य में उसका मूल्यांकन कीजिये।

# II. कहानी-सार

हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने केवल तीन कहानियां ही साहित्य-संसार को प्रदान की हैं, परन्तु यदि केवल वे 'उसने कहा था' ही लिखते तब भी उनका नाम साहित्य में अमर होता। यह हिन्दी की पहली सर्वांगपूर्ण, यथार्थवादी कहानी है जो कला की प्रत्येक कसौटी पर खरी उतरती है। प्रेम, शौर्य और त्याग जैसे महान आदर्शों की आधारभित्ति पर खड़ी यह कहानी लहनासिंह के चरित्र द्वारा भारतीय किसान की जीवटता, साहस, बुद्धिमानी और कर्त्तव्यपरायणता को दर्शाती है। कहानी का सारांश इस प्रकार से है-अम तसर के चौक बाजार में एक बारह वर्षीय सिख बालक तथा आठ वर्षीय सिख बालिका मिलती है। प्रारम्भिक परिचय हो जाने पर पता चलता है कि दोनों ही अपने मामा के यहां आए हुए हैं। बालक अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया है और बालिका रसोई के लिए बड़ियां। लड़का अपने चंचल व चुलबुलेपन के कारण लड़की से पूछता है कि क्या तेरी कुड़माई हो गई ? इस पर बालिका आँखें चढ़ाकर धत् कहकर भाग जाती है और लड़का मुंह देखता रह जाता है। इस प्रकार हर दूसरे दिन वे दोनों किसी सब्जी वाले की दुकान पर, किसी दूध वाले के यहाँ मिल जाते और लड़का वही प्रश्न दोहराता और लड़की धत् कहकर भाग जाती है। लेकिन एक दिन लड़के ने

वही चिर-परिचित प्रश्न पूछा और लड़की ने कहा -"हाँ हो गई है।" देखते नहीं रेशम का यह कढ़ा हुआ सालू। लड़की सकुचाकर भाग जाती है और लड़के पर मानो वज्रपात हो जाता है तथा वह भयंकर तोड़-फोड़ करता हुआ घर पहुंचता है। रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेल देता है, एक छाबड़ी वाले की दिन-भर की कमाई को बिखरवा देता है और कुत्ते को पत्थर मारता है, गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेल देता है और किसी वैष्णवी से टकराकर अंधा होने की उपाधि प्राप्त करता है। इस प्रकार कहानी का पहला भाग नाटकीय ढंग से समाप्त होता है। उस बारह वर्षीय बालक का नाम लहनासिंह तथा बालिका का नाम सूबेदारनी है। इस घटना को घटे पच्चीस वर्ष हो गये हैं और कहानी का नायक लहनासिंह सेना में जमादार के पद पर नियुक्त हो गया है। इस समय वह गांव के किसी मुकद्दमे की पैरवी करने के लिए सात दिन की छुट्टी लेकर आया हुआ है तभी उसे रेजीमैंट के अफसर की चिट्ठी मिलती है कि तुरन्त चले आओ, फौज को लाम पर जाना है। उसी समय उसे सूबेदार हजारासिंह की भी चिट्ठी मिलती है कि हमें भी लाम पर जाना है, अतः जाते वक्त इधर से ही चलेंगे। इसीलिये हमारे पास आ जाना। सूबेदार का घर रास्तें में पड़ता था और सूबेदार की लहनासिंह के साथ आत्मीयता था। जब तीनों चलने लगे तो सूबेदार ने लहनासिंह को कहा कि सूबेदारनी तुम्हें जानती है, इसीलिए बुला रही हैं, जा मिलकर आ। लहना आश्चर्यचकित हो गया, क्योंकि वह तो सेना के क्वार्टरों में कभी रही नहीं। अतः जान-पहचान कैसे हो गई ? लेकिन लहनासिंह अंदर मिलने के लिए जाता है तो सूबेदारनी 'कुड़माई वाला' प्रसंग दोहराकर उसकी स्म तियों को पुनः जाग त कर देती है। वह निवेदन करती है कि जिस प्रकार उसने एक बार घोड़े की लातों से उसके प्राण बचाए थे ठीक इसी प्रकार से मेरे पुत्र और पति के प्राण बचाना। वह उसके समक्ष अपना आंचल पसार कर भीख मांगती है। हजारासिंह उसका पुत्र बोधासिंह तथा लहनासिंह युद्ध स्थल पर पहुंच जाते हैं और वहां जाते ही बोधासिंह बीमार पड़ जाता है लेकिन लहनासिंह उसकी प्राणपण से देखभाल करता है। अपनी सुख-सुविधाओं का परित्याग करके अपनी गर्म जर्सी उसे पहनाता है, अपने तख्तों पर उसे सुलाता है तथा उसका पहरा भी स्वयं देता है। सूबेदार हजारासिंह बोधासिंह की देखभाल के बारे में लहनासिंह को कहता है-"रात-भर तुम दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा देते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौते हैं और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" जब बोधासिंह को सर्दी के कारण ज्यादा कंपकंपी छूटने लगती है तो वह उसे झूठ बोलकर अपनी गर्म जर्सी पहनाता है-"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।" स्वयं खाकी कोट और जीन का कुर्ता पहनकर पहरा देता है और अपने गर्म वस्त्र बोधासिंह को पहना देता है। तभी एक जर्मन लपटन जासूस बनकर आता है और कुछ सैनिकों को छोड़कर शेष को दूसरे स्थान पर जाकर जर्मन खंदक पर आक्रमण करने का आदेश देता है। आदेश की पालना हेतु हजारासिंह सैनिकों को लेकर चला जाता है। वहां लहनासिंह और बीमार बोधासिंह के अलावा आठ सैनिक बाकी रह गये थे। लहनासिंह की कुशाग्र बुद्धि ने भाँप लिया कि वह जासूस है। उसने थोड़ी देर बाद सिगरेट सुलगाया तो लहनासिंह ने आग की रोशनी में उसे पहचान लिया तथा वह दियासिलाई के बहाने खन्दक में चला जाता है और वजीरासिंह को हजारासिंह के पास भेज देता है। तभी लहनासिंह देखता है कि लपटन साहब तीन गोले खंदक की दीवारों में लगा देता है और उन्हें जलाने वाला ही होता है कि लहनासिंह उसकी कुहनी पर बन्दूक का बट मारकर घायल कर देता है। उसकी जेबों की तलाशी लेकर उसके आवश्यक कागजात निकाल लेता है। तभी लपटन साहब को होश आता है और वह ऐसे अभिनय करके कि जैसे उसे ठण्ड लग रही है, जेबों में हाथ डालकर लहनासिंह पर फायर करता है। गोली लहनासिंह की जांघ में लगती है, लेकिन लहनासिंह दो फायर करके उसकी कपाल क्रिया कर देता है। तभी सत्तर जर्मनों की एक टुकड़ी खाई में घुस पड़ती है तथा लहनासिंह और उसके बहादुर साथी पूरी शूरवीरता के साथ मुकाबला करते हैं। तभी हजारासिंह और उसके सैनिक साथी भी वहाँ पहुँच जाते हैं और इस प्रकार से जर्मन सैनिक दो पाटों के बीच में फंस जाते है। आगे से लहनासिंह ओर उसके साथी आक्रमण कर रहे हैं तथा पीछे से सूबेदार हजारासिंह और उसके बहादुर सैनिक संगीनें पिरो रहे। ये बहादुर सिख सैनिक जल्दी ही दुश्मनों को यमलोक भेज देते हैं। इसी आक्रमण में एक गोली लहनासिंह की पसली में आकर लगती है तथा वह घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर देता है और साफा कसकर कमरबन्ध की तरह लपेट लेता है। किसी को भी यह पता नहीं चलता कि लहनासिंह को भारी घाव लगा है। युद्ध स्थल पर भी वह अपने प्राणों की चिन्ता न करके सूबेदारनी के बेटे बोधासिंह को बचाता है। यद्यपि इस कोशिश में वह स्वयं घायल हो जाता है। अपनी घातक घायल अवस्था के बारे में किसी को नहीं बताता और शत्रु पक्ष की पराजय के बाद घायल सूबेदार हजारासिंह और उसके बीमार पुत्र बोधासिंह को इलाज हेतु गाड़ी में भिजवा देता है-स्वयं नहीं जाता तथा चलते हुए कहता है कि सुनिए तो, सूबरेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो उससे कह देना कि उसने जो कहा था, वह मैंने पूरा कर दिया है।

सूबेदार पूछता है कि उसने क्या कहा था ? कि तभी गाड़ी चल दी। गाड़ी के जाते ही लहनासिंह वजीरासिंह से पानी मांगता है और अपना कमरबंध खोलने को कहता है। कमरबंध ख़ून से सना हुआ था। म त्यु के कुछ समय पूर्व उसकी (व्यक्ति) की स्म ति अत्यन्त तीव्र और साफ हो जाती है। लहनासिंह को भी अपने जीवन की सारी घटनाएँ चलचित्र की भाँति घूमने लगती है। लहनासिंह को भी अपने जीवन की सारी घटनाएं याद हो उठती हैं। वह कभी सूबेदारनी के शैशवावस्था के प्रसंगों को स्मरण करता है तो कभी उसके कहे गए शब्दों को याद करता है। कभी वह कामना करता है कि "मैं तो बुलैल की खड्ड के किनारे मरूंगा और भाई कीरतसिंह की गोद में मेरा सिर होगा और हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।" लहनासिंह के मुख से अन्तिम वाक्य निकला-"उसने कहा था"। कुछ दिन बाद अखबारों में घायलों की एक सूची छपी-जिसमें फ्रांस और बेल्जियम-68 वीं सूची मैदान में घावों से मरा नं० 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

इस प्रकार लहनासिंह और सूबेदारनी के हृदय में बचपन की छोटी-सी मुलाकात से हुए परिचय के कारण जो अतीन्द्रिय प्रेम की उत्पत्ति हुई, उसी कारण लहनासिंह ने अपने प्राणों को होम करके सूबेदारनी के पुत्र और पति की रक्षा करता है, क्योंकि उसने कहा था।

## III. चरित्र-चित्रण

### (क) लहनासिंह

1915 ई० में प्रकाशित पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित 'उसने कहा था' यद्यपि हिन्दी की प्रारम्भिक कहानी है, लेकिन ऐतिहासिक महत्त्व की द ष्टि से बेजोड़ है। डॉक्टर चितरंजन मिश्र ने 'उसने कहा था' के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा था-"इस कहानी में प्रसाद का रोमांटिक आदर्श अपनी पूरी रंगीनी में उपस्थित है और यह भी एक ऐतिहासिक सच है कि प्रसाद की महत्त्वपूर्ण रोमांटिक कहानियां 'उसने कहा था' के बाद की है। लहनासिंह के आत्मार्पण की करुण कथा और पवित्र प्रेम के लिए किए गए निःस्वार्थ बलिदान की यह कहानी अपने सहज रसोद्रेक के कारण हिन्दी कहानी साहित्य का 'माइल स्टोन' बन सकी। 'उसने कहा था' के साथ हिन्दी कहानी ने अपने विकास की नयी मंजिलें शुरु की हैं।" **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** भी 'उसने कहा था' को सर्वश्रेष्ठ कहानी स्वीकारते हैं-"उसमें यथार्थवाद के बीच सुरुचि की चरम् मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम् उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ सम्पुटित हुआ है। इसकी घटनाएं ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।" प्रस्तुत कहानी के सभी पात्र जीवन्त, आकर्षक और सजीव हैं। लहनासिंह इस कहानी का नायक है तथा सूबेदारनी, सूबेदार हजारासिंह और उसका बेटा बोधासिंह आदि प्रमुख पात्र है और वजीरासिंह, लपटन साहब आदि गौण पात्र है। लहनासिंह के अद्भुत शौर्य, साहस और त्याग का मार्मिक चित्रांकन प्रस्तुत कहानी में हुआ है। वचन का धनी लहनासिंह सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह और पति हजारासिंह के प्राणों को बचाने हेतु आत्मोत्सर्ग कर डालता है। उसकी त्यागव त्ति वहाँ भी द ष्टिगोचर होती है, जहां वह अपने सुखों का परित्याग करके, भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपनी जरसी बोधासिंह को पहना देता है और स्वयं खाकी कोट और जीन का कुर्ता पहनकर पहरे पर खड़ा होता है। उसकी चारित्रिक विशेषताएं इस प्रकार से हैं-

**1. नायक** - गुलेरी द्वारा रचित 'उसने कहा था' के नायकत्व के पद पर अधिष्ठित है-वचन का धनी, शौर्य और वीरता की जीवन्त प्रतिमा-लहनासिंह। वह कहानी का केन्द्रीय चरित्र भी है तथा सम्पूर्ण कथावस्तु का घटनाचक्र भी उसी के चारों ओर चक्कर काटता है। वह कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है तथा सारी घटनाओं का ताना-बाना भी उसी के चारों ओर बुना हुआ है। अम तसर के चौक बाजार में उसी का परिचय बालिका से होता है तथा वही लड़की से पूछता है 'तेरी कुड़माई हो गई है' वही लड़की को घोड़े की लातों से बचाता है और कुड़माई हो जाने पर उसी के मानसिक क्षोभ, व्यथा और आक्रोश को अभिव्यक्ति मिली है। कहानी की सभी घटनाएं प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में लहनासिंह से ही सम्बन्धित हैं। कहानी का फलभोक्ता भी वही है और सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह की बीमारी की अवस्था में पूरी देखभाल करता है तथा अपनी जरसी असत्य का आश्रय लेकर उसे पहनाता है और स्वयं भीषण कड़कड़ाती सर्दी में खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरा देता है। उसका पहरा स्वयं देता है और स्वयं कीचड़ में पड़े रहकर उसे सूखे लकड़ी के तख्तों पर सुलाता है। रात-भर दोनों कम्बल उसे उढ़ाता है और स्वयं सिगड़ी के सहारे रात बिताता है। इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह एवं पति हजारासिंह के प्राण बचाता है तथा स्वयं आत्मोत्सर्ग कर डालता है। कहानी के अन्य पात्र-सूबेदार हजारासिंह, सूबेदारनी, बोधासिंह, वजीरा, कीरतसिंह आदि सभी लहनासिंह के चरित्र को प्रकाशित व महिमामण्डित करते हैं। अतः लहनासिंह ही निर्विवाद रूप से कहानी का नायक सिद्ध होता है।

**2. साहसी व्यक्तित्व का स्वामी** - लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में साहसी व्यक्तित्व के स्वामी के रूप में चित्रित हुआ है। असीम साहस के कारण ही वह अपने प्राणों को संकट में डालकर बालिका के प्राणों की रक्षा करता है। सूबेदारनी कहती है-"तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है।" इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी उसका साहस देखते ही बनता है, वह युद्ध करने के लिए लालायित है। लहनासिंह के ये निम्न वचन उसके साहसी व्यक्तित्व को ही उजागर करते हैं-"बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।" इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी उसका साहस मुखरित हो उठा है। सत्तर जर्मन सैनिकों के साथ युद्ध में भी वह अत्यन्त साहस और शूरवीरता के साथ लड़ता है तथा वजीरासिंह के यह कहने पर कि तुम आठ ही हो, वह अपने साहस और शूरवीरता का प्रदर्शन करते हुए कहता है-"आठ नहीं दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है।" इस प्रकार वह अपने प्राणों को जोखिम में डालकर बालिका, बोधासिंह व हजारासिंह को बचाता है। अतः स्पष्ट है कि लहनासिंह साहसी व्यक्तित्व का स्वामी है।

**3. आदर्श प्रेमी** - लहनासिंह को प्रस्तुत कहानी में आदर्श प्रेमी की कोटि में रखा जा सकता है। हर रोज अम तसर चौक बाजार में लड़की से मिलने पर और अपने शरारती स्वभाव के कारण पूछने पर-तेरी कुड़माई हो गई है, उसके बालिका से स्नेह सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं और इसी मोहवश वह अपने प्राणों को संकट में डालकर बालिका को घोड़ों की लातों से बचाकर तख्त पर खड़ा कर देता है। लड़की से यह सुनकर कि 'कुड़माई हो गई है' उस पर मानो वज्रपात हो जाता है और वह रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेलता है, छाबड़ी वाले की दिन-भर की कमाई को बिखरवा देता है और इस प्रकार तोड़-फोड़ करता हुआ घर पहुंचता है। शायद इस खबर से वह आहत हो उठता है, क्योंकि उसका लड़की के प्रति आत्मीयता-लगाव है। पच्चीस वर्ष बाद जब वह सूबेदार हजारासिंह के घर पहुंचता है तो सूबेदारनी अपने बाल-मित्र को पहचान लेती है। अपने मोह-प्रेम या स्नेह के बल पर वह उससे अपने पति सूबेदार हजारासिंह व पुत्र बोधासिंह के प्राणों की भिक्षा आंचल पसारकर मांगती है जिसे वह आत्मोत्सर्ग करके भी पूरा करता है। कहानीकार स्पष्ट लिखता है-"बोधा गाड़ी पर लेट गया। भला आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने थ था, वह मैंने कर दिया।" सूबेदार ने चढ़ते-चढते लहना का हाथ पकड़कर कहा-"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था।" लेकिन लहनासिंह का बालिका-सूबेदारनी के प्रति प्रेम अत्यन्त सात्विक, स्वस्थ, उज्ज्वल और अतीन्द्रिय था। सूक्ष्म, अशरीरी प्रेम के कारण ही लहनासिंह को आदर्श प्रेमी कहा जाता है। उसमें कहीं भी वासना की दुर्गन्ध नहीं है, न अश्लीलता है और न दैहिक प्रेम है।

**आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इसी उद्धात-अलौकिक और अशरीरी प्रेम की प्रशंसा करते हुए लिखा है-"इसकी घटना ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर इसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है। केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स निव त्ति नहीं है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि लहनासिंह का प्रेम आदर्श, दिव्य, अशरीरी, अलौकिक है। इसी कारण उसे आदर्श प्रेम कहा जा सकता है।

**4. कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा** - लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा के रूप में चित्रित हुआ है। जब जासूस लपटन साहब बनकर उनकी खंदक में आ जाता है तो वह अपनी कुशाग्र बुद्धि के बल पर सूझ-बूझ और चतुरता से भांप लेता है कि वह लपटन साहब नहीं, बल्कि जर्मन जासूस है। वह जासूस को स्पष्ट कहता है-"चालाक तो बड़े हो, पर मांझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिये।" इसी प्रकार वह अपनी त्वरित कुशाग्र बुद्धि के बल पर प्रश्नोत्तर द्वारा उसकी वास्तविकता को भांपने का प्रयास करता है तथा स्पष्ट निर्णय देता है-"होश में आओ ! कयामत आयी है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आयी है।"

क्या ?

लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुंह नहीं देखा। मैंने देखा है, और बातें की हैं। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।" इसी प्रकार से वह गांव में आए तुरकी मौलवी को भी अपनी तीव्र-कुशाग्र बुद्धि से जान लेता है कि वह जर्मन जासूस है

जो गांववासियों को सरकार के विरुद्ध भड़काता है। इसीलिए सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर, उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।" उसकी कुशाग्र बुद्धि के कारण ही तिरसठ जर्मन सैनिक या तो आहत होते हैं या मारे जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा के रूप में चित्रित हुआ है।

5. **धीर-वीर-निर्भीकमना** - लहनासिंह 'उसने कहा था' कहानी में 'धीर-वीर-निर्भीकमना' नवयुवक के रूप में चित्रित हुआ है। वीर सिपाही होने के कारण वह संकट की घड़ी में न तो साहस छोड़ता है और न मानसिक संतुलन। युद्ध के मोर्चे पर वह एक वीर नायक के रूप में द ष्टिगोचर होता है। खंदक में बैठे-बैठे वह उकता गया है और शत्रु पर आक्रमण करने में ही वह भलाई समझता है। वह स्पष्ट घोषणा करता है-"मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।" वह कहता है कि "यदि एक धावा हो जाए तो गरमी आ जाए।" अपनी वीरता का प्रमाण देते हुए वह सत्तर सैनिकों के साथ बहादुरी से लड़ता है। वजीरासिंह के कहने पर वह अपनी वीरता का परिचय देते हुए कहता है-"आठ नहीं एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है।" इसी प्रकार वह जासूस साहब को भी कपाल क्रिया कर देता है। वह सेना में नायक जमादार के पद पर आसीन है और अंग्रेजों की ओर से फ्रांस की युद्ध भूमि पर लड़ने के लिए जाता है। युद्ध क्षेत्र में वह स्पष्ट स्वीकारता है कि बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही।" कहानीकार ने लिखा है-"इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिखों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले को रोका। दूसरे को रोका। पर यहां थे आठ (लहनासिंह ताक-ताककर मार रहा था-वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर।" यह उसकी वीरता का पुख्ता प्रमाण है कि वह घायल हो जाने पर-जांघ में लगी गोली लगी थी, फिर भी खन्दक पर आक्रमण होने पर निडरता के साथ लड़ता है।

6. **कर्त्तव्यनिष्ठ** - लहनासिंह कर्त्तव्यनिष्ठ वीर सैनिक है। वचन का धनी लहनासिंह सूबेदारनी को दिए गए वचन की पालना में अपने प्राणों की आहुति देने में भी नहीं चूकता। सूबेदारनी के बीमार पुत्र की प्राणपन से देखभाल करता है तथा भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपनी जर्सी उसे पहनाता है और स्वयं खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरा देता है। इतना ही नहीं, सूबेदार हजारासिंह भी लहनासिंह की कर्त्तव्यनिष्ठा व उसके बीमार पुत्र बोधासिंह की देखभाल के बारे में कहता है-"रात भर तुम दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" इसी प्रकार से जब बीमारों को लेने के लिए गाड़ी आती है तो वह स्वयं न जाकर बोधासिंह व सूबेदार साहब को सूबेदारनी की कसम देकर भेज देता है-"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है तो इस गाड़ी में चले जाओ।" इसी प्रकार सूबेदार साहब जाते-जाते लहना का हाथ पकड़कर कहते हैं-"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं । लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे । अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था।" इस प्रकार वह प्राणों की बाजी लगाकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करता है।

7. **सिपाही या जमादार के पद पर आसीन** - 'उसने कहा था' कहानी का नायक लहनासिंह सेना में जमादार के मामूली पद पर आसीन है, लेकिन यहां पर भी किसानी जीवन के मधुर स्वप्न देखता है। वह सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्में की पैरवी करने के लिए आया हुआ है। कहानीकार यह तो स्पष्ट नहीं करता कि वह विवाहित है या अविवाहित, परन्तु उसका भी भतीजा है कीरतसिंह जिसकी गोदी पर सिर रखकर वह मरना चाहता है-"मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूंगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।" उसे सरकार से न तो जमीन, जायदाद की उम्मीद है और न खिताब की, बल्कि वह तो अंग्रेजी सरकार की वफादारी हेतु युद्ध में शामिल हुआ है। खंदक में पड़े-पड़े भी उसकी कृषक मानसिकता ही प्रकट होती है। लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा-"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।"

"हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घूमा जमीन यहां मांग लूगा और फलों के बूटे लगाऊंगा।"

## (ख) सूबेदारनी

श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' में नायिका के पद पर आसीन है, क्योंकि वह कहानी में प्रारम्भ से लेकर अंत तक विद्यमान रहती है और लगभग सभी घटनाओं का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में उससे

सम्बन्ध है। लहनासिंह के बाद उसका चरित्र कहानी में सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वही लहनासिंह के चरित्र को प्रकाशित करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कहानी में उसका पदार्पण दो बार होता है-पहली बार कहानी के प्रारम्भ में और दूसरी बार पच्चीस वर्ष बाद, जब वह सूबेदार हजारासिंह की पत्नी और बोधासिंह की माँ के रूप में कर्त्तव्य का पालन कर रही है। प्रारम्भ में वह आठ वर्षीय बालिका के रूप में अम तसर के चौक बाजार में रसोई के लिए बड़िया लेने के लिए आयी है। जहाँ बारह वर्षीय बालक लहनासिंह अपने शरारती और चुलबुले स्वभाव के कारण बालिका से पूछता है कि तेरे कुड़माई हो गई ? लड़की आँखे चढ़ाकर धत् कहकर भाग जाती है। लेकिन दूसरे-तीसरे दिन किसी सब्जी वाले के यहां या दूध वाले के यहां उसकी लहनासिंह से भेंट हो जाती है। दो-तीन बार वही प्रश्न पूछने पर वह धत् कहती है, लेकिन एक दिन वह लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली-हां हो गई। देखते नहीं रेशम से कढ़ा हुआ यह सालू। यह कहकर लड़की शर्माकर भाग जाती है। इस प्रकार वह निर्भीक होकर आत्मविश्वास और गंभीरता के साथ उत्तर देती है। 'कुड़माई' होते ही बालिका में परिपक्वता, गम्भीरता और आत्मविश्वास का आविर्भाव हो जाता है। उसे यह बतानें में कि उसकी 'कुड़माई' हो गई है न लाज, न संकोच-यही उसके व्यक्तित्व का उज्ज्वल पक्ष है।

इतना ही नहीं, सूबेदारनी कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त व साकार प्रतिमा है, क्योंकि वह पच्चीस वर्ष पहले के अपने बाल-मित्र लहनासिंह को पहचान लेती है, यद्यपि कहानी का नायक लहनासिंह उसे पहचान नहीं पाता, लेकिन वह स्पष्ट कहती है-"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया।" उसे अपने बाल मित्र लहनासिंह पर अगाध विश्वास है कि जिस प्रकार उसने अम तसर के चौक बाजार में अपने प्राणों को संकट में डालकर मुझे घोड़ों की लातों में जाने से बचाया था और दुकान के सामने तख्ते पर खड़ा कर दिया था। उसी प्रकार वह युद्ध स्थल पर भी उसके पति और पुत्र बोधासिंह की रक्षा करेगा। वह अपने बाल मित्र लहनासिंह की मधुर स्म तियों को पच्चीस वर्ष तक अपने हृदय में संजोकर रखती है और उन्हें भुला नहीं पाती है। अपने असीम विश्वास और प्रेम-सम्बन्धों के बल पर वह लहनासिंह से स्पष्ट कहती है-"एक काम कहती हूं मेरे तो भाग फूट गएं सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, पर सरकार ने हम तीमियों की घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं सूबेदार जी के साथ चली जाती। एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ है। उसके पीछे चार और हुए पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी-"अब दोनों जाते हैं मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़ों की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है ! तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ ।" लहनासिंह के प्रति उसके हृदय में रची-पची अपनत्व या स्नेह की भावना उसके हृदय में पच्चीस वर्ष तक बरकरार रहती है तथा सूबेदारनी के व्यक्तित्व को एक नया निखार देती है। इस द ष्टि से सूबेदारनी परम्परागत भारतीय नारी से भिन्न दिखाई देती है।

सूबेदारनी जहां पच्चीस वर्ष तक लहनासिंह की स्म तियों को संजोकर रखती है वहां वह अपने पति और पुत्र के प्रति भी पूर्ण रूप से समर्पित है। पति और पुत्र के प्रति कर्त्तव्य व दायित्व को भी वह अनन्य निष्ठा और आत्मीयता से निभाती है। वह अपने पति सूबेदार हजारासिंह और पुत्र बोधासिंह की रक्षा हेतु लहनासिंह के समक्ष आंचल पसारती है कि जिस प्रकार तुमने मेरी रक्षा की थी, उसी प्रकार इन दोनों की रक्षा करना। यह मेरी भिक्षा है। उसके चार पुत्र और हुए थे, लेकिन सभी असामयिक काल-कवलित हो गये। इसलिए बोधासिंह उसका अकेला कुल-दीपक है। अतः उसके हृदय में अपने पति और पुत्र के प्रति भी प्रेम, आत्मीयता और कर्त्तव्य की भावना विद्यमान है। वह वास्तव में उन दोनों की हित-चिन्तिका और हित-साधिका है तथा दोनों की सुरक्षा के लिए अत्यधिक व्याकुल-व्यथित एवं चिन्तित है। इस प्रकार वह घर-परिवार के प्रति दायित्वबोध से युक्त है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सूबेदारनी की जितनी आत्मीयता सूबेदार और अपने पुत्र बोधासिंह के प्रति है, उतनी ही उन मधुर स्म तियों के प्रति भी है। वह उन मधुर स्म तियों को जीवन की अमूल्य धरोहर मानती है। लहनासिंह के प्रति उसके लगाव को अभिव्यक्त करती है। सूबेदारनी का चरित्र प्रस्तुत कहानी में इसलिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है कि वह नायक लहनासिंह के चरित्र के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने में समर्थ, सक्षम है।

## (ग) सूबेदार हजारासिंह

सूबेदार हजारासिंह गुलेरी द्वारा रचित 'उसने कहा था' का एक प्रमुख पात्र है तथा नायक के चरित्र को प्रदीप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। लहनासिंह तो एक मामूली किसान है, परन्तु सूबेदार हजारासिंह मामूली किसान नहीं है, बल्कि उसको सरकार की ओर से जमीन-जायदाद व खिताब मिल चुका है। लायलपुर में सूबेदार साहब की जमीन-जायदाद है। वह लहनासिंह के प्रति आत्मीयता व स्नेह-भावना रखता है तथा उस पर विश्वास भी करता है। इसीलिए वह लहनासिंह

को चिट्ठी लिखकर अपने पास बुलाता है। कहानीकार लिखता है-"सूबेदार का घर रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था।" इस प्रकार सूबेदार की लहनासिंह के प्रति गहरी आत्मीयता व अगाध विश्वास है। बोधासिंह के बीमार पड़ जाने पर वह उसकी देखभाल का भी दायित्व लहनासिंह को ही सौंपता है जिसे वह पूरी निष्ठा व लगन से निभाता है। भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपने गर्म वस्त्र उसे पहनाता है और स्वयं खाकी कोट और जीन में पहरा देता है। कहानीकार लहनासिंह की सेवा-भावना को इंगित करते हुए लिखता है-"बोधासिंह खाली बिस्किटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खई के मुंह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर।" इसी प्रकार सूबेदार हजारासिंह को लहनासिंह पर अगाधा विश्वास है कि वह उसके पुत्र बोधासिंह की उचित देखभाल करेगा। इसीलिए सूबेदार साहब लहनासिंह को कहते हैं-"जैसा में जानता न होऊँ। रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो।" उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो, कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वाले को मुरब्बे नहीं मिला करते। सूबेदार हजारासिंह खंदक में पड़े-पड़े उकताए हुए लहनासिंह को स्पष्ट कहता है-"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा।" सूबेदार हजारासिंह घूम-घूमकर बड़ी कुशलता और तत्परता से सभी को दिशा-निर्देश देता है और खंदक में चक्कर लगाकर निरीक्षण करता है-"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियां लेकर खाई का पानी बाहर फैंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाका के दरवाजे का पहरा बदल दो।" सूबेदार हजारासिंह का लाम पर जाने का उद्देश्य सरकार के प्रति अपनी वफादारी प्रकट करना है, जबकि लहनासिंह देश-प्रेम की भावना से युक्त होकर या आजीविका हेतु सेना में भर्ती हुआ है।

सूबेदार हजारासिंह लहनासिंह के सुख-दुःख की भी चिन्ता करता है, इसीलिए वह लहनासिंह को समझाते हुए कहता है-"कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" इसी प्रकार लहनासिंह के घायल हो जाने पर उसकी जांघ में पट्टी बंधवाता है तथा उसे छोड़कर वह जाना नहीं चाहता, लेकिन लहनासिंह उसे बोधासिंह और सूबेदारनी की कसम दिलाता है-"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है तो इस गाड़ी में चले जाओ।" सूबेदार हजारासिंह लहनासिंह के प्रति अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त करता है-सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा-"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे।" कहानीकार भी सूबेदार हजारासिंह की आत्मीयता व स्नेह भावना को अनेक स्थलों पर प्रकट करता है।

सूबेदार हजारासिंह के व्यक्तित्व का एक दूसरा पक्ष भी है कि वह लहनासिंह के बलिदान को यथोचित सम्मान नहीं दिलवाता। सूबेदार इस तथ्य से भली-भाँति परिचित है कि लहनासिंह के असीम साहस और कुशाग्र बुद्धि के कारण जर्मन सेना के षड्यन्त्र से उनका बचाव हुआ है और उसे उसके साहस और चातुर्य की बात बड़े अधिकारियों तक पहुंचानी चाहिए थी, लेकिन उसको भरपूर सम्मान नहीं दिलवाया। अतः सूबेदार हजारासिंह उक्त तथ्य अधिकारियों के नोटिस में लाता तो उसका बलिदान, आत्मोत्सर्ग व्यर्थ न जाता और उसके बलिदान को यथोचित सम्मान मिलता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वह (सूबेदार हजारासिंह) 'उसने कहा था' कहानी में एक महत्त्वपूर्ण पात्र है तथा कुशल सेना अधिकारी है, परन्तु लहनासिंह के आत्मोत्सर्ग को यथोचित सम्मान दिलवाने में असमर्थ, असक्षम है।

## IV. उद्देश्य

श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर 'गुलेरी' द्वारा रचित 'उसने कहा था' में कहानीकार नर-नारी के अनुपम, पावन सम्बन्धों का चित्रांकन करता हुआ प्रेम और कर्त्तव्य के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले लहनासिंह के चरित्र को महिमा-मण्डित करता है। लहनासिंह और सूबेदारनी के स्वर्गीय, दिव्य, उदात्त, अतीन्द्रिय प्रेम की प्रशंसा करते हुए **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** लिखते हैं-"इसकी घटना ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर इसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है-केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्जता, प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स निव त्ति नहीं है।" 'उसने कहा था' कहानी के प्रतिपाद्य निम्नलिखित हैं -

(क) लहनासिंह के चरित्र को महिमा-मण्डित करना।

(ख) स्त्री-पुरुष (सूबेदारनी-लहनासिंह) के बीच पनपे संबंधों को उजागर करना।

(ग) दिव्य, अलौकिक प्रेम का चित्रण।

(घ) युद्ध का सजीव चित्रण।

1. **लहनासिंह के चरित्र को महिमा-मण्डित करना** - 'उसने कहा था' कहानी द्वारा कहानीकार लहनासिंह के आत्मोत्सर्ग को महिमा-मण्डित करना चाहता है। लहनासिंह ने प्रेम और कर्त्तव्य के लिए सूबेदार हजारासिंह और उसके पुत्र के प्राण बचाने हेतु अपने प्राण न्योछावर कर दिये थे। लहनासिंह और सूबेदारनी पच्चीस वर्ष पहले अम तसर के चौक बाजार में मिलते हैं। वहां एक बाल धोने के लिए दही और दूसरा रसोई के लिए बड़िया लेने के लिए आया हुआ था। चंचल व शरारती लहनासिंह लड़की का परिचय लेता है और अगली मुलाकात पर उससे पूछता है-'तेरी कुड़माई हो गई है ? लड़की धत् कह कर भाग जाती है और लगभग महीने-भर यही हाल रहता हैं अन्ततः एक दिन लड़के ने वही प्रश्न दोहराया और लड़की ने अप्रत्याशित उत्तर दिया, हां हो गई। देखते नहीं, रेशम से यह कढ़ा सालू। लड़के पर तो मानो वज्रपात हो जाता है। वह तोड़-फोड़ करता हुआ निराश-व्यथित होकर घर पहुंचता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लड़के-लड़की का आपस में एक अनजाना मोह पनप जाता है। पच्चीस साल बाद वही लड़का जो अब सेना में जमादार के पद पर आसीन है, उसी लड़की से मिलता है, जो अब उसके अधिकारी सूबेदार हजारासिंह की पत्नी है। वह लहनासिंह से आंचल पसार कर अपने पति और पुत्र के प्राणों की भिक्षा मांगती है तथा स्पष्ट करती है कि जिस प्रकार उसने मेरे प्राण बचाए थे-घोड़ों की लातों में जाने से पहले मुझे बचाया था और स्वयं लातों में चले गये थे-ठीक उसी प्रकार उनके प्राण बचाना। लहनासिंह उसके पुत्र बोधासिंह जो युद्ध स्थल पर जाकर बीमार पड़ जाता है, की पूरी देखभाल करता है। भीषण कड़कड़ाती सर्दी में झूठ बोलकर अपने गर्म कपड़े उसको पहनाता है, उसका पहरा देता है और स्वयं कीचड़ में पड़कर उसको सूखे लकड़ी के तख्तों पर सुलाता है। सूबेदार हजारासिंह स्पष्ट कहता है-"जैसे मैं जानता न होऊं। रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" स्वयं घायल हो जाने पर भी, घायलों हेतु आई गाड़ी में सूबेदारनी की कसम दिलवाकर सूबेदार और बोधासिंह को भिजवा देता है। कहानीकार लिखता है-"बोधासिंह गाड़ी पर लेट गया ? भला आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया है।" गाड़ियां चल पड़ी थी। सूबेदार ने चलते-चलते लहना का हाथ पकड़ कर कहा-तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तुम ही कह देना। उसने क्या कहा था ?

इस प्रकार कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में लहनासिंह के अद्‌भुत शौर्य, साहस और त्याग का चित्रांकन करते हुए उसके प्राणोत्सर्ग को महिमा-मण्डित करना चाहता है।

2. **स्त्री-पुरुष के बीच में पनपे एक नये तरह के मानवीय सम्बन्ध** - कहानीकार गुलेरी जी प्रस्तुत कहानी में स्त्री-पुरुष (सूबेदारनी-लहनासिंह) के बीच में पनपे एक नये तरह के मानवीय सम्बन्धों का चित्रांकन करता है। बालक लहनासिंह और बालिका सूबेदारनी बारह वर्ष व आठ वर्ष के हैं तथा हर रोज अम तसर के चौक बाजार में मिलने से उनमें मधुर संबंध या मोह पनपता है तथा उन सामाजिक सम्बन्धों पर, प्रतिफलित होने से पूर्व तुषारापात हो जाता है। लेकिन उन मधुर सम्बन्धों की स्म तियां कसक उन दोनों के हृदय में शाश्वत रूप से विद्यमान रहती हैं। लहनासिंह की बाद में सेना में जमादार के पद पर नियुक्ति हो जाती है और सूबेदारनी सूबेदार हजारासिंह की पत्नी बन जाती है, लेकिन वे मधुर स्म तियां अमिट रूप से उसके हृदय में वर्तमान रहती हैं। उन सम्बन्धों के कारण वह लहनासिंह पर अगाध विश्वास करते हुए अपने पति और पुत्र की रक्षा करने की याचना करती है, जिसे लहनासिंह आत्मोत्सर्ग करके निर्वाह करता है। ये मधुर स्म तियां उन दोनों के जीवन की अनमोल धरोहर बन जाती है। इस प्रकार सूबेदारनी का जितना प्रेम-लगाव अपने पुत्र और पति के प्रति है, उतना ही लगाव और प्रेम लहनासिंह की मधुर स्म तियों के प्रति है। लहनासिंह और सूबेदारनी के इस सम्बन्ध का कोई नाम नहीं दिया जा सकता, क्योंकि यदि वह लहनासिंह की प्रेमिका होती तो उसके अपने पति के साथ सम्बन्ध मधुर न होते, लेकिन उसके पति व पुत्र के साथ सम्बन्ध भी अत्यन्त मधुर व आत्मीयतापूर्ण हैं। लहनासिंह के प्रति उसका अगाध विश्वास निश्चय ही एक नये तरह के मानवीय सम्बन्ध की ओर इशारा करते हैं। गुलेरी जी ने इन्हीं नये-अनुपम मानवीय सम्बन्धों की व्याख्या प्रस्तुत कहानी में प्रस्तुत की है। इन्हीं सम्बन्धों को बरकरार रखने के लिए लहनासिंह आत्मोत्सर्ग करके उसके पति और पुत्र को बचाता है। अतः लेखक का प्रमुख प्रतिपाद्य स्त्री-पुरुष के बीच में विकसित हुए इन नये सम्बन्धों को उजागर करना है।

**3. दिव्य-अलौकिक प्रेम का चित्रण** - कहानीकार गुलेरी ने 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह-सूबेदारनी के दिव्य-अलौकिक प्रेम का चित्रण किया है तथा स्पष्ट किया है कि उन दोनों का यह अशरीरी प्रेम अत्यन्त सात्विक और अतीन्द्रिय है तथा उसमें कहीं भी वासना की दुर्गन्ध नहीं है। एक-दूसरे के प्रति असीम-अगाध विश्वास उस दिव्य और अलौकिक प्रेम की आधारभित्ति है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इस अलौकिक प्रेम की प्रशंसा करते हुए लिखा है-"इसकी घटना ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है। केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी-भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रंगल्भता, वेदना की वीभत्स निव त्ति नहीं है।" वास्तव में 'उसने कहा था' कहानी के इस दिव्य प्रेम ने प्रसाद की रोमानी प्रेम कहानियों का पथ प्रशस्त किया है।

**4. युद्ध का सजीव चित्रण** - गुलेरी द्वारा रचित कहानी में कहानीकार ने प्रथम विश्व-युद्ध का सजीव चित्रण किया है। 'उसने कहा था' कहानी 1915 ई० में लिखी गई थी और कहानी का अधिकांश हिस्सा फ्रांस के युद्ध मैदान से सम्बन्धित है। युद्ध के मोर्चे का चित्रण कहानीकार ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से किया है-

अचानक आवाज आयी-"वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा।" और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो पाटों के बीच में आ गए। पीछे से हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने से लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शरु कर दिया। युद्ध के मोर्चे पर सिपाहियों की ऊब, उकताहट और एक रसता तथा उनकी बातचीत, उनकी मनःस्थिति, भविष्य की उनकी योजनाएं सभी कुछ कहानी में अभिव्यक्त हुआ है। अतः स्पष्ट है कि 'उसने कहा था' कहानी में युद्ध का सजीव चित्रण हुआ है।

अतः स्पष्ट है कि कहानीकार ने 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह के त्याग, शौर्य और आत्मोत्सर्ग को उजागर करता हुआ उसके चरित्र को महिमा मण्डित करता है। डॉक्टर चितरंजन मिश्र का कहना है-"लहनासिंह के आत्मार्पन की करुण कथा और पवित्र प्रेम के लिए किए गए निःस्वार्थ बलिदान की यह कहानी अपने सहज रसोद्रेक के कारण हिन्दी साहित्य का 'माइल स्टोन' बन सकी। 'उसने कहा था' के साथ हिन्दी कहानी ने अपने विकास की नयी मंजिलें शुरु की हैं।" वास्तव में यदि 'उसने कहा था' को प्रसाद की कहानियों का दिग्दर्शक या पथ-प्रदर्शक कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

प्रथम विश्वयुद्ध की प ष्ठभूमि पर आधारित यह कहानी एक नये तरह के मानवीय सम्बन्धों को परत-दर-परत खोलती है जो कि अतीन्द्रिय, सूक्ष्म व अलौकिक है। प्रेम, शौर्य या त्याग जैसे महान आदर्शों पर आधारित यह कहानी लहनासिंह के चरित्र द्वारा भारतीय किसान की जीवटता, साहस, बुद्धिमानी और कर्त्तव्यपरायणता को भी दर्शाती है।

## व्याख्या

***1. "चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए, फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी पहली कलात्मक कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। यह हिन्दी की पहली सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कहानी है जो कला की कसौटी पर खरी उतरती है तथा यथार्थ की सघनता के गुजरते उच्च आदर्श को रूपायित करने में समर्थ हुई है। इस कहानी का कथ्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। कहानी का नायक लहनासिंह और उसके साथी सैनिक इंग्लैंड की ओर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-स्थल पर मोर्चे पर लड़ रहे हैं। मोर्चे पर लड़ाई की इंतजार करते-करते उकतासा, उब गए हैं और वे चाहते हैं कि जल्दी से लड़ाई शुरु हो ताकि नीरसता, एकरसता समाप्त हो। दिन-रात भयंकर कड़कड़ाती सर्दी में खंदकों में बैठे-बैठे भयंकर सर्दी के कारण उनकी हड्डियां जम गईं हैं। इसी निष्क्रियता, ऊब और उकताहट में लहनासिंह ये पंक्तियां कहता है-

**व्याख्या** -लहनासिंह स्पष्ट करता है कि पिछले चार दिन से हमने पलक नहीं झपकी, क्योंकि खंदक में हमें जागरूक रहना पड़ता है, दूसरा भयंकर कड़कड़ाती सर्दी के कारण वे एक पल भी खंदक में सो नहीं पाये। इसलिए चार दिन उन्होंने पलकों में बैठे-बैठे काट दिए हैं, लेकिन ऐसे निष्क्रिय पड़े रहने का कोई लाभ नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार बिना दौड़ने से घोड़ा बिगड़ जाता है, अर्थात् उसकी दौड़ने की आदत छूट जाती है और फिर वह ठीक गति से दौड़ नहीं पाता। उसके शरीर के अंग आराम करने से शिथिल हो जाते हैं, फिर दौड़ने में कठिनाई होती है। ठीक इसी प्रकार लड़ाई के बिना भी सैनिक बिगड़ जाते हैं, क्योंकि बिना अभ्यास के एवं निष्क्रिय शिथिल रहने से उनकी अस्त्र-शस्त्र चलाने की आदत छूट जाती है और फिर

वे अस्त्र-शस्त्र चला नहीं सकते। उनका जोश, उत्साह व शक्ति भी निष्क्रिय रहने से शनैः शनैः घटती जाती है। इसलिए यदि हमें लड़ाई का आदेश मिल जाए तो हमारी वीरता देखना। मैं अकेला ही सात जर्मन सैनिकों को वापिस मारकर लौटूंगा, यदि ऐसा न कर सका तो मुझे दरबार साहब (स्वर्ण मन्दिर, अम तसर) में मत्था टेकना नसीब न हो, अर्थात् मुझे दरबार साहब का आशीर्वाद न मिले।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल तथा सुबोध है। गुलेरी जी की भाषा पर पंजाबी प्रभाव द ष्टिगोचर होता है।

2. लहनासिंह के मनोभाव को अभिव्यक्ति मिली है-नायक की वीरता व शौर्य-भावना प्रकट हुई है।

3. 'बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है, बिना लड़े सिपाही'-लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग हुआ है तथा सैनिकों के मनोभाव को प्रकट करने में सक्षम है।

4. लहनासिंह मूल रूप से एक किसान है, इसीलिए उसकी भाषा में देशज शब्द, मुहावरे और लोकोक्ति आदि प्रयोग हुए हैं।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

6. यथार्थ भावना का चित्रांकन हुआ है।

***2. "लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी, जैसे कि बाणभट्ट की भाषा 'है दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती है।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी न केवल गुलेरी जी की, बल्कि हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। जासूस लपटन सूबेदार साहब को अपने सैनिकों के साथ मील भर की दूरी पर पूरब के कोने वाली जर्मन खाई पर आक्रमण करने का आदेश देता है। सूबेदार हजारासिंह अपने सैनिकों को लेकर आदेश की पालना हेतु आक्रमण करने के लिए चला जाता है, लेकिन लहनासिंह उस नकली लपटन साहब को पहचान लेता है और उसकी कपाल क्रिया कर देता है। इसी बीच सत्तर जर्मन सैनिक उनकी खंदक पर आक्रमण कर देते हैं तथा युद्ध में पन्द्रह सिख सैनिक और तिरसठ जर्मन सैनिक मारे जाते हैं या कराह रहे होते हैं। लहनासिंह की पसली में भी गोली लग जाती है तथा वह घाव को गीली मिट्टी से भर लेता है। किसी को भी यह खबर नहीं है कि लहनासिंह को गोली लगी है। इसी प्रसंग में कहानीकार ने रात के द श्य का वर्णन इस प्रकार किया है-

**व्याख्या** - जिस समय भारतीय और जर्मन सैनिकों के बीच लड़ाई चल रही थी, उस समय आकाश में चन्द्रमा निकल आया था तथा सर्वत्र ज्योत्सना छिटकी हुई थी, लेकिन कृष्णपक्ष की रात्रि थी और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कलाएं घटती रहती हैं। इसीलिए संस्कृत कवियों ने कलाओं के घटते रहने के कारण या सबसे पहले क्षय रोग हो जाने के कारण चन्द्रमा को 'क्षयी' कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि क्षय रोग सबसे पहले चन्द्रमा को हुआ था। इसीलिए चन्द्रमा को क्षयी कहा जाता है। मलयांचल पर्वत की शीतल और सुगन्धित वायु बह रही थी, अर्थात् ठण्डी तेज हवा चल रही थी, जिसके कारण सैनिकों के दांत अत्यधिक ठण्ड के कारण किटकिटाने लगे थे। संस्कृत कवि बाणभट्ट की भाषा में इसे (हवा को) 'दंतवीणापदेशाचार्य' कहा जाता है। अर्थात् दन्तवीणा का उपदेश देने वाला आचार्य। यह ठण्डी हवा दांतों के माध्यम से वीणा का उपदेश दे रही है।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल तथा स्वाभाविक है। प्रौढ़ परिमार्जित भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. 'क्षयी' और 'दंतवीणोपदेशाचार्य' गुलेरी जी के संस्कृत-साहित्य के गंभीर अध्ययन को उजागर करते हैं।

3. बाणभट्ट संस्कृत के महान रचनाकार थे, जिन्होंने 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' नामक रचनाओं की रचना की थी।

4. प्रकृति का मार्मिक व मनोमुग्धकारी चित्रण हुआ है।

5. दंतवीणा-एक प्रकार का वाद्ययंत्र है तथा इसका दूसरा अर्थ है-दंत की वीणा। यहां भयंकर शीत के कारण दांत बजने की ओर संकेत किया गया है।

6. भाव पक्षऔर कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

***3. "म त्यु के कुछ समय पहले स्म ति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे द श्यों के रंग साफ होते हैं। समय की धुन्ध उन पर से हट जाती है।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के महिमा-मंडित कहानीकार, स्वनामधन्य श्री चन्द्रधर शर्मा द्वारा रचित उनकी पहली सर्वांगपूर्ण व यथार्थवादी कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लहनासिंह के त्याग, प्रेम, कर्त्तव्य और आत्मोत्सर्ग का मार्मिक व सजीव चित्रण हुआ है। प्रस्तुत कहानी में पहली बार फ्लैशबैक पद्धति का प्रयोग हुआ है। लहनासिंह जर्मन सैनिक के साथ युद्ध में बुरी तरह से घायल हो जाता है। उसकी पसली और जांघ में गोली लगी हुई है तथा अब वह म त्यु-शैय्या पर पड़ा हुआ है। उसकी स्म ति-पटल पर अतीत की अनेक घटनाएं आकर बार-बार उसकी स्म ति को कौंधती है। कभी उसे अपने भतीजे कीरतसिंह की याद आती है तो कभी कुड़माई वाली घटना स्मरण हो आती है।

**व्याख्या** - गुलेरी जी ने मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित करते हुए स्पष्ट किया है कि जीवन के अन्तिम क्षणों में व्यक्ति की स्म ति बिल्कुल स्वच्छ व साफ हो जाती है अर्थात् जब व्यक्ति की म त्यु नजदीक होती है तो जीवन-भर की सारी घटनाएं चलचित्र की भाँति आकर बार-बार स्म ति-पटल को कौंधती हैं। लहनासिंह युद्ध में भयंकर रूप से घायल हो गया है, उसकी पसली तथा जांघ में गोली लगी हुई है। वह जीवन की आखिरी सांसे गिन रहा है। इसीलिये लहनासिंह की स्म ति स्वच्छ और साफ हो गई है। उसे जीवन-भर की घटनाएं बार-बार स्मरण हो उठती हैं। कभी उसे पच्चीस वर्ष पूर्व की अम तसर के चौक बाजार की कुड़माई वाली घटना स्मरण हो उठती है तो कभी पच्चीस वर्ष बाद की सूबेदारनी के घर की घटनाएं उसकी स्म ति-पटल पर उभरती है। जब सूबेदारनी अपने सम्बन्धों का वास्ता देकर आंचल पसारकर पुत्र एवं पति के प्राणों की भीख मांगती है। जीवन-भर भोगी हुई घटनाओं, द श्यों के रंग इतने स्वच्छ, उज्ज्वल और स्पष्ट हो गए हैं कि समय की धुन्ध या कालिमा उन पर से हट गई है तथा विगत् जीवन उसके नेत्रों के समक्ष एकदम स्पष्ट, उज्ज्वल व स्वच्छ उभर आया है।

**विशेष :-** 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। संस्कृतमय शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

2. लहनासिंह के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

3. मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त किया गया है कि म त्यु के समय मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन का आकलन करता है और सारी अतीत की घटनाएं उसकी स्म ति-पटल को आकर बार-बार कौंधती हैं।

4. शिल्प की द ष्टि से यहां फ्लैशबैक पद्धति का प्रयोग हुआ है।

5. लहनासिंह की स्म ति में सूबेदारनी का आना, उसकी प्रगाढ़ता, आत्मीयता को उजागर करती है।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

***4. "सूबेदारनी रोने लगी-'अब दोनो जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही की दुकान के आगे बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना है। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी सर्वश्रेष्ठ, सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने लहनासिंह के अद्भुत शौर्य और त्याग जैसे महान् आदर्शों का चित्रांकन किया है। सूबेदारनी लहनासिंह से आंचल फैलाकर भीख मांगती है कि मेरी तो किस्मत ही फूट गई। यदि सरकार स्त्रियों की भी एक सेना बना देती तो मैं भी लड़ाई लड़ने के लिए चली जाती। बोधासिंह मेरा अकेला जीवित पुत्र है, उसके बाद चार पुत्र और हुए लेकिन सभी असामयिक काल-कवलित हो गए। अब मेरा पति सूबेदार हजारासिंह और पुत्र बोधासिंह युद्ध में जा रहे हैं, तुम इनकी रक्षा करना।

**व्याख्या** - सूबेदारनी लहनासिंह पर अगाध-असीम विश्वास करती है, इसीलिए वह रोते हुए कहती है कि मेरे पति सूबेदार हजारासिंह और बेटा बोधासिंह दोनों युद्ध लड़ने के लिए जा रहे हैं। मेरा तो भाग्य ही खोटा है, क्योंकि दोनों युद्धस्थल पर जा रहे हैं। पता नहीं, वे जीवित वापिस आयेंगे या नहीं। तभी अतीत की एक घटना को कुरेदती हुई सूबेदारनी कहती है कि तुम्हें स्मरण होगा कि एक बार अम तसर के चौक बाजार में तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के सामने बिगड़ गया था और मैं भी वहां बड़ियां या दही लेने के लिए गई हुई थी। मैं घोड़े की लातों में चली गई थी, लेकिन तुमने मेरे को उठाकर दुकान के तख्त पर खड़ा कर दिया और स्वयं घोड़े की लातों में चले गए थे। अर्थात् तुमने अपने प्राणों को संकट में डालकर मेरे प्राणों की रक्षा की थी। वह आग्रहपूर्वक याचना करती है कि जिस प्रकार तुमने अपने प्राणों को संकट में डालकर मेरे प्राणों की रक्षा की थी, ठीक इसी प्रकार मेरे पति और पुत्र को भी बचाना। इनके प्राणों की भीख मैं तुमसे आंचल पसारकर मांगती हूँ।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. सूबेदारनी का लहनासिंह पर अगाध विश्वास है-इसी भाव की व्यंजना हुई है।
3. भावनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।
4. लहनासिंह की त्याग व त्ति का चित्रांकन हुआ है।
5. सूबेदारनी की मनोभावनाओं का मार्मिक व सजीव चित्रण है।
6. भावपक्ष व कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

# कफ़न

## (प्रेमचंद)

## तात्त्विक विवेचन

'कफ़न' सुप्रसिद्ध कथाकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी है जिसमें उनका यथार्थवादी द ष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। यह कहानी प्रेमचंद के साहित्य में एक क्रांतिकारी घटना है, जहाँ पहुँचकर प्रेमचंद की आदर्शवादिता खण्डित हो जाती है और उनकी यथार्थवादिता चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। इस यथार्थवादी एवं कालजयी कहानी में कथाकार ने ग्राम्य जीवन में व्याप्त शोषण, विषमता व आर्थिक दरिद्रता से उत्पन्न आलस्यव त्ति और निकम्मेपन का सजीव तथा यथार्थ चित्रण किया है। इस कहानी के द्वारा लेखक यह भी प्रतिपादित करना चाहता है कि पेट की भूख मनुष्य को किस सीमा तक गिरा सकती है। पेट की भूख मिटाने के लिए मनुष्य पशु से भी अधिक गर्हित आचरण करने में संकोच नहीं करता। 'कफ़न' कहानी के घीसू और माधव दोनों ही ऐसे पात्र हैं जिन्हें पेट की भूख ने पशु से भी अधिक क्षुद्र बना दिया है पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य तथा मनोवैज्ञानिक रहस्य की तटस्थ अभिव्यंजना ने कहानी को अत्यंत मार्मिक बना दिया है।

कहानी-कला के विविध तत्वों की द ष्टि से 'कफ़न' कहानी की समीक्षा इस प्रकार है-

1. **कथावस्तु (कथानक) -**

कहानी की कथावस्तु इस प्रकार है - घीसू गाँव का सीधे-सादा एवं गरीब चमार था। उसका एक लड़का था जिसका नाम माधव था। अभी हाल ही में उसका विवाह हुआ था। उसकी स्त्री घर का सब काम-काज करती तथा पति एवं ससुर की भी देखभाल करती। एक दिन वह प्रसव-वेदना से पीड़ित होकर घर की कोठरी में कराह रही थी, घीसू और माधव, पास के खेत से आलू चुराकर उन्हें खा रहे थे। पिता-पुत्र दोनों यही काम करते और परिश्रम से सदैव जी चुराते इसी बीच माधव की स्त्री प्रसव वेदना से मर गई। घीसू जमींदार के यहाँ गया और अपनी दुःख भरी कथा सुनाकर दो रुपये ले आया। कुछ पैसे इधर-उधर के चन्दे से एकत्रित हो गये। वे दोनों कफ़न खरीदने निकले। रास्ते में दोनों सोचते जा रहे थे कि यह जीवन भी कैसा व्यंग्य है जिसे जीवित अवस्था में पहनने को मोटे कपड़े तक न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न ओढ़ाया जाय। वे शराब के ठेके के सामने पहुँच चुके थे। दोनों एक क्षण एक-दूसरे की ओर देखकर और इशारे से सहमति पाकर दुकान में पहुँचे। दोनों ने जी भरकर शराब पी और खाना खाया। उसके पश्चात् नशे में नाचते-गाते, उछलते-कूदते रहे। शराब के नशे में वे घर पर रखी हुई लाश की चिन्ता भी भूल चुके थे।

कहानी की कथावसतु मनोवैज्ञानिक अनुभूति के धरातल पर आधारित है। कथावस्तु संक्षिपत एवं सुगठित है। कहानी का प्रारम्भ बुधिया की प्रसव-वेदना की कारुणिक समस्या से होता है। लेकिन यह समस्या और भी करुण उस समय होती है जब घीसू और माधव भुने हुए आलुओं के लोभवश बुधिया के पास तक नहीं जाते। कहानी का विकास घीसू और माधव के चरित्र चित्रण से होता हुआ बुधिया की म त्यु तक होता है और कहानी का अन्त जीवन के एक व्यंग्य से होता है जब घीसू ओर माधव कफ़न के स्थान पर शराब खरीदते हैं-"तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे। साहूजी एक बोतल हमें भी देना।....फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी। कूदे भी। गिरे भी। भटके भी। भाव भी बनाए। अभिनय भी किए और आखिर में नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।" इस प्रकार कहानी का अंत व्यंजनापूर्ण, कुतूहलपूर्ण तथा पाठक पर स्थायी प्रभाव डालने में समर्थ है।

2. **पात्र एवं चरित्र-चित्रण -**

कहानी में पात्रों की संख्या अत्यल्प है। मुख्य पात्रों में घीसू और माधव हैं। इन दोनों के चरित्र को लेखक ने यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है। इनकी गतिविधियों, क्रियाओं और वार्तालापों में नाटकीयता या बनावटीपन नहीं है। प्रस्तुत अवतरण द्वारा दोनों के चारित्रिक अन्तर को भली-भाँति समझा जा सकता है-"घीसू बोला-'कफ़न लाने से क्या मिलता ? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।' ...'लेकिन लोगों को क्या जवाब दोगे ? लोग पूछेंगे नहीं कफन कहाँ है ?' घीसू हँसा-'अबे कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा पर मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आयेगा लेकिन फिर वही रुपये देंगे।"

उपर्युक्त उदाहरण में घीसू और माधव के मन की समस्त कुंठाएँ अपने यथार्थ रूप में उभर आई हैं। पिता-पुत्र दोनों

ही स्वार्थी, लोभी, आलसी हैं। परिश्रम से सदैव जी चुराते हैं। माधव की पत्नी बुधिया और जमींदार साहब का मात्र नामोल्लेख है। कहानीकार ने इनकी चारित्रिक विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न ही नहीं किया है। अपितु इन दोनों का चरित्र घीसू और माधव की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने में सहायक हुआ है।

3. **कथोपकथन (संवाद) -**

'कफ़न' कहानी के कथोपकथन सजीव, संक्षिप्त, स्वाभाविक, भावानुकूल एवं पात्रानुकूल हैं। सम्पूर्ण कहानी के अधिकांश में कथोपकथन हैं। लेखक अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। घीसू और माधव के संवाद उत्तरोत्तर कहानी को विकसित करते जाते हैं। प्रेमचंद जी ने इन कथोपकथनों के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए-"घीसू हँसा-अबे कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो नहीं आयेगा। लेकिन वहीं देंगे रुपया।" उपयुक्त उदाहरण घीसू की मनोव त्ति पर प्रकाश डालता है।

इसी प्रकार भावानुकूल कथोपकथन का एक उदाहरण देखिए-"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए। कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।"

4. **वातावरण (देशकाल) -**

प्रस्तुत कहानी में भारतीय सर्वहारा वर्ग के निम्न श्रेणी के व्यक्तियों के जीवन को चित्रित किया गया है। इस वर्ग के व्यक्तियों के जीवन की दयनीय-स्थिति और अभाव-ग्रस्तता का चित्रण करते हुए कहानीकार ने प्रारम्भ में लिखा है-"झोंपड़ी के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई; सारा अंधकार में लय हो गया था।"

इसी प्रकार जब घीसू और माधव कफ़न के पैसों की शराब पीने जाते हैं, उस समय मधुशाला के आन्तरिक वातावरण की झाँकी प्रस्तुत करते हुए लेखक कहता है-"ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपट जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था। वहाँ के वातावरण में सरुर था। हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं या न जीते हैं, न मरते हैं।" इस प्रकार कहानी का वातावरण सहज और स्वाभाविक है जिसमें किसी प्रकार का बनावटीपन द ष्टिगोचर नहीं होता।

5. **भाषा-शैली** -

कहानी की भाषा सरल, सजीव एवं व्यावहारिक है। वह जनसाधारण की भाषा है जिसमें कृत्रिमता, नाटकीयता एवं काव्यात्मकता के कहीं दर्शन नहीं होते। उदाहरण के लिए-"हाँ बेटा, बैकुण्ठ में जायेगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुण्ठ में जायेगी, तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं; और अपने पाप को धाने के लिए गंगा नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।" अपने कथन की पुष्टि करने के लिए प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ-'फाके होना', 'मारे-मारे फिरना', 'नाम उजागर करना', 'घर में तो पैसा इस तरह गायब था जैसे चील के घोंसले में माँस', साथ ही अपनी भाषा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लेखक ने सूक्ति वाक्यों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ-'अस्थिरता नशे की खासियत है।'

आलोच्य कहानी में लेखक ने व्यक्तित्व के अनुकूल मनोवैज्ञानिक, व्यंग्यात्मक और वर्णनात्मक आदि विविध शैलियों का प्रयोग किया है। व्यंग्यात्मक शैली का एक उदाहरण देखिए-"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।"

6. **उद्देश्य :-**

प्रेमचंद जी की कहानियाँ सोद्देश्य हैं जिनके पीछे एक निश्चित मन्तव्य होता है। वे कला को कला के लिए न मानकर जीवन के लिए, उसके कल्याण के लिए मानते हैं। मात्र मनोरंजन को वे साहित्य का उद्देश्य मानने के वे घोर विरोधी हैं।

आलोच्य कहानी के उद्देश्य में प्रेमचंद जी पूरी तरह सफल रहे हैं। यह कहानी मानव की कुंठा, मानव की पिपासा,

बंधन तोड़कर प्रकट हुई है जिसमें जीवन का नग्न यथार्थ अहसास कर उठा है। न जाने कब से दुःखी, क्षुधित, आशान्वित घीसू और माधव जब बुधिया के लिए कफन खरीदने जाते हैं तो न जाने किस प्रेरणा से अपनी समस्त मान्यताओं, मर्यादाओं और परम्पराओं को भूलकर आत्मा की यथार्थ भूमि पर खड़े हो जाते हैं। समाज की प्राचीन मान्यताओं का उपहास करते हैं-"कैसा बुरा रिवाज है जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।"

इसके अतिरिक्त घीसू और माधव के माध्यम से प्रेमचंद जी ने मानों इस बात की घोषणा की है कि देश की वर्तमान अर्थव्यवस्था यहाँ की प्रगति के अनुकूल नहीं है। वह पतन के कगार पर खड़ी है। एक दिन वह अवश्य ढह जायेगी।

7. **शीर्षक -**

आलोच्य कहानी का शीर्षक संक्षिप्त, सटीक और व्यंग्यपूर्ण है। शीर्षक कहानी की आत्मा में बैठ सा गया है। कहानी के 'कफ़न' शीर्षक की सार्थकता माधव के इस कथन से सिद्ध होती है-"कैसा बुरा रिवाज है जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए, कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है।"

इस प्रकार कहानीकार ने कहानी की मूल आत्मा को उभारकर उसे रोचक, कुतूहलपूर्ण और आकर्षक बना दिया है। सम्पूर्ण कहानी में एक व्यवस्था है, क्रम है जिसमें शिथिलता द ष्टिगोचर नहीं होती।

## प्रष्टव्य

1. 'कफ़न' कहानी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. सिद्ध करो कि 'कफ़न' कहानी प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानी है।
3. कहानी के तत्त्वों के आधार पर प्रेमचंद कृत 'कफ़न' कहानी की समीक्षा कीजिये।

# II. कहानी-सार

हिन्दी साहित्य के कल्पतरू व कलम के सिपाही तथा उपन्यास सम्राट व सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित 'कफन' कहानी में ग्रामीण रीति-रिवाज, रूढ़ियों और परम्पराओं का सफल चित्रण हुआ है तथा साथ ही गरीबी-दीनता से उत्पन्न हैवानियत का भी सुन्दर चित्रण किया है। 'कफन' कहानी का सारांश इस प्रकार है-

घीसू और माधव अलाव के सामने बैठे आलू खा रहे हैं और अन्दर माधव की पत्नी बुधिया प्रसव-वेदना से तड़प रही है। दोनों इस भय से अन्दर बुधिया को देखने के लिए नहीं जाते कि कहीं वह उसके हिस्से के आलू न खा जाए। सामान्यतः चमार आलसी और अकर्मण्य होते हैं और फिर घीसू और माधव तो उनमें भी सरनाम थे। वह इतना कामचोर था कि आधा घण्टा काम करता तो धण्टा-भर चिलम पीता। इसी प्रकार घीसू भी अकर्मण्य, कामचोर व आराम-तलब प्रव त्ति का स्वामी था। यद्यपि गांव किसानों का था और काम करने वाले के लिए अनेकों धन्धे थे, लेकिन इन दोनों को कोई भी काम पर नहीं बुलाता था। वे दूसरों के खेतों से मटर-आलू उखाड़ लाते थे और रात को भूनकर खा लेते थे या किसी के खेत से दस-पांच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूस लेते। घीसू ने इसी आकाशव त्ति से जीवन के साठ साल पूरे कर दिये और माधव भी पिता के कदमों पर ही चल रहा था। माधव का विवाह पिछले ही साल बुधिया से हुआ था। उसने आकर घर में एक व्यवस्था डाली थी तथा दूसरों के घरों में पिसाई करके या घास छीलकर वह दो-जून रोटी के आटे का जुगाड़ करती थी। तब से ये दोनों और भी अधिक आराम-तलब हो गये थे। काम पर जाते ही नहीं थें और साथ में अकड़ने भी लगे थे तथा निर्व्याज भाव से दुगुनी मजदूरी मांगते थे। वहीं बुधिया जो इन बेगैरतों का पेट भरती थी, आज प्रसव-वेदना से तड़प रही है, लेकिन ये दोनों न तो दाई की व्यवस्था करते हैं और न दवा-दारू की, बल्कि आलू खाने में तल्लीन हैं।

माधव तो इतना निर्मम एवं निष्ठुर है कि कहता है-मरना है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती ? आलू खाकर दोनों अलाव के पास अपनी-अपनी धोतियां लपेटकर अजगर की भाँति गेंडुली मारकर सो गए। अन्दर अभी भी बुधिया प्रसव-वेदना से कराह रही थी तथा उसकी मर्मान्तक आवाज हृदय-विदारक एवं दिल दहला देने वाली थी। सुबह उठे तो देखा कि बुधिया मर गई है और मुंह पर मक्खी भिनक रही हैं। माधव-घीसू दोनों ही छाती पीट-पीटकर रोने लगे, पड़ोसियों ने उन्हें समझाया, ढाढ़स

बंधवाई। तब उन्हें कफन-लकड़ी की चिन्ता हुई। घर से पैसा इस तरह गायब था कि जिस प्रकार चील के घोंसले से मांस। वे जमींदार के पास गए, जमींदार वैसे दयालु था, परन्तु इनकी सूरत से उसे सख्त नफरत थी तथा कई बार इन्हें अपने हाथों से पीट चुका था। चोरी करने के अपराध में या समय पर हां भरकर काम पर न आने के कारण। इनके रोने-धोने को देखकर उसने दो रुपये इनकी ओर फैंक दिए, परन्तु सहानुभूति का एक शब्द भी न बोला। इस प्रकार उन्होंने गांव में जमींदार का ढिंढोरा पीटकर बनिए महाजनों से रुपए एकत्रित कर लिए। जब जमींदार साहब ने पैसे दिए तो भला कौन मना करता। किसी ने अनाज दिया, किसी ने लकड़ी और किसी ने रुपए। गांव के कुछ लोग तो जंगल में बांस काटने के लिए चले गए और घीसू-माधव, जिनके पास पाँच रुपए की राशि एकत्रित हो गई थी, शहर में कफन खरीदने के लिए चल पड़े। उन्होंने अनेक दुकानों पर रेशमी, सूती कफन देखे, परन्तु उनको कोई भी नहीं जंचा। यहां वे 'कफन' के औचित्य पर प्रश्न-चिह्न लगाते कि कोई हल्का सा खरीद लेते हैं, उठाते-उठाते रात हो जायेगी और कफन को भला कौन देखता है। फिर कफन को तो जल ही तो जाना है। लेखक यहां भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों पर कटाक्ष करता है कि जीते-जी जिसे तन ढकने को कपड़ा न मिले, भला मरने के बाद उसे कफन चाहिये। तभी घीसू को ठाकुर की बारात याद आती है जिसमें उसने भरपेट पूरिया, सुवासित गोल-गोल कचोरियां खायी थीं। उसने समाज पर कटु कटाक्ष करते हुए कहा कि अब तो सब को किफायत सूझती है क्रिया-क्रम में किफायत, दान-दक्षिणा में किफायत, फिर भला गरीबों का धन लूट-लूटकर कहां रखोगे। यहां मुंशी जी के विचारों का संवाहक घीसू समाज की विषमता पर भी चिन्तन करता है कि किसानों को कठोर परिश्रम करने के बाद भी भर-पेट रोटी नहीं मिलती, परन्तु पूंजीपति कुछ न करके भी सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं को भोगते हैं। इस प्रकार वे सायंकाल तक इधर-उधर घूमते रहे और उन्हें कोई भी कपड़ा पसन्द न आया। अन्त में किसी देवी प्रेरणा से वे एक मदिरालय में चले गये, थोड़ी देर खड़े रहकर सोचते रहे और अन्त में किसी गद्दी के पास घीसू ने कहा-साहू जी जरा एक बोतल हमें भी देना। इसके बाद चिखौना आया, तली हुई मछलियां आयीं। दोनों कुजियों में डालकर ताबड़तोड़ पीने लगे और सरूर मे आकर बुधिया को आशीर्वाद देने लगे। बुधिया को आशीर्वाद देते हुए घीसू ने कहा कि बेटा वह बैकुण्ठ जाएगी, क्योंकि उसी के कारण आज यह सुस्वाद भोजन और मदिरा मिली है तथा हमारी जीवन की अभिलाषा पूरी कर गई है। लेकिन माधव के मन में एक चिंता उपजी कि लोग पूछेंगे कि कफन क्यों नहीं लाये, क्योंकि पैसों की तो हमने शराब पी ली। घीसू बड़ी काईयां हँसी-हँसा और बोला-कह देंगे कि गांठ से खिसक गए और उनको ढूंढ़ने में ही इतनी देर लग गई। कफन बुधिया को अवश्य मिलेगा, हां इतना अवश्य है कि अब की बार वे पैसे हमें न देंगे, स्वयं खरीदकर लायेंगे। जब आधी बोतल शराब की समाप्त हो गई तो माधव सामने की दुकान से दो सेर गर्म पूरियां, चटनी, अचार और कलेजिया ले आया। दोनों ने भर-पेट खाया और बाकी बची हुई पूरियों की पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दी और जीवन में पहली बार देने के आनन्द और उल्लास का जीवन में अनुभव किया। इससे पूर्व कहानीकार ने मधुशाला के मादक वातावरण का भी चित्रण किया है, क्योंकि यहां आने के बाद व्यक्ति अपने सांसारिक कष्टों को भूल जाता था। खा-पीकर दोनों पर नशा हावी हो गया और बकने लगे। घीसू दार्शनिकों जैसी बातें करने लगा। कहीं वे बुधिया की दयालुता और सहृदयता का वर्णन कर रहे हैं ओर उसको बैकुण्ठवासिनी होने का आशीर्वाद दे रहे हैं। माधव नशे की हालत में बुधिया को याद करके रोने लगा, परन्तु घीसू ने कहा-ठीक है, मोह-माया के बन्धनों को काटकर चली गई। दोनों नशे में अलापने लगे-"बड़ी पुण्यात्मा थी, मरते-मरते भी कितने दिनों की कामना पूरी कर गई। निश्चय ही उसे स्वर्ग मिलेगा।" तथा वह स्पष्ट कहता है कि उसने जीवन भर किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं तथा वह न बैकुण्ठ में जाएगी तो क्या-क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते है और अपने पापों को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं। इस प्रकार वे दोनों स्वर्ग-नरक, वर्ग-विषमता आदि विभिन्न विषयों पर प्रेमचंद के दर्शन को वाणी देते रहे। पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थी और घर पर रात से मरी बुधिया का म त शरीर पड़ा हुआ था। पर इन्हें इसकी कोई चिन्ता न थी, वे तो मस्ती के आलम में मदमस्त होकर गा रहे थे, मटक रहे थे और अभिनय करके अंत में वहीं गिर पड़े। उधर गांववासी कफन की बाट जोह रहे थे और ये दोनों बाप-बेटा नशे में मदमस्त होकर सड़क पर पड़े हुए थे।

## III. चरित्र-चित्रण

### (क) घीसू

उपन्यास सम्राट एवं सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'कफन' में घीसू एक महत्त्वपूर्ण पात्र है तथा कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है। कहानी की सभी घटनाओं के मूल में वह वर्तमान

रहता है और अन्य पात्र उसके चरित्र को प्रकाशित करते हैं। **डॉ० इन्द्रनाथ मदान** का कहना है-"वे पहले व्यक्ति थे, जो सामग्री के लिए गांवों की ओर गए और जिन्होंने सीधे-सादे ग्रामीणों के घटनाहीन जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया। उन्होंने इस सीधे-सादे धरती-पुत्रों, क्लर्कों और बड़े-बड़े व्यापारियों के मामूली मुंशियों के मन की हलचल को व्यक्त किया। वे उनके संघर्षों, प्रलोभनों और कमजोरियों, उनकी आशाओं और आशंकाओं, उनकी सहज धार्मिकता और अंधविश्वासों से भली-भाँति परिचित थे। किसान का मन उनके लिए खुली हुई पुस्तक के समान था।" कहानीकार ने निम्न वर्ग के पात्र घीसू को लेकर उसके मन की कुप्रव त्तियों का चित्रांकन किया है तथा साथ ही उसकी आराम-तलबी, अकर्मण्यता, निठल्लापन, निर्मम-निष्ठुर व कठोर व्यक्तित्व का स्वामी है। परिश्रम न करके दूसरों के खेत से आलू-मटर चुरा ले आते हैं और भून-भानकर खा लेते हैं या दस-पांच ऊंख उखाड़ लाते हैं और जब गांव के सभी लोग सो जाते हैं तो रात को चूस लेते हैं।

1. **निर्मम-निष्ठुर व कठोर व्यक्ति** - घीसू निर्मम-निष्ठुर व कठोर व्यक्तित्व का स्वामी है, क्योकि उसके पुत्र की पत्नी बुधिया प्रसव-वेदना से तड़प रही है तथा लेखक ने उसकी हृदय-विदारक पीड़ा का चित्रांकन इस प्रकार से किया है-"अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह-रहकर उसके मुंह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे।" वह बुधिया, जिसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी और इन दोनों बे-गैरतों का दोजख भरती थी, परिश्रम करके आज वही प्रंसव-वेदना से तड़प-तड़पकर आखिरी सांसें गिन रही है, लेकिन घीसू न तो दवा-दारू की व्यवस्था करता है और न दाई, बल्कि उसे तो आलू खाने की चिन्ता है। यद्यपि वह माधव को देखने के लिए भेजता है, परन्तु वह नहीं जाता। अतः घीसू भी बुधिया की म त्यु के लिए किसी न किसी रूप में जिम्मेवार है। यद्यपि वह कहानी में कहता है-"मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं।" इतना ही नहीं, उसकी निर्ममता-निष्ठुरता उस समय चरम सीमा को छू जाती है जब वह बुधिया के कफन के लिए एकत्रित किए गए चन्दों के पैसे से शराब पीता है, पूरियां खाता है, कलेजियां, चटनी और अचार खाता है। इसलिए स्पष्ट है कि कहानी में वह निर्मम, निष्ठुर व कठोर व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है।

2. **कामचोर** - घीसू 'कफन' कहानी में कामचोर व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है, क्योंकि वह एक दिन काम करता है तो तीन दिन आराम। इसलिए उसे कहीं भी मजदूरी नहीं मिलती थी। यदि घर में मुट्ठी भर अनाज मौजूद हो तो उसे काम करने की कसम थी। जब दो-चार दिन का फांका हो जाता तो वह पेड़ पर चढ़कर लकड़ियां तोड़ लाता और माधव उन्हें बाजार में बेच आता था। घीसू ने इसी व त्ति से साठ साल पूरे कर दिये थे। बुधिया के आ जाने से घीसू और ज्यादा कामचोर व आराम-तलब हो गया था, बल्कि अकड़ने भी लगा था।

3. **चोरी की प्रव त्ति** - घीसू में चोरी करने की प्रव त्ति भी विद्यमान थी, जब गांव के सभी लोग सो जाते तो दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते थे और भून कर खा लेते थे या दस-पांच ऊंख उखाड़ लाते और रात को चूस लेते थें जमींदार भी इसे कई बार अपने हाथों से चोरी करने के अपराध में पीट चुका था और वादे पर काम पर न आने के लिए भी। वह घीसू से पूछता है-"क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है ? अब तू कहीं भी दिखाई नहीं देता। मालूम होता है, इस गांव में रहना नहीं चाहता।"

4. **विचारवान् व्यक्ति** -कहानीकार घीसू को विचारवान् व्यक्ति घोषित करता है-"घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान् था और किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हां, उसमें वह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसीलिए जहां उसकी मण्डली के और लोग सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गांव उंगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकी न होती थी कि अगर वह फटे-हाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेवजह फायदे तो नहीं उठाते।" इस प्रकार स्पष्ट है कि घीसू प्रेमचन्द जी के विचारों के वाहक हैं तथा कहीं तो वह रूढ़ियों, परमपराओं की धज्जियां उड़ाता है तो कहीं वर्ग-वैषम्य पर आक्रोश प्रकट करता है। पूंजीपतियों के धन-संग्रह पर कटाक्ष करते हुए घीसू स्पष्ट कहता है-"अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो। पूछो गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहां रखोगे ? बटोरने में तो कोई कमी नहीं है। हां खर्च में किफायत सूझती है।" इसी प्रकार वह रूढ़ रीति-रिवाजों पर भी कटु-कटाक्ष करता है। 'कफन' के अस्तित्व-उपादेयता पर प्रश्नचिह्न लगाता हुआ घीसू स्पष्ट कहता है-"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते-जी तन ढकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।"

इसी प्रकार घीसू कभी-कभी दार्शनिकों के समकक्ष अपनी विचारवान् भावना को प्रकट करते हुए कहता है-"हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा।" इसी प्रकार एक अन्यत्र स्थल पर भी घीसू मोह-माया की बात करता हुआ बुधिया को स्वर्ग की निवासिनी घोषित करता है-"हां बेटा, बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह बैकुण्ठ में न जाएगी तो क्या वे मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।" इसी प्रकार माधव के विलाप पर वह समझता है कि "क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई, जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बंधन तोड़ दिए।" इस प्रकार वह कहानी में विचारवान् व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है।

5. **झूठा व्यक्ति** - घीसू 'कफन' कहानी में झूठा व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। कहानी में कुछ स्थल ऐसे हैं जहां वह सफेद झूठ का सहारा लेकर अपना काम निकालता है। यथा-बुधिया के मर जाने पर वह जमींदार के पास जाकर झूठ का सहारा लेते हुए कहता है-"सरकार । बड़ी विपत्ति में हूं। माधव की घरवाली रात को गुजर गई। रात-भर तड़पती रही सरकार। हम दोनों उसके सिराहने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका सब कुछ किया, मगर वह हमें दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक। तबाह हो गए। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूं, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगाएगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब दवा-दारू में उठ गया। सरकार को दया होगी तो उसकी मिट्टी उठेगी।" न रात-भर उसकी देखभाल करते हैं और न दवा-दारू की व्यवस्था करते हैं फिर भी जमींदार के समक्ष सफेद झूठ बोलकर उनकी सहानुभूति अर्जित करके धन वसूलना चाहता है। इसी प्रकार वह जमींदार साहब के नाम पर ढिंढोरा पीटकर गांव के बनिये-महाजनों से भी बुधिया के क्रिया-कर्म हेतु रुपए एकत्रित करता है। अतः स्पष्ट है कि वह झूठा व्यक्ति है तथा कथनी-करनी में जमीन-आसमान का अन्तर है।

6. **संवेदनशून्य** - घीसू 'कफन' कहानी में एक संवेदनशून्य व्यक्ति के रूप में आया है। कहानी के प्रारम्भ में बुधिया अन्दर झोंपड़े में प्रसव-वेदना से तड़प रही है, लेकिन घीसू आलू खाने में लीन है और फिर धोती ओढ़ कर अजगर की तरह गेंडुली मारकर सो जाता है, जबकि बुधिया हृदय-विदारक चीखें मार रही है। न वह दवा-दारू की व्यवस्था करता है और न डॉक्टर की। इसी प्रकार वह बुधिया के क्रिया-कर्म हेतु एकत्रित किए गए पैसों की शराब पीता है, पूरियां खाता है, कलेजियां-अचार और चटनी का रसास्वादन करता है और घर पर लाश पड़ी हुई है। निम्न संवाद में भी उसकी चतुरता-संवेदन शून्यता और काइयां द ष्टि द ष्टिगोचर होती है-"जो वहां वह हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफन क्यों नहीं दिया, तो क्या कहोगे ?

कहेंगे तुम्हारा सिर !

पूछेगी तो जरूर !

"तू कैसे जानता है कि उसे कफन न मिलेगा ? तू मुझे गधा समझता है। साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ। उसको कफन मिलेगा और बहुत अच्छा मिलेगा।"

माधव को विश्वास न आया। बोला-"कोन देगा ? रुपए तो तुमने चट कर दिए। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी मांग में सिंदूर तो मैंने डाला था।"

घीसू गर्म होकर बोला-"मैं कहता हूं, उसे कफन मिलेगा। तू मानता क्यों नहीं ?"

कौन देगा, बताते क्यों नहीं ?

वही लोग देंगे, जिन्होंने कि अबकी दिया। हां, अबकी रुपए हमारे हाथ न आयेंगे।

इसी प्रकार वहां शान से बैठे पूरियां-कलेजियों की दावत उड़ रही है और घर पर बुधिया का म त देह 'कफन' की प्रतीक्षा में पड़ा हुआ है।

7. **नशेड़ी व्यक्ति** - 'कफन' कहानी में घीसू एक नशेड़ी व्यक्ति के रूप में आया है। वह नशे की हवस पूरी करने के लिए बुधिया के दाह-संस्कार कफन हेतु एकत्रित की गई धनराशि से शराब पीता है। कहानीकार ने इसका चित्रांकन इस प्रकार से किया है-"तब न जाने किस देवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित योजना

के अन्दर चले गये। वहां जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे।" फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा-"साहू जी, एक बोतल हमें भी देना।"

इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियां आयीं ओर दोनों बरामदे में बैठकर शांतिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियां ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गए।

इस प्रकार अन्त में पूरी बोतल शराब की पीकर वह नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि घीसू निठल्ला, आराम-तलब, अकर्मक व झूठा व्यक्ति हैं न उसे मान-मर्यादा की चिन्ता है और न जवाबदेही का खौफ ! पुत्र-वधु सारी रात प्रसव-वेदना से तड़पती रही, परन्तु उसने न तो उसके लिए दवा-दारू की व्यवस्था की और न डॉक्टर, अन्ततः सम्पर्क उपचार व्यवस्था के अभाव में वह चल बसी, लेकिन घीसू आलू की दावत उड़ाने में लीन है। वह नशेड़ी और झूठा व्यक्ति है तथा झूठ बोलकर बुधिया के दाह-संस्कार हेतु धनराशि एकत्रित करता है, परन्तु संवेदनशून्य व्यक्ति घीसू उस राशि की शराब पीता, तली हुई मछलियां खाता और घर पर म त बुधिया की देह पड़ी हुई है।

## (ख) माधव

उपन्यास सम्राट, हिन्दी साहित्य के कल्पतरू व कलम के सिपाही तथा सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी उत्कर्ष काल की रचना व यथार्थवादी कहानी 'कफन' में माधव भी एक प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित है, क्योंकि वह कहानी में बुधिया का पति और घीसू का बेटा है। वह कामचोर, आराम-तलब, निठल्ला और निष्ठुर व्यक्तित्व का स्वामी है। उसके व्यक्तित्व की निष्ठुरता तो उस समय प्रकट होती है जब उसकी पत्नी बुधिया प्रसव-वेदना से तड़प रही है और वह आलू खाने में तल्लीन है। न वह पत्नी के लिए दवा-दारू की व्यवस्था करता है और न डॉक्टर, बल्कि रह-रहकर उसके मुंह से हृदय-विदारक चीख निकलती थी और अन्ततः माधव अजगर की तरह गेंडुली मारकर सो जाता है। लेकिन उस समय तो उसकी निष्ठुरता-निर्ममता चरम सीमा को छू जाती है जब वह उसके मरने की कामना करता है। कहानीकार ने लिखा है-

घीसू ने कहा-"मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।"

माधव चिढ़कर बोला-"मरना ही है, तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती ? देखकर क्या करूं ?"

"तू बड़ा बेदर्द है। वे साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई।"

तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पांव पटकना नहीं देखा जाता। इस प्रकार उक्त संवादों से उसकी निर्ममता-निष्ठुरता प्रकट होती है, क्योंकि वह कामना करता है कि उसकी पत्नी बुधिया जल्दी मर जाए ताकि वह आलू खाकर सुखपूर्वक सो सके। माधव का विवाह बुधिया के साथ पिछले वर्ष ही हुआ था और इसी नारी ने इस घर में एक व्यवस्था स्थापित की थी तथा दूसरों के घर परिश्रम करके माधव का पेट भरती थी। उसके आने से माधव और अधिक आराम-तलब हो गया था तथा अकड़ने भी लगा था। यदि कोई माधव को कार्य हेतु बुलाता था तो वह निर्व्याज भाव से दुगुनी मजदूरी मांगता।

माधव इतना कामचोर था कि आधा घण्टा काम करता तो घण्टे-भर चिलम पीता। लोग उसे कार्य पर तब बुलाते थे जब वह एक आदमी माधव से आधा कार्य करवाने में संतोष करना पड़ता। सन्तोष, धैर्य, संयम आदि उसके व्यक्तित्व के अंग थे और जीवन-भर न सम्पत्ति बटोरी और न सुख-सुविधाओं के साधनों का संग्रह किया। इसीलिए उसकी प्रकृति साधुओं से मेल खाती थी। कहानीकार ने उनकी प्रकृति के बारे में लिखा ह-"अगर दोनों साधु होते तो, उन्हें संतोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिल्कुल जरूरत न होती। वह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति न थी। फटे-चीथड़ों में अपनी नग्नता को ढाके हुए जिए जाते थे।" माधव भी दूसरों के खेतों से आलू-मटर चुरा लेते और रात को भून-भानकर अपने पेट की ज्वाला को शांत कर लेते या किसी के खेत से दस-पांच ऊंख उखाड़ लाते और रात को चूस लेते। इस प्रकार घीसू ने उस आकाशव त्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत की भाँति अपने पिता के ही पद-चिह्नों पर चल रहा था।

माधव कहानी में प्रसव के समय उपलब्ध होने वाले सामान के अभाव के बारे में चिन्तन करता है-"मैं सोचता हूँ कोई बाल-बच्चा हुआ, तो क्या होगा ? सोंठ, गुड़, तेल कुछ भी तो नहीं है घर में।" इसी प्रकार घर में सम्पत्ति के नाम पर दो-चार टूटे-फूटे मिट्टी के बर्तन और चीथड़ों से किसी प्रकार अपनी नग्नता को ढाँपे फिरते थे।

कहानी में माधव भी एक चिन्तनशील व विचारवान् व्यक्ति की तरह द ष्टिगोचर होता है जहां वह रूढ़ियों, पाखण्डों,

ब्राह्मणों को दिए गए दान का खुलकर समर्थन करता है। कहानीकार लिखता है-माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो, देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो-“दुनिया का दस्तूर है, नहीं, लोग बेइमानों को हजारों रुपए क्यों देते हैं, कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं।” इसी प्रकार वह एक अन्यत्र स्थल पर भी कफन के पैसे खर्च कर देने से कफन न मिलने पर उपालम्भ देता हुआ कहता है-माधव को विश्वास न आया। बोला-“कौन देगा ? रुपए तो तुमने चट कर दिए। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी मांग में तो सिंदूर मैंने डाला था।” इस प्रकार वह एक और स्थान पर भी स्वर्ग और दुःख की भी बात करता है। माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा-“वह बैकुण्ठ में जाएगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।” तथा साथ ही नशे में माधव बड़बड़ाता है-“मगर दादा बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुःख भोगा। कितना दुःख झेलकर मरी।” इस प्रकार वह नशे मे बुधिया का स्मरण करके रोने लगता है।

वास्तव में माधव कहानी में प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित हुआ है और बुधिया तो कहानी में उसके चरित्र को प्रकाशित करने के लिए उपस्थित हुई है। बुधिया के निधन से ही माधव के चरित्र में निखार आता है। वह शोषित वर्ग का प्रतिनिधि है।

कफन हेतु एकत्रित की गई वह भी चन्दे की राशि से शराब पीता है, कलेजियां खाता है तथा अचार-चटनी और पूरियों से युक्त सुस्वादु भोजन करता है। वह भी अपने पिता की कठपुतली बनकर कफन खरीदने के लिए एक दुकान से दूसरी दुकान पर जाता है और अन्ततः कफन न खरीदकर उस धनराशि से शराब, मछलियां, कलेजियां, अचार-चटनी आदि खरीदकर जीवन में पहली बार सुस्वादु भोजन करने का गौरव प्राप्त करता है।

घीसू-माधव दोनों ही चन्दे की राशि से शराब-पान करना चाहते हैं और सुस्वादु भोजन करना चाहते हैं, लेकिन अपनी हृदयस्थ बात को एक-दूसरे के समक्ष प्रकट नहीं करते।

**डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान** का कहना है-“प्रेमचन्द जी ने माधव का चरित्र एक सफल चित्रकार की भाँति बड़ी कुशलतासे चित्रित किया है।” इसी प्रकार वे एक अन्यत्र स्थल पर लिखते हैं-“कफन नामक कहानी, जो विश्व की श्रेष्ठतम कहानियों में गिनी जा सकती है, ऐसे तीन आदमियों से सम्बन्ध रखती है। उनके जीवन की एक भावना के चित्रण और वर्णन कला की द ष्टि से अद्वितीय है। वे अपने वातावरण से नितान्त भिन्न है। घीसू एक व्यक्ति मात्र नहीं है, वह समाज से बहिष्कृतों का प्रतिनिधि है, जिसका पीड़ित जीवन उसे भाग्यवादी, कठोर और जीवन के दुःखों की ओर से उदासीन बना देता है। उसका लड़का माधव उसका सच्चा प्रतिरूप है। वे दोनों आलसी हैं। वे बाहर न जाने के लिए आलू और मटर चुराते हैं। वे हाथ से बहुत कम काम करते हैं। अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष का उनके लिए कोई मूल्य नहीं है। वे नैतिक द ष्टि से बिल्कुल गिर गए हैं।”

इस प्रकार स्पष्ट है कि माधव ‘कफन’ कहानी का महत्त्वपूर्ण पात्र है तथा अकर्मण्यता की भावना से आप्लावित, कामचोर, आराम-तलब, निठल्ला, चोर और झूठा व्यक्ति है। लेकिन कहानी में कहीं-कहीं उसका विचारक रूप भी उभरकर आता है। कफन के पैसों की शराब पीना, सुस्वादु भोजन करना उसके नैतिक पतन की चरम सीमा है। वास्तव में बाप-बेटे माधव और घीसू में इतना अधिक साम्य है कि इनकी अपनी पहचान भी तिरोहित-सी हो गई है।

## IV. उद्देश्य

कलम के सिपाही वे सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द जी ने अपनी यथार्थवादी कहानी ‘कफन’ में वर्ग-वैषम्य का उद्‌घाटन, सतत् शोषण से उत्पन्न अकर्मण्यता की भावना उत्पन्न होना, समाज में जोंक की तरह चिपटी हुई रूढ़ियों, पाखण्डों और बाह्याडम्बरों पर कटु कटाक्ष तथा एक विशेष जाति की अकर्मण्यता, निठल्लेपन, आराम-तलबी आदि का चित्रांकन किया है। **डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान** ने ‘कफन’ कहानी के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए लिखा है-“यह उनकी अमर कृति है। अकेली ‘कफन’ कहानी उन्हें श्रेष्ठतम लेखकों की श्रेणी में पहुंचा देती है। यह शक्तिशाली कहानी है, जो क्रूर व्यंग्य और सात्विक क्रोध से पूर्ण है। लेखक कहता है कि इस प्रसंग में कोई ऐसी अनहोनी बात नहीं थी, क्योंकि यह एक ऐसे समाज की बात है, जहाँ अधिकांश व्यक्तियों का जीवन इन व्यक्तियों जैसा ही बीतता है, जहां धूर्त और बेईमान लोग गरीबी के श्रम पर मोटे होते रहते हैं।” **श्री रामप्रसाद घिल्डियाल ‘पहाड़ी’** ने ‘कफन’ कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है-“ ‘कफन’ का कथानक मानवीय दुर्घटनाओं के आधार पर उठाया गया है। उस अभावग्रस्त मानव की दुर्बलताओं का सजीव चित्रण ही नहीं, वातावरण में भी बाहरी वेदना मिलती है। यह कल्पना उभरती है कि मानव अमर है। इस द ष्टि से कहानी श्रेष्ठ लगती है। फिर भी पाठक के मन में एक प्रश्न उठता है कि क्या मानव इतना ओछा भी हो सकता है ? इसका समाधान वह अपने में ढूँढ़ता-सा लगता

है। लेखक का यह पक्ष निर्बल हो गया है।" इसी प्रकार **डॉक्टर राजेन्द्र यादव** ने भी इसके प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए स्पष्ट लिखा है-" 'कफन' अपने गहन अर्थों में बुधिया के कफन की कहानी नहीं, मानवता और म त नैतिक बोझ के कफन की कहानी है। यह उस हताशा की कहानी है, जो मनुष्य को संवेदना की आदिम स्तर पर ले जाती है और जहां पर अच्छे बुरे का लोप हो जाता है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि 'कफन' कहानी के निम्न उद्देश्य विद्वानों ने स्वीकारे हैं-

1. **वर्ग-विषमता का उद्घाटन** - मुन्शी प्रेमचन्द जी ने अपनी यथार्थवादी कहानी 'कफन' में वर्ग-विषमता का उद्घाटन किया है। एक ओर तो सभी सुख-सुविधाओं को भोगने वाले पूंजीपति और जमींदार है जिनके पास सभी सुख-सुविधाओं के समान है। कहानीकार ने ठाकुर की बारात वाला प्रसंग इसलिए प्रस्तुत किया है कि जिससे किसानों-साहूकारों या पूंजीपतियों और सर्वहारा वर्ग के बीच के अन्तर को अच्छी प्रकार से स्पष्ट किया जा सके। ठाकुर की बारात का प्रसंग उद्ध त करते हुए कहानीकार लिखता है। "वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भरपेट पूरियां खिलाई थीं सबको। छोटे-बड़े सब ने पूरियां खायी और असली घी की। चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई। अब क्या बताऊं कि उस भोजन में क्या स्वाद मिला। कोई रोक-टोक नहीं थी। जो चीज चाहो मांगों और जितना चाहो खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पतल में गर्म-गर्म, गोल-गोल सुवासित कचौरियां डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिए, पतल पर हाथ से रोके हुए हैं, मगर वह है कि दिए जाते हैं और जब मुंह धो लिया, तो पान इलायची भी मिली, मगर मुझे पान लेने की कहां सुध थी ? खड़ा न हुआ जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर।" इस प्रकार समाज में एक ओर तो ऐसे भोज और दूसरी ओर घीसू-माधव वाले समाज में भूख, नग्नता और गरीबी है। **डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान** का कहना है-"घीसू एक व्यक्ति मात्र नहीं है, वह समाज से बहिष्कृतों का प्रतिनिधि है, जिसका पीड़ित जीवन उसे भाग्यवादी, कठोर और जीवन के दुःखों की ओर से उदासीन बना देता है।"

इस प्रकार इस सर्वहारा वर्ग को भरपेट रोटी नहीं मिलती, फांके करने पड़ते हैं, तथा वस्त्रों के नाम पर चिथड़ों से अपनी नग्नता को ढांपे रहते हैं। उनकी औरतों को प्रसव के समय भी दवा-दारू आदि नहीं मिल पाती और न डॉक्टर की व्यवस्था हो पाती है। बुधिया प्रसव-वेदना से तड़प रही है और घर में आवश्यक सामान भी उपलब्ध नहीं है-"मैं सोचता हूँ कोई बाल-बच्चा हो गया तो क्या होगा ? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं घर में।" घीसू-माधव जिस सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसका चित्रण देखिए-"विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे-चीथड़ों से अपनी नग्नताओं को ढांके हुए जिए जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त। कर्ज से लदे हुए। इस प्रकार किसानों-मजदूरों के समाज में अभाव, गरीबी तथा दीनता व्याप्त थी तथा उन्होंने जीवन में कभी पूरियां, मछलियां, कलेजियां, चटनी, अचार आदि का रसास्वादन नहीं किया है। सामाजिक विषमता का चित्रांकन करते हुए कहानीकार ने धनिक वर्ग, पूंजीपतियों के ऐश्वर्य-भोग और अभावमय जीवन को जीते, भूखमरी से ग्रस्त सर्वहारा वर्ग की आर्थिक दयनीय अवस्था के वैषम्य का उद्घाटन करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

2. **शोषण से उत्पन अकर्मण्यता की भावना** - कहानीकार प्रेमचन्द जी ने 'कफन' कहानी में शोषण से उत्पन्न अकर्मण्यता की भावना को भी उजागर किया है। पूंजीपति या जमींदार इन मजदूरों के बलात् अपने खेतों पर काम करवाते हैं। घीसू-माधव जी-तोड़ परिश्रम करते हुए किसानों को देखते हैं, लेकिन उनका जीवन भी बद्तर है। उन्हें महाजनों, जमींदारों से कर्ज लेना पड़ता है और एक बार कर्ज के चक्कर में पड़ा तो फिर सारा जीवन मुक्ति सम्भव नहीं है। घीसू-माधव बुधिया के मर जाने पर जमींदार के पास जाते हैं तो जमींदार के ये शब्द उसके शोषण का उद्घाटन करते हैं-"क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है ? अब तो तू कहीं दिखाई नहीं देता। मालूम होता है, इस गांव में रहना नहीं चाहता।' घीसू-माधव जिस समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं वे सोचते हैं कि किसान कठोर परिश्रमी है और उसे भरपेट रोटी व शरीर ढांपने के लिए वस्त्र मयस्सर नहीं। जबकि पूंजीपति कुछ नहीं करते और सभी सुख-सुविधाओं का सामान उपलब्ध है। इस प्रकार वे सोचते हैं कि यदि भूख ा ही मरना है तो वे परिश्रम करके अपनी हड्डियां भी क्यों काली करे ? जीवन के प्रति इसी द ष्टिकोण के कारण उनमें अकर्मण्यता की भावना प्रवेश कर जाती है और वे लापरवाह, पशु और हृदयहीन बन जाते हैं। कहानीकार ने भी लिखा है-"जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों को दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे। वहां इस तरह की मनोव त्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। अतः सतत् शोषण की प्रव त्ति ने उनमें अकर्मण्यता की भावना को उत्पन्न कर दिया।

**3. रूढ़ियों-पाखण्डों और बाह्याडम्बरों का चित्रण** - मुन्शी प्रेमचन्द जी ने 'कफन' कहानी में ग्रामीण परिवेश में व्याप्त रूढ़ रीति-रिवाज, पाखण्डों और बाह्याडम्बरों का मार्मिक और सजीव चित्रण किया है। कितनी घोर विडम्बना है कि जिसे जीते-जी तन ढकने के लिए जीवन-भर चीथड़े भी नसीब न हुए उसको मरने पर नया कफन देना वास्तव में उसका उपहास करना है। कहानीकार का कहना है-"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते-जी तन ढांकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।" इसी प्रकार मुन्शी जी ने एक अन्यत्र स्थल पर भी स्वर्ग के अधिकारी सर्वहारा वर्ग को घोषित करता है, क्योंकि वे किसी की आत्मा को आहत नहीं करते, जबकि ये पूंजीपति लोग गरीबों का शोषण करते हैं, उन्हें दोनो हाथ से लूटते हैं और उनका हक दबाकर रखते हैं। कहानीकार ने लिखा है-"हाँ बेटा बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह बैकुण्ठ में न जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं।"

इसी प्रकार 'कफन' कहानी में ओझा वाले प्रसंग में अन्धविश्वासों का चित्रण हुआ है, क्योंकि घीसू को विश्वास है कि बुधिया पर चुडैल का चक्कर है, किन्तु ओझा को देने के लिए उनके पास एक रुपया भी नहीं है। इस प्रकार 'कफन' कहानी में प्रेमचन्द जी ने रूढ़ रीति-रिवाजों, पाखण्डों या बाह्याडम्बरों पर कटु कटाक्ष करते हुए उनकी धज्जियां उड़ाई हैं।

**4. पात्रों की निर्ममता-निठल्लेपन आदि का चित्रण करना** - कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द जी ने घीसू और माधव को निर्ममता, निष्ठुरता, निठल्लेपन का भी चित्रण किया है कि वे बुधिया के दाह-संस्कार हेतु एकत्रित किए गए धन से शराब-पान करते हैं, पूरियां, तली हुई मछलियां, चिखौना, अचार, चटनी आदि का रसास्वादन करते हैं और बुधिया की म त देह झोपड़े में पड़ी हुई और गांव वाले प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं कि कब वे कफन लेकर आएं और कब उसका दाह-संस्कार हो, जबकि वे शराब पीकर सड़क पर मदहोश होकर पड़े हुए हैं।

इसी प्रकार कहानीकार उनकी संवेदनशून्यता, निठल्लेपन और कामचोर की प्रव त्ति को भी उजागर करता है। उनके निठल्लेपन व आराम-तलबी का चित्रण करते हुए कहानीकार लिखता है-"घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना कामचोर था कि आधा घण्टा काम करता तो घंटे भर चिलम पीता।" इसी प्रकार माधव की निर्ममता, निष्ठुरता व हृदयहीनता का चित्रण करते हुए लिखता है-"माधव चिढ़कर बोला-"मरना' ही है तो मर क्यों नहीं जाती। देखकर क्या करूँ।"

इसी प्रकार एक अन्यत्र स्थल पर लेखक ने धनिकों की संग्रह व त्ति पर कटाक्ष करते हुए लिखा है-"अब कोई क्या खिलाएगा ? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो। पूछो गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहां रखोगे। बटोरने में तो कमी नहीं है। हां ! खर्च में किफायत सूझती है।" इसी प्रकार कहानीकार मधुशाला के मदमस्त व दुःख निवारक वातावरण का भी चित्रांकन करता है-"वहां के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहां आकर चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहां की हवा उन पर नशा करती थीं। जीवन की बाधाएं यहां खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए वे यहां भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं। या न जीते हैं, न मरते हैं।" लेखक मधुशाला को कष्टों व सांसारिक दुःखों से मुक्ति दिलाने वाला एक महत्त्वपूर्ण साधन स्वीकारता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कहानीकार ने 'कफन' में वर्ग-विषमता का उद्घाटन किया है तथा साथ ही सतत् शोषण से उत्पन्न सर्वहारा वर्ग की अकर्मण्यता का भी चित्रण किया है और साथ ही ग्रामीण समाज में व्याप्त रूढ़ियों, पाखण्डों व बाह्याडम्बरों पर भी कटु कटाक्ष किए हैं।

## व्याख्या

***1. "अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिल्कुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढांके हुए जिए जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त। कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मगर कोई भी गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिल्कुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज देते थे।"***

**प्रसंग** -प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट एवं हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी

यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने वर्ग-विषमता का उद्घाटन किया है तथा पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। लेखक ने घीसू और माधव की अकर्मण्यता, आराम-तलबी और निठल्लेपन का चित्रांकन करते हुए उनकी संवेदनशून्यता और जड़ता पर भी करारा व्यंग्य किया है। कहानीकार ने उनको दयनीय अवस्था और स्वभाव का चित्रांकन करते हुए लिखा है-

**व्याख्या -** जिस प्रकार से समाज में साधु बनने के लिए व्यक्ति को संतोष, धैर्य, सहनशीलता और संयम की आवश्यकता पड़ती है, ठीक यही गुण घीसू और माधव में विद्यमान थे। अगर वे दोनों साधु होते तो उन्हें सन्तोष, धैर्य, सहनशीलता, नियम और संयम की बिल्कुल भी आवश्यकता न पडती, क्योंकि ये गुण तो उनके व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण तत्त्व थे। वास्तव में ये गुण तो उनके स्वभाव का अंग बन चुके थे। उनका जीवन भी विचित्र और अनोखा था, क्योंकि उन्होंने जीवन में कभी भी धन-सम्पत्ति और सुख-सुविधाओं के उपकरणों का कभी भी संग्रह नहीं किया था। धन-सम्पत्ति के नाम पर उनके घर में मिट्टी के दो-चार टूटे-फूटे बर्तन थे। फटे पुराने चीथड़ों से वे अपने शरीर की नग्नता को ढके रहते थे, अर्थात् उनके पास पहनने के लिए अच्छे कपड़े नहीं थे। उन्हें संसार की कोई चिन्ता नहीं थी, वे गांव में अनेक लोगों के कर्जदार थे, परन्तु कर्ज की अदायगी की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। गांव के अनेक लोग उनका अपमान करते, गालियां देते, पिटाई करते, लेकिन वे मान-अपमान की भावना से युक्त थे। उन्हें पिटाई या गालियों का कोई गम न था। उनकी शक्ल-सूरत इतनी दयनीय थी कि कर्ज की वसूली की उम्मीद न रहने पर भी उनकी दीन-हीन दशा को देखकर लोग पसीज जाते थे ओर उन्हें कुछ-न-कुछ कर्जा अवश्य दे देते थे।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव तथा सरल है। मुन्शी प्रेमचन्द जी ने चलती-फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. प्रस्तुत अवतरण में वर्णनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।
3. प्रस्तुत अवतरण में साधु के गुणों की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
4. घीसू और माधव की दयनीय अवस्था का चित्रांकन किया गया है।
5. सामाजिक स्थिति को यहां सांकेतिक शैली में अभिव्यक्त किया गया है।
6. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अति उत्तम है।
7. भाव, भाषा और शैली का त्रिवेणी संगम हुआ है।

***2. "आलू-मटर की फसल में, दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भूनकर खा लेते, या दस-पाँच ऊंख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाशव त्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी के खेत से खोद लाए थे।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण हिन्दी साहित्य के कल्पतरू, कलम के सिपाही एवं सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी वर्ग-विषमता का उद्घाटन करने वाली महत्त्वपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक सतत् शोषण से उत्पन्न अकर्मण्यता की भावना का उद्घाटन किया है तथा साथ ही घीसू और माधव के निठल्लेपन, आराम-तलबी, संवेदनशून्यता और जड़ता का चित्रांकन किया है। घीसू ने इसी आकाशव त्ति से साठ दिन काट दिये थे और उसका पुत्र उससे भी आगे निकल गया था। प्रस्तुत अवतरण में लेखक उनकी चोरी की आदत का चित्रांकन करते हुए लिखता है-

**व्याख्या** - घीसू और माधव दोनों ही कामचोर, निकम्मे, निठल्ले और आराम-तलब थे। वे किसी के यहां भी काम करने के लिए जब जाते थे, जब दूसरे मजदूर एक तिहाई काम पूरा कर चुके होते थे। घीसू एक दिन काम करता था तो तीन दिन आराम करता और माधव इतना कामचोर था कि आधा घंटा काम करता था तो घण्टा-भर चिलम पीता। घर में मुट्ठी-भर अनाज होता तो उन्हें काम करने की कसम थी, इसीलिए गांव का कोई भी आदमी काम पर नहीं बुलाता। जब दो-चार दिन का फांका हो जाता तो घीसू पेड़ से लकड़ियां तोड़ लाता तो माधव उन्हें बाजार में बेच आता। जब उन्हें दोजख की आग बहुत अधिक सताती तो वे रात को दूसरों के खेतों से आलू या मटर उखाड़ लाते और रात को भून-भानकर खा जाते या दस-पाँच ऊंख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाशव त्ति से साठ साल काट दिये थे। उसने कभी भी मन लगाकर काम नहीं किया था और उसका बेटा माधव भी उसी के पद्-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि अपने पिता का नाम और अधिक

रोशन कर रहा था। इस वक्त वे दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भूनकर खा रहे थे जो किसी के खेत से चोरी से खोद लाये थे।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव तथा सरल है। प्रेमचन्द जी ने चलती-फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. घीसू और माधव के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

3. घीसू और माधव की आराम-तलबी निठल्लापन तथा चोरी  की प्रव त्ति का चित्रांकन किया गया है।

4. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की द टि से अति उत्तम है।

5. ***"जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोव ़त्ति  का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान् था जो किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट एवं सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी उत्कृष काल की यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने सतत् शोषण से उत्पन्न अकर्मण्यता व वर्ग-वैषम्य का उद्घाटन किया है तथा साथ ही एक विशेष जाति की अकर्मण्यता, आराम-तलबी व निठल्लेपन का भी चित्रण किया है। लेखक पूंजीवादी व्यवस्था की धज्जियां उड़ाता है तथा स्पष्ट करता है कि इसी व्यवस्था के कारण ही किसानों, मजदूरों का शोषण होता है जिससे समाज में अकर्मण्यता, निठल्लेपन और कामचोर की प्रव त्ति को बढ़ावा मिलता है। लेखक किसानों की दयनीय  अवस्था का चित्रांकन करते हुए कहता है-

**व्याख्या** - जिस भारतीय समाज में किसानों की हालत भी अत्यन्त दयनीय व बदतर थी, क्योंकि पूंजीपति उनका शोषण करते हैं। दिन-रात कठोर परिश्रम करने के बाद भी वे खाली पेट सोने के लिए विवश हैं, अर्थात् वे परिश्रम करने के बाद भी भूखे हैं, परन्तु उनकी हालत तो बिना हड्डियां काली किए किसानों जैसी ही है। उन्हें कम-से-कम काम तो नहीं करना पड़ता और शारीरिक शक्ति का ह्रास नहीं होता। किसानों के मुकाबले में पूंजीपति या जमींदार लोग ज्यादा सम्पन्न थे, क्योंकि वे उनका शोषण करते थे और उनकी दुर्बलताओं का बेजा फायदा उठाते थे। ऐसे समाज में जहां कर्मठ-परिश्रमी व्यक्तियों की हालत दयनीय थी तथा उन्हें भरपेट रोटी नहीं मिलती थी और पूंजीपति कार्य न करते हुए भी सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं को भोगते हुए सम्पन्न और धन-धान्य से परिपूर्ण हैं। ऐसे समाज में इस प्रकार की धारणा का उत्पन्न होना सहज, स्वाभाविक था, क्योंकि परिश्रम करने के बाद भी खाली पेट तो इससे तो यह अच्छा है कि परिश्रम ही न किया जाए। अतः घीसू किसानों से ज्यादा चतुर, विचारवान् व्यक्ति था और इसीलिए वह किसानों के विचारशून्य समूह में न बैठकर बैठकबाजों की घ णित मण्डली का सदस्य बन गया था, क्योंकि वे लोग अकर्मण्य, आराम-तलब और निठल्ले थे तथा सारा दिन बैठकर वार्तालाप में लिप्त रहते थे। धूर्त लोग पंडित-पुरोहित, पूंजीपति किसानों की कमजोरी का लाभ उठाकर सुख-सुविधा भरा जीवनयापन करते थे।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव तथा सरल है। प्रेमचन्द जी ने चलती-फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

3. पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति कटु कटाक्ष किया गया है।

4. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्यु त्तम है।

5. घीसू के चरित्र  पर प्रकाश डाला गया है।

4. ***"दोनों एक-दूसरे के मन  की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दुकान पर गए, कभी उसकी दुकान पर, तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गई। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गए।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध यथार्थवादी

कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने सतत् शोषण से उत्पन्न किसानों एवं मजदूरों में अकर्मण्यता की भावना को उजागर किया है तथा साथ ही एक विशेष जाति की अकर्मण्यता, आराम तलबी और निठल्लेपन का भी चित्रण किया है। कहानीकार ने वर्ग-विषमता का उद्घाटन करते हुए पूंजीवादी व्यवस्था पर कटु कटाक्ष किए हैं। धीसू और माधव गांव से पैसे एकत्रित करके बुधिया के लिए कफन लाने के लिए शहर जाते हैं, परन्तु वहां जाकर उनके मन में खोट आ गया और उन्होंने इस पैसे से शराब पीने व सुस्वादु भोजन करने का मन बना लिया। वे दोनों कफन के औचित्य पर विचार प्रकट करते हैं तथा रूढ़ रीति-रिवाजों पर कटु कटाक्ष करते हैं। घीसू स्पष्ट कहता है कि यदि ये पांच रुपए पहले मिल जाते तो कुछ दवा-दारू कर लेते। कहानीकार लिखता है-

**व्याख्या** - घीसू और माधव दोनों कफन न खरीदकर दवा-दारू करने का मन बना चुके थे। इसलिए वे समय गंवाने के लिए बाजार में इधर-उधर घूमते रहें। कभी इस बजार की दुकान पर कफन का कपड़ा देखते तो कभी उस दुकान पर। उन्होंने बाजार में तरह-तरह के रेशमी और सूती कपड़े देखे, लेकिन कोई भी कपड़ा कफन हेतु पसन्द नहीं आया। वास्तव में कपड़ा देखना तो एक बहाना था और समय गंवाने का एक माध्यम था, क्योंकि वे दोनों सायंकाल होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी सायंकाल हो गई और वे दोनों पता नहीं किस अज्ञात दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार वे दोनों मधुशाला में भीतर चले गये। वहां कुछ देर तक दुविधा की स्थिति में खड़े रहे कि शराब की बोतल खरीदें या नहीं। कफन के लिए एकत्रित किए गए पैसे से शराब पीए या नहीं। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा कि साह जी ! जरा एक बोतल हमें भी दे देनां इस प्रकार उन्होंने कफन हेतु एकत्रित किए गए धनराशि से शराब पी, तली हुई मछलियां खाईं और कलेजियां, अचार, चटनी आदि का रसास्वादन किया।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव तथा सरल है। प्रेमचन्द जी ने चलती-फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. घीसू-माधव की मनःस्थिति का चित्रांकन हुआ है।

3. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

4. विवेचनात्मक शैली प्रयोग की गई है।

5. घीसू-माधव के चरित्र-चित्रण पर प्रकाश डालते हुए उनकी संवेदनशून्यता, निर्जीवता व जड़ता का चित्रण हुआ है।

6. घीसू-माधव के नशेड़ी होने का पुख्ता प्रमाण मिलता है।

***5. "दोनों इस वक्त शान से बैठे पूरियाँ खा रहे थे, जैसें जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ था, न बदनामी की फिक्र। इन भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट तथा कलम के सिपाही, सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने वर्ग-विषमता का उद्घाटन करते हुए पूंजीवादी व्यवस्था पर कटु कटाक्ष किए हैं तथा घीसू और माधव को अकर्मण्यता, आराम-तलबी, संवेदनशून्यता और निठल्लेपन का चित्रण किया है। गांव से चन्दा एकत्रित करके घीसू-माधव शहर में बुधिया के लिए कफन खरीदने जाते हैं, परन्तु उनके मन में खोट आ गया है। पहले वे सस्ता-सा कफन खरीदने का मन बनाते हैं, परन्तु तभी वे इस विचार को भी ठुकरा देते हैं। वे दोनों मधुशाला के सामने जाकर खड़े हो जाते हैं और फिर एक बोतल शराब की खरीदते हैं तथा चिखौना मंगवाते हैं। शराब पीते हुए घीसू स्पष्ट करता है कि कफन खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह तो जल जाता है और बाकी धनराशि से सुस्वाद भोजन करने का मन बनाते हैं। कहानीकार उन दोनों के भोजन करने के द श्य का वर्णन करते हैं-

**व्याख्या** -जब आदेश किया गया सारा सामान आ गया तो वे भोजन पर टूट पड़े, क्योंकि वे कई दिनों के भूखे थे और उन्होंने जीवन में कभी भी ऐसा भोजन नहीं किया था। घीसू ने दो सेर पूड़ियां मंगवाई, चटनी, अचार कलेजियां आदि भी मंगवाई गईं। माधव लपककर यह सारा सामान ले आया था और दोनों बाप-बेटा उस समय पूरी शान व अकड़ के साथ भोजन कर रहे थे। जिस प्रकार से जंगल में शेर अपने शिकार पर भूखा होकर टूट पड़ता है और अकड़ व शान के साथ अपने शिकार को जल्दी-जल्दी खाने में लीन होता है, ठीक इसी प्रकार धीसू और माधव पूरियों पर टूट पड़े थे और ऐसा सुस्वादु भोजन जीवन में पहली बार किया था, इसीलिए झूठी शान और अकड़ भी आ गई थी, क्योंकि उनके सामने पूरियां, कलेजियां,

अचार, चटनी और पूरी शराब की बोतल रखी हुई थी। अतः उनमें शान-अकड़ का आना सहज और स्वाभाविक था। वे इस प्रकार से प्रदर्शन कर रहे थे कि मानो कोई रईस हो और हर रोज ऐसा ही भोजन करते हों, क्योंकि उन्होंने बुधिया के कफन हेतु एकत्रित की गई धनराशि से शराब पी भी थी और सुस्वाद भोजन किया था। अतः उन्होंने अनैतिक कार्य किया था और गांव वाले पूछेंगे कि कफन कहां है तो क्या जवाब देंगे ? लेकिन उन्हें न तो जवाबदेही की चिन्ता या डर था और न बदनामी की फ़िक्र थी। बदनामी की तो वे चरम सीमा पर वे पहुंच चुके थे। चोरी वे करते थे और बदनामी का उन्हें कोई डर न था, क्योंकि इन भावनाओं को तो उन्होंने बहुत पहले जीत लिया था।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सहज तथा सरल है। प्रेमचन्द जी ने चलती-फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. घीसू और माधव के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।
3. घीसू-माधव की संवेदना शून्य, निर्जीवता व बेहयापन का चित्रांकन किया गया है।
4. विवेचनात्मक शैली प्रयोग हुई है।
5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***6. "वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं या न जीते हैं, न मरते हैं।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट व सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। 'कफन' उत्कर्ष काल की रचना है तथा वर्ग-विषमता का उद्घाटन करने में सक्षम है। लेखक ने प्रस्तुत कहानी में घीसू और माधव की अकर्मण्यता, निष्ठुरता, निठल्लेपन व आराम-तलबी का चित्रण किया है। प्रस्तुत अवतरण में मुन्शी प्रेमचन्द जी ने मधुशाला के मदहोश वातावरण का सजीव चित्रण किया है। घीसू और माधव ताबड़तोड़ कुज्जियां पीते हैं और शराब के नशे में मदहोश होकर वहीं गिर जाते हैं। सभी दुनियादारी के गम यहां आकर उनके कट गए हैं। लेखक ने मधुशाला और उसके परिवेश का चित्रण इस प्रकार से किया है-

**व्याख्या** -मधुशाला के वातावरण में चारों तरफ मस्ती का आलम था, सर्वत्र मदहोशी छायी हुई थी और यहाँ, कि दुनिया में न सांसारिक कष्ट व व्यथा थे और न कोई चिन्ता-फिक्र। यहां की हवा में भी एक प्रकार की मादकता, मस्ती व मदहोशी थी। कितने ही लोग तो यहां आकर ही मदहोश हो जाते थे अर्थात् वातावरण इतना मादक था कि लोग उस परिवेश में आते ही मदहोश हो जाते थे और कुछ एक चुल्लू में ही मदमस्त हो जाते थे। यही सब घीसू और माधव के साथ हुआ। मधुशाला में आते ही व्यक्ति बाहरी राज-द्वेष से मुक्त होकर मदहोश हो जाता है। घीसू और माधव यहां आते ही बुधिया की मौत की घटना को भुलाकर मदहोश हो जाते हैं। शराब से ज्यादा यहां आने वालों पर यहां का वातावरण-परिवेश व वायु प्रभाव करती थी। जीवन की दुःख और बाधाएं व्यक्ति को यहां खींच ले आते थे, अर्थात् व्यक्ति अपने गमों को हल्का करने के लिए, सांसारिक बाधाओं व कष्टों को भुलाने के लिए मधुशाला में आते हैं। यहां पर आने के बाद व्यक्ति कुछ देर के लिए यह भूल जाता है कि वह जीवित है या म त या वे मानने लगते हैं कि न म त है न जीवित बल्कि सम स्थिति में विद्यमान है।

**विशेष** - 1. प्रस्तुत अवतरण की भाषा सजीव तथा सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. मधुशाला के वातावरण का सजीव व मार्मिक चित्रण हुआ है।
3. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रेमचन्द जी ने सुरा की महत्ता को स्पष्ट किया है।
5. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
6. शब्दों में कलात्मकता का पुट अवलोकनीय है।

***7. "घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला-"हां बेटा, बैकुण्ठ में जाएगीं किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह बैकुण्ठ में न जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धाने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण सर्वश्रेष्ठ कहानीकार व कलम के सिपाही, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी प्रेमचन्द जी के उत्कर्ष काल की रचना है और इसमें उन्होंने वर्ग-विषमता का उद्घाटन करते हुए किसानों, मजदूरों की दयनीय अवस्था पर प्रकाश डाला है तथा साथ ही रूढ़ियों, पाखण्डों पर भी कटु कटाक्ष किया है। माधव और घीसू शराब पीकर तथा सुस्वादु भोजन करके बुधिया को आशीर्वाद देते हैं कि उसके कारण ही यह भोजन मिला है तथा भिखारी को बाकी बचा हुआ भोजन देकर उसे भी आशीर्वाद देने के लिए कहते हैं। माधव आसमान की ओर देखकर कहता है कि वह स्वर्ग में जाएगी। घीसू स्पष्ट करता है-

**व्याख्या** -घीसू यह सुनकर कि वह स्वर्ग में जाएगी खड़ा हो गया, और अत्यधिक प्रसन्नचित्त होकर बोला कि हां बेटा! वह अवश्य ही स्वर्ग में जाएगी, क्योंकि उसने जीवर-भर किसी की आत्मा को आहत नहीं किया, किसी का शोषण नहीं किया और किसी का हिस्सा नहीं दबाया। वह जीवन-भर दीन-दलितों के प्रति समर्पित रही और मुझ (घीसू और माधव) जैसे निकम्मे, आराम-तलबों को रोटी खिलाती थी। वह हमारी और एक महत्त्वपूर्ण इच्छा पूरी कर गई कि जाते-जाते हमें सुस्वादिष्ट, सुस्वादु भोजन करा गई और शराब पिला गई, क्योंकि उसके कफन हेतु एकत्रित किए गए पैसे से भोजन कर लिया और शराब पी ली। इसलिए वह अवश्य ही स्वर्ग में जाएगी और यदि बुधिया न जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे पूंजीपति लोग जायेंगे जो गरीबों का शोषण करते हैं, उनकी आत्मा को आहत करते हैं। जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और पाप करने के बाद गंगा नदी में डूबकी लगाकर अपने पापों को धाने का प्रयास करते हैं। वे पूंजीपति लोग अपने दुष्कर्मों का परिहार करने के लिए मन्दिरों में जल चढ़ाते है। वे वास्तव में भगवान के बन्दों पर अत्याचार करते हैं और भगवान को खुश करने के लिए जल चढ़ाते हैं, अर्चना करते हैं।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल तथा सुबोध है। प्रेमचन्द जी ने चलती-फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. विवेचनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।
3. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
4. प्रेमचन्द जी ने रूढ़ियों, पाखण्डों व बाह्याडम्बरों पर कटु कटाक्ष किया है।
5. वर्ग-विषमता का उद्घाटन भी हुआ है।
6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

# आकाशदीप

## (जयशंकर प्रसाद)

## तात्त्विक विवेचन

'आकाशदीप' श्री जयशंकर प्रसाद की एक प्रतिनिधि कहानी है। भारतीय संस्कृति के परिवेश में आदर्श की भावभूमि पर निर्मित यह एक अनुभूतिपरक वातावरण प्रधान कहानी है जिसमें प्रेम और कर्त्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व दिखाकर कहानीकार ने प्रेम पर कर्त्तव्य की विजय को निश्चित किया है। इस कहानी की मूल संवेदना प्रेम और कर्त्तव्य से जुड़ी है। नारी के अत्यंत भावुक हृदय का रेखांकन कहानीकार ने प्रस्तुत किया है। मानवीय भावनाओं का अद्‌भुत चरित्र-चित्रण इस कहानी में संजोया गया है। इस कहानी में दुर्दान्त जलदस्यु बुद्धगुप्त के हृदय परिवर्तन और कथा नायिका चम्पा के प्रेम, घ णा, त्याग और लोक कल्याण की भावना मुखरित हुई है। कहानी के तत्वों के आधार पर यह एक सफल कहानी है। इसकी समीक्षा हम निम्नलिखित शीर्षकों में कर सकते हैं -

### 1. कथावस्तु अथवा कथानक -

आकाशदीप कहानी में केवल दो प्रमुख पात्रों के माध्यम से कथानक का विस्तार किया गया है। बुद्धगुप्त और चम्पा दोनों एक पोत से बंधी एक पोतवाहिनी पर बंदी हैं। वे अपने विवेक और कुशलता से मुक्त हो जाते हैं। वे एक निर्जन अनजान द्वीप पर रहने लगते हैं। वहाँ चम्पा और बुद्धगुप्त एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। अन्ततः उनमें प्रेम पनपने लगता है। परन्तु चम्पा को अभी भी सन्देह है कि उसके बाप का हत्यारा बुद्धगुप्त ही है। वह उसके साथ विवाह करके अपनी रानी बनाकर अपने देश भारत लाना चाहता है। परन्तु चम्पा इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है। वह वहीं रहकर अपने पिता की समाधि का अन्वेषण करना चाहती है तथा वहाँ रह रहे भोले-भाले निवासियों की सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझती है। वह अपने कर्त्तव्य के लिए प्रेम की बलि चढ़ा देती है।

आकाशदीप की कथावस्तु सुगठित एवं कौतूहलपूर्ण है। कहानी का प्रारम्भ चम्पा और बुद्धगुप्त के वार्तालाप से होता है। इस प्रकार संवादात्मक शैली में यह कथारम्भ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। कहानी के विकास में चम्पा और बुद्धगुप्त की मुक्ति, बुद्धगुप्त का पोत का स्वामी होना तथा चम्पा द्वीप तक पहुँचना आदि सन्निविष्ट है। जिज्ञासा एवं संघर्ष कहानी का प्रमुख तत्त्व है। आकाशदीप कौतूहलपूर्ण कथा है। पाठक का मन 'आगे क्या हुआ' यह जानने के लिए बराबर उत्सुक रहता है। चम्पा और बुद्धगुप्त का जीवन-विवरण, क्या बुद्धगुप्त चम्पा के पिता का हत्यारा है, चम्पा के हृदय में प्रतिशोध की आग है, फिर भी वह बुद्धगुप्त से प्रेम करती है-इस प्रकार के स्थल कहानी में सरस, रोचक एवं कौतूहलपूर्ण हैं। कहानी बाह्य एवं आन्तरिक संघर्ष से भरी हुई है। कहानी में चरमसीमा वह स्थान होता है जहाँ पर कहानी का कथ्य स्पष्ट हो जाता है। चम्पा के मन का संघर्ष चित्रित करना कहानीकार का लक्ष्य है। बुद्धगुप्त से उसे प्रेम है फिर भी वह प्रतिशोध की आग दबा नहीं सकती। कहानी का अन्त भी रोचक है। बुद्धगुप्त की नावें भारत की ओर बढ़ती हैं। चम्पा द्वीपवासियों की कई वर्षों तक सेवा करती है। अन्त में वह वहीं जलसमाधि ले लेती है। कहानी का यह अन्त इतना करुणाक्रान्त है कि पाठक के मन को बहुत देर तक अपने साथ बाँधे रखता है।

### 2. पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण-

आकाशदीप कहानी में मुख्य पात्र चम्पा और बुद्धगुप्त दो ही हैं। इनके अलावा मणिभद्र का भी नाम आता है परन्तु उसके चरित्र का बखान इन दोनों मुख्य पात्रों के माध्यम से होता है। प्रस्तुत कहानी में चम्पा का द्वन्द्वात्मक चरित्र-चित्रण कथाकार ने सफलतापूर्वक किया है प्रेम और घ णा के द्वन्द्व में चम्पा की यथार्थ मनोव त्ति की बार-बार झलक दिखाकर उसकी मनोगत भावना को स्पष्ट किया गया है। चम्पा का चरित्र-चित्रण अन्तर्मुखी अधिक है, वह आवेग से संचालित है। चम्पा अपने मानसिक जगत से संघर्ष करती रहती है और अन्त में उसकी कर्त्तव्य भावना कुलमर्यादा का गौरव उसके प्रेम पर विजयी हो जाता है। चम्पा जाह्नवी के तट पर स्थित चम्पा नगरी की क्षत्रिय बालिका है। उसके पिता श्रेष्ठि मणिभद्र के यहाँ प्रहरी थे। माता का देहान्त होने पर चम्पा अपने पिता के साथ ही मणि के पोत पर रहने लगी। जल-दस्युओं के आक्रमण में चम्पा के पिता की म त्यु हो गई। मणिभद्र के घ णित प्रस्ताव को ठुकराने के कारण चम्पा बन्दी बना ली गयी। बुद्धगुप्त की सहायता से वह मुक्त हुई। चम्पा को सन्देह था कि बुद्धगुप्त ही उसके पिता का हत्यारा है, इसलिए वह बुद्धगुप्त की वीरता के कारण प्रेम

करती हुई भी उसका प्रेम निवेदन न करके दुःखी लोगों की सेवा के हेतु चम्पा द्वीप में रह जाती है।

दूसरा पात्र बुद्धगुप्त है जो ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय, पर दुर्भाग्य के कारण जल-दस्यु बनकर जीवन बिताता है। बुद्धगुप्त वीर और साहसी है। कृपाण के द्वन्द्व युद्ध में नायक को पराजित करके उसने अपनी वीरता और साहस का परिचय दे दिया है। बुद्धगुप्त साहसजीवी होते हुए भी कोमल हृदय का स्वामी है। चम्पा से अपना प्रेम निवेदन ही नहीं, उसके पैर पकड़कर वह अपने सात्विक प्रेम का प्रमाण देता है। बुद्धगुप्त को अपनी मात भूमि से प्रेम है। चम्पा के प्रेम में निराश होकर वह अपने देश भारत चला आता है।

अन्तर्द्वन्द्व इस कहानी के चरित्र-चित्रण का केन्द्र बिन्दु है। चम्पा और बुद्धगुप्त के हृदय के भीतर चलने वाले कोलाहल को कहानी के भीतर अच्छी तरह सुना जा सकता है। दोनों के हृदय अन्तर्द्वन्द्वों से उद्वेलित हैं, किन्तु एक गंभीरता का आवरण डाले रहते हैं, यद्यपि इस आवरण में वह उद्वेलन छिप नहीं पाता है।

**3. कथोपकथन (संवाद)** -

इस कहानी के संवाद बहुत ही सजीव आकर्षक और नाटकीय हैं। इन संवादों के कारण तो इसे नाटकीय कहानी कहना उचित ही नहीं लगता है। अन्य सभी गुणों के साथ इनमें कुतूहल और जिज्ञासा जाग त करने की क्षमता अधिक है। प्रारम्भ के नाटकीय संवादों ने तो एक मोहक वातावरण का निर्माण कर दिया है, जैसे-

"बन्दी ! "

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डाल कर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की संभावना है। यही अवसर है, आज मेरे बंधन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हाँ धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जायेगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ।"

कहानीकार ने संक्षिप्त संवादों के साथ-साथ दीर्घ संवादों की भी योजना की है, परन्तु स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है, जैसे-"विश्वास ? कदापि नहीं, बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास न कर सकी, उसी ने मुझे धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ ? मैं तुम्हें घ णा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ।" इस संवाद के माध्यम से चम्पा के मन के प्रेम और घ णा के अन्तर्द्वन्द्व को सुन्दर रूप में प्रकट किया है। इस प्रकार इस कहानी के संवाद पात्रों की मनोदशा को प्रकट करते हैं तथा कौतूहल का स जन कर कथानक के विकास में योग देते हैं।

**4. वातावरण (देशकाल)** -

वातावरण के अन्तर्गत देशकाल और परिस्थिति आती है। इस कहानी में घटना और पात्रों से संबंधित परिस्थितियों का चित्रण सजीव रूप में किया गया है। सम्पूर्ण परिस्थितियों की योजना साभिप्राय और क्रमिक ढंग से की गई है। प्रकृति द श्य का वर्णन करके घटनाओं को सजीव एवं यथार्थ बना दिया है। वातावरण के द श्यविधान से न केवल चरित्र की मनःस्थिति पर प्रकाश डाला गया है अपितु उसके कार्य-व्यापार सजीव बन गये हैं। आकाशदीप कहानी में आँधी, समुद्री लहरें एवं तेज हवाएं इसी मनःस्थिति और कार्यव्यापार को प्रकट करते हैं। एक उदाहरण देखिए-तारक-खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों से विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढकने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकाल

कर फिर लुढ़कती हुई, बन्दी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत से पथ-प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा-"आँधी" वातावरण के इस द श्यविधान ने कहानी के मुख्य पात्र चम्पा और बुद्धगुप्त के बंधनमुक्त होने की छटपटाहट को अत्यंत सजीव बना दिया है। प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियों में बौद्धकाल से लेकर 1857 के सिपाही विद्रोह तक को अपनाया गया है। वस्तुतः प्रसाद भारतीय इतिहास के इन तीनों कालों को अपनी विषय-वस्तु से संबंध करते है-बौद्धकाल, मुस्लिमकाल और ब्रिटिशकाल। प्रस्तुत कहानी बौद्धकाल से सम्बन्धित है। इस कहानी के वातावरण में कहानी का प्रतिपाद्य सम्पूर्णतः ध्वनित हो गया है। वस्तुतः यह एक वातावरण प्रधान कहानी बन गई है।

5. **भाषा-शैली** -

प्रस्तुत कहानी की भाषा-शैली प्रौढ़ एवं काव्यात्मक है। उसमें सरसता एवं भावुकता है। इस कहानी की भाषा में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग है। इस कारण कई स्थलों पर वह क्लिष्ट-सी लगती है। त्वरित, सम्भ्रम धवल, अपांग, असंयत, कुन्तल, तरल, संकुल, विसर्जन, परिरम्भ, शिविकारूढ़ आदि अनेक तत्सम शब्द कहानी में प्रयुक्त हैं। तत्सम शब्दों की प्रचुरता कहानी को शिष्ट भाषा का आयाम प्रदान करती चली गयी है। कहीं-कहीं इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अस्वाभाविक-सा लगता है, परन्तु भावों की गति ने उसे अनुभव नहीं होने दिया है।

आकाशदीप की शैली आलंकारिक एवं काव्यमयी है। इसमें प्रसाद जी का कवि हृदय परिलक्षित होता है। इसके संवाद काव्य का-सा रस प्रदान करते हैं। यथा-"बुद्धगुप्त मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है। सब पवन शीतल है... सेवा के लिए।" प्रस्तुत कहानी की भाषा भावाभिव्यक्ति में अत्यंत सफल है। वह पात्र और समय के अनुकूल है। प्राचीन ऐतिहासिक घटना होने के कारण भाषा में संस्कृतनिष्ठता होना स्वाभाविक है। समग्र कथा की भाषा परिमार्जित है-वह कुशल रचना शिल्पी प्रसाद की अमर कहानियों में से है।

6. **उद्देश्य** -

प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य पुष्प में गंध की भाँति छिपा हुआ है। उद्देश्य को सीधे-सादे रूप से व्यक्त न कर विशिष्ट अनुभूति के रूप में व्यंजित किया गया है। भारतीय संस्कृति के परिवेश में एक स्वस्थ आदर्श की स्थापना करना ही इस कहानी का प्रधान उद्देश्य है। चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व की परिणति उसी स्वस्थ आदर्श को स्थापित करती है। चम्पा जलदस्यु बुद्धगुप्त से प्रेम करती थी, किन्तु उसे आशंका थी कि उसी ने उसके पिता की हत्या की है। जलदस्यु के स्पष्टीकरण पर भी उसकी शंका दूर न हो सकी। ज्यों ही पिता का स्मरण आता, उसका हृदय घ णा से भर जाता, अन्यथा वह उससे प्रेम करती थी। उसके हृदय में प्रेम और घ णा का घोर प्रतिद्वन्द्व चलता था-'मैं तुम्हें घ णा करती हूँ। फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ।' किन्तु उसे अपने हृदय पर भी विश्वास नहीं होता। जलदस्यु के पूछने पर कि 'तो आज से मैं विश्वास करूँ। क्षमा कर दिया गया।' वह कहती है-'विश्वास ? कदापि नहीं बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ।' जलदस्यु के स्पष्टीरण पर कि मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, वह कहती है-"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती। वह दिन कितना सुन्दर होता ? आह ! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान होते ?" उसके इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण उनका संयोग न हो सका। जलदस्यु बुद्धगुप्त के स्पष्टीकरण देने पर भी उसकी शंका का समाधान न हो सका। क्योंकि, वह यह तो जानती ही थी कि उसके पिता की म त्यु का कारण बुद्धगुप्त ही है। वह स्वयं उसके पिता का घातक न हो, तो भी उसी के आक्रमण के समय चम्पा के पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल-समाधि ली थी। यदि वह आक्रमण नहीं करता तो उसके पिता की म त्यु नहीं होती। इसी कारण वह विश्वास नहीं करती। वह बुद्धगुप्त से प्रेमालाप करती थी, किन्तु पिता का स्मरण आते ही उसका पित -प्रेम सजग हो जाता था और वह उससे घ णा करने लगती थी। उसके हृदय में प्रेम और घ णा का घोर अन्तर्द्वन्द्व चलता था वैयक्तिक प्रेम एवं पित -प्रेम की उसके मानस में टक्कर होती थी।

चम्पा ने बुद्धगुप्त को ठुकराकर पित -प्रेम को महत्त्व दिया, किन्तु चम्पा द्वीप में रहकर अपने प्रेम की गम्भीरता को ही और गम्भीर बना सकी, उसे घनीभूत साँचे में न ढालकर कुल-मर्यादा के संरक्षण में उदात्त रूप प्रदान किया। यही कहानी की मूल संवेदना है।

7. **शीर्षक** -

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक आकर्षक एवं औत्सुक्यवर्द्धक है। शीर्षक से कहानी के केन्द्रीय विचार की झलक मिलती है। समुद्र-तट पर पोतों के मार्ग दर्शन के लिए पर्याप्त ऊंचाई पर द्वीप जलाकर रखने की प्रक्रिया 'आकाशदीप' है।

'मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती और प्रार्थना करती, 'भगवान ! मेरे पथभ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।'

यह कार्य समुद्र-तट वासियों के लिए अत्यंत पवित्र माना जाता है। चम्पा के हृदय में आकाशदीप के प्रति श्रद्धा, पूजा और पवित्रता की भावना है-"पहले विचार था कि कभी-कभी इस द्वीप स्तम्भ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी, किन्तु देखती हूँ, कि मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाशदीप।" वास्तव में वह आजीवन उस द्वीप स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। आकाशदीप का लक्षण जन-कल्याण है। कल्याण की भावना पवित्र है। अतः चम्पा की साधना जनकल्याण में आजीवन व्रती बनकर पूर्ण हुई। अतः इस कहानी का शीर्षक आकाशदीप संगत व सार्थक है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार स्पष्ट है कि आकाशदीप कहानी में कहानी कला का सफलता-पूर्वक निर्वाह हुआ है। अतः इस द ष्टि से यह एक श्रेष्ठ कहानी है।

## प्रष्टव्य

1. कहानी-कला के आधार पर 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिये।
2. 'आकाशदीप' कहानी की विशेषताएँ बताइये।
3. आकाशदीप कहानी की सम्यक् आलोचना करते हुए उसकी मूल संवेदना का उद्घाटन कीजिए।

# II. कहानी-सार

छायावाद के युग-प्रवर्तक व ऐतिहासिक नाटकों के सर्वश्रेष्ठ रचयिता तथा बहुचर्चित कहानीकार श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी चरित्र प्रधान कहानी 'आकाशदीप' में चंपा के अन्तर्द्वन्द्व को ही उजागर किया गया है तथा दूसरा इसका प्रमुख प्रतिपाद्य समाज-सेवा का महत्त्वपूर्ण सन्देश देना है। कहानी का सारांश इस प्रकार से है-"कहानी का प्रारम्भ बुद्धगुप्त नामक जलदस्यु द्वारा चम्पा को बन्धनमुक्त करने से है। दोनों ही मणिभद्र नामक व्यापारी के नाव पर बन्दी हैं तथा दोनों ही मुक्त होना चाहते हैं। चम्पा चतुरता से नायक का कृपाण निकाल ले आती है और बुद्धगुप्त पोत से सम्बद्ध रस्सियों को काट देता है और नाव के स्वामित्व को लेकर विवाद होता है। नायक बुद्धगुप्त को कहता है कि तुमको मुक्त किसने किया ? बुद्धगुप्त कृपाण दिखाकर कहता है-इसने। नायक कहता है कि मैं तुम्हें फिर बन्दी बनाऊंगा, इस पर बुद्धगुप्त कहता है-किसके लिए बन्दी बनाओगे ? मणिभद्र तो अतल जल में होगा। नायक इस नौका का स्वामी अब मैं हूं। तभी नायक अपनी कृपाण टटोलने लगा, लेकिन कृपाण के ऊपर चम्पा ने पहले ही अधिकार कर लिया था। तभी बुद्धगुप्त नायक को चुनौती देता है कि तुम द्वन्द्व-युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ और जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा। बुद्धगुप्त चतुरता से नायक की कटि में हाथ डालकर गिरा देता है और उसका विजयी कृपाण उसके हाथ में चमकने लगा। तभी नायक बुद्धगुप्त से अपने प्राणों की भिक्षा मांगता है। नायक अब स्वयं को बुद्धगुप्त का अनुचर स्वीकारता है तथा विश्वासघात न करने की प्रतिज्ञा करता है। चम्पा अपने कोमल करों और स्निग्ध द ष्टि से बुद्धगुप्त के घावों को वेदना-विहीन कर डालती है। तभी बुद्धगुप्त नायक से पूछता है कि हम लोग कहां होंगे ? नायक स्पष्ट करता है कि बाली द्वीप से बहुत दूर, सम्भवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना-जाना होता है। सिंहल के व्यापारियों की वहां पर प्रभुता एवं प्रमुखता है। अचानक नायक नाविकों को डांड लगाने की आज्ञा देता है, क्योंकि वहां पर एक जलमग्न शैल खण्ड है तथा सावधान न रहने से टकराने का भय है। चम्पा अपना परिचय देते हुए बुद्धगुप्त को बताती है कि वह चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका है तथा उसके पिता मणिभद्र काम के समुद्री व्यापारी के पास प्रहरी का काम करता था। माँ की म त्यु के बाद मैं भी पिता के साथ नाव पर रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। लेकिन तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने सात जलदस्युओं को मारकर जल समाधि ले ली। एक मास से मैं अनाथ बालिका इस अनन्त नीले आकाश और अनन्त नीले जलनिधि के ऊपर निराश्रित हूं, असहाय हूं। मणिभद्र ने एक दिन मुझसे घ णित प्रस्ताव किया था तथा मैंने उसे गालियां सुनाई और उसी दिन से मैं बन्दी हूँ। बुद्धगुप्त भी अपना परिचय देता है कि मैं भी क्षत्रिय हूँ, परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर अपना समय काट रहा हूँ। तभी नायक ने सूचना दी कि हम लोग द्वीप के पास पहुंच गए हैं। किनारे से नाव टकराई और चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। तभी बुद्धगुप्त उस द्वीप का नाम चम्पा द्वीप रख देता है। पांच साल बाद चम्पा ऊचे स्थल पर बैठकर आकाशदीप जला रही थी और बड़े

प्रयास से उसने सन्दूकची में दीप रखकर अपनी कोमल उंगलियों से डोर खींची। उसकी कामना थी कि उसका आकाशदीप नक्षत्रों से मिल जाए, किन्तु ऐसा होना सर्वथा असम्भव था। उसने आशाभरी आँखें घुमा ली।

बुद्धगुप्त चम्पा के आकाशदीप जलाने का मजाक उड़ाया करता था, लेकिन चम्पा उन मधुर स्म तियों में खो जाया करती थी, वह और बुद्धगुप्त दिन-भर कठोर परिश्रम करके, पालों में शरीर लपेटकर एक-दूसरे का मुंह देखते हुए सो जाया करते थे। तभी बुद्धगुप्त चम्पा को अपनी प्राणदात्री और सर्वस्व स्वीकारता है। लेकिन चम्पा बुद्धगुप्त को कठोर, निर्मम, अकरुय और निष्ठुर हृदय वाला व्यक्ति कहती है, यद्यपि उसने दस्यु व त्ति छोड़ दी है। तुम भगवान के नाम पर मेरा मजाक उड़ाते हो तथा मेरे क्षीर निधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या मैं दासियों के आकाशदीप जलवाऊं ? चम्पा स्मरण करती है कि जब वह छोटी थी तो मेरे पिताजी समुद्री जहाज पर नौकरी करते थे और मेरी माता प्रतिदिन उनके लिए आकाशदीप जलाया करती थी और प्रभु से प्रार्थना किया करती थी कि हे भगवान ! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अन्धकार में ठीक पथ पर ले जाना। जब बरसों बाद चम्पा के पिताजी लौटते तो वे कहते-साध्वी ! तेरी प्रार्थना से भगवान ने संकट की घड़ी में मेरी प्राण रक्षा की है। वह तभी अपने माता-पिता के प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त करती है। मेरे वीर पिता की म त्यु के कारण जलदस्यु ! हट जाओ ! सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। चम्पा और जया तभी समुद्र के किनारे आकर खड़ी हो गई और उसी समय एक नाव आ गई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। वह समुद्र की अथह जल राशि को देखकर कहने लगी कि इतना जल ! इतनी शीतलता ! हृदय की प्यास न बुझी। इस प्रकार कहानी के इस स्थल पर चम्पा का अन्तर्द्वन्द्व अभिव्यक्त हुआ है। बुद्धगुप्त उसको अपने साथ बजरे पर बैठा लेता है तथा साथ ही स्पष्ट करता है कि इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं है। चम्पा बुद्धगुप्त को स्पष्ट कहती है कि अच्छा होता बुद्धगुप्त ! जल में बन्दी होने से तो अच्छा है कठोर दीवारों में बन्द होना। बुद्धगुप्त स्पष्ट करता है कि तुम मुझे आज्ञा देकर देखो, मैं तुम्हारे लिए नये द्वीप की स ष्टि कर सकता हूँ, तुम एक बार उसकी परीक्षा तो लेकर देखा। वह स्पष्ट कहता है कि चम्पा मैं अपना हृदय पिंड निकालकर समुद्र की गहराई में विसर्जन कर सकता हूँ, यदि तुम कहो तो। चम्पा कहती है कि आज मैं अपने प्रतिशोध के कृपाण को समुद्र की गहराई में डाल देती हूं, क्योंकि मेरे हृदय ने मुझे बार-बार धोखा दिया है। बुद्धगुप्त कहता है तो मैं विश्वास करूं कि तुमने मुझे माफ कर दिया। इस पर चम्पा स्पष्ट करती है-"विश्वास ! कदापि नहीं बुद्धगुप्त। जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घ णा करती हूं फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूं। अन्धेर है जलदस्यु तुम्हें प्यार करती हूँ।" यह कहकर चम्पा रो पड़ी। पहाड़ की ऊँची चोटी पर नाविकों को सावधान करने के लिए एक सुद ढ़ दीप-स्तम्भ बनवाया गया था तथा आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्पष्ट कहता है कि वह उसके पिता का हत्यारा नहीं है और वह एक-दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरा था। बुद्धगुप्त चम्पा के पैर पकड़कर कहता है कि अब हम अपने देश भारत लौटना चाहते हैं और इन निरीह प्राणियों में यद्यपि हम देवी-देवता की तरह पूजित हैं, फिर भी पता नहीं किस श्रापवश अलग-अलग हैं। लेकिन चम्पा भारत में न जाकर वहीं रहकर उन निरीह प्राणियों की सेवा करना चाहती है। वह स्पष्ट कहती है कि तुम स्वदेश लौट जाओ, विभावों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों की सेवा में। चम्पा वहीं रहकर आजीवन आकाशदीप जलाती रहीं।

## III. चरित्र-चित्रण

### (क) चम्पा

**नायिका** :- आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवि व महिमामण्डित कहानीकार श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित कहानी 'आकाशदीप' में चम्पा नारिकया के पद पर अधिष्ठित है तथा कहानी की केन्द्रीय चरित्र भी है। वह कहानी में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है तथा बन्धनों से मुक्त होने से लेकर चम्पादीप पर दीप जलाने तक। कहानी की सभी घटनाओं के मूल में भी वही विद्यमान है और कहानी की फलभोक्त्री भी वही है, क्योंकि बुद्धगुप्त तो अन्त में अर्थार्जन करके भारतवर्ष लौट आता है, लेकिन वह दीन-दलितों, पीड़ितों-शोषितों और उपेक्षितों की सेवा के लिए चम्पा द्वीप पर रह जाती है। वह स्पष्ट कहती है-"प्रिय नायिका तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" कहानी के अन्य सभी पात्र चम्पा के चरित्र को प्रकाशित करते हैं, इसलिए निर्विवाद रूप से चम्पा ''आकाशदीप' कहानी की नायिका है।

**अनाथ** :- जहां तक चम्पा के पारिवारिक परिचय की बात है, कहानीकार ने इस प्रकार से प्रस्तुत किया है-"चम्पा

नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूं। पिता इसी मणिभद्र के यहां प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात वस्तुओं को मारकर जल समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे नील जलनिधि के ऊपर, एक भयावह अनंतता में निस्सहाय हूं-अनाथ हूं। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घ णित प्रस्ताव किया तो मैंने उसे गालियां सुनाई। उस दिन से बन्दी बना दी गई।" इस प्रकार वह अनाथ बालिका अपने बहादुर पिता के साथ समुद्र पर ही जीवनयापन करती है।

**साहसी व्यक्तित्व** :- कहानी के प्रारम्भ में ही चम्पा और बुद्धगुप्त की वार्तालाप से चम्पा के व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण गुण प्रकट होता है कि वह साहसी व्यक्तित्व की स्वामिनी है। जब बन्दी युवक बुद्धगुप्त उससे पूछता है कि "शस्त्र मिलेगा?" तो वह अत्यन्त द ढ़ता के साथ स्वीकृति देती है। वह अपने प्राणों को संकट में डालकर लुढ़कती हुई नायक की कृपाण निकाल कर ले आती है। कहानीकार ने उसके इस कार्य को इस प्रकार से लिपिबद्ध किया है-"स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर, फिर लुढ़कते हुए बन्दी के समीप पहुंच गई।" इसी प्रकार कहानी में एक और स्थल पर भी उसके साहसिक व्यक्तित्व का प्रमाण मिलता है। पिता की म त्यु के बाद पोताध्यक्ष मणिभद्र उसके समय घ णित प्रस्ताव रखता है तो वह द ढ़ता के साथ इस प्रस्ताव को अस्वीकार करती है और उसे गालियां देती है। कहानीकार ने लिखा है-"मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घ णित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियां सुनाई। उसी दिन से बन्दी बना दी गई।" वास्तव में साहस, वीरता, शौर्य आदि गुण उसको पैत क विरासत में मिले हैं, क्योंकि उसके पिता ने भी सात दस्युओं को मारकर जल समाधि ली थी। यहां उसके व्यक्तित्व का एक और उज्ज्वल गुण प्रकट हुआ है कि वह चारित्रिक उदात्तता या द ढ़ता की स्वामिनी है। इसीलिए वह पोत में बन्दी बना ली जाती है। मणिभद्र के घ णित प्रस्ताव को अस्वीकारना उसके सच्चरित्र नारी होने का पुख्ता प्रमाण है। इसी प्रकार वह बुद्धगुप्त के साथ चम्पाद्वीप में रहती है, न तो उसके साथ विवाह करती है और न सुख-सुविधा भरा जीवन भोगने के लिए भारत जाना स्वीकारती है। वास्तव में उसने इच्छाओं, कामनाओं को वशीभूत कर लिया है।

चम्पा अनाथ बालिका है। माँ की म त्यु हो जाने के बाद वह पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी, परन्तु पिता की म त्यु के बाद उसका जीवन निराश्रित हो गया, लेकिन किंचित मात्र भी चिन्तितत नहीं होती। यद्यपि एक महीने की लम्बी कैद और पिता की म त्यु ने गहने दुःख और उदासी में उसे डुबो दिया। उसकी अपनी माता-पिता के प्रति गहरी श्रद्धा है और अपनी माँ की स्म ति में ही आकाशदीप जलाती है।

'आकाशदीप' चरित्र प्रधान कहानी है और नायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को ही कहानी का मुख्य विषय बनाया है। क्योंकि बुद्धगुप्त को वह अपने पिता का हत्यारा मानती है, लेकिन साथ ही उससे प्रेम भी करती है। इसीलिए वह पूरी कहानी में अन्तर्द्वन्द्व के झूले में झूलती रहती है। वह बुद्धगुप्त से प्रेम करती है तथा जब उसे यह स्मरण हो आता है कि वह उसके पिता का हत्यारा है तो, उसके मन में बुद्धगुप्त के प्रति घ णा का प्रबल आवेग फूट पड़ता है। एक ओर वह बुद्धगुप्त की प्रेमिका है, लेकिन उसकी हत्या करने के लिए अपने वस्त्रों में कृपाण छिपा कर रखती है। वह स्पष्ट कहती है-"जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी उसीने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूं। मैं तुम्हें घ णा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।" इसप्रकार एक ही व्यक्ति के प्रति उसके मन में घ णा भी है और प्रेम भी। प्रतिशोध लेने के लिए कृपाण रखती है, लेकिन हृदय के हाथों विवश होकर वह कृपाण को जल में फैंक देती है। इस प्रकार पूरी कहानी में उसके मन के अन्तर्द्वन्द्व और पीड़ा का चित्रांकन हुआ है। यहां तक कि कहानी के अन्त में वह बुद्धगुप्त के विवाह-प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है और सुख-सुविधाओं से भरे जीवन का परित्याग करके चम्पाद्वीप में रहकर निरीह, भोले-भाले ग्रामीणों के दुःख को सहानुभूति और सेवा करती है। कहानी के अन्त में वह अपनी माँ की भाँति आजीवन दीपस्तम्भ में आलोक करती रही। माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी चम्पा अपना सारा जीवन उन दीन-दलितों और उपेक्षितों की सेवा में समर्पित कर देती है।

चम्पा बुद्धगुप्त के साथ चम्पाद्वीप पर रहती है और लम्बे समय तक साथ रहने के कारण व दस्युव त्ति का परित्याग कर देने पर दोनों में धीरे-धीरे प्रेम का विकास हो गया। चम्पा बुद्धगुप्त से प्रेम करने लगी, लेकिन ज्यों ही उसे स्मरण आता कि वह उसके पिता का हत्यारा है तो घ णा, आक्रोश व क्रोध से उसका मन भर जाता है। चम्पा के प्रेमपाश मे आबद्ध हो जाने पर बुद्धगुप्त उस द्वीप का नाम चम्पाद्वीप रख देता है। कहानी के अन्त में वह बुद्धगुप्त से विवाह करने के लिए स्पष्ट इन्कार कर देती है। इतना ही नहीं, चम्पा प्रेम और घ णा के द्वन्द्व में फंसी होने के कारण जीवन के प्रति निरपेक्ष हो जाती है।

चम्पा राष्ट्र, देश या धर्म की संकीर्णताओं से मुक्त है तथा लोक-कल्याण की पावन भावना उसके हृदय में घर कर

गई है। उसके ये शब्द इसी तथ्य के परिचायक हैं-"बुद्धगुप्त ! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है। सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं है। सब मिलकर मेरे लिए एक शून्य हैं। प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों क दुःख में सहानुभूति और सेवा के लिए।" इस प्रकार वह देश-राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण कर दीन-दलितों की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देती है।

'आकाशदीप' कहानी में चम्पा एक आस्तिक नारी के रूप में चित्रित हुई है। वह क्षीर निधिशायी अनन्त की प्रसन्नता हेतु प्रतिदिन आकाशदीप स्वयं अपने हाथों से जलाती है। बुद्धगुप्त जब उसके इस कार्य की खिल्ली उड़ाता है तो वह स्पष्ट कहती है-"तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंगय कर रहे हो।" इतना ही नहीं, वह आकाशदीप को अपनी माता की पुण्य स्म ति मानती है।

अन्धेरे में प्रहरी की कृपाण चुराने वाले प्रसंग में चम्पा की चतुरता और साहस द ष्टिगोचर होता है। कहानी में अन्यत्र स्थलों पर भी उसकी चतुरता-साहस अवलोकनीय है।

चम्पा बुद्धगुप्त के जीवन को बदलने वाली महान प्रेरक शक्ति है, क्योंकि उसी के संसर्ग में आने के बाद बुद्धगुप्त दस्युव त्ति छोड़ देता है और हृदय की कठोरता का भी परित्याग कर देता है। अन्ततः स्पष्ट है कि पतन के कगार पर खड़े बुद्धगुप्त की चारित्रिक लक्ष्य का श्रेय चम्पा को ही प्रदान किया जा सकता है। इसीलिए डॉक्टर कृष्णदेव का कहना है-"वास्तविकता तो यह है कि चम्पा अपने आदर्श चरित्र द्वारा बुद्धगुप्त को सत्पथ दिखाती है।

वैसे कहानीकार ने कहानी में एक स्थल पर चम्पा के अनुपम सौन्दर्य और रूप-आकर्षण का भी चित्रण किया है। यथा-"चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थी। किसी आकांक्षा के लाल डोर न थे। धवल अपांगों में बालक के सद श विश्वास था। हत्या-व्यवसायी भी उसे देखकर कांप गया। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका, वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी कोमलता" कोमल व्यक्तित्व की स्वामिनी चम्पा का चरित्र पूरी कहानी में छाया हुआ है और उसके समक्ष बुद्धगुप्त का चरित्र भी निष्प्रभ हो जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चम्पा 'आकाशदीप' कहानी की नायिका है तथा साहस-चतुरता की प्रतिमूर्ति है और अपने व्यक्तित्व चरित्र द्वारा बुद्धगुप्त जलदस्यु को भी प्रेरणा प्रदान करके सत्पथ पर अग्रसर करती है। पूरी कहानी में वह अन्तर्द्वन्द्व के झूले में झूलती है, क्योंकि वह उसी से प्रकम करती है जो उसके पिता का हत्यारा है। पूरी कहानी ही उसकेक व्यक्तित्व के उस अन्तर्द्वन्द्व पर टिकी हुई है। दीन-दलितों और पीड़ितों की सेवा में वह अपना जीवन होम कर डालती है और आजीवन दीपस्तम्भ जलाती रहती है तथा सुख-सुविधाओं से भरे जीवन का परित्याग कर डालती है।

## (ख) बुद्धगुप्त

सुप्रसिद्ध कहानीकार एवं नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप' कहानी में बुद्धगुप्त नायक के पद पर आसीन है। प्रस्तुत कहानी ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित है जिसमें बुद्धगुप्त और चम्पा के सम्बन्धों और चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को उजागर किया गया है। बुद्धगुप्त 'आकाशदीप' कहानी का केन्द्रीय पात्र एवं नायक है तथा प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कहानी में विद्यमान रहता है। समस्त घटनाओं का तन्तु-जाल भी उसके चारों तरफ बना हुआ है। वह कहानी के प्रारम्भ-जहां वह पोत-नाव पर बन्दी है, से लेकर सामान से लदा जहाज लेकर भारत आया है, से अन्त तक विद्यमान रहता है। कहानी की प्रमुख घटनाएं भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में बुद्धगुप्त के साथ जुड़ी हुई हैं। यथा-"वही चम्पा को बन्धन मुक्त करवाता है, पोत की रस्सियां तुड़वाता है, चम्पा से प्रेम-व्यापार चलाता है और विवाह का प्रस्ताव रखता है तथा अन्त में सामान से लदा पोत लेकर भारत आ जाता है।" कहानी का फलभोक्ता भी वही सिद्ध होता है, क्योंकि कहानीकार का प्रमुख प्रतिवाद्य नायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को उजागर करना है। वह बुद्धगुप्त से एक ओर तो प्रेम करती है, लेकिन दूसरी ओर उसको अपने पिता का हत्यारा मानकर उससे घ णा भी करती है तथा प्रतिशोध लेने के लिए कृपाण छिपाकर रखती है। अतः स्पष्ट है कि बुद्धगुप्त निर्विवाद रूप से कहानी का नायक सिद्ध होता है।

कहानी के प्रारम्भ में ही वह चतुर, साहसी व शूरवीर के रूप में द ष्टिगोचर होता है। वह अत्यन्त निपुणता और चतुरता के साथ पहले अपने बन्धन खोलता है और फिर चम्पा के बन्धनों को काटकर उसे मुक्त करता है। कहानीकार ने लिखा

है-"पहले बन्दी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा।" इसी प्रकार नायक के साथ उसका वार्तालाप उसके साहस-शौर्य का सूचक है-

नायक ने कहा-बुद्धगुप्त ! तुमको मुक्त किसने किया ?

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा-इसने।

नायक ने कहा-तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊंगा किसके लिए ? पोताध्यक्ष मणिभद्र आतुल जल में होगा-नायक ! अब इस नौका का स्वामी मैं हूं।

तुम ? जलदस्यु बुद्धगुप्त ? कदापि नहीं। चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था।

बुद्धगुप्त नायक को द्वन्द्व युद्ध के लिए चुनौती देता है कि जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा। कहानीकार ने बुद्धगुप्त की शारीरिक सुद ढ़ता का चित्रांकन करते हुए लिखा है-तो तुम द्वन्द्व युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ, जो विजयी होगा वहीस्वामी होगा। इतना कहकर बुद्धगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। ××× भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गत वाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दांतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चम्पा भय ओर विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गए, परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण-भिक्षा मांगने लगी। अतः स्पष्ट है कि बुद्धगुप्त शूरवीरता की सजीव प्रतिमूर्ति, साहसी व सुद ढ़ शरीर का स्वामी था।

बुद्धगुप्त चम्पा के समक्ष अपना परिचय देते हुए स्पष्ट कहता है कि वह ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय है और दुर्भाग्यवश जलदस्यु बनकर जीवनयापन करता है। वह समुद्र में आते-जाते समुद्री जहाजों को लूटा करता था, लेकिन कालान्तर में चम्पा के सम्पर्क में आने पर दस्युव त्ति छोड़ देता है। वह धन-लिप्सा के वशीभूत होकर ही चम्पा के पिताजी वाले जलपोत पर आक्रमण करता है तथा हत्या करने में भी हिचकिचाता नहीं है। जब वह नायिका चम्पा के आकाशदीप जलाने का उपहास उड़ाता है तो वह उसकी निर्ममता, निष्ठुरता पर कटाक्ष करती हुई कहती है-"नहीं, तुमने दस्युव त्ति तो छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरूप, संत ष्ण और ज्वलनशील है।" कहानी के प्रारम्भ में बुद्धगुप्त निर्मम-निष्ठुर व कठोर हृदय का स्वामी है तथा जिसके नाम से बाली, जावा तथा चम्पा का आकाश गूंजता था। पशु-बल और धन का उपासक बुद्धगुप्त हत्या का व्यवसायी है।

वास्तव में बुद्धगुप्त गतिशील पात्र है, क्योंकि चम्पा के मिलने से पूर्व जलदस्यु है। निर्मम, निष्ठुर और कठोर व्यक्तित्व का स्वामी है। धन का लोभी है तथा खतरों से खेलने में निपुण है और किसी की हत्या करने में भी उसे संकोच नहीं है। विपत्ति में भी वह घबराता नहीं है औरे धन-ऐश्वर्य पिपासु है, लेकिन चम्पा के सम्पर्क में आने पर उसके चरित्र में मूलभूत परिवर्तन होता है-जलदस्यु व त्ति का परित्याग कर देता है। इससे उसको स्वभावगत क्रूरता-निष्ठुरता तिरोहित हो जाती है और एक नये बुद्धगुप्त का जन्म होता है।

बुद्धगुप्त एक समर्पित प्रेमी है तथा वह जिस नये द्वीप में पहुंचते हैं, उसका नामकरण 'चम्पाद्वीप' के रूप में करता है। कहानी में बुद्धगुप्त चम्पा के प्रति अपने अनन्य प्रेम, अनुरक्ति व आत्मीयता को अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त करता है। एक स्थल पर बुद्धगुप्त चम्पा के प्रति अपने अगाध प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए कहता है-"तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।" वह चम्पा के प्रेम को स्थायित्व प्रदान करने के लिए चम्पाद्वीप पर आकाश दीप-स्तम्भ बनवाता है तथा विवाह-प्रस्ताव हेतु उसके पैर भी पकड़ता है। वह स्पष्ट कहता है-"इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्म ति में एक प्रकाश ग्रह बनाऊंगा, चम्पा ! यही उस पहाड़ी पर । संभव है कि मेरे जीवन की धुंधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाए।"

जलदस्यु निर्मम, निष्ठुर व कठोर व्यक्तित्व का स्वामी होने के कारण नास्तिक है। जब चम्पा क्षीर निधिशायी भगवान विष्णु की आराधनार्थ व अपनी माता का अनुसरण करतह हुई आकाश जलाती है तो बुद्धगुप्त उसकी खिल्ली उड़ाता है तथा कहता है-

बावली हो क्या ? यहां बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है ?

क्षीर निधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों के आकाश दीप जलवाऊं ?

हँसी आती है। तुम किसको द्वीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो ? उसको, जिसको तुमने भगवान मान लिया है?

हाँ, वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते ?

इस पर चम्पा उसको लताड़ते हुए स्पष्ट कहती है-"नहीं-नहीं, तुमने दस्युव त्ति छोड़ दी है, परन्तु हृदय वैसा ही अकरूप, संत प्त और ज्वलनशील है। तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंग्य कर रहे हो।" एक अन्यत्र स्थल पर भी वह ईश्वर-पाप और दया आदि का विरोध करते हुए स्पष्ट कहता है-"चम्पा ! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली।" इस प्रकार यहां बुद्धगुप्त की नास्तिकता, आस्तिकता को में परिवर्तित होती द ष्टिगोचर होती है। स्पष्ट है कि वह पाप-पुण्य के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, ईश्वर में उसकी आस्था नहीं है, परन्तु अपनी आराध्य देवी चम्पा के चरणें का सच्चा अनुरागी व उपासक है।

बुद्धगुप्त के व्यक्तित्व की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता है-राष्ट्रीय भावना। उसके हृदय में जननी जन्मभूमि भारत के प्रति गहरी श्रद्धा व आत्मीयता विद्यमान है। जीवन की अन्तिम सांस वह जननी जन्मभूमि की क्रोड़ में लेना चाहता है, इसीलिए चह चम्पा को भी अपनी मात भूमि चलने के लिए प्रेरित करता है। वह स्पष्ट कहता है-"चम्पा ! हम लोग जन्मभूमि भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में द्वन्द्व और शूची के समान पूजित है। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए हैं। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश। वह महिमा की प्रतिमा। मुझे वह स्म ति नित्य आकर्षित करती है, परंन्तु मैं क्यों नही जाता ? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूं। मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि की तरह द्रवित हुआ।" अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रीय भावना बुद्धगुप्त के हृदय में कूट-कूटकर भरी हुई है।

बुद्धगुप्त के हृदय में धनार्जन व ऐश्वर्य, सुख-सुविधाओं को भोगने की अदम्य लालसा विद्यमान है। अर्थाजन हेतु ही वह जलदस्यु बनता है और जलपोतों को लूट-लूटकर धन-संग्रह करता है। चम्पाद्वीप पर जाकर वह वाणिज्य के माध्यम से असीम धन-सम्पत्ति अर्जित करता है, परन्तु उसकी यह लालसा मिटती नहीं है। लेकिन चम्पा को धन, मोह-माया से विरक्ति है। उसे तो वे दिन श्रेयस्कर लगते हैं जब बुद्धगुप्त के पास एक नाव थी और स्पष्ट कहती है-"मुझे उन दिनों की स्म ति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पुण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे। इस जल में अनगिनत बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुद्धगुप्त ! उस निर्जन अनन्त में जब मांझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम-तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक-दूसरे का मुंह क्यों देखते थे ? वह नक्षत्रों की मधुर छाया। वह बुद्धगुप्त की अर्थ-लिप्सा, धन-पिपासा पर कटु व्यंग्य करते हुए कहती है कि प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्धगुप्त कहानी का नायक है, केन्द्रीय पात्र है, जलदस्यु है, हत्या का व्यवसायी है। साहस, शौर्य, चतुरता और राष्ट्ीय भावना आदि उसके व्यक्तित्व के प्रमुख अंग हैं। उसमें अर्थार्जन करने की अदम्य लालसा है।

## IV. उद्देश्य

आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवि व बहुचर्चित कहानीकार श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप कहानी में दायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति मिली है तथा साथ ही वैयक्तिक सुखों के स्थान पर समाज-सेवा को प्रमुखता प्रदान की गई है। कहानीकार अपनी अन्य रचनाओं की भाँति 'आकाशदीप' में भी राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति प्रदान करता है तथा साथ ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' का भी सन्देश सम्प्रेषित करता है। प्रसाद जी भारतभूमि के प्रति गहरी श्रद्धा रखते हैं, अतः यही भावना उनकी इस कहानी में प्रकट हुई है। कहानी का नायक बुद्धगुप्त जननी जन्मभूमि भारत के प्रति श्रद्धा-आस्था प्रकट करते हुए कहता है-"स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश, वह महिमा की प्रतिभा।" **डॉक्टर लक्ष्मीनारायण लाल** ने नारी-पात्रों के अनुपम त्याग और बलिदान आदि का चित्रण करते हुए लिखा है-"इनके चरित्र-चित्रण में बलिदान, उत्सर्ग और करुणा की मुख्य भूमिकाएं बनी हैं-स्त्रियां सदैव अपने अप्रतिम रूप, आकर्षण और अनुपम व्यक्तित्व से कहानियों का संचालन करती हैं और अपने में घात-प्रतिघात, अन्तर्द्वन्द्व, विद्रोह और उत्सर्ग के तत्त्व छिपाए रहती है।" कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी के निम्न उद्देश्य निर्धारित किए हैं-

(क) चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण

(ख) वैयक्तिक सुखों के स्थान पर समाज-सेवा प्रमुख

(ग) राष्ट्रीय भावना-'वसुधैव कुटुम्बकम्'

**(क) चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण** :- जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप' कहानी का प्रमुख प्रतिपाद्य उसकी नायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करना है। वहपूरी कहानी में अन्तर्द्वन्द्व के झूलें में झूलती रहती है, क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति से प्रेम करती है जो उसके पिता का हत्यारा है। बुद्धगुप्त जलदस्यु है और हत्या-व्यवसायी है तथा जब वह मणिभद्र के पोत पर आक्रमण करताहै तो चम्पा के पिता सात जलदस्युओं को मारकर जल-समाधि ले लेता है। बुद्धगुप्त और चम्पा दोनों को बन्दी बना लिया जाता है। बुद्धगुप्त चम्पा को मुक्त करवाता है और चम्पा उसे प्रेम करने लगती है, लेकिन साथ ही उससे घ णा भी करती है और प्रतिशोधार्थ कृपाण अपने वस्त्रों में छिपाकर रखती है। बुद्धगुप्त के परिवर्तित व्यवहार के सम्मुख वह नतमस्तक है-यही उसका अन्तर्द्वन्द्व है। एक ओर वह पिता की हत्या का बदला लेना चाहती है, दूसरी ओर वह बुद्धगुप्त से प्रेम को भी अस्वीकार नहीं कर पाती। यही है चम्पा के मन का द्वन्द्व और इसी द्वन्द्व को अभिव्यक्ति प्रदान करना कहानीकार का प्रमुख प्रतिपाद्य है। चम्पा ने अपने इसी अन्तर्द्वन्द्व को इस प्रकार व्यंजना प्रदान की है-"जब मैं अपने ह्रदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूं। मैं तुम्हें घ णा करती हूं, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूं। अंधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि चम्पा बुद्धगुप्त से घ णा करती है, परन्तु ह्रदय के समक्ष विवश है, क्योंकि वह उससे प्रेम करता है। वह स्पष्ट करती है कि मैं जिसको मारना चाहती हूँ, उसी के लिए मर-मिटने के लिए तत्पर हूं। इस प्रकार चम्पा के मन की पीड़ा और उसके अन्तर्द्वन्द्व की सच्ची छवि प्रस्तुत कहानी में प्रकट हुई है। **डॉक्टर रामदरश मिश्र** का कहना है-"प्रसाद जी 'आकाशदीप' कहानी के द्वारा एक ही व्यक्ति के प्रति दो विपरीत भावनाओं के सम्भव होने को व्यक्त करना चाहते हैं। हमारा मन किसी के प्रति हमेशा एक-सा नहीं रहता। एक ही समय एक ही व्यक्ति के प्रति एक ही साथ कई तरह की भावनाएं संभव हो सकती हैं। इस अर्थ में प्रसाद जी मानव-मन की जटिलताओं को जो मानवीय यथार्थ का एक अंश है, व्यक्त कर रहे हैं और इसीलिए यह महत्त्वपूर्ण भी है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक ओर नायिका बुद्धगुप्त से अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेना चाहती है और दूसरी ओर ह्रदय के हाथों विवश होकर उसके प्रेम को अस्वीकार नहीं कर पाती। यह द्वन्द्व है चम्पा के मन का और इसी द्वन्द्व को व्यक्त करना कहानी का प्रमुख उद्देश्य है।

**3(ख) वैयक्तिक सुखों के स्थान पर समाज-सेवा** :- प्रसाद जी ने 'आकाशदीप में वैयक्तिक सुखों के स्थान पर समाज-सेवा को प्रमुखता प्रदान की है। कहानी की नायिका चम्पा सुख-सुविधाओं से भरे जीवन को तिलांजलि दे देती है, जलदस्यु बुद्धगुप्त के साथ विवाह के लिए भी स्पष्ट इन्कार कर देती है तथा दीन-दलितों, पीड़ित-शोषित और उपेक्षितों की सेवा में सारा जीवन समर्पित कर देती है। वास्तव में उसको ये संस्कार अपनी माता से मिले हैं जो समुद्र में भटके हुए नाविकों के लिए आकाशदीप जलाया करती थी, इसलिए चम्पा भी वैयक्तिक सुखभोगों का परित्याग करके समाज के दुःखी और उत्पीड़ित लोगों की सेवा में समर्पित कर देती है। चम्पा बुद्धगुप्त को सम्बोधित करती हुई कहती है-"प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" स्नेह सेवा की आराध्य देवी चम्पा आजीवन उन निरीह और भोले-भाले प्राणियों की सेवा में लगा देती है। अतः स्पष्ट है कि चम्पा अपने वैयक्तिक सुखों को आहुति देकर समाज सेवा में आजीवन लीन हो जाती है।

**(ग) राष्ट्रीय भावना 'वसुधैव कुटुम्बकम्'** :- प्रसाद जी अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय भावना को भी अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। 'आकाशदीप' नामक कहानी के माध्यम से भी वे राष्ट्रीय भावना का प्रचार-प्रसार करते हैं। कहानी का नायक बुद्धगुप्त अपनी जननी-जन्मभूमि भारत के प्रति समर्पित है, इसीलिए वह जीवन की आखिरी सांसें इसी पावन धरा पर लेना चाहता है। इसीलिए वह नायिका चम्पा से भारत (स्वदेश) चलने का आग्रह करता है-बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिये। उच्छ्वासित शब्दों में वह कहने लगा-"चम्पा हम लोग जन्मभूमि-भारत से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इन्द्र और शूची के समान पूजित हैं, पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए है। स्मरण होता है-वह दार्शनिकों का देश ! वह महिमा का प्रतिमा। मुझे वह स्म ति नित्य आकर्षित करती है, परन्तु मैं क्यों नही जाती ? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूं। मेरा पत्थर सा ह्रदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि की तरह द्रवित हुआ।" इस प्रकार नायक की स्वदेश (भारत) के प्रति गहरी श्रद्धा व आस्था 'आकाशदीप' कहानी में अभिव्यक्ति हुई है।

कहानी में कहानीकार राष्ट्र व देश की सीमाओं के क्षुद्र बन्धनों को अतिक्रमण कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भी सन्देश सम्प्रेषित करता है। सम्पूर्ण धरा को अपनी मानने वाली चम्पा स्पष्ट घोषणा करती है-"बुद्धगुप्त मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सह बल तरल है, सब पवन शीतल है।" इसी भावना से अनुप्राणित होकर वह चम्पाद्वीप के निराश्रितों की सेवा-सहानुभूति में निरत हो जाती है।

इसी प्रकार प्रसाद जी की प्रमुख कहानी 'आकाशदीप' में अनेक आदर्शों, मूल्यों की भी अभिव्यक्ति हुई है। जलदस्यु बुद्धगुप्त अर्थ-पिपासु है, इसीलिए वह अर्थार्जन हेतु लूटपाट करता है और हत्या करने से भी तनिक नहीं हिचकिचाता है। इसीलिए चम्पा उसको स्पष्ट कहती है-"महानाविक ! परन्तु मुझे उन दिनों की स्म ति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक नाव थी और चम्पा के उपकूल में पूण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे-इस जल में अगणित बार हम लोगों की भीतरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुद्धगुप्त ! उस विजन अनन्त में जब मांझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम-तुम परिश्रम थे थककर पालों में शरीर लपेटकर एक-दूसरे का मुंह क्यों देखते थे। वह नक्षत्रों की मधुर छाया।"

इसी प्रकार कहानी में मात -प्रेम, पित -प्रेम को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। चम्पा अपनी माता की मधुर स्म ति में उसी के समकक्ष आकाशदीप जलाती है और अपने पिता के प्रति भी गहरी श्रद्धा रखती है। वह बुद्धगुप्त को लताड़ती हुई अपने पिता के शौर्य का स्मरण कर उठती है-"मेरे पिता ! वीर पिता की म त्यु की निष्ठुर कारण जलदस्यु ! हट जाओ।" इसी प्रकार सेवा-भावना, करुणा तथा आस्तिकता आदि भी मूल्यों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कहानी में हुई है। **डॉक्टर सुषमा मल्होत्रा** का कहना है-"प्रसाद की दूसरी कहानियां वे हैं, जिनमें जीवन के यथार्थ चित्र चित्रित हुए हैं। मानव-चरित्रों को पहचानने और उनके उचित सन्दर्भों में प्रस्तुत करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने प्रेम का चित्रण विभिन्न प्ररिप्रेक्ष्य में किया है और नारी-पुरुष के मध्य संयम, मूल्य-मर्यादा, गौरव एवं आदर्श पर बल दिया है।"

कहानीकार ने जलदस्यु बुद्धगुप्त के हृदय में सात्त्विक व त्तियों, करुणा, प्रेम की उत्पत्ति कर यह सन्देश देना चाहता है कि सात्विक व त्तियां केवल उच्च वर्ग की ही बपौती नहीं है, बल्कि निम्न वर्ग के पात्रों में भी इनका विकास हो सकता है।

प्रसाद की कहानियों में प्रेम का दिव्य अशरीरी और अलौकिक रूप चित्रित हुआ है। 'आकाशदीप' में बुद्धगुप्त, चम्पा का प्रेम इसी कोटि का है। उसमें न वासना का भाव है, न अश्लीलता। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है-"प्रसाद की कहानियों में प्रेम का क्षेत्र विस्त त है, बल्कि कहा जाए कि उसी का एकाधिकार है, फिर भी यह प्रेम न तो कहीं सस्ते ढंग से अभिव्यक्त होता है और न वासना चित्रों में परिणत होता है। उसकी भाव भूमि सदैव उदात्त बनी रहती है। प्रेम का यह औदात्य 'आकाशदीप' जैसी अभिजात सम्पन्न कहानियों में भी देखा जा सकता है कि समाज की पारम्परिक और रूढ़ नैतिक मान्यताओं तथा आदर्शों की उपेक्षा करने वाले मनुष्य का जीवन भी कर्मठता और दिव्यता के कारण प्रेरक हो जाता है।"

'आकाशदीप' कहानी में चम्पा द्वारा बुद्धगुप्त के चरित्र में परिवर्तन दिखाकर यह सन्देश सम्प्रेषित करना चाहता है कि नारी पुरुष को कर्त्तव्य का ज्ञान करा सकती है और उसमें सद्प्रव त्तियों का विकास भी कर सकती है। **डॉक्टर सतीश कुमार** का कहना है-"उसका नारी-पात्र पुरुष को पतन की ओर ले जाने वाले नहीं हैं वरन् पुरुषों को अपने कर्त्तव्य-पथ का ज्ञान कराती है और उनमें जीवन फूंकने वाले हैं। उनके नारी-चरित्रों के विकास के बौद्ध-दर्शन का काफी प्रभाव पड़ा है। इसीलिए उनमें प्रेम, दया, क्षमा, करुणा आदि उत्सर्ग की भावना की प्रचुर मात्रा में मिलकर उन्हें आदर्श प्रतिमा बना डाला है।"

सारांश यह है कि कहानीकार ने 'आकाशदीप' कहानी में चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति प्रदान की है, जो कि कथ्य का आधार है। इसके साथ ही वैयक्तिक सुखों को तिलांजलि देकर समाज सेवा का संदेश सम्प्रेषित करता है तथा साथ ही देश-प्रेम और विश्व-प्रेम की भी अभिव्यक्ति हुई है। अतः स्पष्ट है कि 'आकाशदीप' कहानी भारतीय संस्कृति के गौरव का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

## व्याख्या

1. ***"इतना जल ! इतनी शीतलता ! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी ? नहीं, तो जैसे वेला से चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ ? या जलते हुए स्वर्ण-गोलक के सद श अनन्त जल में डूबकर बुझ जाऊँ ? चम्पा का देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन सक आरक्त बिम्ब धीरे-धीरे समुद्र में, चौथाई-आधा फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निःश्वास लेकर चम्पा ने मुंह फेर लिया।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण छायावाद के युग-प्रर्वतक, श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी भावना प्रधान कहानी 'आकाशदीप' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त किया है तथा साथ ही व्यक्तिगत सुखों से समाज-सेवा या दीन-दुखियों की सेवा करना या उनके घावों पर मरहम लगाने का श्रेष्ठ धर्म बताया है। चम्पा अपनी दासी जया के साथ समुद्र तट पर आ गई थी और समुद्र की लहरें तट से टकराकर बार-बार बिखर रही थी। प्राची का पार्थिव भी थक चला था और निष्प्रभ हो गया था। समुद्र भी विचारों के अथाह प्रवाह में खोया हुआ था। चम्पा एक छोटी-सी नौका में बैठकर समुद्र के उदास वातावरण में मिश्रित होना चाहती थी। कहानीकार ने उसका चित्रण करते हुए लिखा है-

**व्याख्या** - छोटी नाव पर जया के साथ बैठी चम्पा के हृदय में अनेक विचार उठने लगे। वह चिन्तन करने लगी कि कितनी अथाह जलराशि है। समुद्र की गहराई भी असीम, अनन्त और अपार है। समुद्र की इस अनन्त जलराशि में कितनी शीतलता है-इसके बारे में कौन जानता है ? लेकिन इसमें तरलता और आर्द्रता है, फिर भी व्यक्ति के हृदय की प्यास को त प्त करने में सक्षम नहीं है। जब यहां मेरे साथ बुद्धगुप्त है तब भी यह नियति का खेल है कि हृदय की प्यास त प्त नहीं होती। मेरी कामनाएं, लालसा या मनोरथ मेरे हृदय में भीतर ही भीतर अत प्त रूप में घुट रही है। तो जिस प्रकार से समुद्र की लहरें किनारों से टकराकर भयंकर गर्जना करता है, ठीक इसी प्रकार से क्या मैं भी चीख-चिल्लाकर अपनी पीड़ा-वेदना को अभिव्यक्त करूं या फिर जलते हुए सुनहले गोले अर्थात् सूर्य के समान अपना निर्जीव-निष्प्राण-सा जड़ जीवन समाप्त कर दूं। जिस प्रकार से सायंकाल को स्वर्णिम सूर्य अनन्त जलराशि में विलीन होकर अपने अस्तित्व को समाप्त कर लेता है, ठीक इसी प्रकार से क्या मैं भी अपनी जड़-निष्प्राण जीवन को समुद्र की अथाह जलराशि में डुबा दूं। चिन्तन करते-करते चम्पा का मुख भी पीड़ा और जलने के साथ, अपनी असमर्थता पर खेद-पीड़ा प्रकट करते करते जैसे बिम्ब सूर्यास्त के साथ-साथ क्रमशः चौथी, आधा और पूरा अन्धकार में विलीन हो गया। फिर चम्पा ने दुःख भरा लम्बा सांस लेकर उधर से अपना मुंह घुमा लिया, अर्थात् विरक्ति व असमर्थता प्रकट करने के सिवाय वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ थी।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल तथा सुबोध है। संस्कृतमय खड़ी बोली प्रयुक्त हुई है।

2. चम्पा की मनःस्थिति का सजीव और सार्थक चित्रण हुआ है।
3. तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है।
4. प्रकृति का सुन्दर-मार्मिक चित्रण हुआ है।
5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
6. कबीर के निम्न शब्दों के साथ भावसाम्य द ष्टिगोचर होता है-

   "पानी बिच मीन पयासी।"

***2. "विश्वास ? कदापि नहीं, बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकती, उसने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुमसे घ णा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु तुम्हें....प्यार करती हूँ।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण छायावाद के युग-प्रवर्तक व श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी भावना प्रधान कहानी 'आकाशदीप से अवतरित है। कहानीकार का प्रमुख ध्येय नायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करना है। एक साथ बुद्धगुप्त और चम्पा समुद्र के किनारे पर भावावेश में आलिंगबद्ध हो जाते हैं जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का होता है। लेकिन तभी आलिंग से सहसा चैतन्य होकर चम्पा अपने वस्त्रों में छिपाए हुए कटार को निकाल कर जल में फैंक देती है। चम्पा स्पष्ट कहती है कि मेरे हृदय ने मुझे बार-बार धोखा दिया है। तभी बुद्धगुप्त कहता है कि अब मैं विश्वास करूं कि मुझे आपने क्षमा कर दिया है। इस पर चम्पा प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई कहती है-

**व्याख्या** -चम्पा बुद्धगुप्त से स्पष्ट कहती है कि मैं तुम्हें कैसे कहूं कि तुम मेरा विश्वास करो, क्योंकि मुझे अपने हृदय पर तो विश्वास ही नहीं है, फिर मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊं कि तुम मुझ पर विश्वास कर सकते हैं। बुद्धगुप्त ! मुझे अपने हृदय पर विश्वास नहीं है, क्योंकि उसने मुझे बार-बार धोखा दिया है। मेरे मन में तुम्हारे प्रति घ णा और प्रतिशोध की भावना विद्यमान थी, क्योंकि तुम मेरे वीर पिता के हत्यारे हो। भला कोई भी नवयुवती अपने पिता के हत्यारे से कैसे प्रेम कर समती

है। अतः मेरा अपने ह्रदय पर वश नहीं था, इसलिए वह तुम्हारी ओर आकर्षित होता गया, जबकि मैं तुमसे अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेना चाहती थी और इस हेतु अपने वस्त्रों में कृपाण छिपाकर रखती थी, लेकिन विवशता है कि मेरा अपना ह्रदय पर नियन्त्रण नहीं है और वह तुमसे प्रेम करने लगा। इसलिए मैं नहीं कह सकती कि तुम मुझ पर विश्वास करो। लेकिन इतना मैं अवश्य स्पष्ट करती हूँ कि मैं तुमसे घ णा करती हूँ, क्योंकि तुम मेरे पिता के हत्यारे हो, परन्तु यह मेरी विवशता ही है कि समय पड़ने पर मैं तुम्हारे लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर सकती हूँ। मैं अपने मन की इस अवस्था या द्वन्द्व को समझ नहीं पाती, क्योंकि जिसे मैं मारना चाहती हूँ, उसी पर मेरा ह्रदय मिटने के लिए प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर है। क्या यह अन्धेर नहीं है ? लेकिन यह मेरे मन की कैसी विवशता है कि जलदस्यु घ णा करते हुए भी मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। लेकिन जहां तक विश्वास का प्रश्न है, वह मैं तुम पर नहीं कर सकती।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है। तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

2. नायिका के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति मिली है।
3. चम्पा की दुविधापूर्ण स्थिति का चित्रण किया गया है।
4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
5. चम्पा के ह्रदय में घ णा और प्रेम का एक साथ होना आश्चर्यजनक है।
6. घ णा का सात्विकीकरण स्पष्ट किया गया है।

***3. "चम्पा ! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता, पर मुझे अपने ह्रदय के दुर्बल अंग पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई है। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कराने लगी। पशु और धन के उपासक के मन में किसी कांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण छायावाद के युग-प्रवर्तक, श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी भावना प्रधान कहानी 'आकाशदीप' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को वाणी प्रदान करते हुए समाज-सेवा को व्यक्तिगत सुखों से सर्वोपरि घोषित किया है। एक दिन समुद्र तट पर चम्पा और बुद्धगुप्त आलिंगनबद्ध हो जाते हैं और सहसा चेतना लौटने पर चम्पा अपने वस्त्रों में छिपाए हुई कृपाण को समुद्र की अतल गहराई में फैंक देती है। बुद्धगुप्त कहता है कि वह (चम्पा) उस पर विश्वास करती है कि उसने उसे पिता की हत्या नहीं कि है, लेकिन चम्पा इन्कार करती हुई कहती है कि उसे अपने ह्रदय पर विश्वास नहीं है। बुद्धगुप्त चम्पा के पैर पकड़ लेता है कि हमें इस चम्पाद्वीप में पूरा सम्मान प्राप्त है, लेकिन अभी भी किसी अभिशापवश अलग-अलग है। इतना धन-धान्य व महत्त्व से युक्त होने पर भी मैं अत्यन्त दरिद्र हूं और मेरा पत्थर-सा कठोर ह्रदय तुम्हारा स्पर्श पाकर चन्द्रकान्त मणि की भाँति द्रवित हो गया था। बुद्धगुप्त स्पष्ट कहता है-

**व्याख्या** - चम्पा ! मैं नास्तिक हूं तथा परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता और न पाप-पुण्य को मानता हूँ। न मैं धर्म और दया को मानता हूँ। मैंने जीवन में कभी भी सात्विक प्रव त्तियों को महत्त्व प्रदान नहीं किया और न पाप-करुणा आदि के अस्तित्व को स्वीकारा है। मैं तो हत्या का व्यवसायी, जलदस्यु रहा हूँ तथा मुझे धन के लिए किसी की भी हत्या करने में किंचित् मात्र भी संकोच नहीं रहा। न मैंने कभी किसी से ऊपर दया की और मेरा व्यक्तित्व जीवन-भर निर्मम, निष्ठुर व कठोर रहा है। इस प्रकार मैं न स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, दया-करुणा आदि को मानता। लेकिन चम्पा तुम्हारे सम्पर्क में आने के बाद मैं यह जान पाया हूँ कि मेरे जैसे कठोर-निष्ठुर व निर्मम व्यक्ति के ह्रदय में भी कोमल और कठोर भाव विद्यमान है। मेरे ह्रदय में भी करुणा-कोमलता के भाव निहित हैं। तुम मेरे नीरस-कठोर और शून्य ह्रदय रूपी आकाश में न जाने कैसे भूली-भटकी हुई तारिका के समान उदित हो गई हो। तुम्हारे सानिध्य एवं सम्पर्क से मेरे निराशा-अवसाद से भरे जीवन में कोमल प्रकाश की किरणें फूट पड़ीं तथा मेरा जीवन भी तुम्हारे कारण सद्व त्तियों की ओर अग्रसर हो गया है और मैंने जलदस्यु व त्ति छोड़ दी है। मैं जिसके व्यक्तित्व में आसुरी व पशुत्व व त्तियों का साम्राज्य था और जिसका जीवन पशुओं जैसा था तथा धन कमाने के लिए उचित-अनुचित साधनों का प्रयोग करता था। अर्थार्जन हेतु किसी की हत्या करना मेरे लिए एक सामान्य बात थी, लेकिन यह पशुत्व और आसुरी व त्तियों से परिपूरित यह जीवन अचानक तुम्हारे कारण मानवता व सद्प्रव त्तियों की

ओर अग्रसर हो गया है। मेरे ह्रदय में भी कोमलता, करुणा व प्रेम भावना तथा सौन्दर्य की उत्पत्ति हो गई, लेकिन दुर्भाग्यवश मैं प्रसन्नता भरी हँसी न हँस सका। सब कुछ प्राप्त होने पर भी मैं प्राप्त न कर सका।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव तथा सरल है। प्रसाद जी ने संस्कृतमय खड़ी बोली का प्रयोग किया है। तत्सम शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं।

2. सौन्दर्य, करुणा, प्रेम आदि सद्व त्तियाँ आसुरी प्रव त्तियों वाले व्यक्ति का भी ह्रदय-परिवर्तन कर सकती है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है।

3. बुद्धगुप्त के चरित्र में होने वाले परिवर्तन की ओर इशारा किया गया है।

4. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

5. अप्रत्यक्ष रूप में बुद्धगुप्त के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

6. चम्पा के सौन्दर्य-करुणा व प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है जिसके कारण हत्या का व्यवसायी, पशु-धन बल का उपासक बुद्धगुप्त के व्यक्तित्व में परिवर्तन होता है।

7. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***4. "बुद्धगुप्त ! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा ह्रदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए शून्य है। प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो, इन निरीह, भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार, श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण भावना प्रधान कहानी 'आकाशदीप' से अवतरित है। लेखक प्रस्तुत कहानी में देश-राष्ट्र की सीमाओं के बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सन्देश सम्प्रेषित करता है तथा साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि सुख-सुविधाओं से युक्त जीवनयापन करने की अपेक्षा दीन-दलित-पीड़ितों और शोषितों की सेवा करना सर्वश्रेष्ठ धर्म है। बुद्धगुप्त जलदस्यु है और उसने प्रारम्भ में लूट-पाट करके तथा चम्पाद्वीप पर व्यापार करके अथाह धनराशि एकत्रित कर ली है। वह चम्पा से विवाह करके धन-धान्य के साथ भारत लौटना चाहता है, लेकिन चम्पा उसके विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकृत करके वहीं रहकर भटके हुए नाविकों के लिए आकाशदीप जलायेंगे और दीन-दुःखियों की सहायतार्थ वहीं रहेगी।"

**व्याख्या** - चम्पा बुद्धगुप्त को सम्बोधित करती हुई स्पष्ट कहती है कि बुद्धगुप्त ! मेरे लिए तुम्हारा यह लूटपाट से तथा व्यापार से एकत्रित किया हुआ धन मिट्टी के समान तुच्छ एव ंनगण्य है। हत्या के व्यवसायी जलदस्यु बुद्धगुप्त ! मेरे लिए तुम्हारा यह धन-धान्य व वैभव अस्प हणीय एवं नितान्त तुच्छ है। मेरे लिए सभी स्थानों का पानी एक जैसा है तथा यहां चम्पाद्वीप और जननी-जन्मभूमि भारत के जल में कोई भिन्नता नहीं है। इसी प्रकार सभी जगह बहने वाली वायु भी शीतल और उसमें भी कोई भिन्नता नहीं है। इसी प्रकार सभी जगह बहने वाली वायु भी शीतल और उसमें भी कोई भेद नहीं है। मेरे ह्रदय में किसी भी प्रकार की कोई कामना विद्यमान नहीं है तथा न मुझे सुख-सुविधाओं से युक्त जीवन चाहिए तथा न ह्रदय में प्रेम की आकांक्षा विद्यमान है तथा न कामाग्नि प्रज्ज्वलित है। इसलिए मेरे ह्रदय में न कोई कामना, न लालसा और न इच्छा वर्तमान है। मेरे लिए संसार के सभी सुख व धन-धान्य शून्य से बढ़कर नहीं है। मेरा जीवन तो शून्य के समान नगण्य व अर्थहीन हो गया है। कोई इच्छा ह्रदय में बाकी नहीं है। इसलिए प्रिय नाविक ! तुम धन-धान्य से परिपूर्ण इन पोतों को लेकर भारत लौट जाओ और सुख-सुविधाओं तथा ऐश्वग्र युक्त जीवन भोगो, क्योंकि तुम सुखों के अनुरागी हो और ऐश्वर्य युक्त जीवन जीना चाहते हो। लेकिन मैं तो इसी चम्पाद्वीप में रहूंगी और यहां आकाश दीप जलाकर भटके हुए नाविकों का पथ आलोकित करूंगी और इन निरीह तथा भोले-भाले प्राणियों के दुःखों में सहानुभूति प्रकट करने के लिए, इनके घावों पर सहानुभूति रूपी मीठे वचनों की मरहम लगाने के लिए तथा इनकी सेवा करने के लिए मैं भारत न जाकर चम्पाद्वीप में ही रहूगी। वह माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी चम्पा वहीं रहकर आजीवन द्वीप स्तम्भ में आलोक जलाती रही।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है तथा तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

2. संस्कृतमय खड़ी बोली प्रयुक्त की गई है।
3. बुद्धगुप्त और चम्पा के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।
4. लेखक ने देश-राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सन्देश सम्प्रेषित किया है।
5. चम्पा की लोकमंगल सेवा-भावना को अभिव्यक्ति मिली है।
6. 'शून्य' शब्द पर लेखक के बौद्ध-दर्शन की छवि द ष्टिगोचर होती है।
7. वैयक्तिक सुखों से श्रेष्ठतम लोक सेवा-कर्त्तव्य को बताया गया है।

# पत्नी

## (जैनेन्द्र कुमार)

## तात्त्विक विवेचन

'पत्नी' श्री जैनेन्द्र कुमार की बहुचर्चित कहानियों में से एक है। इस कहानी में एक मध्यवर्गीय परिवार में रह रहे पति-पत्नी के जीवन की विशेष स्थिति का मनोवैज्ञानिक द ष्टि से उद्घाटन किया है। इसमें मध्यम-श्रेणी की उस ग हस्थ नारी का यथार्थ चित्र अंकित है जो पति की उपेक्षा पाकर भी पति-सेवा को ही अपना परम कर्त्तव्य मानती है। कहानी कला के मान्यतापूर्ण तत्वों के आधार पर कहानी की समीक्षा निम्नलिखित है-

**1. कथावस्तु अथवा कथानक -**

प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु मध्यमवर्गीय समाज से ली गई है। कहानी का कथानक बहुत संक्षिप्त, किन्तु सुगुम्फित है। मूल कथावस्तु इस प्रकार है- शहर के एक ओर एक तिरस्कृत मकान की दूसरी मंजिल में साधारण स्थिति के पति-पत्नी रहते थे। पत्नी का नाम सुनन्दा और पति का नाम कालिन्दीचरण था। कालिन्दीचरण देशभक्त नेता हैं। वे सवेरा होते ही घर से बाहर चले जाते हैं। सुनन्दा रात के एक बजे तक अँगीठी के सहारे बैठी हुई उनकी प्रतीक्षा करती है। वह खीजकर खाना बना लेती है। कालिन्दीचरण अपने तीन मित्रों के साथ घर लौटते हैं। वे सुनन्दा से अपने और अपने मित्रों के लिए खाना लाने को कहते हैं। वह अस्वस्थ है और इस समय चार आदमियों का खाना किस प्रकार तैयार करे। कुछ समय बाद सुनन्दा खाना ले आती है और चुपचाप रखकर चली जाती है। दूसरी बार आकर चार गिलास पानी रख कर चली जाती है। मित्र लोग पति-पत्नी के बीच के तनाव से परिचित हो जाते हैं। पत्नी की समझ में अपने पति की देशोद्धार सम्बन्धी बातें नहीं आतीं। वह सोचती है कि उसकी समझ में ऐसी बातें आयें भी किस प्रकार, क्योंकि वह कम पढ़ी-लिखी है। वह बहुत दुःखी होने लगती हैं।

कालिन्दीचरण यह कहकर अन्दर जाते हैं कि 'देखूँ कुछ और हो तो ले आऊँ।' कालिन्दीचरण गुस्सा होते हैं कि 'वह खाना क्यों ले गई ? उठाकर ले आये। हम में से किसी को भी खाना नहीं है।' सुनन्दा मौन रहती है। वह कुछ भी उत्तर नहीं देती। सुनन्दा भीतर ही भीतर घुट रही थी, धीमे स्वर में कहती है-"खाओगे नहीं ? एक तो बज गया है।" कालिन्दी उसके इस कथन से निरुत्तर हो जाते हैं। वे कुछ अचार लेकर मित्रों के पास आ जाते हैं।

सुनन्दा ने अपने लिए कुछ भी नहीं रखा था। सारा भोजन परोस दिया था। उसे अपनी भूख की परवाह नहीं थी। उसे इसी बात का सोच था कि उसके पति ने उससे यह एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी ? वह सारी बातों को भुलाकर बरतन माँजने मे ंलग गई। उधर मित्र-मण्डली किसी विषय पर जोर-जोर से बहस करने लगी। वह बरतन माँजना छोड़कर कमरे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो गई। इतने में एक मित्र ने अचार माँगा। सुनन्दा ने चुपचाप अचार ले जाकर रख दिया। वह पुनः द्वार से सटकर खड़ी हो गई, जिससे वह जो मांगा जाय उसे तत्काल ले जाकर दे दे। कथावस्तु यही है। इसमें है सुनन्दा के रूप में भारतीय नारी के करुण जीवन की झाँकी, जिसको केन्द्र बनाकर कहानीकार ने कहानी का पट बुना है। सुनन्दा अपनी परिस्थिति पर खिन्न होती हुई भी कर्त्तव्य से विमुख नहीं होती थी।

कहानी के लिए कथावस्तु अत्यन्त अपर्याप्त है, किन्तु मनोवैज्ञानिकता होने से कहानी में सजीवता आ गई है। कहानी का प्रारम्भ आकर्षक है। प्रारम्भ का वातावरण पढ़कर ह्रदय में उत्कंठा जाग त हो जाती है। पाठक की जिज्ञासा अन्त तक बनी रहती है और कहानी की समाप्ति पर भी वह सुनन्दा को बैठक के द्वार पर खड़ा छोड़कर स्वयं समस्या सुलझाने में संलग्न हो जाता है। वह सोचता है कि इसके पश्चात सुनन्दा ने क्या किया होगा ? क्या उसके पति पर इस त्याग का प्रभाव पड़ा होगा या नहीं ? इस कहानी में प्रभाव की सघनता आद्यन्त विद्यमान रहती है।

**2. पात्र एवं चरित्र-निर्माण** -

प्रस्तुत कहानी में दो ही पात्र हैं-सुनन्दा और कालिन्दीचरण। दोनों के चरित्र की अलग-अलग विशेषताएं हैं। दोनों पात्रों में जीवन-संघर्ष है। सुनन्दा कहानी की मुख्य पात्र है। सुनन्दा का सारा संघर्ष बाह्य से अधिक आंतरिक है। अन्तर्जगत के भावात्मक संघर्ष में सुनन्दा का चरित्रांकन है जो ईमानदारी के साथ भारतीय परिवेश में मध्यवर्गीय परिवार में पत्नी के यथार्थ स्वरूप की अवतारणा करता है। कहानी में सुनन्दा का पति-परायणा पत्नी के रूप में चित्रण किया गया है। पति के देर से

आने व प्रेमपूर्वक बात न करने पर वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठती है; किन्तु शान्त ही रहती है। वह रात-दिन मशीन की तरह ग ह कार्य में संलग्न रहती है; किन्तु उसका पति उससे बात भी नहीं पूछता, यह उसको असहनीय हो जाता है। इतने पर भी वह स्वयं भूखी रह जाती है तथा पति और उसके मित्रों को भोजन दे देती है। वह अपना कर्त्तव्य समझती हुई कहती है-"छि, सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा-सी बात का अब तक ख्याल होता है। तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक दिन भूखा रहने का तुझे पुण्य मिला।" यह पति के प्रति असाधारण आदर्श, आदर और प्रेमभाव सुनन्दा के चरित्र में प्रकट होता है। इसके विपरीत उसके पति कालिन्दीचरण का चरित्र है। वह देशभक्ति के कार्यों में तो तत्पर है, किन्तु घर-परिवार की कोई चिंता नहीं, पत्नी की कोई परवाह नहीं। उसे अपने मित्रों को भोजन कराने की चिंता है, किन्तु पत्नी की भूख का कोई ध्यान नहीं। वह क्रांति और शांति पर तो अपने विचार प्रकट कर सकता है, किन्तु पत्नी के मनोभाव को नहीं समझ सकता। इस प्रकार दोनों पात्र एक विशिष्ट व्यक्तित्व लिए हुए हैं। पात्रों के चरित्रांकन में कहानीकार को अद्‌भुत सफलता मिली है।

3. **कथोपकथन (संवाद)** -

जैनेन्द्र मनोविश्लेषणात्मक शैली के कहानीकार हैं। 'पत्नी' कहानी में संवाद बहुत कम और छोटे हैं परन्तु मनोवैज्ञानिक के धरातल पर पुष्ट होने के कारण वे इतने अधिक नुकीले और प्रभावशाली हैं कि कहानी में संवाद की कमी अखरती नहीं। कहानी की संवाद योजना का उदाहरण देखिये-

"यह तुमने किसने कहा था कि खाना यहाँ ले आओ ?

मैंने क्या कहा था ?"

सुनन्दा कुछ न बोली।

"चलो, उठकर लाओ थाली। हमें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल में जायेंगे।

सुनन्दा बोली नहीं। कालिन्दी भी कुछ देर गुमसुम खड़ा रहा। तरह-तरह की बातें उनके मन में और कंठ में आती थीं।

उससे अपना अपमान मालूम हो रहा था, और अपमान असह्य था।

उसने कहा-"सुनती नहीं हो क्या कह रहा हूँ ? क्यों ?"

सुनन्दा ने मुँह फेर लिया।

"क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ? "

सुनन्दा भीतर ही भीतर घुट गई।

"मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी ?"

सुनन्दा ने मुड़कर और अपने को दबाकर धीमे से कहा-"खाओगे नहीं ? एक तो बज गया।"

यहाँ कथोपकथन का विश्लेषणात्मक रूप है। इस रूप में कहानीकार ने अपनी ओर से पात्रों के सम्बन्ध में उनकी मुद्राओं और भाव-भंगिमाओं का उद्‌घाटन करने के लिए कथोपकथन की योजना की है। इस प्रकार सुनन्दा बहुत कम बोलतीहै, पर उसकी भाव-भंगिमाओं ने बहुत कुछ कह दिया है।

4. **वातावरण (देशकाल)** -

प्रस्तुत कहानी में वर्णनात्मक ढंग से एक गंभीर वातावरण का निर्माण स्वतः ही हो गया है। चौके में बैठी मुख्य पात्र सुनन्दा को ऐसे परिस्थिति परिवेश से प्रस्तुत किया गया है कि कहानी की संवेदना में गहराई का समावेश होता चलता है-

"शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अँगीठी सामने लिए बैठी है। अँगीठी की आग राख हुई जारही है। वह जाने क्या सोच रही है।"

इस कहानी की वस्तु, कथ्य और चरित्र में देशकाल और वातावरण का योगदान केवल ऊपरी नहीं है, आंतरिक अधिक है। देशकाल और वातावरण केवल प्राकृतिक ही नहीं होता, वह सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक भी होता है। इन सबका संकेत 'पत्नी' कहानी में बड़ी कुशलता से हुआ है। मानव जीवन की समस्याएँ देशकाल और वातावरण में विकसित होने वाली विभिन्न ऐतिहासिक शक्तियों के कारण पैदा होती हैं। प्रस्तुत कहानी में सुनन्दा और उसके पति कालिन्दीचरण के जीवन में उभरने वाले तनाव आधुनिक युग की ही देन हैं। साम्राज्यवादी ताकतों से राष्ट्रवादी शक्तियों का संघर्ष आधुनिक इतिहास की

चीज है। भारतमाता को स्वतंत्र कराने को कटिबद्ध कालिन्दीचरण घर-परिवार व पत्नी की तरफ ध्यान नहीं दे पाता। सुनंदा की आंतरिक स्थिति से बनने वाले इस वातावरण का चित्र द्रष्टव्य है-"बैठे-बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र, न मेरी फिक्र, मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया...। उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक-भटक कर वह मन अन्त में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुँचता है। तब उस बच्चे की बड़ी-बड़ी बातें याद आती हैं। वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी अंगुलियाँ और नन्हे-नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।"

**5. भाषा-शैली** -

'पत्नी' कहानी की भाषा में सादगीपूर्ण सौन्दर्य है। कहीं कृत्रिम चमत्कार या सजावट का प्रश्न नहीं, बड़े ही सहज शब्दों में गंभीर भावाभिव्यक्ति होती चलती है। शैली में उतना आकर्षण है कि वर्णन प्रधान इतिव तात्मक भी सरस हो उठी है। यों उसमें प्रयत्नगत शिल्प-विधान कहीं नहीं दिखाई देता, किन्तु शैली का आकर्षण स्वयं ही आकर्षक बन गया है। कहानी में नारी के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति सरल, स्वाभाविक और प्रवाहमयी भाषा में है-"सुनन्दा कुछ नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमा-प्रार्थी-से क्यों बात कर रहे हैं-हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना और वह चुप रही।" इस प्रकार 'पत्नी' कहानी की भाषा-शैली भावपूर्ण, चित्रात्मक एवं सशक्त है। यथोचित शब्द रचना तथा भावानुकूल शब्द चयन कहानी की भाषा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

**6. उद्देश्य** -

'पत्नी' कहानी एक सोद्देश्य रचना है तथा उसमें चिन्तन की गहराई के अतिरिक्त अनुभूति की व्यंजना एवं आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न रहा है। प्रस्तुत कहानी का मुख्य उद्देश्य भारतीय नारी के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर उसके पत्नीत्व की प्रतिष्ठा व गरिमा प्रदान करने का रहा है। इसके साथ ही नारी की घुटन व दयनीयतापूर्ण सजीव झाँकी दिखाकर यह संदेश भी दिया है कि पति को बाहर की ही नहीं, घर-परिवार की चिन्ता कर पत्नी के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। कहानी में सर्वत्र भारतीय नारी के पत्नीत्व का ही परिचय मिलता है, अतः इसका शीर्षक 'पत्नी' उचित ही है।

जैनेन्द्र कुमार की इस कहानी के गुण-दोषों का विवेचन-विश्लेषण करते हुए श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' ने लिखा है-" 'पत्नी' शीर्षक कहानी में भारतीय नारी के विद्रोह का सजीव-चित्रण मिलता है। पति की अनुदारता के प्रति उन्होंने भारतीय नारी का आदर्श और उज्ज्वल व्यक्तित्व भले ही उभारा हो, वे उसकी घुटन और पीड़ा का समाधान करने में असफल रहे हैं। कथानक न होने पर भी अपनी शैली के आकर्षण में वे एक साधारण घटना को प्राणवान बनाने में सफल हुए है; पर 'पत्नी' लेखक की 'प्रतीकमयी' नारी मात्र बन गई है, परिवार की एक फर्नीचर।" वस्तुतः देखा जाए तो इस कहानी में सुनन्दा के रूप में नारी अपनी दयनीय स्थिति से ऊबकर क्रांन्ति के लिए उतारू तो हो जाती है; किन्तु फिर आध्यात्मिक समर्पण की ओर झुककर समझौते के लिए प्रस्तुत होकर शान्ति का अनुभव करती है। कुल मिलाकर अपनी विशिष्टता लिए हुए यह एक सफल कहानी है।

## प्रष्टव्य

1. जैनेन्द्र जी ने 'पत्नी' कहानी में एक मध्यम श्रेणी की ग हस्थ नारी का यथार्थ चित्र अंकित किया है।
   -इस कथन की समीक्षा करते हुए 'पत्नी' कहानी के गुण-दोषों का विवेचन कीजिये।
2. कहानी की कसौटी के आधार पर 'पत्नी' कहानी की समीक्षा कीजिये।
3. कहानी कला के तत्त्वों के आधार पर 'पत्नी' कहानी की विशेषतायें लिखिये।

# II. कहानी-सार

मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में जैनेन्द्र का अत्यनत महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा उन्होंने मनोविश्लेषणात्मक कहानियों में

मानव-मन के सूक्ष्म भावों, अन्तर्द्वन्द्वों का अत्यन्त मार्मिक व सजीव चित्रण किया है। वे मनुष्य के अन्तर्जगत् का पूरी टोह लेकर आते हैं। व्यक्ति और उसका मन, मन के भीतर अचेतन, अचेतन के भीतर व्याप्त मानवीय भावों का अथाह सागर-यही सब जैनेन्द्र की कहानियों के अन्तःसूत्र होते हैं। कहानी का सारांश इस प्रकार से है-

कालिन्दीचरण और सुनन्दा पति-पत्नी के रूप में शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान के दूसरे तल्ले में रहते हैं। वहाँ चौके में सुनन्दा अंगीठी के सामने बैठी है। अंगीठी की आग राख होती जा रही है। वह विचारों के उधेड़बुन में खोयी हई है। उसकी आयु लगभग बीस-बाईस के आसपास होगी। देह से वह दुबली है, परन्तु सम्भ्रान्त व शिष्ट कुल की लगती है। एकाएक उसका ध्यान बुझती हुई अंगीठी की ओर गया और उसने उठकर उसमें कोयले डाले। अंगीठी में कोयले डालकर फिर से ऐसे बैठ गई कि मानो याद करना चाहती हो कि अब क्या करूं। पति सवेरे से ही बाहर गए हुए हैं और सुनन्दा उनकी प्रतीक्षा में बैठी है कि वे आए और वह उनके लिए खाना बनाए। लगभग एक बज गया है। तभी वह चिन्तन करती है कि आदमी को अपने शरीर का ध्यान तो करना ही चाहिए। वह बैठी-बैठी सोचती है कि कब तक बैठूं तथा मुझसे ओर नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आए और उसने खीझकर तवा अंगीठी पर रख दिया। आटे की थाली सामने खींचकर रोटी बेलने लगी। थोड़ी देर बाद उसने जीने पर पैरों की आवाज सुनी। उसके मुख पर तल्लीनता के भाव आए और तिरोहित हो गए तथा पुनः उसी काम में लग गई। कालिन्दीचरण और उसके साथ उनके तीन मित्र भी आए हैं। वे आपस में बहस में उलझे हुए थे। वास्तव में वे चारों व्यक्ति देशोद्धार के सम्बन्ध में कटिबद्ध थे। चर्चा उसी के बारे में चल रही थी और भारत माता को स्वतन्त्र कराने हेतु यह समय नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा का नही है, बल्कि चाहे किसी भी माध्यम से भारत माता की पराधीनता की बेड़ियों को उतार फैंको। मीठी बातों का परिणाम बहुत देख लिया है तथा इनसे कोई सुखद परिणाम निकलने वाला नहीं है। जिस प्रकार से बाघ के मुंह से सिर निकालने में मीठी बातों का कोई प्रभाव नहीं है, बल्कि सिर निकालने के लिए तो बाघ मारना ही होगा। हमें आतंक-हिंसा का सहारा लेना होगा तथा जो लोग आतंकवादियों को मूर्ख-अल्पज्ञ मानते हैं, वे वास्तव में मूर्ख हैं और राजनीति के क्षेत्र में बच्चे हैं। फिर कालिन्दीचरण को अचानक ध्यान आया कि न उसने खाना खाया है और न मित्रों से खाने के बारे में पूछा है सुनन्दा रोटी बना चुकी थी और माथे को उंगलियों पर टिकाकार अंगीठी के समाने बैठी है। वह अपने पति कालिन्दीचरण और उसके मित्रों की बातें सुन रही है। उसे इन लोगों के जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह भी उसके लिए अपरिचित है। वह वास्तव में अल्पज्ञ है, इसीलिए न वह भारत माता की स्वतन्त्रता को समझती है, न भारत माता और न स्वतन्त्रता। न उन लोगों की जोर-जोर से बोलने का कारण समझती है। वह चाहती है कि उसका पति उससे भी कुछ देश की बात करे। उसमें यद्यपि बुद्धि कम है, परन्तु धीरे-धीरे समझने लगेगी। वह जानती है कि सरकार उसके पति के इस तरह के कामों से बहुत नाराज है और फिर वह सरकार के स्वरूप पर प्रकाश डालती है कि हाकिम, फौज, पुलिस के सिपाही, मैजिस्ट्रेट, मुन्शी, चपरासी, थानेदार और वायसराय आदि से सरकार बनती है, परन्तु इनसे लड़ने में ही कालिन्दी अपना तन-तम बिसार बैठी है। फिर सोचती है कि ये इतना जोर से क्यों बोलते हैं। उसको यही बुरा लगता है। सीधे-सादे कपड़ों में खुफिया विभाग का एक आदमी हरदम उनके घर के बाहर रहता है। ये लोग इस बात को भुलाकर जोर से क्यों बोलते हैं। बैठे-बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही थी कि दो बज गए हैं। इन्हें न खाने की चिन्ता है और न मेरी फिक्र है। मेरी तो खैर कोई बात नहीं, परन्तु अपने शरीर का तो ध्यान रखना चाहिए। इसी लापरवाही के कारण वह बच्चा असामयिक काल-कवलित हो गया। उसका मन कितना ही इधर-उधर डोले, लेकिन जब वह अकेली होती है तो उसको उस बालक की मधुर स्म तियां-अठखेलियां कचोटती हैं। उसको तभी बच्चे की प्यारी आँखें, छोटी-छोटी उंगलियां और नन्हें-नन्हें ओंठ याद आते हैं। सबसे ज्यादा उसका मरना उसके मन को व्यथित करता है। यद्यपि वह जानती है कि सबको मरना है, उसको मरना है और उसके पति को भी मरना है, परन्तु बालक को याद करके अत्यधिक व्याकुल-व्यथित हो उठती है। वह उठी कि बरतनों को माँज डाले तथा चौका साफ कर डाले कि तभी कालिन्दी अन्दर चौके में आए। सुनन्दा विचारों के अथाह-असीम प्रवाह में डूबती-उतरती चली जा रही थी। कालिन्दी के प्रवेश करने पर भी सुनन्दा कठोरतापूर्वक शून्य की ओर ही देखती रही। उसने पति की ओर नही देखा। कालिन्दी ने कहा-"खाने वाले हम चार हैं। खाना हो गया ?" सुनन्दा चून की थाली और चकला-बेलन और बटलोई आदि उठाकर चल दी तथा कुछ नहीं बोली। कालिन्दी ने फिर कहा सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे। सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में गुस्सा उठने लगा कि वह उससे क्षमा प्रार्थी की तरह बातें क्यों कर रहा है तथा कह क्यों नहीं देता कि कुछ और खाना बना दो, जैसे मैं कोई गैर हूँ। अच्छी बात है तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम करती रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना और वह चुप रही। तभी कालिन्दी ने जोर से आवाज दी-'सुनन्दा !' सुनन्दा के मन में आया कि वह हाथ में आयी बटलोई को जोर से फैंक दे।

किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे यह भी याद नहीं रहा कि अभी बैठे-बैठे वह पति की प्रीति और भलाई की बातें सोच रही थी। तभी कालिन्दी ने कहा-"क्यों ? बोल भी नहीं सकती ?" सुनन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया। कालिन्दी ने कहा कि खाना कोई भी नहीं खाएगा तथा यह कहकर पैर पटकता हुआ चला गया। कालिन्दी अपने दल में उदारवादी माने जाते थे तथा अधिकतर सदस्य अविवाहित थे, परन्तु कालिन्दी विवाहित थे और एक बच्चा भी खो चुके हैं। उनकी बात को दल में आदर-सम्मान प्राप्त है। वे दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं। बहस इस बात पर थी कि आतंक को छोड़ना चाहिए, क्योंकि इससे विवेक कुण्ठित होता है और मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है तथा उसके भय से दबा रहता है। सुनन्दा के पास से लौटने के बाद कालिन्दी अपने मत पर द ढ़ नहीं रहा तथा उसने कहा कि बातें जरूरी भी हैं। आप लोगों को भूख नहीं लगी क्या ? उनकी तबियत खराब है, इससे यहां तो खाना बना नहीं। बताओ क्या किया जाए। कहीं होटल चलें । एक ने कहा कि बाजार से कुछ मंगा लेना चाहिए और दूसरे की राय थी कि होटल चलना चाहिए। इसी बीच सुनन्दा ने एक बड़ी थाली में खाना परोसगर लाकर रख दिया। फिर आकर चार गिलास पानी रख गई। तीनों मित्र चुप ही रहे तथा कालिन्दी को तो ऐसा लगा जैसे किसी ने काट लिया हो। मित्रों ने महसूस किया कि उनमें तनाव व्याप्त है। कालिन्दी ने झेंपकर कहा कि मेरा मतलब था कि खाना काफी नहीं है। फिर भीतर आकर सुनन्दा को डांटनें लगा कि तुमसे किसने कहा था कि खाना वहां ले आओ। सुनन्दा कुछ न बोली-चलो उठा लाओ थाली। हमें किसी को यहां नहीं खाना है। सुनन्दा कुछ नहीं बोली तथा कालिन्दी भी चुपचाप खड़ा रहा। कालिन्दी ने फिर कहा क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ? सुनन्दा भीतर ही भीतर घुंट गई। मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था तब खाना लाने की क्या जरूरत थी ? सुनन्दा ने मुड़कर कहा कि खाओगे नहीं ? एक तो बज गया। कालिन्दी भी निशस्त्र हो गया, फिर उसने पूछा कि खाना और है। ? सुनन्दा ने धीमे से कहा-आचार लेते जाओ। सुनन्दा ने अपने लिए बचाकर नहीं रखा था। फिर उसने सोचा कि उन्होंने तो पूछा भी नहीं तुम क्या खाओगी ? क्या मैं यह सहन कर सकती थी कि उनके मित्र भूखे रहें और वह खाना खाये। तभी वह बरतन माँजने में लग गई। फिर वह कमरे के दरवाजे के पास खड़ी हो गई कि शायद किसी चीज की आवश्यकता पड़े। तभी कालिन्दी ने आचार और पानी लाने के लिए स्निग्ध वाणी से कहा, जिसे सुनन्दा ने पूरा कर दिया। फिर बाहर द्वार से लगकर खड़ी हो गई कि कालिन्दी कुछ मांगे तो जल्दी से ला दे।

## III. चरित्र-चित्रण

### कालिन्दी -

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कहानीकार श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी मनोविश्लेषणात्मक कहानी 'पत्नी' में भारतीय नारी के विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है तथा साथ ही चिरकाल से शोषित-प्रताड़ित नारी की घुटन, कुण्ठा और पीड़ा का भी चित्रण हुआ है। प्रस्तुत कहानी में कालिन्दी चरण नायक के पद पर आसीन है। वह कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है और सभी घटनाओं के मूल में है। कहानी के अन्य सभी पात्र सुनन्दा और उसके चरित्र को प्रकाशित करने में सक्षम हैं। कहानी का फलभोक्ता भी कालिन्दी ही सिद्ध होता है। अतः कहानी का नायक निर्विवाद रूप से कालिन्दी चरण ही सिद्ध होता है। घटनाओं का तन्तुजाल की उसी के चारों तरफ बुना हुआ है, यथा-वही अपने मित्रों के साथ नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा और भारत माता की स्वतंत्रता से सम्बन्धित संघर्ष में लीन होता है।

कालिन्दी चरण के हृदय में देश-प्रेम की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। वह देशोद्धार के सम्बन्ध में कटिबद्ध है। वह आतंकवादी मत का समर्थन करते हुए स्पष्ट कहता है-"भारत माता को स्वतंत्र करना होगा और नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुंह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है। आतंक ! हां, आतंक ! हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा।" लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं, हाँ, वे अच्चे और मूर्ख।" इसी प्रकार कालिन्दी चरण विकास-निस्प ह भाव से भारत माता को स्वतन्त्र कराने हेतु मन-प्राणों से कटिबद्ध है। वह अपनी निप ह भावना को कहानी में इस प्रकार से स्पष्ट करता है-"हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल-बच्चों का। हमें नहीं गरज धन-दौलत की। तब हम मरने के लए आजाद क्यों नहीं हैं ? जुल्म को मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरें जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं है।" कालिन्दी के मन-प्राणों में देश-प्रेम की धुन गहरे तक समायी हुई हैं। न उसे खाने की चिन्ता है, न आराम की और न पत्नी की चिन्ता, यहां तक कि उसका बेटा भी असामयिक काल-कवलित हो जाता है। सुनन्दा भी अपने पति की देश-सेवा के विषय में श्रद्धाभाव रखती है। उसने शारीरिक सुख-सुविधाओं का परित्याग करके, भारत माता को पराधीनता

की बेडियों से मुक्ति दिलाने हेतु मारा-मारा फिरता है। स्वतन्त्रता-संघर्ष के कारण ही वह अपने पुत्र की ओर ध्यान नहीं दे पाता तथा अपने दल को विवेक का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे उत्ताप पर अंकुश का कार्य करते हैं। वे आतंकवादी गतिविधियों का विरोध करते हुए स्पष्ट कहते हैं-"हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक वे विवेक कुण्ठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित होता रहता है या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियां श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं।" इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पत्नी' कहानी से कालिन्दी भारत माता को स्वतन्त्र कराने में अपना सब कुछ होम करने के लिए तत्पर है। क्रांतिकारी गतिविधियों में सह इतना अधिक लीन है कि उसके पारिवारिक जीवन में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं रह पाता है।

कालिन्दी चरण का अपनी पत्नी के प्रति व्यवहार अत्यन्त कठोर व निर्मम है। क्रांतिकारी गतिविधियों में अत्यधिक तल्लीन होने के कारण उसका पारिवारिक जीवन सुखद नहीं रह गया है। वह अपनी पत्नी को घोर उपेक्षित व तिरस्कृत करता है और वह कुण्ठा, पीड़ा व घुटन की एक निर्जीव प्रतिमूर्ति बन जाती है। पति-पत्नी के सम्बन्धों को उकेरता यह संवाद देखिये-

कालिन्दी ने कहा-सुनन्दा, खाने वाले हम चार हैं। खाना हो गया ?

सुनन्दा चून की थाली और चकला-बेलन, बल्लोई वगैरह खाली बर्तन उठाकर चल दी, कुछ भी बोली नहीं।

कालिन्दी ने कहा-"सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं, खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।

सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। ×××

कालिन्दी ने जोर जोर से कहा-'सुनन्दा'

सुनन्दा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बल्लोई को खूब जोर से फैंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे-बैठे इन्हीं अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बात सोच रही थी। इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से में घुटकर रह गई थी।

क्यों ? बोल भी नहीं सकती।

सुनन्दा नहीं ही बोली।

तो अच्छी बात है। खाना कोई भी नहीं खाएगा। यह कहकर कालिन्दी तैश में पैर पटकते हुए लौटकर चले गए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिन्दी-सुनन्दा के सम्बन्धों में मधुरता न होकर तिक्तता व तनाव है। वह आग के सामने बैठकर भोजन बनाने हेतु पति की प्रतीक्षा में रत है।

कालिन्दी की अपनी पत्नी सुनन्दा के प्रति व्यवहार उचित नहीं है, क्योंकि कालिन्दी ने आकर कहा कि-"आप लोगों को भूख नहीं लगी है क्या ? उनकी तबियत खराब है, इससे यहां तो खाना बना नहीं। बताओ, क्या किया जाए ? कहीं होटल चलें।" लेकिन तभी सुनन्दा एक बड़ी थाली में खाना परोसकर उनके बीच रख देती है, चार गिलास पानी के रख देती है। यह सब देखकर कालिन्दी को तो साँप सूंघ गया। कहानीकार ने लिखा है-"तीनों मित्र चुप ही रहे। उन्हें अनुभव हो रहा था कि पति-पत्नी के बीच स्थिति में कहीं कुछ तनाव पड़ा हुआ है।" अन्त में एक ने कहा-"कालिन्दी, तुम तो कहते थे कि खाना नहीं है।" दूसरे ने कहा-"बहुत काफी है। सब चल जाएगा।" तभी कालिन्दी अन्दर जाकर सुनन्दा को फटकारता है कि उसने मना करने के बावजूद अन्दर मित्रों के पास ले जाकर खाना क्यों रखा ? इस प्रकार पति-पत्नी के सम्बन्धों में कटुता व विषाक्तता व्याप्त है। वह पत्नी को डांटते हुए कहता है-"यह तुमसे किसने कहा था कि खाना यहां ले आओ ? मैंने क्या कहा था ?"

सुनन्दा कुछ न बोली।

"चलो, उठकर लाओ थाली। हमें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल में जायेंगे। बार-बार कालिन्दी के बोंलने पर भी जब सुनन्दा ने उसके प्रश्न का उ त्तर नहीं देती तो यह उसका अपना अपमान लगता था। और अपमान असहनीय था। उसको अत्यन्त आवेश के साथ कहा-

"सुनती नहीं हो क्या कह रहा हूँ ? क्यों ?"

सुनन्दा ने मुँह फेर लिया।

"क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ? "

सुनन्दा भीतर ही भीतर घूंट गई।

"मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी ?"

सुनन्दा ने मुड़कर और अपने को दबाकर धीमे से कहा-खाओगे नहीं ? एक तो बज गया।

कालिन्दी 'पत्नी' कहानी में विनम्र, शान्त स्वभाव की सजीव प्रतिमा एवं अहिंसक व त्ति वाला चित्रित किया है। उसका व्यवहार अपनी पत्नी के प्रति मधुर व आत्मीयतापूर्ण नहीं है जिसके कारण वह घुटी-घुटी सी रहती है। वह अपनी पत्नी सुनन्दा से खाना खाने के लिए भी नहीं पूछता और सारा खाना खा जाते है तथा उसको भूखा रहना पड़ता है। कहानी के प्रारम्भ में उसका व्यवहार पत्नी सुनन्दा के प्रति कठोर व निर्मम है, लेकिन कहानी के अन्त में मधुर वाणी बोलता है तथा विनम्र हो उठता है।

कालिन्दी चरण सामाजिक व्यक्ति है तथा इसीलिए अपने तीन मित्रों को लेकर अपने घर आता है और उनको खाना भी खिलाता है। घर पर खाने की व्यवस्था न होने के कारण वह उन्हें होटल ले जाना चाहता है कि तभी सुनन्दा खाना परोसकर वहीं रख गई। नायक अपनी पत्नी सुनन्दा से कभी भी देश के बारे में वार्तालाप नहीं करता, क्योंकि वह उसे अज्ञानी व अल्पज्ञ मानता है। सुनन्दा अपने पति की लापरवाही और उपेक्षा को इस प्रकार प्रकट करती है-"उन्हें न खाने की फिक्र, न मेरी फिक्र, मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया।" अतः कालिन्दी चरण को तो केवल देश की स्वतंत्रता के बारे में ही चिन्ता है, उसी के लिए मारा-मारा फिरता है। उसे न खाने का फिक्र है न पत्नी का और न अपनी सुख-सुविधा का।

'पत्नी' कहानी के कालिन्दी एक सफल पिता और परिवार के मुखिया के रूप में द ष्टिगोचर नहीं होता है, क्योंकि उसी की बेपरवाही के कारण उसका एकमात्र पुत्र असामयिक काल-कवलित हो जाता है। उसके पुत्र का चित्रांकन सुनन्दा द्वारा इस प्रकार से किया गया है-"वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी अंगुलियाँ और नन्हे-नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।" इस प्रकार यहां कालिन्दी का निर्मम-निष्ठुर पिता का रूप ही द ष्टिगोंचर होता है, क्योंकि उसी के कारण ही सुनन्दा की गोद सूनी हो गई है। मात त्व खण्डित हो चला है। क्रांतिकारी पति कालिन्दी की उपेक्षा के कारण ही सुनन्दा को अपने प्राणों से भी प्यारे, सुन्दर पुत्र से हाथ धोने पड़े। इतना ही नहीं कालिन्दी के सिर पर हमेशा देशभक्ति का भूत सवार होने के कारण ही वह अपनी पत्नी सुनन्दा की निरन्तर उपेक्षा करता है और उसे घर की चारदीवारी तक सीमित कर देता है। कालिन्दी के कारण ही उसकी पत्नी का व्यक्तित्व बौना-सा हो गया है। इस प्रकार कालिन्दी की मानसिकता असंतुलित एकांगी और पूर्वाग्रहों से ग्रस्त की जा सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिन्दी 'पत्नी' कहानी का नायक है, देशभक्ति को धुन उसके प्राणों में गहरे तक समायी हुई है। घर-परिवार की ओर उसका ध्यान नहीं है, जिसके कारण उसका पुत्र असामयिक काल-कवलित हो जाता है।

## (ख) सुनन्दा

बहुमुखी प्रतिभा के कथाकार श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी 'पत्नी' कहानी में सुनन्दा नायिका के पद पर अधिष्ठित है। उसकी आयु बीस-बाईस के लगभग होगी तथा देह से कुछ दुबली है और सभ्य-शालीन है। उसको देखने से ऐसा लगता है वह "सम्भ्रान्त कुल की मालूम होती है।" वह पति के लिए खाना बनाने हेतु अंगीठी के पास बैठी हुई है तथा अंगीठी की आग राख हुई जा रही है, लेकिन उसके पति कालिन्दी चरण अभी भी बाहर से नहीं लौटे।

सुनन्दा कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है तथा सभी घटनाओं के मूल में है। वहीं नायक और उसके मित्रों के लिए खाना बनाती है और परोसकर अन्दर देकर आती है। तब वे खाना खाने लगते हैं तो वहीं कमरे के दरवाजे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो जाती है। इस प्रकार वह सभी घटनाओं के मूल में वर्तमान है। कालिन्दी की पत्नी नायिका सुनन्दा फलभोक्त्री भी है। इस प्रकार कहानी 'पत्नी' की नायिका निर्विवाद रूप से वही सिद्ध होती है।

सुनन्दा पति द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत है तथा उसका मात त्व व पतित्व दोनों ही खंडित हैं, क्योंकि पुत्र तो पति की बेपरवाही के कारण पहले ही असामयिक काल-कवलित हो जाता है और पति भी क्रांतिकारी गतिविधियों में संलिप्त रहता है। उसे न घर की फिक्र, न पत्नी की और न अपनी सुख-सुविधाओं की। वह तो हमेशा ही मन-प्राणों से इस भारत माता

की स्वतंत्रता की गतिविधियों में लिप्त रहता है। सुनन्दा की स्थिति तो घर में एक कैदिन की भाँति है। वह प्रातःकाल से ही अंगीठी जलाकर बैठी है कि कब कालिन्दी चरण आये और उसकी रोटी पकाए, लेकिन वह एक बजे आता है। सुनन्दा अपने पति की उपेक्षा-तिरस्कार का स्मरण कर अत्यन्त व्यथित एवं क्षुब्ध हो उठती है, क्योंकि उन्हीं के बेपरवाही के कारण उसका एकमात्र पुत्र असामयिक काल-क्रोड़ में समा जाता है। लेकिन वह कभी भी अपने पति से शिकायत न करती है, न उपालम्भ और न खीझ प्रकट करती है। वह कहानी कें अपनी चिन्तन, अन्तर्द्वन्द्व की भावना को इस प्रकार से प्रकट करती है-"बैठे-बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र, न मेरी फिक्र, मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया...। उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक-भटक कर वह मन अन्त में उसी बच्चे के अभाव पर आ जाता था..तब वह विह्वल हो उठती थी और हठात् इधर-उधर की किसी काम की बात में अपने को उलझा लेना चाहती है। पर अकेले में, वह कुछ करे, रह-रहकर वही वह याद, वही वह मरने की बात उसके सामने ही रहती है और उसका चित्त बेबस हो जाता है।" इस प्रकार वह पति-उपेक्षिता, तिरस्कृता व मात त्व-खंडिता नारी है। वह सारा दिन घर की चारदिवारी में बन्द रहती है। पति उसके प्रति उपेक्षा-तिरस्कार व अनदेखा भाव प्रदर्शित करता है, लेकिन वह फिर भी उसके प्रति पूरी श्रद्धा व आत्मीयता रखती है। कहानी के प्रारम्भ में वह सीधी तथा सरलता की प्रतिमूर्ति के रूप में द ष्टिगोचर होती है और पति की प्रताड़ना का चुपचाप गर्दन झुकाकर स्वीकार कर लेती है। लेकिन कहानी के अन्त में उसका अहम् भाव-उद्दीप्त हो उठता है, और वह भी घर में सम्मानजनक स्थान की आकांक्षी है। कहानीकार का कहना है-"कालिन्दी चरण ने जरा जोर से कहा-सुनन्दा। सुनन्दा के जीव में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फैंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। किन्तु उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे-बैठे अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बात सोच रही थी। इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से में घूंट कर रह गई।" उसे पति से इस बात का उपालम्भ है कि उन्होंने अधिकारपूर्वक खाना बनाने के लिए क्यों नहीं कहा ? सुपन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमा-प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं-"हँसकर क्यों नही कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना। और वह चुप रही।" इस प्रकार उसके हृदय में आत्म-स्वाभिमान की ज्वाला धधकती है और कहानी में अनेक स्थलों पर वह उद्दीप्त हो उठी है।

'पत्नी' कहानी में सुनन्दा अशिक्षित, अल्पज्ञ, सरलता की जीवन्त प्रतिमूर्ति और घरेलू किस्म की नारी के रूप में चित्रित हुई है। उसके पति कालिन्दी चरण और उसके मित्र कमरे में वार्तालाप में लीन है, उसके पति अपने मित्रों के साथ क्यों और क्या बातें कर रहे हैं। कहानीकार उसकी अल्पज्ञता का चित्रांकन करते हुए लिखता है-"उसे जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है-स्प हणीय और मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतन्त्रता को समझना चाहती है, पर उसको न भारत माता समझ में आती है, न स्वतन्त्रता समझ में आती है। उसे इन लोगों की इन जोरों की बातचीत का मतलब भी समझ में नहीं आता। फिर भी उसमें उत्साह की बड़ी भूख है। ××× उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी ? सोचती हूँ, कम पढ़ी हूँ, तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है ? अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूँ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि वह सरलता-सादगी की प्रतिमूर्ति, अल्पज्ञ और अशिक्षित नारी है। उसे इन सबका जोर-शोर से बोलना भी अच्छा नहीं लगता।

सुनन्दा का एकमात्र पुत्र नायक कालिन्दी चरण की बेपरवाही के कारण असामयिक काल-कवलित हो जाता है। इस प्रकार एक ओर उसका मात त्व खंडित हो चला है और दूसरी ओर वह पति-उपेक्षिता व तिरस्कृता है। इसीलिए बार-बार रह-रहकर उसके पुत्र की मधुर स्म तियां उसे कचोटती हैं-"उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक-भटककर वह मन अनत में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुंचता है। तब उसे बच्चे की बड़ी-बड़ी बातें याद आती हैं। वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी अंगुलियाँ और नन्हे-नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।" बच्चें की मधुर स्म तियां बार-बार उसे मथ डालती है तथा उसके मरने की बात उसके स्म ति-पटल पर शाश्वत रूप से विद्यमान रहती है और उसका चित्त बेबस हो जाता है। वह बार-बार पुत्र की स्म तियों से विह्वल होकर अपनी आँखें पोंछती रहती है।

सुनन्दा पति कालिन्दी की उपेक्षा से खीझ उठती है और व्यथित हो जाती है। कालिन्दी के यह न पूछने पर कि तुम क्या खाओगी ? वह अत्यधिक व्याकुल व खिन्न हो उठती है। वह स्पष्ट स्वीकारती है-"उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम

क्या खाओगी ? क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊं और उनके मित्र भूखे रहें। पर पूछ लेते तो क्या था। इस पर उसका मन टूटता-सा है। मानो उसका जो तनिक-सा मन  था, वह भी कुचल गया हो। पर वह रह-रहकर अपने को स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है-"छि, सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा-सी बात का अब तक ख्याल होता है। तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक दिन भूखा रहने का तुझे पुण्य मिला।" इसी प्रकार कालिन्दी अपनी भोली-भाली सरलता व सादगी की जीवन्त प्रतिमा सुनन्दा को अपनी सनकों का शिकार बनाता है और उसे पति-उपेक्षा, अनादर व तिरस्कार मिलता है।

यद्यपि वह अशिक्षित है, परन्तु विचारवान् भी है और कहानीकार लिखता है-"वह जानती है कि जिसे कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार, सरकार है। उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार' क्या होती है ? पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी ताकतें हैं। इतनी फौजें, पुलिस के सिपाही और मैजिस्ट्रेट और मुन्शी और चपरासी और थानेदार और वाइसराय, ये सब सरकार ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है ? हाकिम से लड़ना ठीक बात नहीं।" और सुनन्दा स्पष्ट कहती है कि कालिन्दी चरण सरकार से लड़ने में ही सब कुछ भुला बैठा है। इतना ही नहीं उसे उनके जोर से बोलने में भी आपत्ति है, क्योंकि खुफिया पुलिस का एक आदमी उनके घर के बाहर रहता है और वह इनकी सारी सुन-समझ लेता है। इसीलिए उनको जोर से नहीं बोलना चाहिए।

## IV. उद्देश्य

श्रेष्ठ कहानीकार श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित 'पत्नी' कहानी में नारी के यथार्थ-विद्रोह के चित्र उकेरे हैं। **श्री रमाप्रसाद 'पहाड़ी'** ने 'पत्नी' कहानी के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए लिखा है-" 'पत्नी' शीर्षक कहानी में भारतीय नारी के विद्रोह का सजीव चित्रण मिलता है। पति की अनुदारता क प्रति उन्होंने भारतीय नारी का आदर्श और उज्ज्वल व्यक्तित्व भले ही उभारा हो, वे उसकी घुटन और पीड़ा का समाधान करने में असफल रहे हैं। कथानक न होने पर भी अपनी शैली के आकर्षण में वे एक साधारण घटना को प्राणवान् बनाने में सफल हुए हैं, पर 'पत्नी' लेखक की 'प्रतीकमयी' नारी मात्र बन गई है, परिवार को एक फर्नीचर।" लेखक प्रस्तुत कहानी के माध्यम से एक महत्त्वपूर्ण ज्वलन्त संदेश भी देना चाहता है कि हिंसा-आतंकवाद आदि से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। इसीलिए कालिन्दी चरण अपने मित्रों के समक्ष बहस में स्पष्ट घोषणा करता है-"हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक से विवेक कुण्ठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है तथा उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियां श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है। उसे आतंकित करना नहीं।" इसी प्रकार कालिन्दी चरण जैनेन्द्र कें विचारों का संवाहक है तथा उसके प्राणों में देश-प्रेम की धुन बहुत गहरे तक समायी हुई है। इसीलिए वह हमेशा क्रांतिकारियों, गतिविधियों में संलिप्त रहता है तथा पत्नी कालिन्दी की ओर भी यथोचित ध्यान नहीं देता तथा वह स्वयं को उपेक्षिता-तिरस्कृता स्वीकारती है। चिरकाल से शोषित नारी के अकेलेपन को कहानीकार ने बड़ी कुशलता और धार्मिकता के साथ चित्रण किया है। भारतीय नारी किस प्रकार घर की चारदिवारी में कैद होकर अपने जीवन को तिल-तिल करके गलाती है-इसका सजीव और जीवन्त चित्रांकन है 'पत्नी' नामक कहानी में।

कहानी के प्रारम्भ में ही सुनन्दा चौके में अंगीठी के समक्ष बैठी हुई है तथा अंगीठी की आग राख हुई जा रही है तथा साथ ही उसका जीवन भी राख हुआ जा रहा है। लेखक ने मध्यवर्गीय नारी की वस्तु स्थिति का आकलन करते हुए, उसके जीवन जीने की परिस्थितियों का सजीव चित्रांकन करता है। सुनन्दा प्रातःकाल से जलती अंगीठी के समक्ष बैठकर तपस्या करती हुई पति की प्रतीक्षा में बैठी हुई है और बार-बार बुझती अंगीठी में कोयले डालती रहती है। वह अन्ततः बोर हो जाती है और स्पष्ट कहती है-"सोचने को तो यही है कि कोयले न बुझ जायें। वह जपने कब आयेंगे। एक बज गया है। कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए।...और सुनन्दा बैठी है। वह कुछ कर नहीं रही है। जब वह आयेंगे तब रोटी बना देगी। जाने कहां-कहां देर लगा देते हैं और कब तक बैठूं। मुझसे नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आए है और उसने झल्लाकर तवा अंगीठी पर रख दिया। नहीं, अब वह रोटी बना ही देती। इस प्रकार प्रातःकाल से ही प्रतीक्षा में बैठी सुनन्दा अब लेती है और रोटी बनाना प्रारम्भ कर देती है। वास्तव में यह अशिक्षित सुनन्दा  घर की चारदिवारी में ही बन्द रहती है। वह माथे पर अंगुलियां टिकाकर बैठी-बैठी सूनी सी देख रही है तथा सुन रही है कि उसके पति कालिन्दी चरण अपने मित्रों के साथ क्या बातें कर रहे हैं। वह अल्पज्ञ-अशिक्षित है, अतः इसलिए उसे उनकी गहन-गंभीर बातें समझ में नहीं आती। कहानीकार लिखता है-"उसे जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है-स्प हणीय और मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है, पर उसको न भारत माता समझ में आती है, न स्वतंत्रता समझ में आती।" यद्यपि वह अल्पज्ञ है, अशिक्षित है, परन्तु फिर भी उत्साह की उसमें बड़ी भूख है।

वह भी चाहती है कि उसका पति उससे देश की बातें करे। वह स्वीकारती है कि उसमें बुद्धि जरा कम है, परन्तु वह धीरे-धीरे समझने लगेगी। यदि वह अशिक्षित है तो उसमें उसका क्या कोई कसूर नहीं है। लेकिन सुनन्दा आदर्श भारतीय नारी है और उसका कार्य तो अपने पति के चरणों की सेवा करना है। इसीलिए वह स्पष्ट कहती है-"खैर, उसने सोचा है, उसका काम तो सेवा है। बस, यह मानकर उसने जैसे कुछ समझने की चाह छोड़ दी है। वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उसके राज के बीच में आने की नहीं सोचती।" इस प्रकार वह हमेशा अपने पति की चिन्ता में लीन रहती है कि उसे न तो अपने तन की फिक्र है और न मेरी फिक्र है। मेरी तो चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु अपने तन का ध्यान तो अवश्य रखना चाहिए। इसी लापरवाही के कारण ही उसका एकमात्र पुत्र असामयिक काल-कवलित हो जाता है। तभी वह अपने पुत्र की मधुर स्म तियों में खो जाती है और असीम-अनन्त पीड़ा-विषाद से भर जाती है। उसकी मधुर स्म तियाँ बार-बार आ-आकर उसके स्म ति-पटल को कौंधती है। यथा-"वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी अंगुलियाँ और नन्हे-नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।" तभी विषाद-पीड़ा के सागर में डूबती-उतरती सुनन्दा से कालिन्दी आकर पूछता है कि खाने वाले चार हैं, खाना हो गया तो, उसका क्रोध-विद्रोह एकदम उद्दीप्त हो उठता है, क्योंकि यह उससे क्षमा-प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं-हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गेर हूं। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूं कि इनके ही काम में लगी रहूं। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना। यहां सुनन्दा का स्वाभिमान जाग त हो उठता है और कालिन्दी के प्रश्नों के उत्तर न देकर अपना विरोध-विद्रोह दर्ज कराती है। वह अपने विद्रोह को इस प्रकार प्रकट करना चाहती है-"सुनन्दा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फैंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे-बैठे इन्हें अपने पति के बारे में कैसी प्रति की और भलाई की बात सोच रही थी। इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से में घुटकर रह गई।" इस प्रकार अपना आक्रोश-विरोध प्रकट करने के लिए वह कालिन्दी चरण के प्रश्नों का उत्तर नहीं देती तथा मौन रह कर अपना आक्रोश प्रकट करती है। कालिन्दी सुनन्दा के पास से वापिस आने पर कहता है कि आतंक जरूरी भी है। लेकिन बाद में कालिन्दी खाना परोसकर अन्दर कमरे में रख आती है, जिससे कालिन्दी चरण अपना अपमान समझता है, क्योंकि उसने मित्र को कहा कि भोजन नहीं बना है। इस प्रकार सुनन्दा अपनी अन्तर्द्वन्द्व की भावना को भी कहानी में अनेक स्थलों पर उजागर करती है। इसका अन्तर्द्वन्द्व इस प्रकार से उजागर हुआ है-"सुनन्दा ने अपने लिए कुछ बचाकर नहीं रखा था। उसे यह सूझा न था कि उसे भी खाना है। अब कालिन्दी के लौटने से उसे मालूम हुआ कि उसे अपने लिए कुछ भी नहीं वचाकर रखा है। वह अपने से रूष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ। इसीलिए नहीं कि क्यों उसने खाना नहीं बचाया। इस पर तो उसमें स्वाभिमान का भाव जागता है। मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बात सोचती ही क्यों है ? छिः यह भी सोचने की बात है और उसमें कड़वाहट भी फैली। हठात् उसके मन को लगता ही है कि देखो उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी ? क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊं और उनके मित्र भूखे रहें। इस बात पर उसका मन टूटता-सा है। माना उसका जो तनिक-सा मन था, वह भी कुचल गया हो।" तभी वह बर्तन साफ करने लगती है, लेकिन तभी सोचती है कि बर्तन तो बाद में भी साफ किए जा सकते हैं, उन्हें किसी चीज की आवश्यकता हुई तो। तभी कालिन्दी अचार हेतु आवाज लगाते हैं और सुनन्दा तुरन्त लेकर आती हैं तभी कालिन्दी स्निग्ध वाणी में पानी की मांग करते हैं जिसे वह तुरन्त पूरा करती है। इस प्रकार पूरी कहानी में सुनन्दा के मन में भावों, अन्तर्द्वन्द्वों का सुन्दर-सजीव चित्रांकन हुआ है। कहीं उसका विरोध-विद्रोह प्रकट हुआ है तो कहीं उसकी आत्मीयता और स्नेह।

इसी प्रकार प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने देशप्रेम, राष्ट्रीय भावना का भी महत्त्वपूर्ण संदेश दिया है। उसका स्पष्ट कहना है कि भारत माता को स्वतंत्र कराना है तथा उसके लिए हिंसा-अहिंसा, नीति-अनीति को देखने की आवश्यकता नहीं है। साधन के लिए चिन्ता नहीं, साध्य की पूर्ति होनी चाहिए। इसीलिए कहानीकार संदेश सम्प्रेषित करता है-"भारत माता को स्वतंत्र करना होगा और नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुंह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है।" लेखक स्पष्ट घोषणा करता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति हेतु प्राणों और बाल-बच्चों का मोह भी त्यागना होगा, न धन-लिप्सा और न बाल-बच्चों का प्रेम उन्हें उनके उद्देश्य-लक्ष्य से हटा नहीं सकता- "आतंक ! हां, आतंक ! हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा।" लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं, हाँ, वे अच्चे और मूर्ख। उन्हें बुजुर्गों और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल-बच्चों का । हमें नहीं गरज धन-दौलत की। तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं हैं। जुल्म को मिटाने के लिए सब कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरे जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं है।

इस प्रकार कहानीकार ने राष्ट्रीय भावना को भी 'पत्नी' अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसके साथ ही कहानीकार क्रांतिकारियों की देश-प्रेम की धुन तथा उनके संतुलित और आवेशपूर्ण देशभक्ति की विडम्बना का भी चित्रांकन करता है और साथ ही दुष्परिणामों की ओर भी कहानीकार समुचित प्रकाश डालता है। कालिन्दी चरण के प्राणों में देशभक्ति की धुन बहुत गहरे समायी हुई है, इसीलिए वह परिवार-पत्नी और पुत्र की ओर ध्यान नहीं देता तथा उसकी बेपरवाही के कारण ही उसका पुत्र असामयिक काल-कवलित हो जाता है तथा सुनन्दा का मात त्व खंडित हो जाता है। इस प्रकार सुनन्दा की पति उपेक्षिता व तिरस्कृता बनाने में तथा उसका मात त्व खंडित करने में कालिन्दी का महत्वपूर्ण हाथ है। भले ही वह देशभक्त है, समाज-सेवक है, परन्तु एक असफल पिता व पति है। पारिवारिक दायित्वों व कर्त्तव्यों की पूर्ति करने में असफल रहता है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** के ये शब्द सारांश रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़े हैं-"जैनेन्द्र की कहानियों में न तो घटना की प्रधानता रहती है, न ही उद्देश्य की वस्तुतः उनको इच्छा मानवी मन के सूक्ष्म रहस्यों के भेदन की है-जिसके लिए घटनाओं की योजना की जाती है। पर यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि घटनाओं एवं कथातत्व के अभाव के बावजूद पात्रों के स्वभाव, संस्कार और परिवेश के सूक्ष्म, जटिल और रहस्यपूर्ण सम्बन्धों को उजागर करते हुए जैनेन्द्र की कहानियां बोझिल नहीं होती, बल्कि उसमें सफाई और सहजता बिना किसी अनावश्यक विस्तार, बिना लेखकीय हस्तक्षेप, बिना उलझाव के द ष्टिगोचर होती है।"

## व्याख्या

*1.* ***"भारत माता को स्वतंत्र कराना होगा और नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुँह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है। आतंक, हाँ आतंक ! हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा ? लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवाद मूर्ख हे, वे बच्चे हैं। हाँ, वे बच्चे हैं और मूर्ख। उन्हें बुजुर्गों और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल-बच्चों का। हमें नहीं गरज धन-दौलत की तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं ? जुल्म मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरे जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने भारतीय नारी के विद्रोह का सजीव चित्रण किया है तथा साथ ही राष्ट्रीय भावना को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। सुनन्दा के पति कालिन्दी देशभक्त और समाज सेवक हैं। उनके साथ उनके तीन मित्र भी घर पर आते हैं और स्वतंत्रता प्राप्ति के विषय पर अपने-अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं-

**व्याख्या** - भारत माता को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराने हेतु नीति-अनीति और हिंसी-अहिंसा देखने का यह समय नहीं है, क्योंकि हम लोगों के लिए साध्य महत्त्वपूर्ण है साधन नहीं। हमारे लिए स्वतंत्रता-प्राप्ति महत्त्वपूर्ण है। चाहे उसके लिए नीति का पालन किया गया हो या अनीति का, चाहे हिंसा का सहारा लिया गया हो या अहिंसा का। साध्य प्रमुख है, साधन नहीं। मीठी बातें अर्थात् अहिंसा का सहारा लेकर देख लिया है तथा उससे कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि मीठी बातों से बाघ के मुंह से सिर नहीं निकाला जा सकता है, सिर निकालने के लिए तो उस बाघ को मारना ही पड़ेगा। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु हिंसा का सहारा लेना ही पड़ेगा। आतंक से हमें कभी भी डरना नहीं चाहिये, बल्कि आतंकवाद का सहारा लेकर ही यहाँ से अंग्रेजी शासकों को भगाया जा सकता है। लोग जो यह कहते हैं कि आतंकवाद का सहारा लेना उचित नहीं है या आतंकवादियों की आलोचना करते हैं, वे मूर्ख हैं तथा अभी अपरिपक्व है, नादान है। उन्हें वास्तविकता का ज्ञान नहीं है। उनमें परिपक्वता और ज्ञान होना चाहिए तभी वे सही मत या विचारधारा प्रकट कर सकेंगे। हम में जीने की कामना नहीं है, क्योंकि पराधीन रहने से मरना भला है। हमें अपने बाल-बच्चों का भी मोह नहीं है जिससे हम अपनी गतिविधियों से हट जाएं। बाल-बच्चों का मोह या प्रेम अपने रास्ते से हटा सकता है। न हमें धन-दौलत की आवश्यकता है और हम धन-दौलत के लिए आतंकवादियों में सम्मिलित हुए हैं। जब हमें न बाल-बच्चों का मोह है, न जीवन की चाह है और न धन की कामना है तब हम मरने के लिए भी स्वतंत्र हैं। हम अपने प्राणों को न्यौछावर करने के लिए स्वतंत्र हैं। यदि हम अन्याय-जुल्म को मिटाना चाहते हैं तो उसके लिए जुल्म का सहारा लेना पड़ेगा तथा कुछ न कुछ तो जुल्म अवश्य होगा ही। जुल्म करने से वे डरे जो वास्तव में डरपोक हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं बना है तथा हम जुल्म को मिटाने के लिए हिंसा का सहारा लेने से भयभीत नहीं होते।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल तथा सुबोध है। आम बोलचान की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. उर्दू के शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

3. साध्य की महत्ता पर बल डाला गया है, साधन चाहे कुछ भी हो।

4. लेखक की राष्ट्रीय भावना प्रकट हुई है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

***2. "उसे जोश का कारण नहीं समझ में आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है-स्प हणीय, मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है, पर उसको न भारत माता समझ में आती है, न स्वतंत्रता समझ में आती है। इसे उन लोगों की इन जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी उत्साह की उनमें बड़ी भूख है। जीवन की हौस उसकी बुझती-सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। 'पत्नी' कहानी में मध्यवर्गीय भारतीय नारी की पीड़ा-विषाद, कुण्ठा और घुटन का चित्रण हुआ है। सुनन्दा के पति कालिन्दी चरण देशभक्त व समाजसेवी हैं। अतः क्रांतिकारियों का तांता उनके घर में लगा रहता है जिसके कारण वे आपस में भारत माता-स्वतंत्रता, सरकार, लड़ाई आदि विषयों पर वार्तालाप करते हैं। सुनन्दा, अशिक्षित, अल्पज्ञ, सीधी-सादी व भोली-भाली नारी है। उसे इन गहन बातों का अर्थ समझ में नहीं आता, यद्यपि वह जिज्ञासु है और इनके अर्थों को जानना चाहती है। कहानीकार स्पष्ट लिखता है-

**व्याख्या** - देश-भक्त कालिन्दी चरण और उनके मित्र कई बार पूरे जोश के साथ वार्तालाप में लिप्त रहते हैं और कई बार जोर से बोलने लगते हैं, लेकिन सुनन्दा को उनके जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह नाम भाव तो सुनन्दा के लिए अपरिचित और अनजाना है तथा उनके जीवन में उत्साह कभी रहा ही नहीं। उत्साह, जोश आदि सभी बातें उसके लिए बहुत दूर की वस्तु है और जिस प्रकार से हरियाली चाहे दूर हो या पास व्यक्ति को सुन्दर-रुचिकर और अच्छी लगती है, ठीक इसी प्रकार से उसे ये सारी बातें अच्छी लगती है, परन्तु उसकी समझ से बाहर की वस्तु है। वास्तव में वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना, जानना चाहती है, क्योंकि वह जिज्ञासु है और फिर उसके पति एवं उसके मित्र प्रतिदिन इसी का वर्णन करते हैं। अतः उसे भी इसके बारे में जानना चाहिए। न उसे 'स्वतंत्रता' शब्द का अर्थ समझ में आता है, क्योंकि वह स्वयं भी पराधीन है। जब उसके पति कालिन्दी व उसके मित्र इन विषयों पर चर्चा करते हैं तो वह इन सबका अर्थ-प्रयोजन-महत्त्व व उद्देश्य समझ नहीं पाती। लेकिन इन सबका अर्थ जानने की जिज्ञासा उसके मन में बरकरार रहती है। लेकिन उसमें उत्साह भावना विद्यमान है। इन सभी बातों को जानने-समझने की जिज्ञासा व उत्साह उसके हृदय में यथावत् बना हुआ है। वह चाहती है कि उसका पति उसके पास बैठकर इन गंभीर बातों के अर्थों को समझाए, लेकिन वे समझा नहीं पाती और वह स्वयं समझ या जान नहीं पाती। उसके मन में किसी प्रकार की कोई इच्छा, कामना या हवस नहीं है और यदि कोई है तो वह स्वतः समाप्त होती जा रही है। लेकिन वह अभी भी जीवन चाहती है, यद्यपि उसका जीवन बदल रहा है। उसे चारदिवारी की कैद में बंद रहना पड़ता है, उसका शोषण होता है और पति-उपेक्षिता-तिरस्कृता तथा मात त्व-खंडित महिला है।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सहज-सरल एवं सुबोध है। जैनेन्द्र जी ने आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त की है।

2. तत्सम शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं-स्प हणीय, मनोरम, हौस आदि।

3. स्वतंत्रता पूर्व नारी की दयनीय स्थिति का चित्रांकन किया गया है।

4. विश्लेषण अत्यन्त सजीव, मार्मिक व प्रभावशाली बन पड़ा है।

5. सुनन्दा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

***3. "वह जानती है कि जिसे कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार, सरकार है। उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार' क्या होती है ? पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी ताकतें हैं। इतनी फौजें, पुलिस के सिपाही और मैजिस्ट्रेट और मुन्शी***

***और चपरासी और थानेदार और वाइसराय, ये सब सरकार ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है ? हाकिम से लड़ना ठीक नही है, पर ये उसी से लड़ने में तन-मन बिसार बैठे हैं।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण बहुचर्चित मनोवैज्ञानिक, कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। 'पत्नी' में भारतीय नारी के विद्रोह का सजीव चित्रण मिलता है तथा साथ ही उसकी दयनीय अवस्था पर भी प्रकाश डाला गया है। कालिन्दी अपनी पत्नी सुनन्दा को पूरा महत्त्व प्रदान नहीं करते जिसके कारण वह स्वयं को उपेक्षित और तिरस्कृत महसूस करती है। वह अशिक्षित, अल्पज्ञ और अज्ञानी है जिसके कारण उसे सरकार, भारत माता, स्वतंत्रता जैसे मह त्वपूर्ण और सामान्य-सी बातों का भी ज्ञान नहीं है। कहानीकार उसके बारे में लिखता है-

**व्याख्या** - सुनन्दा यद्यपि सरल, भोली-भाली और अशिक्षित, अल्पज्ञ नारी है तथापि वह सरकार के स्वरूप, महत्ता और उसके प्रयोजन को नहीं जानती, लेकिन इतना अवश्य जानती है कि जिसे सरकार कहते हैं, उनके पति के क्रांतिकारी कार्यों के कारण नाराज है। वह जानती है कि उसके पति देशभक्त हैं और पराधीनता की बेड़ियों को उतार फैंकने के लिए कटिबद्ध है तथा सरकार-विरोधी कार्यों में लिप्त रहते हैं। इसलिए सरकार उनके पति के कार्यों के कारण बहुत नाराज है और इसीलिए उनके घर के बाहर खुफिया विभाग का आदमी हर समय खड़ा रहता है। लेकिन सरकार तो सरकार है और सरकार के बारे में उसके मन में कोई स्पष्ट भावना या धारणा नहीं है कि सरकार का उद्देश्य क्या हे ? इसकी महत्ता व प्रयोजन क्या है ? तथा इसका कार्यक्षेत्र क्या है ? लेकिन इतना उसको पता था कि जितने ये बड़े-बड़े हाकिम लोग हैं, इनके पास असीम शक्तियां हैं और ये बड़े शक्तिशाली होते हैं तथा वे बड़े प्रभावशाली होते हैं और सरकार इन हाकिमों, फौज, पुलिस के सिपाही, मजिस्ट्रेट, मुन्शी और चपरासी से बनती है। ये थानेदार और वायसराय भी सरकार के प्रमुख अंग हैं। इनके पास अधिक और असीम शारीरिक-वैधानिक शक्तियां विद्यमान हैं। अतः इन सबसे भला कैसे लड़ा जा सकता है ? क्योंकि ये सब तो शक्तिशाली हैं, इनके पास भारी सत्ता और शक्ति है। इसीलिए इनसे लड़ना तो प्राणों को संकट में डालना है। स्वामी शक्तिशाली सरकार से लड़ना ठीक नहीं है, क्योंकि इनसे लड़ना और जीतना सर्वथा असम्भव कार्य है और फिर ये क्रान्तिकारी या कालिन्दी सरकार से लड़ने में ही अपना तन-मन भुला बैठे हैं। सरकार इनसे लड़ने में ही वे इतने जोश में आ जाते हैं और ऊंचे स्वर में बोलने लगते हैं। इसे लगता है कि सरकार से लड़ने में तो अपने प्राणों के प्रति मोह छोड़ना है।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। हिन्दी-उर्दू मिश्रित आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. सुनन्दा की उदासीनता-कुण्ठा, घुटन का भी सजीव चित्रण हुआ है।
3. सरकार की असीम, अनन्त शक्तियों का चित्रांकन हुआ है।
4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
5. सुनन्दा की चिन्ता अभिव्यक्त हुई है कि सरकार से लड़ने में कालिन्दी का अहित हो सकता है।
6. सुनन्दा का आदर्श पत्नीत्व भी अभिव्क्त हुआ है।

***4. "वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी अंगुलियाँ और नन्हे-नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है। ओह ! यह मरना क्या है ! इस मरने की तरफ उससे देखा नहीं जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है-उसको मरना है, उसके पति को मरना है, पर उस तरफ भूल से छन-भर देखती है तो भय से डर जाती है। यह उससे सहा नहीं जाता। बच्चे की याद से मथ उठती है।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, कहानीकार स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने नारी की विद्रोह भावना व साथ ही उसकी दयनीय अवस्था को चित्रित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। कालिंन्दी देश-भक्त और समाज-सेवी है तथा देश-प्रेम उसके मन-प्राणों में बहुत गहरे तक समाया हुआ है। उसी की बेपरवाही के कारण उसका एकमात्र पुत्र असामयिक काल-कवलित हो जाता है। सुनन्दा अपने पति को क्रांतिकारी गतिविधियों के बारे में चिन्तन करती है कि वह अपना तन-मन भी बिसार बैठा है तथा साथ ही न खाने की फिक्र है और न सुख-सुविधा की। सुनन्दा अपने पुत्र की मधुर स्म तियों में खोयी हुई है। कहानीकार लिखता है-

**व्याख्या** - सुनन्दा को स्मरण हो आता है कि उसका एकमात्र पुत्र उसके पति कालिन्दी की बेपरवाही के कारण असामयिक काल-कवलित हो जाता है। उसे स्मरण हो आता है कि अपने पुत्र की प्यारी-प्यारी, गोल-गोल, चंचल आँखें, उसी

ंछोटी-छोटी अंगुलियां और नन्हे-नन्हें कमल की पंखुड़ियों के सद श ओंठ याद आते हैं। उसे उसकी बाल सुलभ-क्रीड़ाएं व अठखेलियां याद आती हैं और सबसे ज्यादा तो उसे उसका मरना याद आता है। बार-बार उस बालक की म त्यु सुनन्दा के स्म ति-पटल को कौंधती है। वह उसे स्मरण कर अत्यधिक व्याकुल हो उठती है। अचानक वह उसकी म त्यु का ंस्मरण कर अत्यधिक व्याकुल एवं व्यथित हो उठती है। उसका मरना भी कितना दुःखदायी, हृदय-विदारक था कि उसकी तरफ देखा भी नहीं जाता था। उसकी म त्यु के द श्य का स्मरण कर वह मर्माहत हो उठती है। यद्यपि उसको इस बात का भली-भाँति ज्ञान है कि इस संसार में जो शरीर धारण करके आया है, उसको अवश्य मरना है। वह भली-भाँति जानती है कि उसे भी मरना है, उसके पति को भी एक दिन यह नाशवान् शरीर छोड़ना है-संसार में सबको मरना है, परन्तु अपने एकमात्र पुत्र की म त्यु की ओर भूल से भी देख लेती है तो वह भय से डर जाती है। उसकी स्म ति-पटल पर उभरी पुत्र की म त्यु का हृदय-विदारक, मर्मान्तक द श्य को देखने मात्र से ही वह भय से कांप उठती है। यह उससे देखा नहीं जाता और न ही उसमें उसे सहने की शक्ति है। बच्चे का स्मरण करके वह अत्यधिक व्याकुल और व्यथित हो उठती है तथा पीड़ा उसके तन-मन को मथ डालती है।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सहज तथा सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

3. करुण-वात्सल्य रस की छटा एक साथ अवलोकनीय है।

4. कालिन्दी की बेपरवाही और सुनन्दा की पुत्र के प्रति आत्मीयता का चित्रण मिलता है।

5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

6. छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा गहन, प्रभावशाली प्रभाव का चित्रण हुआ है।

*5. ***"आतंक से विवेक कुण्ठित होता है। और या तो मनुष्य उससे उ त्तेजित ही रहता है या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं। सरकार व्यक्ति के और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है। हम इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं-इसी को मुक्त करना चाहते हैं। आतंक से यह काम नहीं होगा, जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारने और उसमें कर्त्तव्य भावना का प्रकाश जगाने का है। हम स्वीकार करें कि मद उसका टक्कर खाकर चोट खाकर ही उतरेगा। यह चोट देने के लिए हमें अवश्य तैयार रहना चाहिए, पर वह नोचानोची उपयुक्त नहीं। इससे सत्ता का कुछ बिगड़ना तो नहीं, उल्टे उसे अपने औचित्य पर संतोष ही आता है।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, कहानीकार श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में नायक कालिन्दी चरण के प्राणों में देशभक्ति की धुन बहुत गहरे तक समायी हुई है। कालिन्दी चरण और उसके देशभक्त मित्र इस विषय पर वार्ता कर रहे हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति में उन्हें उग्रता की अधिक सहायता लेनी चाहिए या नहीं। लेकिन कालिन्दी चरण का मत था कि हमें धीरे-धीरे आतंकवाद या हिंसक प्रव त्तियों का परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार नायक के मित्र हिंसा के समर्थक और नायक कालिन्दी चरण अहिंसा के पक्षधर हैं। लेखक की धारणा है-

**व्याख्या** - जैनेन्द्र कमार की धारणा है कि आतंक से ज्ञान, विवेक या सोचने-समझने की शक्ति का ह्रास होता है और आतंक का सहारा लेने वाला व्यक्ति या तो हमेशा आवेश में या जोश में रहता है या फिर उसके भय से भयभीत रहता है-दोनों ही स्थितियां श्रेष्ठ, उचित नहीं हैं। सभी देशभक्तों का उद्देश्य है कि अंग्रेजी सरकार का विवेक जाग्रत हो, हम उसे आतंकित नहीं करना चाहते। हमें अंग्रेजी सरकार के विवेक को जाग्रत करके उसे उसके कर्त्तव्यों का स्मरण कराना चाहते है। अंग्रेजी सरकार दमन-चक्र चलाकर लोगों को जबरदस्ती दबाना चाहती है जो कि अनुचित है; जबकि हम देशभक्त उस विकास के ऊपर लगे अवरोध को हटाकर भारतवासियों का सम्यक् विकास करवाना चाहते हैं। हम भारतवासियों को पराधीनता से मुक्त करवाना चाहते हैं। कालिन्दी चरण की धारणा है कि यह कार्य आतंक से संभव नहीं होगा। जो व्यक्ति शक्ति के मद के कारण मदमस्त हो गए हैं, उनमें सत्ता का नशा छा गया है। असली कार्य है कि उनके ऊपर से सत्ता का नशा उतारना और सरकार में कर्त्तव्य भावना एवं विवेक उत्पन्न करना। हम स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी सरकार में कर्त्तव्य का मद किसी बड़ी चोट से ही उतर पायेगा और यह हमें चोट देने के लिए अवश्य तैयार रहना चाहिए, परन्तु सरकार को छोटी-मोटी कार्रवाई

करके तिक्त करना उचित नहीं, क्योकि उससे उसकी दमन कार्रवाई और अधिक बढ़ जाएगी। इससे सरकार का कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, बल्कि उल्टा वह अपनी दमनात्मक कार्रवाई को उचित ठहराने लगेगी।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है, संस्कृत के तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

2. कालिन्दी चरण के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।
3. कालिन्दी चरण ने आतंक, आवेश को नकार कर विवेक और सूझ-बूझ का समर्थन किया है।
4. भावपक्ष ओर कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
5. लेखक ने अहिंसा के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।
6. भाषा शैली विवेचनात्मक और मुहावरेदार है।

# वापसी

## (उषा प्रियंवदा)

## तात्त्विक विवेचन

'वापसी' उषा प्रियंवदा की ख्याति प्राप्त कहानी है। यह कहानी हिन्दू परिवारों के प्रचलित सम्बन्धों और मूल्यों के टूटने और नये मूल्यों को बनाने को तटस्थता के साथ चित्रित करती है। आज परिवार-संस्थान तेजी से टूट रहा है। पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पिता-पुत्री, माता-पुत्री, पति-पत्नी, सास-बहू, ससुर-बहू, भाई-बहिन के सम्बन्धों और मूल्यों में तेजी से बदलाव आ रहा है। 'वापसी' इन्हीं पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने और नये मूल्यों के बनने की कथा है। प्रस्तुत कहानी का तात्विक विवेचन इस प्रकार है-

**1. कथावस्तु (कथानक) -**

'वापसी' कहानी का प्रारम्भ अत्यधिक सुनियोजित है। कहानीकार ने गजाधर बाबे के परिवार का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। 'वापसी' कहानी के प्रारम्भ में गनेशी को गजाधर बाबू का बिस्तर बाँधते हुए प्रस्तुत किया है। गनेशी अपनी कृतज्ञता से दबा है। गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नजर दौड़ाई-दो वक्स, डोलची, बाल्टी-"यह डिब्बा कैसा है गनेशी ?" उन्होंने पूछा। इन प्रारम्भिक पंक्तियों से ही पाठकों को भासित होने लगता है कि गजाधर बाबू की मानसिक स्थिति कुण्ठित है। बहुत समय पूर्व की अपनी पत्नी की स्म ति पुनः ताजा हो जाती है। नौकरी पर न जाने कितने पुरुषों की मानसिक स्थिति शोचनीय नहीं होती है। गजाधर बाबू को अपने रेलवे क्वार्टर को छोड़ने में कितना दुःख होता है ? परन्तु बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह ऊपर उठकर विलीन हो जाता है। रिटायर होने के बाद वह बहुत खुश थे। इन वर्षों में अधिकांश समय अकेले रहकर काटा था। उन्हें अपनी पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आ जाती हैं। एक ओर पाठक गजाधर बाबू की मनःस्थिति को जानने के लिए जहाँ उत्सुक हैं वहाँ उनकी पत्नी कि वियोग स्थिति को समझने की जिज्ञासा भी उसमें सजग हो उठती है। कहानी के प्रारम्भ की सफलता भी बस इसी बात में है कि वह पाठकों को जिज्ञासु बना दे।

गजाधर बाबू और गनेशी के लघु संवाद के अनन्तर इस कहानी की कथा का स्वाभाविक विकास होता है, लेकिन विकास बहुत ही मन्थर गति से होता है। अपनी रेलवे की सेवा से निव त्त हो गजाधर बाबू घर लौटते हैं। गजाधर बाबू को गत जीवन का अपनी पत्नी के साथ साहचर्य याद हो आता है। उनकी पत्नी घर पर पति के वियोग में अपने बच्चों के साथ किस प्रकार जीवन-यापन करती है ? जब गजाधर बाबू घर रहते, उनकी पत्नी रोटियाँ सेंक-सेंककर स्नेहपूर्वक उनको खिलाती। नौकरी से निव त्त होकर वह अपने घर आते हैं। अमर, उसकी बहू, बसन्ती और नरेन्द्र आदि की स्वतंत्रता में अनैच्छिक हस्तक्षेप ही इस कहानी का चरम विकास है। अमर और उसकी बहू पहले बेरोकटोक रहते थे। परन्तु गजाधर बाबू की उपस्थिति उनको असह्य हो गयी है। बसन्ती के स्वतंत्र भ्रमण और देर रात तम शीला के घर बड़े-बड़े लड़कों के साथ उठने-बैठने में गजाधर बाबू को हस्तक्षेप करना पड़ता। यही नहीं, गजाधर बाबू घर की आर्थिक व्यवस्था पर भी नियंत्रण करने लगे। इसलिए वे घर के नौकर तक को निकाल देते हैं। यही कहानी का चरम विकास माना जा सकता है। गजाधरबाबू अपने को घर में ठीक से व्यवस्थित नहीं कर पाते हैं इसलिए वे घर से जाने की सोचते हैं। सेठ रामजीलाल की चीनी मिल में उनको नौकरी नियुक्ति पत्र मिलता है। यहीं से इस कहानी का उपसंहार प्रारम्भ होता है। कहने को कहा जा सकता है कि 'वापसी' कहानी का उपसंहार अत्यन्त स्वाभाविक है। पाठकों को आभास होता है कि घर में गजाधर बाबू के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका अस्तित्व तो धनोपार्जन मात्र के लिए है। अतः वह स्वयं वहाँ से जाने को उद्यत हैं।

गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा, "मुझे सेठ रामजीलाल की चीनी मिल में नौकरी मिल गयी है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आयें वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने ही मना कर दिया था।" फिर उन्होंने धीमे स्वर में कहा, "मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूंगा। खैर परसों जाना है। तुम भी चलोगी ?"

बहू ने अमर से पूछा-"सिनेमा ले चलिए न ?" बसन्ती ने उछलकर कहा, "भइया, हमें भी।" गजाधर बाबू की पत्नी के शब्दों को देखो-"अरे नरेन्द्र बाबू जी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।" इस प्रकार कहानी

का अन्त अत्यन्त प्रभावकारी है।

**2. पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण -**

'वापसी' कहानी सामाजिक है। अतः कहानी के पात्र यथार्थ जीवन के परिवेश से सम्बद्ध हैं। वे वर्ग प्रतिनिधि भी हैं और स्वच्छन्द व्यक्ति भी। पात्र संख्या सीमित है। सब मिलाकर सात पात्र हैं-गजाधर बाबू, उनकी पत्नी, अमर और अमर की बहू, गनेशी, बसन्ती और नरेन्द्र। प्रमुख पात्र दो ही हैं-गजाधर बाबू और उनकी पत्नी जिनसे कहानी का कथा-सूत्र विशेष रूप से अनुस्यूत है। व द्ध गजाधर बाबू कथानायक हैं जिनके माध्यम से कहानीकार ने व द्ध पीढ़ी की निराशाजनक अनुपयोगी व्यक्तित्व का चित्रण किया है। इसके विपरीत बसन्ती, नरेन्द्र, अमर और उसकी बहु आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके द्वारा ही कहानीकार रूढ़ियों तथा प्राचीन परम्पराओं के विरोध को अभिव्यक्त कर सका है। कहानी के प्रमुख पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

व द्ध गजाधर बाबू-कहानी के प्रारम्भ में कहानीकार ने गजाधर बाबू की मनःस्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है-

"गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताये थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान पहिचान के लोग ले गये थे और जगह-जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी बाल-बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।"

गजाधर बाबू सदेव से ही अकेले रहे थें। कभी भी कोई उनके साथ न रहा था। अतः वे चाहते थे कि वे लौटकर किसी प्रकार अपने परिवार में घुल-मिल जायें उनका व्यक्तित्व कुछ अस्थिरता लिये हुए है। गनेशी से गजाधर बाबू का परिसंवाद, उसके अनुदार, व्यवहार कुशल एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यक्तित्व का परिचायक है।

गजाधर बाबू अत्यधिक कष्ट सहिष्णु हैं। उनमें गनेशी के लिए कुछ उदारता है। अपने सम्पूर्ण जीवन का त्याग कर ही गजाधर बाबू अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देते हैं। इसके प्रतिरूप में कुछ भी लेने की इच्छा नहीं रखते। अपनी स्वयं की पत्नी के उपेक्षापूर्ण व्यवहार की उनको कोई चिन्ता नहीं है। यही नहीं बसन्ती, नरेन्द्र, अमर एवं उसकी बहू के तीखे वाक्यों की भी उनको कोई चिन्ता नहीं है। वे 35 वर्ष तक अकेले ही जीवन का भार ढोते रहे। इस दीर्घकाल में उनको किसी ने कोई सहयोग नहीं दिया।

गजाधर बाबू मात्र ही इस कहानी में व द्ध पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस कहानी के अन्य पात्र आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही मूल कारण है कि गजाधर बाबू को कुछ समय उपरान्त ही सेठ रामजीलाल के चीनी मिल में नौकरी करनी पड़ी। यही नहीं, वे बसन्ती को इधर-उधर कहीं नहीं जाने देते। बसन्ती का युवा लड़कों के साथ सहचर्य उनको खलता है। वे सबको अपने नियंत्रण में रखना चाहते हैं। यहाँ तक कि उनकी पत्नी भी उनका साथ नहीं देती है। वह अपने बच्चों और बड़ी ग हस्थी को त्यागकर कहीं नहीं जाना चाहती। इतवार के दिन जब बच्चे अपने कमरे में खेलों में व्यस्त होते हैं तो गजाधर बाबू उन्हें देख-देख कर अत्यन्त हर्षित होते परन्तु उनकी उपस्थिति का अनुभव कर सब शान्त हो जाते।

नौकर को निकाल देने पर सबने गजाधर बाबू के प्रति अति रुष्ट-भाव अपना लिया। कोई ग ह-कार्य करना ही नहीं चाहता था। यह अनुभव कर गजाधर बाबू ने पत्नी से पूछा, "बहू क्या किया करती है ?"

"पड़ी रहती है। बसन्ती को तो, फिर कहो कि कॉलिज जाना होता है।" उनकी पत्नी का उत्तर था।

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसन्ती को आवाज दी। बसन्ती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, "बसन्ती आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी माँ बनायेगी।" गजाधर बाबू को अपनी पत्नी के प्रति अधिक चिन्ता है। वे स्वयं निराश, विवश, कायर किन्तु आक्रोश से ओत-प्रोत हैं। गजाधर बाबू में निराशा व्याप्त है। वे परिस्थितियों में ऐसे उलझे हुए हैं उनसे निकल नहीं सकते। उनकी हार्दिक आकांक्षा है कि घर उनके नियंत्रण में रहें। परन्तु ऐसा होता नहीं है। उनका अस्तित्व एवं स्वामित्व लगभग म तप्रायः सा हो गया है। उसमें निर्भीकतापूर्ण व्यक्तित्व का अभाव है। यदि गजाधर बाबू में साहस होता तो वह परिस्थितियों का द ढ़ता से सामना करते। अपनी पत्नी का हर समय अत्यधिक व्यस्त रहना उन्हें खलता और वह प्यार से बसन्ती को समझाते हुए कहते-"तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई है, उनमें अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी है, दोनों को मिल कर उनका काम में हाथ बँटाना चाहिये।"

गजाधर बाबू की पत्नी अपनी ग हस्थी में ही लगी रहती थी। उसकी इच्छा थी कि उनके लड़के-लड़कियाँ उच्च शिक्षा ग्रहण करें। इसी कारण वह शहर छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकती। इसके लिए वह बड़े से बड़ा बलिदान कर सकती हैं। जब जब गजाधर बाबू उसको अपने साथ चलने को कहते हैं-"खैर परसों जाना है। तुम भी चलोगी ?" पत्नी सकपकाकर कहती हैं, "मैं" ? मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा ? इतनी बड़ी ग हस्थी, फिर सयानी लड़की।" जब गजाधर बाबू उस पर घर की फिजूलखर्ची का आरोप लगाते हैं तो उसका उत्तर होता है-"सभी खर्च तो वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ ? यही जोड़-गाँठ करते-करते बूढ़ी हो गयी, न मन का पहना, न ओढ़ा।"

गजाधर बाबू की पत्नी के माध्यम से कहानीकार एक आदर्श नारी का चित्र प्रस्तुत कर सका है। अपार वेदनाओं को सहन करने की उसमें असीम क्षमता है। गजाधर बाबू कहते हैं-"तुम्हें किस बात की कमी है अमर की माँ -घर में बहू है, लड़के-बच्चे हैं, सिर्फ रुपये से आदमी अमीर नहीं होता।" उनकी पत्नी प्रत्युत्तर में कहती है-"हाँ बड़ा सुख है न बहू से ! आज रसोई करने गयी है, देखो क्या होता है ?"

गजाधर बाबू की पत्नी में ग हस्थी चलाने की असीम शक्ति निहित है। इतने बड़े शहर में वह भरी-पूरी ग हस्थी को लिए पड़ी है। वह नहीं चाहती कि गजाधर बाबू के साथ नौकरी पर जाये। अपनी संतान से अधिक मोह रखने के कारण वह अपने पति का भी विरोध करने लगती है। वह अपने लड़के नरेन्द्र एवं बसन्ती पर कोई अंकुश नहीं रखती।

अमर कम महत्व का पात्र है। वह युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह गजाधर बाबू के नियंत्रण से मुक्त होना चाहता है। यही नहीं उसकी उपस्थिति में वह अपने मित्रों का भी उचित आतिथ्य नहीं कर पाता। अतः उसमें विद्रोही एवं असंतोष सा दिखाई देता है। यही नहीं वह अब अलग रहने की सोचता है। गजाधर बाबू ने बहुत धीरे से अपनी पत्नी से कहा, "अमर से कहो जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं है।" जब उसे ज्ञात होता है कि बाबू जी ने नौकर छुड़ा दिया है तो अमर को बहुत घ णा होती है। वह अपनी घ णा इस प्रकार व्यक्त करता है-"बूढ़े आदमी हैं," अमर भुनभुनाया, "चुपचाप पड़े रहो। हर चीज में दखल क्यों देते हो।"

बसन्ती, अमर की बहू और नरेन्द्र तीनों ही युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। गजाधर बाबू का उनसे कोई मेल नहीं खाता।

3 **कथोपकथन (संवाद)** -

कथोपकथन कहानी का आवश्यक तत्त्व है। उषा प्रियंवदा संवाद विधान में अत्यन्त कुशल हैं। उषा जी के संवाद संक्षिप्त, सरल एवं सजीव हैं। सम्पूर्ण कहानी में गजाधर बाबू के नैराश्यपूर्ण जीवन एवं युवा पीढ़ी के विद्रोह से चिन्ताग्रस्त विचारों का दिग्दर्शन उन्होंने अति कौशलता से कराया है। इस कहानी में गजाधर बाबू की करुण जीवन-गाथा एक आत्मकथा के ही रूप में प्रस्तुत की गयी है। सभी संवाद उच्च संवाद-शिल्प से युक्त हैं। यथा-

"कभी-कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहियेगा।" गनेशी बिस्तर से रस्सी बाँधता हुआ बोला।

"कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना, गनेशी। इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।"

गनेशी ने अंगोछे के छोर से आँखें पोंछी, "अब आप लोग सहारा न देंगे, तो कौन देगा। आप वहाँ रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।"

गजाधर बाबू ने एक घूँट चाय पी,फिर कहा, "बेटी चाय तो फीकी है।"

"लाइए, चीनी और डाल दूँ," बसन्ती बोली।

"रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आयेगी, तभी पी लूँगा।" निराश भाव से वह कहते हैं।

पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, "अरे, आप अकेले बैठे हैं-ये सब कहाँ गये ?" गजाधर बाबू के मन में फाँस सी कसक उठी, "अपने अपने काम में लग गये हैं, आखिर बच्चे ही तो हैं।"

4. **वातावरण (देशकाल)** -

प्रस्तुत कहानी वर्तमान युग एवं प्राचीन युग का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। इसमें गजाधर बाबू व द्ध पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते है। उनकी पत्नी, बसन्ती, अमर और अमर की बहू युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार इनके चित्र एवं संवादों के माध्यम से वर्तमान युग की परिस्थितियाँ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होती हैं। वर्तमान पीढ़ी में विद्रोह-भाव एवं

असन्तोष है। युवा पीढ़ी व द्धों के नियंत्रण से मुक्त रहना चाहती है। यही नहीं, कहानीकार का लक्ष्य ही इस भावना का चित्रण करने का है। इस प्रकार 'वापसी' कहानी देशकाल एवं वातावरण को प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल है।

5. **भाषा-शैली** -

उषा प्रियंवदा का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उन्होंने प्रस्तुत कहानी में सरल, सुबोध एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। कहानी अधिकांशतः बोल-चाल की भाषा में लिखी गयी है। इसमें उर्दू एवं अंग्रेजी तक के प्रचलित शब्दों का उन्मुक्तता से प्रयोग हुआ है। लबालब, नाश्ता, जिम्मेदारी, शऊर, लिहाज, फीकी और खातिर आदि उर्दू के शब्द हैं। अंग्रेजी के अनेक प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है, यथा-रेलवे क्वार्टर, रिटायर, फिल्म, पैसेन्जर, लेट, कॉलेज, बक्स, सैट, कुशन आदि। इसके अतिरिक्त मनोविनोद स्निग्ध, कुण्ठित, अर्ध्य, स्तुति, आन्तरिक अभिव्यक्ति, लावण्यमयी, अपरिचिता, श्रीहीन और निमित्तमात्र आदि साहित्यिक महत्त्व के शब्दों का भी अधिक मात्रा में प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार कहानीकार की भाषा-शैली सर्वथा साहित्यिक सौष्ठव लिए हुए है। उसमें सरसता एवं उत्कृष्टता दोनों ही विद्यमान हैं।

'वापसी' कहानी की शैली सर्वथा वर्णनात्मक है। सभी कुछ कहानीकार के द्वारा वर्णित है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ द ष्टव्य हैं-

इतने सब निश्चयों के बावजूद भी गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभाव अनुसार नौकर की शिकायत कर रही थी। "कितना भारी कामचोर है, बाजार की हर चीज में पैसा बनाता है। खाने बैठता है तो खाता ही चला जाता है।"

प्रारम्भ से अन्त तक कहानी में वर्णन की प्रधानता है। ऐसी शैली को ऐतिहासिक या इतिव त्तात्मक शैली कहते हैं।

संक्षेप में 'वापसी कहानी उषा प्रियंवदा की कहानी शिल्प की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। कहानीकार के अन्तर में बैठा वर्ग-संघर्ष जीवन के यथार्थ परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। कहानी में परिसंवाद का अभाव तो है, किन्तु अन्य सभी तत्त्वों को पर्याप्त अवकाश मिला है। सभी तत्त्वों में वातावरण-चित्रण तथा उद्देश्य को अधिक उन्मेष मिला हैं कथावस्तु, शब्द-चित्र रचना के सहारे नीरस नहीं होने पायी है।

6. **उद्देश्य** -

उषा प्रियंवदा सामाजिक कहानीकार हैं। वे समाज की कुरुपताओं, दुर्बलताओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करने में व्यस्त हैं। प्रस्तुत कहानी भी सामाजिक व्यवस्था एवं व द्ध वर्ब के संघर्ष का मार्मिक चित्र उपस्थित करने में समर्थ सिद्ध हुई है। गजाधर बाबू एक असहाय व द्ध हैं जो आर्थिक विषमता में ग्रस्त हैं। वे 35 वर्ष एकाकी जीवन व्यतीत करने के बाद घर आते हैं। इस कहानी का प्रमुख उद्देश्य युवा वर्ग में व्याप्त विद्रोह एवं असंतोष का वर्णन मात्र है। नरेन्द्र, बसन्ती और अमर विद्रोह-भाव रखने वाले और नियंत्रण-मुक्ति के प्रमुख साक्षी हैं। यह कहानी भारतीय परिवार की आर्थिक प ष्ठभूमि में विवशता को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गजाधर बाबू मन मसोस कर सभी फिजूल खर्ची को सहन करते हैं। कहानीकार इस संदर्भ में उत्पन्न परिस्थितियों द्वारा सब कुछ स्पष्ट कर देता है। 'वापसी' कहानी भारतीय नारी की वस्तुस्थिति का चित्रण प्रस्तुत करती है। उसके जीवन में अच्छा पहनना ओढ़ना नहीं लिखा है। जोड़-गाँठ कर किसी प्रकार वह अपना जीवनयापन करती है। कहानीकार गजाधर बाबू द्वारा अनुभवी पीढ़ी का चित्रण कर युवा पीढ़ी पर बड़ी चोट करता है। यहां नरेन्द्र, बसन्ती तीनों ही परम्परागत रूढ़ियों का उल्लंघन करते हैं। यही नहीं, उनके द्वारा कहानीकार भावी पीढ़ी का स्वरूप भी प्रस्तुत कर सका है। गजाधर बाबू की पत्नी में कुछ धार्मिक प्रव त्ति का भी चित्रण किया गया है। मनोरंजन और जन-कल्याण की प्रेरणा गौण रूप से कहानी के उद्देश्य हैं।

## प्रष्टव्य

1. कहानी-कला की द ष्टि से 'वापसी' कहानी का मूल्यांकन कीजिये।
2. 'वापसी' कहानी के गुण-दोषों का विवेचन कीजिये।
3. कहानी-कला के तत्त्वों के आधार पर 'वापसी' कहानी की आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए स्पष्ट कीजिये कि यह कहानी पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने और नये मूल्यों के बनने की कथा है।

# I. कहानी-सार

हिन्दी की महिला कहानीकारों में उषा प्रियंवदा शीर्षस्थ स्थान की अधिकारी है, क्योंकि उन्होंने अपनी कहानियों में आधुनिक मूल्यबोध, जीवन-मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों में रिक्तता व शून्यता तथा विश ंखलता व अकेलेपन की पीड़ा अभिव्यक्त की है। 'वापसी' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है जिसमें सेवानिव त्त व्यक्ति की मानसिकता का चित्रण हुआ है। गजाधरबाबू ने जीवन-भर कठोर परिश्रम करके, परिवार से दूर रहकर, छोटे-छोटे स्टेशनों पर नौकरी करके बालकों को सुख-सुविधाएं प्रदान करने के लिए शहर में अपना पक्का मकान बना लिया था। आज वे सेवानिव त्त होकर अपने घर जा रहे हैं तथा सामान समेटने में लगे हुए हैं। उसने साथ ले जाने वाले सामान पर नजर डाल तो उसमें दो बक्स, एक डोलची और एक बाल्टी थी तथा एक डिब्बा था। डिब्बे के बारे में पूछने पर गणेशी ने बताया कि घरवाली ने कुछ बेसन के लड्डू आपके लिए बनाकर दिए हैं। घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू के मन में एक विषाद-व्यथा और पीड़ा व्याप्त थी, क्योंकि एक परिचित-स्नेहमय और आदरमय संसार से उसका सम्बन्ध टूट रहा था। चलते-चलते उन्होंने गणेशी को हिदायत दी कि कोई आवश्यकता हो तो जरूर लिखना और इस अगहन तक बिटिया की शादी जरूर कर देना। पैंतीस साल तक नौकरी करके उन्होंने अपने पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति निष्ठापूर्वक की थी। अधिकतर वे स्टेशनों पर अकेले ही रहे थे तथा शहर में बच्चों को ऊंची शिक्षा दिलवाई, पक्का मकान बनवाया और अमर-कान्ति की शादियां भी कर दी थी। वे स्वभाव से बहुत स्नेहिल व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी थे। जब गजाधर बाबू के बाल-बच्चे उनके साथ रहते थे तो वे उनके साथ हँसते-खेलते, पत्नी के साथ हास्य-विनोद व चुहलबाजी करते। उन्हें बार-बार पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आती कि किस प्रकार गर्मी में वह दो बजे तक आग सुलगा कर रखती और आने पर ही गर्म-गर्म रोटियां बनाकर देती थी। गजाधर बाबू उन छोटी-छोटी बातों को स्मरण करके उदास हो जाते थे, लेकिन इतने लम्बे अन्तराल के बाद आज वे फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने के लिए जा रहे हैं। गजाधर बाबू ने घर पहुंचकर टोपी उतारकर चारपाई पर रख दी और जूते उसके नीचे खिसका दिये। रविवार का दिन था तथा बाल-बच्चे अन्दर कमरे में बैठे नाश्ता कर रहे थे और उनके कहकहों की आवाजें बाहर आ रही थीं। हँसी-खुशी की आवाज को सुनकर उनके सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान आ गई। वे मुस्कराते हुए बिना खांसे या वातावरण निर्मित किए अन्दर चले गये। नरेन्द्र किसी न त्य की नकल मटक-मटककर कर रहा था, बसन्ती हँस-हँस कर दोहरी हो रही थी और अमर की बहू भी वस्त्रों की सुध-बुध भुलाकर उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। लेकिन बाबू जी के प्रवेश करते ही वे सब सकपका गए और चुप बैठ गए तथा फिर वहां से चुपचाप खिसक गए। गजाधर बाबू उनके मनोविनोद में हिस्सा लेना चाहते थे, परन्तु उनके आते ही वे सब वहां से खिसक लिए तथा वे वहां अकेले रह गए। इससे उनके मन में खिन्नता उपज आई और अकेलेपन फालतूपन का भाव उत्पन्न हो गया। तभी गजाधर बाबू की पत्नी पूजा-पाठ करके वहां आई और आते ही शिकायत करने लगी कि इस घर में धर्म-कर्म नहीं है तथा पूजा-पाठ से सीधे चौके में घुसना पड़ता है जहां जूठे बर्तनों का ढेर लगा हुआ है। वह स्पष्ट करती है कि वह सुबह से लेकर सायंकाल तक चूल्हे-चौके में लगी रहती है। गजाधर बाबू बेटी बसन्ती और अमर की बहू को आदेश देते हैं कि सुबह का खाना तुम्हारी भाभी और सायंकाल का बसंती बनाया करेगी। लेकिन दोनों ही अनमने भाव से खाना बनाती थी और अस्वादु भोजन बनाने पर नरेन्द्र और बसन्ती में वाद-विवाद होता है तथा नरेन्द्र के कहने पर कि तुमने खाना क्यों बनाया तो वह कहती है कि बाबूजी ने कहा था। नरेन्द्र व्यंग्यात्मक लहजे में कहता है कि बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है। इसी प्रकार अमर की बहू खाना बनाती है तो वह एक दिन में ही पन्द्रह दिन का राशन लगा देती है और रसोई खुली छोड़ देती है जिससे बिल्ली आकर दाल की पतीली गिरा देती है। इस प्रकार घर के सभी सदस्य गजाधर बाबू को अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं। बसन्त पड़ौस में शीला के घर जाती है जहां घर में बड़े-बड़े लड़के हैं। उसकी माँ के कहने पर बाबूजी उसे बसन्ती के घर जाने से रोकते हैं जिससे बसन्ती मुंह लपेटकर पड़ जाती है, खाना नहीं खाती तथा न किसी से बोलती है और बाबूजी से भी रूठ जाती है। गजाधर बाबू को बहुत गुस्सा आता है कि वह छोटी-सी बात पर अपने पिताजी से रूठ जाती है। इसी प्रकार गजाधर बाबू सारा दिन घर में रहते हैं तथा उनकी चारपाई ड्राईंग रूम में कुर्सियां पीछे हटाकर अस्थायी रूप से लगायी जाती है। उन्हें समय पर प्रातराश नहीं मिलता है तथा चाय में चीनी कम डाली जाती है। उन्हें बार-बार गणेशी की मलाईदार-तीन चम्मच चीनी वाली चाय, पूरियां व जलेबियों का स्मरण आता है। वे उस कमरे में पड़े-पड़े अस्थायित्व का अनुभव करते हैं और उन्हें स्टेशन पर अपने खुले क्वार्टर की याद आती है। अमर की माँ उनको बताती है कि अमर अलग होना चाहता है, क्योंकि पहले उनके मित्र घर में आया करते थे और सारा दिन ड्राईंग रूम में बैठकर गप्पें लड़ाया करते थे, लेकिन अब ड्राईंग रूम में सारा दिन गजाधर बाबू पड़े रहते हैं, इसलिए वे आ नही सकते। गजाधर बाबू ने

अपने पत्नी को कहा-जल्दी करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार गजाधर बाबू की पत्नी ने नौकर की शिकायत की कि वह सामान में पैसा बनाता है तथा खाना भी अत्यधिक मात्रा में खाता है। बच्चों की माँ के कहने पर ही गजाधर बाबू नौकर को हटा देते हैं, जिससे सारे बाल-बच्चे, उनके इस कार्य का विरोध करते हैं। अमर इस कार्य की आलोचना करते हुए कहता है-"बूढ़े आदमी हैं, चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं।" इसी प्रकार बसन्ती भी स्पष्ट कहती है कि कालिज में भी जाओ और आकर झाड़ू-पोछा करो-यह मेरे से नहीं होगा। इस प्रकार पत्नी के शिकायती स्वभाव जिसमें स्नेह व आत्मीयता का लेशमात्र भी न था, के कारण गजाधर बाबू का मन व्यथित हो उठा। उन्हे पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें रोमांचित कर डालती थी और अब पत्नी की बातों में स्नेह व आत्मीयता का अभाव था और शिकायती लहजा अधिक था। लेखिका ने गजाधर बाबू की पत्नी के प्रति भावों का चित्रांकन इस प्रकार से किया है-"यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था ? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचित है। गाढ़ी नींद में डूबी उसकी पत्नी का भारी-सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और सूखा था।" गजाधर बाबू को लगा कि उनके साथ धोखा हुआ है और बाद में उनकी चारपाई ड्राईंग रूप से निकालकर अन्दर की कोठरी में डाल दी जहां अचार, रजाइयों और कनस्तरों के ढेर लगे हुए थे तथा एक तरफ रस्सी के ऊपर मैले-कुचैले अव्यवस्थित वस्त्र पड़े हुए थे। उन्हें लगा कि घर में उनकी चारपाई के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्हे बार-बार बड़ा खुला-सा क्वार्टर याद आता और वे मन मसोस कर रह जाते। लेखिका ने स्पष्ट लिखा है-"वह जीवन अब उन्हें एक खोयी हुई निधि-सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वे जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूंद भी न मिली।" इस प्रकार वे बाल-बच्चों व पत्नी की ओर से उपेक्षित, तिरस्कृत व असंतुष्ट थे। कितनी विडम्बना थी कि माँ अपनी संतान के प्रति समर्पित, परन्तु पति की उपेक्षा करती है। इस प्रकार गजाधर बाबू परिवार में अकेलेपन-फालतूपन व अजनबीपन के भाव से युक्त हो जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि वे तो केवल बच्चों व पत्नी के लिए धन कमाने की मशीन हैं और उनकी पत्नी भी चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि उसे भी पति के प्रति कोई आत्मीयता-लगाव व अपनापन नहीं है। इसलिए वे सोचते हैं कि वे इस परिवार के केन्द्रबिन्दु नहीं हैं। इसीलिए गजाधर बाबू इस अलगाववादी और अजनबी परिवेश से निकलनें हेतु सेठ रामजीलाल की चीनी मिल में नौकरी कर लेते है। वे पत्नी को भी ले जाना चाहते हैं, परन्तु वह इन्कार कर देती है। गजाधर बाबू के जाते ही घर के सभी सदस्य प्रसन्नचित्त हो जाते हैं, क्योंकि उनकी मनमानी व स्वतंत्रता लौट आई है। बसन्ती तथा अमर की बहू सिनेमा देखने की इच्छा व्यक्त करती हैं और माँ नरेन्द्र से कहकर उनकी चारपाई को बाहर निकलवाती है, क्योंकि उसमें पैर फैलाने की जगह नहीं है। इस प्रकार 'वापसी' कहानी में जीवन-मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों में रिक्तता, शून्यता व जड़ता, अकेलेपन व अजनबीपन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है।

## II. चरित्र-चित्रण

### (क) गजाधर बाबू

सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका सुश्री उषा प्रियंवदा का महिला कहानीकारों में अग्रगण्य स्थान है तथा उनकी कहानियों के कथ्य में पर्याप्त वैविध्य है और उसके आधुनिक जीवन-बोध के विविधमुखी आयाम हैं। 'वापसी' कहानी में लेखिका ने जहां एक ओर सभ्यता एवं संस्कृति के अनेक नये आयामों को उजागर किया है, वहां जीवन-मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों का बिखराव एवं अजनबीपन तथा अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। गजाधर बाबू इस कहानी के केन्द्रीय पात्र एवं नायक हैं तथा सभी घटनाओं के मूल में विद्यमान हैं। वे ही पैतीस वर्ष दूर रहकर छोटे-छोटे स्टेशनों पर नौकरी करके जीवन-यापन करते हैं और बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने के लिए शहर में पक्का मकान बनवाते हैं। सेवानिव त्ति के बाद उनके मन में यह कामना उभरती है कि बाकी जीवन अब परिवार के साथ सुखपूर्वक रहेंगे, लेकिन उनकी मधुर कामनाओं पर तुषारापात हो जाता है। जब परिवार के सदस्य उन्हें फालतू और अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं। न पत्नी की उनके प्रति आत्मीयता है और न बाल-बच्चों के वे श्रद्धा के पात्र हैं। इसीलिये वे अपने आपको परिवार में मिसफिट पाते हैं, उपेक्षित तिरस्कृत व फालतू महसूस करते हैं। अन्य सभी पात्र-उनकी पत्नी, नरेन्द्र, अमर तथा अमर की बहू और बसन्ती आदि सभी उनके चरित्र को प्रकाशित करने की क्षमता से युक्त हैं। गजाधर बाबू कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहते हैं। कहानी का प्रारम्भ ही गजाधर

बाबू से होता है कि वे अपना सामान समेट रहे हैं, क्योंकि उनको अपने परिवार के पास जाना है और अन्त में वे ही रिक्शा में बैठकर सेठ रामजीलाल की मिल में नौकरी करने के लिए चल देते हैं। अतः कहानी के फलभोक्ता भी वहीं हैं, वे ही परिवार द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत हैं। इस प्रकार निर्विवाद रूप से गजाधर बाबू 'वापसी' कहानी के नायक सिद्ध होते हैं।

वैसे कहानीकार ने गजाधर बाबू के चरित्र-निर्माण में एक विशेष नाजुक-मिजाजी बरती है। वे लेखकीय टिप्पणियां प्रायः नहीं के बराबर करती हैं और पात्रों के प्रति भी कहीं भी अतिरिक्त सहानुभूति प्रदर्शित नहीं करती, बल्कि तटस्थता और निर्लिप्तता के साथ पात्र का चरित्र-चित्रण करती है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है-"स्वयं कहानी में भी अपनी ओर से गजाधर बाबू के प्रति सहानुभूति जगाने का कोई भाव नहीं है। यदि ऐसा हो गया होता तो कहानी शिथिल हो जाती है और उसमें वह सघनता न होती जो इसकी प्रमुख उपलब्धि है।" वैसे लेखिका ने प्रस्तुत कहानी में केवल गजाधर बाबू के व्यक्तित्व को ही प्रमुखता से चित्रित किया है।

कहानीकार ने गजाधर बाबू के रूप में एक रिटायर्ड व्यक्ति की मानसिकता, मनोदशा पर प्रकाश डाला है। वे जीवन-भर छोटे-छोटे स्टेशनों पर नौकरी करते रहे और बालकों को उच्च शिक्षा प्राप्त करवाने के लिए तथा सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं देने के लिए शहर में एक छोटा, पर पक्का मकान बनवा दिया। रिटायर होने पर उनके मन में परिवार के साथ सुखपूर्वक रहने की कामना जाग्रत होती है, परन्तु उनकी यह कामना धूल-धूसरित हो उठी है, जब उन्हें परिवार में फालतू व स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व माना जाता है। ग ह-स्वामी के गुरुत्तर भार से युक्त गजाधर बाबू को रहने के लिए कमरा नहीं मिल पाता और उनकी चारपाई ड्राईंग रूम में कुर्सियां पीछे हटाकर लगा दी जाती है। नरेन्द्र बसन्ती द्वारा अस्वादु भोजन बनाने पर उसको झिझकते हुए कहता है कि-"तुमसे खाना बनाने को किसने कहा था ? बाबूजी ने । बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है।" इसी प्रकार पत्नी के कहने पर वे बसन्ती को शीला के घर जाने से रोक देती है। इस पर बसन्ती मुंह लपेटे पड़ी रहती है और खाना भी नहीं खाती तथा पिताजी (गजाधर बाबू) से रूठी हुई है। वे उसको शीला के घर जाने से रोकते हुए कहते हैं-कहां जा रही हो ? पड़ोस में, शीला के घर। बसन्ती ने कहा। कोई जरूरत नहीं, अन्दर जाकर पढ़ो।

इसी पर पत्नी के कहने पर ही वे बसन्ती को शीला के घर जाने से रोकते हैं, क्योंकि -"बड़े-बड़े लड़के हैं इस घर में हर वक्त वहां घुसा रहना मुझे नहीं सुहाता। मना करूं तो सुनती नहीं।" लेकिन साथ ही जब बसन्ती को रोकते हैं तो पत्नी ही गजाधर बाबू को कहती है-"क्या कह दिया बसन्ती से ? शाम से मुंह लपेटे पड़ी है, खाना भी नहीं खाया।" इसी प्रकार पत्नी के ही कहने पर वे खाना बनाने का दायित्व भी पुत्री बसन्ती और उसकी भाभी के कन्धों पर डालते हैं। वे स्पष्ट आदेश देते हैं-"बसन्ती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएगी।" इसी प्रकार वे पत्नी की शिकायत पर कि नौकर कामचोर है तथा बाजार की हर चीज में पैसा बनाता है, खाने बैठता है तो खाता ही चला जाता है, को हटा देते हैं। इस पर घर के सभी सदस्य अपनी-अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। नरेन्द्र माँ से कहता है-"तुम बाबूजी से कहती क्यों नहीं ? बैठे-बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझे कि मैं साइकिल पर गेहूं रख कर आटा पिसाने जाऊंगा तो मुझसे यह नहीं होगा।" बसन्ती भी नौकर के हटाने का विरोध करते हुए कहती है-"मैं कालेज भी जाऊं और लौटकर घर में झाडू भी लगाऊं, यह मेरे बस की बात नहीं।" इसी प्रकार अमर भी कटाक्ष करते हुए कहता है-"बूढ़े आदमी हैं। चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं ?" इसी प्रकार गजाधर बाबू की पत्नी भी व्यंग्य करती हुई कहती है-"और कुछ नहीं सूझा, तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गयी तो पन्द्रह दिन का राशन पांच दिन में बनाकर रख दिया।" इसी प्रकार गजाधर बाबू का व्यवहार भी बालकों के प्रति स्नेहपूर्ण, आत्मीयता से युक्त नहीं है, बल्कि वे उन्हें एक डिक्टेटर की भाँति आदेश जारी करते हैं। इसी प्रकार घर के सदस्य उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्व मानते हैं और इसीलिए अमर परिवार से अलग होना चाहता है, क्योंकि उनकी शिकायतें हैं-"गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने-जाने वाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं।" तथा गजाधर बाबू भी कभी-कभी अमर को मौके-बेमौके टोक दिया करते थे। इस प्रकार 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू की स्थिति घर में फालतू, उपेक्षित, तिरस्कृत व्यक्ति की है। न तो पत्नी उनके प्रति आत्मीयता दिखाती है और न बालक श्रद्धा।

इतना अवश्य है कि गजाधर बाबू का व्यवहार भी बालकों के प्रति स्नेहिल न होकर रूखा ही है। वे कभी बसन्ती और उसकी भाभी को आदेश देते हैं तो कठोर लहजे में। वे एक डिक्टेटर व कठोर व्यक्ति की भांति आदेश देते हैं जिससे बालकों को उनमें पिता की छवि द ष्टिगोचर नहीं होती, बल्कि एक डिक्टेटर दिखाई देती है।

इसी प्रकार ग हस्वामी गजाधर बाबू, जो जीवन-भर कठोर परिश्रम करके बालकों को उच्च शिक्षा दिलवाने के लिए

शहर में एक पक्का मकान बनवाते हैं, परन्तु उसी घर में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। सेवानिव त्ति के बाद उनकी चारपाई ड्राईंग रूम में कुर्सियां पीछे हटाकर डाली जाती है और अन्ततः अम्मा की कोठरी में जहां चारों ओर अचार, रजाइयां और कनस्तर रखे हुए हैं। लेखिका का कहना है-"यदि ग हस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यही है तो यही पड़े रहेंगे। अगर कही और डाल दी तो वहां चले जायेंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं तो अपने ही घर में परदेशी की तरह रहेंगे।"

गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षा भी। जब परिवार उनके साथ था तो ड्यूटी से लौटकर बच्चों के साथ हँसते-बोलते और पत्नी के साथ मनोविनोद किया करते थे। इसी प्रकार नौकर गणेशी के साथ भी उनका व्यवहार अत्यन्त आत्मीयपूर्ण था। इसलिए वे अन्दर हँस रहे बच्चों के पास बिना वातावरण निर्मित किए चले जाते हैं। उनकी हँसी-खुशी में सम्मिलित होने के लिए वे अन्दर गए तो नरेन्द्र किसी न त्य की नकल कर रहा था और बसन्ती हँस-हँस कर दुहरा हो रही थी तथा अमर की बहू भी वस्त्रों से बेसुध होकर उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। लेखिका ने लिखा है -गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा-"क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी ? कुछ नहीं बाबूजी। नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा कि वे भी इस मनोविनोद में भाग लेते पर उनके आते ही जैसे सब कुंठित हो चुपहो गये। उससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आयी। बसन्ती को भी वे प्यार से समझाते हैं कि तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची। तुम हो, तुम्हारी भाभी है, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।" पत्नी की उपेक्षा और उदासीनता से भी गजाधर बाबू अत्यन्त व्याकुल एवं व्यथित थे। जबकि उन्हें पूर्व की पत्नी की बातों का स्मरण आता है तो वे रोमांचित हो उठते हैं। पत्नी का वह रूप उन्हें अत्यन्त मोहक और आकर्षक लगता है जब उन्हें वह प्यार और आग्रह से भोजन कराती थी, लेकिन अब वह उनके समक्ष सिर्फ शिकायतें ही करती है। गजाधर बाबू चटाई पर सोयी हुई पत्नी को देखकर चिन्तन-मनन करते हैं-"यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था ? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई है और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचित है। गाढ़ी नींद में डूबी उसकी पत्नी का भारी-सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और रूखा था" इसी प्रकार गणेशी को कहे गये थे, शायद उनके अपने इस नौकर के प्रति आत्मीयता व स्नेह भावना को ही उजागर करते हैं-"कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना गणेशी। इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।"

गणेशी ने अंगोछे के छोर से आँखें पोंछी-"अब आप लोग सहारा न देंगे तो कौन देगा ? आप यहां रहते तो शादी में कुछ हौंसला रहता।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गजाधर बाबू परम स्नेही व्यक्ति हैं और स्नेह के आकांक्षी हैं। वे पत्नी को स्पष्ट कहते हैं-"बहुत हल्के से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्च कम होना चाहिए।" सभी खर्च तो वाजिब-वाजिब है, किसका पेट काटूँ ? यही जोड़-गांठ करते-करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा। अब नायक गजाधर बाबू सरकारी सेवा से सेवानिव त्त हो गया है और आमदनी भी कम हो गई है, इसलिए वे परिवार के खर्चों में अधिक कटौती करते हैं। उनको हमेशा यह महसूस होता था कि उनके घर का खर्चा उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है तथा पत्नी की बात सुनकर भी उन्हें लगता है कि नौकर का खर्च बिल्कुल बेकार है। इसीलिए वे नौकर का हिसाब करके उसकी छुट्टी कर देते हैं, जिससे घर के सभी सदस्य उनसे नाराज हो जाते हैं, लेकिन वे इस मत के कट्टर पक्षधर हैं कि व्यक्ति को खर्च अपनी हैसियत के अनुसार ही करना चाहिए। इसी प्रकार कहानी 'वापसी' में गजाधर बाबू सहनशील और धैर्य की सजीव प्रतिमूर्ति के रूप में द ष्टिगोचर होते हैं। पुत्री बसन्ती रूठी हुई है, क्योंकि गजाधर बाबू ने उसको शीला के घर जाने से रोक दिया है। वह खाना नहीं खाती, मुंह लपेटे पड़ी है, पर न तो गजाधर बाबू उसे डांटते हैं और न क्रोध करते हैं। इसी प्रकार वे अपनी कोठरी में अंधेरे में लेटे घर के सभी सदस्यों की प्रतिक्रियाएं सुनते रहें, लेकिन न किसी को क्रोध करते हैं, न डांटते हैं, न डपटते हैं, परन्तु चुपचाप सहनशीलता और धैर्य के साथ अपरोक्ष रूप में सुनते रहे। कहानीकार का कहना है-"लेटे हुए वह घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी-सी झड़प, बाल्टी पर खुले नल की आवाज, रसोई के बर्तनों की खटपट आदि...कुछ देर में अपनी कोठरी में आई और बिजली जलायी तो गजाधर बाबू को लेटे देखकर बड़ी सिटपिटायी। गजाधर बाबू की मुख-मुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकी। वह चुप, आँखें बन्द किये लेटे रहे।"

गजाधर बाबू एक सफल पिता हैं तथा बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन निष्ठापूर्वक करते हैं। उनको उच्च शिक्षा

दिलवाने के लिए सभी सुख-सुविधाएं प्रदान करने के लिए शहर में एक पक्का मकान बनवाते हैं। कहानीकार ने लिखा है-"संसार की द ष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक पक्का मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अम्मा और लड़की कान्ति की शादियां कर दी थीं, दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे थे।" इसी प्रकार सेवानिव त्ति के बाद उन्हें बसन्ती के विवाह की चिन्ता सताती है तथा निश्चय कर लेते हैं कि बसन्ती की शादी जल्दी ही कर देनी है। अतः स्पष्ट है कि गजाधर बाबू एक सफल पिता हैं।

गजाधर बाबू समन्वयवादी व्यक्ति हैं। वे अचानक यह निश्चय कर लेते हैं कि अब घर की किसी बात कें दखल नहीं देंगे तथा यदि ग हस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर उनकी चारपाई और कहीं डाल दी तो वे वहीं चले जायेंगे। नरेन्द्र पैसे मांगने के लिए आता है तो चुपचाप उसे रुपए देते हैं। बसन्ती काफी अंधेरा हो जाने के बाद भी पड़ौस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। इसी प्रकार जब घर के सभी सदस्य उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं तो वे कहीं टकारते नहीं हैं, न किसी का विरोध करते, न किसी को क्रोध करते, बल्कि चुपचाप रामजी लाल के मिल में नौकरी करने के लिए चले जाते हैं। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है -"जीवन-भर परिवार को सुखी और व्यवस्थित करते रहने के लिए परिवार से दूर रहकर नौकरी करने वाला गजाधर बाबू रिटायर होने पर अपने परिवार के बीच, पत्नी-बच्चों के बीच शेष जीवन उल्लास के साथ बिताने और बेचैनी के साथ जब अपने सुखी-सम्पन्न घर में पहुंचते हैं तो अपने को मिसफिट पाते हैं।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गजाधर बाबू का 'वापसी' कहानी में विह्वलतापूर्ण अकेलापन, प्रत्येक सेवानिव त्त व्यक्ति का एवं आधुनिक जीवन का अकेलापन है। बच्चों को उनमें कहीं भी पिता की स्नेहपूर्ण छवि या हितचिन्तक या हितसाधक की द ष्टिगोचर नहीं होती। संयमी, धैर्यशाली व सहनशील की जीवन्त प्रतिमा गजाधर बाबू अन्ततः अपना रास्ता बदल लेते हैं और न किसी का विरोध करते हैं, न किसी से टकराते हैं और न आक्रोश प्रकट करते हैं। वे परम स्नेही और स्नेह के आकांक्षी व्यक्ति हैं।

## IV. उद्देश्य

महिला कहानीकारों में अग्रगण्य सुश्री उषा प्रियम्वदा की 'वापसी' कहानी में पारिवारिक सम्बन्धों में विश ंखलता, जीवन-मूल्यों का विघटन, अजनबीपन व अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है-"इसे केवल एक ही परिवार के विघटन की कथा नहीं मानना चाहिए। यह एक परिवार के माध्यम से आज के जीवन के अकेलेपन, पीढ़ियों के बीच उभरते तनाव और उसकी पीड़ा का संकेत है, जिसे संतुलन, तटस्थता और ईमानदारी से कहा गया है।" लेखिका ने व द्ध एवं युवा वर्ग के संघर्ष को बड़ी सफलता से चित्रित किया है तथा साथ ही उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व स्वीकारा है। जीवन-मूल्यों का हास तथा युवा वर्ग में व्याप्त विद्रोह-असन्तोष का चित्रण भी अत्यन्त मनोमुग्धकारी शैली में किया गया है। कहानी के शिल्प-विधान और कलात्मकता के बारे में श्री शरद देबड़ा का कहना है-"आपकी हर चीज नपी-तुली और खूब दक्षता से तराशी हुई होती है। आपके कथा के समस्त सूत्र आपके पात्र वातावरण के रंग में रंगे हुए यहां तक कि बातचीत का हर शब्द सब कुछ अपनी जगह पर एकदम सटीक है।"

'वापसी' कहानी के निम्प प्रतिपाद्य हैं-

1. व द्ध एवं युवा वर्ग का संघर्ष
2. सेवानिव् त्त व्यक्ति की मानसिकता व मनोदशा
3. जीवन-मूल्यों का विघटन
4. अजनबीपन व अकेलेपन की पीड़ा
5. रूढ़ियों पर कटु कटाक्ष

**1. व द्ध एवं युवा वर्ग के संघर्ष का चित्रांकन** -सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित कहानी 'वापसी' में व द्ध एवं युवा वर्ग के संघर्ष का मार्मिक चित्रांकन हुआ है। पूरी कहानी में दोनों पीढ़ियों के टकराहट की गूंज सर्वत्र स्पष्ट सुनाई देती है। गजाधर बाबू युवा वर्ग का सामीप्य चाहते हैं, जबकि युवा वर्ग उनसे बिद्कते हैं। नायक गजाधर बाबू बिना खांसे कमरे में अन्दर

चले जाते हैं जहां नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे किसी न त्य की नकल कर रहा है, बसन्ती हँस-हँसकर दुहरा हो रही है और अमर की बहू को अपने तन-बदन, आंचल या घूघट का होश न था और उन्मुक्त रूप से हँस रही थी, लेकिन वे सभी पात्र बसन्ती को छोड़कर वहां से चले जाते हैं। कहानी लेखिका ने लिखा है-"क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी ?" कुछ नहीं बाबूजी। नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए। उससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आयी। गजाधर बाबू बसन्ती और उसकी भाभी को खाना बनाने का आदेश देते हैं, परन्तु बसन्ती मुंह लटकाकर उत्तर देती है-"बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है।" लेकिन खाना बनाती है तो वह विरोध स्वरूप अस्वादु भोजन बनाती है और नरेन्द्र के साथ उसका वाद-विवाद होता है। नरेन्द्र थाली सरकारकर उठ खड़ा हुआ और बोला-"मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।"

बसन्ती तुनक कर बोली, "तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है ?"

"तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था ?" नरेन्द्र चिल्लाया।

बाबूजी ने।

बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है।

पत्नी स्पष्ट चाहती है कि इतनी बड़ी लड़की हो गई है और खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया। इसी प्रकार बसन्ती को गजाधर बाबू शीला के घर जाने से रोकते हैं तो वह विरोध स्वरूप खाना नहीं खाती, मुंह लपेटे पड़ी रहती है। इसी प्रकार अमर की बहू और अमर को उनसे बहुत ज्यादा शिकायतें हैं तथा विरोध स्वरूप वे अलग हो जाना चाहते हैं। उनका कहना है-"गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने-जाने वाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी छोटा-सा समझते थे और मौके-बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब-तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थी।" इसी प्रकार नौकर हटाने वाले प्रसंग में भी विरोध की गूंज या टकराहट का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। अमर की बहू बोली-"बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया है।"

क्यों ?

कहते हैं-खर्च बहुत है।

वार्तालाप अत्यन्त साधारण था, परन्तु जिस टोन में अमर की बहू ने कहा-गजाधर बाबू को वह बात खटक गई। इसी प्रकार नरेन्द्र भी गजाधर बाबू की आलोचना करते हुंए कहते हैं-"अम्मा, तुम बाबूजी से कहती क्यों नहीं ? बैठे-बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझे कि मैं साईकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊंगा तो मुझसे यह नहीं होगा।" इसी प्रकार बसन्ती भी बाबूजी के इस कार्य की आलोचना-विरोध करते हुए कहती है-"मैं कालिज भी जाांऊँ और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊं, यह मेरे बस की बात नहीं है।" इसी प्रकार अमर भी उनके इस कार्य का विरोध करते हुए कहता है-बूढे आदमी हैं। चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं।" इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत कहानी में व द्ध एवं युवा वर्ग की या दोनों पीढ़ियों के बीच टकराहट की गूंज सर्वत्र स्पष्ट सुनायी देती है।

2. **सेवानिव त्त व्यक्ति की मानसिकता व मनोदशा** - 'वापसी' कहानी में सुश्री प्रियम्वदा ने सरकारी सेवा से निव त्त होने वाले गजाधर बाबू की मानसिकता और मनोदशा का सजीव व मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने पैंतीस वर्ष तक बाल-बच्चों से दूर रहकर छोटे-छोटे स्टेशनों पर रहकर नौकरी की है। जीवन-भर परिवार से दूर रहकर बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने हेतु तथा उन्हें सुविधा दिलाने के लिए शहर में मकान बनवाते हैं और इसी आशा से सेवानिव त्त होकर घर जा रहे हैं कि बाकी जीवन उनका उल्लासमय और सुखपूर्वक परिवार के साथ बितायेंगें। कहानीकार का कहना है-"गजाधर बाबू बहुत खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे।" बच्चों से हँसना-खेलना तथा पत्नी से मनोविनोद करना उन्हें बड़ा अच्छा लगता था। वे स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी थे। रविवार का दिन था तथा बच्चे अन्दर कमरे में इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे तथा मनोविनोद में लीन थे। गजाधर बाबू बिना खांसे अन्दर चले गए और बच्चे सकपकाकर वहां से खिसक गए तथा गजाधर बाबू अकेले वहां रह गए। कहानीकार लिखती हैं-"गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए, उससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आयी।" पत्नी ने भी उनको अकेला बैठा देखकर कहा-"अरे ! आप अकले

बैठे हैं-वे सब कहाँ गए?" गजाधर बाबू के मन में फांस-सी कड़क उठी। अपने-अपने काम में लग गए हैं-आखिर बच्चे ही तो हैं। उन्हें समय पर नाश्ता नहीं मिलता और वे गणेशी को गरम-गरम पूरियां-जलेबी तथा पूरे ढाई चम्मच चीनी वाली गाढ़ी-मलाईदार चाय का स्मरण करते हैं। बच्चे उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं और घर के सभी सदस्य स्वार्थी हैं तथा अपने आप में लीन हैं। पत्नी भी बच्चों में ज्यादा लीन है और गजाधर बाबू के समक्ष शिकायत या खीझ ही प्रकट करती है। उसको घर में रहने के लिए समुचित स्थान नहीं मिल पाता। उनकी चारपाई ड्राईंग रूम की कुर्सियों को पीछे हटाकर अस्थायी रूप से व्यवस्था की जाती है। कहानीकार ने लिखा है-"घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े कभी-कभी अनायास ही इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती। उन रेलगाड़ियों की जो आती और थोड़ी देर रूककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जाती।" इसी प्रकार घर के सदस्य न तो उनके प्रति आत्मीयता रखते हैं और न श्रद्धा रखते हैं। अमर भी उनकी टोका-टोकी से व्यथित हो जाता है और अलग हो जाना चाहते हैं। पत्नी भी उन्हें स्पष्ट कहती है-"ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गये हैं, हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं, पढ़ा रहे हैं। शादी कर देंगे।" इस प्रकार नौकर निकालने वाले प्रसंग में भी घर के सदस्य उनका विरोध करते हैं। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है-"जीवन-भर परिवार को सुखी और व्यवस्थित करते रहने के लिए परिवार से दूर रहकर नौकरी करने वाला गजाधर बाबू रिटायर होने पर अपने परिवार के बीच, पत्नी, बच्चों के बीच शेष जीवन उल्लास के साथ बिताने और बेचैनी के साथ जब अपने सुखी-सम्पन्न घर में पहुंचते हैं और अपने को 'मिसफिट पाते हैं।" इस प्रकार गजाधर बाबू अपने घर में अजनबीपन महसूस करता है। वे स्वयं यह मानते हैं कि वे तो इस परिवार में पत्नी व बच्चों के लिए धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। परिवार में उन्हें अनचाही तथा अजनबी स्थिति का सामना करना पड़ता है और इस प्रकार भरे-पूरे परिवार में अलग-थलग पड़ जाते हैं। बालक भी उनकी टोका-टाकी से क्षुब्ध रहते हैं, पत्नी उनसे केवल अभावमय जीवन का रोना रोती है। इस प्रकार उन्हें अपना जीवन एक खोयी हुई निधि-सा लगता है। उन्हें लगा कि वे जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूंद भी नहीं मिली।" इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में सेवानिव त्त व्यक्ति गजाधर बाबू की मानसिकता-मनोदशा का मार्मिक चित्रण हुआ है।

3. **जीवन-मूल्यों का विघटन** - उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित 'वापसी' कहानी जीवन-मूल्यों का विघटन का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। ग हस्वामी गजाधर बाबू पिता के दायित्व कर्त्तव्य का निर्वाह भली-भाँति करता है। कान्ति व अमर की शादी करता है तथा बच्चों का उच्च शिक्षा दिलाने के लिए शहर में मकान बनवाता है और उन्हें सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं प्रदान करता है, जबकि वह पैंतीस वर्ष की कठोर साधना करके दूर-दूर छोटे-छोटे स्टेशनों पर नौकरी करता है, लेकिन पुत्र-पुत्री सभी अपने पिता के कार्यों का विरोध करते हैं, यथा-नौकर हटाने वाले प्रसंग में। ग हस्वामी की चारपाई डालने के लिए घर में यथोचित स्थान नहीं है। बसन्ती व उसकी भाभी को खाना बनाने का आदेश देने पर अच्छा भोजन न बनाना व सामग्री अधिक खर्च करना आदि। पत्नी भी उनके प्रति आत्मीयता नहीं रखती, बल्कि उनके समक्ष अपने अभावमय जीवन का दुःखड़ा रोती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुत्र, पुत्री का पिता के प्रति कोई आत्मीयता, सम्मान व श्रद्धा नहीं है तथा पत्नी को भी पति के प्रति कोई लगाव व सम्मान नहीं है। जीवन-मूल्यों का विघटन स्पष्ट रूप से 'वापसी' कहानी में द ष्टिगोचर होता है तथा नैतिक आदर्शों तथा परम्परागत मान्यताओं के प्रति धराशाही होने का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

4. **अजनबीपन व अकेलेपन की पीड़ा** - प्रस्तुत कहानी में अजनबीपन एवं अकेलेपन की पीड़ा भी अभिव्यक्त हुई है। गजाधर बाबू पूरी कहानी में अपने पुत्र-पुत्री व पत्नी के व्यवहार से अकलेपन-अजनबीपन के बोझ से संत्रस्त है। वह परिवार के सदस्यों से घुलना-मिलना चाहता है, परन्तु परिवार के सदस्य उसको देखते ही बिदकते हैं। उसके आदेशों की अवहेलना करते हैं और नौकर हटाने वाले प्रसंग में नरेन्द्र, अमर और अमर की बहू तथा बसन्ती तथा पत्नी भी विरोध करती है। वह अपने आपको इस वातावरण में 'मिसफिट' पाता है और बच्चों के व्यवहार से व्यथित और क्षुब्ध होकर सेठ रामजी लाल की मिल में नौकरी करने के लिए चले जाते हैं। घर में सभी सदस्य उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं तथा सभी उनके उपेक्षा-तिरस्कार करते हैं। इसी से वे अकेलेपन व अजनबीपन की पीड़ा से संत्रस्त हो उठते हैं। वे भरे-पूरे परिवार में अपने आपको अकेला-असहाय महसूस करते हैं। अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि ग हस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह नहीं है तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहां चले जायेंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए ही स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह रहेंगे।"

5. **रूढ़ियों पर कटु कटाक्ष** :- 'वापसी' कहानी में कहानी लेखिका ने रूढ़ियों-परम्पराओं पर कटु कटाक्ष किए हैं। पूजा-पाठ करती हुई गजाधर बाबू की पत्नी अपना ही रोना रोने लगती है-"इस घर में धरम-करम कुछ नहीं।" लेखिका नायक की पत्नी अशुद्ध उच्चारण का चित्रण करते हुए अर्ध्य देने के लिए जल के लोटे का वर्णन करते हुए उनकी अनुपयोगिता पर प्रकाश डालती है।

कहानीकार गजाधर बाबू की पत्नी के माध्यम से एक आदर्श नारी का चित्र प्रस्तुत करता है तथा उसमें अपार वेदनाओं को सहन करने की असीम शक्ति निहित है। यथा-"तुम्हें किस बात की कमी है, अमर की माँ घर में बहू है, लड़के-बच्चे हैं, सिर्फ रुपए से ही आदमी अमर नहीं होता।"

अतः स्पष्ट है कि 'वापसी' कहानी का प्रतिपाद्य व द्ध व युवा वर्ग में टकराहट तथा सेवानिव त्त व्यक्ति की मानसिकता व मनोदशा का चित्रण और जीवन-मूल्यों का विघटन का सुन्दर और सजीव चित्रण हुआ है।

निष्कर्ष रूप में **डॉक्टर नामवर सिंह** का कहना है-"गजाधर बाबू की वापसी पर किसी की आँखों में आंसू नहीं, एक विषाद की छाया है जो क्रमशः गहरी होती जाती है, केवल दया ही नहीं केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि जीवन के प्रति गहरा पीड़ा-बोध। इस रिटायर्ड आदमी का अकेलापन जैसे अपरिहार्य अकेलापन से निकलना चाहते हुए वह फिर उसे अकेलेपन में वापिस जाने के लिए लाचार हो जाता है और क्या यह अकेलापन एक गजाधर बाबू का ही है ? क्या ऐसा नहीं लगता कि यह अकेलापन बहुत व्यापक है, ऐसा अकेलापना जो कहीं न कहीं आज सबके अन्दर मौजूद है।" इसी प्रकार **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** ने उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-"'वापसी' कहानी में इसी पीड़ा जीवन-मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों की रिक्तता व बिखराव तथा अजनबीपन व अकेलेपन की पीड़ा का भाव-बोध के स्तर पर बड़े संयमित और तटस्थ कौशल से व्यक्त किया गया है।"

## व्याख्या

***1. "कवि प्रकृति न होने पर भी पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आती रहती हैं। दोपहर में गर्मी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए रहती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गर्म-गर्म रोटियाँ सेंकती-उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह थके-हारे बाहर से आते तो उनकी आहट पा वह रसोई के द्वार पर आ जाती और उनकी सलज्ज आँखें मुस्करा उठती। गजाधर बाबू को तब हर छोटी-सी बात भी याद आती और वह उदास हो उठते। अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था। जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।"***

**प्रसंग** -प्रस्तुत अवतरण महिला कहानीकारों में श्रेष्ठ, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में सेवानिव त्त व्यक्ति की मानसिकता, जीवन-मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों में रिक्तता व शून्यता तथा विश ंखलता, अजनबीपन और अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। गजाधर बाबू परिवार से दूर रहकर, छोटे-छोंटे स्टेशनों पर रहकर जीवनयापन करते हैं। बालकों के सम्यक् विकास हेतु वे पक्का मकान बनवाकर उन्हें शहर में रखते हैं। उनकी कामना थी कि वे सेवानिव त्त होने के बाद परिवार एवं बच्चों के मध्य रहेंगे। गजाधर बाबू बीते दिनों का स्मरण करते हैं कि उनकी पत्नी उनका बड़ा ध्यान रखती थी और उनको खाना भी विशेष आग्रह के साथ कराती थी।

**व्याख्या** - गजाधर बाबू रेलवे में स्टेशन मास्टर के पद पर कार्यरत थे और उनकी प्रकृति भी कवियों जैसी नहीं थी। क्योंकि वे कवियों जैसे संवेदनशील नहीं थे, परन्तु उन्हें कवियों के समान पत्नी की मधुर और स्नेहपूर्ण आत्मीयता से युक्त बातों का स्मरण हो आता था। दोपहर में गर्मी के मौसम में भी वह चूल्हें के समक्ष बैठकर गजाधर बाबू की प्रतीक्षा किया करती थी और उनके स्टेशन से वापिस आने पर ही वह गरम-गरम रोटियां बनाती थी। इस प्रकार वह प्रतिकूल मौसम में आग के समक्ष बैठकर ग हिणी के दायित्व-कर्त्तव्य का निर्वाह भली-भाँति किया करती थी। उनके खाना खा चुकने के बाद भी उनकी पत्नी थाली में कुछ न कुछ परोस दिया करती और खाने के लिए मधुरता व आत्मीयता से खाने का आग्रह करती। जब वे ड्यूटी से थक-हार कर आते तो वह उनका स्वागत करने के लिए जरा-सी आहट पाते ही रसोई से निकलकर दरवाजे पर आ जाती और उनकी लज्जा युक्त आँखें आत्मीयता व स्नेहपूर्ण तरीके से मुस्करा उठती। इस प्रकार गजाधर बाबू को ऐसी छोटी बातों का स्मरण हो उठता था तो वे अत्याधिक व्याकुल हो उठते थे। अब फिर ऐसा अवसर आ गया था कि वे सरकारी सेवा से सेवानिव त्त होने जा रहे हैं और कितने वर्षों बाद फिर वह अवसर आया है कि अब वे फिर उसी आत्मीयतापूर्ण, स्नेहिल व

आदरपूर्ण वातावरण में रहने के लिए जा रहे हैं। अनेक वर्षों की कठोर साधना के पश्चात् अब वे बाल-बच्चों के स्नेहिल वातावरण में जीवनयापन करने जा रहे हैं।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल वह सहज है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. गजाधर बाबू की मानसिकता का चित्रण किया गया है। अतीत की स्म तियाँ उन्हें अत्यन्त मनोरम व सुखद लगती हैं।

3. गजाधर बाबू के चरित्र को अभिव्यक्ति मिली है।

4. गजाधर बाबू के अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है।

5. परिवार के साथ सुखमय जीवन बिताने की कल्पना में गजाधर बाबू घर जाने की तैयारी में लीन है।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

***2. "थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्ध्य का लोटा लिए निकली और अशुद्ध स्तुति करते तुलसी में डाल दिया और उन्हें देखते ही बसन्ती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर को देखा और कहा-"अरे आप अकेले बैठे हैं। ये सब कहाँ गये ?" गजाधर बाबू ने मन में फाँस सी करके उठी, अपने-अपने काम में लग गए-आखिर बच्चे ही हैं।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण महिला कहानीकारों में अग्रगण्य, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने सेवानिव त्त व्यक्ति के अजनबीपन, फालतूपन और अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। लेखिका ने इस पीड़ा को बड़े संयमित और तटस्थ कौशल से स्पष्ट किया है। गजाधर बाबू सरकारी सेवा से रिटायर होकर इस कामना के साथ घर जाते हैं कि बाल-बच्चों के साथ बाकी जीवन स्नेह और आत्मीयता से जीवनयापन करेंगे, परन्तु उनकी कामनाएं धूल-धूसरित हो जाती हैं। जब घर के सदस्य उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक मानते हैं। रविवार के दिन नरेन्द्र-बसन्ती तथा अमर की बहू नाश्ता कर रहे हैं और मनोविनोद में लीन हैं तभी गजाधर बाबू के प्रवेश करने से सभी इधर-उधर हो जाते हैं। वे व्याकुल-व्यथित होकर वहीं बैठ जाते हैं कि तभी उनकी पत्नी प्रवेश करती है।

**व्याख्या** - गजाधर बाबू बिना वातावरण निर्माण किए अभिनय या न त्य करते नरेन्द्र, हँस-हँसकर दोहरी हो रही बसन्ती तथा वस्त्रों की सुध-बुध से अपरिचित अमर की बहू वाले कमरे में चले जाते, जिससे सभी वहां से चले जाते हैं। वे व्याकुल, व्यथित होकर वहीं बैठ जाते हैं तभी उनकी पत्नी हाथ में पवित्र जल का लोटा लेकर अन्दर से बाहर आती है और कुछ गलत उच्चारण करती हुई तुलसी के पौधे में अर्ध्य या शुद्ध जल डाल देती है। जब माताजी पूजा समापन करके बाहर चली तो उस कमरे में से जहाँ गजाधर बाबू बैठे हुये थे, बसन्ती भी अपने पिताजी को अकेला छोड़कर बाहर चली गई। तभी गजाधर बाबू की पत्नी ने आकर देखा कि वे वहां अकेले बैठे हैं और कहा कि अरे आप यहां अकेले बैठे हुए हैं जबकि यहाँ बच्चे बैठे थे, वे सब कहाँ चले गए ? वास्तव में परिवार के सदस्य गजाधर बाबू को अपनी स्वतन्त्रता में बाधक तत्त्व स्वीकारते थे। यह सुनकर गजाधर बाबू के मन में एक प्रकार की कसक-पीड़ा व्याप्त हो गई और पत्नी के शब्द उसके हृदय में फांस की तरह चुभ गई। तभी वे संयमित होकर बोले कि अपने-अपने काम में लग गए होंगे और फिर आखिर बच्चे ही तो हैं। वे अपने बीच में गजाधर बाबू की उपस्थिति को रुचिकर नहीं स्वीकारते, क्योंकि फिर वे सहज रूप से अपने भावों की अभिव्यक्ति नहीं कर पाते।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। लेखिका ने आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त की है।

2. बच्चों की गजाधर बाबू के प्रति विरक्ति और गजाधर बाबू की आत्मीयता द ष्टिगोचर होती है।

3. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

4. शैली में व्यंग्यात्मकता का समावेश हुआ है।

5. अप्रत्यक्ष रूप में गजाधर बाबू के चरित्र को अभिव्यक्ति मिली है।

6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***3. "घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थाई प्रबन्ध कर दिया जाता है। उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों की दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े कभी-कभी अनायास ही इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती उन रेलगाड़ियों की, जो आतीं और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जातीं।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित 'वापसी' से अवतरित है। लेखिका ने यथार्थवाद का आश्रय लेकर पारिवारिक जीवन-मूल्यों में विघटन, सम्बन्धों में आई रिक्तता, शून्यता तथा जड़ता आदि का बड़ी ही मनोमुग्धकारी चित्रण किया है। गजाधर बाबू पैंतीस वर्ष तक छोटे-छोटे स्टेशनों पर नौकरी करके जीवनयापन करते हैं और बालकों को समुचित सुविधा प्रदान करते हैं। सेवानिव त्त होने के बाद इस कामना के साथ पहुंचते है कि बच्चो-परिवार के साथ रहकर सुखपूर्वक रहेंगे, परन्तु वे वहां अपने को मिसफिट पाते हैं। बाल-बच्चे उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं तथा ग हस्वामी जो पक्का मकान बनवाता है, परन्तु उसे रहने के लिए घर में स्थान नहीं मिलता। लेखिका ने गजाधर बाबू के तिरस्कृत-उपेक्षित जीवन का चित्रांकन इस प्रकार से किया है-

**व्याख्या** - कितनी बड़ी भारी विडम्बना है कि ग हस्वामी गजाधर बाबू कठोर परिश्रम करके शहर में पक्का मकान बनवाते हैं, परन्तु उसको ही रहने के लिए मकान में ही स्थान नहीं मिलता। जिस प्रकार से किसी मेहमान के आ जाने पर उसके सोने के लिए अस्थायी व्यवस्था करते हैं, ठीक इसी प्रकार से गजाधर बाबू के लिए ड्राईंग रूम में कुर्सियां पीछे हटाकर उनकी चारपाई डाली जाती है। घर में ऐसा कोई कमरा नहीं है जहां गजाधर बाबू के लिए कोई स्थान हो। उनके लिए तो अस्थाई व्यवस्था कर दी गई थी। गजाधर बाबू उस ड्राईंग रूम में पड़े-पड़े अपनी अस्थायी व्यवस्था के बारे में चिन्तन करते। जिस प्रकार स्टेशन पर आने-जाने वाली गाड़ियों के लिए अस्थायी व्यवस्था की जाती है, उसी प्रकार गजाधर बाबू के लिए घर में अस्थायी इंतजाम किया जाता है। उन्हें यह अनुभूति होती है कि वे इस घर में एक मेहमान की भाँति है। उन्हें बड़ा कष्ट होता है कि ग हस्वामी जिसने यह पक्का मकान बनवाया है, उसको ही रहने के लिए जगह नहीं है। वे सोचते हैं कि जिस प्रकार स्टेशन पर गाड़ी के लिए अस्थायी व्यवस्था करके खड़ा कर देते हैं, क्योंकि उसको और कहीं जाना होता है।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है। आम सहज की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. ग हस्वामी की स्थिति एक मेहमान की भांति है-उसकी इस स्थिति का चित्रण हुआ है।

3. गजाधर बाबू के चरित्र को अभिव्यक्ति मिली है।

4. जीवन के आध्यात्मिक तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि जगत तो आत्मा का अस्थायी आवास है, उसका स्थायी आवास तो प्रभु के श्रीचरणों में है।

5. पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग हुआ है।

***4. "यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की यादों में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था ? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी शरीर बहुत बेडौल और कुरुप लग रहा था। चेहरा श्रीहीन और रुखा था।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण हिन्दी की श्रेष्ठ लेखिका व प्रसिद्ध कहानीकार, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में पारिवारिक जीवन-मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों में आयी रिक्तता, शून्यता व जड़ता तथा सेवानिव त्त व्यक्ति का अकेलेपन-अजनबीपन को व्यक्त किया गया है। पैंतीस साल तक छोटे-छोंटे, गांव में रहकर गजाधर बाबू सेवानिव त्त होकर घर इस कामना से आते हैं कि अब उनका जीवन बच्चों के साथ स्नेहिल व सुखद वातावरण में गुजरेगा, लेकिन उनकी लालसाओं पर तुषारापात हो जाता है, जब वे अपने आपको उस वातावरण में मिसफिट पाते हैं और परिवार के सदस्य भी उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं। उनकी पत्नी भी उन्हें अतीत वाली आत्मीयता प्रदान नहीं करती, बल्कि उनके समक्ष पारिवारिक जीवन के अभाव, कष्टों व दुःखों का दुःखड़ा रोना रोती रहती है। पत्नी बैठक में चटाई पर आकर सो जाती है, पत्नी को देखकर गजाधर बाबू चिन्तन करते हैं।

**व्याख्या** - गजाधर बाबू चिन्तन करते हैं कि यही वह पत्नी जो उनके समक्ष अभावमय जीवन का रोना रोती है, बच्चों

की शिकायतें बताती है और नौकर की अकर्मण्यता पर चिन्तन करती है। नायक गजाधर बाबू सोचते हैं कि क्या यही वह पत्नी है जिसके हाथों के कोमल स्पर्श हेतु, जिसकी मधुर मुस्कानों की स्म ति में उन्होंने घर से दूर रहकर इन मधुर स्म तियों में पैंतीस साल छोटे-छोटे स्टेशनों पर काट दिये थे, क्योंकि गजाधर बाबू स्नेहिल व्यक्ति हैं और स्नेह के आकांक्षी हैं तथा पत्नी की मधुर स्म तियों में उन्होंने अपना यौवन काट दिया तथा न कभी शिकायत की, न खीझ और न उपालम्भ। लेकिन जब गजाधर बाबू यहां आ गए तो पत्नी घर-परिवार में इतनी व्यस्त है कि वह नायक से आत्मीयतापूर्ण व्यवहार नहीं करती, केवल उनके समक्ष अभाव, शिकायत आदि ही प्रस्तुत करती है। उनको लगता है कि उसके स्वभाव में परिवर्तन आ गया है। वे सोचते हैं कि क्या यही वह पत्नी है जिसके हाथों के कोमल स्पर्श हेतु, जिसकी मधुर मुस्कानों की स्म ति में उन्होंने घर से दूर रहकर इन मधुर स्म तियों में पैंतीस साल छोटे-छोटे स्टेशनों पर काट दिए थे, क्योंकि गजाधर बाबू स्नेहिल व्यक्ति हैं और स्नेह के आकांक्षी हैं तथा पत्नी की मधुर स्म तियों में उन्होंने अपना यौवन काट दिया तथा न कभी शिकायत की, न खीझ और उपालम्भ। लेकिन जब गजाधर बाबू यहां आ गए तो पत्नी घर-परिवार में इतनी व्यस्त है कि वह नायक से आत्मीयतापूर्ण व्यवहार नहीं करती, केवल उनके समक्ष अभाव, शिकायत आदि ही प्रस्तुत करती है। उनको लगता है कि उसके स्वभाव में परिवर्तन आ गया है। वे सोचते हैं कि उनकी सुन्दर-आकर्षक व नवयुवा पत्नी कहीं भटक गई है, जीवन के भीषण संघर्षों में कहीं खो गई है और उसके स्थान पर यह जो नारी है-भद्दी, मोटी, भारी-भरकम, बेडौल शरीर वाली-उसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। वह मेरे मन और प्राणों के लिए सर्वथा अपरिचित है तथा उसके मन प्राणों के साथ कोई जुड़ाव नहीं, आत्मीयता नहीं है। गाढ़ी निद्रा में लीन, गजाधर बाबू को अपनी पत्नी का भारी-भरकम शरीर बेडौल व भद्दा लगता है तथा चेहरा भी कान्तिहीन, निष्प्रभ और श्रीहीन-रुखा-सूखा-सा लगता है। जीवन के लम्बे अन्तराल में पति की इच्छाओं के अनुरूप कार्य करने और उनको सुख पहुंचाने तथा ह्रदय को प्रसन्न रखने की बात उसने भुला दी है। अब उनको अपनी पत्नी में पहली वाली स्नेह व आत्मीयतापूर्ण छवि द ष्टिगोचर नहीं होती। पत्नी के इस परिवर्तन पर गजाधर बाबू सोचने के लिए विवश हैं और उन्हें अपनी पत्नी विद्रुप लगने लगी।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सहज तथा सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. सेवानिव त्त व्यक्ति की मानसिकता का सजीव चित्रण हुआ है।

3. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

4. तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

5. गजाधर बाबू के चरित्र को अभिव्यक्ति मिली है।

6. यौवनावस्था में गजाधर बाबू की पत्नी के प्रति गहरी आत्मीयता एवं आसक्ति थी, लेकिन अब उसके स्वभाव में परिवर्तन आ गया है, इसलिए उन्हें विद्रुप प्रतीत होने लगी।

*5.* ***"निश्चिंत जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल-पहल, चिर-परिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट-खट जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह था। तूफान व डाक गाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजी लाल के मिल के कुछ लोग कभी-कभी पास आ बैठते, वहीं उनका दायरा था, वहीं उनके साथी। वह जीवन भर उन्हें एक खोयी निधि-सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से एक बूँद भी न मिली।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में पारिवारिक जीवन-मूल्यों में विघटन, सम्बन्धों में आयी रिक्तता, शून्यता व निर्जीवता आदि का चित्रण किया है। सेवानिव त्त होने के बाद गजाधर बाबू इस कामना के साथ घर पहुंचते हैं कि अब वे बाकी जीवन परिवार के साथ आराम से बितायेंगे, लेकिन बाल-बच्चे उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व समझते हैं। घर में रहते हुए उनकी स्थिति एक मेहमान जैसी रहती है। उनको अपने पूर्व जीवन की मधुर स्म तियां कुरेदती हैं। लेखिका ने गजाधर बाबू की मनोदशा का चित्रण इस प्रकार से किया है-

**व्याख्या** -स्टेशन पर रहते हुए उनके जीवन में निश्चिंतता थी और प्रातःकाल जब ट्रेन आती तो स्टेशन पर चारों तरफ चहल-पहल व गहमा-गहमी हो जाती थी और उसी ट्रेन से चिर-परिचित यात्री आते थे। आने-जाने वाले लोगों के साथ उनकी जान-पहचान हो गई थी। रेल के पहियों की चलने की खटखट उन्हें जीवन में गति के साथ संगीत का सुख देती थी। इस

प्रकार वे स्टेशन पर कार्य करते हुए अत्यधिक प्रसन्न थे। यद्यपि वे वहां अकेले रहते थे, लेकिन रात की नीरवता में तूफान और डाक गाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। यहां अकेले रहते हुए भी उनमें अकेलेपन का बोध नहीं हुआ। इंजनों की आवाज में भी आत्मीयता की अनुभूति होती थी। सेठ रामजीलाल के मिल में मजदूर काम किया करते थे वे भी उनके पास आया करते थे और उनसे भी उनके आत्मीय सम्बन्ध बन गए थे। वे मजदूर ही उनके साथी बन गए थे तथा स्टेशन इंजन तथा मिल के मजदूर आदि वहीं उनका दायरा था। यहां पर यहीं मजदूर ही उनके दुःख-सुख के साथी थे। अब गजाधर बाबू को अपना जीवन एक खोयी हुई-सी निधि के समान लगा, क्योंकि उन्हें ऐसा लगा कि उन्होंने जीवन भर दूर स्टेशनों पर रहकर कठोर परिश्रम किया है। वह सब व्यर्थ गया। क्योंकि परिवार से न तो अपनत्व मिला और न आत्मीयता तथा पारिवारिक सम्बन्धों में आकर्षण भी नहीं रह गया था। इस उपेक्षित जीवन से उन्हें गहरी वित ष्णा हो गई और उन्हें लगा कि उन्हें जीवन ने ठग लिया है। उन्होंने जीवन-भर कठोर परिश्रम करके, अभावमय जीवन जीकर बालकों को सुशिक्षित बनाया। उन्होंने जीवन से जो कुछ चाहा, उसका एक बूंद रस भी प्राप्त नहीं हुआ।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयोग हुई है।

2. गजाधर बाबू की पीड़ा, व्यथा का चित्रांकन हुआ है।
3. गजाधर बाबू के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।
4. देशज शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं।
5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
6. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

*6. "उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से माँग में सिन्दूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली देने से सारे कर्त्तव्यों से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उनकी सम्पूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उनके जीवन के केन्द्र नहीं बन सकते।"*

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण श्रेष्ठ कहानीकार लेखिका, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने गजाधर बाबू की अकेलेपन-अजनबीपन व फालतू समझे जाने वाली पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू इस प्रकार से परिवार में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते जिस प्रकार सोफा-सेट आदि से सुसज्जित भव्य कमरे में चारपाई फिट नहीं बैठती तथा भद्दी लगती है। गजाधर बाबू को परिवार के सदस्य फालतू-तिरस्कृत व उपेक्षित स्वीकारते हैं। वे पैंतीस वर्ष तक छोटे-छोटे स्टेशनों पर रहकर शहर में पक्का मकान बनवाकर बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलवाते हैं। उनकी कामना है कि सेवानिव त्त होने के बाद वे बाल-बच्चों के साथ उल्लासपूर्ण व सुखमय जीवनयापन करेंगे। लेकिन बच्चे उन्हें देखते ही सकपका जाते हैं और उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व स्वीकारते हैं। उन्हें गजाधर बाबू में हित चिंतक या शुभचिंतक पिता की छवि के सिवाय डिक्टेटर की भूमिका द ष्टिगोचर होती है। गजाधर बाबू निर्णय करते हैं कि अब वे घर के मामलों में दखल नहीं देंगे। साथ ही पत्नी भी उन्हें सुझाव देती है कि आप बीच में न पड़ा करें। गजाधर बाबू यह सुनकर अत्यधिक व्याकुल व व्यथित हो उठते हैं।

**व्याख्या** - गजाधर बाबू पत्नी के इन वचनों को सुनकर कि आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं, पढ़ा रहे हैं। शादी कर देंगे। गजाधर बाबू ने अत्यधिक व्याकुल एवं व्यथित होकर पत्नी को देखा। उन्होंने सोचा था कि वे तो केवल पत्नी व बच्चों के लिए धन कमाने की एक मशीन हैं, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला एक माध्यम मात्र है। उनका कार्य केवल बाल-बच्चों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन कमाना है। उनका कार्य बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना, शादी करना है। तभी वे सोचते हैं कि मेरे जीवित रहने से मेरी पत्नी अपनी मांग में सिन्दूर डालने की अधिकारी है, वह सधवा या सौभाग्यवती है। उसे समाज में सम्मान प्राप्त है। उसका कर्त्तव्य केवल यह है कि वह मेरे सामने दो वक्त भोजन की थाली रखकर अपने दायित्व से मुक्ति पा लेती है। इसके अतिरिक्त भी उसके कर्त्तव्य-दायित्व है। वह तो घर-परिवार में इतनी अधिक व्यस्त है कि उसे पति गजाधर बाबू की ओर ध्यान देने का समय नहीं है। वह घी और चीनी के डिब्बों में अर्थात् रसोईघर में इतनी रम जाती है कि मानो वहीं उसके लिए दुनिया हो। गजाधर बाबू उस परिवार के या उसकी पत्नी के केन्द्रबिन्दु नहीं हो सकते, अर्थात् अब तो परिवार या पत्नी को गजाधर बाबू के प्रति न आकर्षण है, न

आत्मीयता है। न तो बाल-बच्चों की आत्मीयता है गजाधर बाबू के प्रति और न पत्नी को। इसलिये वे एकाकीपन व अजनबीपन के भाव से युक्त हो गए। न पत्नी उन्हें प्रेम करती है और न बाल-बच्चे उनके प्रति सम्मान।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयोग की गई है।

2. गजाधर बाबू के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

3. बाल-बच्चों व पत्नी ने गजाधर बाबू को उपेक्षित व तिरस्कृत कर डाला है-इस तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है।

4. कहानी का मूल प्रतिपाद्य-अकेलेपन-अजनबीपन व सेवानिव त्त व्यक्ति की बाल-बच्चों व परिवार के साथ सामंजस्य की समस्या को स्पष्ट किया गया है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***7. "गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गई। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाई और कनस्तरों के पास रख दिया, फिर बाहर आकर कहा-अरे नरेन्द्र ! बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण हिन्दी की महिला कहानीकारों में अग्रगण्य, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने पारिवारिक सम्बन्धों में विश ंखलता, जीवन-मूल्यों में विघटन, अजनबीपन तथा अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। जीवन-भर परिवार को सुखी और व्यवस्थित करते रहने के लिए परिवार से दूर रहकर छोटे-छोटे स्टेशनों पर नौकरी करके उन्हें उच्च शिक्षा दिलवाता है तथा शहर में रखकर सभी सुख-सुविधाएं प्रदान करता है। सेवानिव त्त होकर घर लौटता है तो उसकी इस कामना पर तुषारापात होता है कि बाकी जीवन बच्चों के साथ सुखपूर्वक काट लेगा। बच्चे उसको अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं तथा उसको देखते ही बिदकते हैं। पत्नी हर समय उसके समक्ष अपने अभावमय जीवन के दुखड़े रोती है। बाल-बच्चों व पत्नी के व्यवहार से क्षुब्ध होकर वे रामजीलाल के मिल में नौकरी करने के लिए चले जाते हैं। बालक पूर्ववत् स्वतंत्रता की अनुभूति करते हैं और सुख-शान्ति का अनुभव करते हैं।

**व्याख्या** - गजाधर बाबू के चले जाने के बाद घर के सभी सदस्य सुख की सांस लेते हैं तथा पूर्ववत् स्वतंत्रता की हवा में सांस लेने लगते हैं। भीतर आते ही अमर की बहू से सिनेमा ले चलने की बात करते हैं और बसन्ती भी साथ चलने की बात कहती है। पत्नी का जो कार्य रसोईघर में अधूरा पड़ा था, उसको निपटाने के लिए रसोईघर में चली गई। वह वास्तव में रसोईघर को ही अपना संसार मानती है। बाकी बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर भीतर अपने कमरे में ले आयी ताकि बालक इनको खा सके। उसने उस मठरियों के कटोरदान को कनस्तरों के पास रख दिया। गजाधर बाबू के चले जाने पर घर के सभी सदस्य संकट से मुक्ति पाते हैं, क्योंकि वे सभी के साथ टोका-टोकी करते हैं तथा एक प्रकार का प्रतिबन्ध उन्होंने सभी सदस्यों पर लगा रखा था। उनके होते हुए बसन्ती शीला के घर नहीं जा सकती, अमर और अमर की बहू के मित्र घर में नहीं आ सकते। उनके जाते ही बच्चे अपनी फिर उसी मौज-मस्ती में लिप्त हो जाते हैं। पत्नी अपनी रसोई की दुनिया में लीन हो जाती है। तभी पत्नी नरेन्द्र को सम्बोधित करके कहती है कि अपने बाबूजी की चारपाई को बाहर निकाल दो, क्योंकि वहां पैर फिराने की जगह भी नहीं है। जब तक गजाधर बाबू घर में थे, तो घर के सभी सदस्यों पर एक प्रकार का प्रतिबन्ध-सा लगा हुआ था। इसलिए घर के सभी सदस्य उन अनावश्यक बन्धनों को उतार फैंकने के लिए कटिबद्ध हैं।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सहज व सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. घर के सभी सदस्यों के नायक गजाधर के साथ सम्बन्धों की रिक्तता, शून्यता व जड़ता का पता चलता है।

3. पारिवारिक विशेषताएं द ष्टिगोचर होती हैं यथा पत्नी रसोईघर में व्यस्त है और बाल-बच्चे यथावत् कार्यों में लिप्त हैं।

4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम है।

# परिन्दे

## (निर्मल वर्मा)

## तात्त्विक विवेचन

आधुनिकता-बोध की कहानियों का फलक अत्यन्त विस्त त है और ऐसे रचनाकारों की द ष्टि अत्यन्त व्यापक है। 'परिन्दे' कहानी में कहानीकार ने मिस लतिका के माध्यम से बिखरी हुई नारी का चित्रण किया है। हल्लाबोल सामाजिकता से दूर खड़े निर्मल जी की कहानियों के पात्र प्रेम, प्रकृति और सम्बन्ध, संयम और समयातीत के असंख्य, अद श्य, आन्तरिक और सूक्ष्म यथार्थ के अनुभवों को सच्चा और सजीव अनुभव बताते हैं। कदाचित् इसीलिए उनकी कहानियों को एकान्तिक अनुभूतियों की या अन्तर्मुखी और व्यक्तिपरक कहानियों के रूप में देखने का भी आग्रह किया गया है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है-"निर्मल वर्मा ने आधुनिकता और आधुनिक मनुष्य को, उसकी विसंगति और चुनौतियों को, सम्बन्धों की भावुकता के कारण मनुष्य को स्वतंत्रता एवं उसके अस्तित्व के समक्ष उपस्थित खतरों को अत्यन्त गहन ढंग से मुग्ध कर देने वाली काव्यभाषा में सजीव किया है। कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा ने कहानी में यथार्थ की इकहरी धारणा के वर्चस्व को खण्डित किया है और कहानियों में भी जीवन के दार्शनिक प्रश्नों को उठाने की कोशिश की। यह दार्शनिकता नितान्त आध्यात्मिकता से भिन्न रही है।" वैसे निर्मल वर्मा जी बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं तथा उन्होंने अपनी कुशल लेखनी उपन्यास, निबन्ध और यात्रा-संस्मरण आदि पर चलाई है। उन्हांने अपनी कहानियों में बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धों का, आधुनिकता और आधुनिक मनुष्य का, उसकी विसंगति और संत्रास का मार्मिक चित्रण किया है। बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धों तथा अर्थहीन जीवन को स्थापित करने में लेखक ने भरपूर सफलता अर्जित की है। वैसे कहानीकार व्यक्ति के जीवन की समस्याओं का यथार्थपूर्ण चित्रांकन करता है तथा उसमें कल्पना के लिए कोई अवकाश नहीं रहता। मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन व स्त्री-पुरुष और अन्य सम्बन्धों का यथार्थपूर्ण चित्रण करना ही कहानी रचना का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

**1. कथानक (कथावस्तु) -**

'परिन्दे' कहानी में व्यक्तिवाद अधिक द ष्टिगोचर होता है, क्योंकि इसमें पात्रों की स्वयं अनुभूतियों का अधिक वर्णन है। वर्मा जी की कहानियों में रोमांटिक प्रेम के तत्त्वों में अवसाद की गहरी छाया विद्यमान है। **डॉक्टर शिवकुमार शर्मा** ने निर्मल वर्मा की कहानियों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-"निर्मल वर्मा की कहानियों में सर्वथा एक नया मोड़ है। वे भारतीय परम्परा से कटकर पाश्चात्य परम्परा से जुड़ना चाहते हैं। वे भारत में रहकर भी अपनी कहानियों में विदेशी परिवेश की कल्पना करते हैं। इनकी कहानियों में अफ्रीका-सैग्रीगेशन (वियोजन-प थकीकरण) तथा साम्यवादी साम्राज्यों द्वारा आयोजित कॉस्ट्रेशन कैम्पों (यंत्रणा-शिविरों) का उल्लेख तो मिल जाएगा, किन्तु हिन्दुस्तान की निपट गरीबी की चर्चा कहीं नहीं मिलेगी।" इस प्रकार वर्मा जी की कहानियों में कला, कला के लिए है, की अभिव्यक्ति हुई है और वातावरण की अभिव्यक्ति है, मनोविश्लेषण है तथा प्रेम का चित्रण है। 'परिन्दे' कहानी में कथावस्तु सपाट नहीं है, बल्कि जीवन के रेशों को इधर-उधर से जोड़कर प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास है। सम्पूर्ण कथा कहानी न हो कर वातावरण को प्रस्तुत करती है। पूरी कहानी में स्कूली वातावरण, विद्यालीय-छात्रावासीय जीवन की झलक द ष्टिगोचर होती है। लतिका उस विद्यालय के छात्रावास की अध्यक्षा है तथा मिस वुड उस विद्यालय के प्राचार्य के पद पर आसीन है। डॉक्टर मुखर्जी भी उस विद्यालय में अध्यापक के पद व डॉक्टर का दायित्व निभाते है। मिस ह्यूबर्ट भी विद्यालय के छात्रावास में रहते हैं और लतिका को प्रेम भरा पत्र लिखते हैं। इस प्रकार 'परिन्दे' कहानी में प्रेम और प्रकृति का सजीव चित्रण व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों का आलस्य व अकर्मण्यता का मनोमुग्धकारी वर्णन हुआ है।

**डॉक्टर बच्चन सिंह** ने वर्मा जी की कहानियों की कथावस्तु पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-"निर्मल की कहानियों के टेक्स्ट को समझने के लिए 'टैक्सचर' का समझना आवश्यक हो जाता है। इसमें परम्परानुमोदित जटिल कथावस्तु (प्लाट) नहीं है। विचार या आयडिया को नया अनुक्रम देने का प्रयास नहीं है, आकर्षक, आरम्भ और चमत्कारपूर्ण समापन नहीं है। उनमें जीवन की आन्तरिक लय को बांधने की कोशिश की गई है, रूप का स्थान रूपायन (फार्मेशन) ने लिया है।" वर्मा जी आज के खण्डित जीवन से सबल मानवता का सूत्र बटोर, नई अनुभूति की पहचान, कुण्ठित सामाजिक और राजनैतिक जीवन की विषमताओं से घिरे हुए मानव को संघर्ष कर विजयी होने के छुटपुट प्रयास में भी लगे हैं। प्रकृति का तादात्म्य और इन्हीं

के माध्यम से पात्रों की मानसिक स्थितियों, अन्तर्मन की गतियों का साक्षात्कार वर्मा जी की कहानियों की प्रमुख विशेषताएं हैं। वैसे 'परिन्दे' कहानी प्रतीकात्मकता पर आधारित है और कथावस्तु में नाटकीयता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। गुलेरी की ही भाँति कहानीकार ने पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है तथा इसी के माध्यम से कथानक अग्रसर हुआ है।

'परिन्दे' कहानी पर अस्तित्ववादी चेतना का प्रभाव भी द ष्टिगोचर होता है। इस दर्शन का प्रारम्भ मानव की विवशता-बेबसी व असहाय स्थिति से होता है और इसमें व्यक्ति किंकर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति में रहता है, दुविधा की स्थिति में रहता है। अस्तित्ववादी चेतना के अन्तर्गत क्षण का महत्त्व व उपादेयता सर्वाधिक है। निर्मल वर्मा ने अपने इस दर्शन को इस प्रकार वाणी प्रदान की है-"वह आँखें मूंदे सोच रही थी, उसी क्षण को जो भय और विस्मय के बीच में भिंचा था-बहका-सा, पागल क्षण।"

**2. चरित्र चित्रण -**

प्रस्तुत कहानी 'परिन्दे' के माध्यम से कहानीकार ने मनुष्य के चेतन मन और अवचेतन का द्वन्द्व भी दिखाया है। नायिका लतिका और कहानी का एक प्रमुख पात्र ह्यूबर्ट के कार्य-व्यापारों से यही तथ्य अभिव्यक्त होता है कि ह्यूबर्ट लतिका को प्रेम-पत्र लिखता है, लेकिन लतिका अपने पूर्व प्रेमी गिरीश नेगी की मधुर स्म तियों में ही खोयी हुई है तथा उसके प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देती है, लेकिन ह्यूबर्ट के प्रति अचेतन स्तर पर संवेदना दिखाना उसे इसी द्वन्द्व को अभिव्यक्ति करता है। वह चेतन-अवचेतन के द्वन्द्व को रोकने में असमर्थ हो जाने पर ह्यूबर्ट के विषय में संवेदनशील हो उठती है-

'लतिका की अधमुंदी आँखें खुल गई। क्या ह्यूबर्ट साहब अपने कमरे में नहीं हैं ?'

ह्यूबर्ट इतनी रात कहां गए ? किन्तु लतिका की आँखें फिर झपक गईं। दिन-भर की थकान ने सब परेशानियों, प्रश्नों पर कुन्जी लगा दी, जैसे दिन-भर आँख-मिचौली खेलते हुए उसने अपने कमरे में 'दैया' को छू लिया था, अब वह सुरक्षित थी। कमरे की चहारदिवारी के भीतर उसे कोई नहीं पकड़ सकता। दिन के उजाले में वह गवाह थी, मुजरिम थी, हर चीज का उसे तगाजा था, अब इस अकेलेपन में कोई गिला नहीं, कोई उजाला नहीं, सब खींच-तान खत्म हो गई है, जो अपना है, वह बिल्कुल अपना-सा हो गया है, जो पराया है, उसका दुःख नहीं, अपनाने की फुर्सत नहीं।

इसी प्रकार कहानी में लतिका-ह्यूबर्ट का द्वन्द्व जूली-लतिका का द्वन्द्व भी चेतन-अचेतन के द्वन्द्व के अन्तर्गत आते हैं और वही द्वन्द्व कथावस्तु को अग्रसर करता है।

**3. संवाद -**

इसी प्रकार इस कहानी में कहानीकार ने पूर्व दीप्ति शैली का भी प्रयोग किया है जिससे कथानक में स्पष्टता और रोचकता का भाव आ गया है। कहानी का सबसे रोचक एवं रसात्मक तथा मार्मिक प्रसंग है-लतिका और गिरीश नेगी का प्रेम-व्यापार। कहानीकार ने पूर्वदीप्ति शैली का आश्रय लेकर इस प्रसंग को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। लतिका अपने अतीत की मधुर स्म तियों में खोयी हुई और गिरीश के साथ बिताये उन मधुर क्षणों को हृदय में संजोकर रखती है। गिरीश-लतिका के प्रेम-व्यापार का यह वार्तालाप पूर्वदीप्ति शैली की द ष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है।

"तुम्हें आर्मी में किसने चुन लिया, मेजर बन गए हो, लेकिन लड़कियों से भी गए-बीते हो, जरा-जरा सी बात पर चेहरा लाल हो जाता है।" यह सब वह कहती नहीं, सिर्फ सोचती-भर थी। सोचा था कभी कहूंगी, वह 'कभी' कभी नहीं आया।

बुरूस का लाल फूल।

'लाए हो ?'

'न ?'

'झूठे'

खाकी कमीज की जिस जेब पर बैज चिपके थे, उसी में मुसा हुआ बुरुस का फूल निकल आया।

छिः सारा मुरझा गया।

अभी खिला कहां है ?

हाऊ क्लम्जी।"

उसके बालों में गिरीश का हाथ उलझ रहा था। फूल कहीं टिक नहीं पाता। फिर उसे क्लिप के नीचे फंसाकर उसने कहा-'देखो'।

'परिन्दे' कहानी में वर्मा जी ने हास्य-व्यंग्य का भी सुन्दर चित्रण किया है। निम्नलिखित संवाद में हास्य-व्यंग्य का पुट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है-

पिकनिक में तुम कहां रह गए थे डॉक्टर, कहीं दिखाई नहीं दिए।

दोपहर भर सोता रहा-मिस वुड के संग। मेरा मतलब है मिस वुड पास बैठी थी।

मुझे लगता है, मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती है ? कोई भी मजाक करते समय डॉक्टर अपनी मूंछों के कोनों को चबाने लगता है। 'क्या कहती थी ?' लतिका ने थर्मस से कॉफी को मुंह में उड़ेल दिया। 'शायद कुछ कहती' लेकिन बदकिस्मती से बीच में ही मुझे नींद आ गई। मेरी जिन्दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम-प्रसंग कमबख्त इस नींद के कारण अधूरे रह गए।

**4. वातावरण (देशकाल) -**

'परिन्दे' कहानी में ऐसे अनेक रसात्मक व संवेदनशील प्रसंग हैं जिनके कारण कहानी अत्यन्त उच्चकोटि की बन पड़ी है। लतिका गिरीश नेगी से प्यार करती है और उसे तथा मिलिटरी अफसर नेगी को लेकर एक अच्छा-खासा स्कैण्डल बन गया था, लेकिन नेगी असामयिक काल-कवलित हो जाता है, परन्तु नायिका लतिका उसकी मधुर स्म तियों को संजाकर एक धरोहर के रूप में सुरक्षित रखती है। जब कभी उसे कुमाऊं रेजीमेण्ट की टुकड़ी दिखाई देती है या उसकी मधुर धुन सुनाई पड़ती है तो वह अतीत की सुखद स्म तियों में लीन हो जाती है-"उस क्षण न जाने क्यों, लतिका का हाथ काँप गया और कॉफी की कुछ गरम बूँदें उसकी साड़ी पर छलक आयीं। अंधेरे में किसी ने नहीं देखा कि लतिका के चेहरे पर उनींदा-सा रीतापन घिर आया है।"

इसी प्रकार नायिका लतिका-ह्यूबर्ट के प्रेम-पत्र का उत्तर नहीं देती। इससे ह्यूबर्ट को अत्याधिक कष्ट होता है। वह लतिका के गिरिश नेगी के साथ प्रेम-व्यापार को जानकर भी अपने प्रेम-व्यापार को इस प्रकार अभिव्यक्त कर डालता है-"इन द बैंक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लव्स मी।" इस प्रकार कहानी के सभी पात्रों का हृदय संवेदनशीलता से लबालब भरा पड़ा है। इसी प्रकार डॉक्टर मुखर्जी का व्यक्तित्व में भी संवेदनशीलता एक प्रमुख तत्त्व है। कहानीकार ने उसके इस भाव को इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है-"कभी कभी मैं सोचता हूं कि, मिस लतिका किसी चीज को न जानना, यदि गलत है, जो जान-बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह चिपटे रहना, यह भी गलत है। वर्मा से आते हुए जब मेरी पत्नी की मुत्यु हुई थी मुझे अपनी जिन्दगी बेकार-सी लगी। आज इस बात को अरसा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूँ, उम्मीद है कि काफी अरसा जिऊंगा। जिन्दगी काफी दिलचस्प लगती है और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो मैं दूसरी शादी करने में न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं पत्नी से प्रेम नहीं करता था। आज भी करता हूँ।" इस प्रकार पूरी कहानी में संवेदनशीलता घटनाओं और वातावरण में भरी पड़ी है। लतिका प्रेम के क्षेत्र में असफल है, इसलिए वह जूली को प्रेम-पथ पर अग्रसर होने से रोकती है।

**5. भाषा-शैली -**

निर्मल वर्मा की कहानियों की भाषा-शैली सरल, सहज व आम बोलचाल की है। अंग्रेजी शब्द व वाक्य बहुधा मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। आज का शिक्षित वर्ग सामान्यतः इसी प्रकार का भाषा-प्रयोग करता है जिसमें हिन्दी और अंग्रेजी के शब्द प्रचूर मात्रा में आए हैं। उनकी भाषा न तो विशुद्ध हिन्दी है और न ही विशुद्ध अंग्रेजी। वेल गुड नाइट, वाट डू यू वाण्ट, क्लोजअप, नाइट रजिस्टर, कन्सर्ट, गुड इवनिंग डॉक्टर, लेट द डेड डाई, बर्लेसेड आर द मीक, इन ए बैक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लव्ज मी, आदि अंग्रेजी के शब्दांश प्रयुक्त हुए हैं। अंग्रेजी के शब्दों में-कॉरीडोर, माउथ आर्गन, कॉनवेंट, प्लीज, क्रास, मैडम, रेजीमेण्टल सैण्टर, प्राइवेट प्रैक्टिस, स्कर्ट, थैंक यू मैडम, मिलिटरी अफसर, प्रैक्टिस, सैंडविच, हैम्बंर, पोलो ग्राऊण्ड, पवेलियन, कण्टोनमेण्ट, कन्फैस सीनियर, स्कैण्डल, कानवेण्ट स्कूल, प्रेयर हाल, हैट सर्मन, कॉयर, ट्रीजरू, प्रौम्ट, कैण्डलब्रियम, एक्सरे आदि प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार हिन्दी के तत्सम् शब्दों में-निस्तब्धता, मेघाच्छन, भ कुटियां, उदभ्रान्त निमिष, अप्रतिभ, उच्छ ंखल, अनर्गल प्रलाप, उद्विग्न, परिणत, अनिवर्चनीय, क्षोभ, स्तब्ध आदि।

उर्दू-फारसी के शब्दों में नमी, खौफनाक, हैसियत, खिदमत, खिताब, परिन्दे, गोरख-धन्धा, अर्दली, कौमी आदि । इसी

प्रकार देशज शब्द भी बहुधा मात्रा में आए हैं; यथा-जबर, पटाना, सनकी आदि। इस प्रकार निर्मल वर्मा जी का भाषा पर असाधारण अधिकार है। **श्री सुरेश सिन्हा** ने वर्मा जी की भाषा-शैली के बारे में कहा है-"वे विदेशी शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं।' बोलचाल के प्रचलित उर्दू शब्द और तत्समपरक मिली-जुली शब्दावली भी प्रयुक्त हुई है। वैसे 'परिन्दे' कहानी की भाषा में एक और महत्त्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि वह पात्रानुकूल है। वैसे 'परिन्दे' कहानी की भाषा में एक और महत्त्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि वह पात्रानुकूल है। डॉक्टर मुखर्जी, मिस ह्यूबर्ट, मिस वुड की भाषा में साहित्यिकता, परिष्कृत व प्रौढ़ स्तर की है, जबकि करी मुद्दीन, होस्टल का अर्दली-चपरासी उर्दू प्रधान हिन्दी बोलता है। लतिका की भाषा में अंग्रेजी के शब्दों की प्रमुखता और साहित्यिक है। जहां तक शैली का सम्बन्ध है, 'परिन्दे' में विश्लेषणात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली प्रयुक्त हुई है। शैली में कहीं-कहीं काव्यात्मकता का पुट भी अवलोकनीय है। अतः स्पष्ट है कि वर्मा जी की भाषा सरल, सहज व स्वाभाविक है तथा उसमें जटिल व क्लिष्ट या दुरूह शब्दों के लिए कोई अवकाश नहीं है।

**6. उद्देश्य -**

लेखक ने आधुनिक समाज में मानवीय सम्बन्धों पर भी 'परिन्दे' कहानी में प्रकाश डाला है। लतिका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम-व्यापार चलाती है तथा उसी के कारण वह स्कूल में बदनाम हो जाती है। गिरीश नेगी असामयिक काल-कवलित हो जाता है, परन्तु लतिका जीवनपर्यन्त उसकी स्म तियों को संजोकर अपने हृदय में रखती है तथा ह्यूबर्ट के प्रेम-प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लतिका गिरीश के प्रति समर्पित है तथा गुलेरी की 'उसने कहा था' सूबेदारनी की भांति उसकी मधुर स्म तियों को अनमोल निधि की भांति संजोए बैठी है। ह्यूबर्ट लतिका से प्रेम करता है और उसे प्रेम पत्र लिखता है, परन्तु लतिका उसके प्रेम को अस्वीकृत कर देती है, परन्तु वह फिर भी गुनगुनाता है-"इन द बैंक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लव्स मी।" इसी प्रकार डॉक्टर मुखर्जी भी अपनी पत्नी की मधुर-स्म तियों को अपने हृदय में दबाए बैठे हैं तथा अपने प्रेम को स्थायी घोषित करते हैं और साथ ही यह भी स्पष्ट करते हैं-"बर्मा से आते हुए जब मेरी पत्नी की म त्यु हुई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार-सी लगी थी। आज इस बात को अर्सा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूँ, और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था-आज भी करता हूँ।" इस प्रकार कहानीकार ने 'परिन्दे' कहानी में नर-नारी के सम्बन्धों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है।

# II. चरित्र चित्रण

## (क) लतिका

नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित 'परिन्दे' कहानी में लतिका, डॉक्टर मुखर्जी और ह्यूबर्ट प्रमुख पात्रों की श्रेणी में आते हैं तथा गौण पात्रों में जूली, मिस वुड और एलमण्ड का नाम आता है। वह कहानी की नायिका है तथा कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है। वह सभी घटनाओं के मूल में विद्यमान है; यथा-उसका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम-व्यापार चलता है, लड़कियों तथा अन्य स्कूल स्टाफ के चले जाने पर वही एकाकीपन की पीड़ा को भोगती है, वहीं जूली को प्रेम-पथ पर अग्रसर होने से रोकती है, लेकिन कालान्तर में उसकी सहायिका बन बैठती है। लतिका ही मेजर गिरीश नेगी की मधुर स्म तियों को जीवन-भर एक अमूल्य निधि एवं धरोहर के रूप में संजोकर रखती है तथा ह्यूबर्ट के प्रेम-प्रस्ताव को भी अस्वीकृत कर देती है। अतः कहानी की सभी घटनाएं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में उसी से जुड़ी हुई है। कहानी की फलभोक्त्री भी वही है। अतः निर्विवाद रूप से लतिका कहानी की नायिका सिद्ध होती है।

लतिका को एक आदर्श प्रेमिका की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि वह मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती है, परन्तु उसके असामयिक काल-कवलित हो जाने से वह उसकी मधुर स्म तियों को जीवन-भर संजोकर रखती है तथा उसके प्रेम-व्यापार के कारण वह स्कूल में बदनाम होती है, परन्तु ह्यूबर्ट के प्रेम-प्रस्ताव करने पर भी वह स्पष्ट इन्कार कर देती है। वह छुट्टियों में भी घर न जाकर उसकी मधुर स्म तियों को सहेजती है। उस वातावरण और उस परिवेश में रहकर। वह स्पष्ट कहती है-"अब मुझे यहां अच्छा लगता है, तलिका ने कहा-पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था-अब आदी हो गई हूँ। क्रिसमस से एक रात पहले क्लब में डांस होता है, लाटरी डाली जाती है और रात को देर तक नाच गाना होता रहता है।

नये साल के दिन कुमाऊं रेजीमेण्ट की ओर से परेड ग्राऊण्ड में कार्नीवाल किया जाता है, बर्फ पर स्केटिंग होती है, रंग-बिरंगे गुब्बारों के नीचे फौजी बैंड बजता है, फौजी अफसर फैन्सी ड्रैस में भाग लेता है-हर साल ऐसा ही होता है, मि०

ह्यूबर्ट। फिर कुछ दिनों बाद विन्टर स्पोर्ट्स के लिए अंग्रेज टूरिस्ट आते हैं। हर साल मैं उनसे परिचित होती हूं। वापिस लौटते हुए वे हमेशा वायदा करते हैं कि अगले साल भी आएंगे, पर मैं जानती हूँ कि वे नहीं आएंगे, वे भी जानते हैं कि वे नहीं आएंगे, फिर भी हमारी दोस्ती में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। फिर...कुछ दिनों बाद पहाड़ों पर बर्फ पिघलने लगती है, छुट्टियां खत्म होने लगती हैं, वापस सब लोग अपने-अपने घरों से वापिस लौट आते हैं और मि० ह्यूबर्ट, पता नहीं चलता कि छुट्टियां कब शुरु हुई थीं, कब खत्म हो गई।' इस प्रकार लतिका अनन्य एकनिष्ठ प्रेम की जीवन्त व साकार प्रतिमा है। उसकी मधुर प्रेम की स्म तियों को जीवन-भर सहेजकर रखना उसे एकनिष्ठ प्रेमिका की उदात्त धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है।

लतिका छात्रावास में स्कूल अध्यापिका के रूप में कार्य करती है। वह छात्रावास की लड़कियों को अनुशासन में रखती है तथा उन्हें यदा-कदा झिड़कियां भी देती है-"कमरे में अन्धेरा क्यों कर रखा है ?" लतिका के स्वर में हल्की-सी झिड़की का आभास था।

लैम्प में तेल ही खत्म हो गया, मैडम !

तेल के लिए करीमुद्दीन से क्यों नहीं कहा ?

इसी प्रकार वह जूली को भी कटघरे में खड़े करती हुई पूछती है-"जूली, अब तक तुम इस ब्लाक में क्या कर रही हो ?"

नाइट रजिस्टर पर दस्तखत कर दिये ?

'हां मैडम।'

'फिर... ?' लतिका का स्वर कड़ा हो आया।

जूली सकुचाकर खिड़की से बाहर देखने लगी।

जब से लतिका इस स्कूल में आयी है, उसने यह अनुभव किया कि होस्टल में इस नियम का पालन, डांट-फटकार के बावजूद नहीं होता।" इस प्रकार वह अनुशासनप्रिय है तथा जूली को भी मिलिटरी अफसर के साथ प्रेम-व्यापार से रोकती है। लड़कियों के चले जाने के बाद खाली कॉरीडोर में वह कभी इस कमरे में जाती है तो कभी उस कमरे में भटकती रहती, परन्तु उसका दिल कहीं भी नहीं टिक पाता, हमेशा भटका-भटका सा रहता था। इसके साथ ही वह स्कूल की छोटी लड़कियों का सामान-स्वयं पैकिंग करती थी और सात नम्बर कमरे में जाने पर संगीत कार्यक्रम में उनका मजा किरकिरा न करके तुरन्त चली आती है।

वह हमेशा ही छुट्टियों में घर न जाकर स्कूल के छात्रावास में ही रहती थी। लड़कियां जब उससे पूछती कि "मैडम छुट्टियों में आप घर नहीं जा रहीं ?" तो वह स्पष्ट कहती है-"अभी कुछ पक्का नहीं है-आई लव ही स्नो-फाल।" लेकिन हर साल वह यही बात कहती है कि मानो लड़कियां उसको सन्देह की द ष्टि से निहार रही है।

लतिका आकर्षण-विहीन, सौन्दर्यरहित बुढ़ापे से अत्यधिक कतराती है। वह स्पष्ट चिन्तन करती है-"क्या वह बूढ़ी होती जा रही है ? उसके सामने स्कूल की प्रिंसीपल मिस वुड का चेहरा घूम गया। पोपला मुंह, आँखों के नीचे झूलती हुई मांस की थैलियां, जरा-जरा सी बात पर चिढ़ जाना, कर्कश आवाज में चीखना-सब उसे 'आल्डमेड' कहकर पुकारते हैं। कुछ वर्षों के बाद यह भी हू-ब-हू वैसी ही बन जाएगी। लतिका के समूचे शरीर में एक झुरझुरी-सी दौड़ गई, मानों अनजाने में ही उसने किसी गलीज वस्तु को छू लिया हो। उसे याद आया, कुछ महीने पहले अचानक उसे मि० ह्यूबर्ट का प्रेम-पत्र मिला था। भावुक, याचना से भरा हुआ पत्र, जिसमें उसने न जाने क्या कुछ लिखा था, जो कभी उसकी समझ में नहीं आया। उसे ह्यूबर्ट की इस बचकाना हरकत पर हँसी आई थी। 'जो कभी उसको समझ में नहीं आया।' किन्तु भीतर-ही-भीतर प्रसन्नता भी हुई थी। उसकी उम्र अभी बीती नहीं है, अब भी वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। ह्यूबर्ट का पत्र पढ़कर उसे क्रोध नहीं आया, आई थी केवल ममता। वह चाहती तो उसकी गलत-फहमी को दूर करने में देर नहीं लगाती, किन्तु कोई शक्ति उसे रोके रहती है, उसके कारण अपने पर विश्वास रहता है, अपने सुख का भ्रम मानो ह्यूबर्ट की गलत-फहमी से जुड़ा है।" इस प्रकार वह बूढ़ा नहीं होना चाहती है, क्योंकि बुढ़ापा सौन्दर्य व आकर्षण-विहीन होता है।

कहानीकार ने एक स्थल पर लतिका के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला है। वह क्रीम रंग की पूरी बांहों की ऊनी जैकेट पहने हुए थी, कुमाऊंनी लड़कियों की तरह लतिका का चेहरा गोल था। धूप की तपना में पका गेहुआं रंग कहीं-कहीं हल्का-सा

गुलाबी हो आया था, मानों बहुत धोने पर भी गुलाल के कुछ धब्बे इधर-उधर बिखरे रह गए हों। अतः स्पष्ट है कि लतिका आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी है।

लतिका को पहले तो छात्रावास में अकेली रहने में डर लगता था तथा बोर भी होती, परन्तु अब उसे यहां रहना अच्छा लगता है, क्योंकि उसे गिरीश की मधुर स्म तियों, पहाड़ों और प्रकृतियों के परिवेश में खोया रहना अच्छा लगता है। कहानीकार का कहना है-"मिस लतिका, आप कहीं छुट्टियों में जाती क्यों नहीं ? सर्दियों में तो यहां सब कुछ वीरान हो जाता होगा।" अब मुझे यहां अच्छा लगता है, लतिका ने कहा-पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था-अब आदी हो गई हूं।"

## (ख) डॉक्टर मुखर्जी

सुप्रसिद्ध कहानीकार व पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित 'परिन्दे' कहानी में डॉक्टर मुखर्जी भी प्रमुख पात्रों की श्रेणी में आते हैं। कहानी में उनका व्यक्तित्व दार्शनिकता से ओत-प्रोत, व्यावहारिक व हास्य का पुट तथा दूरदर्शी आदि गुणों से युक्त है। वे कहानी के प्रारम्भ में ही ह्यूबर्ट के साथ लतिका को निमन्त्रण देने के लिए उसके पास आते हैं। वे लतिका को कहते हैं-"मिस लतिका, हम आपको निमन्त्रण देने आ रहे थे। आज रात मेरे कमरे में एक छोटा-सा कन्सर्ट होगा जिसमें मि० ह्यूबर्ट शोपां और चाइकोटस्की के कंपोजीशन बजायेंगे और फिर क्रीम कॉफी पी जाएगी। और उसके बाद अगर समय रहा, तो पिछले समय हमने जो गुनाह किए हैं, उन्हें हम सब मिलकर कन्फेस करेंगे।" लतिका के यह कहने पर कि मेरी तबियत ठीक नहीं है, डॉक्टर साहब अत्यन्त आत्मीयता के साथ लतिका के कन्धों को पकड़कर अपने कमरे की तरफ मोड़ दिया। उसका कमरा ब्लाक के दूसरे सिरे पर छत से जुड़ा हुआ था। वे आधे बर्मी थे और उसके चि ह्न उनकी थोड़ी दबी हुई नाक और छोटी-छोटी चंचल आँखों से वे स्पष्ट बर्मी दिखाई देते थे। बर्मा पर जापानियों का आक्रमण होने के बाद वे यहां आकर बस गये थे। यद्यपि वे प्राइवेट प्रैक्टिस भी करते थे, लेकिन साथ में ही कॉन्वेन्ट स्कूल में हाई जीन-फिजियालॉजी नामक विषय पढ़ाया करते थे। उनको रहने के लिए स्कूल के होस्टल में कमरा दे रखा था। कुछ लोगों की यह धारणा थी कि बर्मा से आते हुए रास्ते में उनकी पत्नी की म त्यु हो गई थी, लेकिन इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे कभी भी अपनी पत्नी की चर्चा नहीं करते थे।

डॉक्टर मुखर्जी एक बात अक्सर कहा करते थे-"मरने से पहले मैं एक दफा बर्मा जरूर जाऊँगा।" वे अपने अतीत के सम्बन्ध में किसी की सहानुभूति या संवेदना नहीं चाहते थे। वे सिगार पीने के शौकीन थे। वे फादर एल्मंड के कटु आलोचक व प्रखर विरोधी थे, इसीलिए उनकी सर्मन को वे रटी-रटायी, पुरानी परम्परावादी बातें कहा करते थे। डॉक्टर मुखर्जी का कहना था-"पिछले पांच साल से मैं भी सुनता आ रहा हूं-फादर एल्मंड के सर्मन में कहीं हेर-फेर नहीं होता।" लतिका भी यदा-कदा डॉक्टर के साथ पिकनिक पर जाया करती थी और वहीं लतिका का परिचय मेजर गिरीश नेगी से करवाते हैं जिसके साथ कालान्तर में उसका प्रेम-व्यापार चलता है।

डॉक्टर मुखर्जी दार्शनिक विचारधारा से आप्लावित व्यक्ति है। उनके बारे में ह्यूबर्ट का कहना है-"क्या तुम नियति में विश्वास करते हो, ह्यूबर्ट ? डॉक्टर ने कहा-ह्यूबर्ट दम रोके प्रतीक्षा करता रहा। वह जानता था कि कोई भी बात कहने से पहले डॉक्टर को फिलोसोफाइज करने की आदत थी।" डॉक्टर मुखर्जी जीवन की विडम्बनाओं का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं-"कोई पीछे नहीं है, यह बात मुझमें एक अजीब किस्म की बेफिक्री पैदा कर देती है, लेकिन कुछ लोगों की मौत अन्त तक पहेली बनी रहती है...शायद वे जिन्दगी से बहुत उम्मीद लगाते थे। उसे ट्रेजिक भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आखरी दम तक उन्हें मरने का अहसास नहीं होता।" उसी प्रकार वे कहानी में अनेक स्थलों पर अपनी दार्शनिकता को बघारते हुए मिलते हैं।

वह जीवन में रूढ़ियों-पाखण्डों तथा बाह्याडम्बरों में विश्वास नहीं करता, क्योंकि मानवीय जीवन में इनका कोई महत्त्व नहीं है। कहानीकार ने डॉक्टर मुखर्जी के माध्यम से सर्मन का विरोध या हास्य-व्यंग्य करते हुए लिखा है-"डॉक्टर मुखर्जी ने अब और उकताहट से भरी जम्हाई ली, 'कब यह किस्सा खत्म होगा ?" उसने इतने अच्छे स्वर में लतिका से पूछा कि वह सकुचाकर दूसरी ओर देखने लगी। स्पेशल सर्विस के समय डॉक्टर मुखर्जी के ओठों पर व्यंग्यात्मक मुस्कान खेलती रहती और धीरे-धीरे वह अपनी मूंछों को खींचता रहता।"

इसी प्रकार वह एक अन्यत्र स्थल पर भी सर्मन की वही पुरानी, रटी-रटायी बातों पर कटाक्ष करते हुए कहता है-"पिछले पांच साल से मैं भी सुनता आ रहा हूं-फादर एल्मड के सर्मन में कहीं हेर-फेर नहीं होता।" इसी प्रकार फादर एल्मण्ड

की धारणा भी डॉक्टर मुखर्जी के बारे में अच्छी नहीं है। वे स्पष्ट कहते हैं-"मिस लतिका डॉक्टर के संग यहां अकेली ही रह जाएगी और सच पूछिए मिस वुड, डॉक्टर के बारे में मेरी राय अच्छी नहीं है। वास्तव में फादर एलमण्ड की डॉक्टर मुखर्जी के साथ कभी पटती नहीं थी और वे मिस वुड की आँखों में डॉक्टर को नीचा दिखाना चाहते थे। मिस वुड की भी डॉक्टर के बारे में अच्छी धारणा नहीं थी। वह स्पष्ट कहती है-"मिस वुड ने डॉक्टर की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। दिल में वह हमेशा डॉक्टर को उच्छ ंखल, लापरवाह और सनकी समझती रही है, किन्तु डॉक्टर के चरित्र में उसका विश्वास है-न जाने क्यों, डॉक्टर ने जाने-अनजाने में उसका कोई प्रमाण दिया हो, वह उसे याद नहीं पड़ता।" मिस वुड डॉक्टर मुखर्जी को आलसी, लापरवाह मानती हैं, क्योंकि यदि वह कर्मशील-उद्योगी और परिश्रमी होता तो वह अपनी योग्यता के बल पर काफी चमक सकता था। मिस वुड और डॉक्टर मुखर्जी के इस संवाद में डॉक्टर के चरित्र पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डालता है-"डॉक्टर, क्या आप कभी वापस वर्मा जाने की बात नहीं सोचते ?" डॉक्टर ने अंगड़ाई ली और करवट बदलकर औंधे मुंह लेट गए। उनकी आँखें मुंद गई और माथे पर बालों की लटें झूल आई।"

सोचने से क्या होता है मिस वुड...जब बर्मा में था, तब कभी सोचा था कि यहां आकर उम्र काटनी होगी ?"

लेकिन डॉक्टर, कुछ भी कह लो, अपने देश का सुख कहीं और नहीं मिलता। यहां तुम चाहे कितने वर्ष रह लो, अपने को हमेशा अजनबी ही पाओगे।" डॉक्टर ने सिगार के धुएं को धीरे-धीरे हवा में छोड़ दिया-"दरअसल अजनबी तो मैं वहां भी समझा जाऊंगा, मिस वुड ! इतने वर्षों बाद वहां मुझे कौन पहचानेगा ? इस उम्र में नये सिरे से रिश्ता जोड़ना काफी सिरदर्दी का काम है...कम से कम मेरे बस की बात नहीं है।"

डॉक्टर मुखर्जी सन्तोषी प्रव त्ति का व्यक्ति तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से युक्त है। वह मिस वुड के कहने पर कि आप कब तक पहाड़ी कस्बे में पड़े रहेंगे-इसी देश में रहना है तो किसी बड़े शहर में प्रैक्टिस शुरु कीजिए-स्पष्ट कहता हूं कि प्रैक्टिस बढ़ाने के लिए कहां-कहां भटकता फिरूंगा मिस वुड। जहां रहों वहीं मरीज मिल जाते हैं। यहां आया था कुछ दिनों के लिए-फिर मुद्दत हो गई और टिका रहा। जब कभी जी उबेगा, कहीं चला जांऊंगा। जड़ें कहीं नहीं जमती तो पीछे से भी कुछ नहीं छूट जाता। मुझे अपने बारे में कोई गलतफहमी नहीं है मिस वुड, मैं सुखी हूं।

डॉक्टर मुखर्जी हँसौड़-मजाकिया प्रव त्ति के व्यक्ति हैं। इसीलिए वे दोनों घुटनों को जमीन पर टिकाकर सिर झुकाकर, एलिजाबेथ युगीन अंग्रेजी में कहा-"मैडम, आप इतनी परेशान क्यों नजर आ रही है।" इसी प्रकार लतिका के यह पूछने पर कि तुम पिकनिक में कहां रह गए थे, कहीं दिखाई नहीं दिए, वह अत्यन्त ही मजाकिया लहजे में कहता है-"दोपहर भर सोता रहा-मिस वुड के संग। मेरा मतलब है, मिस वुड पास बैठी थी। मुझे लगता है, मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती है।" कोई भी मजाक करते समय डॉक्टर अपनी मूंछो के कोनों को चबाने लगता है। 'क्या कहती थी ?" लतिका ने थर्मस से कॉफी को मुंह में उड़ेल लिया। "शायद कुछ कहती, लेकिन बदकिस्मती से बीच में ही मुझे नींद आ गई। मेरी जिन्दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम-प्रसंग कम्बख्त इस नींद के कारण अधूरे रहे गये हैं।"

डॉक्टर मुखर्जी सेवापरायणता की सजीव व जीवन्त प्रतिमा है। वह नशे में मदहोश व बीमार ह्यूबर्ट की पूरी देखभाल करता है तथा उसको उसके कमरे में छोड़कर आता है। लतिका को आवाज देकर कहता है-"मिस लतिका, जरा अपना लैम्ब ले आइये।" इसी प्रकार वह मजबूती के साथ अपने कन्धे पर बांह रखकर उसको सीढ़ियों पर चढ़ाता है। वह उसको उसके कमरे में पहुंचाकर जूते-मोजे उतारता है और टाई उतारने लगता है तो ह्यूबर्ट पूछता है-डॉक्टर, क्या मैं मर जाऊँगा ?"

कैसी बात करते हो ह्यूबर्ट। डॉक्टर ने हाथ छुड़ाकर धीरे से ह्यूबर्ट का सिर तकिये पर टिका दिया। इसी प्रकार लतिका के यह पूछने पर कि क्या आपने मि० ह्यूबर्ट को मेरे बारे में कुछ कहा था, तो डॉक्टर स्पष्ट कहता है-"वैसे हम सबको अपनी-अपनी जिद्द होती है, कोई छोड़ देता है, कोई आखिर उससे चिपका रहता है।" कभी-कभी मैं सोचता हूँ मिस लतिका, किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो जान-बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह चिपटे रहना-यह भी गलत है। बर्मा से जाते हुए जब मेरी पत्नी की म त्यु हुई थी तो मुझे अपनी जिन्दगी बेकार-सी लगी थी। आज इस बात को अर्सा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूं और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी नहीं हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था-आज भी करता हूं।" इस प्रकार उपरोक्त उदाहरण के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि डॉक्टर मुखर्जी संवेदनशील व्यक्तित्व के स्वामी हैं।

## (ग) मि० ह्यूबर्ट

नयी कहानी के पुरोधा डॉक्टर निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'परिन्दे' में मि० ह्यूबर्ट प्रमुख पात्रों की श्रेणी में आता है। वह संगीत का अध्यापक है तथा संवेदनशील-कोमल व्यक्तित्व का स्वामी है। उसके शरीर में भी सामान्य मानव का कोमल हृदय स्पन्दित होता है और वह लतिका को प्रेम-पत्र लिखता है। कहानी के प्रारम्भ में ही वह डॉक्टर मुखर्जी के साथ सीढ़ियों पर अंग्रेजी धुन गुनगुनाता हुआ ऊपर चढ़ रहा है। सीढ़ियों पर व्याप्त अंधेरे में वह छड़ी से रास्ता टटोलकर चढ़ रहा था। लतिका ने सीढ़ियों पर प्रकाश करने के लिए लैम्प जलाया तो इससे वह 'थैंक यू मिस लतिका' कहता हुआ कृतज्ञता का भाव अभिव्यक्त करता है। सीढ़ियां चढ़ने से उनकी सांस तेज हो रही थी और मि० ह्यूबर्ट दीवार से लगे हुए हांफ रहे थे। अतः ह्यूबर्ट शारीरिक द टि से कमजोर थे। राजनीति के ऊपर व्यंग्य करते हुए मि० ह्यूबर्ट स्पष्ट कहते हैं कि राजनीति में शिथिलता हर जगह और हर समय व्याप्त होती है-"यह बात तो पिछले साल दस सालों से सुनने में ही आ रही है। अंग्रेजों ने भी कोई लम्बी-चौड़ी स्कीम बनाई थी, पता नहीं उसका क्या हुआ।" ह्यूबर्ट ने कहा। ह्यूबर्ट स्पष्ट रूप से रूढ़ियों व पाखण्डों का कट्टर विरोधी है, इसीलिए वह स्पेशल सर्विस को 'गोरख-धन्धा' कहकर उपहास उड़ाता है। वह सर्मन के ऊपर प्रश्नचिह्न लगाता हुआ स्पष्ट करता है-"पता नहीं, मिस वुड को' स्पेशल सर्विस को गोरख धन्धा क्यों पसन्द आता है, छुट्टियों में घर जाने से पहले क्या यह जरूरी है कि लड़कियां फादर एल्मण्ड का सर्मन सुने।" ह्यूबर्ट ने कहा।

मि० ह्यूबर्ट प्रेम का दीवाना व पुजारी है, इसलिए वह प्रेम-पत्र मिस लतिका को लिखता है। भावुक और याचना से भरे हुए पत्र में क्या लिखा था, मिस लतिका की समझ में नहीं आता था, परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उसने लतिका के समक्ष प्रेम की भिक्षा मांगी थी, जिसे उसने अस्वीकृत कर दिया। वह डॉक्टर मुखर्जी के समक्ष लतिका के व्यवहार की शिकायत करते हुए कहता है-"डॉक्टर, आपको मालूम है...मिस लतिका का व्यवहार पिछले कुछ अर्से से अजीब-सा लगता है।' वह नहीं चाहता है कि डॉक्टर को लतिका के प्रति उसकी कोमल भावनाओं का आभास हो। वह इस कोमल अनुभूति को काफी समय से अपने हृदय में संजोए बैठा है। जब उसे लतिका और मेजर गिरीश नेगी के प्रेम-व्यवहार का पता चलता है तो वह अपने प्रेम-पत्र को, जो कि उसने लतिका को लिखा था अर्थहीन और उपहासास्पद स्वीकारता है।

मि० ह्यूबर्ट का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, इसीलिए करीमुद्दीन बताता है-"ह्यूबर्ट साहब तो शायद कल ही चले आए-कल रात उनकी तबीयत फिर खराब हो गई। आधी रात के वक्त मुझे जगाने आये थे। कहते थे छाती में तकलीफ है। उन्हें यह मौसम रास नहीं आता। कह रहे थे, लड़कियों की बस में वे भी कल ही चले जायेंगे।" खराब स्वास्थ्य के कारण डॉक्टर मुखर्जी उसे सरमन में आने से मना करते हैं, परन्तु वह झक्की आदमी मना करने के बाद भी चला आता है। चलने से उसकी सांस फूलने लगती है।

निम्न संवाद देखिए-

"कल रात आपकी तबीयत क्या खराब हो गई थी ?"

"आपने कैसे जाना ? क्या मैं अस्वस्थ दीख रहा हूँ ?" ह्यूबर्ट के स्वर में हल्की-सी खीझ का आभास था। सब लोग मेरी सेहत को लेकर क्यों बातें करते हैं।"

"कोई खास बात नहीं, वही पुराना दर्द शुरु हो गया था।"

वह स्कूल में संगीत-अध्यापक के पद पर आसीन है। संगीत शिक्षक होने के कारण उसे हर साल स्पेशल सर्विस के अवसर पर 'कॉयर' के संग पियानो बजाना पड़ता था। सबसे पहले वह अपनी घबड़ाहट को छिपाने के लिए रूमाल से नाक साफ किया करता है और फिर वह पियानो बजाता था। पियानो बजाने से उसके फेफड़ों पर हमेशा भारी दबाव पड़ता था और दिल की धड़कन तेज हो जाया करती थी। उसे लगता था कि संगीत के एक नोट को दूसरे नोट में उतारने के प्रयत्न में वह एक अंधेरी खाई पार कर रहा है।

इसी प्रकार 'परिन्दे' कहानी में ह्यूबर्ट ने दर्शन को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है, यथा-"आज चैपल में मैंने जो महसूस किया, वह कितना रहस्यमय, कितना विचित्र था, ह्यूबर्ट ने सोचा। मुझे लगा, पियानो का हर नोट चिरन्तन खामोशी की अन्धेरी खोह से निकलकर बाहर फैली नीली धुन्ध को काटता, तराशता हुआ एक भूला-सा अर्थ खींच लाता है। गिरता हुआ हर 'पाजे' एक छोटी-सी मौत है, मानो घने छायादार व क्षों की कांपती छायाओं में कोई पगडण्डी गुम हो गई हो। एक छोटी-सी मौत जो आने वाले सुरों की अपनी बची-खुची गूंजों की सांसे समर्पित कर जाती है, जो मर जाती है, किन्तु मिट नहीं पाती, मिटती

नहीं, इसलिए मरकर भी जीवित है, दूसरे सुरों में लय हो जाती है।"

वह मि० लतिका को प्रेम-प्रस्ताव हेतु प्रेम-पत्र लिखता है, परन्तु इतना पता चलने पर कि वह मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती थी, जो कि असामयिक काल-कवलित हो गया, तो मि० ह्यूबर्ट अपने प्रेम-पत्र के लिए क्षमा मांगता है और पत्र वापिस लौटाने के लिए निवेदन करता है-

"वह पत्र... उसके लिए मैं लज्जित हूँ। उसे आप वापिस लौटा दें, समझ लें कि मैंने उसे कभी नहीं लिखा था।"

लतिका कुछ समझ न सकी, दिग्भ्रान्त-सी खड़ी हुई ह्यूबर्ट के पीले, उद्विग्न चेहरे को देखती रही।

ह्यूबर्ट ने धीरे से लतिका के कन्धे पर हाथ रख दिया।

कल डॉक्टर ने मुझे सब कुछ बता दिया। अगर मुझे पहले से मालूम होता तो...तो...' ह्यूबर्ट हकलाने लगा।

इतना ही नहीं, ह्यूबर्ट के खराब स्वास्थ्य के बारे में अर्दली करीमुद्दीन भी बताता है-"मैं चला आता तो ह्यूबर्ट साहब की तीमारदारी कौन करता ? दिन-भर उनके बिस्तर से सटा हुआ बैठा रहा....और अब वह गायब हो गए हैं।"

खुदा जाने, इस हालत में कहां भटक रहे हैं। पानी गर्म करने कुछ देर के लिए बाहर गया था, वापिस आने पर देखता हूं कि कमरा खाली पड़ा है।

इतना ही नहीं, अस्वस्थ होने पर भी वह ह्विसकी पीता है और डॉक्टर मुखर्जी उसे छोड़ने के लिए आते हैं-"ह्विस्की की तेज बू का झोंका लतिका के सारे शरीर को झिंझोड़ गया। ह्यूबर्ट की आँखों में सुर्ख डोरे खिंच आये थे, कमीज का कॉलर उलटा हो गया था और टाई की गांठ ढीली होकर नीचे खिसक आई थी।" इसी समय ह्यूबर्ट लतिका को देखकर गीत गुनगुनाने लगता है-"इन ए बैक लेन ऑफ द सिटी, देयर एज ए गर्ल हू लव्ज मी।" वह नशे में इतना अधिक मदमस्त है कि लड़खड़ाता हुआ चलता है और अंधेरी सीढ़ियों पर उलटे-सीधे पैर रखता हुआ चढ़ता है। उसके कमरे में पहुंचकर डॉक्टर उसको बिस्तर पर लिटाकर उसके जूते-मोजे उतरवाता है। वह डॉक्टर मुखर्जी से पूछता है-"डाक्टर क्या मैं मर जाऊंगा।"

कैसी बात करते हो ह्यूबर्ट। डॉक्टर ने हाथ छुड़ाकर धीरे से ह्यूबर्ट का सिर तकिये पर टिका दिया।

इसी प्रकार वह चिन्तन करता है-"डॉक्टर, क्या म त्यु ऐसे ही आती है ? अगर मैं डॉक्टर से पूछूं तो वह हँसकर टाल देगा। मुझे लगता है, वह पिछले कुछ दिनों से कोई बात छिपा रहा है-उसकी हँसी में जो सहानुभूति का भाव होता है, वह मुझे अच्छा नहीं लगता। आज उसने मुझे स्पेशल सर्विस में आने से रोका था-कारण पूछने पर वह चुप रहा था-कौन सी ऐसी बात है, जिसे मुझसे कहने में डॉक्टर कतराता है। शायद मैं शक्की मिजाज होता जा रहा हूं और बात कुछ भी नहीं है। अतः स्पष्ट है कि ह्यूबर्ट शारीरिक द ष्टि से कमजोर, अस्वस्थ व्यक्ति है। उसके तेज चलने से सांस चढ़ने लगती है-ह्यूबर्ट की सांस चढ़ गई थी और वह धीरे-धीरे हांफता हुआ पीछे से आ रहा था।" इसीलिए वह लतिका को कहता है कि 'आप बहुत तेज चलती हैं, मिस लतिका थकान से ह्यूबर्ट का चेहरा कुम्हला गया था। माथे पर पसीने की बूंदें छलक आई थीं।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि ह्यूबर्ट कहानी के प्रमुख पात्रों में से एक है। अस्वस्थ तथा शारीरिक द ष्टि से कमजोर और नशा करने का आदी व्यक्ति है। वह लतिका के प्रेम का आकांक्षी है, इसीलिए वह उसको प्रेम-पत्र लिखता है।

## III. उद्देश्य

पदम्भूषण की उपाधि से अलंकृत व नयी कहानी के पुरोधा श्री निर्मल वर्मा ने अपनी रचनाओं द्वारा समाज को महत्त्वपूर्ण एवं महान सन्देश सम्प्रेषित किए हैं। **डॉक्टर नामवर सिंह** ने निर्मल वर्मा को पहला नया कहानीकार स्वीकारा है तथा साथ ही उनकी रचनाओं के प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-"जिनका कथा-संसारबोध और शिल्प के स्तरों पर विविध एवं लक्ष्य के स्तर पर 'एलीट' है-उसमें परिन्दे जैसे गतिधर्मी लन्दन की एक रान जैसे कठोर वस्तुबोध की एवं पहाड़ जैसी सादगी में ही विशिष्ट सांकेतिक अभिप्राय का निर्वाह करने वाली कहानियां हैं। आधुनिकबोध की उन कहानियों का फलक अत्यन्त विस्त त है और उसके रचनाकारों की द ष्टि अत्यन्त व्यापक है।" इसी प्रकार **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** ने भी वर्मा जी की कहानियों के प्रतिपाद्य पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-"निर्मल वर्मा ने आधुनिकता और आधुनिक मनुष्य को, यउसकी विसंगति और संत्रास को उसके वर्तमान में निहित सभ्यता और संस्कृति की ऐतिहासिक चिन्ताओं और चुनौतियों को, सम्बन्धों की भावुकता के कारण मनुष्य की स्वतंत्रता एवं उसके अस्तित्व के समक्ष उपस्थित खतरों को अत्यन्त गहरे ढंग से मुग्ध कर देने वाली काव्यमय

भाषा में सजीव किया है। कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा ने कहानी में यथार्थ की इकहरी धारणा के वर्चस्व को खंडित किया और कहानियों में भी जीवन के दार्शनिक प्रश्नों को उठाने की कोशिश की। यह दार्शनिकता नितान्त आध्यात्मिकता से भिन्न रही है। हल्लाबोल सामाजिकता से थोड़ी दूरी पर खड़े निर्मल के कहानियों के पात्र, प्रेम प्रकृति और सम्बन्ध, समय और समयातीत के असंख्य अद श्य आन्तरिक और सूक्ष्म यथार्थ के अनुभवों को सच्चा और सजीव अनुभव बताते हैं-कदाचित् इसीलिए उनकी कहानियों को 'एकान्तिक अनुभूतियों' की या अन्तर्मुखी और व्यक्तिपरक कहानियों के रूप में देखने का भी आग्रह किया गया है। 'परिन्दे' उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी है जिसके माध्यम से कहानीकार दर्शन को अभिव्यक्त करते हुए नारी के बिखरने की कहानी का वर्णन करता है। कहानीकार कहीं पर चतुर्थ श्रेणी की कर्मचारियों की अकर्मण्यता व टाल-मटोल करने की प्रव त्ति पर कटाक्ष करता है तो कहीं पर नायिका लतिका के एकनिष्ठ प्रेम को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

कहानीकार निर्मल वर्मा ने प्रस्तुत कहानी 'परिन्दे' के माध्यम से यह सन्देश सम्प्रेषित किया है कि जिस प्रकार से 'परिन्दे' पर्वतीय प्रदेश में जब बर्फ पड़ती है तो वहां से चलकर मैदानी इलाकों में आ जाते हैं और शीत ऋतु समाप्त होने पर फिर अपने निर्धारित स्थानों पर चले जाते हैं। इस प्रकार उनका अपना कोई स्थायी आवास स्थान नहीं है। इसी प्रकार कहानी में लतिका, डॉक्टर मुखर्जी, ह्यूबर्ट, मिस वुड, छात्रावास में रहने वाली लड़कियां आदि स्कूल का स्टाफ एवं छात्रकण शीत ऋतु आने पर या स्कूल की छुट्टियां होने पर अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं और शीत ऋतु समाप्त होने पर पुनः अपने स्कूल को आ जाते हैं। यह संसार एक 'रैन-बसेरा' है। इसमें किसी का भी स्थायी आवास नहीं है। कहानी की नायिका लतिका ने इसी उद्देश्य को अभिव्यक्त करते हुए स्पष्ट किया है-"लतिका को लगा कि जैसे कहीं बहुत दूर बर्फ की चोटियों से परिन्दों के झुण्ड नीचे अनजान देशों की ओर उड़े जा रहे हैं। इन दिनों अक्सर उसने अपने कमरे की खिड़की से उन्हें देखा है-धागे में बन्धे चमकीले लट्टुओं की तरह वे एक लम्बी, टेडी-मेढ़ी कतार में उड़े चले जाते हैं, पहाड़ों की सुनसान नीरवता से परे उन विचित्र शहरों की ओर जहां शायद वह कभी नहीं जायेगी।" गिरीश की म त्यु के बाद लतिका उसकी मधुर स्म तियों में खोयी रह कर वह छात्रावास में रहती है तथा उसे न मौसम का ध्यान है और न समय का-"एक छोटे से हिल स्टेशन पर रहते हुए उसे खासा अर्सा हो गया है, लेकिन कब समय पतझड़ और गर्मियों का घेरा पार कर सर्दी की छुट्टियों की गोद में सिमट जाता है, उसे कभी याद नहीं रहता।" इसी प्रकार लतिका कहानीकार के विचारों की संवाहिका है। वर्मा जी ने 'परिन्दे' कहानी में अस्तित्ववादी दर्शन को भी वाणी प्रदान की है। इसके अन्तर्गत 'क्षण' का अत्यन्त महत्त्व व उपादेयता है। उन्होंने क्षण-अस्तित्ववादी चेतना का महत्त्व निर्धारित करते हुए लिखा है-"वह आँखें मूंदे सोच रही थी, उसी क्षण को जो भय और विस्मय के बीच भिंचा था-बहका-सा पागल क्षण।"

कहानीकार ने लतिका के दिव्य-अलौकिक और एकनिष्ठ प्रेम को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। लतिका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती है, परन्तु वह असामयिक काल-कवलित हो जाता है, परन्तु वह उसकी मधुर स्म तियों को अपने ह्रदय में संजोए रखती है। ह्यूबर्ट के प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देती है तथा गिरीश की स्म तियों को अमूल्य धरोहर के रूप में सुरक्षित रखती है। लेखक लतिका के माध्यम से प्रेम के पावन रूप को प्रतिपादन करते हुए एकनिष्ट प्रेम के महत्त्व को निर्धारित करता है।

निर्मल वर्मा जी ने 'परिन्दे' कहानी में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की टाल-मटोल की नीति व अकर्मण्यता का भी चित्रांकन किया है। कहानीकार ने लिखा है-"करीमुद्दीन होस्टल का नौकर था। उसके आलस और काम टालमटोल करने के किस्से होस्टल की लड़कियों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आते थे।"

इसी प्रकार कहानीकार स्पेशल सर्विस तथा सरमन आदि परम्परागत रूढ़ियों पर भी कटु कटाक्ष करता है। कहानीकार का कहना है-"पता नहीं, मिस वुड को स्पेशल सर्विस का गोरख धन्धा क्यों पसन्द आता है, छुट्टियों में घर जाने से पहले क्या यह जरूरी है कि लड़कियां फादर एल्मण्ड का सर्मन सुने ?" ह्यूबर्ट ने कहा।

पिछले पांच साल से मैं भी सुनता आ रहा हूँ-"फादर एल्मण्ड के सर्मन में कहीं हेर-फेर नहीं होता।" इसी प्रकार सर्मन के समय लड़कियों का खुसर-फुसर करना तथा उसमें नवीनता न होना आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनके कारण स्पेशल सर्विस या सरमन के औचित्य पर कहानीकार प्रश्नचिह्न लगाता है।

कहानीकार डॉक्टर मुखर्जी के माध्यम से युद्ध की विभीषिका पर भी प्रकाश डालना चाहता है। युद्ध के भयंकर परिणामों को रेखांकित करते हुए कहानीकार स्पष्ट करता है-"बर्मा पर जापानियों का आक्रमण होने के बाद वे इस छोटे से पहाड़ी शहर में आ बसे थे।

कुछ लोगों का कहना था कि बर्मा से आते हुए रास्ते में उनकी पत्नी की म त्यु हो गई।" **डॉक्टर मुखर्जी** स्वयं स्पष्ट करते हैं-"बर्मा से आते हुए मेरी पत्नी की म त्यु हो गई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार-सी लगी थी।' इस प्रकार कहानीकार युद्ध के भयंकर परिणामों व शरणार्थियों के दयनीय जीवन का चित्रांकन डाक्टर मुखर्जी के माध्यम से कर डालते हैं। इसी प्रकार डॉक्टर मुखर्जी भी संसार को 'रैन बसेरा' मानते हैं और स्पष्ट घोषणा करते हैं-"यहां आया था कुछ दिनों के लिए फिर मुद्दत हो गई और टिका रहा। जब कभी जी उबेगा, कहीं चला जाऊंगा, जड़ें कहीं नहीं जमती तो पीछे भी कुछ नहीं छूट जाता।"

कहानीकार 'परिन्दे' कहानी के माध्यम से आधुनिक समाज में मानवीय सम्बन्धों का भी खुलासा करता है। लतिका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती है तथा उसी के कारण पूरे स्कूल में बदनाम होती है, लेकिन गिरीश के असामयिक काल-कवलित हो जाने के कारण भी उसकी मधुर स्म तियों को अपने हृदय में संजोकर रखती है। ह्यूबर्ट के प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकृत करके वह अपने एकनिष्ठ प्रेम को उजागर करती है। इससे स्पष्ट है कि लतिका गिरीश नेगी के प्रति समर्पित है। ह्यूबर्ट लतिका से प्रेम करता है और उसको प्रेम-पत्र भी लिखता है, परन्तु लतिका उसके प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देती है। इसी प्रकार डॉक्टर मुखर्जी भी अपनी पत्नी से असीम-अनन्त प्रेम करते हैं और स्पष्ट घोषणा करते हैं कि-"बर्मा से आते हुए जब मेरी पत्नी की म त्यु हुई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार-सी लगी थी। आज इस बात को अरसा गुजर गया और जैसे आप देखती हैं, मैं जी रहा हूं और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकिचाता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था-आज भी करता हूं। इसी प्रकार वर्मा ने 'परिन्दे' कहानी में नर-नारी के बीच सम्बन्धों की व्याख्या प्रस्तुत की है। इसी प्रकार जूली किसी मिलिटरी अफसर से प्रेम करती है, लेकिन क्योंकि लतिका को इस क्षेत्र में असफलता मिलती है। इससे वह जूली के पत्र को उसे देती नहीं है तथा उसे प्रेम-पथ पर अग्रसर होने से रोकती है, लेकिन कालान्तर में कहानी के अन्त में उसका प्रेम-पत्र उसके तकिये के नीचे रखकर आती है।

इसी प्रकार कहानीकार ने 'परिन्दे' कहानी में अपनी दार्शनिकता को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। डॉक्टर मुखर्जी की निम्न पंक्तियों में उनका दर्शन ही अभिव्यक्त हुआ है-"कोई पीछे नहीं है, यह बात मुझमें एक अजीब किस्म की बेफिक्री पैदाकर देती है। लेकिन कुछ लोगों की अन्त तक पहेली बनी रहती है...शायद वे जिन्दगी से बहुत उम्मीद लगाते थे। उसे ट्रैजिक भी नहीं का जा सकता, क्योंकि आखिरी दम तक उन्हें मरने का अहसास नहीं होता।" इसी प्रकार ह्यूबर्ट की निम्न पंक्तियों के भी दर्शन को ही अभिव्यक्ति मिली है-"आज चैपल में मैंने जो महसूस किया, वह कितना रहस्यमय, कितना विचित्र था, ह्यूबर्ट ने सोचा। मुझे लगा, पियानों का हर नोट चिरन्तन खामोशी की अंधेरी खोह से निकलकर बाहर फैली नीची धुंध को काटता, तराशता हुआ एक भूला-सा अर्थ खींच लाता है। गिरता हुआ हर 'पॉन' एक छोटी-सी मौत है, मानों घने छायादार व क्षों की कांपती छायाओं में कोई पगडण्डी गुम हो गई हो। एक छोटी-सी मौत जो आने वाले सुरों की अपनी बची-खुची गूंजों की सांसें समर्पित कर जाती हैं, जो मर जाती हैं, किन्तु मिट नहीं पाती, मिटती नहीं, इसलिए मर कर भी जीवित है, दूसरे सुरों में लय हो जाती है।"

इसी प्रकार कहानीकार ने हास्य और व्यंग्य की भी संजीव अभिव्यक्ति की है। डॉक्टर मुखर्जी हँसौड़-मजाकिया प्रव त्ति का व्यक्ति है तथा वह लतिका के यह पूछने पर कि तुम पिकनिक में कहां रह गए थे, स्पष्ट कहता है-"दोपहर-भर सोता रहा-मिस वुड के संग। मेरा मतलब है मिस वुड पास बैठी थी। मुझे लगता है, मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती है। कोई भी मजाक करते समय डॉक्टर अपनी मूंछों के कोनों को चबाने लगता है। "क्या कहती थी ?" लतिका ने थर्मस से कॉफी को मुंह में उड़ेल लिया।

शायद कुछ कहती, लेकिन बदकिस्मती से बीच में ही मुझे नींद आ गई। मेरी जिन्दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम-प्रसंग कम्बख्त इस नींद के कारण अधूरे रह गए हैं।"

इस प्रकार कहानीकार ने 'परिन्दे' कहानी के माध्यम से नर-नारी के सम्बन्धों की व्याख्या की है। नारी के बिखरने का सजीव चित्रण किया है और साथ ही युद्ध की विभीषिका पर भी प्रकाश डाला है।

## व्याख्या

***"उसी क्षण पियानों पर शोपांका नौक्टर्न ह्यूबर्ट की उंगलियों के नीचे से फिसलता हुआ धीरे-धीरे छत के अंधेरे***

***में घुलने लगा-मानो जल पर कोमल स्वतिनल उर्मियों, भंवरों का झिलमिलाता जाल बुनती हुई दूर-दूर तक किनारों तक फैलती जा रही थी। लतिका को लगा कि जैसे कहीं बहुत दूर बर्फ की चोटियों से परिन्दों के झुण्ड नीचे अनजान देशों की ओर उड़े जा रहे हैं। इन दिनों अक्सर उसने अपने कमरे की खिड़की से उन्हें देखा है-धागे में बंधे चमकीले लट्टुओं की तरह वे एक लम्बी, टेढ़ी-मेढ़ी कतार में उड़े चले जाते हैं, पहाड़ों की सुनसान नीवरता से परे, उन विचित्र शहरों की ओर जहां शायद वह कभी नहीं जाएगी।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के पुरोधा, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने मानव की तुलना भी एक परिन्दे से की है जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं। नायिका लतिका किसी पहाड़ी स्कूल में अध्यापिका के पद पर कार्यरत है और होस्टल में ही रहती है। ह्यूबर्ट और डॉक्टर मुखर्जी लतिका को निमन्त्रण देने के लिए आते हैं कि उसके कमरे में एक छोटा-सा कन्सर्ट होगा, जिसमें ह्यूबर्ट शेपां और चाइकोल्सकी के कम्पोजिशन बजाएगा और क्रीम कॉफी पी जाएगी। डॉक्टर मुखर्जी लतिका से पूछता है कि आप इस साल भी छुट्टियों में यहीं रहेंगी। डॉक्टर का प्रश्न निरन्तर रहा कि तभी संगीत की आवाज हवा में तैरने लगी।

**व्याख्या** - उसी क्षण मि० ह्यूबर्ट की उंगलियों के नीचे से निकलकर धीरे-धीरे छत के अन्धकार में विलीन होने लगा। वहां सर्वत्र अन्धकार व्याप्त था और संगीत की मधुर धुन सारे वातावरण में इस प्रकार से व्याप्त हो रही थी जैसे मानो जल में कोमल-सुनहली स्वप्नों की भांति मधुर एवं आकर्षक लहरों का झिलमिलाता जाल बुनती हुई दूर-दूर किनारों तक फैल जाती है, ठीक इसी प्रकार रात्रि के गहन अन्धकार में संगीत की मधुर धुन दूर-दूर तक फैल रही थी। लतिका को इस मधुर धुन से ऐसा अहसास हुआ कि जैसे परिन्दे उड़-उड़कर अपने-अपने देशों को लौट रहे हैं। जैसे भयंकर शीत ऋतु आने पर या बर्फ पड़ने पर परिन्दे या पक्षी वहां से उड़कर मैदानी इलाकों में आ जाते हैं और सर्दी बीत जाने पर वे वापस अपने स्थल को लौट आते हैं। इसी प्रकार सर्दी आने पर स्कूल बन्द हो जाता है और छात्रावास खाली हो जाता है तथा विद्यार्थी अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं और सर्दियां समांप्त होने पर वे वापिस लौट आते हैं। इन्हीं दिनों लतिका ने अक्सर अपने कमरे की खिड़की में उन्हीं परिन्दों को आकाश में उड़ते हुए तथा अपने गन्तव्य स्थल की ओर जाते हुए देखा था। वे आकाश में उड़ते परिन्दे धागे से बंधे हुए चमकीले लट्ठों की तरह एक लम्बी, टेढ़ी-मेढ़ी कतार में उड़ते चले जाते हैं। आकाश में उड़ते हुए ये परिन्दे चमकीले लट्टुओं की भांति अत्यन्त आकर्षक व सुन्दर लगते हैं। ये अत्यन्त सुन्दर व आकर्षक पक्षी पहाड़ों की सुनसान नीरवता का परित्याग करके उन विचित्र शहरों की ओर जाते हैं जहां लतिका कभी भी नहीं जाएगी।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

3. प्रकृति चित्रण हुआ है।

4. पक्षियों का सर्दियों में पहाड़ों की नीरवता को परित्याग कर घर के मैदानी इलाकों में लौट जाते हैं, लेकिन कहानी की नायिका लतिका वहां से पलायन नहीं करती।

5. कहानी के प्रतिपाद्य को स्पष्ट किया गया है।

6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम है।

***"लतिका को लगा कि जो वह याद करती है, वही भूलना भी चाहती है, लकिन जब सचमुच भूलने लगती है, तब उसे भय लगता है कि जैसे कोई उसकी किसी चीज को उसके हाथों से छीने लिए जा रहा है, ऐसा कुछ जो सदा के लिए खो जाएगा। बचपन में जब कभी वह अपने किसी खिलौने को खो देती थी, तो वह गुमसुम-सी होकर सोचा करती थी, कहां रख दिये मैंने। जब बहुत दौड़-धूप करने पर खिलौना मिल जाता तो वह बहाना करती कि अभी उसे ही खोज रही है कि वह अभी मिला नहीं है। जिस स्थान पर खिलौना रखा होता, जान-बूझकर उसे छोड़कर घर के दूसरे कोनों में उसे खोजने का उपक्रम करती। तब खोई हुई चीज याद रहती, इसलिए भूलने का भय नहीं रहता था।"***

प्रसंग - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी श्रेष्ठ कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में वर्मा जी ने बिखरी हुई आधुनिक नारी का चित्रण किया है। लतिका गिरीश नेगी से प्रेम करती है, लेकिन वह असामयिक काल-कवलित हो जाता है और वापिस लौट नहीं पाता जिसके कारण वह उसकी मधुर स्म तियों में खोयी रहती है। अब उसे एकाकीपन खलता नहीं है, बल्कि वह उसकी अभ्यस्त हो गई है। वह उसकी मधुर स्म तियों का

स्मरण करते हुए चिन्तन करती है।

**व्याख्या** - लतिका को ऐसे लगा कि जो वह याद करती है, उसे वह भूलना भी चाहती है, अर्थात् वह हमेशा गिरीश की मधुर स्म तियों में खोयी रहती है और वे मधुर स्म तियां उसे कचोटती हैं, पीड़ा देती है, इसीलिए वह उन स्म तियों को भूलाना चाहती है, परन्तु जब वह सचमुच भूलने लगती है तो उसे डर लगने लगता है कि कहीं कोई उसकी किसी मधुर वस्तु को उसके हाथों से छीनने जा रहा है। उसे ऐसा लगता है कि मानो उसके जीवन की अनमोल धरोहर या अनमोल वस्तु है-गिरीश की मधुर-स्म तियां, जिन्हें जीवन-भर संजोकर रखना चाहती है, परन्तु जब वह भूलना चाहती है तो ऐसा लगता है कि उसकी मधुर वस्तु उसके हाथों से छिनती जा रही है। बचपन में जब कभी उसका खिलौना गुम हो जाया करता था तो वह गुमसुम-सी होकर सोचा करती थी कि मैंने खिलौना कहां रख दिया, परन्तु बहुत प्रयास करने पर खोजने के बाद भी वहयह बहाना किया करती थी कि वह अभी भी खिलौना ढूंढ रही है। जिस स्थान पर खिलौना रखा होता था, उस स्थान से अलग हटकर घर के दूसरे कोनों में उसको ढूंढ़ा जाता था इससे खोयी हुई चीज याद रहती थी और उसका स्थान भी याद रहता था कि यहां वह अमुक चीज रखी हुई थी। लेकिन अब तो परिस्थितियां बिल्कुल विपरीत हैं, यथा अब तो न वह चीज मेजर गिरीश नेगी मिली है और भूल जाने का भी डर यथावत् बना हुआ है। वह स्पष्ट करती है कि अब जीवन-भर गिरीश नहीं मिलेगा, क्योंकि संसार में उसका मिलन असंभव है। यदि उन मधुर स्म तियों को भूल जाने का उपक्रम करती हूं तो वास्तव में उनकी स्म तियों को, उनको भूला जाऊंगी और शायद फिर दोबारा याद न आए।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
3. स्म तियों के अस्थायित्व पर प्रकाश डाला है।
4. लतिका के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है।
5. लतिका की विस्मरण शक्ति पर भी प्रकाश डाला गया है।
6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***"शायद कौन जाने...शायद जूली का यह प्रथम परिचय हो, उस अनुभूति से, जिसे कोई भी लड़की बड़े चाव से संजोकर, संभालकर अपने में छिपाये रहती है, एक अनिवर्चनीय सुख जो पीड़ा लिए हैं, पीड़ा और सुख को डुबोती हुई उमड़ते ज्वार की खुमारी...जो दोनों को अपने में समा लेती है... एक दर्द, जो आनन्द से उपजा है और पीड़ा देता है।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी का पुरोधा, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने नारी के बिखराव का चित्रण किया है लतिका गिरीश नेगी से प्रेम करती है, परन्तु वह असामयिक काल-कवलित हो जाता है जिससे वह उसकी मधुर स्म तियों में खोयी रहती है। स्कूल की छात्रा जूली भी किसी मिलिट्री अफसर से प्रेम करती है और वह उसके साथ घूमती देखी गई है। जूली के नाम आए पत्र को पढ़ने पर पता चलता है कि वह किसी मिलिटरी अफसर से प्रेम करती है। लतिका उसके आए पत्र को देखकर छुट्टियों के बाद मिलने का आदेश देती है। बाद में सोचती है कि कहीं वह (लतिका) अपने अभाव का बदला जूली से तो नहीं ले रही है। वह सोचती है कि हो सकता है यह जुली का प्रथम प्रेम हो।

**व्याख्या** - लतिका चिन्तन करती है कि हो सकता है कि जूली का यह प्रथम प्रेम हो। प्रथम प्रेम की जीवन में बड़ी महत्ता होती है, क्योंकि प्रेम की पहली अनुभूति को प्रत्येक लड़की अपने हृदय में अनमोल निधियां धरोहर के समान संजोकर रखती है तथा हमेशा उसकी मधुर स्म तियों में खोयी रहती है। वह अपने प्रथम प्रेम को भुला नहीं पाती और न ही किसी के समक्ष व्यक्त कर पाती है। इसलिए जूली का यदि यह पहला प्यार होगा तो उसकी अनुभूति उसे आनन्दित करेगी, अतः उसका पत्र उसको दे देना चाहिए। इस पहले प्यार में सुख-दुःख का अद्भुत समन्वय रहता है, जिसको वाणी के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रेम की मधुर स्म तियां उसको आनन्दित करती है और वियोग पीड़ा-कष्ट पहुंचाता है। अतः उसके हृदय में सुख-दुःख का अद्भुत समन्वय रहता है। उस सुख या दुःख को केवल अनुभव किया जा सकता है तथा ईश्वर की भांति शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। यौवन की मादकता-नशा में सुख और दुःख दोनों ही डूब जाते हैं। प्रथम प्रेम से एक ऐसी अनूठी अनुभूति उत्पन्न होती है जो कि मधुर-पीड़ा को विकसित करती है। प्रेमी की मधुर स्म तियों में खोए रहने से तो

लड़की को आनन्द की अनुभूति होती है, परन्तु वियोग के कारण पीड़ा की अनुभूति होती हैं अतः पहले प्यार से सुखऔर दुःख दोनों का परिचय होता है।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

2. सार्वभौमिक-सार्वकालिक सत्य का उद्‌घाटन हुआ है कि प्रथम प्रेम से सुख-दुःख दोनों की अनुभूति होती है।
3. नवयुवती की मानसिक स्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है।
4. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
5. मिलन के सुख और वियोग की पीड़ा का सुन्दर चित्रण हुआ है।
6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***"दोपहर की उस घड़ी में मीडोज अलसाया, उंघता-सा जान पड़ता था। हवा का कोई भूला-भटका झोंका...चीड़ के पत्ते खड़खड़ा उठते थे। कभी कोई पक्षी अपनी सुस्ती मिटाने झाड़ियों से उड़कर नाले के किनारे बैठ जाता था, पानी में सिर डुबोता था, फिर उबकर हवा में दो-चार निरुद्देश्य चक्कर काटकर दुबारा झाड़ियों में दुबक जाता था। किन्तु जंगल की खामोशी शायद कभी चुप नहीं रहती। गहरी नींद में डूबी सपनों-सी कुछ आवाजें नीरवता के हल्के-झीने परदे पर सलबटें बिछ जाती हैं। मूक लहरों-सी हवा में तिरती है...मानो कोई दबे पाँव झाँककर अद श्य संकेत कर जाता है...देखो, मैं यहां हूँ।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने प्रकृति का सजीव चित्रण किया है तथा साथ ही प्रेम का भी मार्मिक चित्रण किया है। छात्रावास की लड़कियां पिकनिक के लिए मिडोज पर जाती हैं। दोपहर का समय है और नीरवता सर्वत्र व्याप्त है। लड़कियां लंच लेकर इधर-उधर घूम रही हैं तथा छोटे-छोट दल मीडोज में बिखर गए हैं। ऊंची क्लास की कुछ लड़कियां चाय का पानी गर्म करने के लिए पेड़ों पर चढ़कर सूखी टहनियां तोड़ रही हैं।

**व्याख्या** - दोपहर की नीरवता सर्वत्र मीडोज में व्याप्त है और उस समय मीडोज भी आलस्य में उंघता-सा जान पड़ता था, क्योंकि लड़कियां मीडोज में छोटे-छोटे दल बनाकर घूम रही थी, अर्थात् जब उनकी गतिविधियां शोर-शराबा चलता तो उसमें सजीवता व जाग्रतावस्था द ष्टिगोचर होती, अन्यथा ऐसा लगता था कि दोपहर की उस घड़ी में मीडोज आलस्य भाव से युक्त उंघ रहा है। हवा भी बन्द थी, लेकिन कभी-कभी हवा का कोई भूला-भटकाझों का आ जाता था तो चीड़ के पत्ते खड़खड़ा जाते थे। बीच-बीच में कभी-कोई पक्षी अपने आलस्य भाव को दूर करने के लिए उड़कर झाड़ियों से निकलकर नाले के ऊपर आकर बैठ जाता था और पानी में सिर डुबोता और फिर ऊबकर हवा में दो-चार चक्कर बेकार में काटकर पुनः उन्हीं झाड़ियों में जाकर दुबक जाता, किन्तु जंगल में सर्वत्र नीरवता व्याप्त नहीं रहती, क्योंकि कोई न कोई आवाज वहां से आती रहती है। वहां कीड़े-मकोड़े या झींगुरों की आवाज नीरवता को भंग करती रहती है। जिस प्रकार से सपने में डूबा हुआ व्यक्ति कभी भी चुप या पूर्णतः मौन नहीं रहता और सपने में कुछ आवाजों का मौन लहरें तैरती रहती हैं, ठीक इस प्रकार रहस्यमय पैरों की आहट किए बिना आकर नियति का संकेत कर जाता है। इस प्रकार कहानीकार प्रकृति के रहस्यात्मक संकेत को अभिव्यक्त करता है।

**विशेष** - 1. भाषा सहज, सरल एवं सुबोध है। प्रौढ़ साहित्यिक भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. प्रकृति के रहस्यात्मक स्वरूप का उद्‌घाटन हुआ है।
3. मानवीकरण अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
4. प्रकृति का सजीव-मार्मिक वर्णन हुआ है।
5. भावपक्ष व कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***मीडोज.....पंगडंडियों, पत्तों, छायाओं से घिरा-द्वीप, मानों कोई घोंसला दोहरी घाटियों के बीच आ दबा हो। भीतर घुसते ही पिकनिक के काले आग में झुलसे हुए पत्थर, अधडाली टहनियां, बैठने के लिए बिछाए गए पुराने अखबारों के***

***टुकड़े इधर-उधर बिखरे हुए दिखाई दे जाते हैं। अक्सर टूरिस्ट पिकनिक के लिए यहां आते हैं। मीडोज को बीच में काटता हुआ टेड़ा-मेढ़ा बरसाती नाला बहता है, जो दूर से धूप में चमकता हुआ सफेद रिबन सा दिखता है।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी बहुचर्चित कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने नारी के बिखराव का चित्रण किया है। छात्रावास की लड़कियां मीडोज नामक पिकनिक स्थल पर पिकनिक मनाने के लिए जाती हैं। लेखक ने मीडोज के प्राकृतिक सौन्दर्य का सजीव और मार्मिक चित्रण किया है।

**व्याख्या** - मीडोज में पर्यटकों के आने-जाने से घास में अनेक पगडण्डियां बन गई हैं, छायादार पेड़ों की छाया मीडोज में सर्वत्र फैली हुई है। छायादार पेड़ों के पत्ते सूखकर नीचे झड़ गए हैं और भूमि पर सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। मीडोज नामक भूखण्ड जो कि छायादार पेड़ों और हरियाली से युक्त एक द्वीप की भांति सुशोभित हो रहा था, इस प्रकार शोभा दे रहा था मानो कोई घोंसला दोहरी घाटियों के बीच आकर दब गया है। मीडोज नामक पर्यटक स्थल पर अन्दर प्रवेश करते ही आग में झुलसे हुए काले पत्थर सुशोभित होते हैं, क्योंकि पर्यटक आकर आग जलाते हैं और जिसके कारण ये पत्थर काले पड़ गए हैं। चारों ओर आधी जली हुई लकड़ियां-टहनियां और बैठने के लिए बिछाए गए पुराने अखबारों के टुकड़े सर्वत्र मीडोज में बिखरे पड़े हैं। यहां पर्यटक आकर मीडोज मे सर्वत्र गन्दगी फैला देते हैं। पर्यटक यहां पिकनिक हेतु आते रहते हैं, जिसके कारण यहां चारों ओर अखबारों के टुकड़े, अधजली लकड़ियां आदि बिखरी पड़ी हैं। मीडोज के ठीक बीच में एक बरसाती नाला बहता है जो मीडोज को दो भागों में बांटता है। टेढा-मेढ़ा होने के कारण तथा जलयुक्त होने के कारण दूर से देखने पर ऐसा लगता था कि मानो दूर से कोई सफेद रिबन चमक रहा हो। इस प्रकार वर्मा जी ने मीडोज नामक पर्यटक स्थल के प्राकृतिक सौन्दर्य के पर्यटकों के कारण फैली गन्दगी का वर्णन किया है।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
3. मीडोज के प्राकृतिक सौन्दर्य का यथार्थपरक चित्रण किया है।
4. पर्यटक स्थलों पर व्याप्त गंदगी का भी सजीव चित्रण किया है।
5. उपमा, मानवीकरण व उत्प्रेक्षा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
6. मीडोज की भौगोलिकता और वहां के परिवेश का यथार्थ चित्रांकन हुआ है।

***"कभी-कभी मैं सोचता हूँ मिस लतिका, किसी चीज को जानना यदि गलत है, तो जानबूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह उससे चिपटे रहना भी गलत है। बर्मा से आते हुए जब मेरी पत्नी की म त्यु हुई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार-सी लगी थी। आज इस बात को अरसा गुजर आया और जैसा कि आप देखती हैं, मैं जी रहा हूं और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था-आज भी करता हूँ।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर, पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। कहानीकार निर्मल वर्मा प्रस्तुत कहानी में नारी के बिखराव का सजीव चित्रण किया हैं डॉक्टर मुखर्जी हास्य और विनोदी स्वभाव के व्यक्ति हैं तथा मजाकिया लहजे में बात करके सभी को हास्य रस में सराबोर कर देते हैं। बर्मा के ऊपर जब जापानियों ने आक्रमण किया तो डॉक्टर मुखर्जी भारत में आकर रहने लगे। वे स्कूल में हाइजीन फिजिलयालॉजी पढ़ाया करते थे और छात्रावास में ही रहते थे। उनकी पत्नी की बर्मा से भारत आते हुए म त्यु हो गई थी। उनका घर जला दिया गया था और वे मस्तमौला की तरह जीवन जीते हैं। लतिका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती है और उनकी मधुर स्म तियों में खोयी रहती है। डॉक्टर मुखर्जी लतिका को समझाते हुए कहते हैं-

**व्याख्या** - कभी-कभी लतिका मैं सोचता हूँ कि किसी चीज के बारे में ज्ञान न होना या जानकारी न होना भी गलत है। लेकिन साथ ही उस चीज को जान-बूझकर न भुलाना भी अनुचित है, क्योंकि किसी भी अप्राप्य वस्तु या जीवन को दुःखमय बना देने वाली घटना को जान-बूझकर भुला देने का प्रयत्न न करके बलपूर्वक याद रखने का प्रयास करना भी गलत है। किसी घटना को जान-बूझकर भुलाना भी अनुचित है और किसी तथ्य को बलात् स्मरण रखना भी अनुचित है। किसी तथ्य या वस्तु के प्रति भी जोंक की तरह चिपटना भी अनुचित है, क्योंकि किसी वस्तु के प्रति आग्रह या विग्रह दोनों ही अनुचित हैं। डॉक्टर

मुखर्जी स्पष्ट करते हैं कि जब जापानियों ने बर्मा के ऊपर आक्रमण किया तो वे अपनी पत्नी को साथ लेकर भारत आ गए। रास्ते में मेरी पत्नी की म त्यु हो गई तो मुझे अपना जीवन बेकार लगने लगा, क्योंकि पत्नी के बिना मेरा जीवन रसहीन, निरर्थक व शून्य लगने लगा था। आज इस बात को हुए काफी समय बीत गया है और आप देख रहे हैं कि मैं परिवार या पत्नी के बिना येन-केन-प्रकारेण गुजारा कर रहा हूं। यदि मेरी आयु अधिक न होती तो मैं विवाह कर लेता, क्योंकि मेरी आयु अधिक हो गई है, अन्यथा मैं विवाह कर लेता और मेरा जीवन सुखमय होता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता। मैं अपनी पत्नी की मधुर स्म तियों को संजोकर रखता हूं और आज भी मैं अपनी पत्नी से प्रेम करता हूँ।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
3. दार्शनिक तथ्य की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।
4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
5. डॉक्टर मुखर्जी का पत्नी के प्रति आत्मीयता अभिव्यक्त हुई है।
6. डॉक्टर मुखर्जी के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

# बयान

## (कमलेश्वर)

## तात्त्विक विवेचन

नई कहानी के पुरोधा कहानीकार कमलेश्वर ने अपनी प्रारम्भिक पहचान कस्बाई से जुड़े कथाकार के रूप में बनाई है। सामान्यजन की जिन्दगी के विविध पहलु उनकी कहानियों में निरुपित हुए हैं और पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध यत्र-तत्र शंखनाद भी हुआ है। उन्होंने आधुनिक समस्याओं को नये परिवेश में रखने और देखने का प्रयास किया है और वे अपनी रचनाओं में जनसाधारण को खोजने का सफल प्रयास करते हैं। 'बयान' के बारे में **श्री रामप्रसाद पहाड़ी** का कहना है-'बयान' कहानी एक नारी के अन्तर्मन की कहानी है। भारतीय न्याय-व्यवस्था में अपराधिनी नारी अपने वकील, सरकारी वकील, पुलिस के गवाहों आदि से घिरी, आज की नारी की मुखर वाणी में न्यायाधीश के आगे अपनी बात कहती है। जीवन की परिस्थितियों से आज तक संघर्ष करती रही है और आज उसका भविष्य एक प्रश्नचिह्न बन गया है। इस रचना में कथानक है, परिस्थितियां हैं, घटनाएं हैं और वातावरण की एक प्रवाहशील गति है। नई कहानी की कसौटी पर कसने के बाद भी हम उसे प्रेमचन्द-परम्परा की कहानी मानेंगे।"

**1. कथानक -**

कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में जहां हमारी सामाजिक व्यवस्था पर कटाक्ष किया है, वहां न्यायिक, राजनीतिक व्यवस्था को कटघरे में खड़ा किया है। राजनीति के घिनौने रूप का चित्रांकन कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि यथार्थ कटु वास्तविकता का चित्रण करने से मन्त्री महोदय नाराज हो जाते हैं और नायक को नौकरी से हटवा दिया जाता है जो कालान्तर में आत्महत्या के रूप में परिणत हो जाता है। कहानीकार लिखता है-"उन्हीं दिनों एक घटना हो गई थी। थार के रेगिस्तान को रोकने के सम्बन्ध में किसी मंत्री जी ने कोई बयान दिया था। शायद यह कहा गया था कि मीलों जंगल रोपकर रेगिस्तान का पूरब की ओर बढ़ना रोक दिया गया है। ये उस जंगल की तस्वीरें लाएं, उनमें जंगल कहीं नहीं था। रेगिस्तान ही रेगिस्तान था। पेड़ लगाए जरूर गए थे, पर वे सब सूख गए थे। गलती से वे तस्वीरें छप गई थीं। विरोधी दल के किसी सदस्य ने उन तस्वीरों का हवाला देकर मुसीबत खड़ी कर दी थी। यह सब शायद लोकसभा में ही हुआ था। मन्त्री जी का बयान उनकी तस्वीरों से मेल नहीं खाता था। आदमी से गलती हो जाती है, इनसे भी हो गई थी, पर इस गलती पर उन्हें बहुत डांटा-फटकारा गया था। मन्त्री जी ने इन्हें हटा देने का आर्डर कर दिया था।" लेखक ने राजनीति के कुत्सित-विकृत रूप का चित्रांकन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि मानव का अस्तित्व को समाप्त करने में राजनीति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान हैं सत्य के लिए नायक को अपने प्राणोत्सर्ग करने पड़ते हैं-इस तथ्य की भी सुन्दर-सजीव अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार लेखक राजनीति में किस प्रकार से निर्दोष व्यक्तियों को दण्डित करते हैं-इसका भी सजीव-मार्मिक चित्रांकन है। कहानीकार कमलेश्वर बदलते हुए मानवीय सम्बन्धों की विसंगतियों पर फब्तियां कसने में भी सिद्धहस्त हैं।

**2. चरित्र-चित्रण -**

कमलेश्वर की 'बयान' कहानी के पात्रों का चरित्र बहुत प्रभावी है। 'बयान' कहानी की नायिका का पति सामाजिक अन्याय-अत्याचार के कारण आत्महत्या करने के लिए विवश है तथा उसकी आत्महत्या के कारणों को खोजता हुआ न्यायालय में नायिका से ऊल-जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं। नायिका के विवाहपूर्व सम्बन्धों को सन्देह की द ष्टि से देखते हुए उससे अनैतिक और अव्यवहारिक प्रश्न पूछे जाते हैं। जब न्यायिक व्यवस्था उनके सम्बन्धों को सन्देह की द ष्टि से देखते हैं तो नायिका स्पष्ट कहती है-"जी हां, यह सच है। शादी से पहले मैं बिशन को चाहती थी, लेकिन इसका इस मामले से क्या लेना-देना है ? झूठ-सच के कुलाबे मत मिलाइये। मैं भगवान का वास्ता देकर कहती हूं.... इसका कोई सम्बन्ध इस हादसे से नहीं है। भगवान के लिए मुझे जलील मत कीजिये।" लेखक बहरे-अन्धे कानून पर कटाक्ष करता हुआ स्पष्ट करता है कि नारी से न्यायालय में अनैतिक-अमर्यादित प्रश्न पूछकर उसे जलील किया जाता है तथा नायिका स्पष्ट कहती है कि-"यह सरासर गलत है...आप लोग गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक कैसे पहुंचेगे ? इन सब फिजूल की बातों से आप उनकी मौत की वजह नहीं ढूंढ सकते। शादी से पहले का, बादल के टुकड़े की तरह तैर कर गुजरा हुआ इश्क...उस प्रेम की काली परछाईयां... पति-पत्नी की कलह, छोटे-मोटे झगड़े, घरवालों से तनाव या पड़ोसियों से मनमुटाव-ये सब बड़ी मामूली बातें हैं। आप अभी तक इन्हीं के सहारे सच्चाइयों तक पहुंचने में लगे हैं। इनसे कुछ भी हासिल नहीं होगा।"

**3. संवाद -**

इस कहानी की संवाद योजना में भी विशिष्टता द ष्टिगोचर होती है। कहानी में प्रश्न तो है ही नहीं, बल्कि उनके उत्तरों से ही प्रश्नों की कल्पना की जाती है। अतः इसे संवाद का एक नया प्रयोग कहा जा सकता है। यथा-

"बच्चे के आने से हम कुछ दिनों के लिए ताजा हो गए थे।

नहीं, शराब उन्होंने कभी नहीं पी।

विज्ञापन कम्पनी में भी नहीं।

मॉडेल-सॉडेल लेकर कभी घर नहीं गए।

जी हां, कभी घर से बाहर नहीं रहे। हर रात घर में ही गुजारी।

जी हां, किस्मत के लिए कभी दोषी नहीं ठहराया।

बहुत अच्छी तरह पेश आते थे।

तस्वीरें ! कोई चार छः हजार होगी, पर सब सरकारी तस्वीरें हैं।

हां, वे बहुत तकलीफ के दिन थे।

दो सौ रुपए मिलता था।

जी बिल्कुल ! उन्हीं दिनों मुझे नौकरी करनी पड़ी।"

इस प्रकार कहानीकार ने अपनी कार यात्री प्रतिभा से केवल उत्तर ही प्रस्तुत किए हैं और प्रश्नों को तो केवल कल्पना के सहारे ही छोड़ दिया है।

**4. भाषा-शैली -**

कमलेश्वर की भाषा सरलता एक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है। वे आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसमें उर्दू और अंग्रेजी के शब्द बहुधा मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में यह वह भाषा है जिसका आजकल आमतौर पर पढ़े-लिखे लोग बातचीत में प्रयुक्त करते हैं। यथा-"मन्त्री जी ने इन्हें हटा देने का आर्डर कर दिया था।" इस प्रकार अंग्रेजी के शब्दों में प्रेस, इन्फारमेशन ब्यूरो, फोटोग्राफर, मॉडल, फैक्टरियां, रेलवे लाइनों, सैशन, बाथरूम, डार्करूम, डॉक्टर, ब्लैकमेल, टेलीलेन्स, कार्य, स्टीग लिट्ज, स्टाइशन, स्ट्रण्ड, वेस्टन, स्मिथ, पाल, प्रिंट तथा उर्दू के शब्दों में-तफसील, आईना, वजूद, कतई, तनख्वाह, जुमले, गैर-वाजिब, लमहे, हिकारत आदि प्रयुक्त हुए हैं। नई कहानी की भाषा के बारे में **कमलेश्वर** का कहना है-"आदर्शों, संदेशों, उपदेशों, आश्वासनों, धन्यवादों, रिश्तों, प्रतिवादों आदि सभी की भाषा उसके लिए झुठी और बेमानी हो चुकी थी। जीवन की गति इतनी तीव्र और संवेदनों की उम्र इतनी क्षणिक हो गई थी कि नये कहानीकार की समझ में यह नहीं आता था कि किस भाषा में बात करें। प्रेम जैसा शब्द इन बदलती हुई स्थितियों में प्रेम की अनुभूति नहीं बना देता।" शैली की द ष्टि से उन्होंने विश्लेषणात्मक शैली प्रयोग की है।

**5. उद्देश्य -**

इस प्रकार कहानीकार कमलेश्वर का प्रमुख प्रतिपाद्य तो भारतीय न्यायिक व्यवस्था पर कटु कटाक्ष करते हुए उसकी धज्जियां उडाना है, क्योंकि नारियों से असम्बन्धित उल-जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं, शब्दों की मनमानी व्याख्याएं की जाती हैं तथा साथ ही सामाजिक व्यवस्था पर भी तीखे प्रहार करता है। कहानीकार ने राजनीति के कुत्सित-घिनौने रूप का चित्रांकन करते हुए देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था की भी पोल खोली है।

शिल्प-विधान की नव्यता भी इस कहानी की प्रमुख विशिष्टता है। कहानीकार ने शिल्प के अद्भुत प्रयोग द्वारा एक ही पात्र से बहुत सारे पात्रों का निर्वाह कर लिया है। कथानक में सरसता सरलता-सहजता और स्वाभाविकता प्रचूर मात्रा में विद्यमान है तथा साथ ही नाटकीयता और कौतुहलता का भाव भी निहित है। सम्पूर्ण कहानी उत्तम पुरुष तथा आत्मकथात्मक शैली में कही गई है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है-"हिन्दी कहानी में होने वाले सभी परिवर्तनों एवं आन्दोलनों के साथ कमलेश्वर जुड़े रहे हैं, इसीलिए उनके यहां भाव-बोध और शिल्प के भी अनेक स्तर हैं। वे स्वयं यह मानते हैं कि वर्तमान जीवन में जो अनेकयामी जटिलता है, उसे कहानी में अभिव्यक्त करने के लिए उसके फार्म को अनिवार्य रूप से बदलना ही

पड़ेगा।" आज जनसामान्य की पहचान गहने संकट में है और उसकी जिन्दगी तरह-तरह की बनावटों, कृत्रिमताओं और सामाजिक अव्यवस्थाओं तथा राजनीति के घिनौने-कुत्सित रूप से ग्रस्त है। वैसे प्रस्तुत कहानी के कथ्य और कहानी संरचना में एक अद्भुत समन्वय एवं संतुलन द ष्टिगोचर होता है। इनकी कहानियों में आधुनिक जीवन-बोध की सूक्ष्मता अपनी समग्रता में निहित है।

## II. कहानी-सार

नयी कहानी के पुरोधा श्री कमलेश्वर जी ने 'बयान' कहानी में राजनीति के भयावह, घिनौने स्वरूप पर कटाक्ष किया है, साथ ही न्यायिक व्यवस्था को भी कटघरे में खड़ा किया है। न्यायालय में नारियों से अप्रासंगिक, असम्बद्ध प्रश्न पूछे जाते हैं जिनसे नारियां जलील होती हैं। कहानी में नायिका के अनेक लोगों से मन-गढ़न्त रिश्ते जोड़े जाते हैं तथा साथ ही देश की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की भी पोल खोली जाती है। कहानी का सारांश इस प्रकार है-

नायिका का पति प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अपनी तथा अपनी पत्नी की नौकरी छूट जाने पर आत्महत्या कर लेता है तथा सन्देह की सूई नायिका पर आकर ठहरती है। नायिका को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है ओर उससे सच्चाई उगलवाने के लिए अनेक ऊल-जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं। नायिका अत्यन्त आत्मविश्वास और साहस के साथ प्रश्नों के उत्तर देती है। कहानी की कथावस्तु में न्यायाधीश द्वारा पूछे गए प्रश्न नहीं दिए गए हैं, अन्यथा इस गद्य विद्या का रूप कहानी से नाटक में परिवर्तित हो जाता। प्रश्न न देकर केवल उनके उत्तरों से ही कल्पना का सहारा लेकर प्रश्न को सोचना पड़ता है। कहानी के प्रारम्भ में ही नायिका स्वीकार करती है कि उसके शादी से पहले बिशन के साथ उसके सम्बन्ध थे। वह बिशन को चाहती थी, लेकिन इस मामले से इसका क्या लेना-देना है ? जब वकील या जज उसके इन सम्बन्धों का गलत अर्थ लगाते हैं तो वह तुरन्त विरोध करती है और द ढ़ता से कहती है-मेरा बिशन से उतना ही प्यार था जितना बाईस-चौबीस बरस पहले कोई लड़की किसी लड़के से कर सकती थी। जब नायिका और उसके पति के सम्बन्धों की मधुरता पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है तो वह स्पष्ट कहती है कि मेरे पति ने मुझे बेइंतहां प्यार किया तथा उन्होंने मुझे कभी तंग नहीं किया। वह स्पष्ट कहती- आप लोग गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक नहीं पहुंच सकते। वह कहती है कि अन्धा और बहरा कानून जीवन की नित्यप्रति की बातों से सच्चाई तक नहीं पहुंच सकता।

अपने पति के साथ बितायी आखिरी रात के बारे में बताती है कि मैंने कोई ताना नहीं दिया था और हमेशा की तरह वह रात भी अत्यन्त मामूली थी। बच्ची हमारे पास ही एक छोटी खाट पर सोती थी और वे शाम को घूमने भी गए थे तथा बच्ची के लिए टॉफियां भी लाए थे। अपने पति के कार्य-व्यापारों पर प्रकाश डालती हुई कहती है कि वे फोटोग्राफर थे और उन्होंने धंधा कभी नहीं बदला। उन्हें भरोसा था कि वे एक दिन बहुत बड़े फोटोग्राफर बनेंगे। उनके लिए दुनिया में सबसे सुन्दर औरत, पत्नी और लड़की जो कुछ भी थी, मैं ही थी। सरकारी पत्रिका में फोटोग्राफर होने से पहले वे सरकार के ही प्रैस इन्फौरमेशन ब्यूरो में थे तथा प्रैस इन्फौरमेशन ब्यूरों में लगभग वे पांच साल तक रहे। करीब छह साल तक वे सरकारी पत्रिका में सेवारत रहे और इसके बाद साढ़े चार साल तक एक विज्ञापन कम्पनी में। वे सरकारी फोटोग्राफर थे। पन्द्रह अगस्त, शानदार दावतें, आने वाले विदेशी मेहमान, लालकिले में स्वागत समारोह, शाही सवारी, शिलान्यास, उद्घाटन आदि इन सबकी तस्वीरें वह लिया करता था, परन्तु एक बात विशेष ध्यान देने की है कि जब वे सरकारी पत्रिका से जोड़ दिए गए तो लहराती खेती, बांध, बिजली घर, फैक्ट्रियों, मिलों, वन-महोत्सवें, नयी रेलवे लाइनों और पुलों के उद्घाटन आदि से सम्बन्धित तस्वीरें उतारते थे और बहुत खुश होते थे-देश के विकास को देखकर। कहा करते थे कि आजादी का यही सुख है, लेकिन कई बरसों बाद उनका यह उत्साह खत्म हो गया था और एक बार बोले थे कि इन तस्वीरों से कुछ हासिल नहीं होता, क्योंकि रेलवे लाईन-पुलों के उद्घाटन आदि हो जाते थे, लेकिन वे कभी भी बन नहीं पाते थे। मैं कुछ दिनों बाद यह नहीं कह पाऊंगा कि तस्वीरें सच्ची होती हैं। लेकिन कुछ दिनों के बाद एक घटना घट गई थी कि पार के रेगिस्तान को रोकने के बारे में मंत्री जी ने कोई बयान दिया था, जिसमें कहा गया था कि मीलों जंगल रोपकर रेगिस्तान का पूरब की तरफ बढ़ना रोक दिया गया है, लेकिन जब नायिका का पति उस जंगल की तस्वीरें खींचकर लाया, जिसमें व क्षों का नामोंनिशान न था।

पेड़ लगाए जरूर गए थे, पर वे सूख गए थे। गलती से वे तस्वीरें अखबार में प्रकाशित हो गईं थीं, जिसके कारण विरोधी दलों के सदस्यों ने शायद लोकसभा में हंगामा खड़ा किया था। मंत्री जी का बयान इन तस्वीरों के साथ मेल नहीं खाता था। उन्हें डांटा-फटकारा गया और अन्ततः नौकरी से हटा दिया गया। तभी उनकी आँखों से खून के कतरे गिरने लगे और उसके बाद उन्होंने विज्ञापन कम्पनी में नौकरी कर ली थी, परन्तु वेतन इतना कम मिलता था कि ग हस्थी बड़ी मुश्किल से चलती थी। तभी बच्चे पैदा हो गई और बच्ची के आने से हम कुछ दिनों के लिए ताजा हो गए। विज्ञापन कम्पनी में रहते हुए न उन्होंने

कभी म़द्यपान किया और न किसी मॉडल को लेकर घर आए तथा हर रात घर पर ही गुजारते थे। तभी मैंने घर का खर्चा चलाने के लिए किसी स्कूल में दो सौ रुपये मासिक पगार पर नौकरी कर ली। नायिका के पति ही उन्हें स्कूल में छोड़ने-लेने के लिए जाया करते थे और बच्ची की देखभाल घर पर रहकर वे ही करते थे। लेकिन तभी उन्हें एक नेत्र की भयंकर बीमारी ने घेर लिया और आँख से रक्त बहने लगा। विज्ञापन कम्पनी की नौकरी छूटने के बाद उन्होंने घर पर ही अपना काम शुरु किया था, बाथरूम को डार्करूम बना लिया था और बच्ची की भी तस्वीरें लेकर अखबारों में छपवायी थी, लेकिन उससे कोई विशेष आमदनी न होती थी। घर का खर्चा नायिका की नौकरी के सहारे ही चलता था। तभी नायिका के सम्पादक-मैनेजर के साथ सम्बन्धों के बारे में बेतुके प्रश्न पूछे गये, जिनका उसने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया। मैं मैनेजर के घर जाती थी, पर इसका मतलब यह तो नहीं कि,...मैं यहां भी तो हाजिर होती हूं। तभी वह न्यायालय से इस जुल्म के लिए माफी मांगती है। गर्मियों की छुट्टियों में स्कूल से वेतन नहीं मिलता था तथा छुट्टियों में नौकरी से हटा दिया जाता था और सेशन शुरु होने पर फिर से रख लिया जाता था। छुट्टी के उन दिनों में हमारे परिवार की आर्थिक अवस्था अत्यन्त दयनीय हो जाया करती थी। तभी न्यायालय स्पष्ट करता है कि सम्पादक महोदय के कारण उनकी नौकरी छूटी।

आप मेरे निर्दोष पति पर इलजाम लगा रहे हैं जो कि अनुचित है। तभी नायिका ने बताया कि मुझे फिर दोबारा नौकरी पर रख लिया गया था, लेकिन एक दिन उन्होंने मेरी अर्द्धनग्न तस्वीरें खींचकर अखबार में छपवा दीं, जिनको देखकर मैनेजर महोदय ने मुझे नौकरी से निकाल दिया। उन्होंने मुझे उसी वक्त क्लास से बुलाकर खड़े-खड़े हिसाब कर दिया। इस प्रकार स्कूल से निकाल जाने की वजह वे अर्द्धनग्न तस्वीरें थीं न कि सम्पादक और मैनेजर का झगड़ा। अब नौकरी छूट जाने पर परिवार के समक्ष आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। वे अस्वस्थता के कारण बाहर नहीं जा सकते थे, इसलिये मैंने नौकरी खोजने का अभियान प्रारम्भ किया। इसीलिए मैं पति और बच्ची को घर पर छोड़कर काम खोजने के सिलसिले में ग्यारह बजे से गई हुई थी। बच्ची भी उन्हें बहुत प्यार करती थी। पति ने पीछे बच्ची को भी स्कूल भेज दिया और छत के कड़े से लटककर फांसी लगा ली थी। यह घटना नौकरी छूटने से दूसरे दिन की है। मुझे इस हादसे का कोई अहसास नहीं था। जब मैं गई तो खून जरा ज्यादा ही मात्रा में गिर रहा था, लेकिन यह तो मामूली और रोजाना की बात थी। उन्होंने छत के कड़े से लटककर चादर की सहायता से फांसी लगाई थी, लेकिन मुझे कोई खबर नहीं मिली। मैं तो चार बजे के करीब वापिस आयी थी तब तक सब कुछ घटित हो चुका था। पुलिस ने आकर लाश को उतारकर पलंग पर लिटा दिया था। नायिका के वापिस आने पर बच्ची ने बताया कि पापा की तबीयत अच्छी हो गई है तथा आराम से वे लेटे हैं। सबसे पहले मुझे इस घटना के बारे में बच्ची ने बताया था, अन्दर कमरे में जाकर देखा तो सब कुछ समझ में आ गया। उनके नाखून और ओंठ नीले पड़े हुये थे तथा शरीर पीलिया रोगी की भाँति पीला पड़ गया था। आँखें बन्द थीं और बिल्कुल सूखी हुई। इस प्रकार इसके बाद जो कुछ हुआ उसकी तफसील आपके पास है तथा आत्महत्या से पहले की बातें मैंने आपके सामने रख दी हैं। इस प्रकार नायिका ने बयान देकर न्यायालय व जीवन समाज के समक्ष चिन्तन-मुक्त करने के लिए बहुत सारे बिन्दू छोड़ दिये हैं।

## III. चरित्र-चित्रण

### नायिका का चरित्र चित्रण -

नई कहानी के सशक्त हस्ताक्षर श्री कमलेश्वर द्वारा रचित 'बयान' कहानी में नायिका के माध्यम से लेखक ने सामाजिक बुराइयों पर कटु कटाक्ष करने का स्तुत्य प्रयास किया है। नायिका ही कहानी की केन्द्रीय पात्रा है तथा कहानी में उसे निर्भीकता-निडरता की जीवन्त प्रतिमा, सत्य के प्रति कठोर-कड़ा आग्रह, साहसी और जीवन तथा समाज के प्रति यथार्थवादी द ष्टिकोण वाली नारी के रूप में चित्रित की है। उसके पति फोटोग्राफर हैं तथा सत्य का पक्ष लेने के लिए उनकी नौकरी छूट जाती है और उसके बाद अर्द्धनग्न तस्वीरें खिंचवा कर पत्रिका में छपवाने के कारण नायिका को भी नौकरी से मुक्त होना पड़ता है। आर्थिक धनाभाव के कारण तथा परिस्थितियों से विवश होने के कारण उसका पति आत्महत्या करने का जघन्य अपराध कर बैठता है। अदालत या न्यायिक व्यवस्था नायिका को सन्देह के कटघरे में खड़ी करके उससे अनेक असम्बन्धित, अमर्यादित और ऊल-जलूल प्रश्न पूछती है, लेकिन नायिका सत्य की कट्टर पक्षधर है, इसीलिए वह द ढ़तापूर्वक स्पष्ट बात कहने की पक्षधर है। कहानी के प्रारम्भ में ही जब उसके और उसे विवाहपूर्व के प्रेमी बिशन के सम्बन्धों के सन्दर्भ में प्रश्न पूछे जाते हैं तो वह स्पष्ट उत्तर देती हुई कहती है-"नहीं, मेरा बिशन से उतना ही प्यार था, जितना कि बाईस-चौबीस बरस पहले कोई भी लड़की किसी भी लड़के से कर सकती थी। मैं कब इन्कार करती हूं वह मुझसे नहीं मिला।" लेकिन जब उसके शब्दों की मनमानी व्याख्या करके उनके गलत अर्थ निकाले जाते हैं तो वह तुरन्त अपना विरोध प्रकट करती है-"यह

सरासर गलत है। आप लोग गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक कैसे पहुंचेंगे।" इसी प्रकार वह कहानीकार के विचारों की संवाहक है तथा अनेक स्थानों पर सामाजिक मर्यादाओं की धज्जियां उड़ाती है। न्यायिक व्यवस्था पर कटु प्रहार करते हुए वह कहती है-"आप लोग हमेशा ही गलत रिश्ते जोड़ते हैं, हमेशा आदमी के अस्तित्व पर शक करते हैं।" इसी प्रकार एक अन्यत्र स्थल पर भी वह साहस को जीवन्त प्रतिमा कठोरता के साथ उत्तर देती है। जब उसके चरित्र को संदिग्ध बना दिया जाता है-"जी, गलत अर्थ क्यों लगाते हैं ? इन शब्दों के इस्तेमाल से आपको लगता है कि मैं आज भी उसे चाहती हूं। आप जो चाहे कह लीजिए।" मैं क्या कह सकती हूं। लेकिन क्या मुझे यह हक नहीं है कि मैं अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कह सकूं।" इसी प्रकार गलत बात कहने पर वह फिर टोकती है कि उसके पति उससे प्यार नहीं करते थे। वह स्पष्ट कहती है-"देखिए, फिर गलत बात कही जा रही है। मैं आत्मा की गहराइयों से कहती हूँ कि मेरे पति ने मुझे बेइन्तहा प्यार किया। उन्होंने मुझे कभी तंग नहीं किया। मेरी इसकी गवाही तो सिर्फ वे ही दे सकते थे, अगर वे होते।" इस प्रकार अनैतिक-अमर्यादित एवं ऊ़ल-जलूल सवाल पूछने पर भी वह साहसी नारी बिना संकोच, लज्जा के तुरन्त सही-सटीक उत्तर देती है। उसकी जीवन द ष्टि अपने आप में सन्तुलित एवं सम्पूर्ण है तथा न तो वह परम्परावादी या रूढ़ियों में विश्वास करने वाली नारी है और न आधुनिका।

नायिका पतिपरायण, कर्त्तव्यनिष्ठ महिला है। वह अपने पति के उचित-अनुचित कार्यों में पूर्ण सहयोग देती है यथा ब्रेसरी उतारने वाले प्रसंग में वह अर्द्धनग्न तस्वीरें खिंचवाकर पत्रिका में छपवाती है और इसी कारण उसे नौकरी से पदच्युत होना पड़ता है। वह जीवनयापन हेतु कठोर परिश्रम करके नौकरी करती है और न पति से कभी शिकायत करती है, न उपालम्भ और न खीझ। इसी प्रकार जब उसके निरपराधी पति पर आरोप लगाया जाता है, वह तुरन्त आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है-"नहीं, नहीं, नहीं...मेरे निर्दोष पति पर इल्जाम मत लगाइये। मैं जानती हूं, आखिर में यही इल्जाम घूमकर मुझ पर आएगा। मेरी भरी-पूरी जिन्दगी की बखिया उधेड़ेगा। मैं अपने पति की मौत की जिम्मेदार कैसे हो सकती हूँ ?"

इसी प्रकार वह अपने आर्थिक अभावों को भी स्पष्टता के साथ बताती चलती है-"जो गर्मियों की छुट्टियों की तनख्वाह स्कूल से नहीं मिलती थी। छुट्टियों में हमें नौकरी से हटा दिया जाता था। सेशन शुरु होने पर फिर रख लिया जाता था। छुट्टी के उन दो महीनों में हमारी हालत बहुत खराब हो जाती थी। बच्ची भी सामने थी।" लेकिन इसके बावजूद भी अपने पति को कहीं भी जिम्मेवार नहीं ठहराती, बल्कि नौकरी छूटने पर फिर दोबारा नौकरी के लिए प्रयास करके प्राप्त करती है। इसी प्रकार एक अन्यत्र स्थान पर भी अपनी स्पष्ट वक्तव्य कला का परिचय देती है जब आर्थिक अभाव का ब्यौरा प्रस्तुत करती है-"जी हां, इसी के बाद नौकरी से ये अलग हो गये थे, एक तरह से मजबूरना इन्हें हटना पड़ा था। तब इन्होंने एक विज्ञापन कम्पनी में काम कर लिया था। दो-तीन घण्टे के लिए जाते थे। काम क्या था, एक बहाना था। बहुत मुश्किल से ग हस्थी चलती थी।" इसी प्रकार वह अपने पति के व्यवहार के बारे में स्पष्ट कहती है-"बहुत अच्छी तरह से पेश आते थे।" इस प्रकार परिवार का गुजारा चलाने के लिए वह नौकरी करती है।

इसी प्रकार वह अपने और पति के सम्बन्धों का भी निर्भीकता-स्पष्टता के साथ खुलासा करती है। पति के साथ उसकी मधुरता व समर्पण भावना को इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है-"उनके लिए दुनिया में सबसे सुन्दर औरत, पत्नी, लड़की-जो कुछ थी, मैं ही थी।"

इसी प्रकार इस अन्यत्र स्थल पर नायिका अपने पति के साथ आत्मीय और मधुर सम्बन्धों को उजागर करती हुई लिखती है-"शुरु-शुरु में जब वे मुझे जरा-सी आँख दबाकर देखते थे तो मुझे बड़ी गुदगुदी होती थी। यह शादी के बाद शुरु दिनों की बात है। मुझे गुदगुदी इसलिये होती थी कि एक आँख दबाकर देखना....आप तो जानते ही हैं, मुझे अब भी हँसी आती है। कैमरा और मैं-बस, उनके लिए यही दो चीजें थीं...या फिर हमारी बच्ची। कभी-कभी मैं उनके सीने पर सिर रख लेती थी तो उनकी अंगुलियां मेरी कनपटियों पर उसी तरह थरथराती थी, जैसे किसी ओझल हो जाने वाले लमहे को पकड़ने के लिए कैमरे पर कांपती थीं। मेरी अंगुलियों के पोर वे ऐसे दबाते थे, जैसे शटर दबा रहे हों....हमारे प्यार के सबसे खूरसूरत क्षण यही होते थे।"

फिर कुछ दिनों बाद यह मैंने जाना कि जब भी वे एक आँख दबाकर देखते थे, तो सिर्फ मुझे ही देखते रहे होते थे।" इसी प्रकार नायिका राजनीति-न्यायिक व्यवस्था पर भी कटु प्रहार करती है कि न्याय-कानून अन्धा और बहरा है तथा प्रत्येक वस्तु को सन्देह की द ष्टि से निहारता है-"नहीं, नहीं, गलत मत समझिए। ये मेरे दोस्तों या चाहने वालों के नाम नहीं हैं। आप लोग हमेशा गलत रिश्ते जोड़ते हैं...हमेशा आदमी के अस्तित्व पर शक करते हैं...अस्तित्व।....जी वजूद समझ लीजिए।" इसी प्रकार वह स्पष्टता के साथ नौकरी से निकाले जाने के कारणों पर प्रकाश डालती है कि उसके पति द्वारा खींची गई अर्द्धनग्न

तस्वीरें ही उसकी नौकरी को लील गई। वह स्पष्ट कहती है-"सम्पादक ने मेरी दो तस्वीरें अगले दिन छापी थी। बस, यहीं से हंगामा शुरु हुआ था। मेरी अर्द्धनंगी तस्वीरें स्कूल के मैनेजर तक भी पहुंची थी। उन्होंने फौरन तय किया कि इस तरह की औरत का स्कूल में रहना एक पल के लिए भी मुमकिन नहीं है। मुझे उसी वक्त क्लास में बुलाया गया था और खड़े-खड़े हिसाब कर दिया गया था।" इसी प्रकार जब स्कूल के मैनेजर के साथ उसके सम्बन्धों को जोड़ा जाता है तो वह तपाक् से विरोध करती हुई कहती है-"मैं यहां भी हाजिर होती हूं।" इसी प्रकार न्याय-व्यवस्था पर कटु कटाक्ष करते हुए कहती है-"क्या कानून का काम सिर्फ सबूत इकट्ठे करके किसी को जलील कर देना है ?" इस प्रकार वह वात्सल्यमयी माँ का दायित्व-कर्त्तव्य भी पूरी निष्ठा के साथ निभाती है। पुत्री के पूछने पर वह अत्यन्त आत्मीयता के साथ उत्तर देती है-"बेटे ! तेरे पापा की तबीयत अच्छी नहीं रहती। उन्हें कुछ बीमारी हो गई है।"

नायिका का चरित्र पूरी कहानी में अनेक उज्ज्वल गुणों को समेटे हुए है। वह न तो रूढ़िवादी है और न आधुनिका, बल्कि उसका चरित्र पूर्ण रूप से संतुलित-संयमित जीवन द ष्टि पर आधारित है। सत्य के प्रति आग्रह उसमें कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है। वह सुशिक्षिता, सत्यवादी, पति-परायणा, कर्त्तव्यनिष्ठ तथा वात्सल्यमयी माँ के रूप में कहानी में चित्रित हुई है। वह पति के प्रति पूर्णरूप से समर्पित है और अपने बयान से स्पष्ट करती है कि उसके पति ने कोई भूल नहीं की। उसमें संवेदनशीलता-भावुकता, बौद्धिकता तथा अवसरानुकूल कार्य करने की सूझ-बूझ आदि असाधारण गुणों को सहज समन्वय है। उसने कहानी के प्रमुख प्रतिपाद्य को भी स्पष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया है-न्याय-प्रक्रिया की जटिलता व राजनीति का अत्यधिक हस्तक्षेप आदि। कहानीकार ने नायिका के माध्यम से स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राजनीति के कारण हुए विकास को भी रेखांकित किया है तथा राजनीति के कुत्सित रूप का भी चित्रांकन किया है-"एक बात गौर करने की है। जब वे सरकारी पत्रिका में खासतौर से जोड़ दिए गए, तो लहराती खेती, बांध, बिजलीघर, फैक्ट्रियों, मिलों, वन महोत्सवों, नयी रेलवे लाइनों, पुलों के उद्घाटनों, स्कूलों वगैरा की तस्वीरें उतारते थे।" वे बहुत खुश होते थे। कहते थे-"आजादी का यही सुख है।" इस प्रकार नायिका उन तस्वीरों की सत्यता पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है। इसी प्रकार नायिका अपने पति की मधुर स्म तियों को संजोए हुए है और स्पष्ट कहती है-"क्या करूं, लौट-लौटकर उन्हीं क्षणों पर पहुंच जाती हूं। दुःख तो अब उठता ही है। जो हो सका, दोनों ने मिलकर उठाया, पर अब तो हम दोनों के वही क्षण शेष हैं, जो भूले-भटके कभी आ जाते थे। हँसी-खुशी के एकाध क्षण।" इसी प्रकार पति की म त्यु पर दीवारों से सिर टकराना भी पति के साथ आत्मीयता को उजागर करती है-"मैं कमरे में पहुंची तो सब समझ में आ गया था। मैं दीवार से सिर पटक देने के सिवा क्या कर सकती थी ?" नर-नारी के सम्बन्धों पर भी प्रकाश डालते हुए नायिका स्पष्ट स्वीकारती है कि पुरुष की नजरों में जो खिंचाव या आकर्षण का भाव होता है। वह बुरा या ओछा न माना जाए-"उसकी नजरों में भी कोई खास गन्दगी मुझे नहीं लगती थी। जिसे आप शायद गन्दगी कहना चाहेंगे, वह सबकी नजरों में होती है। उसे आप आदमी-औरत के बीच का मामूली खिंचाव कह सकते हैं...और उस खिंचाव को अगर गन्दा, ओछा या बुरा न माना जाए तो वह बड़ी मामूली-सी चीज है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नायिका निर्भीकता-साहस व स्पष्टता की जीवन्त साकार प्रतिमा है तथा अनुचित मत का विरोध बड़ी कठोरता के साथ करने में सक्षम है। वह पति-परायणा, कर्त्तव्यनिष्ठ व वात्सल्यमयी माँ है और सच्चरित्र नारी है। नायिका वास्तव में सुशिक्षिता, मर्यादित व सेवापरायण नारी है।

## IV. उद्देश्य

नयी कहानी के पुरोधा श्री कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में राजनीति का कुत्सित रूप और सामाजिक मान्यताओं पर कटु एवं तीखे प्रहार किए हैं तथा कहानीकार ने बदलते हुए परिवेश-सामाजिक सन्दर्भ में नारी के साहस का भी सजीव और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। **डॉक्टर रमाप्रसाद 'पहाड़ी'** ने 'बयान' कहानी के प्रतिपाद्य पर प्रकाश डाला है-"बयान कहानी एक नारी के अन्तर्मन की कहानी है। भारतीय न्याय-व्यवस्था में अपराधिनी नारी अपने वकील, सरकारी वकील, पुलिस के गवाहों आदि से घिरी, आज की नारी की मुखर वाणी में न्यायाधीश के आगे अपनी बात कहती है। जीवन की परिस्थितियों से आज तक संघर्ष करती रही और आज सबका भविष्य एक प्रश्नचिह्न बन गया है। इस रचना में कथानक है, परिस्थितियां हैं, घटनाएं हैं और वातावरण की एक प्रवाहशील गति है। नई कहानी की कसौटी पर कसने के बाद भी हम इसे प्रेमचन्द-परम्परा की कहानी मानेंगे।" कहानीकार मानस-संस्कार, व्यवस्था और यथास्थिति का कट्टर विरोधी है और कथानक को राजनीतिक-सामाजिक समस्याओं से जोड़कर ठोस-सबल आधार प्रदान करता है। कहानीकार ने राजनीति के खोखलेपन, असत्य और कथनी में अन्तर आदि का भी बयान कहानी में चित्रण किया है। **डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान** ने कमलेश्वर के बारे में लिखा है-"एक कहानीकार, आलोचक और कहानी सम्पादक के नाते इस विषय पर इनका चिन्तन विस्त त तथा प्रायः गम्भीर

है। वह कभी गहरे में उतरते हैं तो कभी उथले में ही रह गए हैं। एक रचनाकार के नाते गहरे में और एक सम्पादक के तौर पर उथल में ही उतरे हैं। उनकी आवाज को नजर-अन्दाज करना 'नई कहानी' आवाज को अनसुना करना होगा। वह नई कहानी की रचना में करते हैं और कर रहे है और दिशा भी देते हैं और दे रहे हैं।" इसी प्रकार **डॉक्टर शान्तिभूषण** का कहना है- "कमलेश्वर कस्बे से लेकर महानगर तक पहुंचने के कारण नवीन दिशाएं खोजते हैं जो भारतीय जीवन के विस्तार को पकड़ने का एक प्रयत्न है।"

इस प्रकार 'बयान' कहानी में केन्द्रीय प्रतिपाद्य है-राजनीति के कुत्सित और खोखलेपन पर कटु प्रहार करना तथा साथ ही सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ाना। नायिका के माध्यम से नारी के साहस का चित्रण और लोकतांत्रिक व्यवस्था की पोल खोलना, मन्त्रियों के दोहरे मापदण्डों का वर्णन करना, नारी से अनैतिक-अमर्यादित व ऊल-जलूल प्रश्न पूछना तथा न्यायिक व्यवस्था के अन्धेपन-बहरेपन पर भी प्रकाश डालना आदि महत्त्वपूर्ण बिन्दू हैं, जिन पर कमलेश्वर ने गम्भीरता के साथ चिन्तन व मनन करके निष्कर्ष निकाला है।

कहानी के प्रतिपाद्य निम्नलिखित हैं-

1. **राजनीति के कुत्सित और खोखलेपन पर प्रहार करना** - कमलेश्वर ने अपनी कहानी 'बयान' में राजनीति के कुत्सित और खोखलेपन पर कटु कटाक्ष किये हैं। नायिका का पति फोटोग्राफर है और पन्द्रह आगस्त, शानदार दावतें, आने वाले विदेशी मेहमान, लालकिले में स्वागत-समारोह, शाही सवारी, शिलान्यास, उद्‌घाटन आदि की तस्वीरें खींचता था। नायिका के पति को राजनीति के खोखलेपन के कारण ही एक ओर तो नौकरी से पदच्युत होना पड़ता है तो दूसरी ओर प्राणोत्सर्ग भी करने पड़ते हैं। नायिका के पति थार में रेगिस्तान की तस्वीरें उतारकर लेकर आता है तथा मन्त्री महोदय ने रेगिस्तान को रोकने के सम्बन्ध में एक बयान दिया था कि रेगिस्तान का पूरब की तरफ बढ़ना रोक दिया है, लेकिन उन तस्वीरों में कहीं भी पेड़ या हरियाली का प्रतिबिम्ब नहीं है जिससे मन्त्री महोदय संकट में पड़ गये। अतः उन्होंने फोटोग्राफर को नौकरी से निकाल दिया, क्योंकि उसकी खींची गई तस्वीरें अखबार में गलती से छप गई थी। क्योंकि तस्वीरें सच्ची थीं और तथ्यों पर आधारित थीं, परन्तु फोटोग्राफर को बलि का बकरा बना दिया गया। इसी प्रकार कहानीकार ने इस कहानी में यह भी स्पष्ट किया है कि रेलवे लाइनों और पुलों आदि के उद्‌घाटन हो जाते हैं तथा अखबारों में तस्वीरें छप जाती हैं, लेकिन वे कभी भी नहीं बन पाते। कहानीकार **कमलेश्वर** राजनीति के घिनौने रूप का चित्रांकन करते हुए लिखते हैं-"जब वे सरकारी पत्रिका में खासतौर से जोड़ दिए गए हैं तो लहराती खेती, बांध, बिजलीघर, फैक्ट्रियों, मिलों, वन महोत्सवों, नयी रेलवे लाइनों पुलों के उद्‌घाटनों, स्कूलों वगैरह की तस्वीरें उतारते थे। वे बहुत खुश होते थे।....कहते थे-आजादी का यही सुख है। पर कई बरसों बाद उनका यह उत्साह पता नहीं कहां खो गया था। उनके दिल में कुछ घुमड़ता रहता था। एक बार बोले थे-इन तस्वीरों से कुछ हासिल नहीं होता। मैं खुद कहीं भीतर से झूठा पड़ता जा रहा हूं। शायद कुछ दिनों बाद मैं किसी से यह भी नहीं कह पाऊंगा कि तस्वीर सच्ची होती हैं।

इस प्रकार लेखक कमलेश्वर ने मन्त्री महोदय की कार्यशैली तथा असत्य का सत्य पर हावी होना और राजनीति के कुत्सित व खोखलेपन के कारण ही फोटोग्राफर या कलाकार की आत्मा आहत होती है और वह आत्महत्या कर लेता है।

2. **न्यायिक व्यवस्था पर कटु प्रहार** - कमलेश्वर ने 'बयान' कहानी में न्यायिक व्यवस्था पर कटु प्रहार किए हैं। नायिका का पति असामयिक काल-कवलित हो जाता है तथा संकट की सुई नायिका के ऊपर आकर ठहरती है और नारी से अनैतिक-अमर्यादित व ऊल-जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं। नायिका न्यायिक व्यवस्था पर कटु प्रहार करते हुए कहती है कि न्याय अन्धा और बहरा है तथा प्रत्येक वस्तु को सन्देह की द ष्टि से निहारता है-"नहीं ! नहीं ! गलत मत समझिए। ये मेरे दोस्त या चाहनेवालों के नाम नहीं हैं। आप लोग हमेशा गलत रिश्ते जोड़ते हैं....हमेशा आदमी के अस्तित्व पर शक करते हैं...अस्तित्व। जी वजूद समझ लीजिए।" इसी प्रकार नायिका एक अन्यत्र स्थल पर भी न्याय-व्यवस्था की पोल खोलती हुई कहती है-"क्या कानून का काम सिर्फ सबूत इकट्‌ठे करके किसी को जलील कर देना है ?" कहानीकार न्याय व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए लिखता है-"अगर कहिए, तो कुछ ऐसा बता दूं कि ताकि आपका अन्धा और बहरा कानून किसी नतीजे पर पहुँच जाए।" इसी प्रकार नायिका न्यायालय द्वारा लगाये गये आरोपों की बखिया उधेड़ती है-"नहीं, नहीं, नहीं, मेरे निर्दोष पति पर इल्जाम मत लगाइये। मैं जानती हूं आखिर में यही इल्जाम घूमकर मुझ परआयेगा। मेरी भरी-पूरी जिन्दगी का बखिया उधेड़ेगा। मैं खूब जानती हूं। आप लोग मुझे कहां धकेल रहे हैं। क्या कानून का काम सिर्फ सबूत इकट्‌ठे करके किसी को जलील कर देना है? मैं अपने पति की मौत की जिम्मेदार कैसे हो सकती हूँ ?" इसी प्रकार न्यायालय मैनेजर के साथ उसके अवैध सम्बन्धों को जोड़ने का प्रयास करता है तो नायिका कटु कटाक्ष करती हुई कहती है-"भगवान के लिए मुझे फिर जलील मत कीजिये। मैं मैनेजर

के घर जाती थी, पर इसका मतलब यह तो नहीं कि....मैं यहां भी तो हाजिर होती हूं।" इस प्रकार कहानीकार ने न्यायिक व्यवस्था की पोल खोली है तथा साथ ही असम्बद्ध प्रश्नों, गलत व्याख्याओं तथा अनैतिक अमर्यादित प्रश्न आदि का भी चित्रांकन किया है।

3. **सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ाना** - 'बयान' कहानी में कमलेश्वर सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ाता है। समाज में नायिका के पति को सत्य बोलने के अपराध में दण्डित किया जाता है, क्योंकि उसने सही तस्वीर अखबार में गलती से प्रकाशित करवा दी थी। वास्तविकता तो यह है कि व्यक्ति को मरने के लिए विवश किया जाता है। मन्त्री महोदय उसको नौकरी से हटवा देता है, विज्ञापन कम्पनी में नौकरी करता है लेकिन कुछ दिन बाद वहां से भी पदच्युत हो जाता है। अन्ततः अपना कार्य करना शुरु कर देता है, लेकिन काम चल नहीं पाता तथा पत्नी की भी नौकरी छूट जाती है तथा परिवार की आर्थिक अवस्था दयनीय हो जाती है। रोटियों के मोहताज हो जाते हैं। समाज उसे कोई भी सुरक्षा या सहायता प्रदान नहीं करता और वह आत्महत्या कर लेता है, लेकिन बाद में उसकी पत्नी को उसकी म त्यु के अपराध में कटघरे में खड़ा किया जाता है। कितनी भयंकर विडम्बना है कि जीवित रहते उसको सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती तथा मरने के बाद उसकी म त्यु के अपराध में नायिका को कटघरे में खड़ा किया जाता है। इस प्रकार नाटककार ने सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ाई हैं।

4. **नारी के साहस का चित्रण करना** - कमलेश्वर द्वारा रचित 'बयान कहानी में नारी के साहस का भी चित्रण किया है। कहानी के प्रारम्भ में ही वह बिशन के साथ विवाहपूर्व के प्रेम-सम्बन्धों को द ढ़तापूर्वक स्वीकारती है। वह स्पष्ट करती है कि-"मेरा बिशन से उतना ही प्यार था जितना की बाईस-चौबीस बरस पहले कोई भी लड़की किसी भी लड़के से कर सकती थी। मैं कब इन्कार करती हूं कि वह मुझसे नहीं मिला।" इसी प्रकार जब उसके शब्दों की गलत व्याख्या करके मनमाने अर्थ निकाले जाते तो वह साहसी और जीवट की प्रतिमूर्ति तुरन्त विरोध प्रकट करती है। इसी प्रकार कहानीकार ने लोकतांत्रिक व्यवस्था की पोल खोलते हुए मन्त्रियों की कार्य-पद्धति पर कटु कटाक्ष किए हैं कि निरपराध व्यक्ति को नौकरी से हटाया जाता है और दोषी पुरस्कृत होते हैं। इस प्रकार से कहानीकार का उद्देश्य समाज में राजनीति के कारण हो रहे अपराधों की ओर भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना है। मन्त्रियों की कथनी और करनी पर भी प्रकाश डाला है कि रेलवे लाइन व पुलों के उद्घाटन कर देते हैं तथा तस्वीरें अखबारों में प्रकाशित करवा दिये जाते हैं, परन्तु वे बनते नहीं हैं। मन्त्री महोदय मनमाने बयान जारी करते हैं, परन्तु उनके मिथ्या सिद्ध होने पर, सच्चाई गलत होने पर सच्चे व्यक्ति को दण्डित किया गया है। नारी से न्यायालय में अनैतिक-अमर्यादित व ऊल-जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं तथा उसको सन्देह की द ष्टि से देखा जाता है-इसका भी प्रस्तुत कहानी में सजीव चित्रण है। नायिका के ऊपर स्केल मैनेजर, सम्पादक तथा बिशन आदि के साथ अवैध सम्बन्धों की शंका की जाती है। नायिका स्पष्ट कहती है-"आप लोग हमेशा गलत रिश्ते जोड़ते हैं, हमेशा आदमी के अस्तित्व पर शक करते हैं।" नारी के प्रति समाज के द ष्टिकोण पर भी कहानीकार ने कटु प्रहार किया है। नायिका के अर्द्धनग्न शरीर के फोटो मैगजीन में छपने पर मैनेजर उसको नौकरी से निकाल देता है। इस प्रकार कहानी में अनेक ज्वलन्त मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है तथा विसंगतियों पर कटु कटाक्ष किए हैं।"

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि कमलेश्वर ने 'बयान' कहानी में राजनीति के घिनौने स्वरूप का पर्दाफाश किया है तथा सामाजिक मान्यताओं पर कटु कटाक्ष किए हैं और मन्त्रियों-लोकतांत्रिक पद्धति की भी धज्जियां उड़ाई हैं। नारी से अनैतिक-असम्बद्ध, अमर्यादित और ऊल-जलूल प्रश्न पूछकर उसको कटघरे मे खड़ा किया जाता है। बहरी-अन्धी न्यायिक व्यवस्था पर भी कटु आक्षेप किए हैं।

## व्याख्या

*1.* ***"पेड़ लगाए जरूर गए थे, पर वे सूख गए थे। गलती से वे तस्वीरें अखबार में छप गईं थीं। विरोधी दल के किसी सदस्य ने उन तस्वीरों का हवाला देकर मुसीबत खड़ी कर दी थी। वह सब शायद लोकसभा में ही हुआ था। मंत्री जी का बयान इन तस्वीरों के साथ मेल नहीं खाता था। आदमी से गलती हो जाती है, इनसे भी हो गई थी। पर इस गलती पर इन्हें बहुत डांटा-फटकारा गया था। मन्त्री जी ने इन्हें हटा देने का आर्डर कर दिया था। उन दिनों वे बहुत परेशान थे। बस, उसके बाद इनका वहां रहना मुश्किल हो गया था।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी श्रेष्ठ कहानी 'बयान' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी के लेखक ने राजनीति के कुत्सित-घिनौने स्वरूप पर प्रकाश डाला है तथा साथ ही सामाजिक परिस्थितियों पर भी कटु कटाक्ष किया है। नायिका का पति सामाजिक अन्याय के कारण फांसी लगाने के लिए

विवश है, पर कानून उसकी म त्यु के कारणों को खोजने के प्रयास में असत्य को सत्य बनाने का प्रयास करते हैं। नायिका से न्यायालय में अनैतिक-अमर्यादित प्रश्न पूछे जाते हैं और नायिका के निरपराधी पति को सत्य का पालन करने पर भी नौकरी से मुक्त होना पड़ता है और प्राणों से भी हाथ धोने पड़ते हैं। उन दिनों नायिका के पति तस्वीरें खींचते वक्त बहुत खुश रहते थे। लेखक नायिका के पति को नौकरी छूटने के कारणों पर विचार करते हुए लिखता है-

**व्याख्या** - थार के रेगिस्तान को रोकने के लिए वहां असंख्य पेड़ लगाये थे और इस बारे में मन्त्री महोदय ने लोकसभा में बयान भी दिया था, परन्तु नायिका के पति वहां की तस्वीरें खींचकर लाए थे और उन तस्वीरों में दूर-दूर तक उड़ती हुई धूल तथा रेगिस्तान ही रेगिस्तान था। वहां पेड़ नाम की कोई वस्तु न थी। लेकिन कहानीकार का कहना है कि वहां पेड़ तो अवश्य लगाये गये थे, परन्तु वे पेड़ सम्यक् देखभाल न होने के कारण तथा पानी के अभाव में सूख गये थे। नायिका के पति को असावधानी के कारण ये सभी रेगिस्तान को दर्शाती तस्वीरें अखबारों में छप गई थीं। किसी विरोधी दल के सदस्यों ने उन तस्वीरों का हवाला देकर मन्त्री महोदय के बयान को असत्य घोषित किया तथा उसने मन्त्री महोदय के लिए मुसीबत खड़ी कर दी। शायद यह सब लोकसभा में हुआ था। मन्त्री जी का बयान इन तस्वीरों के साथ मेल नहीं खाता था, क्योंकि वे तो वहां लहलहाते पेड़ लगे बता रहे हैं, जबकि वास्तविकता में वहां चारों तरफ उड़ती धूल, पैर पसारता रेगिस्तान दिखाई देता है। हर आदमी से जीवन में गलती हो जाती है तथा नायिका के पति से भी गलती हो गई थी। इस गलती पर उन्हें डांटा-फटकारा गया तथा मन्त्री महोदय ने इनको नौकरी से हटाने का आदेश दे दिए। इन दिनों वे परेशान थे और वहां से इनको अलग होना पड़ा।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. राजनीति के कुत्सित रूप पर प्रकाश डाला गया है।
3. मन्त्रियों की कथनी-करनी में अन्तर तथा मिथ्या आचरण की कलई उघाड़ी है।
4. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।
5. 'सत्य को दण्डित होना पड़ता है' इस तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है।

***2. "सिवा मेरी जिन्दगी के कोई और जवाब मेरे पास नहीं है। जो कुछ है, वह मेरी जिन्दगी में ही बिखरा हुआ है। वे लम्हें, जिन्हें मैं बिखरने नहीं देती, वे भी अब यादों से छिटक गए हैं, छिटक रहे हैं, अब मुझे छिपाना क्या है ? किसके लिए और क्यों ?"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी महत्वपूर्ण कहानी 'बयान' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजनीति के भयावह रूप का चित्रांकन किया है तथा साथ ही सामाजिक मान्यताओं पर भी कटु कटाक्ष किए हैं। नायिका का पति परिस्थितिवश आत्महत्या कर लेता है तथा सन्देह, शंका की सूई नायिका पर आकर ठहरती है। नायिका न्यायालय में जाकर बयान देती है, उसमें अनैतिक-अमर्यादित-अशिष्ट व ऊल-जलूल प्रश्न पूछकर प्रताड़ित किया जाता है। वह प्रश्नों के उत्तर देते हुए स्पष्ट कहती है-

**व्याख्या** - नायिका न्यायालय में स्पष्ट कहती है कि अब आप मेरी बात पूरी सुनिए। वह स्पष्ट कहती है कि मेरे पास अपनी जिन्दगी के सिवाय कोई और जवाब मेरे पास नहीं है, क्योंकि मेरा जीवन ही अनेक प्रश्नों को स्पष्ट करेगा। मेरे जीवन में जो कुछ भी घटित हो चुका है, उसे बता देने के सिवाय मेरे जीवन में अब कुछ भी तो बाकी नहीं बचा है। मेरे जीवन में आपके प्रश्नों के उत्तर बिखरे पड़े हैं अर्थात् मेरा जीवन अस्त-व्यस्त रहा है। जीवन का प्रत्येक क्षण और उसकी मधुर स्म तियां समेटे रखने का प्रयत्न भी अब बिखरकर रह गया है। लेकिन जिन मधुर स्म तियों को समेटकर रखना चाहती हूं, वे भी सारी मधुर यादें मेरे जीवन से छिटकने लगी हैं। वास्तव में वे मधुर स्म तियां अब बिखर कर नष्ट हो जाना चाहती हैं। इसलिए मैं अब अपने जीवन में कुछ भी छिपाकर नहीं रखना चाहती, क्योंकि जीवन में अब पति की आत्महत्या के बाद कुछ भी नहीं रह गया है। वह नगण्य, व्यर्थ और रसहीन हो गया है। अब इसलिए जीवन में घटी घटनाओं को छिपाकर रखने की न तो कोई आवश्यकता है और न महत्ता। वह यदि इन तथ्यों को छिपाकर रखे भी तो किसके लिए क्यों ? वह स्पष्ट न्यायालय में कहती है कि मेरा जीवन अब आपके सब प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट कर देगा। इसलिए जब जीवन में विश ंखलता का भाव आ गया है तो छिपाने का क्या औचित्य और लाभ है। इसलिए मैं जीवन के सारे तथ्यों या रहस्यों को आपके सामने प्रकट कर दूंगी।

**विशेष** - 1. भाषा सजीव तथा सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. नायिका से न्यायाल में अनैतिक अमर्यादित या ऊल-जलून प्रश्न पूछे जतो हैं।

3. जीवन का गम्भीर व विशद् विवेचन किया है।

4. स्म तियां जीवन की अमूल्य धरोहर हैं-इसी तथ्य को अभिव्यक्त किया है।

5. विश्लेषणात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

***3. "सत्य हमेशा की तरह कई बातों पर निर्भर करता है। आदमी के इतिहास, परिस्थितियों, माहौल किसी खास घटना के क्षण का यथार्थ और सबसे ज्यादा उसकी अपनी आन्तरिक यातनाओं की टीस पर, पति के दुःखों या सुखों का करण सिर्फ पत्नी नहीं होती। यह धारणा बिल्कुल गलत है। दोनों एक-दूसरे को बेतरह चाहते हुए भी एक-दूसरे से मुक्त भी होते हैं।.....जुड़े हुए भी गलत होते हैं पानी की लहरों की तरह।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के पुरोधा, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'बयान' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजनीति के कुत्सित-घिनौने स्वरूप का चित्रांकन किया है तथा साथ ही मानसिक मान्यताओं पर भी कटु कटाक्ष किए हैं। नायिका का पति आत्महत्या कर लेता है और नायिका को सन्देह की द ष्टि से देखा जाता है। वह न्यायालय में आकर अपना पक्ष प्रस्तुत करती है और उससे अनैतिक-अमर्यादित तथा ऊल-जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं। वह सन्देह का निवारण करते हुए कहती है-पति के सुख-दुःखों का कारण केवल पत्नी ही नहीं होती, बल्कि और बहुत सारे कारण होते हैं, जिनके कारण वह आत्महत्या करने के लिए विवश है।

**व्याख्या** - नायिका स्पष्ट करते हुए कहती है कि सत्य को जानने के लिए बहुत सारे पहलू होते हैं तथा वह कभी भी एकांगी नहीं होता। वह सर्वदा बहुत सारी बातों पर निर्भर करता है। व्यक्ति का स्वयं का इतिहास, इसकी परिस्थितियां, घर का वातावरण-परिवेश और माहौल तथा किसी विशेष घटना के समय अनुभव होने वाली पीड़ा या दुःख, लेकिन सबसे ज्यादा जिम्मेदार है उसकी आन्तरिक पीड़ा और उसकी कसक। कई बार विशेष घटनाएं व्यक्ति को मर्मान्तक पीड़ा दे जाती हैं तथा जिसके कारण वह जीवन का परित्याग करने के लिए तत्पर हो जाता है। अतः पत्नी को पति की पीड़ा या सुख का कारण मानना असत्य है। जहां तक पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों की बात है, यद्यपि वे एक'दूसरे से स्नेह के बंधनों में द ढ़ता के साथ बंधे हुए हैं और एक-दूसरे से जुड़े होने के बावजूद भी वे गलत दिशाओं में जा सकते हैं। आपस में लगाव होने के बावजूद भी अपना-अपना मुक्त व स्वतन्त्र व्यक्तित्व हो सकता है जैसे पानी की लहरें पानी से जुड़ी होने पर भी अलग-अलग हैं। अतः नारी पति के दुःखों का एकमात्र कारण नहीं है।

**विशेष** - 1. अवतरण की भाषा सजीव-सरल एवं सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई हैं।

2. यथार्थ रूप का उद्घाटन किया गया हैं कि पत्नी पति हेतु दुःखों का कारण नहीं है, बल्कि उसकी परिस्थितियां आदि पीड़ा का एकमात्र कारण है।

3. उपमा अलंकार प्रयुक्त है। यथा-पानी की लहरों में।

4. भावपक्ष और कला पक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

5. लेखक ने पति-पत्नी के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है।

6. विश्लेषणात्मक शैली प्रयोग हुई है।

***4. "शादी से पहले का, बादल के टुकड़े की तरह तैरकर गुजरता हुआ इश्क...उस प्रेम की काली परछाइयां. ..पति-पत्नी की कलह, छोटे-मोटे झगड़े, घर वालों से तनाव या पड़ोसियों से मन-मुटाव - ये सब बड़ी मामूली बात हैं। आप अभी तक इन्हीं के सहारे सच्चाईयों तक पहुंचने में लगे हैं। इनमें कुछ भी हासिल नहीं होगा।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के पुरोधा, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'बयान' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजनीति का घिनौना स्वरूप व सामाजिक मान्यताओं पर कटु कटाक्ष किया है तथा सन्देह-शंका की सुई नायिका पर आकर ठहरती है। नायिका से न्यायालय में बेतुके-अनैतिक और अमर्यादित प्रश्न पूछे जाते हैं। नायिका न्यायालय से निवेदन करती है कि व्यर्थ के प्रश्नों का परित्याग करके ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए जिससे सत्य उभर कर सामने आ सके। वह स्पष्ट कहती है-

**व्याख्या** - व्यक्ति के जीवन में अनेक सुखद ओर दुःखद घटनाएं घटती रहती हैं और समय के अन्तराल से व्यक्ति उन घटनाओं को भूल जाता है। जिस प्रकार से शादी से पहले प्रेम समय के अन्तराल से विलुप्त हो जाता है, जिस प्रकार से

आकश में बादल उमड़ते और घुमड़ते और फिर उड़ जाया करते हैं, उसी प्रकार शादी से पहले का प्यार होता है और फिर मात्र स्म ति बनकर नगण्य या महत्त्वहीन हो जाता है। इसी प्रकार से पति-पत्नी में आए दिन छोटी-मोटी बातों को लेकर झगड़े होते रहते हैं, परन्तु पति-पत्नी में झगड़ा क्षणिक है, फिर मधुरता का अजस्त्र झरना दोनों के बीच प्रवाहित होता है। इसलिए पति-पत्नी में छोटे-मोटे झगड़े तो होते ही रहते हैं। इसी प्रकार घर के अन्य सदस्यों में भी किसी विषय या बात को लेकर तनाव व्याप्त हो जाता है, लेकिन वह भी क्षणिक होता है और धीरे-धीरे तनाव तिरोहित हो जाता है। इसी प्रकार पड़ोसियों से भी किसी विषय पर मन-मुटाव हो जाता है, तू-तू, मैं-मैं हो जाती है, अबोला भी हो जाता है, परन्तु ये सारी बातें क्षणिक, महत्त्वहीन, नगण्य व व्यर्थ की हैं, क्योंकि इन सारी बातों का जीवन में कोई महत्त्व नहीं है। आप वास्तव में इन्हीं क्षुद्र बातों के सहारे सच्चाई तक या आत्महत्या के कारणों तक पहुंचना चाहते हैं जो सर्वथा असम्भव है। इनसे कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः इन क्षुद्र बातों को छोड़कर ऐसा कुछ करें जिससे सुखद परिणाम सामने आये।

**विशेष** -1. प्रस्तुत अवतरण की भाषा सजीव, सरल तथा स्वाभाविक है। जनसाधारण की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. नायिका ने न्यायिक व्यवस्था पर कटु कटाक्ष किया है।

3. नायिका के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

4. प्रेम, द्वेष और राग को जीवन का शाश्वत सत्य स्वीकारा है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

5. ***"पर कई वर्षों बाद उनका यह उत्साह पता नहीं कहां खो गया था। उनके दिल में कुछ घुमड़ता रहता था। एक बार बोले थे-इन तस्वीरों से कुछ हासिल नहीं होता। मैं खुद कहीं भीतर से झूठा पड़ता जा रहा हूं। शायद कुछ दिनों बाद मैं किसी से भी यह नहीं कह पाऊंगा कि तस्वीरें सच्ची होती हैं।"***

**प्रसंग** - प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के पुरोधा, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'बयान' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजनीति के घिनौने स्वरूप का पर्दाफाश किया है तथा साथ ही मन्त्रियों के दोहरे मापदण्डों की पोल खोली है। नायिका का पति आत्महत्या कर लेता हैं वह फोटोग्राफर था और एक बार थार के रेगिस्तान की तस्वीरें लेकर आया तो मन्त्री महोदय ने वहां रेगिस्तान को रोकने के लिए पेड़ लगाने की बात कही थी, जब कि वहां दूर-दूर तक धूल-देता और सूखी मिट्टी ही मिट्टी थी। अतः तस्वीरें असत्य पर आधारित थी। इसी प्रकार रेलवे लाइनों और पुलों के उद्घाटन आदि हो तो जाते थे, लेकिन वे कभी भी नहीं बनते थे। अतः लेखक ने तस्वीरों के मिथ्यातत्व पर प्रकाश डाला है-

**व्याख्या** -नायिका के पति सरकारी फोटोग्राफर थे और उन्हें तस्वीरें खींचने में आनन्द की अनुभूति होती थी। अतः वे पन्द्रह अगस्त, शानदार दावतें, आने वाले विदेशी मेहमान, लालकिले में स्वागत समारोह, शाही सवारी, शिलान्यास, उद्घाटन आदि की तस्वीरें लिया करते थे। उन्हें वह तस्वीरें लेने में सुख की अनुभूति होती थी तथा कहा करते थे कि आजादी का यही सुख है, लेकिन अब उनका यह उत्साह-सुख-आनन्द तिरोहित हो चला था। बरसों बाद उनका यह जोश, उत्साह समाप्त हो गया था। उसके हृदय में हमेशा अन्तर्द्वन्द्व की भावना रहती थी। वे मन में बेचैन-व्याकुल एवं व्यथित रहते थे। इसी प्रकार नायिका स्पष्ट करती हुई कहती है कि इन झूठी तस्वीरों से कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि ये तस्वीरें असत्य पर आधारित हैं, क्योंकि ये तस्वीरें झूठी हैं तथा मन्त्री महोदय ने राजस्थान में थार के रेगिस्तान को रोकने के लिए पेड़ लगवाये, परन्तु तस्वीर में कहीं भी पेड़ नहीं हैं, बल्कि पैर पसारता मरूस्थल है। इसलिए नायिका का पति अन्तर्द्वन्द्व की भावना से ग्रस्त है। इन तस्वीरों से नायिका के पति को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। वह स्पष्ट स्वीकार करता है कि इन तस्वीरों के भीतर मैं ही कहीं झूठा पड़ता जा रहा हूं। इस प्रकार उनकी सारी तस्वीरें असत्य पर आश्रित हैं। इसलिए उनको यह विश्वास नहीं हो रहा है कि तस्वीरें सच्ची होती हैं। इस प्रकार राजनीति के कलुषित रूप ने कलाकार के हृदय को आहत कर दिया तथा वह अपराध-बोध एवं आत्म-ग्लानि की भावना से पीड़ित है।

**विशेष** -1. प्रस्तुत अवतरण की भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की द ष्टि से अत्युत्तम है।

3. राजनीति के कलुषित रूप पर कटाक्ष किया है।

4. तस्वीरें और फोटोग्राफर के पेशे पर भी लेखक ने कड़ा प्रहार किया है।

5. भाषा में चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है तथा तस्वीरों का मानवीकरण किया गया हैं अतः मानवीकरण अलंकार है।